

दित्वात् वनोपः । गजपिप्यस्रो, गजपीपर ।

गजपिप्यो श्लो ।

कपिवक्त्र (सं० पु०) कपिवीररस्य वक्त्रमिव वक्त्रं यच्च, बहुव्री० । १ देवर्षि नारद । महाभारतमें नारदके वानरसुख, सख्यपर एम प्रकार लिखा,—
 किंसी समय देवर्षि नारद भीर उनके भागिनैयें पर्वत ऋषिने इस लोकमें आ मनुष्योंके साथ एशत्र रहने-
 की विचार किया । फिर दोनों दोनोंको श्मशानुभ यावतीय मनोभाव बता देनेकी प्रतिज्ञाकर सृञ्जन राजाके राज्यमें बस गये । राजाने उभय ऋषिकी परिचर्याके लिये स्त्रीय कन्याको नियुक्त किया था । कुछ दिन पीछे नारद उस कन्याके प्रति श्रत्यन्त पासत हुए, किन्तु लज्जावशतः यह मनोभाव भागिनैय पर्वत-
 से बता न सके । पर्वतकी आकार इङ्गित द्वारा उनका मनोभाव चवगत हुआ था । उन्हेंने प्रतिशय कुछ ही नारदको प्रतिज्ञाभङ्ग करनेपर अभिशाप दिया,—
 'यह राजकन्या तुम्हारी भार्या बनेगी । फिर तुम वानरका सुख धारण कर इस मत्स्यभूमिपर भूमते फिरोगे ।' (भारत. शान्त १०५०) (स्त्री०) २ वानरका सुख, बन्दरका मुँह ।

कपिवदन्य (सं० पु०) धान्नातकादृष्ट, चामड़ेका पेड़ ।

कपिवहिका, कपिरो श्लो ।

कपिवह्नी (सं० स्त्री०) कपिरिव कपिलोम इव वह्नी, मध्यपदलो० । गजपिप्यस्रो, गजपीपर । २ कपित्य-
 ष्टव, कैशिका पेड़ ।

कपिवास (सं० पु०) पारिगाभत्युष्ट, किसी किष्कके चौपलका पेड़ ।

कपिविरोचन (सं० स्त्री०) मरिच, मिर्च ।

कपिविरोधि, कपिविरोचन श्लो ।

कपिवीज (सं० स्त्री०) यक्षशिखार्योज, कैवाचका सुखम् ।

कपिष्ठ (सं० पु०) पारिगाभत्युष्ट, किसी किष्कका चौपल ।

कपिय (सं० पु०) कपिः वर्षाविशेषः कपिस्त गाम वा अत्यस्य, कपि-य । अ.भा.दिशान्त.दिशान्तादिभ्यः ऋद्वेद्यः । पा

१५१०० । १ श्यामवर्ष, मटमैला रंग । यह छत्र्य एवं पीत उभय वर्ष मिलनेसे बनता है । २ सिंहदक नाम गन्धद्रव्य, सोमान । ३ द्राक्षामय, चङ्गरी शराव ।
 "धाना न पक्वत् कपियं विराहकः ।" (भाष)

४ गिष । ५ जनपदविशेष, एक वसती । कपिनो श्लो । (त्रि०) ६ कपिगवर्षयुक्त, मटमैला ।

कपिशा (सं० स्त्री०) कपिय-टाप । १ सुरा, शराव । २ माघवीलता, चमेनो । ३ नदीविशेष, एक दरया । रघुराजा इषी नदीको पारकर उत्कृष्ट पट्टुचे गे । (१५५५) इसका वर्तमान नाम कसाई है । यह मेदिनीपुरके दक्षिणागसे प्रवाहित है वङ्गाप-
 सागरमें जा गिरी है । ४ पिशाचोंकी माता । यह कश्यपकी एक स्त्री रहीं ।

कपिशास्त्रन (सं० पु०) कपिषं षष्ठनं कपिगयुक्तं वा षष्ठनं यत्न, बहुव्री० । गिष ।

कपिमापुत्र (सं० पु०) कपिमायाः मदोन्मत्तायाः पिमायाः पुत्रः, इ-तत् । पिशाच, गैतान् ।

कपिमायन (सं० पु०) १ देवता । २ मद्यविशेष, किसी किष्ककी शराव । यह कपिय देगमें चङ्गरी बनायी जाती है ।

कपिगिका, कपिनो श्लो ।

कपिगीका (सं० स्त्री०) कपिय क्षायें वाहुलकात् ईकान् टाप च । मद्यविशेष, किसी किष्ककी शराव ।

कपिगीर्ष (सं० स्त्री०) कपोनां मिथं शीयं प्राक्का-
 रादीनां अयप्रदेशः, मध्यपदलो० । प्राचोरादिका अयभाग, दीवारका सिरा ।

कपिगीर्षक (सं० स्त्री०) कपोनां शीयं वर्षवत् कायति प्रकाशते, कपिगीर्ष-कै-क । १ डिङ्गुल, गिङ्गरक, ईशुर । २ प्राचोरादिका अयभाग, दीवारका सिरा ।

कपिगीर्षी (सं० स्त्री०) वादिविशेष, किसी किष्कका बाजा ।

कपिष्ठक (सं० पु०) कपिविशेष । कपिष्ठक श्लो ।

कपिस्तन्य (सं० पु०) कपोनां स्तन्य इव स्तन्यो यच्च, मध्यपदलो० । दानवविशेष । (अरि०)

कपिष्ठक (सं० स्त्री०) कपोनां स्तनं चापासम्, इ-तत् ।

१ वानरोंके निवासका स्थान, बन्दरोंके रहनेका सुकाम। २ पञ्चाशका एक प्राचीन जनपद। वर्तमान नाम कैथल है। यहाँ अष्टनाका मन्दिर विद्यमान है।
 कपिस्वर (सं० त्रि०) कपीनां स्वर इव स्वरो यस्य, बहुव्री०। वारनकी भांति स्वरविशिष्ट, जो बन्दरकी तरह आवाज रखता हो।
 कपिस्तक (सं० पु०) कपिकच्छु, केषांच।
 कपी (हिं० स्त्री०) चिरनी, चरखी, रस्सी कपेटनेका औजार।
 कपीकच्छु (मं० स्त्री०) कपिकच्छु, संज्ञायां वा दीर्घः। कपिकच्छुलता, केषांच।
 कपीन्य (मं० पु०) कपिभिर्वानरैरिच्यते पूज्यते, कपि-यञ्-क्यप्। १ रामचन्द्र। २ चौरिकाह्वय, खिरनी। ३ सुयोध। ४ हनुमान्।
 कपीत (सं० पु०) कपिभिरितः प्राप्तः प्रियत्वेनेति-शेषः। श्वेतबुद्धाह्वय, एक वेल।
 कपीतक (सं० पु०) ब्रह्मह्वय, पाकुर, सहीरा।
 कपीतन (सं० पु०) कपीनां ईं लक्ष्मीं तनोति, कपि-ई-तन् पचाद्यच्। १ भाम्नातक, भामड़ा। २ गर्द-भाण्डह्वय, पाकर, सहीरा। ३ शिरीष, सरसो। ४ अश्वत्थ, पीपल। ५ गुवाकह्वय, गुपारोका पेड़। ६ विश्वह्वय, वनका पेड़। ७ गण्डमुख। ८ उदुम्बर-ह्वय, गूलर।
 कपीन्द्र (सं० पु०) कपिरिन्द्र इव कपिपु इन्द्रः श्रेष्ठो वा। १ हनुमान्। २ वालि। ३ सुभीष। ४ विष्णु।
 “कपीरिन्द्रमोक्षा कपीन्दो धृतिदधिचः।” (भारत १२।७।२।११)
 ५ जाम्बवान्।
 कपीवह (सं० स्त्री०) कपिवह दीर्घः। इषो ऋ ङोकोः। वा ६।१।११। सरावरविशेष, एक तालाव।
 कपीवान् (सं० पु०) वशिष्ठ ऋषिके एक पुत्र। यह क्षत्रिय मन्वन्तरके सप्तमयौगं रह्ये।
 कपीवान् (सं० पु०) वशिष्ठ ऋषिके एक पुत्र। (परिक्ल)
 कपीय (सं० पु०) कपियोकै राजा, बन्दरोंके माहिक।
 वालि, सुभीष, हनुमान् प्रभृतिको कपीय कहते हैं।
 कपीष्ठ (सं० पु०) कपीनां इष्ठः प्रियः, ६-तन्त्।
 १ राजादीनह्वय, खिरनी। २ कपित्यह्वय, कैयां।

कपुच्छल (वै० स्त्री०) कस्य गिरसः पुच्छमिव क्षाति, क-पुच्छ क्षा-क्ष। १ केशचूडा। २ शुकका अग्रभाग।
 “इन्द्रो व कपुच्छमनयं दद्युः सासाकारः।” (मतव्यवाक्य २।१।११०)
 कपुष्टिका (सं० स्त्री०) कस्य गिरसः पुष्टो पीपणाय क्षायति, क-पुष्टि-कै-क-टाप्, कस्य गिरसः पुष्टो पीपणाय हितं, क-पुष्टि-कन्-टाप् वा। केशकी चूडाके संस्कारका कार्य।
 “कपादसूतीये वषे पूडाकरवे कपुष्टिका।” (गोविल)
 कपूत (हिं० पु०) कुपूत, खुराव लड़का, जा पुत्र अपने कुलका धर्म छोड़ भसदाचरण करता हो।
 कपूनी (हिं० स्त्री०) पुत्रका भसदाचरण, दुरे साइकेकी हानत।
 कपूय (मं० त्रि०) कुक्षितं पूयते, कु-पूय भच् घृषो-दरादित्वाच् सनोपः। दुर्गन्धि, बदबूदार, खुराव।
 कपूर (हिं० पु०) कपूर, काफूर। यह एक जमा हुआ सुगन्धदार मसाला है। कपूर हवा लगनेसे लड़ता और आगकी लपट छू जानेसे जलता है।
 कपूर देखो।
 कपूरकचरी (हिं० स्त्री०) गन्धपलाशी, गंधोली। यह एक प्रकारकी लता है। इसके मूलसे सुगन्ध निकलता है। आसामके हाड़ी इसके पत्रसे पापीय निर्माण करते हैं।
 कपूरकाठ (हिं० पु०) धान्यविशेष, किसी किष्कका लड़हन धान। यह सूख्य होता है। इसका तरबुल सुगन्ध और स्वादु है।
 कपूरा (हिं० पु०) मिय हाग प्रभृति पशुका अण्ड-कोप, भेड़ व३२ वगैरे क चौपायोंके बैज्ञोंका थैला।
 कपूरी (हिं० त्रि०) १ कपूरविशिष्ट, काफूरी, जो कपूरसे तैयार किया गया हो। २ कपूरवर्णविशिष्ट, काफूरका रङ्ग रखनेवाला, हलका पोला। (पु०) ३ वर्णविशेष, एक रङ्ग। यह कुब्ज-कुब्ज पीतवर्ण रहता है। केसर, फिटकरी और हरसिंगारके फलसे इसे तैयार करते हैं। ४ ताम्बूलविशेष, किसी किष्कका पान। यह प्रति दीर्घ एवं कट्ट होता है। इसका प्राग् भङ्ग रहता है। इसको मन्वईको और लोग अधिक खाते हैं। सुननेमें भाता—कपूरी पान खानेसे

हिन्दी विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक
श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहाशय,
विद्वान्-वारीधि, शब्दराकर, एम, आर, ए, एच,
तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

चतुर्थ भाग

[कवि-कृति]

THE ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. IV.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārṇava,

Siddhānta-vāridhi, Śabda-ratsākara, M. R. A. S.,

Compiler of the Bengali Encyclopædia; the late Editor of Bangiya Sāhitya Parishad
and Khyashta Patrikā; author of Castes & Sects of Bengal, Mayura-
bhanja Archaeological Survey Reports and Modern Buddhism;
Hony. Archaeological Secretary, Indian Research Society;
Member of the Philological Committee, Asiatic
Society of Bengal; &c. &c. &c.

Printed by H. C. Mitra, at the Visvakosha Press.

Published by

Nagendranāth Vasu and Visvanāth Vasu
Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

1922.

पुरुष नपुंसक हो जाता है। (स्त्री०) ५ शोषवि-
विशेष। इसका पत्र दीर्घ होता है। पत्रके मध्य
भागमें एक खेत देखा पड़े रहती है। मूल कपूरकी
भांति सुगन्ध देता है।

कपृथ (वे० पु०) कुतूषित प्रथयति, कु-प्रथि-क्तिप्
वेदिकत्वात् नियामेन सिधम्। १ पुरुषत्व, मर्दानयो।
(त्रि०) २ कुतूषित प्रकाशक।

कपोत (सं० पु०) को वायुः पोतः नीरिवाय्य, कव-
पोतच् वक्ष्य पः। कवेरीतच् पव। ७५ १५१। १ पक्षी,
विडिया। २ हाथीकी एक बनोखी स्थिति।
३ पक्षिविशेष, पुष्पू। ४ मूषिकमेद, एक वृक्षा।
५ कपोतसमूह, कबूतरोंका झुण्ड। ६ पारद, पारा।
७ सर्किखार, सखीखार। ८ पारीगृहघ, पलाश-
पीपल। ९ भूरा रङ्ग। १० सुरमेकी सफ़ेदी।
११ पारावतपक्षी, कुमरी, कबूतर। साटिन भाषामें
कपोतजातिका नाम कोलम्बिडो (Columbidae) है।

इसका संस्कृतपर्याय—गृहकपोत, पारावत,
पारापत, कलरव, छिया और गृहकुङ्कट है। जङ्घी
कबूतरकी वनकपोत, चित्रकण्ठ, कौकदेश, दहन,
धूसर, भीषण, धूम्रसोचन, भस्मसहाय और गृह-
नाशन कहते हैं।

दृष्टिवीपर सर्वत्र कपोत देख पड़ता है। किन्तु
पट्टिनिया और भारत-महासागरके उपकूलवर्ती
प्रदेशमें इसकी संख्या अधिक है। अमेरिकामें यद्यपि
कपोत होते भी विभिन्न प्रकारका नहीं मिलता।
भारतवर्ष एवं मलयद्वीपमें जसे इसकी संख्या अधिक
प्राची, वैसे ही विभिन्न प्रकारकी अथो दिखती है।
युरोप और उत्तर-एशियामें इसकी संख्या सर्वापिवा
अल्प है।

खगतस्वयंसाधोनि भाजतक प्रायः तीन सौसे भी
अधिक कपोतअथो अन्विष्कार की है। उक्त सकल
विभिन्न अथियोंमें अधिकार्थ प्रति सुन्दर देख पड़त
है। अनेक कपोतोंका गात्र भिन्न भिन्न वर्णमें विवित
रङ्गनेमें बहुत ही मनोहर मान्य देता है। प्रायः
सकल अथियोंका पद्मसौष्ठव सम्यक् सुगठित और
सुदृश्य है। कपोतकी अधिकार्थ अथियां मनुष्यका

उपयोगी खाद्य है। फिर अनेक स्थलमें यह खाद्य-
रूपसे प्रचुर व्ययहृत होती है।

कपोतोंके मध्य दाम्पत्य प्रेम प्रति सुन्दर है।
एक बार जो जोड़े मिला जातो, वह जीवन रहते
कभी छूटते नहीं दिखती। इनके इस अविच्छिन्न
प्रेमकी कथा सकल देशोंके काव्यमें विशेष प्रसिद्ध है।

कपोत और कपोती दोनों घर बना लेते, पहले
देने और बेंसे सेनेमें एक दूसरेको साहाय्य करते हैं।
यह किसी स्थानको तोड़ फोड़ अपना घोंसला बना
नहीं सकते। वृक्षके जपर, पत्रैतके गड्ढरमें, इटकापथको
कानिंसके नीचे या देवालयके गात्रपर गतोंको निकाश
कपोत अलग घोंसला तैयार करता है। एकवार
दो खेतवर्ष डिम्ब होते हैं। कोई कोई अथो
एकमात्र डिम्ब देती है। किन्तु दोसे अधिक किसीके
नहीं रहते। कपोत प्रति मास डिम्ब दिया करते हैं।
फिर डिम्ब फूटनेमें १५ दिन लगते हैं। यह १५
दिन ताप पट्टुचानिके हैं। कपोती डिम्ब दे प्रथम
३ दिन एकात्म दिवारात्र बराबर ताप लगाती,
केवल एक बार खानिको उठ जाती है। प्रथम ३ दिन
अधिक घण यह कपोतकी ताप पट्टुचानिके रोकती
अथवा अथमात्र भी डिम्बकी खाली नहीं छोड़ती।
कपोती जब खानिको जाती, तब ताप पट्टुचानिके
कपोतकी बारी पाती है। कपोतकी निकट न देख
वह अत्यन्त सुधातुर होती भी डिम्बकी अनाहत छोड़
कैसे घटेगी। कपोत निकट न रहनेसे सुधा लगने
पर कपोती उसे दुतानिको गभोर शब्द करती है।
कपोत दूर होते भी उक्त शब्द सुनते ही घोंसलेमें
धा पट्टुचता है। प्रथम तीन दिन बीत जानेसे यह
डिम्बको छोड़ उठ जाती है। दिनकी अधिक अल्प
कपोत ताप पट्टुचता और रातको कपोतीके कार्य
करनेका समय पाता है। १५ दिन पीछे डिम्ब
फूटनेसे श्रावक निकलता है। यह श्रावक चर्माच्छादित
मांसपिण्डमात्र होता है। इसके गात्रमें पालकका कोई
चिह्न देख नहीं पड़ता और अचुदय शब्द रहता है।
डिम्ब फूटनेसे कपोती फिर ३ दिन ताप देनेकी
बैठती है। प्रथम ३ दिनको भांति इस बार भी यह

आहार तथा निद्रा त्याग करती है। कपोत और कपोती दोनों शावकको खिलाते हैं। प्रथमतः यह जो खाती, उसीको अपने उदरस्थ खाद्यके आधारमें रख और दुग्धवत् तरल पदार्थमें परिणत कर शावकके मुँहमें पहुँचाते हैं। कुछ दिन बीतने पर वही पदार्थ मण्डवत् कर और शेषको अक्षयित रख खिलाया जाता है। इसी प्रकार वयोवृद्धिके साथ खाद्यकी व्यवस्था बदल क्रमशः कठिन द्रव्य खिलाना सिखाते हैं।

शिव्य फूटनेसे प्रायः दिन पीछे पालककी रक्षा देख पड़ती है। एक मासके मध्य शावकका सर्वाङ्ग पालकसे आच्छादित हो जाता, किन्तु उसे चुगना नहीं आता। फिर भी इस समय वह पितामाताके साथ उड़ भूमिपर उतरना और घोंसलेपर चढ़ना सीखता है। इतने दिन उसे खिला देना पड़ता है। मास वा दो मासका होनेपर शावक चुगने लगता है।

कपोत-पक्षके श्रेष्ठ भागमें ३४ बड़े पालक रहते हैं। प्रथम उनसे पक्षमें उड़नेके उपयुक्त १० पाशक निकलते हैं। जिस प्रकार सात वत्सरके वयसमें मनुष्यके कर्ण दाँत गिर फिर आते, वैसे ही उड़ना आरम्भ करनेवाले कपोतके पक्षस्थित पालक झड़कर पुनः प्रकाश पाते हैं। सर्वाङ्ग पक्षके उड़नेयोग्य भीतरों पर प्रथमसे आरम्भ हो झड़ा करते हैं। एक जवतक झड़कर भर नहीं जाता, तबतक दूसरेका गिरना असम्भव आता है। इसी प्रकार पक्षम पालक गिरनेपर अन्ततःका वयस बढ़ना है। फिर दशम पालक झड़ जानेसे यह युवावस्थाकी प्राप्त होता है।

कपोत फल शक्यादि खा, जीवनधारण करता है। यह किसी प्रकारके कौटादि नहीं खाता। किन्तु किसी श्रेणीका कपोत सुदु-सुदु शम्बुक खा जाता है। हिन्दूस्थानका कवृत्तर 'शुटरगू' बोलता है। यह वर्षके समय ही शब्द करता, पीड़ित होनेपर मौन रहता है। कपोत अपने श्रेणीकी कपोतीकी मनीनीत करता, किन्तु गृहपालित मनुष्यके वशीभूत हो जानेसे भिन्न श्रेणीवालीके साथ भी रहता है।

कपोतोंमें स्त्रीजाति ही यथेच्छ-व्यवहार चलाती है। अपने स्वयंमें एक कपोतीके स्थिति दो कपोत लेड़ते देखे गये हैं। फिर कपोती नूतन कपोतकी ओर झुक पड़ी है। इसी प्रकार दो दम्पतीके मध्य विवाद बढ़नेपर परस्पर स्त्रीपरिवर्तन हुआ है। सन्ध्याकाल कपोत अति शीघ्र शीघ्र गृहप्रवेश करता, किन्तु श्रान्त्यन्त पक्षियोंकी भाँति प्रातःकाल ही उसे छोड़ नहीं चलता। सूर्यका किरण कुछ अधिक अच्छा लगता है। इसकी दृष्टिशक्ति और व्यवशक्ति अति तीक्ष्ण है। कपोतके दोनों पक्ष अति सबल और सघु होते हैं। इसीसे यह बहुत द्रुत उड़ सकता है।

साधारणतः कपोत देगनेमें अति सुन्दर लगता है। इसका वर्ण और आकार नानाप्रकार है। पक्ष अधिक दीर्घ नहीं रहता, प्रायः १ इंचसे भी बल्य पड़ता है। उसके दोनों भाग सरल एवं रैपत् सङ्घुचित होते हैं। किसी चञ्चुका अग्रभाग अत्य और किमीका अधिक झुक जाता है। ऊपरी पक्षके मूलमें रैपत् मांस उभरता है। यह मांस अति कोमल और समान होता है। इसी मांसपर विनकुल कपालके नीचे दोनों सरल नासाविवर रहते हैं। कपालसे ऊपर मस्तक गोल हो पचात् दिक्को टल जाता है। सुखका विषय पत्यन्त सुदृग् वा अति हृष्ट नहीं होता। दोनों पक्ष पक्षमें विस्तार पचात् मद्दकके दोनों पार्श्वपर समस्त-पातसे व्यवस्थान करते हैं। पक्ष अधिक दीर्घ होते हैं। किसी-किसी श्रेणीके कपोतका पक्ष लपेट लिया जानेसे श्रेष्ठ प्राक्त रूप पड़ता और किसीका रैपत् गोलाकार बनता है। पुच्छके पालक भी इसी प्रकार भिन्न-भिन्न आकार धारण करते हैं। पुच्छमें प्रायः १२से १४ तक पालक रहते हैं। वह अन्यान्य स्थानके पालकसे यथेष्ट दोष होते हैं। फिर किसी-किसी श्रेणीवाले कपोतके पुच्छमें सोलह या दस मात्र पालक होते हैं। साधारणतः इसके पेर घुटनेके ऊपरी भाग पर्यन्त पालकसे आच्छादित रहते हैं। अङ्गुलि नातिदीर्घ होती है। पैरमें तीन अङ्गुलि भाग और एक पीछे पाते हैं। पचात्की अङ्गुलि

हिन्दी

विष्वकोष

(चतुर्थ भाग)

कपिल (सं० त्रि०) कम्-इलच् पादेऽयम् । अनेः एव ।
१२१११ । १ पिङ्गलवर्ण, भूरा, तामड़ा, मटमैला ।
(पु०) २ चन्दि, चाग । ३ वर्षविशेष, मटमैला रंग ।
४ कुङ्कुम, कुत्ता । ५ शिखारस, लोबान् । ६ महा-
देव । ७ विष्णु । ८ सर्पविशेष, एक सांप । ९ दानव-
विशेष, एक राक्षस । १० वक्ष्यहृत्, एक पेड़ ।
११ पित्तल, पोतल । १२. मूषिकमेद, किशो किष्काका
वृक्षा । इसकी काटनेसे त्र्यकोय, क्ष्वर और घन्युह्व
होता है । (सप्त) १२ कुम्भदीपका पर्यंतविशेष, एक
पहाड़ । (आमरव श०११११) १३ सूर्य, चाफताव ।
१४ वितयके पुत्र । १५ यक्षदेवके पुत्र । नराचीके
गर्भसे यह उत्पन्न हुये थे । १६ सुनिविशेष । इनके
पिताका नाम कर्दम और माताका नाम देवहृति
रहा । इन्होंने सांख्यदर्शन बनाया है ।

सांख्यार्थ कपिल एक प्रति प्राचीन ऋषि थे ।
वेदके उपनिषद्भागमें इनका नाम मिलता है* । यह
सिद्धार्थियोंमें सर्वश्रेष्ठ रहे । इसीसे भगवान्‌नी गीतामें
कहा है—

“अर्थात् चित्ररथः सिद्धार्थ कपिको हृदिः ।” (गीता २०।१६)

इस गन्धर्वीमें चित्ररथ और सिद्धीमें कपिल
सुनि है ।

* “कपिं प्रहृतं कपिं च यत्नयेत् कानि विमतिः ।” (वेतावत ३।२)
यस्य कपिचो कपिचो निनीने सर्ववत्त आनवात्त वीरव विना ।

भागवतमें लिखते—कपिल भगवान्‌का पञ्चम
अवतार रहे । उन्होंने महायोगो कर्दमके पीरस पीर
देवहृतिके गर्भसे जन्म लिया था । इनके जन्मका
आकाशमें वर्षशील मेघसे नानाविध वायु बजे, गन्धर्व
नाचने लगे, यक्षोंने धामन्दगीत धारण किये,
पक्षियों द्वारा पुष्प बरसाये गये और दिक्, जल एवं
सर्वप्राणीके मन प्रसन्न हुये । सूर्य मन्ना कर्दमके
आयम पाये थे । उन्होंने कर्दमकी पीर देखकर
कहा—हे मुने ! तुम्हारे यह वासक साक्षात् ईश्वर
हैं ! यह सिद्धीके अधीश्वर हो जायेंगे और सांख्या-
चार्य कर्दमक पूजित हो जगत्‌में ‘कपिल’ नाम पायेंगे ।
इन्होंने ज्ञानसाधन सांख्यमात्र उपदेश करनेकी ही
यह अवतार लिया है ।

कपिलने अपने पिता कर्दम और माता देव-
हृतिकी आज्ञा उपदेश किया था । देवहृतिने श्री
होते भी पुत्रसे तत्त्वकथा सुन ज्ञान और मोक्ष पाया ।

भागवतमें देवहृतिके उपदेशच्छ्लेषसे कपिलकर्दम
सांख्यमत वर्णित है,—

“जो सकल इन्द्रिय प्रकाशका रहते और जिनके
द्वारा शब्द स्पर्शादि विषय पशुभव करते, सत्त्वमूर्ति
भगवान्‌के प्रति उनकी ज्ञानाधिक हृत्तिकी ही
निष्कामा भागवती भक्ति कहते हैं । यहसत्त्व पुत्रके
किये यह मुक्तिसे बंध है । किन्तु इन्द्रियमें यह

सम्बन्धको पङ्क्तिको भांति समसूत्रपातसे व्यवस्थान करती है। नख दण्डोपवेशी पक्षीकी भांति यत्र रहते हैं। फिर अङ्गुलि भी दण्डोपवेशी पक्षीकी भांति ग्रन्थिन होती हैं। किन्ती किछो श्रेणीवासे कपोतके समस्त पादपर पालक निकल भाते हैं।

हिन्दूस्थानमें कबूतर खेलके लिये पाला जाता है। इसीसे इसका व्यवसाय चला करता है। केवल हिन्दूस्थानमें ही नहीं, यूरोपके सकल स्थलपर कपोत अनुपत्यके प्राच्यमें पक्षता है।

शाकुनशास्त्रके अनुसार पालक वा व्यवसायी इसकी श्रेणी आकार, कायं एवं गुणादि देख विभाग करते हैं। इसकी प्रायः दो जाति हैं—गोला और गिरहवाज। इन दो जातिके कपोत फिर पनेक विभागमें बंटते हैं। गोलावर्गमें भका, शुकी, गीराजी, कौड़ियाला, तुगदादी, सुक्का, पाष्ता, कबरा, मूंगिया, लोटन प्रभति प्रधान हैं।

हिन्दूस्थानी लोगोंने घरों और मठोंमें एक-प्रकारका गोला स्त्रयं अर्थात्त रूपसे रखा करता है। उसे जङ्गली कबूतर कछते हैं। यह नाना वर्णका होता है। इसका मुख्य पति प्रत्य है।

गिरहवाजोंमें कागजी, सजा, नीला, स्याहा, अबलका, सुर्दा, सादा, ऊदा, भूरा, गच्छेदार, दोबाज, वगैरह अष्टौ समके जाते हैं।

गोला और दोबाज देखते ही पहचान पड़ता है। गोलेसे गिरहवाजकी ओंछ साफ़ होती है। फिर गोलेके चतुर्भुज शान्त भाव रहता, किन्तु गिरहवाज चपमो ओंछ घुमाया करता है।

गिरहवाज चैरमें पर चानसे भरवारी और मलेपर चोटी बढ जानेसे चोटियाला कहता है। फिर चैरमें पर और मलेपर चोटी दीर्घ होनेसे इसको भरवारा-चोटियाला कहते हैं।

पहले हिन्दूस्थानमें कपोतके प्रचल्य भेद रहे। किन्तु आजकलकी श्रेणियोंको देख प्राचीन नामोंके निर्णय करनेका कोई उपाय नहीं। प्राचीन कवियोंके काव्योंमें प्रमाण पाता, कि पुराने समय भी हिन्दूस्थानमें कपोत पाला जाता था। राजा-महाराज

और सेठ-साहकार इसे यद्येष्ट रूपसे क्रीडादिके लिये रख लेते। उस समय लोग कपोतको बहुत अच्छा समझते और उड़ा पामोद करते थे।

हिन्दूस्थानमें बालक इसे उड़ा खेला करते हैं। कपोत उड़ानेके लिये बच्चेके सर्वापिवा उच्च प्राचीर या किसी वृक्षकी ऊर्ध्व शाखापर बन्नी गाड़ना या बांधना पड़ता है। इस बन्नीपर एक चौकोन छतरी लगती है। कपोत उड़नेसे इसी छतरी पर आकर बैठता है। छतरीमें कपड़का जाल रहता है। इस जालमें एक डोरी लगती, जो भूमिपर लटकता करता है। डोरी नीचेसे खींचनेपर छतरीका जाल चारो ओरसे ऊपरकी उभर बन्द हो जाता है। जब कोई बाहरी कबूतर भूलसे या छतरीपर बैठता, तब खेलाड़ी नीचेसे डोरी खींचता है। इससे छतरीका जाल बन्द होती ही कबूतर फंसता है। फिर छतरीको गगरी टोली कर उतार देते और नशागत कपोतको पकड़ लेते हैं। यह अपना स्थान खूब पहचानता है। कलकत्तेके कबूतर मिर्जापुर और असाहाबादसे छूटते भी अपने स्थानपर आ पहुँचते हैं। वर्तमान युरोपीय महा-समरमें इसमें इधरसे उधर पत्र पहुँचानेमें बड़ा साहाय्य किया है। पूर्व समय भी कबूतर दूरकारिका काम करते थे। उन्हेंके किसी कविने कहा है—

“जय कबूतर जिसतरह से भाये जानेपर पर।

एक कलामिका कनो है कविने दोशर पर।”

काठ या बांसके जिस घरमें इसे रखते, उसको कायुक कहते हैं। इसमें एक-एक जोड़ा कबूतर रहनेको दारसे बने जाते हैं। उन्हेंमें खेलाड़ी इसे खिना-पिला सभ्याको बन्द कर देते हैं। हिन्दूस्थानमें प्रायः कबूतरको पकरा खिनाया जाता है।

हिन्दूस्थानमें इसे शीतला, यष्मा, सेष्मा वा मोथ रोग अधिक लगता है। शीतला निरुपनसे कपोतको जलमें भीगने देना न चाहिये। फिर तारपीनका तेल चुपड़नेसे उक्त रोग शारीर्य होता है। मोथ बड़नेपर इसे रौद्रमें रचते और लहसुनका एक शेर खिनाया करते हैं। सोभापर भी यही पोषक चसता है। यष्मा होनेसे सरसोंके तेलका फलोता जला मध्य खिनाया

वृत्ति स्वतः नहीं जाती, वेदविहित क्रममें प्रवृत्ति लगनेसे उत्पन्न ही जाती है। ऐसी भक्ति होनेपर क्रमसे मुक्ति भी मिलती है। जो ईश्वरको आत्मवत् प्रिय, पुत्रवत् स्नेहपात्र, सखा-जैसा विश्वासभाजन, गुरुकी भांति उपदेष्टा, बन्धुकी तरह हितकारी और इष्टदेव सृष्ट्य सम्भक्ता अर्थात् जो सर्वतोभावेसे भगवान्‌का भजन करता, उसका ज्ञान कुछ बगान नहीं सकता।

“प्रतिभोम बुद्धिविगिष्ट आत्मा हो पुरुष है। वह पुरुष अनादि, निगुण और प्रकृतिसे भिन्न है। पुरुष केवल साक्षीस्वरूप होता है। वह स्वयं प्रकाश पाता और यह विश्व उसके साथ मिललुन प्रकाशित हो जाता है। वही पुरुष अपने निकट विष्णुकी शक्तिरूपा अव्यक्तगुणमयी प्रकृतिको सीलावधतः पट्टेवने पर अथञ्चाक्रमसे पश्य कर लेता है। प्रकृति अपने गुणसे समानरूप विचित्र प्रजासृष्टि करती है। निजमें पविश्रीय पराध विशेषका जो आश्रय प्रधान पाता, वही प्रकृति कष्टता है। फिर प्रधान त्रिगुण रहता, अतएव अव्यक्त अर्थात् अकार्य ठहरता है। सुतरां वह न तो महत्त्व और न लीयनस्वरूप नित्य अर्थात् लीयको ही प्रकृति है। प्रधानके कार्यस्वरूप चतुर्विंशति पदार्थ हैं। यथा—भूमि, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश पञ्च महाभूत, गन्धतन्मात्र, रसतन्मात्र, रूपतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र तथा शब्दतन्मात्र पञ्चतन्मात्र, चक्षु, कर्ण, जिह्वा, घ्राण, त्वक्, वाक्, पाणि, पाद, पाशु एवं उपस्थ दश इन्द्रिय, मनः, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त चार अन्तरिन्द्रिय। अन्तःकरणके अन्तरिन्द्रिय ठहरते भी वृत्तिभेदसे उक्त चार प्रकारका भेद पड़ जाता है। यह चतुर्विंशति तत्त्व सगुण ब्रह्मके सविशेषका स्थान हैं। एतद्भिन्न काल पञ्चविंश तत्त्व है।

“निष्काम धर्म, निर्मल मनः, भक्तियोग, तत्त्वदर्शिसान, प्रबल वैराग्य, तपोयुक्त योग एवं हृदयर आत्मसमाधि द्वारा पुरुषको प्रकृति क्रमशः काँड़की भांति लल शेषको तिरोहित हो सकती है। पुरुषको प्रकृति इसप्रकार एकबार लल जानेसे

फिर उभरने नहीं पाती। उस समय पुरुष सम्भक्ता—इसका भोग सुक्त हो गया। पुरुषको जन्मजन्मान्तरमें अथात्परत ही जब ब्रह्मलोकप्राप्तिसे विषयमें भी वैराग्य पाता और भगवान्‌के प्रति ऐकान्तिक भक्तिमान् बननेसे आत्मतत्त्व देखाता, तब वह कैवल्यधाममें दिशातिरिक्त सदाशयस्वरूप परमानन्द पाता है। फिर लिङ्गगरीर गाग हो जानेसे आनन्दनाम कर पुनर्बारे उसको निवटना नहीं पड़ता। आत्मज्ञानके बसमें सकल मिथ्या ज्ञान विनष्ट हो जाता है।”

कपिल मुनिने अपने सांख्यसूत्रमें भी देखाया है—
वसुमात्र सत् है अर्थात् किसी वस्तुका उद्भव किंवा विनाश नहीं। वस्तुको आविर्भाव होनेसे हम देख पाते और तिरोभाव होनेसे उसके लिये पड़ता है। आविर्भावके पूर्व भी वस्तुकी सत्ता स्वीकार करना पड़ती है। ऐसा न मानने पर एकमात्र उपादानसे सकल कार्य उत्पन्न हो सकते हैं। असत्कार्यवादिमतमें उपादान सृष्टिकाके साथ घटके सम्बन्धकी भांति पटका भी सम्बन्ध नहीं लगता। सम्बन्ध न रहते भी जैसे सृष्टिकासे घट बनता, वैसे ही पट भी बन सकता है। किन्तु उत्पत्तिके पूर्व कार्यको सत् स्वीकार करते सृष्टिकासे पटोत्पत्तिकी आपत्ति पड़ नहीं सकती। क्योंकि सृष्टिकासे पटका कोई सम्बन्ध नहीं। जिसके साथ जिसका कोई विगिष्ट सम्बन्ध नहीं रहता, उससे वह कैसे उपजता है। घटके साथ उत्पत्तिसे पूर्व भी सृष्टिकाका सम्बन्ध होता है। इसीसे सृष्टिकासे घट बन जाता है। यदि उत्पत्तिसे पूर्व कार्य असत् ठहरे, तो सृष्टिकारूप सत्कारणके साथ असत् घटरूप कार्यका सम्बन्ध बंध न सके। सुतरां असत्कार्यवादीयोंके मतमें घटसर्गशून्य सृष्टिकासे घटोत्पत्ति होनेकी भांति असम्बन्ध सृष्टिकासे पटकी उत्पत्ति होनेमें क्या बाधा है? अथवा सर्ग न रहते सृष्टिकासे पटोत्पत्ति न होनेकी भांति घट भी कैसे बन सकता है। उक्त दोनों विषय सत्कार्यवादके स्थापनकी प्रधानतम युक्ति हैं।

भाङ्गार तथा निद्रा त्याग करती है। कपोत और कपोती दोनों शावकको खिलाते हैं। प्रथमतः यह जो खाते, उसीको अपने उदरस्थ खाद्यके आधारमें रख और दुग्धवत् तरस पदार्थमें परिणत कर शावकके सुखमें पहुँचाते हैं। कुछ दिन बीतने पर वही पदार्थ मण्डवत् कर और श्रेयको अर्धंगलित रख खिलाया जाता है। इसी प्रकार वयोवृद्धिके साथ खाद्यकी व्यवस्था बदल क्रमशः कठिन द्रव्य खिलाता सिखाते हैं।

द्विच फूटनेसे ५।६ दिन पीछे पालककी देना पड़ती है। एक मासके मध्य शावकका सर्वाङ्ग पालकसे आच्छादित हो जाता, किन्तु उसे चुगना नहीं आता। फिर भी इस समय वह पितामाताके साथ उड़ भूमिपर उतरना और घोंसलेपर चढ़ना सीखता है। इतने दिन उसे खिला देना पड़ता है। मास वा दो मासका होनेपर शावक चुगने लगता है।

कपोत-पक्षके श्रेय भागमें १४ बड़े पालक रहते हैं। प्रथम उनसे पक्षमें उड़नेके उपयुक्त १० पालक निकलते हैं। जिस प्रकार सात वत्सरके वयसमें मनुष्यके कर्च दांत गिर फिर आते, वैसे ही उड़ना आरम्भ करनेवाले कपोतके पक्षस्थित पालक झड़कर पुनः प्रकाश पाते हैं। सर्वांग पक्षके उड़नेयोग्य भीतरों पर प्रथमसे आरम्भ हो झड़ा करते हैं। एक जयसक झड़कर भर नहीं जाता, तबतक दूसरेका गिरना असम्भव आता है। इसी प्रकार प्रथम पालक गिरनेपर द्वितीयका वयस बढ़ना है। फिर दशम पालक झड़ जानेसे यह सुभावस्थाकी प्राप्त होता है।

कपोत फल शक्यादि खा, जीवनधारण करता है। यह किसी प्रकारके कौटादि नहीं खाता। किन्तु किसी श्रेणीका कपोत सुदृ-सुदृ शम्बूक खा जाता है। हिन्दूस्थानका कवूरत 'गुटरगू' बोलता है। यह वर्षके समय हो शब्द करता, पौड़ित होनेपर मौनी रहता है। कपोत अपने श्रेणीकी कपोतीको मनानीत करता, किन्तु शब्दपालित मनुष्यके वशीभूत हो जानेसे भिन्न श्रेणीवालीके साथ भी रहता है।

कपोतोंमें स्त्रीजाति ही यथेष्ट-व्यवहार चलाती है। अपने स्वल्पमें एक कपोतीके निये दो कपोत लड़ते देखे गये हैं। फिर कपोती नूतन कपोतकी ओर रुक पड़ी है। इसी प्रकार दो दम्पतीके मध्य विवाद बढ़नेपर परस्पर स्त्रीपरिवर्तन हुआ है। सन्ध्याकाल कपोत अति शीघ्र शीघ्र शब्दप्रयोग करता, किन्तु अन्धान्य पक्षियोंकी भांति प्रातःकाल ही उसे छोड़ नहीं चलता। सूर्यका किरण कुछ अधिक अच्छा लगता है। इसकी दृष्टिशक्ति और श्रवणशक्ति अति तीक्ष्ण है। कपोतके दोनों पक्ष अति सव्य और सधु होते हैं। इसीसे यह बहुत दृग उड़ सकता है।

साधारणतः कपोत देखनेमें अति सुन्दर लगता है। इसका वर्ण और आकार नानाप्रकार है। पक्ष अधिक दीर्घ नहीं रहता, प्रायः १ इंचसे भी अल्प पड़ता है। उसके दोनों भाग मरल एवं ईपत् बहुचित होते हैं। किसी चञ्चुका अथवा भाग अल्प और किसीका अधिक रुक जाता है। ऊपरी अक्षके मूलमें ईपत् मांस उभरता है। यह मांस अति कोमल और समान होता है। इसी मांसपर बिलकुल कपालके नीचे दोनों सरल नासाविवर रहते हैं। कपालसे ऊपर मस्तक गोल हो पयात् दिक्को टल जाता है। सुष्ठका विवर अत्यन्त सुदृ या अति हृदय नहीं होता। दोनों चञ्चु चञ्चुसे विस्तार पयात् मस्तकके दोनों पार्श्वपर समस्त-पातसे व्यवस्थान करते हैं। पक्ष अधिक दीर्घ होते हैं। किसी-किसी श्रेणीके कपोतका पक्ष लघुट लिया जानेसे श्रेय प्राप्त सुष्ठ पड़ता और किसीका ईपत् गोलाकार बनता है। पुच्छके पालक भी इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार धारण करते हैं। पुच्छमें प्रायः १२से १४ तक पालक रहते हैं। यह अन्धान्य स्थानके पालकसे यथेष्ट दोष होते हैं। फिर किसी-किसी श्रेणीवाले कपोतके पुच्छमें सोलह वा दश मात्र पालक होते हैं। साधारणतः इसके पर घुटनेके ऊपरी भाग पर्यन्त पालकसे आच्छादित रहते हैं। अङ्गुलि नातिदीर्घ होती है। परमें तीन अङ्गुलि आगे और एक पीछे पाते हैं। पयात्की अङ्गुलि

सम्मुखवाको पङ्क्तिकी भांति समसूत्रपातसे व्यवहान करती है। नष्ट दण्डोपदेशी पक्षीकी भांति वक्र रहते हैं। फिर पङ्क्तिकी भी दण्डोपदेशी पक्षीकी भांति मृन्मिल होती है। किसी किसी श्रेणीवाले कपोतके समस्त पादपर पालक निकल पाते हैं।

हिन्दुस्थानमें कबूतर खेनके लिये पाला जाता है। इससे इसका व्यवसाय चला करता है। केवल हिन्दुस्थानमें ही नहीं, यूरोपके सकल स्थानपर कपोत मनुष्यके भोजनमें पलता है।

शाकुनशास्त्रके अनुसार पालक वा व्यवसायो इसकी श्रेणी आकार, कार्य एवं गुणादि देख विभाग करते हैं। इसकी प्रायः दो जाति हैं—गोला और गिरहवाज। इन दो जातिकी कपोत फिर पनेक विभागमें बंटते हैं। गोलावाँमें लका, गुप्ती, गीराजी, कौड़ियाला, बुगदादी, सुख्वा, पाषाणा, कवरा, मूंगिया, लोटन प्रभृति प्रधान हैं।

हिन्दुस्थानी लोगोंके घरों और मठोंमें एक-प्रकारका गोला स्वयं चयाचित रूपसे रखा करता है। उसे जङ्गली कबूतर कहते हैं। यह नाना वर्णका होता है। इसका मूल्य प्रति पक्ष्य है।

गिरहवालोंमें कागजी, सला, नीला, स्याहा, भवलका, सुर्धा, सादा, लदा, भूरा, गण्डेदार, दोबाज, वगैरह अच्छे समझे जाते हैं।

गोला चार दोबाज देखते ही पहचान पड़ता है। गोलसे गिरहवाजकी शीघ्र साफ़ होती है। फिर गोलके चक्षुमें सर्वदा शून्य भाव रहता, किन्तु गिरहवाज प्रथमो शीघ्र सुमाया करता है।

गिरहवाज पैरमें पर आनेसे भवरा और मखेपर चोटो बड़ आनेसे चोटियाला कहाता है। फिर पैरमें पर और मखेपर चोटो दोनों होनेसे इसको भवरा-चोटियाला कहते हैं।

पक्ष्ये हिन्दुस्थानमें कपोतके प्रसंग्य भेद रहे। किन्तु प्राक्कालकी श्रेणियोंको देख प्राचीन नामोंके निर्णय करनेका कोई उपाय नहीं। प्राचीन कवियोंके काव्यमें प्रमाण पाता, कि पुराने समय भी हिन्दुस्थानमें कपोत पाला जाता था। राजा-महाराज

और सेठ-साहकार इसे यथेष्ट रूपसे क्रीडादिके लिये रख लेते। उस समय बोग कपोतकी बहुत पध्दा समझते और उड़ा धामोद करते थे।

हिन्दुस्थानमें वालक इसे उड़ा खेला करते हैं। कपोत उड़ानेके लिये सड़के सशपिषा उच्च प्राचीर वा किसी वृक्षकी ऊर्ध्व शाखापर यत्नी गाड़ना या बांधना पड़ती है। इस बलीपर एक चोकोन छतरो लगती है। कपोत उड़नेसे इसी छतरी पर आकर बैठता है। छतरीमें कपड़ेका जाल रहता है। इस जालमें एक छोरी लगती, जो भूमिपर लटका करती है। छोरी नीचेसे खींचनेपर छतरोका जाल चारो ओरसे ऊपरकी ओर बन्द हो जाता है। जब कोई बाहरी कबूतर भूलसे या छतरीपर बैठता, तब खेलाड़ी नीचेसे छोरी खिंचता है। इससे छतरोका जाल बन्द होते ही कबूतर फंसता है। फिर छतरीको गारोरी टोली कर उतार देते और नवागत कपोतको पकड़ लेते हैं। यह प्रयत्न स्थान खूब पहचानता है। कलकत्तेके कबूतर मिरजापुर और अलाहाबादसे छूटते भी अपने स्थानपर आ पहुँचते हैं। वर्तमान युरोपीय महा-समरमें इसने इधरसे उधर पत्र पहुँचानेमें बड़ा साहाय्य किया है। पूर्व समय भी कबूतर दूरकारिका काम करते थे। उड़के किसी कविने कहा है—

‘यत् कबूतर त्रिसतरह से जाये भागेपर पर।

दूर कतानेका लगे पं विवे’ दोहार पर ३’

बाठ वा बांधके निम्न घरमें इसे रखते, उसकी कानुक कहते हैं। इसमें एक-एक जोड़ा कबूतर रहनेकी दरसे बने जाते हैं। उन्हींमें खेलाड़ी इसे खिला-पिला सन्ध्याको बन्द कर देते हैं। हिन्दुस्थानमें प्रायः कबूतरको प्रकरा खिलाया जाता है।

हिन्दुस्थानमें इसे शीतला, यष्ठा, श्रेया वा शोय रोग अधिक लगता है। शीतला निकलनेसे कपोतको लक्ष्ममें भोगने देना न चाँहिये; फिर तारपीनका तेल चुपड़नेसे उक्त रोग चारोप्य होता है। शोय बड़बूतपर इसे रोद्धमें रखते और नहसुनहा एक शोज खिलाया करते हैं। श्रेयापर मो यही पोषक चलता है। यष्ठा होनेसे सरसोके तेलका फुलौता जला मध्य पिनाया

ईश्वर सकलके निकट समान है। अथस्नान मन्दिमें
चेतन-सम्बन्ध न रहते भी कोई आकर्षण करनेवाली
प्रवृत्तिकी भांति चेतन्यमय ईश्वर अचेतन प्रकृतिकी
वृष्टि रचनेमें लग सकता है। कपिलके कथनानुसार
भक्तःकरण जब प्रकृतिमें खीन हो जाता, तब पुद्बय
सुप्ति पाता है। भक्तःकरण बना रहनेसे पुद्बयकी
सुप्ति नहीं मिलती।

कपिलके ही कोपानसमें शगरराजाका अर्थ ध्वंस हुआ
था। कोई शगरनायक कपिलको श्वतम्ब बताता है।

१० ब्राह्मण-सम्प्रदायविशेष। यह अपनेकी कपिल-
वंशोद्भव बताते हैं। सुरत, मडोच और लम्बसरमें
कपिलब्राह्मण रहते हैं।

पिषक (सं० त्रि०) कप-हरन् सार्धं क, रस्य
सः। १ कम्पान्वित, कंपनेवाला। २ कपिल, भूरा,
तामड़ा। (पु०) ३ पिङ्गलवर्ण, भूरा रंग।

पिषकेय—नर्मदा और महोद्यागरका मध्यवर्ती उप-
जल। स्कन्दपुराणोक्त वैवाण्णके मतसे यह पति
पुष्पस्थल है। बर्हिनासकर्म देवी।

पिषकगङ्गा (सं० स्त्री०) कपिलगङ्गा, काम-
रूपकी एक नदी। (बर्हिनासक० ०११३८) इसका वर्त-
मान नाम कपिकी है।

पिषकच्छाया (सं० स्त्री०) गृगनाभि, कस्तूरी, सुप्रक।
पिषकता (सं० स्त्री०) १ शकपिम्बी, केवाच।
२ भूरापन।

पिषकेय (सं० पु०) किसी धृतिग्राहके प्रपेता।
पिषकधृति (सं० पु०) कपिला रक्षा पिङ्गलवर्णा या
द्यतिवर्ष्य, बह्व्री०। सूर्य, सुरज।

पिषकद्राघा (सं० स्त्री०) कपिला कपिलवर्णा द्राघा,
कर्मधा०। कपिलवर्ण हृषद् द्राघाविशेष, एक बड़ा
और तामड़ा चक्रूर। इसका संस्कृत पर्याय—स्योका,
गोस्त्री, कपिलफला, चन्द्रतरसा, दीर्घफला, मधुवल्ली,
मधुफला, मधुसू, शरिता, हारहारा, सुफला, स्यो,
हिमोत्तरा, पयिका, इमयती, शतवीर्या और काश्मीरी
है। यह मधुर, शीतल, हृद्य तथा मद्धर्षद् और
दाह, मूर्च्छा, ज्वर, खास, टण्णा प्रवृं हृत्तास (वमनवेग)
निवारक होती है। (राजनिघण्टु)

कपिलदामोदर—संस्कृतके एक प्राचीन कवि।

(सुभाषितारवी)

कपिलदृम (सं० पु०) कपिलः कपिलवर्णा दृमः,
मध्यपदसो०। काचीनाम सुगन्धकाष्ठ, एक सुगन्धद्रा-
सकड़ी।

कपिलदीप—एक पवित्र तीर्थ। यहां भगवान्की
अमन्तमूर्ति विराजती है।

कपिलधारा (सं० स्त्री०) कपिलानां धारा दुग्धधारा
इव यथा धारा यस्याः कपिलानां दुग्धधारामिः सधूता
निर्मला धारा यस्याः इति वा, आकारस्य ऋस्यत्वम्।
श्लोः कला बन्धो बहवन्। पा १।१।११। १ गङ्गा। २ तीर्थ-
विशेष। (काम० ६१५०) ३ कपिला गायके दुग्धकी
धारा।

कपिलफला (सं० स्त्री०) कपिलं फलमस्याः, बहुव्री०।
कपिलद्राघा, चक्रूर।

कपिलमत (सं० स्त्री०) कपिलस्य सुनिर्मतम्, इ-तत्।
कपिलसुनि वा सांख्यदर्शनका मत।

कपिलसुनि (सं० पु०) ब्रह्मण प्राप्तके सुलगा
जिलेका एक ग्राम। यह कपोताच (कवदक)
नदीके तटपर अवस्थित है। पूर्वकाल कपिल नामक
किसी साधुने यहां कपिलेश्वरी देवमूर्ति स्थापन की
थी। उन्हीके नामानुसार यह स्थान कपिलसुनि
कहाया। चैत्रमासमें वार्षिकी दिन कपिलेश्वरी
देवीका महोत्सव होता है। फिर उसी समय भेला
भी लगा करता है। वार्षिकीको यहां कपोताच
नदीमें स्नान और देवीदर्शन करनेसे प्रथम पुष्प-
मिलता है। इसके उपलक्षमें नाना स्थानसे तीर्थयात्री
आते हैं। साफर पत्नी नामक किसी सुसलमान
पौरकी यहां सुन्दर मसजिद बनी है। यह ग्राम
पचा० २२' ४१' उ० और देगा० ८८' २१' पू०पर
पड़ता है।

कपिलरुद्र—संस्कृतके एक प्राचीन कवि। (सुभाषितारवी)

कपिलसिद्ध—सिद्धविशेष। यह भेचना नदीके पूर्वतट
प्रायः दो हजार हाथ दूर नरपालके निकट अवस्थित
है। (सं० ब्रह्मवच १४४९)

कपिलसौह (सं० स्त्री०) पित्तल, पीतल।

जाता है। होमियोपथिके मतका कोई कोई धीपध इसके लिये विशेष उपकारी है।

गिरहवाज कवूतर आकाशमें उड़ते या भूमिपर उतरते समय कलट-पुच्छ गिरह लगाता है। यह इसकी जातिका सभायसिद्ध कार्य है। इस कामको गिरहवाजी कहते हैं। कोई कोई कवूतर बड़ी गिरहवाजी करता है। गिरहवाज एकबार उड़नेसे बहुत लंबे चढ़ता, रचीसे अनेक समय खेन (गियर) पंखों द्वारा मारे पड़ता है। फिर कोई कोई एक-बारगी ही दोनों ओर गिरह लगा उड़ सकता है। एक प्रकारका गिरहवाज बांसी चढ़ता है। किन्तु पट्टा पहले पुरे तौरपर गिरहवाजी कर नहीं सकता, थोड़ा-बहुत धूम फिर सीधे उड़ने लगता है। जो गिरहवाज अति अल्प दूर जा गिरहवाजी करता, उसे गरमाया समझना पड़ता है। गर्म होनेसे अधिक दूर उड़ना असंभव है।

क्या गोला, क्या गिरहवाज—सब तरहके कवूतरोंको धूप अच्छी लगती और उनके लिये फ्रायदेमन्द भी ठहरती है। विशेषतः गिरहवाज भली भांति धूप न मिलनेसे घबरा जाता है। आतपहीन स्थान इसके लिये विषम अनिष्टकर है। गिरहवाज व्याकुल होनेसे पुच्छके पालक उखड़ने या कटनेपर चाराम पाता है। यह देख्यमें अधिक बढ़ा नहीं पड़ता, खाद्यारण्यः १२से १५ इंच पर्यन्त रहता है। इसकी चंगरेजीमें टम्बलर-पिजन (Tumbler-pigeon) कहते हैं।

गोला कवूतर देखनेमें अति सुन्दर लगता है। इसके भिन्न भिन्न पारवारको आकृतियों जो विशेष देखलक्ष्य जाता, वह नाचे लिखा जाता है—

बनरोदार—इस कपोतकी थोथीका विशेष लक्षण—मस्तकके पथादेशसे चक्षुके पार्श्वकी राध पक्षके ऊपरी भाग पर्यन्त दो स्तर उच्च पालकोंका होना है। इसका एक स्तर वक्ष और अपर स्तर घुठकी और झुङ्ग बंधुता, मध्यस्थल सीमन्तकी भांति रहता है। जैकोविन सुख, स्याह, सफेद और जर्द रङ्गका होता है। घुंठ, पुच्छ, वक्षस्थल और मस्तक

प्रायः खेत रहता, केवल पक्षके वर्षमें ही भेद पड़ता है। फिर जो चिह्न सट्टय लगता, वह ईष्टकके रक्तमें ईपत् पीत मिला देनेके वर्षसे मिलता है। स्याहका रंग निहायत काला रहता, जिसमें कुछ कुछ नीलापन झलकता है। दोनों पंखोंपर ही उक्त वर्ण होता है। फिर गलदेगयाले पूर्वोक्त दोनों स्तरोंमें पासककी शिफायें वहीं वहीं वर्षोंकी देख पड़ती हैं। बिलकुल सफेद और कुछ बेंचनी लगनेवाले खाकी रंगका जैकोविन (कलगीदार) भी कहीं कहीं मिल जाता है। इसका चक्षु ईपत् सुद और चक्षुके मणिका चतुष्पार्श्व भसित होता है। पक्षके श्रेण बड़े पालक तीन ही रहते हैं। यह अति मोह होता है। चंगरेजीमें इस थोथीको जैकोबाइन और जाक (Jacobine and Jack) कहते हैं।

कहा—सुद थोथीका कपोत है। लक्ष्यका विशेष चिह्न पुच्छके पालकोंका मधुर-पक्षकी भांति सर्वदा ढवाकार रहना है। ऐसे कवूतरको पूरालका कहते हैं। साधारणतः जिनके पुच्छमें पालकपूर्ण ढवाकार नहीं पाते, वह आधे लका कहाते हैं। पूरे लकेका वर्ष समस्त खंत होता है। फिर वर्ष अधिक सज्जल सफेद रंगमकी भांति रहते इसको रंगमी लका कहते हैं। कोई कोई पूरा लका बिलकुल काला भी रहता, जो देखनेमें अधिक मनोहर नहीं लगता। आधा लका सफेद, काला और बिसुनकाम्ताके रङ्गका होता है। जो लका देखनेमें नानावर्णविशिष्ट और सुन्दर रहता, उसका नाम नक्या पड़ता है। पूरा लका भूमिपर उगते समय बहुत अच्छा लगता है। यह बैठ जाते या चलनेकी पेर उठाते अपना गलदेश कुछ झुका ऐसे सुन्दर भावसे झिझाता, कि देखते ही हृदयमें पानन्द उमड़ जाता है। दो-एक थोथीवाले लकोंके मस्तकपर छोटी नहीं रहते। किन्तु सकलके ही पैरोंमें पर हाते हैं। चंगरेजीमें इसको फौन्टेल-पिजन (Fantail pigeon) यानी लसपरा कवूतर कहते हैं।

गोपनी—स्याह, सुख, जर्द, गहरा प्हाकी और

कपिलवस्तु (सं० स्त्री०) प्राचीन नगरविशेष, एक पुराना शहर । यह शाक्य-राजावैश्वी राजधानी रहा । शाक्यसिंहने यहीं जन्मग्रहण किया था । बौद्धग्रन्थ पढ़नेसे समझ पड़ता—बुद्धदेवके समय कपिलवस्तुमें विश्वरूप-व्यक्तियोंका वास रहा । सुन्दर राजप्रासाद, मनीषर उद्यान और अमंख्य सुरभ्य हर्म्य स्थान स्थान पर शोभित थे । फिर यहाँ नाना देशीय लोग आते-जाते रहे । माधव देखो ।

प्रसिद्ध चीन-परिव्राजक फाङ्ग-हियान् और हिरण्यन सियङ्ग कपिलवस्तु देखने पाये थे । उन्होंने क्रमान्वयसे 'किन्ना बी-लो-वे' और 'कि-पि-लो-फ-खो-ति' नाम-पर इस स्थानका उल्लेख किया है ।

हिरण्यन सियङ्गकी वर्णनामें समझते—कपिल-वस्तु एक क्षुद्रराज्य और परिमाणका फल प्रायः ६०० मील (४००० कि) है । उभय परिव्राजकोंके समय कपिलवस्तुका पक्खा नितान्त ग्रीचनीय हो गयी थी । पूर्व की-ओ स्थान सख्खिगाछी रहे, वही उनको जनमानवशून्य मरुप्राय देख पड़े । यहाँ तक, कि उस समय शाक्य-राजधानी कपिलवस्तु नगरको पूर्वकी देखनेमें आती न थी । नगरका प्राचीन इष्टकनिर्मित प्रासाद टूटा-फूटा पड़ा रहा । उसीके निकट हीनयान मतान्तरिखियोंका एक सङ्घाराम था । सिधा इधके हिन्दुओंके दो मन्दिर भी रहे । प्रासादके मध्यस्थलमें शब्दीदेन राजाकी प्रस्तरमूर्ति थी । उससे थोड़ी दूरपर बुद्धजननी मायादेवीका अन्तःपुर रहा । फिर नगरके इधर उधर अनेक स्तूप देख पड़ते थे ।

वर्तमान फेजावादर्से घर्घरा एवं गण्डकी नदीके मध्यवर्ती स्थान और दोनों नदीके सङ्गम पर्यन्त चीनपरिव्राजक-वर्णित कपिलवस्तु राज्य समझ पड़ता है । फेजावादर्से २५ मील उत्तर-पूर्व अवस्थित बन्धी जिहाके अन्तर्गत मरुूर परगनेका सामील भुइना स्थान ही प्राचीन कपिलवस्तु नगर माना गया है । 'आजकल सबलोग उसे 'भुइना ताल' कहते हैं । (Cunningham's Arch. Survey of India, Vol. XII, p. 83-172.)

कपिलसिंधिया (सं० स्त्री०) कपिला पिङ्गलवर्षा

सिंधिया, कर्मधा० । सिंधिया वृत्तविशेष, भूरे सोमम । इसका संस्कृत पर्याय—अपिना, पाता, सारिणी, कपिलाक्षी, भद्रगर्भा या कुंजिगया है । राज-निघण्टुके मतसे यह तिक्त एवं शीतवीर्य और आमपात, पित्त, च्वर, वमन आदि रिकानागक है ।

कपिलसिंधिया (सं० स्त्री०) एक उपपुराण । इसमें उत्कल देशके तीर्थीका माहात्म्य वर्णित है ।

कपिलस्मृति (सं० स्त्री०) कपिलप्रणीता स्मृतिः मध्य-पदलो० । सांख्यशास्त्र । वेदके पद्यना अनुभव रहने और मुनिप्रणेत ठहरनेमें भांख्यशास्त्रका सांगित्व माना जाता है । "कपि-व तैरन-कायदीपनायः" भाष्यदि-युक्तनरालवकाप्रदीपान् सांख्यके प्रव्याख्यानम्" इत्यादि-प्रसङ्ग इत्यादि सांख्य (भाष्यप्र-गण्य)

कपिला (सं० स्त्री०) अपिने वर्णी इत्यु-जन अर्शपादित्वात् अच-टाप् १ पण्डित-एक दिग्गजकी पत्नी । २ भद्रगर्भा सिंधियावृत्त, भूरा-सोमम । ३ रेणुका नामक यक्षपुत्र, एक यक्षपुत्रा नामक । ४ स्वर्णवर्ण गाय । ५ टल इत्यादि । ६ गृहकन्या । ७ कामधेनु । ८ सिंधिया, सोमम । ९ रात्रांति, किसी किष्किपी पौतन १० कामरूपस्य नदीविशेष । (कानिकावृ- ५१०) ११ मध्यप्रदेशके अन्तर्गत एक नदी । यह नर्मदा नदीमें मिल गयी है ।

"बापरा कपिला नाम कृता प्रजाविदेवके ।
नर्मदा सङ्गमघन शतानरे, पत्नीतिः १" (शिवचर १६५०)

कपिला और नर्मदा नदीका सङ्गमस्थान रुद्रप्रतं कहाता है । देवावृष्टके मतमें यहाँ खानखानपुत्रक महेश्वरकी पूजा करनेमें अक्षय स्वर्ण काम होता है । ११ तीर्थविशेष । १० अमनता । १३ विशाल देगका एक ग्राम । (म० ब्रह्मण्य २२१६) १४ निर्दिष्टजायुका, जोक । १५ कृष्णस्राव्य नृत्तामेद, मुक्तिनसे पाराम धोनेवापी मकड़ी । १६ कपिलवर्षा भूरे ।

कपिलाक्षी (सं० स्त्री०) कपिले कपिलवर्षे पति-इत पुष्य यस्याः । १ सृष्टीवीर्य किंसा किष्का मज्ज हिरन । इसकी आदि भूरे जाती है । २ कपिल-सिंधिया, भूरी सोमम ।

काश्मीरी। बगौरह तरह तरहके रङ्गोंका होता है। इसके विशेष चिह्नमें चक्षुके मूलसे चक्षुके पश्चात् षष्ठ (गुह्य), छठ एवं पचको राह पुच्छके मूल पर्यन्त एकमात्र वर्ष रहता और निम्न चक्षुके नीचे गलदेग, वक्षस्थल, पचका निम्नभाग तथा पुच्छका पालक खेत देख पड़ता है। फिर वयोवृद्धिके साथ जवनदेग चक्षुके ग्रन्थि पर्यन्त पालकसे टंक जाता है। इस जातिकका कपोत बहुत बड़ा होता है। शीराज्जी देखनेमें प्रति सुन्दर लगता, किन्तु गभीर भीमकाय और बलशाली रहता है। सुधं शीराज्जीका रङ्ग बिलकुल लाल नहीं होता। उसमें चिह्नके वर्षपर ईपत् क्षयाभ पीतका भाग ही अधिक देख पड़ता है। स्याह शीराज्जीका वर्षं चार नीलवर्णयुक्त क्षय्य लगता है। छटं शीराज्जी हरिताम चिह्नय होता है। खाकी शीराज्जी देखनेमें सुन्दर और स्याहसे नम्रप्रकृति रहता है। काश्मीरी धाकी श्वेति भी पालक, वक्ष, छठ, पच तथा षष्ठ (गुह्य)का वर्षं खेत लगता और बैजनी मिला बूंद बूंद दाग पड़ता है। एकरंगे शीराज्जीको वक्ष एवं चदरमें भिन्न वर्षंका एक सुदृ पालक रहनेसे गुलदार कहते हैं। गुलदार शीराज्जी देखनेमें प्रति सुन्दर लगता है।

वक्ष—प्रधानतः दो श्रेणिका होता है—स्याह और धव्येदार। यह देखनेमें प्रति सुन्दर रहता है। इसके विशेष चिह्नमें चक्षुके ऊपर चक्षुके उपरिभागसे मिखाके कोल पर्यन्त मस्तक धव्येदार सफ़ेद लगता और दोनों पक्ष तथा समस्त देहका अन्य वर्षं पड़ता है। यह प्रति सुदृ जातिकका कपोत है। फिर सुक्का जितना ही सुदृ रहता, उतना ही सुदृय लगता है। यह भी लक्ष्मीकी तरह गर्दन हिलाता और षष्ठ (गुह्य) छठते समय सुन्दर एवं सौष्ठवसम्पन्न देखाता है। स्याह सुक्कमें उल्लसलता अधिक होती है। इसका भी गलदेग मानावर्णमित्यत चिह्नय रहता है। मिषा स्याहके ठूमेरे रङ्गके सुक्केको ही किमौके मतमें धव्येदार कहते हैं। धूसर चिह्न-सुदृय वर्षंविशिष्ट सुक्का चक्षुभिधकर होता है। इसके पैरमें पर नहीं रहता। किन्तु मस्तक पर मिषा निकल

पातो है। मस्तकका खेतवर्षं चक्षुके नीचे या गलदेगमें फैल जानेसे इसको दागी सुक्का कहते हैं। दागी सुक्केका मूल्य एवं पादर भव्य रहता और रूप भी ईपत् विशी लगता है। विलायती सुक्केके मस्तक तथा पचवाले तीन बड़े पालक और पुच्छका वर्षं काला होता है। मिषा कुल बड़े मस्तकके समुख रुक पाती है। गावका वर्षं खेत रहता है। वहां तीन प्रकारका सुक्का होता है। इन तीनों श्रेणियोंसे कपोतके मस्तकका वर्षं यथाक्रम क्षय्य, पीत और रक्त लगता है। फिर मस्तकका वर्षं, पच एवं पुच्छके बड़े पालकमें भो रहता है। बंगरेज्जीमें इसे नन-पिजन (nun-pigeon) यानो वेरागन कहते हैं।

चोटियाला—चक्षु कीड़ी जैसे होते हैं। चक्षुके चतुष्पाखं और नासिकाके मूलमें चक्षुके ऊपर ईपत् रक्तम कोमल मांसके बड़े बड़े फूल पड़ जाते हैं।

चोटियाला—विशेषतः मस्तकपर मिषा और पादमें पालकका विकास देखाता है। पैरमें एहोके पाद जो पर रहते, वह बहुत बड़े लगते हैं। चोटियाला देखनेमें अधिक सुदृय नहीं होता। शीराज्जीकी तरह यह भी प्रति सुदृय एवं भीमकाय रहता, किन्तु माधुर्यपूर्ण गभीर भावके बदले अपनेमें कुछ भीमदमनत्व रखता है। चोटियालामें किसी किसी श्रेणिका चक्षु ईपत् क्षयाभ लगता है। इनमें सुक्कीको संख्या ही अधिक है। फिर सफ़ेद काला चोटियाला भी होता है। यह कीटरमें बैठ गुटरगूं शब्द निकाना करता है। उक्त शब्द करते समय गलदेगका पथ्यन्तरस्य खाद्याहार फूल उठता है। उक्त खाद्याहार या खोल को बंगरेज्जीमें क्रप (Crop) और इस श्रेणिके कपोतको क्रपार (Cropper) कहते हैं। पैरकी परकी देख कोई इसे फ्लायथिड पिजन (Fly-thighed pigeon) भी कह देते हैं।

नन-पिजन—दो प्रकारका है—स्याह और सफ़ेद। यह प्रति सुदृयकाय होता है। इसके चक्षुसे नीचे वक्षस्थल पर्यन्त समस्त स्थान घेसीकी तरह फूल

कपिलाचार्य (सं० पु०) कपिलः कपिलनामा आचार्यः, कामंधा० । १ कपिलवृष्टि । २ विष्णु ।

“गहनैः कपिलाचार्यैः कृतयो मीरिगीपतिः ।” (विष्णु०)

कपिलाखन (सं० पु०) कपिलं अखनं यत्र, बहुव्री० । शिव, महादेव ।

कपिलातीर्थ (सं० स्त्री०) तीर्थविशेष । इस तीर्थमें ब्रह्मचारी रथ स्नान और पिंडलोक तथा देवताकी अर्चना करनेसे सहस्र कपिला गोदानका फल मिलता है । (भारत १८१४४)

कपिलादान (सं० स्त्री०) कपिलाया दानम्, ६-तत् । कपिलागोदान । मत्स्यपुराणमें कपिलाके दानका यह मन्त्र लिखा है—

“कपिले सर्वभूतानां पूजामोक्षसि रोचिषी ।

तीर्थदेवमथो यथात् पूतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥”

घण्टा, चासर, सिद्धिपी, दिव्य वस्त्र एवं हंसदुर्षण भूषित, पयस्वी, सुगील, तरुण और वृत्तयुक्त कपिला देना चाहिये । इस दानसे स्वर्गलाभ होता है ।

कपिलाधिका (सं० स्त्री०) तैलपिपीलिका, तिलघटा ।

कपिलापुर—दक्षिणापथका एक नगर । (भारत १७६) यह मगधराज नर्मदा किनारे अवस्थित है ।

कपिलार्जुन (सं० पु०) कपिलवंश-तुलसीवृक्ष, भूरी तुलसीका पेड़ ।

कपिलाश्व (सं० पु०) कपिलया जतो श्वतः गतः । तीर्थविशेष । (भारत, पृ ८३:१८)

कपिलावतं—ब्रह्मदेवान्तके भडौं व जिलेमें नर्मदा और कपिला नदीका सहस्रस्थान । स्कन्दपुराणके देवा-शुद्धमें इसका नाम रुद्रायतं लिखा है ।

कपिलाश्व (सं० पु०) कपिलाः कपिलवर्णा श्वता यस्य, बहुव्री० । १ इन्द्र । २ एक राजा । ३ सूर्यवंशीय कुयलयाश्वके पुत्र ।

कपिलाश्वराम—कपिला और नर्मदा नदीके सहस्रका स्थान । यहां स्नान करनेसे अश्वेय फललाभ होता है । इसमें निःशुद्ध अनेक पवित्र नदी हैं । (भारत १७७) यह बख्तखाने प्रान्तवाले बर्तमान भडौं व जिलेके अन्तर्गत है ।

कपिलाश्वद (सं० पु०) तीर्थविशेष । (भारत, पृ ८०)

कपिलिका (सं० स्त्री०) कपिला संज्ञायां कन्-टाप् अतइत्वम् । १ शतपदीभेद, सिंसी किष्ककी कनसलाई ।

“अतपयत् पदसा कथा विधा कपिलिका योमिका रता येता कपिलसा इव ॥” (सुश्रु०) २ विपिनिकाविशेष, एक चीटो ।

कपिकी—नदीविशेष, एक दरया । इसका प्राचीन नाम कपिलना वा कपिलगङ्गिका है ।

कपिलीकृत (सं० त्रि०) अकपिलं कपिलं कृतम्, कपिल अभूत् तद्भावे चि-कृ-त् । कपिल बनाया हुआ, जो भूरा किया गया हो ।

कपिलेन्द्रदेव—उत्कलके एक राजा । वाल्यकाल यह किसी ब्राह्मणके मवेशी चराते थे । फिर इन्होंने उत्कलसाराज नैत्रवासुदेवके निःशुद्ध जा नोकरी की । कार्यदक्षता गुणसे यह नैत्रवासुदेवके पत्न्यस्त प्रियपाद बन गये । वासुदेवके मरने पर इन्होंने अपने साहस-बलसे उत्कलका राजसिंहासन पाया था । इनके राजत्वका काल २७ वर्ष (१४५२—१४७९ ई०) रहा ।

कपिलिग (सं० स्त्री०) कपिलिन प्रतिष्ठापितं ईशं लिङ्गम्, मध्यपदना० । कागोस्य शिवलिङ्गविशेष ।

“कपिलेशं महाशिवं कपिलिन प्रतिष्ठितम् ।

सुश्रुते कपयोऽथवा इदं गान् किञ्च मानवाः ॥” (बाल्यवच)

कपिलेश्वर—१ एक प्राचीन नगर । २ मन्द्राज प्रान्तवाले गादाधरो जिलेका रामचन्द्रपुर तहसीलका एक ग्राम । यह पचा० १६° ४६' उ० और देगा० ८१° ५०' २०' पू० पर अवस्थित है । यहांकी लोकसंख्या पांच हजारसे अधिक है ।

कपिलोमफला (सं० स्त्री०) कपोनां लोम इव लोमाहतं फलं यस्याः, बहुव्री० । कपिकच्छु, केवाच । कपिलोमा (सं० स्त्री०) कपोनां लोम इव लोम-मस्त्री यस्याः, बहुव्री० । रेणुका नामक मन्त्र द्रव्य, एक खुशबूदार चीज ।

कपिलोह (सं० स्त्री०) कपिवत् पिङ्गसं लोहम् । १ पित्तन, पोतल । २ राजरोति, बढ़िया पोतल ।

विगत देखी ।

कपिलश (सं० पु०) कम्पिलक, नारङ्गीका चूरन । कपिलिका (सं० स्त्री०) कपिवर्णा वसिका सुपोदरा-

उठता है। बंगरेजीमें इसे पोउटर पिजन (Pouter pigeon) कहते हैं।

लोटन—एक प्रकारका सुदृजातीय श्वेतवर्ण गोला है। यह मछीमें लोट सकता है। इसीसे इसकी लोटन कहा करते हैं। लोटानेके लिये लोटनको दक्षिण दक्षिण ऐसे पकड़ते, जिसमें हवाङ्गुष्ठ द्वारा एक और अनामिका तथा कनिष्ठा द्वारा अপর पक्ष दबा रखते हैं। तर्जनी एवं मध्यमा गलदेगके दोनों पार्श्वसे बचःस्वसके दोनों पार्श्वपर पट्टुच जाती है। फिर दक्षिण एवं वाम लोटनको इसप्रकार हिलाने, जिसमें घाट (गुद्दी)की एकवार दाहने और बायें हिलता पाते हैं। कोई एक मिनट ऐसे ही हिला मटोपर छोड़ देनेसे यह खोटा करता है। ४।५ लोट लगाने पर इसे पकड़ उठा देना चाहिये। नतुवा कड़ी मटोसे टकरा मत्था फट जाना सम्भव है। इसको बंगरेजीमें स्वतन्त्र नाम न रहते भी टम्बलर (Tumbler) कह सकते हैं। जो एकवारगी हो बहुत लोट सकता, उसे कवूतर बाजु वेदम-लोटन कहता है।

आवण—(सुग्घ) के अनेक भेद हैं। इसका चक्षु अधिक सुदृ होता है। गलदेगके पालक वक्षके ऊपर उत्तराभिमुखी हो नहीं रहते, दोनों पार्श्वको भ्रुक बौधमें बालोंकी विणुनीसदृश लगते हैं। इसका समस्त गलदेग भर नहीं जाता, वक्षके ऊर्ध्व देगमें अर्ध अङ्गुलि परिमित स्थान वैसा देखाता है। इस जातिका कपोत सुगठित और हटकाय होता है। इसको मस्तक पर गिखा रहनेसे 'टरपेट' कहते हैं।

आवण—वर्णमें कृष्णकी अधिकता लिये धूमर रहता है। चक्षु रक्तकमलकी भांति लाल होते हैं। चक्षु सुदृ और कृष्णवर्ण लगता है। गलदेग मयूरकी भांति दक्षिण देख पड़ता है। चक्षुमें फूल नहीं पाते। चक्षुकी आवरणकी कृष्णवर्ण रहती है।

अवण—मस्तकसे गलदेग पर्यन्त कृष्णका आधिक्य लिये धूमर रहता है। फिर सुदृ और वक्षस्वल पाटल तथा श्वेत विन्दुयुक्त होता है।

वृन्धिया—रक्त एवं पीतमिश्रित होता है। फिर चक्षु रक्तवर्ण रहता और चक्षुके पार्श्वपर फूल पड़ता है।

दरवायी—देखनेमें खर्वाकार लगता है। इसका चक्षु सुदृ होता है। इस कपोतका गलदेग पर्यन्त मस्तक और सुच्छ एकवर्ण रहता, मध्यस्वल श्वेत पड़ता है। जिसके मध्यस्वलमें गुल निकलता, उसको कवूतरबाजु गुन-दरवायी कहता है। यह कृष्ण, रक्त और पीतवर्ण होता है।

उग्रशो—देखनेमें काला होता है। इसका चक्षु प्रायः डेढ़ इंच लम्बा और उसका अर्धभाग टेढ़ा रहता है। बड़े बड़े चक्षुवोंके पार्श्वमें फूल पड़ जाता है। यह एक इस्त पर्यन्त दीर्घ होता है। किसी किसीके कथनानुसार यह कपोत तुर्कीके तुगदाद नगरसे इस देशमें आया है।

उल्लूक-जातीय—प्रवादानुसार उल्लूक और कपोतके सङ्गमसे उत्पन्न है। यह देखनेमें श्वेत और खर्वाकार होता है। फिर कोई कोई उल्लूक सदृश भी देख पड़ता है। यह उल्लूककी भांति वीलता है।

गिरिजवाजोंमें नीचे लिखे कवूतर अच्छे होते हैं—
अवण—देखनेमें सफेद लगता है। चक्षुके पार्श्वपर सरसों-जैसा एक सुदृ चिह्न अथवा पक्षपर कलह रहता है। सर्प-सदृश कृष्ण चिह्नविशिष्ट अव-सकृकेका अधिक चिह्नयुक्त शायक उत्कृष्ट जातीय समझा जाता है।

कदा—पीताशिवय रक्तवर्ण देख पड़ता है। पक्षपर रेखा रहती है। फिर चक्षुके मध्य दो गोलाकार दाग होते हैं।

बागली—सफेद होता है। इसको चक्षुमें वर्षाविशिष्ट कलह रहनेसे मोतीचूर कहते हैं।

अवण—ईश्वर पिङ्गल रहता और चक्षुमें गोलाकार कलह लगता है। इसमें स्त्रीजातिका संख्या प्रति पाल्य पाती है।

इस परिवारवाले दोबाजुके पक्षमें अनेक पालक श्वेत होते हैं। जिसके पक्षमें केवल एकमात्र पालक श्वेत भाता, वह एकबाजु कहाता है।

पाषाणी—देखनेमें तरल धूसरवर्ण होता है। इसका चञ्च खेत रहता है।

सफ़ेदा—स्याहा, चीना और मामूली तीन श्रेणियोंमें विभक्त है। स्याहकी पूंछ काली या काल होती है। गलेमें कयी चपटे और पांखमें गोल दाग रहते हैं। चीनाके गलेमें कितनी ही लाल छोटें पड़ जाती हैं। पांख रङ्गीन रहती है। फिर उभमें दो गोल दाग भी होते हैं। स्याहा और चीना दोनों देखनेमें बहुत अच्छे लगते हैं। मामूली सफ़ेदेके बङ्ग, गलदेश और पुच्छमें कलङ्ग रहता है।

गुला—इस कपोतके गलदेश, पृष्ठ एवं पुच्छमें सफेद और काली छोटें रहती है। फिर किसीके केशल बङ्ग और चक्षुमें ही कलङ्ग देख पड़ता है।

बरशा—देखनेमें गाढ़ धूसरवर्ण होता है। पक्षपर दो-दो रेखा रहती हैं। यह कपोत याजी, चङ्गर और उड़ानके हिसाबसे भन्ना-गुरा समझा जाता है।

भंगरेज खगतत्वक्षिणाधिकी मतसे कपोत और उलूकका साधारण नाम कोलम्बिडी (Columbidae) है। यह प्रधानतः ग्रन्थ खा जीवन धारण करते हैं। फिर इन्हें भूमिपर घूम घूम चुगना अच्छा लगता है। इनमें अधिकांशका वर्ण नील रहता है। वर्ष और स्वभावके अनुसार कपोतकी तीन श्रेणियाँ ठहरायी गयी हैं। १म लफोलोमिनी (Lopholaelminae) अर्थात् कलगीदार, (Crested-pigeons) २य पालम्बिनी (Palumbinea) अर्थात् वन्य (Wood-pigeons) और ३य कोलम्बिनी (Columbinae) अर्थात् पार्वत्य (Rock-pigeons) कपोत।

प्रथम श्रेणीकी एकमात्र जाति आजकल अष्ट-लियांमें देख पड़ती है। इस कपोतके मस्तकपर मयूरकी पूंजाके समान द्विगुण शिखा रहती है। भंगरेजी खगतत्वक्षिण इसकी लाफोलोमिस पायटॉकस (Lopholaelmus antarcticus) अर्थात् दक्षिण-महा-सागरीय, द्विगुण शिखायुक्त कपोत कहते हैं। २य श्रेणीमें एक प्रकार वैजनी चमक लिये पतले पाषाणी रङ्गका कवच रहता है। यह मध्य-भारतके पूर्वांशमें समुद्रोपकूलपर्यन्त सकल स्थानोंमें मिलता है। पाषाण,

भाराकान और रामरी छोपमें भी इसकी संख्या यथेष्ट है। हिमालयके मध्यप्रदेशमें इसी जातिका एकप्रकार शिखायुक्त कपोत होता है। इसका रूप पति मनोहर लगता है। दारजिलिङ्गके निकट इस जातिके जो एक प्रकार कपोत रहते, उन्हें नेपाली 'नामपुम्पो' कहते हैं। फिर नीलगिरि पर्वतमें इसी जातिके रोनेवाले एकप्रकार कपोत राजकपोत कहते हैं। यह देशमें पुच्छके पालक समेत प्रायः २५ इंच पड़ता है। हिन्दुस्थानके जङ्गली गोली और गिरहवाङ्ग इस श्रेणीमें आ सकते हैं। श्य श्रेणीके पार्वत्य कपोत कुमायूँ प्रदेशके उत्तर, उत्तर-पश्चिम और जापानसे समस्त युरोपखण्ड पर्यन्त देख पड़ते हैं। इनका वर्ण अधिक नील नहीं रहता, नीलका आधिक्य लिये धूसर लगता है। काश्मीर अञ्चलमें हिमालय पर एकप्रकार खेतवृक्ष कपोत होते हैं। यह देखनेमें पतिसुन्दर समझ पड़ते हैं।

इन सकल एवं अन्यान्य जाति वा कपोत भेदके भंगरेजी खगतत्वक्षिण निखिल लक्षणानुसंग पतिसुन्दर रूपसे वता देना एकप्रकार असम्भव है। कारण उक्त जातीय पक्षी न देख केवल दक्षिणी वर्णनाके सहारे कोई प्राज्ञति कल्पना कर लिखना कैसे सुनिश्चित हो सकता है। इसीसे भंगरेजी खगतत्वक्षिण अनुसार समस्त जातिके लक्षणालक्षण नहीं लिखे।

कपोत पति सुखे प्राणो है। पति सामान्य पक्षुषु और विपद्दसे इसकी समूह पति हो जाती है। हिन्दुस्थानमें कपोतको लफोलीका वरपुत्र मानते हैं। इनकेको विश्वास रहता—इसे पालनेसे श्मशानका मङ्गल बढ़ता, दरिद्रत्व घटता और लफोलीका दर्शन मिलता है। फिर इसके परका वायु समुद्रके प्रारोमें लगेसे सर्वरोग दूर होता है। इसीसे कितने ही लोग कपोत पालते हैं। वन्य कपोतकी रहमें पा पसने पर कोई नहीं सड़ाता। कलकत्तेमें बङ्गाली और हिन्दुस्थानी महाजन अपने अपने व्यवसायके स्थानमें सयत्न कपोत प्रतिपालन करते हैं।

मनुष्यके पसाधारण व्यवसायसे राजकपोतका एक पर्युषं गुण भाविष्कृत हुआ है। यह सिद्धान्त

पर दूर देशसे लिपि ला सकता है। इसका पत्र अत्यन्त सबल होता है। आसुर्यका विषय देखाता—इस श्रेणीके कपोतमें जिसका पत्र जितना सबल आता, वह उतना ही अधिक ली जाता है। यह स्वभावतः दीर्घकाय और बलिष्ठ रहता, किन्तु देखनेमें अति सुन्दर लगता है। राजकपोत हिन्दुस्थानी कौड़ियालिके अन्तर्गत है। आजकल इसके द्वारा लिपि प्रेषणकी बात अधिक सुन नहीं पड़ती। पहले तुर्की राज्यमें उक्त प्रथा बहुत चलती थी। आज भी वहाँ कहीं कहीं धनियोंके पास दो-एक लिपिवाही कपोत विद्यमान हैं। ११४७ ई०को बुगदादके सम्राट् नूहदीन सुहम्बदने यह प्रथा चलायी थी। फिर १२५८ ई०को बुगदाद नगर मङ्गोलीयोंके हाथ पड़नेसे यह प्रथा रूढ़ित हुई। फ्राङ्को-रूसिया युद्धमें भी यह कपोत देख पड़े थे। थोड़े ही दिन हुए कलकत्तेकी बड़ी भद्रालतमें एक पत्रवाही कपोत आ गया था। अंगरेजीमें इसे कारियर पिजन (Carrier pigeon) अर्थात् चिट्ठे पहुँचानेवाला कद्दतर कहते हैं। वर्तमान युरोपीय समरमें इसने कुछ कम काम नहीं किया।

लिपिवाही कपोतकी सिखानेमें बहुत यत्न, ध्याय और समय लगता है। श्रावक परिणत होनेपर एक स्त्री और एक पुरुष निकाल एकत्र रखना और यथेष्ट प्रणय उपजानेकी यत्न करना पड़ता है। फिर पत्र जानेके स्थानकी दूरी विज्ञानमें हल भेज देते हैं। इनमें एककी पृथक् कर कहीं से जानिएर दूसरा भी उड़ उसके पास निश्चय पहुँच जाता है। बहुत पतले और कड़े कागज़पर पत्र लिख किसी पक्षके पालकमें आलपीमसे नखी कर देते हैं। आलपीनका सूक्ष्माप्रभाग शरीरकी बाहरी ओर रहता है। फिर उड़ा देने पर यह उसी घरमें जा पहुँचता, जिसमें इसका जोड़ा रहता है। यासस्थानके प्रति अत्यन्त भ्रमता बढ़नेसे एकमात्र कपोत पालनेसे भी काम चल सकता है। इसी प्रकार विचित्र कपोत जहाँ संवाद लेना आवश्यक आता, वहाँ किसीके हाथ सौंप भेज दिया जाता है। पूर्वोक्त

रूपसे लिपि लगा देनेपर कपोत प्राणपणसे उड़ प्रतिपालककी गूढ़ आ पहुँचता है। इसकी सिखानेमें प्रथमतः घर भूल जानी और बड़ी दूरीसे लीट आनेके लिये पाव कोस दूर से जाकर छोड़ना पड़ता है। पाव कोस अभ्यस्त होनेपर आधकोश, धीरे-धीरे एक, दो, तीन, चार, पाँच कोस पर से जाकर इसे छोड़ते हैं। पीछे ग्रामान्तर और अवशेषको देशान्तर से जा इसे सिखाना पड़ता है। यह अति गौघ सौख्यता है। शेषको इतनी चमत्ता पाता, कि यह समुद्र पार भी आता-जाता है। विचित्र कपोत एक घण्टेमें २० कोस उड़ सकता है। अधिक दूरसे पत्र भंगानेकी इसे उड़ानेके पहले पाठ घण्टे बनाहार किसी अन्धकार रहमें बन्द कर देते हैं। शेषकी छोड़ने पर एकबारगी हो पति कर्ष देगसे उड़ते उड़ते क्षुधाकी ज्वालासे प्रभुके निकट आ पहुँचता है। सुनमें आया, कि समुद्र पार करनेमें कितने ही कपोतोंने पानी पर गिर अपना प्राण गंवाया है। कुहरा पड़ने या पानीकी झड़ लगनेसे यह सहज और स्वव्यायसमें उड़ नहीं सकता। सुतरां ऐसे समय उड़ाने या राहमें ऐसा समय आ जानेसे इसपर अत्यन्त विपद् पड़ती है।

यह प्रथा केवल तुर्कीमें ही न रही, पीछे युरोपके नाना स्थानोंमें चल पड़ी। पहले मिसर, पालेस्ताइन, तुर्की, अरबस्थान और ईरानमें युद्धके समय जय-पराजय, सैन्य आनयन, खाद्य प्रमासुर्य, प्रथितिका संवाद इस कपोत द्वारा सहजमें सम्पन्न होता था। इङ्ग्लैण्डके विलासो धनी लोग भी उस समय इनके द्वारा प्रणयिने और बन्धुबान्धवके निकट संवादादि भेजते रहे।

अनुमान लगा सकते—रामायण महाभारतादिके समय भी भारतमें पक्षीके मुखसे संवाद भेजनेकी प्रथा चलती थी। महाभारतमें एक गल्प लिखा है—रुद्रमें ऋतुमती और कामातुर पत्नी छोड़ चेदि-देशधिपति महाराज उपरिचर पिताके निदेशसे ऋगयाकी गये थे। वहाँ वृषकी हाथामें आन्ति दूर करते-समय पत्नीकी चरण पर आते ही उनका रेतः

पात्र, लकड़ीका बड़ा पोया। ११ राक्षसविशेष। रामायणमें लिखा—दनु नामक किसी दानवको उप-तपस्या द्वारा तृप्त करनेपर ब्रह्मासे दीर्घ जीवनका वर मिला था। वरके प्रभावसे अत्यन्त गर्वित हो किसी समय वह इन्द्रसे युद्ध करनेको जा पहुँचा। इन्द्रने वज्राघातसे उसका हस्त और मस्तक शरीरमें घुसेड़ दिया था। किन्तु ब्रह्मवरके कारण उससे भी प्राण-वियोग न हुआ। इसीप्रकार विह्वल शरीरमें दिन दिन क्लिष्ट हो दनु बारम्बार इन्द्रसे अनुग्रह प्रार्थना करने लगा। फिर इन्द्रने भी उसके प्रति सदय हो योजन-परिमित हस्तद्वय और वक्षःस्थलके 'उपरिभागमें एक वदन बना दिया था। दनु उसी मूर्तिसे वन-वन जा और दीर्घबाहु द्वारा वन्यजन्तु खा अवस्थान करने लगा। फिर एकदा पिताकी आज्ञा प्रतिपालन करनेकी राम लक्ष्मण और सीताके साथ उसी वनमें जा पहुँचे। इस राक्षसने दीर्घ बाहुद्वारा उन्हें पकड़ लिया था। रामने वीर्यभरमें लघु हस्तसे स्त्रीय खड्ग द्वारा दनुका प्राण विनाश किया। रामहस्तसे मरने पर कवच दिव्यमूर्ति धारण कर स्वर्गको चला गया।

महाभारतके मतसे यह राक्षस पहले विश्वावसु नामक गन्धर्व रहा, पीछे किसी ब्राह्मणके अभिग्राय यश राक्षसयोनिको प्राप्त हुआ।

कवचता (सं० स्त्री०) मस्तकहीनता, कतल, शिर कट जानेकी हालत।

कवची (वे० पु०) १ षट्पिबिम्ब। 'षष कवचो कालायन उपेत्य पपञ्च।' (मत्त्रोपनिषद्) (त्रि०) कं जसं अस्यास्ति, क-वन्ध-इति। जसयुक्त, भावदार।

कवच, कव देखो।

कवचस्थान, कवचस्थान देखो।

कवरा (हिं० वि०) कर्तुर, भवजलक, सफेद रङ्गपर काले, भाल, पीले या किसी दूसरे रंगके भयवा काले, पीले, लाल या किसी दूसरे रंगपर सफेद धब्बे रखनेवाला।

कवचस्थान, कवचस्थान देखो।

कवरी—जातिविशेष, एक कौम। मन्त्रालयमें इस जातिके लोग रहते हैं। यह प्रायः १८ शास्त्रोंमें

विभक्त हैं। उनमें बलिंग और तोत्तियार शाखा दो प्रधान हैं।

पहले कवरी खेतोवारीके लिये जमीन रखते थे। उसी जमीनको अपर निहत्त जाति द्वारा जोता-बोया जो भाय मिलता, उससे इनकी जीविकाका काम चलता। आजकल इनमें वह पूर्व प्रथा रहती भी कितने ही लोग स्वयं कृषिकार्य करते हैं। फिर कोई नाव चलाता और कोई बनियेकी दुकान चलाता है।

तोत्तियार शाखा किसी किसी स्थानमें तोत्तियार वा कम्बलचार नामसे भी प्रसिद्ध है। यह परिश्रमी और बड़े उत्साही हैं। कृषिकार्यमें लगा अनेक उच्च काय पर्यन्त इनके द्वारा सम्पन्न होते हैं। मन्त्रालय नगरमें तोत्तियार अनेक उत्तम उत्तम कार्य चलाते हैं।

तोत्तियार ८ श्रेणियोंमें विभक्त हैं। प्रत्येक श्रेणी अवर श्रेणियोंसे स्वतन्त्र रहती है। प्रायः पांच-सौ वर्ष पहले कितने ही तोत्तियारोंने मटुरा जिलेमें जाकर उपनिवेश किया था।

यह सकल ही विष्णुके उपासक हैं। त्रिणुको असौ-किक लाना-क्रीडामें यह आन्तरिक विश्वास रखते हैं। किसीके विष्णुकी निन्दा करनेपर इनके प्राणमें बड़ा आघात लगता है। फिर निन्दाकारीको यथोचित शास्ति देनेसे कोई पीछे नहीं हटता। इनमें बहुतसे लोग इन्द्रजाल जानते हैं। इसीसे साधारण इनकी भय भक्ति देखाते हैं। सुनते—यह इन्द्रजालके बन्धसे सांपके काटेका विष उतार सकते हैं। मुख्य मस्तक पर पगड़ी बांधते हैं। स्त्रियाँ नानाविध चालद्वारा पहनती हैं। उनका वक्षःस्थल कितना ही पनाहत रहता है। किन्तु उससे उन्हें नज्जा नहीं आता।

तोत्तियारोंमें बहुविवाहकी प्रथा प्रचलित है। किन्तु प्रायः सकल ही एकवार विवाह करते हैं। एक पत्नीके मरनेपर अवर पत्नी ग्रहण को जानते हैं। इनके विवाह वा धर्मकर्ममें ब्राह्मणोंको आवश्यकता नहीं पड़ती। कोड़ाङ्गिनायकन नामक इनका एक प्रधान रहता है। वही विवाहदि सम्पन्न करता है। जन्मकुण्डली बनाना भी उसीका काम है।

गिर पड़ा। महाराजने उद्दिन ही उस रतःको पत्तेके दोनमें भर और किसी श्येन पक्षीको सोंपकर पत्नीके निकट भेजा था। श्येनने यह दोना सुखमें दमा चेदिराजधानीके भूमिसुख जाते जाते किसी दूरसे श्येनसे भगड़ किंक दिया। इससे मत्स्यके उदरमें व्यासकी जननी मत्स्यगन्धका जन्म हुआ। उक्त उपास्यानसे समझ पड़ता—श्येनपक्षी भी सिद्धित होनेसे लिपिघनका कार्य कर सकता है। एतद्विच नरदमयन्तीमें 'हंसदूत' की कथा मिलती है। दमयन्तीका पोषित हंस पाकर नक्षसे उनके रूपका उत्कर्ष बता गया था। यह उपास्यान इतने दिन कविकी कल्पना मान उपचित होते रहे। किन्तु जब कपोतके इस स्त्रभावकी बात सुकी, तब उक्त पारायिक उपास्यानोंके भ्रमूलक होनेकी यक्षा घटी।

हम देखते—प्रायः सकल ही देशोंमें लोग कपोतकी पवित्र पक्षी समझते हैं। भारतवासी इसे लक्ष्मीका धरपात्र कहते हैं। फिर मक्का नगरमें कपोतेश्वर नामक शिवलिंग और कपोतेशी नाम्नी भवागीकी मूर्ति विद्यमान है। प्राचीन चांसरीया देगके राजा इसकी परम भक्ति करते थे। अरब देगके बहलुकाय नील कपोतकी महाराजमान मिलता है। सुसलमानोंके धर्मग्रन्थमें इसे 'स्वर्गदूत' कहा है। सुसलमान् बताते—सुधयद् जब कुछ जानना चाहते, तब स्वर्गसे कपोत या उनके कानमें सब बात सुनाते थे। मक्के के कावेमें यह पति यत्रसे पाले जाते और सुसलमान् इन्हें कावेकी कुमरी समझ कभी नहीं खाते। पछले अंगरेज भी कपोतकी 'होली बर्ड' (Holy bird) धर्मात् पवित्र पक्षी समझ आदर करते थे।

हमारे पुराणमें भी लिखते—यिषि राजाको दान-शीलता देखनेको अग्नि कपोत और इन्द्र श्येनका रूप बना उनके निकट उपस्थित हुये। कपोतने श्येनके भयसे भीत ही यिषिके कौड़में पड़ आश्रय मांगा था। यिषिने अरणागतको बचा और श्येनको तुट करनेके लिये अपने देहका समस्त मांस गंवा महाराज पाया। इसीसे कपोतका नाम अग्निमूर्ति पड़ा है।

हमारे आयुर्वेद शास्त्रमें इसके मांसका गुणाण्ड

लिखा है। महर्षि चरकके मतसे कपोतका मांस कषाय, मधुर, शीतल और रक्तपित्तनाशक है। शरीरत उसे हृद्य, बलकर, वातपित्तनाशक, दृढिकर, शक्तवर्धक, शक्तिर और मानवको हितकर बताते हैं। फिर भावमिन्त्रने कपोतके मांसको गुह, सिन्ध, रक्तपित्त एवं वायुनाशक, संघाही, शीतल, त्वक्की हितकर और वीर्यवर्धक कहा है। सुन्दत तथा वामटके मतमें छाष्यवर्ण कपोतका मांस गुह, लषण-युक्त, स्यादु और सर्वदोषकर होता है। इयुं देवा।

(श्लो०) सौवीराश्वन, सुरमा। २ कपोताश्वन, भूरा सुरमा।

कपोतक (सं० श्लो०) कपोत इव कपोतवर्षेवत् कायति प्रकाशते, कपोत-कै-क। १ सौवीराश्वन, सुरमा। २ कपोताश्वन, भूरा सुरमा। (पु०) १ क्षुद्र-कपोत, छोटा कवृतर। ४ हाय जोहनेकी एक रीति। कपोतकनियादो (सं० पु०) पक्षका एक वातस्थाधि, घोड़ेकी होनेवाली दाँदकी एक बीमारि। कठिनतासे उठाने पर भी जो घोड़ा भूमिपर गिर पड़ता, वह इस रोगसे पीड़ित उठरता है। कपोतनियादो होनेपर पक्ष सुशिकससे जीता है। (जयदन)

कपोतकीय (सं० त्रि०) कपोतोऽस्त्यस्य, कपोत-इ-कुक् क्तु। लषादीनां इत्यर्थः। कपोतयुक्त, कवृ-तरोंसे भरा हुआ।

कपोतकीया (सं० स्तो०) कपोतयुक्त देय, कवृतरोंसे भरा हुआ मुक्त।

कपोतवक्र (सं० पु०) कवाटपक्षक हृद्य, वैट्वा।

कपोतचरण (सं० स्तो०) कपोतस्य चरणपरणवत् पाकारोऽस्त्यस्याः, कपोत-चरण चर्ग आदित्वात् भृ-टाप्। १ नलोनामक गन्धद्रव्य, एक खग्गवृदार चीज। २ चौरिका, खिरनी।

कपोतपर्णी (सं० स्त्री०) एसा, इलायचोका पेड़।

कपोतपाक (सं० पु०) कपोतस्य पाकः डिम्बः, ६-तन्। १ कपोतमिष्य, कवृतरका बचा। २ पाषेस्य आतिमद, एक पहाड़ी कौम।

कपोतपाद (सं० त्रि०) कपोतस्य पादाविव जादो यस्य, धरत्यादित्वात् मास्यकीयः। भारत कीस्यारिः ३०००

कवरी प्रधानतः तैलङ्ग होते हैं। यह प्रधानतः तैलङ्ग भाषा ही व्यवहार करते हैं। किन्तु खदेग छोड़ अन्य स्थानमें रहनेवालोंकी बात अतन्त्र है।

कवा (५० पु०) परिच्छदविशेष, पङ्कनेका एक कण्डा। यह जानुपर्यन्त दीर्घ एवं ईप्त्तु गियिल होता है। इसका अग्रभाग सुक्ष्म और बाहु चक्षित रहता है।

कवाड़ (हिं० पु०) १ निष्प्रायोजन वस्तु, बेकाम चीज। २ निरर्थक कार्य, वैध्वदा काम।

कवाड़ा (हिं० पु०) निरर्थक व्यापार, भगड़ा-भ्रष्ट।

कवाड़िया, कवाड़ी देवी।

कवाड़े (हिं० पु०) १ निरर्थक वस्तुविक्रेता, बेकाम चीज बेचनेवाला। २ सुदृग् व्यवसायी, जो शब्द छोटा भोटा रोजगार करता हो। (वि०) ३ नीच, कमोना, छोटा।

कवाव (५० पु०) मांसभेद, किसी किसका गोश्र। पहले मांसको भनो भांति काटकूट बारीक बनाते, फिर उसमें बेसन, नमक और मसाला मिलाते हैं। पत्तको इसको गोलियां बना मोड़की सीखमें गोदते और धाँके पुटके कोयलेकी पांचपर से'कते हैं। इन्हीं से'की हुई गोलियोंका नाम कवाव है। इसे प्रायः सुखलमान् ही खाते हैं।

कवावचीनी (हिं० स्त्री०) शीतलचीनी। इसे संस्कृतमें कक्षोल वा कक्षोन, नैपाचीमें तिप्पुह, कश्मीरीमें लुरतमर्ज, मारवाड़ीमें हिमचोमीर, गुजरातीमें तदीमरी, दक्षिणमें दुमकी, ताम्रिनमें बालमिखलु, तैलगुमें तोकमिरियालु, कनारीमें बालभेनसु, मलयमें कोपुनकुस, ब्राह्मीमें सिनवनकरव, सिङ्गोमें बलगुमदगिस, परबीमें कवावा और पारसीमें कवाव कहते हैं। (Piper cubeba)

यह झाड़ी यवहोप और मोल्कास होपमें स्वभावतः उत्पन्न होती है। भारतवर्षमें भी कहीं कहीं इसको ऊपि की जाती है। भारतवर्षी इसके फलको बाहरसे भंगते हैं। इसके गाँदको रान किसी बड़े काममें नहीं लगती। परन्तु बैरके पदोंमें मिनते हैं। किन्तु उनमें नुकोलापन कुछ अधिक रहता है। पदोंको

खड़ी नसे ऊपरकी उठ घालो है। फल गुच्छेमें रहता और गोल-मिर्च जैसा देख पड़ता है। इसे भी कवावचीनी ही कहते हैं। यह खानेमें मरिचके मृदु, कट्ट एवं तिक्त लगता है। पहले यवहोप-वासी इसे किसी विदेशीयके हाथ बेचनेमें इच्छितते थे। यह भय रहते—कोई हमारे इस पदुष फलको अपने देशमें जाकर लगा न ले। परबके प्राचीन वैद्योंको विदित था—कवावचीनी मूलप्रवाहके मार्गका लसदार भिक्षोको बड़ा लाभ पदुषातो है। किन्तु लोग इसे वायुनायक गन्ध द्रव्यकी भांति ही व्यवहार करते पाये हैं। कवावचीनी धातुदोषेय और प्रमिहका मज्जोपध है। यह दीपन, पाचन और मूलवर्धक होती है। ब्रह्मरंके वैद्य इसे श्लेष्मिक अधिक व्यवहार करते हैं। कवावचीनी कण्डके स्वरको भो सुधारती है। गाने-बजानेवाले इसे प्रायः सु'हमें डाले रहते हैं। क्वोन देवी।

कवावो (५० वि०) १ कवाव बेचनेवाला। २ कवाव खानेवाला।

कवाव (हिं०) क्वा देवी।

कवार (हिं० पु०) १ व्यवसाय, कामकाज। २ उप-विशेष, एक पेड़।

कवान (हिं० स्त्री०) खजूरिकातन्तु, खजूरका रेशा। इसे बटकर रस्से तैयार की जाती है।

कवाल (५० पु०) लेप्यमंद, एक दम्भापेज। इसके द्वारा एककी मन्थति दूधरंके पधिकारमें आतो है।

कवाल (हिं० स्त्री०) कवालानशोष, और जायदाद बेचनेवालेको पोरसे खरोदनेवालेको दी जानेवाली सन्दको 'कवालान-नोताम' कहते हैं।

कवाट (हिं०) क्वारत देवी।

कवाहत (५० स्त्री०) १ अमद्गत, बुराई। २ कठि-मता, हिक्कत, पड़बन।

कवित्य (५० पु०) कपित्यत्रय, कवेका पेड़।

कविल (५० वि०) कपिल, भूरा, तांबड़ा। (पु०) २ कपिलवर्ष, भूरा या तांबड़ा रंग।

कवीठ (हिं० पु०) १ कपित्यत्रय, कवेका पेड़। २ कपित्यत्रय, कवेका मिश।

१८
 १८८५। कपोतकी भांति पादयुक्त, जो कवूतरकी तरह पैर रखता हो।
 कपोतपालिका (सं० स्त्री०) कपोतान् पालयति, कपोत-पाल-णिच्-खुल् स्वार्थे कन्-टाप् भ्त इत्वम्। विटङ्ग, कावुक, दर्वा, चाशियामा, विडियाखाना।
 कपोतपाली (सं० स्त्री०) कपोतान् पालयति, कपोत-पाल-णिच्-भण्-ङीप्। कपोतपालिका, कावुक, दर्वा, कवूतरोंकी छतरी।
 “चिकित्सा हविमपविर्षः कपोतपालीयु निकेतनात्मा।” (भाष)
 कपोतपुट (सं० स्त्री०) शौचपुटभेद, दवाकी एक तरह। जो पुट अष्टसंख्यक वनोपलसे खातमें दिया जाता, वही कपोतपुट कहाता है। (भाषवकाम)
 कपोतपुरीष (सं० पु०) पारावतविष्ठा, कवूतरका बीट। यह व्रणदारण होता है।
 कपोतराज (सं० पु०) पारावतप्रभु, कवूतरोंका राजा या सरदार।
 कपोतरतस् (सं० पु०) प्रवरसुनि विशेष।
 कपोतरोमा (सं० पु०) १ राजा अशौरके पुत्र।
 कपोतरूपी अग्निके घरसे इनका जन्म हुआ था। (भाष, वन १११ पं०) २ यदुवंशीय कुण्डल नृपतिके पीत। (इति ३ ३८ पं०)
 कपोतलुब्धकीय (सं० स्त्री०) कपोतं लुब्धकभु अघि-हात्य क्तो घन्यः, कपोतलुब्धक-ङ्। महाभारतके अन्तर्गत आख्यायिका विशेष। इसमें कपोत और लुब्धकके मत्पच्छलेसे उपदेश दिया है—यदुब्धकीय प्राण देकर भी अतिघिसन्कार करना चाहिये।
 कपोतवक्रा (सं० स्त्री०) काकमाची, कैवैया।
 कपोतवक्रा, कपोतवक्रा देखो।
 कपोतवह्ना (सं० स्त्री०) कपोतो वक्षते प्रताप्यते ऽनया, कपोत-वन्च्-करणे घञ् कुत्वं टाप् च। ब्राह्मी, एक वृद्धी। भाषी देखो।
 कपोतवर्ष (सं० त्रि०) घुसर, चमकीला भूर, कवूतरका रङ्ग रखनेवासा।
 कपोतवर्षा, कपोतवर्षा देखो।
 कपोतवर्षी (सं० स्त्री०) कपोतस्य वर्षं इव वर्षा यस्याः, गौरादित्वात् ङीप्। सूखेला, छोटी इलायची।

कपोतवर्षी (सं० स्त्री०) कपोतवर्षा वक्षी, मध्यपदघो०। ब्राह्मी, एक वृद्धी। युक्तप्रदेशमें यह बस्वा किनारे होती है।
 कपोतवाण (सं० स्त्री०) कपोतपाद इव यो वाणस्तद्वत् भाकारा यस्य। नलिका नामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज।
 कपोतविष्ठा (सं० स्त्री०) कपोतपुरीष देखो।
 कपोतवृत्ति (सं० त्रि०) कपोतानां वेगो वृत्तिरिव वृत्तिर्व्यस्य बहुव्री०। १ सञ्चयहोन, इकट्ठा न करनेवाला, जो कवूतरकी तरह रोज कामाता-खाता हो। (स्त्री०) २ सञ्चयशून्य जीविका, जिस रोजगारमें कुछ जोड़ न सके।
 कपोतवेगा (सं० स्त्री०) कपोतानां वेगो गतिरिव वेगः द्रुत-वृद्धिव्यसाः, मध्यपदघो०। ब्राह्मीनामक महाद्युप, एक भाड़।
 कपोतव्रत (सं० त्रि०) १ कपोतकी भांति कष्ट पाते भी मौनधारण करनेवाला, जो सताया जाते भी कवूतरकी तरह बोलता न ह। (पु०) २ कपोतका व्रत, कवूतरका अष्टद। मौनधारणपूर्वक ताड़नादि सहन करना कपोतव्रत कहाता है।
 कपोतसार (सं० स्त्री०) कपोतवर्षं इव सारः कृष्ण-वर्णो यस्य, बहुव्री०। सोतोऽस्नान, सुरमा।
 कपोतहस्ता (सं० स्त्री०) उपासनाके समय हाथ जोड़नेकी एक रीति।
 कपोतहस्तक, कपोतहस्त देखो।
 कपोताचनदी—बङ्गालकी एक नदी। चलित भाषामें इसे कपोतक कहते हैं। नदिया जिलेमें चन्द्रपुरके निकट माथाभांगा नदीसे यह निकली है। उत्पत्ति-स्थलसे थोड़ी दूर पूर्वकी ओर चल नदिया और यशोरके मध्य यह दक्षिणामिसुखी हो गयी है। इस स्थानपर यही नदी नदिया, चौबीसपरगना और यशोर जिलेकी सीमाकी निर्देश करती है। चौबीसपरगनेके पाशासुनेसे ५ मील पूर्व 'मरीहाय गङ्गा'में कपोताच नदी जा गिरी है। गङ्गामें कलकत्तेसे नौका आया-जाया करती है। उल्ल गङ्गाके सङ्गमस्थानसे २ मील दक्षिण इससे पूर्वतुल यशोर

कवीर (अ० वि०) सत्यप्रतिष्ठ, बड़ा। बहुत बड़े आदमीको अमीर-कवीर कहते हैं। (हि० स्त्री०) अश्लील गीत, फोहवा गाना। यह होलीमें गायी जाती है। कोई कवीर कहनेसे पहली लोग 'अररर कवीर' पद लगा लिया करते हैं।

कवीर—कवीरपत्नी नामक सम्प्रदायके प्रवर्तक। ठीक कह नहीं सकते—कवीर किसके पुत्र अथवा किस जातिके व्यक्ति रहे। इनकी जाति, सन्तति और उत्पत्तिके विषयमें नाना विवरण मिलते हैं। सुसलमान् इन्हें अपनी जातिके व्यक्ति बताते हैं। किन्तु भक्तमालमें लिखा है—

रामानन्द-शिष्य किसी ब्राह्मणके एक बालविधवा कन्या रही। किसी दिन वह ब्राह्मण कन्या साथ ले गुरुदर्शनकी पहुँचे। फिर रामानन्दने उस ब्राह्मण-कन्याकी भक्ति देख सहसा पुत्रवती होनेकी आश्रीर्वाद दिया था। आश्रीर्वाद भी वृथा न गया, बालविधवा कन्याके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसी पुत्रका नाम कवीर है। भूमिष्ठ हीते ही अभागिनी जननी नोकापवादके भयसे गुप्तभावमें शिशुको स्थानान्तरण कर छोड़ आयी थी। फिर किसी जोन्हाहे और उसकी स्त्रीने देवात् शिशुको पाकर निज पुत्रकी भाँति लालनपालन किया।

कवीरपत्नी भक्तमालके प्रथम अंशकी बिलकूल नहीं मानते। उनके मतमें कवीर एकदिन काशीके निकट 'सहर तालाब' नामक सरोवरके पद्मपत्र पर तेरते थे। उसी स्थानसे नूरी जोन्हाहा अपनी पत्नी नौमाके साथ विवाहनिमन्त्रणमें जाता रहा। नौमा इस शिशुको देख अपनी स्वामीके निकट ले आयी। फिर शिशुने उससे पुकार कर कहा—इमें काशी ले चलो। नूरी मद्योजात शिशुकी बात सुन अति-ग्रह विस्मयापन्न हुआ और सोचने लगा—कोई उपदेवता मानवदेह धारणकर आ गया। अन्तकी उसने प्राणके भयसे डर और शिशुकी फेंक पलायन किया। किन्तु शिशु उसके पीछे पड़ा था। कोई आध कोस जाकर नूरीने देखा, कि शिशु उसके समीप रहा। उस समय वह भयसे जड़ीभूत हो

गया। शिशुने उसका भय निवारणकर कहा था—तुम इमें प्रतिपालन करो और किसी बातसे न डरो। इसीप्रकार शिशुरूपी कवीर जोन्हाहेके हाथ लालित पासित हुये।

कवीरके जीवनका प्रथमांश जैसा कौतुकावह थाता, वैसा ही अग्रगण्य अंग भी देखाता है। भक्ति-माहात्म्य नामक संस्कृत ग्रन्थमें लिखा है—

पूर्वकाल वेदान्ताभ्यामनिरत एक ब्राह्मण रहे। वह स्त्री-पुत्रके लिये शिल्पकार्यसे जीविका चलाते थे। एकदिन सुत्र लेनेकी उन्हें तन्तुवायके भवन जाना पड़ा। वहमें अपने घर लौटनेपर वह ज्वर रोगसे आक्रान्त हुये और देवयोगसे उसी ज्वरमें मर गये। मृत्युकालको स्मरण आनेसे ही तन्तुवायके घर उनका जन्म हुआ। तन्तुवायके घर जब ले ब्राह्मणने प्रथम वस्त्रादि निर्माण करना सीखा था। किन्तु पूर्वसंस्कार-वगत; उनमें ब्रह्मज्ञान भी उत्पन्न हुआ। वह सर्वदा कहा करते थे—संसार असार और यह जीवन पद्म-पत्रपर ललके समान है। इस काशीधाममें कौन हमारा गुरु होगा ? कौन इमें इस संसार-सागरसे बचावेगा ? कर्णधार न मिलने पर यह देहतरी कैसे चलेगा ?

किसी दिन उन्होंने कितने ही साधुवोंके निकट उपस्थित हो अपना मनोभाव प्रकट किया। वैश्व-साधुवोंने उनसे पूछा,—तुम कौन और क्या चाहते हो। उन्होंने कहा—इस जातिके तन्तुवाय और रामानन्दके शिष्य होना चाहते हैं। वैश्व उपहास कर कहने लगे—तुम न्नेच्छ हो, तुम्हारा गुरु कौन होगा !

फिर तन्तुवायरूपी कवीर भग्नमनोरथ घरकी लौटे थे। उनका मन अस्थिर हो गया। उन्होंने फिर साधुवोंके निकट जा अपने मनका दुःख देखाया था। किन्तु इस बार भी उनकी मनस्कामना पूर्ण न हुयी। फिर वह अस्थिर चित्तसे वाराणसीमें घूमने लगे। वह जिसकी देखते, उसीसे पूछते थे—क्या आप बता सकते, गुरु रामानन्द कहाँ हैं। इसीप्रकार बहुदिन-बीत गये। किसी दिन एक वैश्वयने उनसे दयाकर कहा था—गुरु रामानन्द असुक स्थानपर रहते हैं।

जिल्लाका 'चांदखासी' नामका निकला है। चांदखासी नालीके मुखसे बचां २२' १३' ३०" धोर देगां ८८' २०" पू० पर इससे खोल-पट्टया नदी या मिस्ती है। इन दोनों संयुक्त नदियोंके सङ्गमस्थलसे दक्षिण कर्षीं इसे पांगासो, कर्षीं बाङ्, कर्षीं पांगा, कर्षीं मामगाद और कर्षीं समुद्र कहते हैं। सागरके निकट-वर्ती स्थानपर इसका नाम मालाच है। यह भवभ्रमको मालाच नामसे ही बङ्गोपसागरमें प्रविष्ट हुयो है।

यशोर जिल्लेमें इस नदीके तीर सागरदांडी नामक एक सुन्दर ग्राम है। १८२८ ई०की इसी ग्राममें ब्रह्मनाथके प्रसिद्ध कवि और मेघनादपद्य तथा ब्रजाङ्गनादि काव्यके प्रणेता माइकेल मधुसूदनने जन्म-ग्रहण किया था।

कपोताङ्घ्रि (सं० स्त्री०) कपोतस्य षड्भि इव, छपमि०। नक्षिका नामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज।

कपोताञ्जन (सं० स्त्री०) कपोतवर्णं षड्जनम्, मध्य-पदसो०। स्तोत्रोच्चन, सुरमा।

कपोताण्डोपमफल (सं० स्त्री०) गिबू भेद, किछी किष्मिका कागुली नीजू।

कपोताम (सं० पु०) कपोतस्य भामा इव भामा यस्य, मध्यपदसो०। १ कपोतवर्णं, पोला या मेला भूरा रङ्ग। २ भूषिकविशेष, किछो किष्मिका चूड़ा। इसके काटनेसे दृष्टस्थान पर धन्वि, पिङ्का और गोरुकी छत्पत्ति होती है। फिर उससे वायु, पित्त, कफ और रक्त चारों विगड़ जाते हैं। (चक्र) (दि०) ३ कपोतसदृश वर्षाविगिष्ट, चमकोला भूरा, जो कबूतरका रङ्ग रखता हो।

कपोतारि (सं० पु०) कपोतानां परिर्मारकः, ह-तत्। श्येनपक्षी, वाजु चिड़िया।

कपोतिका (सं० स्त्री०) कपोत खाद्यं कन्-टाप् पत इत्वम्। १ कपोली, कबूतर। २ पाषण्डमूल, किछो किष्मकी मूली।

कपोती (सं० स्त्री०) कपोत-स्त्रीय्। १ कपोतजातिकी स्त्री, कबूतर। २ यज्ञीय उपविशेष। ३ पिङ्की, फाफूता। (दि०) ४ कपोतयुक्त, कबूतर रखने-वाला। ५ कपोतसदृश आकारयुक्त, जो कबूतरकी

शक्त रखता हो। ६ कपोतवर्णं, कबूतरका रङ्ग रखनेवाला।

कपोतेश्वरी (सं० स्त्री०) कपोतेश्वर-स्त्रीय्। पार्वती, दुर्गा।

कपोल (सं० पु०) कपि-प्रोक्षत् नक्षोपः। कब्रि-नापिकटिपटिष् चोवत्। वच् १४२। १ मस्तक, मर्या। २ गण्डस्थान, गाल। यह लज्जासे सिङ्गुता, भयसे उभरता, क्रोधसे कंपता, दर्पसे खिलता, स्थाभाविष्ठ भावसे सम रहता, कठने शक्त पड़ता और छत्पाहसे पूषं नगता है।

कपोलकल्पना (सं० स्त्री०) भ्रमूलक कल्पना, भ्रूट वात। कपोलकल्पित (सं० दि०) धसत्य, भ्रूट।

कपोलकवि—संस्कृतके एक प्राचीन कवि। कपोलकाय (सं० पु०) कपोलानां कायः (कृष्ये धनेन इति कायः) कर्षणस्थानम्। १ इक्षिगण्डक, छाथीकी कनपटी। २ इषादिका लम्बस्थान, छाथीके भ्रमनी कनपटी रगड़नेका सुकाम; पिङ्का खया।

“श्रीलानिः शूरकरिवा कपोलकायः।” (भारत)

कपोलमेट्टवा (हिं० पु०) गण्डस्थलोपधान, गलतकिया।

कपोलफलक (सं० पु०) कपोलः फलक इव। प्रमस्त-गण्डस्थान, चपटा गाल। समस्ततः कपोलादिक्ता हो कपोलफलक कहते हैं।

कपोलमिति (सं० स्त्री०) कपोला भित्त इव, छपमि०। विस्तृतकपोल, लम्बा-चोड़ा गाल।

कपोलराग (सं० पु०) गण्डस्थलकी रक्तता, गालकी चमक।

कपोली (सं० स्त्री०) जान्वप्रभाग, हुटनेका भगता हिष्ठा।

कपोला (हिं० पु०) वैभ्रजातिविशेष, धनियोंको एक कौम।

कप्तान (सं० पु० = Captain) १ सेनाने, सिपह-सत्तार। २ पोताध्यक्ष, जहाजका सुहाकिर्ता ३ नावक, चयुवा।

कप्तानी (हिं० स्त्री०) १ पक्ष्यता, सरदारो। (दि०) २ पक्षधसम्बन्धोय, सरदारसे सरोकार रखनेवाला।

कप्पर (हिं० पु०) कर्पट, कपड़ा।

रात्रि बीतनेपर वह यहिद्वार खोल प्रत्यह गङ्गा-स्नानकी निकलते हैं। तुम रातकी उनके यहिद्वारके समग्र लजाकर सो रहो। जब वह द्वार खोल बाहर पायेंगे, तब उनके पद तुम्हारे चङ्गमें छू जायेंगे। उस समय उनके मुखमें निकले गामका तुम गुरुमन्त्र समझ ग्रहण कर लेना। सिखा इसके रामानन्दके शिष्य होनेका दूसरा कोई उपाय नहीं।

कबीर वैष्णवकी वातमें प्रारब्ध हुए और शुभ-दिनका रात्रि बीतनेसे रामानन्दके द्वारपर लैट गये। रात्रि शेष होनेपर रामानन्द प्रातःकृत्यादि निवटा और कृप्य तिल चठा जैसे ही बाहर निकले, वैसे ही कबीरके चङ्गमें उनके पद छू गये। कबीरने भी महासमादरसे गुरुकी पद चूम लिये थे। रामानन्द खेच्छके गात्रमें पद लगते देख बोन उठे—राम! राम! तुम कौन। इसप्रकार कबीरका मनोरथ पूरा हुआ। उन्होंने रामानन्दको गुरु कह साक्षात् प्रथिपात किया।*

उसी दिनसे कबीरने 'राम' नामको सार माना था। वह स्तव-स्तुति कुछ न करत, केवल 'राम' नामकी ही-सुल्लिका सोपान समझते रहे। फिर कबीर तिलक-माना धारण कर परपरापर वैष्णवकी भांति काशीधाममें रहने लगे।

कबीरका पाचार व्यवहार देख वैष्णव विगड़े थे। एकदिन उन्होंने कबीरको बोलाकर कहा—रे च्छे-धम! तू किस माससे तिलकमाला धारण करता है! तुम्हको यह दुर्बुद्धि किसने दी है।

कबीरने शान्तश्रित भावसे उत्तर दिया—मैं सत्य कहता हूँ, गुरु रामानन्दने मुझे राममन्त्र दिया और इसीसे मैंने ऐसा कार्य किया है।

फिर सवने आकर रामानन्दमें कबीरकी कथा कहो थी। रामानन्दने प्रत्यन्त क्रुद्ध हो उन्हें बोला भेजा। उन्होंने गुरुकी निकट जा कृताञ्जलिपुटसे धीरभावमें कहा—हे नाथ! क्या पाप भूल गये? उस दिन रात्रिशेष पर मैं भापके द्वारपर जाकर सेटा

था। आपने मेरे चङ्गपर पद रख राम नाम उच्चारण किया। उसी दिन मैंने राममन्त्र स्नात किया था। उसी दिनसे मैं नियत राम नाम जपता हूँ। प्रभो! इसमें यदि मेरा दोष मान लीजिये, तो दयाकर क्षमा कीजिये।

रामानन्दको कबीरका परिचय मिला और उन्होंने क्रोध परित्यागकर हंसते हंसते भागीवादी दिया। उसी दिनसे सब लोग कबीरको एक भक्त समझने लगे। यह नहीं—कबीर केवल भक्त ही रहे। उनकी इच्छा दरिद्रके दुःखसे पिघल उठता था। किसी दिन वह एक वस्त्र बेचने जाते रहे। पर्यमें कोई हठ मिला गया। उस समय शीतकाल रहा। दरिद्र हुदने शीतता ही उनसे वस्त्र मांगा था। कबीरने दरिद्रको दुर्दशा देख भस्मानवदन वस्त्र दे डाला। दान किया तो सही, किन्तु परमुहूर्त उनके मनमें संसारका उपाख्यान निकल पड़ा—हाय! भाज मेरे घरमें पन्न नहीं, माता राहमें बैठी मेरे पानेकी ताक लगाये होगी; मैं रिक्त चक्षु कैसे घर वापस जाऊंगा। फिर उन्होंने मन ही मन सोचा—भाल दरिद्रको यह वस्त्र दे मुझे जो सुख मिला, वस्त्र बेच कर पर्य से उसका होना कहां था; मेरे घट्टमें जो भाये, वही पड़ जायेगा। कबीर घर को सोट पाये। पाकर उन्होंने सुना था—माता अन्नव्यञ्जन बना बैठे राह देख रही हैं। कबीरने मातासे पूछा—माता! भाज हमारा संसार कैसे चला, भाज तो हमारे कोई संस्थान न था। माताने उत्तर दिया—कबीर! यह क्या, तुम्होंने तो चादमी भेज हमारे पास पर्य पड़ पाया है। कबीर पापर्यमें भा गये और पावेग गद्गदभावमें मातासे कहने लगे—माता! तुम भय्य हो। साक्षात् महावत्पुन भगवान् पाकर तुम्हें पर्य दे गये हैं। माता। दीनदुःखीको धन वितरण करो। हमें धनका क्या प्रयोजन है।

कबीरकी माताने दीन-दरिद्रको धन बाँटा था। चारों ओर राष्ट्र हो गया—'कबीर बड़े दाता हैं। जो जाता वही पाता, कोई हवा धूम नहीं पाता।'

यह वदान्यता सुन एक दिन चारों ओरसे बहुतसे

* ऐकमिदं नामं कबीरने रामानन्दमें दोषाधी प्रायेण की तो—
"इकमिदि हय कोलाकां कोपा। परिरिधं कीधिं कानु न कोपा।
रामानन्द गुरु हीया है। इच्छूना कहूँ केको है।"

कफपा (हि० पु०) १ अहिमेनखेद, अफीमका अर्क । इसमें वस्त्र आर्द्रकर मदक प्रस्तुत करनेको शक्त करते हैं । २ चालनी, गिरवाला, साफा । यह एक प्रकारका वस्त्र होता है । किसी पात्रके मुखमें लपेट इसपर अफीमको शुष्क करते हैं ।

कप्याख्य (सं० पु०) कपिराख्या यख्य, बहुव्री० । १ वानर, बन्दर । २ सिलहक, लोवान् । कप्यास (सं० पु०) कपीनां भासः (भास्यते अनेन इति भासः), इ-तत् । वानरगुद, बन्दरकी पीठके सामनेका हिस्सा ।

कफ (सं० पु०) केन जलेन फलति, क-फस-ड । नरेणवि दह्यते । वा शश १०१ । शरीरस्य धातुविशेष, श्लेष्मा, बलगुम । “क” शब्दका अर्थ देह और “फल्” धातुका अर्थ गति है । सुतरां इससे अष्ट समझ पड़ता—प्राणियोंके देहमें सर्वत्र गमन करनेवालीको विद्वान् कफ कहता है । यह शरीरस्य सौम्य (जलीय, त्रिगुण-गुणविशिष्ट) धातु है । हिन्दीमें भी इसे प्रायः कफ ही कहते हैं । इसका संस्कृत पर्याय—क्लोदन, सहात, सौम्यधातु, श्लेष्मा, घन और बली है । कफ देहको धारण करनेसे ‘धातु’, समस्त देहको रूपात करनेसे ‘दीप’ और क्लोद द्वारा सर्वशरीरको मलिन करनेसे ‘मल’ कहलाता है । यह नाम, स्थान और कार्यभेदसे पांच भागमें विभक्त है—

“कफस्ये तानि नामानि क्लोदनधातुवत्तनः ।
रसनः चोदनवापि श्लेष्माः स्थानभेदतः ॥” (सुश्रुत)

१ क्लोदन, २ अवलम्बन, ३ रसन, ४ स्नेहन और ५ श्लेष्मा कफकी पांच नाम हैं ।

“चामाशये ऽथ हृदये कथे गिरसि सन्धिषु ।
स्थानेषु मनुष्याणां श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमत् ॥” (सुश्रुत)

१ चामाशय, २ हृदय, ३ कण्ठ, ४ मस्तक, और सन्धिस्थान—शरीरके पांच स्थानोंमें श्लेष्मा प्रधानतः रहता है । क्लोदन नामक श्लेष्माका चामाशय, अवलम्बनका हृदय, रसनका कण्ठ, स्नेहनका मस्तक और श्लेष्माका आशयस्थल सन्धिस्थान है । सर्वशरीर-व्यापी होती भी जब यह अविभक्त अवस्थामें रहता, तब वैवक्ष्यमान पूर्वोक्त चामाशयादि पक्षस्थानमें ही ठहरता

है । श्लेष्माके जो उल्लिखित पक्षविध कार्य क्लोदनादि पृथक् पृथक् पड़ते, उन्हें भी इस स्थलपर लिखते हैं—

“क्लोदनः क्लोदयत्प्रणामकमृत्स्यापिराण्यपि ।
अनुप्यश्रापि च श्लेष्मास्थानान्प्रदककर्मणः ॥
रसयुक्तायवोर्धेष हृदयस्थानवत्तनम् ।
त्रिकसरारपचापि विदधाव्यवत्तनम् ।
रसगावस्थितक्षुष रसनी रसवीचनान् ।
चोदनः चोदनेन समको द्विपतर्पणः ।
श्लेष्माः सर्वेश्वरीनां यं श्लेष्मं विदधाव्यकी ॥” (सुश्रुत)

१—क्लोदन नामक श्लेष्मा अपनी शक्तिसे मुक्त द्रव्यको भिगाता और पिताहति सकल आहारिय वस्तुको गलाता है । फिर यह भिन्न (गंसा हुआ) अन्न देहके अन्यान्य सकल स्थानोंमें पड़ुच हृदयावलम्बन, त्रिक (मेरुदण्डके निम्न एवं उपरिस्थ सन्धिस्थान अर्थात् गुच्छके सन्निकट श्लेष्मास्थि तथा घाट), सन्धारण, रसग्रहण एवं इन्द्रियसमूहकी श्रैत्यगुणसे सन्तृप्तिकरण तथा सन्धिसंश्लेषण प्रभृति उदककर्म द्वारा आनुकूल्य पहुँचाता है । २—वचःस्थलस्थित अवलम्बन नामक श्लेष्मा रसके सहयोग स्त्रीय शक्ति द्वारा हृदयको अवलम्बन और त्रिक-देशको धारण करता है । ३—रसन नामक रसनास्य कफ आहारिय वस्तुसमूहके रसका घन उपजाता है । ४—स्नेहन नामक श्लेष्मा स्नेहपदार्थ प्रदानपूर्वक समस्त इन्द्रियकी तृप्ति लाता है । ५—श्लेष्मा नामक कफ सन्धिसमूहका संश्लेष (मेल) विधान करता है । वाभटके मतसे—

“कफधायाच श्लेषायां यत् करोत्यवलम्बनम् ।
अतोऽवलम्बकः श्लेष्मा यत्कामाशयस्थितः ।
क्लोदनः कोऽप्रसहातक्लोदनात् रसवीचनान् ।
वोर्धेषो रसनास्यायो गिरसः श्लोऽपि तर्पणान् ।
तर्पकः सन्धिसंश्लेषा च्छुष्माकः सन्धिषु स्थितः ॥” (वाभट)

अवलम्बक, क्लोदनक, श्लेषक, बोधक एवं तर्पक—पांच नामसे कफ ५ भागमें विभक्त है । अवलम्बक, श्लेष्मा पूर्वोक्त अवलम्बन कफोक्त क्रियाशील एवं स्थानगत, क्लोदनक श्लेष्मा क्लोदनकी भांति कार्यकारी तथा स्थानगत, श्लेषक पूर्वोक्त श्लेष्माके सहज क्रिया-

सोग इनके घर आकर अतिथि हुये। इन्होंने देखा,—
‘बड़ा ही विन्मट है। मैं दरिद्र, निर्धन हूँ। गृहमें
‘अन्नका संस्थान नहीं। कैसे इतने लोगोंकी मनस्तुष्टि
की जायेगी?’ इनका मन अस्थिर पड़ गया था।
यह गृहान्तरमें जा सोचने लगी। उधर भगवान्‌नी
कबीरका रूप बना और अतिथियोंकी धनरत्नसे सजा
विदा कर दिया। इन्होंने घर आकर यह प्रपूष
घटना सुनी। फिर कबीर क्या स्थिर रह सकते थे!
प्राण छोड़ छोड़ यह केवल इष्टदेवकी पुकारने लगे।

किसी दिन इन्होंने रांजसभामें पहुँच एक
अच्छलि जल भर पूर्णमुख फेंका था। राजा इन्हें
पागल समझ हँस पड़े। उस समय इन्होंने निर्भय
राजाकी सम्बोधन कर कहा था,—राजन्! इसनेका
कोई कारण नहीं। जगन्नाथपुरीमें किसी पूजक
ब्राह्मणके पैरपर उष्ण भोदन गिर पड़ा है। मैंने
उसीके पैरपर शीतल जल डाला।

कबीरकी बातसे राजाकी बड़ा क्रोधल लगा था।
इन्होंने जगन्नाथपुरीको दूत भेजा। घरने लौट
कबीरकी बात सम्राण की थी। फिर राजाने
कबीरको एक सिद्धपुरुष ठहरा लिया। साक्षात्
करनेकी वह स्वयं इनके घर जा पहुँचे। कबीर
राजाको अपने छुद्र कुटीरमें देख अतिशय आश्चर्य
हुये और हाथ जोड़ कहने लगे,—‘महाराज! आपके
आगमनसे यह दास कृतार्थ हुआ। किङ्करकी कुछ
करनेके लिये आदेश दीजिये।’ राजाने इन्हें
आलिङ्गन कर कहा,—‘हे वैष्णव! आप हमारा दोष
पक्ष्य न कीजिये। हमने वैचर्मके आपका उपहास
किया है। वतसायिये, क्या करनेसे आप सुखी-होंगे।
धनरत्न जो चाहिये, हम प्रमो देनेकी प्रस्तुत हैं।

इन्होंने सहायमुख उत्तर दिया था,—‘राजन्!
‘धनरत्नका क्या प्रयोजन है। जीवम और मरण—
समय समान होते हैं। मैं सूख हूँ। इस तूच्छ
जीविकानिर्वाहके लिये धन नहीं चाहता। जो दोन
दरिद्र, क्षुधातुर और अर्थके लिये न्यासायित है, अपनी
दृष्टिके अनुसार उसे धन दीजिये। आपकी महापुण्य
‘होगा।’ राजा इष्टचित्त निज प्रासादकी लौटे थे।

उसी दिन इन्होंने राज्यमय घोषणा की—‘कबीर
‘हमकी अति प्रिय हैं।

कुछ दिन पछि यह तीर्थयात्राकी निश्चले और
सयूरा दर्शन कर दिल्ली पहुँचे थे। उस समय
दिल्लीमें सुषलमानराज सिकन्दर लोदीका राजत्व
रहा। दुष्टोंने जाकर सुलतानसे, कह दिया—‘एक
दाभिक जोलाहा आकर अपनेकीकी बख्शना करता
है। ऐसे व्यक्तिको राजदण्ड मिलना उचित है।

सिकन्दरने कबीरको पकड़नेके लिये आदेश
सजाया था। यथासमय राजपुरुषोंने आ इन्हें पकड़
लिया। फिर इन्होंने उनके मुख प्राणदण्ड मिलनेकी
बात सुनी। सिकन्दरके समीप पहुँचने पर पारि-
पदोंने इनसे नमस्कार करनेकी कहा था। किन्तु
इन्होंने उनको बातपर कर्णपात न किया और हँसते
हँसते सुना दिया—‘किसकी प्रणाम किया जाये, इस
संसारमें कौन भय नहीं।

फिर सुलतानने अति कुछ ही और इन्हें गृहला-
वह कर यमुनाके अग्राध सलिलमें डालनेका आदेश
निकाला था। राजपुरुषोंने तत्क्षणात् कबीरकी
यमुनाके जलमें निक्षेप किया। कानिन्दीके कृष्ण
नीरमें इनका देह अदृश्य हो गया। किन्तु परलण्य
ही सकलने यमुनाके परपार इन्हें सहाय्य मुख घूमते
देखा। दुष्ट लोगोंने सुलतानसे जाकर कह दिया—
‘कबीर ऐन्द्रालिक है। सामान्य इन्द्रजाल-विद्याके
प्रभावसे निश्चय इन्हें रक्षा मिली है। इसवार अग्निके
मध्य निक्षेप कराविये।’ दिल्लीखरने दुष्टोंकी बातोंमें
पड़ राजपुरुष बोला कर इन्हें महानसमें लला
डालनेकी कहा था। किन्तु कंस आश्रय। ज्वलन्त
अनसमें इनका एक केम नष्ट न हुआ।

कबीरको इस अमानुष घटनासे भी दिल्लीखरकी
चेतन्य पाया न था। इन्होंने लोभसे उन्मत्त और
दुर्जनोंकी बातके यथोभूत हो हाथीके पैर नीचे इन्हें
दबा मार डालनेकी आदेश दिया। किन्तु भगवान्
जिसपर सदय रहते, चञ्जर हाथी भी उसका क्या
कर सकते हैं। आज मतवाला हाथी भी इनका
सिंहरूप देख भयसे भाग गया।

विशिष्ट एवं स्थानगत, बोधक रसनकी भांति कार्यकारी तथा स्थानगत और तपक्रोश्या सुश्रुतोष्ण से इनके सदृश क्रियाकारी एवं स्थानाश्रयो है।

“श्रेष्ठा श्रेष्ठो गुहः सिन्धुः पिच्छिनः शीत एव च।

मधुरस्निग्धः स्वादुविदग्धो लवणः क्षुतः ॥” (सुश्रुत)

श्रेष्ठा श्रेष्ठ, गुह (भारी), सिन्धु, पिच्छिन, शीतल, मधुर रसात्मक और विगड़नेसे लवण रस-विशिष्ट होता है।

कफके प्रबोधका कारण और कारण—गुहपाकी, मधुररस-विशिष्ट, अत्यन्त सिन्धु, द्रव (तरल) तथा घिष्टक एवं हृतसंयुक्त द्रव्य, दुग्ध तथा मधुररस खाने, दिनकी सो जाने, और वायुकाष्ठ, शीतकाल, वसन्तकाल, रात्रिका प्रथमकाल, प्रभात तथा भोजनका अन्त समय खानेसे कफ प्रकृपित होता है। कफ उभरनेसे स्तिमितभाव, मधुररस, शीतता, शीकल्य, प्रवेक, मल-प्राचुर्य, स्थिरता, लवणात्मकता, कण्डू, आलेख्य, चिर-कारिता, कठिनता, शोथ, भ्रूचि, सिन्धुता, तन्द्रा, टसि, उपदेह, कास और शुब्दा—विंशतिप्रकार लक्षण देख पड़ता है। कफज रोगमें रुच द्रव्य, चार द्रव्य, कपाय द्रव्य, तिक्त द्रव्य एवं कटु द्रव्यका सेवन, व्यायाम, निष्ठोवन (खुछारकर शूकना), धूमपान, छण्य शिरोविरचक द्रव्य (नस्यादि)का व्यवहार, वमनकारक द्रव्यका प्रयोग, स्वेद (गर्भ जलसे अभिषिक्त फलालेन आदि वक्षद्वारा संक-प्रदान), उपवास, मैथुन, पथ्यघटन, सुह, जागरण, जलक्रीडा और पटादि द्वारा पाघात लगाना उपकारी है। ऐसे ही पाहार विहार और भोज्यादिसे प्रकृपित कफ दह जाता है। उक्त रुच द्रव्यादिको कफ-संशमनवर्ग कहते हैं।

जलक्रीडा (सन्तरण) और शीतल क्रिया द्वारा किञ्च प्रकार कफ प्रशमित होता है—प्रत्येक उत्तरमें कहा जाता, कि जलक्रीडाजनित शीतलतासे शारीरिक ताप अल्पने नहीं पाता। सुतरां चतुर्दिक कर्दम लेपन कर देनेसे पाकान्नि प्रखर पड़ने पर सखर पाकक्रिया सम्पन्न होनेकी भांति शारीरिक अग्नि जलक्रीडादिसे अत्यन्त प्रखर हो कफको सुखाता है। कफ बढ़नेसे

अग्निमान्य, नासिकादिसे कफस्त्राव एवं पासस्य आता, देह गुह तथा श्चेतवर्ष देखाता, भद्रादि शीतल एवं मिथिल पड़ जाता और श्वास, कास तथा निद्राका आधिक्य सताता है। फिर कफ घटनेसे श्वात्ति लगती, हृदयादि श्रेष्ठाश्रयोकी शून्यता भक्त-कती, द्रवत्वकी प्रत्यता पड़ती और शारीरिक सन्धि-समूहकी मिथिलता बढ़ती है। जिस व्यक्तिके शरीरमें कफ अधिक परिमाणसे रहता, वह कफके गुण-क्रियादि विशिष्ट हो कफात्मक प्रकृतिको पड़ता है। ऐसे व्यक्तिको कफप्रकृतिक कहते हैं। श्रेष्ठा-प्रकृतिका लक्षण—गभीर बुद्धि, श्यामवर्ण एवं सिन्धु केश, चामाशीनता, वीर्यवृत्ता, स्थूलदेह, समधिक वलवृत्ता और निद्रावस्थामें स्वप्रयोगसे जलाशय-दर्शन है। फिर श्रेष्ठाप्रकृति विगड़नेसे श्लेष्, वन्ध (बहुता), स्थिरता, गौरव, हृषिकी भांति वल, चमा, हृति और पलोम लक्षित होता है। (सुश्रुत)

सुश्रुतके मतसे श्रेष्ठाप्रकृतिका लक्षण—नीलवर्ण केश, वीमाध्यवृत्ता, मेघ एवं श्चदङ्गकी भांति स्वर, निद्रावस्थामें स्वप्रयोगसे प्रकृष्ट पद्म कुसुदादि विविध पुष्प, सन्तरणशील हंस धकवाकादि जलक्रीडाक पक्षी तथा हरित् मनोहर सरोवरदि जलाशय-दर्शन, रत्नान्तर्गत, सुविभक्तगात्र, समावयव, सिन्धुदेह, सत्व-गुणयुक्त क्लेशसहितता और शुब्दी मान्यकारिता है।

मानवके शरीरमें दो प्रकारका कफ होता है—साम और निराम। साम (भपका)-रस-मिथित रहने-वाले कफका नाम साम है। फिर भपका रस-विहीन कफ निराम कहता है। निराम कफ पविक्त और निर्देय होता है। उससे किषोप्रकार समिट आनिकी सथावना नहीं। किन्तु साम कफ विकृत और दूषित है। वह जानाप्रकार अहित उत्पन्न करता है। इसीसे उसके सकल सद्यप सिद्धे गये हैं—

“आसस्यन्नाददशविपद्विदोषाप्रभवादिषु मूलतानिः।

इह रसनादिषु च विरामानिर्वातानि स्वादिद्रुदाहरणि ॥” (शारंगधर)

पासस्य, तन्द्रा, हृदयकी अविशुद्धता (वक्षःस्थलमें कफकण्टक वाधावधि), दोषकी प्रमृत्ति (खाय न

सिकन्दर कबीरको भूयसे प्रगंसा करने लगे। इसबार सुलतागका मन भी झुक पड़ा था। उन्होंने इन्हें बोला सादर सन्धापयमें कछा—साधु। हमारा दोष क्षमा कीजिये। आप महाजन हैं। आज आपकी महिमा हम समझ सके हैं।

यह दिल्लीखरसे विदाय हो काशीधाम पहुँचे और संसारकी अनित्यता देख पाकदानके लाभकी यत्नवान् हुये। काशीमें भी चारों ओर इनके विपक्ष घूमते थे। एक दिन कोरि दुष्ट कबीरके नामसे काशीवासी समस्त साधुओंको निमन्त्रण दे भाया। घटनाक्रमसे उसी दिन यह स्थानान्तर गये थे, कुटीरमें केवल कुछ शिष्य रहें। निमन्त्रण मिलनेसे काशीके सदस्य सदस्य माधु इनके वासस्थान पर उपनीत हुये। सहस्राधिक श्रितियोंको लुघार्त देख शिष्योंका प्राण सूख गया। सकल ही सोचते थे—इतने लोगोको खिशा पिसा कैसे विदा करेंगे। परन्तु ही भक्तवत्सल भगवान् कबीररूपसे भय भोष्य या सर्वसमस्त देख पड़े और स्वदक्षसे साधुओंको भोजन करा चल दिये। प्रकाश कर नहीं सकते—साधु कितने परिहस्य हुये थे। यह श्रद्धको लौट मुह्रासमारोह देखकर अत्यन्त विस्मयमें आये। किसी शिष्यको पुकार इन्होंने पूछा था—वत्स। यह क्या व्यापार है, किस लिये इतने लोग आये हैं। शिष्य आश्चर्य हो कहने लगा—आप क्या कुछ रहें हैं; आपने जिन सहस्राधिक व्यक्तियोंको खिशाया पिलाया, उन्होंने आकर यह महोत्सव मचाया है।

कबीर समझ गये—यह सकल हरिको खोला है। इन्होंने मनोभाव खिपा शिष्यसे कहा था—वत्स। मैं लुघासे श्रितियय कातर हो गया हूँ, मुझे माधुओंका प्रसाद ला दो।

फिर जो कबीरके नियत अनिएकी चेष्टा करते, वह दुर्जन भी महत्त्वके गुणसे यशोभूत होने लगे। जब वह इनके निकट निज निज दोष स्वीकार कर कितनी ही क्षमा मांगते, तब साधु कबीर सकसको आनिह्वनकर राम नाम पुकारते थे।

काशीवासी मात्र इनके गुणके पक्षपाती बन गये। किसी दिन एक रूपवती वेश्याने कबीरके निकट आ

कहा था—महात्मन्। मैं नृत्यगीतादि नामाप्रकार उपभोग द्वारा आपको सन्तुष्ट करना चाहती हूँ।

रूपसौन्दर्यशालिनी और नृत्यगीतादि-निपुणा नतकीको देख यह सहाय्य बोल उठे,—'मैं सुखभोगे और नृत्यगीत नहीं समझता। फिर मैं छोड़ और प्रद्व दोमें एक भी नहीं। मुझसे आपकी मनस्कामना कैसे पूर्ण होगी।' नर्तकीने पति काकुतिमिनति भावमें इनसे प्रार्थना की—'मैं बड़े आयासे आये हूँ। मुझे क्या इत्ताग हो सौटना पड़ेगा।

इन्होंने धीरे भावसे उत्तर दिया—देखो। मेरे श्रद्धमें स्वयं भक्तवत्सल हरि विराजते हैं। वह पति रागी और महाभोगे हैं। उनके सामने नाच-गा आप अपने भोगपिपासा मिटा सकती हैं।

नर्तकी महा आनन्दित हुयी—भैया ऐसा मीमांस्य, कि मैं स्वयं भगवान्को नृत्यगीत द्वारा रिभावंगी। उसी दिनसे वह वेश्या कबीरके श्रद्धमें रक्ष प्रत्यक्ष भावने गाने लगी। इसी प्रकार कुछ दिन बीते थे। मनहो मन वेश्या कबीरको चाहती थी। एक दिन गमौर रजनीको सब लोग सो गये। किन्तु वेश्याकी पाँख न भपकी। कबीरके सन्धागकी सालसासे उनका चित्त अस्थिर हुआ था। वह किसी प्रकार आपसंयम कर न सकी और कबीरके सोनेकी षण्ण मगके पायेगमें आ पहुँची। उसने गमौर भमारजनीको बर्षा कधोरके बदसे प्योतिर्मय हरिको झूठि देखी थी।

फिर उसकी कामपिपासा न जाने कहां प्रस्ताहित हुयी। चतुसे प्रेमायुकी धारा बहो थी। उससे लिये संसार असार समझ पड़ा। वेश्या उसी भ्रमानियाकी एकाकी श्रद्ध कोड़ निविड़ अरप्यकी और चली गयी।

इन्होंने प्रत्येक उठ वेश्याको घरमें न देया। उसके चलद्वार बख्तादि सकल पड़े थे। कबीरने भावना सागयी—इतने दिनमें सभभवतः वेश्याने सद्गति पायी है। इन्होंने शिष्योंको दोहाकर कहा—भिर पत्तनेका समय आ पहुँचा है। वत्स। तुम काशीवासियोंको संवाद दो—अधिकार्येकाघाट पर सब लोग कबीरसे आकर मिलो।

होना), सूत्रकी प्राविलता (मैलापन), उदरमें भारबोध, भ्रूचि और निद्रानुता—साम कफका लक्षण है।

प्रथम ही प्रकृति पत्यय निर्देशक व्युत्पत्ति द्वारा प्रतिपन्न स्थि—कफ सर्वशरीरमें चलता-फिरता है। फिर यह भी कफा जा चुका—भ्रविकृत चवस्थापर हृदय, कण्ठ, शामाग्रय मस्तक एवं सन्धिस्थानमें रहता और विकृत होनेपर कफ सस्थान छोड़ शरीरके सर्व-स्थानमें पहुँच नानाप्रकार रोग उत्पादन करता है। किन्तु यह सर्वत्र देहमें प्रसरणशील रहते भी वायुके साहाय्य व्यतीत हृदयादि स्थानासे अन्यत्र कैसे जा सकता है। यथा—

“चित्तं पद्मं कफः पद्मः पद्मो मलयामवतः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र यत्रंति मेषवत् ॥” (शाङ्खर)

पित्त, कफ, विष्टामूत्रादि मल और रस रक्तादि धातु समस्त पङ्गुवत् भ्रवन्त हैं। यह स्वयं शरीरमें कदाच चलाफिर नहीं सकते। फिर वायुकण्टक जिघ्र स्थानमें पहुँचाये जाते, वहाँ उक्त धातु मेष वर्षणकी भांति पपनी क्रिया देखाते हैं। अर्थात् कफ बिगडने, उभरने या बढने पर वायुद्वारा शरीरके नाना स्थानोंमें पहुँच नानाप्रकार व्याधि उत्पादन करता है। जैसे— वक्षःस्थ फुफ्फुसमें श्वास तथा कासरोग, मस्तकमें शिरःपीडा और नासिकामें वा कफ प्रतिश्याय रोग लगा देता है।

पथ—वसन, उपवास, नेत्राञ्जन, मैथुन, शरीर-मार्जन, उष्ण जलादिके स्नेह, चिन्ता, जागरण, परिश्रम, अत्यधिक पथपर्यटन, उष्णके वेगधारण, गण्डूषधारण, प्रतिसारण (दन्त, जिह्वा एवं मुखमें घर्षण द्रव्यके प्रयोग), शिरोविरचक नस्य, हस्तो पञ्चादि यानारोहण, धूमपान, शरीराच्छादन, युद्ध, मनोदुःख उत्पादन, रुचद्रव्य, उष्णद्रव्य, पुरातन तथा पटिक घान्य, शिम्बिक, लणधान्य, चणक, सुन्न, कुलस्य, माप, यष, चार, सर्पपतं स, उष्णजल, धन्वदेशल मांस, राजसर्पपं, वेताम्र, पटोल, कारवेला, वार्ताकी, उदुम्बर, कर्कोटक, मोचा, रसुम, गिम्ब, भाम मूलक, कटुकी, अरुहर, मधु, ताम्बूल, पुरातन मद्य, विकटु, त्रिफला,

गोसूय, लाई, कण्टकखुलकाताच, ईषदुष्ण गृह, कांस्य, लोह, मुक्ता, कर्पूररसयुक्त तिलशर एवं कपाय द्रव्य और अधोगमनके पाचरण, पान वा पाहारादिसे कफ नष्ट होता है।

अपथ—स्नेहप्रयोग, तैलाभ्यङ्ग, उपवेशन, दिवा-निद्रा, स्नान, नतन जल, नूतन तण्डुल, मटर, मत्स्य, मांस, गुड़ादि मिष्टद्रव्य, छिनें या मावे, दधि प्रभृति दुग्धविकृत द्रव्य, कम्मरख, पोय, कटफल, धान, खजूर, दुग्ध, अतुलेपन, नारिकेल, मिष्टान्न, मधुरद्रव्य, अमृतद्रव्य, शुरुद्रव्य और हिम—सकलका पाचरण, पाहारा वा विष्टारादि कफके लिये अपथ ठहरता अर्थात् कफ भ्रमिष्ट उत्पन्न करता, उभरता तथा बढता है।

कफ (सं० पु० = Guff) १ पिप्लसाक्षल, पाम्पनीकी चुसटदार सज्जाफ। यह एक दोहरी पट्टी रहती, जा कुतरते या कामोजकी बाँझमें हाथके पास लगती है। इसमें कोई दो, कोई तीन और कोई चार बटन तक टंकाता है। चूड़ोदार कुतरतेमें इसकी प्रायः रखते हैं। कामोजमें कफ लहर रहता है। २ मुष्टि प्रहार, धौल, थप्पड़, तमाचा। ३ यन्त्रविषय, एक भोजार, नाल। यह लोहका होता है। इसकी मार-मार चमकसे धाग निकाली जाती है।

कफ (फा० पु०) फेन, भ्राम।
कफकर (सं० त्रि०) कफं करोति, कफ-क-अच्।
१ कफप्रविकारक, बलगम बढ़ानेवाला। २ श्लेष्मा उत्पादन करनेवाला, जो लुकाम खाता हो। महर्षि अश्रुतके मतसे काकीसी, चीरकाकोसी, जीवक, ऋषभक, सुद्रपर्णी, मापपर्णी, मेदा, महामेदा, क्षिन्वह्वा, कर्कटशृङ्गी, तुङ्गाचीरी, पद्मक, प्रयोण्डीरक, वृष्टि, वृष्टि, वृष्टिका, जीवन्ती और मधुक—काकीव्यादि-गण्योक्त सकल द्रव्य कफकर हैं।

अथवा द्रव्य कफ गन्धमें देखी।

कफकृषिका (सं० त्रि०) कफं कृषति विकृतं करोति, कफ-कृषि-खुल्-टाप् अत इत्वम् च। साना, सार।
कफकेतु (सं० पु०) कफरोगाधिकारका पीषध, बलगमकी एक दवा। टण्डुण्य, मागधी, गृह एवं

श्रियोनि चारो और गुरुकी आज्ञा घोषणा की थी। दल दल लोग भा-भा पुण्यसन्तिकाके तटपर समवेत हुये। सकल ही कबीरकी बात सुननेकी उत्कण्ठित थे। यह अपने प्रियजनोंकी उपस्थित देख मिष्ट भावसे कहने लगे—मैं परपार जावूंगा। मेरे इह-जौवनकी लीला समाप्त हो गयी है। भायियो! मैं प्रत्यक्ष ज्ञेच्छके घरमें जन्म ले कर्मसूत्रमें वैश्याव बना हूँ। इस मिथ्या प्रपवित्र देहको रखनेसे क्या फल मिलेगा। मगरराज्यमें मेरा भोज होगा।

कबीरकी बात सुन सकल ही हाहाकार करने लगे। इन्होंने मधुर भाषामें देहकी अनित्यता देखा सर्वसाधारणकी सांगत्वना दी।

पनन्तर यह सकलकी साथ ले मथिकणिकाके परपार पड़ुंचे थे। वहाँ जाकर इनका निद्राकर्षण लगा। कबीर भूमिमें खेद गये। श्रियोनि इनके शरीर पर यज्ञाच्छादन किया था। फिर दो घण्टे बीतते भी यह न उठे। इससे सकलका मन अस्थिर हुआ था। श्रियोनि भी कोई साहस कर इनके अङ्गका आवरण खोल न सका। दो घण्टे अयेसा कर सयके मनमें विजातीय भाव उदय हुआ था। समीने वारम्बार इन्हें लागानेकी कष्टा। फिर भगवत्या श्रियोनि गुरुका आवरणचञ्चल खींच लिया। किन्तु यज्ञके मध्य कबीरका दर्शन मिला न था। सबने यज्ञ और श्रासन पड़ा पाया। इसी प्रकार भक्त कबीरने परमपद लाभ किया। (भक्तिभाष्या)

* भक्तिभाष्याका ली प्रसन्न मिला, उसमें 'मगर'के स्थानमें 'मगध' उद्धृत किया है। किन्तु 'मगर' ही मुक्तिसूत्रमें समझा जाता है। इसीसे यह पाठ यथ्य प्रिया गया।
सुना जाता—मल्लु कीर्तिये कबीरके शवदेहपर हिन्दुओं और मुसलमानोंमें विवाद उठा था। उसी समय कबीर स्वयं भा यज्ञ बात कह कर अन्तर्हित हुये—मेरे शवदेहका आवरण खोलकर देखिये। आवरण खोलनेपर सबके अभावमें सबको कुछ फूस देख पड़े। काशीके राजा दीर्घिइने वही फाँचे फूस ला लधाये थे। फिर फूसीका मध्य काशीके 'कबीर-पीरा' नामक स्थानमें समाहित किया गया। उपर पठानराज विश्वोद्याय पाषे फूस गोरपट्टके निकट मगर नामक ग्राममें ही अन्तर्गत गवाये थे। चक्रुंने वहाँ एक सुन्दर समाधिस्थल भी बनवा दिया। चक्रुं 'कबीरपीरा' और 'मगरका समाधिस्थल' कबीर-चक्रुंकी का प्रधान तीर्थ स्थान माना जाता है।

वस्तुतः कौन न मानेगा—कबीर एक मङ्गल व्यक्ति रहे। यह कबीरके जाति-क्यों न हों, इनके निकट हिन्दू-मुसलमान, सकल ही समान थे। यह प्रकृतोभयसे शास्त्र और कुरानका प्रतिवाद कर गये हैं। कबीर कहते—'हिन्दुओंके राम और मुसलमानोंके रहीम अतन्त्र नहीं, अनुसन्धान करनेसे हृदयमें मिलेंगे। यह विश्व जिनका संसार और अलौकिक राम जिनके सन्तान उठरते, उन्हींको हम पीर समझते हैं।' कबीर जप पूजादि मानते न थे। इसकी स्वस्वन्तमें यह कष्टा करते—

"मनका करत युग गयी गयी न मनका करे।
करावा मनका बीड़ कर मनका मनका करे ॥"

जपके मालाकी गुरिया सरकाते-सरकाते युग बीत गया, किन्तु मनका इन्हें न मिटा। इसीसे कहते—हाथकी गुरिया छोड़ मनकी गुरिया सरकाया कौजिये।

यह जातिभेद भी मानते न थे।* इनके वचनमें मिलता है—

"सबसे इच्छिये सबसे मिलिये सबका लिये नाम ।,
'हंजी हांजी सबसे मिलिये यद्यपि रूपये नाम ॥"

सबके साथी बनो, सबसे मिलो और सबका नाम ग्रहण करो। फिर सबसे 'हंजी हांजी' भी कहो, किन्तु अपने ही स्थानपर रहो।

कबीर संसारकाण्डको देख दुःखसे कहते थे—

"बाह्यन टाण्डन मूरख भये गूढ पठे गीता ॥
उत्त उगार बंद अन्धा खाये दुःख पाये पथीता ॥
संधिकी भारे लडा ठा अग्न्य पिताय ॥
गोरु गलियनमें फिर बैठे सुरा निहाय ॥
सतीकी भा भीती मिले यहाँ पहरें छाता ॥
कहे कबीरा देखी भारे दुनियाकेर तमाहा ॥"

जातिकुलकी भांति इनके ममयपर भी कबीरपत्नी गड़बड़ डाला करती हैं। उनके कथनानुसार कबीरने संवत् १२०५ को टकसार-शास्त्र प्रवाश किया और

* जाति पति कुल कापरा यह भीमा दिन पारि।
कहे कबीर सुनइ रामाभंद येरु रहे भइमारि ॥
जाति हमारी भागिया कुल करता छर माहि।
छटुं न हमारे सल ही मूरख समझत माहि ॥

वक्षनाभ बराबर बराबर से आट्टकके खरसमें नीम भावना देनेसे यह रस बनता है। मात्रा गुच्छामात्र है। (मेघशरदावनी)

कफक्षय (सं० पु०) कफनाशक, क्षय, क्षय। शरीरस्थ स्वाभाविक कफका नाश, जिम्मेके कुदरती बलगमका विगाह।

कफगण्ड (सं० पु०) गलरोग, गलेको एक बीमारी। यह स्थिर, सर्वथे, गुण, चक्रकण्डू, शीत, महान्कफायक, पाक्ष्ययुक्त और चिरहृदिपाक होता है। फिर इस रोगके प्रभावसे रोगीका मुख वैरस्य पकड़ता और तालु तथा गल सूखने लगता है। (भाष्यनिदान)

कफगौर (फा० पु०) कम्बा, करछी, छीरे। इसका अग्रभाग करतलकी भांति चपटा रहता और दण्ड शब्दा लगता है। कफगौरसे दास, भात, खिचड़ी, घी घग्ग्इका मेल उत्तारते और पूरी-कवैरी भी निकालते हैं। हिन्दुस्थानमें इसे प्रायः बलह्वन कहते हैं।

कफगुरुम (सं० पु०) श्लेष्मज गुल्म, बलगमके विगाहसे पेटमें पड़नेवाली गिन्टो या गांठ। इसका रूप—श्लेमिल्य, शीतस्वर, गात्रसाद, ह्रस्वाद्य, कास, पर्यधि, गौरव, शैत्य और कठिनोन्नतत्व है। (चक)

कफघ्न (सं० वि०) कफं तद्विकारश्च हन्ति, कफ-घ्नन्-टक्। श्लेष्मनाशक या कफजनित पीड़ानाशक, बलगम या बलगमको बीमारी दूर करनेवाला। सुश्रुतीक आरग्वधादि, वरुणादि, सानसारादि, श्लोधादि, प्रकीदि, सुरसादि, पिप्पल्यादि, एसादि, तुलसीदि, पटोनादि, ज्यपकादि तथा सुस्तादि गण्योक्त और त्रिकटु, विफला, पक्ष्मूल एवं दग्मूल प्रशस्ति सकल द्रव्य कफनाशक हैं।

यस्याप्युक्तं द्रव्यं कफघ्नमेति शब्दो।

कफघ्नो (सं० स्त्री०) कफघ्न-होपि। १ शुकनासा, केवाच। २ हनुमानेध, एक पीड़।

कफज (सं० वि०) कफाश्चायते, कफ-जन-ज। श्लेष्मासे उत्पन्न, बलगमसे पैदा।

कफज्वर (सं० पु०) कफनिमित्तो ज्वरः, मध्यपदलो०। श्लेष्मजन्य ज्वर, बलगमसे उत्पन्न। शब्द-दो०।

कफणि (सं० पु०-स्त्री०) केन सुखेन कफति भना-शयेन मद्गोच-विकोचमत्वं प्राप्नोति, क-फण्-इन्; केन भनायासेन स्वरति, क-स्वर-इन् प्रयोदरादित्वात् साधुः। कफणि, मिरफक, बौहनी, बांइके बीचकी गांठ।

कफणी (सं० स्त्री०) कफणि शब्दो।

कफद (सं० वि०) कफं ददाति, कफ-दा-ड। श्लेष्म-कारक, बलगम पैदा करनेवाला।

कफन (सं० पु०) शवाच्छादनवस्तु, मुर्देपर छासा जानेवाला कपड़ा।

कफनखण्ड (हिं० वि०) १ शवके पाच्छादनका वस्त्र नोच लेनेवाला, जो मुर्देपर छासा जानेवाला कपड़ा फाड़ लेता हो। पहले डोम श्रमयानमें मुर्देका कपड़ा उतार पापसमें फाड़ लेते थे। २ छपप, शच्छु म। ३ दरिद्रका घन हरण करनेवाला, जो गरीबका मास चड़ा लेता हो।

कफनखण्डो (हिं० स्त्री०) १ शवाच्छादनवस्त्रकी धोरफाड़, मुर्देपर डाले जानेवाले कपड़ेकी नोच-खण्ड। यह डोमोंका कर है। २ हस्तिविशेष, रूपया कमानको एक चास। अयोध्य रीतिसे दरिद्रका घन-हरण करना कफनखण्डो कहता है। ३ छपप, शच्छु म।

कफनधोर (हिं० पु०) १ प्रथम तस्कर, बड़ा धोर। जो गड़े मुर्देको उखाड़ कफन धुराता, वही कफनधोर कहता है। २ रुष्ट, बटमाय, उबका। कुद्र द्रव्य चोराने और किसीको देखमें न जानेवालेका नाम कफनधोर है।

कफनाडी (सं० स्त्री०) दन्तमूलगत रोगविशेष, दांतोंको लड़में होनेवाली एक बीमारी।

कफनाना (हिं० वि०) शवको वक्षसे पाच्छादन करना, मुर्देको कपड़ा ढोढ़ाना।

कफनाशन (सं० वि०) कफं नाशयति, कफ-नाश-यिच्-श्ट्। कफको नाश करनेवाला, जो बलगम मिटाता हो।

कफनी (हिं० स्त्री०) १ शवके कफमें पड़नेवाला वस्त्र, जो कपड़ा मुर्देके गठमें छासा जाता हो।

संवत् १२०५ को मगर नगरमें इहलोक छोड़ दिया। ऐसा होनेसे प्रायः ३ शतवर्ष इनका परमायुष्य था। यह क्या सम्भव है! किन्तु भक्तिमाहात्म्य और कई सुसज्जमानी इतिहासके धन्य पढ़नेसे हम समझते—कबीर सिकन्दर कोदीके समसामयिक रहे। १५४४ संवत् सिकन्दरने राज्य पाया था। अतएव सम्भवपर मानते उस समय कबीर विद्यमान रहे।

सिद्धोक्ति धर्मशुरू नानकने कबीरका मत अपने धर्ममें उद्धृत किया है। एतद्विन्न सत्नामियों, साधवों, श्रीनारायणियों और शून्यवादीयोंके पुस्तकमें भी इनका मत मिलता है। इससे समझ पड़ा—उक्त सम्प्रदायप्रवर्तकोंने इनका मत ले साथ साथ अपना धर्म प्रचार किया है। अन्त्याम विवरण कबीरपत्नी ग्रन्थमें देखो, कबीर-उद्-दीन—ताज-उद्-दीन इरकौके पुत्र। दिन्नी-वाले बादशाह अना-उद्-दीनके समय यह जीवित रहे। इन्होंने उनके अभिभवपर एक पुस्तक लिखा था।

कबीरपत्नी—सम्प्रदाय विशेष। इन्होंने महात्मा कबीरका प्रवर्तित धर्ममत अवलम्बन किया है।

कबीरपत्नी सक्का देवताओंकी अपेक्षा विष्णुके प्रति अधिक भक्ति देखाते हैं। रामानन्दों प्रवृत्ति वैष्णव सम्प्रदायके साथ यह सद्भाव रखते और भाषार-व्यवहारमें भी मिलते-जुलते हैं। इसीसे कितने ही लोग इन्हें वैष्णव कहते हैं। कबीरपत्नी अपरापर वैष्णवोंकी भांति तिलक लगाते, नासिका-पर चन्दन वा गोपीचन्दनकी रेखा बनाते, कण्ठमें तुलसीमाता कटकाते और हाथमें भी लपकी मासा लुझाते हैं। किन्तु यह इस तिलकसुद्राकी हया पाहृम्बरमात्र समझते हैं। वास्तविक इनकी विवेचनार्थ शास्त्रोक्त देवदेवीका पूजन अथवा क्रिया-कलापका अनुष्ठान प्रयोजनीय नहीं ठहरता।

कबीरपत्नीयोंने प्रधानतः दो दक्ष होते हैं—गृहस्थ और सप्पाधी। गृहस्थ सब क्षत्रातिगत और पर्यगत भाषार व्यवहार अवलम्बन करते हैं। फिर कोई निज धर्मको छोड़ हिन्दुत्वके उपास्य देवताओंको भी पूजता है। संसारत्यागी सप्पाधी एकमन नयनके अगोचर केवल कबीरदेवका ही भजन करते हैं। उन्हें

गुरुके निकट मन्त्र लेना नहीं पड़ता। वह केवल विद्वक्त हो प्राणभर धर्मगान करनेकी ही उपासना समझते और अपनी इच्छाके अनुसार वेगभूया रखते हैं। फिर कोई नमनप्राय हो कर भी पय पय धूमते फिरता है। सत्रासियोंके मङ्गल मस्तक पर टोपी लगाते हैं। उक्त दोनों दक्ष प्रायः १२ यात्रामें विभक्त हैं। इन १२ यात्राप्रवर्तकोंके नाम नीचे लिखते हैं,—

(१) श्रुत गोपालदास—सुखनिधानके प्रपिता रहे। इनके शिष्य परम्परासे हारकाके चपाड़े, वाराणसीके कबीर-चौदे, मगरके समाधि और जगन्नाथके अछाड़े पर कर्तृत्व रखते हैं।

(२) भगोदास—योजकके रचयिता थे। इनके अनुगामी शिष्य-प्रशिष्य धनोती नामक स्थानमें रहते हैं।

(३) नारायण दास और (४) चूड़ामणि दास—धर्मदास नामक वणिकके पुत्र तथा गृहस्थ रहे। इसीसे सब लोग इन्हें 'बंशशुरू'की भांति सम्बोधन करते थे। आजकल चूड़ामणिका वंश समाज-भ्रष्ट और नारायणका वंश भष्ट हो गया है।

(५) जीवनदास—धर्मनामो सम्प्रदायके प्रवर्तक थे। अनुगामी देखो।

(६) जगूदासकी गद्दी कटकमें है।

(७) कमलको लोग कबीरका पुत्र बताते हैं। किन्तु इस पक्षपर कोई विमोच प्रमाण नहीं मिलता। यह स्वयंमें रहते थे। इनके मतावलम्बी योगाभ्यासी होते हैं।

(८) टकसाधी—वरदायाधी थे।

(९) ज्ञानी—सहस्ररामके निकट मझनी ग्राममें रहते थे।

(१०) साहबदास—कटकनिवासी और मूलपत्नी नामक सम्प्रदायके प्रवर्तक थे। मूलपत्नी देखो।

(११) नित्यानन्द और (१२) कमलानन्द—दास-पात्यवासी थे।

सिवा इनके दान-कबीरी, मंगरन-कबीरी, ईश-कबीरी प्रवृत्ति दूसरी यात्रा भी विद्यमान हैं।

२ परिच्छेदविशेष, पहननेका एक कपड़ा। इसे साधु धारण करते हैं। कफनी सिलाई नहीं जाता। इसमें गिर निकालनेकी एक छिद्र-रचना है। इसका दूसरा नाम चोलना है।

कफप्रकृति (सं० स्त्री०) स्थिरचित्तता सिन्धुकेशत्व आदि, दिल्ली ठहराव और बालोंका चिकनापन यमै रह।

कफप्राय (सं० स्त्री०) कफः प्रायः मादुष्येन यत्न, बहुश्री०।

कफबहुल, जो बहुत बलगुम रखता हो।

कफमन्दिर (सं० पुं०-स्त्री०) मण्डभेद, माड़, भाग।

कफबहुदा (सं० स्त्री०) नागरमुस्ता, नागरमोथा।

कफरोग (सं० पुं०) कफजन्य रोगमात्र, बलगुमसे पैदा होनेवाली कोई बीमारी।

कफरोहिणी (सं० स्त्री०) कफजन्य मलरोगविशेष,

बलगुमसे गलेमें होनेवाली एक बीमारी। यत्रोहिणी देवी।

यह स्नातनरोधन, मन्दपाक, स्थिराङ्कुर और कफ-सम्भव होती है। (भाष्यनिदान)

कफल (सं० स्त्री०) कफः साध्यत्वेन असत्यस्य, कफ-लम्बु। कफविशेष, बलगुमी।

कफवर्धक (सं० स्त्री०) कफं वर्धयति, कफ-वृध-पिच्-त्सुल्। श्लेष्माकी वृद्धि करनेवाला, जो बलगुम बढ़ाता हो।

कफवर्धन (सं० पुं०) कफं कफजनितं विकारं वा वर्धयति, कफ-वृध-पिच्-त्सु। १ पिण्डीतगर वृध, किसी किष्मके तगरका पेड़। (स्त्री०) २ कफवर्धक, बलगुम बढ़ानेवाला।

कफविरोधि (सं० स्त्री०) कफं विशेषेण रुषधि, कफ-वि-रुध-पिनि। १ मरिच, मिर्च। (स्त्री०) २ श्लेष्म-रोधक, बलगुम रोकनेवाला।

कफविरोधी (सं० स्त्री०) श्लेष्मरोधक, बलगुम रोकनेवाला।

कफस (पुं० पुं०) १ पिच्छर, पिंजरा। २ बन्दोदृष्ट, कैदखाना। ३ कटहरा। ४ सङ्कुचित स्थान, तट्ट लंगड़ा। जिसमें वायु और प्रकाश नहीं रहता, उस स्थानका नाम कफस पड़ता है।

कफसंशमनवर्ग (सं० पुं०) कफशान्तिकर द्रव्यगण, बलगुम ठहरा करानेवाली चीजोंका जूखीरा। कफ देवी।

कफसंभव (सं० स्त्री०) कफात् सम्भवः उत्पत्तियस्य ५-तत्। कफजात, बलगुमसे निकलनेवाला।

कफस्थान (सं० स्त्री०) कफाशय, बलगुमका सुकाम आमाशय, वक्षःस्थल, कण्ठ, गिर और सन्धिको कफ स्थान कहते हैं।

कफसाव (सं० पुं०) नेत्रसन्धिगत रोगविशेष, आंखमें जोड़में पैदा होनेवाली एक बीमारी। इसमें नेत्रक सन्धि पकता और उससे खेत, सान्द्र एवं पिच्छिन पूय पड़ता है। (भाष्यनिदान)

कफहर (सं० स्त्री०) कफं हरति नाशयति, कफ-ह-अच्। कफनाशक, बलगुम दूर करनेवाला।

कफहृत् (सं० स्त्री०) कफं हरति, कफ-हृ-क्लिप् प्रलेपनाशक, बलगुम दूर करनेवाला।

कफातिसार (सं० पुं०) कफजन्य अतिसार, बलगुमी दस्त। इसमें प्रथम लहनु और पाचन हितकर है।

फिर आमातिसारप्र दीपनगण प्रयोग करना चाहिये।

कफातिसारमें मसुथ शक, सान्द्र, सकफ, श्लेष्मशुक्ल, पूतिगन्ध, शीत और हृष्टरोमा हो जाता है। (भाष्यनिदान)

कफात्मक (सं० स्त्री०) कफ पाया यस्य, कफात्मन्-कन्। १ कफमय, बलगुमी। २ कफरूपी, बलगुमकी सूरत रखनेवाला।

कफान्तक (सं० पुं०) कफस्य अन्तको नाशकः। वर्धूरक वृध, बलुलका पेड़।

कफाबन्द (हिं० पुं०) कण्ठकी पछाद्भागको फांस कर किया जानेवाला एक पेंस। कुशीमें जब एक पहलवान गोचे आ जाता, तब ऊपरवाला दाहनी और बैठ अपना वान हस्त उसकी कटिमें घुसेड़ दक्षिण हस्त तथा पादसे उसका कण्ठ दबाता और यामहस्तसे लंगोट पकड़ उसे उलटाता है। इसीका नाम कफा-बन्द है। फारसीमें 'कफा' कण्ठकी पछाद्भागको कहते हैं।

कफारि (सं० पुं०) कफस्य परिः शत्रुः, ६-तत्। १ आर्द्रक, अदरक। २ शण्डो, सोंठ।

कफालत (पुं० पुं०) बन्धकता, जमानत। प्रतिभू-पत्रको कफालतनामा कहते हैं।

कफाशय (सं० पुं०) कफस्थान, बलगुमका सुकाम।

यह पूर्वाज्ञ स्थानोंमें धारापत्नीके 'कबीरचौरा'की ही सर्वप्रधान तीर्थ समझते हैं।

कबीरपन्थियोंका प्रकृत धर्ममत सहजमें मालूम नहीं पड़ता। किन्तु सम्प्रदायका ग्रन्थ पढ़नेसे अनेक अंशमें माना गया—हिन्दूधर्मसे ही यह मत निकला है। कबीरपन्थी एकमात्र अपने मतकी छोड़ अपरापर सकल धर्म दृषित बताते हैं। इनके मतमें कबीरप्रवर्तित धर्मस्थितौत दूसरे सकल सम्प्रदाय अमपूर्ण हैं।

कबीरपन्थी एक ईश्वरकी मानते हैं। वह साकार और सगुण है। उसके पाश्चात्तिक शरीर और त्रिगुण-विशिष्ट अस्त-कारण विद्यमान है। वह सर्व-शक्तिमान् एवं सर्वदोष-विवर्जित रहता और स्वेच्छानुसार सर्वप्रकार आकार बना सकता, किन्तु अपरापर सकल विषयमें मनुष्यसे पार्यथ्य नहीं पड़ता। यह अपने सम्प्रदायके साधुओंकी ईश्वरानुरूप बताते, जो परलोकमें उसके समान रह एकत्र परम सुख पाते हैं। ईश्वर आद्यन्तहीन और नित्यस्वरूप है। लोकमें वृक्षके शाखापत्रकी भांति सकल वस्तु व्यक्त होनेसे पूर्व ईश्वरके शरीरमें अव्यक्तभावसे अस्तनिविष्ट रहते हैं।

फिर इनके कथनानुसार परमपुरुष परमेश्वरने प्रसयास्त्रकी ७२ युग पर्यन्त एकाकी रह विश्व-दृष्टिकी इच्छा की थी। अवश्यको उसकी इच्छाने एक स्त्रीमूर्ति बनायी। उसे स्त्रीका नाम माया है। माया आद्याशक्ति वा प्रकृति कहाती है। परमेश्वरने मायाके साथ सन्धोग किया था। उससे ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी उत्पत्ति हुयी। फिर परमपुरुष ह्विप गये। क्रमशः माया अपने पुत्रोंके निकट पहुँचने लगी। उन्होंने उसका परिचय पूछा था। मायाने उत्तरमें कहा—'मैं गिराकार, जगोचर और आदिपुरुषकी सहचारिणी हूँ। इस समय तुम्हारी सहचर्याके लिये आयी हूँ।' किन्तु ब्रह्मा, विष्णु और शिवने सहसा उसकी बात मानी न थी। विशेषतः विष्णु ऐसे घैसे व्यक्त न रहे, मायासे कठिन प्रत्युत्तर देने लगे। फिर अत्यन्त क्रुद्ध हो माया अपने पुत्रोंको हरानेके लिये दुर्गामूर्तिमें आविर्भूत हुयी। उस महाप्रवहरी मूर्तिकी देह

ब्रह्मा, विष्णु एवं मरुत्तर बहुत बरे और आत्मविभूत हो मायाकी मनोवाञ्छा पूर्ण करते गये। इससे तीम कन्या हुयीं—सरस्वती, लक्ष्मी और उमा। माया ब्रह्मादिके साथ तीनों कन्याओंका विवाह कर ज्ञानासुखी प्रदेशमें रहने लगी। उसने उक्त कर्तव्य पर विश्व बनाने और मानाविध अमात्यक ज्ञान एवं अमूलक क्रियाकाण्ड चलानेका भार उठाया था। ब्रह्मादि सकल मायाके अधीन हैं। इसीसे उनका पूजनादि करनेकी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल कबीरके स्वरूपज्ञानको लाभ करना ही सर्वधर्मका मूल अभिप्राय है। फिर भी सकल देवता और उपासक उस दुर्लभ ज्ञानको पा नहीं सकते।

सकल जीवोंका आत्मा समान है। यह पापसुक्त होनेसे मगमाना रूप परिग्रह कर सकता है। जीवात्मा जबतक पापसे नहीं कूटता, तबतक नाना योनि घूमता है। उल्कापात होनेसे वह किसी ग्रहके शरीरमें प्रवेश करता है। स्वर्ग और नरक—उभय मायाके कार्य हैं। वास्तविक स्वर्ग और नरक कहीं नहीं होता। प्रथिवीका सुख ही स्वर्ग और प्रथिवीका दुःख ही नरक है।

कबीरपन्थी संसारके त्यागकी ही सत् परामर्श बताते हैं। कारण—संसारमें रहते प्राणा, भय, लोभ प्रवृत्ति द्वारा चित्तको गृह्णित नहीं होता। सुतरां शान्तिके लाभमें भी नाना विघ्न पड़ते हैं। शुरुकी भक्ति ही प्रधान धर्म है। दोष करने पर शुरु शिष्यकी भक्ति ना कर सकता, किन्तु दण्ड देनेका अधिकार नहीं रखता। कबीरदेवी।

युद्धप्रदेश और मध्यभारतमें अनेक कबीरपन्थी रहते हैं। इनमें कोई विषयी और कोई धर्मवतानसम्बन्धी है। यह अत्यन्त सत्यप्रिय, उपद्रवशून्य और सुशील होते हैं। इनके उदासोचन अपरापर सत्यासिद्धोंकी भांति न तो दुर्लभभाव रहते और न भिक्षा मांगते ही फिरते हैं।

काशीधाममें कबीरचौरा नामक जगत्पर अनेक कबीरपन्थी पड़च पास करते हैं। पूर्व काशीराज ब्रह्मवन्दसिंहने इनके आचारादिकी वृत्ति बांध दी थी।

उनके पुत्र चेतसि'इने इगको स'ख्या निरूपण करनेको काशीके निकट एक भेला समाय। उसमें प्रायः ३५०० कबीरपत्नी सजासी पढ़'चे थे।

कबीर-बड़ (हिं० पु०) विशाल बट्टबूच, बरगदका बड़ा पेड़। यह भडो'बके निकट अमंदा किनारे अवस्थित है। इसका पंरीणाष्ट चतुर्दश सहस्र रुस-परिमित आता है। कबीरबड़की क्षायामें सप्त सहस्र व्यक्ति विद्याम कर सकते हैं।

कबीरा (अ० स्त्री०) पत्नी, जोड़ू।

कबीरा (हिं० पु०) लघुविशेष, एक पेड़। यह बङ्गालके सि'हभूम, उड़ीसेके पुरी, युक्तप्रदेशके गढ़वाल तथा कुमायूँ' और पञ्जाबके कांगड़े जिलेमें उत्पन्न होता है। मध्यप्रदेश, दक्षिणाल्य, काश्मीर तथा नेपालकी तराईमें भी इसका अभाव नहीं। कबीरा एक सुदृढ वृक्ष है। पत्र पसरुदसे मिलते हैं। फलोंका सुच्छ बनता, जो रक्तवर्ण धूलिसे आच्छादित रहता है। इस धूलिसे रेशमकी रंगते हैं। पहले एक सेर रेशमकी आधेसे सोडा डाल जलमें उबालते हैं। मुलायम पड़नेसे रेशम निकाल लेते हैं। फिर १ पाव कबीरा (रक्तवर्ण धूलि), आधेअटांक तिलतेल, १ पाव फिटकरी और छोटा छोड़ बही जल पावघण्टे उबाला जाता है। पीछे रेशम डाल कोई १५ मिनट और उबालना पड़ता है। इससे रेशम नारङ्गीके रंगकी हो जाती है। कबीरासे मरहम भी बनता, जो जोड़े-फुन्डोपर चढ़ता है। कबीरा लघु, रिक और विधात रहता है। इसकी अधिकसे अधिक मात्रा ६ रती है। कटुस्वभाव, शूलना देवी।

कबुलाना (हिं० स्त्री०) स्त्रीकार या कबूच कराना, सु'हसे बहाना।

कबुलि (अ० स्त्री०) जन्तुके देहका पयात् भाग, जानवरके जिम्माका पिछला हिस्सा।

कबूतर (फ्रा० पु०) कपोत, परेवा। कबूत देवी। कबूतरका भाड़ (हिं० पु०) एक पितपापड़ा। यह वृक्ष दक्षिण-पश्चिम भारत और सिं'हलमें उत्पन्न होता है। फिर दक्षिण कोङ्ग, मलय और अष्ट्रेलियामें भी इसका अभाव नहीं। बन्दे प्राक्तमें कहीं कहीं

इसे लोग आहारमें व्यवहार करते हैं। यह वृक्ष सुखा कर पितपापड़ेकी भांति षोषधमें डाला जाता है। किन्तु इसका आस्वाद उससे कुछ कटु और पयिय भगता है।

कबूतरका फूल (हिं० पु०) पुष्पविशेष, एक फूल। कबूतरकी कड़ (हिं० स्त्री०) मूलविशेष, एक लड़ी। कबूतरवाज (फ्रा० पु०) कपोतपालक, कबूतर पालने या उड़ानेवाला।

कबूतरवाणी (फ्रा० स्त्री०) कपोतपालका कार्य, कबूतर पालने या उड़ानेका काम।

कबूतरी (फ्रा० स्त्री०) १ कपोतिका, मादा कबूतर। २ घेड़न, गांवकी नाचनेगानेवाली रखी।

कबूद (फ्रा० वि०) १ मौल, श्याम, पासमानो, मोला। (पु०) २ मोला बंगलोचन, मौलकण्ठी।

कबूदी (फ्रा० वि०) लघु, श्याम, पासमानो, मोला। कबूल (अ० पु०) १ स्त्रीकार, मञ्जूर। २ सम्पत्ति, रजा, एकमत। ३ पशुफल ग्रहण, सुवाफिक पड़'च। ४ प्रतिपत्ति, इकरार। ५ ताजक श्योतिषोक्त योग-विशेष।

कबूलना (हिं० स्त्री०) स्त्रीकार कराना, कड़ देना, मानना।

कबूलचरत (अ० वि०) सुन्दर, खूबसूरत। कबूलियत (अ० स्त्री०) १ प्रतिपत्ति, मञ्जूरी, सकार। २ पट्टीसिकाकी प्रतिमूर्ति, पट्टीकी मकस।

कबूली (फ्रा० स्त्री०) तण्डुल एवं चणक-वैदलका पक सम्प्रिद्यय, चावल और धनेकी दालसे बना हुयो खिचड़ी।

कृष्ण (अ० पु०) १ मसावरोध, कृष्णियत, कड़, दस्त साफ न पानेकी हालत। २ अधिकार, दण्ड। ३ नियमविशेष, एक प्रायदा। यह मुसलमान् बाद-शाहोंके समय बसता रहा। इसके अधिकार पर खेनाली अपना वेतन-जमीन्दारसे लेता और सिया हुवा धन भूमिके करमें सुजरे देता था। बकदरने यह नियम रक्षित किया, किन्तु पचके नवाबोंने फिर चला दिया। बड़ दो प्रकारका होता था—

शाहशामी और अमानो या बड्डी। शाहशामीके

कान्तके भवन पद्वि। उन्होंने गङ्गातीर जानिके लिये बहुत अनुभव विगय किया, जिसपर कमलाकान्तने एक पदावली गा कर मत फिरा दिया।

पनन्तर इन्होंने दशसंसार छोड़ा था। प्रवादानुसार कमलाकान्तका शयदेह माघककी लषणय्या भेदकर भोगवतीके स्त्रीतवेगमें बह गया।

कमलाकान्त विद्यालङ्कार—ब्रह्मज्ञके एक सुप्रसिद्ध पण्डित। आजकल अंगरेज प्राच्य विषयमें ज्ञान लाभ कर और-सोदित-लिपि, प्राचीन हस्ताक्षर प्रभृति पद जो तत्त्व दूढ़नेमें लगे, उसके मूल पण्डित कमलाकान्त विद्यालङ्कार ही रहे। १८०० ई०के मध्यभाग यह एशियाटिक सोसाइटीके पण्डितपदपर प्रतिष्ठित थे। फिर उसी समय प्रिन्सेप साहब उक्त सभाके सम्पादक रहे। प्राचीन शिखालेख, ताम्रफलक और हस्ताक्षर प्रभृतिका समीक्षा करना ही पण्डित कमलाकान्तका कार्य था। दिल्ली और इलाहाबादमें दो लौहस्तम्भोंपर प्राचीन अक्षरलिपि भाषासे कोई विषय अङ्कित रहा। उसकी अनुलिपि पूर्ण ही प्रचारित हो चुकी थी। किन्तु सर विलियम जोन्स, कोलहुक और होरेस-हैमिन विलसन प्रभृति संस्कृतवित् साहब उसका अर्थ जगा या उस जातिके अक्षरोंका विन्दु विभर्ग भी बतान सके। शेषको कमलाकान्त उक्त लिपिका समीक्षा करनेपर हृदयप्रतिष्ठ हुये और अक्षर ठहरानेकी चेष्टा चसाने लगे। फिर देहली, सांची और गिरनार प्रभृति स्थानोंकी सोदितशिखालेखका साहस्य पा तथा ब्रह्मक्षरों एवं देवनागराक्षरोंसे मिला इन्होंने एक-एक अक्षर बताना दिया। सर्वांग 'दे' और 'न' स्थिर हुआ था। उक्त दोनों अक्षर पके पढ़नेसे काम कितना ही सीधा पड़ गया। तत्पर 'i', 'f' और 'u' आदिको कमलाकान्तने स्थिर किया था। क्रमशः अन्यान्य वर्षों और शब्दोंको निकाल इन्होंने दोनों लिपिका प्राचीन पान्थी भाषामें सोदित होना ठहराया। प्राचीन पाथी वर्षमानाके उद्घाटनका मूल बङ्गीय पण्डित कमलाकान्त विद्यालङ्कार ही थे।

पौष्ट इन्होंने उक्त दोनों लिपिका अर्थोंपर और

भाष्य किया। १८३० ई०की वही अर्थ और भाष्य साधारणमें प्रचारित हुआ था। विद्वज्जन-समाजमें वही खलबकी पड़ी। भारतेतिहासके तमसाष्टय अध्यायपर नूतन पालोक पड़ा था। किन्तु जिनके द्वारा इतना काण्ड हुआ, उनकी कीर्ति फन न मिला। फल सम्पादक प्रिन्सेप साहबने पाया था। अमेरिका और युरोपके विद्यातुरागो प्रिन्सेप साहबको घन्य घन्य कहने लगे। किन्तु प्रिन्सेप साहब प्रकृतप्र न थे। वह अपनी प्रवचनश्रीमें कमलाकान्तको ही समीक्षक और टोकाकार लिख गये हैं।

बरेलीमें मिली एक कुटिल लिपिकी समालोचनाके समय इन्होंने सुन्व-हो बताया—ऐसा सुन्दर भाव और भावण हमने अन्य किसी लिपिमें आज तक नहीं पाया। कमलाकान्तने ही प्रथम यह बात कही—इसी लिपिसे बङ्गोय वर्षमाना निकली या मिली है। यह दृष्टार भी विगय कार्य कर पुरातत्त्वकी पालोचनानें समधिक उत्पत्ति देखा गये हैं। दिल्ली और इलाहाबादकी पूर्वोक्त लिपिके अक्षरोंमें मंत्र्यावाचकत्व प्रतिपादित होता था। नामा संस्करण अर्थ देख कमलाकान्तने ठहराया—कौन अक्षर किस संख्याके लिये पाया है। इस स्थलपर उमके दो एक उदाहरण देते हैं—“अथवाकतिपुत्रोको विभर्ग” (जातन)

४ (चार)का अक्षर श्रीके स्तनपुग और विभर्गकी प्राकृति रखता है। कान्तव्य व्याकरणमें कमलाकान्तने उक्त सूत्र देव निर्णय किया—विभर्ग (:) अर्थ (४) चारके अक्षरका बोधक माना गया है। इसी प्रकार विद्वज्जनकृत प्राकृत व्याकरणका सूत्र ६ (कह) संख्याको बतानेवाला ठहरा है।

इससे पूर्व और पर प्रिन्सेप साहब कमलाकान्तपण्डितके साहाय्यपर नामा विषयमें उत्तमकार्य हुये। वह स्वयं विगयपदपथे संस्कृत भाषाके अग्रिम न रहे। पण्डित कमलाकान्त ही उनके चतु बत गये। हम अच्छी तरह समझते—कमलाकान्त यद्योनिपुण न थे। कारण विन्दु मात्र भी यद्योनिपुण रहते यह मित्र उत्तम अनेक कार्योंमें एक न एक अपनी नामपर चकारे और नाम एवं कीर्ति छटाते। फिर अक्षर

अनुसार सेनानी अपना बितन पहले ही जमीन्दारसे पाता, पीछे भूमिके करसे उतना धन आता या न आता। अमानिया वस्तुकी अनुसार सेनानी यथा-शक्ति धन ग्रहण करता था। फिर वह सैकड़ों पीछे ५) ६) कमीशन भी पाता रहा। ४ आशापत्रविशेष, एक हुकामनामा। इन्हीं अधिकार पर सुसलमान् वादशाहीके समय सेनानी अपना बितन जमीन्दारोंसे ग्रहण करता था। बलपूर्वक अधिकार करनेको 'कल-बिल-जम्' और पूर्ण अधिकारको 'कल-भो-दख्ल' कहते हैं।

कला (५० पु०) १ मुठि, गिरफ्त, सुहल, पञ्चा। २ दण्ड, दस्ता, बेट। ३ द्वारसन्धि, नरमादगी, कड़ा। यह कौच पित्तल प्रगति धातुसे बनता है। कर्जे में दो चतुष्कोण खण्ड संयुक्त रहते, जो सूचीपर चल सकते हैं। यह कपाट एवं पेटिकादिमें सन्धिस्थान घुमानेको लगाया जाता है। ४ ग्रहण, दख्ल। ५ उपरिस्थ वाङ्, ऊपरला वाङ्, भुजदण्ड। ६ मल्लयुद्धका कूटो-पायाविशेष, गद्दा, पट्टा, कुत्रतीका एक पेंच। कुत्रतीमें एक पहलवानको दूसरेका गद्दा पकड़ते, उसके हाथपर चोट चशाने, भटका लगाने और अपने हाथको छोड़ा सानेका नाम कला है।

कलादार (फा० वि०) १ अधिकारी। २ कला लगा हुआ, जो कर्जेसे जुड़ा हो।

कलियत (५० स्त्री०)-मलावरोध, कल, दस्त साफ न उतरनेकी हालत।

कलुचवसुल (फा० पु०) पत्रविशेष, एक कागज। इसपर बितन लेनेवाला अपने हस्ताक्षर करता है।

कल्वश—महिष्मर राज्यका एक कौशाकार गिरि। यह मालवकी तहसीलमें सिङ्गसा और अर्कवती नदीके मध्य अक्षां १२° २०' ७०" तथा देशां ७०° २२' ५०" पर अवस्थित है। पहले महिष्मरके हिन्दू और सुसलमान् राजा दोषी ब्याहिको इही गिरि पर से जा कर बन्दी बनाते थे। इस स्थानका वायु-परास्थ-कर है। इहीसे अपराधीका जीवन शीघ्र निःशेष हो जाता था।

कल (५० स्त्री०) शयस्थान, समाधि, सुरबत, मल्लार।

कलस्तान (फा० पु०) उतावास, गोरिस्तान, बहुतरी कन्नोकी जगह।

कमी (हिं० क्रि०-वि०) १ पूर्व, एकदा, पेशतर, किसी समय। २ क्वचित्, कदाचित्, गाह-गाह, बाज् भीकात्। ३ कदापि, कर्हिचित्, किसी वक्त।

कमी कमी (हिं० क्रि० वि०) कदा कदा, गाह, जबतब।

कभू, कमी देखो।

कन् (सं० पठ्य०) १ जल, पानी। २ मस्तक, मत्था। ३ सुख, आराम। ४ मङ्गल, भलाई। ५ पादपूरणार्थ निरर्थक शब्द।

कम (फा० वि०) १ अल्प, थोड़ा। २ गद्दा, खराब। यह शब्द उपरोक्त दोनों अर्थमें क्रियाविशेषणकी भांति भी आता है।

कम-असल (फा० वि०)-पञ्जलीन, वर्षसङ्कर, हरामी, कुमूल, घटियल।

कमक (सं० त्रि०) कम-पिङ्-भावे अच् स्वार्थे अक्। १ कामुक, खाङ्गिमन्द, चाहनेवाला। (पु०) २ गोत्र-प्रवर्तक एक ऋषि।

कम-कम (फा० क्रि०-वि०) अल्प-अल्प, थोड़ा थोड़ा।

कमकस (हिं० वि०) अलस, सुस्त, जोरसे काम न करनेवाला।

कमखाव (फा० पु०) वस्त्रविशेष, एक कपड़ा। यह गाढ़ एवं स्थूल रहता और कौटुम्बसे बनता है। फिर इसपर सुवर्ण एवं रजतके सूत्रसे प्रसून भी बना देते हैं। किसी कमखाव पर एक और और किसी पर दोनो और कसावतूके बेलबूटे रहते हैं। यह बहुमूल्य वस्त्र है। इसका खण्ड (थान) चार या साढ़े चार गज पड़ता है। कामीमें कमखाव बहुत तैयार होता है।

कमखोरा (फा० पु०) पशुरोगविशेष, चौपायोंकी एक बीमारी। यह रोग पशुके मुखमें होता है। इसके प्रभावसे पशु अपना मुख चला नहीं सकते और भूखे रहते हैं।

कमङ्गर (हिं० पु०) १ कामुककार, कामानुगर, आप बनानेवाला। २ अस्वियोजयिता, इडियां जोड़ने या

राजेन्द्रलास मित्रकी भांति इनका नाम पृथिवीके सकल स्थानोंमें विद्योपित हो जाता।

कमलाकार (सं० पु०) १ एक छप्य। इसमें २७ गुरु एवं ३८ लघु अर्थात् ६२ वर्ष और १५२ मात्राका समावेश होता है। (त्रि०) २ कमलका आकार रखनेवाला, जो कमल जैसा हो।

कमलावेशव (सं० पु०) पुण्यस्थानविशेष, एक परस्तिश-गाह। इसे कमलवतीने वनवाया था। (राजत०)
कमलाच (सं० त्रि०) कमलमिव अक्षि यस्य, बहुव्री०। १ पद्मकी भांति सुन्दर चक्षुविशेष, जो कमलकी तरह पांखें रखता हो। (पु०) २ पद्म-वोज, कमलगट्टा। यह खादु, रुच्य, पाचन, कटुक, शीतल, तुवर, तिक्त, गुरु, विष्टम्भकारक, गर्भस्थिति-कर, रुच, हृद्य, यातकर, वष्य, ग्राही, क्षफलत एवं लेखन और पित्त, रक्त, वमि तथा दाहनाशक है। (हेतुकल्पिपत्र) ३ स्थानविशेष, किशौं जगहका नाम।

कमलापला (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हलदी।

कमलादेवी—१ कादम्बराल शिवचिन्तावीरप्रसादिदेवकी पटरानी। दाक्षिणात्यकी शिलालिपि पढ़नेसे सम-भूते—कमलादेवीके पति गोपकपुरी (गोवा)में राजत्व करते थे। यह अपने पतिकी प्रियतमा मन्दिपी रहीं। देवहजप रङ्गे बड़ी भक्ति अर्पण थी। अपने दान-शीलता और परोपकारिताके गुणसे यह अष्ट रम-यौके मध्य परिगणित रहीं। इन्होंने वेद-वेदाङ्ग-धारदर्शी ब्राह्मणोंकी अनेक ग्राम दे डाले। फिर इन्होंने अनुरोधसे ११७४ ई०की कादम्बरालने ब्राह्म-णोंकी देगम्ब ग्राम प्रदान किया। कमलादेवी उमा-का पूजती थीं।

इतिहासमें दूसरी कमलादेवीका नाम भी मिलता है। नीचे इनका विवरण लिखा है,—

२ गुजरातके राजा करणरायकी परमासुन्दरी पत्नी। १२८७ ई०की सम्राट् पला-उद्-दीन् खिल-जीने गुजरात जय किया था। उस समय बन्धियोंके साथ कमलादेवी भी दिल्ली पहुँचायी गयीं। कुछ दिन पीछे पला-उद्-दीन्की कुशलता और प्ररोचनासे इन्होंने सम्राट्की गले लगाया था। फिर १३०६

ई०की कमलादेवीके गर्भसे उत्पन्न गुजरातकी राज-कन्या देवलदेवी भी दिल्ली पहुँच गयीं। पला-उद्-दीन्के पुत्र शाहजादे खिख खां इनके रूपसे सुग्ध हुये थे। अश्वमेधका देवलदेवी और शाहजादे खिखखानूका भी विवाह हो गया। सुवारिक शाहने सम्राट् बन अपने आता खिख खानूको ग्वालियरके निकट बन्द कर मारा और देवलदेवीकी घरमें डाला था। खिख खानू और देवलदेवीको प्रणय कथापर तदानीन्तन राजकवि अमीर खुशरो एक सुन्दर फारसी काव्य लिख गये हैं। इतिहासलेखक मुसलमानोंने कमला-देवीको 'कंवला देवी' कहा है।

कमलानन्दन—कमलाके पुत्र दिनकर मिय।

कमलानिवास (सं० पु०) लक्ष्मीका वासस्थान, कमल।

कमलापति (सं० पु०) कमलायाः पतिः, इ-तत् । लक्ष्मीके स्वामी, विष्णु।

कमलायताक्ष (सं० त्रि०) कमलके समान दीर्घ चक्षु रखनेवाला, जिसके कमलकी तरह बड़ी पांखें रहें।

कमलायुध (सं० पु०) १ संस्कृतके एक प्राचीन कवि। २ कान्ठकुञ्जके एक प्राचीन नृपति।

कमलालय (सं० स्त्री०) मन्द्वाजप्रान्तीय तक्षीर जिलेके त्रिवल्लर नगरका एक पवित्र तीर्थ। यहाँ महादेवीके लिङ्गमूर्ति विद्यमान है।

कमलालया (सं० स्त्री०) कमलमें आलस्यो यस्याः। कमलमें रहनेवाली लक्ष्मी।

कमलासख (सं० पु०) कमलायाः सखा, टच् । राजाः सखिपत्र । प ११७८२ । लक्ष्मीके सखा विष्णु।

कमलासन (सं० पु०) कमलमें आसनं यस्य, बहुव्री०। १ कमलपर बैठनेवाले ब्रह्मा। "आनामि पूर्वं कमला-सनेन।" (उदार) (स्त्री०) कमलाया लक्ष्म्या पसनं शेषणं दानमित्यर्थः। २ लक्ष्मीका दान। ३ पद्मा-सन। यह दो प्रकार होता है—यह और सुल। सुलमें वामपद पहले दक्षिण पदकी जहापर चढ़ाया जाता, फिर दक्षिणपद वामपदकी जहापर आता है। अन्तकीदोना हाथकी इपेली जातुपर खुली रखते हैं।

वेदानेवासा । ३ चित्रकार, सुसोवर । (वि०) ४ कुशल, शीघ्रियार ।

कमङ्गरा (हि० स्त्री०) १ वासुदेकरण, कमनगर, चाप बनानेका काम । २ प्रास्थियोलनविद्या, छिछोरेके जोड़ने या बांधनेका हुनर ।

कमचा (हिं० पु०) १ सुदृढ़ कार्मुक, कमनचा, छोटी कमनू । २ सारङ्गी, चीतारा, किंगरो । ३ स्थितिस्थापकत्वविशिष्ट चित्रायस-पदार्थ, लोहेकी कमनो । इस यन्त्रको तक्षक व्यवहार करते हैं । पहले कमचेमें एक रज्जु बांध भास्कोटनीको भागत कर लेते, पीछे सुमा देते हैं । ४ कुक्षित पटल, मेहराबदार छत ।

५ धम्यःशाला, खास कमरा । ६ वेणु वा भाव प्रभतिकी चाम एवं नमनशील शाखा, बांस या भावकी पतली और लचीली डाल । इससे मसूषा बनती है । ७ वेणुका चाम तथा नमनशील खण्ड, बांसकी तोली । ८ चाम एवं नमनशील यष्टि, पतली और लचीली छड़ी । ९ काष्ठादिका चामखण्ड, लकड़ी वगैरहका नाजूक टुकड़ा ।

कमचे (तु० स्त्री०) १ कक्षिका, बांसकी डाल । २ यष्टिविध, नाजूक छड़ी । ३ काष्ठादिका चामखण्ड, लकड़ी वगैरहका नाजूक टुकड़ा ।

कमच्छा (हिं०) कामाख्या देवी ।

कमजोर (फ्रा० वि०) निर्वीर्य, नाताकृत, लचर ।

कमजोरो (फ्रा० स्त्री०) भयामर्थ, नातवानी, लचर-मिचर ।

कमचा (हिं० पु०) स्थितिस्थापकत्वविशिष्ट, चित्रायस-पदार्थविशेष, लोहेकी कमनो । कमचा देवी ।

कमटा (हिं० पु०) हृद्यविशेष, एक पेड़ । यह कण्टकाकीर्ण एवं सुदृढ़ होता है ।

कमटो (हिं०) कमनो देवी ।

कमठ (सं० पु०-स्त्री०) कम-घठ । कमरतः । ७५११०२ । १ कच्छप, कछुवा । कच्छप देवी । २ विष्णुका द्वितीय प्यतार । ३ बंग, बांस । ४ दैत्यविशेष, एक राक्षस । ५ शलकी, खारपुष्ट, सैह । ६ काम्बोजरालविशेष, एक राजा । (भारत १५५२२) ७ भाष्टविशेष, एक वरतन । प्रधानतः तुम्बी वा नारिकेलकी फीलकर

को पात्र सुनियोंके सिधे बनाया जाता, वही कमठ कहाता है । ८ सुनिविशेष, एक ऋषि । ९ वादितविशेष, एक बाजा । यह एक चमत्कृत प्राचीन वाद्य है ।

कमठपति (सं० पु०) कच्छुपराज, कछुवोंके राजा । कमठा (हिं० पु०) १ चाप, कमनू । २ एक जैन मद्याया । इन्होंने सप तपस्या करके सकाम निर्जरा पायी थी ।

कमठासुरवध (सं० पु०) गणेशपुराणका एक चंग । इसमें कमठ दैत्यके वधकी कथा सिखी है ।

कमठो (सं० स्त्री०) कमठ-छोप् । १ सुदृढ़कच्छप-जाति, छोटे-छोटे कछुवोंका गिरोह । २ कच्छुपी, कछुयो । ३ शलकी, खारपुष्ट, सैह ।

कमण्डल (हिं०) कमण्डु देवी ।

कमण्डनी (हिं० वि०) १ कमण्डलुयुक्त, जो कमण्डल रखता हो । २ पापण्ड, पुर-फितरत, बहुदणिया । (पु०) ३ ब्रह्मा ।

कमण्डलु (सं० पु०-स्त्री०) कश्यपकश्यप प्रजापतेर्वो सारः तं लाति षट्पत्तित्, क-मण्ड-ना-डु । इन्द्रको मितमु-दिष्य उपवस्यन् । वा १५१२० नारिक । १ षट्तिका, काष्ठ, तुम्बी वा नारिकेल द्वारा निर्मित मयासिधियोंका एक पात्र, कमण्डल, तोंबा । इसका संस्कृत पर्याय—कुण्ड्रीय शर करक है । २ ब्रह्मवध, पाकरका पेड़ । ३ ब्रह्ममेद, पारस-पौषल ।

कमण्डलुतव (सं० पु०) ब्रह्मवध, पाकरका पेड़ । कमण्डलुधर (सं० पु०) शिव, कमण्डलु धारण करने-वाले महादेव ।

कमतो (हिं० स्त्री०) १ कल्पव, कमी, घटी । (वि०) २ कल्प, कम, थोड़ा, जो बहुत न हो ।

कमयू (सं० स्त्री०) स्त्रीविशेष, मिनपुत्री ।

“कमपुं विमहावीर्यवृं वृं” (अणु १०५१२)

कमन (सं० वि०) कम-विद् भावे युच् । १ कमनीय, खु-बधरत । २ कामुक, खाडिगमभ्य, वाचने-वाला । (पु०) ३ भयोकहच । ४ मदन, कामदेव । ५ ब्रह्मा ।

कमनचा (हिं० पु०) कमनचा, कमचा, बहुदेवका एक पोजार । यह बरमा पुमानिमें काम देता है ।

इसी प्रकार भेददण्डको सीधा कर बैठनेका नाम सुल्ल पद्मासन है। बद्ध पद्मासनमें पदोंके चद्दनेका नियम तो ऐसा ही रहता है। किन्तु वाम चन्द्रको पीठके पीछे घुमा वाम पदका और दक्षिण चन्द्रको पीठके पीछे घुमा दक्षिण पदका अङ्गुलि पकड़ने हैं। फिर चिबुक यद्यःस्त्रोपर जमा और नासाके पथभागपर दृष्टि लगा सीधे बैठा जाता है। यह पद्मासन अति उत्तम रहता और घण्टे आध घण्टे अभ्यस्त होनेपर माधकके सब रोग हरता है।

कमलासनस्य (मं० पु०) कमलं विष्णोर्नाभिकमलं तद्रूपे भ्रासने तिष्ठति, कमल-भासन-स्याःक। विष्णुके नाभिकमलपर रहनेवाली ब्रह्मा।

कमलाहट्ट (सं० पु०) काश्मीरका एक बाजार। काश्मीरको रागौ कमलनावतीने इसे लगाया था।

(राजतरङ्गिणी ४२०८)

कमलाहास (मं० पु०) पद्म का खुलना या गुंदना, कंबलके फूलने या बंद होनेकी हालत।

कमलाकार—संस्कृतके एक प्राचीन ग्रन्थकार। यह नृसिंहके पुत्र, कृष्णके पौत्र और दिवाकरके प्रपौत्र रहे। इन्होंने अपूर्वभावनीपत्ति, जातकतिलक, ध्योत्पत्तिविचार, त्रिगती, मनोरमाघण्टाघण्टीका, शेषाङ्गणना, सिद्धान्ततत्त्वविवेक (यह १५०३ ई०को बनारसमें लिखा गया) और सूर्यसिद्धान्तटीका सौर-वासना ग्रन्थ लिखा है।

कमलाकार देव—पानन्दविलास नामक ग्रन्थके रचयिता।

कमलाकर भट्ट—एक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थकार।

१६१६ ई०को इन्होंने 'निर्णयसिन्धु' बनाया था।

इनके लिखे ग्रन्थ यह हैं—अग्निनिर्णय, पाचारदीप

वा पाचारदीपिका, पाञ्चलायनशाखा व्याख्यप्रयोग,

आङ्गिकविधि, उत्तरपाद, ऐन्द्रीमहाशान्ति-सहित-

राजामिषेयप्रयोग, कर्मविपाकरत्न, कल्पलताहीन-

प्रयोग, काव्यप्रकाश-ध्यास्या, क्रियापाद, गयाकृत्य,

गीतगोविन्दभाष्यरत्नमाला, गीतप्रवर-निर्णय या गीत-

प्रवरदर्पण, पद्मघण्ट, बण्डोविधानपद्धति, जलाययोग्-

सर्गविधि, जीर्णोधारविधि, तन्त्रार्थकटीका, तिल-

गर्भदानप्रयोग, तीर्थयात्रा, तुलापद्धति, त्रिपद्मदान-

विधि, त्रिस्यन्तोसेतु, दानकमलाकर, दायविभाग, धर्म-तत्त्व, नारायणवलिप्रयोग, निर्णयसिन्धु, नीतिकमलाकर, पश्यन्ध, पद्मनाभलदानविधि, पिष्टमक्षितरङ्गिणो, पूतकमलाकर, प्रतिष्ठाविधि, प्रवरदर्पण, प्रायश्चित्त-रत्न, शङ्ख-आङ्गिक, मक्षितरत्न, भाषापाद, मन्त्रकमलाकर, रजतदानप्रयोग, रथदानविधि, रामकल्पद्रुम, राम-कौतुकमहाकाव्य, सप्तहोमविधि, लिङ्गाचार्यप्रतिष्ठाविधि, विघ्नेशदानविधि, विवाहताण्डव, विम्बवक्रदानविधि, व्यवहार, व्रतकमलाकर, व्रतांक, शतचण्डीमहस्रचण्डी-प्रयोग, शतमान दानविधि, शान्तिरत्न या शान्तिरत्नाकर, शास्त्रदीपिकालोक, शास्त्रमाशा, शिवप्रतिष्ठा, शुद्धधर्मतत्त्व, श्राद्धनिर्णय, श्राद्धहार, श्रावणीप्रयोग, श्वेताश्वदानविधि, पौडगसंस्कार, संस्कारपद्धति, समय-कमलाकर, सरस्वतीदानविधि, सर्वशास्त्रायेनिर्णय, सङ्ख्यचण्ड्यादिप्रयोगपद्धति, सुवर्णपृथिवीदानविधि, स्थानीपात्रप्रयोग, हिरण्यगर्भदानविधि और कमलाकरमष्टौय। नृसिंहने अत्यर्थमागर, पुरुषोत्तमने ब्रह्मश्रद्धीपिका और बालकृष्णने षट्ष्वेददेवताक्रम-नामक ग्रन्थमें इनका वचन उद्धृत किया है।

कमलाकारमिच्छु—संस्कृतके एक प्राचीन विद्वान्। यासव-दत्तामें सुवभुने इनका उल्लेख किया है।

कमलिनी (सं० स्त्री०) कमलानि सन्ति पत्र, कमल-

श्रुति। उष्णादिभि ईषः। प ४५१११। १ पद्मिनी, कंबल-

का पेड़। यह शीतल, गुरु, मधुर, लवण, रुच, पिच,

पष्टक तथा कफघ्न और वात एव विष्टम्भकर होती

है। कमलिनीका छद् शीत, तुवर, मधुर, तिक्त,

पाकमें प्रति कटु, लघु, प्राइक, वातघ्नत् और कफ

एव पित्तनायक है। (रेवचनिरु०) २ पद्माकर,

कंधकोंका खजाना। जिस सरोवर वा झरने बहुतमें

कमल रहने, उसे ही कमलिनी कहते हैं। १ गुणा।

"इहको कमलिनी कर्मिकः कलिततरुणो" (भाष्योप २४१०)

कमनी (सं० पु०) मद्गा।

कमनी (हिं० स्त्री०) छोटा कम्बल, कमरी।

कमलेष्य (सं० त्रि०) कमलमिश ईष्यं यद्य,

वृद्धी०। पद्म चक्षु, कंबलकी तरह धूबधृत पंक्ति

रहनेवाला।

कमनच्छद (सं० पु०) कमनः कमनीयः छदः पक्षी यस्य, बहुव्री० । कङ्कपक्षी, बगला, बूटीमार ।
 कमना (हिं० क्लि०) न्यून पड़ना, घटना, उतरना, टलना, नौचिको चलना ।
 कमनीय (सं० त्रि०) काम्यते यत्, काम कर्मणि अनी-
 यत् । १ स्पृहणीय, कामना करने योग्य, चाहने काबिल । २ सुन्दर, ख बसुरत । इसका संस्कृत-
 पर्याय—चारु, शारि, रुचिर, मनोहर, वरगु, कान्त, अभिराम, वन्दुर, वाम, रुच्य, सुपम, शोभन, मञ्जु,
 मञ्जुल, मनोरम, साधु, रुच्य, मनोज्ञ, पेशल, हृद्य, सुन्दर, काम्य, कम्ब, सौम्य, मधुर और प्रिय है ।
 कमनीयता (सं० स्त्री०) कमनीयस्य भावः, कमनीय-
 तत्त्वताय । तस्य भावस्ततौ । पा ३।१।१।२ । १ सौन्दर्य,
 २ वसुरती । २. कमनीयत्व, मरगुबी, दिखवाही ।
 कमनेत (हिं० पु०) १ धनुर्धर, कामानवरदार, जो
 कामान रखता हो ।
 कमनेती (हिं० स्त्री०) धनुर्विद्या, कामानवरदारी,
 कामान इस्तेमाल करनेका इत्थम ।
 कामन्द (फ्रा० स्त्री०) १ पाय, जाल । २ अस्थिर-
 प्रस्थि, सरकफन्दा । ३ रज्जुकी तुलाधरोहिणी,
 रस्सीकी तुली हुयी चीड़ी । इससे तस्कर उच्च भवनों
 पर चढ़ जाते हैं । ४ पाशवन्ध, जालका फन्दा ।
 कामन्द (हिं०) कम्ब देखो ।
 कामम्ब (सं० क्ली०) कं शिरः अन्धं शून्यं यस्य ।
 १ कवन्ध, सरकटा धड़ । कामं दीप्तिं जीवन् वा दधानि,
 काम-धा-ङ् एषोदरादिवात् । २ जल, पानी । हिन्दूमें
 लड़ायी-भगड़े और सरफन्द का भी कामम्ब कहते हैं ।
 कामवख्त (फ्रा० वि०) टेवोपहत, बदनसीध,
 अभावो ।
 कामवख्तौ (फ्रा० स्त्री०) मन्दभाग्य, बदनसीवी ।
 कामयाव (फ्रा० वि०) विरल, अभाव, सुशिक्षणसे
 मिलनेवाला ।
 कामर (सं० त्रि०) काम-अर-वित् । अर्थकर्मिभक्तिभक्तिवित्त-
 विभवित् । उच् ३।१।१ । कामुक, खादिशमन्द, चाहने-
 वाला ।
 कामर (फ्रा० स्त्री०) १ ओषी, कटि, सुख, धूना ।

कटि देखी । २ मध्य, दरमियान्, बीच । ३ मेषना,
 मित्तका, पट्टा । ४ मङ्गयुक्तका एक इष्टसाधव,
 कुम्भीका कोयी पेंच । यह कटिप्रदेशसे चलता है ।
 इसी प्रकार 'कमरकी टांगही' भी होती है । एक
 पहलवान् जब दूसरेकी पीठपर आता और अपना
 बायां हाथ उसकी कमर पर पड़वाता, तब नौचिवान्ना
 अपना बायां हाथ बगलसे निकाल उसकी कमर पर
 चढ़ाता और बायां टांग लड़ा कमरके जोरसे उसकी
 सामने हुमा लाता है ।
 कामरंग (हिं० पु०) कर्मरङ्ग, कामरख । कर्मरख देखो ।
 कामरघाटा (हिं० पु०) प्राकार, बचोदध, सोनापनाइ,
 कंगूरदार जंजी दीवार ।
 कामरकस (हिं० पु०) पलागनिर्यास, टांककी गोंद ।
 इसे चुनिया-गोंद भी कहते हैं । यह रत्नवर्ण एवं
 भासुर होता है । इसका आस्वाद कपाय है । कामर-
 कस संप्रहृषी और कासज्वासाका मधोपध है ।
 कामरकसायो (हिं०) कामरकुशायी देखो ।
 कामर-कुशायी (फ्रा० स्त्री०) अपराधीमें लिया जाने-
 वाला एक कर, असामीसे वसूल होनेवाला रुपया ।
 यह प्रया पूर्वकाल प्रचलित रह्यो । जब कोयी असामी
 सिपाहीसे मूलपूरीपके लिये अवकाश लेता, तब उसे
 कररूप कुछ धन देता था । इसीका नाम 'कामर-
 कुशायी' है । २ मेखसोडाटन, कामरबन्दकी खोलायी ।
 कामरकोट, कामरघटा देखो ।
 कामरकोठा (हिं० पु०) स्य याका एक भाग, गड़तौर
 लड़े या कड़ीका एक हिस्सा । यह भित्तिसे बहिर्वर्ती
 रहता है ।
 कामरख (हिं० पु०) कर्मरङ्ग, एक पेड़ । (Averrhoe.
 Carambola) इसे बंगलामें कामरगा, आसामीमें
 करदयी, गुजरातीमें तमरक, मराठीमें करमर,
 तामिलमें तमर्त, तेलगुमें करोसांग, मलयमें तमरचूक
 और त्राफोमें जौनसी कहते हैं । कामरखमें अम्लत्व,
 उष्णत्व, वातहरत्व एवं पित्तजनकत्व रहता, किन्तु
 पकनेसे मधुराम्लत्व तथा बल-पुष्टि-रुचिकरत्व बढ़ता
 है । (रात्रिपत्र) यह कटुपाक, अम्ल-पित्तकर
 और तीक्ष्ण गुणविशिष्ट है । (रात्रिपत्र) कामरखका

कमलेश (सं० पु०) कमलाके ईश विष्णु ।
 कमलेश्वर (सं० स्त्री०) एक तीर्थ । (इ० पु० १५०)
 किसी किसी पुस्तकमें कमलेश्वरके स्थानपर 'कालके-
 श्वर' पाठ देख पड़ता है ।
 कमली (हिं० पु०) उद्ग, कंट, मांडिया ।
 कमलीत्तर (सं० स्त्री०) कमलमिव उत्तर श्रेष्ठं कमला-
 दुत्तर उत्तममिव वा । कुसुमपुष्प, कुसुमका फल ।
 कमवानी (हिं० स्त्री०) १ लाभ करवाना, दिलवागना ।
 २ मनमूत्र उठवाना, साफ, करवाना । ३ मुण्डन
 करवाना, बाल बनवाना । ४ संस्कार करवाना,
 सुधरवाना ।
 कमसमझी (हिं० स्त्री०) मन्दमतिता, नाकहमी,
 बेवकूफी ।
 कमसरियट (अंग० पु० = Commissariat) सेनाका
 एक विभाग, फौजका कोई महकमा । यह सेनाको
 खाद्यादि सामग्री पहुँचाता है ।
 कमसिन (फ्रा० वि०) अल्पवयस्क, जो उन्मत्तमें
 छोटा हो ।
 कमसिनो (फ्रा० स्त्री०) शैशव, लकड़पन ।
 कमहा (हिं० वि०) कार्यकारी, कामकाजी ।
 कमहिम्मत (फ्रा० वि०) भीरुहृदय, डरपोक ।
 कमहिम्मती (फ्रा० स्त्री०) भीरुता, मुग्दिली,
 डरपोकी ।
 कमा (सं० स्त्री०) कम-ण्डि भवे अ-टाप ।
 शोभा, खुबसूरती, चमक ।
 कमाई, कमायी देखी ।
 कमाऊ, कमावू देखी ।
 कमाची (हिं० स्त्री०) १ कक्षिका, कनची । २ कमान-
 नवा, झुकी हुयी तीनी ।
 कमाण्डर (अंग० पु० = Commander) सेनाध्यक्ष,
 सरदार, सरगिरोह । यह अफसर फौजमें सफटनण्ट-
 के ऊपर और फतानके नीचे काम करता है ।
 कमाण्डर-इन-चीफ, (अंग० पु० = Commander-in-
 chief) प्रधान सेनाध्यक्ष, सिपह-सामानर, जन्नी लाट ।
 कमान (फ्रा० स्त्री०) १ कामुंका, धनुष, चाप,
 कमठा । २ खण्डमण्डल, तोरप, मेहराव । ३ इन्द्र-

धनुः, इन्द्रायुध, कौस-कुजा । ४ मोहनाही, चान्दख,
 तोप, तुंपक, बन्दूक । ५ व्यायामविशेष, एक कसरत ।
 इसमें मानखभपर कसरत करनेवाला कमानकी तरह
 टेढ़ा पड़ जाता है । ६ यन्त्रविशेष, एक शौजार ।
 इससे आस्तरण बुना जाता है । ७ यन्त्रभेद, कौयो
 शौजार । इससे दो पदार्थोंके मध्यका अंतर निर्धारित
 होता है । (वि०) ८ कृष्णनीय, नमनशील,
 सचीला । ९ वक्र, टेढ़ा, झुका हुआ ।
 कमान (हिं० स्त्री०) १ आदेश, हुक्म । २ अधिकार,
 प्रखृतिपार । यह अंगरेजोंके कमाण्ड (Command)
 शब्दका अपभ्रंश है ।
 कमान-अफसर (हिं० पु०) आज्ञापक पुरुष, हुक्म
 देनेवाला सरदार । यह अंगरेजोंके कमाण्डिङ्ग
 आफिसर (Commanding officer) शब्दका अप-
 भ्रंश है ।
 कमानगर (फ्रा० पु०) १ कामुंकाकार, कमान
 बनानेवाला । २ अस्थि-योजयिता, हड्डी जोड़नेवाला ।
 कमानगरी (फ्रा० स्त्री०) १ कामुंका विधान, कमान
 बनानेका काम । २ अस्थियोजना, हड्डीकी जोड़ायी ।
 कमानचा (फ्रा० पु०) १ छुद्र कामुंका, छोटी कमान,
 कमठा । २ सारङ्गी, चौतारा, किंगरी । ३ सार-
 नोहका स्थितिस्वायत्तविशिष्ट पदार्थ, लोहेकी
 कमानी । ४ खण्डमण्डलाकार पंटल, मेहरावदार
 छत । ५ विविल भवन, पोशीदा कमरा ।
 कमानदार (फ्रा० वि०) १ खण्डमण्डलाकार, मेह-
 रावदार । (पु०) २ धनुष, कमान लिये हुवा ।
 कमानदार (हिं० पु०) आज्ञापक, सेनापति, सर-
 दार, सरगिरोह ।
 कमाना (हिं० स्त्री०) १ उपाजन करना, घर भरना ।
 २ परिचय करना, मरना-मिटना । ३ अभ्यास बढ़ाना,
 मद्रकपर नाना । ४ परिष्कार करना, मघालीसे
 भरना । ५ मनमूत्र उठाना, भाङ्गू लगाना । ६ भूमि
 प्रसृत करना, नुरखे,जैसे भरना । ७ पौषखसे
 निर्वाह करना, किनालीसे पेट भरना । ८ धनोपाजन
 करना, रुपयेकी पैदाईं पड़ना । ९ चुर चलाना,
 चाल बनाना । १० न्यून बनाना, घटाना ।

शाम-फल घाही, चन्दा, वातनायन, लण्य एवं पिच-कर रहता, किन्तु पक जानिसे मधुर तथा चन्द-लगता और बल, पुष्टि एवं रुचिकी वृद्धि करता है। (चिकित्सक) यह हिम, घाही, चन्दा और कफ तथा वातनायन है। (भातप्रकाश)

कमरख एक सुदृढ वृक्ष है। इसके पत्र एक पङ्क्त-प्रगुप्त, दो पङ्क्त दीर्घ तथा ईप्सु तीक्ष्ण रहते और सुगिरमें लगते हैं। स'वाधोमें यह १५।२० फीटसे अधिक नहीं चलता। भारतमें कमरखकी कृषि बहुत होती है। फल उसीजनेसे प्रति स्वादु लगते हैं। यह सस्रमें साहोरतक मिलता है।

कक्षे फलोंका उस रंगनेमें खटायीकी तरह छोड़ा जाता और संभावतः काटका काम देखाता है। इसका पत्र, मूल और फल मोतक औषधकी भांति व्यवहृत होता है। सूखा फल खरमें खिला सकते हैं।

कमरख दो प्रकारका होता है—मोठा और खटा। मोठा कमरख खरकी लिये उपयोगी है। किन्तु कक्षा खानिसे खर घाता और वधःखल दुःख पाता है। पका फल चटनी और तरकारीमें भी पड़ता है।

कमरख वर्षा में फलता और शीतकालको पकता है। फल प्रायः ३ इंच लम्बा होता है। प्राचीण इसे कक्षा भी खाते हैं। इसका शक्य मृदु, सरस और चान्दनादन है। इसकी उसीजे और योड़ी दारचोनी हाल शर्वत बनाते हैं। यह शर्वत पीनेमें बहुत अच्छा लगता है। कमरखका गुणकन्द भी उम्दा होता है।

इसका काष्ठ हलका, लाल, कड़ा और दानेदार रहता है। सन्दरवर्णमें इसे मकानु और माजुधामानु बनानिमें व्यवहार करते हैं।

कमरखी (हिं० वि०) १ कर्मरङ्गाकार, कमरख-जेभा, फाँकदार। (स्त्री०) २ कर्मरङ्गाकार रचना, फाँकदार काठ।

कमरखण्डे (हिं० स्त्री०) खड्ग, तलवार।

कमरट्टा (हिं० वि०) १ वक्रवृत्त, खमीदापुग्त, कुबड़ा। २ नपुंसक, नामट्ट, कमरका टोला।

कमरवेगा (हिं० पुं०) मज्जयुहका एक वृक्षनाम, कुशतीका कोर्रि पेंच।

कमरतोड़, कमरतना देवी।

कमर-दिवाख (हिं० पुं०) चर्ममेंखटा, चमड़ेका पटा। इससे शक्यके वृष्टपर पर्याय कसा जाता है।

कमरपट्टे (हिं० स्त्री०) कटिवस्त्र, कमरकी घल्ली। इसे चपकन वगैरहमें कमरके ऊपर लगाते हैं।

कमरपेटा (हिं० पुं०) १ व्यायामविशेष, एक कसरत। इसे माल खम्भपर लगाते हैं। यह कमरमें बेंत सपेट और खालो डाय—दो प्रकार किया जाता है।

'कमरसपेटेकी ससटों' मो एक कसरत है। २ मज्जयुहका एक वृक्षनाम, कुशतीका एक पेंच। एक पहलवान् नोचे पानिसे दूसरा चपनी दाहनो टांग नीचेवालेकी कमरमें डाल अपने बायें पैरकी जाँघ और पिंडलोके बीच लाता तथा बायें हाथका पक्षा उसकी बायें हाथके घुटनेपर मोतरसे दबाता है। फिर दाहने हाथसे उसका दाहना बालू खींच डफ़ा चढ़ाता और उसको पासमान देखाता है।

कमरबन्द (फ़ा० पुं०) १ मखला, हलका, घेरा। २ कटिकी चारो और सपेटा हुआ वस्त्र, कमरकी चारो ओर कसा जानिवाला कपड़ा। (वि०) ३ बहकटि, तैयार, कमर बांधे हुआ।

कमरबन्दी (फ़ा० स्त्री०) १ युद्धवस्त्र, बड़ापोको पोशाक। २ युद्धके अर्थ सज्जीकरण, जद्दकी तैयारी।

कमरबन्ध (फ़ा० पुं०) मज्जयुहका एक वृक्षनाम, कुशतीका कोर्रि पेंच। यह वधःखल और जहाके बल होता है।

कमरबन्ना (हिं० पुं०) काष्ठखण्डविशेष, एक लकड़ो। यह खण्डके पटलमें दोवर्ष्याके नोचे तक्षकपर चढ़ता है।

कमरबन्ना (फ़ा० वि०) १ सज्ज, उद्यत, तैयार, कमर कसे हुआ। (पुं०) २ कमरबन्ना, खरड़ेनमें लगनेवाली एक लकड़ी।

कमरा (पो० पुं०=Camera) १ कोठ, पागर, कोठरो, कोठा। २ पालोकलेख्य-यन्त्रविशेष, चक्रममें तखीर उतारनेके फनका एक योजन। यह सम्य-सहय बनता और सुखपर प्रतिबिम्ब लेनेका गोलाकार स्वटिक लगता है। इसकी प्रयोजन पढ़नेमें घटा-

कमानिया (हिं० पु०) धातुष्क, कमानदार ।
 कमानो (फ्रा० स्त्री०) १ स्थिति-स्थापकत्व-विशिष्ट पदार्थ, कोयी लघोली चीज । जैसे—तीक्ष्णायस दण्ड पात्र वा व्यावर्तन, भारतीय चर्पक पिण्ड, मंजत समोरणका समवाय । यह द्रव्य नाना प्रकार यन्त्र-विषयक कार्योंमें लगता है । कमानोसे बल पाते या पट्टुं चाते, गतिको नियमपर लाते, शुक्ल वा अन्य शक्ति नपाते और सहृष्ट सजाते हैं । यन्त्र मानश्रीमें इसके लो प्रधान भेद चलते, उन्हें भीचे लिखते हैं—
 १ सञ्चित (पंचदार), २ व्यावर्तित (लघोली या बालकमानो), ३ विसोज (मरगोल), ४ धरणाकार (वैज्ञाबो), ५ अधोण्डाणति (निस्फ, वैज्ञावी), ६ प्रधान (बड़ी), ७ साटोप (ऐंठदार) । यह मोह वा पिच्छसे बनती है । भारतीय चर्पक (रश्मिकी) तथा वायव (हयावी) कमानो अधोण्डाकार रहती और चलनशील (चलते) द्रव्यपर लगती है । यह घड़ी या पंहा चलाती, भटका बचाती, तौल ठहराती और थका सजाती है । दयानिसे दब जाते भी कमानो अपने आप ऊपर उठ पाता है ।
 २ वक्र एवं नमनशील लौहयलाका, लोहेकी झुकी हुई लचकदार तोली । यह छाते और चश्मे वगै-रहमें लगती है । ३ मिथुनाविशेष, एक पीठी । यह चर्ममय होती है । इस कमानोके भीतर लौहमय एवं नमनशील पट्ट रहता है । फिर लभय प्रान्तपर उपाधान लगा देते हैं । जिस रोगीका शल्य उत्तरता, वह कटिमें कमानो कयता है । इससे शल्य उत्तरने नहीं पाता । ४ धनुषाकार काष्ठविशेष, झुकी हुई कोई नकड़ी । इसके दोनों प्रान्त रज्जु, सोहसूत्र वा कुत्तलसे बंधे रहते हैं । ५ पशुलण्डविशेष, बांसकी एक फटा । यह सूक्ष्म रहती और दरी बुननेके यन्त्रमें लगती है । ६ लोहनाड़ीके तालकका विभीर्ण स्थितस्थापकत्व-विशिष्ट पदार्थ, बन्दूकके तालिकी सूत्री कमानो ।
 कमानोदार (फ्रा० वि०) स्थितस्थापकत्व-विशिष्ट पदार्थशुल्क, जो कमानो रहता हो ।
 कमानय (हिं० स्त्री०) कमानघा, मारणोका गज्ज ।
 कमायी (हिं० स्त्री०) १ उपाजित, सभ्यांग, उज-

रत, चामदनी । २ साम, फायदा । ३ उद्यम, कामकाज ।
 कमान (फ० पु०) १ सिद्धि, तकमीन, पूरापन । २ पाश्चर्य, ताज्जुब, अचम्भा । ३ कौशल, होमियायी । ४ नेपथ्य, धारोगरी । ५ कबोरके पुत्र । यह भी एक पट्टुं चें साधु थे । कमीरकी बाल काट डालना इनका लघु रहता । (वि०) ६ सिद्ध, पूरा । ७ शक्यता, वहुत स्थिता ।
 कमावू (हिं० वि०) उपाजित करनेवाला, जो पैदा करता हो ।
 कमासुन (हिं० वि०) धनोपालन करनेवाला, जो रुपया कमाता हो ।
 कमिता (फ० पु०) कम-विद्-भावि लक्ष् । कामुक, मस्त, चाहनेवाला ।
 कमिश्नर (फ० पु० = Commissioner) १ नियोगी, मुख्यतारकार । २ अधिकाारी, प्रमोस । मान और पुलिसके बड़े अधिकारी भी कमिश्नर कहते हैं ।
 कमी (फ्रा० स्त्री०) १ न्यूनता, कोताही, घाटा । २ अपाति, कमयाबो, नही । ३ हानि, नुकसान । ४ फ्रांस, नन्वील, उत्तर । ५ अपचय, गवन, घाव-घप । ६ उपयम, तख्कीफ, गरमी ।
 कमीज (हिं० स्त्री०) पुतक, अधोवसन, पहननेका एक कपड़ा । यह एक प्रकारका कुर्ता है । इसमें कलौ और चौबगला नहीं लगते । पीठ पर चुपट पड़ती है । फिर हाथमें कफ और गलेमें कामर भी रहता है । भारतीयनि अंगरेजोंसे कमीज पहनना सीखा है । परवोमें इसे कमीस कहते हैं ।
 कमीनगाह (फ० स्त्री०) निश्चल स्थान, घासकी जगह ।
 कमीना (फ्रा० वि०) अधम, अधन्य, कम-पच, रङ्गील, पाजी, शोका ।
 कमीनापन (हिं० पु०) जघन्यता, कम-पच्यो, शोकापन ।
 कमीनो वाह (हिं० स्त्री०) करविशेष, किशोकिषको उगाहो । यह कर गांवमें खेती न करनेवासे मोक्ष भोग जमीन्दारको देते हैं ।
 कमीला, बरला ईकी ।

बढ़ा सकते हैं। उक्त स्फटिक (Lens)के सम्मुख एक निराधार काच (Ground glass) पड़ता है। उसीपर प्रथम केन्द्र (Focus) किया जाता है। पीछे निराधार काच हटा रखलन (Slide) लगते हैं। उसीके अन्तर्गत पट्ट होता है। रखलनका आच्छादन चठानेसे पट्ट खुलता और स्फटिक निकलनेसे प्रतिबिम्ब पड़ता है। यह दो प्रकारका होता है—लूसिडा (Lucida) अर्थात् सुप्रभ और अवस्कूरा (Obscura) अर्थात् निम्नभ। सुप्रभ यन्त्र आसाधारण आकारके क्रकचायत वा दर्पण-विन्यास द्वारा प्रतिबिम्बपर चित्र प्रदान करता है। उक्त चित्रको यथासुख देखनेके लिये पत्र वा स्थूल पट्टपर उतार सकते हैं। निम्नभ उपकरण द्विगुण कूर्मशृंखलाकार स्फटिक द्वारा प्राप्त बाह्य द्रव्यकी प्रतिमा काच वा सम्पुटके केन्द्रमें रखे शुद्ध छट्टपर उतारता है। (हिं०) २ कम्बल। ३ कौटविशेष, एक कौड़ा।

कमरिया (हिं० स्त्री०) १ छोटा कम्बल। "एक श्यामक लारी कमरिया चढ़े न दूकी रङ्ग।" (ए) २ कटि, कमर। (पु०) ३ हस्तविशेष, एक हाथी। इसका देह लुद्र, शृणु दीर्घ और पद स्थूल रहता है। कमरिया अति प्रबल हस्ती है।

कमरी (फ्रा० वि०) १ दुर्बलकटि, कमजोर कमर-वाला। यह शब्द प्रायः अश्लके विशेषणमें आता है। (स्त्री०) २ लुद्रकक्षक, मिरजयी। ३ कमली, छोटा कम्बल। ४ काष्ठखण्डविशेष, एक लकड़ी। यह सार्धं किष्कुपरिमित दीर्घ रहती और चकले शीर्षपर लगती है। (पु०) ५ भग्ननीका, उखड़ा जहाज। ६ अश्वरोगविशेष, घोड़ेकी एक बीमारी। इसके कारण पशु अपने छट्टपर भार वा आरोहीकी अधिक लक्षण रख नहीं सकता।

कमरंगा (हिं० पु०) मिष्टान्तविशेष, एक मिठाई। यह बङ्गालमें बहुत बनता है।

कमरुद्दीन खान्—एतमाद्-उद्-दीला सुहृद्-आमिने खान् वकीरके लड़के। इनका प्रधान नाम मीर सुहृद्-आमिने पाला था। १७२४ ई०की निज़ाम-उल्ल-मुल्क असफ्-जाहके पदत्याग करने पर बादशाह सुहृद्-आमिने

शाहने 'एतमाद्-उद्-दीला नवाब कमरुद्दीन खान् वहादुर नसरतजङ्ग' उपाधि दे इन्हें स्वयं वकीर बनाया। अहमदशाह बखदालीके प्रथम आक्रमण करते ही यह शाहजादे अहमदके साथ लड़नेकी भेजे गये थे। किन्तु १७४८ ई०की ११ वीं मार्चकी सरहिन्दके युद्धपर अपने डेरेमें नमाल पढ़ते समय तोपका गोला लगनेसे इनका देहान्त हुआ।

कमरुद्दीन मीर—एक सुप्रसिद्ध मुसलमान कवि। इनका उपनाम मिनत रहा। यह दिल्लीके अधिवासी थे। वारंग छेट्टिङ्गनेसुरभिदावादके नवाबकी सिफारिश पर 'मलिक-उश-शुबारा' अर्थात् कविराजका उपाधि इन्हें प्रदान किया। यह दक्षिण हैदराबाद निज़ामसे मिलने गये थे। वहां इन्होंने उनकी प्रशंसामें एक 'कघोटा' लिखा, जिसके लिये ५००० रु० तक पुरस्कार मिला। यह १७८३ ई०की कलकत्तेमें उर्दू और फ़ारसीके छेद साख शेर छोड़ मरे थे। इनका बनाया 'चमनिस्तान' और 'शफरिस्तान' अन्य रूप गया है।

कमल (सं० पु०-स्त्री०) कम-णिङ् भावे ष्यादित्वात् फलच्, कं जलं अस्ति फलङ्करोति, कम्-पल्-पच् वा। १ पद्म, कंबल। २ पद्म और पद्म देखो। यह श्वेत, नील और रक्त—त्रिविध होता है। कमल शीतल, वर्णकर एवं मधुर, और पित्त, कफ, लज्जा, दाह, रक्त, विस्रोटक, विष तथा विसर्पहर है। श्वेत शीतल एवं मधुर और कफ तथा पित्तघ्न होता है। किन्तु रक्त एवं नीलमें श्वेत कमलसे अल्प गुण रहता है। (भावप्रकाश) ०

२ जल, पानी। ३ ताम्ब, तांबा। ४ क्लोम, जहरा, तलखा। ५ शीपध, दवा। ६ सारसपत्ती। ७ मृगविशेष, एक हिरन। ८ पाटलवर्ण, एक रंग। ९ आकाश, आसमान्। १० चातकपत्ती, एक चिड़िया। ११ ध्रुवक, एक ताल।

"उक्तो नववर्षादिन सप्तमये च्चु र्द गृहः।

सवदमाचोर्दुःखः कमनीयं भवान्कः॥" (उत्तरीयदामोदर)

१२ पद्मकण्ठ। १३ कुक्षुम, रोरी। १४ मूत्राग्नय, मसाना। १५ ब्रह्मा। १६ कमलाका वसाया एक

कमीशन (अं० स्त्री० = Commission) १ आचरण, प्रतिकार, करतव। २ समर्पण, सुपुर्दगी। ३ अधि-कार, इष्टतियार। ४ पादेण, हुयन। ५ परार्थ-विक्रय, दलानी। ६ नियुक्तजन, जमात, जया।

कमीस (अ० स्त्री०) कमीज, किसी किस्मका कुरता।

कमुवन्दर (हिं० पु०) धनु मञ्जनकारी रामचन्द्र।

कमुवा (हिं० पु०) नौदण्डका मुष्टि, नाव चलानेके छोडका कमा।

कमून (अ० पु०) जीरक, जीरा।

कमूनी (फ्रा० वि०) १ जीरक-सम्बन्धीय, जीरसे ताज़ क रचनेवाला। जीरकके भवलेइको 'जवारिश कमूनी' कहते हैं। (स्त्री०) २ औपधविशेष, एक दवा। इसमें जीरा बहुत पड़ता है।

कमूल, कमला देखो।

कमेटी (अं० स्त्री० = Committee) कार्यसम्पादिका समा, पञ्चायत।

कमेटी (हिं० स्त्री०) कुमरी, कपोतिका।

कमेरा (हिं० पु०) कर्मकर, मजदूर, नौकर। प्रधानतः खेतीके काम करनेवाले नौकरको 'कमेरा' कहते हैं।

कमैला (हिं० पु०) १ शूना, वध्यस्थान, कत्लगाह। २ कमीला, एक पौदा।

कमेहरा (हिं० पु०) संस्थानविशेष, एक सांचा। यह मट्टीका होता है। इसमें कसकूटकी चूड़ियां टालो जाती हैं।

कमोदन (हिं० स्त्री०) कुसुदिनी, कोकावेली।

कमोदपुष्प (सं० स्त्री०) लसपुष्पविशेष, पानीमें छीने-वाला एक फल।

कमोदिक (हिं० पु०) १ कमोदराग गानेवाला। २ गायक, गवैया।

कमोदिन (हिं० स्त्री०) कुसुदिनी, कोकावेली।

कमोना—युक्तप्रदेशके बुनन्दगढ़र जिलेका एक ग्राम। यह काशी नदीके दक्षिण तटके थोड़ी दूर अवस्थित है। यहाँ एक सुप्रसिद्ध दुर्ग विद्यमान है।

कमोरा (हिं० पु०) १ मत्तुपात्रविशेष, मट्टीका एक बरतन। इसका मुख प्रमस्त रहता है। इसमें दुग्ध

दूधते और रखते हैं। यह दही जमानेके काम भी आता है। २ घट, घड़ा।

कमोरी (हिं० स्त्री०) सुदृ मत्तुपात्रविशेष, मट्टीका एक छोटा बरतन। इसका मुख प्रमस्त रहता है। यह दुग्ध दूधने तथा रखने और दही जमानेके काम आती है।

कम्प (सं० पु०) कपि भावे घञ् इदित्वात् सुम् । १ स्फुरण, नरजिग, धरधराहट, कपकपी। इसका संस्कृत पर्याय—वेपथु, वेपन, वेप और कम्पन है। २ उच्चारणविशेष, एक तन्मपु. पु. ज. यह स्वरितका एका संस्कार है। स्वरितके आगे उदात्त स्वर आनेसे इस स्फुरणकी आवश्यकता पड़ती है। ३ वेपथु, तुषारकी कपकपी। ४ अनुभावविशेष। यह म्-ह्रा-रसका सात्विक अनुभाव है। इसमें शीत, कोप, भय प्रभृतिमें अकस्मात् शरीर कांपने लगता है। ५ काँगरी, लभरा हुवा दीवारका किनारा। यह मन्दिरों की स्तम्भोंके नीचे रहती है।

कम्प (अं० पु० = Camp) १ गिविर, डेरा, खेमा। २ सैन्यनिवास, पड़ाव, छावनी। ३ सेना, फौज, सशकरी।

कम्पज्वर (सं० पु०) कम्पयुक्ती ज्वर, मध्यपदलो०। शीतज्वर, विषम, तपस्वरत्ना, ज्वरी। यह ज्वर वायुसे उत्पन्न होता है। इ. देखो।

कम्पति (सं० पु०) समुद्र, बहर।

कम्पन (सं० वि०) कपि-युच् इदित्वात् सुम् । १ कम्पयुक्त, कांपनेवाला, जिसको कपकपी लगी हो या जो कांपता हो। इसका संस्कृत पर्याय—चलन, क्रम्य, चल, सोल, चलाचल, चञ्चल, तरल, पारिप्लव, परिप्लव, चपल और चटुल है। २ कम्पकारक, कांपनेवाला। (पु०-स्त्री०) ३ कम्प, कपकपी। ४ शीतज्वर, जाड़ेका मोसम। ५ एक राजा।

“काम्योत्तराजः संमत्तः कम्पयन्तु महारतः।

सततः कम्पयामास यवनातिक एव यः” (महाभारत १।३।१२)

६ पक्षविशेष, एक हाथियार। ७ सन्निपातजन्य ज्वर-विशेष, एक बुद्धार। भावमिथने कफोत्थप सन्निपात ज्वरको ही कम्पन कहा है,—

नगर। १० हृद्योविशेष। इसमें तीन तीन छत्र-
बन्धके चार पद होते हैं। एकमात्रिक हृद्य और
हृष्य भी कमल कहता है। १८ पश्चिमोलक,
प्रांशका डिला। १८ गर्भाशयका प्रथमभाग, धरन,
फल। २० दीपक रागका द्वितीय पुत्र और जय-
जयन्तीका पति। २१ काचपात्रविशेष, शीमेका एक
गिलास। इसकी प्राकृति कमलसे मिलती है। वह
मोम-बत्ती जनानिके काम आता है। २२ रोगविशेष,
एक बीमारी। इससे चक्षु पीले हो जाते हैं। यहूदा
लोग इसे 'कावर' कहते हैं। (त्रि०) २३ कामुक,
खादिगमन्द, वाचनेवाला। २४ पाटलवर्षयुक्त।

कमल-पर्यादा (हिं० पु०) पद्मबीज, कमल-गद्दा।

कमलक (सं० स्त्री०) कमल स्वार्य कन्। १ कमल,
कंबल। २ काश्मीरख्य नगरविशेष। (राज० ४१२१२)

कमलकन्द (सं० पु०) मालुक, कमलकी जड़।

यह कटु, तुवर, मधुर, गुरु, मलस्राशकर, रुच,
नेत्र, वृष्य, शीतल, हृलं एवं धातुक और रक्तपित्त,
दाह, टण्ड्या, कफ, पित्त, वात, गुण्ड, काच, छामि,
मुखरोग तथा रक्तदोषनाशक होता है। (देवबलिपट्ट)

कमलकर्णिका (सं० स्त्री०) पद्मबीजकोप, कमल-
गद्देकी खोल। यह मधुर, तुवर, शीतल, लघु, तिक्त,
मुखलच्छकार और रक्तदोष तथा ट्याहर होती है।

(देवबलिपट्ट)

कमलकीट (सं० पु०) कमलवर्षः कीटः। १ कीट-
विशेष, कोई कीड़ा। २ ग्रामविशेष, कोई गांव।

कमलकेशर (सं० पु०-स्त्री०) पद्मकिशोरक, कमलका
सूत। यह शीतल, प्राची, मधुर, कटु, रुच, गर्भ-
स्थेयंकर और रुच्य होता है। (देवबलिपट्ट)

कमलकारक (सं० पु०) कमलस्य कारकः। १-तत्।
पद्मकलिका, कमलकी कली।

कमलकोप (सं० पु०) कमलस्य कोपः। १-तत्।
कमलकारक, कमलकी कली।

कमलखण्ड (सं० स्त्री०) कमल-खण्ड। कमलविशेषः
वर्षः। या भाषाः। (प्रांशक) पद्मसूत्र, कमलकी
मजला।

कमलगद्दा (हिं० पु०) पद्मबीज, कंबलका तुण्डम।

यह हृद्यकसे वद्विगंत होता है। वस्त्रल कठोर पड़ता
है। कमलगद्दा खेतवर्षे धारभूत हृष्यके समान
रहता है। कमलबीज देखो।

कमलगर्भ (सं० पु०) पद्महृद्यक, कंबलका छाता।

कमलगर्भम (सं० त्रि०) कमलगर्भस्य प्रामा इव
प्रामा यस्य, मध्यपदसो०। पद्मके मध्यखलकी भांति
कान्तिविशिष्ट, कंबलके हृत्तेकी तरह चमकनेवाला।

कमलगुप्त—संस्कृतके एक प्राचीन कवि। (द्विचक्रवर्णक)

कमलच्छद (सं० पु०) कमलः कमलवर्षः छदः
पक्षी यस्य, वहुप्र०। १ बद्धपक्षी, बगला, वूटीमार।
२ पद्मछद, कंबलका पत्ता।

कमलज (सं० पु०) कमलात् विद्योर्नामिकमलालु,
जायते, कमल-जन-ह। द्वया।

कमलदेव—संस्कृतके एक प्राचीन विद्वान्। इसका
निवासस्थान चन्द्रपुर रहा। कमलदेव गिम्बदेवके
पिता और गणितप्रदीप-रचयिता लक्ष्मीधर तथा
पदव्याससिंह-रचयिता मागनाथके पितामह थे।

कमलदेवी (सं० स्त्री०) काश्मीरराज कलितादित्यकी
पत्नी और राजा कुवलयपोड़की माता।

(राजतरङ्गिणी ४।१०१)

कमलनयन (सं० त्रि०) कमलसदृश सुन्दर नेत्रयुक्त,
जिसके कंबलकी तरह खूबसूरत प्रांश रहे। (पु०)
२ विष्णु। ३ रामचन्द्र। ४ क्षण।

कमलनयन—संस्कृतके एक प्राचीन विद्वान्। देवराजने
निघण्टु-भाष्यमें इनका वचन उद्धृत किया है।

कमलनयनदोषित—संस्कृतके एक प्राचीन विद्वान्।
कवीन्द्रने इनका उल्लेख किया है।

कमलनाभ (सं० पु०) नाभिमं कमल रज्जुनेवाले
विष्णु।

कमलनाल (सं० स्त्री०) मूबास, कंबलकी टण्डी।

"कमलनाल इव पाप बद्धम्"।

रत्न बीजव प्रभाष से पानुं ३" (दुमरी)

कमलपत्राक्ष (सं० त्रि०) कमलपत्रवत् पक्षियस्य।
कमलपत्रकी भांति चक्षुविशिष्ट, जिसके कंबलकी
पक्षुकी ठीकी प्रांश रहे।

कमलवन्द्य (सं० पु०) पित्तकायविशेष, किरी

कम्पना के अर्थों में बायो रातो निद्रा भक्तियः ।
 कम्पने कम्पने चैव सुखोत्पद्यते ।
 कम्पनीयस्य विद्वान्नि सुविपासक लघवेत् ।
 सुमितिः सन्निपातो इत्युक्तः कम्पनम् 'कम्प' इति । (भाष्यकालः) ।
 कम्पनीयस्य सुविपासकं शरीरमेव जडता प्राप्ती, वायु
 गदगद पड जाती, रात्रिको निद्रा अधिक सताती,
 पांशु सुखाती और सुखमें मिश्रण देखाती है । सुमि-
 योनिः इसी खरका नाम कम्पन रहता है । ८ काश्मीर-
 निकटवर्ती एक नगर । ९ अक्षरपवित्रेण, एक तत्त्वफ-
 लुज । १० कंवायी, हिन्दन डुलनकी जालत ।
 कम्पना (सं० स्त्री०) कम्पन-टाप । १ नदीविशेष,
 एक दरया । २ सेना, फौज ।
 कम्पनीय (सं० त्रि०) कम्पन-टका । चलनशील,
 सुतट्टरिक, जो हिले डुल संकता हो ।
 कम्पमान (सं० त्रि०) कपि-मानचं इदित्यात् सुम् ।
 कम्पयुक्त, जो कांपता हो ।
 कम्पयत् (सं० त्रि०) कंवापिवाला, जो हिलता
 डुलता हो ।
 कम्पलक्ष्मा (सं० पुं०) कम्पः चलनं सद्यः अक्षयं
 यस्य, बहुव्री० । वायु, हवा ।
 कम्पवायु (सं० पुं०) कम्पः कम्पकरः वायुः । वाति-
 रोगविशेषः । वायुकी एक बीमारी । इसमें स शरीर
 कंपने लगता है । वातवापि देखी ।
 कम्पा (सं० स्त्री०) कपि भावे ष-टाप । कम्पन,
 कांपकपी ।
 कम्पाक (सं० पुं०) कम्पया चलनेत कायति प्रका-
 शते, कम्प कंक । वायु, हवा ।
 कम्पावित्त (सं० त्रि०) कम्पयुक्त, कंपनेवाला, जो
 खंभराया हो ।
 कम्पित (सं० स्त्री०) कपि भावे क्त । १ कम्पन,
 कांपकपी । (त्रि०) २ कम्पयुक्त, कंपनेवाला ।
 ३ कंवाया, जो हिलताया डुलाया गया हो ।
 कम्पित्त (सं० पुं०) कम्प-इत्यच् । १ शोथनी, सफेद
 नौसादर । इसका स रूत पर्याय—कम्पित्त, कम्पित्त,
 कम्पील, कम्पित्तक, रक्ताङ्ग, रेषो, रेषनक, रक्षक,
 नोहितान् और रक्तचूर्णक है । राजनिघण्टु के मतसे

यह विरेचक, कटु, सख्य एवं शोथ और प्रघ, कफ,
 काम तथा तन्तुलादिनाशक है । फिर सुश्रुत इसके
 तैलकी तिक्त, कटु, कवायरस एवं शंखगोष्ठक और
 अघोगत दोष, कृमि, कफ, कुष्ठ तथा वायुनाशक बताते
 हैं । २ युक्तप्रदेशके फरक्काबाद जिलेकी कायमगंघ
 नेश्मोलको एक ग्राम । महाभारतमें इसका नाम
 काम्पित्त लिखा है । कल्पि न देशी ।
 कम्पिना (सं० स्त्री०) घृतकुमारो, घोड़वार ।
 कम्पित्त (सं० पुं०) कम्प-इत् । खेतविशुद्ध, सफेद
 नौसादर ।
 कम्पित्तक (सं० पुं०) कम्पित्त खाये कन् । इत-
 त्रिहत्, सफेद नौसादर ।
 कम्पित्तमालक (सं० पुं०) बहुकामेद, किमो किष्करी
 मौलसिरो ।
 कम्पित्त, कल्पि देशी ।
 कम्पी (सं० त्रि०) कम्पी अस्यास्ति, कम्प इति ।
 १ कम्पयुक्त, कंपनेवाला । २ कंपनेवाला, जो
 कांपता हो । "मौली शोभो निरःकम्पी तथा विचित्रपत्तकः ।
 "अर्धमो इत्युक्तस्य कम्पे मे पाठकारव्याजः" (विद्या ६२) ।
 कम्पी (सं० त्रि०) कपि-पिचु कम्पि यत् । १ चलन-
 शील, सुतट्टरिक, जो हिलताया डुलाया जा संकता हो ।
 २ स्वरूपके साथ खंभारित होनेवाला, जो पावाजकी
 हिजा डुला कर बोला जाता हो ।
 कम्प (सं० त्रि०) कम्पि-र । अनिश्चित कालपर्यन्त वि-
 शीरो रः । वा शशा १६८ । कम्पावित्त, कंपनेवाला ।
 "विशेष कम्पाणि सुवापि कम्पति" (शिव १६२) ।
 कम्पा (सं० स्त्री०) कम्प क्रियां टाप । गाथा,
 हास ।
 कम्पन—दाक्षिणात्यके प्रसिद्ध तामिल कवि । मद्भ्राज
 प्रान्तीय क्षेत्र जिलेके वैश्वेद नैरर नामक ग्राममें
 इन्होंने जन्म लिया था । यह ब्रह्मस शूद्रवंशीय रहे ।
 इन्होंने बारह वर्षके वयसमें बाल्मीकि-रामायणका
 तामिल भाषामें अनुवाद प्रारम्भ किया और पचास
 वर्षके वयःकालकाल पूरे उत्तार दिया । सोमाधिप
 करिकाल घोस कवित्वकी गुणवै सुगम हो इनकी
 प्रशंसा करते थे । फिर राजेन्द्र-चौहने इन्हें अपनी

मिस्रता और शोक वर्णनामें भी नाम निकलता। नारङ्गी चीनसे भारत आयी है। किन्तु डाक्टर स्टीनेबिया इसे भारतका ही द्रव्य बताते हैं।

यह चार प्रकारकी होती है—(१) सन्तार, (२) नारङ्गी, (३) मस्रता और (४) मन्दारिन।

(१) सन्तरेका फिलका चिकना, पीला और नारङ्गी रहता है। त्वक् पृथक् पड़ती है। इस जातिकी कमला नागपुर, दिल्ली, अजमेर, गुड़गांव, साह्यौर, मूलतान, पूने, मन्दाज, कुर्ग, सिलहट, भोटान, नेपाल और सिङ्घसमें लगायी जाती है। अग्रहायण वा पौष मास इसका फल पकता है।

(२) नारङ्गी सन्तरेसे पश्चिम उत्पन्न होती है। लगानेसे यह भारतमें सब जगह उपज सकती है। इसका फिलका सन्तरेसे कड़ा और पतला रहता है। फिर त्वक् भी पृथक् नहीं पड़ती। यह माघ मास फल देती और धूप सह लेती है। इसका रस सन्तरेसे फीका निकलता है।

(३) मस्रता या सुवर् नारङ्गी कई प्रकारकी होती है। आजकल हिमालय और दारजिलिङ्गमें जो हरी और बड़ी नारङ्गी उपजती, वह इसीकी भवन्ति मात्र समझ पड़ती है। ब्रह्मदेशमें बिलकुल इसी प्रकारकी एक नारङ्गी मिलती है। पूनेकी छोटी लाल 'मुसेम्बी' जल्दीधारसे इस देशमें आयी है। सखनजमें सिपाघो विद्रोहसे पछसे सुवर् नारङ्गी बहुत लगायी जाती थी। यह कंकरोली जमीनमें खूब होती है। इस अमृततुल्य स्वाद रहती है। गुजरातवालेकी सुवर् नारङ्गी अंगरेजोंकी बहुत अच्छी लगती और सबसे उम्दा समझ पड़ती है।

(४) मन्दारिन देखनेमें छुद्राकार और रक्तवर्ण होती है। यह खानेमें सुखादु लगती है। सकल प्रकार कमलाकी अपेक्षा इसके पत्र और फलमें सद्गन्ध अधिक रहता है। प्रधानतः यह पर्वतोंपर उपजती है। भारतवर्षमें प्रकृत मन्दारिन नहीं मिस्रती, सिङ्घसमें देख पड़ती है।

पहले युरोपमें कमला उपजती न थी। इसे पोर्तुगोल भारतवर्षसे वहाँ ले गये हैं।

नारङ्गीका व्यवसाय प्रधानतः दो स्थानोंमें होता है—सिलहट (श्रीहट्ट) और नागपुर। इसके लगानेमें मूलपर भार्ता रहना आवश्यक है। किन्तु जल निसल होना न चाहिये। श्रीहट्टमें इस बातका सुविधा है। भूमि ढाल रहनेसे नदीकी लहर आती और वृक्षोंकी सींचकर बची जाती है। वहाँ कमसे कम १००० एकड़में नारङ्गी लगाते हैं। पश्चिम घण्टे दो घण्टे इस बागमें घूम सकता है। दिसम्बर और जनवरी मास नारङ्गीसे सदे वृक्ष देख दृश्य फूल उठता है। ऐसा बाग युरोपमें भी कहीं देख नहीं पड़ता।

द्वि—वीज जनवरी और फरवरी मास प्रायः ६ इंच भूमिके सम्प्टमें सघनरूपसे बोया जाता है। उक्त सम्प्ट दतने कचे रहते, कि शूकर अपना दांत लगा नहीं सकते। फिर वहाँ और गिलहरियोंको दूर रखनेके लिये जाल भी डाल देते हैं। वृष्टि होनेसे बीजाङ्कुर भिन्न किये जाते हैं। किन्तु इस कार्यमें सम्प्ट तोड़ मूलसे शक्तिवाकी इस प्रकार भटकते, जिसमें कोई हानि न पड़े। पीछे उन्हें उद्यानके पोषणस्थानमें लगाते हैं। बीजाङ्कुर पोषणस्थानमें तयतक रहते, जबतक उद्यानमें अपने इम्पित स्थलपर फिर नहीं पहुँचते। किन्तु यह नियम सदीय प्रतीत होता है। कारण पोषणस्थान वर्षमें केवल एकवार पत्तोवर मास निराया जाता है। कृत्तम लगाना किसीको मालूम नहीं। फिर बीज चुननेमें भी श्रम ही चेष्टा करते हैं।

उपरोक्त पथ निरूपण—प्रत्येक संघाहकके पास २० फीट ऊँचे बांसकी सिन्धी होती है। उसकी पीठपर एक मोटा जालीदार रेशा लटकता, जिसका सुँह शेतके छेसे खुला रहता है। इसी रेशेमें यह नारङ्गी तोड़ तोड़ डालता है। फिर वह उत्तरनेसे पहले सुरभायो पत्तियाँ और सूखी डालियाँ भी गिरा देता है। सिवा इसके नारङ्गीके वृक्षमें दूसरा हाथ नहीं लगाते। सड़के गुलेस लिये कौय उहाया करते हैं। भाषेसे गिरी नारङ्गियाँ सूखी और कुत्तीकी खिनायो जाती हैं। इसको गणना गण्डके हिस्सावसे चनती है। २५० गण्डे (१०००)का एक सोन होता है। इसकी नारङ्गियाँ ६) २० सोन बिकती हैं।

सभामें बोला राजकविका सपाधि दिया। यह ८०० शककी विद्यमान रहै। इनका बनाया तामिल रामायण 'कस्वनपादल', 'काश्विवरम् विद्वतात्मन्', 'बोल-कुवड्ड' (करिकाल बोलका इतिहास) और 'कस्वन अगराधि' नामक तामिल अभिधान दाक्षिणात्यमें प्रसिद्ध है। इन्होंने मदुरा नगरमें ६० वर्षके अयःकालकाल इहलोक छोड़ा था। (Wilson's Mackenzie Collection.)

कोई कोई इनका नाम कस्वर और जम्बुस्थान तञ्जौर जिलेका कस्व नाडू नामक ग्राम बताता है। इन्होंने रामायणका अपना तामिल अनुवाद रामेन्द्र बोलके समयसे पारम्भ कर कुशोशुडू बोलके राज्यकाल पूरे उतारा था। (Caldwell's Dravidian Grammar, p. 134.)

कस्वम्—मन्द्रालप्रान्तके कर्णाल जिलेका एक नगर। कस्वर (सं० पु०) कस्व-अरन्। विधिधवर्ण, चित्रवर्ण, गुनागुन रंग। (त्रि०) २ नानाविध वर्णविशिष्ट, रंग-व-रंग।

कस्वर—सिन्धुप्रदेशकी एक तहसील। यह अक्षा० २०° २८' एवं २३° ५६' इ०' ८०' और देशा० ६७° ३५' ४५' तथा ६८° १०' पू०के मध्य अवस्थित है। भूमिका परिमाण ६७० वर्गमील पड़ता है। यहां प्रायः एक लक्ष मनुष्य रहते हैं। इसका अपर नाम यहादतपुर है। शिकारपुर जिलेसे यहां तहसील छठ पायी है। इसके प्रधान नगरका नाम भी कस्वर ही है। यह अक्षा० ०४° ३५' ८०' और देशा० ६८° २' ४५' पू०पर अवस्थित है। १८४४ ई०को बलुचियोंने उक्त नगर लूटा था। फिर दूसरे ही वर्ष अग्निप्रयोगसे कस्वर एककास्र भ्रंस हो गया।

कस्वल (सं० पु० स्त्री०) कस्व वृक्षादित्त्व कसृच्। १ सिपादिके बीमसे निर्मित एक वृक्ष, भेड़-बगैरहके बांससे बना एक कपड़ा। इसका संज्ञात पर्याय—रत्नक, वेद्यक, रोमधोनि, रेशुका और प्राधार है। इस देशमें कितने ही कस्वल व्यवहार करते हैं। पूर्वं कस्वल कवचका कार्य देता था। किसी किसीके कथनानुसार कस्वलकी खोई भरा पहातनेसे बन्दूककी गोली

तक शरीरमें घुस नहीं सकती। २ सर्पविशेष, कोई सर्प। ३ गो प्रभृतिके गलका रोम, भवेविशेषकी गर्दनका बाल। ४ उत्तरीय, जमी चादर। ५ रुग्णविशेष, एक छिरन। ६ नागहय, सांपका जोड़ा। इसमें एक पाताल और एक वरुण देवके सभास्थलमें रहता है। ७ छमिविशेष, एक जोड़ा। ८ तीर्थविशेष।

“अयम् सुप्रतिष्ठानं कल्पनाश्रयती तथा।

तीर्थं भोजवती चैव विदिरपा प्रजापतेः ४” (भारत, वन ८५०)

६ जल, पानी। १० लोषिकाशाक, जीमिया। ११ साक्षा।

कस्वलक (सं० पु०) कस्वल स्वार्थे कन्। कस्वन,

जमी कपड़ा, जमी पोशाक।

कस्वलकारक (सं० पु०) कस्वल करोति, कस्वल-

क-अल्। कस्वलनिर्माता, जमी कपड़ा-बनानेवाला।

कस्वलधारक (सं० पु०) कस्वल-ध-अल्। कस्वल-

धारी, जमी कपड़ा धोनेवाला।

कस्वलधावक (सं० पु०) कस्वल परिव्यार करने-

वाला, जो जमी कपड़ा धोता हो।

कस्वलवर्धय (सं० पु०) १ अन्यकराजकी एक

पुत्र। (भारत २४२१)

कस्वलवान् (सं० त्रि०) कस्वलो ऽप्यास्ति, कस्वल-

मनुष्य, मनुष्यः। १ कस्वलविशिष्ट, जमी कपड़ा

रखनेवाला। २ प्रशस्त गलकस्वलविशिष्ट, गर्दनपर

खूब बाल रखनेवाला।

कस्वलवाद्या (सं० पु०) रथविशेष, एक गाड़ी। इस

पर मोटा कस्वल टका रहता है। इस गाड़ीमें बैल

ही जुतते हैं।

कस्वलयाष्टक, कस्वयाष्टक शब्दों

कस्वलहार (सं० पु०) कस्वलं हरति, कस्वल-ह-

पण। १ कस्वलहारक, जमी कपड़ा चोरानेवाला।

२ ऋषिविशेष।

कस्वलाप (सं० स्त्री०) कस्वलरूपं ऋषयम्, कस्वल-ऋष-

वृष्टिः। प्रवृत्तकस्वलरूपनाचं दग्नापते। (भा १।१।८८) (शशि)

कस्वलरूप ऋष, जमी कपड़ेका कर्ज।

कस्वलिका (सं० स्त्री०) कस्वल-ई-स्वार्थे कन् ङल्।

टाप, च। १ सुद्र कस्वल, कमली। २ कस्वल-

रुग्णकी स्त्री।

नागपुर और कामठोमें भी नारङ्गीके बहुतसे बाग हैं। मध्यप्रदेशमें इसकी छवि बढ़ रही है। नागपुरका सन्तरा बम्बई अधिक जाता है। युष्मप्रदेशमें नेपाल, दिल्ली और कुछ नागपुरसे भी नारङ्गी आती है।

नारङ्ग—मधुरास्त्र, अग्निप्रदीपक और वातनाशक है। फिर दूधरी नारङ्गी अत्यन्त अस्त्ररस, उष्णवीर्य, दुग्ध, वायुनाशक और सारक होती है। (भास्कराचार्य)

राजनियण्ट्रके मतसे यह मधुर एवं अस्त्र, गुरु, रोचन, बल्य, रुच्य और वात, भ्राम, कृमि, शूल तथा अमनाशक है।

हकीमीमें नारङ्गीके छिलके और फूलको गम और खुशक समझते हैं। इसका गुदा तर रहता है। उष्णकसे खांसी आने या बोखार चढ़ जानेसे नारङ्गी खिलाते हैं। इसका अर्क सफुरे और सफुरेके दस्तको दूर करता है। कौड़े या कूँको रोकनेके लिये इसे बहुत काममें लाते हैं। नारङ्गीका अर्क भी निःशायत ताकतवर है। इसके छिलके और फूलसे तेज दनता, जो मालिशमें देवाके तौर पर चसता है।

डाक्टर एन्सली लिखते,—‘हिन्दू चिकित्सकोंके मतानुसार नारङ्ग रसोद्यक, ल्वरमें विपासानिवारक, पीनसरोगहर और सुधावर्धक है। यौषके समय लक्ष्मी नारङ्गीका अर्क अंगरेजोंके लिये बहुत उपोदिय होता है। इसका छिलका वातनाशक और अजीर्ण रोगके लिये हितकर है।’

भारतवर्षीय फार्माकोपियाके मतसे नारङ्गी बलकर और अग्निवर्धक है। अजीर्ण रोग और साधारण दुर्बलता पर यह बड़ा उपकार करती है। इसके पत्रको चूवानेसे जो जन्म निकलता, यह पाषाण कृमिनाशक एवं मुद्दारीगणपर प्रयोग करनेसे आक्षेप मिटता है।

सुखपर व्रण होनेसे कौड़े कौड़े नारङ्गीका सूखा छिलका घिसकर लगाता है। फिर सूटे ही छिलकेको जन्ममें रगड़ चर्मरोगपर व्यवहार करनेसे आद्य फल मिलता है।

भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र ही नारङ्गी सुखाद फलकी भांति समाहृत होती है। इसका हृष्य बृद्धिदिन पर्यन्त

जोता जागता है। सुननेमें आया—एक एक हृष्य ५।६ ग्राम वर्षसे नहीं सुरभाया। इसका हृष्य ५० फीट पर्यन्त हृष्य विस्तृत होता है। प्रत्येक हृष्यमें ५००से १००० पर्यन्त फल उत्तरते हैं।

नारङ्गका पत्र लक्षमें चूवानेपर एक प्रकार लक्ष निकलता है। उसका गन्ध अति तीव्र अथवा छलिकर होता है। अंगरेज इसे ‘निरोली आयेन’ कहते हैं। यह अंतर बनानेमें काम आता है। विलायतयाली लेवेण्डर, साबुन प्रभृति द्रव्योंमें इसे मिलाते हैं।

नारङ्गीके फूलसे जो तैलवत् निर्यास निकलता, उसका पत्र अति उत्कृष्ट रहता है।

किसी-किसी वैद्यनिकने देवभाल नारङ्गीके तैलसे कपूर निकाला है। उस कपूरको ‘गिरोमी काम्पर’ कहते हैं।

४ गङ्गा। “बनला अस्त्रजितिका आनी बहुपरिकी।” (आयो० २४।४४) ५ नरतकी विमेष, एक नाचने-गानेवाली रण्डो। यह पीछे राजा जयापोडकी पत्नी बनी थी। ६ काश्मीरस्थ पुरीविमेष, काश्मीरका एक शहर। (राजतरङ्गिणी ४।४८२) ७ हस्तोविमेष। इसमें दो नगण और एक सगण रहता अर्थात् लक्ष वर्षके पीछे एक युगवर्ष लगता है।

‘विदुष नगण कहितः सगण इह हि विहितः।
अचित्पति मति विमला चित्पि मयति ककला।’ (हरजावर)

८ कामरूपमें प्रवाहित एक नदी। इस नदीके तौरकी भूमि अधिक उर्वरा है। (म० ब्रह्मण्ड २।१।१४)

९ उत्तर विहारकी एक नदी। यह नदी नेपाल राज्यमें हिमालयसे निकली है। इसके दक्षिण अंगकी बृद्धी कमला कहते हैं। ब्रह्मण्डमें इसीको तेर-भुक्तकी पुष्पमल्ला कमला नदी बताया है। इसके तीरपर गिलानाथ ग्राम है। उसी ग्राममें गिलानाथ नामक महादेवकी सिद्धमूर्ति प्रतिष्ठित है।

(म० ब्रह्मण्ड ३।४।१८)

१० विद्यानराज्यका एक प्राचीन ग्राम। (म० ब्रह्मण्ड २।२५०) कमला (हि० पु०) १ कम्बल, भाँभा, सूँडो। यह क्येदार कीड़ा है। मनुष्यका देह इसके अर्धसे सुखलाने लगता है। २ छनिविमेष, टोषा, सट,

कम्बलिवाद्यक (सं० स्त्री०) कम्बलः सास्त्रा-पस्त्यस्य, कम्बल-इति; कम्बलिभिर्ह्यपैवह्यति, कम्बलिन्-बहु कर्मणि ष्यत् खाद्यं संप्रायां वा कन् । योगकट, बैलगाड़ी। इसका संस्कृत पर्याय—गन्धी और गान्धी है।

कम्बली (सं० पुं०) कम्बलः गलकम्बलः प्रथमो इत्यस्य; कम्बल-इति । १ वृष, बैल । (त्रि०) २ कम्बलाच्छादित; जनो कपटसे टका हुआ।

कम्बलीय (सं० त्रि०) कम्बलाय इतिम्, कम्बल-ल । मेघसोमयुक्त, जनो कपटके सायक।

कम्बला (सं० स्त्री०) कम्बल-यत् । कम्बल; संप्रायात् । पं प्राया शतदलपरिमित कर्पा; सौपल जन।

कम्बलायी (सं० पुं०) शङ्खरिक्त, किसी किष्करी चोत।

कम्बि (सं० स्त्री०) कम्बु या हूलजात् विन् । १ दर्वी, इत्या, चम्बल । २ वंश, वांसकी खोपाच । ३ शंशा-द्वार, वांसकी कीपल।

कम्बिका (सं० स्त्री०) वादित्रविशेष, एक बाजा।

कम्बु (सं० पुं०) कम्ब-उष्-सुक्चप् । १ गड्ढ, घोषा, कौडी। २ वलय, सौपल चूड़ी। ३ मासुक, घोषा। ४ हस्तो, हाथो। ५ विशवर्ष, कई तरहका रंग। ६ घोषादेश, गटैन। ७ मलक, नली, इड्यो। ८ मान-भेट, एक नाप।

कम्बुक (सं० पुं०) कम्बु खाद्यं कन् । १ कम्बु, गड्ढ। २ मोचपुष्प, कौलीना गड्ढस।

कम्बुकण्ठी (सं० स्त्री०) कम्बुरिव कण्ठी इत्या; कण्ठ-होय । गड्ढकी भांति कण्ठमें तीन विद्य रश्मि-वाली स्त्री, जिस औरतके गलेमें गड्ढकी तरह तीन दाग रहें।

कम्बुककुसुमा (सं० स्त्री०) गड्ढपुष्पी, सखीसो।

कम्बुका (सं० स्त्री०) शङ्खगन्धाहस, पसयधका पेड़। पत्रगन्धा देवी।

कम्बुकाठा (सं० स्त्री०) कम्बु विशवर्ष काठ यस्या; बहुव्री। शङ्खगन्धाहस, पसयधका भौड़।

कम्बुवीच (सं० त्रि०) कम्बुरिव रिखात्रययुक्ता वीच यस्य । गड्ढकी भांति रिखात्रयविशिट गण्डदेशयुक्त,

जिसके गलेमें गड्ढकी तरह तीन घतरें रहें। "कम्बुवीच पञ्चराशो भर्तृपुत्रो अश्विनः" (भारत १।१।११)

कम्बुवीचा (सं० त्रि०) कम्बुरिव रिखात्रययुक्ता वीचा, उषमि०। गड्ढकी भांति रिखात्रययुक्त वीचा, गड्ढकी तरह तीन सतर रखनेवाली गटैन।

कम्बुपुष्पी (सं० स्त्री०) कम्बुपद्म शम्भुपुष्प यस्या; बहुव्री०। गड्ढपुष्पी, सखीसो।

कम्बुमालिनी (सं० स्त्री०) कम्बुतुष्य पुष्पाणां माना-सुसूदः अस्त्यस्याः। गड्ढपुष्पी, सखीसो।

कम्बु (सं० त्रि०) कम्बु-कृ निपातनात् साधुः। चन्द्रकान्त चम्बु कम्बुतुष्यविशुः। उष. १।१४। १ पद्महरण-कारी, चोरानिवाहा। (पुं०) २ तस्कर, चोर। ३ वलय, चूड़ी। (स्त्री०) ४ गड्ढ।

कम्बुक (सं० पुं०) कम्बु खाद्यं कन् । १ कम्बु, गड्ढ। (वें०) २ पञ्चलक, धानकी भूमी।

कम्बुपूत (सं० पुं०) गड्ढ, खरमोहरा।

कम्बो—जातिविशेष एक कोम। पाजकत इस जातिके लोग पञ्चाय और युक्तप्रदेशके विजयनोर जिलेमें रहते हैं। पूर्वका कम्बो सिन्धुदल ढोड़, काउलके उत्तर प्रदेशमें वास करते थे। संस्कृत शास्त्रमें इन्हींको 'कम्बोज' और इनके पूर्ववासस्थानको 'कम्बोज' कहते हैं। उस समय यह सकल भारतीय चात्रिय रहे। किन्तु मुहम्मद गज़नवीने इनमें कितनों को को मुसल-मान् बना डाला। सुगत इनसे बड़ी घृणा रखते थे। पारसीमें कहते हैं,—

"शोचन कम्बो शीघ्रं परंगुण् सोम परमान कम्बोते।"

कम्बोज (सं० पुं०) कम्बु-भोज । १ गड्ढविशेष, किसी किष्कका खरमोहरा या घोषा। २ इति-विशेष, एक जाथो। ३ देशविशेष, एक-सुक। यह भद्रगानिस्तामका एक भाग है। इसकी पचस्विति गान्धारके निकट मानी जाती है। किन्तु शक्तिप्रहम-तत्त्वमें निषा है,—

"गान्धारदेशमारान्तं यं पारविष्यन्तः।

कम्बोजदेशो देवेति वागिनामिषयथाः ॥"

यथायसि सगा स्नेच्छु देशके दक्षिणपूर्य पर्यन्त कम्बोज गिना जाता है। यहां विस्तर घोटक सत्य है।

एक लम्बा और सफेद कीड़ा। यह अन्न और चीय-
मात्र फसादिमें पड़ता है।

कमलाकार (सं० पु०) कमलानां आकरः उत्पत्ति-
स्थानम्, ६-तत्। सरोवरविशेष, एक तालाब। जिस
सरोवर वा तड़ागमें अधिक कमल रहते, उसे ही
कमलाकार कहते हैं। २ पद्मसमूह, कर्धलोका
मजमा। ३ कमलाकरभट्टनिर्मित स्मृतिशास्त्रका
एक ग्रन्थ। ४ गोदावरी-तीरवती देवगिरिनिवासी
वृत्सिंहके पुत्र। इन्होंने सिद्धान्ततत्त्वविवेक और
जातकतिलक नामक संस्कृत ग्रन्थ बनाया था।

कमलाकर भट्ट—विख्यात स्मृतिग्रंथकार। यह राम-
कृष्णभट्टके पुत्र, नारायणभट्टके पीत और दिनकर
भट्टके सहोदर थे। इन महात्माने अपने स्मृतिशास्त्र
बनाये। इनके निम्नलिखित ग्रन्थ प्रधान हैं—१ तत्त्व-
कमलाकर, २ पूतकमलाकर, ३ तीर्थकमलाकर,
४ सस्कारप्रयोग वा संस्कारपद्धति, ५ कार्तवीर्यार्जुन-
दौपदानप्रयोग, ६ गान्धिरत्न, ७ शूद्रधर्मतत्त्व, ८ सहस्र
चण्डादि विधि, ९ निर्णयसिन्धु, १० विवादाताण्डव।
इनके ग्रन्थ पढ़नेसे समझ सघाते—कमलाकर भट्ट
१५३८ तककी विद्यमान रहे।

कमलाकान्त (सं० पु०) १ लक्ष्मीपति विष्णु।
२ राम। ३ कृष्ण।

कमलाकान्त भट्टाचार्य—१ बङ्गालके एक दिग्गजपण्डित।
यह नवहोपाधिपति महाराज कृष्णचन्द्रके समसाम-
यिक रहे। किसी किसी श्लोकमें इनका नाम पाया
है—“श्रीकाशकमलाकान्त बरगणभद्रः” किन्तु अन्य कोई
परिचय नहीं मिलता। कहते—श्रीकान्त, कमलाकान्त,
बलराम और अक्षर चारों पण्डितोंके एकत्र एकपत्र ही
विचारपर बैठनेसे स्वयं सरस्वती भी नपर पल अव-
लम्बन कर जीत सकती न थीं। महाराज कृष्णचन्द्रने
इन्हे स्वीय समामें रखनेके लिये बड़ी चेष्टा की। किन्तु
किसी विशेष कारणसे यह विरल ही और राजसभा
छोड़ अपने ग्राममें आकर रहने लगे। चौबीस-परगनेके
अन्तर्गत 'पूड़ा' ग्राममें इनका वास था। पण्डित-
मण्डलीका वास रहनेसे पूड़ा छोटे नवहोपके नामसे
विख्यात हुआ। आज भी वहाँ इनके वंशधर रहते हैं।

२ एक प्रसिद्ध साधक और वर्धमानको राजसभाके
पण्डित। १८०६ ई०को अस्थिकाकालमें वर्धमान
आ इन्होंने तत्कालीन वर्धमानाधिपति तेजचन्द्रकी
रिभाया और सभाके पण्डितका पद पाया था।

कमलाकान्त सांख्यिक, अभिमानशून्य और देवीके
परम भक्त रहे। इष्टकी निठासे मुग्ध ही तेजचन्द्रने
इन्हे अपने शुभपदपर वरण किया और निवासार्थ
वर्धमानके निकट कोटासहाय ग्राममें सुन्दर भवन
बनवा दिया। उक्त भवनमें कमलाकान्त महासमा-
रोहसे शीश्यामापूजा मनाते। इस पूजाके दिन शत्रु
मित्र सकल एकत्र ही इन्हें छाताथे करते और इनकी
भक्तिगाथा सुनते थे।

जैसी पदावलीसे रामप्रसादने देवीकी रिभाया और
जैसी पदावलीने, आजतक बङ्गालियोंके हृदयमें अमृत
बहाया, कमलाकान्तने वैसी ही पदावली गा कर
किसी समय वर्धमानवासिर्वाको उत्सत बनाया। क्या
बालक, क्या युवक, क्या हृद—जो लोग पशुरोध
लगाते, उन्हींको यह किसी न किसी तास-स्वरमें एक
श्यामाविषयक पद स्वयं बना, गा एवं सुनाकर
रिभाते थे।

यह निर्भीक और सरलचित्त रहे। लोगोंसे सुन
पाते,—एक दिन कमलाकान्त रात्रिकालको थोड़-
गांवके मैदानसे चले जाते थे। इटाव कतिपय
दस्युने भौंमरवसे उनपर आक्रमण किया। उन्हींने
देखा, कि उसवार उनका अन्तिमकाल उपस्थित था।
फिर वह निर्भय परमानन्दसे रामप्रसादके स्वरमें
श्यामा माताको पुकारने लगे। उक्त गान सुन दस्यु,
मोहित हुये थे। उन्हींने वैरभाव छोड़ और उनके
पदपर लौट चमा मांगी। कमलाकान्त उन्हे मनुष्ट
कर वर्धमान लौट गये।

यह धिवेकके स्रोतमें डूब रहते, संसारकी कुक्क
भी समता रखते न थे। सुननेमें प्राया—छोकी
जलागिके लिये घिता प्रज्वलित हीसे कमलाकान्तने
नाच नाच श्यामा माताका नाम गाया।

कुमार प्रतापचन्द्रभी इनके शिष्य ही गये थे।
कहते—मृत्युवाच महाराज तेजचन्द्र स्वयं कमला-

किन्तु बोर्ड बोर्ड खम्भातकी कम्बोज कहता है।
 रघुवंश देखते—महाराज रघुने पारसीकों, सिन्धुनद-
 तीरवासियों और इण्डोको द्वारा कम्बोजदेशीय राजाओं-
 को जीता था। काम्बोजोंने उनके निकट भवगत हो
 उत्कृष्ट अन्न और राशीकृत सुवर्ण उपटीकन-स्वरूप
 प्रदान किया। फिर रघु अश्वके साहाय्यसे गौरीगुरु
 पर्वतपर चढ गये। (रघुवंश ४६ सर्ग)

रघुवंशकी उक्त वर्णनासे समझ पड़ा—कम्बोज
 देश सिन्धुनदके उत्तर और गौरीगुरु पर्वतके निकट
 रहा। मार्कण्डेयपुराणमें गौरीगुरु और महाभारतमें
 सुवासु नदीके साथ गौरीनदीका उल्लेख मिलता है।
 यह सुवासु और गौरीनदी वर्तमान पञ्जाबके उत्तरस्थ
 खान प्रदेशके उत्तर अवस्थित है।

सुतरा रघुवंशका मत मानते वर्तमान सिन्धु और
 सन्देश नदीके उत्तरांशमें पूर्वकाल कम्बोज नामक जन-
 पद रहा। पहले कम्बोजवासी संस्कृत भाषा बोलते
 थे। (निबन्ध १२) इसी देखो।

(वि०) ४ कम्बोजदेशवासी, खम्भातका रहनेवाला।
 कम्बोज (कम्बोजिया)—जनपदविशेष, एक मुल्क।
 यह अक्षां ८० ४०' से १५० ८०' पर्यन्त विस्तृत है।
 इससे उत्तर लियस देश, पूर्व कोचिन-चीन, दक्षिण

श्यामीपसागर एवं चीनसागर पार पश्चिम श्यामदेश
 पड़ता है।
 पहले खाधीन रहते समय कम्बोज राज्य बहुदूर
 पर्यन्त विस्तृत रहा। धर्मनाथ भारतीय राजा इस
 दूरदेश पर राजत्व करते थे। उनका कौर्तिकलाप,
 धर्मनुराग, देवहिज्रमभक्तिभाव और असाधारण शौर्य-
 वीर्यका गौरव बहुगतवर्ष गत होते भी आज कम्बोजके
 नगर, कानन, पर्वतगण्ड, शिलाफनक तथा प्रकाण्ड
 प्रकाण्ड देवमन्दिरादिके भग्नावशेषपर देदीप्यमान
 है। इस देशके प्राचीन भारतीय राजाओंका इतिहास
 इतने दिन खनिगर्भमें लपकी भांति छिपा था।
 किन्तु अन्तको फरासीसी पण्डितोंने अपनी गभीर
 गवेषणाके प्रभावसे इसे साधारणके समझ खोल दिया।
 भारतीयोंके लिये यह न्यून गौरवका विषय नहीं।
 दीन दरिद्र धर्मवीर भारतीय अपने प्राचीन राजाओं
 द्वारा सुदूरवर्ती कम्बोज राज्यमें स्थापित अतुलनीय
 कौर्तिकी अथ समझ सकते हैं। जिसे हम भारत-
 वर्णमें भी टूट नहीं पाते, उसीके अनेक उदाहरण इस
 सामान्य देशमें देखाते हैं।

पुरातत्त्व—वर्तमान कम्बोजके बकु, बफङ्ग, कोजि,
 ग्रे, चमनम, फनम, घिसोर पर्वत, बोम्बङ्ग जिले (राज-
 काल यह श्याम राज्यके अन्तर्गत है), फिमनक, कैदि-
 चर और अङ्गचमनिक नामक स्थानसे प्राचीन कार्पाटी
 अक्षरके अनेक संस्कृत शिलालेख मिले हैं। उक्त
 शिलालेख पट्टनेसे समझ पड़ा—पूर्वकालको कम्बोज
 राज्य पश्चिम श्यामदेशसे पूर्व अरामके दक्षिण
 पर्यन्त विस्तृत रहा। इसके प्राचीन अधिवासी
 'कम्बोज' वा 'काम्बोज' कहते थे। उक्त काम्बोज
 वर्तमान कम्बोज राज्यके प्रादिमें अधिवासी न रहे।
 प्रवाद है—

"तच्चगिलासे अनतिदूर रोमविषयपर एक धर्म-
 निष्ठ विचक्षण नृपति राजत्व करते थे। उनके पुत्र
 युवराज 'फुङ्ग' किसी गर्हित कर्मके लिये राज्यसे
 निर्वासित हुये। उन्होंने राजकुमारने नाना-स्थान
 भ्रमणकर इस कम्बोज राज्यमें आ उपनिवेश स्थापन
 कर दिया।"

• "विश्वकोश" नामक सिन्धुतीर विवेचने।
 तत इषावरौषाभा भव्यं पु अश्वनिशमम् ।
 काम्बोजाः समरे सोढुं तथ्य बोर्दमनोपराः ।
 मन्मथानपरिजिह्वरौषीः सार्धनामनाः ।
 शेषा अदभ्यभूयिष्यान्नुष्ठा द्रविष्यारामवः ।
 उपरा विविधः अश्वभोगिकाः कोपरीयाम् ।
 इतो गौरीगुरुं देवसाधरोपायकारणः" (रघु ४६ सर्ग)
 * अश्विनाथने 'गौरीगुरु'का अर्थ हिमालय उल्लेख है। किन्तु इस
 उल्लेखपर गौरीगुरु एक खतम परांत समझ पड़ता है। याचाय प्राचीन
 भौगोलिक टर्मेनिने 'गौरिया' (Goryais) नामक एक जनपदका
 उल्लेख किया है। (Ptolemy, BK. VII. ch. I.) इसी जनपदके
 मध्य गौरीनदी अवस्थित है। यह नदी वर्तमान काठल नदीमें जा मिली
 है। फिर उसे चण्डविता और महाभारतमें भी गौरीनदी ही लिखा
 है। उसको चारी और परंतमनाया छोटी है। साविद्रासने इसी पर्वत-
 मानको गौरीगुरु कहा है। विवेचनः इसे परंतम ही गौरीनदी लिखी
 है। उक्त परांतीय अर्थको ही टर्मेनिने 'गौरिया' बताया है।

उक्त प्रवाद प्रकृत होनेसे मानना पड़ेगा—यह राजकुमार पञ्चाय और कानुलके उत्तरव्य कन्नोज नामक प्राचीन नगणपट्टसे इस देशमें पाये थे। वास्तविक कन्नोजके वर्तमान काश्मीरके साथ काश्मीरियों और कन्नोवोंका बहुत कुछ-सौघादृश्य सखित होता है। फिर यद्यपि प्राचीन देवमन्दिरादिकी निर्माणकी प्रणाली भी काश्मीरकी मन्दिरोंसे मिलती है। सुतरां स्त्रीकार करना पड़ा—इस कन्नोज राज्यका नाम भारतीय शास्त्रीक सिन्धु नदके उत्तर अवस्थित 'कन्नोज'से हुआ है।

समझ न पाये—किस समय इस देशमें यह राजकुमार पाये थे। किसी किसीके अनुमानसे काश्मीर-राज तुङ्गिर्नके राजत्वकाल (३१६ ई०) भारतके पश्चिम प्रदेशमें नामारुप हलचल पड़ी। सम्भवतः उसी समय इस देशमें भारतीय उपनिवेश स्थापित हुआ होगा। किन्तु निश्चय कह नहीं सकते—यह विषय कदाचित्तक सत्य है।

स्थानीय ग्रन्थालेखमें 'किरात' जातिका नाम मिलता है। सम्भवतः वही इस देशके प्रादिम अधिवासी हैं। विश्व, कुर्म, वामन, गच्छ, ब्रह्माण्ड प्रभृति पुराणोंके अनुसार भी भारतवर्षके पूर्वसीमान्तवासी किरात कदाते हैं।

कन्नोज और घानाम (अचम्) देश ब्रह्माण्ड-पुराणोक्त पञ्चद्वीप ही समझ पड़ता है। उक्त दोपके विवरणमें लिखा है,—

"पञ्चद्वीपं त्रिकोणम् भासासद्वृक्षमालम्बनम् ।
 नामाद्यं चतुर्वाकोणं तदीयं बहुविधम् ॥
 देवविद्वत्सम्पत्तेः समागमात्क विली ।
 तदीयं लक्ष्मि विषं समिधं मरुत्पाश्रवाः ॥
 एत चन्द्रगिरिनाम्नेकनिर्मलकन्दरः ।
 एत सागुदरी पादु मानासन्नमालदराः ॥
 एतयो नामदेवस्य मेरुद्वीपी महागिरिः ।
 आदिष्ये नामनिर्णयं धामो मरुद्वीपयोः ॥"

(ब्रह्माण्ड ३३ पं०)

युरोपीय ऐतिहासिकोंने कहा—३५५ ई०की चीनपति (महा-हीयाङ्गोनें) टङ्गिर्नमें 'अचम्' नामक

एक सामरिक जिला संस्थापन किया था। उसीके अनुसार समस्त देशका नाम 'अचम्' या घानाम हुआ। किन्तु इसीसे विवेचनामें 'अचम्' 'पञ्चम्' शब्दका अपभ्रंश है। भारतवर्षमें जैसे 'पञ्च-राज्य' ही राजधानी चम्पा कहते, वैसे ही अचम् देशकी राजधानी भी चम्पा नामसे पुकारी जाती है। इसलिये पूर्वकाल (गिन्नालेखके अनुसार) उक्त अचम् देशको चम्पा-राज्य भी कह देते थे। वर्तमान कन्नोजके जिस स्थानसे सर्वप्राचीन संस्कृत गिन्नालेख निकला, उसका नाम 'अङ्ग-चमनिका' खुसा है। यह नाम भी 'अङ्ग-चम्पिक' वा 'अङ्गचम्पा' शब्दका अपभ्रंश समझ प्रडता है। इन कई प्रमाणोंसे उक्त स्थानको एक स्वतन्त्र अङ्गदेश वा अङ्गद्वीप मान सकते हैं। कन्नोज और अचम्का मध्यवर्ती पर्वत ही सम्भवतः ब्रह्माण्ड-पुराणोक्त चन्द्रगिरि है। चम्पा मन्दिर चम्पा विरार होके।

रतिगण-कन्नोजके भारतीय राजाओंका इतिहास अन्धकाराच्छन्त है। आज भी समस्त गिन्नालेख अथवा स्थानीय प्राचीन पुस्तकादि सङ्गृहीत नहीं हुई, जिनके द्वारा और अन्धकारसे ऐतिहासिक सत्य निकाला जा सके।

अधुनातन कन्नोजसे मिलनेवासे सर्वप्राचीन गिन्नालेखका समय ५२५ तक है। किन्तु उसमें किसी राजाका नाम नहीं। गिन्नालेखोंसे जिन राजाओंके नाम निकले, उनमें 'भववर्मा' उच्यते ही सर्वप्रथम उठते हैं। भववर्माके पीछे गिन्नालेखोंमें निम्नलिखित राजाओंके नाम मिलते हैं,—

राजाका नाम	समय
भववर्मा	५४८ तक
महेन्द्रवर्मा, ईशानवर्मा	...
जयवर्मा	५८५-५८८ "
भववर्मा	५८८ "
पृथिवीवर्मा	...
इन्द्रवर्मा (पृथिवीवर्माके पुत्र)	७०६ तक
योगीवर्मा (इन्द्रवर्माके पुत्र)	७११ "
अर्धवर्मा (योगीवर्माके पुत्र)	...
ईशानवर्मा २य, (अर्धवर्माके २य पुत्र)	७१२ "

जिसकी अपेक्षा इस जिलेमें अधिक है।
 घातमें नमक और नौसादर होता है। कौशल
 तहसीलमें नौसादर बनाया जाता है। करनास
 शिकारके लिये प्रसिद्ध है। हरिये नौसाया और
 दूसरे शूद्र बहुतायतमें मिलते हैं। नहरोंके निकट
 भेनेक प्रकारके पत्थो विद्यमान हैं। यमुना, दसदत
 और धामके तासाधमें मछलियां भरी पड़ी हैं।
 विनाश—करनास नगरको कर्पण बसाया था। कुरु
 जिवका अधिक भय इसी जिलेमें था गया है। पानी-
 पतके मैदानमें तीन बार घोर युद्ध हुआ। १५२६
 ई०को बाबरने इब्राहीम खोदीको हराया था। फिर
 १५५६ ई०में पकवरने शेरशाहको यहाँसे मार भगाया।
 १७६१ ई०को ७वीं जनवरीको अहमदशाह-दुरानोने
 सराठीको नीचा देखो दिल्लीका सिंहासन पाया।
 १७८६ ई०में नादिरशाहने सुहबदशाहकी फौजको
 परास्त किया था। १७९७ ई०को सिद्ध सिंहसिंहने
 कैथलको किंसा छूट लिया। फिर भीदके रानाने
 करनासका निकटस्थ देग अधिकार किया था, किन्तु
 सराठीने १७८५ ई०में उनसे लौन, जाल टोमसकी
 दे दिया। राजा गुरदित-सिंहने टोमसको हटा वहां
 अधिकार जताया और १८०५ ई०तक प्रपना राज्य
 बनाया। पन्तकी पंगरेजोंने उससे वसुधे कीम प्रपने
 राज्यमें मिला लिया। १८३२ ई०को कैथल पंग-
 रेजोके हाथ भगा था। १८५० को यानेश्वर सिंघोसे
 हटा। यमुनाके उस किनारे रेलवे लगी है। करनासमें
 कार्याय और व्यवसायकी कौयो कमो नहीं। यहां
 नहर बहुत होता है। खेरीकमें चावल, फुयो, ऊज,
 ज्वार और दाल बो देते हैं। चित खड खोच जाते
 हैं। खाद-डालनेकी चान भी चल पड़ी है।
 पञ्जाब, दिल्ली और बिहारको करनाससे पनाज
 तथा कच्चा माल भेजा जाता है। ग्रामसो सुहकी
 सप्ली है। बांहरसे विनायतो कपड़ा, नमक, ऊन
 और तेलहन प्राता है। क्यो कपड़ा मुननेमें लगती
 है। कैथल और गुलकी सडोसे हजारों रुपयेका
 नौसादर बेघार होता है। करनासमें कम्बल, हट
 तथा शीमेके तल, यदार, बरतल, और पानीपतमें

बमड़ेके कुपे बनते हैं। बाण्डर रोड करनासके
 बीच दिल्लीसे पञ्जाबीतक लगी है। नदी और नहरमें
 गाव चलती है।
 करनासमें छिपटी कमिश्नर, पसिष्टण-कमिश्नर
 और तहसीलदार प्रबन्धकर्ता हैं। पुलिसके १० याने
 बते हैं। करनासमें एक जेल है। यहां पण्डोंकी
 खोरी अधिक होती है। सानसिये, मलूखी और तागू
 और समझे जाते हैं। करनासमें सिधा बट्टे रछी है।
 पानीपतमें परवीका बहा मदरसा है। लोग हिन्दी
 बोला करते हैं।
 प्रायः करनासमें २८ दण्ड हटि होती है। किन्तु
 कहीं कहीं १८ दण्डसे भी कम पानी पड़ता है। नहर
 बिहार खर, संघषषी और सदरेव्याधिका प्रावक्य
 रहता है। समय समय पर शीतला और विगुधिका
 भी घूट पड़ती है। इस जिलेमें ६ दातव्य औषधालय
 प्रतिष्ठित हैं।
 करनास जिलेकी तहसील। क्षेत्रफल ५२२
 वर्गमील है। लोकसंख्या सेवा हो साधने अधिक
 लगती है। लोकदारो और दीवासी पादासते हैं।
 करनास जिलेका प्रधान नगर। यह पञ्जा-
 नमें ४२'१०" उ० और देगा ७७'१५" पू० पर
 अवस्थित है। करनास प्राचीन नगर है।
 आर्याणय दुर्गमें बहुत दिने तक पंगरेजोंकी खानो
 रही। सन् १८४१ ई०को फिर पंगरेजोंने यह दुर्ग
 छोड़ दिया था। १८७० ई०को काबुलकी खमीर दोस्त
 सुहबद यहाँ एक मजोबेतक बन्दे रहे।
 करनास एक भूमि पर बसा है। जोसे यमुनाकी
 नहर बहती है। नगरकी चारो ओर १२ फीट ऊंचा
 प्राचीर खड़ा है। लोकसंख्या प्रायः २५ हजार है।
 नहर और दलदलके कारण खरका प्रकोप रहनेसे बहती
 कृषकसङ्घ संयो है। सड़के पकी होने भी तह है।
 करनास—बन्दरे प्रायके याता जिलेका एक दुर्ग तथा
 पर्वत। यह पञ्जा १८'३५" उ० और देगा ७७'
 १५" पू० पर अवस्थित ज्योसे कुछ मील पश्चिम पश्चिम
 है। इधमें एक बड़ा और एक निया दुर्ग विद्यमान
 है। एक दुर्ग पर १२३ फीटका एक भूमि प्रायः बना

राजाका नाम	समय
जयवर्मा (इन्द्रवर्माके २य पुत्र)	८५०-८५८
हर्षवर्मा २य, (जयवर्माके कनिष्ठ भ्राता)	८६४
राजेन्द्रवर्मा (हर्षवर्माके ज्येष्ठभ्राता)	८६६
जयवर्मा (राजेन्द्रवर्माके पुत्र)	८८०
उदयातिल्यवर्मा १म	८२३
जयवीरवर्मा	८२४
सूर्यवर्मा	८३८-८५०
उदयादित्यवर्मा २य,	८५१
हर्षवर्मा ३य, (उदयके कनिष्ठभ्राता)	
उदयाकर वर्मा	८८८
जयवर्मा	
धरणीधर वर्मा	१०३१
सूर्यवर्मा	१०३४
जयवर्मा (परम वैष्णव)	११०८

उपरोक्त राजाओंमें इष्टिषीचन्द्रके पुत्र हर्षवर्माने वज्रु नामक स्थानपर ८०० शककी इष्टिषीचन्द्रेश्वर नामके एक बृहत् शिवमन्दिर प्रतिष्ठा किया था। उनके मरने पर पुत्र यशोवर्मा भी शिवमन्दिर प्रतिष्ठा कर पिताके अनुसूती बने। यशोवर्माके भ्राता जयवर्माके समयमें यहाँ बौद्धधर्म सुभा था। उसमें पहले कम्बोजमें कहीं बौद्ध मर रहे। किन्तु प्रचारित होती भी उस समय किसी भारतीय राजाने बौद्धधर्म ग्रहण न किया। जयवर्मा परम वैष्णव रहे। सम्भवतः ११०० शकको उन्होंने स्थानीय शङ्खोरपटका देवमन्दिर प्रतिष्ठा किया। उक्त जयवर्माके पीछे गिलासेश्वरने किसी दूसरे भारतीय राजाका नाम प्राप्तक नही निकला। किन्तु अनुसन्धान ही रहा है। कौन कइ सकता—कहातक फल मिलेगा।

चीनका इतिहास पढ़नेसे समझ पड़ा—ई०के ६४४ शताब्द कम्बोजराजने चीनराजके निकट अपना दूत भेजा था।

सम्भवतः ई०के द्वादश शताब्दसे इस राज्यमें बौद्धधर्म बढ़ने लगा। कारण उही समयसे फिर भारतीय राजानोंका नाम सुननेमें न आया। किन्तु कम्बोजके बौद्धोंका इतिहास मो गाढ़ तिमिराच्छय है। भासम

पड़ता—श्यामदेशीय बौद्ध राजाओंके प्रथम होनेके कम्बोज उनके अधीन हुआ।

ई०के सप्तम शताब्द फरासीसी वाणिज्यके प्रसिद्धि प्रायसे कम्बोजमें सुभे थे। १०८० ई०की आनामके राजा घियानङ्गने फरासीसके पधिवति पोडुंग सुयीसे सन्धि स्थापन की। उसके अनुसार फरासीसी युद्धकास आनामके राजाका साहाय्य पट्टुचाते थे। उन्होंने साहाय्यसे घियानङ्गने उस समय टंनकिङ्ग और कम्बोज अधिकार किया। १८६१ ई०की आनामके राजा मर गये। फिर १८४१ ई०की तक वीय तियेनकी राजा हुये। उन्होंने कयी फरासीसी और खेनी खुट्टान धर्मप्रचारकोंको मार डालनेका आदेश दिया था। उससे समस्त फरासीसी और खेनी विगड़ उठे। १८४० ई०की कपतान तिनङ्ग डिगिनोने १०८० ई०का सन्धिपत्र निष्पत्ति करनेको समर्थ भेजे गये। किन्तु आनामके राजाने फरासीसका आदेश सुना न था। फिर फरासीसी सेनापतिने युद्ध घोषणा की। उनके वार युद्ध चलते भी आनामके राजा फरासीसियोंसे न दबे। किन्तु आनाममें गड़बड़ देव १८५२ ई०की कम्बोजके ईसायियोंने मिलजुल विद्रोह लगाया था। नीमिगापति गिनोनी उन्हें साहाय्य करनेको सेगन नदीकी राह कम्बोजमें घुस पड़े। फिर फरासीसी ही डोड उठे थे। उनके पुनः पुनः आक्रमण मारनेपर कम्बोजराज होन उठे। १८६२ ई०की २६ वीं मईकी आनामराजने सन्धि करनेकी कम्बोजकी राजधानी सेगन नगर छूट भेजा था। १५ वीं जूनको सन्धिपत्र साचरित हुआ। फरासीसियोंने धर्म युद्धका व्यपादि और पूर्व सन्धिपत्रके अनुसार प्रायः पर्थ ले लिया। पीछे खुट्टान-धर्मप्रचारकोंको अनाथ धर्मप्रचार करनेको चमता मिली।

उस समय कम्बोज आनाम और श्यामके अधीन करद राज्य-मुक्त रहा। एक राजप्रतिनिधि द्वारा यह शासित होता था। फरासीसी कम्बोजराज्यमें पट्टुचे और मिकङ्ग नदी तीरवर्ती प्रदेशकी सर्वरता एवं प्रख्याप्तिता देख विमोहित हुये। उन्होंने एक स्थान इस्लामत करना चाहा था। अन्यतम नीमिगा-

करदौकतः (सं० वि०) अकारदं करदं क्रियते येन,
चि । कर देनेको वाध्य किया हुआ, जो विराज
भदा करनेको मजबूर बनाया गया हो ।

करदीना (हिं० पु०) दीना ।

करदुमः (सं० पु०) किरति विक्षिपति संमन्तात्
शाखाः क्लृप्तं, करशासीः दुमचेति, नित्यः समा० ।
कारस्तरुघ्न, कुचिला ।

करद्विप (सं० पु०) करं द्वेष्टि, कर-द्विप-क्षिप ।
१ गोलमेद । २ वेदशास्त्रमेद ।

करधनी (हिं० स्त्री०) १ किङ्किणी, कमरका एक
गहना । यह स्वर्ण वा रौप्यमय होती है । बालकोंकी
करधनीमें घुंघरू लगते हैं । फिर स्त्रियोंके पहनने-
की करधनी सादी ही रहती है । २ कटिमें धारण
किया जानेवाला एक सूत, कमरमें पहननेका लड़दार
सूत । (पु०) ३ धान्यविशेष, किसी किन्नका धान ।
इसकी भूसी काशी होती है । किन्तु चावल रसाभ
निकलता है ।

करधर (हिं० पु०) १ खाद्यविशेष, महुविक्री रोटी ।
इसे महुवरी भी कहते हैं । २ मेघ, बादल ।

करघत (सं० ति०) हस्ताहारा धारण किया हुआ,
जो हाथसे पकड़ लिया गया हो ।

करन (हिं० पु०) श्रोत्रविशेष, ज्वरिष्क, एक
जड़ी-बूटी । यह खानेमें अहमधुर होता है । इसे
चटनी आदिमें व्यवहार करते हैं । करनको सेवन
करनेसे दस्त साफ उतरता है । यह रसक भी है ।

करनधार (हिं०) कर्णधारके ।

करनफूल (हिं० पु०) अलङ्कारविशेष, एक गहना ।
यह स्वर्ण वा रौप्यमय होता है । स्त्रियां इसे कर्णमें
धारण करती हैं । करनफूल पुण्याकार बनता है ।
इसे पहननेकी कानकी लो छेदायी और बारीक-बारीक
सीकिके कई टुकड़े डाल डाल बढ़ाये जाते हैं ।
यह दो प्रकारका होता है—साधारण एवं जड़ाऊ ।
करनफूलमें स्त्रियां भूमके भी लटकवा लिया करती हैं ।

करनवध (हिं०) कर्णवधके ।

करना (हिं० पु०) १ हस्तविशेष, एक पीदा । इसके
पत्र कंतककी भांति दीर्घ एवं कण्टकवृत्त रहते

हैं । पुष्प श्वेतवर्ण प्राते हैं । २ शीरसः किञ्चित् मित्र
लगता है । इस हस्तकी कर्षण शीर सुदर्शन भी कहते
हैं । ३ निम्बुकु विशेष, एक नीबू । यह बिलोरेकी
भांति दीर्घ होता है । अपरानाम प्रहाड़ी नीबू है ।
४ कार्य, काम । (कि०) ४ समातिपर, खाना,
भुगताना, निवटाना । ५ पकाना, बनाना । ६ मेलना,
पहुंछाना । ७ प्रणय, लगाना, सुहृत्त्वत बढ़ाना ।
८ व्यवसाय चलाना, काम लगाना । ९ सवारी लाना,
भाड़ा ठहराना । १० बुझाना, चठाना । ११ रूप
बदलना । १२ उठाना । १३ रंगना । १४ मारना ।
१५ मजा लेना ।

यह क्रिया सर्वप्रधान है । इससे सब क्रियावांका
वर्धन निकल सकता है । फिर किसी संज्ञाके पीछे
लगा देनेसे यह उस संज्ञाके पथकी क्रिया बना देती है ।

करनाद (हिं० स्त्री०) करनाय, तुरदी ।

करनाटक (हिं०) कर्णाटकके ।

करनाटकी (हिं० पु०) १ कर्णाटक, करनाटकका
वाग्विन्दा । २ नट, कला खिसनेवाला । ३ बाजीगर,
दम्बजान देखानेवाला ।

करनाल (हिं० पु०) १ करनाय, नरसिंहा । २ बड़ा
ढोल । यह गाड़ीपर लट कर चलता है । ३ किसी
क्षिप्तकी तोप ।

करनाल—१ पञ्जाबप्रान्तका एक जिला । यह अक्षां-
२८° ८' एवं ३०° ११' उ० और देशां ७६° १३'
तथा ७७° १५' ३०" पू०के मध्य अवस्थित है । इसके
उत्तर पञ्जाब जिला तथा पटियाला राज्य, पश्चिम-
पटियाला एवं भींद, दक्षिण दिल्ली तथा रोहतक जिला
और पूर्व यमुना नदी पड़ती है । करनाल जिलेमें
तीन तहसीलें हैं—पानीपत, करनाल और कैथल ।
भूमिका परिमाण २३८६ वर्गमील पाता है । लोक-
संख्या प्रायः सवा लाख है । भूमि दो प्रकारकी
है—वांगर और खादर । जूँचे मैदानकी वांगर और
नीची जगहकी खादर कहते हैं । यमुना, घाघरा,
सरस्वती, बड़ा नदी, वीतक और प्राची नदी प्रधान
नदी हैं । खेत सींचनेकी कृषी नहर भी निकली हैं ।
औल और दमदल बहुत देख पड़ते हैं । पञ्जाबके दूसरे

नायक घाण्डेयार तत्रत्य राजप्रतिनिधिके निकट भेजे गये। राजप्रतिनिधिने फरासीसियोंका मनोभाव समझ जानामराजका मतामत लेनेकी समय मांगा था। किन्तु फरासीसी दूतने उनको बात न सुनी। फिर उस समय कम्बोजके राजप्रतिनिधिको फरासीसियोंके विपक्ष खीय मतप्रकाश करनेकी समता कहां थी। सुतरां वाध्य हो उन्हें सन्धि करना पड़ी। इस सन्धिके अनुसार उभय पक्षको वाणिज्य चलानेकी पूर्ण समता मिली थी। कम्बोजमें फरासीसी मानका भी महसूल देना पड़ता, वह छूट गया और कम्बोजके उत्पन्न द्रव्यादि पर जो कर लगता, वह भी न रहा। फरासीसियोंका कम्बोजके नाना स्थानोंमें अपना एक एक प्रतिनिधि (रसीडेंट) रखनेका आदेश मिला था। फिर उन्होंने उदङ्ग नगरमें अपनी वायव्यकतार्थके अनुसार मजानू, कारखाना और गुदाम बनानेकी भूमि पायी। उसी सन्धिपत्रमें यह भी उद्धर गया था—फरासीसियोंकी अनुमतिके अतीत दूसरा कोई वैदेशिक प्रतिनिधि उदङ्ग नगरमें रह न सकेगा।

पहले कम्बोजपति एक सामान्य राजप्रतिनिधि की रहे, पीछे फरासीसियोंके शासक्यसे राजाका उपाधि पा गये; किन्तु पूर्वकाजके अनुसार श्यामराजकी कर देते रहे।

१८६५ ई०को निकल कर देखा नदीकी मध्यवर्ती अजप्राय भूमिके दक्षिण दल बांध राजविद्रोही बने थे। फिर वह फरासीसियोंपर चल्यावार बंनाने और उनके वाणिज्यके द्रव्यादिकी लूट मचाने लगे। उसी समय कम्बोजके किछे सामन्तने विद्रोहियोंसे मिल कर कम्बोजराज शरीदरके विरुद्ध अश्वधारण किया था। उधर फरासीसियोंने भी कम्बोजराजसे मिल कर विद्रोहियोंके दहानेकी यथासाध्य चेष्टा लगायी। किन्तु सङ्गर्षमें किछीने यत्नता मागी न थी। उक्त युद्धमें दो-तीन फरासीसी सेनापति मारे गये।

१८६६ ई०की १६ वीं अगस्तकी विद्रोही सामन्तने अपने दलबन्धकी साथ प्रथम दिग्घे राजधानी पर आक्रमण मारा था। उस समय राजपरिवार पर

दाहण विपद् पड़ी। फरासीसियोंकी प्रायः दो-तीन रणतरी उदङ्ग नगरमें उधर गये की यथासाध्य रोक रधी थीं। किन्तु १७ वीं दिवस्वर पा पड़्यी। वह कम्बोजके इतिहासका एक भयङ्कर दिन थी। राज-विद्रोही कम्बोजवासी अपनी जातीयता बचानेकी प्रयत्नोभयसे ली लौड़ फरासीसी और कम्बोजराजकी सेनासे लड़ने लगे। गत महसूल कम्बोज जग्गभूमिके नामपर रणमें मारे गये। फिर उक्त युद्धमें फरासीसी और कम्बोजराजकी सेनाके भी अनेक प्रधान प्रधान सैनिक पुरुषोंने प्राणत्याग किया था। अन्तको बहु यत्न, अनेक कष्ट और विस्तार सेव्यलयके पीछे विद्रोहियोंके अराल अन्तसे कम्बोजको राजधानी उदङ्ग नगर रचित हुआ।

इस धार कम्बोजपति फरासीसियोंके साहाय्यसे स्थायी राजा बने थे। कम्बोजराज शरीदरने अपने नामसे राजधानी स्थापन की। फरासीसियोंको भी निकलनदीके क्षणपर उपनिवेश आननेकी समता मिली।

नाजकल कम्बोजका प्रधान नगर संगम और पिछे बन्दर है।

मालीय वीर—प्रथम ही निम्न युद्ध—कम्बोजराजमें प्राचीन भारतीय राजाओंके कीर्तिस्मृति स्थापन किये थे। बहु वर्ष व्यतीत होते भी उनका विद्म पाजतक बना है। कम्बोजके मवन यम और मानयके अगस्त्य स्थानमें उक्त असाधारण कीर्तिका राशि परिमलित होता है। उत्साही फरासीसी महान्त्वविद्दिने यत्रसे वही पुराकीर्तिमनुह अगत्के समक्ष लुप्त गया है। जितना सङ्कोच ही सका, ओषे उसका संलित विवरण दिया है—

कम्बोजके नाना स्थानोंमें अनेक पुराकीर्ति पात्रिष्कृत दृश्ये हैं। यह स्थानमेंदक्षे तोम मागमें विमल हैं। १म अष्टारवट, २म अष्टारवट कोलि और यतोय कम्बोजका दक्षिण तथा मध्यम अंग है।

बरोटवट—श्यामवासियोंके निकट 'मज्जनवट' अर्थात् नगर-मन्दिर नामसे परिचित है। यह महामन्दिर चण्डोट नगरसे प्रायः दो-कोस दक्षिण अगता है।

इसका देहा इन्द्र मन्दिर मति, पर्य-ही देख पड़ता है। मन्दिरका प्रायतन कोयो भाष कीस घोगा। इसका परिवेष्टक प्राचौर १०८० × ११०० फीट पड़ता, जो चारो ओर २३० फीट विस्तृत खात द्वारा घिरता है। खातके ऊपर मन्दिर जानिके लिये सुदृढ़ सुरम्य स्तम्भ परिशोभित सेतु बंधा है। सेतुके प्रागे गोपुर है। उसके मध्यमे मन्दिरके वशिप्रोक्षणको जाना पड़ता है।

नैऋतकोणसे मन्दिरमें घुसनेपर वाम दिक् अपूर्व दृश्य नयनगोचर होता है। यहां भीषकी शरशय्या बनी है। मध्यस्थलमें कुरुपितामह भीष शरशय्यापर ग्राहित है। उनकी दोनों ओर सुकुट एवं किरीट शोभित कुब तथा पाण्डवपत्नीय वीर खड़े और गज एवं रथपर तेजःपुञ्ज महाराथी चढ़े हैं। पितामह भीषसे भनतिदूर गजके ऊपर राजा दुर्योधन ज्ञान-वदन पमेषा कर रहे हैं। शत शत वर्ष गत होते भी इन मूर्तियोंमें कीधी वैसल्य नहीं पड़ा। यह प्रसार-कोदित सकल मूर्ति दूरसे देखनेपर जीवन्त बोध होती है।

मन्दिरके मध्य पश्चिमोत्तर रामायणका दृश्य है। राक्षस और वानर घोरतर युद्ध कर रहे हैं। विकट मूर्तिधारी राक्षसवीर रथपर बैठ बाण बरसाते हैं। मध्यस्थलमें राम इन्द्रमानु पर चढ़ रावणके प्रति बाण निशेप करते हैं। उनके दोनों पार्श्व लक्ष्मण और विभीषण दण्डायमान हैं। सिंहायोजित रथपर रावण रामके शरपाहणसे जर्जरित हो बैठा है।

उत्तर-पश्चिम भागमें देवासुरके समरका दृश्य है। विविध मूर्तिधारी मुकुटशोभित देव पश्रयोजित रथपर चढ़ बाण फेंकते हैं। विकट मूर्तिधारी असुर भी जो कोढ़ कड़ रहे हैं। यहां कौ मूर्तियोंमें सूर्य और अश्वदेवकी, ज्योतिर्मय मूर्ति मति सुन्दर है। देव स्व स्व वाहनपर पाहड़ रहे।

उत्तर-पश्चिम-यहां भी देवासुरका युद्ध है। सतुरा-जन्त, पशान्त, प्रदाणन और गरुड़ोपरि शर-चक्र-गदा-प्रक्षारो विष्णु असुरदहन करते हैं। यह सुद्ध एवं बद्ध इन्द्रविमिष्ट देव, प्राय, गज, सिंह या गेहेपर चढ़

असुरवीर्य सिधे सुधमें व्याप्त है। युद्धस्थलसे परूर जटाकूटविचम्बित महादेवकी मूर्ति है। विद्यमि योगी पुष्पकरसे जनकी चर्चना कर रहे हैं।

उत्तरभागसे ईपत् पूव दूसरा मध्य है। यहांका शिखरैपुष्प धीर, श्यापत्य-कार्यादि भभोतक शिव नहीं हुआ। सकल ही मानो असम्पूर्ण पड़ा है। यहां भी पौराणिक दृश्य है। विष्णु गरुड़ोपरि पारोहण कर किसी गजारोघो असुरको मार रहे हैं। दूसरो भी अनेक देवासुरमूर्ति असम्पूर्ण अवस्थामें पड़ी हैं।

पूर्वदक्षिण भागमें ससुद्रके मन्वन्तका दृश्य है। क्या शिखकार्य, क्या चित्रकार्य, क्या श्यापत्यविद्या—सर्व विषयमें इस मन्वने पराकाष्ठा पायी है। शोध होता—ससुद्रके मन्वगका ऐसा जीवन्त दृश्य दृष्टि स्थानपर कहीं नहीं। मध्यस्थलमें कूर्मके ऊपर मन्दरावत स्थापित है। उसके ऊपर विष्णु बैठे हैं। मन्दर वासुकी द्वारा वेष्टित है। नागराजके मुखकी ओर प्रायः एक शत विकटाकार टैल्य और पुच्छभागमें एक शत देवमूर्ति हैं। टैल्य खर्व, यत्तिष्ठ, शिरस्थाप एवं कवचाहत, कर्णोंमें कुण्डल पहने और लम्बी दाढ़ी रखे हैं। देवोंके मस्तकपर मुकुट, कण्ठमें शार, हस्तमें वलय, दी-दी चक्रद और यज्ञशुल्य शोभित है। यह दोनों सौ मूर्ति एक भावसे खड़ी हैं।

जहां ससुद्र मथा जाता, उसके उपरिभागका दृश्य मति चमत्कार देखाता है। मानों शत शत स्वर्ग-विद्याधरी और पम्परा, चाकाशके पथमें उत्य करती हैं। फिर पश्चिमभागमें सागरका दृश्य है। नागा प्रकार सामुद्रिक जीवजन्तु मत्स्यादि इस कल्पित ससुद्रमें खेलते फाते हैं। स्वच्छ सलिलमें कैये धीरे धीरे स्तौत चन रहा है।

दक्षिणपूव भागमें दूसरा मध्य है। यहां यमा-लयका दृश्य विद्यमान है। पापका मिषह और पुष्पका, पुरस्कार, देख पड़ता है। स्वर्ग एवं नरक और सुख तथा दुःखका दृश्य प्रदर्शित हुआ है। गरुड़ यम्यपाकी ३६ मूर्तियां खोदी गयी हैं। प्रत्येक मूर्तिके नीचे खोदित लिपिमें लिखते—इस प्रकार पाप-कमानेपर मनुष्य जैसे ही नरकभोग करते हैं।

है। लोग उसे पाण्डुका पट्ट कहते और चढ़नेसे दूर
 रहते हैं। उत्तर को द्वार पर प्राक्रमण करनीकी
 पहली यष्ट सुसलमानोंकी सेना सन्निवेशित थी।
 १५४० ई०को अहमदनगरके सिपाहियोंने इसे
 अधिकार किया। फिर पोर्तुगीजोंने करमाल लिया,
 किन्तु कई हज़ार रुपया पानेपर छोड़ दिया। १६७०
 ई०की शिवाजीने सुगलीको गिवाल इस छीना था।
 शिवाजीके मरनेपर और गजीबकी सेनापतियोंने इसे
 फिर से १७३५ ई०तक अपने अधिकारमें रखा।
 अन्तकी १८१८ ई०की यह अंगरेजोंके प्रायः प्रायाः
 करनिहित (सं० त्रि०) हाथमें रखा हुआ।
 करनी (हि० खीश) १२ फर्स, करतूत १२ अन्ये टि-
 क्रिया, मरनेपर किया जानेवाला कामकाज। १ कची,
 एक शौजार। यह सोरेकी छोटी है। राजमिथी
 इससे, मकाम बनानेमें ईंटपर गारा लगाने दूसरी ईंट
 रखते हैं।

करनूल—मद्राज प्रान्तका एक जिला। यह अक्षा
 १४° ५४' एवं १६° १४' उ० और देशा० ७७° ४६'
 तथा ७७° १५' पू०के मध्य स्थित है। इसके
 उत्तर तुल्लुभद्रा तथा कल्याणनदी, दक्षिण कडप्पा एवं
 बन्नारी जिला, पूर्व नेल्लूर तथा कल्याण और पश्चिम
 बन्नारी जिला है। क्षेत्रफल ७७८८ वर्गमील निकलता
 है। लोकसंख्या ७ लाखसे ऊपर है। तुल्लुभद्रापक्षीका
 सिद्धराज्य इसी जिलेमें पड़ता है। १७८२ ई०
 करनूलके सिद्धराजसे नल्लमलय और अन्नमलय
 दो पर्वतमाला दक्षिण तथा उत्तर-दक्षिणान्तर गयी हैं।
 नल्लमलय प्रायः ७० मील लम्बी और कहीं कहीं
 १२५ मीलतक चौड़ा है। विरमकोड, गुन्दलन्नघोखरम्
 और हुगुण्णुकोड १००० फीटसे ऊँची चोटियाँ हैं।
 इस पर्वतकी पाषाण पथिल्यकामें गुन्दलन्नघोखरम्की
 वर्षत्यका प्रधान है। ऊपर चढ़नेकी दो प्रगड्डियाँ
 मिली हैं। पूर्वीय विभाग कमबममें पर्वत अधिक है।
 इस पथिल्यकाकी पूर्वसीमापर वेचीकोड पर्वतमाला
 खड़ी है। नल्लमलयके संसमानान्तर अनेक सुदूर
 पर्वतमाला हैं। दीर्घ पतियोंने घाटियोंमें दाम
 भाषा भूमि सीचनेकी सरोवर बनाये हैं। कुन्दलकम

नदीके दामसे सुप्रसिद्ध कमबम सरोवर भरा है। यह
 प्रायः १५ वर्गमील परिमित है। १६०० एकर भूमि
 इससे सींची जाती है। दक्षिण विभागमें सुगिरु
 और उत्तर विभागमें गुन्दलकम नदी बहती है।
 कमबम पथिल्यकासे नन्दोवनम् तथा मन्ताराल
 सड्टमार्ग द्वारा मध्य विभागमें पड़ते हैं। यह
 पथिल्यका अतिशय प्रयत्न और समान है। काली
 मट्टीमें खूबी बहुत होती है। उत्तरको भवनागी और
 दक्षिणकी कुन्दरु नदी प्रवाहित है। शीघ्रतमें यह
 प्रान्त शुष्क पड़ जाता है। किन्तु पर्वतकी पाखर
 सरोवर जङ्गल तथा बाग मिसते और गाले एवं भरने-
 चकते हैं। ठीक इसी पथिल्यकाके नीचे मन्नाज-
 गिरिगियनकम्पनीकी नहर खोई है। कुछ दिग्गुह्ये,
 पर्वतके पाखरुमें भूतसन्निधि पत्थरके यन्त्र पाये थे।
 कहते हैं—पत्थर यन्त्रोंसे बड़े शीशों कार्य करते हैं।
 पथिल्यकाके पानीमें डूबते भी विद्यमान रहे।
 पश्चिम विभाग दूसरे विभागसे विभिन्न देखा
 पड़ता है। इसके पर्वत उत्तरदिशि हैं। दक्षिणसे
 उत्तरकी हिन्दो नदी बहती और करनूलके निकट
 तुल्लुभद्रामें गिरती है। १८६० ई०की सड्टसलमें तुल्लु-
 भद्राका बांध भूमि सीचने और नाव खीचनेकी लिये
 नहर निकालनेकी पड़ी थी। बाण्टटनेपर रेतमें
 बंदि्या तरबूज होता है। सड्टमखरम्में कल्याण और
 भवनागा दोनो मिल गयी है। इसी सड्टमके नीचे
 चिक्कीथैयम् विद्यमान है। अन्त में मन्ताराल १८३५
 ई० कुन्दरु पथिल्यकामें वर्षाखण्डकी शिशा भरी है।
 यह मकांम् बननेका बरखा मसाला है। करनूलकी
 चूषणखण्ड (Lithograph) लियोमें लगता है। इस
 जिलेमें हीरक, लौह, सिन्दूर और ताँबकी खनि
 विद्यमान है। नल्लमलय और अन्नमलयसे अनेक
 शिष्णुप्राय भी निकलते हैं। १८६० ई० मन्ताराल १८३५
 ई० नल्लमलयका प्रायः ६००० वर्गमील परिमित
 यन्त्र सुप्रसिद्ध है। इसमें हजारों कल्पकी बंदि्या
 लकड़ी होती है। अश्विपथिके बननेसमय और पूर्वके
 अन्न विरल है। उत्तरके जङ्गलोंमें गोबर भूमि बहुत
 है। परमलयके पर्वत उत्तरदिशि हैं किन्तु भवसर्विषी

उक्त मसूको होइ थोड़ी दूर पश्चिम चलनेपर दूसरा सुदृश्य मसू मिलता है। यहाँ कम्बोजके राजाओं और उनके परिवारवालोंकी मूर्ति खुदी है। इस काष्ठकार्यका परिपाक्य देख चमत्कृत होना पड़ता है। ऐसा भडकीला दृश्य कम्बोजमें दूसरे स्थानपर कहाँ देख सकते हैं। कहीं पौनोन्नत-पयोधरा सुवाहवासिनी राजमहिला विविध पल्लवधारसे विभूषित हो एक रथपर बैठे समारोहके साथ बीचमें चली जा रही हैं। ऊपर चित्रविचित्र चन्द्रातप दोदुष्यमान है। फिर उन्हींके पश्चात् दिव्यरूपधारिणी मनोमोहिनी राजकन्या नरचासित रथपर चढ़ मानो किसी स्थानको गमन करती हैं। उनके साथ सखी पुष्पचयनकर उपहार देती हैं। दास और दासी दोनों निकटवर्ती फलशाली हथके फल लाकर छोटे छोटे बर्तोंको बांटते हैं। राजकन्याओंके पाखंडपर सहचरियोंमें कोयी चामर डीसाली, कोई मस्तकपर हाता लगाती और कोयी सुखादु फल लिये अपनी श्लामिनीको देखाती है। उसीसे पदूर निर्जन उपवनका दृश्य है। गिरिमानाके मध्य तरराजो खड़ी है। तबके तलपर मृगका मिश्र खेन रहा है। फिर तहकी शाखापर नानाविध पक्षी बैठे हैं।

मसूके उपरिभागमें कथवाहृत राजपुरुष, नतक और धानुष्क दृष्टायमान है। इनकी वियमूपा भी राजसभाके लिये उपयोगी है। संमुख ही राजसभा है। कुण्डनधारी जटाजूट-विलम्बित श्राद्धय गम्भीर भावसे समीचीन हैं। राजा और राजकुमार पदोचित वेशभूषा बना यथायोग्य आसनपर उपविष्ट हैं। पक्षधारां योद्धा राजसभाको उज्ज्वल कर रहे हैं। उक्त दृश्य देखनेसे धारणा पड़ती—प्राचीन भारतीय राजसभा किस भावसे समती थी। परम वैश्व जयधर्मा पक्षीवटकी उक्त मसूकोर्ति स्थापन कर गये हैं।

पक्षीवट नामक मन्दिरसे दक्षिणपूर्व साठे पांच कोस दूर दूसरे भी तीन पवित्र स्थान विद्यमान हैं। उनके नाम बकुल, बकु और शोनि हैं। बकुलका मन्दिर पति प्राचीन है। वह देखनेमें

विकीर्णकार और बृह तनमें विभक्त है। प्रत्येक तनमें निर्गम विद्यमान है। ऊपर ही ऊपर स्थापित हो पत्तको १८ हाथ ऊँचे विभुजने मन्दिररूप धारण किया है। प्रत्येक मध्यस्थलमें सिद्धो है। उसमें जो सिंघमूर्ति खोदित रही, वह आजकल प्रायः देख नहीं पड़ती। निर्गमके प्रत्येक कोणमें गजमूर्ति विद्यमान है। मन्दिरकी चारो ओर इटकनिर्मित सुदृ सुदृ पाठ मन्दिर हैं। स्थानीय लोगोंके कथनानुसार यहाँतक प्रधान मन्दिरकी सीमा चली गयी है। पाठो मन्दिरके तोरण-प्राचीरमें संस्कृत भाषासे ८१० पङ्क्ति लिपि खुदी है। इसमें मन्दिरके निर्माताका कुछ परिचय मिलता है। कम्बोजके राजा इन्द्रवर्माने हरगौरीपूजाके लिये उक्त मन्दिर बनवाया था।

बकु नामक स्थानमें पाच ही पाच बृह गिवमन्दिर बने हैं। प्रत्येक प्रवेशद्वारके प्राचीरपर बकुलके मन्दिरकी भांति संस्कृत भाषामें लिपि खोदित है। बकुलके मन्दिरसे केवल संस्कृत भाषाकी लिपि निकली, किन्तु बकुके मन्दिरमें संस्कृत एवं कम्बोज-प्रचलित क्षम भाषाकी लिपि भी मिली है। गिन्नासेखुके पनुसार परमेस्वर और इन्द्रेश्वर नामपर उक्त देव-मन्दिर उत्सर्ग किये गये हैं। बकुमें तीन गलिमन्दिर हैं। मन्दिरका काष्ठकार्य पति सुन्दर है।

बकुसे कोई पाच कोस उत्तर चलने पर शोनि नामक स्थान मिलता है। यहाँ इटकनिर्मित चार देवमन्दिर हैं। स्थान स्थानपर भन्न स्तम्भ पड़े हैं। उन्हें देखते ही समझ पड़ता—यहाँ कोई बृहत् देवान्य रहा। आजकल मसूका ओर मिश्रिका सामान्य ध्वंसावशेष मात्र पड़ा है। प्रत्येक मन्दिरमें वामदिक्षु पनुयासनलिपि खोदित है। उसको पढ़नेसे समझ पाये—कम्बोजराज यशोवर्माने ८१५ शककी गिव एवं भवानीके सेवार्थ उक्त मन्दिर बनवाये थे। वह अपने उत्तराधिकारियोंको देखसेवामें विनियमनीय करनेके लिये पुनः पुनः धादेय दे गये हैं।

ऊपर जिनके संक्षिप्त विवरण दिये, उनको छोड़ दूसरे भी पनेके मन्दिर बने हैं। उनमें शैलेश्वर नामका ब्रह्ममन्दिर ही सर्वप्रधान है। मिश्रयाज्ञिक

भूमिपर अनैक प्रकार के गुदम देख पड़ते हैं। यन्में कटु
 पूंगफल, मधु, मधुच्छिष्ट (मीमं), शिधा (हमली),
 साधा और वेमत्तखुजकी उत्पत्ति अधिक है।
 नक्षत्रमस्य पर्वतपर व्याप्त मस्य है। किन्तु यह
 मनुष्यपर प्रायः टटा करती है। चीते, मेड़िये, हायने,
 कोमड़ियां और गौदूद दूधरे हिंस्र जीव हैं। मालू
 कहीं देख नहीं पड़ता। पर्वतपर चित्तूरम और
 अनैक प्रकारके हरिण धरते फिरते हैं। उत्तर
 नक्षत्रमस्यमें जङ्गली भैंसा मिलता है। सेड और
 सुर्र भी जङ्गलमें बहुत हैं। नानाप्रकार पक्षी उड़ा
 करते हैं। यहां भेड़की मारनिका व्यससाय नहीं
 चलता। अजरग साय भर पड़े हैं। व्यास एवं न्यु-
 वाम और हरिपशुङ्ग कुछ कुछ विषता है।
 इस जिलेमें ईसायी बहुत रहते हैं। तेलगु भाषा
 बोलती है। किन्तु पत्तोकीहमें बहुतेसे लोग कगारी
 बोली कहते हैं। नक्षत्रमस्य पर वन्यजातिके चैव विद्य-
 मान हैं। कृषिकार्य करने अच्छा नहीं लगता। पर्वतमें
 उत्तमवर्षके समय बड़े घात्रियेसि कर सिधा करते हैं।
 करनूलके प्रधान नगर यह है—करनूल, नन्दियाल,
 कामरग, गुदूर, महीखेरा और सेपली।
 यहां च्वाट दाक, रुयी, तेल और नीलकी कृषि
 अधिक होती है। जेज और धानकी सबे सेब
 बढ़ती है। नील और घन कहनेको बोया जाता
 है। तम्बाकू, मिर्च, किले और पखरोटकी घामके
 निकट लगती हैं। कोसीकी प्रधान बांध जुवार है।
 यह प्रधानतः दो प्रकारकी होती है—पीसी और
 सफेदा-पीसी जुवार लून भांड माल या काली भूमिमें
 बो दी जाती है। किन्तु पीसी जुवार सितम्बर या
 अक्टोबर मास खेतमें पड़ती और फरवरी तथा मार्च
 मास कटती है। नक्षत्रमस्यकी कितनी ही कृषिभूमि
 पशुपती-बोयी न जानिये, वन्य बन गयी है। सड़े-
 खलेसे कड़पा तक १८८ मीने मशी नहर लगी है।
 करनूल जिलेमें हमको सम्पाये १४० मील है। यह
 ६७ गज चौड़ी और ८ फीट गहरी बहती है।
 करनूलमें कपड़े बुननेका काम अधिक होता है।
 नक्षत्रमस्य पर्वतके नीचे कोही भी मिलता है।

यक्षमस्यने हीरा निकालते हैं। पत्थर काटनेमें बहुतने
 पादमी लोग रहते हैं। नील और गुड़ भी तैयार
 होता है। अनैक नगरी और ग्रामोंमें साप्ताहिक बाट
 लगते हैं। यहांसे पनाज बाहर भेजा नहीं जाता और
 पूर्वतटसे नमक आता है। किन्तु करनूलमें मुड़ोका
 नमक बहुत बनता है। रुयी, नोल, तम्बाकू, तमडा
 और रुयीके कपड़े तथा कालीनका बानान होता है।
 बाहरसे आनेवाले द्रव्योंमें विनायती, वस्त, सुपारी,
 नारियल और सूजा मसाला प्रधान है। करनूलमें
 कोयी ६०० मील सड़क बनी है।
 करनूल-वरङ्गलके प्राचीन तैलङ्ग राज्यका विभाग
 है। उक्त राज्यके अधःगतनसे यह अध्यातः सतत्व
 हो गया था। ईश्वर-राज राजा रहे। उनके पुत्र
 नरसिंह राजको विजयनगरके महाराजने गौद लिया
 था। फिर बड़ धर्म विशाल राज्यके राजा बन गये।
 विजयनगराधिप अष्टतदेवरायके समय करनूलका
 दुर्ग निर्मित हुआ। फिर यह प्रान्त रामराजाको
 आगीरमें मिला था। १५६४ ई०को तासिकोट युद्धमें
 बीजापुर, मोलकुण्डा तथा पञ्चमदनगरके नरान्ति
 विजयनगरके रोसाको हराया और करनूलको बीजा-
 पुरके एक प्रान्तमें लगामा। पक्षी सुपेदार पश-
 चीनियावासि पददुल बहाब रहे। उन्होंने सन्दिराकी
 असजिद बना डाला।
 १६५१ ई०को औरङ्गजेबने बीजापुर जीत पठान
 किलेर खान्को सैनिक-सेवाके पुरस्कारमें दिया था।
 उनके पुत्र दाजद खान्ने उनके मार डाला। दाजद
 खान्के मंत्रीपर उनके भाई रद्दाओम खान् और
 पल्लिक खान्ने सिसकर राज्य चलाया। उक्त दोनों
 भाइयोंका उत्तराधिकार पल्लिक खान्के पुत्र इब्राहिम
 खान्को मिला था। उन्होंने दुर्ग बनाया और उसका
 बल बढ़ाया। फिर उनके पुत्र और पीतने राज्य
 किया था। पीतकों नाम विन्धत खान् रहा।
 कर्षाटकी बंदीयों पर निगाम नरुंरजङ्गको औरसे
 कड़पा और सनरुवासे नयाबके प्राय विन्धत खान्
 भी गये थे। यहां कड़पाके नयाबने पीतने मशी-
 नहरकी मारा। निजामके भतीजे सचिचर्च एवेदार

करझाद्यघृत (सं० स्त्री०) : करौदे मगरेह चीलेवि बना हुआ घी । करझ, निम्ब, प्रसून, मास, जम्बू एवं दटकी त्वक् ४ शरावक, तथा इन्हीं द्रव्योंवा कस्तूर १ शरावक, घृत ४ शरावक और ४ शरावक जस हास हास सबको एक बरतनमें पकाते हैं । फिर १६ शरावक श्रेय रहनेसे घट घृत बनता है । करझाद्यघृत दाहपाक और श्रुतिरागयुक्त । उपदंशके दोषको दूर कारता है । (चमपाचिदत)

करझिका (सं० स्त्री०) १ कंठीला करौदा । यह पाकमें कट, तुवर, पाहक, उष्यवीर्य एवं तिक्त और गीह, कुष्ठ, चर्म, ब्रण, घात तथा कृमिनाशक है । इसका पुष्प वीर्यमें उष्य, तिक्त और वात तथा कफहर होता है । (शैवकनिघण्टु) २ गुरुमालफस, बड़ा करौदा ।

करझी (सं० स्त्री०) १ अडाकरझ, बड़ा करौदा । यह स्तम्भन, तिक्त, तुवर, कटुपाक, एवं वीर्येषु और पित्त, चर्म, वमि, कृमि, कुष्ठ तथा प्रसेहघ्न है । (भाववचन) २ करझवशी, करौदेकी बेल ।

करट (सं० पुं०) कं कुक्षितं वा रटति एवं करोति, क-रट्-घञ् । वषादिभ्योःशुभ्रिण्यत् । वा शरावक १ क्वाक, कीवा । २ हस्तिगण्ड, हाथीकी कानपट्टी ।

“कव” हि निम्बेकर उं चर्मि भवती चरन् ।
 उपलभ्य न्बलानो करैः यद्वरं तु गीतम् ॥ (भाववचन)
 १ कुसुमघृह, कुसुमका पेड़ । ४ घृष्य लीवंगधारी, गुराव फादमी, गुरा पेग करनेवाला । ५ एकादशह श्राव । ६ दुदुं बड़, कहरनास्तिक । ७ वाद्यभेद, एक बाजा ।

करटक (सं० पुं०) करट स्यायं कर्तुं । १ शीरयास्य प्रयत्नक कर्षोके पुत्र । २ हितोपदेश वर्णित एक अंगार । करट रीची ।

करटा (सं० स्त्री०) करट-टापु । १ दुःखदोष गाय, मुत्रिकसधे सगनेवाली गाय । २ हस्तिगण्डस्य, हाथीको कानपट्टी ।

करटिनी (सं० स्त्री०) हस्तिनी, हथिनौ ।

करटो (सं० पुं०) करटो विचरति स्य, प्रागस्तौ इत् । हस्ती, हाथी ।

करट्ट (सं० पुं०) क-पट्ट । कर्करट्टः पची, खाकी

सारसे । इसकी गठन कासी होती है । जानोंके पर प्रागे बट दो सुन्दर, संफेद गुच्छे बना देते हैं । यह एशिया और अफ्रीकाके कयो-भागमें पाया जाता है ।

करड़-करड़ (हिं० पुं०) १ शब्दविशेष, एक पावाज । उष्य-कीर्षी चीज बार-बार टूटती फूटती या घटखती, तब यह श्रावण निकलता है । प्रायः दन्तसे कठिन वस्तु भङ्ग करती जो शब्द पुनः पुनः पाता, वही करड़-करड़ कहता है । (किं० वि०) २ शब्दके साथ तोड़फोड़ ।

करण (सं० स्त्री०) क्रियते घनेन, क-ण्युट् । १ व्याकरणोक्त कारकविशेष । क्रियाविषयिकी कारकसमूहमें कारणात्तरका व्यवधान न पड़ते जो वस्तु क्रियाकी विषयिका कारण माना जाता, वही करणकारक कहाता है । इसके द्वारा कर्ता क्रियाकी सिद्ध करता है । जैसे—रामने राम्यको बापसे मार डाला । यहाँ हस्तादि मारनेका निष्पन्न कारक ठहरते भी संयोगके प्राधान्यसे बाप ही करणकारक होता है । हिन्दीमें इस कारकका चिह्न 'से' है ।

“क्रियायाः परिनिष्पत्तिर्यापादात्तरणम् ।
 विषयाने वदा वन तत्र करणव्यवहणम् ॥” (हरिचरित्रा)

२ चक्षुरादि इन्द्रिय । ३ देह, विष्णु । ४ क्रिया, काम । ५ स्थान, जगह । ६ हेतु, सबक । ७ हस्त-लेप, हाथकी सिपायी-पोतायी । ८ त्वयका प्रकार, माचका तर्ज । ९ गीतविशेष, एक गाना । १० क्रिया-भेद, एक काम । ११ संश्रियन, बैठाय । १२ ज्योतिषके गणितकी एक क्रिया । वष, वासव, कौसव, तैत्ति, गर, वसिष्ठ, विष्टि, प्रकृति, चतुष्यद, किन्तुषः और नाग—भ्यारण करण होते हैं । इनके पवित्राद्यः देवता यथाक्रम यह हैं—इन्द्र, कामलज, सित, पर्यभा, भू, त्र्यो, यम, कलि, हनु, फणी और मादत । वषादि-सात करण शक्तवतिपदके शेषार्थसे अण्वत्पदोंके प्रथमाधे और पवपिष्ट चार अण्वत्पदोंके शेषार्थसे अक्षप्रतिपदके प्रथमाधे तक रहते हैं । १३ विष्णु ।

१४ जातिविशेष, एक कोम । अण्वत्पदोंप्राथम्ये लिखते—वेद्यके और उ तथा ग्राहके गर्भसे करण

है। प्रत्येक वर्ष प्राण्डुका यह कहते श्रीर चट्टनेसे दूर
 रहते हैं। उत्तर कोष्ठण पर भाकमय करनेको
 पक्षसे यहां सुसलमानोकी सेना अविधित गयी।
 १५४० ई०को यहमदनगरके सिंघांजियोंने इसे
 अधिकार किया। फिर पोर्तुगीजोंने करनाल लिया,
 किन्तु क्राई हजार रुपया पानेपर छोड़ दिया। १६७०
 ई०को गिवाजीने सुगलीको निकाल इस छोनाया।
 गिवाजीके मरनेपर श्रीरंगजीके सेनापतियोंने इसे
 फिर ली। १७३५ ई०तक अपने अधिकारमें रखा।
 अन्तको १८१८ ई०को यह अंगरेजोंके हाथ आया।
 करनिहित (सं० त्रि०) हाथमें रखा हुआ।
 करनी (हिं० स्त्री०) (१) काम, करवत (२) अन्य वि-
 क्रिया, मरनेपर किया जानेवाला कामकाज। शकरी,
 एक जोहार। यह लोहेकी होती है। राजमिछी
 इससे, मकान बनानेमें ईंटपर गारा लगा दूसरी ईंट
 रखते हैं।

करनूल—मद्राज प्रान्तका एक जिला। यह अक्षा०
 १४° ५४' एवं १६° १४' उ० और देशा० ७७° ४६'
 तथा ७८° १५' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके
 उत्तर तुलुभद्रा तथा कृष्णानदी, दक्षिण कडप्पा एवं
 बन्नारी जिला, पूर्व नल्लूर तथा कृष्णा और पश्चिम
 बन्नारी जिला हैं। क्षेत्रफल ७०८८ वर्गमील निकलता
 है। लोकसंख्या ७ लाखसे ऊपर है। वृक्षपक्षीका
 विद्वद्राज्य इस जिलेमें पड़ता है।
 करनूलके किन्द्यामसे नल्लमजय श्रीर यहमलय
 दो पर्वतमाला दक्षिण तथा उत्तर समानान्तर गयी हैं।
 नल्लमलय प्रायः ७० मील लम्बा और कहीं कहीं
 १२५ मीत तक चौड़ा है। विरमकोड, गुन्दलमन्न, खरम्
 और हुगुण्कोड १००० फीटसे ऊँची चोटियाँ हैं।
 इस पर्वतकी पाँच अधिल्यकार्में गुन्दलमन्न खरम्की
 उपत्यका प्रधान है। कर्पर चट्टनेकी दो पगडण्डियाँ
 खगी हैं। पूर्वीय विभाग कमवममें पर्वत अधिक है।
 इस अधिल्यकाकी पूर्वसीमापर वेलीकोड पर्वतमाला
 खड़ी है। नल्लमलयके समानान्तर अनेक सुद
 पर्वतमाला हैं। देवीय नृपतियोंने घाटियोंमें दाम
 गधाँध भूमि सीचनेकी सरोवर बनाये थीं। कुन्दलकम

नदीके दामसे सुपसिद्ध कमवम सरोवर भरा है। यह
 प्रायः १५ वर्गमील परिमित है। १००० एकर भूमि
 इससे सींची जाती है। दक्षिण विभागमें सगिले
 और उत्तर विभागमें गुन्दलकम नदी बहती है।
 कमवम अधिल्यकासे नन्दोयनम् तथा मन्तराल
 सहटमार्ग द्वारा मध्य विभागमें पड़ते हैं। यह
 अधिल्यका पतिगय प्रगल्ल और समात है। काली
 मटीमें खयी बहुत होती है। उत्तरको मयनामी और
 दक्षिणको कुन्दर नदी प्रवाहित है। यीषा चटतुमें यह
 प्रात शुष्क पड़ा जाता है। किन्तु पर्वतकी पाखर
 शहरभरे जङ्गल तथा वागें मिलते और नीले एवं कर्ने-
 चली है। ठीक इसी अधिल्यकाके नीचे मद्राज
 हरिगेशन-कम्पनीकी नहर खगी है। कुछ दिन पहले
 पर्वतकी पाखरमें भूतत्वज्ञोंने पत्थरके खन पाये थे।
 कहते—छत्ता यन्त्रिये यह सोगे कार्य करते, जो
 अधिल्यकाकी पानीमें डबते भी विद्यमान रहे।
 विभाषि विभाग दूसरे विभागसे विभिन्न देख
 पड़ता है। इसके पर्वत उत्तर दिशत हैं। दक्षिणसे
 उत्तरको हिन्दोरी नदी बहती और करनूलके निकट
 तुलुभद्रामें गिरती है। १६०० ई०को सड्डलमें तुलु-
 भद्राका बांध भूमि सीचने और नाव खींचनेके लिये
 नहर निकालनेकी पड़ाया। बाँध टूटनेपर रेतमें
 बढ़िया तरबूज होता है। सड्डलखरम्में कृष्णा और
 मयनाया दोनो मिल गयी हैं। इसी सड्डलमें नीचे
 चिकतीधम् विद्यमान है।
 कुन्दर अधिल्यकामें चूणखण्डकी शिला भरी है।
 यह मकान बनानेका अच्छा मसाला है। करनूलको
 चूणखण्ड (Lithograph) लियोमें संगत है। इस
 जिलेमें हीरक, लोह, सिन्दूर और ताँबकी खनि
 विद्यमान है। नल्लमलय और यहमलयके अनेक
 उष्णप्रपात भी निकलते हैं।
 नल्लमलयका प्रायः १००० वर्गमील परिमित
 क्षेत्र सुपसिद्ध है। इसमें हजारों मांसपथकी बढ़िया
 लकड़ी होती है। दक्षिणके वन-सवन और पूर्वके
 खन विरल हैं। उत्तरके जङ्गलोंमें गोबर भूमि बहुत
 है। विरमलयके पर्वत उत्तर दिशत हैं। किन्तु अधिसर्पणी

निकली है। (कथन ५२ वं) : यह भारतवर्षके नाना स्थानोंमें रहते हैं। इनका आचार व्यवहार ब्राह्मणोंसे मिलता-जुलता है। १५ कायस्थ जातिकी एक श्रेणी। कायस्थ श्रेणी दासिणात्ममें कहीं कहीं कर्णलु नामों भी प्रसिद्ध है। १६ क्षत्रियाणकी मतसे एक ब्राह्मणद्वयि जाति।

“अथो मन्त्र राजन्नाम् प्राथमिणिरिव च।
मन्त्र्य करण्येन ससद्विच एव च॥” (मन् १.१११)

१७ असम्य भवस्थामें पतित एक जाति। आसाम-के पूर्वशांघावतीय प्रदेश, एवं ब्रह्म और श्याम देशमें यह लोग रहते हैं। मकल स्थानोंके कारण देखनेमें एक प्रकार नहीं लगते। देशभेदसे आकारमें भी बेलखण्ड या गया है। यह बलशास्त्री, साहसी और भीमकाय होती है। मुखपर गोदा रहनेके कारण स्त्रीपुत्र दूरसे भयङ्कर देख पड़ते हैं। असम्य होती भी कारण अति सरल, सत्यवादी और गिरोह है। सुदविग्रह किशोको भ्रष्टा नहीं लगता। सब लोग शान्तिप्रिय होते हैं। किन्तु किशोके अतिट करने या दोषी ठहरनेसे इनका वीर्यवृद्धि भ्रमकं ठहता है। १८ ब्रह्मवासी बलवीर्यमें एक कारणके समकक्ष पड़ते हैं। बलवादी होती भी यह सहज निवृत्तिसे असम्य रहते हैं। किन्तु इससे कारण असम्य नहीं ठहरते। यह जहां वास करते, वहां अपने अपरिशील परिचय और यज्ञसे भूमिकी प्रभुत्व शक्तिसिद्धि बना रहते हैं। फिर भी इन्हें एकहाल निर्दोष कष्ट नहीं सकते। कारण यह जगत् बहुत पोस है। कारण मध्यके किये साक्षीयित रहते और उसे पानेपर अपनेको भी सुख समझते हैं।

यह लिखना-पढ़ना कुशल नहीं जानते और न किसी धर्मशास्त्रको ही मानते हैं। मूर्खताका कारण पढ़ने पर इनके मुखसे सुनने पाया, किसी समय ईश्वरने महिषवर्मपर अपना पादेय और धर्मशास्त्र लिख मनुष्योंको हुलाया था। मनुष्योंमें सब लोग ईश्वरका पादेय और धर्मशास्त्र पढ़क करनेको पढ़ते, किन्तु समय न मिलनेसे वे सब करक जा गये; इतरा विरवासको धर्मशास्त्रहीन हो गये।

१८ जम्बोरहण, जम्बरी नीबूका पिट्ट। (श्लो०) १८ योगियोंका आसन। २० कतादि। २२ सेख-पत्र, साविद्विधादि।

करणक (सं० श्लो०) १ दारा, से। पूर्ववर्ती किसी पदके साथ बहुव्रीहि समास न रहते इसका प्रयोग असम्य है।
करणपाण्य (सं० श्लो०) करण्योः हस्तादिभिः त्रायते यत्, करण्ये ह्यट्। मस्तक, सर, मत्या।
करणत्व (सं० श्लो०) साधनत्व, सायोद, क्षरिया।
करणनियम (सं० पु०) इन्द्रियनिग्रह, बलकी रोक।
करणवाचक (सं० पु०) करणं वाचयति, करण-वच-व्युत्। करणबोधक, क्षरियेको क्षात्रि करनेवाला।

करणवास—युक्तप्रदेशके तुलन्द्यहर जिलेका एक नगर। यह तुलन्द्यहरसे ३० मील दक्षिणपूर्व पनप-गहरकी तहसीलमें मन्त्रके दक्षिण तीर अवस्थित है। प्रायः समस्त पथिवासी हिन्दू और जमीन्दार बेश-राजपूत हैं। दगहरके यहां एक मेला लगता है। इतना बड़ा मेला तुलन्द्यहर जिलेमें दूसरा नहीं होता। शीतलाका एक प्रतिप्रार्थीन मन्दिर विद्यमान है। प्रति सोमवारको उत्तम मन्दिरमें क्षिप्रा उपस्थित हो पूजा चढ़ाया करती है। दिवायोंसे कारणवास तक सड़क लगी है।

करणविन्य (सं० पु०) सहायका नियम, तलफु-फु, जका तरीका।

करणस्थानभेद (सं० पु०) इन्द्रियका पार्श्वक, बलका फल।

करण (सं० श्लो०) वायुयन्त्रविशेष, एक वाता। यह सहज और सहिद्र यन्त्र है। भारतवर्ष और पारस्थने इसे व्यवहार करते हैं। अग्नि कर्णभेदी है। इसका दैर्घ्य १५ फीट होता है।

कारणाधिप (सं० पु०) करवाणी अधिप; १-तत्। १ शीघ्र, रुह। २ इन्द्रियाधिप्राय देवता। कर्णके दिक, स्वर्णके वायु, जेतके चर्मा, रसगाके प्रचेता, नासिकाके अग्नि, कुमारदेव, बाबूके बलि, पायके इन्द्र, पादके उषेन्द्र, पादके मित्र, उपरके ब्रह्मपति,

भूमिपर धनेक प्रकारं गुणम देख पडते हैं। धनमें कटु-
 पुंगफल, मधु, मधुच्छिद (मोम), विंशा (इमली),
 साचा भीर वंशतण्डुलकी उत्पत्ति अधिक है। नक्षत्रमलय पर्यंतपर व्याघ्र मलय है। किन्तु वह
 मनुष्यपर प्रायः टूटा करते हैं। चीते, भिड़िये, हायने,
 कोमड़ियां भीर गीदड़, दूधरे सिंघे जीव हैं। भासू
 कहीं देख नहीं पड़ता। पर्यंतपर विवस्त्रंग भीर
 धनेक प्रकारके हरिण चरते फिरते हैं। उत्तर
 नक्षत्रमलयमें जङ्गली भैंसा मिलता है। सिंह भीर
 सुवरे भी जङ्गलमें बहुत है। नानाप्रकार पक्षी उड़ा
 करते हैं। यहाँ मछली मारनेका व्यवसाय नहीं
 चलता। पशुगर्वाप भरें पड़े हैं। व्याघ्र एवं स्य-
 घमें भीर हरिणशुक्र कुक कुक बिकता है।
 रस जिलेमें ईसावी बहुत रहते हैं। तिलगु भाषा
 चलती है। किन्तु पत्तोकोटमें बहुतसे लोग कमारों
 बोली कहते हैं। नक्षत्रमलय पर वन्यजातिके सिंधु विद्य-
 मान हैं। कृषिकार्य उन्हें अच्छा नहीं लगता। पर्यंतमें
 उत्सवके समय वह यात्रियोंसे कर लिया करते हैं।
 करनलके प्रधान नगर यह है, करनल, नन्दिपाल,
 कामम, गुदूर, महीखेरी भीर पेपली।
 यहाँ ब्यार, दाल, रुयी, तेल भीर नीचकी छापि
 अधिक होती है। खेख भीर धमकी, शींष शींष
 चढ़ाते हैं। मीह भीर सन कहनेकी बोया जाता
 है। तम्बाकू, मिर्च, केले भीर खखरोटकी घामके
 निकट लगते हैं। नौग्रीकी प्रधान खाद्य सुवार है।
 यह प्रधानतः दो प्रकारकी होती है—पीली भीर
 सफ़ेद। पीली सुवार जून-मास जाल या काली नूमिमें
 बो दी जाती है। किन्तु पीली सुवार चितम्बर या
 शंकरि मास खेतमें पंहुती भीर फरवरी तथा मार्च
 मास कटती है। नक्षत्रमलयकी कितनीही कृषिभूमि
 बंध जाती-बोयी न जानेसे बन्ध बन् गयी है। सहे-
 सलेके कड़या तक १८८ मीने लम्बी नहर चगी है।
 करनल जिलेमें दसकी कस्यायो १४० मील है। यह
 ६०-मास चौड़ी भीर क. कीट गहरी बहती है।
 करनलमें कपड़े बुननेका काम अधिक होता है।
 नक्षत्रमलय पर्यंतकी नीचे कोंडा भी मिलता है।

यक्षमलयसे हीरा निकालते हैं। पत्थर काटनेमें बहुतसे
 भादमी लगे रहते हैं। नील, पीर, गुड़ भी तैयार
 होता है। धनेक नगरों भीर धामोंमें धार्माधिक हाट
 लगते हैं। यह विपनाज बाहर भेजा नहीं जाता भीर
 पूर्वतटसे नमक आता है। किन्तु करनलमें मट्टीका
 नमक बहुत बनता है। रुयी, लोन, तम्बाकू, चमड़ा
 भीर रुयीके कपड़े तथा फालीनेका चालान होता है।
 बाहरसे आनेवाले द्रव्यमें विलायती, बख, सुपारी,
 नारियल भीर सुखा मसाला प्रधान है। करनलमें
 कोयी ६०० मील सड़क बनी है।
 करनल परल्लके प्राचीन तैलङ्ग राज्यका विभाग
 है। तैलङ्ग राज्यके अधिपतनसे यह सम्भवतः छतख
 हो गया था। ईश्वर-राजराजा रहे। छतनके पुत्र
 नरसिंह राजकी विजयनगरके मङ्गलरत्ने गोट किया
 था। फिर वह छत्तमियाल राज्यके राजा बन गये।
 विजयनगराधिप अच्युतदेवरायके समय करनलका
 दुर्ग निर्मित हुआ। फिर यह प्रान्त रामराजाको
 ग्वागोरमें मिला था। १५६४ ई०को तालिकोट युद्धमें
 बीजापुर, गोलकुण्डा तथा चम्पदनगरके नवाबाने
 विजयनगरके राजाको हराया भीर करनलकी बीजा-
 पुरके एक प्रान्तमें समाया। पड़से सुवेदार अब-
 डीनियावाले बहुतसे बहावे रहे। छत्तेने मन्दिरोंकी
 मिसजिद बना डाला। १६५१ ई०को भीरहजरेने बीजापुर जीत पठान
 किलीर खानको सैनिक-सेवाके पुरस्कारमें दिया था।
 इनके पुत्र दाजद खानने उन्हें मार डाला। दाजद
 खानके मरनेपर उनके भाई इमशोम खान भीर
 अस्मिन् खानने तिलकराज्य अधिपत किया।
 छत्त दोर्ना माइयोका उत्तराधिकार अस्मिन् खानके पुत्र इमशोम
 खानको मिला था। उन्होंने दुर्ग बनाया भीर उसका
 बस बढाया। फिर छत्तेके पुत्र भीर योतने राज्य
 किया था। योतकी नाम हिम्मत खान् राहा।
 कर्णाटककी सदायी पर निशाम नजारेकको भीरसे
 कड़या भीर सवनरवाले नवाबोंके साथे हिम्मत खान्
 भी गये थे। वेह कड़याके नवाबने घोडेसे नजीर
 लड़की मारा। निजामके मतीजे दचिचके सुवेदार

मनके चन्द्र; बुद्धिके चतुर्मुख, चन्द्रकारके चन्द्र और
 मनके पथिय चतुर्मुख हैं। १ दवादिके स्तामी।
 करपिक (सं० पु०) करणव्यवहारके फायस्य।
 करपी (सं० स्त्री०) क्रियते क्रियाविशेषोऽत्र; क-
 करणे सुटःडीय। १ गणितशास्त्रोक्त क्रियाविशेष।
 पति छ्प्रदपसे जिष रागिका मूल निकाल नहीं सखते,
 उसे करपी कहते हैं। (Surd) २ करणकी स्त्री।
 करपीय (सं० त्रि०) क्रियते यत् यत्र वा, कर्मणि
 आधारि च क-पनीयर्। इत्यङ्गो र्भृत्। न शशा१२।
 कार्य, करने लायक।
 करपीसुता (सं० स्त्री०) पोषपुत्रीरूपसे ग्रहण की
 जानेवाली सुता, जो लसुकी पाननके त्रिये-पेटोकी
 तरह रखी जाती हो।
 करण्ड (सं० पु०) क्रियते, क कर्मणि चण्डन्।
 चण्ड् हण्यश्नः। चण्ड११२५। १ मसुकीय, मसुका
 कृत्ता। २ अग्नि, तप्तवार। ३ कारण्डव पत्नी, एक
 कंस। ४ दसाटक, हजारा घनेली। ५ वंगारि-
 रचित पुष्पपात्रविशेष, फूलकी छान्नी या पेटारी।
 ६ कासगण्ड, यज्ञत्। ७ यानविशेष, किसी किसका
 सेवार। हिन्दीमें कारण्ड चाकू, हाथियार वगैरह
 टेनेके कुदर पत्थरको कहते हैं।
 कारण्डक (सं० पु०) वंगारिचित पुष्पपात्रविशेष,
 बानकी छानिया या पेटारी।
 कारण्डकनिवाप (सं० पु०) बौद्धमन्त्रोक्त एक पुष्प-
 स्थान। यह राजगृहके समीप अवस्थित है।
 कारण्डकस (सं० पु०) कपित्थवृक्ष, कैशेका पेड़।
 कारण्डकसक, कारण्डक शब्दो।
 कारण्डा (सं० स्त्री०) कारण्ड-टापू। १ पुष्पपात्र;
 फूल रखनेकी पेटारी। २ यज्ञत्।
 कारण्डिक (सं० पु०) कारण्डः विद्यते यत्र, कारण्ड-
 इकन्। कारण्डयत् चर्ममय स्थली रखनेवाला जोय,
 जिष सागधरके मुँहकी तरह चमड़ेकी घेसी रहे।
 कारण्डी (सं० पु०) कारण्डयत् चाकारोऽस्ति प्रस्य,
 इति। १ मत्स्यविशेष, एक मछली। २ पुष्पपात्र-
 विशेष, फूलकी पेटारी। हिन्दीमें कारण्डी चण्डी यानी
 कच्छे रैयमसे बनी आदरका कहते हैं।

करणः (सं० पु०) करण-भव, यत्। करिक,
 कायस्थजाति।
 करतव (हिं० पु०) १ कर्तव्य, फर्ज, काम। २ कसा,
 हुनर। ३ जाटू। ४ चालाकी।
 करतविया (हिं० वि०) करतव करनेवाला।
 करतवी, करतविया शब्दो।
 करतवी (हिं०) करतवी शब्दो।
 करतवः (सं० पु०) करस्य तलः; इतत्। १ दन्त-
 तल, हथेली। २ उगण; चार, मात्राका एक गण।
 इसमें प्रथम दो मात्रा लघु और अंशकी एक मात्र
 दीर्घ पाती है। ३ एक प्रकारका कृष्य।
 करतवगत (सं० त्रि०) हथेलीमें पड़वा हुआ,
 जो छाय पा गया हो।
 करतवधृतः (सं० त्रि०) हथेलीमें रखा हुआ, जो
 हाथमें पकड़कर रखा गया हो।
 करतवसः (सं० त्रि०) हथेलीमें रखा हुआ।
 करतवी (हिं० स्त्री०) १ गाड़ीवान्के बैठनेकी जगह।
 २ हथेली। ३ ताली।
 करतव्य (हिं०) कर्तव्य शब्दो।
 करता (हिं० पु०) १ कर्ता, करनेवाला; कर्ता शब्दो।
 २ हस्तविशेष, एक छंद। इसमें एक गण, एक लघु
 और एक गुरु—सब पांच अक्षर आते हैं। ३ गोकीका
 टप्या।
 करतार (हिं० पु०) १ कर्तार, विधाता। २ करताल।
 करतारो (हिं० स्त्री०) ताली, हथेलीकी धायाज।
 २ वाद्यविशेष; एक मात्रा।
 करताल (सं० स्त्री०) जराभ्यां दीयमानमृताली यत्र,
 बहुव्री०। १ मसक, एक वाजा। यह यत्र कांस्य धातुमें
 बनता है। २ मस्यविशेष, एक धायाज। यह दोनों
 हथेलियां बजानेमें निकलता है। ३ मंजीरा, भांग।
 करतालक (सं० स्त्री०) करताल रखने, कन्।
 करतालधनि (सं० पु०) करतालस्य धनि; इतत्।
 करतालका माय, मंजीरा वगैरह वाजा।
 करताली (सं० स्त्री०) करताल गौरादित्वात् डीय।
 १ वाद्यविशेष; एक मात्रावाला। २ करतवधृतके

वने। किन्तु पठान-नवाबों को लक्ष्मी-सिंह-सन्तुष्ट रहे।
 दो-चौटीमें हिम्मत खान् वहादुरने उन्हें मार-डाला।
 उत्तेजित-सैनिकोंने हिम्मत खान्के भी टुकड़े
 सड़ाये थे। फिर नजीरजङ्गके दूसरे भतीजे सहायत
 खान् सुवेदार हुये। १७५२ ई०को हैदराबाद लौटते
 उन्होंने आक्रमण मार-करनूल अधिकार किया था,
 किन्तु कुछ रूपया ले हिम्मतखान्के भाई सुनवर
 खान्को सौंप दिया। थोड़े ही दिन बाद हैदर
 खान्ने करनूल आक्रमण कर दो लाख (गडवाल)
 रूपया पाया था। १७५० ई०को यह जिला कड़प्पा और बहारीके
 साथ अंगरेजोंको दिया गया। संघ-समयसे नवाब
 अलिफ खान्के साथ (गडवाल) रूपया प्रतिवर्ष
 सरकारको पहुंचाते रहे। १७५२ ई०को अलिफ
 खान्के मरने पर उनके भाई सुजफ्फर जङ्गने
 सिंहासन और दुर्ग अधिकार किया। अलिफ खान्के
 ज्येष्ठपुत्र सुनावर खान्ने अंगरेजोंसे साहाय्य मांगा
 था। अंगरेजोंसे करनूल मरियटको जल कर
 पहुंचे। सुजफ्फर खान् करनूलसे निकाले और
 सुनवर खान् मसजद पर बैठाले गये थे। १७५३
 ई०को सुनवर खान् मरे। उनके भाई सुजफ्फर
 करनूलसे सिंहासनाहट होने पर रहे थे। किन्तु उन्होंने
 बहारीके निकट अपनी पत्नीको मार-डाला। इसीसे
 बहारीके जिलेमें कौद हुये और १७५५ ई०को
 मर गये। १७५५ ई०को समाचार मिला—करनूलके नवाब
 गवरनमेषटके विरुद्ध युद्धकी तैयारी करनेमें लगे हैं।
 अपने पक्ष करने पर मालूम हुआ—दुर्ग तथा प्रासादमें
 अस्त्रसज्जा और गोली बरफूदका ठेका किया गया है।
 अंगरेजोंने तीक्ष्ण युद्धकी पीछे दुर्ग और नगर
 अधिकार किया। नवाब हिन्दू-नदीके सामंतों पर
 कोरापुर नामको भंगी थे। अन्तको उन्होंने आवसमर्थण
 किया। यह सिंधनापलीके किलेमें बन्दी रहे। जब
 उनके एक शिष्यने उन्हें मार-डाला। अन्तका राज्य
 जमना हुवा और उनके दसवर्षीके पौत्रने मिला।
 १७५८ ई०को करनूल जिला बनाया गया।

यहां शिवाका सुप्रधार नुई। जलवायु स्वास्थ्यकर
 है। पश्चिम और उत्तर-पूर्वसे अधिक वायु आता है।
 जूनसे सितम्बर मासतक वृष्टि होती है। नक्षत्रसय
 पर्वतके नीचे ज्वरका प्रकीर्ण रहता है। मैदानमें
 गोबरभूमि नहीं। पशु पर्वत पर चरते हैं। किन्तु
 योष ऋतुमें पर्वतकी घास जल-जानेसे पशु भूखों
 मरते हैं। करनूल कमबम और नन्दियालमें दातथ
 औषधालय विद्यमान हैं। १७५९ ई०को
 २ करनूल जिलेके रमलकोट परगनिका प्रधान
 नगर। यह अक्षा० १५° ४८' ५८" उ० और देशा०
 ७८° ५' २८" पू० पर अवस्थित है। लोकसंख्या २०
 सहस्रसे अधिक आती है। यह करनूल जिलेका
 हेड क्वार्टर है। हिन्दू और तुलमद्रा नदीके संगम
 पर बसती पड़ी है। भूमि प्रायः है। स्थानीय
 दुर्ग गोपाल रावने बनाया था। १८५५ ई०को इसका
 सामान संतार गया। पावरपण्टके गिराये जाये भी
 धार वष (दुर्ग) और तीन द्वार विद्यमान हैं। इसमें
 नवाबका प्रासाद था। १८७१ ई०तक दुर्गमें खान्
 रही। इसी समय करनूलमें विश्वशिक्षा अधिक
 देख पड़ती थी। किन्तु स्युनिवर्सिटीके स्थापना की
 धन व्यय कर इसका स्वास्थ्य सुधार है। फिर भी
 अन्ध-निकलनेसे ज्वरका रोग बहुत बढ़ जाता
 है। १८७७-७८ ई०को दुर्गमें पड़नेसे करनूल पर
 बड़ी विपदा पायी थी। रेलका गूटी ऐगन ३० कोस
 दूर है। इसमें प्राये हिन्दू और प्राये सुसलमान
 रहते हैं। करनूलके जिलाधिकारी
 करनूल (१५० पु० = Colonel) सेन्टदलायचक को ज-
 काः प्रमदर है। यह ब्रिगेडियर जनरलके नीचे रहता है।
 करनूलमें (६०० पु०) किरासे बसति। अग्नि-योग
 क्रांति, कर-पा-खय सुमुख। १७५७ ई०के पत्र
 पं० १५५० सुवर्षी। इच्छा कुर्व शीघ्र खतीने जलामक
 राजाके पुत्र। अत्ययुगके समय मनु-वर्षमें खतीने
 राजाने जन्म लिया था। यह प्रतिग्रह सन्त-रहे।
 उन्होंने खीये स्वायधीन प्रजासर्वको निरन्तर रखाया।
 अत्ययुगके विषयमें राजाको रिम्हा वह खीये पूर्वपुत्रको
 अज्ञितः ययः प्रा न सके। परिग्रहने दिव्यजयी लब्धि

अभिधांतसे उत्पादित शब्द, इयेलियां वजानिको प्रावान।

करती (हिं स्त्री०) सतषष्का चर्म, भरे बछड़ेका चमड़ा। इसमें भूसा भर लोग बछड़ा जैसा बना देते और उसे देखा गायकी चगा लेते हैं।

करतू (हिं स्त्री०) काष्ठखण्डयिष्य, लकड़ीका एक टुकड़ा। यह खेत में खींचनेकी बेंडीकी रखीके सिरेपर लगती और हाथमें रहती है। करतूके ही संहार देही पानीमें छशायी और ऊपर उठायी जाती है।

करतूत (हिं स्त्री०) १ कष्टत्व, काम, करनी। २ कला, हुनर, करतब। ३ कृकर्म, घुरा काम।

करतूति, करतू शब्दों से मिलता है।

करटण (सं० स्त्री०) खेतकेतक, सफेद केशु।

करतोय (सं० स्त्री०) वर्षापवहजल, भोसेवा पानी।

करतोया (सं० स्त्री०) कराम्यां प्युतं इरपार्थी-

परिणयकालीन इकराभ्यां चरिते सोयं जलं विद्यते त्वं, चयांदिवाद्च्। खनामप्यात नदीविशेष, एक दरया। गौरीके विवाह समय त्रिकके पाणिनिधित जलसे यह नदी निकली थी। करतोया प्रतिग्रय पवित्र है। वर्षाकाल संकल नदीका जल गाम्नामें पश्चिम कड़ा है। किन्तु इस नदीका जल किसी समय नहीं बियहता। यह तीर्थस्वामीके मध्य गणनीय है। इस तीर्थमें पशुषं विरायं उपवास करनेसे अथर्ववेद्य यज्ञका फल मिलता है। (भारत वाक्य)

पूर्वकालकी करतोया बड़ा और कामरूपके मध्य हीमा-निर्देशक रही। कालसे होके किन्तु प्राणकंठ इसकी गति सम्पूर्ण बदल गयी है। पहले यह रङ्ग-पुरमें पश्चिमसे बहती थी। सम्प्रति जलपाइगुड़ी विलेके उत्तरपश्चिम वैकुण्ठपुरके जलसे निकला बराबर दक्षिणकी जाती और रङ्गपुरके मध्यसे बगुड़ा विलेके दक्षिण दक्षिणियां नदीके साथ मिल जाती है। इसी स्थानसे करतोयाकी गतिमें बड़ा गड़बड़ पड़ता है। निर्णय करमा संरक्ष नहीं—नाना शाखा शरीर और हो कड़ा गयी है। विप्रियते गत कयी शतवर्षसे तिस्तीता नदी इस बहसमें जिस भावसे

निर्दिष्ट गतिकी छोड़ बही, उससे प्राचीन करतोयाकी पूर्वगति निर्णय करनेमें बड़ी सहायता पड़ी है।

उक्त स्थानसे यह भागें बट जुनभरके नाम प्राये ही नदीसे मिल गयी है। 'ननेक लोग' इस जुनभरको ही प्राचीन करतोया नदी सिखते हैं। फिर किसीके मतमें महागदी और तिस्तीताकी मध्यवर्ती 'करतो' प्राचीन करतोयाकी उत्पत्ति और बगुड़ा जिसेही यमुना मध्यगति है।

प्राञ्चकल पत्यन्ता सुद्र भांकार वनाते भी यौराधिक समय करतोया महास्रोतखतोरूपमें चली जाती थी। करवरा (हिं पुं०) पर्वतविशेष, एक पहाड़। यह हिन्दुगदके 'उसपार' हिन्दुपदेग' और बन्दुविस्तानके मध्य अवस्थित है।

करद (सं० स्त्रि०) कर ददाति, कर-दा-ड। १ राजस्व-प्रदानकारी, विराज देनेवाला। २ परित्रापाय इत्ना-प्रदानकारी, मददके लिये हाथ फेरानेवाला।

करदस (सं० स्त्रि०) मनुइस्त, जिपुण, दस्तकार, 'काशीगर'।

करदम (हिं पुं०) करन शब्दों

करदल, करदना शब्दों

करदला (हिं पुं०) हस्तविशेष, एक पीटा। इस सुद्र हस्तकी लक्ष् विलक्षण एवं पीतम होती है। हस्तसे चर्ममें मधु पत्रके गुच्छ लगते हैं। गरद वीनने पर पत्र निकलनेसे पूर्व पीतपत्र पुष्प भाति और उनके मध्य ही-दा वोज पड़ जाते हैं। माच एवं चर्मस माम इसके विकसित होनेका समय है। करदला हिमाचल पर पांच हजार फीट ऊंचे जगता है। वोज साध-रूपसे व्यवहृत होती है।

करदा (हिं पुं०) रगद, कूड़ा, करकट। यह पत्ताज समे रङ्ग चीजोंमें मिनी धूलका नाम है। इसके परिधतनने दिया जानेवाला द्रव्य वा मूल्य भी 'करदा' ही कहता है। वस्तुतः यह गरद शब्दका अपभ्रंश है। २ बहा, बदलायी। ३ कटौती।

करदायी (सं० स्त्रि०) कर ददाति, कर-दा-यिनि। 'निर्दिष्ट गतिकी छोड़ बही'। १ परित्रापाय इत्ना-प्रदानकारी, विराज देनेवाला।

होते भी प्रजापति इन्हें 'सि' धासमेंसे छतारे चरस्थकी भगवां और उनके पुत्र सुवर्चाको राजा बनाया। सुवर्चा पिताकी विशद-क्रियाएत रहनेसे राज्यचुरत और निर्वासित होते रहने संतत 'संयंत-चिरसे' प्रजाके हितसाधनमें लगे थे। प्रजा भी उनके ब्रह्मनिष्ठ, सत्यव्रत, शक्ति, श्रमदमादि गुणभूषित, मनसुी और धार्मिक पापशून्य चतुररु हूयी। कालवग सदा धर्म-निरत सुवर्चाको पर्यहीन होनेसे सामन्त संताने लगे। इन धर्मात्मा नृपतिने कोष एवं बाह्यमादि विहीन हो सामन्तगणके भयसे अपने चतुररु श्रेष्ठकी सहाय्य सुपरीकी बचाया था। वसहीन होते भी नियंत धर्म-परायण रहनेसे उत्प्रेीडक सामन्त इन्हें विमष्ट कर न मके। पंचशेषमें जयराजाकी सामन्तगणने जिदा-दण रूपसे सताया, तब इन्होंने अपना कर चमकमें लगाया था। उसपर पन्निसे इनका भीमपराक्रम सेनासमूह निकल पाया। फिर बलीयान्-नृपतिने अपूर्व रूप-आविर्भूत 'सैन्यसमूहसे परिहृत हो स्वीय सीमाके पंतवर्ती नृपतिगणकी नीचा दिखाया था। स्वीय कर सेनिसे जनानिपर उस दिग्गजे सुवर्चाका नाम 'करन्धय' पड़ गया। करन्धय (सं० त्रि०) करं धयति छिट्टि, कर-धे-खं-सुम्। इच्छासेहक, हाथ चूमने या चाटनेवाला। करन्धयस्तकपोलान्त (सं० अथ०) इच्छाहृत कपोलके पल्लपर, हाथपर रखे हुये गालके छिरे। करन्धास (सं० पुं०) करे करावयये न्यासः, ०-तत्। तन्वीक न्यासविधि। तन्वीक मन्त्र उच्चारणपूर्वक अक्षर प्रथति अक्षुस्त्रिसमूहके तल और उष्ट्रद्वयपर जो न्यास किया जाता, वही करन्धास कहता है। करपद्य (सं० पुं०) करो पद्यवत्-यस्य, बहुव्री०। भीमगोदड़ वगैरह। करपद्मज (सं० पुं०) करः पद्मजमिव। पद्महस्ता, कवच-जैसा हाथ। करपख्य (सं० स्त्री०) करार्यं राजसार्थं पख्यम्, मध्यपदलो। राजसूके लिये दिया जानेवाला-विक्रय वस्तु, जो चीज खिरानके लिये दी जाती है। करपत्र (सं० स्त्री०) करमवसव्यपतति, कर-पत्त-

इन्। दलीयवपुत्रसु-उदरिधिविचरिन् १० मा १५/१२, १ क्रक-
 षास्य; करोत। यह सुश्रुतमें कथित विद्यति पक्षीका
 एकप्रकार भेद है। इससे छिदन और खिचन काम
 होता है। २ खानके समय जनेका इधर-उधर कटाव,
 नहाने वक्त पानीकी अपने उधर-उधर हाथसे भेकीक-
 निका काम। करपत्रक (सं० स्त्री०) करकच, करोत। करपत्रवान् (सं० पुं०) करपत्रवत् पत्रः यस्य तत्
 प्रथ्यासि; करपत्र-भतुपः मस्य वा। करपत्रिका (सं० स्त्री०) करी पत्र-धानमिव
 यस्याः, कर-पत्र-कप-टाप-पत्तं शत्वम्। १ जलक्रीडा,
 पानीका खेल। २ तिलपत्ती। करपरः (सं० पुं०) १ कपरे, छोपडा। (वि०)
 २ कपण, कपूस। करपरी (सं० स्त्री०) करी, सुगौरी-मैथीरी
 करपर्ण (सं० पुं०) करवत् पर्ण यस्य। १ मिष्ठी वृक्ष,
 मिष्ठीका पेड़। २ कौरुण्ड, नास रूढ़। ३ एक देवी।
 करपलवी (सं० स्त्री०) करपलवी देवी। करपलवः (सं० पुं०) करस्य पलववत्। १ बहुलि,
 संगली। २ हस्त, हाथ। ३ पक्षुलिके सङ्घतसे कथ-
 नोपकथन करनेकी विद्या, संगलियोंके हथारसे बात
 करनेका हुनार। "यदिपच कमल चक टहार। तब परंत भीरवे धरार।
 च युधिप चर बुधननि मात। राम बहे लक्ष्मणकी बात है।
 हाथसे पहिका कण बनानिपर प्रकारादि स्वयं,
 कमल बनानिपर-कारादि, चक्रादिखानिपर-चकारादि,
 टह्यार-बानानिपर-ठकारादि, तस-वतानिपर-तकारादि,
 परंत बनानिपर-पकारादि; योवन देखानिपर-यकारादि
 और गृह्यार सुखानिपर-शकारादि सर्वका बोध होता
 है। फिर एकादिकमसे अक्षुति देखानिपर अघर और
 सुटकी-बजानिपर माता ठहराते हैं। करपसवी (सं० स्त्री०) इक्षुके सङ्घतसे कथनोपकथन,
 हाथके हथारकी बातचीत। करपत्र देवी। करपा (सं० पुं०) डाँट, छिटना। धर्माजके बाँह-
 दार वृक्षका करपा कहते हैं।

करदीकृत (सं० द्वि०) अकारदं करदं क्रियते येन, चि। कर देनेको वाध्य किया हुआ, जो खिराज पदा करनेको मजबूर बनाया गया हो।

करदीना (हिं० पु०) दीना।

करद्वम (सं० पु०) किरतिः विक्षिपति समन्तात् याखाः, कः प्रच्, करखासौ द्वमचेति, नित्य-समा०। कारस्कारस्य, कुचिना।

करद्विप (सं० पु०) करं द्वेष्टि, कर-द्विप-क्रिय। १ गोवभेद। २ वेदगाथाभेद।

करधनी (हिं० स्त्री०) १ किष्किपी, कमरका: एक गहना। यह स्वर्ण वा रोप्यमय होती है। बालकीकी करधनीमें सुघरू सगाते हैं। फिर खियोंके पहननेकी करधनी सादी ही रहती है। २ कटिमें धारण किया जानेवाला एक सूत्र, कमरमें पहननेका लड़दार सूत। (पु०) ३ धान्यविशेष, किसी किष्कका धान। इसकी भूसी काकी होती है। किन्तु चामल रत्नाभ निकलता है।

करधर (हिं० पु०) १ खाद्यविशेष, मधुवेकी रोटी। इसे मधुवरी भी कहते हैं। २ भेष, मादल।

करघृत (सं० त्रि०) हस्तद्वारा धारण किया हुआ, जो हाथसे पकड़ लिया गया हो।

करन (हिं० पु०) शोपधिविशेष, जुरिरक, एक जड़ी-बूटी। यह खानेमें अस्त्रमधुर होता है। इसे चटनी आदिमें व्ययहार करते हैं। करनका सेवन करनेसे दस्त साफ़ उतरता है। यह रेषक भी है।

करनधार (हिं०) करन धरणी।

करनफूल (हिं० पु०) अलङ्कारविशेष, एक गहना। यह स्वर्ण वा रोप्यमय होता है। जियां इसे कर्णमें धारण करती है। करनफूल पुष्पाकार बनता है। इसे पहनेको जानकी लो हैदायी और वारीक-वारीक भिकीके कई टुकड़े हाल हाल बढ़ाये जाते हैं। यह दो प्रकारका होता है—साधारण एवं कड़ाक। करनफूलमें जियां भूमिसे भी सटका लिया करती हैं।

करनमेघ (हिं०) करन धरणी।

करना (हिं० पु०) १ हस्तविशेष, एक पीटा। इसके पत संतककी भांति दीर्घ एवं कंपटकरचित रहते

हैं। पुण्य ज्ञेतवर्षं धाते है। औरभ किञ्चित् मिह सगता है। इस हस्तको कर्ण और सुदग्गन भी कहते हैं। २ निम्बुकोविशेष, एक नीवू। यह विजोरेकी भांति दीर्घ होता है। उपर नाम पचाड़ी नीवू है। ३ कायं, काम। (कि०) ४ समातिपर लाना, सुगताना, निवटाना। ५ पकाना, बनाना। ६ भिजना, पहुँचाना। ७ प्रथय लगाना, सुहृन्वत बढ़ाना। ८ व्ययसाय चक्षाना, काम लगाना। ९ सवारी लाना, भाड़ा ठहराना। १० बुझाना, उठाना। ११ रूप बदलना। १२ उठाना। १३ रंगना। १४ मारना। १५ मजा लाना।

यह क्रिया सर्वप्रधान है। इसमें सब क्रियायोंका पर्थ निकल सकता है। फिर किसी संघाके पीछे लगा देनेसे यह संघाके पथकी क्रिया बना देती है।

करनाट (हिं० स्त्री०) करनाय, तुरटी।

करनाटक (हिं०) बर्णाटक शब्द।

करनाटकी (हिं० पु०) १ कर्णाटक, करनाटकका यामिन्दा। २ नट, कला खेलनेवाला। ३ याजीगर, इन्द्रबाज दिखानेवाला।

करनाल (हिं० पु०) १ करनाय, नरसिंहा। २ बड़ा टोस। यह गाड़ीपर लद कर चलता है। ३ किसी किष्ककी तोप।

करनाल—१ पञ्चायमानका एक जिला। यह पचा० २८° ८' एवं ३०° ११' उ० और देशा० ७१° १३' तथा ७७° १५' ३०" पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तर पश्चाला जिला तथा पटियाला राज्य, पश्चिम पटियाला एवं भींद, दक्षिण दिल्ली तथा रोहतक जिला और पूर्व यमुना नदी पड़ती है। करनाल जिलेमें तीन तहसीलें हैं—पानीपत, करनाल और कैथल। भूमिका परिमाण २३६६ वर्गमील प्रायः है। लोकसंख्या प्रायः सवा-छह लाख है। भूमि दो प्रकारकी है—गांर और खादर। जूँसे मैदानकी 'गांर' और नीची जगहकी 'खादर' कहते हैं। यमुना, घाघरा, सरसती, बड़ा नदी, शोगड और नायी नदी प्रधान नदी हैं। जेत सींचनेकी कयी नहरें भी निकली हैं। भील और दलदल बहुत फैल सकते हैं। पञ्चायके दूधरे

करपात्र (सं० स्त्री०) करः पात्रवत् यत्र । १ जल-
स्त्रीहा, पानीका खेज । २ हस्तरूप पात्र, चरतनका
काम देनेवाला हाथ । योगी अपने करका पात्र और
चदरकी भीली रखते हैं ।

करपात्रिका (सं० स्त्री०) करपात्र देखी ।

करपान (हिं० पु०) रोगविशेष, एक बीमारी । यह
एकमकारका चर्मरोग है । इससे बालकोंके शरीरपर
रक्तवर्ण दाने उभरते हैं ।

करपाल (सं० पु०) करं पालयति; कर-पाल-अण् ।
कर्मण्य । पा ३।१।१। खड्ग, तलवार । इसमें एक ही
धीर धार रहती है ।

करपात्रिका (सं० स्त्री०) करं पालयति; कर-पाल-
खलु-टाप् । लुक् वचौ । पा ३।१।१। १ सुद्र-हस्त-
यष्टि, हाथकी छोटी छड़ी । २ कुरा । ३ सुदगर ।

करपासी (सं० स्त्री०) करं पालयति, कर-पाल-
णिनि-स्त्रीष । नदिशपिषादिभ्यो ष्यण्णिष्ठाः । पा ३।१।१।
१ सुद्रहस्तयष्टि, हाथकी छोटी छड़ी । २ कुरा ।
३ सुदगर ।

करपीड़न (सं० स्त्री०) करस्य अघोरकरस्य पीड़नं
वरण यत्र, बहुव्री० । विवाह, प्राणिकहण ।

करपुट (सं० पु०) करयोः पुटः, इ-तत् । वहाञ्जलि,
अञ्जुरी ।

करपृष्ठ (सं० स्त्री०) हस्तका पश्चाद् भाग, हाथका
पिछला हिस्सा ।

करप्रचेय (सं० त्रि०) १ हस्तद्वारा प्रहण किया
जानेवाला, जो हाथसे पकड़ा जाता हो । २ करद्वारा
रुक्का किया जानेवाला, जो टिकससे लिया जाता हो ।

करप्रद (सं० त्रि०) करं प्रददाति; कर-प्रदा-अ-भङ् ।
आतपोपठगे । पा ३।१।१। १ करदाता, महसूल या
टिकस देनेवाला । २ हस्तप्रदान करनेवाला, जो हाथ
लगता हो ।

करप्राप्त (सं० त्रि०) हस्तगत, पाया हुआ, जो हाथमें
पा गया हो ।

करफु (वीहण्यब्द) कायी विभेय-कञ् संख्या, बहुवत्
बही पदद ।

करफूज (हिं० पु०) दीना ।

करघच (हिं० स्त्री०) गौन, खुरजी । यह एक
प्रकारकी दोहरी धैली रहती और बंधपर बटती है ।

करघड़वस्त्री (सं० स्त्री०) प्रत्यस्तवर्णी, बस्त्रीपूरन ।

करवला (सं० स्त्री०) १ परब देगकी एक समतल
भूमि । यह प्रत्यस्त निर्जन स्थान है । सुषलमानोंके
हुसेनका यहीं पध-हुवा था । २ ताक्षिसे गाड़नेकी
जगह । करवलीका मेला सुहरमके १०वें दिन होता
है । ३ निर्जन स्थान, पानी न मिलनेकी जगह ।

करवस (हिं० पु०) कशामेद, किसी किष्कका शावुक ।
यह दरयायी घोड़ेके चर्मसे अफरीकाके, सिनार
नगरमें बनता है । मित्र देशमें इसका व्यवहार
अधिक है ।

करवाल (सं० पु०) करस्य बालः सुत इव । १ नख,
नाखून । कर-पात्रित्य वसते दिनस्ति, वल-अण् ।

२ खड्ग, तलवार । इसका संस्कृत पर्याय अस्ति, खड्ग,
तीक्ष्णवर्म, दुरासद, विगसन, श्रीगर्भ, विजय, धर्मपाल
वा धर्ममाल, निर्झंग, चन्द्रहास, कीर्तियक, मण्डलाय,
करपाल, तरवार और रिष्टी है । गठनके प्रकारानु-
सार इसके दूसरे भी कयो नाम मिलते हैं ।

प्रति पूर्वकाल पर्याय वैदिक समयसे भारतपर्याय
धीर करवाल व्यवहार करते पाये हैं । वैशम्पायनोक्त
धनुर्वेद, वीरचिन्तामणि, लोहाशंख, युक्तिकल्पतरु,
हहत्संहिता प्रभृति प्राचीन संस्कृत ग्रन्थमें करवाल वा
खड्गका विवरण यथेष्ट मिलता है ।

धीरचिन्तामणिके मतसे खड्ग निर्माण करनेकी
दो प्रकारका लोह उपयुक्त है—निरङ्ग और साङ्ग ।
फिर शार्ङ्गधरपद्धति ग्रन्थमें प्रधान साङ्गलोह दस
प्रकारका कथा है । यथा—१ रोहिणी, २ मयूरवेक,
३ मयूरवज्र, ४ सुवर्णवज्र, ५ मीषतवज्र, ६ खणिक,
७ ग्रन्थिवज्र, ८ शैवालमालान, ९ नीलपिण्ड और
१० तित्तिराङ्ग ।

१ रोहिणी छोटे कण्ड-लेही, अत्यस्त कठिन और
अल्प नीलवर्ण लोह है । इससे चतुर्भुज पानेपर बड़ी
वेदना बढ़ती है ।

२ जो लोह मयूरके कण्डकी भांति वर्षाविशिष्ट
देखाता, वही मयूरकण्ड कहाता है ।

३ नागकेशरके पुष्पकी धामा रखनेवाला लोह मयूरवक्त्र है।

४ सुवर्णवक्त्रमें स्वर्णके चिह्न होते हैं। यह पश्चिम मूल्यवान् है।

५ मीषल वक्त्रके दोनों पाश्वर् धामायुक्त रहते हैं। मध्यमें स्वर्णरेखा पड़ जाती है। फिर धावात लगाने पर संघात स्थान धमवर्ण निकल पाता है।

६ स्वर्णककी तीडनेसे उपरी भागमें पद्मके छपठलकी भांति सूक्ष्म छिद्र देख पड़ता है। इसका अपर नाम कङ्कोलवक्त्र है।

७ पत्न्यवक्त्रके सर्वाङ्गमें गांठ रहती है। यह लोह मूल्यवान् और दुर्लभ है।

८ जिसके अङ्गमें पविच्छिन्न सूत्र रहता और दुर्वाकी भांति वर्ण देख पड़ता, उसको विद्वान् घोषालमासान कहता है।

९ नीलवरीसे धामांमें मिलता लालता लोह नीलपिण्ड कहता है।

१० तिसिराङ्गका वर्ण तिसिर पक्षीसे मिलता है। यह महामूल्य और दुर्लभ लोह है। इससे छरल्लट प्राप्त वनता है।

लोहाङ्गके मतसे निरङ्ग लोह तीन प्रकारका होता है—तोड़ियो, पाण्ड्य और रक्त। रक्तकी प्राणकक्ष कांस्यलोह (फोलाद) कहते हैं।

प्राचीन ग्रन्थमें १५ प्रकार लक्षणाकांस्य करवालका लक्षणे मिलता है। यथा—१ कालखड्ग, २ नकुलाङ्ग, ३ शूद्रवक्त्र, ४ महापद्म, ५ केतकीवक्त्र, ६ कुटीरक, ७ कञ्जलग्राह, ८ कालगिरि, ९ धवलगिरि, १० काम्पिलोह, ११ दमनवक्त्र, १२ वामनाक्ष, १३ महिष, १४ पद्मपत्र और १५ गजवक्त्र।

१ काष्ठी जमीनुवाकी ललवारका नाम कालखड्ग है। यह स्वर्णकी भांति चमकता और पल्प वक्त्रचिह्न युक्त रहता है। कालखड्गको डाहनीवक्त्र भी कहते हैं।

२ नकुलाङ्गपर लक्ष्मणामी कपिलकी धामा देख पड़ती है। इसके सर्वाङ्ग सर्पादि भी भर जाते हैं।

३ अग्ने शरीरमें मालाकार छोटी छोटी कुण्डली रखनेवाला करवाल शूद्रवक्त्र है।

४ महाखड्गका चमत्सर्ग भति कठिन होता है। भूमिपर कोपी चिह्न देख नहीं पड़ता। किन्तु मध्य एवं पाश्वर् स्थल भयान्त तोष्य पड़ता है।

५ केतकीवक्त्रकी भूमिपर केतकीपत्रकी भांति चिह्न रहते हैं।

६ कुटीरकका पद्म सूक्ष्म रजतपत्राकार भयवक्ष्यवर्ण होता है। इसके द्वारा चत सगने पर शीघ्र उपजता है।

७ कञ्जलग्राहकी धार सादी रहती है। मध्यभाग कञ्जकी भांति होता है। फिर सर्वाङ्गमें क्षयवर्ण चिह्न देख पड़ते हैं।

८ कालगिरिके पद्ममें स्वर्णविन्दु और श्याम चिह्न रहते हैं।

९ धवलगिरि पाण्ड्य लोहसे वनता है। भूमि तथा पद्मकी धामा रोष्यकी भांति साफ चमका करती है।

१० काम्पिलोहनिर्मित, पद्ममें रोष्यचिह्नयुक्त और पल्प नीलवर्ण करवालका नाम निरङ्ग वा काम्पिलोह है। यह दुर्लभ और भति मूल्यवान् होता है।

११ जिस तोष्यधार पश्चिके अङ्गमें दोनोंके पत्र जैसा चिह्न रहता, उसे विद्वान् दमनवक्त्र कहता है।

१२ वामनाक्ष भति कठिन और चिह्नरहित होता है।

१३ महिषमें नील निधकी भांति धामा और एरुक् कोजकी भांति रेखा रहती है।

१४ पद्मपत्रकी रगडनेसे दर्पणकी भांति प्रतिबिम्ब देख पड़ता है।

१५ गजवक्त्रका पद्म भति मरुण, वन और स्थल रेखाविशिष्ट होता है। धार भति तोष्य जाती है। यह रत्न छते ही शरीरमें घुस जाता है। इस पक्षिका घोट जल पीनेसे पाषिध्याधि दूर होती है।

देगमं देसे करवालका गुणगुण स्वतन्त्र होता है। प्राचीन धतुर्वेदके मतसे खटी, खट्टर, शृपिक, पद्म, शूर्पारक, विदेह, पद्म, मध्यमपाम, चेदी, छहपाम, पीम और कालखरमें जो लोह निकलता, वही खड्गके निर्माधार्य प्रयत्न पड़ता है।

करशाखा (सं० स्त्री०) करस्य शाखा इव । १ अङ्गुली । इसका संस्कृत पर्याय अश्व, अश्व, विप, विप्र, शर्षा, रचना, धीति, अधर्य, विप, काक्षा, भवनि, हरित्, स्वमार, जामि, सनाभि, योक्ष, योजन, पुर, शाखा, पशोशु, दीधिति और गमपि है । (वैदिकपत्र, १००)

करशोकर (सं० पु०) करात् करिशुण्डात् निःसृतः शोकरः करस्य शोकरो वा । १ इस्तिशुण्डानिहित जलकणा, हाथीकी सूँडमें फेंका हुआ पानी । इसका अपर संस्कृत नाम वमशु है ।

“उदानमपि वमवावशुतं यथा विविदाः करशोकरेव ।” (रघु)

२ वमन, की, छोट ।

करशुद्धि (सं० स्त्री०) करस्य शुद्धि, इ-तत् । इस्तेशो-धन, हाथ की सफाई । ‘फड़’ मन्त्र पढ़ गन्धपुष्प द्वारा इस्तेशोधन करते हैं । “वेदाङ्गादिक्रमात् करशुद्धिकतः परम् ।” (ललकार) पूजादि कार्यमें ऋष्यादि न्यासके पीछे ही करशुद्धि पाती है ।

करशू (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़ । यह विशाल वृक्ष सर्वदा हरिद्वर्ण बना रहता है । अफगानिस्तानमें भूतानतक करशू पाया जाता है । काष्ठ सुदृढ़ होता है । अङ्गार (कीचला) अति उत्तम निकलता है । पत्र पशुखाद्य है । चीनाशुक्का कीट करशूपर प्रति-पानित होता है ।

करशूक (सं० पु०) करस्य करे वा शूकः सूक्ष्मापः सूक्ष्मा इव वा । नख, नाखन ।

करशोध (सं० पु०) इस्तेशोध, कलायीकी सूजन ।

करशला (फा० पु०) भाष्यं कर्म, अशोखा काम, जादू, चालाकी ।

करय (हिं०) कर देखो ।

करपक (हिं०) कर देखो ।

करयना, करचना देखो ।

करस (वै० स्त्री) क्रियते यत्, क-असुन् । कर्म, काम ।

“द्वि-पुत्राणि करयानि विप्रा विरा ब्राह विद्वे कथयि ।”

(स्कन्धाष्टक)

करस (हिं० पु०) कण्ठेका चूर । यह प्राग बुद्धगानिके काम भाता है ।

करसना (हिं० स्त्री०) १ भाष्यं करना, खीचना, घसीटना । २ सुखाना, भुराना । ३ एकत्र करना, समेटना ।

करसनी (हिं० स्त्री०) क्ताविशेष, एक वृक्ष । यह उत्तर भारतमें उत्पन्न होती है । पत्र राई इष्ट दोर्घ और धूम्रवर्ण रोमसे आच्छादित रहता है । फरवरी और मार्च मास पुष्प पाते हैं । पक फलके रंगसे बैंगनी प्याही तैयार होती है । मूल एवं पत्र शीघ्रमें पड़ता है । करसनीका अपर नाम और है ।

करसमा । (हिं०) करना देखो ।

करसम्भ्र (सं० स्त्री०) रोमकलवण, सांभर नामक ।

करसा, करस देखो ।

करसादल, करसायन देखो ।

करसाद (सं० पु०) करस्य सादः अयसयता, कार-सद भावे घञ् । १ इस्तेशोध, हाथकी कमजोरी । २ किरणकी प्रवसयता, शवावीका कुम्भिलाव ।

करसान (हिं० पु०) कृषाण, किसान ।

करसायर, करसायन देखो ।

करसायनः (सं० पु०) कृष्यसाय, काला हिरण्यः

“शके कुनको कोम ही गने रहे को लोन ।

करसायनके शीकी रेंड कमानत कोम ॥”

करसी (हिं० स्त्री०) १ करस, कण्ठेका चूरघार । २ उपला, उपरी ।

करस्य (सं० स्त्री०) कर् स्थितं सूत्रम्, अ-तत् । १ इस्तेशोध सूत्र, हाथका वारीक सूत्र । २ विवा-हादिकालीन महासायं इस्तेशुत सूत्र, रक्षिया, कंगन ।

करस्याभी (सं० पु०) करः स्यात्सीव अस्या । महादेव । जैसे स्यात्सी (हाडी) में पाक पड़ता, वैसे ही प्रलय काल महाकालरूप महादेवकी हाथसे समुदाय भूत मरता है ।

“तनसानः करस्याभी कर्षेसंघनको मचान् ।” (भात, चतु० १०५०)

करस्य (वै० पु०) करं स्याति करोति भातूनामनेका-यत्वात्, क-अप-स्य-क । कर्मकर बाहु, काम करने वाला बाहु ।

“इत्तु यथा करया हसिरे वसि ।” (स्कन्धाष्टक)

करस्यर्शन (सं० स्त्री०) नृत्योत्पन्न करपविशेष, नाचका एक ढंग । इसमें पीया उष्णकार उष्णानो जाते

खिटी और खेहेर देशका करवाल अत्यन्त सुदृश्य जाता है। कृषिक देशका खड्ग गुरुभार रहता और अत्यायाससे ही शरीर हृदय करता है। वह देशका करवाल प्रति तीक्ष्ण होता है। इससे छेद भेद करनेमें देर नहीं लगती। शूर्पारक देशीय खड्ग प्रतिग्रय कठिन लगता है। विदेशका करवाल पसछ तेजस्वी और प्रभावशाली है। मध्यमयामका खड्ग लघु और प्रति तीक्ष्ण रहता है। चेदिदेशका करवाल हलका और तीक्ष्ण लगता, किन्तु सारहीन ठहरता है। सहग्रामका खड्ग प्रति तीक्ष्ण और बहुत हलका होता है। चीनदेशीय करवाल तीक्ष्ण और अधिक निर्मल निकलता है। कालखोरके निकट जो खड्ग बनता, वह दीर्घकाल स्थायी, तीक्ष्ण और सुसज्जयुक्त रहता है।

करवालको षट्कार भी कहते हैं। कारण इसकी परीचा ८ प्रकार करना पड़ती है—१ शङ्ख, २ रूप, ३ जाति, ४ नेत्र, ५ परिष्ठ, ६ भूमि, ७ ध्वनि और ८ परिमाण।

१ प्रकृत होनेपर खड्गके शरीरमें जो नाना प्रकार विद्भ रहते, उन्हींको षड् कहते हैं। षड् प्रायः १०० प्रकार ही सकते हैं।

२ करवालका रङ्ग ही रूप कहता है। प्रधानतः रूप चार प्रकार होता है—नीलरूप, कण्यरूप, पिङ्गल रूप और धूम्ररूप। सिवा इसके मित्थरूप भी देखनेमें आता है।

३ खड्गकी जाति चारप्रकार है—ब्राह्मण, अत्रिय, वैश्य और शूद्र। फिर जातिसद्वर भी हुवा करता है। सर्व विषयमें अष्ट गिना जानेवाला करवाल ब्राह्मण है। इसके द्वारा अल्प अत प्रति भी सर्वोद्भ दुखता और मोघ उठता है। मुर्छा, विपासा, दाह और ज्वरका रोग बढ़नेसे शीघ्र प्राण निकल जाता है। हर, भावला और वहेड़ा—तीनों द्रव्य कूट पीस एक दिन लगा कर रखते तो यह मसिन नहीं पड़ता, बर अधिक परिष्कार निकलता है। डिमालय और कुंभ हीपमें कभी कभी ब्राह्मण करवाल मिल जाता है। धमवणे, तीक्ष्णधार, कंकशब्धनिर्मुक्त और भाषीत

यह खड्गकी अत्रिय कहते हैं। यह संस्कार न करते भी यह दिन परिष्कार रहता और प्राण यत्नपर चढ़ते यह अन्निकषा निकाला करता है। इसका अत होनेसे यथा, दाह, मलमूत्ररोग, ज्वर, तथा भूषा रोग बढ़ता और किसी समय मृत्यु पर्यन्त पा पड़ता है। वैश्य जातीय करवाल नील तथा कण्यवर्ण होता है। संस्कार करनेसे यह प्रति सज्जल निकलता है। किन्तु इसमें तीक्ष्णता प्राण पर चढ़ानेसे ही आती है।

जा खड्ग देखनेमें मेघवर्ण लगता, मोटी धार रहता, मृदुध्वनि करता और प्राणपर चढ़ते भी तीक्ष्ण नहीं पड़ता, उसे विद्वान् शूद्र कहता है।

वहु जातिके लक्षण रखनेवाला करवाल जातिसद्वर कहता है।

४ भिन्न भिन्न विद्भका नाम नेत्र है। खड्गविताथीके मतमें नेत्रविद्भ तीसरे अधिक नहीं होते। यथा—चक्र, पद्म, गदा, शङ्ख, डमरू, घण्टा, पङ्कज, हस्त, पताका, वीणा, मत्स्य, शिव, ध्वज, अधचक्र, कलस, शूल, व्याघ्रनेत्र, सिंह, सिंहासन, गज, हंस, मयूर, पुत्रिका, जिह्वा, दण्ड, खड्ग, चामर, शिखा, पुष्पामांसा और सर्पाकार विद्भ।

५ करवालके प्रमङ्गलजनक विद्भका ही नाम परिष्ठ है। यह ३० प्रकार होता है। यथा—किद्र, रेखा, मित्त, काकपद, मेकयिर, विहासवृक्ष, इन्दुर, शंकरा, नीला, मयक, भ्रमरपद, सूधी, विन्दु, कपोतक, निम्बविन्दु, खर्पर, शकल, शूकर, कुम्भपत्र, जाल, कराल, कडपत्र, खलुंर, रङ्ग, गोमुक्क, खस्ता, साङ्गल और बड्गिण। परिष्ठ लक्षणाक्रान्त खड्गधारण करनेवालेपर नाना विपद् पड़ती है।

६ खड्गकी भूमि दो प्रकारके षष्ठीमें व्यवहृत होती है—प्रथम क्षेत्र वा धाया और द्वितीय जन्मस्थान। करवालकी मलायी बुरायी देखनेको जन्मस्थानका विषय समझ लेना चाहिये। इसका जन्मसांग (भूमि) दिविष रहता है—दिव्य और भीम। स्वर्गमें जो लोह उपजता, उसका नाम दव्य पड़ता है। फिर भारतवर्षमें उत्पन्न होनेवाला लोह भीम है।

है। फिर नतक पृथिवी पर पड़ता और कुकुटासन बना उभय हस्त उभटा करता है।

करसा (हिं) करसा देवी।

करखन (सं० पु०) हस्तध्वनि, हाथकी आवाज, ताल।

करह (हिं० पु०) १ करम, जट। २ पुष्पकलिका, फूलकी कली।

करहंस, करहस, करहस, करहस (हिं०) कर्वा देवी।

करहकटह (हिं० पु०) गढ़करह, मालवकी खुबकी एक सरकार। यह चक्रवर्ती समय बनी थी।

करहसा (सं० स्त्री०) सप्ताहर कर्मोविशेष, सात हरफकी एक बहर।

करहनी (हिं० पु०) धान्य विशेष, एक भगहनी घान। यह अग्रहायण मास कटता है। इसका तपुल बहुदिन पर्यन्त चलता है।

करहा (हिं० पु०) श्वेतगिरीय हंस, सफेद सरिसका पेट।

करहार (हिं० स्त्री०) लताविशेष, एक बेल।

करहाट (सं० पु०) करण विकिरणन हाथके दीप्यती, कर-हट-णिच्-भण्। १ पश्चादिका मूल, कंबलकी जड़। इसे मुरार और भयोड़ भी कहते हैं। २ मदम-हंस, मैमफल। ३ मर्यापिण्डीतक, बड़ी खजूरका पेड़। ४ अककरा। ५ देशविशेष, एक मुक्त।

करहाटक (सं० पु०-स्त्री०) करहाट इव स्वार्थे कन्। अथवा करं हटयति, कर-हट-णिच्-खल्। १ मदम हंस, मैमफल। २ कमलकन्द, मुरार। ३ कमल-पत्रान्तगत इत्र, कमलका भीतरी छाता। यह प्रथम पोतवर्ण रहता, किन्तु बढ़नेसे दरिद्रण निकलता है। ४ जमपदविशेष, एक बंसती। (भाए, मम०) पाज-कल इसे कराट कहते हैं। कपट देवी। ५ स्वर्णशा हस्तासहार, हाथमें पहननेको सोनिका गहना।

कराची (हिं० स्त्री०) बालका बचा हुआ दाना। जो दाना कूटने पीटनेपर भी घालमें लगा रह जाता, वही कराची कहाता है।

करा (हिं०) कला देवी।

कराहत (हिं० पु०) कल्पसर्पविशेष, एक काला सांप। यह अत्यन्त विषमय होता है।

कराहन (हिं० स्त्री०) क्यारकी लपरकी घास।

करार (हिं० स्त्री०) हिलत्वक, दालका हिलका।

कराकुल (हिं०) कलार देवी।

करांत (हिं० पु०) करपत्र, करीत, पारा।

करांती (हिं० पु०) करपत्र चलानेवाला, पाराकय, जो भारसे चकड़ी चोरता है।

करागार (सं० पु०) करस्य पागार। राजसके भायका स्थान, खिराज आनेकी जगह।

कराभ (सं० पु०) करिपुष्कर, हाथकी सूँड़का सिरा।

कराभपल्लव (सं० पु०) शङ्खलि, वंगली।

कराघात (सं० पु०) करण भाघात, १-तत्।

१ हस्ताघात, हाथकी मार। ठूँसे, घूँसे, घण्डु वगै-रको कराघात कहते हैं। २ हाहाङ्गि, भंगूठा।

कराङ्गण (सं० स्त्री०) करस्य चङ्गणम्, १-तत्।

१ राजस आदायका स्थान, महसूल पड़नेकी जगह। २ हाट, बाजार।

कराङ्गलि (सं० पु०) करस्य शङ्खलि, १-तत्। हस्ता-ङ्गलि, हाथकी वंगली।

कराची—भारतके सर्वपश्चिम प्रदेशस्य सिन्धुदेशका एक जिला और नगर। इससे उत्तर गिहारपुर, पूर्व हैदराबाद जिला तथा सिन्धु नद, पश्चिम सागर एवं बलूचिस्तान और दक्षिण कोरी नदी तथा सागर है। कराची जिले और बलूचिस्तानके बीच बहुत दूर तक हाथ नदी सीमास्वरूप प्रवाहित है। यह जिला उत्तर-दक्षिण प्रायः २०० मील दीर्घ और पूर्व-पश्चिम ११० मील विस्तृत है। परिमाणफल १४१२५ वर्गमील है। कराची शहर जिलेका सदर मुकाम है। सिन्धु नदीके मुहानेसे बलूचिस्तानकी पूर्व सीमा पर्यन्त कराचीका भूमिभाग सकल स्थल पर समान उच्च नहीं आता। पश्चिमार्धमें कोहिस्तान नामक उपविभागके मध्य कितना ही पारवत्य प्रदेश पड़ता है। बलूचिस्तानके पूर्वांशस्थित हाला पर्वतके कुछ पर्वतशिखर निकले हैं। इस पारवत्य प्रदेशके मध्य मध्य उर्वर उपत्यका आ गयी है। भूमिभाग साधारणतः दक्षिणपूर्वमुख नीचा है। उपकूल भागमें बहु संख्यक सुद्र सागरमाखाने प्रवेश किया है। देशके

युक्तिरूपतः नामको संस्कृत-प्रत्यय) लिखा-
 पुराकालको प्रथमतः देवासुर-युद्धमें खड्ग-निखला
 था। तदनुरूपकरवाल किमी किमी खानमें रखे हैं।
 उनमें लघुधार, प्रति गधु, निर्मल, सुन्दरनेत्र, चरित्र-
 शून्य, दुर्भयः, उत्तम ध्वनियुक्त, संस्कार न करते।
 निर्मल रहनेवाले धीरे-टूटनेसे दो वारा न छुड़नेवाले
 दिव्य हैं। दिव्य खड्गका आधात आनेसे दाएँ और
 चन्दापाक उत्पन्न होता है। मधुपतः उल्काके, सोहसे
 बने करवालको भी दिव्य कह सकते हैं।
 भीम खड्गका लक्षण देखनेको प्रथम लौहतत्व
 समझ लेना चाहिए है। लौह तत्व दो प्रकारका
 होता है—प्रसृत और विपज्ज्वा। एक माचीन
 किंवदन्तीके अनुसार पूर्वकालको देवादिदेवोंने त्रिपदान
 किया था। वह पीत त्रिपत्तमयः विन्दु विन्दु नामा
 देवीमें गिर पड़ा। वहीं विपविन्दुसे कालायस (ईश-
 पात) बन विपज्ज्वा कहाया है। देवगणने असुर-
 मन्त्रोत्पित प्रसृत पान किया था। उस पीत प्रसृत
 का विन्दु जहाँ गिरा, वहीं रुध लौह बना। यह
 लौहको ही प्रसृतज्ञाना कहते हैं। यह लौह धारा-
 पथी, सुमध, सिंहघ, नैपाल, यज्ञदेय, सराङ्ग, प्रसृति
 खानमें उत्पन्न होता है। शीघ्र, कालिङ्ग, भद्र,
 पाण्ड्य, प्रयक्कान्त और वज्र प्रसृति विविध रुध लौह
 मिलता है। इस लौहका खड्ग ही उत्कृष्ट बनता है।
 ध्वनि, यथात् यद्ध सुनकर करवालकी भलायी-
 दुरायी पचचानो जाती है। ध्वनि प्रथमतः दो प्रकार
 होता है—धीर धीर भार। इसकाय, ठका धीर
 मधुका ध्वनि घोर कहाता है। धीर ध्वनियुक्त खड्गकी
 उत्तम धमधत है। काक, शीषा, खर धीर प्रस्तरी-
 त्यत ध्वनि भार होता है। भार ध्वनियुक्त करवाल
 दुरा ठहड़ता है।

खड्गका मान उत्तम और अधम भेदसे विविध
 है। विद्याल एवं अल्पभारकी उत्तम और सुदृढ़ तथा
 भारवानकी अधम कहते हैं। फिर इसमें उत्तम,
 मध्यम और अधम तीन भेद प्रकृत हैं। तागायुक्ती
 भाँति जितने सुष्टि, शीघ्र, चतनी ही पद्धतिके चतुर्थ
 भाग विस्तृत और पलपरिमित करवाल उत्तम होता

है। मध्यम खड्ग जितने सुष्टि, दीर्घ रहता, विस्तृतिमें
 उसकी चर्ध, पद्धतिके तीन भागमें एक भाग धीर
 परिमाणमें चर्ध, पल पड़ता है। अधम करवाल
 जितने सुष्टि, दीर्घ, चतनी ही पद्धतिके चार भागमें
 एक भाग विस्तृत और अधम चर्ध, पल, विधिक, पल
 परिमित होता है।
 पूर्वकालकी राजा बड़े, यज्ञसे, पचिचालना सोहते
 वेगम्यायनोक्त धनुर्वेदमें ३२ प्रकारकी पचि-
 चालन क्रियाका नाम मिलता है। यथा—भ्रान्त,
 पद्मान्त, प्राविह, भाभुत, विपुत, छत, संयाक्त,
 समुदीर्ण, नियच, प्रयच, पदावकषेण, संयाना, मस्तक-
 भ्रामण, भुगभ्रामण, पाय, पाद, विवर्ध, मूमि,
 पद्मण, गति, प्रत्यागति, पान्ति, पातन, उल्लानक,
 मुति, सधता, घोषक, शोभा, स्वयं, हृष्टमुष्टिता, तिर्यक्-
 प्रचार और लक्षप्रचार।
 कारवालिका (हिं० स्त्री०) एक चाराखविषय, एक
 छोटी तलवार।
 करवी (हिं० स्त्री०) पशुखाद्यविषय, कटिया, खरी,
 चौपायीका एक खाना।
 करवी (हिं० स्त्री०) पशु मंडाचमे उपभुंते पर
 चारीक काट-काट गायभैस प्रसृति पशुकी खिलायी
 जाती है।
 करवीना (हिं० स्त्री०) खरीवाला, की करवीसे भरा हो।
 करबुर (हिं०) करवीकी।
 करवूस (हिं० पुं०) चर्मका सूत्ररज्जु, एक रेशी या
 तसमा। यह अण्डके प्रथीय (जीन) में अण्डयन्त्र
 रखनेकी टोक दिया जाता है।
 करभ (सं० पुं०) १. मणिवन्धसे कनिष्ठ, चक्रुकि
 पर्यन्त चक्रुका वहिर्भाग, कण्ठदन्त, कलायोसे अंगुलियों
 की अङ्गुल, हाथका हिस्सा। २. करिण्ड, चौकीकी
 खंड़। ३. गुणगिण्ड, चायीका बंधा। ४. उष्ट्र, कंट।
 ५. उष्ट्रयावक, कंट या किसी दूधरे-जानवरका बंधा।
 ६. मछी नामक गन्धद्रव्य, पक्ष-शुगुद्वार चौकी।
 ७. सूर्यवर्त। एक दोहा। ८. दमसे १६ गुणधे और
 १६ गुण लयते हैं।
 करभक (सं० पुं०) अनुकम्पितः करभः करभकः

अभ्यन्तरमें नदी-किनारे बबुलका वन यथेष्ट है। सिन्धु नद ही स्थानीय प्रधान नदी है। किन्तु हाव नदीसे इस जिलेके अधिकांश स्वयंमें जल-पाता है। कराचीमें सिन्धु नद प्रायः १२५ मील विस्तृत है। दक्षिणांशकी सिन्धु बहु शाखामें विभक्त हो सागरसे जा मिलता है। उक्त शाखाकी गति अत्यन्त परिवर्तनशील है। पड़ले सीता और बाघियार शाखा बहुत विस्तृत थी। जहाज, खच्छन्द आति-जाती थी। किन्तु १८३० ई०से बाघियार नदीका जल भिन्न पथकी पकड़ बहता है। प्राचीन स्त्रोत क्रमशः बन्द हो गया। बागना नामक शाखाके तीरे कराची जिलेका पुराना 'शाहबन्दर' अवस्थित था। यह स्थान बहु दिन पर्यन्त कलहोरा राजवंशका जहाजी बन्दर रहा। फिर यहाँ युवके जहाज भी ठहरते थे। किन्तु भालकस इस स्थानसे नदी प्रायः १० मील दूर गयी है। अब हजामरी शाखा ही सिन्धुका प्रधान मुख मानी जाती है। १८४५ ई० को यह शाखा प्रति दूर रही। छोटी नौका भी प्रति कष्टसे आती जाती थी। इस जिलेके बीच, ऊपरी भाग सेवयानमें 'मच्छर' नामक एक छद्म ऊद भरा है। इतना बड़ा ऊद सिन्धु प्रदेशमें दूसरे स्थानपर देख नहीं पड़ता। कराची नगरसे ७८ मील उत्तर पार्श्व प्रदेशमें 'गौरमाँची' नामक स्थानपर कितने ही उष्ण प्रखण्ड विद्यमान हैं। इस स्थानकी प्राकृतिक शोभा प्रति सुन्दर है। अमणकारी प्रायः इस स्थानकी शोभा देखने आया करते हैं। यहाँ एक दसदल भी है। इस दलदलमें चर्मस्थ कुम्भीर रहते हैं। भरण्य जन्तुमें चीता, हायान, भेड़िया, शृगाल, उल्कासुओ, मनुक, हरिण और वन्यभेद्य प्रधान हैं। पक्षियोंमें शकुनिकी संख्या यथेष्ट पाती है। कोष्ठस्थानमें नाना जातीय सरीसृप देख पड़ते हैं।

कराची जिलेमें सुमलमानोंकी ही संख्या सर्वाधिक अधिका है। फिर हिन्दुओं और दूसरे लोगोंकी गणना लगती है। हिन्दुओंमें ब्राह्मण, राजपूत और लोहाने अधिक देख पड़ते हैं। अन्यथा जातिमें जैन, ईरानी, यज्ञदी और बौद्ध हैं। यह जिला कराची,

सेवयान, जीवक और शाहबन्दर नामक चार उपविभागमें विभक्त है। करारी, कोटरी, सेवयान, बुवक, जडु, ठाठा, केती बन्दर, सभन्द, और मोरपुर बतौरा नगर प्रधान समझा जाता है। कराची, केती और गिरगण्ड (श्रीगण्ड) तीन बन्दर हैं।

स्थानीय लोगोंके अथनानुसार ठाठा नगरसे श्रीकसम्पाट, प्रनकसेन्दर (सिंहबन्दर) के सेनापति नियारकस पारस्य सागरको गये थे। सेवयान नगरमें किष्कि प्रति प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष विद्यमान है। प्रनेक लोग कहते, कि उक्त दुर्गके निर्माता भी प्रनकसेन्दर ही रहे। कराची जिलेका प्रति प्रत्य स्थान ही बोया जाता है। दृष्टि, रूप और निर्धारके जल पर ही लपिकाय चमत्ता है। मलीरमें ज्वार, बाजरा, यव और इन्धुकी उपज है। जीवक और शाहबन्दरके निकटवर्ती स्थानमें चावल, गेहूँ, जख, मकई, रुई तथा तम्बाकू बोते हैं। कोष्ठस्थानके पार्वत्य क्षेत्रमें किसी प्रकारका शस्य नहीं होता। यहकि लोग प्रायः दूधपाहारी हैं। पशुमार्गसे ही जीवन चरण करते हैं। यहाँ तीन फसलें होती हैं। एक वर्षे छ-आपाटने बोयी और कार्तिक-अप्रहायणमें काटी जाती है। दूसरी कार्तिक-अप्रहायणमें पड़ती और वैशाख-ज्येष्ठ कटती है। तीसरीको फाल्गुन-चैत्रमें डाल आपाट आषण मास काट लेते हैं। कराची जिलेका प्रधान पण्य द्रव्य रुई, गेहूँ और जल है।

शाहबन्दरके निकट श्रीगण्ड छाहोमें यथेष्ट लवण निकलता है। उपतान-वाकने, १८४०, ई०को स्थानीय लवणक्षर देख कहा था, 'इस लवणसे क्रमागत ४०० वत्सर समस्त इथियोपा निर्वाह हो सकता है।' किन्तु लवणके शक्तका परिमाण द्विगुण रहनेसे कोई व्यवसाय चला नहीं सकता। समुद्रमें मत्स्य पकड़नेका काम भी होता है। मुझाने सुसनमान यह व्यवसाय करते हैं। ठाठा नगरी लुगी नामक शीतवस्त्र और बुवक नगर कासोमके सिधे विख्यात है। कराची जिलेके अधिकांश नगर सिन्धु के इतिहाससे विगिय मंश्रिट हैं। सिन्धु देशी।

कराची नगरमें सिन्धु प्रदेशका सेनायास स्थापित

करम-कनू । (सं० पु०) करमिन करिण ईरयति प्रेरयति
 इक्षिमावक वा उष्ट्रमावक । २ करम । करम देको ।
 करमकाण्डिका (सं० स्त्री०) करमस्य प्रियं काण्डं
 यस्याः, बहुव्री० । करमकाण्ड-कण्ट-टाप् इत्वम् ।
 उष्ट्रकाण्ठी, कण्टकटारिका पेड़ ।
 करमञ्जक (सं० त्रि०) करं भनक्ति, कर-भनज-खल् ।
 पुल् वचोः । पा १।१।११ । १ करमञ्जकारी, हाथ तोड़ने-
 वाली । (पु०) २ प्राचीन जनपदविशेष, एक पुरानी
 वसती । (महाभा० शीघ्रं १।१८)
 करमञ्जिका (सं० स्त्री०) करमञ्ज-टाप् इत्वम् ।
 १ करमञ्जकारिणी, हाथ तोड़नेवाली । २ महाकरञ्ज,
 बड़ा करौंदा । ३ कताकरञ्ज, बिलका करौंदा ।
 करमञ्जन (सं० त्रि०) करं भनक्ति, भनज-ञ्युट् ।
 करमञ्जकारी, हाथ तोड़नेवाला ।
 करमण्डिका, करमञ्जिका देखो ।
 करमप्रिय (सं० पु०) सुदूर पीलुवृक्ष, छोटे पीलूका पेड़ ।
 करमप्रिया (सं० स्त्री०) करमस्य उष्ट्रस्य करिमावकस्य
 वा प्रिया, इ-तत् । १ सुदूर दुरालभा, छोटा जवासा ।
 २ दुरालभा, जवासा । ३ उष्ट्र वा करिमावकादिको
 स्त्री, छोटी इधिनी या उंटनी ।
 करमवज्जम् (सं० पु०) करमस्य वज्जम्, इ-तत् । १ उष्ट्र-
 प्रिय पीलुवृक्ष, छोटा पीलू । २ कपिल्य वृक्ष, कौथा ।
 करमवारुणी (सं० स्त्री०) उष्ट्रकण्टकगुल्मोत्थित वारुणी,
 कण्टकटारिकी शराव ।
 करमादनिका, करमादनी देखो ।
 करमादनी (सं० स्त्री०) करमेन उष्ट्रेन अद्यते, करमं-
 भद कर्मणि ष्युट्-ङीप् । सुदूर दुरालभा, छोटा जवासा ।
 करमी (सं० पु०) करमः इहस्तस्य भवयथभेदस्तद्गन्तु
 आकारो इति शब्दे यस्य भयवा करो इहस्त इव भाति,
 कर-म-ङ् ; करमः शब्दस्य इति यस्य, बहुव्री० ।
 १ इक्ष्मी, हाथी । (स्त्री०) करमस्य स्त्री, करम-ङीप् ।
 आदेशस्त्रीविषयदेशोपवाच । पा १।१।११ । २ स्त्रीकरम, इधिनी
 या उंटनी । ३ इक्ष्मियम्बुही, छोटी नेदासींगी ।
 ३ श्वेतापराजिता, एक वृटी ।
 करमीय (सं० त्रि०) करम-ङञ् । इक्ष्मी वा उष्ट्र-
 अश्वत्थीय, हाथी या कण्टके सुताञ्जिक ।

करमोर (सं० पु०) करमिन करिण ईरयति प्रेरयति
 इक्ष्युमुष्टम्, करम-ईर-पण् । सिध्, शिर ।
 करभू (सं० स्त्री०) करान् भवति, कर भू-क्तिप ।
 नख, नाखून ।
 करभूषण (सं० स्त्री०) करो भूयति धनेन, कर-भूष-
 ष्युट् । १ कङ्कण, चूड़ी । २ इहस्तलङ्कार मात्र, हाथका
 कौयो गहना ।
 करभोर (सं० स्त्री०) करम-वत् ऊर्ध्वस्थाः ऊङ् ।
 प्रयस्त ऊर्ध्वविशिष्टा स्त्री, चौड़ी जांघवाली भोरत ।
 करम (हिं० पु०) १ काम, काम । २ भाग्य,
 किस्मत । ३ वृचविशेष, एक पेड़ । यह अत्यन्त
 उच्च वृक्ष है । करम शीतल भूमिमें उत्पन्न होता है ।
 इसकी त्वक् श्वेतवर्ण एवं भस्म निकलती और प्रायः
 इसकी मोटी पंड़ती है । काष्ठ शीतवर्ण तथा सुदृढ़
 रहता है । करम संकान् मीज और अलमारी बनानेमें
 लगता है । (सं० पु०) ४ लपा, मेहरवानी । ५ नियास-
 विशेष, एक गौंदा । यह भरद और अफरीकामें
 होता है ।
 करमई (हिं० स्त्री०) वृचविशेष, एक पेड़ । यह
 कंचनारसे मिलती और दाचिणात्यमें उपजती है ।
 बङ्गाल, आसाम और ब्रह्मदेशमें भी करमयी होती है ।
 इसके कट्टे पत्र चबाने और शाक बनानेमें काम आते हैं ।
 करमकला (हिं० पु०) गांठ गोभी, पत्तोका एक
 फूल । इसमें अनेक पत्र एकत्र ही पुष्पाकार बन
 जाते हैं । यह शाकमें व्यवहृत होता है । शातकाल-
 को गोभी उठ जानेपर करमकला आता है । चैत्र
 मास इसके पत्र फूट पड़ते हैं । बीसके लग्नमें
 सर्पकी भांति बीज और पत्र निकलते हैं । इसकी
 फलीमें छोटे छोटे बीज रहते हैं । पहले इसको तर-
 कारी उच्च वर्षके लोग खाते न थे । किन्तु भव कोय
 बहुत काम परहेज करते हैं ।
 करमङ्गल—वारह-मंजरीके मध्यका एक प्राचीन ग्राम ।
 आजकल यहां जङ्गल हो गया है । किन्तु इससे
 थोड़ी दूर पर्वतपर देवमन्दिर और राजगृहादि बने
 हैं । करमङ्गल राजकोटसे २१ कोस दक्षिणपूर्व
 अवस्थित है ।

है। इसी नगरसे विलकुल दक्षिण कराची उपसागर है। उपसागरके एक मार्गपर 'मानोरा घन्तरीप' पड़ता है। 'मानोरा घन्तरीप' और 'क्लिफटन' नामक स्वास्थ्यनिवासकी बीच कराची उपसागर प्रायः साढ़े तीन मील विस्तृत है। किन्तु प्रवेशका मुख घेचिके पर्वत (सुदूर सुदूर पार्वत्य हीप) और कियामारी नामक हीपसे रुका है। 'मानोरा घन्तरीप'में एक 'पालोकस्तम्भ' है। इस पालोकस्तम्भके पश्चात् एक सुदूर दुर्ग भी खड़ा है।

१७२५ ई०की लड़ाई 'चाव नदी' सागरसे मिली, वहाँ खड़का नामक एक 'नगरी' रहती। उस समय खड़काका व्यवसाय वाणिज्य बहुत विस्तृत था। क्रमशः कास 'पानेपर खड़क' बन्दरके प्रवेशका पथ बालूने रुक गया। फिर थोड़ी दूर दक्षिण वर्तमान कराची नगरके स्थानपर 'कलाचीकूण' नामक दूसरा सुदूर नगर रहता। इसी स्थानसे कराचीकी चारो ओर व्यवसाय वाणिज्यका लेमदेन बढ़ा। क्रमशः यहाँ दुर्ग बना था। फिर मसकट नगरसे तोप बंगा दुर्गकी रक्षा की गयी। अन्तकी 'शाहबन्दर'का व्यवसाय विलकुल बन्द हो जानेसे यह स्थान सख्खियाली हुवा। लोगोंके विश्वासानुसार उक्त कलाची नामसे ही 'कराची' शब्द निकला है।

कराचीन (सं० पु०) खज्जान, खहुरैचा ।
कराट (सं० स्त्री०) करांय विधीपाय घटति, घट-घट्ट ।
थप्पड़, लमाचा ।

करातग्राम काशी जिल्ला एक घाम ।
(मवि० प्रप्रसण ३३४६)

कराड़ (हिं० पुं०) १ क्रय करनेवाला; महाजन, जो माल खरीदता हो। २ वणिक्, जातिविशेष। यह वनिये पञ्चाशमें उत्तरपश्चिम रहते हैं। महाजनो इनका धन्धा है। ३ नदीके ऊपरका डिप्पा, टीला। सम्यक् उच्च नदीसतकी कराड़ कहते हैं।

कराड़—१ स्वर्णप्राप्तके सतारा जिल्लाका एक विभाग। इसकी भूमिका परिमाण १८५ वर्ग मील है। महा-भारतमें मध्यप्रदेशी नगरीके साथ 'करघाटक' नामसे इस स्थानका उल्लेख पाया है।

"नगरी" उच्चतमोच्च पापक करघाटकम् ।
इहैरेव ममि यत्ने करघे नामदापयन् ।" (सभा १५००)
दाक्षिणात्यवाचिः वनवामी प्रभृति प्राचीन स्थानके किसी किसी विशाफलकमें भी कराड़का नाम करघाटक लिखा है। स्कन्दपुराणके महाद्विखण्डमें यह भूभाग 'काराड' नामसे उक्त है। महाद्विखण्डके मतसे काराड कोयनासहस्रके दक्षिण और वेदवती नदीके उत्तर सब मिलाकर १० योजन पड़ता है।

"विदधत्तानीतरे तु कोयनासदक्षिण ।
काराडाम देशय दृष्टदेमः प्रकीर्तितः ॥" (उग्राध ३१२)

यहाँ लक्षाधिक हिन्दू रहते हैं। उनमें कराड़ ब्राह्मणोंकी ही संख्या अधिक है। कराड़-मन्त्र देयो।

२. कराड़ विभागका प्रधान नगर। यह कृष्णा एवं कोयना नदीके सहस्र स्थान, भूभाग १७. ६८. ७० तथा देशां ७४. १३. २०" पू० पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ११ लाख है। उसमें ८ हजार हिन्दू निकलते हैं। सब जलकी अदानत, डाकघर, औषधालय प्रभृति विद्यमान है।
कराड़-ब्राह्मण (काराड ब्राह्मण) महााराड ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी। जन्मभूमिके अनुसार यह ब्राह्मण भी कराड़ कहते हैं। स्कन्दपुराणमें इन्हें 'पतिनिन्दित' और दृष्ट लिखा है—

"काराडो नाम देशय दृष्टदेमः प्रकीर्तितः ३२
सर्वे लोकाय कठिना दुर्गमाः पापकर्मिणः ।
तद्दे गजाय विभासु काराडा इति नामतः ३३
पापकर्मता नष्टा अभिचारसमुद्भवाः ।
स्वस्त्ये दक्षिणोर्मिण रितः चित्तं विभासकम् ३४
तेन शेषो बहुमुपनिर्जाता ये पापकर्मिणाम् ।
तद्दे ही ग्रायवादिभ्यो महादुष्टा कुर्वन्विधो ३५
तस्याः पूजा यद्यदि च ब्राह्मणो दीयते यनिः ।
ते रतिक्रीमशा नष्टाः ब्रह्महत्यां करोति च ३०
न कृता येन वा इत्या कुर्म तस्य पथं मनेत् ३१
एष पुरा तथा देव्या श्री देवो विश्वान् किम् ३८
तेषां हर्षमाले च सत्सत् सामनाचरेत् ३९
तेषां ईश्वराने त्रयुर्न प्राप्नो योजनवयम् ४०
श्रुत्वा विवमग्रीति पातकं कृतदुस्तरम् ॥" (महाद्विखण्ड ३१४ पं०)

कराड़ ब्राह्मण सकल ही गाला हीने हैं। लोग कहते हैं—पहले इनमें प्रति वर्ष देवी शक्तिके लक्ष्मण एक

करमचन्द (हि० पु०) कर्म, काम, भाग्य, किष्कत ।
करमद (स० पु०) करं इतिगण्डं चदिति पति-
क्रामयति, कर-पद-ख-सुम् । १ गुवाकवृष, सुपा-
रीका पेड़ ।

करमद्दा (हि० वि०) कपण, कपू स ।

करमठ (हि०) करंठ देवो ।

करमण्डल—भारतवर्षके दक्षिण पूर्वका उपकूल । इस नामकी उत्पत्तिपर कुछ गड़बड़ चलता है । किसी किसीके कथनानुसार युक्तिकटके निकटस्थ प्राचीन 'करमण्डल' ग्रामसे यह नाम निकला है । पूर्वकी करमण्डलमें पोर्तगोवीका जहाज़ लगता और पद-तियोंका बास रहता था । फिर कोई कहता—तामिल 'चोरमण्डल'की संस्कृतमें 'चोरमण्डल' कहते हैं । प्राचीन चीन राजावैके समयमें यह नाम निकला है । कोच देवो । प्राचीन पाश्चात्य भौगोलिक टलेमिने इस स्थानका नाम 'सोरैत' (Soréai) लिखा है । (Ptolemy, Geog. Bk. VII. ch. I.)

करमण्ड (स० स्त्री०) कर्म, २ तोलिका वज्रम् ।

करमरिया (हि० स्त्री०) शक्ति, धर्मन, चैन । समुद्र-में वायु मन्द पड़नेसे तंत्रका वेग घटता करमरिया कहता है । यह शब्द पोर्तगोव भाषासे लिया गया है ।
करमरी (स० पु०) किरति विचिपति दृण्डादीन् अत्र, क अधिकरणे षण्, करः कारागारः तत्र मरः श्लथयत् क्रोशे षण्य, बाहुलकात् इति षयवा करे म्रियते, कर-श-इति । बन्दी, कैदी ।

करमदं (स० पु०) करं श्रद्धाति, कर-श्रद्ध-षण् ।
करमदं क हृत्, करौदिका पेड़ । भावप्रकाशने इसके षण् फलकी षण्, गुरु, दृष्यानामक, उष्य एवं रुचिकर और पित्त, रक्त तथा कफ-वृद्धिकारका कहा है । पक्ष करमदं मधुर, रुचिजनक एवं लघु और पित्त तथा वायुनाशक है । करण देवो ।

करमदक (स० पु०) करं श्रद्धाति, कर-श्रद्ध-षण् ।
वा करमदं एव, श्रायं कन् । १ करमदं, करौदां ।
२ सताविशेष, एक वेश ।

करमदका (स० स्त्री०) करमदं देवो ।
करमदी—एक नदी या दरया । यह नदी नर्मदासे मिल गयी है । इसका सङ्गमस्थान पुष्पतीर्थ माना जाता है । उक्त स्थानपर करमदंशर शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है । स्कन्दपुराणीय वैवाण्डके मतानुसार करमदी सङ्गममें नष्ट करमदंशरका दर्शन करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता ।

करमदिका (स० स्त्री०) करौदी । यह पर्यंतज द्राचाके सदय होती है । (भावप्रकाश)

करमदी (स० पु०-स्त्री०) करं श्रद्धाति, श्रद्धाणि ।
१ करमदंशर, करौदां । २ करणवृत्त, करील ।

करमणोषि—हारमण्डके पन्तगत ग्रामविशेष, दरमण्डाका एक गांव । हारमण्डराजाके मन्त्री करमणोषिने इसे बसाया था । (मति-रत्नसंघ ३१११-११)

करमसेक (हि० पु०) १ पद्यायती हुकरा । २ पश्य घृतमें सेका हुआ पराठा । यह बड़ी सुगन्धिले खानेमें पाता है ।

करमा (हि०) कला देवो ।

करमा वाई—एक पचाधारण भक्तिमती ब्राह्मणकन्या । दक्षिणार्थ प्रदेशके खानस ग्राममें इनका जन्म हुआ था । पिताका नाम परशुराम पण्डित रहा । वह स्थानीय राजाके पुरोहित थे । राजा और राजपुरोहित—दोनों परमदेष्य रहें । उस समय धर्मशास्त्रका मूल उद्देश्य समझनेको स्त्रियां भी विद्या पढ़ती थीं । करमा बांयी शैशवकाल ही विद्यावती बन गयीं । विद्याशिष्याके साथ-साथ इन्हें वैष्णवधर्मपर भी अधिकतर भक्ति बढ़ी । पण्डित परशुरामने यथाज्ञान करमा वाईको सत्पाठके ज्ञाप्य सौवा था । सम्पूर्ण अनिच्छा रहते भी पिताके अनुरोधसे इन्होंने विवाह कर लिया । किन्तु स्त्रीकी प्रवेश एवं दिवसे दिख यह सहास था गृहस्थान्ती करनेसे पसन्धत हुयीं । इनके सकल कार्योंसे साधारणको विषय था जाता । फिर करमा वाई सर्वदा निर्जन स्थानमें बैठे इष्टदेवके पादपद्मकी चिन्ता करती, पागलकी भांति कभी बसती, कभी रो छठी और कभी 'हां नाथ' । पुकार कर चिन्ताने लगती थीं । कुछ काल पीछे पुनर्वा रन्ने स्त्रीकी गृह पद-

ब्राह्मणयिश्च वलि चट्टानेकी प्रथा रही। १८१८ ई० पीछे यह प्रथा एक काल छूट गयी है। इनका आचार व्यवहार अनेक अंशमें पुर महराष्ट्रसे मिलता है। सुप्रसिद्ध महाराष्ट्र कवि मोरोपन्थ कराढ़ ब्राह्मण ही थे। इनमें भिन्न गीत और अनेक घर देख पड़ते हैं।

यथा—

गोत्र	घर
काश्यप गोत्र	७२
भद्रिगोत्र	७५
भरद्वाजगोत्र	७७
जमदग्निगोत्र	७५
वशिष्ठगोत्र	८०
कौशिकगोत्र	७४
नैधुयगौत्र	२४
गीतमगोत्र	१५
गार्ग्यगोत्र	१६
सुहलगोत्र	८
विश्वामित्रगोत्र	१
वादारयणगोत्र	१
कौण्डिन्यगोत्र	१
उपमान्दुगोत्र	१
भाङ्गिरसगोत्र	१
कोटिभाषगोत्र	१
वैश्यगोत्र	६
शाण्डिल्यगोत्र	६
कुलशगोत्र	१
वात्स्यगोत्र	२
भार्गवगोत्र	२
पार्थिवगोत्र	२

महराष्ट्र देखी।

कर्णोत्क प्रदेशमें कराढ़ ब्राह्मण मिलते हैं। यह चित्तयावनीसे मिलते लगते हैं। वर्षे कुछ अधिक काला रहता है। किसीकी आंख भूरी या नीली नहीं होती। विजयदुर्गा, भार्यदुर्गा और महालक्ष्मी इनकी कुसदेवता हैं। महिषुर राव्यके गङ्गाचार्य गुरु माने जाते हैं। यह व्रतादि और

सखवादि दूसरे ब्राह्मणोंकी भांति सम्यक् किया करते हैं। वास्तक विद्यालयोंमें पठते हैं। कराढ़ शुद्ध, स्वच्छ, अतिथिमेवी और आजाकारो होते हैं। इनमें कोई व्यवसायी, कोई ज्योतिषी और कोई भिक्तुक है। ऋग्वेद इनका प्रधान वेद है।

करात (हिं० पु०) कोरात, ४ जोकी तौल। इससे खरण, रौप्य या शीषघ तौलते हैं।

कराना (हिं० क्रि०) कार्यमें लगाना, करवाना।

करावत (अ० स्त्री०) १ आसन्नता, इत्तिहाल, नज्दीकी। २ सम्बन्ध, पपनायत।

करावतदारी (फा० स्त्री०) सम्बन्धिभाव, रिश्तेदारो।

करावा (अ० पु०) काचपात्र विशेष, शीमेका एक चरतन। इसका आकार हड़त और सुख लुद्र रहता है।

करामट (सं० पु०) करं भा सम्यक् सञ्जाति, कर-पा-भृद-अण्। करमटहच, करौदेका पेड़।

करामात (अ० स्त्री०) भाष्यव्यापार, सिद्धि, करश्मा, चिनहोनी। यह शब्द 'करामत' का बहुवचन है। करामात दिखानेवालेको करामातो (सिद्ध) कहते हैं।

कराम्बुक (सं० पु०) कीर्तित विचिष्यते अम्बु यच्चात्, कृ कर्मणि अण्-कण्। कृष्णपाकफल हच, करौदेका पेड़।

कराम्ब, करामक देखी।

कराम्बक (सं० पु०) करं कीयमाणं अम्बु यच्चात्, कर-अम्ब-कण्। करमटक हच, करौदेका पेड़।

करायजा (हिं० पु०) १ कुटज, कोरेया। २ इन्द्रयव।

करायल (हिं० पु०) १ कसौंजी, मंगरैसा। २ तैस वा घृतसे किया हुआ घेसवार, तैल या घी-में पकाया हुआ मूंग या उड़की दालका फोस। प्रायः तरकारीके भोजको भी करायल कच दिया करते हैं।

करायिका (सं० स्त्री०) कराविव आचरति उच्छयन-काले करवत्सव्यमानत्वात्, कर-व्यङ्-ख-ल-टाप्। उपमासाधारण शब्द। १ बलाकापची, छोटा बगला। २ पचिमेद, एक चिड़िया।

करार (हिं० पु०) १ मटोका उचं तट, दरयाका

चानिकी विशेष यत्न हुआ। जन्मके उमरसका आलास
 पानसे करमा बाईकी संसार विपवत् घृथ लगता
 था। सुतरां स्वामाके गृह जानिकी पत्यन्त अनिष्टकर
 समझ यह सर्वदा रोते रहीं। अन्तकी किसीसे
 कुछ न कह इन्होंने सुपके सुपके हन्दावन जाग खिर
 किया। रात्रिकालको यह अपने कोठरीसे बाहर
 निकलीं। घरके सकल द्वार बन्द थे। बाहर जातिकी
 कोई राह न देख करमा बाई मनके भूविगमि
 पटारीसे नीचे कूद पड़ीं। किन्तु यह कभी घरसे
 बाहर निकलती न थीं। इन्हें क्या साहस कहां
 हन्दावन और कहां पथ रहा। फिर भी इन्होंने
 कङ्कालकी तरफ चले जहाँ श्वाससे हन्दावनके उदर
 यत्ना आरम्भ की।

प्रभात होनेपर परशुराम पण्डित गृहमें कन्याकी
 न देख पत्यन्त व्यसा हुये और राजाके निकट पहुँच
 सकल कथा कहने लगे। राजाने इन्हें आश्वास दे
 चारो ओर करमा बाईकी टूटनेके लिये आदेशों भेजे
 थे। इन्होंने राहमें जाते जाते पीके घूमकर देखा—
 सुके टूटनेकी लोग जाते हैं। इससे यह पत्यन्त
 व्यतिवृत्त हुयी। चारो ओर खुला मैदान था।
 छिपनेकी कहीं उपयुक्त स्थान न मिला। समग्र उड़का
 हेतु एक नष्टदेह पड़ा रहा। जगलों और कुङ्कुरोंने
 उमका आसादि प्रायः खा डाला था। भीषण दुर्गन्ध
 उठता; निकट पहुँचना दुःसाध्य रहा। मक्तिमती
 करमा उड़ी उड़देहके उदरमें छिप गयीं। उदरमें
 भी सिद्ध हुआ। अन्वेषणकारो उपकी टूसरी दिक्
 पन्न दिये। प्रनाधार केवल कुण्ठचित्ता करते इन्होंने
 इस भयसे तीन दिन उसी उड़देहमें काटे थे—फिर
 बाई कहीं जान पहुँची। तीन दिन पीके वृष्टि
 बाहर था और नदीमें नहा करमा बाईने शरीरको
 निमल किया। इसीप्रकार पथमें यह क्षेत्र उठा यह
 हन्दावन पहुँची थीं। पवित्र हन्दावनके दर्शनसे बहु
 दिनका अभिलाष पूर्ण हुआ और मन एवं प्राण
 आनन्दसे भ्रम उठा। फिर यह ब्रह्मकुण्डके तीर
 अगमि ज्ञानदर्शन पानिकी ध्यानयोगसे बैठ गयीं।

उधर परशुराम पण्डित कन्याके विरहसे पत्यन्त

घबरा देगदेगान्तर घूमते घूमते हन्दावन पहुँचे थे।
 उन्हें वह वन और वह स्थान टूटते भी कन्याका
 कोई सन्धान न मिला। अन्तकी वह एक दिन
 किसी विद्याल हथकी उच शाखापर चढ़ चारो ओर
 देखने लगे। देखते देखते उन्होंने उठाव ब्रह्मकुण्डके
 तीर निविड वनमें करमा बाईकी बैठ पाया। वह
 धवराकर वृक्षसे उतरे और साधियोंकी ले कन्याके
 निकट पहुँचे। किन्तु इन्होंने अपनेकी कन्या विभिव
 पायी थी। संसारकी मलिनता करमा बाईके देहमें
 नहीं। समुदाय शरीरमें तपःप्रभा चमकती थी।
 सुखमण्डल एक आयय ज्योतिसे पवित्र रहा। फिर
 यह ब्राह्मज्ञान न रख ध्यानमें मग्न थी। पचहृदयसे
 प्रेमाशुकी धारा बहते रही। कन्याकी ऐसी प्रवृत्ता
 देख परशुरामका हृदय फटने लगा। फिर वह
 करमा बाईकी कन्या समझ ल सके। अन्तकी पत्यन्त
 धवरा परशुरामने इन्हें साक्षात् प्रणिपात किया।

बहुसंघ पीके इन्होंने चङ्ग खोले थे। समग्र
 पिताकी देख करमा बाईने नीरव पणाम किया।
 फिर यह नीरव ही बैठ रहीं, मानो पिताकी कहीं
 देखा नहीं। पण्डित परशुरामने विनयपूर्वक इनसे
 कोटनेकी कृपा और घरमें बैठ छायाचिन्तामें लगनेकी
 अनुरोध किया। किन्तु यह किसीप्रकार उसपर
 स्वीकृत न हुयीं। इन्होंने पिताकी उमा प्राथा काहने
 पर अनुरोध किया और सर्वदा जन्मकथा रटनेकी
 उपदेश दिया। कथनाम लेनेको उपदेश देते समय
 यह प्रेमसे सूक्ष्म हुयीं एवं पुनर्वार अपने भाप
 मानो चेत उठीं।

परशुराम पण्डित कन्याकी ऐसी प्रसाधारण
 भक्तिसे चौंक पड़े थे। वारंवार अनुरोध करते भी
 यह इन्हें वापस ला न सके। अन्ततः परशुराम रोनि
 पीटते घर छोड़ भाये और राजाको जाकर सब हाल
 सुनाये। राजा भी विशेष भगवत् प्रेमिक रहे। वह
 करमा बाईकी देखने हन्दावन पहुँचे थे। यहाँ
 साक्षात्कार होनेपर राजाने इनकी अनिच्छा रहते भी
 एक कुटीर बनवा दिया। इस कुटीरका अंशवर्षीय
 आज भी हन्दावनमें विद्यमान है। किसी क्रमा

अंचा किनारा। यह पानोके काटसे निकल जाता है। २ ठौर ठीक।
करार (सं पु०) १ स्थैर्य, मजबूती। २ धैर्य, धीरज। ३ सुख, धाराम। ४ प्रतिज्ञा, कौशल।
करारना (हिं० कि०) कां कां करना, श्रुतिकट शब्द निकासना। यह क्रिया काकपचीका बोलना बतानी है।
करारवीर—काशीका एक ग्राम। यह काशीसे ४ योजन दूर वायुकोणमें अवस्थित है। यवनपुर—यहांसे बहुते नजदीक पड़ता है। करारवीरमें एक प्राचीन दुर्ग विद्यमान है। (भवि० ब्रह्मवृक्ष ५०।१०२)
करारा (हिं० पु०) १ नदीका सघ तट, दरयाका अंचा किनारा। २ टीला, टूट। ३ धरट, कौवा। ४ मिष्टान्न विशेष, एक मिठाई। (वि०) ५ कठोर, कड़ा। ६ सुट्ट, मजबूत, दिसका कड़ा। ७ कड़ा सेका हुआ, सुरसुरा। ८ तीक्ष्ण, तेज। ९ उत्तम, अच्छा। १० बड़ा, भारी। ११ बलवान्, ताकतवर।
करारापन (हिं० पु०) कठोरभाव, कड़ाई।
करारी (हिं० पु०) इकरार करनेवाला, जो वचन दे चुका हो। २ उपासक सम्प्रदायविशेष। यह काली, चामुण्डा प्रभृति देवीकी भयङ्कर मूर्ति पूजते हैं। भारतके नामा स्थानमें जो शलाकादि द्वारा चपना मांस छेद मिच्छा मार्गते फिरते हैं, उन्हींकी बहुतसे श्रेण करारी कहते हैं।
करारोट (सं० पु०) करे आरोटते भाति, कर-पाल्-पच्। अङ्कुरीयक, अंगूठी, हाथका छला।
करारपित (सं० त्रि०) हस्तसे चर्पण किया हुआ, जो हाथमें दिया गया हो।
कराल (सं० स्त्री०) कराय चक्षुरोगादिविषेपाय पलति गङ्गोति, कर-पाल्-पच्। १ पर्णास, काली-तुलसी। २ घृतादि भ्रष्ट विसवार, करायल। (पु०) करं शान्ति शृङ्गाति अथवा भयप्रदर्शनाय पलति पर्याप्नोति, कर-पाल्-क। ३ सर्जरसयुक्त तैल। ४ दन्तरोग भेद, दांतकी एक बीमारी। कुपित वायु दन्तका प्राच्य पकड़ क्रम क्रम, सब दांतकी विकृत और भयानक भावसे उठा देता है। इसीकी कराल रोग कहते हैं। यह असाध्य होता है। (भाष्यनिदान)

५ कस्तूरमृग, एक हिरन। ६ देत्वविशेष, एक राक्षस। ७ गन्धर्वविशेष। ८ मन्स्वविशेष, एक मछली। ९ कृष्याजक, काला बबूल। (त्रि०)
१० तुङ्ग, अंचा। दन्तुर, जंचे दांतवाला। ११ भयानक, डरावना। १२ प्रशस्त, खुना हुआ।
करालक, कराय देवी।
करालकर (सं० त्रि०) १ बलवान् हस्तविशेष, ताकत-वर हाथ रखनेवाला। २ बलवान् शण्डयुक्त, धोरदार सूंड रखनेवाला।
करालकलिक (सं० पु०) कुन्दपुष्पहृत्, कुन्दके फूल-का पेट।
करालकेसर (सं० पु०) कराला: केसरी यस्य। सिंह, गिर।
करालत्रिपुटा (सं० स्त्री०) करालानि त्रीणि पुटानि यस्याः। लहड़ा नामक शिम्बी धान्य, किसी किष्किका पनाज।
करालदंष्ट्र (सं० त्रि०) भयङ्करदंष्ट्राविशेष, खूंखार दाढ़ रखनेवाला।
करालदंष्ट्रा (सं० स्त्री०) कराला: दंष्ट्रा यस्याः। १ काली। २ भयानकदन्तविशेषा स्त्री, खीकनाक दांतवाली औरत।
करालमश (सं० पु०) सङ्गीततालविशेष, गानेका एक ताल। इसमें तीन खाली और दो भर ताल लगते हैं। मृदङ्गमें करालमश इस प्रकार बोलता है—घा केटे खस्ता केटेताग गदिधेने नांगदेत धा।
करालम्व (सं० स्त्री०) करं पाल्पते शरणार्थे शृङ्गाति, लम्ब-पच्। १ करप्रणयकारी, हाथ पकड़नेवाला। (पु०) २ हस्त द्वारा साहाय्य प्रदान, हाथको पकड़।
कराललोचन (सं० त्रि०) कराले लोचने यस्य। भयानक चक्षुविशेष, डरावनी पांखोंवाला।
करालवदना (सं० स्त्री०) करालं वदने यस्य। १ काली। २ भयङ्करमुखी स्त्री।
कराला (सं० स्त्री०) कराल-टाप्। १ गारिवा, अन्नमत्स्य। २ विडङ्ग।
करालाङ्ग (सं० स्त्री०) विडङ्ग।
करालाग्न (सं० त्रि०) करालं भानने यस्य। भयङ्कर मुखविशेष, डरावनी घूरतवाला।

करालास्य (सं० त्रि०) दन्तुरवदन, खोफनाक दाँतो-
खाला।

करालिक (सं० पु०) कारणां करसदृशग्रथाणां
धातिः अर्पित्वं कराल-कप् इत्वम्। १ वृच, पेड़।
२ करवाल, तलधार।

करालिका (सं० स्त्री०) दुर्गा देवी।

करालित (सं० त्रि०) कराल-इतच्। भयशुक्त, डरा
हुवा। २ भयङ्कर किया हुआ, जो खोफनाक बना
दिया गया हो। ३ बढ़ाया हुआ।

कराली (सं० स्त्री०) कराल-डीप्। १ पान्तिनी
सप्त जिह्वाके पन्तगतं जिह्वाविधेय, पागकी सात
लोभोर्नि एक जीभ।

“बायो कराली च मनोभवा च सुलोहिता या च सुपूवर्णा।
सु जिह्वी विश्वरी च देवी लोलावभागा इति कृतं जिह्वा ॥”
(सुश्रुतीपनिषत्)

(पु०) २ महादीधान्वित पशु, जिहायत रिवदार
घोड़ा। जिसके नीचे या ऊपर एक बड़ा दाँत निकल
जाता, वृद्ध घोड़ा करालो कहाता है। (अवदन)

कराव (हिं० पु०) कर्म, कामकाज। यह शब्द
प्रायः विवाहादि कर्मके लिये व्यवहृत होता है।

करावा, करण देवी।

करास्रोत (सं० पु०) करण भास्रोतः शब्दो यत्र।
१ बहाःखलपर एक हाथ सङ्घित भावसे रख अन्य
हस्त द्वारा ताड़न, तालठोकाव। २ कराघात, डाय-
की मार।

कराह (सं० पु०) १, वेदनासूचक स्वर, तयलोफ
की आवाज। शरीरमें घोड़ा होनेसे मनुष्य कराहता
है। २ कड़ाह, सोहिकी बड़ी कड़ाही।

कराहना (हिं० क्लि०) पीड़ित स्वरसे बोसाना,
काँसना, हाय हाय करना।

कराहा (हिं० पु०) कड़ाह, बड़ी कड़ाही।

कराही (हिं० स्त्री०) कड़ाही।

करि (हिं० पु०) करी, हाथी।

करिक (सं० पु०) करी विधेयोऽस्ति अस्य, कन्।
विद्वखदिर, एक खैर।

करिकण्यवली (सं० स्त्री०) करिकण्यः गजपिप्यश्च-
वयव इव वली। चविका लता।

करिकण्यः (सं० स्त्री०) गजपिप्यली, बड़ी पीपल।

करिकण्यवली (सं० स्त्री०) करिकण्ययाइव वली।
चविका वृक्ष, चय्यका पेड़।

करिकर (सं० पु०) करिणः करः, इ-तत्। हस्ति-
शण्ड, हाथीकी सूँड़।

करिकर्णपलाग (सं० पु०) हस्तिकर्णपलाग, बड़ा टाक।

करिकवत् (सं० पु०) विधान, व्यवस्था, तत्रयोज्।

करिका (सं० स्त्री०) करो विस्लेषनमस्ति अस्याः,
भर्गादित्वाद्च्। १ कारावृक्ष, काटेया। २ नख-
वृक्ष, नाखनूका दाग या जङ्गम।

करिकाल—कर्णाटककः एक नगर। यह भसा० १०
५५'७०" और देगा० ७०" ५१' पु०पर तिहुवाङ्गोड़
नगरसे ४ कोस दक्षिण अवस्थित है। करिकाल प्रति
प्राचीन नगर है। १७४० से १७६६ तक चलनेवाले
कर्णाटक समरके समय यह नगर सङ्कट किया गया
था। यहां अंगरेजोंसे फरासोंची लड़ मरे। करिकाल
नदी कावेरी नदीकी शाखा है। इसकी चारों ओर
अपर्याप्त शस्य उत्पन्न होता है। लवण यहांसे
बाहर भेजते हैं।

करिकालचोल—एक विख्यात चोलराजः। यह परा-
न्तक चोलके ज्येष्ठ पुत्र रहे। इन्होंने पाण्डुराज
वीरपाण्ड्यको युद्धमें हराया था। फिर करिकाल
चोलने कावेरीके जलझावनसे तञ्जौर जिला बचानेका
एक बंध बनावाया। ८०० शकमें यह विद्यमान थे।

करिकुम्भ (सं० स्त्री०) करिणः कुम्भः इ-तत्।
१ गजकुम्भ, हाथीके मल्येकी घड़े-जैसे जगह।
२ मत्स्यचूर्ण।

करिकुम्भक (सं० पु०) नागकेशरचूर्ण।

करिकुम्भक (सं० पु०) करो नागकेशरइतत् कुम्भः।
१ नागकेशरवृक्ष। २ नागकेशरचूर्ण।

करिकण्था (सं० स्त्री०) गजपिप्यली, बड़ी पीपल।

करिकेशर (सं० स्त्री०) नागकेशर।

करिखई (हिं० स्त्री०) १ नीलता, कानिष्ठ। २ कनाह,
बदमासो।

करर (हिं० पु०) : १ विपलमिश्रिय, कीर्ति लक्ष-
रीला कीड़ा। इसका शरीर प्रव्यविश्रिष्ट होता है।
२ अश्रुविश्रिय, किसी रंगका एक घोड़ा। ३ वृष-
विश्रिय, एक पेड़। इसे लक्ष्मी कुसुम कहते हैं। यह
भारतके उत्तर-पश्चिम पंजाब प्रश्रुति देशमें अधिक
उत्पन्न होता है। पोलीका तेल इसीके बीजसे निकलता
है। अफ्रीदी अपनत मोमजामा उक्त तैलसे प्रस्तुत
करते हैं। कररमें पुष्प बहुत प्राते हैं। काष्ठ मृदु रहता
है। शाखा एवं पत्र पशुका खाद्य है।

कररना, करराना देखो।
कररान (हिं० स्त्री०) धनुःके भाकर्षणका शब्द,
कामान् चटानिकी भावाज।
करराना (हिं० स्त्री०) १ मरराना, चरराना, टूट
फूट जाना। २ कठोर शब्द कहना, कड़े पड़ना।
कररी (सं० स्त्री०) करिदन्तमूल, हाथीके दांतकी जड़।
कररी (हिं० स्त्री०) गन्धघटी, वनतुलसी।
कररुह (सं० त्रि०) करे कोरगारे हस्तोंन वा रुहः।
१ कारागारमें भावह, कैद खानिमें पड़ा हुवा। २ हस्त
द्वारा भावह, हाथसे रुका हुवा।
कररुहः (सं० पु०) कारात् रोहति उत्पद्यति, कर-रुह-
क। १ गुणः। २ शक्तिः। ३ नख, नाखून। ४ अङ्गुलि,
उंगली। ५ कृपाण, तलवार। ६ नखी नामक
गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज। ७ भगवोदि धूप।
कररखा (सं० स्त्री०) करस्य रेखा; हाथकी लकीर।
सासुद्रिकके मतानुसार यह शुभाशुभ फल देती है।
कररेचक रत्न (सं० स्त्री०) ट्यसुद्राविश्रिय, माचेंसे
हाथका एक गुमाय। यह अत्यन्त कठिन होता है।
इसमें दोनों कर कटिपर रख स्वस्तिकके सहारे मस्तक
पर्यन्त पहुँचाते और मण्डलाकार बनाते हैं। पुनर्वा
एक करः नितम्ब पर लाया और चपर कर चक्रकी
भाति गुमाया जाता है। इसी प्रकार दोनों कर भ्रूला
करते हैं। इसके पीछे सपेट लगा और फेला दोनों
कर स्कन्धके निकट पुमाना पड़ते हैं।
कररि (सं० स्त्री०) करस्य ररिः। १ करसम्पत्,
हाथकी दौलत। २ करताली, घुघुलियोंकी भावाज।
३ करताल, एक वाजा।

करल (सं० पु०) कपिल्य वृष, कीर्षका पेड़।
करल (हिं० पु०) कटाह, कड़ाह।
करला (हिं० पु०) अक्षुर, किला।
करली (स्त्री०) करला देखो।
करलुरा (हिं० पु०) लताविश्रिय, एक वेल। यह
काष्ठकाकीर्ण होता है। पुष्प खेत एवं पाटल निक-
लते हैं। भारतवर्षमें करलुरा सर्वत्र मिलता है। फर-
वरीसे मयी तक पुष्प प्राते और अगस्त सितम्बरको
फल लग जाते हैं। पुष्पोंका अचार बनता है। शाखा-
पत्र खानिमें हाथीको बहुत अच्छे लगते हैं।
करवंठ (हिं० स्त्री०) लताविश्रिय, एक वेल। यह युक्त
प्रदेश, बङ्गाल, दक्षिणात्य और सिन्धुतमें होती है।
पत्र ४।५ इंच दीर्घ और पुष्प पीतवर्ण लगते हैं। कर-
वंठकी कोमल शाखासे काजन छतिया दौरी बनाते हैं।
करवट (हिं० स्त्री०) १ करवर्त, दक्षिण वा वाम पाख
सेटनेकी स्थिति। (पु०) २ करपत्र, करवत, पारा।
करवत (हिं० पु०) करपत्र, पारा।
करवर (हिं० स्त्री०) विपद्, आफत, भोचट।
करवरना (हिं० स्त्री०) कलरव करना, चड़कना।
करवल (हिं० स्त्री०) कास्मिथित रोप्य, जलामिली
पादी। करवल रूपमें दो पाने कांय धातु रखती है।
करवा (हिं० पु०) १ पात्रविश्रिय, एक लोटा-लैसा
बरतन। यह महीसे टाटीदार बनाया जाता है।
२ कोमिया, घोड़िया। यह लोहेसे बनती और जहाज-
में लगती है। ३ मत्स्यविश्रिय, एक मछली। यह
पश्चात्त, बङ्गाल और दक्षिणमें मिलती है।
करवा-गौर (हिं० स्त्री०) कातिक कण्यचतुर्थी, कातिक
महीनके पंचमे पाखकी चौथ। भारतवर्षमें इस दिन
सौभाग्यवती स्त्रियों गौरीका व्रत रहती है। सायं-
कास महीके करवेसे चन्द्रमाको अर्घ्य दिया जाता
है। पञ्जाबयुक्त करवेका दान भी होता है।
करवा-घोष, करवागौर देखो।
करवाना (हिं० स्त्री०) कराना, काममें लगाना।
करवार (सं० पु०) करं वृथाति, वारयति अक्र-
मणकारिभ्यो वा, कर-ह-प्रप्। १ करवे। २ शक्ति
कृपाण, तलवार।

करिखा (हिं० पु०) १ नीलता, कालिख। २ कालक, बदनामी।
 करिगर्जित (सं० स्त्री०) करिणः गर्जितं गर्जनम्, भाँधे क्त। हँदित, हाथीका चिह्नार।
 करिगह, करगह देखो।
 करिङ्ग—समुद्रज मान्तके राजमहेन्द्री जिसिका एक बन्दर। यह समुद्रके तटपर राजमहेन्द्री नगरसे १५ कोस दक्षिण-पूर्व अवस्थित है। नाना स्थानोंसे यहाँ जहाज आ लगा करते हैं। वाणिज्य-व्यवसाय भी खूब होता है। पहले यह नगर अधिका सन्धि-शाली रहा। किन्तु अब वहाँ वात देख नहीं पड़ती। १७८४ ई०को समुद्रसे तरङ्ग आनेपर करिङ्ग डूब गया था। उससे बहुत लोग मरे और मकान् भिरे पड़े। इसके पार्श्वस्थ समुद्रकी करिङ्गसागर कहते हैं। 'करिङ्ग' कलिङ्ग शब्दका अपभ्रंश है। कलिङ्ग देखो।
 करिचर्म (सं० स्त्री०) गजचर्म, हाथीका चमड़ा।
 करिज (सं० पु०) करिणो जायते, करि-जन-ङ। पञ्चमाम्नाती। पा ३।४।८८। गजशायक, हाथीका बच्चा।
 करिजा (सं० स्त्री०) गजमुग्धा।
 करिणी (सं० स्त्री०) करिन् स्त्रियां ङीप्। १ इक्षिणी, इधनी। २ देवताविशेष, एक देवी। ३ वैश्वके औरस और शूद्रके गर्भसे उत्पन्न होनेवाली कन्या।
 करिणिसहाय (सं० पु०) गज, इधनीका जोड़ा हाथी।
 करिदन्त (सं० पु०) गजदन्त, हाथीका दाँत।
 करिदन्ताभ (सं० स्त्री०) मूलक, मूली।
 करिदमन (सं० पु०) नागदमन, नागदौना।
 करिदारक (सं० पु०) करिणं दारयति, करि-दृ-यत्। सिंघ, शेर।
 करिनासिका (सं० स्त्री०) करिणः नासिका। १ गजनासिका, हाथीकी नाक। २ यन्त्रविशेष, एक बाजा।
 करिनी (हिं०) करिणो देखो।
 करिण (सं० पु०) करिणं पाति रक्षति, करि-पा-क। इक्षिपालक, महापत।
 करिपत्र (सं० स्त्री०) ताक्षीशपत्र।
 करिपत्रक, करिपत्र देखो।
 करिपथ (सं० पु०) करिणः पथ, इ-तत्। १ गजके

गमनयोग्य पथ, हाथीके चलने लायक राह। २ देवपथ, हाथीकी राह। ३ जनपदविशेष, एक वसती।
 करिपिप्पली (सं० स्त्री०) करिसंप्रका पिप्पली, मध्यपदलो०। गजपिप्पली, बड़ी पीपल।
 करिपोत (सं० पु०) करिणं वध्नाति यत्र, यत्र आधाते घञ्। १ इक्षिवन्धनरूप, हाथी बांधनेका खूँटा। (स्त्री०) भावे घञ्। भावे। पा ३।४।८८। २ गजवन्धन, हाथीका बंधाय।
 करिषर (सं० पु०) करिणां वरः। अष्ट गज, षट्ठिया हाथी।
 करिवू (हिं० पु०) हरिणविशेष, एक वारदविह्व। यह अमेरिकाके उत्तरीय भू-वर्षदेशमें पाया जाता है। इससे लीगोका बड़ा काम निकलता है। मांस खानेमें भाता है। चर्म वस्त्ररूपसे व्यवहृत होता है। फिर उसका तन्तु और जूता भी बनता है। अस्थिसे छुरी प्रसृत करते हैं।
 करिम (सं० स्त्री०) करीव भाति, भा-क। अश्वत्य वृक्ष, पीपलका पेड़।
 करिमकर (सं० पु०) काष्पनिक राक्षस, झूठा देव।
 करिमाचक (सं० पु०) करिणं हन्तुं माचं शब्दं लाति विश्वायति, करि माच ला क। सिंघ, शेर।
 करिसुख (सं० पु०) करिणो मुखमिय सुखं यस्य। १ गणेश। ब्रह्मवैवर्तके गणेशखण्डमें लिखते—पावती-नन्दन गणेशके जन्म सेनेपर सकल देव सुन्दरभूति देखने प्रसूचे थे। भगवतीने क्रमशः सकल देवको था कौटले देखा। किन्तु उस देवमण्डलीमें शनिको न देख उन्होंने अपने प्राण-प्यारे सुन्दर पुत्रको भाकर देखनेके लिये उनसे वारंवार अनुरोध किया था। शनि इस भयसे गणपतिको देखने न गये—मेरी दृष्टिसे समुदय भय हो जाता है। अन्ततः भगवतीके आदेशसे उन्हें जाना पड़ा। शनिने भाकर भगवतीसे कहा था—मैं जिसे देख पाता, वही भय हो जाता है। वारंवार ऐसा कहनेपर भी भगवतीने उनसे गणेशको देखनेके लिये आग्रह प्रकाश किया। उस समय शनिने निरुपाय हो गणेशको देखनेके लिये अपने सुखवस्त्रका एक मान्त खोला था। उनकी दृष्टि

करवीर—कनाड़ा प्रान्तका एक नगर। यह अक्षा० १४° ५०' उ० और देशा० ७४° ११' पू०पर गोवासे २२ कोस दक्षिणपूर्व अवस्थित है। १६६३ ई०की विजायतकी हैट इण्डिया कम्पनोने यह अपनी कोठी बनायी थी। किन्तु टीपू सुलतानके समय उसका विनाश हुआ। स्थानीय अधिवासी कोइण भाषा बोलते हैं। फिर बहुत दिन विजयपुर राज्यके अधीन रहनेसे महाराष्ट्र भाषा भी चलती है।

करवीरक (सं० पु०) करं वारयति प्राच्छादयति, कर-ह-खुल्ल्। १ स्कन्धदेशे। २ हस्तावरणकारी, हाथकी रोक लेनेवाला। ३ राजस्वबन्धकारी, खिराज न सुकानेवाला।

करवाल (हिं० पु०) १ तलवार, २ नख, नाखून।

करवालिका (सं० स्त्री०) करपालिका, छोटी गदा।

करविन्द स्वामी—भापस्वस्थ-यौतसूत्रके एक भाष्यकार।

करवी (सं० स्त्री०) कश्यवायोः रघो विद्यतेऽत्र, गौरादित्वात् स्त्रीय। १ हिङ्गुपत्री; एक बूटी। २ कबरी, श्वेट। ३ खनामख्यात प्रसिद्ध पुष्प, एक फूल।

करवीक (सं० स्त्री०) करवी स्त्रायै कन्। करवी। करवीके।

करवीर (सं० पु०) करं वीरयति, वीर विज्ञान्ती अण्। १ छपाण, तलवार। २ देशभेद, काराष्ट्रदेश। ३ राजपुरीविशेष, एक शहर। यह चेदिदेशके निकट अवस्थित है। गोमन्त पर्वतसे करवीर पैदल पट्टे चनेमें तीन दिन लगते हैं। कंसका बंध सुन जरासन्ध क्रुद्ध हुये और राम तथा कृष्णके विनाशकी कामनासे मथुरापुरी चरे पड़े थे। किन्तु रामकृष्णने अपनी पराक्रमसे उन्हें सम्पूर्णरूप पराजय किया। जरासन्ध फिर भागे थे। हृष्ट चेदीश्वरके प्रतिप्रायातुसार राम और कृष्णने चेदिषे अनलिटूरवर्ती करवीरपुरकी और यात्रा की। आगमनकी वार्ता सुन उद्यत करवीरपति श्याम रामकृष्णकी राक्षसोंकी उपस्थित हुये, किन्तु घोरतर युद्धमें मारे गये। (हरिवंश २८०-१०१) महामावतके समयसे यह एक तीर्थस्थान माना जाता है। कन्दपुराणके महाद्विषण्डमें लिखा है—

“वीरगं दम के पुन काराष्ट्रे दिग्गुहं रं. १ ४ ४

तन्मध्य पचकोमेष कायावर्थाधिकं सुदि।

सेनं वं करवीराख्यं चेनं लज्जीविनिर्मितम् ३ ५४

तत्तुचेवं हि महत्तु पुत्रां दमं गान् पापनाशनम्।

तत्तुचेवं नृपयः सर्वे ब्राह्मणा विदारगाः ३ ५६

निर्वा दमं नानाये च सर्वैवापचयी मनेत्।

तत्तुचं वं शिवनं पीठं महापद्माय तलताः ३ २० (उत्तरार्धे २५०)

इ पुत्र। दुर्दम काराष्ट्रदेशे दययोजन विस्तृत है। उसीके मध्य काशी प्रभृतिसे अधिक पुण्यस्थान लक्ष्मीविनिर्मित करवीर क्षेत्र है। इस क्षेत्रको देखनेसे महापुण्य मिलता और पाप मिटता है। यहां वेदपारंग ब्राह्मण और ऋषि रहते हैं। उनके दर्शन मात्रसे सकल पाप भागता है। केवल इसी क्षेत्रको महालक्ष्मीका पीठ कहते हैं। काराष्ट्रदेशका वर्तमान नाम कराड़ है। इसी कराड़में करवीर पड़ता है। कराड़ देखो।

३ श्रमगान, मरचट। ५ ब्रह्मावर्त। ६ दृशक्षती तीरकी चन्द्रशेखरनामक राजपुरी।

७ पुण्यहृत्विशेष, एक पेड़। इसका संस्कृत पर्याय— प्रतिहास, शतप्रास, चण्डात, अह्यमारक, प्रतीहास, अश्वत्थ, ह्यारि, अश्वमारक, खेतकुम्भ, तुरङ्गारि, अश्वहा, वीर, हयसार, हयघ्न, शतकुन्द, अश्वरोधक, वीरक, कुन्द, शकुन्द, श्वेतपुष्पक, अश्वान्तक, नखराष्ट, अश्वनाशन, श्वलकुसुम, दिव्यपुष्प, हरिमिष, गौरीपुष्प और सिन्धुपुष्प है। यह दो प्रकारका होता है— श्वेत और रक्त। श्वेतकी श्वेतपुष्प, श्वेतकुम्भ एवं अश्वमार और रक्तकरवीरकी रक्तपुष्प, चण्डात तथा सगुड़ कहते हैं। हिन्दी तथा दक्षिणी भाषांमें कनेर, तामिस्रंमं पलारि, तैसङ्गमें चिनेर और अंगरेजीमें यह ओलीखर (Oleander) कहाता है। इसका वैज्ञानिक अंगरेजी नाम नेरियम ओलोरम (Nerium odoratum) है। कनेर देखो।

उभयप्रकार करवीर भारतवर्षके नाना स्थानमें उत्पन्न होता है। किसी हृत्तमें केवल रक्त भयया श्वेत और किसी किसीमें श्वेतरक्तमिश्रित पुष्प पाते हैं। प्रियोल करवीरको अपने क्लेम पद्मकरवीर कहते हैं। वैद्यकशास्त्रके मतसे उभयप्रकार करवीर तिक्त,

प्रथम गणपतिके मस्तकपर पड़ो। उससे मस्तक
जल गया था। मस्तक विनष्ट होति देख शनिने
अपनी भांख पर फिर परदा डाला। पायंती भी
प्रिययुवकी मस्तकहीन देख शोकसे चबरा गयीं।
उसी समय देववाणी हुई थी, 'लक्ष्मी भोर गिर
किये एक हाथी होता है। उसीका सुण्ड गणेशका
मस्तक बनैगा।' देवगणने अनुसन्धानको निकल
देखा था—इन्द्रका हस्ती शिरावत इसी प्रकार होता
है। उस समय अगत्या देवताने उसी करिको सुण्ड
काट गणेशके देशमें जोड़ दिया। इसी प्रकार गण-
पतिका करिसुख बना था। २ गजसुख, हाथीका सुण्ड।
करिया (हिं० पु०) १ कर्ण, पतवार। २ कर्णधार,
मसाह, नाथ पसानेवाला। ३ सर्प, कासा-साप।
४ इक्षुरीगक्षिण, ऊखकी एक बीमारो। इससे रस
सूखने लगता और पोदा कासा पड़ता है। (वि०)
५ ऊखवर्ण, कासा।
करियाइः (हिं० स्त्री०) १ नीलता, स्याहो, कालापान।
२ कालिख।
करियाद (सं० स्त्री०) जलहस्ती, दरयायी घोड़ा।
यह एक दूध पीनेवाला जन्तु है। जङ्गली स्वरसे
करियाद मिला जाता है। इसका गिर मोटा और
वर्गाकार होता है। घुंघन बहुत बड़ा रहता है।
चञ्चु एवं कर्ण नुदर और शरीर मोटा तथा भारी
लगता है। पैर छोटे रहते हैं। पैरमें चार उंग-
लियां होती हैं। पूंछ छोटी पड़ती है। पीटमें दो
धन लगते हैं। खासपर बाल नहीं जमते। यह
प्रायः झरुरीकाने संघ जगह रहता है। सन्वार् १७
पीट जाती है। पानीमें रहना इसे बहुत अच्छा
लगता है। किन्तु भूमिपर घासपात खा यह
अपना जीवन चलाता है। करियाद अनेक प्रकारका
होता है।
करियारी (हिं० स्त्री०) १ कलिकारी, कलियारी,
एक जूड़ा। २ लगाम।
करिरः (सं० पु०-स्त्री०) किरति विद्यपति, क संघायो
रहन्। १ संघाह्वन, बांसका किला। अरुजयुष्म,
एक भाङ्ग। २ शेट, चक्का।

करिरतः (सं० स्त्री०) करिणो रतमिव रतन्, मध्यपद-
लो०। १ कामयाखोक्त एक प्रकार रति।
"सुगतगुणोत्तमसकामुच्यतां सर्वमेधोसुतो" शिवम्।
"माति सखरकृष्मिदने नक्षमचित्तं तदुच्यते।" (शब्दवि०)
२ गजकां रमण, हाथीका भोग।
करिरा (सं० स्त्री०) इन्द्रिदन्तका मुल, हाथीके
दांतकी लड़।
करिरी, कतिरि श्वो।
करिव (सं० त्रि०) करिणं वाति दिनस्ति, करि-वाक।
करिको मार डालनेवाला, जो हाथीकी भौतकी सुँदने
पड़वाता हो।
करिवद, करिर श्वो।
करिवैजयन्ती (सं० स्त्री०) गजपताका, हाथीका
निशान या झण्डा।
करिशावक (सं० पु०) करिणां शावकाः इस्ति-
गिया, हाथीका बच्चा। पाँच या दस वर्षगले बच्चेको
शावक कहते हैं। इसका संस्कृत पर्याय—कलभ,
करभ, करिपोत, करिज, विक और विक है।
करिसुण्ड (सं० स्त्री०) करिणः यण्डम्। गजसुण्ड,
हाथीकी सूँड।
करिष्ठ (सं० त्रि०) पतिव्रतयैः कर्ता इठन्। कर्त-
तम, बड़ाकाम करनेवाला।
"युद्ध सखिभुव कर्षिः" (अष्टाध्यायः)
करिणु (सं० पु०) क-इणुच्। करणयोल, करने-
वाला।
करिण्यत् (सं० त्रि०) करनेको इच्छुक, करनेवाला।
करिण्यमाणः (सं० त्रि०) करनेको प्रसुत, जो करने
जाता हो।
करिसुत (सं० पु०) करिणः सुतः इतत्। इस्ति-
शावक, हाथीका बच्चा।
करिसुन्दरिका (सं० स्त्री०) करीव सुन्दरी, करि-
सुन्दरी संघायां कन्-टाप् ऊल्लय। १ नागयडि।
२ बख युष्क करनेका यन्त्रविशेष, कपड़ा सुखानेकी
एक कल। (प्रायकी)
करिस्त्वम् (सं० स्त्री०) करिणां चसुम्हः करिन्-
स्त्वम्बच्। १ गजसुम्ह, हाथीका भुष्क। करिणः

कपाय, कटु और उष्णवीर्य होता है। प्रमेय, चक्षुरोग, कुष्ठ, चत, कृमि और कण्डू प्रभृति रोगपर इसका मूल जगाने जाता है। करवीरका मूल विषाक्त है। (चक्रदण्ड, भावप्रकाश, गात्रधर) हकीमी किताबोंमें इसका नाम खरजहरा लिखा है। यह प्रदाह और स्फोटक निवारक होता है। यह जगानेमें भी आता, खानेसे क्या खादमी, क्या जानवर सबके लिये जहरका काम कर जाता है। मौर सुहृद्द ह्येन नामक सुसलमान् हकीमने कहा,—कि कनेरका मूल अथर सकल स्थलमें विषमय पड़ते भी सर्पके काटनेपर विषनिवारक ठहरा है। कोडामकोड़ा मारनेको, इसका मूल प्रयोगमें आता है।

स्त्रियों अनेक समय करवीरका मूल खा पाक-द्वया करती हैं। इसीसे दक्षिणदेशमें स्त्रियोंके मध्य विषाद उपस्थित होनेपर कड़ा जाता है—कनेरके पास जावो। डाक्टर डाइमकके कथनानुसार करवीरके मूलमें तीव्र हृदयिप होता है। इसका ०००१६ ग्रेन मात्र एक मॅडकको खिलाया गया था। १४ मिनट पीछे ही उसकी हृदयगति रुक गयी। इसका मूल खानेसे दिलका चलना और पसिनिका निकलना बन्द हो जाता है। करवीपुष्प, हिन्दू देवताओंको अति प्रिय है। फिर इसका पत्र एवं बल्कल सुखा-धातकर जगानेसे सर्वप्रकार चर्मरोगको उपकार पहुँचाता है।

करवीरक (सं० स्त्री०) करवीरवत् कायति प्रकायते, कै-क वा करवीरयति, वीर-विक्रान्ती षड् लु। १ अर्जुन वृक्ष। २ करवीर, कनेर। ३ खड्ग, तक्षवार। ४ करवीर मूलरूप विष, जहरली कनेरकी जड़। करवीरकन्दसंज्ञ (सं० पुं०) करवीर कान्द इति संज्ञा यस्य। तैलकन्द।

करवीरका (सं० स्त्री०) मनःशिला। करवीरणी (सं० स्त्री०) पुष्पवृक्ष विशेष, एक फूलदार पेड़। कोडण्ड देशमें इसे 'ककर-खरनी' कहते हैं। यह यौषध कृतुमें होती है। पुष्प रक्त जगते हैं। करवीरणी तिल, उष्ण एवं कटु, रक्तती और कफ, घात, विष, आधाननाश, कर्दि, कर्षण खास तथा कृमिको दूर करती है। (स्पृणविष्य)

करवीरतैल, करवीरपत्रक इत्यादि। करवीरपुर (सं० स्त्री०) करवीर देखो। करवीरभुजा (सं० स्त्री०) करवीरभुजः शाखा-इव भुजः शाखा-व्याख्या-वहुव्री०। भादकी, वृक्ष, पड़हरका पेड़। करवीरभूषा (सं० स्त्री०) करवीरस्य भूषेव भूषा संस्थाः। भादकी, अडहर। करवीराद्य (सं० पुं०) खर राक्षसाः सेनापति। करवीराद्यतैल (सं० स्त्री०) करवीरं पाद्यं प्रधानं यत्र बहुव्री०। तैल विशेषः कनेरका तैल। श्वेतकरवीरके मूलका रस गोमूत्र, चित्रक-और विडङ्ग-डाल यथाविधि तैल पकानेसे यह यौषध प्रस्तुत होता है। इनमें तिलतैल श्वेतारावक, करवीरादिकल्क श्वेतारावक और जल श्वेतारावक पड़ता है। करवीराद्यतैल कुष्ठरोग और भगन्दरको दूर करता है। श्वेत करवीरका मूल और विष समभाग कूटपीष गोमूत्र एवं तैलमें यथाविधि पोक करनेसे श्वेत करवीराद्यतैल प्रस्तुत होता है। इसके जगानेसे चर्मदल, सिध, पांमो, विस्फोट प्रभृति रोग मिटते हैं।

करवीर जाती, पीतशाल एवं मल्लिकाका पुष्प समभाग और सबके बराबर तैल यथाविधि डालकर पकानेसे जो तैल बनता, वह नासारोगको दूर करता है। करवीरानुजा (सं० स्त्री०) भादकी, अडहर। करवीरिका (सं० स्त्री०) मनःशिला। करवीरी (सं० स्त्री०) किरति विक्षिपति दानवराक्षसादीन्, क-अच्छकरः वीरः पुत्रो इत्याः। १ प्रदिति। २ पुत्रवती, जिससे भारतके बहादुर खड्गका रहने। ३ यौषधवी, अच्छी गाय। करवीर्य (सं० पुं०) करवीरपुरेभवः, करवीर-यत्। श्वेत्स्वरिके प्रति प्रायुर्धेद-प्रत्यकर्ता, कृत्वि-विशेष, एक पुराने हकीम। २ वाहुदल, पायवा जोर। करवील (हिं० पुं०) करीस, करीर, कचड़ा। करवेया (हिं० वि०) कर्ता, करनेवाला। करघोटी (हिं० स्त्री०) पक्षविशेष, एक चित्रिप्रा। इसे करघोटिया भी कहते हैं।

स्कन्धम्, इ-तत् । २ गजका स्कन्ध; हाथीका कन्धा ।
 (त्रि०) करि स्कन्धमिय, स्कन्धं यस्य । ३ करिकी भांति
 स्कन्धविशिष्ट, हाथीकी तरह, कन्धा रखनेवाला ।
 करिष्ठाचार (सं० पु०) नृत्यभेद, किसी किष्ठाका
 नाच । यह एक देशी भूमिधार है । इसमें हंस-
 स्थानक बना उभय पद-तिर्यक् रखते और भूमिपर
 मर्दन करते हैं ।
 करिष्ठा (हिं० स्त्री०) करिष्ठा शब्दोत्पत्ति ।
 करिष्ठाव (हिं० पु०) कटि, कमर । २ कोल्हका
 मध्य भाग । यह गह्वारीदार होता है । इसीमें कनेठा
 और भुजिजा चक्र खाया करता है ।
 करिष्ठावी (हिं० स्त्री०) कलियारी; करियारी ।
 करी (सं० पु०) करः शृणुः अस्ति प्रस्य, कर-इति ।
 १ हस्ती, हाथी । २ षट् संख्या, षाठकी, षट् ।
 करी (हिं० स्त्री०) १ कड़ी, धरन, काठका, खम्बा
 और पतला शहतीर । यह छत-पाटनेमें लगती है ।
 २ कलिका, कली । ३ छन्दोविशेष, चौपैया । इसमें
 १५ मात्रा लगती है ।
 करीतिः (सं० पु०) महाभारतोक्तः जनपदविशेष,
 एक वसती । (भारत, भोज)
 करीना (हिं० पु०) १ केंनी, टाकी । इससे पत्थर
 गड़ा जाता है । २ मसाला, किराना ।
 करीना (अ० पु०) १ नियम, तरीका । २ प्रथा,
 शिवा । ३ क्रम, सिद्धिसिद्धा । ४ व्यवहार, कायदा ।
 ५ नैषिका एव हिष्ठा । यह वस्त्रसे आच्छादित
 रहता है । करीनाः फरशीके मुंहपर जमकर बैठता है ।
 करीन्द्र (सं० पु०) करिष्ठा इन्द्रः इ-तत् । १ करि-
 श्रेष्ठ, बढ़िया हाथी । २ ऐरावत, इन्द्रका हाथी ।
 करीम (अ० क्रि० वि०) १ निकट, नजदीक, पास ।
 २ प्रायः, लगभग ।
 करीम (अ० पु०) १ ईश्वर । (वि०) २ करुणा-
 मय, मिह्रवान् ।
 करीमखान् (सं० पु०) एक पठान-दलपति । यह ई० पट्टा-
 दम शताब्दीके श्रेष्ठभाग चौथे मिस्र खालिफका
 राज्याल्लूतने मने । अन्तकी संघियानि इन्हें पकड़
 लिया था । किन्तु उन्होंने बहुतसा रूपया ली

इन्हें छोड़ दिया । छूटनेपर यह अधिक प्रबल पड़े
 थे । देशके लोग करीमका नाम सुनते हो कांपने
 लगते । अनेक कष्टसे यह फिर इन्दौरमें पकड़े गये ।
 कुछ दिन पीछे छूटनेपर इन्होंने भंगरौंजीके विद्वह
 भस्त्र उठाये थे । १८१८ ई०की कारनेल पादमने
 इनके विपक्ष सेन्ध भेजा । इन्होंने उस समय ययो-
 वन्त रायका आश्रय लेना चाहा था । किन्तु
 १५ वीं फरवरीको इन्हें बाध हो मासकोमके निकट
 बन्धता मानना पड़ी । करीमखानकी जीविका निर्वा-
 हसे लिये गोरचपुर जिलेमें बुरहियांपार मिला था ।
 इनके सन्तान १८५७ ई०के विद्रोह पर्यन्त उच्च स्थानका
 प्राय उपभोग करते रहे ।
 २ ईरानी, जन्मजातिके एक सरदार । इन्होंने
 जन्दी और माफियोंकी फौज लुटा पारसमें अफगा-
 नोंकी भगाया था । १७५६ से १७७६ ई०तक करीम
 खानने ईरानमें निष्कण्टक राज्य किया । १७७६ ई०की
 २री मार्चको ८० बखरके वयसपर यह मर गये ।
 करीमभाट (हिं० पु०) बन्धलपविशेष, एक जङ्गली
 घास । यह पशुका खाद्य है ।
 करीर (सं० पु०-स्त्री०) किरिति विक्षिपति भाव-
 रणान् । कृ-ईरन् । कृष्णकटिपटिमोष्ठि ईरन् । उ-
 १ वंशाशुभ, वांसका, कला । यह कटु, तिक्त, पक्व,
 कषाय, लघु, शीतल, क्वचिकर और पित्त, रक्त, दाह
 तथा कृच्छ्र होता है । इसका पर्यं निर्गुण है ।
 (गुणविपक्ष) २ घट, घड़ा । ३ अशुभमात्र, कोई
 खुवा ।
 (विपक्ष) ४ मरुभूमिजात उद्भिन्मय कण्टकवृक्ष विशेष,
 करीर; कचला । इसे हिन्दुस्थान तथा बङ्गालमें
 जंतकटारा, भरव एवं बम्बईमें कवर, सीरियामें कवार,
 सुदकमें कपरिश, और पारसमें कवर या कुरक
 कहते हैं । (Capparis aphylla) संस्कृत पर्याय-
 क्रुकर, पयिल, ककच, निम्बिका, करिर, शूटपत्र,
 करक और नीलकण्ठक है । यह वृक्ष भारतवर्षमें
 सधराबर उत्पन्न होता है । अन्त व्यवहारमें प्राय
 करता है । यह कटु, तिक्त, स्वेदजनक, उष्ण और

भेदक है। भयं, क्रफ, वायु, पाम, विषज गोघं और
त्रयको करीर नाम करता है। त्वक् शगानिं-चलती
है। माता २ मासे है। (भाष्यभाष्य)

मखज्ज-उल्-पदविद्या नामक हकीमों ग्रन्थके
मतानुसार इसके मूलकी त्वक् प्रहणीय है। यह
कण्डुघ्न, कटु, परिष्कारक और पक्षाघात तथा सकल
प्रकार वातरोगके लिये उपकारक है। इसका पक,
काममें हासनेसे कीड़ा मर जाता है।

ऐसाली साइब दूधित त्रयका इसे महीषघ्न
कहाते हैं।

यह घना और डालदार भाड़ है। प्रधानतः

क करीबी लगहमें करीर उपजता है। परब, दन्ति

(मिथ) और नवियामें भी यह पाया जाता है।

वसन्त ऋतुके बादमें फल और अग्रे मास फल

जाते हैं। फल खोया जाता है। करीरका भचार

भी लोग बना लेते हैं। इसमें पत्र नहीं लगते।

उपहन हरा और फल गुलाबी होता है। काठ

हलका पीला रहता और खुला रखनेसे भूरा निकल

पड़ता है। इसमें चमक, कड़ाई और दानेदारी

अच्छी होती है। परिमाण प्रत्येक घन-पुटमें कोई

२५ सेर प्रैठता है। इससे छतकी छोटी कड़ियां,

बर्तने और नाथकी कोनियां तैयार करते हैं। यह

तेलकी कर्ली और छितीकी बीजारोंमें भी लगता है।

करीरकी लकड़ी कड़वी रहने और दीमक न लगनेसे

सूखवान् समझी जाती है। यह जलानेमें भी

अच्छी रहती है। हालें हरी ही मसासकी तरह

जला करती है।

कवितामें भी करीरका यथेष्ट उल्लेख है। मासती

इसपर भ्रमरकी जाते देख कूटती और जलती है।

पत्र न पानेपर कवि इसीके पट्टककी बुरा बताते,

सुखसपर कोई दीव नहीं लगाते।

करीरक (सं० स्त्री०) करीर एव स्वार्थ कन् । १ वंशा-

द्वार, वांसका पंचुवा । २ युद्ध, लड़ाई ।

करीरकुच (सं० स्त्री०) करीरस्य पाकः करीर-

कूषण् । तेल पाकसे पिलादिबोधिः उपजाती । प ३४४१ ।

१ करीरपाक; करीरकी तरकारी । २ करीरफल-
काल, करीरके फलनेका समय ।

करीरप्रख (सं० पु०) नगरविशेष, एक शहर ।
करीरिप्रख भी एक पाठ है ।

करीरफल (सं० स्त्री०) करीरखोज, करीरका तुल्यम् ।

करीरा (सं० स्त्री०) करोर-टाप । १ चीरिका,

भींगुर । २ हस्तिदन्तमूल, हाथीके दांतको जड़ ।

३ मनायिता ।

करीरिका (सं० स्त्री०) करीरमिव प्राकृतियस्याः,

करीरठन्-टाप च । १ हस्तिदन्तमूल, हाथीके दांतकी

जड़ । २ भिक्षी, भींगुर ।

करीरी (सं० स्त्री०) किरिन्, कु-ईरन् गौरादित्वात्

ह्रीप् । १ हस्तिदन्तमूल, हाथीके दांतकी जड़ ।

२ चीरिका, भींगुर ।

करीर (सं० पु०) ठ्वचविशेष, एक पेड़ । इतरेशो ।

करीष (सं० पु०-स्त्री०) कौर्यते विशिष्यते, कु-ईरन् ।

करीषीयन् । उपशर । १ शुक्लगोमय, सूखे गोबर ।

२ पशुका पुरोयमात्र, गोबर । ३ वनमय गोमय,

जङ्गली गोबर, बिरुवां कण्डा । इसका पानि पति

उत्तम होता है । ४ पर्वतविशेष, एक पहाड़ ।

करीषक (सं० पु०) करीष एव स्वार्थ कन् । १ करीष ।

इतरेशो । २ जनपदविशेष, एक मुल्क । (माल, गोच)

करीषगन्धि (सं० त्रि०) करीषस्य गन्ध इव गन्धो

यस्य । शुक्ल गोमयकी भांति गन्धयुक्त, सूखे गोबरकी

तरह महकनेवाला ।

करीषहप (सं० त्रि०) गोमय भाङ्गनेवाला, जो गोबर

घटाता हो ।

करीषहवा (सं० स्त्री०) करीषं कपति दिनस्ति,

करीष-कप-खच-मुम् । मन्त्रनाम इतरेशु कपः । प ३४४२ ।

वायु, हवा ।

करीषान्नि (सं० पु०) करीषस्थितोऽग्निः । शुक्ल-

गोमयवज्जि, सूखे गोबरकी भाग ।

करिषी (सं० स्त्री०) करीषिन्-स्त्रियां ह्रीप् ।

शोमयाभिधात्री ह्यस्यो दिवो ।

"करीषरत् इतरेशु" नियुक्तं, करीषीयम् । (नीरव)

सूचको को कारिका	रकम
पुषीपात्र	११०२
रामापात्र	११०४
विशेषपात्र	११०६
विषयपात्र	११०८
अससपात्र	१११०
पुष्पपात्र	१११२
अर्जुनपात्र (१५)	१११४
विक्रमजिन्पात्र	१११६
अमयवर्द्धपात्र	१११८
शुभोपात्र	११२०
अश्वमेधपात्र	११२२
भारतीवर्द्ध	११२४
गोपालदास	११२६
वारकादास	११२८
सुहृन्दास	११३०
दुग्गपाल	११३२
सुहृदीपात्र	११३४
धर्मपात्र (१५)	११३६
रत्नपात्र	११३८
आशिपात्र	११४०
अनन्यपात्र (१५)	११४२
राशिपात्र	११४४
सुहृन्दास	११४६
कुंवरपात्र (१५)	११४८
श्रीगोपाल	११५०
नाचिबपात्र	११५२
अमृतपात्र	११५४
हरिपात्र (१५)	११५६
सुधुपात्र	११५८
अर्जुनपात्र	११६०

करीलीके राजा अर्जुनपाल अपनेको कल्पके शंभर और यष्टवंशीय बताते थे। पहले यह वंश हृन्दावनके निकट ब्रजधाममें वास करता था। किसी समय बरसानेमें भी इसका राजत्व रहा। १०५३ ई०की मुसलमानोंने यह स्थान अधिकार किया था। उस समयसे इस वंशने करीलीमें आ अपना राज्य जमाया। १४५४ ई०की मालवप्रति महमूद खिलजीने करीली आक्रमण किया था। एकवर बादशाहने मालव

जयके पीछे इस राज्यको दिल्लीमें मिला लिया। मुगलकी गौरवका रवि जब डूब गया, तब महाराष्ट्रने इस स्थानको अधिकार कर २५०००००० वार्षिक कर लगा दिया। १८१७ ई०को पेशवाोंने करीलीका उपसत्व अंगरेजोंको सौंपा था। अंगरेजोंने करीलीके राजासे यह बन्दोवस्त बांधा—विपद् पड़नेसे करीलीके राजा सैन्यसंग्रह द्वारा अंगरेजोंको यथासाध्य साहाय्य देंगे। फिर करीलीका राज्य अंगरेजोंके आश्रित हुआ।

१८५२ ई०को महाराज नरसिंहने इहलोक छोड़ा था। उनके पुत्रादि न रहनेसे करीलीको अंगरेजी राज्यमें मिलानेकी बात चली। किन्तु अनेक कल्पनाके पीछे राजाके आजीव्य मदनपालको राज्यका सिंहासन सौंपा गया। मदनपालने १८५७ ई०की विद्रोहके समय कोटाके विद्रोहियोंके विपक्ष सैन्य भेज अंगरेजोंको यथेष्ट साहाय्य दिया था। इसीसे अंगरेजोंने उनको जि, सी, एस, आईके उपाधिसे विभूषित किया। १५के स्थानमें १७ तोपोंकी सलामी भी हो गयी थी। १८६७ ई०की मदनपालका मृत्यु होनेपर दो राजाओंके पीछे १८७८ ई०में अर्जुनपालको करीलीका सिंहासन मिला।

करीली राज्यके महसूलसे कितना हो कर दिया जाता है। यहाँ रीतिके अनुसार पुलिस नहीं। राजाके सिपाही ही पुलिसका काम करते हैं। करीलीमें १६० सवार, १७७० पैदल, १२ गोतन्दाज और ४० तोपें हैं। सिपाही-निम्नलिखित १२ दुर्गमें रहते हैं— करीली नगर, कंटगढ़, मन्दरल, मारीली, सपीतरा, दौलतपुर, थाली, लम्बरा, निन्दा, खुटा, उन्द और खोदाई। करीलीकी टकषास पत्तन है। उसमें चाँदीका रुपया बनता है।

२ करीली राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २६°२०'४०" और दिशा० ७०°५' पू०पर मयरावे १५ कोस दूर अवस्थित है। किसी किसीके मतानुसार अर्जुनदेवके प्रतिष्ठित कल्याणजीवासे मन्दिरसे ही इस नगरका नाम करीली पड़ा। १४४८ ई०की अर्जुनदेवने यह नगर बसाया था। किसी समय

करीवी (सं० पु०) करीवः विद्यते यत्र, करीव-रनि । करीवसुता देश, सुखे गोमरका सुख्क ।
 करुखी (हिं० क्रि० वि०) तिर्यक् दृष्टि द्वारा, तिरछी नजरसे ।
 करुण (सं० पु०) करोति मनः आमुकस्याय, क-
 रणनम् । इन्द्रादिभ्य णनम् । उप् १३१ । १ स्त्रनामख्यात निम्बुक
 वृक्ष, किसी किसके नीबूका पेड़ । (Citrus decu-
 manna) इसे हिन्दीमें मछानौबू, चकोतरा, वातावी नीबू
 या सदाफल, बंगलामें बतोर या वातावी नीबू, सिन्धीमें
 बिजोरा, गुजरातीमें शोषकोतर, मराठीमें पपनच,
 मारवाड़ीमें दप्या, तामिलमें बोम्बलिनच, तेलगुमें पाद-
 पन्दू, कनाड़ीमें सकोतराचन्न, मलयमें बोम्बेलिमरुन्न,
 महिसरीमें पूमपसेन्नुस, ब्रह्मीमें शङ्खतोनिच और सिंघली-
 में जमबूल कहते हैं । यह मलयद्वीपपुष्प, फ्लोइली और
 फ्रिजीमें खभावतः उत्पन्न होता है । करुण जवहीपसे
 भारतमें आया है । स्याप्रधान देशमें अधिकार्य इसे
 ब्रगाते हैं । भारत तथा ब्रह्ममें यह अधिक होता है ।
 किन्तु दार्दिष्यात्य तथा बङ्गदेशकी पसेवा भार्यावर्तमें
 यह क्रम मिलता है । वाताविद्यासे आने कारण ही
 इसे वातावी कहते हैं । इसका फल बहुत बड़ा
 रहता और तीलनिपर कभी कभी पाँचसे दश चैरतक
 निकलता है । यह देखनेमें गोलाकार होता है ।
 त्वक चिकनी और पीली देख पड़ती है । गूदा सफेद
 या गुलाबी लगता है । गोंद किसी काम नहीं आता ।
 यह वृक्ष सदा फला करता है । बम्बईके बाजारमें जो
 करुण दिग्ध्वर या जमघरी मास आता, वह सयसे
 अच्छा कहा जाता है ।
 राजवसामने इसके फलको कफ, वायु, पाम तथा
 नेदोशाशक और पित्त-प्रकोपक बताया है ।
 २ शूद्रादि अष्टरसके अन्तर्गत तृतीय रस ।
 साहित्यदर्पण इसका लक्षणादि इस प्रकार लिखता—
 रन्धुवान्धयोदिके वियोगसे करुण रस उठता है । इसका
 कपोतवर्ण होता है । अघिघ्रात्रो देयता यम है ।
 करुणरसका स्यादिभाव शोक, प्रासम्भन-भाव शोच जन
 (जिसका वियोग पड़ गया हो) और इसके दाहादि-
 की अपेक्षा ही उद्दीपनभाव है । इसका अनुभाव

देवनिन्दा, भूतलपरः पतन, क्रन्दन, विवर्णता, जर्भ-
 शास, निर्वातस्य प्रदीपकी भांति निर्जिवित् निश्वासकी
 रोक और प्रलाप है । करुण रसका अग्निवार भाव
 वैराग्य, जड़ता और चिन्ता प्रभृति है । देवनिन्दाका
 सदाहरण नीचे देते हैं,—
 "विदिने क कटापिपन्नं . तत्र वेदं क मनोहरं ययुः ।"
 - यनयो घंटाया विधेः स्फुटं गत खड्गैर्न यिरोपकर्मणम् ॥"
 (साहित्यदर्पण राघवविंशत्)
 सङ्गीतशास्त्रमें यह रागरागिनी करुणरसमें गेय
 है,—भैरव, भैरवी, रामकली, खट, गान्धार,
 जोगिया, विभास, कुकुभ, देवकरी, पलेया, विला-
 वल, सिंदूरा, सिन्धु, सुलतानी, पूर्वा, टोड़ी, गौरी,
 मेदारा, ईमान कल्याण, जयजयस्त्री, हमोर, मूपासी,
 कान्हाड़ा, खन्नाच, भंभौटी, विहाग, बागेश्वरी, सुरत,
 शङ्करा, मोहिनी, मालकोप, बङ्गाली, मसार, और
 कलित ।
 १ दया, मिहरवाणी, दूसरेका दुःख दूर करनेकी
 इच्छा । ४ करुणाका विषय, मिहरवाणीकी बात ।
 "अनुतोदितो न चरुषेन पतिर्वा विरतेन ॥" (माण) ५ बुद्धदेव,
 किसी बुद्धदेवका नाम । ६ परमेश्वर । ७ प्राणियोंके
 अभयजनक परित्राजक । ८ तीर्थ विशेष । (बाविकापुराण)
 ९ फलितवृक्ष, मेवादार पेड़ । १० मल्लिका वृक्ष,
 चमेली । ११ अक्षरविशेष । (त्रि०) १२ दयावृत्त,
 मिहरवान् । १३ शोकार्त, रज्जोदा । (प०) १४ शोकसे
 रो-रो कर । (स्त्री०) १५ पावन कर्म, पकीया
 काम ।
 करुणध्वनि (पु० सं०) करुणासुखकः ध्वनिः । दुःख
 या शोकमें मानव सुखसे निर्गत शब्द, अप्सोसकी
 भावाज्ञ ।
 करुणमल्ली (सं० स्त्री०) करुणा करुणयोर्ग्या मल्ली ।
 नयमल्लिका, मोतियां । (Jasminum sambac)
 इसे हिन्दीमें मोतिया, बेला, धनमल्लिका या भोगरत,
 बंगलामें मल्लिक, पञ्जाबीमें चम्ब, मराठीमें भोगरी,
 मारवाड़ीमें भोगरा, गुजरातीमें भोगरो, तामिलमें
 मल्लिय, तेलगुमें बोहु मले, कनाड़ीमें मल्लिग, मल्लयमें

वदते भी. पार्यतीय. मीना जातिके उरपातसे इसकी सन्धि मिट गयी। १५०६ ई०को राजा गोपालदासके शासनकाल इस नगरने पूर्वथी; पायी. यी। उसी समय यहाँ बण्डू सुरस्य; इर्म्य बने। नगर प्रायः एक कोस है। इसकी चारो ओर बिलौरी पत्थरका प्राचीर खड़ा है। नगरमें घुसनेकी ६ सिंघदार और ११ गुप्तद्वार हैं। करौचीकी मध्य गोपालदासके समयका एक सुहृद् राजासाद बना है। प्रासादकी चारो ओर पत्थर प्राचीर है। सिंघदार दो हैं। प्रासादके मध्य राजमहल और दोषान-धाम नामके गृह देखने योग्य है। इन दोनों गृहोंका चित्र विचित्र कारुकाय और शिल्प-नेपथ्य देखनेसे निर्माणकारियोंकी यथेष्ट प्रशंसा करना पड़ती है। यहाँ शिकारगृह, शिकारमहल और धाममहल नामक तीन मनोरम उद्यान बने हैं।

कक (सं० पु०) क-क। कदापराचिंकिमः कः । उष्ण । १ श्वेत भस्म, सफेद घोड़ा । २ कुशीर, केकड़ा । इसका शरीर वल्कलसदृश गड़ास्थिसे षाष्ठादिन रहता है । पाद दश होते हैं । ३ उनमें भगला जोड़ा जुड़ल बन जाता है । ४ टप, पायीना । ५ घट, घड़ा । ६ ककट, रागि । पुनर्वसुके अन्तिम चरण, पुष्या और अश्लेषा नक्षत्रपर यह रागि रहता है । ७ अग्नि, प्रागु । ८ तिल । ९ सौन्दर्य, खससुरती । १० ककट, कांटा । ११ ककटहृष, ककड़ासींगी । १२ ककट, किसी-किसीका पत्थर । १३ बदरी हृष, वेरका, पेड़, बिरौ । १४ विष्णुहृष, बिलका पेड़ । १५ गन्धक । १६ काक, कौवा । १७ ककटपौ, एषा विहिया । १८ मानभेद, एक तोस । १९ हृष-विशेष, एक पेड़ । २० कात्यायनशौतसूत्रके एक भाष्यकार । (दि०) २० शम्भुवर्ष, सफेद । २१ श्रेष्ठ, वड़ा । २२ उत्तम, अच्छा ।

कक—राष्ट्रकूटाधिपति गोविन्दराजके पुत्र। खोदित शिलालेखके अनुसार यही प्रथम कक है। इनके दो पुत्र थे—इन्द्रराज और छथ्यराज। ककके मरने पर राष्ट्रकूटाज्य दो भागमें बंट गया। ६८५ ई०को कक राज्य करते थे। पादट दो।

राष्ट्रकूट-वंशीय २५ कक—गुजरातराज श्य इन्द्रके पुत्र रहे। उनका अपर नाम सुवर्षवर्ष था। यह गुजरातमें राजत्व चलाते थे। २५ ध्रुवराज उनके पुत्र रहे। वरदा और अपर खानके तान्त्रशासन और शिलालेखमें उनका समय ७३४ और ७४८ तक निर्दिष्ट है। उक्त समय राष्ट्रकूटराज प्रबल पराक्रान्त थे। इस संगमें एषा श्य कक भी रहे। उनका अपर नाम शमोषवर्ष वा बल्लभनरेन्द्र था। पिता ४४ छथ्यराज रहे। समय ८७२-७३ ई० बताया जाता है।

कक-उपाध्याय—कात्यायनशौतसूत्र और पारस्कर-गृह्य-सूत्रके भाष्यकार। सायणाचार्यसे पहले यह विद्यमान रहे। सायणने अपने वेदभाष्यमें ककका मत उद्धृत किया है।

कक-खण्ड (सं० पु०) ककः खण्डः भूमिभागे यत्र, बहुव्री० । जनपदविशेष, एक सुक्त । (भारत, वन १५१-७८) ककचिभिंटिकां, ककचिभिंटी दो। ककचिभिंटी (सं० स्त्री०) ककचिभिंटी गुह्या चिभिंटी, मध्यपदलो० । १ चिभिंटी, छोटी ककड़ी । २ ककट्टी भेदः किसी किसकी ककड़ी । ककट (सं० पु०) कक-कटन् । १ हृषविशेष, एक पेड़ । इसका संस्कृत पर्याय—कक, सुद्रधात्री, सुद्रामनक और ककफल है। फल छोटे पावलेके बराबर होता है। यह रुच्य, कपाय, पतिदीपन, कफपित्तकर, घाही, चक्षुष्य, क्षुध और शीतल है। (रात्रिपण्ड) २ जलजन्तुविशेष, केकड़ा । इसका संस्कृत पर्याय—ककटक, कुशीर, कुशीरक, संदंशक, पद्म्यास और तिर्यकगामी है। इसकी संमलामें काकड़ा, मराठीमें दरकाका केकड़ा, तामिलमें कक-नादु, तेलगुमें ससुद्रपु, मलयमें कपित्थ, फारसीमें पञ्चपा, परवीमें खिरचिङ्ग, नाटिनमें कानधर (Cancer) और चंगरेजीमें क्राब (Crab) कहते हैं। युरोपीय प्राचिनत्वविदोंने ककट जातिकी डढ़ा-वर्षविशिष्ट दमपादी जीवचयी (Crustaceans of the order Decapoda) के मध्य माना है। इसके वषःस्यसनिःसत पाँच जोड़े प्रत्यक्ष होते हैं। इसीसे फारसीमें इसे 'पञ्चपा' पर्याय पञ्चपद-

पुन सुत, ब्रह्मीमें मलि, सिंहचीमें विचिमल, अरवीमें समन और फारचीमें शुषे सुफेद कहते हैं।

करुणमसौ एक सुगन्धितता है; भारत, ब्रह्मदेश और सिंहलमें सर्वत्र २००० फीट ऊँचे स्थानमें उत्पन्न होती है। दोनों गोलार्धके उष्णप्रधान देशमें इसे रसाया करते हैं।

इसका पुष्प प्रति सुगन्धि होता है। भारतवर्षमें करुणमसौका तेल अधिक व्यवहारमें आता है। पुष्पको चाटकर स्तनपर लगानेसे दुग्ध बहुत उत्तरता है। नासूरपर पत्तीका पुलटिस चढ़ता है। प्रञ्जाबमें यह पागलपन, भाँखकी कमजोरी और सुँहकी बीमारीपर चलती है।

पूर्विय देशमें सुगन्धके कारण इसके पुष्पका बहुत आदर है। अरबी, फारसी और संस्कृतके कवि प्रायः इसका उल्लेख किया करते हैं।

करुणविप्रलम्भ (सं० पु०) करुणयुक्तो विप्रलम्भः।

शृङ्गार-रसका एक भेद। नायक-नायिकाके मध्य एकके परलोक जाने पर पुनर्धार मिलनकी प्राप्तिसे जोवित व्यक्ति जिस प्रकार कष्टसे जीवन बिताता, वही करुणविप्रलम्भ कहता है। जैसे— कादम्बरीके पुण्डरीक और महाश्वेता-तृप्तान्तमें पुनर्धार पुण्डरीकके लाम विषयपर करुण रस ही पटकता है। किन्तु देववाणी स्तनपर पुण्डरीकसे मिलनकी आया शृङ्गाररसका उद्भूत है।

करुणवेदित्व (सं० स्त्री०) करुणं दयां वेत्ति जानानि, विद-णिनि भावे ल। दयावान्का धर्म, मेहरवान्का फल।

करुणवेदी (सं० त्रि०) करुणं दयां वेत्ति परदुःखं अनुभवति, विद-णिनि। दयावान्, मेहरवान्।

करुणा (सं० स्त्री०) करोति चित्तं परदुःखहरणाय, क-उ-नन्-टाप्। १ अर्थके दुःखविनाशकी इच्छा, दया, तर्पण। इसका संस्कृत पर्याय—कारुण्य, दया, कृपा, दया, अनुकम्पा, अनुक्रीय और शुक है। २ शोक, रक्त, अफसोस। ३ गङ्गाका एक नाम।

करुणा करुणा, आत्मा, कर्मवशात् कर्ताती। (काशीखण्ड १८०३)

४ पुनरुत्थ सुनिकी कनिष्ठा कन्या। ५ हृगलाच।

करुणाकर (सं० त्रि०) करुणाया भाकारः, इ-तत्। अत्यन्त दयालु, निहायत मेहरवान्। (पु०) २ पद्मनाभके पिता।

करुणाभक्त (सं० त्रि०) करुणः करुणारसः आत्मा यस्य, बहुव्री०। करुणरसविशिष्ट, रहमदिल, भक्त-सोससे भरा हुआ।

करुणाभा (सं० पु०) करुणो दयार्द्रं आत्मा यस्य, बहुव्री०। दयावान्, मेहरवान्।

करुणादृष्टि (सं० स्त्री०) १ दयाकी दृष्टि, मेहरवानी।

२ दृष्टि विशेष, एक नजर। यह नृत्यकी एक दृष्टि है। इसमें ऊपर पलने दवायो और पास गिरा नाककी नोकपर नजर लायी जाती है।

करुणानिदान (सं० त्रि०) करुणा निर्देयते निचिख्य दीयते घन, करुणा-नि-दा-ण्युट्। दयालु, मेहरवानी करनेवाला।

करुणानिधान, करुणानिदान देखो।

करुणानिधि (सं० त्रि०) करुणा-निधीयतेऽत्र, करुणा-नि-धा-किं। कर्मण्यधिकरणे च। १ शशरत्न। दयावान्, मेहरवान्।

करुणान्वित (सं० त्रि०) करुणाया भन्वितः, इ-तत्। करुणायुक्त, मेहरवान्।

करुणापर, करुणान्वित देखो।

करुणामय (सं० त्रि०) करुणा प्रासुर्येण अस्वस्य, करुणा-मयट्। दयामय, मेहरवान्।

करुणामसौ, करुणमसौ देखो।

करुणायुक्त (सं० त्रि०) करुणया युक्तः, इ-तत्। दयावान्, मेहरवान्।

करुणारस (सं० त्रि०) करुणः करुणरस आरभ्यो यस्य, बहुव्री०। १ करुणारससे आरम्भ कर लिखित, भक्तसोससे शुक कर लिखा हुआ। (पु०) २ करुणरस का आरम्भ, भक्तसोसका प्रागाण।

करुणार्द्र (सं० पु०) करुणाया आर्द्रः, इ-तत्। अत्यन्त दयालु; रहमदिल।

करुणाद्वेषित (सं० पु०) करुणाया आर्द्रः चित्तं यस्य, बहुव्री०। दयालुहृदय, रहमदिल।

करुणावान् (सं० त्रि०) शोकात्, रहमके, सायक।

विशिष्ट कहा है। वचदेयके प्रत्येक पाश्वर्क में धासेन्द्रिय वेष्टित है।

कॉर्कट पृथिवीके नाना स्थानमें रहता है। फिर यह कृषी प्रकारका है। समुद्रमें रहनेवाला कॉर्कट स्वभावतः बहुत बड़ा होता है। किन्तु जो नदीमें वास करता, वह सामुद्रिक कॉर्कटकी अपेक्षा सुदृढ़ पड़ता है। फिर जलाशयमें रहनेवाला नदीके कॉर्कटसे भी छोटा निकलता है। सकल प्रकार कॉर्कटका पृष्ठावरण देखनेमें समान नहीं लगता। देशभेद और जलवायुके अन्वयसे नाना स्थानपर कृषी प्रकारका कॉर्कट होता है। यह अण्डज जीव है। प्रथमावस्था पर माद्वचर्ममें कॉर्कट पतित सुदृढ़ डिम्बाकार रहता है। समय पानेसे डिम्ब फटनेपर यह निकल पड़ता है। उस अवस्थामें इसकी किसी प्रकारका कौड़ा समझनेसे भ्रम उत्पन्न होता है। यह डिम्बसे निकलते ही जलमें तैरने लगता है। उस समय इसकी अनेक विपद् भिलना पड़ता है। जलचर जीव अपना पादार समझ सव्योक्त कॉर्कट पकड़कर खा जाते हैं। यह जितना ही बढ़ता, उतना ही इसका रूप भी बदलता है। प्रथमावस्थासे पांच प्रकार रूप बदलनेपर प्रकृत कॉर्कट रूप देख पड़ता है।

यह समुद्रके पतल सलिल, जलके तट अथवा सलिल निकटस्थ पर्यंतके गर्तमें रहता है। फिर उस वनमें भी कॉर्कट गर्त बना वास करता, जहां समुद्र अथवा नदीका जल समय-समय पड़ता है। दो-एक जातिको छोड़ सकल प्रकार कॉर्कट पद द्वारा तैर नहीं सकता, वरं स्थलपर धूमा करता है।

इसके बराबर भांगड़ा ल और भुखण्ड जलचर जीव दूसरा नहीं होता। बहुत कॉर्कट एकत्र होते ही युद्ध चल पड़ता है। मत्स्यानु विजय पाता और अति-चौथ मारा जाता है। शीतकालकी यह गमीर जलमें रहता, फिर शीत लगनेपर तटके निकट या पड़ता है। पृथिवीका सकल प्रकार कॉर्कट मानवजातिके खाने लायक होता है। राजनिघण्टुके मतसे यह मत्स्यरूपपरिष्कारक, भ्रमसभानुकारी (भ्रमस्थानको

जोड़-सकनेवाला) और वायुपित्तनाशक है। कृष्यकॉर्कट अर्थात् काला-केकड़ा बलकारक, ईषत् उष्ण और वायुनाशक होता है।

३ कड़पत्नी, वरकरा, एक चिड़िया। ४ पद्ममूल, मसीड़, कंबलकी मोटी जड़। ५ तुम्बी, लीकी। ६ मेपादि हादय रागिमें चतुर्थ रागि। यह रागि पुनर्वसु नक्षत्रके श्रेय पादसे पुथा और अश्लेषा नक्षत्र तक रहता है। इसके देवता कुलीराजति है। उनका पृष्ठदेय उन्नत होता है। वह श्वेतवर्ण, कफप्रकृति, क्षिप्र, जलचर, विप्रवर्ण, उत्तर दिक्पाल, बहुकीचर और बहु सन्तानवासी है। कॉर्कट रागिमें जन्म लेनेसे मनुष्य कपटचित्त, मृदुभाषी, मन्वथाङ्गुल, प्रपवासी और अश्रुणी निकलता है। फिर जन्मकालीन चन्द्र इस रागिमें रहनेसे मानव मृत्युगीतादि बहु कला-मिश्र, निर्मलवृत्ति, ज्ञय, सुगन्धमिय, जलकेविमिय, धनवान्, बुद्धिमान् और दाता होता है। जो कॉर्कट जन्ममें जन्म ग्रहण करता, वह भोगी, सर्वजनमिय, मित्राशयानमीजी और भास्वोमिय रहता है।

७ सर्पविशेष, एक सर्प। ८ कलश, घड़ा। ९ कौलक, कील। १० कण्ठक, कांटा। ११ रोग-विशेष, एक बीमारी (Cancer)। यह अर्बुदवत्-रोग असाध्य होता है। १२ तुलादण्डका भासुन प्रान्त, तराजूकी डण्डीका टूट्टा सिरा। इसमें पल्लुकी रस्सी बंधती है। १३ मण्डलकी जीवा, दायरेका निष्क कुतर। १४ गारमलोहच, चिमरका पिट्ट। १५ विश्वहृष, वैसका पिट्ट। १६ कॉर्कटयज्ञ, ककड़ा-सींगी। १७ सड़धा। १८ नृत्यहस्तकविशेष, नाचकी एक क्रिया। इसमें हस्तद्वयी अङ्गुलि बाष्प एवं अन्त्यन्तर रूपसे मिला घटकायी जाती है। यह आलस्यके भावकी वस्तुता है।

कॉर्कटक (सं० पु०-ज्ञी०) कॉर्कट एव स्वार्थ कम्। १ कुलीर, केकड़ा। २ कॉर्कटरागि। ३ हृदयविशेष, एक पिट्ट। ४ काण्ड-भ्रम नामक अस्थिभङ्गविशेष, हड्डी टूटनेकी बीमारी। ५ विपयविशेष, एक जहर। यह त्रयोदशविध स्वावरकन्द विषमें अत्यन्तम् है। ६ कौलक, कीला। यह केकड़ेके पत्तों की भांति

पेटड़ा रहता है। १०. रज्जुमैद, किसी-किसीकी जस।
 १०. रज्जु, जस। ११. काठामसक, जहली-अविला।
 १०. अनियातचर विशेष, एक बुध्दार। यह मध्यहीम-
 प्रवृह वातादिसे उत्पन्न होता है। इससे व्यथा, वेद्यु,
 व्यथा, दाह, गौरव, अग्निमान्य प्रवृत्ति रोग जग जाते
 हैं। फिर अस्तदीह और वायुनिरोध भी हुआ करता
 है। (भारवकाम) ११ कर्कटशृङ्ग, ककड़ासींगी।
 कर्कटकरञ्ज (सं० पु०) करञ्जविशेष, एक करञ्जी।
 इसमें केकड़ेके पत्ते-कोसी एक कील लगी रहती है।
 कर्कटकास्य (सं० स्त्री०) कुलीरकास्य, केकड़ेकी
 खोम।
 कर्कटकी (सं० स्त्री०) १. कर्कटशृङ्गी, ककड़ासींगी।
 २. कर्कटस्त्री, मादाकेकड़ा।
 कर्कटक्रान्ति (सं० स्त्री०) गिरधरेखासे सादे तेरह
 कोस उत्तरस्थित अक्ष-रेखा, अक्ष-धरतान् (Tropic
 of cancer)।
 कर्कटचरण (सं० पु०) कुलीरकापाद, केकड़ेका पैर।
 कर्कटच्छुदा (सं० स्त्री०) १. पीतघोषा, पीले फलकी
 तरपी।
 कर्कटवमो (सं० स्त्री०) १. गुजविषकी, बड़ी पीपल।
 २. शुक्रगिम्बी, खजोहरा। ३. श्यामासर्ग, लटकीरा।
 कर्कटशृङ्गिका (सं० स्त्री०) कर्कटशृङ्ग, शृङ्गमस्या,
 कर्कटशृङ्ग, शार्पे, कन्टाप, इलम्। कर्कटशृङ्गी,
 ककड़ासींगी।
 कर्कटशृङ्गी (सं० स्त्री०) कर्कटशृङ्गमिव शृङ्गमय-
 भागी यस्या, बहुव्री। स्वनामख्यात कर्कटदंशा-
 कार पोषधि, ककड़ासींगी। इसे मैपासीमें रनीयघयी
 और पद्मासीमें चरचर कहते हैं। (Rhus succe-
 danea) यह वृक्ष कोयी १० फीट लम्बा होता है।
 हिमालयपर काश्मीरके सिक्किम और भूटानतक कर्कट-
 शृङ्गी मिलती है। यह उदिया-पहाड़ और जापान-
 में भी पायी जाती है। जापानमें इसकी डालकी
 खोदकर रस निकालते हैं। इस रससे रद्द (वार्निश)
 तैयार होता है। फिर फलको कुचन कर एक दूमेरे
 फलसे श्याम-उपशरमे और मोम मिकाफते हैं। इस
 मोमकी बनिपां बनती है। यमी कामो यह जापानो

मोमके नामसे विलायत भी निकलेको भेजा जाता है।
 इसका दुग्ध पति तीक्ष्ण होता है। फल एक बाभ्राफ
 बीज है। काश्मीरमें इसे खयरीगौर-प्रयोग करते हैं।
 मनुष्य कर्कटशृङ्गीका वस्त्रन खाता है। काठ
 श्वेत, प्रभासुक तथा न्युद-रचता, किन्तु अश्वत्थरमें
 कुछ कृष्ण निकलता है। इसका संस्कृत-पर्याय-
 कर्कटाख्या, मद्वाघोषा, शृङ्गी, कुलीरशृङ्गी, चक्राङ्गी,
 कुलिङ्गी, काश्मनागिनी, घोषा, सन्मूर्धना, चक्रा,
 शिखरी, कर्कटाङ्गा, कर्कटी, विषाणिका, कोलीरा,
 चन्द्राम्बदा और वासाङ्गा है। यह कषाय, एवं तिक्त-
 रस, घणवीर्य और कफ, वायु, चय, ज्वर, ज्वर वायु,
 श्याम, कास, शिखा, प्रवृत्ति तथा वमिनागक होती
 है। (रसनि०)
 कर्कटा (सं० स्त्री०) १. कर्कटशृङ्गी, ककड़ासींगी।
 २. खिखसा। यह एक लता है। इसमें कारवेक सहज
 सुद फल पाते हैं। कर्कटाके फलका शोक बनया
 जाता है।
 कर्कटाक्ष (सं० पु०) कर्कट-रव अक्षि-पत्थिमें दोष्य,
 बहुव्री०। कर्कटिकालता, ककड़ीकी श्वेत।
 कर्कटाख्य (सं० स्त्री०) कर्कटख्य श्राव्या एवं श्राव्या
 यस्या, बहुव्री०। १. कर्कटशृङ्गी, ककड़ासींगी। २. कर्क-
 टिका, ककड़ी।
 कर्कटाङ्ग (सं० स्त्री०) कर्कटख्य (पक्ष) शृङ्गमिव शृङ्ग-
 मयभागमस्या, कर्कटाङ्ग-टाप। अर्धेष्ठाया श्वो।
 कर्कटादिलेह (सं० पु०) लेहविशेष, एक चटनी।
 कर्कटशृङ्गे प्रतिविषा (अनीष), गुण्डो, धातकी
 (धायके फूल), विश्व, बालक (बाला), सुष्ठ तथा
 कोलमळा (धरकी गुठलीकी मींगी) बराबर बराबर
 फूटवोस और हानकर मधुके साथ बालकको चटानेमें
 खर प्रतीमार एवं प्रवृत्तीरोग दूर हो जाता है।
 (रसघण्ट)
 कर्कटास्य (सं० स्त्री०) कर्कटख्य अक्षि, शतम्।
 कुलीरकास्य, केकड़ेकी खोम।
 कर्कटाङ्ग (सं० पु०) कर्कटमाङ्गसे कर्पुते कष्टक-
 मयत्वात् कर्कट-भा-ङ्ग-क। विश्ववृक्ष, श्वेतका पेड़।

अट-खे-ड-टाप भक्तुसमा०। धनेच्छु पक्षी, धनेस
चिह्निया। इसका विल गठियेकी चकरीर दया है।

करैटु - (सं० पु०) के जले वायो वा रेटति, क-रैट-कु।
१ पक्षिविशेष, किरी जिह्वाका चारस। इसका संस्कृत
पर्याय—कर्कैटु, करटु और कर्कैराटुक है।

करैटुक, क-रैटु देखी।

करैडुक (सं० पु०) १ करैटु पक्षी, एक सारस।
२ ककट, केकड़ा।

करैणु (सं० पु०-स्त्री०) क-एणु। कश्चाभिणुः। ए० रा।
१ गज, हाथी। २, इस्तिनी, इथिनी। वैद्यक मतसे
इस्तिनीका दुग्ध किञ्चित् कषाययुक्त, मधुररस, तृप्य,
गुरु, तिग्म, स्थैर्यकर, शीतल, सघृणो हितकर और
बलकारक होता है। ३ कर्णिकार हृद्य, कनेरका
पेड़ा। ४ महीपक्षिविशेष, एक वृष्टी। ५ सचीर
गजाकार कन्दविशेष, एक दूधिया लला। इसकी
कन्दमें दूध बहुत होता है। आकार गजसे मिलता
है। इसमें इस्तिकर्णपलाय-जैसे दो पत्र निकलती
हैं। गुणमें यह सोमरसके तुल्य है। (इन्द्र)

करैणक (सं० स्त्री०) कर्णिकारका विषमय फल।

करैणुका (सं० स्त्री०) करैणु स्त्रायें कन्-टाप।
इस्तिनी, इथिनी।

करैणुपाल (सं० पु०) करैणु पालयति रक्षति,
करैणु-पाल-णिच्-सञ्। इस्तिनी-पालक, इथिनीका
सहायता।

करैणुभू (सं० पु०) करैणी करैणुविषये भवति इस्ति
शास्त्रप्रवर्तनाय प्रभवति, करैणु-भू-क्लिप्। १ पालकाय
नामक मुनि। यही इस्तिशास्त्रके प्रवर्तक थे।
(त्रि०) २, इस्तिनीसे उत्पन्न, इथिनीसे पेदा।

करैणुमती (सं० स्त्री०) मङ्गलकी पत्नी। यह चेदि-
राजकी कन्या थीं। (मातृ, आदि २५ पं०)

करैणुययं (सं० पु०) सुविमान् वा। वसवान् इस्ती-
बड़ा या ताकतवर हाथी।

करैणुसत (सं० पु०) १ पालकाय मुनि। २ गज-
शासक, हाथीका सहा।

करैणु (सं० पु०-स्त्री०) क-एणु। १ गज, हाथी।
२ इस्तिनी, इथिनी।

करैला (हिं० पु०) बला; वरियारा।

करैनर (सं० पु०) १ तुल्य नामका गन्ध द्रव्य,
गिलारस, लोवान। २ मृषिक, चूहा।

करैन्दुक (सं० पु०) करैणु रश्मिना इन्दुरिव कायति
शोभते, कर-इन्दु-कै-क। भृङ्गण, गन्धलण, चांदकी
तरह चमकनेवाली घास। गन्धलण देखी।

करैपाक (हिं० स्त्री०) कणनिम्ब, काखी या मोठी
मौम।

करैव (हिं० स्त्री०) वस्त्रविशेष, एक कपड़ा। यह
रियमसे बनती और काली तथा पतली रहती है।
अङ्गरेजोंमें इसे क्रेप (Crepe) कहते हैं।

करैमू (हिं० पु०) बलसु, एक घास। यह जलमें
उपमग्न होता है। जल पर करैमू फैल पडता है।
छण्डल पोला और पतला रहता है। छण्डलकी
गांठसे दो सुदीर्घ पत्र फूटते हैं। बालक छण्डलकी
बाय इपसे व्यवहारमें लाते हैं। करैमूका शाक भी
बनता है। यह अहिजेनेके विषका महीपक्ष है।
इसका रस निकालकर पिलानेसे भकीम उतर जाती
है। ककरो देखी।

करैर (हिं० वि०) कठोर, कड़ा।

करैरुवा (हिं० पु०) लताविशेष, एक वेल। इसमें
कण्टक रहते और पत्र निम्बकी पत्रसे मिलते हैं।
चैत्र-वैशाख मास यह फूलता है। इसके पटोलवत्
फलमें बीज अधिक होते हैं। करैरुवा प्रति कटु
संगता है। फलका शाक बनता है। लोगोंके विष्का-
सानुसार भार्गु नक्षत्रके प्रथम दिवस करैरुवा भक्षण
करनेसे वस्त्र पर्यन्त पिड़का नहीं होती। इसका पत्र
स्तस्थान पर प्रयोग किया जाता है।

करैल (हिं० पु०) १ सुभ्रविशेष। यह एक ठहत्
सुभ्र है। इसे उभय करसे बुझाते हैं। परिमाणमें
करैल ही सुभ्रसे कम नहीं पड़ता। पाददेय गोसा-
कार होनेसे इसे भूमिपर रख नहीं सकते।

२ करैल भांजनेकी कसरत।
करैलनी (हिं० स्त्री०) एक फवही। इससे लणकी
एकत्र कर टेर लगाया जाता है।

करैला (हिं० पु०) १ कारधेन, एक वेल। यह

ककईटाह्ना (सं० स्त्री०) ककईटाह्ना-टापु = ककईट्टह्नी, ककईटाह्नीगो।

ककईटि (सं० स्त्री०) ककईटि-प्रति, कर-कट-इन् शकन्त्यादित्वात् पञ्चोपः। (ककईटी, ककईडी।)

ककईटिका (सं० स्त्री०) ककईटी स्वायं कन्-टापु-इत्स्य। ककईटी, ककईडी।

ककईटिकेश (सं० स्त्री०) कामरूपका एक ग्राम। ग्राहके पीछे इस ग्रामका प्रदक्षिण करना पड़ता है।

विधाय ककईटिकेश ग्रामसाहस प्रदक्षिणाम्। (योगीश्वर)

ककईटिनी (सं० स्त्री०) ककईटयत् भाकारो इत्यस्याः, ककईट-इन्-डीप्। दासहरिद्रा, दासहल्दी।

ककईटी (सं० स्त्री०) ककईटयत् अटि गच्छति, ककईट-इन्-डीप्-शकन्त्यादित्वात् पञ्चोपः वा कर-कटति, कर-कट-इन्-डीप्। १ गाललीहृष, सेमरका पेड़। २ सपैविशेष, एक सांप। ३ देवदासी लता, एक वेल। ४ ककईट्टह्नी, ककईटाह्नीगो। ५ एवांर, फट। ६ घोटिका हृष, एक पेड़। ७ बदरी, बेरी। ८ कोमल, जौफल। ९ घट, गगरी। १० तरोयो। ११ फललताविशेष, ककई। (Cucumis Utilissimus) इसका संस्कृत पर्याय—कटुदही, कटोपनिका, पीनसा, मूलमला, वपुषा, इक्षिपर्णी, कोमशकाण्डा, मूलसा, बहुकान्दा, ककईटाच, शान्त्यु, चिभंटी, बालुकी, एवांर और वपुषो है।

इसे पश्चिमोत्तर प्रदेश, बंगाल और पञ्जाबमें बोते हैं। फल सीधा या झुका होता है। यह कच्ची पकौ खायी जाती है। कच्ची ककईडी छीलकर नमक और काली मिर्चके साथ खानेसे बहुत अच्छी लगती है। कोई कोई इसकी तरकारी भी बना-ढालते हैं। ककईटीका फल २३ फीट लम्बा होता है। नर्म ककईयोपर मुलायम मूरे रुये रहते हैं। पहले यह पीसी हरी लगती, किन्तु पकनेसे तारकी पड़ती है। ककईटी गोष फलतुका फल है। युक्तप्रदेशमें इससे समय यह हो नहीं सकती। इसके लिये भूमि, खजो, टीकी और सुकी रहना चाहिये। खाद ढालकर

खेतमें क्यारी बनाते और तीन चार बीज ३ फीटके अन्तर लगते हैं। दस-दिनमें खेत सींचना पड़ता है।

ककईकी बोगका तेल मीठा होता है। यह खाने और जलानेमें लगता है।

भावप्रकाशके मतसे ककईटी मधुर, शीतल, रुच, मसरोधक, गुरु; रुचिकर और पित्तनाशक है। पक ककईटी-व्याघ्रा, अग्नि-एवं पित्त बढ़ाती और मूलरोग घटाती है। तिक्त ककईटी रक्तपित्तनाशक और कफदोषकारक होती है। इसका पाक इस प्रकार बनता है—परिपुष्ट ककईटीको बखरल तथा बीज निकाल गोलाकर खण्ड-खण्ड काटते हैं। फिर तप्त तैलमें मसकर हत, दुग्ध और शर्कराके साथ यह पाया जाता है। अन्ततः सूक्ष्म पत्ताका चूर्ण सुवासित करनेको पड़ता है। यह पाक खानेमें प्रति स्यादुःख और स्वास्थके लिये लाभदायक है।

ककईटीबीज (सं० स्त्री०) ककईटीके फलका बीज, ककईडीका बीजा। इसे ठण्डारमें ढालते हैं।

ककईट्ट (सं० पुं०) ककईट-कु। ककईटपची, एक बिड़िया।

ककईड (सं० पुं०) खटिका, खडिया मटो।

ककईन्सु—चट्टलस्य ग्रामविशेष।

ककईन्सु (सं० पुं० स्त्री०) ककई-कण्टक दधाति, ककई-धा-कु-न्सु। सुद्वन्दरहृष, भड़वेरीका पेड़। (Zizyphus jujuba.) यह समग्र भारत, सिंहल, मसका, ब्रह्मदेश, अफगानिस्तान, पफुरीका, मसग्र-होपुपुद्ध, चीन और पट्टलियामें होता है। भारतमें इसका खादि उत्पत्तिस्याम् है। यहाँसे ककईन्सु अन्य देशोंमें फैला है। कहते—पहले साहुसन्त बदरिकायनमें इसीका फल खा लीयनयाता निर्वाह करते थे।

इसका बखरल और फल चमड़ा रंगनेमें लगता है। ब्रह्मदेशमें ककईन्सुके फलसे श्याम मो रंगा जाता है।

दरिद्र फलको अधिक खाया करते हैं। कभी कभी फलको कूट पोष रोटी भी बना लेते हैं। पत्र पशुका खाद्य है। तसरके कोड़े भी इसके पत्रपर पलते हैं।

भावप्रकाशके मतसे यह अम्ल, कषाय तथा रूपा

सता सुद्ध होती है। इसके पत्र गोकदार और पांच भागमें विभक्त रहते हैं। फल लम्बा तथा गुन्नी-जैसा आता और अपनी त्वक् पर छोटा-बड़ा दाना आता है। करैलीकी तरकारी बहुत अच्छी होती है। यह कच्चे आमका, कुचला और मसाला भर तेलमें पकाया जाता है। भली भाँति भूँजा करैला कई दिन तक नहीं बिगड़ता। इसका छोलन भी तेलमें तलकर खाते हैं। करैलीका अचार बाजारमें बिका करता है। इसे पीप और यर्षा ऋतुमें बोते हैं। पीप ऋतुका करैला फाल्गुन मास वारियोंमें लगाया जाता है। इसकी सता भूमि पर फेल पड़ती और तीस-चार मास चलती है। फल पोला निकलता और कालीजी बनानेमें लगता है। यर्षा ऋतुका करैला किसी पेड़ या सक्कीके टाट पर चढ़ाया जाता है। यह कई वर्ष तक फूला फला करता है। फल सुष्प एवं भरा रहता है। जङ्गली करैलीका नाम करैली है।

इसका अङ्गरेजी वैज्ञानिक नाम मोमोर्डिका चार-नगिया (Momordica Charantia) है। इसे बंग-लामें करला, उड़ियामें करेन, थासामीमें ककरल, पञ्जाबीमें करिला, सिन्धीमें करैली, मराठीमें कारला, मारवाड़ीमें कारली, गुजरातीमें करेलु, तामिलमें पावकाचेदि, तेलगुमें तेलकाकर, कनाड़ीमें कांग-पलकाह, मलयमें कपक, ब्रह्मीमें केडिनगायिन, सिन्धुलीमें करविण और अरबीमें क्वासाउबरी कहते हैं। यह समग्र भारतमें लगाया और मलय, चीन तथा अफ्रीकामें भी पाया जाता है। करैला नामा प्रकारका होता है। इसे फरवरी-मार्च मास उत्तम भूमिमें बोना चाहिये। वारियों और छत्रमें बोये जानेवाले बीजोंके बीच दो-दो फीटका अन्तर रहता है। पहले इसे प्रति सप्ताह दो बार सींचते हैं। सता फेल पड़ने पर सप्ताहमें एक ही बार पानी देना पड़ता है। १८००-०८ ई०के दुर्भिक्षके समय खान्दुंग निचेके लोगोंने करैलीकी पत्तियाँ तथा बीजन धारण किया था।

२ बारकी गुटिका। यह दीर्घ रहता और मासामें

बड़ी गुटिका या कोड़ेदार सुद्राके मध्य पड़ता है। ३ अग्निशोड़ाविशेष, एक शोतश्यात्री। चारैरेक्षेका करैली (हिं० खी०) सुद्रा कारवेक, छोटा करैला। इसका फल प्रतिसुद्रा और कट होता है। करैवर (सं० पु०) कीर्तित्त्वियते पापाणः कविभिरिति यावत् करस्तस्मिन् प्रियते उत्पद्यते, करैव-प्रच। सिद्धक, लोवान्।

करैत (हिं० पु०) सर्पविशेष, एक सांप। यह काला और जङ्गरीला होता है। करैल (हिं० खी०) १ अशुक्राविशेष, कचिला मट्टी। यह काली होती है। पीपः ऋतुमें तड़गाका फल छलने पर करैल निकलती है। यह अपनी कठोरताके लिये प्रसिद्ध है। इसकी दीवार बहुत मजबूत बंती है। पानीमें धोलनेसे करैल ससलसानेसे लगती है। यह गिर मलनेके भी काम आती है। कुन्दार इसे चाक पर चढ़ा खिलौने घेरेंह तैयार करते हैं। २ भूमिविशेष, एक जमीन्। इसकी मिट्टी काली और चिकनी रहती है। यह भूमि मालव देशमें अधिक देखीपड़ती है। (पु०) ३ करौर, वासका अंशुवा।

करैला (हिं० पु०) कारवेक, करैला। करैली (हिं० खी०) सुद्रा कारवेक, छोटा करैला। करैली (हिं० खी०) कचिला मट्टी। करोट (सं० पु०) के मस्तके रोटी दीप्यते, क-रुट-प्रच। गिरोसिय, मत्येकी डब्ली, खोपड़ा। (Cranium) करोट (हिं० खी०) करवट, दाहने या बायें हाथके बल नेटनेकी डालत।

करोटक (सं० पु०) सर्पविशेष, एक सांप। करोटन (सं० पु० = Croton) हृत्त जातिविशेष, पीदकी एक क्रिष्ण। यह गुल्मवत् (भाइदार) होता है। हृत्त आदर और रस कटु दुग्धवत् निकलता है। किसी किसी करोटनमें कण्टक भी रहते हैं। यह हृत्त पत्रके प्रकारके देखे जाते हैं। प्रत्येक करोटनमें मज्जरी आती है। फलमें गोल रहते हैं। परष्ठादि इमें श्रेणीके हृत्त है। करोटनका तेल और अन्न बीषधमें व्यवहृत होता है।

मधुररस, सिन्धु, तिक्त, गुरु और वातपित्तनाशक है।
युक्त ककान्त्यु मेदक, चम्पिकारक, सप्त और लघ्या,
कान्ति तथा रक्तनाशक होता है।

कहीं कहीं ककान्त्यु शब्द क्लीबलिङ्ग भी कहा गया
है। २ ककान्त्युफल, भड़बेरी।

ककान्त्युक (सं० स्त्री०) बदरीफल, छोटा बेर। यह
मधुर, सिन्धु, गुरु और पित्तानिल तथा वातपित्तहर
होता है। (मदनमाल)

ककान्त्युकी (सं० स्त्री०) १ बदरीमेद, किसी किष्ककी
बेरी। २ सुद्रबदरलघु, भड़बेरी।

ककान्त्युकुण्ड (सं० पु०) ककान्त्युणां पाकः, ककान्त्यु-
कुण्ड। ककान्त्युके पाकका समय, बेर पकनेका
समय।

ककान्त्युमती (सं० स्त्री०) ककान्त्युरन्ध्रयत् भूमौ रति
शेषः, ककान्त्यु-मत्सृण्-ङीप्। ककान्त्युयुक्त भूमि, भड़-
बेरीकी जमीन।

ककान्त्युरोहित (सं० स्त्री०) ककान्त्युफलसदृश रक्त-
वर्ण, भड़बेरीके बेरकी तरह सुर्पासुर्पा।

ककान्त्यु (सं० पु० स्त्री०) ककान्त्युका दधाति, ककान्त्यु-
धा-कु ततो निपातानात् सिद्धम्। ककान्त्युलघु, भड़-
बेरीका पेट। ककान्त्यु २०।

ककान्त्युफल (सं० स्त्री०) ककान्त्यु ककान्त्यु फलम्,
१-तत्। १ ककान्त्युफल, ककीड़ा। २ सुद्र भाम-
नकी, छाटा पावना।

ककान्त्युर (सं० पु० स्त्री०) ककान्त्यु-रा-क। १ चूर्ण चण्ड,
चुनेका ककान्त्यु। २ कहर, कांकर। ३ द्रव्य, पायीना।
४ संप्रविशिय, एक साप। (मातृ शरणा) ५ सुहर,
च्योड़ा। ६ चलि, हड्डी। ७ तरुण पत्र, नया
जानवर। ८ चर्मचण्ड विशेष, चर्मकेका तसमा। (त्रि०)

ककान्त्यु-परन्। ९ कठोर, कड़ा। १० हड़, मजबूत।

ककान्त्युरट (सं० पु०) पक्षिविग्रेय, एक चिड़िया।

ककान्त्युराच (सं० त्रि०) ककान्त्यु ककान्त्यु पक्षि यश्च,
बहुसो०। १ ककान्त्यु पक्षि, ककी पापवासा। (पु०)
२ पक्ष्मपक्षी, ममोला, भांषि, घोषम।

ककान्त्युराट्ट (सं० पु०) ककान्त्युलघु यद् यश्च, बहुसो०।
कासघण्ट, सुधान, घोषम।

ककान्त्युराट्ट (सं० पु०) ककान्त्यु हासं रटति पक्षागयति,
ककान्त्यु-रट-कु कुञ्ज वा। १ कटाच, तिरछी मजूर।
२ ककान्त्युरट्ट पक्षी, एक चिड़िया।

ककान्त्युराट्टक (सं० पु०) ककान्त्यु ककान्त्यु रटति रीति,
ककान्त्यु-रट-ककान्त्यु स्त्रायं कन्। १ ककान्त्युरट्ट पक्षी, एक
चिड़िया। इसकी बोली बहुत कड़ी होती है।
२ कटाच, तिरछी मजूर।

ककान्त्युरान्त्यक, ककान्त्युरान्त्यु २०।

ककान्त्युरान्त्यक (सं० पु०) ककान्त्युः कठोर पन्थः स्त्रायं-
कन्, कर्मधा०। पन्थकृप, पंथवा कृपा। इसका
सुख लघादिसे भाव्यादित हो द्विप जाता है।

ककान्त्युरात्त (सं० पु०) ककान्त्युः सन् पक्षति प्राप्ति,
ककान्त्यु-पक्ष-पक्ष्। चूर्णकुम्भ, लुण्ठ, कडा, घृगर।

ककान्त्युराट्टि (सं० स्त्री०) वायुविशेष, किसी किष्कका
याजा।

ककान्त्युरिका (सं० स्त्री०) चतुर्मुखं, पादकी सुलभा
या किरकिराहट। ककान्त्यु २०।

ककान्त्युरी (सं० स्त्री०) ककान्त्यु हासयत् निर्मलं सलिलं
रति, ककान्त्यु-रा-क गौरादित्वात् ङीप्। १ सनास
जलपात्र, गड़वा। इसका संस्कृत पर्याय—साधु,
गलनिका, चतुर् और पाद है। २ तण्डुलघानपात्र,
चावल घुनेका बरतन। ३ गलनिका, भगभर।
४ भाण्डविशेष, एक बरतन। ५ द्रव्य, पायीना।

(वे०) ८ वायुविशेष, एक याजा।

ककान्त्युरीका (सं० स्त्री०) ककान्त्युरी स्त्रायं कन् न कृष्णः।
सुद्र सनास जलपात्र, छोटा गड़वा।

ककान्त्युरिट (सं० स्त्री०) ककान्त्यु ककान्त्यु रटते यत्न,
ककान्त्यु-रिट-कन्। महरयत् सङ्घुचित हस्त, पक्षीकी
तरह सिकोड़ा हुआ हाथ। इसकी यह स्थिति
किसीका कष्ट पकड़ने समय होती है।

ककान्त्युरिट्ट (सं० पु०) ककान्त्यु ककान्त्यु रटते भाष्यते
रीति वा, स्रग्यादित्वात् साधुः। ककान्त्युरिट्ट पक्षी, कक-
करा, ककान्त्युरिया। यह एक प्रकारका सारस है।

ककान्त्यु (सं० पु०) ककान्त्यु ककान्त्यु रटते भाष्यते,
१ ककान्त्युलघु, ककान्त्युकेका पेट। २ कासघण्ट,
ककान्त्यु २०। ३ पटील, परबल। ४ इत्तुमेद, एक जल।

करोटिः (सं० स्त्री०) क-रुट-रन् । मिरोस्त्रि, खोपड़ी ।
 कंठध देखी ।
 करोटिका, करोटि देखी ।
 करोटी (सं० स्त्री०) करोट-गौरादित्वात् ङीप् ।
 मिरोस्त्रि, खोपड़ी ।
 करोड़ (हिं० वि०) एक कोटी, एक शत सप्त, सौ
 लाख, १००००००० ।
 करोड़खुंठ (हिं० वि०) मिथ्यावादो, भ्रष्टा, डींगिया,
 डकोलशब्द ।
 करोड़पती (हिं० वि०) कोटि कोटि रूपयेका धनीध,
 करोड़ों रुपये रखनेवाला ।
 करोड़ी (हिं० पुं०) टट्टाधोग, खजाची, रोकड़िया ।
 करोत (हिं० पुं०) करपत्र, चारा ।
 करोत्कर (सं० पुं०) करणां उत्करः समूहः । १ कर-
 समूह, किरणोंका डेर । २ गुरुकर, भारी मंडसूल ।
 करोत्पल (सं० स्त्री०) करपट्टन, कंबल-जेसा हाथ ।
 करोटक (सं० स्त्री०) चंदाघृत जल, हाथमें रखा या
 पड़ा हुआ पानी ।
 करोदना, करीना देखी ।
 करोडेजन (सं० पुं०) कृष्णसर्प, काला सरसों ।
 करोध (हिं०) कौष देखी ।
 करोना (हिं० क्रि०) किधी पैनी चीजसे रगड़ना,
 खुरचना ।
 करोनी (हिं० स्त्री०) १ खुरचन, करोचन । एक
 दुग्ध वा दधिक जो अंश पात्रमें चिपका रहनेसे खुर-
 चकर उतारा जाता, वही करोनी कहता है । प्रवा-
 दानुसार करोनी या करोचन खानसे बालकोंकी बुद्धि
 मन्द पड़ जाती है । इसीसे स्त्रियां प्रायः अपने
 बालकोंको करोचन नहीं छिंलतीं । २ यन्त्रविशेष,
 एक औजार । यह पिचल वा चौड़े बनती और
 पक, दुग्ध वा दधिक पात्रमें चिपके हुये अंशको
 खुरचनेमें बसती है ।
 करोर (हिं० वि०) कोटि, करोड़ ।
 करोला (हिं० पुं०) १ पात्रविशेष, गड़वा ।
 २ भक्तक, रीठ ।
 करौला (हिं० वि०) कृष्ण, श्याम, सांघला ।

करौजी (हिं० स्त्री०) १ कृष्णजीरक, कोला जीरा ।
 करौट (हिं० स्त्री०) करकट, दाहने या बायें हाथके
 बल चोटनेकी जगह । बायें करौट चोटनेसे खाना
 अन्न चंजुम होता है ।
 करौदा (हिं० पुं०) १ करमर्दघृष्ट, एक कंटोला
 भाड़ । इसके पत्र सुदूर रहते और निम्बककी पंखसे
 मिलते हैं । पुष्य ग्रहिकाकी भंति श्वेत एवं सुगन्धि
 स्रगते और देखनेमें बहुत सुन्दर जंचते हैं । वर्षा
 ऋतुमें फल पाते और अन्न होनेसे चटनी तथा अचार
 बनानेके काममें लाये जाते । करौदेसे सांघा निक-
 लते और फलको रङ्गमें छासते हैं । शाखांकीलनेसे
 सांघा प्राप्त होता है । दाचिपाल्यमें करौदेके काष्ठसे
 केशमार्जनी और खजाका बनायी जाती है । कर्ष देखी ।
 २ गुल्मविशेष, एक भाड़ । यह कण्टकाकीर्ण
 रहता और वनमें उपजता है । फल सुदूर एवं मिष्ट
 होता है । ३ कर्षरोगविशेष, कानकी एक बीमारी ।
 कर्षके निकट जो गिलटी निकल पाती, वही करौदा
 कहलाती है ।
 करौदिया (हिं० वि०) कृष्ण-रत्नवर्णविशिष्ट, करौ-
 देका रङ्ग रखनेवाला (पुं०) २ वर्षविशेष, एक
 रङ्ग । यह वर्षे रत्न रहता, किन्तु उसमें नीलताका
 कुछ अंश भ्रमकता है । यह भ्रम्यासी रङ्गको तरंग
 एक पावे गङ्गावके फूल, भाष छटाक भ्रमचूर और
 आठ माये नील मिलानेसे तैयार होता है ।
 करौत (हिं० पुं०) १ करपत्र, चारा । (स्त्री०)
 २ चट्टी औरत ।
 करीता (हिं० पुं०) १ करौत, चारा । २ करैस,
 कचिला मट्टी । ३ करावा, बड़ी शीमी । (स्त्री०)
 ४ चट्टी औरत ।
 करीती (हिं० स्त्री०) १ सुदूर करपत्र, चारा ।
 २ करावा, संभोली शीमी । ३ शीमीकी मट्टी ।
 करीना (हिं० पुं०) यन्त्रविशेष, एक औजार । यह
 एक हेली या कसम है । कसेरे रुपये पात्रों पर
 कांश्कार्य बनाते हैं ।
 करौला (हिं० पुं०) हाडिवाला चादनी, जो शंख
 मिंकारको जला मचा उठाता हो ।

५ गुडत्वकं, दालचीनी । ६ खड्ग, तसवार । (त्रि०)
७ भ्रमरवृष, खरखुरा । ८ निदिय, बेरहम । ९ क्रूर,
पाजी । १० दुर्वेध, समभर्तुं सुत्रिकलसे भानेवाला,
कड़ा । ११ कृपण, कच्छुस । १२ साक्षी, द्विषत-
वर । १३ कठोर, सख्त ।

कर्कशब्द (सं० पु०) कर्कशः क्वदः पत्रमस्य,
बहुव्री० । १ पटोल, परवल । २ पाटलवृक्ष, सुलतान
चम्पा । ३ शाखोट वृक्ष, सड़ीरिका पेड़ । ४ शाकवृक्ष,
सागौनका पेड़ । ५ कृष्णकुभाण्ड, काला कुम्हड़ा ।

कर्कशब्दा (सं० स्त्री०) कर्कशः भ्रमरवृषः क्वदो
यस्याः, कर्कशब्द-टाप् । १ घोषा, तरौयी । २ दग्धा-
वृक्ष, बंदास । कौटिल्यमें इसे कश्ची कहते हैं ।

कर्कशता (स्त्री०) कर्कशत्व दीवा ।

कर्कशत्व (सं० स्त्री०) कर्कशस्य भावः, कर्कशत्व ।

कर्कशता, कड़ापन, सख्ती । कर्कश दीवा ।

कर्कशदल (सं० पु०) कर्कशं दलं पत्रमस्य, बहुव्री० ।
१ पटोल, परवल । २ सड़ीरिका पेड़ ।

कर्कशदला (सं० स्त्री०) कर्कशं दलं यस्याः, कर्कश-
दल-टाप् । १ दग्धिका, बंदास । २ कोशातकी, तरौयी ।

कर्कशवाक्य (सं० स्त्री०) कर्कशं तत् वाक्यं चेति,
कर्मधा० । १ निष्ठुर वचन, कड़ी बात । २ नौरस
वाक्य, कृष्ण वीज ।

कर्कशा (सं० स्त्री०) कर्कश-टाप् । १ व्यभिचारिणी
स्त्री, छिनाल शौरत । २ वृषिकाली वृक्ष, विषुवा ।
३ ङ्खलमेपयङ्गी, छोटी निदासींगी । ४ वनवदर,
भडुवैरी ।

कर्कशिका (सं० स्त्री०) कर्कश-कन्-टाप् पत इत्वम् ।
वनकोशी, भडुवैरी ।

कर्कशार (सं० स्त्री०) कर्कशः कर्कशः सारो यत्र,
बहुव्री० । दधिग्रहण, दहीका सचा ।

कर्कशक (सं० पु०) कर्कशिका, ककड़ी ।

कर्कश (सं० पु०) कर्कशस्यवत् शीतलं षट्छति
प्राप्नोति, कर्कश-उष्ण । १ कुष्माण्डमेद, कुम्हड़ा,
पेठा । भावप्रकाशमें मतसे यह शीतल, गुरु, मल-
बद्धकारक, सारयुक्त और कफ तथा वायुनाशक है ।
२ कश्चित्कलता, कलीदा, तरवूज । ३ अतिदुर्गुष्णक,

बहुत छोटा कुम्हड़ा, कुम्हड़ी । (स्त्री०) ४ कुष्माण्डो-
लता, कुम्हड़ेकी वेल ।

कर्कशक (सं० पु०) कर्कशं हार्सं द्वितकारित्वात्
षट्छति जनयति, कर्कश-उष्ण । १ कालिन्दवृक्ष,
कर्कोदिका पेड़ । सुश्रुतकी मतसे इसका फल गुरु,
विष्टभौ, शीतल, खादु, कफकारक, मलभूय परि-
ष्कारक, सारयुक्त और मधुररस होता है । २ कुष्माण्ड,
कुम्हड़ा ।

कर्कश (सं० स्त्री०) कुष्माण्डोलता, कुम्हड़ेकी वेल ।

कर्क (सं० पु०) कर्क-इत् । १ कर्कट राशि, वृज-
सरतान् । २ शौरङ्गावादका पूर्व नाम ।

कर्की (सं० स्त्री०) कर्क-षच्-ङीप् । १ कर्कटो,
ककड़ी । (पु०) कर्क-इत् । २ कर्कट-राशि, वृज-
सरतान् ।

कर्कामस्य (सं० पु०) नगरविशेष, एक पुरातन शहर ।

कर्कतन (सं० पु०-स्त्री०) कर्कशस्यो तनोति,
कर्कतन-षच् अलुक समा० । रत्नविशेष, एक जवा-
हर । इसे हिन्दीमें तथा फारसीमें जसुरद, हिन्दीमें
टारगिष, श्रीकमें बेरलस, लाटिनमें स्मारागडास
(Smaragdus), पीलखडोमें जमरगद, रूसीमें इसमरद,
ओलन्दाजमें स्मरगद वा एसमरद, दिनेमार एषं लिस्समें
सगरद, रोमकमें समरलदो, पोर्तुगोळमें एसमरद,
बाइबेल तथा फारसीमें बेरिल (Beryl) और फ्रेंच-
रैजीमें बेरिल वा क्रिसोबेरिल (Beryl or Chryso-
beryl) कहते हैं ।

गरुडपुराणमें लिखा है—यायुने छटचिचत दैत्यपतिके
सकल नख चटा चतुर्दिक फेकने पर कर्कतन नामक
पुच्छम रज प्रथिवीसे उत्पन्न हुआ । सिन्धु, विशुव,
संवेत समवर्ण, परिमाणमें गुरु, विचित्र और प्रांस-
व्रणादि दोषवर्जित कर्कतन अति उत्कृष्ट होता है ।
रत्नकी भांति लोहित, चन्द्री तरङ्ग पाण्डुर, मधुकी
भांति हैयत् पीत, ताम्बकी तरङ्ग रस्य रत्न पीत, और
चनिनी भांति उज्वल, नील तथा श्वेत कर्कतन
पापनाशक है । संस्कारकके दोषसे यह अधिक
ज्योतिर्मय नहीं होता । कर्कतन स्वर्णपर जड़ कण्ड
का हस्तमें पहननेसे अति सुन्दर लगता है । इसे

करीली (हिं० स्त्री०) खड्ग, तलवार। यह सीधी रहती और मोंकनेमें चलती है।
 करीली—१ राजपूतानका एक देशीय राज्य। यह अक्षां २६° ३' एवं २६° ४८' उ० और देशां ७६° १५' तथा ७७° २६' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां भरतपुर और करीली एजिप्टोका तत्वावधान चलता है। इसके उत्तर एवं उत्तरपूर्व भरतपुर तथा धवसपुर, दक्षिणपश्चिम जयपुर और दक्षिण-पूर्व चम्बल नदी है। चम्बल नदी ही इसे खालियरसे प्रथक करती है। भूमिका परिमाण १२०८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १५ लाख है।

करीली राज्य उच्च, निम्न और पर्वतमय है। उत्तर और गिरिमासा सीमाके प्राचीररूपसे मस्तक उठाने खड़ी है। गिरिका शृङ्गः उच्चतामें १४०० फीटसे अधिक नहीं। यहां चम्बल नदी ही प्रधान है। इस नदीसे पांच शाखा निकल करीलीमें बही हैं। नाम पखनद है। पखनद उत्तरमुखी हा वाणगहासे मिल गया है। करीली नगरके दक्षिण-पश्चिम कालिन्जर और जिरौसे नामसे दो क्षुद्र नदी बहती हैं। इन दोनों नदीमें वर्षाकाल मित्त अपर समय अति-सामान्य जल रहता है। यहां पर्वतोंके कुण्डोंका जल उष्णप्रधान और अस्वास्थ्यकर है।

पर्वतमें प्रधानतः दो प्रकारका प्रस्तर है—एक विन्ध्य और अपर मणिप्रस्तर। जहां मणिप्रस्तर रहता, उसीकी चारां और अधिक परिमाणसे विन्ध्य भी देख पड़ता है। स्थानीय धूनेका पत्थर नीलाम, कपिल अथवा हरिहरणविशिष्ट होता है। बंदिद्या विहौरी पत्थर भी पाया जाता है। ताम्रमहदका प्रायः अनेकान्य करीलीके पत्थरसे ही बना है। यहांका एक पत्थर अनेक स्थानमें धूनेके लिये फूँका जाता है। करीलीके अधिकांश ग्राम प्रस्तरनिर्मित हैं। यहांसे उत्तरपूर्व पर्वतपर सौह-खनि निकली है।

शेषतः—चम्बल नदीके निकट धनमें सिद्ध, भङ्गक, हरिण, सांभर, और नीलगाय बहुत हैं। नगरके पास शमक, उदुहाल, चक्रयाक, कुण्ड, एवं जलामपादिमें वक, हंस, कारपुंड्य प्रभृति नामाः

प्रकार पक्षी देख पड़ते हैं। मत्स्यादि भी बहुत हैं। करीलीके पयिमांगमें विस्तार सप, कुम्भीर प्रभृति सरीसृप रहते हैं।

धर्म—करीलीको उच्च गिरिमाजामें बड़ा कोयी-हथ नहीं। चम्बलनदीके ऊर्ध्वभागमें धातकी, पलाय, खदिर, कार्पास, शाल, गर्जन, और मिश्रहथ होता है। यहां ऊपिमें यव, गेहूं, चना, तम्बाकू, धान्य, ज्वार, बाजरा, इत्तु और सनकी उत्पत्ति है। स्थानीय जलाशय, कुण्ड और चम्बल नदीके तरङ्गसे कृषिकार्य चलता है।

वाणिज्य—यहां वस्त्र, लवण, इत्तु, तुला, महुष एवं हथ मंगाया और धान्य, कार्पास तथा काग बाहर भेजा जाता है।

जनसाध—स्थानीय जलवायु अधिक मन्द नहीं। ज्वर, अतिसार और वातरोग लग जाता है। किन्तु दूसरी बीमारी इस राज्यमें नहीं होती।

इतिहास—मुकजीकी कारिकाके अनुसार करीलीके प्रथम राजा धर्मपाल थे। नीचे उक्त कारिका दी जाती है—

मुकजीकी कारिका । प्रधानमंडका विवरण । मलय ।

चर्मपाप			
सिंहपाप			
जगपाप			
नरपापद्वय			
संशामपाप			
कुण्डपाप			
शोचपाप			
शोचपाप			
विरामपाप			
कोटपाप			
विश्वपाप	विश्वपाप	१०००	१००
निडनपाप	निडनपाप	१०००	१००
चर्मपाप	चर्मपाप	१०००	१००
कुमार (कुंभर) पाप	चर्मपाप	११००	११०
चर्मपाप	कुंभरपाप	११००	११०
हरिपाप	चर्मपाप	११००	११०
शोचपाप	हरिपाप	११००	११०
चर्मपाप	शोचपाप	११००	११०

चायुः, वंश तथा सुख बढ़ता और रोग एवं क्विदीय कूट पड़ता है। निर्दीय कर्कोतन पहननेवाला सर्वत्र पूजित, पनिक धनयासी, बहुवाच्य, दीप्तिमान् और नित्यव्रत रहता है। यह मयि जितना उज्ज्वल तथा शुद्ध मिलता, उतना ही मूल्य भी अधिक लगता है। (७१ प०)

कर्कोतन भारतवर्ष, सिंङ्गल, उत्तर-अमेरिका, मिसर, रूसके यूराल पर्वतस्थ तलीवाजगदीगर्भ, ब्रेजिल, मोरबिया और पेगुमें होता है।

दक्षिण भारतमें कोयम्बतुरमें २० कोस ईशान कोण पर कर्कोतनकी खानि है। यह माना स्थानपर भर-फल, इन्द्रनील प्रभृतिके साथ देख पड़ता है।

यह हरित्, मौल प्रभृति मानावर्षविशिट होता है। उत्कृष्ट कर्कोतन भस्व हरित् वा दूर्वा खणके वर्ष सद्ग रहता है। इसमें औषज्जल्य भी अधिक देख पड़ता है। चापेक्षिक शुद्ध ३०६ ३०८ पर्यन्त लगता है। इससे स्फटिक काटते हैं। फिर कर्कोतनकी काटने छाटनेमें इन्द्रनील और माणिक्य प्राप्यक है। इसकी रगइनेसे वैद्युतिक ज्योतिः निकलता, जो शुष्के अनुसार कयी घण्टे रह सकता है। पथेखच्छ कर्कोतन विद्यासाची (समुनिया) नामसे बाजारमें विकता है।

अति उज्ज्वल स्वच्छ कर्कोतनका मूल्य अधिक है। यह १००० से ३००० रु० तक पाता है।

कर्कोतर, कर्कोतन शब्दो।

कर्कोधुकी (सं० स्त्री०) भुवदरी, भद्रवीर।

कर्कोट (सं० पु०) कर्क-घोट। नागराजविशेष, सायोंका एक राजा। "बननी राक्षिः पत्नी महावर्षा इति तद्वचः। कर्कोटः कृतिवः यद् इत्येते नामवाचकाः ॥" (विद्यापदीय)

कर्कोटक (सं० पु०) कर्को कण्टकमयत्वान्। कठोर अटति प्राप्नोति तद्गत् कायति प्रकाशने, कर्को-पट्ट-पञ्च-कन् इषोदरादित्वात् शोकारादेशः। १ विष्णु-हस्त, वैशका वेङ्ग। कद्रुपुत्र नागराज। ३ इष्ट, जय। ४ फलसाकलताविशेष, ककोड़ा, खेजमा। इसका फल स्थावर विषये प्रसंगत है। कर्कोत शब्दो।

५ महाभारत तथा पुराणोक्त जलपदविशेष। (कर्मवैद्य)

३०८, महाभा० श्लो०, इत्युच्यते (३०९)। इसका वर्तमान नाम कारा है। यह जयपुर राज्यमें पड़ता है।

कर्कोटकविषः (सं० स्त्री०) कर्कोटकस्थ विष, कको-ड़ेका जड़र।

कर्कोटका, कर्कोटकी शब्दो।

कर्कोटकी (सं० स्त्री०) कर्कोटक गोरादित्वात् श्लो०।

१ पीतघोषा, वनतरोषी। इसका संश्लत पर्याय—कटुफला, महाजालिनी, धामार्गव और राजकीयातकी है। धामार्गव शब्दो। २ कीपातकी, तरोषी। ३ फल-शाकविशेष, मौल कुल्हाड़ा। यह मूत्रघात, प्रमेह, परोचक, कण्ठ, पश्मरी तथा खण्णाहर, पुटिकर, वृष्य, स्नाट्ट और वल्य होती है। (राजनिघण्टु)

कर्कोटकीफल (सं० स्त्री०) १ घोषाफल, तरोषी।

२ वृत्तकुष्माण्ड, मौलकुल्हाड़ा। ३ भिन्नाफल, ककोड़ा।

कर्कोटपत्र (सं० स्त्री०) कर्कोटपत्र, ककोड़ेका पत्ता। यह यमनमें घोटकर पिलानेमें रोगोका हितसाधन करता है।

कर्कोटमूल (सं० स्त्री०) कर्कोटकमूल, ककोड़ेकी जड़।

कर्कोटवापी (सं० स्त्री०) कर्कोटनाम नागिन कृतो वापी, मध्यपदशो०। कामोत्थ तीर्थविशेष।

"कर्कोटवाया ईशसे तरोषेः कुम्भसप्तमम्" (कामोत्थ)

कर्कोटिका (सं० स्त्री०) कर्कोट खाद्ये कन्-टापु-पत इत्यम्। १ कुशाण्ठी मत्ता, पेटीकी मिन। २ कर्कोटक, ककोड़ा।

कर्कोटिकाकन्दरज (सं० स्त्री०) कर्कोटमूलचूर्ण, कको-ड़ेकी जड़का चूरम। कण्ठरोगमें यह र्घा जाता है।

कर्कोटी (सं० स्त्री०) १ कर्कोटिका, ककोड़ा। २ देवताइ वृष।

कर्कोत (सं० स्त्री०) कडोल, शीतलघोषी।

कर्कोरिका (सं० स्त्री०) कं सुवं यथा तथा अयंते उपयुज्यते, क-चर-कन् प्रयोदादित्वात् साधुः। पिष्टक विशेष, कचौरी, दानपुरी। यह उद्वेकको घौषो दान मीङ्गके पाटमें भर और घीमें तपकर बनायो जातो है।

कर्चरी (सं० स्त्री०) कं कर्चं नुयंते पत्र, क-पुर-टोप इषोदरादित्वात् साधुः। कर्चिका शब्दो।

कर्चोः (सं० स्त्री०) पक्षिविशेष, पक्ष चिड़िया।

सुन्दरीको बरिका।	१३५१
प्रयोग	१३५२
राजाराज	१३५३
विजयपाल	१३५४
विपलपाल	१३५५
अचलपाल	१३५६
सुगलपाल	१३५७
अर्जुनपाल (१५)	१३५८
विक्रमजिन्पाल	१३५९
अभयचन्द्रपाल	१३६०
शुभोत्तमपाल	१३६१
अश्वमेधपाल	१३६२
भारतीचन्द्र	१३६३
गोपालदास	१३६४
दारदास	१३६५
सुकुन्ददास	१३६६
सुमपाल	१३६७
सुखवीपाल	१३६८
अभयपाल (१५)	१३६९
रघुपाल	१३७०
आर्यपाल	१३७१
अभयपाल (१५)	१३७२
राजपाल	१३७३
सुजायपाल	१३७४
सुभरपाल (१५)	१३७५
श्रीवीपाल	१३७६
आश्विपाल	१३७७
अश्वकपाल	१३७८
हरिपाल (१५)	१३७९
सधुपाल	१३८०
अर्जुनपाल	१३८१

करोलीके राजा अर्जुनपाल अपनेको कथके संगर और यदुवर्गीय बताते थे। पहले यह संघ हन्दावनके निकट वनधाममें वास करता था। किसी समय वरदानमें भी इसका राजत्व रहा। १०५२ ई०की मुसलमानोंने यह स्थान अधिकार किया था। उस समयसे इस वंशने करोलीमें शासन राज्य किया। १४५४ ई०की मालवपति मधुसूद खिलजाने करोली आक्रमण किया था। पकवर, दादयाहने मालव-

लयके पीछे इस राज्यकी दिशमें मित्रा लिया। मुगलोंके गौरवका रवि जब डूब गया, तब महाराष्ट्रोंने इस स्थानको अधिकार कर २५००० इ० वार्षिक कर लगा दिया। १८१० ई०को पेशवाने करोलीका उपसत्य अंगरेजोंको सीया था। अंगरेजोंने करोलीके राजासे यह बन्दोबस्त बांधा—विपद पड़नेसे करोलीके राजा सैन्यसंग्रह द्वारा अंगरेजोंको यथासाध्य साहाय्य देनी। फिर करोलीका राज्य अंगरेजोंके आश्रित हुआ।

१८५२ ई०को महाराज नरसिंहने इहलोक छोड़ा था। उनके पुत्रादि न रहनेसे करोलीको अंगरेजी राज्यमें मिलानेकी बात चली। किन्तु अनेक कल्पनाके पीछे राजाके भाव्योय मदनपालको राज्यका सिंहासन सीया गया। मदनपालने १८५७ ई०की विद्रोहके समय कोटाके विद्रोहियोंके विपक्ष सैन्य भेज अंगरेजोंको विशेष साहाय्य दिया था। इसीसे अंगरेजोंने उनको ज़ि, सी, एस, आदिके उपाधसे विभूषित किया। १५के स्थानमें १७ तोपोंकी सहायी भी हो गयी थी। १८५७ ई०की मदनपालका मृत्यु होनेपर दो राजावर्गके पीछे १८७८ ई०में अर्जुनपालको करोलीका सिंहासन मिला।

करोली राज्यके महसूलसे कितना हो कर दिया जाता है। यहाँ रीतिके अनेक पुरिष नही। राजाके सिपाही ही पुलिसका काम करते हैं। करोलीमें ६६ सवार, १७७० पैदल, ३२ गोलन्दान, और ४० तोपें हैं। सिपाही निम्नलिखित १२ दुर्गमें रहते हैं—करोली नगर, कंटगढ़, मन्दरल, भारोली, सपीतरा, दोसतपुर, धाली, जम्बरा, निम्दा, खुदा, मन्द और खोदार्। करोलीको एककाष्ठ पलंग है। उसमें चाँदीका रूपया बनता है।

२ करोली राज्यका प्रधान नगर। यह असा २६ ३० स० और देशां ७० ५५ पू०पर मथुरासे ३५ कोस दूर अवस्थित है। किसी किसीके मतानुसार अर्जुनदेवके प्रतिष्ठित कल्याणजीवासे मन्दिरसे ही इस नगरका नाम करोली पड़ा। १४३८ ई०को अर्जुनदेवने यह नगर बसाया था। किसी समय

कर्चूर (सं० स्त्री०) १ सुवर्ण, सोना । २ हरिताल विग्रह, किसी क्लिप्तका हरिताल ।

कर्चूर (सं० पुं० स्त्री०) कर्ज-कर, द्रुपोदरादित्वात् साधुः । १ कर्चूर, हरिताल । २ स्वर्ण, सोना । ३ एकाङ्गी-नाम वणिग्द्रव्य, कर्चूर । यह कट, तिक्त, उष्ण, सुख-परिष्कारक और कफ, कास तथा गलगण्डनाशक है । (राजनिषधु) चरकने त्वकशून्य कर्चूरकी रुचि-कारक, अग्निवर्धक, सुगन्धि, कफ एवं वायुनाशक और श्वास, शिक्का तथा अर्शासुरीके लिये हितकर कहा है । ४ आमहरिद्रा, आमालहरी । ५ शटी, लङ्गुली अदरक ।

कर्चूरक (सं० पुं०) कर्चूर स्वर्णमिव कायति प्रकाशते, कर्चूर-क-क । कर्चूर देखो ।

कर्ज (अ० पुं०) ऋण, उधार ।

कर्जदार (फा० वि०) ऋण, देनदार, उधार देनेवाला ।

कर्जा, कर्ज देखो ।

कर्जा (हिं० वि०) अधमर्ण, कर्जदार, जो उधार ले चुका हो ।

कर्ण (सं० पुं०) कीर्यते चिप्यते वायुना शब्दो यव, कृ-न-निच् कर्णते प्राकण्ठते घनेन, कर्णं करणे प्र वा । बहुवचिदुपचानिश्चिन्वो नि । उर् १। १ । अचण्डिन्द्रिय, गोघ, काम । इसका संस्कृत पर्याय—शब्दग्रह, श्रोत्र, श्रुति, श्रवण, श्रव, श्रोत्र और वक्षोग्रह है । अचण्डिन्द्रियके वाङ्मयन्तर समुदाय अवयवके लिये 'कर्ण' शब्द व्यवहृत होता है । किन्तु गद्दरके आकाशस्थानमें ही कर्णन्द्रियका कार्य चलता है । सुतरां उषी आकाशको 'अचण्डिन्द्रिय' कहते हैं । इस इन्द्रियको अधिष्ठा देवता दिक् है । शब्द कर्णका विषय ठहरता है ।

मानकलके शरीरतत्त्वविद् पण्डित मनुष्य और प्रायतन्य स्तन्यपायी जीवका कर्ण तीन भागमें विभक्त करते हैं—१ वह्निःकर्ण, २ ढक्का (Tympanum) और कर्णाभ्यन्तरस्थ विवर (Labyrinth) । फिर वह्निःकर्णके दो अंग होते हैं—कर्णशष्कुली (Auricle) और कर्णप्रणाली वा कर्णवह्निहार (Auditory canal or external meatus) ।

कर्णशष्कुली उपास्थिक सङ्गठनके अनुसार उच्च और निम्नगामी है । इसके गभीर एवं प्रशस्त मध्यस्थानको कर्णस्थाली (Concha) और निम्नतम दोनायमान अर्धशको कर्णपाली (Lobe) कहते हैं । कर्णस्थालीसे गोल छिद्र नीचे चले गये है । भारतमें कर्णवैधके समय कर्णपाली छिदी जाती है । वह्निःकर्णमें एक उपास्थि होता है । उसमें कई छिद्र रहते हैं । वही छिद्र सूत्राकार सारी भिन्नोमें घूर जाते हैं । कर्णशष्कुलीके एक भागसे अपर भागकी कई पेशियां पड़ती हैं । पेशियां कुल तीन हैं । वह पाश्चस्य-शिरत्वक् (Scalp)से कर्णमें फैली हैं । मनुष्यके लिये पेशियां अधिक आवश्यक नहीं । किन्तु स्तन्यपायी जीवके पक्षमें पेशियां अवश्य रहना चाहिये ।

कर्णप्रणाली प्राध इक्ष परिसर होती है । वह कर्णस्थालीसे अभ्यन्तरकी गयी है । उसके उभय पार्श्वकी अपेक्षा मध्य भाग अधिक सीधा रहता है । इसीसे कर्णके अभ्यन्तर कोई चोज घुस जाने पर निकालनेमें कष्ट पड़ता है । अधोभाग ऊपरी भागकी अपेक्षा लहत् रहने कारण कर्णप्रणालीके विरसे मध्य कर्णकी भिन्नो तिर्यग्भावपर अवस्थित है । कर्णप्रणाली पश्चिममें और उपास्थियुक्त है । पश्चिम भागके मध्य भिन्नोसे लिपटा सूक्ष्म श्लेष होता है । किसी किसी प्राणिके यह स्वतन्त्र भावमें केवल पश्चिकी भांति रहता है ।

कर्णरन्ध्रके वह्निर्भागमें सुखाभिसुखी स्थानका नाम कर्णपत्रक (Tragus) । कर्णके रन्ध्रमें खोलदार ग्रन्थि रहता है । इसी ग्रन्थिके कारण कीट वा मलादि कर्णमें प्रवेश कर नहीं सकता ।

कर्णके वह्निहार और विवरके मध्यवर्ती गद्दरको मध्यकर्ण वा ढक्का (Tympanum) कहते हैं । यह स्थान वायुपूर्ण है । वायु गन्तकोपसे यद्विक्रियान नसी होकर ढक्कामें घुसता है । ढक्काको भिन्नो और कर्णविषरके सायं मचल पश्चिम्यपी संयुक्त है ।

ढक्काका गद्दर देखनेमें असमान और सीधी सीधी सूक्ष्म लोमवत् उपत्वकसे सज्जिन है । यह उपत्वक

करीली (हिं० स्त्री०) खड्ग, तखवार । यह चीची
रहती थीर मौकनेमें चनती है ।

करीली—१ राजपूतानका एक देशीय राज्य । यह
अक्षा० २६° ३' एवं २६° ४८' उ० और देशा० ७६°
३५' तथा ७७° २६' पूर्वके मध्य अवस्थित है । यहां
भरतपुर और करीली एजिप्टोका तत्वावधान चलाता
है । इसके उत्तर एवं उत्तरपूर्व भरतपुर तथा धवस-
पुर, दक्षिणपश्चिम जयपुर और दक्षिण-पूर्व चम्बल नदी
है । चम्बल नदी ही इसे ब्यालियरसे घुघ्य करती
है । भूमिका परिमाण १२०० वर्गमील और लोक-
संख्या प्रायः १५ लाख है ।

करीली राज्य उच्च, निम्न और पर्वतमय है ।
उत्तर और गिरिमासा सीमाके प्राचीररूपसे मस्तक
उठाये खड़ी है । गिरिका शृङ्खला उच्चतम १४०० फीटसे
अधिक नहीं । यहां चम्बल नदी ही प्रधान है ।
इस नदीसे पांच शाखा निकल करीलीमें बहती हैं ।
नाम पश्चनद है । पश्चनद उत्तरमुखी है वायव्यरूपसे
मिल गया है । करीली नगरके दक्षिण-पश्चिम कालि-
न्दर और जिरौते नामसे दो सुदृ नदी बहती हैं ।
इन दोनों नदीमें वर्षाकाल मिन अपर समय प्रति-
सामान्य जल रहता है । यहां पर्वतोंके कुण्डोंका
जल उष्णप्रधान और पखास्प्यकर है ।

पर्वतमें प्रधानतः दो प्रकारका प्रस्तर है—एक
विन्ध्य और अपर मण्डिप्रस्तर । जहां मण्डिप्रस्तर
रहता, उसीकी चारा और अधिक परिमाणसे विन्ध्य भी
देख पड़ता है । स्थानीय चूनेका पत्थर नीलाभ,
कपिल अथवा हरिहरविमिश्र होता है । बढ़िया
बिलौरी पत्थर भी पाया जाता है । ताजमहलका प्रायः
चनेकांग करीलीके पत्थरसे ही बना है । यहांका
एक पत्थर चनेक स्थानमें चूनेके लिये फंका जाता
है । करीलीके अधिकांश ग्राम प्रस्तरनिर्मित हैं ।
यहांसे उत्तरपूर्व पर्वतपर लोह-चूनि निकली है ।

शोरण—चम्बल नदीके निकट वनमें शिंश, भल्लक,
हरिण, सांभर, और नीलगाय बहुत हैं । नगरके
प्रायः शक, उद्विज्ञान, चक्रवाक, सुकट, एवं
लक्षायवादिमें बक, बंध, कारण्ड्य प्रकृति जाना

प्रकार पची देखे पड़ते हैं । मत्स्यादि भी बहुत हैं ।
करीलीके पश्चिमांगमें बिस्तर सपे, कुम्भीर प्रकृति
सरोवर रहते हैं ।

उद्योग—करीलीको उच्च गिरिमासामें बड़ा कोयो
उद्य नहीं । चम्बलनदीके ऊर्ध्वभागमें धातकी, पलाम,
खदिर, कार्पाग, गाल, गर्जन, और निम्बद्रव्य होता
है । यहां कृषिमें यव, गेहूं, चना, तम्बाकू, धान्य,
ज्वार, बाजरा, इलु और सनकी उद्यति है ।
स्थानीय जलाशय, कुण्ड और चम्बल नदीके तटस्थ
कृषिकार्य चलता है ।

वाणिज्य—यहां वस्त्र, लवण, इलु, तुला, महिष एवं
हृप मंगाया और धान्य, कार्पास तथा जंग वाहर
भेजा जाता है ।

जलवायु—स्थानीय जलवायु अधिक मन्द नहीं ।
ज्वर, प्रतिसार और वातरोग लग जाता है । किन्तु
दूसरी बीमारी इस राज्यमें नहीं होती ।

इतिहास—सुकनीकी कारिकाके अनुसार करीलीके
प्रथम राजा धर्मपाल थे । नीचे उक्त कारिका दी
जाती है—

सुकनीकी कारिका ।	वर्षानुमांशका विवरण ।	समय ।
धर्मपाल		
विंध्यपाल		
जगपाल		
मरुपालदेव		
संशामपाल		
कुण्डपाल		
शोचपाल		
पोषपाल		
विरामपाल		
केतुपाल		
विजयपाल	विजयपाल	१०० ई०
विजयपाल	विजयपाल	१०६ "
धर्मपाल	धर्मपाल	१०८ "
कुमार (कुंवर) पाल	धर्मपाल	११४ "
अजयपाल	कुंवरपाल	११४ "
हरिपाल	अजयपाल	११५ "
शोचपाल	हरिपाल	११८ "
चक्रपाल	अजयपाल	११९ "

गलकोषसे निकल युद्धिजियान गली द्वारा कर्णमण्ड-
लमें पहुँची है।

ठकामें तीन सुद्रास्य होते हैं। वह अपने आका-
रागुसार सुद्रास्य (Malleus), पताकास्य
(Incus), और पादधारस्य कहते हैं। ठकाली
भिल्ली उल्ल गहरके वरिः-माधीर रूपसे सङ्गठित है।
वह डिम्बाकृति देख पड़ती है। उसी भिल्लीके
ऊपर और अधोदिकके बीचोबीच सुद्र त्रयोवीका प्रथम
स्यस्य सुहरकी सुडियाके आकर संलित है। उसीकी
सुद्रास्य कहते है।

ठका गहरमें वर्णाभ्यन्तरके साथ संस्वर रचनेकी
दो गवाच है। वह कोमल भिल्लीसे पावब रहते हैं।
उनमें एकको डिम्बाकार (Fenestra ovalis) और
अपरकी गोल गवाच (Fenestra rotunda) कहते
हैं। प्रथम कर्णविवरके प्रवेशद्वारका प्रदर्शक है।
वह अपनी भिल्लीके वरिसे सुद्र त्रयोवीके अन्तरास्य
(पादधारस्यस्य)से दृढ़ रूपमें संयुक्त है। द्वितीय
गवाच कर्णविवरके शम्बुकाकार गहर (Cochlea)की
ओर अवस्थित है।

ठके सुद्रास्यसे एकाधिक पेशी मिले हैं। उनमें
एक करोटीवाल्ले कीलकास्यके मलावत् स्थानसे उत्पन्न
पुथी है। उसका वैज्ञानिक चर्गरकी नाम लासाटोर
टिम्पनी (Laxator tympani) है। फिर दूसरी गवा-
स्यके प्रसारवत् कठिन स्थानसे निकली है। उसे
वैज्ञानिक चर्गरकीमें टेन्सोर टिम्पनी (Tensor
tympani) कहते हैं। त्रयोव पेशी सुद्रास्यकी
मूठसे सम्बन्धित है। शरीरतत्वविद्में पनेककी
प्रथम श्रेणीके अस्तित्व पर संशय है। उनको
समझमें उसे—पेकी नहीं—बन्धगी कह सकते है।

अपके आकारका स्यस्य पताकास्य कहलाता है।
दिसु यह बात देख नहीं पड़ती। वह पदप-
दस्तकी तरह रहता है। सुद्र चर्म पीछे चल ठका-
गहरके पचादभागमें शम्बुकाकार कोष (Mastoid
cells) पर लुका और हृदय चर्म चयीगामी हो
रहताओ पादधारस्य-स्यस्यके मण्ड पर गोलाकार
तथा घमान पड़ा है।

पादधारस्य-स्यस्य पगारोहीके पद रखनेको
रकाव-जैसा होता है। वह मस्तक, घोषा, दो यात्रा
ओर भूमि रखता है। उसके कोषाकार उद्भागमें
एक सुद्र पेशी (Stapedius) निकल डिम्बाकार गवा-
चके पचादभागमें चौवादेगपर सम्बन्धित है। चौवा-
देगका पचादभाग खींचनेसे वह कर्णविवरके द्वारकी
सिकोड़ती है।

पहले लिखा—युद्धिजियान गलीसे ठकाला गहर
खुला है। युद्धिजियान एक शरीरवित् रहै। उसीमें
पहले उल्ल-गलीकी आविष्कार किया था। रसे
उसको भी युद्धिजियान कहते हैं। वह प्रायः युद्ध
रच लम्बी है। स्यस्य भाग स्यस्यमय और अधिकांग
उपास्ययुक्त होता है। उल्ल गलीके मध्यसे वायु
चल ठकाके ऊपर और बीच पहुँचता है। उसी
पथसे गहरस्य सञ्चित शेषादि भी निकलता है।

कर्णाभ्यन्तरस्य विवर अर्धगोन्द्रियका मूल चर्म है।
यहां कर्णोन्द्रिय-वायुके स्पन्दजनक गुल पड़े हैं। यह
तीन चर्मोंमें विभक्त है—विवरद्वार (Vestibule),
अर्धगोलाकार-गलीसमूह (Semi-circular canals)
और शम्बुकाकार गहर (Cochlea)। उल्ल गोले
गताकार कर्णाभ्यन्तरस्य विवरकी तरह निपट गवा-
स्यके प्रस्तरवत् पति कठिनांगमें अवस्थित है। ठकाके
गोल तथा डिम्बाकार गवाचमें उनका बाहरी और
कर्णाभ्यन्तरकी श्रोत्रनलीमें भीतरी शम्बु है। श्रोत्र-
नली ही करोटीके गहरसे कर्णविवर तक श्रोत्र शम्बु-
श्रीय स्रायु (Auditory nerve) को वहन करती है।
दुबरोल गर्तके धारो पार्श्व स्यस्यमय कर्णाभ्यन्त-
रस्य विवर (Ossaceous labyrinth) है। उसमें फिर
भिल्लीका कर्णाभ्यन्तरस्य विवर (Membranous
labyrinth) भल्लकता है।

विवरद्वार कर्णाभ्यन्तरके मध्यगहररूपमें अव-
स्थित है। उसी स्थानसे अर्धगोलाकार गलीसमूह
और शम्बुकाकार गहर निकलता है। उल्ल द्वारा
उपतामें रचका प्रथम भाग पड़ता है। उसके वरि-
गातमें पांच-द्विद्र होते हैं। उर्वरी द्विद्रमें अर्ध-
गोलाकार गलीसमूह निकलता है। पचात् द्विकी

शब्दकाकार गह्वर है। उसके अङ्गिर्भागमें डिम्बाकार गवाच और पश्च्यन्तरमें सुदृ सुदृ गोलाकार छिद्र रहते हैं। उनसे श्रोत्र सम्बन्धीय स्नायुका स्फुटजनक सूत्र-सकल भीतरकी सरकता है।

उक्त गोलाकार नली तीन हैं। उनके उभय पाश्वर्यमें छोटे-बड़े द्वार होते हैं।

शब्दकाकार गह्वर देखनेमें शब्दक-जैसा लगता है। वह कर्णविवरका अग्रवर्ती है।

अस्थिमय कोमल विवरद्वार और अर्धगोलाकार नलीके मध्यका कोमल अंश 'कान्का चक्र' (Membrane labyrinth) कहता है। अस्थिमय चक्र भिन्नोके चक्रमें आकार प्रकारमें मिलता है। फिर भी उभयके आयतनमें अन्तर है। दोनों चक्रोंमें पेरिलिम्फ (Perilymph) नामक एक तरल पदार्थ रहता है। भिन्नोके चक्रमें एण्डोलिम्फ (Endolymph) नामक एक दूसरा तरल पदार्थ भी है। फिर उनके किसी-किसी स्थान विशेषतः विवरद्वारवाले स्नायुके प्रारम्भभागमें का मनुष्य क्वा निकट पृष्ठके चूने जैसा एक पदार्थ देख पड़ता है। मानव, स्नान्य-पायी जन्तु, पक्षी और सरीसृपके मध्य चूना मिली एक तुकनी (Otoconia) रहती है।

विवरके द्वारार्थमें दो परदे होते हैं। ऊपरवाला किञ्चित् दीर्घ और डिम्बाकार है। अंगरेजीमें उसे युट्रिकुलस या कामनसिनस (Utriculus or common sinus) कहते हैं। ऊपर देखनेमें प्रथमसे किञ्चिद् सुदृ और गोलाकार है। वह नीचे रहता है। उसका नाम कोपाणु (Succulus) है।

सुश्रुतके मतसे प्रत्येक कर्णमें एक एक सुद्राष्टक सम्बन्धित होते हैं। अस्थि दो रहती, जिन्हें तह्य कहते हैं। फिर कर्णमें २ पैयो, १० गिरा और ६ धमनी है। उक्त छह धमनीमें २ वायुवाहिनो, २ शब्दवाहिनो और २ शब्दकारिणी होती हैं। चरकमें कर्णको पान्तरौष पदार्थ माना है।

"परिविषयव्यती महात्नि चोत्पत्ति च श्रोत्रादि गदकरिषः शब्दः श्रोत्रम् ।"
(चरक, शारीरकान ७ प०)

शरीरका छिद्रसमूह, हृत्सू एवं सूत्र स्रोतसकल, शब्द और कर्ण पान्तरौष पदार्थ है।

कर्णके अथयव इतने एक एक कर लिख दिये हैं। अब देखना चाहिये—कर्णसे कैसे सुनते और कर्णके यन्त्र कैसे चलते हैं।

युरोपीय वैज्ञानिकोंके मध्य किसी-किसीके मतानुसार शब्द कर्णगोचर होनेसे पूर्व प्रथम वायुद्वारा कर्णशकलीमें पहुँचता है। उधो लघु वायुके प्रभावसे उसके तरल पदार्थका प्राणविक कम्पन होने लगता है। शब्द सञ्चालित होते ही वायु द्वारा टक्काकी भिन्नो हिलती है। वायुसे शब्द जितने बार उधर उधर चलता, टक्काकी भिन्नोका भी उतने ही बार उक्कम्पन उठता है। फिर सुद्वारास्थि जिसडुल पताकस्थि और डिम्बाकार गवाचकी भिन्नोकी जगा देता है। तत्पश्चात् टक्काकी पैयोसे भिन्नोका वितान कांपता है। टक्काके गह्वरमें वायु दो प्रकार कार्य सम्पादन करता है। प्रथमतः वह गवाचकी भिन्नोके अङ्गिर्भागमें रीत्युत्सार ताप पहुँचाता है। उससे भिन्नोकी स्थितिस्थापकता नहीं बिगड़ती। द्वितीयतः टक्काके गह्वरमें वायु सुवर्त सुद्रास्थिमाना चलने लगती है। शब्दविज्ञानके अनुसार वायुसंस्पर्शसे सुद्रास्थिमें शब्द उठता है।

कर्णाभ्यन्तरस्थ विवरमें तीन प्रकार शब्द पहुँचता है—प्रथमतः पस्थिकीयेषो, द्वितीयतः टक्कागह्वरके वायु और तृतीयतः मस्त्रकास्थिके मध्यसे।

कर्णके भीतरी विवरद्वारकी ही श्रवणेंद्रियका मूलस्थान कहते हैं। यथादिके कर्णमें पपरांग न रहने भी उक्त अंश तो होता ही है।

वृहत्काय जन्तुमें कर्णके मध्यभागपर एक विवरद्वार देख पड़ता है। वहाँ कानकी तुकनी मिलनेसे शब्दको विशेष सुविधा मिलती है। उसके पास पहुँचते ही शब्द भ्रनभ्रनाने लगता है। उक्त शब्द विवरद्वारकी भिन्नो और अर्धगोलाकार नलीके प्रसारित अंश (Ampullae) तथा स्नायुमें सञ्चारित होता है।

अर्धगोलाकार नलीसमूहकी दार्ढ्यता, विस्तृति और उच्चता द्रष्टव्य है। उसीसे शब्दकी गति समझ

“वसाहकनसङ्गसामुद्रनिर्ग्राहकर्णविट् ।

ये श्वाश्रुद्विधा खेदी शशनेने मृणां मनाः ॥” (मनु)

कर्णविट्क (सं० द्वि०) कर्णविट्विगिष्ट, जिसके खंटे रहे ।

कर्णविट्प्रधि (सं० पु०) कर्णस्त्रोतोगत स्फोटक, कानका भीतरी फोड़ा । यह दोपत्र और श्रागस्तुज—विविध होता है ।

कर्णविधि (सं० पु०) कर्णखेदनादि, कानमें तेल बगे, रस डालनेका तरीका ।

कर्णविपर (सं० स्त्री०) कर्णच्छिद्र, कानका छेद ।

कर्णवेध (सं० पु०) कर्णयोः, कर्णस्य वा वेधः, इ-तत् ।

संस्कारविशेष, कनछेदन । इसमें शास्त्रोक्त विधानके अनुसार कान छेदना पड़ते हैं । जन्मके माससे इडे, ७वे, ८वे, १२वे या १६वे महीने, बुध, वृहस्पति, शुक्र वा सोमवार, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, द्वादशी अथवा त्रयोदशीको न्नाष्टय तथा वैश्याका रौप्य, चन्द्रिका स्वर्ण और शूद्रका कौहशलाका द्वारा कर्णवेध किया जाता है । जन्ममास, चैत्र एवं पौष, शुक्ल-वत्सर, हरिके शयनकाल, दूषित सूर्य, कृष्यपक्ष, जन्मनक्षत्र, दिवसके पूर्व भाग और रात्रिकालमें कर्णवेध करना न चाहिये । (मदनमकर) उत्तरायण सूर्यका समय कर्णवेधके लिये अच्छा है । दक्षिणायनमें यह संस्कार करना न चाहिये । (यम) एक पित्तके दो पुत्रका कर्णवेध संस्कार न होत पुनर्वार पुत्रीत्वत्तिकी सम्भावना भानेसे दोनोंमें यह व्यर्थवालेका कर्णवेध कर्तव्य है । ऐसे समय व्येष्ट कनिष्ठका विचार प्रायः शक नहीं । कारण कर्णवेधरहित तौन पुत्र हो जानेसे ‘कर्णपट्क’ दोष समता, जो अतीव कुम्भित ठहरता है । (मनमासतत्त्व) ब्राह्मणके कर्णमें अङ्गुष्ठके यत्न प्रमाण प्रगस्त छिद्र रहना चाहिये ।

“बह्नुडनामधुमिरी कवी न मयतो यदि ।

तर्ज्ज्याह न दातव्यं दण्डं दामरं भवेत् ॥” (निर्वणविभु)

कर्णमें अङ्गुष्ठके यत्न प्रमाण छिद्र न रहते कोयी कैसे ब्राह्मका अधिकारी हो सकता है । उसके करनेसे ब्राह्म अक्षरका भोध्य बन जाता है ।

“कर्णरन्ध्रं रवेन्द्राया न विमिद्वदन्मनः ।

तं दृष्ट्वा विभवं यानि पुत्रीषाम् पुरातनाः ॥” (ब्रह्मसिद्धि देवचम्बल)

जिस ब्राह्मणके कर्णरन्ध्रमें सूर्यका किरण नहीं घुसता, उसको देखनेसे माघीन पुण्यगीत व्यक्त भी नरक पड़ता है । कर्णव्यधविधि देखो ।

कर्णवेधनिका (सं० स्त्री०) विध्यते इनया, कर्ण-विध करणे स्यूट् स्वायं कन्-टाप् भत इत्वम् । १ करिकर्ण वेधनाच्छ, हाथीके कान छेदनेका औजार । २ कर्णवेधनाच्छ, कान छेदनेका औजार ।

कर्णवेधनी (सं० स्त्री०) विध्यते इनया, कर्ण-विध करणे स्यूट्-डोप । कर्णवेधनी सूची, कान छेदनेकी सूची ।

कर्णवेष्ट (सं० पु०) कर्णी वेष्टयति, कर्ण-वेष्ट-भृच् । १ कुण्डल, बाली, पात । २ हारपर युगके एक राजा । (भारत, भादि १० प०)

कर्णवेष्टक (सं० स्त्री०) कर्णी वेष्टयति, कर्ण-वेष्ट-यत् । १ कुण्डल, बाला । २ शिरस्त्राणका प्रासम्ब, टोपीका दामन । इससे कान बांधे जाते हैं ।

कर्णवेष्टकीय (सं० द्वि०) कर्णवेष्टक-टञ्ज । कर्ण-वेष्टक सम्बन्धीय, बाले या टोपीके दामनसे सरोकार रखनेवाला ।

कर्णवेष्टन (सं० स्त्री०) कर्णी वेष्टति इनेन, कर्ण-वेष्ट-स्यूट् । १ कुण्डल, बाला । २ शिरस्त्राणका प्रासम्ब, टोपीका दामन । ३ कर्णका वेष्टन, कान लपेटनेका काम ।

कर्णव्यध (सं० पु०) कर्णवेधन, कनछेदन ।

कर्णव्यधविधि (सं० पु०) कर्णव्यधस्य कर्णवेधस्य विधिः, इ-तत् । १ कर्णवेधका नियम, कनछेदनका तरीका । २ रक्षाभूषणकी बालकके कर्णवेधका सुन्द-तोक्त नियम । घट वा सप्तम मास, प्रयस्त तिथि करण सुव्रत तथा नक्षत्रयुक्त दिवस मङ्गल कार्य एवं स्वस्ति-वाचन कर धात्रोके क्रोडमें बालकको बैठाना और विविध क्रीडाद्वय द्वारा सान्त्वना दिलाना चाहिये । फिर मियक वामहस्त द्वारा खींचकर पकड़ और सूर्य किरणमें देखकर छिद्र लक्ष्यकर दक्षिण हस्त सूक्ष्म सूचीसे सरल भाव पर कान छेदता है । पुत्रका दक्षिण और कन्याका वाम कर्ण छेदा जाता है । वेधके बाद

नगे,—‘पाण्डव परम धार्मिक हैं। इसीसे युद्धमें पाताप कुटुम्बकी न मिटा उन्होने सन्धिका प्रस्ताव ठाया है। वास्तविक चतुर्नकी भांति दूसरा योद्धा पृथिवी पर देख नहीं पड़ता। कौरव पक्षमें उनके समूह जानिवाला कौन वीर है!’ यह बातें कर्ण मह न मके। उन्होने भीष्मकी बड़ी निन्दा उड़ायी। पन्तको कर्ण और गङ्गुनिके परामर्शसे सन्धि रच गयी।

कुश्चेतक मङ्गलसमयमें प्रथम भीष्म कौरव-सेनापति बने थे। उन्होने अपना सेनाका सुप्रबन्ध बांध दुर्योधनसे कहा,—‘देखो। कर्ण नीच जाति और सुद्र प्रकृति है। वह परशुरामके निकट अभिषक्त हुआ और कवचकुण्डल खो चुका है। ऐसे मामाज्य व्यक्तिको पधरयी ही विवेचना करना उचित है।’ यह बात सुन कर्णका मर्वाङ्ग जल उठा। उसी समय उन्होने प्रतिज्ञा की,—‘जितने दिन भीष्म क्षीयित रहेंगे, उतने दिन हम कभी युद्धमें प्रवृत्त न करेंगे।’ यही कथक उन्हे निरपेक्ष छोड़ा था।

दस दिन युद्ध होने पीछे कुश्चितामह भीष्म मर-गव्यापर सो गये। कर्णने एक दिन रात्रिकालकी उनसे मित कहा था,—‘पाप सर्वदा जिसकी निन्दा करत रहे, मैं वही कर्ण हूँ।’ भीष्मने इन्हे देख रक्षकोंको उठाया, पीछे सञ्चय यह कहते कर्णको मले लगाया,—‘हमने नारद और व्यासके मुख तुमकी कुत्सीका पुत्र सुना है। पाण्डवगणसे द्वेष रखने-पर ही हम तुन्हे कुक्ष कड़ी बात बोल देते थे। वास्त-विक तुम्हारी तरफ दाता और ब्रह्मनिष्ठापर दूसरा देण नहीं पड़ता था। तुमसे हमारा पूर्व भाव दूर हो गया है। अब तुम हमारी मानो, तो अपने सञ्चोदर पाण्ड-वोंकी ओरसे युद्ध ठालो।’

तेजस्वी कर्णने उत्तर दिया,—‘पापके कहेनेही अब भैरे कुत्सीपुत्र होनेमें कोई मन्देह नहीं। किन्तु पितामह। उतने दिन मैं दुर्योधनके चिपठमें ही प्रतिपाकित हुआ हूँ। फिर उनकी भैने एक बार आश्रास भी दिया था। अब मैं केशी उन्ही विष मन्ध दुर्योधनसे हूँ। प्राब जाना अच्छा है। मैं अपने

प्रतिज्ञा न तोड़ुंगा।’ भीष्मने कहा,—‘तो स्वर्गकाम होकर सड़ो। कूट युद्धसे चमग रहो।’

भीष्मके पीछे द्रोणाचार्य कौरवोंके सेनापति हुये। कर्णने उनके पधीन पनेरु बार युद्ध किया था। उसी समय उन्हेनि वासक अभिमन्युकी कूट युद्धमें मारनेका परामर्श उठाया और इस कार्यमें पयिष्ट साहाय्य पहुँचाया।

कर्ण एकाग्रो गति द्वारा चतुर्नको मारना चाहते थे। किन्तु उनके मनकी आशा सममें हो रह गयी। भीममन्दन घटोत्कच कुश्चेतकके दमनमें दोड़ कर्णके सामने आये थे। उन्हेनि अपने सधानिके लिये एकाग्रो गति छोड़ घटोत्कचको मार डाला। द्रोष्के निहत होने पर कर्ण कुश्चेतकके सेनापति बने। उनके सारथी मर गये। यथा समय मङ्गलवोर कर्ण ससेन्य समरक्षेत्रमें उतर पड़े। उनकी युद्धनीति और वीरता देख पाण्डवपक्षमें हाहाकार उठा। किन्तु कर्णसे सारथी मर्य विसुप्त थे। कर्ण चतुर्नके मारनेकी जितना आस्तामन लगाते, मर्य उतना हो प्रति-वाद कर चतुर्नको प्रगंसा सुनाते और उनकी निन्दा करत थे। किन्तु कर्णने निज बाहुबलसे ७० प्रमद्रक, २५ पाखान, भासुदेव, चियसेन, सेना-विन्दु, तपन, सुरसेन चेदि और चपरापर स्वागके पक्षस्य सेन्यकी मार गिराया। फिर उन्हेनि चतुर्न व्यतीत सुधिहिरादि पाण्डवको भी डराया। कर्णने कुत्सीके निकट चतुर्नको छोड़ अपर किशो पाण्डवके न मारनेकी प्रतिज्ञा की थी। इसीसे सुधिहिरादि पाण्डव डार कर भी वीर रहे।

पन्तको चतुर्नके साथ कर्णका घोरतर युद्ध हुआ। उस युद्धमें शीतल्यकी कौमलसे वह पन्तिस मगव्यापर सो गये। (मत्तमाल)

कर्णका पथम नाम वसुधेव रहा। पात्रक पिता सन्तने उनका यही नाम रक्ता था। पीछे प्रयक पृथक् कार्यके अनुसार कर्ण, वैदरतन, परमन्दन, चक्रराज, चक्रेश्वर, सत्यम, सत्याधिग, सत्याधिप और घटोत्कचानाक मन्थति नाम हुआ। प्रतिपाकक पिता तथा पात्रिका माताके परिचयानुसार कर्णकी शोभ सुप्रस-

राधिय, राधापुत्र प्रभृति भी कहते थे। २ छतराष्ट्रके एक पुत्र। (भाग, भाद्र ११७२)

कर्ण—मेवाड़के एक राणा। यह राजपूत-वीरकेशरी प्रतापसिंहके पौत्र और राणा अमरसिंहके ज्येष्ठपुत्र थे। पिछलेदिगपर विधर्मी कवचसे जन्मभूमिकी यज्ञानिके क्रिये इन्होंने अनेक बार सुगल-सन्नाटसे युद्ध किया।

इसके समय मेवाड़ बहुत विगड़ा था। पुनः पुनः लड़नेपर मेवाड़का राजकीय शून्य हुआ और मेवाड़के प्रधान प्रधान वीरका प्राण गया। ऐसी अवस्थामें राज-पूत-वीर कितने दिन सुगलवाहिनिके विश्व चक्र चला सकते थे! अन्तकी राजकीय शून्य होनेसे कर्ण सुरत नगर लूट अर्थरुपह करनेपर बाध्य हुये। १६१२ ई०की यह जहांगीरके पुत्र खुरम (शाहजहान्)-से हार गये। फिर मेवाड़के राणा अमरको सुगल-सन्नाटसे लड़ना पड़ा था। सन्धि होनेपर कर्ण खुरमके साथ अजमेर ला जहांगीर बादशाहसे मिले। बादशाहने यथेष्ट आदर-अभ्यर्धनके साथ इन्हें अपने दक्षिण पार्श्व बैठनेकी आज्ञा दिया। उस समय प्रति दिन बादशाह कर्णसे मिलते और बहुमुख्य सज्जाप-हार तथा विविध द्रव्य-सामग्री दे सम्मानवर्धन करते थे। जहांगीर अपनी जीवनीमें लिख चुके हैं—

‘मादभूमिकी प्राकृतिक अवस्थाके अनुसार कर्ण सुषसेव्य द्रव्यसामग्री अपने व्यवहारमें लाना जानते न थे। वह अतिशय साजुक और अतिपल्पभाषी रहें। फिर हमसे बहुत मिलने लुननेकी इच्छा भी वह रखते न थे। अपने प्रति विश्वास बढ़ानेके लिये हम उनको साम्बनावाक्यसे भाखास दिया करते। हम एक दिन उन्हें मूरजहाङ्गिके निकट ले गये। मडिपोने उन्हें इस्ती, खड्ग, खड्ग प्रभृति नाना प्रकार पारितोषिक दिया था।’

वास्तविक जहांगीर कर्णसे विजिताकी तरह व्यवहार करते न थे। यह सर्वदा कर्णका सशुभ वदनेकी ससेष्ट रहते। १६२१ ई०में मेवाड़के अन्तिम स्वामी राजा महाराणा अमरसिंहने ज्येष्ठपुत्र कर्णको सिंहासन दे डाला।

कर्णके राणा बननेपर मेवाड़में शान्तिका राजत्व

चला था। सुगलके भाक्तमण्डले मेवाड़के भग्न वीर नष्ट पंथोंका इन्होंने पुनः संस्कार कराया। राजधानीके चतुःपार्श्वस्थ प्राकार परिखा हारा घेरे गये। पेगोलाका जलरोधक बांध भी बढ़ाया। १६२८ ई० (१६८४ संवत्)की प्रियपुत्र जगत्सिंहके हाथ राज्य-भार सौंप इन्होंने परलोक गमन किया।

२ भार्यावर्तकी एक सन्नाट। यह कर्णवेदि नामसे प्रसिद्ध थी। वर्षद्वेष्टकी।

कर्णक (सं० पु०) कर्णयति विभिन्न जायते, कर्णखलुः। १ हृद्य प्रथितिका गाथापत्रादि, पेड़ वगैरहकी फोड़कर निकलनेवाला पत्ता वगैरह। २ मध्यविशेष, एक मण्डली। ३ सन्निपातविशेष। इस रोगमें दोपत्रयसे कर्णमूलपर शोथ उठता और तीव्र स्वर चढ़ता है। फिर कण्ठग्रह, वधिरता श्रासन, प्रलाप, मस्त्रेद, मोह और दहनका प्राक्त्व भी देख पड़ता है। ४ हृत्पादिका एक रोग, पेड़ वगैरहकी एक बीमारो। ५ कर्णधार, मांभी। (पे०) ६ नोकाके पार्श्वका छत्रोद्य, नाव या जहाजका वगुनी उभार। ७ तन्तु, किसलय, चूल्, किला। ८ प्रसारित पद, फेले हुये पैर। (त्रि०) ९ भिच्छुक, भीख मांगनेवाला।

कर्णकवान् (० त्रि०) कर्णकविशिष्ट, जिसमें वगुली डालें रहें।

कर्णकटु (सं० त्रि०) अप्रिय, कानमें खटकनेवाला, जो सुननेमें बुरा लगता हो।

कर्णकण्डु (सं० पु०-स्त्री०) कर्णस्थ कर्ण जातो या कण्डुः। कर्णस्त्रोतगत रोगविशेष, कानके गट्टेकी खुजली। कफसंयुक्त मात्रत यह रोग लगता है। (भाष्यविद्वान्) कफनाशक विविधमूत्र ही कर्णकण्डुका प्रधान औषध है।

कर्णकण्डू (सं० स्त्री०) वर्षद्वेष्टकी।

कर्णक-सन्निपात, वर्षद्वेष्टकी।

कर्णकित् (सं० स्त्री०) कर्णमूल, कानका मेस।

कर्णकीटा (सं० स्त्री०) कर्णगतः कर्णस्थ भेदक-कीटा, कर्णकीट-टोप मध्यपदको०। १ कर्ण-लक्षिका, कनकनाथी। २ शतपदी, इज्जारपा, कनखजूर। (Julus cornifex)

पुरातत्त्वविदने उसीका नाम 'कर्णसुवर्ण' रख लिया है। उक्त चीन-परिभाषकके वर्णनानुसार—यह जनपद दैर्घ्य-प्रस्थमें प्रायः १४०० या १५०० लि (१२५ कोससे अधिक) है। इसका राजधानी कीयी २० लि (डेढ़कोस) लम्बी है। यहां बहुत लोग रहते हैं। सभी शान्त, मिष्ट और सम्प्रतिगामी हैं। निम्बभूमि उर्वरा है। नियमित कृषिकार्य चलता है। नाना-विध मन्त्रार्थ और उपादेय कुसुमभूषणसे यह जनपद अलङ्कृत है। जलवायु मनोरम है। अधिवासी विदो-स्ताही देख पड़ते हैं। (उस समय) यहां दस सहाराम चने, जिनमें २००० बीह यति बसे हैं। सभी सम्प्रतीय हीनयानमतावलम्बी हैं। नगरके पार्श्व रत्नविटि (लो-ती-वेइ-चि) नामक एक सहाराम खड़ा है।

इसका शालादेश सुविस्तृत और प्रकार भति उच्च है। पक्षी यहां कीयी बौद्ध न था। राजाके आदेशसे एक श्रमण आये। उनकी ज्ञानगर्भ कथामें सुध हो राजाने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। उसी समयसे यहां बौद्ध धर्मका आदर बढ़ गया। इसी सहारामसे अनतिदूर शशोक राजाने एक स्तूप बनाया था।

यह कर्णसुवर्ण जनपद कहां था ? इसके वर्तमान स्थान पर गड़बड़ पड़ता है। किसी-किसीके मतानुसार मुर्शिदाबादके ६ कोस उत्तर 'कुइसोनका-गड़' नामक प्राचीन नगर कर्णसुवर्ण हो सकता है। (J. As. Soc. Bengal. Vol. XXII. 281ff. J. R. As. (n. s.) Vol. VI. 248. Ind Ant. Vol. VII. 197.) फिर कीयी भागनपुरके निकटस्थ कर्णगड़को कर्णसुवर्ण समझता है। (Beal's Record, Vol. II. p. 20) यस्तुतः कर्णसुवर्णका प्रकृत स्थान आज भी ठीक नहीं ठहरा। किन्तु चीन-परिभाषककी वर्णना देखते यह जनपद ताम्रसित्तसे ७०० लि (प्रायः ५०० कोससे अधिक) उत्तर-पश्चिम अवस्थित है। वर्तमान राड़ और मयूरभञ्ज पूर्व कर्णसुवर्ण राज्यका अंग था।

कर्णसू (सं० स्त्री०) कर्ण-सू-क्षिप् । कर्णको जननी कुन्ती। कर्णसूची (सं० स्त्री०) कर्णवेषनाथं सूची, मध्यपद-स्त्री०। कर्णपेष करनकी सूची, कान छेदनकी सनाई।

कर्णसूटो (सं० स्त्री०) कीटविशेष, एक कीड़ा। कर्णस्कीटा (सं० स्त्री०) कर्णस्य स्कीटोय स्कीटा-विदारणं यस्याः। लताविशेष, एक वेल। इसका संस्कृत पर्याय—श्रुतिस्कीटा, त्रिपुटा, क्षयतण्डुला, चित्रपर्णी, कोपलता, चन्द्रिका, और पर्वचन्द्रिका है। राजनिघण्टुके मतसे यह कटु, तिक्त, शोथन और सर्व प्रकार विपरीत, यक्षदीप, भूतादिवाधा तथा पोडानाशक होती है।

कर्णस्त्राय (सं० पुं०) कर्णस्य कर्णयोर्वा स्त्रायः पूयादि-निःसरणम्, क्ष-तत्। कर्णरोगविशेष, कान या कानोसे पीव वगैरह बहनेकी बीमारो। कर्णवैद्यान शब्दो। कर्णस्त्रीतोभव (सं० पुं०) कर्णस्त्रीतोसो विष्णुर्कण-विवरात् भवति, कर्णस्त्रीतस्-भू-भृष्। १ मधु नामक भसुर। २ कौटभ नामक भसुर। कंठम देखो।

कर्णहीन (सं० पुं०) १ सयं, सांप। सांपके कान नहीं होते। (भारत, पृ० ६६००) (त्रि०) २ शक्ति, बहुरा, जिसे सुन न पड़े।

कर्णाकर्षि (सं० अर्थ०) कर्णे कर्णे श्चीत्वा प्रहृत्तं कथनम्, व्यतिहार इष पूर्वस्य दीर्घस्य। कर्णसे कर्ण पर्यन्त, कानो कान, कामाकुसीसे।

“कर्णाकर्षि ऋषयः कथयन्ति च तन्त्रयाम्।” (रामायण ४/११/२६)

कर्णास्य (सं० पुं०) श्वेतकिण्टी, सफेद भाड़।

कर्णाञ्जलि (सं० पुं०) कर्णः अञ्जलिश्च, उपमि०। कर्णशब्द लो, कानका छेद। अञ्जलिके द्रव्यग्रहणकी भाँति यह शब्दग्रहणकी योग्यता रखता है। इसीसे अञ्जलिके साथ उपमा दी गयी है।

कर्णाट (सं० पुं०) दाक्षिणात्यका एक प्राचीन जनपद। शक्तिचक्रमतन्त्रमें लिखा—

“रामनाथं समारथं औरङ्गानं किषेयति।

कर्णाटदेशी द्वैविमि शालाग्रामोववावचः।”

रामनाथसे लेकर औरङ्गकी सीमा तक साम्बाण्य-भीमंदायक कर्णाटदेश है।

रामनाथका वर्तमान नाम रामनाद है। यह भारतके दक्षिण समुद्रके निकट अवस्थित है। औरङ्ग त्रिगिरा-पल्लीके निकट कावेरी और कोलहण नदीके मध्य पड़ता है। ऐसा होते शक्तिचक्रमतन्त्रके मतानुसार

कर्णकोटी (सं० स्त्री०) कर्ण स्थिता कर्णस्य मेदिना
 कोटी, सुटाछें टोप मध्यपदलो० । कर्णजनोका,
 कनमनायो । इमका संकृत पर्याय—कर्णजकोका,
 गतपदी, पिताही, पृथिका पोर कर्णन्दुम्बि है ।

कर्णकुल (सं० स्त्री०) नगरविशेष, एक गहर । यह
 वर्तमान गुजरात प्रदेशके लूनागढ़का पौराणिक नाम
 है । ७७५७ दीपो ।

कर्णकुहर (सं० स्त्री०) कर्णगतं कुहरम्, मध्यपदलो० ।
 कर्णगत द्विद्र, कामका छेद ।

कर्णकूपकशसेक (सं० पु०) जीवविशेष, किमो किष्कका
 जानवर । यह जलके मध्य अधोगण्ट द्वारा भास
 यहव करता है । गामुकादि इसी श्रेणीके जीव है ।

कर्णकृमि (सं० पु०) कर्णगतः सन् कर्णभेदकः
 कृमिः, मध्यपदलो० । गतपदी, कनखजूरा ।

कर्णखंड (सं० पु०) कर्णस्य कर्णं जातो वा खंडः ।
 कर्णरोगविशेष, कामको एक बीमारी । पितादिसे युक्त
 वायु कामने वेदघोषके समान शब्द किया करता है ।
 इसीको कर्णखंड कहते हैं । (भाष्य०) कर्णके
 मध्य सर्पपतेल छालनेसे यह रोग बिनट होता है ।

कर्णपरिच्छ (सं० पु०) वेद्य जाति, घनियोंकी एक
 क्रीम । १७६५० ।

कर्णग (सं० पु०) कर्णं गच्छति, कर्ण-गम-ञ ।
 १ शब्द, पायाज्ञ । (ति०) २ कर्णस्थित, कामने
 पटा हुआ । ३ पार्कष, जानतक फेला हुआ ।

कर्णगढ़—विहारप्रान्तके भागलपुर जिलेकी एक
 पार्यंत भूमि । यह पचा० २५° १४' ४५" उ० पोर
 देशा० ८६° ५८' १०" पूर्व पर अवस्थित है ।

देशमन्त्री पोर भविष्य-प्रज्ञाखण्डने इसका नाम
 कर्णदुर्ग लिखा है । 'पहले यहां साधारणभूमिकी
 राजधानी थी । संवत् १६८८ की खर्णदुर्गमें समा-
 सिंध राजत्व धरते थे । उन्हें राजा कीर्तिचन्द्रने मार
 डाला । मर्माभिदके पीछे हेमलामिहने यहां राजत्व
 किया । इसी कर्णगढ़के पाषकोस पूर्व मिनावती
 नदी बहती है । उससे नवा कोस पश्चिम विद्यानाथी
 नाथी महाभाषाका मन्दिर है ।'

(विवर्णनपरीहक इत्यादिपरिचित)

कर्णगढ़का शिवमन्दिर विख्यात है । सब मिना-
 कर चार मठ बने हैं । एकमें लहदाकार शिव-
 लिङ्ग है । यह शिवमन्दिर प्रायः ५५ गत वर्षका
 प्राचीन है । सकल अधिवासी श्रेय न रहते भी
 कार्तिक-संक्रान्तिके दिवस बड़े समारोहसे शिवकी
 पूजा होती है । प्रयादानुसार इस स्थान पर कुम्भो-
 पुत्र कर्णका राजत्व था । उन्होंने एक दुर्ग निर्माप
 कराया, जिसके अनुसार यह कर्णदुर्ग वा कर्णगढ़
 कहाया । प्राचीन प्रहानिकाका भन्दावधिमे नाम
 स्थान पर पड़ा है ।

पहले यहां पचाड़ी बड़ा लूपात उठाने थे ।
 इसीसे १८८० ई०की भागलपुर जिनके लहसीम-
 दार लोहनेपठ ग्राहबने यहां एक दन देगीव फेय
 स्थापन किया ।

कर्णगूय (सं० स्त्री०) कर्णस्य कर्णं जातं वा गूयम् ।
 कर्णमूल, कामका मेल ।

कर्णगूयक (सं० पु०) कर्णगूय संघायां कन् । कर्ण-
 रोगविशेष, कामको एक बीमारी । कर्णकुहरमें पिताके
 सन्तापसे श्लेमा स्रावनेपर यह रोग छठता है । (पद्य०)
 तैल वा खेदप्रयोगमें ठीला कर मसाका दाग कर्णका
 मल निकाल छालना चाहिये । (भाष्य०)

कर्णगृहीत (सं० स्त्री०) कर्णं गृहीतः, ३-तत् ।
 १ गृह, सुना हुआ । २ कर्णकटक छूत, जो अपने
 काम पकड़ा हुआ है ।

कर्णगोचर (सं० स्त्री०) कर्णस्य गोचरः, विषयोभूतः,
 ६-तत् । कर्णके श्रिययोभूत, सुन पड़नेवाला, जो
 कामने चा मुकता है ।

कर्णधाम—१ भागोरपोतीरवर्ती बड़का एक धाम ।
 (कर्णधामप्रवचन ७११)

कर्णधार (सं० पु०) कर्णं धारित्वं गृह्णाति, कर्णं धार-
 णम् । कर्णधार, मसाह, मन्त्री ।

कर्णधारयत् (सं० वि०) कर्णधारयुक्त, जिसमें
 मन्त्री रहें ।

कर्णद्विद्र (सं० स्त्री०) कर्णस्य द्विद्रम्, ६-तत् ।
 कर्णव्य, कामका छेद ।

कर्णजप (सं० पु०) सुनसंवाटपाता, सुषुदिर, भेदिना ।

भातना सर्वदक्षिण एवं समीपस्थ, कावेरी नदी
 पर्यन्त कर्पाट टिम उदरता है। किन्तु महाभारत,
 मार्कण्डेयपुराण और बृहत्संहितामें कर्पाट पर्वत,
 दमपुर, महाभारत तथा वितकूटके प्राय उल्टे है। यथा

"कर्पाटो दामपुरा नदीवः कविर्भोः कर्पाटः
 महाभारतः महाभारतः नदीवः कविर्भोः कर्पाटः
 "कर्पाटो दामपुरा नदीवः कविर्भोः कर्पाटः"

महाभारतमन्त्रमें भी एक स्थानपर कर्पाट है—
 "कर्पाटो नदीवः कविर्भोः कर्पाटः
 "कर्पाटो नदीवः कविर्भोः कर्पाटः"

यहां महाभारतके निकट कर्पाटनामिका उल्लेख
 मिलता है।

पतञ्जलि कर्पाटके राजावर्षके गीटित गिला-
 लिपमें पढ़ते, कि वह वर्तमान महिपुरके उत्तरागमे
 विजयपुर पर्यन्त मनुदाय भूभागमें राज्य रचते है।
 महाभारतः इसी भूभागको महाभारत, मार्कण्डेयपुराण
 और बृहत्संहितामें कर्पाट कहा है। प्राकृतक कितने
 ही लोग यथाज्ञा और कर्पाटिक प्रदेशको कर्पाट
 समझते है। किन्तु यह उल्टा भ्रम है। हम जिये
 कर्पाटिक कहते, हममें कोई प्राचीन कर्पाटराज
 रहते न है। सुमनसामोके पानिभ महिपुरका दक्षिण
 एवं कर्पाटिक कहाया है। कर्पाटिक देशोः श्रीमहाभारत-
 में दक्षिण कर्पाटका नाम है। यह स्थान बौद्ध,
 सिद्ध और कूटक नामक जनपदके प्राय उल्टे है।
 (महाभारत १.१०) वर्तमान कर्पाटिकका कावेरीसुमनस
 स्थान पर दक्षिणकर्पाट ही कहता है।

कलाशा कर्पाट राज्यका ही पदमंत्र है। किन्तु
 कलाशा प्राचीन कर्पाट राज्यके भीतर नहीं पड़ता।
 सुमनसामोके महिपुरके दक्षिणामको कर्पाटिक कहा-
 ईको तरह पर्वतरेखीं भी गोवाके दक्षिणामित मनुद-
 कृतमंत्रों विद्योके भूभागका नाम कलाशा रखा गया।
 प्राचीन काल बहुराज्यवर्षों तक विद्योके भूभाग
 बहुराज्यवर्षके पलायन था। महाभारतः

कर्पाटप्रदेशमें चावुण, धार, मद्र, पल्ल और कर्पा-
 टपुर प्रदेश राज्य किया। पल्ल कर्पाट प्रदेश में है।

ई० दमम प्रतापको कर्पाटका दक्षिणाम शेष राजा-
 वीके दाय मगः। उम समय उत्तर अंगमें कलपुरी
 मंग राजवंश रचता था।

ब्रह्मण्डेय महिपुरके तोच रमें जाकर रहे। उम
 समय यह और लक्ष्मि मंगधर विजयनगरके कलपुरी
 राजाको कर देते थे। कलपुरीके पद्यपतनमें ब्रह्मण-
 ष्यका पद्यद्वय हुआ। १३३६ ई०को ब्रह्मण्यवर्षके
 प्रथम ही सुदामाके दक्षिण कर्पाट प्रदेश अधिपति
 किया। १५६५ ई० पर्यन्त उमका प्रभाव पल्लु
 रहा। सुमनसामोके चार बह प्रथम पैदाकीया, फिर
 पल्लुगिरिमें जाकर बसे। उमकी एक गोपा पान-
 गुप्तीमें भी थी। उमी समय कर्पाटिक नाम
 निकला। माघोन कर्पाटके कर्पाटिकको स्वतन्त्र
 देशामेके लिये एकको 'कर्पाटपान-घाट' यथात्
 कर्पाटको निच भूमि और उसके उत्तर पारसोय
 स्थानको 'कर्पाट पानाघाट' कहते है।

सुमनसामोके विजयनगरके हिन्दू राजा मग
 कर्पाटको दो भागमें बांट लिया—कर्पाटिक और रा-
 वाट या मोलकुरा और कर्पाटिक श्रीमपुर। फिर
 उभय विभाग पपानघाट और कालाघाट दो विभागमें
 विभक्त हुए।

महाराज—भारतके संस्कृत पण्डित कर्पाट मन्त्रको
 कर्पाट-पट्ट-पट्ट-सबन्धाति पण्डित समझे है। किन्तु
 मन्त्रशास्त्रविद् पण्डितोंके खमनासुपर द्राविड़ो
 कर्पाटु (कर् लक्ष्य + ताटु स्थान) यथात् लक्ष्यप्रदेश वा
 लक्ष्यवासीयोपदेह प्रदेश कर्पाट बना है। मार्कण्डेय-
 पुराण, महाभारत और पञ्चमहाविदो बृहत्संहिता
 पढ़नेमें कर्पाट नाम बहुत प्राचीन मान्य पड़ता है।

कर्पाट मन्त्र स्थानवाचक होने भी बहुत दिनोंमें
 वतन्त्र प्राप्ति और भाषाका बोधक है।

कर्पाट—द्राविड़ प्राकृतोंकी एक संघो। भारतके
 उत्तरांचलमें पश्चिमोद् यक्षमें जैसे काण्डक, मारुत,
 गोदू, मेदिन तथा चतुर्क, वेदीको दक्षिणाममें
 द्राविड़ मन्त्रों महाभारत, मेकडू, द्राविड़, कर्पाट और
 सुर्षे काण्डक मन्त्र पढ़ते है।

द्राविड़ भाषाको भी हमें यही कर्पाट है। यह

कर्णजलूका (सं० स्त्री०) कर्णस्य कर्णं वा जलूका इव, उपमि० । कर्णं कीटा, कणखजुरा ।

कर्णजलोका (सं० स्त्री०) कर्णं जलोकेव । कर्ण-कीटा, कणसलायी ।

कर्णजाप (सं० पु०) गुप्तसंवाद, कानाफुसे ।

कर्णजागं (सं० स्त्री०) कर्णोर्मौ रोग, कानकी एक बीमारी। प्रकुपित दोष श्लेष्म, अग्नि, प्राण और वदमनमें सखी हाल देते हैं। उनसे कान एक और रोगी बधिर पड़ जाता है। (दृश्य)

कर्णजाह (सं० स्त्री०) कर्णास्य मूलम्, कर्ण-जाहम् ।

कर्णमूल, कानकी जड़ ।

कर्णजित् (सं० पु०) कर्णं जितवान्, कर्ण-जि-क्षिप् । अर्जुन । इन्होंने कर्ण को जीता था ।

कर्णजीरक (सं० स्त्री०) क्षुद्र जीरक, छोटा जीरा ।

कर्णस्फोति (सं० स्त्री०) कर्णस्फोटा, कानकी घुग्गी ।

कर्णतः (सं० अव्य०) कर्णसे दृश्यक, कानसे दूर ।

कर्णतास (सं० पु०) कर्णं तासः ताड़ना, ७ तत् ।

कर्णताड़ना, कानकी फटकार ।

कर्णतीर्थ (सं० स्त्री०) तीर्थविशेष । (इन्द्रोक्तवत्)

कर्णदंष्ट्र (सं० पु०) कर्णं दंष्ट्रं इव, उपमि० । ताड़ना नामक कर्णभूषणविशेष, कानमें पहननेकी एक बाकी ।

कर्णदुन्दुभि (सं० स्त्री०) कर्णं कर्णाभ्यन्तरे दुन्दुभिरिव तत्तुल्य ध्वनिजनकत्वात् । शतपदी, कणखजुरा ।

कर्णदेव—चेदिराजवंशके एक अद्वितीय महावीर और दिग्विजयी राजा। यह कलजुरि राजा गाङ्गेयदेवके पुत्र और उत्तराधिकारी थे। ह्येन-राजकुमारी प्रायश-देवीसे इन्होंने विवाह किया। इन्होंने कर्णायती नगर बसाया; और पाण्ड्य, सुरस, कुड्ड, वङ्ग, कलिङ्ग, कीर और ह्येनके राजाओंको वशोभूत किया था।

कर्णदेवके पिता गाङ्गेयदेवने कुंदेलखण्डमें पश्चिम वासोक्तक राज्य किया। उन्होंने समय इन्होंने प्रथम सुगंधपर भास्करण मारा था। किन्तु दोषहर भतीय-के यत्नसे सन्धि हो गयी। १०४० ई०को प्रयागके अग्रसिंह अथयशट् मूलपर गाङ्गेयदेवने प्राण छोड़ा था। (Memoirs, A. S. B. Vol. III. Vol. p. 11)

उसके पोछे ही कर्णदेव स्वयंस्वत ऐश्वर्याय या कर दिग्विजयी उच्चाश्रयि निकल पड़े। इन्होंने गुज-रातसे बङ्गालतक समय देय जीता। कर्णदेवकी सभामें गङ्गाधर कविका बड़ा आदर था। फिर चोड़, कुड्ड, ह्येन, गौड़, गुर्जर और कीरकी राजा इनकी आज्ञाकारीमें रहते थे। नागपुर-प्रयत्निके अनु-सार जिते देगके अन्य राजाओंने सतया और कर्णने अपने अधीन बनाया था, उसे मालवके उदयादित्यने छोड़ाया। कर्णमित्रके प्रबोधचन्द्रोदय और अन्य ग्रन्थालेखमें लिखा है—“बन्धुस्य कीर्तिवर्माके सेनापति गोदानने कर्णको पराजय किया था। उमचन्द्रके वचनानुसार यह अनहिलवाहकी २५ भीमदेशसे हार गये। फिर बिल्हणने भी विक्रमादित्यवचरितमें पश्चिमोय चालुक्य १४ सोमदेशसे इनके हारनेको बान लिखी है।

कर्णदेव (सं० पु०) एक प्रसिद्धचालुक्यराज। यह अनहिलवाड़ाधिपति भीमदेशके पुत्र थे। राज्यकाल संवत् ११२०-११५० रचा। इनके पुत्रका नाम जय-सिंह सिद्धराज था। इसी वंशमें दूसरे कर्णदेव भी हुए। वह सारङ्गदेवके पुत्र थे। उन्होंने संवत् १३५३से १३६० तक गुजरातके अनहिलवाड़में राजत्व किया।

कर्णदेवता (सं० पु०) श्रोत्रेन्द्रियके अधिपति वायु।

कर्णधार (सं० पु०) कर्णमरित्रं धारयति, कर्ण-ध-षण् ष्यस्तात् अच् वा । १ नाविक, मलाह । (लि०)

२ दुःखादि निवारक, तकलोफ गोरह मिठानेवना ।

“वक्त्रं धारा इविवी यन्वेव प्रतिनादिके ।
गते दमये वि स्वर्गे रामे वानव्यनादिते ॥” (रामायण १.८२.१०)

कर्णधारता (सं० स्त्री०) नाविकका कार्य, मलाहो ।

कर्णधारिणी (सं० स्त्री०) कर्णं पश्यन्नेवपेवाया-विपुलं धरति, कर्ण-ध-षिनि-डोपे । इक्षितो, इक्षिती । इसके कान दूसरे जोवकी अपेक्षा बड़े होते हैं।

कर्णनाद (सं० पु०) कर्णस्त्रोतोगत रोग, कानको एक बीमारी। जब वायु नौडोकी मार्गसे घट जाता, तब कर्णमें पड़ूच भेरी, रुदरु और शंखसेत् नाद लगता है। (ज्ञानविदास, उक्त) सर्पपत्तेज अथवा चपामार्ग जला और कर्णके साथ तिनकेस पका

अपर द्राविड़ोंके निकट प्राभिजात्य और मर्यादांमें कुछ हीन हैं। अपर त्रैणीके ब्राह्मण इन्हें अपनी कन्या नहीं देते। किन्तु खाना पीना एक ही में चलता है।

कनाड़ा वा कर्णाटक प्रदेशमें यह रहते हैं। कनाड़ेके सकल अधिवासी प्रायः लिङ्गायतृ है। सम्मान प्रदानकी बात छोड़ यह समय समय इनकी निन्दा उड़ाया करते हैं। फिर भी किसी कर्णाटके इनके घर अतिथि होनेपर चांदर अभ्यर्चनाकी परिचीमा नहीं रहती। वह कायमन-वाक्यसे सेवा उठा उसकी यथैष्ट मन्तुष्ट करते हैं।

कर्णाट इस प्रान्तके ब्राह्मणोंकी भांति यज्ञमान द्वारा परिपोयित न होते जीविकानिर्वाहके लिये ख ख कर्म छोड़ नानाप्रकार कार्य चलाते हैं। किसी किसीकी पेटकी जलनसे खेती भी करना पड़ती है।

यह ऋक्ष-अथवा यजुर्वेदी होते हैं। इनकी प्रधानतः षट् शाखा हैं—१ हैग, २ काव, ३ त्रिवेत्तरी, ४ वर्गानार, ५ कन्द्याव, ६ कर्णाटक, ७ महिसुर-कर्णाटक और ८ औरनाद (त्रीनाथ)। वासस्थानानुसार कर्णाट ब्राह्मणोंके भिन्न भिन्न नाम मिलते हैं—

गोत्र	उपाधि	कुल
व्याप	चादकर्णाटक	महिसुर।
गोतम	कण्ठक	व्यङ्गलुर।
भरद्वाज	सुकिनाद	ग्रहरी।
वसिष्ठ	वयल्लार	शौरदपचन।
विश्वामित्र	कण्ठकुमुद	देवन्द्यानी।
शाम्भिक	सुकिनाद	शौरवाराजोह।
गर्ग	मशौन् कर्णाटक	भान्दी।
चण्डिका	पैरीवरण	सुन्नायन।
वसु	दिगम्बर	मागीह।
भरद्वाज	हलकर्ण	मूर्धुरम्।
पुण्डरीक	प्राचीनकर्णाटक	व्यामराजनगरम्।
काम्य	पैरीवरण	डरक।
शाम्भिक	प्राचीनकर्णाटक	चण्णवारी।
गोतम	सुकिनाद	विषदुर्गे।
भरद्वाज	सुकिनाद	शिवरमो।

सिवा इसके कुटी, नन्नमशुक् प्रथति दूसरे भी कई घर हैं।

कर्णाट ब्राह्मण उत्तर एवं दक्षिण कनाड़ा, तुलुग,

मनवार, कोचिन और महिसुरमें रहते हैं। इनकी संख्या १० लाखसे अधिक है। 'यह' देशके गठनकी सुत्रो और प्राकृतिये उत्तराखण्डके ब्राह्मणोंकी भांति लगते हैं।

कर्णाट (सं० पु०) रागविशेष। यह मेघरागका द्वितीय पुत्र है। इसकी रात्रिके प्रथम प्रहर गाते हैं। कर्णाटकी स्त्री कर्णाटी, रङ्गनाथी, मलावारी, मल्लिका और औरङ्गी है।

कर्णाटक—१ दाविणाल्यकी एक भाषा। यह प्रधानतः तीन भागमें विभक्त हैं—तैलगु (तैलङ्ग), तामिल (द्राविड़ो) और कर्णाटक (कर्णाटी)। तैलगु उत्तर, तामिल दक्षिण और कर्णाटक भाषा मन्द्राजके पश्चिम-पश्चिम पश्चिमोपकूल पर्यन्त समस्त प्रदेशमें प्रचलित है। यही तीन दाविणाल्यकी प्रधान भाषा हैं। इनमें कानाड़ा, दक्षिण महाराष्ट्र, महिसुर, निज़ाम राज्यके पश्चिम-पश्चिम और विदर्भमें कर्णाटक भाषाका अधिक चलन है। मोलुगिरिमें रहनेवाली बड़गजाति भी शायद प्राचीन कर्णाटी भाषा ही बोलती है। प्राचीन कर्णाटीकी व्याजकल 'हलकसङ्घ' कहते हैं। महाराष्ट्र और महिसुरमें जो खोदित शिलाफलक मिले, उनमें पनेक प्राचीन कर्णाटी अक्षरसे लिखे हैं।

मन्द्राज वा बम्बई प्रेसिडेन्सीके सिविलियन और अन्यन्य गवर्नमेण्ट कर्मचारीकी यह सकल देशीय भाषा सीखना पड़ती है। इनकी शिक्षा देनेकी प्रवन्ध बांधते समय कर्णाटी भाषाके सम्बन्धमें अनेक विषय संग्रह क्रिये और लिखे गये। इसीमें ई० सप्तम शताब्दीकी किशवपण्डितने 'गणरत्नदर्पण' नामक एक धातु सम्बन्धीय पुस्तक बनाया, जो इस भाषाका मूलव्याकरण कहाया है।

कर्णाटी भाषा संस्कृतादिकी भांति वाम दिक्से दक्षिणकी लिखी जाती है। इसके शब्द लिखनेमें जिस जिस वर्ण वा सूताक्षरका प्रयोजन पड़ता, वह पाठ ही पाठ समता है। दो शब्दों वा पदोंके मध्य चावग्रक द्वेद डालनेकी न तो कौयी व्यवस्था और न वाक्य वा वाक्यांशके पीछे किसी चिह्नका व्यवहार है। कर्णाटी वर्णमालामें सब ५२ अक्षर होते हैं। उनमें १६ स्वर-

कानमें टासनेसे कर्षणादरोग चारोप्य होता है।

(चक्रवर्त)

कर्षणामा (सं० स्त्री०) श्रोत्रेन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय, कान और नाक।

कर्षण्टु (सं० स्त्री०) श्लोक कानको बाकी, तरोगा, पात।

कर्षणपत्रक (सं० पुं०) कर्षणपत्रमिष कायति मोमने,

कर्षणपत्र-के-क। कर्षणपानो, याहरी कानका हिसा।

कर्षणपथ (सं० पुं०) कर्षणपथ पन्थाः, पथ। कर्षण-

चिह्न, कानका छेद। कर्षणकुहर ही मन्दके प्रथमका

पथ है।

कर्षणपर (सं० पुं०) कर्षणरुद्धार, कानका जीवर।

कर्षणपरम्परा (सं० स्त्री०) कर्षणानां परम्परा, १-तम्।

श्रोत्रेन्द्रियकी प्राचीन प्रथा, कानको पुरानो चाल।

एकही दूरसे और दूसरेसे तीसरे कानमें क्रमशः

विषयको विस्तृति होनेका नाम कर्षणपरम्परा है।

कर्षणपराक्रम (सं० पुं०) अदभ्यंगयोग्य विविध कष्टो-

ग्रह काव्यविशेष, किसी विषयकी गायरो।

कर्षणपर्व (सं० स्त्री०) महाभारतका अष्टम पर्व।

इस पर्वमें कर्षणके सेनापतिपुत्र पश्य करनिके पीछे

चौनेवाली सजस घटगा वर्चित है। १-१६५।

कर्षणपाह (सं० पुं०) कर्षणरोगविशेष, कानकी एक

बीमारी। अत, अभिघात, विट्टका या पातादि तीन

टीप जुपित होनेपर रक्त प्रथवा पीतवर्ण रस निक-

लता और कर्षणका मध्य प्रतिगय सत्य पद करने

जगता है। इसीसे कर्षणपाह रोग कहते हैं। (हस्त)

मासकी-पतका रस प्रथवा मसुके साथ मीसूय कर्षणमें

टासनेसे कर्षणपाहरोग निवृत्त होता है। फिर हृत्-

ताम तथा मोसूय मिखा प्रथवा जामुन और चामके

नूतन पत्र एवं क्षपित्य तथा कार्पागके मोज समभाग

कूट पीय और रस निकाल कानमें भरनेसे भी कर्ष-

णपाह मिट जाता है। (चक्रवर्त)

कर्षणपासि (सं० स्त्री०) कर्षणपासयति शीमयति,

कर्षणपास-रम्। कर्षणसतिका, बिनागोय, कानकी

बी। (Lobe)

कर्षणपाहो (सं० स्त्री०) कर्षणपासयति शीमयति,

कर्षणपाह-पच्-होय्। १ कर्षणसतिका, कानकी बी।

२ कर्षणभूषणविशेष, कानकी बाकी। ३ कर्षणपाहो-

गत रोग, कानकी बीमें होनेवाली एक बीमारी। यह

पक्षविध होती है—परिपोट, अन्त्यात, अन्त्यात, कु-

वर्धन और परिसेही। (हस्त)

कर्षणपाम (सं० पुं०) सुन्दर कर्षण, सुवर्ण कान।

कर्षणपिगाधी (सं० स्त्री०) कर्षणखरुपं विनष्टि, कर्ष-

पिद् आचयति नागयति स्रवपदमनेन, कर्षण-पिद्-

क्षिप्-पा-वि-विष्-पच्-होय्। देवीविशेष, एक

शक्ति। इसका ध्यान है—

“कर्षा रचतिशोचनी तिनवनी चरिष मन्दीरो,

रम् आरचयतिशोचनी वरावानीपुष्परात्रयुजोन्।

वृषाधिर्दिति कर्षणविनष्टयु पापिपयो चचन,

संशो मरुत्तु कर्षणविशोचनी देवकी ता मुनः ॥”

रक्तवर्ष, रक्तवस्तु, त्रिनयना, चर्वाकृति, सम्भो-

दरो, मन्थ कपुप्यवम् रक्तजिह्वा, पर तथा अमयदानसे

समयकर व्यापृता, ऊर्ध्वमुखी, धन्ववर्षा, जटासासिनी,

अपर हस्त दशमें नरमुण्डहता, चक्षुना, शयनद्व-

वासिनी और सन्धा पेगाचिकीकी लम्पार है।

निगाकास या वर्धरासको उक्त ध्यान समा पूजा

करना चाहिये। दग्ध मत्स्यका वलि निम्नलिखित

मन्त्र पढ़ कर चढ़ाया जाता है—“ओ कर्षणविशोचनी

वधि रक्त वस्तु मम निधि उर उर साधा ॥”

पूजाके दिन प्रातःकास कुछ जप कर मध्याह्न की

एकवार निरामिय जाना चाहिये। प्रातःकासकी

ही बराबर रातकी भी जप करना पड़ता है। ताम्बू-

सादि मिष रातकी पन्थ भोजन नहीं पाते। जपका

दशमांग तर्पण करना चाहिये। निम्नलिखित मन्त्र

एक जप पुराण कर दशमांग होम होता है—

“ओ कर्षणविशोचनी तर्पणमि शो वासा ॥”

प्रभावमें दशभाग तर्पण कर कर मांगना चाहिये।

यन्त्रपर चन्द्रमन्थे सुसुवेत्र चना दृष्टदेवताकी पूजा

करना पड़ती है। चाकाममें दृष्टारादिकी भाति मन्त्र

ठठने और दीर्घे पन्थिमिषा भक्तकी पर साधकका

कार्य सिद्ध होता है।

कर्षणपुट (सं० स्त्री०) कर्षणपुटम्, १-तम्। कर्ष-

णपुट, कानका छेद।

२ वर्षों पर धीरे ३८ ब्यक्त है। किन्तु विद्वत् कर्णा-
टोके ३० ही वर्ष रहते हैं। बाकी ८ वर्ष संरक्षित
गर्भोका उच्चारण निकालनेकी बनें हैं। संस्कृतादि
भाषाकी भांति कर्णाटोमें भी यद्येद भिन्नदण युद्धाक्षर
विद्यमान हैं।

इसके समुदाय गण्य पांच येषोमें विभक्त हैं—१म
मूल कर्णाटो, २य कर्णाटी प्रत्ययादि युक्त संस्कृत,
३य संस्कृत-परिवर्तित, ४यं पदभंग एवं पदभाषा
धीरे प्रम अस्याद्य भाषाके गण्य। फिर कर्णाटो भाषामें
विभिय गण्यके चार भाग हैं—यन्तुवाचक, विगिष्ट,
क्रियावाचक धीरे योगिक। इसमें देवता तथा
मनुष्यको पुंलिङ्ग, देवो धीरे मानवीको स्त्रीलिङ्ग धीरे
समस्त पदपक्षी खोटपतङ्गादि एवं अचेतन वृद्धि
पदार्थको स्त्रीलिङ्ग माना है। वचन दो ही हैं—
एकवचन धीरे बहुवचन। सर्वनामको ८ भागमें
बांटा है—आदिवाचक, पुराणवाचक, अनिपद्यात्मक,
संख्यावाचक, स्थानवाचक, समयपरिमाणवाचक धीरे
प्रत्ययवक। क्रिया सकर्मक धीरे टिकर्मक होती है।
काल पाठ प्रकारका है। द्वितीय पुरुषके पञ्चमा-
दासका रूप ही धातुका मूलरूप रहता है।

इसमें उपसर्गोदि अव्यय, क्रियाविशेषण, समु-
च्चयादि अव्यय धीरे सिक्कयादि चण्य भी होते हैं।
किन्तु भाषामें ही विशेषत रहता, उसको निगकर
देवानेका कोरे उपाय नहीं ठहरता। मूलके योग्ये
दमगुणोक्षर संख्या समझी जाती है।

कर्णाटो भाषाके सम्बन्धमें विविध विवरण समझ-
नेको Dr. Mc Kerrell's Grammar of the
Carnataka language धीरे Caldwell's Dravidian
Grammar देखना आवश्यक है।

२ शिक्षाका एक सार्वभूम। दार्पेतीय संसारको
पट्टेमें समझ पड़त, जे कर्णाटक सार्वभूमि निवासी
संस्कृत ८में २३८ (८८० में ११०८ ई०) तक २१८
वर्ष साक्षर बिदा था। निम्नलिखित निदासाधिय
कर्णाटोकीका नाम सिक्कता है—

नाम राज्यकाय
१ मन्दि ३० ५५

१ मन्दि (मन्दि)	३१
२ मन्दि (मन्दि)	३१
३ मन्दि (मन्दि)	३१
४ मन्दि (मन्दि)	३१
५ मन्दि (मन्दि)	३१
६ मन्दि (मन्दि)	३१

कर्णाटकदेग, कर्णाट देवो।

कर्णाटक मह—एक प्राचीन संस्कृत कवि। (१५५१-१५५२)

कर्णाटक भाषा (सं० स्त्री०) कर्णाटदेगकी भाषा।

कर्णाटदेव—संस्कृतके एक प्राचीन कवि। (१५५१-१५५२)

कर्णाटदेग, कर्णाट देवो।

कर्णाटमिषर (सं० स्त्री०) महाराष्ट्र प्रदेशके विद्व-
कृटादि पर्वतका पहाड़ेग।

कर्णाटिक—महाराष्ट्रप्रान्तका एक प्रदेश। कुमायी पत्त-
रोपमें उत्तर सरकार-पट्टेला पूर्वघाट धीरे करमण्डल
उपकूल कर्णात् समस्त तामिक प्रदेशका भ्रमकर्ममें
गुरोवोयोंने गढ़ नाम रखा है। कर्णाटिक कर्णाटके
कर्णाट सम्बन्धीयवा बोध होता है। किन्तु इस
विस्तोर्दं भूराष्ट्र प्राचीन कर्णाट राज्यके पलायन न
रहा। कर्णाट देवो। वरं इसके उत्तरार्ध तिवनानयो
धीरे कश्मिरी नदीका उपकूलन्य भूमिषण्ड किमी
समय दक्षिण कर्णाट कहलाता था। पाश्चिम्य पर्वतके
त्रिभ कर्णाटिक बताने, वरंमान काकोट (पदकोटु),
मदुरा धीरे तथोर राज्य उमीके पलायन पाते हैं।

पलायो-गुरुके समय कर्णाटिकमें चंगरेण कई बार
पड़े थे। यमीय साक्षिपात्यमें चंगरेलोके प्रभुधो निमित्त
हड़ पड़ गयो। भीषे उन्न पृथका विवरण देते हैं—

जिन समय साक्षर कालकोके चंगरेलोकी विद्व-
सुन पट्टनिरल वाटमणके पाप ब्रह्मणकी धीरे बड़े-
वमी समय (अग्रे १७५८ ई०) जमान काबियट
नामक मन्त्रालके एक चंगरेण-गीतानी बाकी राजस
नेनेको मद्रासर बड़े। जमान काबियट विषया-
पत्तोके साक्षरता में। उसके मदुरा जोतनेकी विषया-
पत्ती होइने ही चंगरेलोके तदानीमान मद्रासाधिय-
योनि विषयापत्ती पाश्चिम्य कर्मके एक एक मद्रा
मेत टिया। पलायोकी मद्रासे विषयापत्ती पद्व
चंगरेलोका दुर्ग अक्षिणर बिदा था। जमान कर्णाट
पट्ट साक्षर सुनने ही विषयापत्तीकी धीरे जोर पड़े।

कर्णपुत्रिका (सं० स्त्री०) कर्णशष्कुली, कानकी साल ।
कर्णपुर (सं० स्त्री०) कर्णस्य पुरम्, ६-तत् । कर्णकी राज-
धानी चम्पानगरी । पात्रकल इवीभागनपुर कहते है ।
कर्णपुरी (सं० स्त्री०) कर्णस्य पुरी, ६-तत् । चम्पा-
नगरी, भागलपुर ।

कर्णपुष्प (सं० पुं०) कर्णवत् कर्णाकारं कर्णभूषण-
योग्यं पुष्पं वा यस्य । १ मोरटलता, एक वेल ।
२ नीलभिण्डो, काली भाही ।

कर्णपुर (सं० स्त्री०) कर्णस्य पूः पुरम्, ६-तत् । कर्णके
राज्यकी पुरी, भागलपुर । इसका संस्कृत पर्याय—
चम्पा, मानिनी और शोमपादपुः है ।

कर्णपुर (सं० पुं०) कर्णं पूरयति षसहरोति, कर्ण-
पूर-ण् । १ शिरीषवृक्ष, सिरिसका पेड़ । २ नील-
पद्म, काला कंधल । ३ शयोकवृक्ष । ४ कर्णभूषण,
करनफल । ५ वासववृक्ष । यह स्कन्ददि सार रहते और
बालकोंको पीड़ा करते है । ६ मन्दीवृक्ष, एक पीपल ।

कर्णपुरक (सं० पुं०) कर्णं पूरयति भुवयति, कर्ण-
पुर-खुं कर्णपुरं स्तार्ये कन् वा । १ कदम्बवृक्ष,
कदम्बका पेड़ । २ शयोकवृक्ष । ३ तिलक, तिल ।

कर्णपूरण (सं० स्त्री०) कर्णस्य पूरणम्, ६-तत् । तैसा-
द्विसे कर्णका पूरण, तैल वगैरहसे कानका भराव ।
जिहादिकी मादासे मियक्की भली भांति कर्ण भरना
चाहिये । नित्य कर्णपूरणसे मनुष्य ग तो जंचा सुनता
और ग बहरा पड़ता है । रसायसे भोजनके पहले
और तैलायसे खाँखके पीछे कर्णको भरना अच्छा
है । (१५७) २ कर्णपूरणद्रव्य, कानमें छाननेको औषु ।

कर्णप्रपाद (सं० पुं०) कर्णं चक्षुःलिपिहितकर्णं प्रपादः
शब्दविशेषः, ७-तत् । कर्णनादानामक रोगविशेष ।

कर्णपद दो ।

कर्णप्रतिनाह (सं० पुं०) कर्णे जातः प्रतिनाहः
रोगविशेषः, मध्यपदलो० । कर्णरोगविशेष, कानकी
एक बीमारी । कर्णका मल पिघल घ्राण और सुख-
तक भा पड़नेसे कर्णप्रतिनाह रोग समझा जाता
है । इस रोगसे मस्तकके चर्भं भागमें वेदना हुवा
करती है । (भाष्यनिदान) कर्णप्रतिनाह रोगमें खेह
और खेद प्रयोगकर नखादि सेनां चाहिये । (चक्रव)

कर्णप्रतीनाह (सं० पुं०) कर्णं रोगविशेष, कानकी
एक बीमारी । कर्णप्रतिनाह दो ।

कर्णप्रयाग—युक्त प्रदेशके गढ़वाल-जिल्लाका एक ग्राम ।
यह पिण्डार तथा बलकानन्दा नदीके सङ्गमस्थान
(भचा० ३०° १५' उ० और देशा० ७६° १४' ४०' पू०)
पर अवस्थित है । कर्णप्रयाग प्रतिपूर्वसे एक महातीर्थ
माना जाता है । यहाँ गङ्गाके सङ्गममें नहानिसे शय्य
पुष्प मिलता है । हिवालयको जाते समय यात्री इस
तीर्थका दर्शन करते है । यहाँ हिमाचलनन्दिनी उमाका
मन्दिर है । स्थानीय पण्डितोंके कथनानुसार भग-
वान् गङ्गाचार्यने यह देवीमन्दिर बनाया था ।
पहले यहाँ पिण्डार छतरनेके लिये रछीजा भूला
रहा । किन्तु भव लोहका सेतु बन गया है ।

कर्णप्रयागके एक मन्दिरमें कर्णकी प्रतिमूर्ति है ।
किसे किसेके मतानुसार कर्णके नामपर ही इसे
कर्णप्रयाग कहते हैं । यह समुद्रतलसे २५६० फीट
ऊंचा है ।

कर्णप्रान्त (सं० पुं०) कर्णस्य प्रान्तः सीमादेशः,
६-तत् । कर्णकी श्रेय सोमा, कानका छोर ।

कर्णप्राय (सं० पुं०) देशविशेष, एक मुल्क । यह
देश नैर्ऋत दिक्में अवस्थित है । (भगव० ११।१८)

कर्णप्रावरण—जनपदविशेष, एक मुल्क । महाभारतमें
यह जनपद दक्षिणदेशीय कालमुख, कोलमिरि, निपाद
प्रभृतिके साथ उल्लेख है । (भाग० १०७०)

देश्यायलोकें मतमें कर्णप्रावरण मास्य देशसे
पश्चिम पड़ता है । मत्स्यपुराणमें एक चपर कर्ण-
प्रावरणका नाम है । उसी जनपदसे पावनो नदी
प्रवाहित है । (भाग० ११।१८) वह सभ्यतः हिमा-
लयसे उत्तर चलता है ।

कर्णप्रावरण चपने अधिवासियोंका भी बोधक है ।
पायात्य मिंगलिनमने भारतपुस्तकमें कर्णप्रावरणोंका
एनोटोकॉटे (Enotokoitoi) लिखा है ।

कर्णफल (सं० पुं०) कर्णः फलमिव यस्य । मत्स्य-
विशेष, एक मछली । (Ophiocephalus kurrawey)
राजवृत्तमके मतसे यह चञ्चौं और कफर है ।
कर्णफुलो—चट्टामकी एक नदी । यह घचा० २२°

मदुराके युद्धमें उनका पराजय हुआ। किन्तु उन्होंने त्रिचनापल्ली पहुँचते ही फरासीसी सैन्यको उखाड़ डाला। फरासीसी सैन्याध्यक्षने हार कर त्रिचनापल्ली भंगरेजोंको सौंपी। इसी बीच बन्दोबास नामक स्थानके शासनकर्ताने भंगरेजोंको राजस्व देना प्रत्नीकार किया। करनल बालडार क्रम उनके विरुद्ध बढ़े और नगर घेर पड़े थे। किन्तु फरासीसी बन्दोबासके शासनकर्ताका पक्ष ले भंगरेजोंसे लड़नेको अग्रसर हुई, जिससे कप्तान बालडार क्रम अपना अवरोध छठा चरते बने। फिर मराठोंने वहाँके नवाबसे जा राजस्वको चौथका बाकी ४ लाख रुपया मांगा था। किन्तु नवाब उस समय इतना रुपया कहाँ पाते। वह नामा अनुनय विनय करने लगे। प्रन्तकी महाराष्ट्रीय साढ़े चार लाख रुपयेंमें समस्त ऋण निवटानेपर सममत हुई। उस समय पठान-नवाब दक्षिणात्यके सुवेदार और मराठा-नायक सुरारी रावकी अधोनता अधिक मानते न थे। सुतरां उन्होंने भंगरेजोंसे कहला भेजा—हम मराठोंके विरुद्ध आपकी साहाय्य देनेपर प्रसुत हैं। किन्तु भंगरेज उनसे वैसी सन्धि स्थापन कर न सके। कारण उस समय महाराष्ट्र भंगरेजोंसे सद्य व्ययहार रखते थे। इसी प्रकार एक मास भीतनेपर दूसरे मास (जून १७५७ ई०) कप्तान कालियडने फिर मदुरापर चढ़नेको उद्योग लगाया। युद्धमें भंगरेजोंकी विस्तार चति हुयी और प्रथम प्राक्रमणसे कोई बात न बनी। किन्तु कालियड उननी चति छठा भी युद्धसे घान्त न हुये और पर्वी भगस्ताको नगरमें घुस पड़े। फिर उन्होंने शासनकर्तासे (१००००) २० बाकी राजस्व पाया था। इसके पीछे भी भंगरेज मदुरा राज्यके सुद सुद दुर्ग प्राक्रमण करते रहे। किन्तु किसी पक्षपर जय पराजय स्थिर न हुआ।

इसी समय फिर युरोपमें भंगरेज-फरासीसी लड़ पड़े। फरासीसियोंने काउण्ट डि-लाली नामक एक-जन विख्यात सैनिकको सेनाका नायक बना एक दल नौ-सेनाके साथ भारत भेजा। लालीके साथ निजका भी एक सहाय्य बार्देरिय सैन्य था। १७५८ ई०के प्रमेक

मास वह सबको अपने साथ ले भारत पा पहुँचे। उन्होंने भाते छो भंगरेजोंका सेण्ट-डेविड दुर्ग प्राक्रमण किया था। एडमिरल टिभेसकी अधोनक्ष्य बङ्गरेज सेनाने उन्हें रोकनेको किया, किन्तु उसका कोई फल न हुआ। लालीने दुर्ग अधिकार कर मन्द्राजपर चढ़ना चाहा था। किन्तु आवश्यक पर्यं मिलनेसे वह सहाय्य लेसिका तैसा ही बना रहा। फिर पर्यं संप्रदक लिये उन्होंने तक्षोरराज-प्रदत्त ५६ लाख रुपयका तम-सुक चुकानेको दौड़ धूप लगायी, किन्तु उसमें भी कोई सिद्धि न पायी। तक्षोरके राजाने भंगरेजोंकी मन्त्रणामें पड़ रुपया देनेपर तथा विलम्ब डाना था। इसी अवकाशमें भंगरेजोंकी नौ-सेना पा पहुँची। लालीने वाय्य छो सेण्ट डेविड दुर्गका अवरोध छाड़ा था। लालीने किविलूरका एक प्राचीन हिन्दू-मन्दिर तोड़ पूजक ब्राह्मणोंको तोपसे उड़ा दिया। इसी समय फरासीसी सेनानी सुसी निजाम राज्यमें महा-समादरसे रहते थे। लालीने उन्हें बोला भेजा। तुभीके लालीके निकट पहुँचते ही उत्तर-सरकारके फरासीसी अधिकारमें गड़भड़ पड़ा था। बियाखरतनके राजा भानन्दरालने फरासीसी अधिकार प्राक्रमण किया। किन्तु भविष्यत्में फरासीसी प्राक्रमणने राज्यरक्षाकी विन्तापर वह घबरा उठे। प्रन्तको अन्व उपाय न देख उन्होंने बङ्गालसे क्राइवका साहाय्य मांगा था। क्राइवने प्रायश्चक सन्धि ठहरा उत्तर-सरकारसे फरासीसियोंको भगानेके लिये करनल फोर्डको २ हजार सिपाही, ५०० गोरि और ६ तोपोंके साथ राजमहेन्द्रीकी ओर भेजा। राजमें फरासीसी सेनानी कनफताहने उननेही सैन्यके साथ उन्हें हरा सब तोपें छीन लीं। किन्तु फोर्ड उससे दुःखित न हो कनफताहके लोटते ही पीछे दौड़ पड़े। राजमहेन्द्री जा उन्होंने वहाँ किसीको पाया न था। सुतरां वह सत्सैन्य मछलीपत्तनकी ओर बढ़े। वीचमें अनेक स्थल पर भानन्दरालने वाया डालनेकी चेष्टा करागयो थी। किन्तु प्रन्तको (छठौं मार्च १७५८ ई०) फोर्ड अपने दलके साथ मछलीपत्तन पहुँच गये। कनफताहने निजामसे साहाय्य मांगा। निजामने भी साहाय्य देना स्वीकार किया। इधर फोर्डके

३२' ३०' घोर देमां ८२' ४४' पू० पर अवस्थित है। कर्णदुग्धो जलस्नादिके निकलन दक्षिणमुख तन्नीपसागमिं ला गिरो है। इससे दक्षिण कृष्णपर पश्चिम नगर घोर बन्द है। प्रथम गाथा चार है—कामान्द्र, विद्रुही, कवगारं घोर रद्वियाह।

कर्णकुक्षीके उत्पत्तिस्थान पर नीलकण्ठ नामक मिषविक्रम प्रतिष्ठित है। इस नदीमें मन्वानिसे पुष्टा जाता है। (भरिच ४८८७७।३।१)

कर्णवन्दनाकृति (सं० स्त्री०) कर्णबंधके पनतर कर्णके वन्दनाकृति। यह पद्यदम विध होती है— १ नीमिसन्धानक, २ उत्पलभेद्यक, ३ वज्रक, ४ पाषाण्डिम, ५ मण्डकपर्ण, ६ चाहाय, ७ निर्बेधिम, ८ व्यायो-विम, ९ कपाटसन्धिक, १० चर्पकपाटसन्धिक, ११ मंसिम, १२ शीमकपर्ण, १३ वसोःकर्ण, १४ यष्टिकर्ण घोर १५ काषौटक।

कर्णभूषण (सं० स्त्री०) कर्ण भूषयति, कर्ण-भूषण्य। १ कर्णतद्धार, कामका जेवर। २ चमीकण्ठय। ३ नामकेयर।

कर्णभूषा (सं० स्त्री०) कर्ण भूषयति, कर्ण-भूषण्य-टाप्। कर्णभूषण, कामका जेवर।

कर्णसङ्कर (सं० पु०) मस्त्वभेद, एक महती। (Silurum unius)

कर्णमन (सं० स्त्री०) कर्णस्य मनम्, १-तत्। कर्ण-गुण, घूँट, कामका मेल।

कर्णसुकर (सं० पु०) कर्ण सुकरः दण्डे दध, उपमि०। कर्णान्द्वार विमेष, कामका गाथा।

कर्णसुष (सं० स्त्री०) कर्णके बधीमण्य, कर्णके पीछे रहनेवाली।

कर्णसूत्र (सं० स्त्री०) कर्णस्य सूत्रम्, १-तत्। कर्णका सूत्रदेम, कामकी जड़। २ कर्णरोगविमेष, कामकी एक बीमारी। इसमें कामकी जड़ सूत्रतो है।

कर्णसूषीय (सं० स्त्री०) कर्णसूष-टम्। कर्णसूत्र सम्बन्धीय, कामकी लहके सुनात्रिक।

कर्णसदक (सं० पु०) कामकी भोगरी भिक्षो। यह चण्डि-पर चढ़ा रहता है। इसी पर जब कल्पित पापुका पापात लगना, तब कौनको मन्त्रका प्राण उभरता है।

कर्णमोचक (सं० पु०) कर्णस्योटा, कामकी बी। कर्णमोटा (सं० स्त्री०) कर्णरुण, कर्णका यैङ्। कर्णमोटि, कर्णकी ईको।

कर्णमोटी (सं० स्त्री०) कर्ण कर्णोपवर्तितं रोगरिमेय मोटयति मागयति, कर्ण-मुट्-रन्-टोप्। घामुष्ठा देवे।

कर्णमोरट (सं० पु०) कर्णस्योटा, एक धेन।

कर्णमुनमकीर्ण (सं० स्त्री०) मृत्युनामकर्मिण्य, नाथकी एक थाम। इसमें कर्णदण्डकी पुमा चार्मके सन्धय जाते है।

कर्णयोनि (सं० स्त्री०) कर्णः योनिः स्थानमस्य, कर्णो०। १-कर्णपादा, काममें रहने जायक। २ कर्णसे सपथ, कामसे वेदा।

कर्णरभू (सं० पु०) कर्णस्य रभूः, १-तत्। कर्ण-गत छिद्र, कामका छेद।

कर्णराज—गुनराजके अन्विक्रमशादयाने एक राजा। यह भीमराजके एक पुत्र थे। १००३ ई०की भीमके सुर्गागेरुप करनेसे इतपर राज्यका मार पड़ा। गामन-नीतिके-मुचधेराज्यके सामन्त घोर चार्मवर्ती राजा

कर्णराजके वसीभूत हुये। इसीने उपमिं विमुक्त ही कदम्बराल जयकेभीकी कन्या मयातज्जदेनेसे विवाह किया। प्रथम पुत्र न होनेसे इसीने कर्णदेवीका ध्यान लगाया था। फिर कर्णके चर्मे मयातज्जदेने

पुत्रपती दुर्गे (१०८३ ई०)। लहावस्थामें इसने चपमिं पुत्र जयसिंहका राज्य सौव बालमय चयलमन किया।

कर्णरोग (सं० पु०) कर्णस्य कर्णजातो रोगः। कर्ण-व्याध, कामकी बीमारी। यह रूच प्रकारका होता है—कर्णगुण, कर्णनाद, बाधियं, कर्णसोड, कर्णवाध, मन्ववण्ड, कर्णगुण, कर्णप्रमोसद, कर्णकपर्ण, कर्ण-पाह, पुतिकर्ण, ४ प्रकार चर्म, ७ प्रकार चर्मद.

४ प्रकार माय घोर २ प्रकार विद्रुधि। (१८०-१८५५)

कर्णरामयतिबंध (सं० पु०) कर्णरामायणं पतिवेषः मयनेमाया-उम, कर्णो०। १ कर्णरोगविच्छेदा, कामकी बीमारीका इलाज। २ सुसुनर्महताका एक चर्माय।

कर्णरामविज्ञान (सं० स्त्री०) कर्णगत व्याधिवा- १-तत्, कामके होनेवाली बीमारीकी जाति।

गोरे सिपाई बाकी बचन दोर मल्लोपनाथकी मृतका
 पंम न पामेके विगड्ड पड़े। किन्तु मित्रामको फौज
 टग कोम दूर रह जाने सुन वह निराशा हुये। फौज
 मल्लोपनाथ तुम अधिकार कर बैठे। मित्राम फरा-
 मोमी फौज पामेकी राह देखते थे। फरामोमी रत्न-
 नरी कुम्भार चाये। किन्तु फौज उत्तरगकी पुर
 हिमाले न पाये। मित्रामने फरामोमिठोमे चिट्ठ
 पदना स्वां वनामेकी चंभरत्रोके माय मत्रि पर की।
 वरमे चंभरत्रोके विरजान पार माय रूपये पाठके
 उपकुल भुममन्त्रि सह मल्लोपनाथ नगर मिलने,
 भविष्यतमे लया नदीके उत्तर फरामोमिठोकी कोर
 कोठी न रहने या भूमि दोर सुदेदारकी उपमे काममे
 कोयो फरामोमी न रचनेको बात ठहरी।

भाकी मल्लोपनाथ चररोध मोड चल दिये।
 चंभरत्रोके पाठमिरल पोकोक दोर फरामोमिठोके
 काउण्ट डि पामि करमण्डल उपकुलमे लख भोजनके
 माय उपमित थे। पोकोकने उपमे चोरमे दो बार
 पामिठो पाठमय विद्या। पामि टर हर पुदिपेमे
 भाग गये। फिर वहा भासोमे फलहार नानेपर वरु
 मरिच उरुको माह मेला पड़े। भाकीका बल इममे
 थरा था। किन्तु कर्पोटिकमे नवाय वाद साहबका
 मय्य हुआ। फरामोमी उत्तमे एपेदुत राजा पाठको
 व गोठिये। नवाय मात महोवर धेकनेको पेशीकमे।
 भाकी इममे पाठ हुये। मुदकद पको पाकोटके
 माणकको थे। वरु इपुगत वरनेकी भासोमे
 मनावापुत्रक कथा—(१०००) २० से इम पाकोट
 लेमके मय्यत थे। मुदकद पकी वरुमे मात गये।
 कामेके वरुमे मुम नगर टपक किया। पाकोट लेमे
 देमे वर विद्विपट दुमे पामेके पायोवनेमे वने।
 किन्तु चंभरल मन्नामके निकट फरामोमी राण्य
 कर्वा वीमे वीते थे। वरुमे विद्विपट दुमे वेकादि
 नेन सुवसात किया। कामेके मन्नाम अधिकार कर
 वरुनेको वरुन वरु न पाया। वरु भी वर माहम-
 दुमेके निके टर वरुन इपुमेके वरुने दिवपर माय
 मन्नाम वेरनेकी चाये वटे। मन्नाम वर पाठमय
 वरुनेकी मय्यत था। किन्तु वेकादिमा अधिक न

रथो। ८ वनाद फरामोमी भेजाथा चररोध चला।
 १०१६ ई०की १२वीं पारोकी मन्नाम जाता जाता
 देखा गया। किन्तु वरुमे समय चंभरत्रोकी कोरमा
 या पदुकी। फरामोमी भी पायाटिके अभावे
 पाकोटकी मोट पड़े।

पहरेकीको मन्नामपदमे पाप दोर मेल्का
 पायाय मिमता था। किन्तु फरामोमी पुदिपेमे
 कोर पायाय न पामेवर विमकुम वेट रहे। १०२१
 मितरको फरामोमी गो-मेमाके कुड पंमको तिम-
 कमकोके निकट पामे दो पहरेन भेगामी पोकोकने
 वरुमड किया। फिर फरामोमी गो-मेमाका पद टन
 कावण्ट पामिके वधोम चार भाग वरुनेके रसादि
 दोर मेल्कादि मे पदुका, किन्तु भारतपरमे लत-
 रनेका पादिग न पामे पदुत चला गया। इमे वीव
 वरुदीवाम पहरेकोमे पाठमय किया दोर १०२०
 ई०की कुटने फरामोमिठोमे वरुन किया। फरामोमी
 वरुमि चारमे वगे। वरुदीवामके मुममे वरुमि वरुदी
 वने थे। कुटने फिर पाकोट तीन वरुम लान
 अधिकार किये। फरामोमी कुड भी बिगाड न गये।
 माथे माभके मय्य उपकुल पर काभिवट दोर पुदि-
 पेरीकी कोर फरामोमीपैठा दूरमा कोयो अधिकार
 न रहा। भाकी वरु या मेल्मापाय न या मका
 पतिवय्यत वरुमे दोर पनको महिपुके वीटर वरुनेमे
 मदद मांगने वगे। वीटर वरुमे वीरुन वरुने, किन्तु
 वरुमा किमी कारण वरु गोम सुगव्यको मांग
 वरु दिये। सुगमी फरामोमिठोका कोयो वरु-
 कर न वरु। इपर मितर मन्मने फरामिठोकी
 मय्यने वरु वराया था। किन्तु कामेके वरुमा वरुमे
 मिमरको पहरेकोमा मिरि पाठमयकर मन्मनेको
 सुदता वरुमे पाठम किया, किन्तु कुटने मय्यने वरु
 मित दोमा वरु। कुटने फिर पुदिपेरीकी वेरु वरु।
 मन्मा दुममे वरुका वभाव पाया। दो दिमके
 अधिक वरु न वरुने देव कामेके दुम कोर मन्ना-
 मके राजा माहमके निकट पाठमय वरुका।

इमे मन्नाम फरामोमी कादुमके माणमे वरु था।
 कर्पोटिकके मय्यका वरुने मियादर दोर मिकि माणक

कर्ण (सं० त्रि०) कर्णः कर्णशक्तिरस्यस्य, कर्ण-
लक्ष् । प्रमस्त अथपशक्तिविशिष्टः, पश्ची तरङ्ग सुन
सकनेवाला, जिसके कान रहे ।

कर्णस्नानस्कन्ध (सं० पु०) स्कन्धस्थितिभेद, कन्धके
रहनेकी एक हालत । नृत्यमें स्कन्धकी सरल वना और
ठठा कर्णके निकट नानेसे यह स्थिति हो जाती है ।

कर्णलता (सं० स्त्री०) कर्णस्य लता इव, उपमि० ।
कर्णपानी, कानकी ली ।

कर्णलतिका (सं० स्त्री०) कर्णस्य लता इव, कर्ण-
लता स्त्रायै कर्णटाप भूत इत्यम् । कर्णपानी, कानकी
ली । (Lobe of the ear)

कर्णवंश (सं० पु०) कर्णः कर्णकृतियत् वंशो यन्न,
षड्वी० । मध्व, मसिका जंजा टाट ।

कर्णवत् (सं० त्रि०) कर्णः प्रमद्वयेन पस्यास्ति, कर्ण-
मतुप् मस्य वः । १ दीर्घकर्ण विशिष्ट, बड़े कानवाला ।
२ कर्णयुक्त, कानवाला । ३ कोमलमाखा वा कीलक
विशिष्ट, किछे या कीलवाला । ४ भरिब्रयुक्त, जिसके
पतवार रहे ।

कर्णवर्जित (सं० पु०) कर्णेन अथेन्द्रियेण वर्जितः
हीनः । १ सप, साप । इसके पृथक् कर्णन्द्रिय नहीं
होता । (त्रि०) २ कर्णहीन, कानकटा । ३ वधिर,
बधरा ।

कर्णवर्ग (सं० पु०) मध्यविशेष, एक मन्त्री । यह
वृत्त, गोत्र, ज्ञाप्य और प्रस्तवान् होता है । मांस
दीपन, पाचन, पथ्य, हृथ्य और वल्लपुष्टिकर है ।

कर्णवालिंस—भारतके एक भूतपूर्व मधरनर-जनरल ।
१७३८ ई०की ३१वीं दिसम्बरको इन्होंने जन्म लिया ।
नाम वालेंस कर्णवालिंस था । यही कर्णवालिंस
प्रदेशके द्वितीय आलैं और प्रथम मारलिंस बने ।
पिताके रहते कर्णवालिंस साईं क्रम कहलते थे ।
१७६२ ई०की इनके पिता मरे । पिछपदके पधि-
कारी होनेपर यह इन्होंनेखरके विरुध प्रियपात्र
हुये । शासनके कार्योंमें इन्हें सपतीमुखी समता और
स्वाधीन मत प्रकार करनेको शक्ति थी । जब अमे-
रिका-वासियोंने स्वाधीनताके लिये युद्ध किया, तब
इन्होंने पति एकट्ठा तथा विशेष कोमलके साथ

न्युयार्क, बर्जिनिया, कामडेन, म्वाइएट, कमकट प्रभृति
स्थानको जोत लिया । किन्तु इयर्क नदीके तोर इयर्क
ही नामक नगरके युद्धमें फरासीसी और अमेरिका-
वासी द्वारा एक बार आक्रान्त होनेपर हार कर गयूके
हाथ सद्दल इन्हें बाम समर्पण करना पड़ा । (१७८१
ई०) इन्होंने पराजयसे अंगरेज टोले हुये । १७८२ ई०
की अंगरेजोंने सन्धि कर कर्णवालिंसको छोड़ाया ।
राजाके प्रियपात्र रहनेसे पराजय पाते भी यह विशेष
तिरस्कृत न हुये ।

१७८६ ई०को साईं कर्णवालिंस भारतके मधर-
नर जनरल बनाये गये और उसी वर्ष सितम्बर
मास कलकत्ते पा पहुँचे । यह गान्तलभाव, गम्भीर-
बुद्धि, सुविचारधर्म, लोकप्रिय, महान् हृदय और
लोकहितेयो थे । इनके भाते समय भारतमें युद्ध विप-
दादि कुछ न रहा । किन्तु वारन हेटिङ्गसके शासन
कालकी दुर्भाग्यसे देग भरा पड़ा था । पत्न्याचार
अविचारसे भापामर साधारण चवरा गये और अने-
कानेक देशी राजा विध्वस्त हुये । सुतरां ऐसी प्रवस्थामें
साईं कर्णवालिंस भा और स्रीय स्रमावके मुखे नामा
हितकर कार्य उठा भारतीय प्रजाके विशेष प्रिय बने ।
उस समय बड़े बड़े अंगरेज कर्मचारी तथा सैनिक इस
देगके लोभसे वाणिल्य व्यवसाय चलाते और राजा-
वोंके निकट उपद्रोकन पाते थे । सैनिक मानाविध
उपायसे पुरस्कार ले लेते । गान्तिरवाके लिये कृतज्ञता
ही सेन्ध रखा जाता था । साईं कर्णवालिंसने यह
सकल कुप्रथा उठायो । इन्होंने सैनिक और अन्य-
विध कर्मचारिके लिये वितनका प्रथम बांवा था ।

लखनऊके नशाबसे लो सन्धि हुयी, उसमें अनेक
अनोति और असहज रीति रहो । इन्होंने पुनर्भार
उन्न विपयको विवेचना लगायी और यह बात
ठहरायो—सोमान्त प्रदेशमें सेन्धस्यके लिये नशाब
प्रतिवर्ष ७४ लाखके बदेसे ५० लाख ही रुपये-देगे ।
फिर उनसे दूबरे विषयपर लिया जानियाला सब रूपया
बन्द कर दिया गया । नवाबकी अपने राज्यमें आधीन
भाबसे शासनकार्य चलाके समता मिली ।
पहले हैदराबाद राज्यमें निजामसे गुल्फर सर-

स्यान् फरासीसियोंके अधिकांशमें रह गया। कुछ दिन पीछे अङ्गरेजोंके यह भी हस्तगत हुआ।

कर्णाटिका (सं० स्त्री०) कर्णाटो स्वार्थे कन्-टाप ङ्रस्त्वः। कर्णाटो देवो।

कर्णाटी (सं० स्त्री०) कर्णाट-ह्रीप। १ कोई रागिनी। यह मालव राग वा कर्णाटकी स्त्री है। इसके गानिका समय रात्रिके द्वितीय प्रहरकी द्वितीय चट्टिका है। २ हंसपदीचुप, एक बेल। ३ कर्णाटदेशकी स्त्री। ४ अनुप्रास विशेष। शब्दालङ्कारमें कवर्गका अनुप्रास कर्णाटी कहता है। ५ कर्णाटकी भाषा।

कर्णाट्ट (सं० स्त्री०) कर्णः तिर्यगेखाकारवान् इव अट्टम्। गृहविशेष, किसी किसका मकान्। यह तिर्यक्-यानकी भाँति पाषाणादि फौलाकर बनाया जाता है।

“विभिद्रुको मण्डिभान् कर्णाटमिच्छपयि च।” (भारत, वन, २६३ ब०)

कर्णादेश (सं० पु०) कर्णालङ्कार विशेष, कानका एक गहना।

कर्णातुज (सं० पु०) कर्णस्य अनुजः, कर्ण-अनु जन्। कर्णके छोटे भाई युधिष्ठिर।

कर्णान्तिक (सं० त्रि०) कर्णसमीपस्थ, कानके पास पड़नेवाला।

कर्णान्दु (सं० स्त्री०) कर्णस्य आन्दुरिव। १ कर्ण-पाली, कानकी ली। २ उच्छ्रितिका, वाली।

कर्णान्दु (सं० स्त्री०) कर्णान्दु-जङ्। १ कर्णपाली, कानकी ली। २ सुरकी, वाली।

कर्णामरण (सं० स्त्री०) कर्णस्य कर्णे धार्ये वा प्राभरणम्। कर्णालङ्कार, कानका गहना।

कर्णामरणक (सं० पु०) कर्णामरणमिव पुष्पैः कायति प्रकाशते, कर्णामरण-कै-क। आरग्वध हृष, भ्रमलतासका पेड़।

कर्णारा (सं० स्त्री०) कर्णः अर्थते विध्यते अन्वया, कर्ण-अ-अ-ज-टाप। कर्णवेधनी, कान छेदनेकी सलाची।

कर्णारि (सं० पु०) कर्णस्य अरिः इ-तत्। १ कर्णके शत्रु, अर्जुन। २ अर्जुनहृष, ३ नदीसर्जहृष, एक पेड़।

कर्णाण्य (सं० स्त्री०) कर्णस्य कर्णयोर्वा अर्पणं। नृति-योग्यविषयमें कर्णका अर्पण, कानकी लगवाई।

कर्णाण्ड (सं० पु०) कर्णस्रोतोगत रोग विशेष, कानका फोड़ा या मक्ख।

कर्णाण्ड, कर्णाण्ड देवो।

कर्णालङ्कार (सं० पु०) कर्णं अलंक्रियते यत्न, कर्ण-अलं-क्र-अ-ज-ज्। कर्णभूषण, कानका गहना।

कर्णालङ्कृति (सं० स्त्री०) कर्णयोरलङ्कृतिरलङ्कारणम्, इ-तत्। कर्णभूषण, कानका गहना। २ कर्णशोभा, कानकी सजावट।

कर्णालंक्रिया (सं० स्त्री०) कर्णयोरलंक्रिया अलङ्कार-णम्, इ-तत्। कर्णशोभा, कानकी सजावट।

कर्णालाल (सं० पु०) कर्णयोरालालः आस्त्रालनम्। हस्तिप्रभृतिका कर्णसंघालन, हाथी वगैरेके कानकी फटकार।

कर्णि (सं० पु०) कर्ण-इन्। १ शर विशेष, किसी किसका तीर। भाये इन्। २ भेदकार्य, छेदाई।

कर्णिक (सं० पु०) १ गणिकाकारिका, कीई पेड़। २ पद्मकीय, कंवलकी खोल। ३ सन्निपातज्वरविशेष, एक बुखार। इसमें दीपत्रयसे तीव्र ज्वर पाता और कर्णके मूलपर शोथ चढ़ जाता है। फिर कण्ठ रुकता, कानसे सुन नहीं पड़ता, खास चढ़ता, प्रसाप बढ़ता, प्रसवे चलता, मोह लगता और देह जल उठता है। (भावप्रकाश)

कर्णिका (सं० स्त्री०) कर्ण-इकन्-टाप। कर्णवलय कानकेदारे। पर भाषा ६१। १ कर्णभूषण विशेष, कानका एक जेवर। इसका संस्कृत पर्याय—तालपत्र, ताड़हू भीर दन्तपत्र है। २ करिशुण्डपत्रभागरूपाङ्गुलि, हाथीकी सूँढ़के पगले हिस्सेकी सगलीकेसी चीज। ३ पद्म-वीजकीय, कंवलका छत्ता। ४ इस्तकी मध्यम अङ्गुलि, हाथके बीचकी उँगली। ५ क्रमुकादिच्छूटांग, छण्डल। ६ लेशनी, कुलम। ७ पणिमन्त्रहृष। ८ पञ्चयज्ञी, मेड़ासांगी। ९ अप्सरो विशेष, एक परी। “मैत्रका गहना च कर्णिका प्रविशसता।” (भारत, आदि १२१६१) १० सेवनी, सफेद शुभाव। इसका संस्कृत पर्याय—गन्धपत्री, तहणी, चारुकेगुरा, महाकुसारी, गन्धोष्वा, लक्षपुष्पा और पतिमच्छला है। भावप्रकाशके मतसे यह बाह्यादकर, शोथल, संपाही, गुकवर्धक, लघु,

हारके खंगरीकोके पक्षीन रक्षनेकी बात ठहरी थी। बहुत दिन तक अधिकांश न पाने पर १८८८ ई०की दफ्तीने कर्णवालिस कनवरीको दूतवत्स्य भेज दिया। किन्तु निजामने कुछ न सुना। साह' कर्णवालिसने पत्नीको दुष्टका भय देना सैन्य प्रेषण किया। निजामने ज्ञाना भावसे वज्रता मानी और टीपू सुलतानके पासमें जितना ही राज्य छोड़ा सैनिकों खंगरीकोके सहायता मंगी। फिर दफ्तीने टीपूको हारनेके लिये एक सुराज भेज कहलाया था—'प्रभूत बिलस खंगरीकोके विवाद चायग्रह नही संघता। एक धर्मावस्थी रक्षते धर्म दोनोके विवाद मिटानेकी दूतरीकी सम्पत्ता मानना बग अच्छा है।' टीपूने उत्तर दिया, 'यदि चाय पपनी कन्वसि हमारा विवाद कर दें, तो हम भी चायकी बात मानें।' निजाम इस पर बहुत बिगड़े थे। फिर दफ्तीका गुह हक न सका। मसूली-पदमकी सन्धिके अनुसार खंगरी निजाम पक्षमें टीपूके रक्षनेपर लीजत हुई। टीपूके साथ विवादका दूधरा भी बाराच था। मद्रासके सन्धिपत्रानुसार तिवाहोइके खंगरीकोका रचित राज्य निर्दिष्ट हुआ। तिवाहोइके राजाने चौकन्दाओसि करझानूर और पायकोटा नामक दो नगर खरीदे। टीपूने यह क्लृप्त न माना और कोनिनाराजका पक्ष से तिवाहोइके गुह ठाना था। साह' कर्णवालिसने तिवाहोइके साहाय्यार्थ परिकर बांधा।

दुष्ट होमि गया। १८८८ ई०की जनरल पावरने उपयुक्त कामका एक प्रदेग अधिकांश किया। प्रथम महिपुरगुह रगासि बन्द हो गया। द्वितीय बार (१८८१ ई०) साह' कर्णवालिस स्वयं भ्रमपति बन सहने बने। इस गुहमें टीपू हारे थे। किन्तु दफ्तीने चायके दमार्थसे मसूली न मिले और सन्धि दीदि कोटना पड़ा। पत्नीको सगाठके साहाय्यी फिर हुए बला। टीपूने चाय को सन्धि खरी ली।

महिपुरमें सतकार्य हो दफ्तीने सामनविधिसे दरबारपर मन रगटा। उस समय हर सैनिक प्रवृत्त बहुत विगुहल था। पत्नीवरने पैसापय करा नृसिंहा से कर ठहराया, पत्नी बराबर बला पाला। हर सैनिकों साह' पंजाबकाम

पत्नीवार देवाने थे। साह' कर्णवालिस रणभर विपरीत अनुभवान सने लगे। पत्नीको ताज़्जुदारोके दफ्तीने एक नियम किया था। यह दफ्तीमाना बन्दोबस्त कहाता है। किन्तु इन नियममें भी पत्नीका देव साह' कर्णवालिसने जमोन्दारी हो विरहावके जिसे मूलामित्य दिया और गवरमिण्टके साथ करका प्रवृत्त किया। यही विरहायो बन्दोबस्त कहाता है। १८८१ ई०की २२वीं मार्चको यह बन्दोबस्त हुआ था।

पहले विचारक और तहसीलदार या कनेस्टेबल काम एक ही व्यक्ति करता था। दफ्तीने इन दोनों कार्यपर दो अलग व्यक्ति रखनेको पत्राया मंगी। साह' कर्णवालिसने भी जिसे जिसे हीमंगो पदासत छोली था। फिर दोनो पदासतको पयोक्त सुननेको दूतरी चार पदासते बनीं। पयोक्ती पदासतके विचार जखनेका मार कलकत्तेको सदर दोनो पदासतपर चाया। फिर निजामतको पदासतके पारदनामन भी बहुत कुछ बदल गये।

१८८१ ई०के पयोक्तर माम यह प्रदेगको खरी थे। इनके वीके दफ्तीमाना और विरहायो बन्दोबस्तको प्रया सार करनेवासी सर जान घोरेम भारतके सासनका मार उठाया।

देममें जाकर साह' कर्णवालिसने सदाप्रमान और साह'म उपाधि पाया था। १८८८ ई०की यह चायनेण्टके सामनहती बने। वहां भी साह' कर्णवालिस नाम भावसे विद्रोहादि मिटाने पर मोक्ष मिले थे गये। १८८१ ई०की राजदूत बन यह प्रान्त (खारीग) पहुँचे थे। दफ्तीको सम्पत्तासे यजिनाही सन्धि स्थापित हुई।

१८८१ ई०की यह फिर भारतके राजपतिमिधि बने थे। यही पगला माम पदु'पति को साह' कर्णवालिस एक दल सैन्यके अधिनायक ही पदमोत्तर प्रदेगको खरी और पत्नीवर मान माजीपुर पोंडिन पड़े। जहां मासकी २२वीं तारीखको इनका मृत्यु हुआ। माजीपुरमें साह' कर्णवालिस की धर्म बनी है। कर्णवट (सं० खी०) कर्णवल कर्ण जाता था किट। मल, खानका मल।

त्रिदोष तथा रक्तमांसक, वर्षाकार, तिष्ठ, कटु, चौर
 परिपाककारक होती है। ११ योनिरोगविशेष,
 चौरतोके विनाशकी लक्षण होनिवासी एक बीमारी।
 इसमें योनिपर कश्चिकाकार मांसपट्टि पक जाता
 है। प्रसवमें पूर्व अल्पपुत्रक समय क्षीरमें खावनेपर
 गर्भके द्वारा वायु एक श्रेया तथा रक्तमें मिश्रता,
 जिसमें यह रोग लगता है। (५२५)

इस रोगमें गर्भप्रकार कफमांसक पोषण व्यस्येय है।
 कुष्ठ, विषमो, पक्षित्तकी कोमल माया चर्मात्
 अथवा चौर मन्थ्य अथवा हाथके सूत्रमें पीछ बत्ती
 बजाके चौर योनिमें प्रविष्टकर लगानेमें कश्चिकारोग
 निवारित होता है। (५२६)

१२ दाहकपीडा, टट-गदोद ।

कश्चिकाचल (सं० पु०) कश्चिकायां स्थितः पक्षलः ।
 सुमेदु पर्वत । "वशा मन्थामरुजिह्वः पक्षः चौरस्यः कुन्दिरीणो
 वेरुणोद-रुच्युषः कश्चिकाचलः सुवन्दकल्पस्य ।" (अथर्व ३।१०)

कश्चिकाद्रि (सं० पु०) कश्चिकायां स्थितः पट्टिः । सुमेदुपर्वत।
 कश्चिकापर्वत, कश्चिकाचल इति।

कश्चिकार (सं० पु०-स्त्री०) कश्चि भेदनं करोति,
 कश्चि-ल-चक्ष । १ हाथविशेष, क्षिप्यार, कलकचम्या ।
 इसका मूलकृत पर्णव-द्रुमीपल, परिष्कृत चौर तृतीय-
 पदम है। २ कश्चिकारपुष्प, कलकचम्याका पुष्प।
 " कश्चिकारो वक्षि कश्चिकारः " (इतरा ५०) ३ पारम्प्य
 विशेष, छोटा पमलताम। इसका मूलकृत पर्णव-
 राजतद, मपच, छतमासक, सुजम, चम, परिष्कृत,
 व्याधिरिदु, विषमोलेक चौर कषारम्प्य है। यह एक
 विमल हृद्य है। जब दीर्घ चौर पारम्प्य लक्षण होता
 है। इसका गुदा गुणधर्म लगता है। रात्रिनिपट्ट नि
 मतागुणार कश्चिकार मांसक, तिष्ठ, कटु, लघु चौर
 कक्ष, शूल, अहरकमि, मीठ, मद्य तथा गुणधर्म है।
 कश्चिकारक, कश्चिकार इति।

कश्चिकारविष (सं० पु०) शिवः । शि-
 कार काचक विष है।

कश्चिकारिका (सं० स्त्री०) कश्चिकाचल, १०
 कश्चिकी (सं० पु०) कश्चिका गुणधर्म

अप्यासि, कश्चिका-रनि । इसी, शूलकी उतर्भ
 रचनेवाला शरीर।

कश्चिन (सं० ति०) विरुद्धवर्तः, बहु कामोवासा।
 कश्चिमी (सं० स्त्री०) योनिरोगविशेष, चौरनेके
 विनाशकी लक्षण होनिवासी एक बीमारी। (Division
 of the uterus or Polypus uteri) । कश्चिकारक-

कश्चिन (सं० ति०) कश्चि प्रायस्त्वेन अप्यासि, कश्च-
 रकक्ष। उपरि ५२५। ३। १०। दीर्घकक्ष, बहु कामोवासा।
 कश्चिकार (सं० पु०) गरविशेष, किमी क्षिप्रका तीर।
 कश्ची (सं० पु०) कश्ची पक्षी पारम्प्य, कश्च-रनि।
 १ सप्तवर्ष पर्यंतके मज पर्वत विशेष, एक पहाड़।

" विष्णुश्च वेमकश्च विष्णो मीरुव च ।
 येनः कश्ची च द्रुवी च कश्ची च कश्ची च " (शतलक्षे)
 २ वाचविशेष, क्षिमी क्षिप्रका तीर ।
 " कश्ची कश्ची च कश्ची च कश्ची च " ।
 कश्ची मीरुवके मज पर्वत इति । (शिवा- ५। १०)
 " कश्ची च कश्ची च " (पौर)

३ पारम्प्यहृद्य, पामलतामका पिट्ट । ४ मणिक-
 रिका, कोरि पिट्ट । ५ कश्चाम्य, कलपट्टी। ६ कश्च-
 धार, मांभी, मन्नाह । (ति०) ७ प्रमथकक्ष, बहु
 कामोवासा। ८ कश्चिपुल, क्षिमेके क्षान रक्षे। ९ क्षान्ति
 कोरि शीत रक्षे वृषा। १० क्षीमी मटकमी कोलुवासा,
 दामलदार। ११ पट्टिहृद्य, मंडीला। १२ पतवारवासा ।
 कश्ची (सं० स्त्री०) कश्च-होय् । १ वाचविशेष, क्षिमी
 क्षिप्रका तीर । २ मूलद्रव्यको माता। ३-४-५-६-७-
 कश्चीमान् (सं० पु०) कश्ची वाचविशेषवाहाः क्षमी
 इत्यस्य, कश्चिन्-मगुप, मन्नायां शीतः । पारम्प्य,
 पामलताम ।

कश्चीर (सं० पु०) कश्चः कामोवासा लक्षणः
 अप्यासि वाकलस्येन, कश्च-रनि; कश्ची कामो रचने नि
 कश्ची (सं० पु०) कश्ची पक्षी पारम्प्य, कश्च-रनि।
 कश्ची (सं० पु०) कश्ची पक्षी पारम्प्य, कश्च-रनि।

पादमौल्य चला मन्थने

कर्णसुत (सं० पु०) कर्णोः सुतः, इ-तत् । मूलदेव,
चौर-शास्त्रकार ।

कर्ण सुरसुरा (सं० स्त्री०) कर्ण सुरसुरा मन्त्रपाकयन्त्रम्,
निपातनात् सिद्धम् । १ पक्षे इतितादवच । वा ४३।४८ । गुप्त-
मन्त्रधरा, कानाफूसी ।

कर्णेलप (सं० त्रि०) कर्णे जपति प्रपकायं यथातथा
भ्रतुचितं प्रबोधयति कर्णे लगित्वा परापकारं वदति
वा, अलुक्समा० । १ गोपनमें उचित विषय पर
परामर्शदाता, छिपकर वाजिव सलाह देनेवाला ।
२ परके अमित विषयका मन्त्रदाता, सुगुप्तखोर ।
इसका संस्कृत पर्याय—सूचक, पिशुन, दुर्जन और
खल है । इनमें कर्णेलप एवं सूचक दूसरेका अप-
कार बताता और पिशुन, दुर्जन तथा खल परस्पर
भेद लगाता है ।

कर्णेलपमन्त्र (सं० पु०) विघनाशन मन्त्रविशेष,
जुद्धर उत्तारनेका एक मन्त्र । उक्त मन्त्र यह है—

“ओं हर हर नीलवीरयेतामसङ्गमयावस्थितस्येन्दुकुसुंमकदपाय
विषमसंहर उषसंहर हर हर हर गति विषं गति विषं गति विषं
गच्छिरे उच्छिरे उच्छिरे ।” (अविषं विना)

इस मन्त्रको बार बार पढ़े तासुमुख शीतल
जलसे कुछ बार सींचनेपर विष उत्तर जाता है ।

कर्णैटिरटिरा (सं० स्त्री०) गुप्तपरामर्श, कानफूसी ।

कर्णैन्दु (सं० पु०) कर्णैयोः कर्णे वा इन्दुरिव,
उपसि० । बर्धचन्द्राकार कर्णासङ्कारविशेष, कानका
एक गहना ।

कर्णैन्द्रिय (सं० पु०) श्रोत्रेन्द्रिय, कानका शक्त ।

कर्णैत्पल (सं० स्त्री०) कर्णस्थितमुद्रापलम्, मध्य-
पदस्त्री० । कर्णस्थित पद्म, कानका कंबल । २ एक
प्राचीन कवि ।

कर्णैपकर्णिका (सं० स्त्री०) कर्णैदुपकर्णोऽस्त्यस्य,
कर्णैपकर्णै-ठन् टाप् भत् इत्वम् । १ कानाफूसी करने-
वाली स्त्री ।

कर्णैर्ष (सं० स्त्री०) कर्णैरोम, कानका बाल ।
(पु०) कर्णै ऊर्पाधिकं लोम यस्य, बहुव्री० । २ मृग-
विशेष, एक हिरन ।

“कर्णैर्षेऽपदवाकीर्णैर्षुः इहनाभिभिः ।” (भागवत ३।११०)

कर्णैर्षा (सं० स्त्री०) कर्णैर्षं देखी ।

कर्णै (सं० त्रि०) कर्णै भवः, कर्णै-यत् । शरीरपरवाच ।
वा ३।३।४४ । १ कर्णसे उत्पन्न, कानसे पैदा । २ कर्णके
योग्य, कानके लायक । कर्मणि यत् । ३ भेदके योग्य,
छेदने काबिल ।

कर्त (सं० पु०) कर्तं भावे षप् । १ भेद, काट ।

“सृष्ट्यु- विद्यया यतो यमकर्तुर्नितिं जगत् : स्रष्टादिभ्य निपातउनि-
भक्तिः ।” (भागवत ३।४।४८) ‘कर्तुर्भेदः तत्रिराखी इकतेः ।’ (शेषर)

(वै०) २ गर्त, गड्ढा । (त्रि०) कर्तयति भिनक्ति, कर्तं-
अच् । ३ भेदक, तोड़ने-फोड़ने या चीरने-फाड़नेवाला ।

कर्तन (सं० स्त्री०) कर्त् भावे ल्युट् । १ छेदन, काट-
छाट । २ कतार, छूत कातनेका काम । ३ शिथिल
कारनेका काम । करणे ल्युट् । ४ काटनेका अन्त,
तराशनेका शौजार । कर्तरि ल्यु । ५ छेदकारक,
काटनेवाला ।

कर्तरी (सं० स्त्री०) कर्तन-ङीप् । १ कपाशी, कटारी ।

२ अमृतकर्तनीपयुक्त पख्त, बाल काटने लायक
शौजार । छुरे, कौशो घगे,रहको कर्तनी कहते हैं ।

कर्तव, करतव देखी ।

कर्तरि (सं० स्त्री०) कर्तु-इन् । काटनेका, पख्त,
तराशनेका शौजार । कर्तो देखी ।

कर्तरि-षाक्षित (सं० स्त्री०) ट्यत्यभेद, किषी किष्मका
नाच । यह एक उत्तमूत करण है । इसमें नर्तक
करण-स्रक्षिकके सहारे उच्छलता है ।

कर्तरिका (सं० स्त्री०) कर्तरी स्यात् कन्-टाप् ष्टल्य ।
कर्तो देखी ।

कर्तरि-चोड़िड़ी (सं० स्त्री०) नृत्योत्तमूतकरण विशेष,
‘किषी किष्मका नाच । इसमें पहले करण-स्रक्षिक
लगाने, फिर उसे खोलते समय उच्छलकर तिरछे पड़े
जाते हैं ।

कर्तरी (सं० स्त्री०) कर्तन्ति, कर्त-पर-ङीप् ; यदा
कर्तं राति, कर्तं-रा-क । १ कपाशी, काती, सोनेके पत्तर
काटनेका एक शौजार । २ अमृतकर्तनीपयुक्त पख्त,
बाल काटने लायक शौजार, छुरा कौशो घगे रह ।
३ सुद करवाल, कटारी । ४ वाद्यविशेष, एक वाजा ।
५ योगविशेष । व्योतिथयाश्चर्तं लिप्या—उम्त्र भयया

कपूर् ररस वा रसकपूर् कक्षातां है। कुष्ठम, चन्दन, कस्तूरी तथा कुङ्कुमयुक्त रसकपूर् सेवन करनेसे फिरङ्ग रोग हटता और अग्नि एवं बलवीर्य बढ़ता है। (भाष्य०)

कपूर् ररस (सं० क्लो०) सरोवर विशेष, एक तासाव।
कपूर् रहरिद्रा (सं० स्त्रो०) स्नानमस्थान द्रव्य, कपूर्-हलदी। यह शीतल, वातल, मधुर, तिक्त और पिचत तथा सर्वकण्डूघ्न होती है।

कपूर् रा (सं० स्त्रो०) कृप-उ-टाप। तरटी, भामा हलदी।
कपूर् रादितैल (सं० क्लो०) तैलविशेष, एक तैल।

कपूर्, भस्मातक, शङ्खचूर्ण, यवचार तथा मनःशिला चार चार तोले तैलमें भक्षी भांति पका २० तोले हरिताल मिलानेसे यह बनता है। इसके प्रयोगसे मरुल योनिरोग आरोग्य होती है।

कपूर् राश्मा (सं० पु०) सपरतविशेष, एक क्रीमती पत्थर। २ स्फटिक, विलौरी पत्थर।

कपूर् रिल (सं० त्रि०) कपूर् री इत्यास्ति, कपूर् कागा-दिव्यात् हल। १. बन्धुष्वठनिष्वादि। वा भाष्य०। कपूर्-युक्त, काफूरी, कपूरी।

कफूर (सं० पु०) कार्यते चिप्यते, क्व-विच्, फल्यते फल फलस्य रः; कार्यमाणः फलः प्रतिविम्बो यत्र, बहुव्री०। दर्पण, पायोना।

कक (सं० पु०) मृगिक, चूहा।

ककूर (सं० पु०-क्लो०) १ पुण्ड्रकेसु, पौड़ा। २ खर्ण, सोना। ३ धसुरहृत्, घतूरीका पौदा। ४ व्याघ्र, बाघ। ककूरी (सं० स्त्रो०) १ श्यामी, मादा गौदड़। २ व्याघ्री, बाघन।

ककु (सं० त्रि०) मिश्रितवर्ण, कबरा, धव्यदार।

ककुदार (सं० पु०) ककुंरिव ककुंः सन् वा श्लेषार्थं मलं वा दारयति, ककुं-ट-णिच्-भच्। १ कौविदारहृत्, लसोड़ेका पेड़। २ श्लेष्मकाक्षन, सफेदकचनार। यह ग्राही और रक्तपित्तमें हितकर है। (राजनिष्यु०) ३ नीलेभिण्टी, तेंदू। इसीसे चाबनूस निकलता है।

ककुदारक (सं० पु०) ककुंरदारवत् कायति, ककुंरदार-कै-क यद्वा ककुंरिव श्लेषार्थं दारयति, ककुं-ट-णिच्-खल्। श्लेषात्क हृत्, बासतेका पेड़।

ककुंर (सं० पु०-क्लो०) ककुंरति गर्वति, अस्मात् अनेन

वा, ककुंर दपे उरच्। मद्रादवप। हृत् १। १ खर्ण, विहिण्ट। २ धसुरहृत्, घतूरीका पौदा। ३ गन्धयटी, कचूर। ४ भामहरिद्रा, कक्षी हलदी। ५ जन, पानी। ६ राचस। ७ पाप, गुनाह। ८ नदीजात निष्याध धान्य, जडहन धान। ९ खर्ण, सोना। १० हरिताल, हरताल। (त्रि०) १० नानावर्ण, कबरा।

ककुंरक (सं० पु०) १ भामहरिद्रा, कक्षी हलदी। २ गन्धयटी, कचूर। ३ निष्याधधान्य, जडहन धान। ककुंरफल (सं० पु०) ककुंरं चित्रवर्णं फलं यस्य, बहुव्री०। साकुरुण्डहृत्, एक पेड़।

ककुंरा (सं० स्त्रो०) ककुंर-टाप। १ कण्ठतुलसी। २ बवरी। ३ सविद्य जसायुका भेद, एक जहरीली जौक। ४ पाटलाहृत्, पाड़रीका पेड़।

ककुंरित (सं० त्रि०) ककुंरौ इत्य जातः, ककुंर-इतच्। चित्रित, चितकबरा।

ककुंरी (सं० स्त्रो०) ककुंर गौरादिव्यात् लीप्। दुर्गा। ककुंर (सं० पु०-क्लो०) ककुंरति गर्वति प्राप्नोति यस्मात्, ककुं-जर्। १ खर्ण, सोना। २ हरिताल। ३ गठी, कचूर। ४ राचस। ५ द्राविडक, कक्षी हलदी। ६ नाना-वर्ण, चितकबरा रंग।

ककुंरक (सं० पु०) ककुंर स्वार्थे कन्। १ हरिद्राम हृत्। २ लघ्य हरिद्रा, कक्षी हलदी। ३ कपूर् हरिद्रा, भामाहलदी।

ककुंरित (सं० त्रि०) ककुंरौ इत्य सञ्जातः, ककुंर-इतच्। नानावर्णविशिष्ट, चितकबरा।

कर्म (सं० पु०-क्लो०) कर्मणि मणिन् प्रथमादि। कार्य, काम। जो किया जाता, वह कर्म कहाता है।

वेयाकरण पण्डित कहते हैं,—
“तत्क्रियामाश्रयत् च तत्क्रियामन्यनमाश्रितं कर्मत्वम्।”

जो क्रियाका आश्रय न होत भो क्रियाजन्य फल-विशिष्ट रहता, वही क्रियाका कर्म ठहरता है। जैसे—

वह भोजन बनाता है। यहां कर्तृसमयेत पाकक्रियाका अनाश्रय भोजन पाकजन्य विक्रिप्ति रूप फलविशिष्ट होता है। इससे उक्त भोजन कर्म सत्त्वका नष्ट लगता है। यह कर्म तीन प्रकारका है—निर्वर्तन, विकार्य और प्राप्य। जो अविद्यमान वस्तु उत्पत्ति

विदोष तथा रक्तनाशक, वर्षाकर, तिल, कटु और परिपाककारक होती है। ११ यानिरोगविशेष, औरतोंके पेशाबकी जगह होनेवाली एक बीमारी। इससे योनिपर कर्षिकाकार मांसपत्रिय पड़ जाता है। प्रसवसे पूर्व प्रतुपयुक्त समय औरतमें कांखनेपर गर्भके द्वारा वायु रुक ज़ेपा तथा रक्तमें मिलता, जिससे यह रोग लगता है। (चरक)

इस रोगमें सर्वप्रकार कफनाशक औषध व्यवस्थित है। कुष्ठ, पिप्पली, अर्कहृषकी कोमल भाषा पर्याप्त अथवा और मृन्मय लवण छागके मूत्रमें पीस बत्तो बनाने और योनिमें प्रविष्टकर लगानेसे कर्षिकारोग निवारित होता है। (चरक)

१२ दाहणपीडा, ददं-गदोद ।

कर्षिकाचल (सं० पु०) कर्षिकायां स्थितः पक्षलः । सुमेरुपर्वत । "यथा नाथामकल्पितः पक्षलः शीघ्रः कुम्भगिरिपक्षी मीरुतोपयामसहस्रावः कर्षिकायुतः कुम्भकचक्रमन्त्रम् ।" (भागवत ३।१।७)

कर्षिकाद्रि (सं० पु०) कर्षिकायां स्थितः पद्रिः । सुमेरुपर्वत । कर्षिकापर्वत, कर्षिकाचल इति ।

कर्षिकार (सं० पु०-स्त्री०) कर्षिं भेदनं करोति, कर्षि-ऊ-अण् । १ हृषविशेष, कनियार, कनकचम्पा । इसका संस्कृत पर्याय—द्रुमोत्पल, परिव्यध और हृषोत्पल है। २ कर्षिकारपुष्प, कनकचम्पाका फूल । "नर्भ्रमन्त्रे" इति कर्षिकायम् । (कुमारभ०) ३ पारश्वध विशेष, छोटा चमलतास । इसका संस्कृत पर्याय—राजतक, प्रयश्च, ऊतमासक, सुफल, चक्र, परिव्याध, व्याधिरिपु, पितावीलक और सघारश्वध है। यह एक विमान हल है। फल दीर्घ और पारश्वध सदृश होता है। इसका मूला लुप्तानेमें लगता है। राजनिघण्टुके मतानुसार कर्षिकार मारक, तिल, कटु, लघु और कफ, शूल, छदरलमि, मेघ, मष तथा शुक्रनाशक है। कर्षिकारक, कर्षिकाचल इति ।

कर्षिकारमिय (सं० पु०) मिव । मिवकी कर्षिकार पत्वन्त मिय है।

कर्षिकारिका (सं० स्त्री०) हरिद्राहृष, हल्दीका पेड़ । कर्षिकी (सं० पु०) कर्षिका यष्टापाङ्गुलिः

पस्यास्ति, कर्षिका-इति । हस्ती, सूडकी उंगली रखनेवाला हाथी ।

कर्षिन् (सं० त्रि०) विवृहकर्षणं, बड़े कानोंवाला । कर्षिणी (सं० स्त्री०) योनिरोगविशेष, औरतोंके पेशाबकी जगह होनेवाली एक बीमारी। (Disease of the uterus or Polypus uteri) । कर्षिकाश्को । कर्षिल (सं० त्रि०) कर्षणं प्राश्रयेन पस्यास्ति, कर्षण-इत्यच् । दुग्दक्षिण इत्यच् । ३।१।१०। दीर्घकर्षणं, बड़े कानोंवाला । कर्षिशर (सं० पु०) शरविशेष, किसी किष्कका तीर । कर्षी (सं० पु०) कर्षी पक्षी पश्वत्यस्य, कर्षण-इति । १ सप्तमयं पर्वतके मध्य पर्वत विशेष, एक पहाड़ ।

"दिग्भान् केन हृष्टच मिषो मीरुदेव ।

पेशः कर्षी च मङ्गी च सर्वे ते सर्वपर्वताः ।" (शास्त्री)

२ वाणविशेष, किसी किष्कका तीर ।

"करोति कर्षिनी यन्तु वन्तु खड्गानि हारत ।

प्रधानि ते विरुधने मरुके धन्यं दापये ।" (विश्वसु० १।१।११)

'कर्षिनी वाणविश्वान् ।' (शीघर)

३ पारश्वधहृष, चमलतासका पेड़ । ४ गणिका-रिका, कोई पेड़ । ५ कर्षपात्रं, कानपट्टी । ६ कर्षधार, मांझी, मज्जाह । (त्रि०) ७ प्रशस्तकर्षणं, बड़े कानोंवाला । ८ कर्षयुक्त, जिसके कान रहें । ९ काममें कोई चीज रखे हुआ । १० टीली लटकती बीजूवाना, दामनदार । ११ पत्रियुक्त, गंडोसा । १२ पतवारवाला । कर्षी (सं० स्त्री०) कर्षण-डोप । १ वाणविशेष, किसी किष्कका तीर । २ मूलदेवकी माता । मूलेदेव इति । कर्षीमान् (सं० पु०) कर्षी वाणविशेषाकारः फनी इत्यस्य, कर्षिन्-मत्तुप्, संज्ञायां-दीर्घः । पारश्वध, चमलतास ।

कर्षीरथ (सं० पु०) कर्षः सामोप्याण स्तन्म्यः पस्यास्ति वाहनत्वेन, कर्षण-इति; कर्षी घामौ रथसे ति दीर्घव, कर्मधा० । १ कौडारथ, छेन्ननेकी गाड़ी । २ मनुष्यके बहन करने योग्य रथ, पादमौके बला सहन लायक, गाड़ी । ३ स्त्रीबहनार्थं वध्याच्छादितं यान विशेष, परदेदार डोसो । इसका संस्कृत पर्याय—प्रवहन, हयन, प्रहरण और हयन है। कर्षीवान्, कर्षीण इति ।

द्वारा प्रकाश पाता, वह निर्वर्त्य कहता है। जैसे—
 यह घटाई बनाता है। यहां घटाई पहले न रही,
 पीछे उत्पत्ति द्वारा पापकामकर प्रकाशित हुई।
 सुतरां घटाईकी निर्वर्त्य कर्म कहते हैं। जो वस्तु
 पहले सत् रहते पीछे अवस्थान्तर पाता, वह विकार्य
 कहता है। जैसे—यह चावल सिंभाता है। यहां
 चावल पहले सत् रहा, पीछे केवलमात्र अवस्थान्तरको
 प्राप्त हुआ। इसलिये चावल विकार्य कर्म समझा
 गया। फिर विकार्य कर्म द्विविध है—प्रकृति-नाश-
 सम्भूत और गुणान्तरोत्पत्ति द्वारा नामान्तरविशिष्ट।
 जैसे—वह काष्ठको भस्म करता है। यहां काष्ठ
 जलने पर भस्म बननेसे प्रकृतिनाशसम्भूत कर्मका
 उदाहरण ठहरा। 'सुवर्णको कुण्डल बनाता है'
 स्थलमें सुवर्णमें गुणान्तरविशिष्ट कुण्डलकी उत्पत्ति
 हुई और गुणान्तरोत्पत्तिमें सुवर्णकी ही कुण्डल संज्ञा
 पड़ी। इसीसे यह गुणान्तरोत्पत्ति द्वारा नामान्तर-
 विशिष्ट कर्मका उदाहरण है। फिर निर्वर्त्य और विकार्य
 भिन्न कर्म प्राप्य है। जैसे—वह सूर्यको देखता है।

मीमांसक दो प्रकारका कर्म बताते हैं—धर्मकर्म
 और गुणकर्म। जिस कर्ममें किसी प्रकारका चट्ट
 उठता, उसे विद्वान् धर्मकर्म कहता है। जैसे अग्निहोत्र
 याग। यह याग करनेसे याज्ञिकके पालामें स्वर्गजनक
 चट्ट जगता और उसी चट्टमें पीछे यज्ञकर्ताको
 स्वर्ग मिलता है। फिर जिस कर्ममें वस्तु संस्कृत
 बनता, उसका नाम गुणकर्म पड़ता है। जैसे वह
 मोड़ि मोचण करता है। यहां मोचणमेंसे मोड़ि
 संस्कृत होता है। इसीसे मोचण गुणकर्म है।

पदकर्म नित्य, नैमित्तिक और काव्य भेदसे तीन
 प्रकार है। जिसको न करनेसे पाप पड़ता, वह नित्य
 कर्म ठहरता है। अग्निहोत्रादि यज्ञ न करनेसे
 ब्राह्मणको पाप लगता है। इसीमें अग्निहोत्र प्रभृति
 ब्राह्मणका नित्यकर्म है। किसी निमित्तके उपलक्ष्य
 किया जानेवाला कर्म नैमित्तिक कहता है। गोवधादि
 पापव्यवर्ध प्रायश्चित्त गोवधादि निमित्तके उपलक्ष्य
 किया जाता है। इसीसे यह नैमित्तिक कर्मके मध्य
 परिगणित है। नित्य तथा नैमित्तिक कर्म न करनेसे

पाप लगने, और करनेसे कोई फल न मिलनेका मत
 कोई कोई पण्डित मानते हैं। किन्तु वास्तविक उक्त
 विषय असूक्त है। कारण नित्य और नैमित्तिक
 कर्मसे पापपय होनेका मत स्मृतिमें कहा है,—

'नित्येनित्तैरेव उपायो दुःखस्यम्' (मीमांसा-परिभाषा)

फलकी कामनासे किया जानेवाला कर्म काव्य
 कहता है। जैसे—कारीर याग। यह वृष्टि कामना-
 शील पुत्र्य द्वारा अनुष्ठित होता है। इसीसे इसको
 काव्य कहते हैं। काव्य कर्म तीन प्रकारका होता है—
 ऐहिक फलक, धार्मिक फलक और ऐहिकधार्मिक-
 फलक। जिस कर्मसे इहलोकमें फल मिलता, उसका
 नाम ऐहिक पड़ता है। इहलोकमें वृष्टिद्वय फल
 देने कारण कारीरियाग ऐहिकफलक है। पर-
 लोकेमें फलोरपादक कर्म धार्मिकफलक होता
 है। अग्निहोत्रादि याग इहकाल किसीको स्वर्गप्रदान
 नहीं करता। उसका फल परकालको ही मिलता
 है। सुतरां अग्निहोत्रयाग धार्मिकफलक है। इह-
 काल और परकाल फलपद कर्म ऐहिकधार्मिक-
 फलक होता है।

गोवधनाचार्य ज्ञानसहचार्यसे इस कर्मको मुक्तिका
 कारण बताते हैं। किन्तु 'चदेतवादी बह्मराचार्यका
 दूसरा मत है। उनके कथनानुसार ब्रह्म भिन्न सकल
 विषय मित्या है। जब चित्तधर्ममें एकमात्र भाद्र
 सत्य होनेका ज्ञान उठता, तब प्राणी पुत्र्य कर्म
 तथा तत्साधनको मित्या समझता और परब्रह्मसे
 पुत्र्य अपना अस्तित्व भी स्वीकार नहीं करता।
 सुतरां कर्मकर्ता और साधनके मित्यात्वं प्रयुक्त ज्ञानके
 समय कर्म रहनेकी सम्भावना कौसी। इसीसे ज्ञान-
 सहचार्यसे कर्म मुक्तिका कारण जो नहीं सकता।
 केवल मात्र ज्ञान ही मुक्तिका कारण है। फलाकाट्ट्या
 परित्यागपूर्वक कर्म करनेसे चित्त परिशुद्ध होकर
 पदितोय ब्रह्मके तत्त्वज्ञानको समता पाती है। फिर
 विशुद्ध चित्तमें कूटस्थ ब्रह्मका प्रतिबिम्ब पड़नेमें मुक्ति
 मिल जाती है।

जैन-मतमें कर्म दो प्रकारका होता है—धाति
 और अधाति। मुक्तिके लिये विप्रकर कर्म धाति कहता

कर्णासुत (सं० पु०) कर्णाः सुतः, इ-तत् । मूलदेव,
बीर-शास्त्रकार ।

कर्णं चुरचुरा (सं० स्त्री०) कर्णं चुरचुरा मन्त्रपाकयनम्,
निपातनात् सिद्धम् । पाने शक्तिदायकं वा ४११४८ । गुप्त-
मन्त्रपा, कानाफूसी ।

कर्णजप (सं० त्रि०) कर्णं जपति अप्रकाशं यथातथा
अनुचितं प्रबोधयति कर्णं जगित्वा परापकारं वदति
वा, अलुक्समा० । १ गोपनमें अहित विषय पर
परामर्शदाता, छिपकर वाजिव सलाह देनेवाला ।
२ परकी अनिष्ट विषयका मन्त्रदाता, चुगसखोर ।
इसका संस्कृत पर्याय—सूचक, विशुन, दुर्जन और
खल है । इनमें कर्णजप एवं सूचक दूसरेका अप-
कार बताता और विशुन, दुर्जन तथा खल परस्पर
भेद लगाता है ।

कर्णजपमन्त्र (सं० पु०) विघ्ननाशन मन्त्रविशेष,
जुहर उतारनेका एक मन्त्र । उक्त मन्त्र यह है—

“सं हर हर नौलबीरयेतासहजटापमयितउखेनुसुत्तैमकषयाप
विषमुपधर उपधर हर हर नाति विषं नाति विषं नाति विषं
अच्छिरे अच्छिरे अच्छिरे ।” (अतिशयविना)

इस मन्त्रको बार बार पढ़े तालुमुण्ण शीतल
जलसे कड़वा, बार सींचनेपर विष उतर जाता है ।

कर्णटिटरिटा (सं० स्त्री०) गुप्तपरामर्श, कानफूसी ।

कर्णन्दु (सं० पु०) कर्णयोः कर्णं वा इन्दुरिय,
उपनि० । धर्मचन्द्राकार कर्णालङ्कारविशेष, कानका
एक गणना ।

कर्णन्द्रिय (सं० पु०) श्रोत्रेन्द्रिय, कानका शक्ति ।

कर्णात्पल (सं० स्त्री०) कर्णस्थितमुत्पलम्, मध्य-
पदलो० । कर्णस्थित पद्म, कानका कंबल । २ एक
प्राचीन कवि ।

कर्णापकर्णिका (सं० स्त्री०) कर्णादुपकर्णोऽस्त्यस्य,
कर्णापकर्णं-ठन् टाप् भत् इत्वम् । १ कानाफूसी करने-
वाली स्त्री ।

कर्णाणं (सं० स्त्री०) कर्णं रोम, कानका बाल ।
(पु०) कर्णं ऊर्णाधिकं लोम यस्य, बहुव्री० । २ नृग-
विशेष, एक हिरन ।

“कर्णाणं अपरशान्तिर्निगुहं इहनाभिभिः ।” (भागवत १।११२०)

कर्णाणां (सं० स्त्री०) कर्णाणां देवी ।

कर्णं (सं० त्रि०) कर्णं भवः, कर्ण-यत् । गरीरावयवात् ।
वा ४११४४ । १ कर्णसे उत्पन्न, कानसे पैदा । २ कर्णके
योग्य, कानके सायक । कर्मणि यत् । ३ भेदके योग्य,
छेदने काविल ।

कर्तं (सं० पु०) कर्तं भावे षप् । १ भेद, काट ।

“अभुद् निश्च वतयो वमकतैर्नि गच्छः स्वराडिव निपातचनि-
वभिन्दः ।” (भागवत १।१४८) ‘कर्तो भेदः तस्मिन्नाद्योऽकर्तः ।’ (शोधर)

(वै०) २ गर्तं, गड़ा । (त्रि०) कर्तयति भिनक्ति, कर्तं-
अच् । ३ भेदक, तोड़ने-फोड़ने या चीरने-फाड़नेवाला ।

कर्तन (सं० स्त्री०) कर्तुं भावे ष्युट् । १ छेदन, काट-
छाट । २ कतारें, सूत कातनेका काम । ३ शिथिल
करनेका काम । करणे ष्युट् । ४ काटनेका अन्त,
तराशनेका षोडार । कर्तरी ष्यु । ५ छेदकारक,
काटनेवाला ।

कर्तरी (सं० स्त्री०) कर्तन-डीप् । १ कपाषी, कटारी ।
२ श्मश्रुकर्तनोपयुक्त अस्त्र, बाल काटने सायक,
षोडार । कुरे, कौशी वगैरहको कर्तरी कहते हैं ।

कर्तव, करतव देवी ।

कर्तरी (सं० स्त्री०) कर्तृ-इन् । काटनेका अस्त्र,
तराशनेका षोडार । कर्तरी देवी ।

कर्तरी-शङ्खत (सं० स्त्री०) नृत्यभेद, किसी किष्कका
नाच । यह एक उत्तमृत करण है । इसमें नर्तक
करण-स्रक्षिकके सहारे उच्छलता है ।

कर्तरिका (सं० स्त्री०) कर्तरी स्वायं कन्-टाप् डृक्षय ।
कर्तरी देवी ।

कर्तरि-लोडिड़ी (सं० स्त्री०) नृत्योत्तमृतकरण विशेष,
किसी किष्कका नाच । इसमें पहले करण-स्रक्षिक
लगाते, फिर उसे खोलते समय उच्छलकर तिरछे पड़े
जाते हैं ।

कर्तरी (सं० स्त्री०) कर्तन्ति, कर्त-पर-डीप्; यद्वा
कर्तं राति, कर्तं-राःक । १ कपाषी, कानी, सोनेके पत्तर
काटनेका एक षोडार । २ श्मश्रुकर्तनोपयुक्त अस्त्र,
बाल काटने सायक, षोडार, कुरा कौशी वगैरह ।
३ सुद करवाक, कटारी । ४ वाद्यविशेष, एक बाजा ।
५ योगविशेष । ज्योतिषशास्त्रमें लिखा—अन्द्र पथवा

है। फिर घाति कर्म चार प्रकारका है—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनोय और भास्वयं। तत्त्वज्ञान द्वारा मुक्ति न मिलनेका ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म है। चाहेत दर्शन पढ़नेसे मुक्ति न होनेका ज्ञान दर्शनावरणीय कर्म कहता है। शास्त्रमें मुक्तिके परस्पर विरुद्ध अनेक पथ प्रदर्शित हुये हैं। किन्तु उनमें मुक्तिके प्रकृत कारणका अनवधारण मोहनोय कर्म है। मोक्षके पथमें प्रवृत्तिका विघ्न डालनेवाला कर्म भास्वयं कहता है। फिर अघाति कर्म भी चार प्रकारका है—वेदनीय, नामिक, गौत्रिक और आयुष्क। ईश्वरतत्त्वकी अपना ज्ञातव्य माननेवाला अभिमान वेदनीय कर्म है। असुका नामविशिष्ट होनेका अभिमान नामिक कर्म कहता है। असुका वंशमें जन्म ग्रहण करनेका अभिमान गौत्रिक कर्म है। फिर शरीररक्षाके लिये किया जानेवाला कर्म आयुष्क माना गया है। उक्त चारों प्रकारका कर्म मुक्तिके लिये विघ्नकारी न रहनेसे अघाति कहता है।

नेत्यायिक क्रियाकी कर्म बताने और उसके पांच विभाग लगाते हैं। यथा—उत्सृष्टिपण, अवसृष्टिपण, प्राकुञ्चन, प्रसारण और गमन। जिस क्रिया द्वारा कौयी चीज़ उठायी जाती, वह उत्सृष्टिपण कहती है। अघोद्वेगकी किसी वस्तुका संयोग करानेवाली क्रिया अवसृष्टिपण है। जिस क्रिया द्वारा प्रस्तुत वस्तु सुदृष्टि पड़ती, उसे विदग्मण्टली, प्राकुञ्चन कहती है। सुदृष्टि वस्तुको प्रस्तुत करानेवाली क्रिया प्रसारण है। गमनक्रिया द्वारा एक स्थानसे अन्य स्थान पहुँचते है। फिर गमन पांच प्रकारका होता है—भ्रमण, रेषन, स्थान, ऊर्ध्व उल्लस और तिर्यग्गमन। यथा—

“उत्सृष्टिपणं ततोऽवसृष्टिपणं प्राकुञ्चनं तथा ।

प्रसारणं गमनं कर्मोत्सृष्टिपणं पंच च ॥

अथच रेषनं स्थानोर्ध्व उल्लसनीय च ।

तिर्यग्गमनमव्यय गमनादि च सञ्चते ॥” (भाष्यपरिच्छेद)

पुषमीमांसक ज्ञान अघेष्टा कर्मका प्राधान्य स्वीकार करते, किन्तु वेदान्तिक कहते—‘कर्मसे ज्ञान येष्ट है। कारण ज्ञान न होनेसे मुक्ति कैसे मिल सकती है।’

उक्त मतवैयर्थ्य मिटानेकी मङ्गयोगेश्वर श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें अतिप्रमत्कार मङ्गोक्त मत् देखाया

और दुर्ज्ञेय कर्म तत्त्व अति मनोहर तथा विस्तारित रूपसे सुवोधगम्य बना बताया है।

गीताके तृतीयोऽध्यायसे षष्ठाध्याय तक, तथा त्रयोदशाध्यायमें कर्मसम्बन्धीय अनेक विषय और अन्याध्यायमें कर्मसद्धान्त कौयी न कोई महत् प्रसङ्ग विवृत है। किन्तु तृतीय अध्याय केवल कर्मात्मक है। इसीसे उसकी कर्मयोगाध्याय कहते हैं। श्रीकृष्णके मतसे शारीरिक व्यापारका नाम कर्म है। कर्मका अभाव अकर्म कहता है। फिर कर्म शास्त्र-विधेय और अकर्म शास्त्रनिषिद्ध होता है। सिवा इसके कर्मसे अकर्म और अकर्मसे कर्म भी बन सकता है। कर्मका विभाग नाना प्रकार है। वैयधिक विविध सुखाभिलाष, दृष्टि वा स्वर्गादि पुण्यफलप्राप्तिकी कामनासे किया जानेवाला कर्म काम्य कहता है। वैयधिक कामना न रख अर्थात्ज्ञान परित्यागपूर्वक सर्व-व्यापक ईश्वरकी एक मात्र सत्वाके ज्ञानसे अनन्यचित्त उसकी भक्तिमें उषीके प्रीत्यर्थ जो कर्म करते, उसे निष्काम कहते हैं। फिर विश्वशक्तिके लिये निवर्तित कर्म नित्यकर्म है। शरीर, वाक्, मन प्रकृतिका प्रवर्तक पञ्चविध कारण शरीर, कर्ता (अर्थात् चित्त एवं अहङ्कार), वस्तु, कर्ण, इन्द्रियादि, प्राणादिके विविध वायुका व्यापार और वस्तुकार्पादिका पानुञ्जल्य-कारी सूर्यवायु इत्यादि है। ईश्वरकी ही सत्वामें दुर्ज्ञेय मायाकी सत्वा रहती है। सत्व, रजः और तमः त्रिविध गुण मायासे निकला है। प्रथिव्यादिमें ऐसा कोई सत्व नहीं, जो त्रिगुणसे मुक्त हो। सुतरां सभी त्रिगुणके प्रादुर्भावभेदसे भिन्न भिन्न कर्म करते और कर्मके सात्विक, राजसिक तथा तामसिक त्रिविध विभाग बनते हैं। विशेष कर्मके विशेष विशेष फल और पाप-पुण्यादिका नियन्ता ईश्वर नहीं। प्राकृतिक अतद्-नीय नियमसे वह ऋषा करता है। अर्थात् कर्तृत्वाभिमानशून्य, आत्मोयके प्रति छेद तथा शत्रुके प्रति द्वेषजित और फलाकाङ्क्षा-रहित ही जो नित्य कर्म किया जाता, वह सात्विक कहता है। फलाकाङ्क्षा और अहङ्कारसे अतिव्यय पायासमें होनेवाला कर्म राजसिक है। अपनो भविष्यत् शुभायासे

समन क्रूर अर्थात् प्रथम, द्वितीय, पञ्चम, सप्तम, नवम और एकादश राशिके मध्य आनेसे कर्तरी योग होता है। यह रोग कन्धाको मार डालता है।

कर्तरीय (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। इस वृक्षका वल्कल, मार और निर्यास विषमय होता है। १ त्वक्-मार-निर्यास-विषमेट, हलाल और और दूधका लहर।

“अथवाचककर्तरीयसौरीयककरपाटकरभन्दननरराटबानि सम लक्-सारनिर्वांसविषमि।” (सुहृत्)

कर्तरीयुग (सं० स्त्री०) सिन्धुवारहय, संभालका जोड़ा। कर्तव्य (सं० त्रि०) कर्तुं योग्यम्, क्त योग्याद्यर्थे तव्यः। १ करनेके उपयुक्त, किये जाने लायक।

“होमसेवा न कर्तव्या कर्तव्यो महादायवः।” (चित्तोपदेश)

२ लगाया जानेवाला। ३ फेरा जानेवाला। ४ दिया जानेवाला। (स्त्री०) ५ कार्य, फर्ज, करने लायक काम। ६ छिय, काटने लायक चीज।

कर्तव्यता (सं० स्त्री०) कर्तव्यस्य भावः, कर्तव्य-तन्-टाप्। १ विधेयता, बलुव, कुरुरत। २ शौचित्य, मौजनिवृत्त, दुहस्ती। ३ उपयुक्त उपाय, माकूल तदबीर।

कर्तव्यविमूढ़ (सं० त्रि०) अपना कर्तव्य न देखने-वाला, जिसे अपना फर्ज न सुझ पड़े।

कर्तव्याकर्तव्य (सं० स्त्री०) करने एवं न करने योग्य कार्य, भना-बुरा काम।

कर्ता (सं० पु०) करोति सृजति सम्पादयति वा, कृ-टाप्। १ लक्ष्मी, क ११११११। १ ब्रह्मा। २ कर्मसम्पा-दक, काम बनानेवाला। यह कर्ता चार प्रकारका होता है—१ हेतुकर्ता, २ प्रयोजककर्ता, ३ अतुमन्ता-कर्ता और ४ सृष्टीकर्ता।

न्यायमतानुसार क्रियाकृति जिसमें समवाय सम्बन्ध-में रहती उसीको विद्वान्मण्डली कर्ता कहती है। वेदान्तपरिभाषामें उपादानविषयक अपरोक्षज्ञान-चिकीर्षा तथा कृतिमागको कर्ता माना है। फिर भामतीके मतानुसार इतर कारक द्वारा प्रेरित न होने सकल कारकका प्रयोजक (प्रेरक) कर्ता है।

गुणके अनुसार कर्ता त्रिविध होता है—सात्विक, राजस और तामस। सुहृत्सङ्ग, निरहङ्गारी, धैर्यमान्त्री,

उत्साही और सिद्धि तथा असिद्धिमें निर्विकार रहने-वाला पुरुष सात्विक कर्ता है। रागो, कर्मकला-काङ्क्षी, लुब्ध, चिंस्त्र, अशुचि और हर्षयोकादियुक्त पुरुष राजस कर्ता कहता है। फिर आत्मज्ञानके लाभमें निश्छेद, शठ, प्रतारक, पतन, विषमोली, दीर्घसूत्री और स्तव्यपकृति पुरुषको तामस कर्ता कहते हैं।

३ प्रभु, सात्विक। ४ पथ्य, अफसर। ५ महादेव।

“श्रीपदा श्रीपदम् कर्ता विषवाङ्मण्डोपरः।” (भारत १११४/१०)

६ व्याकरणका एक कारक, फायल। क्रियाके करनेवालेको कर्ता कहते हैं। यह हिन्दी भाषा तथा संस्कृत-आदिमें सर्व प्रथम कारक माना गया है। इसका चिह्न ‘ने’ है। जैसे—रामने रावणको मारा। यहां मारनेकी क्रिया रामद्वारा सम्पादित हुई। इसीसे राम कर्ता कारक ठहरा और उसमें ‘ने’ चिह्न लगा। किन्तु प्रकर्मक क्रिया रहते कर्तामें कोई चिह्न लगाया नहीं जाता। जैसे—रावण मर गया। अंगरेजीमें इसे नमिनेटिव केस (Nominative case) कहते हैं।

कर्ताभजा (कर्ताभजनी)—ब्रह्मका एक उपासक सम्प्रदाय। इस सम्प्रदायके लोगोंने व्याख्याके अनुसार यही कर्ताभजना हो सकता, जो कर्ता अर्थात् परमेश्वर-का पूर्ण रूपसे भजन करता है। कर्ताभजनी सम्प्रदायके प्रवर्तक, प्रथम मतप्रतिहाता और प्रचारक श्रीसिया-चांद थे। इस सम्प्रदायवाले उनको एकवारसे ईश्वरका अवतार मानते हैं। प्रवादानुसार माधवेन्द्रपुरी नामक एक बालक गोपीनाथ-विषहके श्रीमन्दिरमें एक दिन अतिथि हुये। उन्होंने वैकालिक जलपानका और पीना चाहा था। भक्तवत्सल गोपीनाथने भोगके बालके एक कटोरा और-चोरा रखा और पीछे पूजकोंसे उन्हें देनेकी कहा। इसी घटनाके पीछे शचीमन्दन श्रीचैतन्य-देव गोपीनाथके मन्दिरसे अग्रकट हो अन्त्यासथाधीके वेग धानोरपुरी परगनेके घोसा-दुधसो नामक स्थानमें पहुँच कुछ समय तक प्रच्छन्न भावसे रहे। पीछे वह उल्लासमय होकर महराष्ट्र-तंबोलीकी भौटमें बालक वेग देस पड़े। महादेवकी कोई सम्मान न था। उन्होंने उक्त अज्ञातकुलमील बालकको या पुत्रनिर्दिशेष धामन किया। बारह वक्करकाल श्रीसिया-चांद महादेव

विषय बिगाड़, परिंसा विचार और निम्न सामर्थ्य पर दृष्टि न डाल किये जानेवाले कर्मका नाम तामसिक है। ज्ञान, बुद्धि, धृति, अहं और कर्ताका भी सत्त्वगुरुत्व त्रिविध लक्षण दर्शित हुआ है। फिर यज्ञ, तपः, दान और पाह्यारके भी इसी प्रकार तीन तीन भेद कहे हैं। कर्मका रूपभेद इन्हीं सबपर निर्भर करता है।

श्रीलक्ष्मणे ज्ञान तथा कर्म समयकी प्रमाणाकर ज्ञानकी महोत्कर्षता देखायी है। उन्होंने कहा,— 'जो व्यक्ति प्रकृत ज्ञानी, चाम्तस्त्वय्य तथा पाप्माके प्रमाद चाम्तक्रियासे ही पाप्मामें सन्तुष्ट रहता, उसको अपने निये कर्मका कोई प्रयोग न नहीं पड़ता। फिर कर्म करनेसे न तो उसे कोई दण्ड और न करनेसे न कोई प्रत्यवाय (पाप) लगता है।' किन्तु इस उक्ति अनुयायी कर्मकाण्डवासी पकर्तव्यताकी पाषण्डा मिटानेकी भिन्न भिन्न प्रकार भिन्न भिन्न पध्यायमें श्रीलक्ष्मणे मर्षदा छातव्य उपदेय दिया और सांख्य, योग तथा पूर्वमीमांसाके पापाततः विरोध मतका सामन्त्रस्य किया है। कर्म बन्धनस्वरूप पर्याप्त मुक्तिके साधका बाधक कहा गया है। इसीसे सांख्य-मनो-पियोनि दोषायह देख कर्मका त्याग ठहराया है। फिर भी मोमांसकीके मतानुसार यज्ञ, दान और तपस्याकी कभी छोड़ना न चाहिये। उक्त समय मत मानते महा-विरोध पड़ जाता है। किन्तु प्रकृत पक्षमें कोयी विरोध नहीं। कारण देहधारी मात्रकी पशियरूप कर्म त्यागकी प्रमत्ता कहाँ। कर्मको छोड़ कोई पणकाम भी टिक नहीं सकता। इच्छाके विरुद्ध प्रकृतिका गुण मनुष्यको कर्मरत बनाता है। दर्शन, ज्ञान, धर्म, प्राण तथा भोजन पांच ज्ञानेन्द्रियके चौर गमन, पासाप, स्वप्न, निद्रा, मसमूसादित्याग, जैत्र लपोलन एवं निर्मोहन पांच कर्मेन्द्रियके कर्म हैं। यह इन्द्रियोंकी स्वतः प्राकृतिक नियमसे करना पड़ते हैं। इच्छा इनको रोक् नहीं सकती। पश्यामके वन कर्मेन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपल)की मंयम करने भी जिसके मनमें लालसा बनी रहती, उसे विद्वन्मण्डली कपटाचारी कहती है। त्याग भी सत्त्वगुरुत्व विधा भेदानक है। पासक्ति और कर्मफल

परित्यागपूर्वक देयक कर्तव्य दीधने कार्यका अनुष्ठान सात्विक त्याग है। ऐसा त्यागो मत्त्वगुरुत्वस्य विधासे और संययविरहित होता है। यह दुःखावह विषयसे द्वेष और सुखावह विषयसे अनुराग नहीं रहता। फलतः उसीको कर्मफलत्यागो कह सकते हैं। दुःखावह विषय कायकर्मके भयसे छोड़ना सात्विक त्याग है; फिर मोहवगतः नित्य कर्म न करना तामसिक त्याग कहाता है। इस स्थानपर समय ममके सामन्त्रस्यसे श्रीलक्ष्मणे कहा—पण्डितोंने काम्यकर्मके त्यागकी संस्थास और मकन प्रकार कर्मफल छोड़नेकी त्याग बताया है। यज्ञ, दान और तपस्या छोड़ना न चाहिये। यह कार्य विवेकियोंकी वित्तगृहिका कारण हैं। निययरूपसे पासक्ति और कर्मफलकी छोड़ यह समस्त कार्य करना ही श्रेष्ठ है। कर्मका त्याग कभी कर्तव्य नहीं ठहरता। ज्ञानयोग श्रेष्ठ है। कि प्रामभित्तस्थापित भक्ति-उद्गायित गान्ति उसमें भी श्रेष्ठ होती है। किन्तु विधेय कर्मारभ भिन्न लक्ष ज्ञाननाभमें प्याघात पाता, तप तत्तत् कर्म यज्ञन की पयेदा साधन पशग्र लगाया जाता है। ज्ञानोपदेगम मानस-वृत्तिकी प्रकृत चालना द्वारा और पश्यामके वल इन्द्रिय वगोभूतकर पासक्ति परित्यागपूर्वक जो व्यक्ति कर्मका अनुष्ठान छोड़ता, यही श्रेष्ठ कहाता है। पासक्ति त्यागपूर्वक ईश्वरके उद्देश न किया जानेवाला कर्म बन्धन है। ईश्वरके उद्देश लत कर्म प्रकृत यज्ञ कहाता है। माना कामना-सिद्धिके लिये जो कर्म और पैदिक क्रियाकलाप चलता, उसमें मन केवल कर्मकी सिद्धि पर ही टिका रहता और ईश्वरमें विसुष्ट पड़ता है। फिर माना मनुष्य माना प्रकृतिये रोते है। ऐसी पश्याम जैसे बानककी लच्छका सोम देवा विद्याकी गिषामें लगते, येमें ही कर्मफलकी प्राप्तिसे क्रियाकलापटि लना धर्मके मोघानका एक निम्न पक्ष बताते हैं। "महयज्ञा प्रकाशश" पाटि श्राकमें श्रीलक्ष्मणे यही भाव व्यक्त किया है। जेमें पन्नि प्रथम भूमाप्यन रहता, ऐमेंही सकल कर्मके प्रारम्भमें ही प्र देण पड़ता है। किन्तु परित्याग न कर कर्मकी धैर्यवत्त्वपूर्वक चलाता चाहिये। पन्नि

नंबोलीके घर रहे। उससे उसको छोड़ कुछ दिन किधी गन्धर्वणिकके पास भी बंध टिके थे। फिर भौलिया-चांद एक भूस्वामीके भवन डेढ़ घण्टे ठहरे। वहासे चलने पर बङ्गालके पूर्वीशमें कोई कोई स्थान कुछ दिन घम फिर २७ वक्षर वयःक्रमके समय बेजड़ा नामक ग्राममें बह जा रहे। उक्त ग्राममें २२ शिष्य उनके अनुचर बने। फिर भौलिया-चांद चाकदहके निकट परारी नामक स्थानमें बहुत दिन टिके और १६६१ शकको बयानमें मर गये। आठ प्रधान शिष्योंने उनको कन्या लक्ष्मी स्थान पर गौड़ देहको परारी ग्राममें ले जाकर समाहित किया।

कहतै—मराठीके इन्नामें किधी सैन्याध्यक्षने भौलिया-चांदको बेगार पकड़ा था। किन्तु वह विदेकीके निकट चन्द्रहाटी घाटसे अपने कमण्डलुमें गङ्गाको डाल जलभून्य पहिल गङ्गागर्भ पार कर गये। उनके कमण्डलुका गङ्गाजल आज भी घोषपाड़ेमें पालीके घर रखा है। कर्ताभजनै विश्वास लाते, कि उस जलसे लोग सकल भ्रमिताप और मोक्ष पाते हैं।

भौलिया-चांदके २२ शिष्योंमें रामशरणपाल एक सद्गुणोपजातीय रहस्य थे। उन्होंने इस मतको फैलाया है। भौलियाचांद भक्तिदीर्घकाल और आजानुलम्बित बाध रहे। वह फलमूल वा लतापत्र ही खाकर अपना जीवन चलाते थे। उन्होंने पन्थकी नयन, पङ्ककी चरण, पपुवकी पुत्र, दरिद्रको धन तथा श्रुतकी जीवन दे अपने सतावलम्बियोंकी विमोहित किया और बहुतेरे लोगोंकी अनुयायी बना लिया। उनके प्रसादसे रामशरण भी भौतिक शक्तिमय्य हुये।

रामशरणके मरनेपर उनके पुत्र रामदुलानने इस मतका बडी उन्नति की। वह फारसी खूब पढ़े थे। उन्होंने सभ लोगोंके समझने योग्य सात-आठ सौ गीत सामान्य भाषामें बनाये। उनमें कीयो प्राचीन हिन्दू शास्त्रानुगत, कीयो मुसलमान सूफी सम्प्रदाय-सिद्ध और कीयो गीतरचयिताका अभिप्रेत है। कर्ताभजनै रामदुलानके उक्त गीतोंकी शाल समझते हैं। प्रति-शक्रवारको प्रातः और सायंकाल को समाज नगाने, उसमें लोग बड़ी गीत गाते हैं।

रामदुलानके समय पनेक धनी, मानो और ज्ञानी व्यक्तियोंने यह मत अवलम्बन किया था। १८२१ ई०के चैत्र मासकी कृष्ण-पक्षादशमीको उन्होंने इस लोके भवसर लिया।

पैकि रामदुलानकी पत्नी सरस्वतीने 'कर्तामा' और 'सती मा' के नाम गद्दी पर बैठ इस सम्प्रदायकी श्रीवृद्धि की।

कर्ता-भजनै सम्प्रदायके वीजमन्त्रका मूलध्व 'शुभ सत्य' है। यद्ये सबको पहले सिखाया जाता है। फिर निम्नलिखित मन्त्र तीन बार सुनाते हैं—

"कर्ता भौलिया महाप्रभु। तुम हमारे और हम तुम्हारे हैं। तुम्हारे ही मुखसे हम जन्ते हैं। हम तुमसे तिराध भी बनन नहीं। हम तुम्हारे ही गाव हैं। दोषार्द्र महाप्रभु।"

कर्ता-भजनियोंके मतमें परस्त्रीगमन, परद्रव्यहरण, परहत्यासाधन, मिथ्याकथन, इत्याभाव और प्रनाप-भाषका निषेध भौलिया-चांदकी आज्ञा है। इनमें जातिविचार नहीं होता। मनुष्य मनुष्यका सेव्य और पूज्य है। दूसरे देवदेवीकी उपासना आवश्यक नहीं।

कर्ताभजनियोंके कथनानुसार श्रृष्टीभोका दूसरा सर्वप्रकार धर्म समस्त अनुमान और स्त्रीय धर्म सत्य प्रधान है। ज्ञानसाधन द्वारा मनुष्य अपने इष्टदेवको प्रार्थन कर सकता है। किन्तु प्रत्यक्षकरण किया सबसे नहीं बनती। घोषपाड़ेमें मन्त्रकी गद्दी है। फाल्गुनकी पूर्णिमाको दोनका मेला लगता है। फिर रथयात्रा प्रथति दूसरे भी महोत्सव होते हैं।

कर्ता (छि० पु०) १ कर्ता, करनेवाला। यह संस्कृत 'कर्तुं' शब्दकी प्रथमा विभक्तिका बहुवचन है। किन्तु हिन्दीमें एकवचनको ही भांति आता है। २ विधाता, परमेश्वर, दुनियाको बनानेवाला।

कर्तित (सं० त्रि०) कर्त-क-इच् । कर्तन किया हुआ, कटा, कंटा, जो काटा गया हो।

कर्तित्थत् (सं० त्रि०) कर्तन करनेकी इच्छा रखनेवाला, जो काटना चाहता हो।

कर्तित्थमाण, कर्तित्थेक्षो।

कर्तुं काम (सं० त्रि०) कर्तुं कामः भित्तायो यच्च, बहुव्री०। करनेका प्रच्छुक्त, जो करना चाहता हो।

विषय व्यक्तिको किसी क्रियाकलापका प्रयोजन नहीं लगता। किन्तु कर्मकी सिद्धि चाहनेवालेको उसका प्रयोजन बना रहता है। फिर इतर पुरुष श्रेष्ठके कार्यका अनुगामी होता है। इससे सिद्ध पुरुष जनहितार्थ तत्त्वत् कर्म कर सकता है। सिद्धिके सर्वाच्च धोपान पर चढ़ने अर्थात् ईश्वरके तत्त्वमें भक्ति-निविष्ट रहनेको कर्मफलत्यागो वन निष्काम साधन करना आवश्यक है। इसी प्रकार कर्ममें प्रवृत्तिके लिये निम्नश्रेणियोंके लोगोंको सकाम कर्म भी करणा चाहिये। किन्तु निम्न श्रेणियोंके लोगोंको सतत आचार्य उपदेश देनेके लिये तत्त्वज्ञानकी शिक्षाका प्रयोजन पड़ता है। कर्मके मुख्य उद्देश्य ईश्वरज्ञान और ईश्वरभक्तिकी चित्तशुद्धिको भूल केवल-कर्मपरायण हो जीवनयात्रा निर्वाह करना वृथा है।

ईश्वरमें सर्व कर्म समर्पण करने अर्थात् यज्ञ, तपस्या, दान तथा अन्याय्य सत्कार्यसे उसीका स्मरण, उसीकी भक्तिमाका कीर्तन और उसीकी विभूतिका दर्शन रखनेसे मोक्षलाभ होता है। ईश्वरका विश्वरूप और उसीकी सोम्यमूर्ति देखना चाहिये। फिर ज्ञानी कर्मनिष्ठ अर्द्धभावको छोड़ सोडंभाव पकड़ता है। किन्तु ऐसी परासिद्धि साधकको मिलना दुर्लभ है। इसलिये केवलमात्र ईश्वरपरायण हो व्यावसायिकका बुद्धि खोजना पड़ती है। फिर उसमें कृतकार्य न होने भी कोयी क्षति नहीं आती। यह धर्म जितना सधता, उतना ही कल्याणकर रहता है। वैय्यिक अकिञ्चित्कर सुख और सिद्धि न मिलते भी दुःख कैसे होगा। क्योंकि इसप्रकार कर्मसमर्पण द्वारा ईश्वर-समय समनेपर पवित्र सुखकी इयत्ता नहीं रहती। फिर अनिर्वचनीय आनन्द मिलने लगता है। इस जन्ममें योगभ्रष्ट हो जाते अर्थात् चरम सिद्धि न पाते कियत् परिमाण कार्यके बल परजन्म उक्त कर्मके साधनमें अधिक सामर्थ्य पाता है। कोई अनेक जन्मान्तर और कोई पूर्वजित कर्मके बल शीघ्र सिद्ध हो जाता है। द्रव्य यज्ञादि यावतीय कर्ममें ईश्वर-परायणतास्वरूप ज्ञान ही श्रेष्ठ है। ज्ञानयज्ञका प्रधान फल ऐगिक भाव प्राप्त होना है। उसमें सर्वभूतके प्रति समदृष्टि

और सोद्यार्थ परिगणित है। सुतरां जो सर्वभूतके हितमें रत रहता, शत्रुमित्र पर समान प्रीति तथा दया रहता और स्त्रीय दृष्टानिष्ठ भूल सर्वकर्म ईश्वरको समर्पण करता, उसीको विद्वान् परम योगी कहता है।

इस जगत्में भला बुरा कर्म कौन नहीं समझता। किन्तु लोग ऐहिक स्वार्थसिद्धिके लिये प्रयत्नित कर्म किया करते हैं। ऐसी अवस्थामें आवश्यक है—कोई मद्यपुरुष श्रम कर्मका लाभ और अश्रम कर्मका दोष देखाता रहे। भारतवर्ष कर्मक्षेत्र है। यहाँ क्या जिसो यथेयं बुरा कर्म करना चाहिये।

कर्मकर (सं० वि०) कर्म करोति मूल्येन, कर्म नृ-कृ-ट। कर्मणि षणो। ण १।१।१२। १ वित्त पर कार्य करने-वाला, नौकर, मजूदूर। इसका संस्कृत पर्याय—भृतक, श्रुतिभुक्, वैतनिक, वैतनोपजोषी, भरण्यभुक् और कर्मस्थभुक् है। २ कर्मकारक, काम करनेवाला।

“मिथ्याने पवित्रतयापुण्यवैषिधमंश्रुत्। एते कर्मकारा ये वाः।”
(नित्यापरा)

(पु०) कर्मं चिंशं करोति, कृ हेत्वादो ट। १ यम। कर्म करो (सं० स्त्री०) कर्म नृ-कृ-ट, डीप्। १ दादा, बाँदी। २ मूर्धातता, मदनकी वृत्त। ३ विम्बिका लता, एक वृक्ष।

कर्मकर्ता (सं० पु०) कर्मणः कर्ता सम्पादकः, ६-तत्। १ कार्यकारक, काम करनेवाला। कर्मव कर्ता। २ व्याकरणोक्त वाच्य विभेय (Passive voice)। इसमें कर्तृत्वकी विवचासे कर्म हो कर्ता होता है।

“मिथ्यापणु यत् कर्मं सवनेव पविष्यति।
सर्वेः सर्वेः कर्तुं कर्मकर्मणि तद्विदुः॥” (व्याकरणकारिका)

कर्ताका कर्म अपने निज गुणसे कृतः सम्पन्न होने पर कर्मकर्ता कहाता है। किन्तु ऐसे स्वल्पर हिन्दोमें कर्ताका प्रकृत चिह्न 'ने' कर्मो नहीं नगता।

कर्मकर्तृता (सं० स्त्री०) कर्मका कर्तृत्व, मफलकी कारगुजारी। लैसे—रोटी बनती है। यहाँ रोटी अपने पाप दन नहीं सकता। उसका बननेवाला कोयी अवश्य रहता है। इसलिये रोटी कर्म ठहरने भा कर्तृत्वकी प्राप्त होती है।

कर्मकाण्ड (सं० स्त्री०) कर्मणा कर्तव्यतापतिपादकं

कर्तृ, कर्ता देखो।

कर्तृक (सं० त्रि०) प्रतिपक्ष, प्रतिनिधि, कारगुजारी, करनेवाला।

कर्तृका (सं० स्त्री०) कृतति छिनत्ति, छात्-लक्ष-स्वार्थे कन्-टाप्। सुद्रखड्ग, कटारी।

“कृत्युना तिनैवाच कनाचकृतं काचराम्।” (दलवार, म्नामप्या)

कर्तृत्व (सं० स्त्री०) कर्तृभावः, कर्तृ-त्व। कर्ताका धर्म, कारगुजारी, करनेवालेकी साक्षु-नियत।

“न कर्तृत्वं न कर्त्तृत्वं लोचनं प्रयः।” (गीता ३।११)

कर्तृपुर (सं० स्त्री०) नगरविशेष, एक शहर। यह भारतके उत्तरपूर्व अखलमें अवस्थित है। समुद्रगुप्तने यह स्थान जय किया था। महदग्न देखो।

कर्तृवाचक, कर्तृवाच देखो।

कर्तृवाची, कर्तृवाच देखो।

कर्तृवाच्य (सं० पु०) कर्तावाच्यो यत्र, बहुव्री०।

क्रियापद द्वारा कर्ताको लक्षित करनेवाला वाच्य, जिस लुप्तलेमें फेलसे फ्रायलको समझ सकें। (Active voice) इसमें कर्ता प्रधान रहता और कर्ममें ‘को’ चिह्न लगता है जैसे—रामने रावणको मारा। प्रत्येक क्रियाका प्रकृत रूप कर्तृवाच्य ही होता है। जैसे—निष्पना, पढ़ना, नहना, हंसना, खेलना, फूटना। किन्तु कर्म-वाच्यमें प्रधान क्रिया भूतकालमें प्राती और उसमें ‘जाना’ क्रिया पीछे छोड़ दी जाती है। जैसे—लिखा या पढ़ा जाना। फिर कर्तृवाच्यके कर्मवाच्य बनानेमें कर्मको कर्ता और कर्ताको कारण ठहराते हैं। जैसे—‘रामने रावणको मारा’ कर्तृवाच्यका ‘रावण रामने मारा गया’ कर्मवाच्य हुआ।

कर्तृवाच्यक्रिया (सं० स्त्री०) कर्तृवाच्य देखो।

कर्तृस्थ (सं० त्रि०) कर्तारि कर्तृसम्पादनयोग्ये तिष्ठति, कर्तृ-स्था-ठ। कर्तृस्थानीय, कर्ताका प्रति-निधि, करनेवालेकी जगह रहनेवाला।

कर्तृस्थक्रियक (सं० त्रि०) कर्तामें अपने कार्यको धरानेवाला, जो अपना काम फायलसे रखता हो।

कर्तृस्थमाचक (सं० त्रि०) कर्तामें अपना भाव रखनेवाला।

कर्तृका (सं० स्त्री०) सुद्रखड्ग, कटारी, गिकारीकी बुरी।

कर्त्तिका, कर्त्तिका देखो।

कर्त्ती (सं० स्त्री०) कतरनी, कौंसो।

कर्त्वी (सं० त्रि०) कर्तन किया जानेवाला, जो कटनेवाला हो।

कर्त्वी (सं० स्त्री०) करोति या, छा-यच्-डोप्। १ कार्य-सम्पादन-कारिणी, काम बनानेवाली। २ प्रभुपत्नी, मालिककी बीवी।

कर्त्वं (सं० स्त्री०) छा-त्वन्। कर्त्वायै तथेवेन् कर्मधनः। पा ३।३।३। छत्, छी।

कर्द (सं० पु०) कर्द-पच्। कर्दम, कीचड़।

कर्दङ्ग—पद्मावके कांगड़ा जिसका मध्यती एक याम। यह भागनदीके यामकूलपर अवस्थित है। कर्दङ्गमें पच्छे पच्छे मकान् बने हैं।

कर्दट (सं० पु०) कर्दं कर्दमं पटति कारपत्वेन प्राप्नोति, कर्द-पट-पच्। १ पद, कीचड़। २ करघाट, कंबलकी जड़। ३ शृणाल, कंबलकी छप्टी। ४ जलज-लक्षमात्र, पनिसा घास। (त्रि०) ५ पहरार, कीचड़में चलनेवाला।

कर्दम (सं० स्त्री०) कर्दंति, कर्दं भावे ष्यट्। कृषि-गन्ध, पेटकी पावाज, गुड़गुड़ाहट।

कर्दम (सं० पु०-स्त्री०) कर्द-पम। कर्दमकोरमः। उच्यते ३।३।

१ पद, कीचड़, चहला। इसका संस्कृत पर्याय—निपहर, जम्बाल, पद्म और श्राद है। राक्षसके मतसे कर्दम शीतल, इस और विपरीत, वेदना, दाह तथा शोथनाशक होता है। २ म्वायशुभ मन्वन्तरके प्रजापति विशेष। इनके पिताका नाम कीर्त्तमान् और पुत्रका नाम अमरुत था। (भात, शक्ति) यह ब्रह्माकी छायासे उत्पन्न हुये। फिर इन्होंने सरस्वतीतीर विन्दुमरतीर्षमें दग्ग सहस्र वत्सर तपस्या की। स्वाय-शुभमनुकी कन्या देवदुति इनकी पत्नी थीं। पुत्रका नाम कपिलदेव रहा। इनके कन्यादि मत्र कन्या भी थीं। कर्त्तिका कहना देखो। ३ पाप, गुनाह। ४ छाया, परछाई। “रेदु कर्दमः मन्वन्तरायां बनेने ष्युटम्।” (श्रुतेः मन्-१२४०) ५ आगविशेष, एक साँप। “बर्दमप कर्त्तिका-नायक पद्मकः।” (भात ३।३।३) ६ लक्ष्मि, मर्दी। ७ मल, कूड़ा। ८ प्रजापति पुत्रके एक पुत्र।

काण्डम्, मध्यपटनी० । १ कर्मका कर्तव्यता-प्रति-
पाटक वेदांग । २ धर्मसम्बन्धीय कर्म
यन्त्रादि ।

कर्मकाण्ठी (सं० पु०) १ यन्त्रादि कर्म विधिवत् करने-
वाला, जो कर्म का कर्तव्यताप्रतिपाटक वेदांग पढ़ता हो ।
कर्मकार (सं० त्रि०) कर्म करोति भूतिं विना इति
शेषः । १ धितन व्यतिरेक कार्यकारक, वेगार, जो बिना
चकरत काम करता हो । २ कार्यकारक, काम
बनानेवाला । (पु०) ३ हय, बैल । ४ वातिविशेष,
लोहार । ५ शरप देवी । यह विभक्तिकी शीरष और
शुद्धादि गर्भसे उत्पन्न हुआ है ।

“हरिवाचि उवाच काकालमवभोगः ।
नचि चक्षुषे विजयाति कर्मकारं मरारवत् ॥” (उष्ट)

कर्मकारक (सं० त्रि०) कर्म-ल-पत्रुन् । १ कार्यकारक,
काम करनेवाला । (पु०) ध्याकरन्मोक्त कारक विशेष ।
बर्भेदो ।

कर्मकारी (सं० त्रि०) कर्म करोति, कर्म-ल-पिनि ।
कर्मकारक, काम करनेवाला ।

“ता विदित्वा हचरिते नृदेष्टु कर्मकारिणिः ।” (मनु २।१६१)

कर्मकासुक (सं० पु०-स्त्री०) सुदृढ़ पाप, बढ़िया कामान् ।
कर्मकीलक (सं० पु०) कर्मणा कोलक इव यस्त-
स्यानादिना सृष्टस्यानां मानरथाकापाटकीलक-
रूपः । रजक, धोबी ।

कर्मकुञ्ज (सं० त्रि०) कर्मणि कुञ्जकः, ०-तत् ।
कर्ममें निपुण, काममें होगियार ।

कर्मलक्ष् (सं० त्रि०) कर्म करोति, कर्मन्-ल-क्षिप् ।
कर्मकारक, काम करनेवाला ।

“कर्मणि विचरन्” होइसकमें एकीवत् ।
“कर्मं हाहवतीक” इयं कर्मिणा कृतम् ॥” (मिताषा)

कर्मलतवान् (सं० पु०) धर्मसम्बन्धीय कृत्य कराने-
वाला ।

कर्मलतव (सं० स्त्री०) कर्मसाय, उजाड़, फुरती ।
कर्मधाम (सं० त्रि०) कर्मदि धामः समर्थः, ०-तत् ।
कर्म करनेकी समर्थ, काम कर सकेवाला ।

“कर्मकर्मकर्म ईदं कर्मो कर्म इतिदिभिः ।” (रघु)

कर्मदेय (सं० स्त्री०) कर्मणा दद्यादुहागानां प्रियम्,

३-तत् । १ कर्म करनेकी भूमि, काम बनानेकी
जगह । २ भारतवर्ष । इस स्थानपर कर्म करनेसे
फनातुसार पचान्य वर्षमें लक्ष मिलता है ।

“यथापि भारतवर्षं कर्मदेयम् । यथाप्यष्टवर्षेण सार्धं १००
शिवोभोव्यानाभि भोमस्यमारादि व्यर्थवर्तनम् ।” (भाष्यत ३।१०।१)

कथित वर्षसमूहके मध्य भारतवर्ष ही कर्मदेय
है । अन्यत्र षट् वर्षे स्वर्गवासियोंके अवशिष्ट पुस्त-
भोगका स्थान होते हैं । इसीसे उनको भोमस्यम
कहते हैं ।

कर्मघ्न्यि (सं० पु०) कर्मणा घ्न्यिष्यन्ममघ्नात्, बहुव्री० ।
पद्मानजस्य वासनारूप दोष । यही वासना सकल
प्रवृत्ति शीर बन्धनका हेतु है ।

कर्मघात (सं० पु०) कर्मका विनाश, काम छोड़
देठनेकी हालत ।

कर्मघण्टाल (सं० पु०) कर्मणा घण्टाल इव ।
१ घण्टक, हिंसक, मारकाट करनेवाला । २ पिगुन,
खल, चुगुनखोर । ३ लतप्र, एहसान-फरामीय ।
४ अत्यन्त लोधी, निहायत युद्धापर ।

“अरुचः विपन्न इतयो हीर्षीरुचः ।
अवारः कर्मघण्टाला अत्यवधि ययुः ॥” (बलि)

५ राहु ।
“उपिष्ठ कल्पता पीठी मग्नता चन्द्रमङ्गलः ।
कर्मघण्टाला पीठीकं मम वारचर्षे इव ॥” (वृहत्समि दाल-कल्प)

कर्मचन्द्र (सं० पु०) १ मानव देवके एक राजा ।
हिन्दुमें कर्मचन्द्र भाग्यकी कहते हैं ।

कर्मचारि (सं० त्रि०) कर्मणि चरति, कर्म-चर्-पिनि ।
धितन पर कार्य करनेवाला, जो तनपाह पर काम
करता हो ।

कर्मचित् (सं० त्रि०) कर्म-चि भूते क्षिप् । १ लतप्रकर्म,
किया हुआ काम । (घे०) २ कर्म द्वारा शक्ति,
काममें बना हुआ ।

“कर्मचन्द्रं कर्मचिन्ते कर्मचोका पीठमे । कर्मवा शोभते ॥”
(भाष्यत ३।१०।२)

कर्मचिन (सं० त्रि०) कर्मणा चिनः, कर्म-चि-क । कर्म-
विध्यात्, कर्म द्वारा सम्पादन किया जानेवाला ।
“मन्वेद कर्मचिन्ते कोचः कर्मचि वरमहम् इत्यधिकः ॥” (शरति)

८ गन्धराज । ९ मांस, गोष्ठ । १० त्रयीदशविध कन्दविषमै एक विष । कन्दविष देखो । ११ वल्क कदं माख नेत्ररोग, पांखशी एक बीमारो । वल्क कदं देखो । (त्रि०) १२ कदंमयुक्त, कौचद्वेषे भरा हुआ ।

कदंम—१ विन्ध्यपार्श्वकी श्रम्यर्गत एक घास । २ कायी प्रदेशके मध्यका एक घास । (भ० ब्रह्म०)

कदंमक (सं० पु०) कदंमै कायति प्रकायति, कदंम-कै-क । १ धान्यविशेष, एक भनाज । जनि देखो । २ पद्म, कौचह । ३ राजिमत् सर्पविशेष, एक सांप । सर्पे देखो । ४ अक्ष, भगाज ।

कदंमराज (सं० पु०) काश्मीरकी एक राजा । इनके पिताका नाम चैत या चैमगुप्त था । (राजत०)

कदंमविषसंप (सं० पु०) विषपैरोगभेद, किसी किष्कका कोढ़ । माधवनिदानके मतमें यह कफपित्त क्षरमे स्तम्भ, निद्रा, तन्द्रा, शिरोरुक्, अङ्गावसाद, विक्षेप, प्रलाप, शरोचक, भ्रम, सूक्ष्म, अग्निहानि, अस्त्रि-भेद, विपाशेन्द्रियका गोरव बढ़ाता, और पौत, मोहित, पाण्डुर, स्त्रिय, अक्षित, मलिन, शोफवान्, गुरु तथा गम्भीरपाक देखाता है । शयगम्भो विषसंपको कदंम कहते हैं ।

कदंमाटक (सं० पु०) कदंमो मलादिः श्रयते निक्षिप्यते यत्र, कदंमस्य मलादिः श्राटो निक्षेपीत्यत्र इति वा । विष्ठादि केकेनिका स्थान, गूमीवर डालनेकी जगह ।

कदंमित (सं० त्रि०) कदंम-इतच् । कदंमरूपमें परिष्कृत, कौचह बना हुआ, मैला ।

कदंसिनी (सं० स्त्री०) कदंमानो देवः, कदंम-इनि-ङीप् । प्रचुर कदंमयुक्त देव, कौचहका मुल्ल ।

कदंसिल (सं० स्त्री०) कदंम-इनि । शुष्क एवमर्जितमसि-निरतम् श्लथकम् विनिष्कृत्कृत्कौ शरीरपादिकादि । पा ३।३८-० ।

जमपदविशेष, एक मुल्ल ।

“एतत् कदंसिलं नाम भरतस्याभिषे चरम् ।” (भारत, वन)

कदंमो (सं० स्त्री०) सुहरहच, गन्धराजका पेड़ ।

कदंमफली, कदंमकी देखो ।

कदंमक्ष, कदंमके देखो ।

कदंमता (त्रि० पु०) पद्मविशेष, किसी रंगका छोड़ा ।

कदंपट (सं० पु०) कौचते क्षिप्यते, क-विच्; कर् चात्

पटयति । १ जोर्णवस्त, पुराना कपड़ा, चियड़ा, गूदड़, लत्ता । इषका संस्कृत पर्याय—लत्तक और नत्तक है । २ पर्वतविशेष, एक पहाड़ । यह नामि-मण्डलसे पूर्व और भस्मशुद्धसे दक्षिण अवस्थित है । यहाँ शमन रहते हैं । (वाटिकाशुभा ८। १०) ३ मलिन वस्त, मैला कपड़ा । ४ वस्त्रखण्ड, कपड़ेका टुकड़ा ।

५ कपाय रत्नवस्त, भूरा लाल कपड़ा ।

कपंटक, कपंट देखो ।

कपंटधारी (सं० पु०) कपंटं धरति, कपंट-धृ-णिनि । मलिन जोर्णवस्त्रखण्डधारी भिक्षुक, फटापुराना कपड़ा पहनेवाला फकीर ।

कपंटिक (सं० त्रि०) कपंटो ऽख्यस्य, कपंट-ठन् । कपंटधारी, फटापुराना कपड़ा पहनेवाला ।

कपंटिनो (सं० स्त्री०) कपंटिन्-ङीप् । कपंटधारिणो, फटापुराना कपड़ा पहनेवालो ।

कपंटो (सं० त्रि०) कपंटो ऽख्यस्य, कपंट-इनि । कपंटधारी, फटापुराना कपड़ा पहनेवाला ।

कपर्ण (सं० पु०) छा-प-ण्युट् । नौहमस्त्रविशेष, सांग ।

“जापञ्चकश्चरकदेवपायरदियसुरवरीमतीदि प्रहरणः। कर्तुः।” (दण्डमाप)

कपर् (सं० पु०) कर्प वाङ्मनात् परन् सञ्च।भासः । १ कपास, खोपड़ा । २ अक्षभेद, एक हडियार ।

३ कटाह, कड़ाह । ४ उदुम्बरखण्ड, गूनरका पेड़ । ५ कच्छपके घृष्टका प्रावरण, कङ्कपेकी छडी । ६ खर्पर, खपड़ा । ७ ज्वालामतःकपाल, गमै खप्पर । ८ कपोल, गाल । ९ शर्करा, चीनी ।

कपर्सांग (सं० पु०) कपर्स्य अंगः, क्ष-तत् । मृत-कपानखण्ड, मट्टीके खपड़ेका टुकड़ा ।

कपर्साल (सं० पु०) कपर् इव प्रसति पर्याप्तोति, कपर्-पल्-भच् । पचोटखण्ड, अखरोटका पेड़ । यह पहाड़ी पीसू है ।

कपर्सामी (सं० पु०) कपर्रे अशोति, कपर्-भस्-णिनि । वटुकभेरव ।

“अस्यान्तरी मांशानी चरैराशो मवाणम् ।” (बटुबट्ट)

कपर्णिका (सं० स्त्री०) कपर्तो खार्यं कन्-टाप् ङस्य । कपर्ते देखो ।

कर्मचेष्टा (सं० स्त्री०) कर्मणि चेष्टा, ७-तत् ।

क्रियाके अनुष्ठानका उद्योग, कामकी-कोशिय ।

“कामजया भवेद्विद्यां दृष्ट्याजया भवेत् कृतिः ।

कृतिजया भवेचेष्टा चेष्टाजया क्रिया भवेत् ॥” (मनु)

कर्मचोदना (सं० त्रि०) कर्मणि कर्मावबोधने चोदना विधिः । १ कर्मविषयमें प्रेरणाकारक विधि । कर्मचोदयते प्रवर्तते ऽनया, ष-टाप् । २ कर्ममें प्रवृत्तिका हेतु ।

“कामं चोदं परिश्रान्ता विविधा कर्मचोदना ॥” (नीता)

३ कर्मविधि ।

“चोदना चोपदेशय विधिष्टकार्यवाचिनः इत्यनेन सक्त स्वयं विगु-
बाध्यकः प्राणादिष्वन्यत्र कर्मविधिः प्रवर्तते ॥” (शौभरखानी)

कर्मज (सं० पु०) कर्मणः कर्मजन्याद्दृष्टान्वायते,

कर्म-जन-ञ । १ कर्मफलजन्य रोगादि । यह रोग

शास्त्रानुसार निर्णीत श्रौषधप्रयोगसे भी नहीं दृढता ।

केवल कर्मके लयसे ही इसकी शान्ति होती है ।

२ जन्मपरिपद्य । क्रायिक, वाचिक और मानसिक

कर्मविशेषके फलसे योनिविशेषमें जन्म लेना पड़ता है ।

३ पापमुखादि । ४ क्रियाजन्य संयोगविभागादि ।

५ वेदानामक संस्कार । “द्वयमात्रे तु वेगः श्वात् कर्मकी वेगः
कल्पितः” (भाषापरि०) ६ घटवृक्ष । कर्मणो जातः विप-

भोगवासनाशयात् क्रमशो मलिनोयमानवृत्तिभिर्जात

इत्यर्थः । ७ कश्चियुग । (त्रि०) ८ क्रियाजात, कामसे

बना हुआ ।

“तया दधति वेदमः कर्मजं दोषमात्मनः ॥” (मनु १५१०)

कर्मजगुण (सं० पु०) कर्मणो जायते यो गुणः,

कर्मधा० । क्रियाजन्य संयोग, विभाग और वेग गुण ।

“संश्लेष विभाग वेतवैते तु कर्मजाः ॥” (भाषापरि०)

कर्मजित् (सं० पु०) १ जरासम्यवश्रीय मगधके एक

ऋषिपति । २ उड़ीसेके कोई राजा । इन्होंने ७८ से

१४३ ई० तक राजत्व किया ।

कर्मज्ञ (सं० त्रि०) कर्म जानाति, कर्मन्-ज्ञा-क ।

कर्मबोधक, हिताहित और समय देख कर्म विशेष

करनेका ज्ञान रखनेवाला ।

कर्मठ (सं० त्रि०) कर्मणि घटते, कर्मन्-घटच् । कर्मणि

घटोऽच् । या ३१५१२ । १ कर्मकुशल, काममें-होशियार ।

“प्रातःप्रवृत्तय गतो यत्कानोत् । सं कर्मठः कर्मकुशलश्चि ॥” (मनु १११२)

कर्मणा (सं० बन्ध०) कर्मसे, क्रिया द्वारा, कामके साथ ।

कर्मणिवाच्य (सं० पु०) व्याकरणीय वाच्यविशेष ।

इस वाच्यमें कर्मकर्ता बन जाता है । फिर यद्यन

और पुरुष भी कर्मपदका ही निर्दिष्ट होता है ।

कर्मण्य (सं० स्त्री०) कर्मणि शायुः, कर्मन्-यत् ।

१ कर्मयोग्य, काम कर सकनेवाला । २ कर्म विशेषमें

भावग्यक, किसी कामके लिये जूझरी । ३ कर्म-

कुशल, काम करनेमें होशियार ।

कर्मण्यता (सं० स्त्री०) कर्मण्यस्य भावः । कर्म-

कुशलता, तत्परता, सुस्वदी ।

कर्मण्यभुक् (सं० त्रि०) कर्मणं वितनं भुङ्क्ते, कर्मण्य-

भुज-क्तिप् । वितनोपजीवी, नौकर ।

कर्मण्या (सं० स्त्री०) कर्मणा सम्पाद्यते, कर्मन्-यत्-

टाप् । १ वितन, तनखाह । २ मूष्य, कीमत ।

कर्मतः (सं० बन्ध०) कार्यानुसार, कामके सुधाफ़िक् ।

कर्मत्याग (सं० पु०) कर्मणः त्यागः, ६-तत् । १ वैत-

निक कर्मका त्याग, नौकरीका इस्तीफा । २ सांसारिक

कर्मका त्याग, दुनियावी काम छोड़ बैठनेकी हालत ।

कर्मत्व (सं० स्त्री०) कर्मको स्थिति, फलं षटा

करनेकी हालत ।

कर्मदच (सं० त्रि०) कर्मणि दचः, ७-तत् । कर्ममें

पट, काम करनेमें होशियार ।

कर्मदुष्ट (सं० त्रि०) कर्मणा दुष्टः, ३-तत् । १ कर्म

विशेषसे पतित, किसी कामसे गिरा हुआ । २ पापी,

गुनाहगर ।

कर्मदेव. (वै० पु०) कर्मणा देवः प्रातदेवभावः । देव-

विशेष । षष्टमसु, एकादश-रुद्र, द्वादश-पादित्य, रुद्र

और प्रजापति—तेतीस कर्मदेव हैं । अग्निहोत्रादि

वैदिक कर्मके फलसे इन्हें देवसोक मिला है । इनमें

रुद्र प्रभु और बृहस्पति आचार्य हैं । देवयोनिमें जन्म

लेनेवालेकी प्राज्ञानदेव कहते हैं ।

कर्मदेवी. (सं० स्त्री०) मेवाहके राजा समरसिंहकी

पत्नी । इनके पुत्रका नाम राहुप था । समरसिंह ईश्वर ।

कर्मदेवता (सं० स्त्री०) कर्मदेव, यज्ञादि कर्मसे बने

हुये देव ।

कर्मदोष (सं० पु०) कर्मव दोषः कर्महेतुदोषो वा ।

कर्परिकातुल्य (सं० स्त्री०) कर्परिकैव तुल्यम् । १ तुल्य-
विशेष, एक तूलिया ।

कर्परी (सं० स्त्री०) कर्पू बाहुलकात् भरद् सत्त्वाभावः
ऋषी । कायीद्वय तुल्य, सुपरिया, दाहहृदीके कादेका
तूलिया । इसका संस्कृत पर्याय—दाविका और
तुल्याञ्जन है ।

कर्पास (सं० पुं० स्त्री०) कृ-पास । कृष्णः पासः । ७२ । ३३३ ।
कर्पास वृक्ष, कपासका पौदा । कर्पास देखी ।

कर्पासक, कर्पास देखी ।

कर्पासफल (सं० स्त्री०) कर्पासस्य फलम् दत्तम् ।
कर्पासवोज, विनीला, कपासका बीज । यह स्तन्य-
वर्धक, वृष्य, स्निग्ध, गुरु और कफकारक है । (भावप्रकाश)

कर्पासी (सं० स्त्री०) कर्पासजातित्वात् गौरादित्वात्
वा ऋषी । कर्पास वृक्ष, कपासका पेड़ । इसका
संस्कृत पर्याय—कर्पासी, तुष्टिकेरी और समुद्रान्ता
है । भावमित्रने इसे लघु, ईष्यत् उष्णवीर्य, मधुररस
और वायुनाशक कहा है । कर्पासीका पत्र वायु-
नाशक, रक्त तथा मूत्रवर्धक और कर्णपीडुका, कर्णनाद
और पृथग्वायु शान्तिकारक है ।

कर्पूर (सं० पुं० स्त्री०) कर्पू-लृ । चर्मविशदिव्य उरीवची ।
७२ । २० । सुगन्धित द्रव्यविशेष, एक सुगन्धदार चीज ।
इसे फारसीमें कफूर, हिन्दीमें कपूर, तामिसमें कदपूर-
रम, सिन्धीमें कपूर और बंगरेड़ी भाषामें काम्फर
(Camphor) कहते हैं । इसका संस्कृत पर्याय—
घनसार, चन्द्रमंथ, सिताम्र, हिमवाहुका, हिमकर,
शीतप्रभ, सिताभ, घनसारक, सितकर, शीत, शशाङ्क,
शीला, शीताक्ष, शाम्भय, शुभ्राय, स्कटिकाभ, कारनि-
हिवा, ताराभ, चन्द्रार्क, चन्द्र, लोकाहुपर, गौर,
कुमुद, रघु, हिमाक्षय, चन्द्रभञ्ज, पेशक और शिष्ट-
सारक है । कर्पूर लघोदग प्रकार होता है,—पोतास,
मीमंकेन, गितकर, गहरवाभ, पांशु, पिष्ट, चहमार,
'हिमवाहुक,' सुतिका, तुपार, हिम, शीतल और
पत्रिकारय । भावप्रकाशके मतसे यह शीतल, वृष्य,
चक्षुःशितकर, शेषन, लघु, सुगन्धि, मधुर, तिक्त
रस, और कफ, पित्त, विषदीप, दाह, उष्णा, सुष-
विरसता, मूत्र तथा दुर्गन्धनाशक है । चीना कपूर

कफनाशक, तिक्तरस और कुष्ठ, कण्डु तथा वमि-
निवारक होता है ।

यह उद्भिद्भूत, दृढीभूत, गन्धयुक्त और चक्षुः
उदायुगुणविशिष्ट (उड़ जानीवाला) एक श्वेत पदार्थ
है । रसायनशास्त्र इसे उद्भिदके उदायुगुणयुक्त
तेलकी द्वितीय अवस्था बताते हैं । मानाप्रकार उद्भिद-
से ही कर्पूर मिलता है ।

कर्पूरका इतिहास—इस बात पर बड़ा गड़बड़ पड़ा—
किस समयसे कर्पूर मानव जातिके व्यवहारमें लगा
और गुणागुण निर्णय हो सका । युरोपीय पण्डितोंके
निर्णयानुसार ई० पठ शताब्दके प्राचीन ग्रन्थोंमें
इसका उल्लेख मिलता है । इद्रमोतके किन्दा राज-
संघीय चमरु केस नामक किसी राजपुत्रने पठ
शताब्द परधीमें एक कविता लिखी थी । उसमें
कर्पूरका उल्लेख पाया है ।

किन्तु हमारी समझमें उससे बहुत पूर्व भार-
वासियोंको इसका सम्बन्ध लगा था । सुष्टम, सरक,
वाभट, हारीत प्रभृति प्राचीन पायुर्वेदप्रचारक कर्पूरका
नाम और गुणागुण पर्यन्त लिख गये हैं ।

इशाक-इब्न-यामन नामक किसी परबी चिकित्-
सक और इब्न रुटैदुवा नामक एक परबी भौगो-
लिकने ई० पठ शताब्दको लिखा था—'मनव
प्रायोजीपमें कर्पूर याहर भेजा जाता है ।' फिर ई०
लघोदग शताब्दकी प्रसिद्ध भ्रमपञ्जारी मार्कपोलोने
लिखा,—'फनचूर नामक स्थानमें सर्वोत्कृष्ट कर्पूर
उत्पन्न होता है ।' फनचूर स्थान सुमात्रा द्वीपके मध्य
है । पाशकल, यहाँका कर्पूर 'बरस' कहलाता है ।
पहले युरोपमें इसे कोई जानता न था । चीनमें यह
युरोपमें पड़'चा । इसी प्रकार १५६१ ई०में युरोपी-
योंको इसका सम्बन्ध मिला ।

प्राचीन काल भारतवर्षके लोग कर्पूरको पत्र और
पत्रक दो भागमें बाँटते थे ।

डाक्टर उदयचन्द्रके कृपणानुसार पत्र कर्पूर
(Cinnamomum Camphora) जिसका चीनदेशीय
वृक्षके काष्ठके निकलता और रौद्रके तापमें पकता है ।
अपक कर्पूरकी उत्पत्ति औरनिधि हीके एक वृक्ष-

१ टुट 'कर्म', पापजनक हिंसादि, गुनाह, इजाबका काम। २ कर्मजन्म पापादि, कामका इजाब। ३ कर्म विषयक दोष, गुलती, भूल। ४ कर्मके मूल कारणस्वरूप सिध्याज्ञानकी वासनाका दोष, बुरा चालचलन।

कर्मधारय (सं० पु०) व्याकरणोक्त समानाधिकरण पदघटित समास विशेषण । समानाधिकरणस्य प्रथमः कर्मधारयः । पा १।१।४२ । इसमें विशेषण और विशेष्यका समान अधिकरण होता है। जैसे—रत्नसला। हिन्दीमें यह समास नहीं लगता, क्योंकि विशेषण और विशेष्य अलग रहता है। फिर संस्कृतकी भांति विशेष्यमें विभक्ति भी सगयी नहीं जाती।

कर्मध्वंश (सं० पु०) कर्मणो ध्वंशः, ६-तत् । कर्मघति, मज्जबो कामके फायदेका नुकसान, नाउम्मेदी।

कर्मना (हिं०) कर्मणः देखो।

कर्मनाम (सं० क्ली०) क्रियासे बना हुआ नाम, इक्ष्माणस।

कर्मनाथा (सं० स्त्री०) कर्म नाशयति, कर्मन-नश-णिच्-प्रण-टाप् । एक प्रसिद्ध नदी। यह (अक्षा० २४° ३८' ३०" ३०" तथा देशा० ८३° ४१' ३०" पू०) बिहार प्रदेशस्य शाहाबाद जिलेके कैमौर पर्वतसे निकली है। इसने उत्तरपश्चिम मुख पड़ुंच दरिहार ग्रामके निकट शाहाबाद और मिर्जापुर जिले दोनों और रख बिहार एवं युक्तप्रदेशको स्वतन्त्र कर दिया है। फिर चौसा ग्रामके निकट यह गङ्गा नदीसे जा मिली है। इसकी दो शाखाएँ—धर्मावती और दुर्गावती। पर्वत पर जहाँ कर्मनाथा बहती, वहाँ नदीगर्भकी भूमि प्रस्तरमय पड़ती है। किन्तु सृष्टिका मिलनेसे नदीगर्भ कर्दमयुक्त और गभीर रहता है। माघ फाल्गुन मास यह नदी सूख जाती है। किन्तु वर्षाकाळ इसके वेगका कौथी ठिकाना नहीं। उस समय प्रत्य जलमें भी उतरना कठिन पड़ता है। द्रव्य सामग्रीसे भरी बड़ी नौका भनायास इस पर चला करती है। मिर्जापुर जिलेके हानपाथर नामक स्थानमें यह नदी १०० फीट नीचे गिरती है। अधिक हड़िके समय सक्त जलप्रपात अतिसुन्दर देख पड़ता है। अनेक लोगोंके कथना-

नुसार इस नदीको छूनेसे महायाप लगता है। कारण रावणके प्रत्यावसे इसकी उत्पत्ति है। वेपनाएँ देको। किसी किसीके मतानुसार सूर्यवंशीय 'विश्वरूप' राजाने ब्रह्महत्याका पाप किया था। वह अपनी पाप छोड़ने पृथिवीकी यावन्तीय पुण्यतोया नदीका जल लाये और उसमें नहा ब्रह्महत्याके पापसे छूट पाये। आजकल जो कर्मनाथा बहती, उसको विदम्बरण्डको विश्वरूप-राजाका गात्रघोत अपवित्र जल कहती है। फिर कोई उस समयसे अपवित्र बताया, जिस समय युक्त-प्रदेशका निष्ठावान् प्राचीन ब्राह्मण इसको पार कर कीकट अथवा बङ्गदेश जाता न था। किन्तु नदीकुलके अधिवासी कर्मनाथाको अपवित्र नहीं समझते और जलसे सायंसन्ध्याकार्य किया करते हैं। भविष्य ब्राह्मण्डके लेखानुसार गङ्गा और कर्मनाथाके सङ्गममें नहानसे अशुभ पुण्य मिलता है—

“भागीरथा समं तप कर्मनाथा नदी विजः ।
सङ्गमं पुष्यादां प्राजा लोभतारण्यहेतवे ॥” (१८४०)

उक्त ब्राह्मण्डमें ही लिखा, कि कर्मनाथाके कुल पर ताड़का राक्षसीका बस था।

कर्मनिवन्ध (सं० पु०) कर्मका बावश्यक फल, कामका लक्ष्मी नतीजा।

कर्मनिर्हार (सं० पु०) असत्कर्म वा फलका दूरी कारण, बुरे काम या उसके नतीजेका हटाव।

कर्मनिष्ठ (सं० त्रि०) कर्मणि निष्ठा यस्य, बहुव्री० । यागादि कर्मासक्त, निव्य नैमित्तिक कर्म करनेवाला।

“माननिष्ठा विजाः किंचित् तपोनिष्ठासवापरे ।
तपःसाध्यापनिष्ठाप कर्मनिष्ठासा परे ॥” (मनु)

कर्मनिष्ठा (सं० स्त्री०) कर्मणि निष्ठा प्राप्तिकः, ७-तत् । कर्ममें प्राप्तिक, काममें लगे रहनेकी हालत। कर्मन्द—भिच्छुस्रकार एक ऋषि।

कर्मन्दी (सं० पु०) कर्मन्देन भिच्छुस्रकारकेन ऋषि-विशेषण प्रोक्तं भिच्छुस्रमधीते, कर्मन्द्-इनि। कर्मन्-ह्रस्वादिनिः । पा ४।१।१११ । भिच्छुः सध्यासो।

कर्मन्यास (सं० पु०) कर्मणां विहितकर्मणां विधिना-न्यासः त्यागः । १ कर्मत्याग, सध्यास। २ कर्मफल-त्याग, कामके नतीजेको छोड़ देनेकी हालत।

सूक्ष्म (Dryobalanops aromatica)से है। यही कपूर सर्वाधिक होता है। हिन्दूमें इसे 'भीमसेनी कपूर' कहते हैं। दाक्षिणात्यमें चार प्रकारका कपूर चलता है—कैसरी, सूती, चीना और बटाई।

युरोपीय डाक्टरोंने स्थान और गुणभेदसे इसे चार चीनोंमें विभक्त किया है—प्रथम फारमोसा या चीन-जापानका कपूर है। फारमोसा हीप और चीनके मध्य-राज्यमें 'काम्फर लरेल' (Cinnamomum Camphora) नामक एक वृक्ष होता है। भारतमें खदिर वृक्षके जैसे खैर निकलता, वैसे ही उक्त वृक्षका वृक्षके गुच्छके निर्याससे स्वच्छ काचकी सट्टय कपूर उत्तरता है। फिर उसका सार ले लिया जाता है। उक्त वृक्षका कपूरमात्र चीनमें कपूर कहता है। पहले विलायत और भारतमें यह कपूर बहुत विक्रता था। किन्तु अब इसकी खामदनी कम पड़ गयी।

जापानमें उक्त वृक्ष अधिक उत्पन्न होता है। सद्रुद्रका शीतल वायु उसके लिये प्रति उपकारी है। सत्सुमा और बङ्गो जिलेमें कपूरका काम चलता है।

द्वितीयको भीमसेनी कपूर कहते हैं। इसका प्रकृत नाम 'वरस' है। सुमात्रा हीपके वरस नामक स्थानमें शाल सट्टय एक वृक्ष (Dryobalanops aromatica) होता है। इसके काण्डमें काचके समान एक प्रकार पदार्थ जम जाता है। खदिरमें खैर और चन्दनमें अगुरुकी तरह काण्डके पश्चान्तर तथा वृक्षके हृदयमें भीमसेनी कपूर देख पड़ता है। उक्त वृक्ष जितना बड़ा जगता, कपूर भी उतना ही अधिक निकलता है। किन्तु लोग उसे बहुत बढ़नी नहीं देते। कपूरके भीमसे प्रथमतः वृक्ष काट डाले जाते हैं। ७।८ वर्षका वृक्ष न होनेसे कपूर कम मिलता है।

भोजन्दाल-अधिकृत सुमात्रा-हीपके उत्तर-पश्चिम उपकूल पयार-वालीसे वरस और सिद्धेल नामक नगर पर्यन्त समुदाय स्थान, बोरनिनी हीपके उत्तरांग और सेवयानहीपमें कपूरका वृक्ष होता है।

तृतीयका नाम नगैया कपूर है। अंगरेज इसे ब्लूमिया काम्फर (Blumea Camphor) कहते हैं। चीन देशके काण्टन नगरमें यह कपूर बनता है। इसका

वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इस जातिका वृक्ष हिमालयके पूर्वांचल, खसिया गिरि, चट्टाम, पैगू, मद्रा और चीनके दक्षिणांयमें उपजता है। किन्तु मद्रादेशमें ही इसकी अधिक उत्पत्ति है। मद्रादेशीय कपूर वृक्षके विषयमें किसीने कहा है,—यदि सब हलोंसे कपूर निकलने पाये, तो पृथिवीके चर्चांगका कार्य बन जाये।

डाक्टर डाइमकको बम्बई पञ्चलमें उक्त जातीय एक प्रकार कपूरोंत्पादक वृक्ष मिला था। बम्बईवाली कण्डु (खुजली) मिटानिकी उसे व्यवहार करते हैं।

चतुर्थको सुगन्ध द्रव्यमें पड़नेवाला कपूर कहते हैं। यह नाना जातीय वृक्षसे उत्पन्न होता है। इसे तम्बाकूका पत्ता, किंवा पार्थिक परिमाणमें थिमस (Thymus) तैलका सार टपका निकालने या पाचुली वृक्षसे बनाते हैं। श्रेयोक्त वृक्षसे निकलनेवाला कपूर अनेक स्थानमें 'पाचुली कपूर' कहता है। नारङ्गोसे जो कपूर बनता, उसका अंगरेजोंमें नेरोली काम्फर (Neroli Camphor) नाम पड़ता है। यद्दालमें भी एक वृक्ष (Nimnophila gratioloides)से कपूर निकलता है। भारतवर्षमें साखीं रूपकी कपूर भाता जाता है।

देशीय वैद्य इसे कामोहीपक और सुसलमान काम-गन्धिप्राकारक बताते हैं। हिन्दू और सुसलमान दोनोंके मतानुसार चतुकी प्रदाह अथस्थानमें पलक पर कपूर लगानेसे विशेष फल मिलता है।

खासरोग अधिक बढ़नेपर कपूर और हिङ्गु चार चार घेन गोली बनाकर २३ घण्टे पीछे खिन्नानेसे बड़ा उपकार होता है। इसीके साथ छातीपर तारपीनका तैल मलना चाहिये। पुरातन वातरोगमें ५ घेन कपूर १ घेन अफीमके साथ सोते समय खिन्नानेसे पत्थीना निकलता और व्यथाका साधन बनता है। कपूर और हिङ्गु एकत्र खिन्नानेसे छद्मरोग दूर होता है।

वालककाल लड़कोंको खांसी पानेपर एक लत्तेमें कपूर सगा और तथा रात्रिकाल घचपर रखनेसे बड़ा लाभ पहुँचता है।

स्वप्नदीप और प्रकृषय प्रस्थित रोगमें रात्रिकाल सोते समय ४ घेन कपूरके साथ पाद घेन अफीम

कर्मपञ्चम (सं० पु०) एक रागिणी । यह ललित, हिन्दोल, वसन्त और देशकारके योगसे बनती है ।
 कर्मपञ्चमी (सं० स्त्री०) कर्मपञ्चम देवी ।
 कर्मपथ (सं० पु०) कर्मणां पन्थाः, कर्मन्-पयिन्-थप् । कर्मपद्धति, कामकी राह । यह दशप्रकार है ।
 इसके परित्यागका उपदेश दिया गया है,—

“कायेन त्रिविधं कर्म वाचा चापि चतुर्विधम् ।
 मनसा विविधं च दशकर्मपचारलक्षणम् ॥
 प्राञ्जातिपालः क्षीयश्च परदारमवापि वा ।
 वीरि वापानि कायेन सहेतः पवित्रयेत् ॥
 पञ्चमूलापे पाठयेत् देशान्तरं व्रजेत् ॥
 वलारि वाचा रात्रिम्भ्र नमस्ते वागुपनिवेत् ॥
 चतुर्विधा परस्ते पुं सर्वसत्ते पुं सोऽग्रदम् ॥
 कर्मणां फलमधीति त्रिविधं मनसा व्रजेत् ॥” (महाभारत)

त्रिविध कायिक, चतुर्विध वाचिक और त्रिविध मानसिक—दश कर्मपथ परित्याग करना चाहिये । प्राणनाश, चीर्य और परदारगमन तीन प्रकारके कायिक कर्म सर्वतोभावेसे छोड़ने योग्य हैं । पसद, कर्कश, निष्ठुर और मिथ्यावाक्य यह चार प्रकारके वाक्य बोधना अच्छा नहीं । परसम्पत्तिसे नियुक्त रह, सर्व जीव पर सोहार्द रख और कर्मके फलमें विश्वासकर चलना उचित है ।

कर्मपद्धति (सं० स्त्री०) कर्मणां पद्धतिः, ६-तत् ।
 कर्मकी प्रणाली, काम करनेका कायदा ।
 कर्मपाक (सं० पु०) कर्मणः धर्माधर्ममूलकस्य पाकः परिणामः, ६-तत् । धर्माधर्मका सुखदुःखादि रूप परिणाम, भन्नाथो सुराग्रीसे चाराम और तकलीफ़ मिलनेका मतोजा । कर्मविपाक देखो ।

कर्मपुरुष (सं० पु०) जीव, जानवर ।
 कर्मप्रधानक्रिया (सं० स्त्री०) क्रियाविशेष, एक फल ।
 इसमें कर्म ही प्रधान रहता और कर्ताके समान पड़ता है । फिर क्रियाका लिङ्ग और वचन भी उसी कर्ता बने कर्मके अनुसार लागता है ।

कर्मप्रधान वाक्य (सं० स्त्री०) वाक्यविशेष, एक लुमहा ।
 इसमें कर्म कर्ताके स्थानपर रहता है ।
 कर्मप्रवचनीय (सं० पु०) कर्मप्रोक्तवान्, कर्मन्-प्रवच-

नीयर् । कर्मपञ्चमीयाः १।३।५२ । याचिनि-व्याकरणेत्त संज्ञाविशेष ।

कर्मफल (सं० स्त्री०) कर्मणः जीवकृत शुभाशुभरूपस्य फलं परिणामः । १ शुभाशुभ कर्मका सुखदुःख भोगरूप परिणाम, भले बुरे कामसे चाराम और तकलीफ़ मिलनेका मतोजा । २ सुख, चाराम । ३ दुःख, तकलीफ़ । ४ कर्मरङ्ग फल, कामरख ।

कर्मफलोदय (सं० पु०) कर्मके परिणामका विकास, कामके नतीजेका उठान ।

कर्मवन्ध (सं० पु०) कर्मणा बन्धः शरीरसम्बन्धः, ३-तत् । १ कर्मके चट्टणसे परजन्मका बन्धन, कामकी गांठ । इसीसे जीव सुखदुःख भोगता है । (त्रि०) कर्मवन्धं बन्धनसाधनं यश्च, बहुरी० । २ कर्मके बन्धनका कारण रखनेवाला, जो कामकी गांठ रखता हो ।

कर्मवन्धन (सं० स्त्री०) कर्मणा बन्धनं कर्म एव बन्धनं वा । १ कर्मसे जन्मग्रहण, कामसे पैदा होनेकी हालत । २ कर्मका बन्धन, कामकी गांठ ।

कर्मभूमि (सं० स्त्री०) कर्मणः कर्मणि उचिता वा भूः, ६ वा ७-तत् । १ छट भूमि, जोती हुयी जमीन । २ भारतवर्ष ।

“नवापि भारतं जेष्ठं जम्बुद्वीपे महासुमे ।
 यतो हि कर्मभूरेवा चोऽग्रा भोगभूमयः ॥”

कर्मभूमि (सं० स्त्री०) कर्मणः पुण्यजनक यज्ञादिरूपक्रियायाः भूमिः, ६-तत् । १ आर्यावर्त, विन्ध्याचल और हिमालयके बीचका देश ।

“भारतानैरावतानि विदेशाव इष्टानि विना ।
 नर्वाचि कर्मभूमयः स्युः शिवापि कर्मभूमयः ॥” (वैश्वसन्)

कुरुकी छोड़ भारत, ऐरावत और विदेह कर्मभूमि है । चाकी वर्ष भोगभूमि कहते हैं ।
 २ भारतवर्ष, हिन्दुस्तान ।

“उत्तं यत् ससुदृशं हिमाद्रौ यं च दक्षिणम् ।
 त्वं तद् भारतं नाम भारतो यव जनानि ॥

नववीजप्रशासको विद्यातोऽस्य महासुमे ।
 कर्मभूमिरियं सुमेनवर्षे च मन्थताम् ॥” (विष्णु० १।१।१)

ससुदृशे उत्तर-और-हिमाद्रिसे दक्षिण पड़नेवाले

देनेसे रोगका प्रतिकार पड़ता है। मेहादि रोगमें निद्रोद्गम घटते उक्त बीवधके साथ अफीम अधिक देनेपौर निद्रपर कपूर्रका निनिमेष्य जग लेनेसे चाय फल मिलता है।

स्त्रियोंके जरायुमें इसी प्रकार नाना रोगके कारण प्रदाह घटने पर अथवागुमार ३।५ घेनकी मात्रामें कपूर्रकी एक एक गोली बना दिनकी २।३ बार (जलानसे विगेष उपकार होता है। किन्तु ऐसे स्थलमें रोगिणीका अन्व खानी रखना पड़ेगा।

प्रसवकाल पीड़ा घटते कपूर्र और फाकोमेल पांच-पांच घेन मधु छाल दो गोली बनाते और एक खिछाते हैं। इससे बड़ा लाभ पड़ता है। कोई एक घण्टे पीछे जलान भी देना पड़ता है।

पीनस रोगमें कपूर्रका वाष्प बड़ा उपकार करता है। फिर स्यागुममें ३।४ घेन कपूर्र पांच घेन पेलो-डोनाके साथ लगानेसे अधिक लाभ होता है।

ऐलेमें कभी कपूर्र उपकारी और कभी अतुपकारी है। गर्भयतीकी अधिक मात्रामें कपूर्र खिन्नानेसे गर्भस्राव होता है।

बच्चादिमें कपूर्र डाल रखनेसे कौड़ा नहीं लगता। भारतवर्षमें यह पुष्य द्रव्य समझा जाता है। प्रत्येक देवदेवीकी चारती इससे हुवा करती है। फिर सुगन्धके लिये पञ्चास्यत और पक्कायमें भी यह पड़ता है। कपूर्र—संस्कृतके एक प्राचीन विद्वान् पन्थकार। यह गजमन्त्रके पिता और सिद्धत-टीकाकार कल्याणमन्त्रके पितामह थे।

कपूर्रक (सं० पु०) कपूर्र इव कायति प्रकागते; कपूर्र-कै-क। १ कपूर्रक, कथो हृदी। २ कपूर्रक, कचूर। कपूर्र कवि—संस्कृतके एक प्राचीन कवि। भोजप्रबन्धमें इनका उल्लेख है।

कपूर्रखण्ड (सं० पु०) कपूर्रख्य खण्डः, ६-तन् । कपूर्रका खण्ड, कपूर्रका छला।

कपूर्रगौर (सं० ति०) कपूर्रवत् गौरः शुभः। कपूर्रकी भांति हभ्रवर्ष, कपूर्रकी तरह गौर।

कपूर्रगौरी (सं० स्त्री०) एक रागिणी। इसमें ज्योतिः, अम्बापती, जयतयी, टह और बराटोके अर जयते हैं।

कपूर्रतिलक (सं० पु०) कपूर्र इव शुक्लं तिलकं ललाटचिह्नं यच्च, बहुव्री०। हस्तिविगेष, एक च्वायो।

कपूर्रतुलसी (सं० स्त्री०) कपूर्रगन्धिका तुलसी, कपूर्रकी तरह महकनेवाली तुलसी।

कपूर्रतेस (सं० क्ता०) कपूर्रस्य तैलमिव् सेहः। कपूर्ररसेह, कपूर्रका तैल। इसका संस्कृत पर्याय—हिमतेल और सुधांशुतैल है। यह कटु, उष्ण, दुग्ध-दाह्यंकर और घात, कफ, पित्त तथा घामहर होता है। (राजनिष्यु)

कपूर्रनालिका (सं० स्त्री०) पक्कायविगेष, एक मिठायी। सोयन मिली मैदाकी एक लव्या नली बना लवण, मरिच, कपूर्र और गरुड भरते हैं। फिर सुख बन्द कर छतमें भूननेसे कपूर्रनालिका बनती है। यह शरीरवर्धक, बलकारक, सुमिष्ट, गुरु, पित्त तथा वायुनाशक, रुचिजनक और दीप्तान्नि भागवके लिये अत्यन्त लाभदायक है। (राजनिष्यु) हिस्तीमें इसे कपूर्रकी गोक्षिप्रा कह सकते हैं।

कपूर्रमणि (सं० पु०) कपूर्रवर्षी मणिः। पापाप-भेद, कपूर्रकी तरह एक मफेद पत्थर। यह तिल, कटु, उष्ण और अथ तथा ल्वक् एवं वातदोषनाशक होता है। (राजनिष्यु)

कपूर्ररस (सं० पु०) र पतिसाराधिकारका रसविगेष, दस्तकी एक दवा। यह हिरण्म, अक्षिफेन, मुस्ताक, इन्द्रिय, जालीफन और कपूर्र यक्षसे घोटनेपर बनता है। दो गुच्छापरिमित घाटिका जलसे पाये जाते हैं।

(नेरनरवर्षी) २ रसकपूर्र, रसकपूर्र। इनमें प्रथम सामान्य रूपसे पारद मोधा जाता है। शूद्र पारदके परिमित गैरिक, पुष्टिका, स्फटिका, मैश्व, यक्षीक, चारलवष और भाण्डरश्चक मृत्तिका एक पहर घोटते हैं। फिर उक्त चूर्णके साथ शूद्र पारद एक हाँडीमें रख ऊपर दूधरी हाँडो लगा महीसे छार बन्द करना पड़ता है। क्रमशः तीन बार महीका लेव घुमनेपर हाँडी अग्निमें फूँकी जाती है। चार दिन बराबर पांच देन पीछे पांचवे दिन हाँडी पहार पर रखनी है। अन्तको अति सावधानतासे ऊपरकी हाँडी खोलते हैं। उसमें कपूर्रकी भांति का पारद जग जाता, वहीं

यर्षका नाम भारत है। यहाँ भारती सन्तति होती है। विस्तार नौ हजार योजन है। इसीको कर्मभूमि कहते हैं। यहाँ पुण्यकर्म करनेसे स्वर्ग अपवर्ग मिलता है।

कर्मभोग (सं० पु०) कर्मणः कर्मजन्य सुखदुःखादे-
भोगः, ६-तत्। कर्मफलानुसार सुखदुःखादिका भोग,
कामके नतीजेसे आराम तकलीफ, मिलनेकी हालत।
कर्ममन्त्री (सं० पु०) कर्म मन्त्रयति, कर्मन्-मन्त्र-
ण्णिच्-णिनि। कर्मके सम्बन्धमें मन्त्रणादाता, कामकी
सहाइ देनेवाला।

कर्ममय (सं० त्रि०) कर्मसे बना हुआ, कामसे
निकलनेवाला।

कर्ममार्ग (सं० पु०) १ कर्मका नियम, कामका
तरीक। २ भित्ति प्रभृति तोड़नेकी दृश्य द्वारा ध्ववहार
किया जानेवाला एक शब्द, दीवार बगेरइमें सेंध
लगनेकी एक इशारेका लक्षण।

कर्ममीमांसा (सं० स्त्री०) कर्मणि मीमांसा। कर्म
सम्बन्धमें निश्चयकारक शास्त्रविशेष। गोनांशा देवी।

कर्ममूल (सं० स्त्री०) कर्मणो मूलमिव मूलमस्य
यहा कर्मणि यच्चादि क्रियाजन्य सत्कर्मार्थं मूलं यस्य।
१ कुम्भ। २ शरद्वण।

कर्मयुग (सं० स्त्री०) क्षणानि दिनस्ति अन्वोऽन्यं
यत्, क्ष-मनिन्; कर्म हिंसाप्रधानं युगम्, कर्मधारय।
हिंसाप्रधान कल्पियुग।

कर्मयोग (सं० पु०) कर्मसु योगस्तत् कौशलम्,
७-तत्। १ चित्तशुद्धिजनक वैदिक कर्म।

“अथनेत्र क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधकः।।

कर्मयोगेन विना ज्ञानं कश्चिदपि न दृश्यते।।” (मन्वसाधनम्)

कर्मयोगको ही क्रियायोग कहते हैं। विना इसके
किसीको ज्ञान प्राप्त नहीं होता। कर्म देवी।
२ परिश्रम, मेहनत। ३ यच्चादिसे सम्बन्ध।

कर्मयोगी (सं० पु०) कर्म योगी उस्यास्ति, कर्म-
योग-इनि। कर्मयोगमें रत, ईश्वरकी प्राप्तिके अभिलाष
यत्न ध्यानादि वैदिक कर्म करनेवाला।

कर्मयोगि (सं० पु०) कर्मणो योगिः पादिकारणम्,
६-तत्। कर्मका मूलकारण, कामका अक्षरी उच्यते।

कर्मरः (सं० पु०) कर्म हिंसां राति, कर्मन्-र-क।
कर्मरङ्ग, कर्मरख।

कर्मरक (सं० पु०) कर्मर-स्वार्थे कन्। कर्मरङ्ग,
कर्मरख।

कर्मरङ्ग (सं० पु० स्त्री०) कर्मणि हिंसायै रज्यते
रोगादिजनकत्वादिति भावः, कर्मन्-रञ्ज घञ्।
स्वनामख्यांत वृक्ष, कर्मरखका पेड़। (Averrhoa
carambola) इसका संस्कृत पर्याय—शिरान, वृषदन्त,
रुजाकर, कर्मार, कर्मरक, पीतफल, कर्मर, सुहरक,
सुहर, धराफल और कर्मारक है। मराठीमें इसे
करमल, तामिलमें तमत्तंमूखरम्, तेलगुमें तमत्तंचेतु,
मस्यमें वृन्डविड् मनिच, ब्रह्मीमें जुंगया और
पोर्तुगीज भाषामें करम्बोल कहते हैं।

कर्मरङ्ग अन्न, उष्ण, वायुनाशक, तीक्ष्ण, कटुपाकी
और अन्नपित्तकारक होता है। इसका पक्काफल मधुर,
अम्लरस और बल, पुष्टि तथा रुचिकारक है। (राजनि०)
भावप्रकाशके मतसे यह शीतल, मस्यवहकारक
और कफ एवं वायुनाशक होता है।

कर्मरङ्ग दो प्रकारका होता है—मिष्ट और अन्न।
किन्तु पक्का अन्न फल ही लोगोंको अच्छा लगता है।
कारण खानेमें यह अधिक सुखरीचक है। वृक्ष
१४से १६ फीट तक बढ़ता है। युरोपीयोंके मतानु-
सार यह प्रथम भारत-महासागरके मलका द्वीपमें
उत्पन्न होता था। यहाँसे कर्मरङ्ग सिंहल गया
और सिंहलसे भारत आ पहुँचा। किन्तु हमारी
विवेचनामें यह बात ठीक नहीं। बहुत प्राचीन कालसे
कर्मरङ्ग भारतमें उपजता, जिसका प्रमाण रामा-
यणमें मिलता है। आजकल भारतमें प्रायः सर्वत्र
यह वृक्ष होता है।

कर्मराष्ट्र—दाक्षिणात्यका एक प्राचीन उपविभाग।
(Ind. Ant. VII. 189.)

कर्मरौ (सं० स्त्री०) कर्म भैषज्योपयोगक्रियां राति
ददाति, कर्म-र-क गौरादित्वात् ङीप्। शंशलोचना।
कर्मरेख (सं० पु०) कर्मको रेखा, मर्त्यका लिखा,
झोनहार।

कर्मर्च (सं० पु०) ऋग्वेदेको एक प्राचीन ऋषि।

कर्मवचन (सं० स्त्री०) कर्मयाक्य, बौद्धमतानुयायी क्रियाकाण्ड ।

कर्मवज्र (सं० पु०) कर्म श्रोताद्यनुष्ठानं वज्रमिव यस्य, बहुव्री० । शूद्र । शूद्रको श्रोतादि अनुष्ठान वज्रकी भांति कठोर लगता है ।

कर्मवत्.. (सं० त्रि०) कर्मं प्रास्वस्वि, कर्म-मत्तुम् मस्य वः । कर्म विशिष्ट, कामकाजी ।

कर्मवश (सं० त्रि०) कर्मणो वशः, इ-तत् । १ कर्म के अधीन, कामका मारा । (पु०) पूर्वजन्मके कर्म का प्रवश्यभावी फल, कामका जहूरी नतीजा । यह शब्द हिन्दुधर्म में क्रियाविशेषणकी भांति भी आता है । किन्तु उस अर्थस्थान में करणकारकका चिह्न 'से' छिपा रहता है ।

कर्मवशिता (सं० स्त्री०) कर्मवशितो भावः, कर्म-वशिन् तल्-टाप् । कर्मधीनका भाव, काममें देने रहनेकी दानता । यह बोधिसत्वका एक गुण है ।

कर्मवशी (सं० पु०) कर्मणो वशः वशता अस्वस्वि, कर्म-वश-इनि । कर्मधीन, कामका मारा ।

कर्मवश्याता (सं० स्त्री०) कर्मणो वश्याता अधीनता, इ-तत् । कर्मकी अधीनता, कामका दबाव ।

कर्मवाच्यक्रिया, कर्म प्रधानक्रिया देखी ।

कर्मवाटी (सं० स्त्री०) कर्मणां शास्त्रीकृतिथि-निमित्तीभूतक्रियाणां चन्द्रकलाक्रियाणां वा वाटीव ।

तिथि, चान्द्र मासका तीसवां विभाग ।

कर्मवाद (सं० पु०) मीमांसाशास्त्र । इसमें कर्मकी ही प्रधानता स्वीकृत हुयी है ।

कर्मवादी (सं० पु०) मीमांसक, कर्मकी सर्वप्रधान स्वीकार करनेवाला ।

कर्मवान्, कर्मवन् देखी ।

कर्मविघ्न (सं० पु०) कर्मका अन्तराय, कामकी मुजाहिमत या अड़ ।

कर्मविधि (सं० पु०) कर्मणो विधिः नियमः, इ-तत् ।

कर्मका नियम, कामका कायदा ।

कर्मविपर्यय (सं० पु०) १ कार्यका अनुक्रम, कामका सिलसिला । २ कर्मका व्यतिक्रम; कामका उल्टा फिर ।

कर्मविपाक (सं० पु०) कर्मणः धर्माधर्मनूसकस्य विपाकः परिणामः, इ-तत् । शभाशुभ कर्मका फल, भले बुरे कामका नतीजा । सुक्ति, खर्ग, परजन्म में

ऐश्वर्यादिका उपकरण वा सुख प्रवृत्ति शुभकर्मका और रोग तथा नरकादि पशुभ कर्मका फलभोग है । हमारे शास्त्रके मतसे पधर्मके न्यूनताधिक्य अनुसार प्रथम नरक-भोग कर पीछे पापयोजि विशेषमें उल्टाचि होतो है । गण्डपुराणमें कैसे पापसे कैसे योनिमें जन्म लेनेकी बात लिखी है—पतित व्यक्तिका दानग्रहण करनेसे नरकान्त-पर पापों छामि, उपाध्यायको मारने-पीटनेसे क्रूर, गुरु-पत्नी वा गुरुद्रव्यके लोभसे गर्दभ, माता प्रवृत्ति अन्य गुरुजनको प्राक्रमण करनेसे शारिका, माता पिताको यन्त्रणा देनेसे कच्छप, प्रसुदत्त चाहार छोड़ अन्य द्रव्य खानेसे वानर, गच्छित धन मारनेसे छामि, किपीके गुणमें दीप लगानेसे राघव, विश्वासघातकतासे मख्य, यव धान्य प्रवृत्ति शस्य चोरानेसे इन्दुर, परस्त्रीगमनसे ध्यात्र हक प्रवृत्ति, भ्रातृजायाहरणसे कौकिल, गुरु प्रवृत्तिके पत्नी-हरणसे शूकर, यज्ञदानविवाह प्रवृत्तिमें विघ्न डालनेसे छामि, देवता पिष्टक्रीक एवं ब्राह्मणको न दे भोजन करनेसे वायस, लूट भ्रताकी भवमानना करनेसे कौश, शूद्र को ब्राह्मणो गमन करनेसे छामि, ब्राह्मणो-गर्भसे पुत्र निकालते काष्ठमाशक कीट, कृतज्ञतासे छामिकीट पतङ्ग वा हृषिक, शास्त्रहीन व्यक्तिको मारनेसे खर, स्त्री तथा शिशुवध करनेसे छामि, किपीका भोग्यवस्तु चोरानेसे मच्छिका, भयहरण करनेसे विडास, तिल-हरणसे मुपिक, दूत हरणसे नकुल, मदगुर मख्य हरणसे काक, मधु हरणसे मशक, पिष्टक हरणसे पिपेलिका, जल हरणसे वायस, कांस्य हरणसे छारीत वा कपोत, स्वर्णभाण्ड चोरानेसे छामि, वस्त्रादि हरणसे कौश, धनिहरणसे बक, वर्षक एवं शाक पत्यादि चोरानेसे मयूर, रत्नवस्त्र हरणसे चकीर, सुगन्धि वस्तु चोरानेसे कर्कुर, वंश हरणसे शयक, मयूरका पुच्छ चोरानेसे पण्ड, काष्ठहरणसे काष्ठकोट, फल चोरानेसे चालक और गृहहरण करनेसे रौरवादि नरक भोग त्वय गुह्य सता हृष्टादि रूपमें जन्म लेना पड़ता है । गो सुवर्णादि हरणसे भो ऐसा ही फल मिलता है । फिर मनुष्य विद्या चोरानेसे बहुनरक भोग पोंछे सूक और इन्धनशून्य भग्निमें पाइति डालनेसे मन्दाग्नि हो जन्म लेता है । (नरक ३० १२२ २०)

कामका अस्त्राम । ३ कार्यप्रबन्ध, कामका इन्तिज़ाम ।
४ कष्टभूमि, जोता हुआ खेत ।

“अहम्यहम्येते कर्मानान् वाहनानि ।” (मनु ५४१२)

कर्मान्तर (सं० स्त्री०) कर्मणः अन्तरं तस्मादन्यं इत्यर्थः, ६-तत् । १ कार्यान्तर, दूसरा काम । २ यज्ञादि धर्म कार्योंके मध्यका अवकाश, कामके बीचकी छुट्टी । ३ प्रायश्चित्त, कफ़ारा ।

कर्मान्तिक (सं० पु०) कर्म अन्तिके समीपे यस्य, बहुव्री० । १ कर्मकारक, कामकाजी । (त्रि०) २ अन्तिम, आखिरी ।

कर्मार (सं० पु०) कर्म लौहनिर्माणादि कार्यं गच्छति प्राप्नोति, कर्मन्-पठ-अण् । १ कर्मकार, लोहार ।

“कर्मारस्य निपादस्य रङ्गावतारकस्य च ।” (मनु ४१२५)

२ वंश, वांस । ३ कर्मरङ्ग, कर्मरख ।

कर्मार—काठियावाडके भालावाड विभागका एक सुदूर राज्य । इसकी भूमिका परिमाण ३ मील मात्र है । यहाँ एक सामन्त रहते हैं । वर्षमें ७६५) ६० राज्यका भाग है । इसमें २१०) ६० अंगरेज सरकार और कोयी ५०) ६० जूनागढ़के नवाबको राजस्वरूप देना पड़ता है ।

कर्मारक (सं० पु०) कर्मार स्वार्थे कन् । १ कर्मार, लोहार । २ कर्मरङ्ग, वृक्ष, कर्मरख । (त्रि०) ३ कर्मप्राप्त, काम पाये हुआ ।

कर्मारश्च (सं० पु०) कर्मका आरम्भ, कामका आग़ान् ।
कर्मार्षे (सं० पु०) कर्म अर्षति, कर्मन्-अर्ष-अण् । १ मनुष्य, आदमी । (त्रि०) २ कर्मके योग्य, काम कर सकनेवाला ।

कर्माल—बम्बईप्रान्तके गीनापुर जिलेका एक उपविभाग । यह अक्षा० १०° ५०' तथा १८° ३२' उ० और देशा० ७४° ५२' एवं ७५° ११' पू०के मध्य अवस्थित है । भूमिका परिमाण ७६६ वर्ग मील आता है ।

इस उपविभागमें कोयी १२२ ग्राम और ८२०० गृह होंगे । पश्चिमकी भीमा और पूर्वकी सीना नदी प्रवाहित है । कर्मालका अर्धे भाग उर्वर एवं कृष्यवर्ध और अपराधे रक्ष्यवर्ध तथा रेतिला है ।

यहाँ एक दीवानी और दो फौजदारीकी अदालतें हैं । पुलिसके तीन घाने लगते हैं । नानाप्रकार गन्ध, माष, गण, सर्प और अघरापर द्रव्य उत्पन्न होता है । सोनारोंमें प्रति वर्ष मेला लगता है ।

२ कर्माल उपविभागका प्रधान नगर । यह अक्षा० १८° २४' उ० और देशा० ७५° १४' २०" पू० पर अवस्थित है । गीनापुरसे कर्माल ६८ मील उत्तर-पश्चिम पड़ता है । नगरका क्षेत्रफल १८८ एकर है ।

पहले कर्मालमें निम्बालकर मण्डलेखरोंका आधिपत्य था । उन्होंने एक सुन्दर दुर्ग बनाया । आजकल उसमें अंगरेज कर्मचारियोंका कार्यालय खुला है । दुर्ग प्रायः बौधायी वर्गमें ही विस्तृत है । उसमें १०० गृह बने हैं । किसी समय यहाँ बड़ा वाणिज्य व्यवसाय था । पूना, अहमदाबाद, गीनापुर, वारसी प्रभृति स्थानसे अनेक द्रव्यसामग्रियाँ आती-जाती थीं । किन्तु आजकल वह बात नहीं रही । फिर भी पशु, गन्ध, तैल, वस्त्रादिका बड़ा बाज़ार लगता है । देगी कपड़ा बुननेके कयी करघे चलते हैं । वार्षिक मेला ४ दिन रहता है । यहाँ विद्यालय, शौचालय, छाकघर और पाठागार विद्यमान है ।

कर्माविधायक (सं० त्रि०) कर्मणः अविधायकः, ६-तत् । कार्यको विधान करनेवाला, जो काम करता है ।

कर्माशय (सं० पु०) कर्मापामाशयः, ६-तत् । कर्मके धर्माधर्मका गुण, कामकी भलाई बुराईका बरक ।

कर्मीक (सं० त्रि०) कर्म अस्त्यस्य, कर्म-ठक् । कर्म-विशिष्ट, कामवाली ।

कर्मीष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयैव कर्मि, कर्मिन्-इठन् । इने शुक् । अतिशय कार्यकारक, काममें लगा रहनेवाला ।

कर्मीष्ठता (सं० स्त्री०) कर्मिष्ठस्य भावः, कर्मिष्ठ-तल्-टाप् । अतिशय कार्यकारिता, काममें लगे रहनेकी द्वास्त ।

कर्मी (सं० पु०) कर्म अस्यास्ति, कर्म-रनि । १ कर्म-विशिष्ट, कामवाली । २ फलकी आकाङ्क्षासे यज्ञादि कार्य करनेवाला ।

पापकार्यं विशेषसे दृढजन्म वा परजन्ममें रोग-विशेष भी भोगना पड़ता है। यातातप ऋषिनि जिस पापसे जिस रोगका विधान किया, नीचे वह लिख दिया है। पापसे जो रोग लगता, उसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। प्रायश्चित्त न करनेसे वही रोग पर-जन्ममें भी मनुष्यको कष्ट देता है। मंहापातकसे सात, उपपातकसे पांच और पापसे तीन जन्म तक रोग पीछा नहीं छोड़ता। मंहापातक, उपपातक और पातकके प्रायश्चित्तका भी न्यून अधिक्य रहता है। मंहापातकमें पूर्ण, उपपातकमें अर्ध और पातकमें पष्टांश प्राय-श्चित्त करना पड़ता है। फिर अतिपातकमें दानादि साधारण विधान द्वारा मुक्त हो सकते हैं।

पाप	रोग	प्रायश्चित्त
गर्भहत्या	रुधिरगुल्म	मूर्ति विस्तार कर भक्तिवृत्तिकादि चापादंको निवेदन करना चायि,— “यमोऽपि मदिनापदो दद्यथाचि- भंगान्तः। दक्षिणामा परिदो मम पापं स्वीयेतु ॥”
मातृहत्या	इत्यन्त पीतवर्ण	१०० मासा स्वर्षको प्रकृतिका दान। १०० मासा परिमित स्वर्षके दने पारावतका दान।
बकहत्या	दोषं गासिका	सप्तवर्षं गोदान।
शुक्रमारिकहत्या	खलितभास	ब्राह्मणको दक्षिणा सहित कोई शास्त्रग्रन्थ दान।
शूकरहत्या	दन्तार	दक्षिणा सहित छतकृत्तदान।
शृगालहत्या	पदमूषता	एकपल परिमित स्वर्षं चन्ददान।
हरिणहत्या	खड्ग	एकपल परिमित स्वर्षं चन्ददान।
विट्टहत्या	शैतलनाय	१० मासापय बना एक पचपरि- मित स्वर्षको मोक्षा पर ताम्रपत्रमें रीत्यमय कुम्भ रख १०० मासा परिमित स्वर्षका विष्णुविष्णु गङ्ग पत्रवस्त्र पहना यथा विधि पूजा करना चायि। पीछे यह समस्त द्रव्य ब्राह्मणको दिते हैं।
मातृहत्या	पथ	विट्टहत्याका ही प्रायश्चित्त इनमें भी करना पड़ता है।
मातृहत्या	शुक्र	चाण्डाल्य मृत कर ‘सुरस्मि कगन्नातः शब्दब्रह्मादिदिते। दुष्कर्म- करणात् पापात् पाहि सा परमीचरिष’ मन् पद-पल परिमित स्वर्षं सह ब्राह्मणको पुसक है।
सौहत्या	अतीसार	१० चन्दन रुधरीपत्र, शंखर तथा शेतुदान और शत ब्राह्मणभोजन।
बाणहत्या	सतपत्रा	ब्राह्मणको विद्यादान, हरिश्च स्वर्ष, महाब्रह्मका जप, अमुत अंशक हूर्वा चातुति ११ दक्षिणासह १०० मासा परिमित ११ खड्ग स्वर्षं चन्दना ११ पल स्वर्षं ११ ब्राह्मणको देना चायि। फिर चन्दना ब्राह्मणको भी दक्षिणा-दान करना कर्त्तव्य है। चर्मद्वयमें चापाद्यं वस्त्रद्वयमन दाना

पाप	रोग	प्रायश्चित्त
कागहत्या	अधिकारा	विधिवशुक्त क्षारादान।
अश्वहत्या	बलसुख	शतपल चन्दन दान।
शिवहत्या	पाण्डुरोग	ब्राह्मणको एक पल कषारो दान।
छद्महत्या	विकृतसर	कपूर् रक्त फलदान।
काकहत्या	कण्ठीमता	रुध्रवर्षं गोदान।
शूरहत्या	कर्मदोष	तीन सुद्रा परिमित स्वर्षप्रकृति दान।
दक्षिहत्या	अशंकादंभी अक्षिष्ट	मन्दिर बना गणेशमूर्ति प्रतिष्ठा अथवा कुशल्य मास तथा पिष्टक द्वारा गणेशमूर्तिका शालि विधान और एक खच गणेशमन लप।
तरुहत्या	शैबरायि	शुभममयी धे तुका दान।
गोहत्या	कुष्ठ	पच पल्लव संयुक्त, पचवर्षं विभिन्, रक्तचन्दनसिद्धि, रक्तपुत्र पर रक्तवस्त्र आच्छादित एक रक्तकुम्भ दक्षिण दिक् स्थापित कर, तिस्रसूचं- पूर्णं ताघवात उसपर रख उसमें १०० मासा परिमित स्वर्षको यममूर्ति जसा पुष्पमूत्र मलसे पूजा और उसमें चन्दने पापको शालि मार्जना करना चायि। इनके पीछे सामयिकी ब्राह्मण कलस भामवशादय करें। द्विरे इस भाग अर्पण द्वारा पात्र मातृहत्या अभिषेचन कीता है। अनको नियतद्विध मन्त्र द्वारा यम-

कर्मीर (सं० त्रि०) कर्म-ईरन् । चित्रित, चितकघरा ।
 कर्मोरक (सं० पु०) गाखोट वृक्ष, सक्षोरिका पेड़ ।
 कर्मोन्द्रिय (सं० स्त्री०) कर्मणां सम्पादनाय कर्मार्थं
 वा इन्द्रियम्, मध्यपदनी० । वाक्यादि कर्म सम्पादक
 पक्षेन्द्रिय, काम करनियाला वृक्ष । वाक्, वृक्ष, पद,
 गुह्य और उपस्थ पांच कर्मोन्द्रिय होते हैं । यथाक्रम
 इनका कार्य उच्चारण, प्रादानादि, गमनादि, उत्सर्ग
 और प्रानन्द है । फिर पश्चिटाष्टदेवता वज्रि, इन्द्र,
 उपेन्द्र, मित्र और ब्रह्मा हैं । श्रद्धेय देवी ।

कर्मीदार (सं० पु०) उदार कर्म, इच्छातका काम ।
 कर्मोद्युक्त (सं० त्रि०) कर्मणि उद्युक्तः, ७-तत् । कर्मका
 उद्योग लगानेवाला, जो खूब काम करता हो ।

कर्मीद्योग (सं० पु०) कर्मका उद्योग, कामकी कोशिश ।
 कर्मी (हिं० पु०) १ तन्तुवायके सूत्रप्रसारणका कार्य,
 सुलाहीके सूतकी फेला ताननेका काम । (त्रि०)
 २ कठोर, कड़ा । ३ फठिन, सख्त ।

कर्मीना (हिं० स्त्री०) कठोर पड़ना, सख्त बनना ।
 कर्मी (हिं० स्त्री०) १ वृक्षविशेष, एक पौदा । यह
 देहरादून तथा भवधके वन और दक्षिणात्यमें होता
 है । इसका पत्र पत्ति दीर्घ रहता और मार्च मास
 झड़ता है । फल जून मास पका करता है । कर्मीके
 पत्ते पशुको खिलाये जाते हैं ।

कर्मी (सं० पु०) किरति विधिपति विचित्र विषयेषु, कृ-
 य । कर्मीरकः १ काम, खाद्यिष्य, प्यार ।
 २ इन्द्र, वृष्टा ।

कर्वट (सं० पु०-स्त्री०) कर्व-पटन् । दो शत घामके
 मध्यका सुन्दर स्थान, दो सौ गांवके बीचकी अच्छी
 जगह । २ शतघामवासियोंके क्रयविक्रयका स्थान,
 जिस शहरमें सौ गांवके लोग जाकर लेनदेन करें ।
 ३ चारों ओर समघाम, चौकोर गांव । ४ चतुर्दिक्
 समान गडरस्थान विनिय, चौकोर बराबर घरकी जगह ।
 ५ नगर अंगत; काई शहर ।

कर्वट—वृक्ष—दक्षिणका एक प्राचीन जनपद । मार्क-
 ष्ण्डेयपुराण-इन्द्रना नाम-वट-सुम-लक्ष्मण है ।

"मार्क-वृक्ष-इन्द्रना कर्वटानाम-ततः ।"

सुमान-वट-सुम-लक्ष्मण-इन्द्रना (भारत १३११११)

कर्वटक (सं० पु०-स्त्री०) कर्वट व्याघ्रं कन् । १ बवंट,
 मण्डो, गहर । २ पर्वतका वृक्ष, पहाड़का वृक्ष ।
 कर्वटी (सं० स्त्री०) कर्वट-डोप । नदीविशेष, एक
 दरया । (रागायण)

कर्वर (सं० स्त्री०) कृ-वरप् या कृ विधिषे वरप् ।
 कर्वर-वर्षिणः १ वर्ष । २ व्याघ्र, बाघ । ३ राक्षस ।
 ४ पाप । ५ कर्म, काम । ६ चौपधविशेष, एक देवा ।

कर्वरी (सं० स्त्री०) कर्वर-डोप । १ उमा, पार्वती ।
 २ व्याघ्री, बाघनी । ३ दिङ्गुपत्नी, एक घास । ४ राक्षसी ।
 कर्वरीयत नगर—मन्दाजकी उत्तर पश्चिम (पकोट)

जिलेकी एक बड़ी जमीन्दारी । यह पक्षा० १३° ४'
 तथा १३° १६' ३०" उ० और देगा० ७८° १०' एवं
 ७८° ५३' पू०के मध्य अवस्थित है । भूमिका परिमाण
 ६८० वर्गमील लगता है । लोकसंख्या प्रायः तीन
 लाख है । इससे उत्तर चन्द्रगिरि, पूर्व कालहस्ती तथा
 चेन्नैनपट्ट, दक्षिण वान्नाजापेट और पश्चिम बिस्तर
 पड़ता है । कर्वरीयत नगरमें पार्वत्य भूमि अधिक है ।
 मन्दाजरेलवे यहां चलती है । नगरी पर्वतसे काठ
 काटकर मन्दाज भ्रमते हैं । सोमै साठ भाग भूमि
 क्षयिके योग्य नहीं । शेषके पर्वतश्रमै इस चलता
 है । नील बहुत होता है । क्षयक परिश्रमी और
 बुद्धिमान् हैं । पुस्तुर और तिरुतागोमै सव-मजिस्ट्रेट
 रहते हैं । पटनिर्माण प्रधान गिल्सकर्म है । इस
 स्थानको किसी किसीने बम्बराज कहा है । प्रथम
 कर्णाटिक-युद्धके समय बम्बराज नामक एक पति-
 गार राजत्व करते थे । कर्वरीयत नगरका प्रथम
 वा स्थायी कर प्रायः २००७५) ६० है ।

इस भूभागके प्रधान नगरको भी कर्वरीयत नगर
 ही कहते हैं । यह पुस्तुरमें ७ मील पश्चिम अव-
 स्थित है । कर्वरीयतनगर पहले ८ फीट उच्च प्राचीरमें
 सुरचित था । दक्षिण और पश्चिम एक-एक तोरणदार
 रहा । आजकल यह बात नहीं, देखल भन्नापनीय
 पड़ा है ।

कर्वरीदार (सं० पु०) कर्वरीदारयति, कर्व-उप-ट-पण्य ।
 कोविदार वृक्ष, कषणारका पेड़ ।

कर्वुर (सं० पु०) कर्वरति द्विनदि, कर्व-उरष ।

पाप	रोम	प्रायश्चित्त	पाप	रोम	प्रायश्चित्त
राजदण्ड	चयरीम	दण्डतोषो धान कराना है । यजमान चाचार्यको ब्रह्मचरद्वारा प्रथम प्रदान करे । मी, मूनि, स्वर्ण, मिष्टान्न, जल, बस्त्र, छतके नु और तिलके नु दान ।	भयंछता प्रतिभासह	दासकाय चमतिह	छद्मक पत्र फल दान । मीन बरहर परेन चद्रत्य मीच विप्रराजको पूजा करे । स्वर्ण सह एक मोटे छत वा चापे मोटे मनुदान । चन्द्रदान ।
जघ्नदण्ड	पाण्डुक्रुह	धारी और पचपत्रव एवं पचवर्षे संशुक्र कल्पे रख मध्य कलस पर रोप्यनिर्मित चटदल पत्र लगा छसके ऊपर १० मोली स्वर्णनिर्मित दण्डकल चतुर्मुख देव स्थापन करे । हादस दिन परेन ब्रह्मचारी ब्राह्मणको कलसख्य देवकी पूजा, वेदपाठ, होम प्रथमि प्रसङ्ग स्थापन करना चाहिये । मोली छत्र उभय आचार्यको देना पड़ना है ।	पदनाम रजस्रव्याप्य छ चम सोमन विषदान	रक्षिपि पादरीम	विप्राय मोमुन तथा धाकभोजन । दम दुग्धवती गभी दान करना चाहिये । सत्यवादी ब्राह्मणको १ तिष्य (२१० मापा) स्वर्णदान । प्राजापत्य व्रत आचारण कर ० मोला अर्करदान, महाबद्रका जप, छसके दण्डाद्य तिलके होम और वचप मन द्वारा फलिवेक ।
वैश्वदण्ड	रक्षावृन्द	४ प्राजापत्य बना छत्र धान्दसुगुर्गे ।	दीवालय और जलमें मलयुक्त्याम	गुररीम	एक मास कान देवता पूजा और १ प्राजापत्य तथा १ गभी दान ।
गुह्यदण्ड	दण्डपालक	१ प्राजापत्य बना दक्षिणाके साथ एक छे तुदान ।	अथमयामन	शुभमच्छल	आचार्य भार एवं कांस दोह संशुक्र सक्ता तिलचिपिनिमित्त स्वर्ण छे तुदान । हासकान एक मन पदना पड़े गा—“सुरभी वैश्वरी माता मन पार्य म्योहनु ।”
वैश्याम	ऊह और निर्वेग	अथ प्राजापत्य बना ब्राह्मणको मूनि तथा दक्षिणादान और भारत श्रवण । भीमपचकका उपवास ।	चक्रधीनि गयन	गुदसभ	दो मास कान प्रति दिन सङ्घ संव्यक खात ।
अनवा भीजन	छदरकुनि	विराज छपकोस ।	चक्रक अष्टदण्ड	हीमदीति	दो तिष्य (२१६ मापा) स्वर्ण छे चिपिनीठमार बना दान करना चाहिये ।
अन्य शक्य छ	छदरकुनि	होम पक्ष परिमित स्वर्ण रोप्य तथा तासुकुल जल एवं छे नु दान ।	चक्रविकार करण	गुनीदर	शुक्र तदा विनु दान
अनभीजन	यज्जु, ग्रीवा, और अजीदर	अनदान तथा बट्टव रोपण करना चाहिये ।	ह्रस्वविकार करण	नीमण	१०० मापा परिमित स्वर्ण छे चिपिनीठमार बना पूजा करना चाहिये, मोली चक्र मूर्ति और कल्पददान करे ।
गर्भघात	सन्दाधि	होम प्राजापत्य बना १०० ब्राह्मण विधाना चाहिये ।	नीपकीमशात उभय करण	पूर्वावर्त	एकमास काय श्राव्य और काचन दान ।
दावाप्रिदाता	रक्षाभिहार	ब्रह्मभूषणको छे तुका दान । काचमसह छे तुदान ।	अथको करण	प्रदक्षन	यद्यपि देवकाल्य और छदान निर्माप करना चाहिये ।
दुष्टवचन	छछित	सवादिनि मध होम कर्तव्य है ।	अथमूल करण		
अन्य रक्षे मन्त्र	अन्याधि	अनदान और बट्टका जप करना चाहिये ।			
अनदान	अन्याधि	स्वर्ण सह गभीदान			
धुंता	अपमार				
परनिन्दा	खड्गो				
अन्य भीजनमें	अभीष				
विप्रदान	अभीष				
अन्यको दुःखदान	अन्य				
अन्यको उपवास	अन्य				

पाप	शोग	प्रायश्चित्त	पाप	शोग	प्रायश्चित्त
कांशुहरण	पुष्टरीक	ब्राह्मणकी चमत्कार कर शतपत्र करिना उचित है।	नानाविध द्रव्यहरण	दण्डो.	यद्यपि कर्म, यत्र और सर्वदा।
मुष्टयवोत्तम	सूत्रकण्ड	श्रीम माहायुक्त एवं श्रीमवल्ल- भाष्यादित घट पवित्र और रख छत्र पर तावपात्रमें कष्ट निष्क स्वर्णनिर्मित वस्त्रमूर्ति प्रदत्तस्वस्त्र पूजना चादिथि। निर सामवेदो ब्राह्मणको उसी समय सामवेद पठना उचित है। पीछे २० निष्क परिमित स्वर्णपुत्रलिका 'निषापोऽयं' कहके ब्राह्मणकी और छत्र वस्त्रमूर्ति चाचार्यकी प्रदान करना चादिथि। वस्त्रमूर्ति देने समय दक्ष मन्त्र पठना पढ़ता है,— "वाद्दसामथिथो देवो विश्वेशामथिथी वरः। स'धारणौक्य'धारो वस्त्रः पात्रनो ऽप्यु नि ॥"	पद्मारायण	निन्दारीय	छत्र वार गायत्री कर्ष और निष्क पारा। उसका दद्याम करन। धे मुदान। दो तिलपात्र दान। यद्यपि धामदान। कत्यामनके प्रायश्चित्तमें चाथा प्रायश्चित्त और प्रयत्नकृत निष्कार दद्याम शोग करना चादिथि। प्र ब्राह्मणकी अर्पण'करक नामा- विधि करदान। कत्यामनके प्रायश्चित्तमें चाथा प्रायश्चित्त और अर्पणकृत तिलसे दद्याम शोग कर्तव्य है। उपवासी रक्ष मणु और धे मुदान करना चादिथि। छत्रसमर्पण'दान। उत्तर दिक् छत्रमाहायुक्त छत्र ब्रह्मागत रख छत्रके ऊपर कांस्यपात्रमें कष्ट निष्क परिमित स्वर्णनिर्मित गर पादक कुशिकी मूर्ति स्थापनकर प्रदत्त स्वस्त्र धार करे। अथर्ववेदमिन् ब्राह्मण उसो समय अथर्ववेदीक चाथं करता रहै। अन्तको निर्मित निष्क परिमित स्वर्णकी पुत्रको ब्राह्मणको 'निषापोऽयं' कहकर और छत्र कुशिमूर्ति ब्राह्मणकी दे कासे। कुशिकी मूर्ति देने समय दक्ष मन्त्र पठना चादिथि,—'थिथी- नामथिथी देवः मद्भारस्त विद्यः सधा। शो प्राथियतिः श्रीमान् मम पापं म्यवेदनु ॥"
पद्याभोगमन	श्रीमनुष्यता	साह्यगोत्रीकी भांति प्रायश्चित्त करना चादिथि।	फलहरण	बहु शिखण	प्रदान
तपसिभोगमन	मनिक	एक मास ब्रह्मका जप और यद्यपि स्वर्णदान।	साह्यशायामन	गुण और कु छ	दद्याम शोग करना चादिथि।
तपसिभोगमन	चमरी	मणु, धेष्ट और स्वर्ण'छत्र मत श्रीधपरिमित तिलदान।	समुद्रहरण	नेत्ररीय	उपवासी रक्ष मणु और धे मुदान करना चादिथि। छत्रसमर्पण'दान।
ताम्र लहरण	वितीरता	द्विषया छत्र उत्तम प्रशासन दिना चादिथि।	सातुताभोगमन	कुलता	उत्तर दिक् छत्रमाहायुक्त छत्र ब्रह्मागत रख छत्रके ऊपर कांस्यपात्रमें कष्ट निष्क परिमित स्वर्णनिर्मित गर पादक कुशिकी मूर्ति स्थापनकर प्रदत्त स्वस्त्र धार करे। अथर्ववेदमिन् ब्राह्मण उसो समय अथर्ववेदीक चाथं करता रहै। अन्तको निर्मित निष्क परिमित स्वर्णकी पुत्रको ब्राह्मणको 'निषापोऽयं' कहकर और छत्र कुशिमूर्ति ब्राह्मणकी दे कासे। कुशिकी मूर्ति देने समय दक्ष मन्त्र पठना चादिथि,—'थिथी- नामथिथी देवः मद्भारस्त विद्यः सधा। शो प्राथियतिः श्रीमान् मम पापं म्यवेदनु ॥"
ताम्रहरण	श्रीकृष्णर कुष्ठ	माहायज्ञ मत और शतपत्र परि- मितःतामुदान।	मात्रयमन	विहङ्गीमता	उत्तर दिक् छत्रमाहायुक्त छत्र ब्रह्मागत रख छत्रके ऊपर कांस्यपात्रमें कष्ट निष्क परिमित स्वर्णनिर्मित गर पादक कुशिकी मूर्ति स्थापनकर प्रदत्त स्वस्त्र धार करे। अथर्ववेदमिन् ब्राह्मण उसो समय अथर्ववेदीक चाथं करता रहै। अन्तको निर्मित निष्क परिमित स्वर्णकी पुत्रको ब्राह्मणको 'निषापोऽयं' कहकर और छत्र कुशिमूर्ति ब्राह्मणकी दे कासे। कुशिकी मूर्ति देने समय दक्ष मन्त्र पठना चादिथि,—'थिथी- नामथिथी देवः मद्भारस्त विद्यः सधा। शो प्राथियतिः श्रीमान् मम पापं म्यवेदनु ॥"
शिवहरण	कण्डु प्रथति	उपवासी रक्ष ब्राह्मणकी दो शीटे तिलदान करे।	साह्यशायामन	सर्वाङ्गण	दास दाम और अन्नमाद्यमनका प्रायश्चित्त करे। एक ब्राह्मणकी निषाह है।
मणु (श्रीमा) हरण	नेत्ररीय	उपवास रख यथाविधि ब्राह्मणकी छत्र और धेष्ट देना चादिथि।	यत्नमायांमन	गतभायां	मणु और ब्रह्मणक मणिकी दाम। एकदिन उपवास रख शतपत्र श्रीकृष्ण करे।
दक्षिणहरण	मगता	ब्राह्मणकी दक्षि और धे मुदान।	रक्षयत्न और	मातरक	
काष्ठहरण	दक्षिण	ब्राह्मणकी दो पत्र कुल्लुत दान।	प्रयासहरण	चितिताह	
दोषिता क्रीडमन	पुष्टरज्ज्य शिक्षरीय	दो प्राणापत्य करना चादिथि।	श्रीकृष्ण		
दुग्धहरण	बहुभूम	ब्राह्मणकी यथाविधि दुग्ध धे मुदान।			
दीवताहरण	विधि अर	अरमें रुद्र, महाअरमें महाब्रह्म, श्रीरुद्रमें अतिरीरुद्र और वैश्वानरमें महाब्रह्म तथा अतिरीरुद्रका जप करे।			

२११२। १ छावि, खेती। २ लीविका, रोड़गर।
 ३ करीपानि, छुछे गोबरकी भाग। (स्त्री०)
 ४ छान्निम सुद्र ललागय, छोटा बनाया हुआ तालाब।
 ५ नदीमात, दरया। ६ इटिखान, पका गट्टा। इसमें
 यज्ञीय अग्नि स्थापन करते हैं। ७ नहर।

कपूर्वखेद (सं० पु०) खेदविषय, किसी किछकका
 पसेव। स्थानको देख एक गट्टा खोद लेते पीर उसे
 दीम अथवा अन्नरसे पूर देते हैं। फिर उस पर पलंग
 बिछाकर सोनेसे पसीना भाता पीर शरीर दनका पड़
 जाता है। (इष्ट)

कहं (सं० अथ०) किम्-हिंल् कादेशः। अथवा
 किंनवतारवाम्। वा शशर। किस समय, कब।

कहंचित् (सं० अथ०) कहं च चिच्च, इन्द्र। किसी
 समय, कभी न कभी।

कल (सं० पु०-स्त्री०) कलति माद्यति अनेन, कङ्-
 घञ् डल्योरिकत्वम्। १ नद्य। वा शशर। १ शुक,
 वीर्य। २ शालहृष, सालका पेड़। ३ बद्रीयुद्ध,
 बरका भाड़। ४ मधुरास्फट ध्वनि, मीठी पीर समझ
 न पड़नेवाली भावाञ्ज। ५ चार मात्राका अथकाग।
 (त्रि०) ६ अजीर्ण, कक्षा। ७ अव्यक्त, समझ न
 पड़नेवाला। ८ मधुर वा निखस्वरयुक्त, मीठी या
 नीची भावाञ्जवाला। ९ दुर्बल, कमजोर।

कल (हिं० स्त्री०) १ कल्पता, सेहत, पाराम।
 २ सुख, चैन। ३ सन्तोष, तसल्ली। ४ पागामी
 दिवस, अनेवाला दिन। ५ गत दिवस, गया हुआ
 दिन। ६ भविष्यत् काल, आदिन्द्रा वक्त। ७ पार्श्व,
 पक्ष, पीर। ८ अक्ष, पुरजा। ९ कला, टङ्क।
 १० यन्त्र, जोशार। ११ बन्दूकका घोड़ा। (वि०)
 १२ काला, स्याह। यह शब्द विशेषके पड़ले योगिक
 रूपसे आता है। यथा—कलसुंश।

कलशदा (हिं० स्त्री०) १ कलावाली, कलेया। २ करतो,
 काट कूट, तोड़सरोड़।

कलई (अ० स्त्री०) १ रङ्ग, रंग। २ रङ्गलेपन,
 रंगिणी पोत। यह बरतनपर कसाव न लगनेको
 चढ़ाये जाती है। ३ बरतन, रंग, बारनिग। ४ भावरण,
 अमक, देखाव। ५ पूर्णपक्ष, घूमा।

कलईगर (फा० पु०) रङ्गलेपन चढ़ानेवाला, जो
 कलई करता हो।

कलईदार (फा० वि०) रङ्गलेपनविशिष्ट, कलई
 किया हुआ।

कलक (सं० पु०) कलने, कल-एत् ल् स्वार्थे कन्।
 १ मज्जुलमस्य, एक मज्जनी। २ पैतसत्रय, पैतका
 पेड़, किलक।

कलक (अ० पु०) १ दुःख, रङ्ग, मोष। २ व्याकुलता,
 घबराहट।

कलक (हिं० पु०) कलक, शूरम। कल-कलो।

कलकण्ठ (सं० पु०) कलप्रधानः कण्ठो यस्य।
 १ कोकिल, कोयन। २ हंस। ३ पारावत, कबूतर।
 ४ शुकपत्नी, तोता। ५ कलध्वनि, मीठी भावाञ्ज।
 (त्रि०) ६ कलध्वनिकारी, मीठी भावाञ्ज निकालनेवाला।

कलकत्ता—भारतका सर्वप्रधान नगर। यह अक्षा०
 २२° २४' उ० चार देशा० ८८° २४' पू०में भागीरथी
 नदीके पूर्व तट पर अवस्थित है। इसकी भूमिका
 परिमाण २०२६० एकर पीर लोकसंख्या प्रायः
 १० लाख है। पहले यह भारतकी राजधानी रहा।
 किन्तु १८१२ ई०के दिवस्वर मास राजधानी दिल्ली
 चली गयी।

शनिवार—१५८६ ई०की सन्नाट् अकबरके प्रधान
 सचिव अबुनफज्जलके बनाये पाईस-र-अकबरी ग्रन्थमें
 कलकत्ताके प्रथम ऐतिहासिक उल्लेख मिलता है।
 इससे पूर्व अन्य किसी ऐतिहासिक पथवा प्रामाणिक
 ग्रन्थमें कलकत्ताके नाम नहीं आया। अकबरके राजन्त्र-
 सचिव टोडरमलकी बनाये तानिका बङ्गदेशको कई
 भागों या सरकारीमें बांटती है। कलकत्ता सातगाव-
 सरकारमें रहा, कलकत्ते, चारघाकपुर पीर बङ्गया
 तीनों महाखेति २३४०५) ६० राजस्वसूच्य बादगाहो
 कोषमें जमा होती था।

पाईस र-अकबरी ग्रन्थके पीछे पीर बङ्गदेशमें
 युरोपीयोंका संस्व अगनेसे पहले किसी मुसलमान-
 इतिहास-लेखकके विरचित पुस्तकमें कलकत्ता शब्द
 देख नहीं पड़ता। किन्तु बङ्गकाय कविकहल सुकुन्द-

पाप	रोग	प्रायश्चित्त	पाप	गुरु	प्रायश्चित्त
बलहरण	कुष्ठ	निष्क परिमित स्वर्णनिर्मित प्रजापति और १ कोड़ा बल्र दे।	गुरुहत्या	श्यामे	निष्क परिमित स्वर्णनिर्मित पावमें
विद्यापुस्तक हरण	मूकता	ब्राह्मणको दक्षिणा सह ग्राय इतिहास प्रथमिहा दान।	दक्षिणाहरण	राधाधि वा इवाधानुषे	विष्क अचिहान पुत्र और तुलसीयन भूयित श्यावा दान।
ब्राह्मणका रक्षहरण	अनपत्यता	महाबल्रजपादि, पुनायके काठरी दद्यात् डोन और मनुष्याका प्रायश्चित्तोक्त प्रायश्चित्त।	विद्वेष	विवाद-संसारको मरणापर्यन्त मरण	चरमें समा लक्षण वादिसे।
ब्राह्मणका सुर-हरण	कुण्डलता	तीन चाट्यायण कर से चरयो देना वादिसे।	ब्राह्मणनिन्दा	मकराघातसे	कुमारकी विवाह दान।
ब्राह्मण हरण	मौल क्षीयन	ब्राह्मणको दो मन्मथीमन्थि दान।	ब्राह्मणका बल्रहरण	अनपत्यावरणमें	बका दुग्धवती गामो दान।
पुत्रिहरण	पाण्डुकेय	उपवास रख अतपस इन्द्रिदान करे।	गणित चतुहरण	कुलुपाघातसे	१० लक्षुवर्षको वाचरण।
सुमन्त्रि हरण	बहुरोमेय	स्य पयधारा चादिसे डोन करे।	राजहत्या	गजाघातसे	प्राप्रादि इनको तरह प्रायश्चित्त।
मन्मथ क्षीयन	मगन्दर	मन्थि दान।	पशुहत्या	पशुहत्या	चार निष्क परिमित स्वर्णनिर्मित इतिदान।
सजाति स्त्रीयन	उदयत्रय	दो प्राजापत्य करे।	आवादि शारा पशुपयो धारण	बोरहस शम्भु	पेनुदान।
सूक्तन्यायन	रक्तकुष्ठ	सूर्यदिक पीतमास्य तथा पीतवस्त्र आच्छादित कलस रख उषके कपूर स्वर्णपावमें दैनिक परिमित स्वर्णनिर्मित वाचन मूर्ति स्थापन कर पुस्तक दाना दान करे। इस बीच शम्भु यजुः एवं साम तीर्था वेदके अनुष्ठान चरना वादिसे। पुजाके चन 'निपायोडे' कह कर ब्राह्मणको सुवर्णनिर्मित अत पुनवी और आचार्यको वाचनमूर्ति दे। मूर्ति दीनेका मन्थ पद से—'दिवानामधिपो दिवो नवो विष्कनिकेतमः। शतधनः सङ्ख्यायः पापं नम निष्कानु ॥'	बहुरार	अधधि अवरणमें यजु	प्राप्रादि इनको तरह प्रायश्चित्त।
	घन		मठविषय	निर्गमि मन्थु	दो निष्क स्वर्ण इतिदान।
			मिठभेद	मन्थु इत मन्थु	पौत्रम प्राजापत्य कायंय है।
			दण्डदान	अधिरथ	इषदान।
			राजकुमार हत्या	राजहस यजु	मथामादि दादुका दान।
			राजहसि हत्या	इवाधानसे	स्वर्णमथ पुत्रय दान।
			लीडहरण	अतोहार रोगसे	स्वर्णसह स्वर्णदण दान।
			विषदान	सर्पाघात	संयत मानमें लथ संस्कार गायत्री अथ।
			मित्रनिन्दा	महाघात	मान मनिदान और स्वर्णदान।
			मालहरण	बनरोग वा अन्थु यजु अर्धमंथु शम्भु	बल्रसह इषदान।
			खलता	गोबा अघात	मास्रयजु दान।
			सिगुभेद	अनपथ	उपहरण सह अथदान।
			दण्डसहित कायं	शालिनी इषधिके	तीन निष्कपरिमित स्वर्णमथ बल्रदान।
			चिंसा	चारिण	सयोचित बल्र मान अथ।
				उत्थनमें	दुग्धवती गामोदान।
				अघाघात	तीन निष्क परिमित स्वर्णदान।
				बलराघात	स्वर्णनिर्मित चानर दान।
				विद्वेषिका रोग	१०० ब्राह्मण भोजन।
				बल्रहरण	मिथ पेनुदान।
				कैमरी	८ लक्षुवर्ष वाचरण करना वादिसे।

राम चक्रवर्तीके चण्डीमङ्गलमें कलकत्तेका उल्लेख है। सम्भवतः १४६६ शाककी सन्नाट् भकवरके सिंहासना-रुद्र होमिसे बारह वर्ष पहले उक्त ग्रन्थ बना था। षष्ठी धनपति और उनके पुत्र श्रीमन्त सौदागरके समुद्रयात्राको कलकत्ते पहुँचनेकी कथा है। अतएव भकवरसे भी उनके पूर्व कलकत्ता वर्तमान था। किन्तु नाममें कुछ गड़गड़ पडता है। फार्डन-इ-पकवरीमें कलकत्ता महालके शर्मोंका नाम नहीं। फिर उसी समयके संस्कृत ग्रन्थकारोंने कलकत्तेको किनकिला लिखा है। मगधाधिप वैजलराजकी सभाके पण्डित कविरामने 'दिविजयप्रकाश' नामक पुस्तकमें किल-किलाका विवरण दिया है। उनके मतसे भी किल-किलामें उनके ग्राम जगते थे। नौसे कविरामका विवरण उद्धृत है,—

'पश्चिम सरस्वती और पूर्व यमुना नदीके मध्य २१ योजन परिमित किलकिला भूमि है। यह दो भागमें विभक्त है। दानगली नदीसे पश्चिम गङ्गाके निकट गहृश्वरी देवी विराजती हैं। यहाँ उपवास करनेपर जुड़ादि दाह्य रोग देवीकी कृपासे शरीरस्थ होते हैं। माहेश्वर और खड्गदाह (खड्गदा) ग्रामके मध्य दीर्घगङ्गा (बूढ़ी गङ्गा) के निकट कुलपाल नामक राजा रहते थे। किसी किसीके कथनासार गङ्गा नदी किनारे धनुषदेश-समूहके मध्य श्रेष्ठतम वार्ताभूमि है। यहाँ कदली, पृथ्वीपर्णी, पूगफल (सुवारी) प्रभृति वृक्ष उत्पन्न होते हैं। पीठमात्तानन्दके मतसे भागीरथी-तीर सती देवीके शरीरसे धामहस्ताकी अङ्गुलि गिर पडी थी। काली देवीके प्रसादसे किलकिलावासी धन-धान्यवान् रहते हैं। सकल प्रकार शस्यादि उपजनेसे लोग इसे बृहददेश कहा करते हैं। यहाँ सकल वर्षके लोग नियत रूपसे बसते हैं। किलकिला अथवा शब्द है। लोग नानाप्रकार इसका अर्थ लगाते हैं। स्वामीय देशवासियोंके मतसे समुद्र मथते समय कूर्मपृष्ठस्थित सुन्दर पर्यतके भारसे धवरा देखीके मोहनको अमन्त देवने निश्वास छोड़ा था। उसी निश्वासाका कक्षोत्त जहाँ तक पहुँचा, वहाँ तक किलकिला देश हुआ। सती देवीके बलसे महाबलवान् कुलपाल और देश-

पालका नाम भागीरथीके पश्चिम तीर चला था। कुल-पालके दो पुत्र रहे—हरिपाल और अहिपाल। ल्येष्ठ हरिपालने सिद्धसे पश्चिम अपने नामपर हृदवापीयुक्त एक महाग्राम स्थापन किया। फिर वहाँ ब्राह्मण, तन्तुवाय और साङ्गायि वसा वह राजा बने। अहिपाल माहेश्वरमें त्रिवेणीके निकट चक्रहोप (चाकदा) और लसुरहोप (लसुरद)के मध्य जाकर बसे। अहिपालके तोन पुत्र थे—कृतध्वज, विभाण्ड और महाबल केशिध्वज। वह किलकिलासे पश्चिम योजनात्तर घत-ग्रामके मध्य राजा हो वैद्य सातिको पालने लगे। कृत-ध्वजके पुत्र महाबल विरसि सुगन्धि नामक ग्राममें रहते थे। विभाण्ड पूर्वपारकी वाण राजाके मन्त्री हुये। उनके बंधुधर जङ्गलमें वास करते थे। यगौरराज प्रतापादित्य भागीरथीके उभय पार्श्वस्थ देव समूहके राजा रहे। राजा केशिध्वजने चाम्पेन-में नाना स्थानसे कायस्थ बोला राजत्व चलाया। आज कल ब्राह्मो नदीतीर केशिध्वजके बंधुद्वय कायस्थ राजा हैं। शिवपुर और बालुक (बाली) ग्रामके मध्य तथा भट्टेश्वरके निकट श्रीरामपुरमें ब्राह्मण रहते हैं। हुगलीके निकट बंधवाटी (बांसेवेहिया) प्रभृति ग्राम हैं। यहाँ खलापि नदी दामोदरसे निकल गङ्गामें जा गिरी है। खलगानि ग्राममें धीवर राजाका राजत्व है। आजकल गङ्गा और यमुना नदीके मध्य पाटलिग्राम कायस्थ अधिवा-सियोंके अधीन है। गोविन्दपुरादि ग्राम, भट्टपलिक, काली देवीके निकटस्थ श्यालदाह (सियालदा) और सरपल्लिम भी कायस्थोंका शासन चलता है। सब मिलाकर ३००० ग्राम किलकिलामें लगते हैं। विश्वधारतन्त्रके प्रथम पटलमें किलकिलास्य गिव-लिङ्गका विषय निरूपित है। इसी तन्त्रके मतसे किलकिला देशान्तर्गत नवहोप नगरके ब्राह्मणवंशमें शचीसुत (चेतन्यदेव) और खड्गद ग्रामस्थ हाडायि पण्डितके घर गित्यानन्द जन्म लेने।' ३

• 'पश्चिम सरस्वतीसोना पूर्व' काविद्विधा नदी।
एकविंशतियोग्यं च किंते विचरिष्यामिः ॥ ६६१

समस्त परित्याग कर केवलमात्र पथं छोड़ता, जो गो तथा भूमि दया बैठता, जो निद्रर पड़ता और जो सरल पथं सचरित युवती भार्याको छोड़ता, वध व्यक्ति नरकान्तमें ग्रहपीरोगग्रस्त हो जन्म लेता तथा पशु द्रव्य धन प्रभृतिसे मुंह मोड़ता है।

३१ पाण्डु—परभार्या वा नीच जातिकी स्त्रीसे सङ्गत होनेपर बहुकाल पर्यन्त विविध यमदण्ड भ्रूल मनुष्य-जन्ममें पाण्डुरोगग्रस्त और क्षीणचैता रहते हैं।

३४ कामसा—पत्नादि चोरानेसे जीवनान्तमें विविध नरकभोग षष्ठादशवर्ष पर्यन्त काककण्ड प्रभृति तिर्यक् योनि पाते और मनुष्यजन्ममें कामसा रोगका कष्ट उठाते हैं।

३५ कास—कर्मभेदके अनुसार पांचो प्रकारका कास संवत्स होता है। १ अतिकठोर मिथ्यावाक्यसे किसीकी सतानेपर पित्तप्रवृत्त कासरोग लगता है। २ ब्राह्मण-का स्थान विनाश करनेसे वातजन्य कास जाता है। ३ जलाशय ध्वंस करनेसे श्लेष्मजन्य कास उठता है। ४ ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी विभिन्न माननेसे सन्निपात-जन्य कास होता है। ५ यज्ञको छोड़ पशु मार कर खानेसे सर्वदोषजन्य कासरोगका क्रोध उठाना पड़ता है।

३६ श्वासकास—यह रोग भी कर्मविशेषसे मङ्गा, ऊर्ध्व, क्षिप्र, तमक और सुद्र भेदमें पांच प्रकारसे होता है। १ यज्ञ व्यतीत श्वासरोगपूर्वक पशुको मार मांस खानेसे मङ्गाश्वास चलता है। २ पुराणकथाके समय दूसरी बात छेड़नेसे ऊर्ध्वश्वास उठता है। ३ निविद्ध दान लेनेसे क्षिप्रश्वास जाता है। ४ शास्त्रार्थमें हया दोष लगानेसे तमकश्वास बढ़ता है। ५ पाक-कालको विन्न डालनेसे सुद्रश्वासरोग होता है।

३७ यक्ष्मा—विग्रहत्या, गच्छितघनहरण, वृत्ति-च्छेद, प्रजापौडन तथा गुरुद्रोह करनेसे जीवनान्तमें विविध दुःख यन्त्रणा उठा कुछ कालतक क्षमियोगिमें रहना और मनुष्य जन्म मिलनेपर यक्ष्मारोगका दुःख सहना पड़ता है।

३८ रक्तपित्त—पत्न्या दुर्व्यवहार, परद्रव्य भ्रमि-साप, परभार्या कामना और पित्रव्यवधू गमन करनेसे रक्तपित्त रोगान्ता होती है।

३९ गुल्म—एकाकी मिष्ट वस्तु भोजन तथा नोच-जातीय स्त्री-गमन करनेसे जीवनान्तमें क्षमिपूयपूर्ण काकोल नामक नरकभोग मनुष्य ४ वत्सपर विगो-लिकायोगिमें रहता और मानवयोगिमें गुल्मरोगका क्रोध सहता है।

४० शूल—निरपराध किसीको शूल मारने पथवा शूलसम कष्टदायक वाक्य कष्ट डालने और दम्पतीमें छेहभेद निकालनेसे ४ मन्वन्तर यमयन्त्रणा उठानेपर पत्तियोगिमें वियोगका दुःख होता है। फिर मनुष्य जन्ममें शूलरोग लग जाता है।

४१ अग्नीरोग—साध्वी ऋतुजाता स्त्रीसे सव्यवस न रखने और भ्रामहत्या, भ्रूणहत्या वा गोहत्या करने पर ३५१८००००० वत्सर नरक भोग मनुष्यजन्ममें अग्नीरोग होता है।

४२ भगन्दर—भाचार्यकी भार्याके साथ गमन पथवा स्त्री, बालक तथा वृद्धका धन हरण करनेसे नरकान्त-में फिर जन्म ले मनुष्य भगन्दररोगका दुःख उठाता है।

४३ छर्दि—गोकै मुखसे कोयी वस्तु खींच फेंक देनेपर परजन्ममें वायुजन्य छर्दिरोग होता है। फिर पित्तलोककी तर्पण न कर स्वयं जन्म पीनेसे पित्तजन्य छर्दिरोग लगता है।

४४ छिका—किसी योगीकी तपस्या विगाड़नेसे छिकारोग होता है।

४५ अरोचक—पिता, माता और पतिधिकी भ्रम न दे स्वयं खा लेनेसे परजन्मपर हीन जातिमें उत्पन्न हो अरोचक रोगका कष्ट उठाते हैं।

४६ खरभङ्ग—गानकी समाप्ति न पाते गायककी वाधा पट्टु बानेसे जन्मान्तरमें खरभङ्ग रोगग्रस्त होना पड़ता है।

४७ पतितट्ठणा—दपित गोसमूहके जलपानमें वाधा डालने पथवा जल निकालनेसे पथव्यक्तान मर्क-भूमिपर कीटयोगि रह मनुष्यजन्म पा कर पति-ट्ठणा लगती है।

४८ विस्कीट—चण्डालके जलागममें नहाने और जल पी जानेसे नरकान्तको विस्कीट रोग होता है।

४९ भ्रम और मूर्खा—जो क्लृप्त व्यक्ति समाप्त

फिर भी पकवरके पीछे चंगरेलोकें पदार्पण करती समय कलकत्तोजी पवझा पत्तल होन गी। चित्तौग-
 वंग्रावलचरितमें इसका प्रमाथ मिलता है। नदिया-
 वाली राजा कृष्णचन्द्रके समय कलकत्ता उनको जमी-
 न्दारीमें लगता था। यह वङ्गालकी सुसैदार नवाब

जमी-वर्दीखान्की नियेय मियपात्र रहै। उनके ऊपर
 पिटवितामहके देय राजस्वका दग लाप हयया बाजो
 या। उन्होंने यह हयया माफ करनैके निये नवाबके
 धार धार कहा। किन्तु किषी प्रकार यह कृतकार्य

बिजलिनामुनिमथो बी दीनी नुपसेखर ।
 दानदनीधरितीरे पविमयाथ विनागति ॥ ६६४
 २५५ शार्के श्रीरुद्रिना नडावापै व मतिथी ।
 कुहादिगुहरोमाथी विनागथोपासगतः ॥ ६६५
 मादेमल इमकुहालापामयोःकर्ष नडागु ।
 दीपं नडा कमीय च राजा कि कुथपापकः ॥ ६६६
 केविदवदमि मूपाथ बापांमुनिर्नदीतटे ।
 पनूपागाथ दीनां नथी श्रेष्ठगतः कृतः ॥ ६६७
 पनं कथदमीकथाः तथा माङ्गिभूदकथाः ।
 तथा कसुखकथायां बापुकां तव जायते ॥ ६६८
 पीठमाथातलपथ्य सतीदीयाः गरीरतः ।
 वामसुभाङ्ग श्रियातो जातो मामीर्योतटे ॥ ६६९
 जामोदीयाः प्रसादेन बिजलिनादीमयागिनः ।
 द्विचर्चैः सुरिता निथं भाषिताधिरावातः ॥ ६७०
 पदद्वैशय जायति सुवैमलस्य चरेनात् ।
 मायवी चर्चैमदासीं बाधो कि संदेहा सुवि ॥ ६७१
 संभाष्य भूमिं मोका कि पनासीं सततो ह्य ।
 मातोऽप्याधोमयपात्रं धियोनममापनः ॥ ६७२
 बिजलिनाप्यपरम्य पदुष्यं तु चर्चं ते ।
 यथा अपदधिरुपपतिः करचोया कि सापुभिः ॥ ६७३
 सतुदमन्यनारणे कुंडुष्टे च मन्त्रः ।
 भार शीरुद्रिद्वेष देव्यानां मोकनाथ च ॥ ६७४
 कुर्मनिवाधो जायते मन्त्रधारण्यदमात् ।
 तेन कमीलपकृषं जायति यदवधिद्वेष ॥ ६७५
 लवधभिः बिजलिनादीनी मोवति दीमयागिनः ।
 बिजलिनासत्यनिवेसति निचयेनै व दम ॥ ६७६
 कननात् नयनं तत बिजलिना विदुता सुवि ।
 सतीदीया चर्चै व भीष्मुपकथनपुत्रकः ॥ ६७७
 कुपनाथो दीमयाथो विष्वागः पविमं लटे ।
 कुपनापथ दो पुत्री हरिवासीरुद्रिवापको ॥ ६७८
 म्रुङ्गः निङ्गु रवेदिमिं स्वनामवसतिं लताः ।
 हरिवासी महापासी इडवापिमन्वितः ॥ ६७९
 पदियाथो कि लतं व लमुपायमं कीडिपु ।
 वाता वभू वरिपु सापुभिं चं चरेपु च ॥ ६८०

पदिपला सादेथी च रातं कसु । च पविमि ।
 दिरेचोमविधाने च अरुदीपम सविथी ।
 अमुकोपमथं च पवतिं इतनात् सुदा ॥ ६८१
 अदिनाथनः तयः पुषाः शेषदीविस्तु अदिरे ।
 इतपमो विमाष्टय केमिजमो महापथः ॥ ६८२
 पदिमं योजनमो च सतपापमं मन्त्रः ।
 एवो सुला देधनातिं...पपन ॥ ६८३
 कृतपथन्य तनयो विरभितं पथी वदिः ।
 सुयभियाममथे च पथार वगतिं सुदा ॥ ६८४
 विमाथो वापमनो च पूरेपरि लिखः स च ।
 जद्वदि महापासीं वन चंभापि वगतिं ॥ ६८५
 मतापादिमपमं वमोरेममिपल च ।
 महापासप्यो राजन् हरासीं वगतिं सुव ॥ ६८६
 केमिजमो महापासीं पथी...मिथं ६६६ ।
 कापल्यात् नडुनात् मोला राधपथ च पथार ॥ ६८७
 तस्य चंभेपु चोत्पन्ना माधोवरिस्तुटे पुप ।
 तेनां कापयन्नातोमामिदोमोसि मावतन् ॥ ६८८
 दिवपुरं समारथ बापुको कि विनागदः ।
 श्रीरामादिपुरं दिव्यं मन्त्रं चरथ सविथी ॥ ६८९
 चंभेपुटीं मन्त्रयो इमथोमाथ चर्चंते ।
 खनापि लटिनीं निथं पठने वापुसापरे ॥ ६९०
 दानीदरादाजता च महां मिथि सादरम् ।
 खसयानिमहापासीं वन राजा च श्रीवः ॥ ६९१
 नडावसुनवोमंथे वाटनिवासविनात् ।
 खापल्यानां मासमथ चर्चंते कृष्णा नृप ॥ ६९२
 दीविन्दुदिपुरं चर्चं तथा कि महापथि ॥ ६९३
 कातोदीयाः माथी व प्रामाण्यद्वारिकं पव ॥ ६९४
 मावपतिं महापासीं खापल्यापथ मावतन् ।
 दानायां विदुषयथ बिजलिनापथ चर्चंते ॥ ६९५
 बिजवारमहापथो पठमं चर्चंति च ।
 निदपथं मन्त्रिथं बिजलिनापथपथ च ॥ ६९६
 लतः बिजलिनादीनो लवरोपममापथे ।
 लत बिजकुमिं मावं कर्चनारीं जनीपुतः ॥ ६९७
 लतः बिजलिनादीनो पदुष्यं पथमपथः ।
 कापयानिगिदरे दिवापनीं मरिवापि ॥ ६९८

(बिजलिनापथ, बिजलिनापथ)

पर लोभीको भ्रान्तिमें डाल अन्य प्रकार कथा कहने लगता, उसे नरकान्तको भ्रम या मूर्खी रोगक्रान्त हो जन्म लेना पड़ता है।

५० हृद्रोग—लौभ वा हेषसे किसीकी सताने या मर्मांतिक वेदना पड़वाने पर परलक्षमें हृद्रोग उठता है।

५१ भामवात—यज्ञकी दक्षिणा अथवा उत्सर्ग किया हुआ वस्तु ब्राह्मणको न देने और अधर्माचरणसे घन कमा लोह लेने पर जन्मान्तरमें भामवात सताता है।

५२ सर्वाङ्गवातव्याधि—सुरा पीकर इडात् स्त्री-सहवासकी लिये जी चला जाने अथवा परस्त्रीका वस्त्र चोरानेसे नरकान्तकी तिर्यक्योनि घूम मनुष्यजन्ममें सर्वाङ्गगत वातरोग लगता है।

५३ तुन्दरोग—ब्राह्मणका घट चोरा लेने अथवा यज्ञकाल सङ्घट्टकर दक्षिणादि न देनेसे मेद सञ्चित होकर तुन्द पर्यात् स्त्रीव्य रोग उठता है।

५४ अश्वपित्त—लौभसे निषिद्ध द्रव्य खानेपर जीवनान्तको काक, कुकुर और श्व योनि पाकर परलक्षमें मनुष्य देह धारण करना और अश्वपित्त रोग भिक्षना पड़ता है।

५५ शोथोदर—लौभ, मोह वा हेषसे अधर्माचरण करनेपर नरकान्तमें जन्म ले मनुष्य शोथोदरी होता है।

५६ जलोदर—ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी भिन्न समभक्षनेसे जन्मान्तरमें जलोदर रोग लगता है।

५७ शोथ—विना अपराध क्षेत्र प्रभृतिसे किसीकी मारनेपर जन्मान्तरमें शोथरोग उठता है।

५८ मूत्रकण्डू—विषवागमन वा मद्यपान करनेसे नरकान्तमें जन्म ले मूत्रकण्डू रोग भोग करत है।

५९ मूत्राघात—दम्पतीके मेषुजमें विष्र डालनेसे जन्मान्तरकी मूत्राघात रोग होता है।

६० दृश्यरी—अमीति वा मोक्षसे ऋतुघाता स्त्रीके पास न जानेपर शत्रुके पीछे पूर्वयोगितपूर्णे नरक भोग परलक्षको दृश्यरी रोग दौड़ता है।

६१ मेह—कर्मानुसार विंशति प्रकार मेह होता है। १ शूकरयोनिमें मेट्टन करनेसे उदक मेह चलता है। २ माण्डगमनसे मधुमेहकी उत्पत्ति है। ३ रजकी-

के गमनसे चार मेह हो जाता है। ४ सतीत्वहरणसे चान्द्रमेह पड़ता है। ५ रोगिणीगमनसे मासिष्ठमेह बढ़ता है। ६ मित्रस्त्रीके गमनसे शक्रमेह बढ़ता है। ७ चतुष्पदगमनसे शिकतामेह पाने लगता है। ८ स्वर्णहरणसे क्षीरमेह निकलता है। ९ सुरापानसे घितमेह उठता है। १० ऋतुमतीगमनसे कालमेह होता है। ११ रजस्वलागमनसे रक्तमेह चनता है। १२ नीचजातीय स्त्रीगमनसे मल्लमेह आता है। १३ विषयासङ्गमसे इक्षुमेह उठता है। १४ ब्राह्मणो-

गमनसे हस्तिमेह चमरता है। १५ अक्षतयोनिगमनसे हारिद्रमेह भडकता है। फिर माता, भगिनी, कन्या, शत्रु, अक्षतयोनि, अश्वजाया, मातुलानी, गुरुपत्नी, राजपत्नी, मित्रपत्नी प्रभृति अन्धान्य कुटुम्बिनीके गमनसे जीवनान्तको ज्वलन्त लोहखण्ड भक्षण प्रभृति वस्तु-

विष यमयन्त्रणा वटा पांच वस्त्र शूकरयोनि, दग वस्त्र कुकुरयोनि, तीन मास पिपीनिवायोनि तथा एक वस्त्र हृदिकयोनिमें उत्पन्न हो गोजन्म लेना और सर्वस्य मनुष्य वन अनेकप्रकार मेहरोग भिक्षना पड़ता है।

६२ पुंस्त्वनाग—धर्मपत्नीकी छोड़ अन्य स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे पुंस्त्व नष्ट होता है।

६३ सुक्लहृदि—लुब्धकीके साथ मित्रताकर सर्वदा वनमें व्याधकी भांति शृगादि मार घूमनेसे नरकान्तकी पुनर्जन्म पानेपर सुक्लहृदिरोग लगता है।

६४ अन्नाद—वैष्णव, पितामाता तथा ब्राह्मण प्रभृति सम्मानार्थं व्यक्तिको न पूजने, अथवा निन्दा करने, किंवा ब्राह्मण गुरु प्रभृतिके प्रति दण्डाचरण रखने और उनको अतिभ्रमकारी कीर्ती द्रव्य देनेसे जन्मान्तरमें अन्नाद आता है।

६५ अपघ्नार—क्रोप बढ़ने, उपकारीके निकट अक्षतघ्न बनने, अधम मानवके साथ ब्राह्मणका पास रोक रखने अथवा रज्जु द्वारा गोमुख जकड़नेसे नरकान्तमें घ्याल, व्याघ्र और शूकरयोनि भोग मनुष्य होनेपर अपघ्नार रोग भिक्षना पड़ता है।

६६ अस्थिगूलादि—हाथी, तिलधनु, मोहवर्ष, तिलालिन, गज, साजुक, मधु, तैल, लवण एवं महादान लेने किंवा कामवग अधर्माचरण पूर्वक मेषुन

न हुये। एकदा नवाब जलपथसे नौकापर चढ़ कलकत्तेकी और आते थे। भागीरथीतीरके अन्यान्य ग्राम छोड़ अग्रिम उतकी तरफ कलकत्तेके पास पहुँची। उस समय यहाँ एक प्रतिसामान्य पत्नी थी। दक्षिणार्ध बिलकुल ललसे भरा झड़ल रहा। सिर्फ उत्तरार्धमें गङ्गा किनारे कुछ लोग बसते थे। सुरगिदाबाद और कलकत्तेके बीच भागीरथीके पूर्व-तट पर किसी ग्राम या नगरके निश्चय ऐसा वन न रहा। इसीसे सुचतुर जल्यचन्द्रने अपनी जमीन्दारीकी दुरवस्था नवाबको देखानेके लिये इस प्रदेशमें प्रवेश करने पर आग्रह लगाया। नवाब असोवर्दी राजाका एकान्त अतुरोध टार न सके और जमीन्दारीकी अवस्था अपनी पाँखों देखनेको निकल पड़े। लोकालयकी छोड़ वह जितनी दूर आगे चले, उतनी दूर सिवा भरखके दूसरे दृश्य देखनेको न मिले। फिर राजा जल्यचन्द्रकी शिष्टाकी अनुसार नवाबके साथी परस्पर कहने लगे—यहाँ व्याघ्र आदि हिंस्रकका भय है। राजाने भी समय या सजल नयन और कातर वचनसे निवेदन किया—“धर्मावतार! मेरे सोभाग्यसे ऊपापूर्वक विशेष कष्ट उठा पाप यहाँ तक पाये हैं। इसलिये कुछ दूर चभी चले चलिये। फिर इस जमीन्दारीकी अवस्था देखनेमें कुछ रह न जायेगा।” नवाबने उत्तर दिया,—“भव भागे जाना भावश्यक नहीं। आज तुम अपने पिछपितामहके चरणसे मुक्त हुये।” इससे हम सजलमें ही समाप्त सकते—उस समय कलकत्तेकी अवस्था कैसी थी।

कलकत्तेमें बंगरेजोंका शासन, तत्कालीन मृतकाल और आनु-बन्धक प्रतिपाद।—बंगरेजोंकी पहली कोठी बालेश्वरके निश्चय विप्लोमें बनी थी। फिर कई तरहका गड़-बड़ पड़नेसे बंगरेज कुछ दिन अपना वाणिज्य बङ्गालमें फैला न सके। उस समय सुरतमें भी बंगरेजोंकी एक कोठी रही। उसके पधीन ‘होपवेल’ जहाज चलता था। मिटर चेम्बियल वीटन इस जहाजके गणचक्रियक रहे। उन्होंने १६४४ ई०को सन्नाट शाहजहानकी एक कन्याका दुरारोग्य छत आरोग्य करनेके पुरस्कारमें एक सन्दूक पायी। उसमें

बंगरेजोंको दिल्लीके साम्राज्यमें सर्वत्र विना शक्य वाणिज्य चलाने और वङ्गदेशमें इच्छानुसार सकल स्थल पर कोठी बनानेका आदेश था। इसीसे बंगरेजोंने नवाब शायस्ता खानके समय हुगलमें कोठी बना हुगल, पटना, बालेश्वर, कासिम बजार, टाका प्रभृति स्थानमें विपुल उत्साहसे बहु विस्तृत वाणिज्य आरम्भ किया। उस समय बङ्गालकी प्रति कोठीमें एक यनसाइन और २० रची सेन्थकी छोड़ दूसरा कोथी सामरिक बल न था। किन्तु अल्प दिनमें ही बंगरेजवणिक वाणिज्यसे प्रबल पट गये, जिससे बङ्गालके नवाब कुछ क्रुद्ध हुये। उन्होंने एक वनसे बंगरेजोंकी वणिक-दलको शासनमें रखनेकी नागाविध चेष्टा की थी। अन्तको बंगरेज नवाबके अत्याचारसे अत्यन्त पीड़ित हुये। वह सन्नाटकी सनदको न देख नाना प्रकार बंगरेजोंसे शक्य लेने लगे। बंगरेज वणिकोंका प्राण नाकमें था। उन्होंने कोर्ट अथ डिरेक्टरको इस विषयकी सूचना दी। डिरेक्टरोंने इङ्ग्लैण्डकी राजाकी अनुमतिसे अपनी वाणिज्यतरी दो वेहों (Fleet) में बांट एकको सुरत और दूसरेको गङ्गाके मुहाने भेजा था। गङ्गाके मुहाने पानेवाले वेहेंमें ६०० युरोपीय शिखित सेना रही।

हाइरेक्टरोंने कम्पनीके गुमास्तों जब चारनकको लिख भेजा,—‘बङ्गालके सब बंगरेज इस प्रकार प्रसृत रहें, कि बालेश्वरमें वेहा पहुँचते ही जहाज पर चढ़ सकें।’ फिर जहाजी वेहेंके अध्यक्षको आदेश था,—‘बालेश्वरसे सब बंगरेजोंको जहाज पर चढ़ा चढ़्याम नगर आक्रमण करी और वहाँ आत्मरक्षोपयोगी दुर्गादि बना सतकतासे रहो।’

जहाजी वेहा जानेमें कुछ बिलम्ब लगा। पहोवर मास वेहेंके पहुँचनेका संवाद मिसनपर लक्ष-चारनकने शीघ्र अध्यक्षको लिखा था,—भाव सदन हुगलीके नीचे आ जायिये। उन्होंने अर्थ भी हुगलीकी कोठीके पधीन एक पोर्तगीज पदाति दल प्रसृत किया था। नवाब शायस्ता खानने इस संवादसे डरकर सन्धिकी बात ठहरायी।

नवाब सन्धिका प्रस्ताव उठावे भी भविष्यत्में सुख

करने पथवा परस्त्री तथा गो प्रभृति पर रितः डालने, ब्राह्मण वा राजाका द्रव्य चोराने और चान्द्रित व्यक्ति वा विवाहिता पत्नीको छोड़नेसे हस्ती, व्याघ्र, सिंह, नखी, वा दस्युके हाथ मृत्यु होता है। मरने पीछे बहुकाल क्रोधजनक योनि घूम मनुष्यजन्ममें पस्त्रिशूलादि रोग लग जाता है।

६० मूत्रकृमि—विना मन्त्र चर्मिमें घृत डालनेसे नरकान्तको मनुष्य जन्म ले मूत्रकृमि रोगसे आक्रान्त होते हैं।

६८ विद्रुधि—फल अपहरण करनेसे नरकान्तमें वानरजन्म मिलता है। फिर मनुष्यजन्ममें विद्रुधि रोग चठता है।

६९ अपधी और वातघन्यि—विशाल वृक्ष, पर्वत, नदीतीर, वल्मीकाद्य, गोष्ठस्थल, गोष्ठह वा देवालयमें, मूत्रत्याग और निष्ठोवनादि निक्षेप करनेसे बहुविध नरक यन्त्रणा उठा परजन्मको अपधी तथा घन्यिरोग भोगते हैं।

७० गिरीरोग—तीर्थस्नानमें विहित कार्यादि और गुरु ब्राह्मण प्रभृतिको देख प्रणाम न करनेसे नरकान्तपर द्रव्य वत्सर भङ्गकयोनि तथा तीन वर्ष भ्रमयोनि भोग मनुष्य जन्म मिलते गिरीरोगाक्रान्त होना पड़ता है।

७१ नेत्रहीनता—परस्त्रीके प्रति कुटिल दृष्टि डालने पथवा गुरु वा ब्राह्मणके चक्षुमें आघात मारनेसे प्राणान्तको विविध नरकयन्त्रणा उठा जन्मान्तरमें नेत्रहीन रहते हैं।

७२ रात्रान्धता—कामबुद्धिसे परस्त्रीके प्रति दृष्टि डालने, नग्न स्त्रीको देखने किंवा मोहिंसा तथा विप्र हिंसा दर्शन करनेसे रात्रान्ध, दृष्टिबीषता, दिवान्धता और चर्बददृष्टिरोग लगता है।

७३ दृष्टिबीषता—उदय, अस्त और मध्य समय सूर्यके प्रति दृष्टि रखनेसे पथवा पशुविषवस्त्रामें सूर्य, चन्द्र, मन्त्र, ब्राह्मण, पन्दि एयं गौकी और देखनेसे परजन्मको दृष्टिबीषतारोग होता है।

७४ विषमाहिता और विरूपाहिता—पुत्रीके प्रति कार दृष्टि लगानेसे मनुष्य परजन्ममें विरूपाधी होता

है। पुरुष परस्त्री और स्त्री परपुरुषको कुटिल भावसे देखनेपर परजन्ममें विषमाहिरीरोग लगता है।

७५ गन्धगण्ड और गण्डमासा—गुरुपत्नीका कण्ठ देखनेसे नरकान्तमें गन्धगण्ड वा गण्डमासा रोग चठता है।

७६ नासारोग—कामाविष्ट चित्तसे ब्राह्मणकर्म परित्यागपूर्वक सुगन्धि कुसुमादि ब्राह्मण देवता प्रभृतिको न दे स्वयं आघ्राण करनेपर परजन्ममें नासारोग होता है।

७७ दुग्धहीनता—अपर वातकके लिये दुग्ध लाते भी जो स्त्री उसको नहीं देती, वह प्राणान्तमें ४ वत्सर सर्पिण्ये और ४ वर्ष कच्छुप्ये रह पीछे मनुष्यजन्म लेनेपर दुग्धहीन निकलती है।

७८ स्तनविस्कोट—अन्य पुरुषको जो स्त्री स्त्रीय स्तन देखाती, वह नरकान्तको पूनर्जन्म ले स्तनविस्कोट रोगसे दुःख पाती है।

७९ वेश्यात्व—स्वामीके मरनेपर जो स्त्री परपुरुषसे दृष्टि लगाती, प्राणान्तको वह तप्त कौहमय पुरुष पालिङ्गन प्रभृति यमयन्त्रणा उठा परजन्ममें वेश्या बन जाती है।

८० वाधिर्य—धर्मचिन्तासे सुख फेर पितामाता, ब्राह्मण और तीर्थ प्रभृतिको निन्दा उड़ानेसे परजन्ममें वाधिर्य रोग लगता पर्यात् कुछ सुन नहीं पड़ता।

८१ श्लेष्मरोग—नित्य क्रियासे बहिर्भूत हो भोजन करने पर प्राणान्तको काष्ठोपजीवी और वायस जन्म ले परजन्ममें श्लेष्मरोगाक्रान्त होते हैं।

८२ हस्तशूल—सन्त्यादिविषोचन ब्राह्मण जीवनान्तको एक वत्सरकाल कष्ट और पारावतयोनि भोग मनुष्यजन्म होने पर हस्तशूल रोगकी धेदना उठाता है।

८३ योनिरोग—जो स्त्री रमणकाल पतिको समीप नहीं पहुँचाता पथवा अन्यका भोग्य वस्तु चीराती, वह १४ वत्सर हृद्योनि भोग मनुष्यजन्ममें योनिरोगका दुःख पाती है।

८४ प्रदर—सुघातं पतिको न खिला जो स्त्री आगे खाती, किंवा हवा पशुद्वारा लगाती पथवा भाण्य वस्तु चीराती, प्राणान्तको वह मध्यपानोक्त नरक भोग द्रव

होनेकी आगहवा पर स्वदेशीकी चारो ओर सैन्य संचालन करनी लगी। यह सैन्यदल फौजदारके अधीन रहनेकी हुगली भेजा गया। इधर सन्धिकी बात चलती ही थी। किन्तु १६८६ ई०की २८ वीं फरवरीको हुगलीके बाजारमें अंगरेज पक्षीय कई सैनिकोंसे नवाबके कुछ सैनिक लड़ पड़े। इसमें तीन अंगरेज मरे थे। फिर एक सुदूर युद्ध होने लगा। कई घण्टे लड़ने पीछे नवाबके सिपाही विरहलता वय अंगरेजोंसे हारे। सर्व प्रथम अङ्गरेज इधो युद्धमें नवाबसे लड़े थे। फिर अङ्गरेजोंने हुगली नगर आक्रमण किया। जहाजी बंदूके अथवा आठमिरल निकलसन जहाजसे नगरपर गोले मारने लगे। इससे हुगलीके कोई ५०० घर गिरे थे। अंगरेजोंने नगर लूटनेकी आज्ञा प्रकाश किया, किन्तु जव-चारमकने रोक दिया। अन्तकी लूटने न देने कारण आइरकटोंने जव-चारनकका तिरस्कार किया था। उन्होंने कहा— यदि अङ्गरेजोंको आप नगर लूटने देते, तो नवाबके सिपाही और देगी लोग हमारा प्रभाव समझ लेंगे।*

अङ्गरेज भीतकर युद्ध बंद कर गये। फौजदारने छह बार सन्धिकी प्रस्ताव उठाया था। सन्धि होनेपर स्थिर हुआ,—जब तक सन्नाटके निकटमें नया फरमान न निकलेगा, तब तक पहली समदके अनुषार अङ्गरेजोंका वाणिज्य चलेगा और नवाबको क्षतिपूर्णके लिये ४६ लाख रुपये देना पड़ेगा। सन्धि करने पीछे सुसप्तमान भीतर ही भीतर युद्धका आयोजन लगाने लगे। नवाबने टाका, मानदण्ड, पटना और कामि-वाजारकी कोठियां लूट अङ्गरेजोंको यन्दी बनाया था। फिर १६८६ ई०के दिसम्बर मास नवाबने सैन्य लुटा हुगलीकी भेज दिया।

अङ्गरेजोंने यह सैन्य संचाल देव परामर्श किया— हुगलीमें रह इस प्रकार नित्य उत्पीड़ित और क्षति-प्रस्त होनेसे बड़ी कोठी उठा लेना युक्तिमत्त है।

अन्तकी हुगलीसे कई कोस दक्षिण गङ्गाके पूर्व पार चतानुटी जाना ठहर गया। यह स्थान अनेक कारणसे सुविधानक देख पड़ा। उस समय गङ्गाके पश्चिमी-तीर चन्दननगरमें फरासीसी और सुंजुडामें चीमन्दात्र कोठी चला समुद्रके नैक्य वय पटना वाणिज्यव-साय बढ़ाये थे। इसीसे अङ्गरेजोंने भी सोचा,—गङ्गाके दक्षिण किछो स्थान पर वाणिज्यको प्रधान कोठी बना समुद्रसे पानि-जानेकी सुविधा लगनेपर हमारा वाणिज्य भी अधिक चलेगा। वाणिज्यका केन्द्र होने भी सागरसे दूर पड़ने पर हुगली विदेशीय वाणिज्यके लिये विशेष लाभदायक न थी। नशाही अत्याचार, वाणिज्यतरीके गमनागमनकी विशेष उपसुविधा और मराठोंके आक्रमणसे सुना रहनेके लिये अङ्गरेजोंने एकधारागी ही गङ्गाका पश्चिम कूल छोड़ना चाहा।†

चतानुटी स्थानकी अङ्गरेज बहुत पहलेसे जानते थे। बङ्गोपसागरसे हुगली जातेप्राते समय गङ्गाके समय कूलस्थ सकल स्थान अङ्गरेजोंमें खूब देखे-सुने। हुगली छोड़नेका परामर्श स्थिर होनेसे स्थानामुसन्धागके समय उन्हें वाणिज्यकी बड़ी कोठी चलानेकी चतानुटी सबसे बढ़कर स्थान समझ पड़ा।

प्रथमतः हुगलीके फौजदारसे मर्दटा सङ्घर्ष न रहनेकी बात थी। द्वितीय भागीरथोका गर्भ दिन दिन मृत्तिकासे पूरते जाता था। उससे कुछ समय पीछे हुगलीके नीचे जहाज नग न सकते। चतानुटीमें वध आगहवा विनकृत न थी। तृतीय फरासीसियोंमें अङ्गरेजोंकी शय्यता बढ़ी। चन्दननगरसे बड़ी बड़ी वाणिज्यतरी हुगली से जानेमें विषम भय था। सुंजुडा और चन्दननगरसे दक्षिण पड़ते चतानुटीमें उस भयकी सम्भावना न रही। चतुर्थ समुद्र निकट था। पश्चिम गङ्गा नदीके पूर्व पार रहते चतानुटीमें मराठोंके उप-द्वेषका भय न लगा। यह जहाजमें ही पक्ष द्रव्य चढ़ाया उतारा जा सकता था। सप्तम—गङ्गाकी पान न करनेवासे जहाज बङ्गोपसागरमें ही अडर साक

* Vide (a) Stewart's History of Bengal, (b) Broom's History of the Rise and Progress of the Bengal Army and (c) Cook's Monthly Mail and Indian Advertiser, Vol. I, or VIII.

† Vide "Some Observations and Remarks on a late publication entitled Travels in Europe, Asia and Africa" by J. Price.

वत्सर धायस्योनि चौर शक्योनिर्मैरह मनुष्यजन्म होने-
से प्रदर रोगकी यन्त्रणा सठाती है। (मातातृतीय कर्मविषय)
कर्मविशेष (सं० पु०) कर्मणो विशेषः अन्वयात्
पायंक्वम्, ६-तत्। साधारण कार्यसे विभिन्न कार्य,
भान्मूली कामसे मिराला काम।
कर्मवीज (सं० स्त्री०) कर्मणो वीजं मूलकारणम्,
६-तत्। कर्मका मूल कारण, कामका प्रसन्नो सबव।
कर्मव्यतिहार (सं० पु०) कर्मणा व्यतिहारः, ६ तत्।
परस्पर एक जातीय कार्य करनेकी स्थिति, जिस
हालतमें एक ही तरहका काम साथ-साथ करें।
कर्मशाला (सं० स्त्री०) कर्मणः शिखादिः शाला,
६-तत्। शिखादि कार्यका गृह, कारखाना।
कर्मशील (सं० त्रि०) कर्मशीलं कर्मकरणरूपस्वभावो
यस्य, बहुव्री० कर्मशीलयति वा। १ कर्म करनेके ही
स्वभाववाला, जो नतीजकी भीर न देख दिलसे काम
करता हो। २ उद्योगी, कोशिय करनेवाला।
कर्मशुचि (सं० त्रि०) कर्मसु शुचिः, ७ तत्। पवित्र-
कर्मा, साफ काम करनेवाला।
कर्मशुद्ध (सं० स्त्री०) कर्मसु शुद्धः, ७-तत्। पवित्र-
कर्मा, साफ काम करनेवाला।
कर्मशूर (सं० त्रि०) कर्मणि शूरः दक्षः। १ कार्य
कारक, मेहनती, सुस्तेदीके साथ काम करनेवाला।
२ कार्यदक्ष, कोशियार, कामीगर।
कर्मशौच (सं० स्त्री०) कर्मसु शौचं दोषहीनता।
कर्म विषयमें निर्दोषता, कामकी सफाई।
कर्मश्रेष्ठ (सं० पु०) १ पुलहके पुत्रविशेष। इनकी
माताका नाम गति था। (भाष्यत ३।१।११)
कर्मण (सं० स्त्री०) कर्म शुभकर्म स्थिति नाशयति,
कर्म-शो-क निपातनात् प्लवम्। कल्पय, पाप, गुनाह।
कर्मस (सं० पु०) पुलहके एक पुत्र। इनकी
माताका नाम क्षमा था।
कर्मसङ्ग (सं० पु०) कर्मणि सङ्ग भासक्तिः, कर्मन्-
सन्ज-सञ्ज। कर्ममें भासक्ति, काममें सगे रहनेकी
भावता।
कर्मसंपन्न (सं० पु०) कर्मणः संपन्नः, ६-तत्। कर्म
समुदाय, कामका कुलम्।

कर्मसचिव (सं० पु०) कर्मसु सचिवः सहायः। कार्यमें
साहाय्य देनेवाला, जो काममें मदद पहुँचाता हो।
कर्मसत्यास (सं० पु०) कर्मणः स्वरूपतः फलतो
वा सत्तासत्यासः, ६-तत्। १ कर्मत्याग, काम छोड़
बैठनेकी हालत। २ कर्मफलत्याग, कामका नतीजा
न देखनेकी हालत।
कर्मसत्यासिक (सं० पु०) कर्मणां सत्यासोऽप्यस्य,
कर्मन्-सत्यास-ठन्। प्रप्रव्यायुक्त भिक्षुक, दुनयावो
काम न करनेवाला फकीर।
कर्मसत्यासो (सं० पु०) कर्मसत्यासोऽप्यस्य, कर्मन्-
सत्यास-ठनि। १ यथा-विधान कर्मत्यागी भिक्षुक,
क्यादसे दुनयावो काम छोड़नेवाला फकीर। २ कर्म-
फलत्यागी, कामका नतीजा न देखनेवाला।
कर्मसमाधि (सं० स्त्री०) कर्मणः समाधिः पति-
समाप्तिः। १ कर्म का शेष, कामका प्रखोर। २ सुप्ति,
छुटकारा।
कर्मसम्भव (सं० त्रि०) कर्मणः सम्भव उत्पत्तिर्यस्य,
बहुव्री०। १ कर्मजात, कामसे निकला हुआ। (पु०)
२ कर्म की उत्पत्ति, कामका निकास।
कर्मसाक्षी (सं० पु०) कर्मणां साक्षी प्रत्यक्षकारी,
६-तत्। १ कर्मको प्रत्यक्ष करनेवाला सूर्य, भाफताव।
२ चन्द्र, चाँद। ३ यम। ४ काल। ५ पृथिवी,
जमीन। ६ जल, पानी। ७ तेजः, आग। ८ वायु,
हवा। ९ आकाश, आसमान।
“सूर्यो वसो वसो वाको महाभूतानि पच च।
एते एषामधस्यै ह कर्मणो नव साधिनः।” (ईदिक क्रियावर्ति)
सूर्य, सोम, यम, काल और पृथ्वी महाभूत शुभाशुभ
कर्मके साक्षी हैं।
कर्मसाधक (सं० त्रि०) कर्म साधयति निष्पादयति,
कर्म-साध-ण्व-ल्। कार्यनिष्पादक, काम बनानेवाला।
कर्मसाधन (सं० स्त्री०) कर्मणः साधनं सम्पादनम्,
६-तत्। १ कार्यकी सिद्धि, कामकी तकमील।
२ यन्त्रादिके किये जावशक द्रव्य, किछी मजहबी
कामकी जरूरी चीज।
कर्मसिद्धि (सं० स्त्री०) कर्मणः सिद्धिः, ६-तत्।
कर्मके इष्ट वा अनिष्ट फलकी प्राप्ति, कामयाबी।

रखनेसे साक्षि वय कोयी भवविधा देख न पड़े।
घट्टम—गङ्गा पूर्ववङ्गकी पन्थान्य नदीकी भांति वन्य
भीर प्रबल कक्षा। नवम—सूतानुटीके निकट अनक
बहु जनाकीर्ण ग्राम थे। सुतरां व्यवसाय भीर वस-
वासकी सुविधा रही। दशम—सूतानुटीमें उस समय
तन्तुबाय बहुल वसति थी। वह वस्त्र बुनने भीर सूत्र
प्रसृत करनेमें विशेष पारदर्शी रहे। सुतरां उन्हें
कोठीके अधीन रख वस्त्र व्यवसाय खोल सकते भी
विशेष लाभ उठानेकी प्राप्ता थी।

१६८६ ई०की २० वीं दिसम्बरकी जन्म-चारनकनि
दुगली कीड़ी। यह अपने समस्त वाणिज्य द्रव्य और
यावतीय कर्मचारी ले सूतानुटी पहुँचे। जिध स्थान
पर जन्म-चारनक प्रथम उत्तरे, उसको सूतानुटी कहते
थे।* उस समय सूतानुटीमें तुला, सूत्र और वस्त्रका
बाजार लगता था। बाजारके सामने ही अह्मरेजीके
उत्तरनेका घाट रहा। कम्पनीके भूमिद्वित प्रदादिमें
एक मानचित्र है। उसमें सूतानुटीका स्थल निर्दिष्ट
है। सम्भवतः सूतानुटी वर्तमान पाक्षीरोटोलेके उत्तर
सम्प्रातले भीर रथतले घाटके निकट थी। फिर भी
सूतानुटी घाटका यद्यपि भवस्थान आजकल नगरके
पूर्वागमें पड़े गया है। प्रवादके अनुसार सूतानुटीका
घाट और घाट वर्तमान बड़े-बाजारके विट-वसाकीके
यत्नसे बना था।* उस समय सूतानुटी भीर उसके
दक्षिणपूर्वमें कलकत्ते तथा गोविन्दपुर ग्राममें उनका
वास रहा।

* Vide Map attached to the Selections from Unpub-
lished Records of Government.

† घाट बसाक कहते—कई शताब्द पूर्व बहावके प्रथम वाणिज्यकेन्द्र
सम्प्रातके गोविं-सरसनी नदीका (प्रातःकाल आर्य, महिषादी और
राजदण्डके गोविंसे आरार भी नदी महामें मिल जाती), बहु सरसनी कहाती
थी। विशेषके गोविं सरसनीका कुछ भंग विधान है। किन्तु आदि-
नङ्गाकी भांति सरसनी भी विघ्न गयी है। आदिगङ्गा स्थान स्थान
पर पूर जानेसे 'घोषगङ्गा' और 'गोषगङ्गा' नामक पुष्करणी नाममें
परिचय हुयी है। इनो प्रहार साकरदण्ड, जगई भंगति गानके गोविं
सरसनी नदीके प्रदान्म गर्भविहित सदापर और विघ्न देव पवते है।
(सोत घट जानेसे इननी मधर बहावका सघसे बड़ा वाणिज्यस्थान
बन गया था। उस समय ऐतौके एक बहावकीे वार आदिपुष्कर स्था-

जन्म-चारनक सूतानुटीमें* पङ्कच घाटसे कुछ
दक्षिण एक वृहत् निम्न वृत्तके नीचे कीपड़े डाल रहने
लगी। उक्त निम्न वृत्तके नामसे ही वर्तमान 'गोमतज्ञा'
नाम निकला है। १८८२ ई०को पानन्दमयीके मन्दिर
निकट पम्पिदाइसे गिरनेवाला प्राचीन निम्नवृत्त जन्म-
चारनकने समय का नहीं। कारण उस समय गोम-
तज्ञेकी भूमि गङ्गाके गर्भमें लुथी थी।

१६८० ई०के फरवरी मास जन्म-चारनकको संवाद
मिला,—'नवाव शाहस्ताखानके सेनापति पण्डित
समदखान् बहु संख्यक अश्वारोही सेन्य ले दुगली
पहुँचे है। यद्वास्तसे पहरेजोंको निकाल देना ही
उनका उद्देश्य है।' इससे उन्हें सूतानुटीमें भी रहना
युक्तिसङ्गत देख न पड़ा। कारण यद्वास्तके नवावसे
लड़ने योग्य सन्धवल न था। फिर उस प्रकार परचित्त

नुटीके दक्षिण गोविन्दपुर ग्राममें जाकर १६६१। बहावकीके कथनानुसार
युरीपीयोंके साथ वाणिज्य करनेके लोभसे ही वह गोविन्दपुरमें रहने लगे।
किन्तु यह बात ठीक समझ नहीं पड़ती। कारण वाणिज्यके निधि लक्ष्य
केन्द्र दुगली या उसके निकटवर्ती स्थानकी जाना था। इतनी दूर जाना
प्रायःशक्य न रहा। फिर ऐतौके संवत्सर अपने आदिपुष्कर पुष्करागसे १०व
पुष्कर, कालिदास सदाकके संवत्सर १६व पुष्कर और पन्थ नौग बहावकीके
संवत्सर १२व पुष्कर अचलन थे। यह संभावनी देखनेसे समझ पड़ता,—
उक्त आदिपुष्करोंके जाले समय (ई० पण्डित मयादे) सम्प्रातको अचलन
पश्चिम दिशाके न था। उस समय भी सम्प्रात बहावका प्रथम वाणिज्य
स्थान था। इससे ऐतौमें बिजो विद्वेष आरभ्य अग लुथीवित्त और
विरक्त ही बहु प्राणोय नाशवरीही दूर रहनेके निधि ही गोविन्दपुर गये।
शोकिक उस समय कलकत्तेके इतिहा वाणिज्यस्थान रहनेका शोक प्रभाव
नहीं मिलता। ई० १५ मयान्दको वाणिज्यको आदास उनका गोविन्द-
पुर जाना केशी ठहर सकता है।

* इसके उद्धारनेका शोक विहित प्रभाव नहीं मिलता—एतानुदाहा
नाम युरीपीयोंकी जितने दिग्दर्श कथन था। वाणिज्यनामक बिजो
चौकन्दान सारवने १६१६ ई०को एक मार्गचित्र बनाया। उसमें एता-
नुटीके स्थल पर "चिबान्तो" (Chittanotee) नाम पड़ा है। फिर
करनेन दुग्धने 'रथिवा हासवकीे कावजवत देखते समय कई बहुत
पुरानो विद्वानोंवाणी। उनमें एक एतानुटीके १६८६ ई०की ११ वीं
दिसम्बरकी तिथी गई थी। उनके पुष्करकी भी समझ पड़ता—अ-
रिकीकी १६८६ ई०के पहले एतानुटी स्थान मान्य था। वृक्ष बाधने
कक्षा—१६०६ ई०के 'इतिहास पारघट और प्राचीन सहायवित्तकीे
आभविन में एतानुटीका उल्लेख मया है।

कर्मसूत्र (सं० स्त्री०) कर्म एव सूत्रम् । कर्मरूपसूत्र, कामका सिद्धिसिला ।

कर्मस्थ (सं० त्रि०) कर्मणि तिष्ठति, कर्मन्-स्था-क ।

कर्ममें नियुक्त, काममें रहनेवाला ।

कर्मस्यक्रियक (सं० त्रि०) विपश्ये चपने कर्मको रखनेवाला (धातु), जो (मसदर) चपना काम सुद्धेमें रखता हो ।

कर्मस्वभावक (सं० त्रि०) चपना भाव कर्ममें रखनेवाला (धातु), जिस (मसदर) को हालत सुद्धेमें रहे ।

कर्मस्थान (सं० स्त्री०) कर्मणः स्थानम्, ६-तत् ।

१ कर्मक्षेत्र, कारखाना, कामकी जगह । २ ज्योतिषशास्त्रोक्त जन्म अवधि दशमस्थान ।

कर्महीन (सं० त्रि०) १ शुभकर्म न करनेवाला, जो अच्छा काम करता न हो । २ मन्दभाग्य, कम-बढ़त, अभाग्य ।

कर्महेतु (सं० त्रि०) कर्मसे उत्पन्न, कामसे निकलनेवाला ।

कर्मा—१ महिमतो पतिपुत्रहीना कोई ब्राह्मणकन्या ।

करनावाक देखी ।

२ युक्तप्रदेशके इलाहाबाद जिलेकी करखाना तहसीलका एक नगर । यह प्रयागसे ६ कोस दक्षिण अवस्थित है । यहां महल तथा भुक्तवारको बाजार जगता, जिसमें पग्गादि, गन्ध, तुला और धातुका पात्र प्रभृति विकता है ।

कर्माचम (सं० त्रि०) कर्मसु चमनः चमनार्थः, ७-तत् । कार्यं करनेमें असमर्थ, निकम्हा, काम न कर सकनेवाला ।

कर्माह (सं० स्त्री०) कर्मणो अहम्, ६-तत् । विहित यथादि कर्मका अहम्, कामका इच्छा ।

कर्मजीव (सं० पु०) कर्मणा जिवीवः जीवन्म्, ३-तत् । गिस्थादि कार्यसे जीवन्वापन, कामके सहारे द्विन्दुगोका वधर ।

कर्माया (सं० पु०) कर्मणा याया यायाभावो यस्य, बहुव्री० । १ मोषी, जानवर ।

“तद्विन्व चरति तु खलु कर्मान्तः करीषिः” (मनु)

(त्रि०) कर्मणि याया मनो यस्य । २ कर्मसिद्धि-दित्त, काममें दित्तकी जगानेवाला ।

कर्मादान (सं० पु०) जेनशास्त्रानुसार व्यापारविशेष । यह १५ प्रकारका होता है—१ इहलाकर्म, २ वनकर्म, ३ साकटकर्म, ४ भाडीकर्म, ५ स्तोत्रिककर्म, ६ इला-कुवापिच्य, ७ लाघाकुवापिच्य, ८ रसकुवापिच्य, ९ केशकुवापिच्य, १० विपकुवापिच्य, ११ यन्त्रवीडुम्, १२ निराल्प्यम्, १३ दायग्निदानकर्म १४ शोषणकर्म और १५ अचती पाशन । आवश्यकको कर्मादान करना न चाहिये ।

कर्मादि (सं० पु०) कर्मण्य आदिः, ६-तत् । कार्यका आरम्भकाल, कामका आगाज ।

कर्माधिकार (सं० पु०) कर्मका स्वत्व, कामका हक ।

कर्माधिकारी (सं० पु०) कर्मणि अधिकारोऽस्यस्य, कर्मन्-अधिकार-इति । कर्मका अधिकार रखनेवाला, जिके कामका इच्छित्यार रहे ।

कर्माध्यक्ष (सं० पु०) कर्मसु अध्यक्षः, ७-तत् । कार्यका अध्यक्ष, जो काम कारनेवालेका काम जांचता हो ।

कर्मानुबन्ध (सं० पु०) कर्मणः अनुबन्धः संयोगः लेगी वा, ६-तत् । कर्म का संयोग, कामका लगाव ।

कर्मानुबन्धी (सं० त्रि०) कर्मका संयोग रखनेवाला, काममें लगा हुआ ।

कर्मानुरूप (सं० त्रि०) कर्मणः अनुरूपः, ६-तत् । १ कर्मसदृश, कामसे मिलताजुलता । २ कर्मोपयोगी, कामके लिये अच्छा ।

कर्मानुरूपतः (सं० अर्थ०) कर्मके अनुसार, कामके सुतायिक ।

कर्मानुष्ठान (सं० स्त्री०) कर्मणः अनुष्ठानम् ६-तत् । कर्म का अनुष्ठान, कामका इनचिराम ।

कर्मानुसार (सं० पु०) कर्म अनुसरति, कर्मन्-अनु-सृ-घञ् । कर्मका फल, कामका मिश्राय ।

कर्मानुसारतः (सं० अर्थ०) कर्मके फलसे, कामके मिश्रावमें ।

कर्मात् (सं० पु०) कर्मणः शीघ्रतया सुष्ठत-दुष्कृत-क्रियायाः यदा कर्मणः क्रियेकार्यं तत् फलस्य धान्यादिभेदरूपक्रियायाः अन्तो यत्र; बहुव्री० । १ कर्मस्थान, कामकी जगह । २ कर्मका फल,

व्याप्त भी वृद्ध युद्धके उपयोगी न ठहरा। इसीसे वह मदन सुतानुटी छोड़ गङ्गामतीके मुहानेकी हिजलीकी ओर चल पड़े। राहमें उन्होंने गङ्गाके पश्चिम कुल पर सुतानुटीसे ५ कोस दक्षिण 'टाना' नामक स्थानका दुर्ग अधिकार किया। फिर वह जितने हो दक्षिणकी ओर बढ़े, वतने ही मदीतीरस्थ मुसलमानी नवाब और गन्धके गोले लूटने लगे। मदीके गममें मुसलमानोंको जो नाश देख पड़ो, वह भी पकड़ लडाकोंके साथ बालेश्वर भेजी गयीं। फिर देगाय शिवाजीकी ४० नावें उन्होंने पाग लगाकर जला डालीं।

उस समय हिजली एक हीपकी भांति थी। पश्चिम दिक् एक सुदूर खाड़ी थी। सुतरां हिजली पड़ुंवनके लिये नौकाकी छोड़ दूसरी कोई राह न रही। फिर हिजलीमें कोई रकता भी न था। चारो ओर वनमें व्याप्त भरे थे। प्रकृत पक्षमें नवाबका पत्त्याचार रोकनेको ही चङ्करेजीने उक्त स्थान मनोनीत किया।

जब-चारनकने हिजलीमें मदन उत्तर पन कटाया और चारों ओर तोपीका सुरक्षा लगाया था। वह सब जहाज गङ्गाके ऊपर छोड़ मुहानेकी ओर बैठे। किन्तु इसका फल उलटा हुआ। हिजलीमें एक विन्दु भी पागोपयोगी परिष्कार जन मिसला न था। दूसरे दक्षिण पक्षमें समस्त चङ्करेज सैन्य पौड़ित हुआ और जलामावसे पश्चिमांग मृत्युके सुप्त पड़ा। जो लोग यथे, वह पीछासे ऐसे हरे कि जीवन्तकी पाग छोड़ चले। यथ पट्टके क्रमसे नवाब शायस्ता-खानने उसी समय मन्थिका प्रस्थाप उठाया। चारनकने हटमन मन्थि जोड़ी थी। मन्थिसे चङ्करेजीको सब कीठिया वापस मिलीं। मसुदये ४० कोस उत्तर गङ्गाके पश्चिम कुल 'उजुशेड़िया'में एक ओर गंगला वनानेका अनुमति दृष्टी थी। चङ्करेजीका वादिष्य बिना शक्य चमने लगा। केवल मुसलमानोंकी हीनी भोकाये लोटाया पड़ो। नवाबके चठात् मन्थि करनेका कारण था। हुगलीमें लडाकी शैल लेकर जानेवाले पाहमिरन निकोलसनको इन्डिस्ट्रिये मुसलमानोंकी समस्त जोकाये अधिकार करनेका आदेश मिला था। नवाबने यह संवाद सुन शीघ्र मन्थि ठहरा भी।

फिर जब चारनक उजुशेड़ियामें एक वनाने लगे। पौड़ित सिपाहियों और चङ्करेजीकी उन्होंने सुतानुटी भेज दिया। वह जाकर कोठीमें रहे थे। उसी समय मसवरमें चङ्करेजी और मुगलौका युद्ध हुआ। सुतरां शायस्ता-खानके मनमें फिर चङ्करेजीकी सतानेकी बात उठी। उन्होंने आदेश दिया था,—'सब चङ्करेज सुतानुटीसे हुगली चले जायें। उनके गडबडसे बाजार बिगड़ गया है। इसके लिये घबेठ रूपया देना पड़ेगा। सिपाही चङ्करेजीका, यथा सर्वश्रम भूट सकते हैं।' चारनककी प्रवृत्त्या अच्छी न थी। उन्हें युद्ध चलाने या रूपया पड़ुंवानेमें प्रसविधा लगी। इसीसे उनके आदेशानुसार कोठीवाले दो चङ्करेज नवाबको रिक्ता बुझा उक्त पत्त्याचार निवारणके लिये टाके पड़ुंवा गये।

फिर निकोलसनकी प्रकृतकार्यतामें बिगड़ इन्डिस्ट्रियेके डिरेक्टरोंने कपतान हिदको ६४ तोपों और १६० चङ्करेज सिपाहियोंके साथ बंगाल भेजा। उन्हें आदेश था—उपयुक्त नियमसे युद्ध कर चङ्करेजीका वादिष्य बंगालमें प्रस्थाप, प्रथवा सब चङ्करेज सिपाहियों और कोठीवासियोंको मन्दाज पड़ुंवा पटगांव पर आक्रमण लगावे।

१८५६ ई०के फाल्गुण मास हिद सुतानुटी पाये। उधर चारनकने दो कोठीवाल चङ्करेजीकी नवाबके निकट टाके भेज कर दिया था,—यदि नवाब कुछ धान सुमे, तो चाप धनसे सुतानुटी और निकटवर्ती भूमि खरीद पायागादि वनानेकी अनुमति प्रदत्त करें। हिदने यहां नवाबके पत्त्याचारकी कथा सुनी। यह उद्वेगमात्र था। उन्होंने उसी जब चारनकका मत न मिनते भी स्थिर रूपसे लड़नेकी प्रतिष्ठा की। हिद सब कोठीवासियों और लोगोंको साथ ले बालेश्वरकी ओर चल दिये। बालेश्वरके शासनकर्ताने मन्थि करना चाहा। किन्तु उन्होंने किसी बात पर कर्षणात् न किया। शासनकर्ताने बालेश्वरकी कोठीके दो चङ्करेजीकी प्रमाणनके लिये मन्थे किया था। उस समय नवाबके निकट टाके दो पक्षमें भेजे जानेवाली, दूसरी कोठियोंके दो कोठीवाली और बालेश्वरके उक्त दो बन्धियोंको छोड़ बाकी सब चङ्करेज

हिन्दके लड़ाजोंमें रहें। उक्त ६ लोगोंके प्राणकी प्राणह्वा रहते भी हिन्दने सैन्य सामन्त बढ़ा बालेश्वर आक्रमण किया। बालेश्वर आक्रमणके दिन ही टाकिवाले दूतने आकर संवाद दिया—नवाबकी फौज अहमदशेकी अधीन आराकान अधिकार करेगी। हिन्द चट्टग्राम लेनेकी सभावना देख उक्त प्रस्तावमें सन्धत हुये। १६८६ ई०की ११ वीं दिसम्बरको वड़ बालेश्वर छोड़ चट्टग्रामकी ओर चले थे। चट्टग्राम सुरक्षित देख आराकानके राजाको चम्पगत कर उन्हींके कार्याचारकी चेष्टा लगायी। किन्तु राजाके उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ। इससे हिन्दने चट्टग्राम आक्रमण करनेकी ठहरायी। उन्हींमें पूर्वोक्त छुटे लोग बङ्गालमें ही छोड़ पन्य सकलको मन्द्राज पहुँचाने लिये ११ वीं फरवरीकी यात्रा की।

पौरुज्जे वने इस संवादसे विगड़ देशसे अहमदशेकी निकासनेका आदेश दिया था। फिर नाना चल्याचार हुये। शयस्ताखानुने वृष वयसमें प्रामरे जाकर प्राण छोड़ा। अलबदीखानुके पुत्र इम्राहीम खानु नवाब बने। वृष बड़े दयालु थे। उन्हींने नवाब होते ही सब बन्दी अहमदशेकी छोड़ दिया और सम्नाटका आदेश मंगा बंगदेशमें अहमदशे लानेके लिये चारनकको पत्र लिखा।

१६८० ई०की २४वीं अगस्तको अहमदशेकी सूतानुटीमें आकर स्थायी रूपसे रहने लगे। वादशाही कीपमें यात्सरिक ३००० रु० जमा दे पूर्वकी भांति अहमदशेके नाना स्थानोंमें कीठी बनाने और व्यवसाय बाणिव्य चलानेकी (१६८१ ई०, फिजरी १००२) सब चारनकने नवाब इम्राहीम खानुसे सम्नाटका दिया आदेश पाया। अहमदशेकी सूतानुटीमें उपनिवेश स्थापन करनेकी अनुमति मिलते भी दुर्गकी बगानेकी प्राप्ति न हुयी।* फिर १६८२ ई०की १०वीं जनवरीकी चारनक सर गये। डिरेक्टरोंने आशा रखी थी,— चारनकके जीवमकास पर्यन्त बङ्गालमें मन्द्राजसे प्रथक

व्यवसाय कार्य चलेगा, किन्तु उनके मरनेपर फिर फोर्ट सेण्ट जार्ज (मन्द्राज)के अधीन रहेगा।*

चारनकके मरनेपर बङ्गाल पुनर्वा मन्द्राजके अधीन हुआ और उनका पद इल्लिच माहवको मिला। किन्तु इल्लिच कमिसारोजेनरल और सुपरवाइजर सर जी गोपडसवरकी सन्तुष्ट करन सके। इसलिये उनके पद पर टाकिकी कीठीके अध्यक्ष पायार साहब नियुक्त हुये।

१६८५ ई०की डिरेक्टरोंके आशानुसार सूतानुटी बङ्गालके प्रधान एजेण्टका वासस्थान ठहरायी गयी। उस वर्ष सूतानुटीमें २००० रु० शकल लगा था।

१६८६ ई०में एक घटना वय युरोपीय बणिकोंकी विग्रेष सुविधा हुयी। गोभासिंह नामक वर्धमानके किसी ताज्जुफदारने उक्त स्थानके राजाको मार छोड़े-सेवाले पठान सरदारके साहाय्यसे बङ्गालवाले सूबेदारके विपक्षमें विद्रोहका प्रयत्न भङ्गाया था। यह राजद्रोह दवानेको यमोरके फौजदार नूरुज्जा पर भार पड़ा। किन्तु वृष भोरता वय हुगनोके किल्लेसे भाग गये। विद्रोहियोंने सुविधा देख हुगली पधितार किया। गोभासिंहने बङ्गालके अधिपति बननेका भो वृहा उद्योग लगाया था। इसी सुयोगमें अहमदशे, शोसन्दाज, फरासीवी प्रभृति युरोपीय बणिकोंकी अपने उपनिवेश सुरक्षित रखनेके लिये नवाबकी अनुमति मिली। फलतः कलकत्तेमें अहमदशेका दुर्ग बनने लगा। इङ्गलिण्डके तत्कालीन राजा विलियमके नामसे दुर्ग खड़ा किया गया।†

उपरोक्त घटनासे सम्नाट पौरुज्जेय बङ्गालके सूबेदार इम्राहीम खानुपर असन्तुष्ट हुये। उन्हींने उनके लड़के आज़िम-उस-शानकी बङ्गालका सूबेदार बनाकर भेजा था। १८८६ ई०की अहमदशेकी बणिकोंने सुद्रा तथा विविध उपद्रोहनादि प्रदानपूर्वक मोति बढ़ा आज़िम-उस-शानसे सूतानुटी, कलकत्ता और गोविन्दपुर तीन प्राम कृत किये।

* Vide Bruce's Annals of the East India Coy. Vol. III, p. 143-4.

† Vide Historical and Topographical Sketch of Calcutta, by James Rainey.

* Broom's History of the Rise and Progress of the Bengal Army, Vol. I, p. 24.

अद्वैतजी बणिङ्ग उत्तर तन्तुवायोसे सुत (वा सुतकी तुटी अर्थात् गोली) क्रय करते रहे। इसी बाजारके पार्श्वमें दूसरा बड़ा बाजार था। मालूम पड़ता,—युरोपीय बणिङ्गोंने सुतातुटीहाटकके निकटवर्ती समुदाय स्थानका नाम सुतातुटी रखा है। कारण अद्वैतजी अथवा अपरपर युरोपीयोके भागमनसे पहले किसी देशीय पत्रमें 'सुतातुटी' नाम नहीं मिलता। अद्वैतजीके अधिकार कालसे १७७८ ई० पर्यन्त यह स्थान ईष्ट इण्डिया कम्पनीके अधिकारमें रहा, फिर उसी वर्षकी १६वीं जनवरीको नवापाड़े मौजेके परिवर्तनमें महाराज नवकृष्णके हाथ लगा। ईष्ट इण्डिया कम्पनीने महाराज नवकृष्णको जो पत्र (सनद) दिया, उसमें इन कई स्थानोंका नाम लिखा है,—१ महाराज सुतातुटी (२३३७ बीघा), २ हाट सुतातुटी, ३ बाजार सुतातुटी, ४ सुता बाजार, ५ चार्ल्स बाजार, ६ बागुबाजार (१०० बीघा) और ७ डुगलकुडिया (२८७) बीघा। इसके लिये महाराज नवकृष्णको प्रतिवर्ष १२३७ ६० और कुछ धाने महसूल लगता था। आज भी गोमाबाजारके राजवंशिय उस स्थानोंकी तालुकदारोंका स्वत्व भोग करते हैं।

विशेष—कलकत्तेमें ४ सरकारी (गवर्नमेण्ट), ५ मिशनरी और लोकोके यत्रसे स्थापित ५ देशीय कालेज (विद्यालय) विद्यमान हैं। डाक्टरी (चिकित्सा-विद्या) सिखानेकी मेडिकलकालेज, कामार्डकेलकालेज तथा काम्पबेल मेडिकल स्कूल और शिल्पविद्याके लिये आर्ट स्कूल वा शिल्पविद्यालय (Government School of Art) खुला है। सिवा इसके ३०० अपर विद्यालय चलते हैं। इनमें १५५ बालकी और १४५ विद्यालय बालिकावांके लिये हैं। फिर ८२ में बालकीका

अद्वैतजी तथा ७२ में बंगला और १२० विद्यालयोंमें बालिकावांकी बंगला पढ़ाई जाती है। पुर्णों और स्त्रियोंकी शिक्षता सिखानेके लिये ३ नामें स्कूल भी विद्यमान हैं। इधर हिन्दुस्थानी बालक श्री-विगुबानन्द सरस्वती विद्यालयमें संस्कृत, हिन्दी और अङ्ग्रेजी पढ़ते हैं।

अख्यता—कलकत्तेमें ८ बड़े अख्यताएँ खुले हैं, मेडिकल कालेज अख्यताएँ, मेवो अख्यताएँ, कम्पबेल अख्यताएँ, स्थानीय पुलिस अख्यताएँ, बेलगछिया अख्यताएँ और स्त्रियोंका लकारिन तथा ईंटेन अख्यताएँ। इरीसनरीइवर मारवाडियोंका भगवान्दास बागसा अख्यताएँ विद्यमान हैं।

धर्मप्रमाण—कलकत्तेमें माना जातियोंके रहनेसे अनेक धर्मसमाज देख पड़ते हैं। हिन्दुवां, मुसलमानों और ईसायियोंके धर्मसमाज छोड़ ५१ हरिभमा और ३ ब्राह्मणसमाज भी हैं। कार्यावासि डोटवर पायें-समाज जगता है।

जल—बङ्गालके अपर स्थानोंकी भांति यहां पुष्करिणी (तालाब)का जल किसीको पीना नहीं पड़ता। स्युगिसिपासिटी कलका जल सर्वत्र पहुँचाती है। यह जल पकता नामक स्थानसे आता और कारखानोंमें अच्छी तरह मोचित हो लम्बे चारों ओर जाता है। आजकल प्रायः प्रत्येक गृहमें कमसे कम जलकी एक एक कल लगी है। फिर साधारणको सुविधाके लिये राहकी मोड़ों पर भी बड़ी कल खड़ी की गयी है। बीच बीच खानागार बने हैं। पहले हिन्दुस्थानी लोग कलकत्तेमें आकर बीमार पड़ जाते थे। किन्तु कलका पानी पीनेका मिलनेसे अब यह बात नहीं रही। अनेक धर्मप्राण पुरवों और विधवा स्त्रियोंके व्यवहारमें अपवित्र होनेसे कलका जल कम आता है। इसलिये उन्हें भागोरीकीका जल इंगार पीना पड़ता है। किन्तु भागोरीकीका जल समुद्रका लहर पानेसे चार लगता और साधारणतः स्वास्थ्यके लिये ठीक नहीं पड़ता। प्रातःकालसे धार्यकाल पर्यन्त भागोरीकी तट पर खान करनेवालोंकी भीड़ रहती है।

३६ और रिजो—सन्ध्या समय सेही कलकत्तेकी

* कलकत्ते, गोविन्दुर और सुतातुटीके प्राचीन भौतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिकवर्तिता विषय समस्यके उपायकी विधिबन्धेके साथ बखानन करना चाहिये। अद्वैतजी, कलकत्ते का प्रथम गवर्नमेण्टी, महाराजके पुत्रने सरिपुने, निवायतकी इण्डिया राज्य आम्बेरा और शिबिग स्युजिय (अद्वैतजी अन्तर्गत अर)में उपराज बन (कानून) विद्यमान है। उन्हें इंग्लैण्ड अनेक विद्वान्-वर्षिके हाथ प्रकाशित हो चुके हैं।

घोता है। सम्भवतः किलकिसा ही कलकत्ताका प्रति
प्राचीन नाम है। किलकिसाके पदभ्रंगसे ही पार्ल-
न-प्रकथरी प्रकृति घन्यमें कल्कता, कल्ता, कल्गा,
कल्कता, कलकत्ता, कलिकता आदि शब्दकी उत्पत्ति
है। मानूम पहला, कि भाषासे लिखे मित्र भिन्न
पार्लन-प्रकथरी घन्यमें पाठान्तर चलता है। इसमें
किसाकिना शब्द भाषान्तरसे लिखते कल्कसा,
कल्कता, कलकत्ता हो सकता है।

गोविन्दपुर नामकी उत्पत्ति।

कलकत्तेके भूतपूर्व कलकटर टीर्षडेस साइयके
मतमें गोविन्दराम मित्रके नामसे गोविन्दपुर बना है।
फिर यड़े बाजारके सैठ बघाकोंके कथनानुसार यहां
उनके इष्टदेव गोविन्दजीका मन्दिर था। उसीसे
इस स्थानका नाम गोविन्दपुर पड़ गया। यह दोनों
मत विशेष युक्तिसङ्गत मालूम नहीं होते। प्रथमतः
गोविन्दराम मित्रके बहुत पहले गोविन्दपुर नाम
विद्यमान था। द्वितीयतः यदि गोविन्दजीके नामसे
गोविन्दपुर निकलता, तो सकल प्राचीन घन्योंमें गोविन्द-
पुरके साथ गोविन्दजीका उल्लेख अवश्य मिलता।
कविराम विरचित दिग्विजयप्रकाश नामक घन्यमें
गोविन्दपुरके नामकरण सम्बन्ध पर जो विवरण
मिला, उसे नीचे लिखा है,—

“इदानीं दूरयाहूँ न चरभुगी कदा प्रपु।
कान्दीदेव्याः उग्रिणी च दह्याय भाषति तटे ॥ १०१२
गोविन्दपुरो राजा च कल्पिदासकचवृक्षी।
द्विन्दुसङ्ग कनोर्दवायाचरणां समागतः ॥ १०१३
गोविन्दपुराभाषतं तोषान्ति इत्यागतं वचनम्।
आभोर्देवो कश्चिन्मो भीकामाकमुवाच ह ॥ १०१४
बहवर्षीयुती वातम् आरुष्यति हि मातङ्गः।
वादान् वसा इदित्याच वेददित्वा तवादिभम् ॥ १०१५
पुरं.....भाषीते मनुष्यजातः।
वादनानि यच्च भूतानि न कल्पान् न चैदृचि ॥ १०१६
कान्दीदेव्या वचो ज्ञाना ब्रह्मसाधु तटारुचि।
बहानि मृदुवीं तव चकार हि तुलावितः ॥ १०१७
पारीश्रु वातान् कश्चित् इतिवाचि मारीषिकः।
आनदित्वा च बहानि ब्रह्मसाधु सुगर्भकटो ॥ १०१८
साधु भी विषयवचनः देवान् इहो न च वचनैः।
दशार्धेन तन्मूले..... ॥ १०१९

प्राया शैवे व मूलेन कलिवाचनरे निरि।
वाचनकर्मभूतितापानम् ॥ देवापुरेवधि ॥ १०१२
शेषि इतिवाचिषे प्राप्य योविन्दपुरेतिः।
चतुःपटितं व्यस्येव वनिभिः पूजने कृतम् ॥ १०१३
मोमशा विनश्रवा तेमोमशा हि भूमिनि।
यन्मू गोविन्दपुरो बहिः प्रकथरी सरान् ॥ १०१४
भाटीरकोपुनैते पुरीरैरुद्वेतेनैः।
वाचुषान् विज्ञान् मोता पचार वाचतेनैः ॥ १०१५

हे चपत्रेष्ठ ! पद्म चरभूमिनी कथा सुनिये। काली
देवीके निकट गङ्गाके पूर्व तट पर ४४०० कल्पद्वयों
सिन्धुसङ्गम (गङ्गासागर) तीर्थ यात्रा करने गोविन्द-
दत्त राजा भाये थे। वह सक्तुमल तीर्थसे कोट पड़े।
फिर स्वप्नके कलसे काली देवीने उन्हें भोजनमें ही
आदेश दिया,— “ हे राजन् ! मेरी आज्ञासे तुम
चक्रपथपुरीकी चली घोर वादररसा पृथिवीमें लक्ष-
दिक कटा मेरे निकट एक बड़ी पुरी स्थापन करो।
नहीं तो तुम्हारा भ्रमद्वल होगा।” काली देवीकी
वात मान राजाने गङ्गातटके प्रस्तर पर बड़ी बसती
बनायी। पारीश्रु नामसे सब धनरत्न मंगा सुरसरित्के
तटपर लीग बसाये गये। देवीके पूठ पर दो हल
रखे थे। उनके आदेशसे हलोंके नीचे खोदने पर
मृत्तिकाके पथन्तरमें काष्णकका टेर देख पड़ा, जो
देवीं घोर चक्रोंकी भी चतुर्भुज था। मूरि भूरि प्रथ
पानिसे प्रसन्न हो गोविन्द भूपने चतुःपटि बलि
हारा पूजन किया। मोक्ष, वित्त घोर तीज बढनेसे
गोविन्ददत्त मजान् बर्षिष्ठ प्रदर भूमिप मन गये।
फिर उन्होंने पुरीके वर्धन हेतु भागीरथीके पूर्व तट पर
शास्त्रियोंकी बोलाकर वास्तुयाग किया।

कविरामकी उक्त वर्णनासे समझ पड़ा, कि राजा
गोविन्ददत्तसे इस स्थानका नाम ‘गोविन्दपुर’ पड़ा था।

दृष्टांटी।

पहले सनातुटीके समयमें बहुत ही बातें कह चुके
हैं। यहां चन्द्रदेवोंके पानिसे पहले तन्तुषाय (सुजादे)
रुनका गोला (मुटी वा सुटी) बना (उम समयसे
सनातुटीके) बाजारमें (वर्तमान इटालीसेके पाप)
बिकते थे। इसी बाजारका नाम सनातुटीका इट
रहा। बाजारके सामनेही सनातुटी पाट था। यहाँ

इससे पहली जो सकल पत्र 'चाट्टी' लण्डनके फोर्ट
 'श्वेडिरेक्ट'की प्रथवा प्रथम लिखा गया, उस पर
 'सूतानुटी' नाम पड़ा था। फिर 'प्रेसिडेन्सी' पत्र
 फोर्ट 'विलियम' लिखने लगे। प्रेषित नाम प्रथापि
 चल रहा है। किन्तु यह निर्णय करना कठिन है—
 सूतानुटी, कलकत्ता और गोविन्दपुर तीनों पत्र
 कलकत्ता नामसे कब प्रसिद्ध हुए। किसी
 किसीके मतमें ई० १७ वें शताब्दीको कलकत्ता नाम
 निकला था। किन्तु यह मत भ्रमात्मक है। क्योंकि
 १७०१ ई०की ही विस्वादी प्रहारेण वणिक्-
 समितियों (अर्थात् इंग्लिश कम्पनी और ईस्ट इण्डिया
 कम्पनी)के सम्मिलित होनेकी सनद बनी, उस पर
 सूतानुटी लिखी गयी। कलकत्ताका नाम कहीं नहीं
 मिलता। फिर भी उपरोक्त तीनों पत्र इसी प्रकार
 प्रसिद्ध हुए। टांलीनासे (तत्कालीन गोविन्द-
 पुरकी खाड़ी या चादिगङ्गा)से पारण कर वर्त-
 मान किले तक गोविन्दपुर रहा। यह पत्र कुछ
 कच्चे मकानोंका समष्टिमात्र था। मध्यभाग वनसे
 परिपूर्ण रहा।

उत्तर चितपुरका नाला, (मराठा खात), पश्चिम
 भागीरथी, दक्षिण वर्तमान टकसाल तथा बड़ा बाजार
 और पूर्व कान्वालिसका कुछ अंग एवं सरकुलर
 रोडका छोड़ा पश्चिमांग सूतानुटी नामसे प्रसिद्ध था।
 गोविन्दपुर और सूतानुटीके मध्यवर्ती स्थानको कल-
 कत्ता कहते थे। ठीक ठीक निर्णय किया नहीं
 जाता, भागीरथी तीरसे पूर्व किस स्थान तक कलकत्ता
 विस्तृत था। बड़ा बाजार, पहरिया गिर्जा, पोष्ट-
 चाफिस, कटम हाउस प्रभृति स्थान डिहो कल-
 कत्तमें रहे। फलतः उक्त तीनों पत्र और कई सामान्य
 पत्रियाँ मिल कर यह "सोमयी नगरी" (City of
 Palaces) बनी है।

१७०६ ई०की जान विगार्ड साहबने 'सम्मिलित

पूर्वभारत वणिक्समिति" (United Company of
 Merchants trading in the East India) को
 वृद्धीय सभाके सभापति हुए। फोर्ट विलियम प्रेसि-
 डेन्सी इलाकिका कार्यसमूह चत्तानेकी उनके अधीन
 भाट कमिश्नर रखे गये। इस विस्वादी वणिक्-
 समितिके सम्मिलनसे उक्त दोनों कम्पनियोंके कर्म-
 चारियोंका विवाद न घटा।

इङ्ग्लैण्डके राजागे सम्राट् अकबरके निकट सर
 विलियम निवासको दूतस्वरूप भेजा था, किन्तु उनका
 कार्य निष्फल हुआ। सम्राट्ने अपने राज्यके मध्य
 समस्त युरोपीयोंको बन्दी बनानेकी आज्ञा निकाली
 थी। पटना और राजमहलका प्रहारेण अपनिये
 लूटा गया। फिर कलकत्तेकी सूटनेके लिये भी
 हुगलीके फौजदारने प्रहारेणको भय दिखाया था।
 किन्तु विगार्ड साहबने कलकत्तेका उत्तमरूपसे
 सुरक्षित कर फौजदारके भयप्रदर्शनकी उपेक्षा की।
 फौजदारने भी पत्रस्याको समझ वृष्ण विग्रेण गढ़बड़
 डालाने चा।

१७०६ ई०की प्रेसिडेण्ट विगार्ड साहब मर गये।
 उनके पदपर दोनों कम्पनियोंका हिस्सा साफ़ करनेकी
 हेतु और सैलडन-साहब नियुक्त हुए। उस समय
 बहुत से तोपोंके साथ १२० युरोपीय विगार्ड फोर्ट
 विलियमको रक्षा करते थे। कलकत्तेकी अवस्था दिन
 दिन सुधरनेपर निर्दिष्ट व्यवसाय वाणिज्य चत्तानेकी
 चारों ओरसे लोग आकर रहने लगे। महाभगी
 कलकत्तेका इसी प्रकार प्रथम अवयव बना।

औरङ्गजेबकी सनदसे ठहराया—वास्तविक ३०००
 रु० देनेपर प्रहारेणोंका सर्वप्रकार शूलनसे प्रयास
 मिलेगा। किन्तु नवाब सुरगिद-कुलीखान्ने चत्तान्य
 व्यवसायियोंको भाँति अंगरेजोंसे भी सेकड़े पीछे २५०
 शूल खीनेका प्राणा दो। कलकत्तेके तत्कालीन गवर्नर
 हेनरी साहबने प्रहारेणोंके प्रति यथा व्यवहारके प्रति-
 विधानकी आज्ञासे दून मेसनके लिये १७१२ ई०की
 फोर्ट-श्वेडिरेक्टमें सन्मति ली। उक्त दोन्य-
 फार्मोंको जोड़ने-संमन तथा 'देविसन नामक दो पश्चिम
 कोठारान, आज्ञा मरहट्ट दुभापिया और हाट्ट

• Historical Notices concerning Calcutta in the days
 of Job Churnok (in Indian and Colonial Magazine)

† सूतानुटीके भाषीन विहिंसे समझते, कि बालागढ़, इन्द्रपुर, वि-
 निन्दिया इवदि कई अन्तक नाम उसको बोनासे आरंभ थे।

अङ्गरेज् वणिक् उतर तन्तुवायोसे सूत (वा सूतकी नुटी अर्थात् मोली) क्रय करते रहे । इसी बाजारके पार्श्वमें दूसरा बड़ा बाजार था । मालूम पड़ता,— युरोपीय वणिक्ोंने सूतानुटीघाटके निकटवर्ती समुदाय स्थानका नाम सूतानुटी रखा है । कारण अङ्गरेजों अधवा अपरापर युरोपीयोंके भागमनसे पहले किसी देशीय पत्रमें 'सूतानुटी' नाम नहीं मिलता । अङ्गरेजोंके अधिकार कालसे १७७८ ई० पर्यन्त यह स्थान ईस्ट इण्डिया कम्पनीके अधिकारमें रहा, फिर उसी वर्षकी १६वीं जनवरीको मघापाड़े मौजेके परिवर्तनमें महाराज नवकृष्णके हाथ लगा । ईस्ट इण्डिया कम्पनीने महाराज नवकृष्णको जो पत्र (सनद) दिया, उसमें इन कई स्थानोंका नाम लिखा है,— १ महान सूतानुटी (२३३७ बीघा), २ घाट सूतानुटी, ३ बाजार सूतानुटी, ४ सूडा बाजार, ५ चालीस बाजार, ६ बागबाजार (१०० बीघा) और ७ डुगलकुड़िया (२८७) बीघा । इसके लिये महाराज नवकृष्णको प्रतिवर्ष १२३७ रु० और कुछ पाने महसूल लगता था ।^१ आज भी शोभाबाजारके शालधंशय उक्त स्थानोंकी तानुकादारीका स्वत्व भोग करते हैं ।

विद्यालय—कलकत्तेमें ४ सरकारों (गवरनमेण्ट), ५ मिशनरी और लोगोंके यज्ञसे स्थापित ५ देशीय कालिज (विद्यालय) विद्यमान हैं । डाक्टरी (विकित्सा-विद्या) सिखानेकी मेडिकलकालिज, कार्मिककेसकालिज तथा काम्येस मेडिकल स्कूल और मिथ्यविद्याके लिये घाट स्कूल वा मिथ्यविद्यालय (Government School of Art) खुला है । सिवा इसके ३००^१ अपर विद्यालय चलते हैं । इनमें १५५ बालकों और १४५ विद्यालय वालिकाओंके लिये हैं । फिर ८२ में बालकोंकी

अङ्गरेजी तथा ७२ में बंगला और १२० विद्यालयोंमें वालिकाओंकी बंगला पढ़ाई जाती है । पुरुषों और स्त्रियोंकी शिक्षकता सिखानेसे लिये ३ नामस स्कूल भी विद्यमान हैं । दधर हिन्दुस्थानी बालक त्र्यो-विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयमें संस्कृत, हिन्दी और अङ्गरेजी पढ़ते हैं ।

पसताव—कलकत्तेमें ८ बड़े पसताव खुले हैं, मेडिकल कालिज पसताव, मिथे पसताव, कम्पेस पसताव, स्थानीय पुलिस पसताव, वेसगहिया पसताव और स्त्रियोंका डकारिन तथा इंटेन पसताव । हरीसनरोडपर भारवाड़ियोंका भगवान्दास बागला पसताव विद्यमान है ।

धर्मसमाज—कलकत्तेमें माना जातियोंके रहनेसे धनेक धर्मसमाज देख पड़ते हैं । हिन्दुवां, मुसलमानों और ईसायियोंके धर्मसमाज छोड़ ५६ हरिसभा और १ ब्राह्मणसमाज भी हैं । कार्यशालिख टोपपर धार्मिकसमाज लगता है ।

जल—यज्ञासके अपर स्थानोंकी भांति यहाँ पुष्करिणी (तालाव) का जल किसीकी पीना नहीं पड़ता । म्युनिसिपालिटी कलका जल सर्वत्र पड़वाती है । यह जल पसता नामक स्थानसे पाता और कारखानेमें अच्छी तरह शोधित हो लम्बे चारों ओर जाता है । आजकल प्रायः प्रत्येक गृहमें कमसे कम जलकी एक एक कल लगी है । फिर साधारणको सुविधाके लिये राहकी मोड़ों पर भी बड़ी कल खड़ी की गयी है । बीच बीच छानागार बने हैं । पहले हिन्दुस्थानी लोग कलकत्तेमें पाकर बीमार पड़ जाते थे । किन्तु कलका पानी पीनेको मिलनेसे अब यह बात नहीं रही । धनेक धर्ममात्र पुरुषों और विधवा स्त्रियोंके व्यवहारमें उपयोग होनेसे कलका जल कम जाता है । इसलिये उन्हें भागोरथीका जल बंगकर पीना पड़ता है । किन्तु भागोरथीका जल समुद्रका लहर पानेसे चार लगता और साधारणतः स्वास्थ्यके लिये ठीक नहीं पड़ता । प्रातःकालसे सायंकाल पर्यन्त भागोरथीके तट पर छान करनेवालोंकी भीड़ रहती है ।

दूध और चिनी—सम्प्रा समय सेही कलकत्तेकी

* कलकत्ते, बाबिन्दर और सूतानुटीके प्राचीन भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विषय समझनेके उपायकी विधि वेदाके साव चयनन करना चाहिये । बदर कोट्टे, कलकत्ते वा कोरीस परतनेकी कलकत्ते, मन्नालके पुराने परिचय, विनायककी वणिवा पाउस-साधना और विविध म्युनिसिपल (अङ्गरेजी पत्रावच पर) में उपासक दस (कादम्) विद्यमान हैं । उन्हें इन्होंने धनेक परिचयके रूप प्रकाशित हो चुके हैं ।

विनियम हामिस्टन नियुक्त हुये। १०१५ ई०के प्रार-
भकाम दूत भोग कसकत्तीसे यूरोपजात बहुमूल्य
विविध द्रव्यादिका उपटोकन से सर्वो लुभार्हेके दिन
दिसी पट्टे १०

उस समय सम्राट् फरहणियाहके साथ चरित्त-
मिंह नामक राजपूत राजाकी कन्याका विवाह था।
किन्तु सम्राट् ऐसे पीड़ित हुये कि राजकीय चिकित्सक
यथासाध्य चेष्टा लगाने भी रोगको दबा न सके।
फलतः विवाह रद्द गया। फिर खान्-दौरान्के अनु-
रोधसे सम्राट्ने समागत चङ्गरज दूतदलके छाया
हामिस्टन साहबकी सपत्नी चिकित्सा करनेकी
चनुमति दी। सोभाव्य-क्रमसे उन्होंने विलक्षण
विद्यतासे साथ अति अल्प कालमें ही सम्राट्का रोग
भारोम्य किया। इस घटनासे हामिस्टन साहब सम्राट्के
विशेष प्रियपात्र बने। रोगसे मुक्ति लाभ करने पीछे
सम्राट्ने राजकीय सदाम्यताका यथेष्ट परिचय दे
प्रतिज्ञा की थी,—हामिस्टन साहब जो माँगें, वह
यथासाध्य पावेंगे। हामिस्टन साहबने भी वाचनकी
भाति अपना स्वार्थ और लाभालाभ सम्पूर्ण रूपसे छोड़
जिसमें दौत्यकार्यको चाये चङ्गरजोंका मनोरथ पूर्ण
पड़ता, उसीको प्रायंगन किया। सम्राट् उनका वैसा
निःस्वार्थभाव देख चमत्कृत और सन्तुष्ट हुये। उन्होंने
प्रतिज्ञापूर्वक कहा था,—विवाहकार्य ससम्पन्न होने
पर चापकी प्रायंगन विशेष रूपसे सोच समझ अपने
साम्राज्यकी मर्यादाके उग्रयुक्त होनेमें हम छटा न
रखेंगे। रोगमार्तिके पीछे ही विवाह सुसम्पन्न
हुवा। किन्तु १०१६ ई०में पहले चङ्गरज अपना
प्रादेशनगर सम्राट्के समीप पहुँचा न सके। फिर
विलक्षण उत्साहके साहाय्यसे चङ्गरज-दूतोंका उद्देश्य
सफल हुआ। १०१० ई०के समय (जिहरी ११२८)
बङ्गाल, विहार और उन्नीमें वाचिष्य चलायके सिधे
ईट-इण्डिया कम्पनीकी सम्राट् फरहणियाहमें सन्त
मिली थी। तद्द्वारा कम्पनीका पूर्णमात अधिकार

बढ़ गया। चङ्गरजोंने वाचिष्य द्रव्यादिकी भोजनसे
चनुमत्यानसे पद्याहति घोर सुगन्दावादीकी टकसालमें
तीन दिन कम्पनीका रूपया टाकनकी चनुमति पायी।
खान्गुटे, कनकसे घोर गोविन्दपुरके लिये चङ्गरजोंकी
कीर् ११८५) २० वाचरिक देना पड़ता था। फिर
८१२१) २० अधिक प्रति वर्ष बादमाही कोयले
भरना लौकार कर उक्त चामतयके सचिवट दचिष्यकी
भागीरथीके लभय पार पाँच कोसके बीच लभे १८-
चाम मोन लेनेका आदेश मिला। १०

सम्राट्से इस प्रकार सन्त-से चानिने नवाब सुरमिद-
कुली-खान् चङ्गरजों पर बहुत विगड़े थे। चाम
खरीदनेकी सम्राट्की पात्रा पयत्रा कर प्रशासनमें
किसी प्रकार श्रद्धाशरयका साहस न देखाने भी
गुप्त भावसे उक्त प्रामोंके जमीन्दारोंकी उन्नीमें धमका
दिया। नवाब कुलीखान्ने सुपके कहा था,—
कितना ही अधिक मूल्य मिलने भी यदि कोई
जमीन्दार चङ्गरजोंके हाथ अपना भूमि-धेना, तो
वह हमारे कोपका प्रभाव देखेगा। उन्नीमें अपने
मनमें सोचा—यह सकल स्थान चाम लगनेसे भागीरथी
सम्पूर्ण रूपसे चङ्गरजोंके चायताधीन हो जावेगी और
इच्छासुमार उभय पार दुर्गादि बननेपर उनकी शक्ति
बढ़ि पावेगी। ११

कोष्ट साहबके कथनासुसार सम्राट्ने उक्त १८
चाम चङ्गरजोंकी देन कानि थी। उन्ने उपयुक्त मूल्य
दे केवल क्रय करनेकी पात्रा रही। जमीन्दार चाम
धेनेको सफल न हुये, किन्तु चङ्गरजोंने चलाकी
उन्नीमें प्रतारया पयत्रा बलपूर्वक ग्रहण किया।
कथनाम हामिस्टन १०१० ई०को कलकत्ती चाने

• Appendix C, History of the Rise and Progress of
the Bengal Army by Capt. A. Broome and East Indian
Records, Book No. 192.

† Broome's Rise and Progress of the Bengal Army,
Vol. I, p. 35-

‡ Bell's Consideration on Indian Affairs, 1772,
App. p. L. note

बड़ी बड़ी राहों चौर छोटीमोटी गलियोंमें बिजली तथा रोशनी रोगनी होती है। इसलिये दिनकी भांति रातको चलने फिरनेमें कोई बध नहीं पड़ता। फिर बिजलीमें टाम, पाठा पीसनेकी चक्की चौर कापेकी कल भी चलती है। घर घर बिजलीके पद्वे बने हैं।

६. न—कुछ दिन पहले कलकत्तेकी राहोंके इधर उधर गन्दा नामा था। किन्तु अब वह बात नहीं रही। प्रायः सर्वत्र गूमिके भीतर ड्रेन चलता है। सब जगहका मैला उसमें गिर धाँके बिल पहुँचा करता है। कलकत्तेके रहनेवालोंकी नालिका दुर्गन्ध भोगना नहीं पड़ता।

७. चौर चरघाट—कलकत्ता चरघाट भागीरथी किनारे ५ कोस विस्तृत है। १८७० ई०से पोर्ट कमिश्नरीका तत्त्वावधान चलता है। १८७१ ई०को २२ साण रुपये खर्चकर कलकत्तेसे ढावड़े तक वर्तमान बड़ा पुल बनाया। पोर्टकमिश्नरी ही इसकी देख भाग रखते हैं। फिर पोर्ट कमिश्नरीका प्रधानकार्य भागीरथी किनारे जहाज, नाव तथा माल रखनेकी जेटी एवं गुदाम बनाना, नदी पर रोगनी कराना चौर भौकादिका प्लानिट बचाना है। कलकत्तेका वाणिज्य जहाज चौर रेलवे नामा देगोंके साथ होता है। प्रति वर्ष करोंका रूपयेका माल पाया जाता है। मारथाड़ियोंने इसमें पड़ पपनी पच्छी उत्पत्ति देखायी है। यहाँ पाट (सन)का बड़ा कारखाना है।

कलकत्तेमें प्रजायत्र घर, चिह्नियाखाना, मोटानि-कल गार्डन चौर मिठ दुक्कीचन्द तथा राय बदरीदास बहादुरका उद्यान देखने योग्य है। सन्ध्याको एडम गार्डन (लेडो बाग) में बिण्ड बाजा बजता है।

कलकना (हिं० क्लि०) १ चौत्कार करना, बिलाना। २ दुःख करना, रक्ष मानना।

कलकपञ्च (सं० पु०) दक्षिणपञ्च, पनारखा पेड़।

कलकल (सं० पु०) कलाद्वि कलः, कलगन्धे चलः कलः प्रकारः, प्रकारार्थे द्वित्वं वा। १ कोलाहल, शोर, हल्ला। २ सर्वनिर्वाण, कोलाहल, धूना। ३ गिय।

४ जलप्रपातध्वनि, भ्रमणकी धावाज। ५ विवाद, चकचक, भगड़ा।

कलकल (हिं० स्त्री०) कष्ट, सुखकी, कलाहल।

कलकलवान् (सं० त्रि०) कलकलतो इत्यादि, कल-कल-मनुष्य मस्य यः। कलकलविगिट, चकचक जगनेवाला।

कलकलो (हिं० स्त्री०) कोष, गुस्ता।

कलकानि (हिं० स्त्री०) कोलाहल, मोर, हल्ला।

कलकिक, कलकी (हिं०) कल देवी।

कलकोट (सं० पु०) कलप्रधानः कोटः, मध्यपदलो०।

सङ्घोतका घामविशेष, गानेका एक घाम।

कलकुजिका (सं० स्त्री०) कलं कुजयति लघ्वारयति, कल-कुज-लु लु-टाप पत इत्त्वम्। मधुरध्वनिकारिणी, मीठी धावाज निकालनेवाली। २ विनासिनी, फुडिया, बिनाल।

कलकुजिका, कलकुजिका देवी।

कलकूट (सं० पु०) क्षत्रिय जामि विशेष तथा लक्ष्मण रहनेका देश।

कलकूटिका, कलकुजिका देवी।

कलकटर (सं० पु० = Collector) १ संघ्राहक, जमा करनेवाला, बटोड़। २ करपाहक, लगाइनेवाला, जो तहसील करता हो। ३ जिलेदार, जिलेका बड़ा अधिकारी। यह मालगुजारी बसूल करानेवाला चौर मालके सुकृद्भि भी निवटाता है।

कलकटरी (हिं० स्त्री०) १ जिलेदारो, कलकटरका चौरदा। २ मानक महकमेकी पंदासत। (वि०) ३ कलकटर-सम्बन्धीय, कलकटरके सुताजित।

कलगत (हिं० पु०) तय, हुत्साड़ा।

कलगा (हिं० पु०) लघ्विशेष, एक पेड़। इने सुर्गकेग चौर जटाधारी भी कहते हैं। कलगेका फूल सुर्गकी चोटो-जेसा माल चौर चपटा जगता है। सर्वसिने यह मिलता है। वर्षा ऋतु इसकी उत्पत्तिका समय है। पाणिन वा कार्तिक मास कलगा फूलता है।

कलगी (सं० स्त्री०) १ यद्गुण्य पालक, कोमती पर। यह रानावोंकी पगड़ोमें लगती है। कभी कभी इसमें मोती भी गिरी देते हैं। यद्गुसुर्ग वर्ग रक्षः चिह्नविधि

ये। उन्होंने लिखा,—'नदी किनारे दक्षिण गोविन्दपुर और उत्तर बराइनगरमें कम्पनीके उपनिवेशका एक सीमाधिष्ठ रखा। इन दोनों चिह्नोंका व्यवधान तीन कोस होगा। भूमिकी चार धापे या लीने विलगतक सीमा थी।' फलतः निर्णय कर नहीं सकते—उस समय कलकत्तेकी प्रकृत सीमा क्या रही।

१७८२ ई०की भास्कर-पण्डितके परिचालनाधीन मराठे छड़ीसे मेदिनीपुर तथा वर्धमानकी राह राज-सहस्रतक नगर एवं पक्षीधाम समस्त लूटने लगे। फिर उन्होंने कलकत्तेके सन्निकट भागीरथीके पार पार टाना किला लौन हुगली लटी। उस समय भागीरथीके पश्चिमपारवाले अधिवासियोंने कलकत्तेमें था आश्रय लिया था। मराठोंके आक्रमणसे रक्षा करनेकी अङ्गरेजोंने पूर्व पार रहते भी कलकत्तेकी चारो ओर किलेको एक गहरी खाई खोदनेके लिये नवाब अलीवर्दी खानसे अनुमति मांगी। सुतातुटीके उत्तर पश्चिमे गोविन्दपुरके दक्षिण पश्चिममें खाई खोदनेकी बात थी। छह मासमें डेढ़ कोस (तीन मील) भूमि खुदी। किन्तु अलीवर्दीके पध्वसय-में मराठे कलकत्तेसे ३० कोस दूर ही रहे। इस क्रिये खाई खोदना रुक गया। इस खाईको "मराठा खात" (Maharatta Ditch) कहते हैं। श्यामबाजारके निकट दमदमे जाते समय इस खात (खाई)का स्थान मिलता है। पानी साइबके मत्तानुसार अधिवासियोंके ही अनुरोध और व्ययसे यह खाई खोदी गयी।*

इसकेल साइबका कहना है—१७५२ ई०की भी सिमुनिया, मन्डूजा, मिर्जापुर (कलकत्तेके एक मण्डले) और हुगलजुङ्गियामें कुल ३०५० बीघे भूमि थी। यह चारो स्थान उपनिवेशकी सीमामें न रहते कम्पनीने खरीदनेकी विशेष चेष्टा लगायी, किन्तु अधिकारियोंकी किसी प्रकार सम्मति न पायी।* सुतरां यह कई स्थान कलकत्तेकी सीमासे बाहर थे। किन्तु बनिपाण्डेखर, पटलहांगा, टांगरा और धनन्द मिनकर २८८ बीघे

भूमि कलकत्तेके पश्चिम परिपत रही। दो वर्ष पोछे अर्थात् १७५४ ई०की इलवेल साइबने कम्पनीके लिये रक्षिक मसिक और नवायग मसिकसे २२८१५० मूल्में सिमुनिया खरीद ली।*

१७५६ ई०की सिराजुद्दौलाने कलकत्ता आक्रमण और अधिकार किया था। उस समय उनके पादेगसे (अल्पकालके लिये) इसका नाम 'अलीनगर' रखा गया। फिर अन्धकूपहत्या हुई। दूसरे वर्ष ही जनवरी मास क्लाइव और वाटसनने कलकत्ता ले लिया। जनैवद, अन्धकूप और क्लाइव देखो। १७५७ ई० की २३ीं फरवरीको सिराजुद्दौलासे सन्धि चली। सन्धिमें ठहर गया,—"कम्पनीको सनदसे मिले सब ग्रामोंका अधिकार देना पड़ेगा और वेचनेमें जमीन्दारोंको कोई बलाय्य न रहेगा।"

पलासो युद्धके पीछे नवाब मीरजाफर नये खेदार हुये। उन्होंने किसी सन्धि द्वारा अङ्गरेजोंको कलकत्तेका मौरूसी जमीन्दार बना दिया।†

पलासो और मीरजाफर देखो।

उस सन्धि द्वारा मध्यस्थित भागकी छोड़ मीरजाफरने कम्पनीको कलकत्तेकी सीमासे बाहर ११०० हस्त परिमित भूमि सौंपे थी। फिर उन्होंने कलकत्तेसे दक्षिण कुसवी तक कम्पनीको जमीन्दारी ठहरायी। मीरजाफरको आशा थी—इस पंगके समस्त फर्मचारी कम्पनीके अधीन रहेंगे और दूसरे जमीन्दारोंकी भांति अङ्गरेज भी राजस्व दे देंगे।‡

दूसरे वर्ष १७८५ ई०के दिसम्बर मास फर्द-सशादातसे तादुक या जागीरकी तौर पर कलकत्ता कम्पनीके हाथ पाया। अर्थात् अङ्गरेज बयिकजाने पणनी कोठी सुरक्षित रखनेका अधिकार पाया। जन्दरोंकी देखभाल भी उन्हेंके अधीन रहनेसे मीरजाफरने ८८३१५० रिहा कर कम्पनीको कलकत्ता,

* Selections from the Unpublished Records of the Government, p. 56.

† Bolt's Indian Affairs, p. 81.

‡ Rise, Progress and State of the English Government in Bengal, by Harry Verelst, 1772. App. p. 154

* Orme's History of India, Vol II, p. 15.
† Holwell's Indian Tracts, 2nd ed. 1764. p. 140.

खुबसूरत परोंकी ही कलगी होती है। २ गिरोमूपण-विशेष, मत्स्यका एक गहना। यह सुन्ना और सुवर्णसे प्रसृत होती है। ३ पचियोंकी उच्च शिखा, चिड़ियोंकी लंबी चोटों। ४ प्रासादगिखर, लंबी इमारतकी चोटों। ५ किसी किछकी खावनी। इसकी गानेवाला कलगीवाज कहलाता है।

कलघण्टिका (सं० स्त्री०) कल्पसारिका, काली बेल। कलघोष (सं० पुं०) कली मधुरी घोषो ध्वनियंघ, वधुम्री०। कोकिल, कोयल।

कलह (सं० पुं०) कल् चासो पड्यति, कल-क्लिप् कर्मधा०। १ चिह्न, निशान्, धब्बा। २ अपवाद, बदनामी। ३ दोष, ऐव। ४ लौहमल, लोहेका कौट। ५ क्रोध, गोद। ६ मत्स्यभेद, एक मत्स्यी।

कलहकर (सं० त्रि०) कलहं करोति जनयति, कलह-क-ट। १ कलहजनक, बदनामी लानेवाला। २ चिह्न लगानेवाला, जो निशान् डालता हो।

कलहकला (सं० स्त्री०) चन्द्रको छायामें रहनेवाली कला, चांदका लंबेरा हिस्सा।

कलहधर (सं० पुं०) चन्द्र, चांद।

कलहमय (सं० त्रि०) १ चिह्नित, धब्बेदार। २ अपवाद-विशेष, बदनाम।

कलहप (सं० पुं०) करिष्य कपति द्विनस्ति, कल-कप-खच्-सुम्-। सिंह, पक्षसे मारनेवाला शेर।

कलहपा (सं० स्त्री०) कलहप-टाप्। करताल, पथेलियोंकी आवाज।

कलहहर्त् (सं० पुं०) कलहं हरति नागयति, कलह-ह-क्लिप्। कलह मिटानेवाले शिव।

कलहहाड (सं० पुं०) चन्द्रका पश्चिम चिह्न, चांदका काला धब्बा।

कलहित (सं० त्रि०) कलहो ऽस्य जातः, कलह-इत्च्। १ चिह्नयुक्त, धब्बेदार। २ कलहविशेष, बदनाम।

कलही (सं० त्रि०) कलहो-ऽस्यस्य, कलह-इनि। १ कलहित, बदनाम। २ चिह्नयुक्त, धब्बेदार। ३ लौहमनयुक्त, लहू लगा हुआ। (पुं०) ४ चन्द्र, चांद।

कलही (सिं०) कर्म देको।

कलहुर (सं० पुं०) कं जलं सद्यति गमयति भ्रामयति इत्यर्थः, कल-क्लि-चिच्-धुरच्। पावते, गिरदाव, पानीका भंवर।

कलहडा (सिं० पुं०) १ कलिङ्ग, कलौदा, तरबूज। २ सङ्गीत भेद, एक गाना।

कलहा (सिं० पुं०) १ यन्त्रविशेष, लोहेकी एक छेनी। इससे ठठरे धाल पर नकाचो करते हैं। २ छोपियोंका एक ठप्पा। इसमें पट्टारह फूल पड़ते हैं। ३ वृक्ष-विशेष, एक पोदा। कल्प देको।

कलही (सिं०) कर्म देको।

कलचिही (सिं० स्त्री०) पचिविशेष, एक चिड़िया। इसका उदर कण्ठवर्ण, छठ धूसर और चक्षु लोहित होता है। यह मधुर ध्वनिसे बोलती है।

कलचुरि—भारतवर्षका एक प्राचीन राजवंश। चेदि, हाहलमण्डल और कर्णाटमें किसी समय कलचुरियोंने प्रबल प्रतापसे राजत्व किया था। कर्णाट और चेदि देको। भारतवर्षके नाना स्थानोंसे इनके खीदित गिलालेख और ताम्रशासन निकले हैं।

गिलालेखों और ताम्रशासनोंमें कलचुरी का कलचुरी नाम मिलता है। किसी किसी प्रबलत्वविरुद्धके मतानुसार इस वंशके राजा गिलाफनकोंमें 'कलचुरि' वा 'कलचूर्य' नामसे भी परिचित हुये हैं।

गुप्तशासकोंके पूर्वप्रताप खोने और हीनबल तथा हीनावस्थ होनेपर कलचुरि कालञ्जर जीत घयना प्राधिपत्य फैलाने लगे। ३०० ई०की नन्देदातटस्थ हाहलमण्डल जीत पहले इन्होंने क्वीचगद् और पीछे कर्णाट राज्य क्रमान्वयसे अधिकार करनेकी चद्योग किया।

उस समय कलचुरि-धर्मिय गोदावरीके तीरपर सुद्र सुद्र राज्य जमा राजत्व रखते थे। इनमें कोई करद राजा, कोई सामन्त और कोई मण्डनेश्वर बना। किन्तु चेदि (वर्तमान मंडेसखण्ड और वधेलखण्ड)के राजाओंने राजचक्रवर्ती उपाधि लिया और पार्श्ववर्ती तथा अपरापर नरेशोंको अपने वश किया।

कल्याणका चालुक्य-वंश प्रबल पड़नेपर दलिया-पथमें कलचुरि राजाओंका पूर्वतेज घट गया। ई० षष्ठ

पारकान, मानपुर तथा चमौरावाट चार परगनेंके बीच २० मीलें चौर हो बाजार दे डाले । फौजदारौका काम भी चण्डेरज ही करते थे । मौजोंके नाम यह हैं,—१ गोविन्दपुर, २ मिर्जापुर, ३ चौरही, ४ चरन्द, ५ डीनेकोन्द, ६ धिलेडांगा, ७ चानडाटो ८ गियाखटव, ९ बाहरबिर्ना, १० क्रिसपुर पाडा, ११ बाहर श्रीरामपुर, १२ खुतागुटी, १३ हुगलकुडिया, १४ गिमला, १५ माणन्द, १६ पाडिडो, १७, डिही बलकला, १८ दक्षिण पाडकवाडा, १९ श्रीरामपुर चौर २० मण्डा प्लाथीका मध्यवर्ती गणेशपुर । दोनो बाजार—१ खुतागुटी बाजार चौर २ गोविन्दपुर बाजार थे ।

छवरोह पामसे कई मराठा-खातकी सीमामें चौर कई एकसे १३०० टायके बीच रहे । किन्तु उस समय लोग साधारण खातखेतमें मराठा-खातकी ही कलकत्तेकी सीमा टहराते थे । फिर भी कम्पनीके २४ परगना क्षेत्र समय मराठा-खानसे बाहर बढ़ने-वासे छल खान कलकत्तेकी ही सीमामें रहे । छल कलकत्त खान चौर हुसरी कितनी ही भूमिको कलकत्ते तथा २४ परगनासे विभिन्न रख डिही पञ्चायपाम बनाया गया । आजकल जो पाम कलकत्ते गहरके मन्हे समझे जाते, वही पञ्च डिही पञ्चायपाम कहते थे । १८५० ई०को २१वें चार्ल्सके अनुसार पञ्चाय-पामकी समस्त भूमि कलकत्तेमें मगाने ली गयी । फिर उसका प्रति सामान्य चंग हुआ था । इसके समझ-दिखा होई कदाय नहीं—किन्तु समय कलकत्ते चौर पञ्चायपामके मध्य सीमा निर्धारित हुयी । किन्तु मध्य एटरेवर १८६४ ई०की १० वीं क्लिक्करकी गहर-नर जनरलने व्यवसायिक-समामें एक चार्ल्स निकाल घोषणाकर दाग कलकत्तेकी सीमा टहराती थी । इसीमें उसका मर्म नीचे उल्लेख है,—

चत्तार सीमा—मार्कोसोके पश्चिम तीर बागुबाजार-वासे वासके मुहमें पुराने पावट्टेके सिक्क बाजार ही

थर दमदमी जानकी राह घोस (श्यामबाजार घोस)के पाददेम पर्यन्त । पूर्व सीमा—मराठा खातके पश्चिम किनारे पयथा उसके पार्श्व मार्गके पूर्व किनारे होकर रामसी बगानके उत्तरकोणमें उक्त खातके दक्षिण किनारेके पूर्वमुण, वहाँमें खातके उत्तर किनारे पश्चिम मुण, उक्त खानसे खातके पश्चिम पार्श्व-खाना राहके पूर्व किनारे दक्षिण चौर मराठा खातकी गेव सीमा होकर राजा रामजीपन बाजारके कोने पयथा गारापण चाट्टीयें मङ्ककी ठीक विपरीत चौर धिलेघाटाकी मङ्क जान तक । फिर मिर्जापुरके बीच घेठकवागा मङ्कके पूर्व किनारे चौर चौर चोत्तुं गौरीके गोरखानकी पूर्वदिक् चोडू घेठकवागके माथीन सुविख्यात छल तक, पयथा बङ्गबाजारके चौर घेठकवागा बाजारकी विपरीत चौर मङ्कके दोनो पार्श्व घेठकवागा राहके पूर्व किनारेसे गोरो-बाडूके बाजार चौर वहाँमें नीचे चल छल राहकी पश्चिम मोड़ तक । वहाँ डिही श्रीरामपुर पूर्व तथा दक्षिण पूर्व छोड़ कुछ दूर चामे बटने पर पूर्व सीमा गेव हुयो है । कलकत्ते गहरके प्रोटेस्टाण्टोंका तत्-कालीन गोरखान, चौरही चौर डिही बिर्ना रसी सीमाके चलाभूत थे । दक्षिण सीमा—उक्त खानसे पाम टिक भूमि डिही बिर्नाके चलाभूत बनियायोघर या चंष्टयायोघर सीमाके पार्श्व मण्ड होडू पश्चिम-मुण चौरहीके बड़े मार्गसे विपरीतदिक् रसापामका मङ्कके सिक्क पुलिन याने चौर साधारण पञ्चायतके मध्य मार्गकी मङ्ककी दक्षिण चौर चोडू दूर चल पुनर्वांर पश्चिममुख साधारण चण्डतास, चामलागारद तथा डिही भवामेपुरके पञ्चायतका गोरखान छोडू चनोपुरके पाददेम पर्यन्त । वहाँमें चण्डपुर पुलके दक्षिण होकर टानो गासे (चादिगडा)की उम जनरलके रिहल तक । फिर चण्डाण्डके चामे मङ्क चादिगपुरके पुल कीकर बरमला उप छोडू चादि-गडाके मुण तक (जहाँ भागीदोमि चादिगडा सिक्का है) । उक्त खानसे डील मार्गके चल मण्डके पठर का पश्चिम पार केशुर विहणमि बागके दक्षिण-दक्षिण (उक्त बाग, चौर दिवपुरकी छोडू) पर

• Census Report of Calcutta, 1876 by Mr. Beverly.
 p 133A Section C. p. 62 of the Act passed in the
 23 year of His Majesty's reign.

गताब्दको (५६०-६१० ई०) चातुर्वराज मन्त्रधीयने किसी किसी कलचुरि राजाको हरा करद बनाया था ।

फिर भी डाहल और कर्णाटके उत्तरार्धमें इस वंशके राजाओंमें ई० द्वादश गताब्द पर्यन्त निविषाद राजत्व चलाया । शासनमयन देखो ।

इस वंशने प्रायः लो लो सर्वकाल उत्तर त्रेपुर वा चेदि, पयिम भेससा (विदिगा), पूर्वं एसीसगढ़ और दक्षिण गोदावरीतट पर्यन्त विस्तार भूमिखण्ड उपभोग किया ।

यह सब श्रेय वा शक्तिके श्रेयक थे। चेदिवाले कलचुरिराज कर्णदेवके अनुयासनमें सुवर्ण हयभधज और शतस्रपरिमोभिता हस्तिपरिभ्रता कमसाकी मूर्ति अर्पित है। इनके पुत्र गाङ्गेयदेवकी कर्णसुद्रामें भी शतस्रम्भा पायंतीमूर्ति मिलती है।

देगायकी नामक संस्कृतग्रन्थमें 'करचुलि' राजपूतोका नाम लिखा है,—

“कोदानव दीपित एकीशारस्यः परम् ।
 करचुलिः परिहारी शान्तेसाणो वलीपतः ।
 शशिनी वरधी मूयः कडगा राजपुत्रकः ।
 शशीरी रत्नराज साध्याणवदुर्गमः ।
 विनेयः परतो दुर्गे शारदाः परिकीर्तिः” (रत्नस्य विवरण)

यह करचुलि राजपूत किसी समय वसेलखण्ड (प्राचीन चेदिशाख्य)में रहे। रियासे ५ कोस उत्तर-पूर्व एनेल सभ्रान्त राजपूत वाम करते और अपनेको 'कारचुलि राजपूत' कहते हैं। यह बताते,—“हम ऐह्य देशीय महाराजके वंशधर हैं। हमारे पूर्व-पुरुष रायपुर-रतनपुरसे आकर इस अञ्चलमें बसे थे।”

करचुलि वा कारचुलि राजपूत ही सम्भवतः प्राचीन मिलासियिवाणित कलचुरि वा कालचुरि बौने। प्रगतत्वविद् जेडिने इन्हीं कलचुरिबंशियोंको चार्त्तनायन माना है। (Eleets' Inscrptionum Indicarum, Vol. III. p. 10) किन्तु इस झल पर हम क्लोड साहबका मत कौमि सुनिश्चित कह सकने हैं। कार्तवीर्यार्जुनके वंशधर ऐह्य नामसे परिचित हैं। वह किसी पुराण वा प्राचीन ग्रन्थमें चार्त्तनायन लिखे नहीं गये। किसी किसी पुराण,

हृदयसंहिता तथा पाणिनिके अथादिग्रन्थमें चार्त्तनायन शब्द एक जनपद और लो जनपदनामके लिये आया है। ब्राह्मिहिरने उक्त जनपदको भारतके उत्तरपयिम अञ्चलमें अवस्थित परापर जनपदोंके साथ उल्लेख किया है। उनका मत माननेसे चार्त्तनायन पाणिनि-गणेश पर (चम्पक) जनपदके निकट पड़ता है। आर्यवंत तथा चार्त्तनायन देखो। वर्तमान जनान्नावाद जाते समय उक्त स्थानको लोग 'चाम्पुन' कहा करते हैं। प्राचीन कालको लो प्रदेश और तत्कालपदवाचीका नाम चार्त्तनायन था। कलचुरिवंश समुद्रगुप्तके अनुयासन-संरक्षका वर्तित चार्त्तनायन ही नहीं सकता।

पूर्वकालको कलचुरिराज एक स्वतन्त्र संवत् व्यवहार करते थे। इनके अनुयासन तथा खोदिन-मिसाफलकमें उक्त संवत् व्यवहृत हुआ है।

कलचुरि संवत्का आरम्भकाल निर्णय करना सुकठिन है। प्रगतत्वविद् कनिह्यामके मतमें कलचुरिराजकण्डक कालखर अधिकारके समयमें उक्त संवत् चला है। वह २४८-५० ई०को उक्त आरम्भकाल बताते हैं। फिर अथापक जिसहोरनके मतानुसार २४८-२६०को उक्त संवत् चलाया गया। (Cunningham's Indian Eras, p. 60; Archaeological Survey of India, Vol. IX. p. 9; Academy, December 1887, p. 394; R. Sewell's Sketch of the Dynasties of Southern India, p. 286.)

कलजा (ई० पु०) हृददाकार चमम, बड़ा चमम ।
 कलजी (ई० ली०) सुदृचमम, छोटा चमम ।
 कलजुन (ई० ली०) राजाका, करजी। यह लोई या पोतलको होती है। लम्बी लण्ठीके सिरे पर हथेली जैसा एक थोड़ा हिप्पा लगा रहता है। यह तरबारी टाकने या पूरी लचोरी निकालनेमें काम आती है।
 कलकुला (ई० पु०) १ हृददाकार चमम विशेष, बड़ी कलजुल । २ अथवा मूलनेकी एक कड़। यह लोईका होता है। इसके सिरेपर एक कटोरा लगा देते हैं। मद्रभूजे चमेना या बहरो भूनेतें सबय माङ्गे

दक्षिण सीमा-का भन्त है। पश्चिम सीमा—शेपोल्ल स्थानसे लगाकर भागीरथीके पश्चिम तीर निम्न जन-रिखाके विङ्ग हों क्रमशः रामकृष्णपुर, हावड़ा और सलकियाघाट छोड़ चितपुरवासी पुलके निकट (नदीके पश्चिम तीर) पूर्वीतः जाफरपुरमें करनेल रावर्टसनके बागके उत्तर कोण छोकर शेष दूयी है।

पूर्वकथित विधि (Act 56)के अनुसार स्थानीय गवर्नमेण्ट सीमा बदलनेकी मत्तम थी। किन्तु कलकत्तेकी सीमामें फिर कुछ-छेरफेर न हुआ। किन्तु मालूम नहीं—किस समय कलकत्ते और पश्चान्नगाम समयकी सीमा ठहरायी गयी। १७८४ ई०की घोषणापत्र निकलनेसे इस सीमाके सम्बन्धमें कुछ गड़बड़ पड़ा। क्योंकि उसमें पूर्व सीमाके लिये लिखा था—जहाँ तक मराठा खात देख पड़ता, वहीं कलकत्तेकी सीमाका भन्त मिलता है। किन्तु न तो यह खात सम्पूर्ण खोदा गया और न मल्लबाबाजार सड़कके दक्षिण इसका कोई विङ्ग देख पड़ा। यहाँसे भागी सरकुल्लर रोड (उस समय इसको बैठकखाना रोड कहते थे) और सरकुल्लर रोडसे आदिगङ्गाके दक्षिण तक सीमा लगी है। एतद समझ नहीं सकते १७८४ ई०की कड़ा तक पूर्वदक्षिण सीमा रही। १७५० ई०की कलकत्तेका जो मानचित्र बना, उसकी नापमें सम्भवतः भ्रम था। अथवा कलकत्तेकी सीमा उस समय सम्पूर्ण भिन्न थी। उक्त मानचित्रमें एण्ड्रेनेडकी भूमिका परिमाण असखी नापसे बिलकुल आधा लगा है। फिर १८३८ ई०की 'फोवर एसपिटाल कमिटी'के समस्त साक्ष्यप्रदानमें डाक्टर निकोलसन छाड़वने कहा था,— 'इं० वल्लर पूर्व साधारण तथा सामरिक अस्पतालसे आध मील दक्षिण एक स्थान प्रोथित था। उसमें लिखा रहा—यहाँ फोर्ट विलियमका एण्ड्रेनेड शेष हुआ है।' फलतः यह निर्णय करना अतीव सुकठिन है—किस समय कलकत्तेकी क्या सीमा थी।

आदिगङ्गा और भागीरथी-सङ्गमके सुख पर एक सेतु है। यह भारकिस भव-छेदिकसके शासन काल साधारण चन्दे से बना था। इसीसे इसका नाम 'छेदिकस मित्र' पड़ा। खिदिरपुरसे उक्त सेतु पारकर कुलीबाजार जाना पड़ता है। यहाँ गवर्नमेण्टकी कमसचिवटकी गुदाम हैं। १७७५ ई०की ५ वीं पगस्त-की ब्राह्मण-वंशके महाराज नन्दकुमारने यहाँ फाँसी पायी थी। नन्दकुमार देखो।

वर्तमान पत्नीपुरके सेतुसे थोड़ी दूर दो डच रहे। वहाँके नीचे वारेन छेदिकस और सर फिलिप फ्रानसिस का चन्दयुद्ध हुआ। पत्नीपुरके सामरिक अस्पतालमें पहले सद्द दीरानी या अपीतकी पदान्त लगी थी। बड़ी पदालतसे मिल जानेपर उक्त भवनमें सामरिक अस्पताल (Military Hospital) हो गया। भवनसे पूर्व नगरके सामने पागला गार्द और साधारण चिकित्सालय (General Hospital) रहा। शेपोल्ल भवन पहले किसी धनीका वाग् था। पीछे १८८६ ई०की गवर्नमेण्टने उसे मोक्ष से साधारण चिकित्सालय स्थापन किया।

उक्त चिकित्सालयसे कुछ पूर्वदिक् जानेपर चौरङ्गी नामक मार्ग है। यह चितपुरसे कालीघाट तक विस्तृत है। पहले यात्री चितपुरमें विवेकगरीका दर्शन कर कालीघाट जाते थे। चौरङ्गीसे पश्चिम किलेका मैदान और पूर्व सन्धान्त पञ्जरेजोंके रहनेका स्थान है। पूर्व-कालको यह स्थान और मैदान निबिड वनसे आच्छन्न था। वन्य वराह व्याध प्रभृति हिंस्रक जन्तु इसमें भरे रहे। वनके मध्य दुर्दान्त डाकुवोंका पड़ा था। अद्यत्काल न लेजर इस पथमें चलना कठिन रहा। किसी कियोके कथनानुसार उस समय यहाँ गोरे-नायके एक मिथ्य वास करते थे। उनका नाम चौरङ्गी हठयोगी रहा। इसीसे आग इस राहको चौरङ्गी कहते हैं। परन्तु चौरङ्गी नाम अधिक दिनका प्राचीन समझ नहीं पड़ता। १७५८-५९ ई०की नवाब मोरझाकरके पुत्र मोरनेसे एक सनद दी थी। उसके एक पत्रमें सबसे पहले चौरङ्गी-मोजेका नाम लिखा गया। उस समय यह स्थान कुछ परगने कलकत्ते और कुछ परगने पार-

* Selections from the Calcutta Gazette, Vol. II. by W. S. Seton Kerr, O. S. p. 122.

† Census Report of Calcutta, 1876, by H. Boverly, Esq. C. S., p. 54.

गरम बाल इसमें भरकर निकालते और खपड़ीमें लालते हैं।

कलकुली (हिं० स्त्री०) लोह वा पिचलपात्रविशेष, लोहे या पीतलका एक बरतन। कलकुल देखो।

कलंज (सं० पु०) कुकुट, सुरगा।

कलजात (सं० पु०) कलमशालि, कलमी धान।

कलजिबुभा (हिं० त्रि०) १ क्षण्यवर्ण जिह्वाविशिष्ट, काली जीभवाला। २ अनिष्ट विषयका सत्यवता, जिसके मुँहसे निकली बुरी बात झूठ न ठहरे।

कलजीहा (हिं० वि०) १ कलजिबुभा। कलजिबुभा देखो। (पु०) इक्षिविशेष, काली जीभका जायी। यह दूषित होता है।

कलभवां (हिं० वि०) श्यामवर्ण, सांवाला।

कलञ्ज (सं० पु०) कं क्षण्यति, क-लजि-ञ्जण्। १ विद्या-क्षरत मृग वा पक्षी, जहरीले इधियारसे मारा हुआ जानवर या परिन्द। २ ताम्बकूट, तम्बाकू,। ३ परि-माणविशेष, एक तोल। यह १० पसका होता है। ४ वैदलता, घेतकी बेल। (स्त्री०) ५ विद्याक्षरत मृगपक्षीमांस, जहरीले इधियारसे मारे हुये जानवर या परिन्दका गोष्ठ।

कलञ्जाधिकरण (सं० स्त्री०) पञ्चावयव न्यायविशेष, एक मन्तिक। इसमें 'कलञ्ज न खाना चाहिये' प्रश्रुति वाक्य अंगलम्बन किये जाते हैं।

कलट (सं० स्त्री०) कं ललं लटति आह्वयति, क-लट-भच्। लष्पादि निर्मित शब्दाच्छादन, क्षपर। इसका संस्कृत नामास्तर कुलट है।

कलटोरा (हिं० पु०) कपोतविशेष, एक कवूतर। इसका समग्र शरीर श्वेत और श्वच्छ क्षण्यवर्ण होता है।

कलहर, कलहर देखो।

कलहर (सं० पु० = Calendar) पञ्जिका, तकवीम, पत्रा।

कलत (सं० त्रि०) पक्षेभ्य, गच्छा, जिसके सरपर बाल न लगे।

कलता (सं० स्त्री०) कलस्य भावः, कल-तल्-टाप्। अथ्यक्त मधुरता, खुशगन्धवायी, समभक्तं न भानिवाची पावाजुकी मिठास।

कलतुलिका (सं० स्त्री०) कं सुखं विषयत्वेन स्वाति शृङ्गाति कलं कामं तूलयति पूरयति, कल-तूल-खु-ल्-टाप् शत इत्वम्। १ इच्छावती, खाद्यिय रखनेवाली। २ कामुकौ, छिनाल। इसका संस्कृत पर्याय—वाञ्छिनी और लञ्जिका है।

कलत्र (सं० स्त्री०) गृह सेवने पढ़ाने गकारस्य ककारः। १ श्राद्ध कः। २ शरीर। ३ स्त्री, चौरत। ४ भार्या, बोधी। ५ नितम्ब, चूतड़। ६ भग। ७ दुर्गस्थान, किला।

कलत्रवान् (सं० पु०) कलत्रमस्यान्दि, कलत्र-मत्तुप् मस्य वः। सप्तौक, जोड़वाला।

कलत्रौ (सं० पु०) कलत्रमस्यस्य, कलत्र-इनि। कलत्रवान् देखो।

कलदार (हिं० वि०) १ यन्त्रविशिष्ट, पेंचदार। (पु०) २ शङ्करजी रूपया।

कलदुमा (हिं० वि०) १ क्षण्यवर्णपुच्छविशिष्ट, काली पुच्छ वाला। (पु०) २ कपोतविशेष, एक कवूतर। इसका पुच्छ क्षण्यवर्ण होता है।

कलधूत (सं० स्त्री०) कलेन पययवेन धूतं शृङ्गम्, ३-तत्। १ रौप्य, चाँदी। (त्रि०) कलेन अथ्यक्त-मधुरध्वनिना धूतं मनोरमम्। २ अथ्यक्त मधुरस्वर युक्त, समभक्त न पड़नेवाली मीठी पावाजुकी भरा हुआ।

कलधीत (सं० स्त्री०) कलेन अययवेन धूतं शृङ्गम्। १ स्वर्ण, सोना। २ रौप्य, चाँदी।

“वधिराजि यत् निपतत्रवीजिवां कलधीतधीतमिन्वर्षयान्। ३-तत्।” (भाष)

३ अथ्यक्त मधुर ध्वनि, मीठी मीठी बोली।

कलध्वनि (सं० पु०) कलः पस्कुटमधुरः ध्वनिर्यस्य, बहुध्वनी। १ कपोत, कवूतर। २ कोकिल, कोयल। ३ मयूर, मोर। ४ अथ्यक्त मधुर स्वर, मीठी मीठी बोली।

“पद्मसरोयमचरद्गीतकलध्वनिमादिते।” (महादिवाचन०)

कलन (सं० स्त्री०) कल्पते लक्ष्यते दूष्यते वा, कल-स्युट्। १ विद्, धव्या। २ दोष, विष। कल्पते शक-मोषिताभ्यां अन्वोऽन्यं मिश्रते। ३ गर्भमें मिश्रित युक्तयोषितका प्रथम विचार, इसलिये मिले मनी और खूनकी पहली बनावट। ४ बन्ध देखो। ५ गर्भवेष्टन,

इमनका लिपटाइ । ५ एकमासिक गर्भ, एक सहीनिका इमस ।

“वचने मे वरात्रे च पचाने चोत्पत्तम् ।

उत्पत्तं तु वचनं विद्यते च तत्रः पचम् ॥” (भाष्य ११२१२)

१ पचय, सेबायो । ७ घास, कोर । ८ घान, समभ, पचंघान ।

“श्रीकामात्मनः कलः कालोऽयः कलनामकः ।” (श्रीविज्ञान)

“कलनामकः कालविययस्यैः कालं कलं पचयैः ।” (रत्ननाथ)

(पु०) कं कलं जाति, क-ला-क; कसः सन् नमति, कल-नम-ड । ८ वेतस, घेत ।

कलना (सं० स्त्री०) कल भावे युच्-टाप् । १ वशी-भूतता, तापेदारी ।

“वरात्रं वचने च कलितवताः कलकलना ।” (चान्दरुदरी)

२ कल्पना, कडासुनी, कलकल । ३ अचमोचन ।

“दिन्दारचूडा कलनामिश्रोः ।” (गाय)

कलनाद् (सं० पु०) कलो नादोऽयः, वहुमी० । १ कलईस । २ कलधनि, मीठी मीठी बोली । (त्रि०) ३ कलधनियुक्त, गानेवाला ।

कलनाक (सं० पु०) पक्षिविगेष, किसी किष्की विड़िया ।

कलन्दक (सं० पु०) १ गोत्रमवरसुनिविगेष, किसी ऋषिका नाम । २ अक्षत्क, एक विड़िया ।

कलन्दर (सं० पु०) कलं याद्विहितं वायवं गिटा-चारं वा ह्यपानि, कल-ह-खच्-सुम् । वर्षेसद्वरजाति विगेष, एक दोग्दी कीम । सेट पुढपके धोरस धोर तोवर स्त्रीके गर्भमे कलन्दर निकले हैं ।

कलन्दर (च० पु०) सुधममान गाधुविगेष, किसी किष्कका फकीर । यह संसारसे विरक्त रहते हैं । २ मदारो । यह भास धोर वान्दर लघाने हैं ।

कलन्दर देवी ।

कलन्दर, कलन्दर देवी ।

कलन्दरा (च० पु०) १ पक्षविगेष, एक कपड़ा । यह रङ्गी, रमम धोर उधरसे बनता है । २ कांटा, चंटी । यह चीनिमें कपड़ा या रमम सपेट कोई चीज टांगनेके क्रिये लगाया जाता है ।

कलन्दरी (हिं० स्त्री०) कलन्दर जगा हुआ सोमा, चंटीदार होलदारो ।

कलन्दिका (सं० स्त्री०) कलं कामं सर्वाभोर्दं दशति, कल-दा-क संघायां कन्-टाप् पत इत्वम् प्रथोदरादि-त्वात् सुम् च । सर्वविद्या, रत्न, सघ काम निहासने वाली समभ ।

कलन्धु (सं० पु०) कलायाः मात्राया चन्द्रिय, मरु-भ्यादित्वाद्दीपः । घोलीयाक, एक सजी ।

कलप (हिं० पु०) १ कलफ, कपड़े पर चढ़ाया जानेवाला एक सेप । २ विभाव, बाल काले करनेका रोगन । ३ कल्प । कल देवी ।

कलपत्तर (हिं० पु०) वृषविगेष, एक पेड़ । यह यिमने धीर जौधरमें अधिक उपजता है । इसका काष्ठ श्वेतवर्ण तथा सुदृढ़ रहता धोर गृहनिर्माण एवं छाविके यन्त्रादिमें लगता है ।

कलपना (हिं० क्रि०) १ दुःख करना, विसपना, रह रहके रोग । २ कलप चढ़ाना, इसतिरो लगाना । ३ कल्पना करना, चम्दान लगाना ।

कलपना (हिं०) कलना देवी ।

कलपनी (हिं०) कलना देवी ।

कलपाना (हिं० क्रि०) दुःख देवाना, तरसाना, हलाना । कलपून (हिं० पु०) वृषविगेष, एक पेड़ । यह वृष उचार एवं पूर्ण यज्ञात्ममें उपजता धोर सतत हरित रहता है । काष्ठ रत्नवर्ण तथा सुदृढ़ निकलता, बहुमुख्य पड़ता धोर गृहके निर्माण कार्योंमें लगता है । कलपोटिया (हिं० स्त्री०) पक्षविगेष, एक विड़िया । इसका घोटो कल्पवर्ष होता है ।

कल्प्या (हिं० पु०) द्रव्यविगेष, एक चीज । यह कठोर तथा श्वेत वर्ण रहता धोर कमी कमी नारि-किलके चायन्तारमें मिलता है । चीना लोग इसे बहु-मुख्य समझते धोर ‘नारियलका मोती’ कहते हैं ।

कलफ (हिं० पु०) तण्डुल वा चारारोटका ताल सेप, चावल या चारारोटकी पतली स्त्री । इसे माफो भी कहते हैं । यह पक्षका पादरूप कठिन तथा कमान बनानेमें लगता है । २ सुपका कल्पवर्ष विड, धारं, वेङ्करका कासापन ।

कोल जातिके नामसे कलकत्ता शब्द निकलता है। इसलिये अब विवेचना करना चाहिये—कैसे कलकत्ता नाम पड़ा था।

आधकाल बङ्गाली कलिकाता और हिन्दुस्थानी कलकत्ता कहा करते हैं। किन्तु आजकाल इस बात पर बड़ा सन्देह है—अकबरके समयमें एवं अङ्गरेजोंके आनेसे पहले इस स्थानको क्या प्रकृतरूप कलिकाता प्रथया कलकत्ता कहते थे? हम पूर्व यतला सुके—आईन-ए-अकबरीमें 'कलकत्ते महाल' और कविकल्पके सुदृष्ट चण्डीग्रन्थमें 'कलिकाता' नामका उल्लेख मिलता है। किन्तु दूसरा विषय विभाट् यह उपस्थित हुआ—एशियाटिक सोसाइटीके प्रथम प्रकाशित आईन-ए-अकबरी ग्रन्थमें सातगांव सरकारके बीच कलकत्ता महालके उल्लेखसे नीचे 'कलता', 'कल्ला', 'तलपा' आदि पाठान्तर पड़ा है। फिर सुदृष्ट पुस्तकमें रहते भी कविकल्प-रचित चण्डीमङ्गलकी कई प्राचीन पोथियोंमें 'कलिकाता' नाम नहीं मिलता। सिवा इसके अकबरके समसामयिक कवि मराधवाचार्यके चण्डी ग्रन्थमें धनपति एवं श्रीमन्त्रकी समुद्रयात्राके वर्णनकाल वराहनगर, चितपुर, कालीघाट प्रभृति पारसस्थ स्थानोंका उल्लेख आया है। किन्तु कलकत्ता नाम उसमें भी देख नहीं पड़ता। ईष्ट-इण्डिया-कम्पनीके पत्रादि दू'टनेसे सभ्य प्रथम १६८८ ई०की, १६९० ई०: अगस्तकी कलकत्ता (Calcutta) नामका उल्लेख मिलता है। इसलिये बड़ा सन्देह उपस्थित हुआ है—ई० १६९० गताब्दसे पूर्व 'कलिकाता' या 'कलकत्ता' नाम वर्तमान था या नहीं। कारण श्रीमन्दाज बालेष्टाइनने किसी कलकत्ता (Calcuta) ग्रामकी बात लिखी है। फरनेस युद्ध साहब उक्त स्थानको 'खोखलाखो' अनुमान करते हैं। कम्पनीके समय किसी प्रतिप्राचीन समुद्रयात्रीके मानचित्रमें 'कलकत्ता'के स्थान पर कलकत्ता

(Calcutta) लिखा देख पड़ता है। फिर टामस किचेन नामक किसी भौगोलिकने कलकत्ता (Calcutta) की जगह 'कलकला' (Culcula) नाम व्यवहार किया है। युद्धके कलकत्ताको 'खोखलाखो' मानते भी पानुपत्रिक प्रमाणसे समझ पड़ता—किसी समय कलकत्तेको कोई कोई 'कलकत्ता' भी कहता था। वार्षिक १६८८ ई०से पहले किसी पत्रादिमें छटतः कलकत्तेका उल्लेख नहीं आया। फिर १६५६ ई०के श्रीमन्दाज मानचित्रमें सूतागुटी और गोविन्दपुरका नाम मिलते भी कलकत्ता लिखा है। हां एक स्थल पर उसमें 'कलकत्ता' नाम लिखा है। इससे अनुमान किया जा सकता कि कलकत्तेका प्राचीन नाम 'कलकत्ता' था।

राजा राधाकान्तदेवने अपनी सेवावस्थाको इन्दाधनधाममें एक बंगला पदावली बनायी थी। उन्होंने अपनी सुदृष्ट पदावलीके मुखपत्रमें 'कलिकाता' स्थान पर 'कलकत्ता' नाम दिया है। इससे समझ पड़ता, कि राजा राधाकान्तकी कलकत्तेका अपर नाम कलकत्ता अथवा अकबर था। राजा प्रतापादित्यके समसामयिक कविरामने अपने बनाये दिग्विजयप्रकाशमें 'कलकत्ता' भूमिका विवरण लिखा है। उसे हम पहले ही यथास्थान वर्णन कर चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि उक्त भूमि ही आईन-ए-अकबरीका 'महाल कलकत्ता' रहा। यह अकबर जैसे ही सकता, कि उसी कलकत्ताको बिगाड़ कर श्रीमन्दाज भोगोलिकने 'कलकत्ता' लिखा था। कविरामके दिग्विजय प्रकाशमें एक स्थल पर कलकत्ताका वर्णन मिलता है। उससे कलकत्ता भूमिके अन्तर्गत कलकत्ता नामक ग्राम भी समझ सकते हैं,—

"दिलकित्ता दक्षिणमें योननवयकर्म है।
उदयभारा महा कि जाला च कलिबोटके है।"

(दिलकित्ता विवरण १६० पृ०)

उक्त कलकत्ता प्राचीन कलकत्ता ग्राम ही मालम

• यह वर्तमान महर, कलकत्ता ही नहीं उक्तता। कारण अकबरकी बहुत छोटी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके प्रथम उपनिवेश आदिते कलकत्ता अथवा मालम ग्राम कहलाता था।

कलफा (हिं० फ्ला०) देशीय दारचीनीकी त्वक् या छाल । यह मलयमें उत्पन्न होती है । चीनकी दारचीनीको सुलभ बनानेके लिये इसे मिला देते हैं ।

कलव (हिं० पु०) एक रंग । यह टेसूके फूल तथा लकर बनाया जाता है । फिर इसमें कटा, बोध और चूना डाल भगरई रंग तैयार करते हैं ।

कलवल (हिं० पु०) १ उद्योगउपाय, छोड़ तोड़, दांवपेंच । (स्त्री०) २ कोलाहल, हल्ला-गुल्ला । (त्रि०) ३ भयल, साक समझ न पड़नेवाला ।

कलवीर (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़ । यह हिमालय पर उत्पन्न होता है । इसका मूल रोगम पर पीत वर्ण चढ़ानेमें लगता है । कलवीर भांगके पीढ़से मिलता-जुलता रहता है ।

कलवूत (हिं० पु०) १ छपटभ, कालबुद, सांचा । २ जता सीनेका टांचा । यह काष्ठमय होता है । ३ चौगोशिया या अठगोशिया टोपी बनानेका टांचा । यह मटो, लकड़ी या टांनका होता है । इसे गोलस्वर और कालिन भी कहते हैं ।

कलम (सं० पु०) कलम करिण शब्देन, भाति कलमाक यहा कल-भमच् । कृद्गुणलिकविगतिभोऽभच् । छप् ३१२१ । १ पञ्चवर्षपर्यन्त करियावक, पांचवर्ष तक हाथीका बच्चा । इसका संस्कृत पर्याय—करियावक, ब्याल और दुर्दान्त है । २ हस्ति मात, हाथी । "सुदा रगमे कलमा विहसरेः ।" (भाष) ३ उद्ग, ऊँट । ४ धूसुरस्र, धूसरेका पेड़ ।

कलमवल्लभ (सं० पु०) कलमस्य चक्षिशावकस्य वल्लभः प्रियः, ६-तत्त्व । योलुस्रच, योलुका पेड़ । इसे हाथीका बच्चा बड़ी रुचिसे खाता है ।

कलमवल्लभा (सं० स्त्री०) पिकी, कीकिला ।

कलभापण (सं० स्त्री०) बालालाप, बच्चोंकी यावागोयी या वातचीत ।

कलमो (सं० स्त्री०) कं जलं प्राययतया लभते, कलम-पच गौरादित्वात् ङीप् । चक्षु क्षुप, चेंचका पौदा ।

कलमेरव (सं० पु०) कलं मेरवद्य, कर्मधा० । १ भयद्वर अथवा शब्द, समझ न पड़नेवाली खोफनाक भावात् । "दशहासिकैः कलमेरवः ।" (भाष) २ तासी

और ममंदा नदीके मध्यवर्ती पर्वतका एक गभीर कन्दर या नासा ।

कलम (सं० पु०) कलयति भस्मरं कनयति, कल पिच्-घम । कनिष्ठीत्यः । छप् ३१२३ । १ लेखनी, लिखनेका औजार । इसका संस्कृत पर्याय—लेखनी, वर्षतुली और पञ्चातुलिका है । २ गालिधान्य विशेष, किसी किष्कका धान । राजवल्लभके मतसे यह कपायरस, दन्तुके लिये हितकर और रक्त दोष तथा त्रिदोषनाशक होता है । काशमें इसे मद्यतण्डुल कहते हैं । ४ वाद्ययन्त्रविशेष, एक बाजा । आकारमें लेखनीसे मिलनेके कारण ही यह कलम कहलाता है । ईरान, भद्रगानिष्ठान और यूनान प्रभृति देशमें इसका नाम कलम ही चलता है । एक सुख कलमकी भांति कर्तित और भय सुख पन्थान्य यंत्रोंकी भांति अनावह रहता है । देर्घ्यं पपेलाकृत पत्य लगता है । तारके रन्ध्र सात होते हैं । कलम सरल भावसे बजाया जाता है । फूंकनेकी जगह सधनायीकी भांति एक छोटा नल लगता है ।

कलम (सं० पु०-स्त्री०) १ लेखनी, लिखनेका एक औजार । यह सरकण्डेकी छड़ काट कर बनायी जाती है । अंगरेजी कलम लकड़ीके दक्षिमें सोड़ेकी लीभ लगानेसे तैयार होती है । २ वृक्षकी एक शाखा, पेड़की कोयी डाल । यह काट कर दूसरी जगह लगायी या दूसरे पेड़में मिलायी जाती है । ३ कलमो पौदा । ४ धान्यविशेष, जड़हन । इसे पहले किसी खेतमें बो देते, फिर उखाड़ कर दूसरी जगह लगा लेते हैं । ५ कनपटीके बाल । यह बनानेमें छोड़ दिये जाते हैं । ६ वाद्यविशेष, किसी किष्कको बांसुरी । इसमें सात छिद्र रहते हैं । ७ यन्त्रविशेष, मार्तोको कूषी । यह बिज बनाने या रंग चढ़ानेके काम आती है । ८ काचखण्डविशेष, शीमेका एक टुकड़ा । यह लम्बी रहती और झाड़में लगती है । ९ शोरे नौ-सादर बगैरहका लमा हुआ लम्बा टुकड़ा । यह रवादार होता है । १० फलमडो । ११ कारकायंका यन्त्रविशेष, बारीक नङ्गायी कारनेका एक औजार । इसे सीमार या सहातराय व्यवहार करते हैं । १२ भस्म

खोदनेका यन्त्रविशेष, हरफ़ खोदनेका एक शौज़ार।
इसमें सुहर बनती है। ११ काटने, खोदने और
गढ़ाणी करनेका यन्त्रमात्र या कोई शौज़ार।

कलमक, कलमक शीशो।

कलमकार (फ़ा० पु०) १ चित्रकार, सुसज्ज। यह
कलममें तमबोरमें रंग भरता है। २ लेखनीके कादकार्य
करनेवाला, जो कलमसे खोयी दस्तकारी करता है।
३ यन्त्रविशेष, एक बाफ़ता कपड़ा। इसमें तरफ़
तरफ़के बेल बूटे रहते हैं।

कलमकारी (फ़ा० स्त्री०) लेखनीका कादकार्य,
कलमकी कारीगरी।

कलमकौली (हिं० स्त्री०) मल्लयुद्धकौमल्यविशेष,
कुक्षीका एक पेंच। इसमें खेलाड़ी अपने दाहने
हाथका पन्ना दूसरेके बाधे पक्षमें फँसता और अपना
दाहना हाथ बाँध उसका बायाँ हाथ अपनी गरदन
पर लाता है। फिर खेलाड़ी अपनी दाहनी कोहिनी
उसकी बायाँ कलाई पर पहुँचा और नीचेकी
दबा उसे चित मारता है।

कलमक (फ़ा० पु०) किसी क्लिपका चद्रर। यह
बलविश्रान्तमें अधिक उत्पन्न होता है।

कलमक (हिं०) कलम शीशो।

कलमतराय (फ़ा० पु०) १ कलम बगानेका बाकू,
तेज़ सुपी। २ परहरकी सूटी। यह लहारों और
हाथीधानीकी बाली है।

कलमदान (फ़ा० पु०) सम्पुटविशेष, कलम यगैरह
रखनेका एक छोटा सम्पुक। यह पतला और लम्बा
होता है। इसमें कलम, टपात, बाकू यगैरह रखनेकी
रानि बने रहते हैं।

कलमना (हिं० लि०) कलम काटना, टुकड़े चढ़ाना।
कलमरिया (पोर्त० स्त्री०) वायुके प्रवाहका प्रतिबन्ध,
हवाका रुकावट।

कलममना (हिं० लि०) सुदृष्टित श्रान्तमें पट्ट रत-
स्तातः हिसाना हुकाना, हुकहुकाना।

कलममना, कलममना शीशो।

कलमा (सं० स्त्री०) गालिधान्य, एक धान।

कलमा (च० पु०) १ वाक्य, लुभका। २ सुप्रस-
मानोक्त धर्मका मूलमन्थ।

कलमास (हिं०) कलमा शीशो।

कलमी (हिं०) कलमी शीशो।

कलमी (फ़ा० वि०) १ लिखित, लिखा हुआ।
२ कलमसे पैदा, जो डाल काट कर लगानेसे उत्पन्न
हो। ३ कलम या रवा रखनेवाला।

कलमी गोरा (हिं० पु०) रथेदार गोरा। कलमी गोरा
भिगो देने और मैस छतार सेनेपर लमाकर बनाया
जाता है। यह मामूली गोरेसे अच्छा रहता है।

कलमुहा (हिं० वि०) काले मुँहवाला। २ कलमहित,
बदनाम।

कलमोत्तम (सं० पु०) कलमिभ्यः कलमिषु वा छतामः।
सुगन्धमालि, एक सुगन्धुदार धान।

कलमोत्तमा (सं० स्त्री०) कलमोत्तम शीशो।

कलम्य (सं० पु०) कल्पते चिप्यते गम्यं प्रति, कल-
चक्षप्। १ मर, तोर। २ ग्राहकान्तिका, छलीका
छपुत्त। ३ कदम्ब वृक्ष, कदम्बका पेड़। ४ सर्वप,
सरसो। ५ धाराकदम्ब, डमटू।

कलम्य (Colombo) सिंहलका एक लनाकोषं नगर।
यह पाञ्चकल सिंहलकी राजधानी है। सिंहलवासि-
योंके प्राचीन पुस्तकमें इसका नाम 'कूलम्' (समुद्रतटे)
लिखा है। १५०५ ई०की पहिले यहाँ पोर्तुगोज़
पाये थे। फिर १८८१ ई०की चन्द्रनेमि रमि अधि-
कार किया। कलम्यमें माघार उपसागरके निकट
हिन्दुयोंके बहुतसे देवमन्दिर बने हैं।

कलम्यक (सं०) कलम शीशो।

कलम्यकुलक (सं० स्त्री०) एक तीर्थ। (सहीरुग्ण)

कलम्यमालि (सं० पु०) गालिधान्यविशेष, कलमधान।

कलम्यिक (सं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया।

कलम्यिका (सं० स्त्री०) कलम्य टापू पत्त इत्वम्।
१ कलम्यीनाक, करीम्। कलम्यीय कायने प्रकाशने,
कलम्यीके-च-टापू इत्वच प्रपोदरादित्वात् कलम्यः।
२ दीवापदाबाड़ी, गरदनकी सिंहली रण। इसका
अपर संस्कृत नाम मन्था है।

कलम्वियन (चं० पु०) सुदृष्टयन्त्रविशेष, बापेई।

एक कल। इसमें दो लहर लगते हैं—एक ऊपर और एक नीचे। ऊपरी लहर पक्षी (चिड़िया)के आकारका रहता है। इसमें कमानी नहीं चढ़ती। कलस्त्रियनको हिन्दीमें चिड़ियाकल कहते हैं।

कलम्बी (सं० स्त्री०) के जले लम्बते, सवि संसने पच-
होय। १. ललज लताविशेष, करेम्बू। इसका संस्कृत
पर्याय—कलम्बी, कलम्बू और कलम्बिका है।
(Convolvulus repens) राजवल्लभने इसे मधुर एवं
व. प्रायश्च, शुक्र और स्तन्यदुग्ध, शुक तथा श्लेष्माकारक
कहा है। २. उपोदकीलता, पोय।

कलम्बू (सं० स्त्री०) के जले लम्बते, क-लम्बू-उष्ण।
कलम्बीशाक, करेम्बू।

कलम्बूका, कलम्बूदधो।

कलम्बूट (सं० स्त्री०) के जले लम्बते भासते, क-लम्बू-
उटन्। १. हैयङ्गयोन, ताले, दूधका घी। २. नवनीत,
मकुन।

कलम्बू (सं० स्त्री०) के जले लम्बते, लम्ब बाहुलकात्
कड। कलम्बीशाक, करेम्बू।

कलयञ्ज (सं० पुं०) सर्जरस, धूना।

कलरव (सं० पुं०) कलः मधुरास्फुटी रवः ध्वनिर्यस्य,
बहुलो। १. कपोत, कबूतर। “गौरवमादोपरि जगोपुरिष
'कलरवः क्वचित्' (पाशंसकरी १८१) २. कीकिल, कीयल।

३. वनकपोत, जङ्गली कबूतर। ४. कलध्वनि, मीठी आवाज।
कलरिन (हिं० स्त्री०) कलौका लगानेवाली स्त्री,
जो औरत लौक लगाने ली। इसे कल्लड़िन भी
कहते हैं।

कललः (सं० पुं०-स्त्री०) कल्पते वीर्यते ऽनेन, कल
हृयादिभ्यः कलच्। १. जरायु, गर्भवेष्टनघर्म, हमलके
रुपेणकी भिक्तो। २. शुक और शोषितका प्रथम
विकार। गर्भके प्रथम मास कलल उठता है। ऋतु-
छाता स्त्रीके रुद्रर्भ में मेषुन आचरण करनेसे गर्भ रह
जाता है। किन्तु उस गर्भमें अस्थि प्रकृति पैडक
गुण नहीं होता। इसीसे कललमात्र निकल पड़ता
है। (सधन)

कलसज (सं० पुं०) कलसलमिष जायते, कल-जन-उ।
१. राक, धूना। २. गर्भ, हमल।

कलसजोद्वय (सं० पुं०) कलसजस्य उद्वयः उद्ववति
पश्चात्, इ-सत्। १. शालउद्व, शालका पेड़।

कलसरिया (हिं० स्त्री०) मध्यपश्चात्कार, कलवारको
दुकान।

कलवार (हिं० पुं०) जातिविशेष, एक कोम।
यह हिन्दुस्थान और विहारके बनिशोंसे उत्पन्न है।
कलवार श्रावका व्यवसाय करते हैं। कोई कोई सम-
भक्ता, कि खदिर बनानेवाली 'खैरवार' नामक वन्य
जातिसे कलवार शब्द निकला है। फिर कोई 'कल-
वाला' शब्दसे कलवार नामको उत्पत्ति बताता है।
किन्तु इन बातोंमें कोई समोचीन मालूम नहीं पड़ती।

इस जातिके लोग प्रधानतः कुछ श्रेणियोंमें विभक्त
हैं,—बनौधिया, मियाहुतिया या भोजपुरी, देगवार,
जेशवाल, चयोध्यावासी, खालना और खरिदहा।
सिवा इसके कलवारोंमें बहुतसे सुसलमान भी हैं।
उन्हें 'राधे' या 'कनाल' कहते हैं। बनौधिये सुसल-
मान कलालोंको रायबरेलीके रहनेवाले बताते हैं।

इस जातिमें विधवाविवाह प्रचलित है। बिया-
हुतियोंके कथनानुसार पहले विधवाविवाह प्रच-
लित न था, किन्तु धीरे धीरे लगा। फिर यह ख-
जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहते—आदि पुरुषसे
सब कलवार निकले हैं। आदि पुरुषके दो पत्नीं रहीं।
'बियाही' और 'सगाई'। बियाही पत्नीके गर्भजात
सन्तान बियाहुत और सगाई पत्नीके गर्भजात सन्तान
अन्यान्य नामसे परिचित हैं। बियाहुत मद्यका व्यवसाय,
मद्यपान और अपने हाथसे गोदोहन या हृदयका
“पण्डच्छेद” नहीं करते। यह केवल ताड़का काम
चलाते हैं। खरिदहा अपने श्रेणिका नामकरण
गाजीपुर जिलाके किसी ग्रामपर ठहराते हैं। उन्हें
बियाहुतोंकी भांति निजहस्त गोदोहन और हृदयके
पण्डच्छेदनसे चलग रहते भी मद्यपान वा मद्य व्य-
सायमें कोई आपत्ति नहीं। दूसरे कलवार जेशवालोंको
जारजयंग पुकारते हैं। किसे कलवारके 'जेशिया'
नामसे एक उपपत्नी रही। उसीके गर्भजात सन्तानोंमें
जेशवार निकले हैं। किन्तु जेशवारोंके कथनानु-
सार 'जेशपुर' नामक ग्रामसे 'इस श्रेणिका नामकरण

सार भूतशक्ति चादि विधानकर शिष्यके देहपर मन्त्रोक्त न्यास करना पड़ता है। कुम्भस्थ देवताको पक्षोपचारसे पुनर्वाप पूज्य पक्षकृत शिष्यको भन्व्य पासनपर बैठते हैं। कुम्भके कल्पवृक्षरूप सकल पक्ष्य शिष्यके मस्तकपर रख मन ही मन माटका जपपूर्वक यमिष्ट-संहितोक्त ऋभियेकके मन्त्रसे कुम्भका जल शिष्यके शरीरपर सेचन करना चाहिये। शिष्य भवशिष्ट जलसे पासनमे ले वस्त्रद्वय परिवर्तनपूर्वक गुरुके समीप उपवेशन करता है। फिर गुरु शिष्यसंक्रान्त और आत्मदेवताको एक समभक्त गन्धादि द्वारा पूजते हैं।

इसके पीछे मन्त्रसे शिष्यको शिष्या बांध शिष्यके शरीरमें कलान्यास और मस्तकपर हाथ रख १०८ बार मन्त्र जप कर 'मिं भमुक मन्त्र तुम्हे सुनाता हूँ' कहते हुये शिष्यके हाथपर जलदान करना पड़ता है। शिष्यको भी 'ददस्व' कहकर जल लेना चाहिये। फिर गुरु ऋष्यादियुक्त मन्त्र द्विजातिके दक्षिण कर्णमें तीन बार तथा वाम कर्णमें एकवार और स्त्री वा शूद्रके वाम कर्णमें तीन बार एवं दक्षिण कर्णमें एक बार सुनाते हैं। मन्त्रपठण पीछे शिष्यको गुरुके चरणपर गिर-जाना और गुरुको उसे मन्त्र द्वारा उठाना चाहिये। शिष्य उठकर उक्त मन्त्र १०८ बार जपता और कुम्भ, तिल एवं जल से गुरुको स्पर्श छुछ दक्षिणा तथा दीक्षाके पक्ष्यकी समस्त सामग्री प्रदान करता है। अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी यथाशक्ति दान दे परितुष्ट करना पड़ता है। गुरु मन्त्रदानके पीछे अपनी शक्तिकी रक्षाके लिये १००८ वा १०८ वार मन्त्र जपते हैं। पन्तमें ब्राह्मणोंको मिष्टान्न चादि खिला शिष्य भोजन करता है। कारण दीक्षाके दिन गुरु और शिष्य दोनोंको उपवास निषिद्ध है।

कलावन्त (हिं०) कलावन्त १००।
कलावा (हिं० पु०) १. सूत्रविशेष, सूत्रका एक लच्छा। यह टेकुवेमें लिपटा रहता है। २. मङ्गलसूत्र, राखीका लच्छा। इसका सूत्र रक्तवीत रहता है। इसे मङ्गल कार्यमें इस्त तथा कलस प्रश्रुति पर लपेट देते हैं। ३. हस्तोके कण्ठका एक सूत्र। इसमें कवी बड़े

रहती हैं। महाव्रत कलावेमें घपना पैर डाल हाथोंको हांकिता है। ४. उक्तिकण्ठ, हाथीकी गरदन।

कलावान् (सं० पु०) कलाः सन्तान्न, कला-मत्पु मध्य वः। १. सङ्गीतविद्यावित्, कलावत। २. चन्द्र, चाँद। ३. नट, कलाबाजा करनेवाला। (त्रि०) ४. कलाविशिष्ट, हुतरमन्द।

कलाविक (सं० पु०) कलं पाविकायति विशेषण रीति, कल-भा-वि-कै-वः। कलाधिक, सुरगा।

कलाविकल (सं० पु०) कलया कामावेशिन विकल-स्यञ्जलः, शतत्। चटक, चिड़ा। चट० श्वो।

कलाविधितन्त्र (सं० स्त्री०) एक तन्त्रशास्त्र।

कलाम (सं० पु०) याव्यविशेष, एक बाजा। यह प्रतिप्राचीन समयमें बजाया और चमड़ेसे मढ़ाया जाता था।

लासारतन्त्र (सं० स्त्री०) एक तन्त्रशास्त्र।

कलासी (हिं० स्त्री०) रेखाविशेष, एक सतर। दो तत्वोंके जोड़की लकीरको कलासी कहते हैं।

कलासक (सं० पु०) कलं पाहन्ति, कल-भा-हन्-ड संज्ञायां कन्। काहल नामक वाद्ययन्त्र, एक बाजा।

कलि (सं० पु०) कलते कलेराश्रयत्वेन वर्तते,

१. विभीतक वृक्ष, वहेड़ेका पेड़। मल्लराजाके निर्घातन-को किञ्चो समय कलिनै विभीतक वृक्षका भवतश्च स्त्रिया था, इसीसे उसका नाम कलि पड़ गया। (भागवत १० ५०) कलते स्पर्धते। २. शूर, वीर, वहादुर। कलन्त . स्पर्धमाना भावन्ते। ३. विवाद, भगड़ा। ४. युद्ध, लड़ायी। कलयति पापेन लडवति। ५. युग-विशेष, एक कृमाना। चतुर्थ युगको कलि कहते हैं। कल्किपुराणमें कलियुगकी उत्पत्ति-कथा इस प्रकार-से लिखी है,—

प्रलयके पन्तमें सोक्षपितामह ब्रह्मानै वृष्टदेवसे पापमय मलिन घोर पधर्मकी सृष्टि की थी। पधर्मने अपनी माजरीलोचना मिथ्या मान्यो पद्मीके गर्भसे 'दम्भ' नामक पुत्र उत्पादन किया। फिर दम्भने माया मान्यो स्त्रीय भगिनीके गर्भसे 'लोभ' नामक पुत्र और 'निद्राति' नामकी कन्याको निकाला था। १०वीं भ्राता भगिनीसे क्रोधने जन्म लिया। क्रोधके औरस

द्वया है। इसी प्रकार पूर्वाह्न कई विविध विधियोंके तारतम्यमें अन्यान्य श्रेणियोंका विभाग कल्पना किया जाता है। विद्यावृत्त और खरिददा चपने संघ, मानामहकी गोठी, पिटामानामहकी गोठी या वितामहके मानामहकी गोठोंमें विवाह नहीं करते। यही चान्द्रेमशरोंमें भी देख पड़ती है।

विद्यावृत्त तथा खरिददा जैसे १४, सेमवार जैसे १०, और बनोधिमें ७में १४ बत्तर तक कन्याको विवाह देते हैं। किन्तु कन्याकी अपेक्षा बरका वयस कथी बत्तर अधिक रहना पावश्यक है। पुढपका विवाह सब श्रेणियोंमें जैसे १४ वर्ष तक छो जाता है। विवाहमें हिन्दुस्थानी मनियोंकी रीति रहती है। "विन्दूरदान"के पीछे विवाह सम्पन्न होता है।

विवाहमें पहले 'घर देखो' 'बर देखो' और 'पानवांटी' तीन कुलाचार हैं। केवल बनोधिमें यह तीनों आचार देख नहीं पड़ते। बरके पिताकी मर्यादाकी रक्षाके लिये कुछ नकद रुपया देना पड़ता है। इस प्रथाको 'तिलक' कहते हैं। २१) रुंधि अधिक तिलक नहीं चढ़ता। कलवार एकसे चार तक विवाह कर सकते हैं। प्रथमा पत्नीके वन्या होने पर ही रिसा परम्यन्तर पड़ता है। सभी श्रेणियोंमें विधवाविवाह चलता है। धर्मिचारियों होनेसे यह पत्नीको छोड़ देते हैं।

बं—माघ: कलवार मेष्यव होती है। फिर भी अन्ध्याय धामदेवताओंकी पूजा किया करते हैं। विद्यावृत्त और खरिददा आषष शुक्लके दो सोमवारोंकी गोपानामक देवतापर चावल और दूध चढ़ाते हैं। फिर उसी समय (आषष शुक्ल) बुध तथा हस्ततिथारके दिन 'काँची' एवं 'बन्दो'की जागल तथा मिष्टान और मङ्गल वारके दिन 'गौरवा' देवताकी स्तम्भपाठी गृहकार श्रावण एवं माघ उत्तमों किया जाता है। आषष शुक्ल मनिवारके दिन सेमवार 'वाँचपीर' पर और भाद्र एष्य एकादशी तथा माघ शुक्ला एकादशी एवं खद्योतकी बनोधिमें 'ब्रह्मदेव' पर विहक एवं मिष्टक चलाते हैं। एह सकल निर्दिष्ट द्रव्य बहवार वर्यं भोजन

करते हैं। शेषन जन्मगत स्तम्भपाठी गृहकार श्रावण वारा नहीं—मृत्तिकामें गाढ़ा लाता है। वाँचपीरका प्रसाद सुमनमानोंको भी बाँट देते हैं।

पूजादि और योगीश्वत्यादिका कार्य एक श्रेणीके ब्राह्मण करते हैं। बनोधिमें पुरोहित कमोजिहे ब्राह्मणोंकी भांति सम्मानाई हैं। कलवार सबकी जलाते हैं। खद्योत दिन खाह होता है। बनोधिमें ७म वर्षसे न्यून श्रुत सन्तानका श्रावण गाढ़ देते हैं।

नोधि और खरिददा—गराव समानेका व्यवसाय ही इनकी मूल जीविका है। बनोधिमें, देवशर्मा और खालसावीको छोड़ अन्ध्याय श्रेणीके कलवार दूसरा व्यवसाय भी चलाते हैं। पश्चिमांग कृषिकार्य किया करते हैं। वाकिष्वादि समानेवामे लोगोंको ही कलवारोंमें सम्भ्रम मिलता है। कोटे-नागपुरमें भक्त श्रेणीके कलवार व्यवसाय करनेसे सम्पन्न सम्भ्रान्त हैं। किन्तु उनमें विकसिता देख नहीं पड़ती। सामान्य मजदूरोंकी भांति यह भी धाने धेते हैं।

यह पत्ताचरणीय है। ब्राह्मणादि कलवारोंका श्रुत बल व्यवहार नहीं करते। चाकहन अधिक भोग श्रेणीवारोंमें मग्न रहते हैं। कारण गवरनमिष्टाने इनका जातिगत व्यवसाय चपने जायमें ले लिया है।

मनीषिया सम्भ्रान्त और सुजफ्फ़रपुर जिलेमें कलवार अधिक रहते हैं।

कलविह्व (सं० पु०) कर्ष मधुराखुट्टं यज्ञते रीति, कल-वकि-पच इवोदरादित्याम् पत इत्यम् । १ चटक-पक्षी, गौरवा। इनका सर्वत पर्याय—कुनिह्व और कालकण्ठक है। भाववहायमें कलविह्वकी ग्रीतक, दिग्ध, छाट्ट, राक एवं कफकारक और मन्त्रिवात-नायक कहा है। यहचटक पतिग्रय छद्मकारक है। २ कनिह्वक छक, कलौदिका धिह्व। ३ कलह्व, धम्या। ४ श्रेतपांमर, मन्दिह्व चंवर। ५ त्वटाके पुत्र विम्वदपका एक मन्त्रक। भागवतमें निर्या है,—

जिसे समय इन्द्रने विग्रहके मर्द्धमें मग्न हो वरा-पार्यं हस्ततिथी परमाणना की थी। इसी हस्ततिथि पन्नाहित हुये। फिर पशुर्गने देवताओंकी बहूत सताया। ब्रह्मने तदुपुत्र विम्वदपकी योगीश्वर्यमें

भार उसको भगिनीके गर्भसे कलि उत्पन्न हुआ। उसका रूप तैलसंयुक्त भ्रञ्जनकी भांति कृष्णवर्ण, सुख कराल, जिह्वा लोल, उदर काककी तरह और सर्वाङ्गमें पूतिगन्ध था। ऐसी ही भयानक स्मृतिके साथ वाम भ्रुव द्वारा उपस्थ धारण किये कलिने जन्म लिया और लम्बा लेठे ही स्त्री, मद्य, द्यूत, सुवर्ण प्रभृतिमें पासक्त हो गया। कलिके औरस और उसकी भगिनी दुःकलिके गर्भसे 'भय' नामक पुत्र तथा 'मृत्यु' नाम्नी कन्याकी उत्पत्ति हुई। (कलिक १५०)

कलियुगका लक्षण—जिस समय सर्वदा मिथ्या, तन्द्रा, इनद्रा, हिंसा, विपादन, शोक, मोह, हीनता प्रभृतिका प्रभाव रहेगा, उसीका नाम कलिकाल पड़ेगा।

इस युगमें मनुष्य कामी और कटुभाषी होंगे। सकल जनपद दस्युपीडित रहेंगे। चारो वेद पापण्डसे दूषित बन जायेंगे। राजा प्रजापोहन करेंगे। ब्राह्मण शिश्न और उदरपरायण बनेंगे। ब्राह्मणबालक व्रतशून्य और अशुचि निकलेंगे। मित्रु परिवारपोषक देख पड़ेंगे। तपस्वी ग्राममें टिकेंगे। न्यायी अर्थकोलुप ठहरेंगे। फिर मनुष्यमात्र सुद्रकाय, अधिक भोजनशील और चौर्य माया प्रभृतिमें समधिक साक्षी होंगे।

कलिकालमें मृत्यु प्रभुकी और तपस्वी व्रतकी त्याग करेंगे। शूद्र तपोवैशिके उपजीवी बन प्रतिग्रह लेंगे। सब मनुष्य उद्दिग्ध, अनलङ्कार एवं पिशाचतुल्य हो अज्ञात पवस्थामें भोजन करत भी अग्नि, देवता, अतिथि प्रभृतिको पूजेंगे। पिण्डोदक क्रिया लोप हो जावेगी। सकल ही स्तोरत और शूद्रसभ बनेंगे। स्त्रियां अश्रमाग्य, अधिक सन्तानवती और सत्पतिकी अवज्ञाकारिणी निकलेंगी। कोयी विष्णुकी पूजा न करेगा। किन्तु कलिकालमें एक भलाई रहेगी, कि कृष्णनाम कीर्तन करनेसे ही मानवकी सुक्ति मिलेगी। (भवव्यु० २१० प०)

सहासतन्त्रमें भी कलियुगका लक्षण कहा है,— इस युगमें वैदिकी शिखा, पौराणिकी शिखा और पापपुण्यको विदसभय परीक्षा लोप हो जायेगी। स्थान स्थान पर गङ्गा क्षिप्रमित्र देख पड़ेगी। राजा श्लेच्छ-

जातीय और धनकोलुप बनेंगे। स्त्रियां प्रतिशय दुर्दात्म, कर्काश, कलहरत और पतिनिन्दक निकलेंगी। पृथिवी अल्प गन्ध उत्पादन करेगी। भेद अधिक न बरसेंगे। वृक्षोंमें श्लेष फल लगेंगे। भ्राता, पात्नीय, भ्रामान्य प्रभृति सामान्य मात्र धनके लिये परस्पर लड़ेंगे। मद्य पीने और मांस खानेमें कोई न हिचकेंगा। सबकी निन्दा होगी। पापियोंको दण्ड न मिलेगा।

माघी पूर्णिमाको शुकवारके दिन कलियुगकी उत्पत्ति हुई थी। इसका आयुःकाल चार लाख बत्तीस हजार (४३२०००) वत्सर है। आयुभटकके मतमें कलियुग १५७०५१७५० दिन रहता है।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित है,—कलिमें मनुष्योंका ५० वर्ष परमायु होगा। कलिके दोषसे देहियोंका देह चीष पड़ जायेगा। वर्षाश्रमाचारो लोगोंका धर्मपथ विगड़ेगा। धार्मिक पाषण्डप्राय बनेंगे। राजा दस्युप्राय निकलेंगे। मनुष्य चौर्य, मिथ्या, हथाहिंसा आदि नाना वृत्तियां पकड़ेंगे। ब्राह्मण पादिवर्ष शूद्रप्राय ठहरेंगे। गो ह्यागलप्राय रहेंगे। बन्धु यानप्राय होंगे। भेद विद्युतप्राय देख पड़ेंगे। आधिका गुण घटेगा। पर्वत नीचेकी झुकेंगे। गृह शून्यप्राय और धर्मरहित बनेंगे। लोग दुःसहचेष्टित देख पड़ेंगे। फिर धर्मके परित्राणकी सत्वगुणसे भगवान् कलिके अन्तीर्ण होंगे। पाप (परोक्षित)के जन्मसे महानन्दके राज्याभिषेक पर्यन्त ११५० वर्ष बीतेंगे। सप्त नक्षत्रात्मक सप्तर्षि मण्डलके मध्य उदयके समय दो नक्षत्ररूप ऋषि आकाशमें प्रथम उदित होतें देख पड़तें हैं। उन दोनोंके बीच समदेगपर अवस्थित अश्विनी आदि नक्षत्र रातको रहतें हैं। उनमें एक एकसे मिल सप्तर्षि मनुष्य परिमाणके सी सौ वत्सर अवस्थिति करतें हैं। वह सकल ऋषि अब पाप (परोक्षित)के समयमें मघाको पकड़े हुए हैं। सप्तर्षि मण्डलके मघानक्षत्रमें घूमनेसे कलिकी प्रवृत्तिके १२०० वर्ष बीतेंगे। फिर सन्ध्या अतिक्रान्त होगी। जिस समयसे सप्तर्षि मण्डल मघा छोड़ पूर्वाषाढाकी चलेगा, उस समय अर्थात् नन्दाभिषेक तक कलि अतिशय बढ़ेगा। जिस दिन कृष्णका वैकुण्ठ ज्ञाना हुआ, उसी दिनसे कलियुग का

सगा असुर संग्राममें उतरनेके लिये उपदेश दिया। देवगण भी तदनुसार उन्हें पुरोहित बना कार्य सम्पादन करने लगे। किन्तु विश्वरूप पितामह-वंशके प्रति स्वाभाविक स्नेहवशतः क्षिप्रकार असुरोंको यज्ञ भाग दे देते थे। क्रमशः इन्द्रको यह बात भवगत हुयी। उन्होंने क्रोधमें विश्वरूपके मस्तक काट डाले। उनके तीन मस्तक थे,—कपिल्लर, कलविह्वल और तिस्रि। जिस मुखसे वह सुरापान करते, उसे कलविह्वल कहते थे। (१८५०) ६ तीर्थविशेष। ७ पारावत, कवूतर। ८ ग्रामचटक, गांवका गौरवा। ९ क्षत्रचटक, काना गौरवा।

कलविह्वलिनोद (सं० पु०) नृत्यकी एक चाल, नाचका एक ढंग। इसमें मस्तकपर दोनों हाथ ले जाकर घुमाये जाते हैं। फिर उन्हें पसली पर लगाकर नीचे ऊपर चलाते हैं।

कलस (सं० पु०) कलं मधुरोऽयंलक्ष्यं श्रवति जल-पूरणसमये प्राप्नोति, कल-य गती ङ। जलाधार-विशेष, घड़ा। इसका संस्कृत पर्याय—घट, कुट, निय, कलस, कलसि, कलसी, कलमि, कलशो, कुम्भ और करीर है। तन्वमारोह कलावतीके दीक्षा-प्रकरणमें कलसका परिमाण इस प्रकार लिखा है,—“कलस व्यासमें ४० अङ्गुलि और उच्चतामें सोलह अङ्गुलि रहना चाहिये। सुख भाठं अङ्गुलि होता है। फिर ३६ अङ्गुलि विस्तार और संघ्ताविशिष्ट कलसको कुम्भ कहते हैं। यह सोलह या बारह अङ्गुलिसे कम रहना चाहिये।” २ द्रोणपरिमाण, ८ सेरकी तोल।

कलसगद्दिर (सं० पु०) कलसग्य दीर्घपरम, कलस-ट भावे क्लिप्। याज्ञिक कलस विदारण, पूजाके घटकी तोड़ फोड़।

कलसयोतक (सं० पु०) सर्पविशेष, किसी नागका नाम।

“कालविह्वलिनोदं न नागः कलसयोतकः।” (भाग, आदि १८५०)

कलमि (सं० स्त्री०) कलं शरीरमास्तिन्यं श्रुति नाशयति, कल-मो-इति। १ छत्रिपर्णी, पिठवन। कल-यु-ङि। २ घट, घड़ा।

“कलमिसुवधिवती” नरना धोषधनि” (साय)

कलमो (सं० स्त्री०) कलमि-ङोप्। १ जलवायविशेष, गगरी। २ छत्रिपर्णी, पिठवन। ३ तीर्थविशेष।

कलमोकण्ड (सं० त्रि०) कलम्याः कण्ड इव कण्डः भस्य, बहुमी०। १ कलमोके कण्डकी भांति कण्डमुक्त, सुराहोदार गरदनशाला। (पु०) २ ऋविशेष।

कलमोपदी (सं० स्त्री०) कलमोक्तो भांति पट रखने-वाली, जिसके घड़े-जैसा पैर रहे।

कलमोमुख (सं० पु०) वायव्यविशेष, एक वाजा। इसका मुख कलमोकी भांति होता है।

कलमोसुत (सं० पु०) कलम्याः सुत इव कलमोतः उत्पन्नत्वात्। भगव्य सुमि। पत्न्या दैवो।

कलमोदर (सं० पु०) कलस इव उदरमस्य, बहुमी०। १ दानविशेष। (हरिवं १३०५०) (त्रि०) कलसकी भांति उदरविशिष्ट, जिसके घड़े-जैसा पेट रहे।

कलस (सं० पु०) केग जलेन सप्तमि शोभते, क-ल-म-पच्। १ कलस, घड़ा। २ द्रोण परिमाण, ८ सेरकी तोल। ३ कुम्भ। कालिकापुराणमें लिखा है,—“अनृतसङ्घको देवासुरके सगर मयते समय विश्व-कर्माने देवोंकी कलासे नौ-घट पृथक् पृथक् बनाये थे। इसीसे घटका नाम कलस पड़ा। निर्वापतन्त्रमें भी कहा है,—

“कला कथां यदीत्या नु दीवानां रिपुबन्धना।

निर्मितो इत्थं स नैवदात् कवचसं न कथते ॥”

४ नागविशेष, एक सर्प। (नरनागत) ५ मन्दिर-का शिखरमण्डल, इमारतकी चोटीका कंगूरा।

६ काश्मीरके एक राजा। इनका अपर नाम रणादित्य था। यह तुकके पुत्र रहे। ८२५ तकके यावत् मास तकने इन्हें राजा बनाया। राजा होते हो यह पिताको कुटिल दृष्टिसे देखने लगे। फिर इन्होंने तुक पर बड़ा अत्याचार किया था। किन्तु मन्त्री उक्त अत्याचार सहन न सके। अन्ततः प्रधान मन्त्री इन-धरने पिताको सिंहासन पर बैठाया। फिर कलस पिताके पक्षीन रहने लगे। अण्ड सम्प्रद इनके सहचर थे। क्रमशः उनके सहवाससे चरित्र रतना विगड़ा, कि इन्होंने अपनी भगिनी और तनयाका सतीत्व मट किया। यह राजा इनके पाचरणसे चालन व्ययित

हे । दिव्य परिमाणसे महत्स्र वत्सर पीछे चतुर्थ कलि
बीतनेपर पुनर्বার सत्ययुग श्रावण होगा ।

(भागवत ११वें स्कन्ध, २ च. १०, १०-१२ श्लो०)

इस युगमें धर्म एक पाद और अधर्म तीन पाद है ।
मनुष्यके आयुका परिमाण १०८ वत्सर और देहका
प्रमाण अपने अपने हाथसे साढ़े तीन हाथ पड़ता है ।
श्रवतार शौक्ष्ण्य है । युगके श्रेयको दग्ध श्रवतार
कहिण उत्पन्न हो पापियोंका विनाश साधन करेंगे ।
ब्राह्मण निरग्नि, अशक्तप्राण और भोजनपात्रके
अनियम बन जायेंगे । कलियुगका विशेष धर्म दान
है । संहिता प्रभृतिमें लिखा है,—

“तपःपरं ब्रह्मयुगे नैतथा ज्ञानसुचरते ।

हापरं यश्मिवाहु दानमेवं कलौ युगे ॥” (मनुषंहिता)

सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतायुगमें ज्ञान, हापरमें यज्ञ
और कलियुगमें दानमात्र विशेष धर्म है ।

“तपःपरं ब्रह्मयुगे नैतथा ज्ञानसुचरते ।

हापरं यश्मिवाहुः कलौ दानं दद्या दमः ॥” (महाभारत)

सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतायुगमें ज्ञान, हापरमें यज्ञ
और कलियुगमें दान, दया तथा दम विशेष धर्म है ।

“अयोधर्मः कृतयुगे ज्ञानं नैतयुगे च तन् ।

हापरं चाधरः शौक्ष्ण्यः कलौ दानं दद्या दमः ॥” (उद्वल्यनि)

सत्ययुगमें वैदिक धर्म, त्रेतामें ज्ञान, हापरमें यज्ञ
और कलिमें दान, दया तथा दम विशेष धर्म है ।

इसी प्रकार लिङ्गपुराण, अग्निपुराण प्रभृतिमें भी
एकवाक्यसे दानका विषय अनुमोदित है ।

कलियुगकी संहिताके नियम सम्बन्धमें पराग्रने
लिखा है,—

“कृते तु मानवो धर्मं चेतत्प्रां गौतमः प्रुतः ।

हापरं यश्मिवाहो कलौ पाराग्रः प्रुतः ॥”

सत्ययुगमें मनुषंहिता, त्रेतामें गौतम, हापरमें
शङ्ख तथा लिखित और कलियुगमें पाराग्रसंहिता
धर्मशास्त्र है ।

कलिके दोपकां गान्तिकी लिङ्गपुराण, उद्वारदीय,
महाभारत और शिवपुराणमें शिवपूजाका उपदेश दिया
है । फिर क्लृप्तपुराणमें एकमात्र शहर ही कलियुगके
देवता कहे गये हैं ।

“महा कृतयुगे देवः त्रेतायां भगवान् रविः ।

हापरं भगवान् विचः कलौ देवो महेवः ॥” (अनुपराध)

सत्ययुगमें ब्रह्मा, त्रेतामें सूर्य, हापरमें विष्णु और
कलिमें महेश्वर देवता हैं ।

अन्यान्य स्थलोंमें कालिका और गोपालको कलिका
जापत देव माना है,—

“कलौ जागति गोपालः कलौ जागति कालिका ।”

कामीवास, गङ्गास्नान प्रभृति कलिकालमें सुस्तिका
उपाय है,—

“मान्यत् पर्याग्निं जन्तुनां सुकृता वाराचको” पुरीम् ।

सर्वेपापममनं प्रायश्चित्तं कलौ युगे ॥

ये विवासां पुरीं प्राप्य न सुषति कदाचन ।

विशेष कनिजान् दोषान् यानि तत् परमं पदम् ॥” (अनुपराध)

कलियुगमें वाराणसपुरीको छोड़ जीर्वाका सर्व
पापनाशक प्रायश्चित्त दूसरा नहीं । जो ब्राह्मण इस
पुरीमें आकर सर्वदा बना रहता, वह कलिज पापसे
कूट परम पद पा सकता है । गङ्गास्नानके सम्बन्धमें
लिखा है—

“कृते सर्वाणि तोषानि त्रेतायां पुष्करं च तन् ।

हापरं तु उद्वर्षेत् कलौ गङ्गे न क्षिपन् ॥” (अग्निपुराण)

सत्ययुगमें ससुदाय तीर्थ, त्रेतामें पुष्कर, हापरमें
सुरसेव और कलियुगमें एकमात्र गङ्गा ही की तीर्थ
समझना चाहिये ।

“गीता गङ्गा तथा मिच्छः कविचाचक्यसेवन् ।

चासरं पद्मनाभस्य शर्मनं न कलौ युगे ॥” (महाभारत)

गीता, गङ्गा, मिच्छक, कपिला, पञ्चदश लक्ष (पीपर-
का पेड़) और हरिवासरकी सेवा को छोड़ कलियुगमें
सप्तम धर्मकार्य नहीं होता ।

हरिनामकीर्तनके माहात्म्य सम्बन्धपर कहा है,—

“ये इतिर्यं जगद्गुरुर्वाहृदयम् कीर्तन् ।

कुर्यान्नि तान् भक्त्याप न कश्चिद्विचते नराम् ॥

अज्ञानुष्य मासान् सदा सर्वत्र कीर्तयेत् ।

मात्स्यं कीर्तयेत् तन् स परिमहती वतः ॥

अद्यात्पयसा ज्ञानादुत्तमद्वीकमान वत् ।

सहोर्तितमत् पुंको दहेदेवी कथनतः ॥” (विष्णुसर्ग)

जो दिन रात जगद्गुरुका वासुदेवकी कीर्तन करता,

है नरयेष्ठ ! उसे कलि किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचाता। सर्वदा सकल स्थानों पर चक्रपाणिका नाम लेना चाहिये। इसमें अशौचकी विवेचना आवश्यक नहीं। क्योंकि नामकीर्तन ही पवित्रकारक है। ज्ञान वा अज्ञानवश हरिनामकीर्तन करनेसे पुरुषके सकल पाप अग्निसे काष्ठराशिकी भाँति जल जाते हैं।

“वीचिन्दानामा यः कथितो भवति मृतसि।

कीर्तनादेश तस्यापि पापं शान्तिं सहस्रधा ॥” (स्कन्दपुराण)

गोविन्द नामयुक्त किसी मनुष्यको पुकारनेसे भी सङ्ख पाप घिनट होते हैं। महानिर्वाणतन्त्रमें लिखते हैं,—

“मध्यारेष्वविचारार्थं न दुःखिः शौचकर्मणा।

न च हितार्थैः क्व तिमिरिष्ठसिद्धिर्वाभ्युपेत ॥ ६ ॥

विना ह्यव्यस्यमाणेषु कर्माणि नास्ति शान्तिः प्रिये ॥ ७ ॥

शुचिषु निपुत्राणां च मध्येषु च सुरा शिषे।

आत्मनोक्तविधानेन कस्यो देवान् यज्ञैत सुयोः ॥ ८ ॥” (१५ ब्रह्मसू)

पवित्रापवित्र विचारहीन ब्राह्मण आदि वर्षोंकी श्रद्धि वेदोक्त कर्म द्वारा न होगी। पुराण, संहिता और स्मृतिसेभी मनुष्य अपने दुष्टसिद्धि न पावेंगे। कलिकालमें आगमोक्त विधानसे देवताओंकी पूजा करना चाहिये।

“पशुभावः कर्माणि दिव्यभावोऽपि दुर्लभः।

वीरसाधनकर्मणि प्रत्यक्षाणि कस्यो सुमे ॥ १८ ॥

कुलाचारः विना देवि कस्यो सिद्धिर्नायते ॥” (४ यं ब्रह्मसू)

कलियुगमें पशुभाव नहीं होता। फिर देवभाव भी दुर्लभ है। इस युगमें वीरसाधन प्रत्यक्ष फलदायक है। हे देवि ! कलियुगमें कुलाचारको छोड़ दूरे उपायसे सिद्धि मिल नहीं सकती।

महानिर्वाणतन्त्रमें यह भी लिखा है,—जो इन्द्रियोंकी जीत कुलाचारका अनुष्ठान करेगा, जो दयाशौच रड़ेगा, जो शुककी सेवामें तरपेर, पितामाताके प्रति भक्तिमान्, अपनी पत्नीमें अनुत्तम, सत्यव्रत, सत्यनिष्ठ एवं सत्यधर्मपरायण हो ‘कुलसाधन’ कोही सत्य समझेगा, जो हिंसा, मात्सर्य, दश तथा ह्येन न रखेगा और जो कुलाचारके अनुसार स्नान, दान, तपस्या, तीर्थदर्शन, व्रत, तर्पण, गर्भाधान, पित्रश्राद्ध प्रश्रुति करेगा, उसको

कलि पोड़ा पहुँचा न सकेगा। कलिके दापामें एक प्रधान गुण यह निकलता, कि कौलिकोंके सहस्य मात्रसे न्येय फल मिलता है। कलिका तारक ब्रह्मनाम है—

“हरे कृप हरे कृप कृप कृप हरे हरे।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥”

हृदयारदीयमें निम्नोक्त सकल कार्य कलिके लिये निषिद्ध कहे हैं,—समुद्रको यात्रा, कमण्डलुका धारण, पशुवर्ण कन्याका विवाह, देवसे पुत्रका उत्पादन, मधुपकसे पण्डका वध, श्यामिं मांसका दान, वानप्रस्थान्त्रम, अक्षता छोटे भी दत्तकन्याका पुनर्वार दान, दीर्घकाल पर्यन्त ब्रह्मचर्य, नरमेघ, अश्वमेध, महाप्रस्थानगमन, गोमेघ यज्ञ, भाततायी रछते भी ब्राह्मणकी हिंसा, सुरापहण, अग्निहोत्रकी हवनीमें भी सेहली-दाका ग्रहण, (चाटचूट) वृत्त एवं स्वाध्याय सापेक्ष अशौच, सङ्घोष, मरणके अन्तमें प्रायश्चित्तका विधान, संसर्गका दोष लगते भी चौथे प्रश्रुति दोषोंसे मुक्तिताम, दत्तक तथा औरसकी छोड़ अन्य पुत्रका ग्रहण, गुरु एवं स्त्रीका परित्याग, दूधरके लिये आत्मत्याग, उद्दिष्टका वर्जन, दास गोपाल आदिके पत्रका भोजन, गृहस्थके लिये अतिदूर तीर्थकी सेवा, गुरुस्त्री में शिष्यको गुरुवत् वृत्ति, विजातियोंकी आपद्वृत्ति, अश्वस्वनिष्कता, ब्राह्मणका प्रवास, सुखसे अग्निधमन, (आग सुलगाना) दलाकारादि दोषदुष्ट स्त्रीका ग्रहण, सर्वजातिसे यतिका मित्राग्रहण, ब्राह्मणादिके लिये शूद्रादिका पाक, पर्वतके उच्च स्थानसे गिर अथवा अग्निमें पहुँचा पाणका त्याग प्रश्रुति।

शुचिष्ठिर, हरिचन्द्र, सुनिचन्द्र, तेजःशेखर, विक्रमादित्य, विक्रमसेन, लाउसेन, बल्लासेन, देवपाक, भूपाल एवं महीपाल-कई कलियुगके प्रधान राजा और शुचिष्ठिर, विक्रमादित्य, शालिवाहन, विजय, नागार्जुन तथा तत्रि छह राजचक्रवर्ती शककारक हैं*। यह श्लोक है देवगन्धर्वशिष्य। कश्यपके औरस और दत्त

*शुचिष्ठिरके विक्रमशाहिकाकी चर्याशिशो विशयाभिनन्दनः।

इसीसु नागार्जुनमेदिनोपतिवैविः क्रमात्तु वद दत्तकारकाः कस्यो ॥”

(श्रीतिथिदापरच)

वायुसे नामितक 'भो प्रतिष्ठाये नमः', नाभिसे कण्ठ
देय तक 'भो विद्याये नमः', कण्ठसे ललाट तक
'भो शान्त्यै नमः' और ललाटसे ब्रह्मरन्ध्र तक 'भो
शान्ततीताये नमः' मन्त्र द्वारा न्यास कर पुनर्पार
उक्त सकल मन्त्र द्वारा ब्रह्मरन्ध्रसे यथाक्रम पदतल
तक शौट पाते हैं।

कलावत (हि०) कलाधनुश्चो।

कलाप (स० पु०) कलां मातां प्राप्नोति, कला-
प्राप-पण, कला प्राप्यते पनिन, कला-धप-सञ्ज-वा।
१. १. १. १ सन्नुह, टेर। २ मयूरपुच्छ, मोरकी
पुच्छ। ३ मीखला, चन्द्रहार। ४ अलहार, जीवर।

"कण्ठस्य तुलाः सप्तशतसुखं तुलाकामास्य च निचलसा।" (उगार)

१. पू. पूष, तरकश। २. चन्द्र, चांद। ३. चतुर, होशियार
चांदमी। ४. व्याकरण विशेष। कलाप-व्याकरणका
अपर नाम कुमार और कातन्त्र है। कलापचन्द्र
नामक संस्कृत ग्रन्थमें इस व्याकरणको उटपत्तिके
सम्बन्ध पर लिखा है,—

राजा शालिवाहन किसी मन्त्रियोंके साथ जलक्रीड़ा
कारते थे। जलके सेवकसे रानीने रतिके रसमें सुध
बुध मूल राजाको कथा,—'मोदकं देहि देव' अर्थात्
दे देव। सुभपर पानो मत ढाओ। मूर्खता वय
राजानि उक्त स्वरघटित पद न समझ रानीकी एक
मोदक (लड्डू) दिया था। इससे बुद्धिमती रानीने
यह कर मिन्दा उड़ायो—भैरे पति होते भी राजा मूर्ख
हैं। शालिवाहनने भायीकी सब बात शर्वधर्मा गुरुसे
कही थी। फिर शर्वधर्माने उनकी मिथ्याके लिये
कातन्त्र (कलाप-व्याकरण) बनाया। कातन्त्र वा
कलापकी रचनाके सम्बन्धमें एक किम्वदन्ती है।

शर्वधर्मासे शालिवाहनको व्युत्पन्न बनानेके लिये
प्रतिश्रुत हो कुमारकी पाराधना करायी थी। भगवान्
कार्तिकेय पाराधनासे प्रीत हो अपने व्याकरण ज्ञानके
प्राविर्भावको 'सिद्धो वर्षसमाश्रायः' पद्यपादरूप सूत्र
उन्हें प्रदान किया। कुमारसे व्याकरणका प्रथम सूत्र
मिथाने पर इसका दूसरा नाम 'कुमारव्याकरण'
पड़ गया।

दूसरी किम्वदन्ती यह है,—शर्वधर्माने शालिवाह-

नके निकट प्रतिष्ठा कर कुमारकी पाराधना उठायी
थी। कुमार मयूर पर चढ़ उनके समक्ष प्राविर्भूत
हुये। शर्वधर्माने मयूरके कलापदेय पर 'सिद्धो वर्ष-
समाश्रायः' सूत्र लिखा देखा था। यह देखते ही
उनके मनमें व्याकरणका पूर्ण ज्ञान पा गया।

शर्वधर्माने उक्त सूत्रकी प्रथम श्रगा खतन्त्र व्याकरण
बनाया है। मयूरके कलापमें प्रथम सूत्र लिखा रहनेसे
इस व्याकरणका नाम कलाप पड़ा।

कलाप-टोकाकारिके मतानुसार शर्वधर्माने ईषत्
तन्त्र पद्यात् पश्यसूत्रमें यह व्याकरण प्रणयन किया
था। इसीसे इसका नाम कातन्त्र हुआ।

भारतमें कलाप नाम प्रसिद्ध है। वैयाकरण
पाणिनिसे नीचे इसीकी अष्टता मानते हैं। वास्तविक
केवल कलाप व्याकरणकी प्रायोपान्त मन लगाकर
पढ़नेसे विद्यार्थी पण्डित हो सकता है।

शर्वधर्माने कलापमें तीन अंशोंके सूत्र बनाये हैं,—
सन्धि, चतुष्टय और प्राख्यात। उन्हींने कृतसूत्र प्रणयन
नहीं किये।

दुर्गासिंहने कलापकी हृत्ति बनायी थी। इनकी
हृत्ति न लगनेसे कलापव्याकरण सम्पूर्ण और साधा-
रणके लिये सुबोधगम्य कैसे होता। दुर्गासिंहने अपनी
हृत्तिमें असाधारण पाण्डित्यका परिचय दिया है।
वास्तविक उसको देख समतृप्त होना पड़ता है।

दुर्गासिंह द्वि०।

कलाप व्याकरणकी पनिक टोकायें भारतमें प्रच-
लित हैं। उनमें श्योपति-रचित कलापहृत्तिटोका,
त्रिलोचनकृत पञ्जिका, कविराजकृत कलापहृत्ति टोका,
हरिरामकृत व्याख्यासार, रघुनाथमिश्रोमणि रचित
व्याख्या, कातन्त्रचन्द्रिका और लघुहृत्ति प्रसिद्ध है।

• (१) "कातन्त्रको ति त्वि कृत्युपधारणे पुत्रादिवचनाः। तन्माने
व्युत्पन्नाने शब्दा चनेनेति स्वहृददन्मिथ्यानाम् (कलाप ३।३।३) इति
अर्थेने प्रथमः। स प्रायेणैवाहान्नाम् कृत्युगदनेपि चनेने। तेन
तन्मिथि कृत्युपधारणे। ईषत् त्वन् कातन्त्रम्। कृत्युदत्त तन्मन्त्रे परे।
का लोचनेपि इव इति ईषद्वे" कादिम्।" (विश्वोपकृत कातन्त्रवर्षिका)
(२) "ईषत्तन् कातन्त्रम्। ईषत्तन्ने इत्यर्थे वाचकः।" (हरिराम तथा
कातन्त्रचन्द्रिका)

कन्याके गर्भसे इन्होंने जन्म लिया था। ७ एक प्रति प्राचीन ऋषि। इनका नाम ऋक्संहितामें मिलता है। ८ सङ्गीतका अन्तर। ९ शिव। १० वेणुवीरका एक तिलक। इसकी भाङ्गति पुष्पकौ कलिकाकी भाँति रहती है। फिर आदि तथा अन्त सूत्र और मध्य सूत्र होता है। अति सुन्दर देख पड़नेसे इसे 'रसकलि' कहते हैं।

(स्त्री०) ११ कलिका, फूलकी कली।

कलिक (सं० पु०) कली मन्दगमोरो ध्वनिरस्यस्य, कल मत्वर्थे टन् । १ शौचपत्नी, कराकुल या पन-कुलही चिह्निया। २ बंगद्यान्धमेद, बानमें होनेवाला एक चावल।

कलिकर्म (सं० स्त्री०) युद्ध, लड़ाई।

कलिका (सं० स्त्री०) कनिरेव स्याथे कन्—टाप् । १ कली, गुच्छ। इसका संस्कृत पर्याय—पुष्पकोरक, कलि और कली है।

“सुमान्नातरजसा कनिक्कान्कानिः ।
स्य” कदम्बं च किं नवनायिकायाः” (चाण्डिक्यदर्पण)

२ वीणावाद्या मूलदेश, वीन या सितारकी जड़का हिस्सा। ३ रचनाविशेष, एक वनाश्र। तालवाले पदसमूहका नाम कला है। बालायुद्ध रहनेसे ही इस रचनाको कनिका कहते हैं। कनिका छह प्रकारकी होती है,—चण्डवृत्त, दिगादि गणवृत्त, त्रिभङ्गीवृत्त, मध्य, मिय और केवल। चण्डवृत्तमें दशप्रकार संयुक्त वर्ण रहते हैं। मधुर, झिट, विझिट, शिथिल एवं झादि संयुक्त वर्ण जलतथा दोष भेदसे भिन्न हुआ करते हैं। जल तथा मधुर संयोगसे शङ्कर, पद्म और किङ्करकी उत्पत्ति है। झिट संयोगसे टप, कपूर और सर्व वर्ण निरुद्धते हैं। विझिटके संयोगसे भद्र, कल्याण और चित्त बनते हैं। शिथिल संयोगसे पश्य, कश्यप और वश्य उठा करते हैं। फिर झादि संयोगसे मद्र, गुष्ट, सद्र और प्रसद्र पायेजाते हैं। कोई कोई गहरादि शब्दको ही झादि संयुक्त बतता है। दीर्घ-संयोगसे तुङ्ग, पङ्ग, कार्पास, वास्य, वैश्र और वाष्टक प्राप्त होते हैं। चण्डवृत्तमें द्वादशसे चतुःषष्टि पर्यन्त कलाका नियम है। इसमें नृनायिक कर नहीं

सकते। चण्डवृत्त दो प्रकारका होता है—नख और विशिख। फिर नख दोष प्रकारका है। वर्धित, वीरभद्र, समप्र, पच्युत, उत्पल, तुरङ्ग श्रीगुणरति-मातङ्गलेखित और तिलक। नो प्रकारको छोड़ अन्य भेदका नाम प्रायः देखनेमें नहीं पाता। विशिख पांच प्रकारका होता है—पद्म, सुन्द, चम्पक, वज्रुल और वज्रुल। फिर पद्म छह प्रकारका है—पद्मेवह, सितकञ्च, पाण्डुत्पल, इन्दोवर, ब्रह्मणाभोज और कवहार। वज्रुल दो प्रकारका होता है—मासुर और मङ्गल। इसी भाँति चण्डवृत्त बीस प्रकार बनता है। दिगादिगणवृत्त पांच प्रकारका है—कोटक, गुच्छ, सम्पुल्ल, कुसम और गन्ध। त्रिभङ्गी वृत्त दण्डक और विदग्ध भेटसे दो प्रकारका होता है। मियकनिका गद्यसम्बद्धता और समविभक्तिका भेदसे दो प्रकार है। केवला भी दो प्रकारकी है—अक्षरमयी और सर्व-सङ्घो। ४ कन्दोविशेष।

“प्रथमपरचरणमयं श्रयते स यदि मणः । इतरदितरवदितमवि
पदि च सुर्वे चरण दुग्मकमविज्ञतमवरमिति कनिका सा ॥” (इतरवाकर ४ पं०)

प्रथम, द्वितीय एवं चतुर्थ एकद्वय सचपाक्रान्त और तृतीय चरण अविज्ञत रहनेसे कलिका कन्द बनता है।

५ कला, चन्द्रके ज्योतिका अंग।

“तन्मने कनिका अनामकागानिपयः कृताः ।” (विद्याविशिरोमणि)

६ हथिकाली, बिटुभा। ७ शरपुडा, सर्पोंका। ८ इक्षुनीलिका, काली भाड़ी। ९ पुष्पविशेष, एक फूल। १० वाद्यविशेष, एक बाजा। इस पर चर्म चढ़ता था। ११ कलाजात्रो, मंगरेला।

कलिकाता (सं० स्त्री०) बनबना देवी।

कलिकापूर्व (सं० स्त्री०) कनिकया अंशेन लभ्यं अपूर्वम्। कर्मविशेष, एक काम। यह कर्म पूर्वजन्मके कर्मसे कोयो सम्बन्ध नहीं रखता और भायो जन उत्पादन करता है। जैसे दर्श और पौर्णमास याग-का चङ्ग पानेयादि यागसे पूर्ण होता है। इसे चरम भी कहते हैं।

“यद्यथावास्तववृत्तमयं यद्विद्वत्प्रवृत्तमयं तन्म
यत्वे कर्मनरकमहदम्” (कृति)

कलिकार (सं० पु०) कलि कलहं करानि, कलि-

हाली गयी थी। फिर भी प्रमाप मिला, कि सुदूर विगतकाल पर कलादगीमें नगर स्थापित हुआ। ई०के २२ शताब्दमें, टलेमिने यहांकी बादामी, कलकेरी और इन्दी नामक नगरोंका उल्लेख किया है। इन तीनोंमें बादामी वा वातापीपुरी नामक स्थान ही अतिप्राचीन है। पल्लव राजावोंने दुर्मेय दुर्ग बना निरायद प्रवल प्रतापसे राजत्व रखा था। ई०के ६३ शताब्दमें चातुर्व्य राजा १म पुलिकेशीने पल्लवोंको हटा वादामी अधिकार किया। पुलिकेशीके पीछे ७६ ई० तक चातुर्व्यका राज्य चला। फिर राष्ट्रकूट राजा हुये। ८७३ ई०में राष्ट्रकूटवंश गिर जानेसे कलसुरि और इय्याल वल्लाल वंशकी उदारी। उन्होंने ११८० ई० तक राज्य किया। अनन्तर कलादगीमें देवगिरिके यादवोंका शासन लगा। उस समय देवगिरि (वर्तमान दौनताबाद) नगरमें यादव राजावोंकी राजधानी रही। १२८४ ई०की अलाउद्दीनने देवगिरिपर आक्रमण किया। यादववंशीय रामचन्द्र देवगिरिके राजा थे। उन्होंने सुसलमानोंके आक्रमणसे घबरा दिखीके अघीखरकी अधीनता मानी। ई०के १५वें शताब्द यूसुफ् आदिल शाहने दक्षिणापथमें एक स्वाधीन राज्य जमाया। बीजापुर उसकी राजधानी बन गया। विष्णुदेवको।

पहले कलादगीके अनेक बौद्धरूप चीन-परि-ब्राजक यष्ट्र सुयाङ्गने आकर देखे थे। उन्होंने इस राज्यको ६००० लि (कोई सड़ें चार सौ कोस) विस्तृत लिखा है।

इस जिल्लेमें भोमा, छप्पा, घोन, घाटप्रभा और मासप्रभा नदी प्रवाहित है। सिवा इसके और भी कितनी ही सुदूर स्रोतस्वती विद्यमान हैं। घोनका जल बहुत खारी, किन्तु दूसरी नदियोंका मीठा है।

कलादगीमें लोहा, स्लेट (तख्तौका पत्थर), कासापत्थर, चना, लाल बिक्षौर प्रकृति खनिज द्रव्य उत्पन्न होते हैं।

ऊपिमें ल्वार, वाजरा, गेहूं और कपासकी उपज अधिक है। फिर अण्डे, अलसी, तिल और कुसुमकी भी कोई कमी नहीं। वसन्तके आगममें कुसुमका सुनहला फूल खिल जाता है।

बनमें व्याघ्र, शूकर, हक (सेड़िये), ग्वाल और हरिय रहते हैं।

जलवायु अत्यन्त मन्द नहीं। फिर भी यथा-कालको हृष्टि बन्द रहनेसे अच्छा अथ कम उपजता, जिससे दुर्भिक्ष पड़ता है। १३८६ ई०से १४०६ ई० तक बहुवर्षीयापी दुर्भिक्ष लगा था। उससे कलादगी एककाल ही उत्पन्न हुआ। दूसरे भी कई दुर्भिक्ष पड़े। १७८१ ई०में अन्नके अभावसे सैकड़ों नरनारियोंने प्राण छोड़ा। इस अकालको लोग कद्दासरूपी महामारी कहते हैं। वास्तविक अकालमें मरे अस्थस्य स्त्रीपुरुषोंका कद्दास भूगर्भ खोदते समय आज भी मिलता है।

कलाघर (सं० पु०) कला: घरति, कला-घ-भच् । १ चन्द्र, चांद । २ चतुःपटिकलाभिन्न व्यक्ति, चौंसठ-कला जाननेवाला । ३ गिव । ४ अन्वेषिणीय । यह दण्डकका भेद है। इसके प्रत्येक चरणमें १५ गुण और १५ लघुके पीछे एक गुण लगता है।

कलाधिक (सं० पु०) कुङ्कुट, सुरगा ।

कलानक (सं० पु०) गिवके एक अनुचर ।

कलानाय (सं० पु०) १ चन्द्र, चांद । २ गन्धर्वविशेष ।

इन्होंने सोमेश्वरसे सङ्गीत सीखा था।

कलानिधि (सं० पु०) कला: निधीयन्ते ऽस्मिन्, कला-नि-धा-कि । १ चन्द्र, चांद । २ चतुःपटिकलाभिन्न व्यक्ति, हुनरमन्द ।

कलानुनादी (सं० पु०) कलं अनुनदति, कल-अनु-नद्-पिनि । १ अथ निकालते निकालते गमनकारी, बोलते बोलते चलनेवाला । २ अम्बर, भौरा । ३ कलविद्, गौरवा । ४ चटक, चिह्न । ५ कपिचल, एक चिह्निया । ६ चातक, पपीहा ।

कलान्तर (सं० स्त्री०) अन्था कला अन्थः, सुप्सुपेति समासः । १ सामहृष्टि, सूद, व्याज । २ चन्द्रकी अन्य कला ।

“पुरोच चारकनदान् विमेषान् ज्योत्स्नानरादीन् कलान्यासि ।”

(कुमार ११४१)

कलान्यास (सं० पु०) कलानां न्यासः, इ-तत्त्वं-तन्त्रोक्त न्यासविशेष । गिवके शरीरपर कलान्यास करना चाहिये । पादतलसे जातुक ‘भौं नृहल्यं नमः’

वत्य, पित्तदाहघ्न, समर्पण और वीर्यकर होता है। (राजनिष्य) ८ चातक, पपीहा। ८ विभीतक हृत्, बहेड़ेका पेड़।

कलिङ्गज (सं० पु०) इन्द्रयव।

कलिङ्गड़ा (हिं० पु०) कलिङ्ग, एक राग। यह दीपक रागका पञ्चम पुत्र है। रात्रिके चतुर्थ प्रहर इस रागकी गाने हैं। कलिङ्गड़ेमें साती स्वर लगते हैं। इसका स्वरपाठ इस प्रकार चलता है—म ग ऋ स स ऋ ग म प ध नि सा।

कलिङ्गड़ौ (सं० स्त्री०) दुर्गा।

कलिङ्गट्ट (सं० पु०) कुटजहृत्, कुटकीका पेड़।

कलिङ्गयव (सं० पु०) इन्द्रयव।

कलिङ्गवोज (सं० स्त्री०) इन्द्रयव।

कलिङ्गशण्डी (सं० स्त्री०) कलिङ्गदेशकी शण्डी, एक सींठ। यह तिक्त, बलकर, अग्निदीपन, भोजोर्णहर और बालकानिसारघ्न होती है। फिर यवघार मिलाकर खिलानेसे कलिङ्गशण्डी गर्भिणीकी वान्ति दूर कर देती है। (श्वित्शक्ति)

कलिङ्गा (सं० स्त्री०) काय सुखाय लिङ्गमस्याः, कलिङ्ग-टाप् बहुव्री०। १ नारी। २ लहता, तेवरी। ३ कर्कटशङ्खी, ककड़ीसींगी। ४ सुन्दर स्त्री, खूबसूरत औरत। ५ भोजराजकी पत्नी। यह दुषन्तकी माता थीं। (शक्ति प्रयाग १८। १८)

कलिङ्गादिकपाय (सं० पु०) कलिङ्ग, पटोलपत्र और कटरोहिणीका पाचन। यह पित्तज्वरको दूर करता है। (चक्रधन)

कलिङ्गाद्यगुड़िका (सं० स्त्री०) ज्वरातिसार रोगका एक औषध, बोखारके दस्तोंकी एक दवा। कलिङ्ग (इन्द्रयव), विष्य, जम्बू, भान्न, कपिल्य, रसाञ्जन, लाक्षा, हरिद्रा, ज्ञीवेर, कटफल, शकनासिका (शोषाकत्वक्), लोध, मोचरस, शङ्ख, धातकी और वटशुक्रक (वरगदकी बो) बराबर बराबर तण्डुलौदकसे रगड़ बटी बनासे और छायामें सुखाते हैं। तण्डुलौदक षट्गुण लसमें सावल धोनेसे होता है। इस गुड़िकाके सेवनसे ज्वरातिसार, शूल, अतिसार और रक्तदीप निवारित होता है। (शक्तिप्रयागदीप)

कलिङ्गिका (सं० स्त्री०) कलिङ्गगङ्गा, कामरूपकी एक नदी। (कानिकापुराण)

कलिङ्ग (सं० पु०) कं वायुं लज्जति तिरस्करोति रोधनेन इति शेषः, क-लज्जि-भण् निपातनात् साधुः। १ कट, चटाई। इसका अपर संस्कृत नाम कलिङ्ग है। २ कुलिङ्गन, कुलीजन।

कलिङ्गम (सं० पु०) हृत्त्वविशेष, एक पेड़।

कलित (सं० त्रि०) कल-क्त। १ विदित, जाहिर। २ प्राप्त, मिला हुआ। ३ भेदित, अलग किया हुआ। ४ गणित, गिना हुआ। ५ उपार्जित, कमाया हुआ। ६ अनुगत, दबाया हुआ। ७ भायित, सहारा पकड़े हुआ। ८ विचारित, समझा हुआ। ९ बह, बंधा हुआ। १० उक्त, कहा हुआ। ११ शब्दोत्, लिया हुआ। १२ हृत, पकड़ा हुआ।

“करकलितकपातः कुप्यती दृष्टपाणिः” (भैरवध्यान)

(स्त्री०) भावे क्त। १३ ज्ञान, समझ।

कलितक (सं० पु०) विभीतक हृत्, बहेड़ेका पेड़।

कलिट्ट, कलिद्रुम देखो।

कलिद्रुम (सं० पु०) कलिनो आयितो द्रुमः, मध्व-पटलो०। १ सरल देवदारु, सीधा देवदार। २ भङ्गा-तक हृत्, भिलावैका पेड़। ३ विभीतक हृत्, बहेड़ेका पेड़।

कलिनाथ (सं० पु०) कलिः कलिरेव वा नाथः। १ कलि-युगके प्रभु, कलि। २ सुनिविशेष। इन्होंने एक गन्धर्वदेव प्रणयन किया था।

कलिन्द (सं० पु०) कलिं ददाति द्यति वा, कलि-दा दो वा खच्-सुम्। १ सूर्य, सूरज। २ विभीतक हृत्, बहेड़ेका पेड़। ३ पर्वत विशेष, एक पहाड़। इसी पर्वतसे यमुना नदी निकली है। (राजालय, कलिध्या ३० ५०)

कलिन्दक (सं० पु०) १ कर्कारु, पेठा, विनायती कुम्हड़ा। २ तरम्बुज, तरबूज, कर्कोदा।

कलिन्दकन्या (सं० स्त्री०) कलिन्दस्य पर्वत विशेषस्य कन्या इव। यमुना नदी।

“कलिन्दकन्या सप्त री गतापि गङ्गोर्निचं मत्त जलैर भाति” (रघुवंश)

कलिन्दजा, कलिन्दमैत्रा देखो।

कलिन्दनन्दनी (सं० स्त्री०) कलिन्दं नन्दयति, कलिन्द-

लानुषे नामितक 'भो प्रतिष्ठायै नमः'. नामिसे कण्ठ
देय तक 'भो विद्यायै नमः', कण्ठसे ललाट तक
'भो शान्त्यै नमः' और ललाटसे ब्रह्मरन्ध्र तक 'भो
शान्ततीतायै नमः' मन्त्र द्वारा न्यास कर पुनर्पार
कला सकल मन्त्र द्वारा ब्रह्मरन्ध्रसे यथाक्रम पदतल
तक लौट आते हैं।

कलावत - (हि०) कलावान् शब्दो।

कलाप (सं० पु०) कानां मात्रां चाप्रोति, कला-
भाष्-पण, कला भाष्यते चनेन, कला-भाष्-घञ्-वा।
१ नया वा शाए। २ समूह, टेर। २ मयूरपुच्छ, मोरकी
पुच्छ। ३ मेखला, चन्द्रहार। ४ फलदार, जेवर।

“कथञ्च नृपाः सनन्धुरस्य कृत्वाकलापस्य च निरवस्य।” (उगार)

५ गूण, तरकश। ६ चन्द्र, चांद। ७ चतुर, होमिया
आदमी। ८ व्याकरण विशेष। कलाप-व्याकरणका
अपर नाम कुमार और कातन्त्र है। कलापचन्द्र
नामक संस्कृतः पद्यमें इस व्याकरणको उदपतिके
सम्बन्ध पर लिखा है,—

राजा शालिवाहन किसी सहिषोके साथ जलक्रीड़ा
करते थे। जलके बीचमेंसे रानीने रतिके रसमें सुध
बुध मूल राजाको कष्टा,—“मोदकं देहि देव” अर्थात्
हे देव! मुझपर पानी मत लाओ। मूर्खता वय
राजाने उक्त खरघटित पद न समझ राणीको एक
मोदक (लड्डू) दिया था। इससे बुद्धिमती रानीने
यह कर निन्दा उड़ायी—मेरे पति होते भी राजा मूर्ख
हैं। शालिवाहनने भार्याको सब बात गर्भवर्मा गुप्तसे
कहीः थी। फिर गर्भवर्माने उनकी मित्राके लिये
कातन्त्र (कलाप-व्याकरण) बनाया। कातन्त्र वा
कलापकी रचनाके सम्बन्धमें एक किम्बदन्ती है।

गर्भवर्मासे शालिवाहनको व्यापक बनानेके लिये
प्रतिवृत्त हो कुमारकी पाराधना लगायी थी। भगवान्
कार्तिकेय पाराधनासे प्रीत हो अपने व्याकरण ज्ञानके
पाविर्भावको 'सिद्धो वर्षममात्रायः' पद्यपादरूप सूत्र
उन्हें प्रदान किया। कुमारसे व्याकरणका प्रथम सूत्र
मिलने पर इसका दूसरा नाम 'कुमारव्याकरण'
पड़ गया।

दूसरो किम्बदन्ती यह है,—गर्भवर्माने शालिवाह-

नके निकट प्रतिष्ठा कर कुमारकी पाराधना उठायी
थी। कुमार मयूर पर चढ़ उनके समक्ष पाविर्भूत
हुये। गर्भवर्माने मयूरके कलापदेय पर 'सिद्धो वर्ष-
ममात्रायः' सूत्र लिखा देखा था। यह देखते ही
उनके मनमें व्याकरणका पूर्ण ज्ञान आ गया।

गर्भवर्माने उक्त सूत्रको प्रथम लगा स्वतन्त्र व्याकरण
बनाया है। मयूरके कलापमें प्रथम सूत्र लिखा रहनेसे
इस व्याकरणका नाम कलाप पड़ा।

कलाप-टोकाकारोंके मतानुसार गर्भवर्माने ईषत्
तन्त्र अर्थात् षष्पसूत्रमें यह व्याकरण प्रणयन किया
था। इसीसे इसका नाम कातन्त्र हुआ।

भारतमें कलाप नाम प्रसिद्ध है। वैद्याकरण
पाणिनिसे नोचे इत्थीकी अष्टता मानते हैं। वास्तविक
केवल कलाप व्याकरणको पाश्चोपात्त मन लगाकर
पढ़नेसे विद्यार्थी पण्डित हो सकता है।

गर्भवर्माने कलापमें तीन अंशोंके सूत्र बनाये हैं,—
सन्धि, चतुष्टय और अख्यात। अर्हने जतुसूत्र प्रणयन
नहीं किये।

दुर्गासिंहने कलापकी हृत्ति बनायी थी। उनकी
हृत्ति न लगनेसे कलापव्याकरण सम्पूर्ण और साधा-
रणके लिये सुबोधगम्य कैसे होता। दुर्गासिंहने अपनी
हृत्तिमें असाधारण पाण्डित्यका परिचय दिया है।
वास्तविक उसको देख समस्तजत होना पड़ता है।

दुर्गासिंह शब्दो।

कलाप व्याकरणकी अनेक टोकायें भारतमें प्रच-
लित हैं। उनमें ओपति-रचित कलापहृत्तिटोका,
त्रिकोचनकृत पञ्चिका, कथिराजकृत कलापहृत्ति टोका,
हरिरामकृत व्याख्यासार, रघुनाथगिरोमणि रचित
व्याख्या, कातन्त्रचन्द्रिका और लघुहृत्ति प्रसिद्ध है।

• (१) “कातन्त्रं हि तत्रि कुटुम्बपरति प्रप्रादिविक्रमः। तन्नामो
व्युत्पाद्यते शब्दाः चर्चनेति खरघटनिष्पादनात् (अक्षर ३४७१) इति
खरघटिन् प्रथयः। स चानेकार्यनाशादुत्तो व्युत्पाद्यते इति चर्चते। तत्र
सकसिद्ध एतदुत्पादने। ईषत् तत्र कातन्त्रम्। उपररथ तत्रान्ते परे।
आ लोचदथ इष चर्चते इषदथे चादिः।” (विकीचनकृत कातन्त्रचन्द्रिका)
(२) “ईषतनां कातन्त्रम्। ईषत्तन्तो लोचो वाचः।” (हरिरामकृत
कातन्त्रचन्द्रिका)

नन्द-पिनि-डीपू । यमुना नदी ।
 कलिनद्रशैलजा (सं० स्त्री०) कलिनद्रगलात् जायते
 कलिनद्र-शैल-जन-ड-टापू । यमुना नदी ।
 कलिनद्रशैलजाता, कलिनद्रशैलजा देखी ।
 कलिनद्रिका (सं० स्त्री०) कलिं यति नागयति, कलि-
 दो-खच्-सुम् स्वार्ये कन्-टापू भूत इत्सम् । सर्वविद्या,
 द्विकमत ।
 कलिन्दी (हिं) कलिन्दी देखी ।
 कलिपुर (सं० स्त्री०) १ पञ्चराग मणिकी एक पुरातन
 खान, मानिककी एक पुरानी खान । २ पञ्चराग मणि
 भेद, किछी किछाका मानिक । इसे लोग मध्यम
 समझते थे ।
 कलिप्रद (सं० पुं०) मद्यशाला, शराखाना ।
 कलिप्रिय (सं० पुं०) कलिः कलहः प्रियो यस्य,
 बहुव्री० । १ कलहप्रिय नारद मुनि । “कलिप्रियस्य
 प्रियमित्यवनेः” (रघुवंग) २ खानर, बन्दर । ३ विभी-
 तकहृत्, बड़ेडैका पेड़ । (त्रि०) ४ दुष्टप्रकृति,
 बदमिजाज, भ्रमण्डाल ।
 कलिफल (सं० स्त्री०) विभीतक फल, बड़ेड़ा ।
 कलिम (सं० पुं०) शिरीष हृत्, सिरिसका पेड़ ।
 कलिमल (सं० स्त्री०) पाप, गुनाह ।
 कलिमार, कलिमारक देखी ।
 कलिमारक (सं० पुं०) कलिना स्वदेश्य कण्टकेन
 मारयति, कलि-म्-विष्-ग्लल् । १ पूतिकरञ्ज,
 करील । २ कण्टकवान् करञ्ज, कांटीला करौदा ।
 कलिमाल, कलिमालक देखी ।
 कलिमासक (सं० पुं०) कक्षीनां कण्टकानां मासा
 यत्र, कलि-मासा-क । पूतिकरञ्ज, करील ।
 कलिमास्य (सं० पुं०) कक्षीनां मास्यं यत्र, बहुव्री० ।
 पूतिकरञ्ज, करील ।
 कलिया (सं० पुं०) उतपन्न मांस, घीमें भूना हुआ
 गोश्त । इसमें मसालेदार भोजन रहता है ।
 कलियाना (हिं० त्रि०) १ क्लीं भागा, गुखा फटना ।
 २ पक्ष भागा, नदी पर निकलना ।
 कलियारी (हिं० स्त्री०) कलिहारी, एक लहरोला
 पौदा । इसका हिन्दी पर्याय—करियारी, करिहारी,

लांगुली और कुलहारी है । इसे बंगलामें सस-
 कम्बल, सन्थालीमें सिरिक समनो, पञ्चाशोमें सुलिम,
 दक्षिणीमें नातका बहनाग, मराठीमें करियानाग, मार-
 वाड़ीमें इनदर्द, तामिलमें कसैपे ककिगङ्ग, तेलगुमें
 कलप्पागद्द, मलयमें वेनतनी, ब्राह्मोंमें डिमदोन और
 सिंहलीमें नैयङ्गल कहते हैं । (Gloriosa superba)
 यह एक शिवाल चोपधि है । करियारी घपनें
 पत्तोंकी नोकके सहारे खपरको चढ़ती है । भारत,
 द्रष्ट और सिंहलके धनमें यह खभावतः उत्पन्न होती
 है । वर्षा ऋतुके समय इसमें सुन्दर और सुदीर्घ
 पुष्प धाता है । पत्र पतले और नोकदार होते हैं ।
 मूल ग्रन्थिविभिन्न रहता है । पुष्प भाङ्गने पर मिर्च-
 जैसा फल लगता है । पक्ष फलके चत्वारत जोज
 होता है । इसका मूल विपाक है ।
 करियारीकी लड़की भारतीय वैद्य और सुसल-
 मानी हकीम चोपधमें व्यवहार करते हैं । विच्छू और
 कनखजूरके काठने पर इसका पुलटिस चढ़ता है ।
 कलियुग (सं० स्त्री०) कलिरेव युगम् । चतुर्थ युग ।
 कलियुगाद्या (सं० स्त्री०) कलियुगस्य षाद्या षाद्य-
 तियिः, इ-तत् । माघे पूर्णिमा, माघकी पूरनमाघी ।
 इसी तिथिकी कलियुग श्राग या ।
 कलियुगालय, कलियुग देखी ।
 कलियुगावास, कलियुग देखी ।
 कलियुगी (सं० त्रि०) १ कलियुगमें उत्पन्न होनेवाला ।
 २ पापो, बुरा ।
 कलियु (सं० त्रि०) कल्पते मियरते, कलि-इत्सच् ।
 कलिहारी (सं० त्रि०) कलिहारी (सं० त्रि०) १ मियित,
 मिना हुआ । २ गहन, घना । ३ पाच्छय, भरा हुआ ।
 (स्त्री०) ४ समूह, डेर ।
 “वशात् कलिहारीं बुद्धिविपरिचयि ।” (शोभा १ । २१)
 कलिवल्य (सं० त्रि०) कलियुगमें न करने योग्य,
 जिसे वर्तमान युगमें बचाना पड़े । चन्द्रमेधादि यज्ञ,
 देवरादिसे नियोग, सन्ध्या, मांस-विप्टदान प्रवृत्ति
 कर्म पन्थ युगमें कतेय रहते भी कलिवमें वर्ण्य है ।
 कलिवल्लभ—चालुखराज भूयका एक नाम ।

८ ग्रामविशेष, एक गाँव । (भाष्यत २।१५६-) १० पञ्च
विशेष, एक द्विधारा । (भारत. ४।१।१८) ११ वाण, तीर ।
१२ भित्तु, गाय । १३ व्यापार, काम ।

“दबदहनस्याना कलापायते ।” (साहित्यदर्पण)

कलापक (सं० पु०-स्त्री०) कलाप संघायां कन् ।
१ हस्तीका गजबन्ध, हाथीका गेलावां । स्वार्थे-कन् ।
२ कलाप । कलाप दीप्ति ।

यद्यन् काले भयुराः कलापिनो भवन्ति सकलापि
तद्यन् काले देयं षट्पम्, कलापिन्-वुन् । ३ ऋषि-
विशेष । ४ कविताविशेष, किंशो क्लिप्तकौ शायरी ।
चार प्रकारकी कविता एकत्र मिल जानेसे कलापक
कहाता है,—

“कन्दोऽथपदे पद्यं तिमं केन च तुल्यकम् ।

द्वाम्नायु प्रगमनं सन्दानितकं विमिरिष्यते ।

कलापकं चतुर्भिः पद्यभिः कृषकं मतम् ।” (साहित्यदर्पण ६।१।२८)

सन्दानितकका नामान्तर विशेषक है । किंशो
किंशो ग्रन्थमें 'त्रिभिः श्लोकैर्विशेषकम्' पाठ मिलता है ।
कलापग्राम (सं० पु०) कलापनामकी ग्रामः, मध्यपद-
स्त्री० । ग्रामविशेष, एक गाँव । महाभारतमें लिखा—
कलापग्राम हिमालयके उत्तर वशु है ।

“दिग्बन्धनातिशय कलापग्रामाविश्वम् ।” (सवित्र प्रब्रह्मण्य १।१।११)

कलापच्छन्द (सं० पु०) सुक्ताका एक आभूषण,
मोतियोंका एक गड़ना । इसमें मोतियोंकी चौबीस
लड़ियां लगती हैं ।

कलापष्टी (हिं० स्त्री०) नोकाकी पटरियोंमें शण
प्रभृतिका प्रवेशनकार्य, जहाजकी पटरियोंमें सन्
वगैरजका ठंसा जाना । यह शब्द पोर्तगोज 'कल-
फेटर'का अपभ्रंश है ।

कलापद्वीप (सं० पु०) कलापः तवामकी ग्रामः द्वीप
द्वय, उपमितसं० । कलापग्राम, एक पुराना बसती ।
कलापद्वीपमें सोमवंशीय देवर्षि और सूर्यवंशीय
सुदर्शन—दो ऋषि तपस्या करते हैं । कलियुगके
पन्तमें यहाँ दोनो ऋषि चन्द्र और सूर्यवंश पुनः
जन्मलेने । (भारत)

कलापगिरा (सं० पु०) एक मुनि ।

कलापा (सं० स्त्री०) षड्वहारीके तीन कारणका स्थान ।
कलापानुसारी (सं० पु०) कलापव्याकरणका मतानुयायी ।
कलापिनी (सं० स्त्री०) कलापयन्त्रः षट्स्यसाम्,
कलाप-इनि-डोप् । १ रात्रि, रात । २ नागरसुस्ता,
नागरमोघा । ३ मयूरी, मोरनी ।

कलापी (सं० पु०) कलापी इत्यस्य, कलाप-इनि ।
१ षट्स्य ह्रस्व, पीपलका पेड़ । २ मयूर, मोर ।
३ कोकिल, कोयल । ४ तूष् वाणादिधारी, तरकश
तीर-धगैरह रखनेवाला । ५ कलाप व्याकरणा-
ध्यायी । ६ वैशम्पायनके एक छात्र । ७ मयूरके पल
फेलाकर नाचनेका समय ।

कलापूर (सं० पु०-स्त्री०) वाद्ययन्त्रविशेष, एक बाजा ।
कलापूर्णे (सं० पु०) कलाभिः पूर्णः, इ-तत् । १ चन्द्र,
चाँद । २ चतुःषष्टि कलाभिश्च, हुनरमन्द । ३ अंग-
मात्रसे परिपूर्ण, एक दिक्से भरा हुआ ।

कलावतून (तु० पु०) १ स्वर्ण वा रौप्यमय सूत्र, सोने
या चाँदीका तार । यह शंभुपर चढ़ाकर लपेटा
जाता है । २ कलावतूनका फोता । यह लचकेसे
पतला रहता और कपड़ेके किनारे पर टंकता है ।

कलावतूनी (तु० वि०) स्वर्ण रौप्य प्रभृतिके सूत्रसे
निर्मित, कलावतूमें तैयार किया हुआ ।

कलावत्तू (हिं०) कलामतून देखो ।

कलावाज (हिं० वि०) नटक्रियाकारक, कला खाने-
वाला, जो सफाईसे उछलता कूदता हो ।

कलावाजी (हिं० स्त्री०) १ नटविद्या, उछलने
कूदनेका हुनर, टेकलो । २ नृत्यादि, नाच वगैरह ।

कलाबौन (हिं० पु०) ह्रस्वविशेष, एक पेड़ । यह
श्रीहृष्ट, चट्टग्राम और ब्रह्मदेशमें उपलब्धता है । उँचाई
४०, ५० फीट रहती है । फलका बीज सुगरा चावल
या कलौची कहाता है । इसका तेल चर्मरोग पर
चलता है ।

कलाभृत् (सं० पु०) कलां विभर्ति, कला-भृ-क्तिप
तुगागमय । १ चन्द्र, चाँद । २ गीतादि कलाभिश्च,
हुनरमन्द ।

कलाम (सं० पु०) १ वाक्य, शुभला । २ कथन,
वात । ३ प्रतिज्ञा, वादा । ४ वक्तव्य, एतेराज ।

कलिविक्रम—दक्षिणापथके एक प्राचीन चालुक्य राजा।
इनका अपर नाम त्रिभुवनमल्ल या विक्रमादित्य (४४^थ)
था। यह आद्यवमल्लके पुत्र रहे। इनकी राजत्वका
काल संवत् ८८०—१०४८ था।

कलिविष्णुवर्धन—पूर्व चालुक्यराज विजयादित्य नरेन्द्र
मृगराजके पुत्र। इन्होंने ६६ वर्ष राजत्व किया।

कलिहृद्य (सं० पु०) कलेशाश्रयरूपी हृद्य; मध्यपद-
श्लो०। विभीतक हृद्य, बर्हेडेका पेड़।

कलिसंशय (सं० पु०) कले; संशय; आवेश; ६-तत्।

१ शरीरमें कलिका प्रवेश, पापमें पड़नेकी हालत।

२ कलिकी आकृति, गुनाहकी मूर्त।

कलिहारी (सं० स्त्री०) कलि हरति, कलि ह-प्रष्-
ङ्गीप्। साङ्गली, करियारी। करियारी देखो।

कली (सं० स्त्री०) कलि-होप्। कलिका, गुच्छ।

कली (हिं० स्त्री०) १ अक्षतयोनि कन्या, वाकरा।

२ पचीका नया पर। ३ वस्त्रविशेष, एक कपड़ा।

यह तिकोनी बटती और अंगरखे, कुरखे, पायलामे

पगौरहमें लगती है। ४ हुक्के नीचेका हिस्सा।

इसमें गड़गड़ा लगता और पानी रहता है। ५ वैष्णवी

या एक तिलक। ६ कुर्छ, पत्थर या सीपका फूँका

हुवा टुकड़ा। इसीसे चूना बनता है।

कलीदा (हिं० पु०) तरम्बुज, तरबूज।

कलील (अ० वि०) रत्न, थोड़ा, कम।

कलीसिया (हिं० स्त्री०) ईसायियों या यहूदियोंकी

धर्ममण्डली। यह यूनानी 'इकलीसिया' शब्द का

अपभ्रंश है।

कलु (सं० पु०) गहूँशाखि, किसी किसमका धान।

कलु—भासामके गारो पर्वतकी एक नदी। यह तुरा

नामक स्थानसे निकल ब्रह्मपुत्र नदमें जा गिरी है।

कलुक (सं० पु०) वायुविशेष, एक बाजा।

कलुका (सं० स्त्री०) १ शृङ्गा, शरावखाना।

२ उरुका, छत्पात, शहाब-साजिध, टूटता तारा।

कलुध (हिं०) कहर देखो।

कलुधारा (हिं०) कलुधरा देखो।

कलुषी (हिं०) कलुषी देखो।

कलुवावीर (हिं० पु०) देवताविशेष। इनकी दोहाई

सावरी मन्त्रमें लगती है। यह जादू टोनेके प्रधान
देव है।

कलुप (सं० स्त्री०) कं सुखं लुपति हिनस्ति, क-लुप्-

भण् काल-उपच् वा। पुनर्हितनिष् सपच्। सप ४। ७।

१ पाप, गुनाह। २ मलिनता, मैलापन। "विकल्-

कलुषमन्त्रः शालिपका धरिती" (कलुषधर) (पु०) कल्-

जलस्य लुपः हिंसक आविकलकारकः, क-लुप-क।

३ महिप, मैसा। ४ मण्डलिसर्प। ५ क्रोध, गुस्सा।

(त्रि०) ६ बह, बंधा-हुवा, जो बहता न हो।

७ निन्दित, बदनाम, खराब। ८ कपायित, कसेला।

९ दुःखित, अफसुर्दा। १० लुब्ध, घबराया हुआ।

११ असमर्थ, नाताकृत।

"भारतवीरकलुषा दक्षिणरात्री" (१४ ३। ४)

कलुपता (सं० स्त्री०) १ मलिनता, मलापन। २ अन्ध-

कार, अंधेरा। ३ लुब्धता, घबराहट।

कलुषमस्त्री (सं० स्त्री०) जिङ्गिनी, मलीठ।

कलुषयोनि (सं० त्रि०) वर्षासङ्कर, नुरफेराम, दोगला।

कलुपित (सं० त्रि०) कलुषमण्ड सञ्जातः, कलुप-

इतच्। १ पापशुल, गुनाहगार। २ दूषित, खराब।

३ मलिन, मैसा। ४ कपायित, कसेला। ५ बह,

बंधा हुआ। ६ दुःखित, रक्षीदा। ७ लुब्ध, घबराया

हुवा। ८ असमर्थ, नाताकृत।

कलुपी (सं० त्रि०) कलुषमस्यास्ति, कलुष-इनि।

१ पापी, गुनाह करनेवाला। २ मलिन, मैसा रहने-

वाला।

कलुटा (हिं० वि०) अत्यन्त क्षयवर्ष, निहायत काल।

कलुना (हिं० पु०) सूक्ष्म धान्य विशेष; एक मोटा

धान। यह पक्ष्माधमें होता है।

कलुतर (सं० पु०) देशविशेष, एक सुख।

कलेज (हिं० पु०) १ भोजन विशेष, एक खाना।

यह सपु रहता और प्रातःकाल जलपानके समय

खसता है। २ विवाह होने समय बरका एक भोजन।

यह पाणिप्रहण होनेके तीसरे और चौथे दिन सन्ध्या

समय किया जाता है। विवाहमें प्रथम दिवस पाणि-

प्रहण होता है। दूसरे दिन रात को कक्षी रखी

खाने वरपचीय लोग जाते हैं। तीसरे और चौथे

कलामक (सं० पु०) कलाम-कमि प्रयोदशदिव्वात्
साधुः । कलामधान्य, लड्डहन ।

कलामोषा (हि० पु०) धान्यविशेष, किसी किष्कका
धान । यह प्रधानतः बङ्गालमें होता है ।

कलाम्बि, कलामिका देखो ।

कलाम्बिका (सं० स्त्री०) कला अर्थः विकायते
प्रयुज्यते प्रस्थाम्, कला-विके-क-टाप् प्रयोदशदिव्वात्
सुम् । १ ऋणदान, कर्ज देनेकी इज्जत । २ हृदि-
कीविका, सूटधोरी ।

कलाय (सं० पु०) कला अर्थः, कला-अय-अण् ।
शिवीधान्यविशेष, मटर । (Pisum sativum)
इसका संस्कृत पर्याय—सतीलक, हरणु, खण्डिक,
त्रिपुट, अतिवर्तल, मुण्डचणक, शमन, नीलक, कण्ठी,
सतील, हरणुक, सतौन और सतौनक है । भाव-
प्रकाशके मतसे यह मधुररस, पाकमें मधुर, रुच और
वायुवधक होता है ।

कलायका शाक ईपत् कवाययुक्त, मधुररस, रुच,
भेदक और वायुप्रकापक है । (शकनिष्य)

कलायक (सं० पु०) कलामशालि, लड्डहन । यह
किञ्चित् कषाय, मधुर, रक्तप्रमाणितजनक, बल्य, ईपत्
वातल, पित्तघ्न और सुहृत्समानरूप होता है । (शनिचिन्ता)

कलायका (सं० स्त्री०) १ मत्स्याची, मछरिया ।
२ गण्डदूर्वा, पानीपर होनेवाली एक दूब ।

कलायखण्ड (सं० पु०) वायुरोगभेद, सावकी एक
बीमारी । इस रोगसे मनुष्य गमनारम्भमें खण्डकी
भांति लड्डखड्डाने लगता है । कारण उसकी मन्त्रिका
प्रबन्ध टोला पड़ जाता है । (अश्न) खण्ड और
पङ्कती भांति इसकी भी चिकित्सा करना चाहिये ।
कलायखण्ड रोगमें तैल लगानेसे बड़ा उपकार होता है ।

कलायखण्ड, कलायखण्ड देखो ।

कलायन (सं० पु०) कलाना नृत्यगीतादीनां प्रयत्नं
प्राप्तियंत्र, बड्डो । नर्तक, तलवारकी धारपर
नाचनेवाला ।

कलायशाक (सं० स्त्री०) शाकविशेष, मटरका
शाक । यह भेदक, लघु और त्रिदोषकी जीतनेवाला
है । (भावप्रकाश)

कलायसूप (सं० पु०) कलाययुक्त सूप, मटरका
भोल या रसा । यह लघु, पाष्ठी, सुगीतल, रुच्य और
पित्त, शरोचक तथा कफनाशक होता है । (वैद्यकनिष्य)

कलाया (सं० स्त्री०) कलाय-टाप् । १ गण्डदूर्वा,
पानीपर होनेवाली एक दूब । २ अर्द्धदेकी । ३ अर्द्ध-
दूर्वा, सकेद दूब । ३ लघुचणक, काला चना ।

कलार (हि० पु०) कण्ठपाल, कलवार ।

कलाबड़ा (सं० स्त्री०) अर्द्धदेतकी बृह, पोला केपड़ा ।

कलाल (हि० पु०) कल्यपाल, शराब बेचनेवाला
कलवार ।

कलालाप (सं० पु०) कलं मधुरासुटं पालपति,
कल-पाल-अण्-अण् । १ भ्रमर, शूजनवाला भौरा ।
कर्मधा० । २ मधुर भालाप, मोठा बीती । (त्रि०)
३ मधुर भालापकारी, शूजनेवाला ।

कलावती (सं० स्त्री०) कलाः सङ्गोतादयः सन्ति
प्रस्थाम्, कला-मतुप् ङीष् मध्य वः बहुव्री० । १ तुम्बु, रु
नामक गन्धर्बकी बीया । २ दृमिल राज्ञीकी पत्नी ।
३ राक्षिकाकी माता । ४ अक्षरविशेष, कोई परी ।
५ गङ्गा । “ इत्यंगना कलावती । ” (काशी १८००) ६ दोला
विशेष । तन्त्रसारमें इसका नियम लिखा है,—
शिवकी उपवाची रुच नित्यक्रिया समापनपूर्वक प्रथम
स्वस्तिवाचनके साथ सहस्य करना चाहिये । गुरु
आचमन से हारदेशमें सामान्य अर्घ्यदानपूर्वक हारकी
पूजा । फिर उन्हे दक्षिणपद धरि बड़ा हारकी वाम
शाखा छू और दक्षिण पङ्क शिकोड मण्डपमें प्रवेश
करना चाहिये । वहां गुरु नेत्रत दिक्में वासुदेव
और ब्रह्माकी पूजा है । इसके पीछे उन्हे दिश्य मन्त्रसे
आकाशकी ओर देख दिश्य विघ्न, पञ्च मन्त्र एवं जल
हारा पत्नरीचस्य विघ्न और वाम पाण्डिके आघात
हारा भौम विघ्न हटाना पड़ता है । तण्डहादि दृश्य
अक्षमन्त्रसे अभिमन्त्रित कर गुरु केकते है । फिर
गुरुकी आसनरुधि, स्वस्तिक्कम, विघ्नोत्सादन, पञ्च
गव्य मन्त्रि द्वारा मण्डपशोधन करना और दक्षिण
पूजा द्रव्य, वाम सुवासित जलपूर्व कुम्भ तथा बृह-
देशकी बध्न प्रक्षालनके लिये एक पात्र रखना पड़ता
है । इसके पीछे सर्वदिक् छतका प्रदोष जला पुटा-

दिन तीसरे पहर कोयी पांच बजे कन्यापक्षीय जन-
वासे (जहाँ वरपक्षीय ठहरते हैं) में बरात न्योतने
जाते हैं। जब बरात न्योत जाता, तब कन्यापक्षीय
मण्डली वरको भोजन करनेके लिये बोलाती है।
इधोका नाम कलेज है। कलेजमें सिया शकर और
पूरीके दूधरी चीज नहीं खिजाते। वरके साथ सह-
बोला भी कलेज करने जाता है।

कलेजई (हिं० पु०) १ वर्षकवियेय, एक रंग। यह
हिवुले, जरे कसोस और मजीठ या पतङ्गके योगसे
बनता है। इसका अपर नाम सुनौटिया रंग है।
(वि०) २ सुनौटिया।

कलेजा (हिं० पु०) १ वषःस्थलान्तर्गत अवयव विशेष,
छातोका एक भीतरी हिस्सा। यद्गु देखो। २ वषःस्थल,
सीना, छाती। ३ साहस, हिम्मत।

कलेटा (हिं० पु०) अजवियेय, एक बकरा। इसकी
जगसे कम्बल बनते हैं।

कसेवर (सं० स्त्री०) कली शक्रे वर ऐष्टम्, देवोत्प-
त्तिहेतुकत्वात् पवित्रम्, चतुर्क समा०। शरीर, जघ्न,
बीसा।

कसेस (हिं०) कंस देखो।

कसेया (हिं० स्त्री०) १ बस्ता, उलट-मुलट। २ ताड़ना,
उत्पीडन, मारपीट।

कसेईशाहा (हिं० पु०) सर्पवियेय, अजगरकी भांति
एक बड़ा सर्प। यह बङ्गालमें होता है।

कसेईश्व (सं० पु०) कलमशास्त्रि, जड़हन।

कसेोपनता (सं० स्त्री०) मूछनावियेय, एक हलफ़।

“कथमे क्वा, सोरोये हारिषाया तत पागम्।

कान् कसोपनता वरमथा मातो” व पीरो।

इषका वरमो शोना मूछनेवियेय इनाः। (सर्पोवर्षं)

मध्यम यामकी सात मूछना होती हैं,—सौवोरी,
हारिषाया, कसोपनता, शरमथ्या, मार्गी, पौरवी और
हृष्यका। कसोपनता मध्यम यामकी छठीय मूछनाका
नाम है।

कसोर (हिं० वि०) बेध्यायी, जो ब्याधी न हो।

यह इष्ट गायके हो लिये जाता है।

कसोल (हिं०) कसो देखो।

कसोलना (हिं० क्रि०) कसोल करना, खिलना-खूदना।
कसोल (हिं० वि०) १ छप्पवर्ष विगिट। कालापन
लिये हुये। (पु०) २ छप्पवर्ष, कालापन। ३ कसड,
धव्वा।

कसौजी (हिं० स्त्री०) १ छप्पजीरक, कासा जीरा।
इसे बङ्गालमें सुगरला, काञ्चीरीमें तुख्म गन्दन, अफ-
गानीमें सियाह दाह, मराठीमें कार्लेजिरे, तामिलमें
कारुनगिरोगम्; तेलगुमें नल्ल जिलकर, कनाडोमें काडो
जिडुगी, मलयमें कारुन चोरकम, ब्राह्मीमें समोनने,
सिंहलौमें कलुदुफ़, अरबीमें कसूनचसवद और फारसी
में सियाहदाना कहते हैं। (bigella sativa) किन्तु
कानीजीरो कसौजीसे भिन्न वस्तु है।

यह दक्षिण यूरोपमें स्वभावतः उत्पन्न होती है।
दक्षिण भारत और नेपालकी तराईमें इसे नदी
किनारे मार्ग शीर्ष या पीय मासमें बोते हैं। बालुकमय
भूमि कसौजीके लिये अच्छी रहती है। छल उद्ग
या दो पाय उच्च होता है। पुष्प भङ्ग जानेसे कोयी
तीन पङ्क्ति परिमित कसो निकलती हैं। उनमें
छप्पवर्ष कण भरे रहते हैं। कणका पत्राद सघन,
तन्म्य और सुगन्ध होता है। लोग कसौजीको तर-
कापीन डाक कर खाते हैं। इससे दो प्रकारका तेल
निकलता है—एक छप्पवर्ष, सुगन्धि एवं वायु परि-
माणशील और दूसरा स्वच्छ तथा परणतैल सटय।
प्रथमोक्त तेलसे सुन्दर नीलवर्ण प्रतिविम्ब फूटता है।
कसौजी सुगन्धित, वायुनायक, अग्निदोषन और पाचक
होती है। यह अग्निमान्य अरुचि, क्षर और पक्षी
प्रभृति रोगोंमें पीवषकी भांति व्यवहार की जाती है।
कसौजीके सेबसे दुग्ध भी अधिक उत्तरता है। सुसत-
मान हकीमांके मतानुसार कसौजी उत्तमजक, जय-
ताकारक, परिपाकयोग्य, शोधन, और सूत्रवर्धक है।
कसौजी कणमटय बीज कपडोमें रखने की नहीं सगता
२ एक तरकारी। यह करेले, पावक, मिण्डो,
धेगन वगैरहको बीचसे चोर और ममक, मिर्च,
घटाई, घनिया प्रभृति द्रव्य भर कर बनायो जाती है।
इसे मरगल भी कहते हैं।

कसोयो (हिं० स्त्री०) कुसल्य, सुंगरा चावल।

ञ्जालपूर्वक वाम और गुरु, परमगुरु एवं पराशर, दक्षिण गणेश और मध्यमें इष्टदेवताको वह प्रणाम करते हैं। अस्त्रमन्त्र एवं गन्धपुष्प द्वारा दोनों हाथ संशोधन करने पीछे उन्हें ऊर्ध्व दिक् तीन तालि और दशदिक् तुहिये बांधना चाहिये। फिर गुरु वज्र, बीज तथा जलसे वाङ्मिके प्राकारको सींच भूतशुद्धि करते हैं। इसके पीछे माटकान्यास, प्राणायाम, पीठन्यास, अङ्गादिन्यास और मन्त्रन्यास होता है। फिर गुरुकी मुद्रा देखा ध्यान, मानसपूजा और अर्घ्य-स्थापन करना चाहिये। इसके पीछे अर्घ्यपात्रसे किञ्चित् जल मोक्षणीपात्रमें डाल उसी जलसे आत्मा और पूजाके उपकरणको गुरु तीन बार सींचते हैं। पीठमन्त्रसे शरीरमें धर्मादिकी पूजा की जाती है। फिर हस्तपञ्चके पूर्व आदि वैश्वामिनी पीठशक्ति पूजा मध्यमें पीठपूजा होती है। हृदयमें मूल देवताकी पूजा नैवेद्य व्यतीत केवल गन्धादि द्वारा करते हैं। इसके पीछे मस्तक, हृदय, मूलाधार, पद प्रभृति सब ऋद्धिमें मूलमन्त्रसे पांच गुणाञ्जलियां दे यथाशक्ति मन्त्र जप समापन करना चाहिये।

यह समस्त कार्य मोक्षणीपात्रके जलसे सम्पादित होता है। फिर मोक्षणीका जल बदल वहिःपूजा आरम्भ करते हैं। प्रथम शारदीय सर्वतोमद्रमण्डलके आदिका अन्ततम मण्डल विधान कर घट रखना चाहिये। मण्डलकी पूजाके पीछे कर्णिका धान्य पूष कर तण्डुल फैलाते हैं। फिर तण्डुलोंपर कुंज विस्तार-पूर्वक आतपतण्डुल संयुक्त कुंजासन विन्यास किया जाता है। इसके पीछे मण्डलमें पीठोक्त देवता और प्रादक्षिणके वाङ्मिके दशकलाको विन्यास कर पूजना पड़ता है। फिर अक्ष मन्त्रसे प्रचालन, चन्दन, अशुभ एवं कपूरसे धूपदान और त्रिगुण स्वसे वेष्टन कर स्वर्ण आदिसे रचित कुम्भकी पूजते हैं। इसके पीछे कुम्भमें बिठर, आतपतण्डुल एवं नवरत्न डाल और प्रणव उच्चारणपूर्वक कुम्भ तथा पीठको एकत्व पीठ-स्थापन करना पड़ता है। फिर कुम्भकी चारो दिक् चौर सूर्यकी हादय कलाको स्थापनपूर्वक पूजते हैं। इसके पीछे आत्माके भेदसे माटकामन्त्र प्रतिशोम

भावमें जप, देवता बुद्धि पर वटादि वृक्ष किंवा पत्थार वस्त्रके कपाय, तीर्थजल अथवा सुवासित कपाय द्वारा कुम्भ भरना चाहिये। चन्द्रकी अमृत आदि पीडयकलाको प्रादक्षिणसे जलमें विन्यास तथा मन्त्र द्वारा पूजा कर और एक शङ्ख वटादि वृक्षके कपाय अमृतिसे भर अष्ट गन्धद्रव्यसे विशोद्धित करते हैं। उसमें आवाहनपूर्वक सकल कलावाँकी पूजा होती है। प्रथम चान्दनी दश कला पूजा जाती है। प्रतिशोम भावसे मूल मन्त्रका जप और मनकी मन मन्त्र-देवताका ध्यान करते हैं। फिर प्राणप्रतिष्ठापूर्वक प्रत्येकको पूजना पड़ता है। इसके पीछे सूर्यकी तपिकी आदि हादय और चन्द्रकी अमृत आदि पीडय कलाको आवाहन कर प्रथम प्रथम पूजते हैं। परिशेषको पचास कलाकी पूजा करना पड़ती है। सृष्टि आदि कवर्ग एवं चवर्ग दश, जरादि टवर्ग तथा तवर्ग दश, तीष्णादि पवर्ग एवं यवर्ग दश, पीतादि षवर्ग पञ्च और तृहत्यादि भवर्ग पीडय कलावाँकी पूजना चाहिये। समर्थ होनेसे प्रत्येकको आवाहन कर पाय आदिसे पूजा करना उचित है। फिर कलामय शङ्खका कपाय कुम्भमें डालते हैं। कुम्भका सुख अखण्ड, पनस एवं आत्मपल्लव इन्द्रवह्नीसे लपेट कल्पवृक्ष बुद्धिसे आच्छादन करना चाहिये। फिर कल्पवृक्षफल बुद्धिसे उक्त सुखपर फल, आतप और चसकर रखना पड़ता है। इसके पीछे निर्मल पट्टवस्त्रद्वयसे कुम्भकी वेष्टन और मूल मन्त्रसे कुम्भकी शक्ति कल्पन कर यथोक्त रूप देवताके ध्यानपूर्वक आवाहनादि सहकारसे पूजा करते हैं। देवताके अङ्गमें अङ्गन्यास, धेनु एवं परमीकरणमुद्रा प्रदर्यन, प्राणप्रतिष्ठा और पीठगोपचार पूजा समापन होनेपर १००८ वा १०८ बार मन्त्र जपा जाता है।

फिर मन्त्रके दश संस्कार समापन कर गुरुकी शिष्यके निद्रहय मन्त्र और वस्त्रसे बांधना चाहिये। पुष्प द्वारा उसकी पञ्चलि भर स्वयं मन्त्र पाठपूर्वक देवताकी प्रीतिके लिये गुरु कलसमें उक्त पुष्पाञ्जलि चढ़ाते हैं। इसके पीछे निद्रका वस्त्र छोड़ शिष्यकी कुंजासनपर बैठाना चाहिये। स्वकृत पूजाके क्रमात्

कल्क (सं० पु०) कल्क-क । कदाशतपञ्चविंशः ४ । १७९ १४० ।

१ शिल्पपिट द्रव्य, पत्थर पर पीसो हुयो चीज । शक्य वा जलमिश्रित द्रव्यमात्र पत्थर पर पीसनेसे कल्क कहाता है । इसका संस्कृत पर्याय—पिट, विनीय, पावाय और प्रक्षेप है । हिन्दीमें इसे चूरेन और चुकनी या चुकनू कहते हैं । एक प्रहरसे अधिक काल रहने पर कल्क द्रव्यका वीर्य घट जाता है । २ रसपिट द्रव्य, पानीमें पीसो हुयो चीज । ३ मध्यादिपिपित द्रव्य, शहद वगैरहमें पीसो हुयो चीज । इसमें प्रधान द्रव्य एक कप और मधु, घृत वा तेल द्विगुण पड़ता है । फिर सिता वा गुड़ द्विगुण और द्रव्य चतुर्गुण डालते हैं । (परिमाण प्रदोष) ४ घृत तैलादिका श्रेष, घी तेल वगैरहका घवा हुवा हिस्सा । ४ दग्ध, चमण्ड । ५ विभिन्नकण्डू, वड़इकेका पेड । ६ विटा, मैला । ७ किट्ट, ८ पाप, गुनाह । ९ द्रव्यमात्रका चूर्ण, किसी चीजकी चुकनी । १० कर्णमल, कानका मैल । तुरुष्क नामक गन्ध द्रव्य, मोबान । ११ प्रतारणा, फटकार । १२ भवसेह, चटनी । १३ करिदन्त हाथी दांत । (त्रि०) कलयति पापं भाचरति । १४ पापात्मा, पापी गुनाहगार ।

कल्कान (सं० क्त०) कल्कं श्राव्यं करोति, कल्क-णिच् भावे ल्युट् । १ शठताचरण, फरेव, धोकेवाजी । २ विवाद, भगड़ा ।

कल्कि (सं० पु०) कल्कं पापं हार्यतया अस्ति अर्थ, इन् । भगवान् नारायणके दश अवतारोंमें दशम वा श्रेष अवतार । भूमण्डलमें कल्कि चारो पाद वा पूर्ण अधिकार भाने अर्थात् समुद्रय मानवीके एक वर्ष हो जाने और विष्णुका नाम भुलानेसे भगवान् कल्कि नामसे अवतीर्ण होंगे । वह कल्कि निवोद्धित कर पृथिवीसे भगवर्धने; स्वच्छकुलको मिटा सर्वम चलावर्गे ।

(महाभारत, भागवत, विष्णु, गवह, नारदिक इत्यादि)

सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—चार युगोंकी पृथिवी पर अधिकार मिला करता है । इन्हीं चारों युगोंके समष्टि कालको 'दिव्ययुग' कहते हैं । ७१ दिव्ययुगोंमें एक मन्वन्तर होता है । प्रायःकाल ७म मनु वैवस्वतका अधिकार चलता है । वैवस्वत अधि-

कारके ७१ दिव्ययुगोंमें षष्टाविंशति दिव्ययुगका वर्तमान कलियुग है । इससे पहले स्वायम्भुव, स्वारीचिष, उत्तम, तामस, रवत और चाक्षुष नामक छह मन्वन्तर योत चुके हैं । इन मन्वन्तरोंमें एकहत्तर एकहत्तरके हिसाबसे ४२६ दिव्य युग हुये । प्रत्येक दिव्ययुगोंमें एक एक कलियुग निकला है । वर्तमान वैवस्वत मनुके २७ दिव्य युग और उसीके साथ २७ कलियुग भी हैं । वर्तमान श्वेतवराहकल्पमें कुल ४५६ कलियुग बीते हैं । प्रत्येक कलिकी शेष अवस्थामें नारायणके कल्किमूर्ति परिग्रह करते ४५६ वार कल्किलौला हुयो है । फिर वर्तमान कलियुगके अन्तमें भी एक वार कल्कि अवतार लगे । प्रत्येक मन्वन्तरमें नारायणके अवतारादि समान होते हैं यह किसीभी पुराणसे स्पष्ट समझ नहीं सकते । सुतरां कौन निश्चय कर सकता है कि विगत मन्वन्तरों वा कलियुगोंमें कल्कि अवतार हुआ था या नहीं । भगवान्को कल्कि लौलाके सम्बन्धमें कल्किपुराणकारने लिखा है,—

कल्किना शेषपाद पाते श्री स्वाध्याय, स्वध्या, स्वाहा, वषट् एवं षोडश अन्तर्हित हुवा, सुतरां देवों का आहारादि भी रुक गया । उस समय वह समवेत हुये और दीना, क्षीणा, तथा मलिना घरणों को भोग कर अत्यन्त हताश मनसे ब्रह्मलोक जा पहुँचे । विषम मन ब्रह्मलोकमें उपनीत होते उन्होंने सनक, सनन्द, सनातनादि एवं सिद्धगण द्वारा स्तुयमान लो क पितामह ब्रह्माको सुखोपविष्ट देख अवगत भक्षक प्रणामपूर्वक अवस्थान किया था । पितामहने उनसे सादर बैठने को कह कुशल पूछा । फिर देवोंने कल्किके दोषसे जो धमनाग हुवा, वह सब यथायथ बता दिया । ब्रह्माने देवोंकी अवस्था देख आश्वास प्रदानपूर्वक कहा था,— चलिये, विष्णुको रिभायुष्मा तुम्हारा पमीष्ट विद करेगे । ब्रह्मा देवोंके समभिव्याहारसे विष्णुके निकट गये । विष्णुको स्तव आदिसे सन्तुष्टकर उन्होंने देवोंकी प्राथना बताया थी । नारायण विधिके सुखसे कल्किको विवरण सुन कहने लगे—विभो ! हम आपके अभिप्रायानुसार शश्वलग्राममें विष्णुयुगके औरस और सुमतिके गर्भसे जन्म लेंगे । हमारे तीन छोटे भाता

होगे। हम उन्हें तीनों भायियोंके साथ कलि चय करेंगे। हमारी प्रियतमा लक्ष्मी पद्मा नाम पर सिंहल देशमें वृहद्रथकी पत्नी कौमुदीके गर्भसे जन्मपहच्य करेंगी। देवगण! तुम भी भूमण्डलमें अपने अपने अंगसे अवतार लो। हम तुम्हारे साहाय्यसे देवाधि और मरु नामक दो राजाओंको पृथिवीके राज्य पर बैठा सत्ययुग तथा धर्म चलावेंगे। विष्णु ही यह बात सुन ब्रह्मा देशोंके साथ लौट पड़े।

देशोंकी विदाकर भगवान्ने शम्भलधाममें विष्णु-युगाके पारस और सुमतिके गर्भसे जन्म लिया। इससे पहले कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्रक नामसे विष्णुयुगाके तीन पुत्र ही सुके थे। यथाकाल वैशाख मासकी शुक्ला द्वादशीके दिन भगवान्ने अवतार लिया। इस वार भी वह क्षणावतारकी भांति भूमिष्ठ होते ही चतुर्भुज देख पड़े। महापपी धात्री वनी थीं। भगवती अम्बिकाने नाभिच्छेदन किया। भागोरघीने गर्भका क्लेद निकाला था। सावित्री देशीने महलाया-धुलाया था। पृथिवी देशीने दूध पिलाया था। पोङ्गमाङ्काने पाशोर्षाद दिया। ब्रह्मा स्वर्गसे भगवान्की चतुर्भुज मूर्तिमें अवतीर्ण होते देख बहुत चबरा गये। उन्होंने पवनकी सूतिकाटहमें भजा था। पवनने पाकर भगवान्के काममें कहा—प्रभो! पापकी चतुर्भुज मूर्तिका दर्शनसाम देवताओंकी भी दुर्लभ है, च्तरां इस मूर्तिकी छिपा मनुष्यमूर्ति धारण कीजिये। भगवान् पवनके मुखसे ब्रह्माका अमिमाय समझ उसो छप दिभुज मानव गिष्ट बन गये। विष्णुयुगा एकायक पुत्रका रूपान्तर देख विस्मित हुये। किन्तु विष्णुको मायामें मोहित हो उन्होंने पूर्ववृष्ट रूपकी भ्रम ठहरा लिया।

भगवान्के जन्म पहचये शम्भलधामका पापताप अन्तर्हित हुआ था। अधिवासी मङ्गलानुष्ठान करने लगे। पुत्रकी क्रमशः प्राप्तिव्य देख विष्णुयुगाने वेदविद् ब्राह्मण बुला नामकरणका आयोजन उठाया था। नामकरणके दिन परशुराम, क्षपावार्ध, पद्मत्यामा और व्यासदेव भिक्षुकका रूप बना गिष्टरूपी हरिकी देखने गये। विष्णुयुगाने पहलपूर्व सर्वसम तेजस्वी चारो

पतियियोंकी रोमाञ्चितकसेवर हो संवर्धनाकी। सुपुत्र बैठने पर पिष्टकोङ्कस्य बालककी देखते हो उन्होंने समझ लिया, कि भगवान्ने कलिकल्हविनागके लिये यह रूप परिपह किया था। वह बालकका 'कल्कि' नाम ठहरा और जातकर्म तथा नामकरणदि संस्कार करा प्रसन्न मन विदा हुये। फिर गंग, मर्ग, विगाल प्रभृति नामोंसे देवता कल्किको जातिमें अवतार लेने लगे।

उस समय शम्भलधामके निकटस्थ प्रदेशमें विगाखुयुप नामक नरपति राजत्व करते थे। वह ब्राह्मणोंके प्रतिपालक रहे। कुछ काल पीछे कल्किका वयस उपनयनके योग्य होने पर विष्णुयुगाने कहा,— वरस। हम तुम्हारा यज्ञस्यरूप प्रधान संस्कार सम्पन्न करेंगे, फिर तुम्हें चतुर्वेद पढ़ना पड़ेगी। कल्किने यह बात सुन पूजा, वेद, सावित्री, यज्ञस्य, ब्राह्मण, द्यविध संस्कार, विष्णुपूजा प्रभृतिका अर्थ क्या था। फिर वह प्रश्न करने लगे,—जो ब्राह्मण सत्पथ पर चल हरिके मिय बनते और त्रितोकाकका अभीष्ट तथा निखिल भुवनका उदार साधन करते, वह कहाँ मिलते हैं। विष्णुयुगाने इस प्रश्नके उत्तरमें कल्किके अत्याचारकी कथा सुनायी। पिताके मुखसे कल्किा संवाद पाकर कल्कि मामो जाग उठे। उनके मनमें कल्किके निग्रहका अमिमाय उगम हुआ था। पीछे यथानियम उपनयन मेष होनेपर वह गुदकुलमें रहनेकी चन दिये।

उस समय परशुराम महेन्द्र पर्वतपर वास करते थे। उन्होंने कल्किको पाते देख आश्चर्यमें साकार अपना परिचय दिया। और फिर वह कहने लगे, 'हम तुम्हें पढ़ावेंगे। अगुंरगमें जमदग्निके चोरससे हमारा जन्म है। वेदवेदाङ्गके तत्त्व और अनुविद्यामें हम वारदर्शी हैं। हमने समुदय पृथिवी निः-चद्वियकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी है। आजकल तपसरथके लिये इसी महेन्द्रपर्वत पर रहते हैं। तुम हमें गुरु समझो और अभिलषित शास्त्र अध्यास करो। कल्कि परशुरामकी बात सुन मुसकित हुये और प्रणाम कर उनके निकट रहे। उन्होंने चतुः-

महाठ, काञ्चनपुरी प्रभृतिके नाम लिखे हैं, उनमें चक्षिकांग प्राचीन पौराणिक देख पड़ते हैं।

कल्किपुराणकारने मरु और देवापिकी पाण्डवों से कर्षितन चतुर्थ पुरुष शान्तनुका भ्राता कहा है। अन्यथा पुराणोंकी कथा देखते बुधद्वारादिने कनिके प्रारम्भमें ६५३ वर्ष राजत्व किया था। सुतरां उनसे कर्षितन चतुर्थ पुरुष कैसे मरु परवर्ती कल्किके शेष पादमें था सकते हैं। मरु और देवापिमें भी सात पुरुषोंका पार्थक्य पड़ता है। फिर कल्कि भवतारकी पीछे सत्ययुगका प्रारम्भ लिखा है। यदि कल्किदेवने देवापि और मरुको पृथिवीका राज्य सौंप सत्ययुगका प्रारम्भ किया ऐसा स्वीकार करें तो वे सत्ययुगके प्रथम राजा ठहरते हैं। किन्तु अन्य किसी पुराणमें यह कथा नहीं मिलती। कल्कि देखो।

इतिहासकी छोड़ पुराणकथाकी भांति यद्यार्थ समझा, और भक्तिके साथ विश्वास करें तो इसका तर्पित विषय भविष्यत्में होनेकी बात है। किन्तु कल्कि पुराणकी वर्षणा पढ़नेसे वैसा मालूम नहीं पड़ता। इसमें जो कुछ लिखा है, उसमें भतीत कालकी घटनाका ही ज्ञान होता है।

उपश्रवा ऋषिने पूछनेपर कहा था,—‘शुकदेवके अनुमति क्रमसे हमने उस पुस्तकमें मरु मरुके भविष्य घटना सुनी थी। इस स्थल पर हम वही शमकर भागवतधर्म कीर्तन करते हैं। उपश्रवाके ही सुखसे भविष्यत् कालकी बोधक एकदात निरुद्धी है। दूसरे स्थानपर कर्षी कुछ दिखलाई नहीं पड़ता। भविष्यत् कालकी बताया जाते भी यह कथा वैसी मालूम नहीं पड़ती। किन्तु महाभारत, भागवत, विष्णुपुराण, नारसिंह पुराण प्रभृतिमें कल्कि भवतारकी जो कथा लिखी, उसमें सर्वत्र भविष्यत्काल-बोधक क्रिया लगी है। सुतरां समझ सकते हैं, कि उत्तर कालको कल्कि भवतार होनेमें कोई सन्देह नहीं। फिर भी कल्किपुराणमें संक्षेपमें अपने गभीर भावमयी सत्कथायें लीं चालोचना लगी है। पाठ करनेसे चामन्द पाता है। इन्हीं कारणोंसे कल्किपुराणकी ‘अनुभागवत’ कहते हैं। हमने जो तर्क ऊपर दिसाये,

वह सुने सुनाये हैं। भगवान्की लीला प्यार है। कौन कह सकता है भविष्यत्में क्या होगा? दूसरे विकासदृष्टि महर्षिकी कथनोपकथन समझना भी कुछ सरल नहीं। ऐसी भवस्थाने कल्किपुराणका उल्लिखित विषय भक्तिप्रकारसे मान लेना ही अच्छा है। कल्किफल (सं० पु०) कल्कल्य विभीतकल्य फलमिव फलं यस्य, मध्यपदलो०। दाहिमहृत्, चमारका पेड़। शक्ति देखो।

कल्किरोध (सं० पु०) पट्टिकारोध, माल रोध।

कल्किधर्म, कल्कि देव देखो।

कल्किमातृभोग (सं० पु०) कल्किः दृग्मातृभोगस्य मातृभोगः उत्पत्तिः। कल्कि भवतारकी उत्पत्ति। कल्कि राज—एक प्राचीन राजा। गुप्त राजवंशके पीछे इन्द्रपुरमें इन्होंने ४१ वर्ष राजत्व किया। (जैन इतिहास) इनके भ्राता राजा अभितक्ष्य थे। (जैन उत्तर पुराण)

कल्किहृत् (सं० पु०) विभीतक हृत्, बड़ेडुका पेड़।

कल्की (सं० पु०) कल्कः पार्थ नाशयता भूम्यस्य, कल्क-द्विगि। १ कल्कि भवतार। (त्रि०) २ पापी, मद्यौन, गुनाहगर, मैसा।

कल्प (सं० पु०) कल्प्यते विधीयते षडौ, कल्प-कर्मणि धञ्। १ विधि, तरीका।

“यत्र वै प्रथमः कल्पः प्रथमं कल्पकल्पयोः।” (मनु १। १४०)

कल्पति स्रष्टुं माशं वा अनु-कल्प-विच्। २ प्रकथ, कथामत। संसन्धियुक्त चतुर्दश मनु द्वारा प्रकथ काल निर्णय होता है।

“समन्वयसं मनवः कल्पे चोपापदुर्द्वेभः।

इतन्नाथः कल्पोऽथिः पचदन् कृतः।” (पूर्वविशाल)

कल्पते स्रष्टिवायै समर्थं भवति पद्य। ३ मद्राका दिन। देवतावर्षिके दी स्रष्टय युगेनि मद्राका एक दिन (कल्प) और तीस कल्पोंमें एक मास होता है। उनके संस्कृत नाम—ऋतवाराण, मोक्षतोहित, वाम-देव, गायान्तर, शौरव, प्राण, हृत्कल्प, कन्दर्प, सत्य, ईशान, ध्यान, सारस्वत, उदान, गरुड, कौर्म, (ब्रह्माकी पौरुषमाषो), नारसिंह, समाधि, चान्देय, विष्णु, शीर, शीम, भावन, सुतमाषो, वेङ्कट, पार्थिव, बन्धा-

पट्ट कला साङ्गवेद और धनुर्वेद पढ़ दक्षिणा देना चाहा था। परशुरामने दक्षिणा की बात सुन कर कहा,—ब्राह्मणकुमार! भगवान् ब्रह्मानि, विष्णु-से कलिनिघण्टके निमित्त प्रार्थना की थी। विष्णुने वही प्रार्थना पूर्ण करने को भवतार लिया है। तुम वही पूर्णब्रह्मरूपी हरि हो। तुमने हमसे विद्या पढ़ी है। आगे तुम शिवसे भस्त्र तथा सर्वज्ञ शूक्र पत्नी और मिंसलदेशकी राजकन्या पद्मानाम्नी लक्ष्मी पावांगे। फिर तुम्हारे हाथसे धर्महोन नृपतियोंका विनाश, कलिका निघण्ट और स्वधर्मका संस्थापन किया जायेगा। तुम चन्द्रमें मरु और देवापिकी युधिवीके राज्यपर अभिप्रेत कर गोलोक पहुँचोगे। तुम्हारे इस साधुकार्यके अनुष्ठानसे हम परम प्रसन्न होंगे। यही हमारी दक्षिणा है।' कल्किने गुरु-देवसे आज्ञा ले विम्बोदवेश्वर नामक शिवमन्दिरमें पहुँच मन्दादेवकी पूजा और स्तुति की। स्वयसे स्तुष्ट हो देवादिदेव पावतोंके साथ पाविभूत हुये और वर देकर कहने लगे,—'तुमने जो स्तव बनाकर पढ़ा, वही सब पढ़ने वालीका सर्वाभौष्ट सिद्ध होगा। यह द्रुतगामी बहुरूपी गरुड़के धंससे सभूत भस्त्र और यह सर्वज्ञ शूक्र तुम्हें देते हैं। आजसे मानव तुम्हें सर्वविध शस्त्रमें निपुण, वेदवारदमी और सर्वभूत-विजयी करके देगे। यह महापभागाली रत्नप्रचित सुष्टिप्रशिष्ट कराल करवाल पक्ष्य को। इसीसे युधिवीका भार ह्वरण करना पड़ेगा।' यह कह कर मन्दादेव अन्तर्हित हुये। कल्कि भी हर पावतोंको प्रणाम कर शिवदत्त वरु उठा भस्त्र पर चढ़े और चन्दने घरकी झीट जाये। विष्णुयथा पुत्रके सुलभमें प्रयगत हो इधर-उधर उस समस्त कथाकी चानो-चना करने लगे। क्रमशः राजा विशाखयुपकी खबर लगी। विशाखयुप सुनते ही सम्भ्रम गये, कि यद्यपि विष्णु अवतरण हुये थे। कारण इस समय कल्किने जन्म लिया, उसी समयसे उनकी राजधानी माहिसती-नगरीमें याग, दान, तपस्या और व्रतका अनुष्ठान होने लगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि चपना दुराचरण कोहत थे। इससे



कल्कि प्रवतार।

विशाखयुप भी स्वयं धर्मचरण प्रवलय्यन् पूर्वक विशुद्ध हृदयसे प्रजापालन करने लगे। कल्किने उपयुक्त समय देख खड़ग तथा धनुर्वाण लिया और भस्त्रपर चढ़ माहिसतीपुरकी ओर गमन किया। उनके दो भ्राता और गंग-भर्गादि जातिगण भी पीछे पीछे चले। विशाखयुप कल्किको भाते सुन आगे बढे थे। उन्होंने पुरोहार पर पहुँच देवता-परिहृत उल्लेखवागेष्टी इन्द्रकी भांति स्वजनवेष्टित कल्किको दण्डयमान देखा। विशाखयुपने प्रवगत हो कल्किको प्रणाम किया था। कल्किने भी प्रसन्न दृष्टिसे उनकी ओर देख दिया। भगवान्की लपाटटि प्राप्तकर विशाखयुप उसी दिनसे पुण्यात्मा वंशव दन गये। कल्कि राजाके साथ रहने लगे। फिर उन्होंने संक्षेपमें पायमधर्मका निर्देश लगा कहा था,—'हमारे अंगनाले कलिके पापसे भ्रष्टाचार बने, किन्तु अब हमसे पा भिने है। तुम राजसूय और पशुमेघ-यज्ञ कर हमारी उपासना उठाओ। हमों परमलोक और हमों बनातन धर्म है। काल-समाव और संस्कार हमारा अनुगामी है। हम चन्द्रवंशीय देवापि तथा सूर्यवंशीय मरुकी धर्मराज्य पर संस्थापित और सत्ययुग प्रवर्तित कर गोलोक चले जायेंगे। विशाख-युपने यह बात सुन कल्किसे वैष्णव धर्मका प्रसन्न पूजा

कल्किने कलिकलुपविनाशके लिये विश्वाख्यपकी सभामें स्त्रष्टिसे आरम्भ कर विराट्मूर्ति, ब्रह्मा, माया, देवदानव-मानव-स्यावर जङ्गम आदिकी उत्पत्ति, वेदमाहात्म्य, ब्राह्मणमहिमा, अपने भवतारकी भावश्यकता प्रभृति सब बातें बतायी थीं। अन्त्याकाल विश्वाख्यपके स्थानान्तर जाते शिवदत्त शक इतस्ततः विषरण कर कल्किके निकट आ पहुँचे। कल्किने शकसे कहा,—शक ! कछो, तुम किस देशसे क्या आहार कर आये हो ; तुम्हारा मङ्गल तो है ? शकने उत्तर दिया,—‘देव ! सागरके मध्य सिंघल नामक एक द्वीप है। वहाँके नृपति कछ-प्रथ कछाते हैं। कौमुदी नाम्नी उनकी पत्नीके गर्भसे एक कन्या हुयी है। उसका नाम पद्मावती त्रिलोक-दुर्लभा है। उनका चरित्र अतीव रमणीय है। रूपसे अममय भी पागल बन जाता है। पद्मावतीने हर पार्वतीकी सपासनाकर वर पाया है, कोई मनुष्य-राजपुत्र पद्मावतीके उपयुक्त नहीं। इस जगत्में जो मानन या देव असुर नाग गन्धर्व प्रभृति पद्माकी काम-भावसे निर्गेषण या अभिलाष करेगा, वह तत्क्षण स्त्रीय पुरुषजन्मके वयसानुरूप स्त्रीत्व भावकी पङ्घ-चेगा। एकमात्र नारायण ही उनके स्वामी हैं। पद्मा महादेवसे यह वर लाभ कर परम हृष्ट हो इतने दिनसे नारायणकी राह देख रही है। सम्प्रति उनके पिता स्वयम्बरका आयोजन लगाया हैं। नृपतिका उद्देश है, स्वयम्बरकी सभामें श्रीकृष्णने जैसे कृषि-कीकी सङ्घण किया, वैसे ही नारायण पद्माकी भी सङ्घण करिगे। फिर स्वयम्बरकी सभामें जो सकल नृपति पहुँचे, वह पद्माकी काम भावसे देखते ही स्वस्र वयसके अनुसार विपुलनिर्मत्या, स्तनयुगशालिनी और सुमध्या रमणी बन गये। जिसने लैसी रमणीकी चाहा, उसने वेशा ही रूप पाया था। यह ज्ञास्यविलास्यसन भी निपुणतासे देखने लगे। फिर नृपति लोग प्रसन्नतासे पद्माकी सङ्घचरियोंमें मिस गये। मैं विवाह देखनेको एक निकटस्थ हृष्यवर बैठा था। किन्तु यह व्यापार उठते में अत्यन्त दुःखित हुवा। पद्मा भी रोने लगीं। मैंने उनकी विनाय

सुना है। वह ओहरिकी चिन्तामें अतिआतुर हैं। मैं अधिक अपेक्षा कर न सकनेपर पद्मावतीको उसी अवस्थामें छोड़ तुम्हें संवाद देने आया हूँ।

कल्किने शककी पद्मावती सङ्घोकी बेची अवस्था बताते देख आश्वास दिवानेके लिये यथोपयुक्त उपदेश प्रदान पूर्वक फिर सिंघल भेजा था। शक सिंघल पहुँच गये और पद्मावतीको आश्वास देने लगे। उनके सुखसे शिवोक्त विष्णुपूजाकी पहति, भगवान्के देहकी वर्णना और ओचरणसे केग पर्यन्त प्रति भङ्गका ध्यान सुन शकने संवाद दिया, कि समुद्रके अपरवार शम्भुधाममें विष्णुने कल्कि अवतार लिया है। पद्माने कल्किका संवाद सुन शककी रक्षासङ्घारसे सजाया, भगवान्को बुला सानेके लिये दूत बनाया और कह सुनाया,—देखो, जो कछना है, कछोने। तुमसे प्रविदित कुछ भी नहीं है। यह दूसरी कौन बात कह सकती है। कल्कि अपने मनुष्यभ्रममें स्त्रीप्राप्ति-की आशाहासे सिंघल चाहे न पायें, किन्तु आप ओचरणमें हमारा प्रणाम अवश्य पहुँचायें। कल्किसे कह दीजियेगा, कि पद्माके पट्ट दोपसे शिवका वर अभिगाप बन गया। शक उनसे विदा हो कल्किके निकट पहुँचे। कल्कि पद्माकी कथा सुन शिवदत्त अङ्गपर चढ़े और शकको सङ्घ से तन्मयचित्तसे त्वरित-पद सिंघलकी और चल पड़े। कल्कि यथाकाल राजधानी कादमती नगरमें पहुँचे थे। नगरके प्राक्-भागमें मनोहर सरोवर देख उन्होंने शकसे कहा,—“इस स्थानपर छान करना पड़ेगा।” शक उनका उद्देश देख पद्मावतीके सविधानकी चस्र दिये। कल्किने सरोवरके तीर पर अवस्थान किया। शकने जाकर पद्मावतीकी भगवान्के आगमनका संवाद दिया था। पद्मावती सुनते हो सरोवरछानके छनसे सङ्घचरी सङ्घ से कल्किके दर्शनको चस्र खट्टी हुयीं। उनके पानेका समाचार पा शङ्खविनिर्गमें जो संकल पुरुष रहे, वह भयसे भागने लगे। उनको कामिनिर्वा पुण्यकार्यका अनुष्ठान करतीं, जिसमें पतिसोक स्त्रीत्वकी न-पहुँचे। पद्मावती सङ्घचारियोंके साथ सरोवरके सीपानपर जा उतरतीं। उस समय भगवान्

२ कर्चर, ककर। कल्पयति गन्धपद्यादिकसुद्रभाष्य
रचयति। ३ ग्रन्थकर्ता, किताब बनानेवाला।
४ संस्कार, रस्म। (त्रि०) ५ रचक, बनानेवाला।
६ शारीरपक, लगानेवाला।

कल्पकतरु, कल्पतरु देखो।

कल्पकार (सं० पु०) कल्प-कल्पसुत्रं करोति, कल्प-
कृ-ष्ण्। १ कल्पसूत्रकारक आश्वलायनादि। कल्प-
वेगं करोति। २ नापित, नायो। (त्रि०) ३ वैश-
कारक, रूप बनानेवाला। ४ छिदक, छिदनेवाला।

कल्पकारक (सं० पु०) कल्प-कृ-खुल्। कल्पकार देखो।
कल्पस्य (सं० पु०) कल्पस्य स्यटः चयो यत्र, बहुव्री०।
प्रलय, कयामत, संसारका नाश।

“कल्पस्ये पुनस्ते तु प्रविशन्ति परं परम्।” (विष्णुपर्व)

कल्पगा (सं० स्त्री०) गङ्गा नदी।

कल्पतरु (सं० पु०) कल्पयासौ तरुश्चेति, कर्मधा०
अथवा कल्पस्य तरुः राक्षोः भिरः इत्यादिवत्, ६-तत्।
१ देवलोकाका वृक्षविशेष,। विद्विग्रहताका एक पेड़।
यद् वृक्ष मांगनेसे सकलपदार्थ देता है।

“निगमश्चत्तरोर्मितं कल्पम्।” (भागवत १।१।२)

२ अतिगात्रविशेष। ३ शारीरकसूत्रभाष्यपर
भामती टीकाकी एक व्याख्या। ४ सदारपुरुष, सखी,
सुहृद्भागी चील देनेवाला। ५ क्रसुकवृक्ष, सुपारीका
पेड़। ६ रसविशेष, एक जगृता। रस (पारद),
गन्ध (गन्धक), विष (वसुधनाभ) और ताम्बकी
समभाग पोष क्रमगः पांच दिन तक पांच बार शरीरो-
चनाकी भावना लगती है। अन्तकी निगुण्टीके
रसमें सात दिन छोट लेने और फिर पाट्टू कके रसकी
तीन भावना देनेसे यह बीज प्रसृत होता है। इसकी
बटी सर्प समान बना छायामें सुखाते है। लीप्यंश्वर
और विषमञ्जरमें २१ बटी खिन्तायी जाती है। इसके
सेवन समय रोगीकी कजुकी पिप्पलीका स्य जल
पिलाना, शर्करा तथा दधि खिलाना और नहवाना
चाहिये। (मेघनरभाष्य)

कल्पद्रु (सं० पु०) कल्पयासौ द्रुश्चेति, कर्मधा०।
१ कल्पतरु, स्वर्गका एक पेड़। २ ऋक्षारम्बध वृक्ष,

छोटे भमलतासका पेड़। ३ केशवप्रणीत एक
शब्दकोश।

कल्पद्रुम (सं० पु०) कल्पयासौ द्रुमश्चेति, कर्मधा०।
१ कल्पवृक्ष। २ छोटा भमलतास। ३ कृतिगात्र
विशेष। ४ तन्त्रगात्र विशेष।

कल्पन (सं० स्त्री०) लप भावे ल्युट्। १ छिदन, काट
छांट। २ रचना, बनाव। ३ विधान, ठहराव।
४ आरोप, जगाव। ५ अप्रकृत विषयका उद्भावन,
अन्दाज।

कल्पना (सं० स्त्री०) लप्-षिच् भावे ल्युट्-टाप्।
१ इतिहासिका, स्यारीके सिधे हायोकी सजावट।
३ अनुमान, अन्दाज। ४ रचना, बनावट। ५ पर्या-
पत्तिरूप प्रमाण विशेष, एक सूत्र। इसमें छीनेवाली
बातोंका इवाला रहता है। ६ नूतन विषयका उद्भा-
यन, नयी बातका निष्कास। काव्य, उपन्यास और
चित्र आदि कल्पनासे ही बनते हैं।

कल्पनाकाश (सं० त्रि०) कल्पनायाः काश इव काशो
यस्य, बहुव्री०। सद्यस्वीकी भांति प्राय विनाशो, मन-
सुषेकी तरह जल्द बिगड़ जानीवाला। यह शब्द
अस्थिके पदार्थका विशेषण है।

कल्पनाय (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़।

(Justicia paniculata)

कल्पनाशक्ति (सं० स्त्री०) कल्पनायाः नवोद्भावमस्य
शक्तिः, ६-तत्। नूतन विषयके उद्भावनकी शक्ति,
नयी बात निकालनेकी ताकत।

कल्पनी (सं० स्त्री०) कल्पयति केगादीन् द्विनन्ति
पनया, लप च्छेदने ल्युट्-ङीप्। कर्तनी, कैंची।

कल्पनीय (सं० त्रि०) कल्पनाय द्वितम्, कल्पन-
ठक्। १ कल्पनाके उपयोगी, अन्दाजके साधक।
२ छिद्य, काटने का विस। ३ विधानके उपगुरु,
ठहराने मायक। ४ आरोपके उपयोगी, लगाने
का विस।

कल्पपादप (सं० पु०) कल्पयति सर्वकामं सम्याद-
यति कल्पः, कल्पयासौ पादपश्चेति, कर्मधा०। १ कल्प-
तरु, स्वर्गका एक पेड़। “वषा न चके इतिनकल्पपादपः।”
(मेघ १।१४) २ विमोतकवृक्ष, बड़ईका पेड़।

कल्कि कदम्बतरुके मूलदेगपर सोते थे। पद्मावती यथाकाल स्नान समापन कर जधी तरुके मूलपर जा पहुँची और कल्किका रूपलावण्य देख मोहित हुई। उन्होंने शकसे महापुरुषकी निद्रा न भङ्ग करने और उनके जग कर स्त्रीत्व प्राप्त होनेसे डर लगनेकी कहा था। वैसा होते उनकी क्या टगा होती। महादेवका वर पद्माके लिये थाप था। कल्कि मन ही मन उनका अभिप्राय समझ जाग उठे। उन्होंने मधुर प्रेमसम्भाषणसे पद्मावतीकी मनाया था। पद्मावती कल्किदेवके मधुर वचन सुन तथा पुरुषत्व घबट रहते देख सातिशय आनन्दित हुई और लज्जा नम्रमुखमें प्रेम-गद्गद स्वरसे भगवान् कल्किकी स्तव द्वारा रिभा घर लौट पड़ीं। उन्होंने पितासे घरमें भगवान् कल्किदेवके भागमनकी वार्ता कही थी। हृदयने नगरमें श्रीहरिकी पदार्पण करते सुन नानाविध नृत्य, गीत, वाद्यादिका पायोजन उठाया। फिर वह पादों, मित्रों, परिजनों और ब्राह्मणों आदिके साथ कल्किदेवकी लेने चल दिये। पुरोहित पूजाका उपकरण उठा पीछे रहे। राजाने सरोवरके तीर कल्किकी देख स्तवपूजादि द्वारा रिभाया था। पुरीमें आनेपर कल्किका पद्मावतीके साथ विवाह हुआ। स्त्रीत्व प्राप्त राजा कल्किका स्तव करने लगे और प्रसन्न होने पर उनके आदेशानुसार रेवा नदी में नहा अपना अपना पुरुष देह पा गये। फिर उन्होंने दश अवतारोंका नामोल्लेख और भगवान् कल्किका स्तव कर स्रक्ष देगकी प्रस्थानका उपक्रम लगाया। पुत्रपोत्तम कल्किने उस समय उन्हें वर्णाश्रमधर्म, वैदिक अनुशासनादि और प्रवृत्तिमार्ग तथा निवृत्तिमार्गका पथिकोचित कार्य बताया था। नृपति वह बातें सुन पुलकित हुये और पूरुने लगे,—देव ! किस कारणसे स्त्री और पुरुष भेदमें उष्टि पड़ती है ? सुख, दुःख और जरा कदासे है ? किसके आदेश और किस उद्देशसे यह विहित है ? आज तक इन सकल विषयोंका यथार्थत्व विवेचित नहीं हुआ। फिर इनसे जो विषय मित्र पड़ता, वह समझ पर नहीं चढ़ता। तुम अनुग्रह कर हमसे कही। कल्कि-

देवने यह प्रश्न सुन भगवन् सुनिको स्मरण किया। वे वहाँ पहुँचे थे। कल्किने राजाओंका प्रश्न बता सुदुत्तर देने की कहा। सुनिवर भगवन्ने अपने पूर्व जन्मका वृत्तान्त सुना राजाओंके सकल प्रश्नोंका उत्तर दिया। राजा फिर अपने अपने घर लौट गये। राजाओंके स्वराज्यकी जाते भगवान् कल्किने भी अपने राज्यको प्रत्यागमन करनेका सङ्कल्प किया। देवराज इन्द्रने भगवान्का अभिप्राय समझ विश्वकर्मासे शश्वलग्राममें उनके लिये स्वस्ति प्रश्रुति नानाविध भवन बनवाये थे। यथाकाल पद्मावतीकी साथ ले धूमधामसे कल्कि शश्वलग्रामको और चल दिये।

वह सब लोग शश्वल ग्राम पहुँचे थे। कल्कि और पद्मावतीने साकर जनक-जननीको प्रणाम किया। फिर वह वन्धुवोंके समभिष्याहारसे नगरमें गये और विश्वकर्माके अनाये भवममें रहने लगे। उसी समय कल्किके भ्राता कविने स्वपत्नी कामकलाके गर्भसे वृहत्कौर्ति तथा वृहद्वाहु, प्राज्ञने अपनी पत्नी सन्नतिके गर्भसे यज्ञ एवं विज्ञ और सुमन्त्रके शशिनीके गर्भसे शासन तथा वेगवान् नामक पुत्र उत्पादन किये।

कुछ दिन बीतने पर विष्णुयुगाने अश्वमेधयज्ञ करना चाहा था। कल्कि पिताकी इच्छा देख धनरत्न संग्रह करनेकी दिग्विजयके लिये चले गये।

कल्कि स्वजनोंकी लेकर ससैन्य प्रथमतः कीकट देशमें जा उतरे। कीकटदेशमें उस समय सब एकाकार रहा। स्त्री, धन वा अन्न आदि लेनेमें कोयी भयना पराया देखता न था। यहाँ जिन नामक एक राजा रहे। वह कल्किका भाते सुन दो भयो-दिथी सैन्य लेकर लड़ने चले।

प्रथम युद्धमें जिन राजकी बौद्धिना शरकर भागी थी। फिर कश्कि और जिन दोनों लड़ने लगे। कल्कि शराघातसे मूर्च्छित हुये थे। जिन राजाने अचेतन कल्किका देह उठा ले जाना चाहा। किन्तु वह विग्रभर देह उठाये उठा न बा। उसी बीच विगासयुपने निकटस्थ ही गदाघातसे जिनकी हटाया और कल्किकी साकर अपने रह-

कल्पान्तस्थायी (सं० त्रि०) कल्पान्तपर्यन्तं तिष्ठति, कल्पान्त-स्था-यिनि । प्रलयकाल पर्यन्तं वर्तमान रहने-वाला, जो कल्पमत तक टिक सकता हो ।

कल्पिक (सं० त्रि०) उपयुक्त, काविल ।

कल्पित (सं० पु०) कल्पते सञ्जीक्रियते षोड्, कल्प-चिच् कर्मणि क्त । १ सञ्चितहस्ती, मड़ाईकेलिये मजा हुआ हाथी । (त्रि०) २ रचित, बनाया हुआ ।

“अदादि ह्यपर्यन्तं मायया चरित्वेने प्रयत् ।” (कानिचंषं)

३ उद्भावित, फर्ची, माना हुआ । ४ सम्पादित, ठीक किया हुआ । ५ सञ्जित, सजा हुआ । ६ दत्त, दिया हुआ । ७ आरोपित, लगाया हुआ । ८ प्रव-धारित, सोचा हुआ । ९ छत्रिम विषय सत्यकी भांति स्थिरौकृत, गुलसकी तरह ठहराया हुआ ।

कल्पितार्घ, कल्पितार्घ्यं शब्दो ।

कल्पितार्घ्यं (सं० त्रि०) कल्पितं दत्तं अर्घ्यं यस्मै । अर्घ्यं दिया हुआ, जो अर्घ्य पा चुका हो ।

कल्पितोपमा (सं० स्त्री०) अमृतोपमा, अन्दाज़ी मिसाल । इसमें प्रकृत उपमान न मिसानेसे कल्पना लगती है ।

कल्पी (सं० त्रि०) कल्पयति, कल्प-चिच्-णिनि । १ रचनाकारक, बनानेवाला । २ आरोपक, लगा-नेवाला । ३ विशकारक, सुधारनेवाला । (पु०) ४ नापित, नाई ।

कल्प्य (सं० त्रि०) कल्प-चिच्-यत् । १ रचनीय, बनाने लायक । २ आरोप्य, अच्छा ही सकतावाला । ३ अनुष्ठेय, किया जानेवाला । ४ विधेय, मानने लायक ।

कल्प (सं० स्त्री०) रचयोरिकात् । कर्म, काम । कल्पनि । (सं० पु०) कल्पयति अपगमयति मत्सम्, प्रयोदरादित्वात् साधुः । सेज, रोगनी ।

कल्पलोक (सं० स्त्री०) कल्पनि शब्दो ।

कल्पलोक (सं० पु०) कल्पलोकमस्यास्ति, कल्प-लोक इति । १ कल्प । (त्रि०) २ तेलीयुक्त, चमकदार ।

कल्प्य (सं० स्त्री०) कर्म शुभकर्म सति माशयति, प्रयोदरादित्वात् साधुः । १ पाप, गुनाह । २ हृदि-पुच्छ, चार्थकी पूछ । ३ मछिनता, मैलापन ।

४ हृद्येत् । (पु०) ५ नरक विषय, एक दोषक । ६ मास विषय, एक महीना । जिस मास कल्प मछनकी मङ्गलवार या शनिवार आता, वह कल्प कहलाता और मनोदुःख देखाता है । (शीघ्रा) (त्रि०) ७ मलिन, गन्दा, मैला ।

कल्पपञ्चकारो (सं० त्रि०) १ पाप वा तिमिर-नायक, गुनाह या अंधेरीको दूर करनेवाला । २ पाप-कर्मसे बचानेवाला, जो जुर्म करने न देता हो ।

कल्पाय (सं० पु०) कल्पयति, कल्-चिच्; माशयति, स्वभासा अभिमवति, अन्यवर्णान्, माय-चिच्-पच; कल् चामो मापयेति, कर्मधा० । १ चित्रवर्ण, चित्-कवरा रंग । २ कल्पवर्ण, सांभला रंग । ३ राक्षस, पादमखोर । ४ गन्धगालि, खुगबुदर आवल । ५ सर्पविषय, एक सांप । ६ अग्निविषय, एक आग । ७ सूर्यके एक अनुचर । ८ पूर्ण जन्मके शाश्वतुनि । (त्रि०) ९ चित्रवर्ण विगिष्ट, चितकवरा । १० कल्प-विन्दुयुक्त, कालि धब्बेवाला ।

कल्पायकण्ठ (सं० पु०) कल्पायः कल्पवर्णः कण्ठो-यस्य, बहुव्री० । नीलकण्ठ, शिव ।

कल्पायश्रीय (सं० त्रि०) कल्पाया कल्पवर्णा श्रीवा यस्य, बहुव्री० । १ कल्पवर्ण श्रीवावाला, जिसके काली गर्दन रहे । (पु०) २ कल्पाया श्रीवा सामीप्यात् कण्ठो यस्य । २ महादेव ।

कल्पायता (सं० स्त्री०) कल्पायस्य भावः, कल्पाव-तन् । १ चित्रवर्णता, चितकवरापन । २ कल्प-पाण्डुरवर्णता, कालापन, स्याद्वी ।

“शायसं मासमावर्तं पारं कल्पमावर्तं यतः ।” (मानवत ४४१२)

कल्पायपाट (सं० पु०) कल्पायो कल्पवर्णा पाटो यस्य, बहुव्री० । सोदास राजा । यह नरकसखा राजा ऋतु-पर्णके वंशीय थे । किसी समय सोदासने ऋगयाको निकल एक राक्षस मारा था । उगुका आता धेर-निर्यातन उपायके अनुष्ठानकी पागासे राजाके घर-या पाचक वेगसे रहने लगा । एक दिन राजगुह-विगिष्ट भोजन करने पहुँचे । उसने नरमांस खानेको रखा । यहिउने यह मांस देख राजाका दुष्प्रबुद्ध-समझ लिया और अभिगाप दिया,—सोदास तुम-

पर बैठाय। रथपर चढ़ते ही कल्कि जाग पड़े। फिर वह सुइते मन्थ जिनके सम्मुख पड़ूँचे थे। मन्थ-युद्धमें हरा कल्किने उन्हें कटि तोड़ तोड़ मार डाला। जिनके भ्राता शुद्धोदन भ्रातृघातीसे प्रतिशोध लेने गये थे। किन्तु कल्किके ज्येष्ठभ्राता कविने उनसे सल्लुने लगे। शुद्धोदन और कविमें बड़ी गदायें चर्कीं। शुद्धोदनने कविको किसी प्रकार दवान सकनेपर माया देवीका धरण किया। माया देवी सिंहध्वज रथपर चढ़ सेन्धके पुरोभागमें जा खड़ी हुईं। मायाके प्राति ही कल्किका सेन्ध भ्रमण बना था। बौहसेना जयध्वनिके साथ भागे बट्टी। किन्तु कारण समझनेपर कल्कि स्वयं मायाके सम्मुख जा पड़ूँचे। माया देखते ही विन्ध्यके शरीरमें समा गयीं। मायाको न देख बौहसेना घबरायी थी। भक्तको युद्ध होने लगा। क्रमशः शुद्धोदन, काकाच, करोपरोमा प्रभृति वीहनायक खेत रहे। अनेक लोग भागे थे। फिर वीहपत्त्रियां लड़ने पड़ूँचीं। कल्किने उन्हें भवसाजनसुलभ पकतित्व समझा युद्धसे निवृत्त होनेको कहा। रमणियोंने उनकी बात न सुन पतिके शोकमें अस्त्र छोड़े थे। किन्तु पत्नीने शत्रुके प्रति न चस मूर्ति परिग्रह पूर्वक उनसे कह दिया,—जिन भगवान्की शक्तिके आश्रयसे हम शत्रुओंको ध्वंस करते, यह वही भगवान् हरि देख पड़ते हैं। भगवान्ने प्रह्लादके लिये जिस समय तृसिंह मूर्ति बनायी थी, उस समय भी हरिके गात्रमें आघात मारने को हमारी कुह चलने न पायी। अब हम क्या कर सकेंगे। बौहकामिनियां वह बात सुन विस्मित हुईं। और भवगेपको हरिके शरण गयीं। कल्किने उन्हें भक्तिपांगला उपदेश दिया था। फिर उन्होंने भी क्रमशः सुक्ति पायी।

कल्किने कौकटसे चक्रतीर्थकी जा सदस शास्त्र-विहित विधानके अनुसार स्नान आदि किया था। एक दिन वहां भगवान्ने बाल्याखिल नामक सुनियोंने विपश्य चदन जाकर कहा,—कुम्भकर्णके निकुम्भ नामक एक पुत्र रहा। उसके कुयोदरी नाम्नी एक कन्या है। कालकक्ष नामक किसी राक्षसेसे विवाह हुआ। उसके विकृष्ट नामक एक सन्तान विद्यमान

है। आपाततः कुयोदरी हिमालय पर्वतपर मस्तक लगा और निग्रध पर्वतपर दोनों पैर फैला सो गयी है। हिमालयकी एक उपत्यकामें बैठ विकृष्ट स्तन्यपान करता है? उसी राक्षसीके निश्वास पवनसे प्रतिहत और विवग ही हम आपके शरण पाये हैं। आपसे हमें चिरकाल राक्षसी-भोतिने उधारा है। इसवारभी आप ज्ञापपूर्वक हमारा दुःख मिटा दीजिये।

कल्कि सुनियोंकी बात सुन हिमालयकी उपत्यका पर पड़ूँचे थे। उन्होंने वहां एक दुग्धमयी नदी प्रति खरस्रोतसे बहते देखीं। पूकने पर खबर लगी, कि वह कुयोदरीके एक स्तनकी दुग्धधारा रही। विकृष्ट एकही स्तन पीता था। उससे अर स्तनकी दुग्धधारा नदी बनकर बह सकी। समघटिका पोछे पपर स्तन बदलते वह नदी सूख जाती और दूसरी ओर नदीकी दुग्धधारा बहते दीखती थी। फिर कल्कि कुयोदरीके भोषण आकारकी चिन्तामें पड़े और उससे अभिसुखको चस गये। उन्होंने जाकर देखा, कि राक्षसीका कर्ण पर्वतगङ्गरके भ्रमसे सिद्धोंका आश्रय और लोमकूप पुत्रपौत्रादि सह इन्द्रियोंके सुखसे रहने को निकेतन बना था। कल्किने राक्षसीको देख गर छोड़ा। राक्षसी शरविह होते गभीर गर्जन करने लगी। वह शब्द सुन कल्कि भी सेना मूर्च्छित हुयी। फिर राक्षसीके श्वास लेते ही हस्ती, पात्र, रथ और पदातिके साथ कल्कि नासापयमें लाने लगे। उसने निकट पाकर सबको खा हासा।

भगवान् कल्कि समन्थ राक्षसीके उदरमें पड़ूँचे थे। उससे जगत्संसार डर गया। फिर वह राक्षसीका उदर वाष्पानि जला और कारवाससे उड़ा बाहर निकले। सेन्ध लोग भी योनिरभू कर्ण, नासारध्र प्रभृति स्थानोंसे निकल पें। कुयोदरी पत्त्वकी पड़ूँचीं। विकृष्ट जननीको भरते देख निरायुध हावसे कल्किसेना मारने लगा। कल्किने पशुवर्षीय भोषण राक्षस गिरुकी व्रष्ट अस्त्रसे दमालय भेज दिया।

दूमरे दिन पशुवर्षीय वृषि मुनि गङ्गाका स्नान पड़ते पड़ते कल्किसे देखने गये। उनमें भवि, परित्रा,

राजस होने। विना उपराध प्रतिष्ठाप पा राजाने
भी गुरुका प्रतिष्ठाप देनेके लिये जल उठाया। किन्तु
राजमहिषी मद्यस्त्रीने द्रुतपद उपस्थित हो राजाको
रोका। राजाने वह जल अपनेही घेर पर डाला
था। इससे दानों घेर काले पड़ गये और लोग उन्हें
कल्याणपाद कहने लगे। (भागवत ८। २५०)

कल्याणङ्गि, कल्याणपाद देखो।

कल्याणङ्गिक (सं० पु०) कल्याणो ज्ञान्यवर्णां पद्मी

यस्य, कल्याणङ्गि-कनू। कल्याणपाद देखो।

कल्याणी (सं० स्त्री०) कल्याण-डोपी। १ विजयवर्षा स्त्री,
काली या सांवली, भारत। ३ ज्ञान्यवर्णा यमुना,
कालिन्दी नदी। "कल्याणीरोष" कल गतसर्व शिष्या भयोः।"
(भारत, उमा २६, ४०)

कलेश्वर—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलेका एक नगर।
यह नागपुर शहरसे ७ कोस पश्चिम पड़ता है। यहां
कुनबीकी जमीन्दारी है। यह नगरके मध्य एक
दुर्गमें रहते हैं। दिल्लीसे किसी हिन्दू मनसबदारने
पाकर, यह दुर्ग बनाया था। कलेश्वरमें धान्य, तैल
और देशीय वस्त्रका व्यवसाय चलता है। यहांकी
जमीनमें पफोम, जल और तमाखू होती है।

कल्य (सं० स्त्री०) कलयेति प्रागम्यते, कल कर्मणि यत्।
१ प्रातःकाल, सवेरा, भोर। कलयति मिष्टतां सम्पा-
दयति, कल्य-यच्। २ मधु, गूद। ३ सुरा, शराब।
४ कल्याणवाच्य, सुधारकवादी, वधार्थ। ५ शुभाका-
ङ्क्षा, जं रक्षाधी। ६ शुभ समाचार, अच्छी खबर।
(त्रि०) ७ सज्ज, प्रभुत, तैयार। ८ नीरोग, चढ़ा,
जी बीमार न हो। ९ वाक्युतिरहित, बीरा और
बहरा, जो कुछ सुन न सकता हो। १० दण्ड, डोगि-
यार, बालाक। ११ माङ्गलिक, सुयोगवार। १२ शिष्या-
प्रद, नृसीहता, प्रहेज।

कल्यजग्धि (सं० स्त्री०) कल्ये प्रातः जग्धि भोजनम्,
७-तत्त्वं। १ प्रातःकालका भोजन, सवेरका नाश्ता।
२ प्रातःकालका भोज्य, सवेरके खानेकी चीज।

कल्यत्व (सं० स्त्री०) कल्यत्व नीरोगस्य भावः, कल्य-
त्वत्। चारीय, चाराम, बीमारीसे छुटकारा।
कल्यद्वम (सं० पु०) विभोतक वृक्ष, बड़ेका पेड़।

कल्यपाल (सं० पु०) कल्यं मधु मयं पालयति, कल्य-
पाल-यच्। शौण्डिक, कलवार, शराब टपकानेवाला।
कल्यपालक (सं० पु०) कल्यं पालयति, कल्य-पाल-
क-यच्। कल्याण देखो।

कल्यवर्त (सं० पु०) कल्यं प्रातः वर्तते जीव्यते
अनेन, कल्य हत-पिच-यच्। १ प्रातराग, सवेरका
नाश्ता। २ लघुभोजन, हलका खाना। (स्त्री०)
३ तुच्छ वस्तु, मामूलो चीज।

कल्या (सं० स्त्री०) कलयति मादयति, कल-यिच्-
यक-टाप्। १ मद्य, शराब। २ हरीतकी, हर।
३ कल्याणवाच्य, सुधारकवादी।

कल्याङ्ग (सं० पु०) पर्यटसुव, दमन पापहेका पेड़।

कल्याण (सं० पु०-स्त्री०) कल्ये प्रातः अस्थते शब्दार्थे,
कल्य-अण-अच्। अर्धरि च। न। ११११८। १ मङ्गल,
भलायी। इसका संस्कृत पर्याय—शुभ, श्रेयसः, शिव,
भद्र, शुभ, भावुक, भविक, भव्य, कुशल, देम और
शस्त है। २ अक्षय स्वर्ग। ३ नागविशेष। इस रागमें
ध, नि, सा, ऋ, ग, म और प क्रमसे स्वर लगाये जाते
हैं। दस दण्ड रागि योतनेसे यह राग गाया जाता है।
इसके ठाटवर राजधानी, कल्याण, विरारी, ऐरावत
और कोकिल कल्याण प्रकृति रागिणियां चलती हैं।
कल्याणके पुत्र हिमाल, बल्लभ, यौर, जङ्गल, कलि-
ङ्गरा, पुलिन्द और गुरुदागर हैं। ४ राजविशेष,
एक राजा। यह 'भटथो कल्याण' नामसे ख्यात है।
५ 'गीतगोवा' नामक पुस्तकके प्रणेता। (त्रि०)
६ वाक्याच्युत, भला।

कल्याण—वर्षके प्रातके यामा जिलेका एक उपविभाग
और नगर। इस उपविभागका परिमाणफल २०८
वर्ग मील है। कल्याणसे उत्तर उत्तरपूर तथा
मातला नदी, पूर्व गणपुर एवं सुरवादा, दक्षिण करजत
तथा पनवेल और पश्चिम पारसिक पर्वतमाला है।
उत्पन्न द्रव्योंने धान्य, माष और सर्वपादि प्रधान हैं।
सुन अत्यन्त होता है। कल्याण प्रायः विक्रीषाधार
है। पश्चिममें प्रसस्त समतल भूमि पायी है। फिर
पूर्व और दक्षिणमें पर्वतमालाका अंशसमूह परिभाषित
है। यहां वैशाख-ज्येष्ठ मासमें पूर्वदिक्से वायु चलता

वशिष्ठ, गान्धर्व, अंगु, पाराशर, नारद, दुर्वासा, देवल, दण्ड, बृहस्पति, परशुराम, कृपाचार्य, त्रित, वेद-प्रमिति महर्षि रहे। उनके साथ मरु और देवापि नामक दो राजर्षिभी पाये थे। कल्कि के परिचय पृच्छने पर मरुने कहा,—‘सूर्यवंशीयुत अग्निवर्षका पौत्र और शान्तका पुत्र हूँ। व्यासदेवके मुखसे कल्कि अवतारकी कथा सुन दर्शन करनेकी यहाँ चला पाया। देवापिने अपनेकी चन्द्रवंशीय प्रतीपकरका पुत्र बताया। वह शान्तनुकी राज्य सौंप कलापग्राममें तपस्या करते थे; व्यासके मुखसे कल्किका संवाद सुन देखनेको पहुँच गये।

उनका परिचय पाकर भगवान् कल्किकी पूर्वकथा स्मरण पड़े। उभयकी भाषास से उन्हेंनि कहा,—‘मरु ! प्रजापतिहक तथा माण्डिक्यक त्वेच्छोकी मार तुम्हें भयोध्याके और पुत्रादिका उच्छेद साधन कर देवापिकी हस्तिनापुरके सिंहासनपर बैठेवैने। तुम अस्त्र शस्त्र ज्ञातविद्य हो। अब योद्धव्यमें रथपर चढ़ हमारे साथ चलो। मरु ! तुम विशाखयूपकी सुन्दरी रुचिराङ्गी कन्याको पत्नी बनावो और देवापि तुम भी रुचिराश्रु नृपतिकी कन्या शान्ताकी विवाह कर सावो।’ कल्किके यह बात कहते ही आकाशसे अस्त्र-शस्त्र समित दो रथ उतर पड़े। उससे सबकी विस्मय स्रगा था। कल्किने कहा,—‘तुम दोनों लोकपालनाथं सूर्य, इन्द्र, इन्द्र, वम और कुबेरके अंगसे धराधामपर अवतरण हुये हो। तुम्हारे ही लिये इन्द्रके आदेशसे विश्वकर्मनि यह रथ बनाये हैं। तुम इनपर चढ़कर हमारे पीछे पीछे चलो।’ उनकी इस बातपर सुमहर्षि होने लगे।

उसी समय उनक सट्टय एक तेजःपुञ्ज ब्रह्मचारी जा पहुँचे। कल्किने पाद्यादि द्वारा उनकी पूजा कर परिचय पूछा। ब्रह्मचारीने कहा,—‘कमलापते ! मैं आपका आदेशवद् सत्ययुग हूँ। आपका आविर्भाव और प्रभाव देखानेकी यहाँ आ पहुँचा हूँ। सत्ययुग यह कष्टकल्किका स्वरूप करने लगे। फिर वह उनके अनुगामी बने थे। महर्षियोंने अपने अपने ज्ञानको प्रस्थान किया।

उसके पीछे कल्कि विशाखम राज्यपर पर चढ़े। विशाखयूप, देवापि और मरु उनके पीछे थे। धर्म भी उसी समय वृद्ध ब्राह्मणवेशमें कल्किके निकट अपना परिचय पा उनकी भाषास दिया था। कौकट बौद्धके विदलित होनेकी बात सुन धर्म भाल्लाहादित हुये और सिद्धात्यम अपने परिजनोको छोड़ कल्किके पीछे चल दिये।

कल्कि खग, काम्योज, गवर, वधैर-प्रभृतिकी दवानेके लिये कल्किकी पुरीके अभिसुख हुये।

कल्किकी पुरी भव्यम्भ भोषण थी। उसे देखते ही लोग कांपने लगते। सर्वदा भूत, सारमेय, काक, उलूक और शृगाल बहते देख पड़ते थे। गोमांसका पूतिगन्ध सर्वत्र परिपूर्ण रहा। कामिनियां द्यूत, विवाद प्रवृत्ति विषयोमें अनुरक्त थीं। फिर वही यहाँ कर्त्री, रहीं। अन्य प्रभुकी बात चलती न थी।

कल्किने कल्किदेवको लड़ने भाते सुन स्त्रीय परिजन तुला लिये। फिर वह पैवकास रथपर चढ़ विशाखम नगरके बाहर जाकर लड़नेकी प्रसूत हुये। कल्किने सधैर्य रणवेद पहुँच धर्मसे कलि, ऋतसे दम्भ, प्रसादसे लोभ, अमयसे क्रोध, सुखसे भय, द्रव्यसे व्याधि, प्रत्ययसे रत्नानि और अतिसे जराकी लड़ायायां। अन्यान्य प्रतिद्वन्द्वियोंमें भी उन्हेंनि युद्ध घोषणा करायी। क्रमक्रम विषम युद्ध उठाया। आकाशमें देवता देखने गये। मरु राजा खगो काम्योजी, देवापि चीनावीं वर्वरी और विशाखयूप पुत्रिन्दो चण्डालीं लड़ने लगे। कल्किके काक और बिकाक नामक दो दानव सेनापति थे। वह वकासुरके पौत्र और शकुनिके पुत्र रहे। दोनों देखनेमें एक रूप थे। ब्रह्मासे वर पा वह देवताओंसे प्रकीय रहे। उन दोनों वीरोंके गदाहस्त रथमें कतरनेसे मृत्यु भी डर कर भागते थे। कल्किदेव स्वयं काक और बिकाकके प्रतिद्वन्द्वी बने। युद्धमें अश्वोकी भङ्गा भङ्गी और वीरोंकी कड़ाकड़ीमें पृथिवी धरधराने लगी। अश्वोंकी कल्किके अश्वपर पराजित हो नाना देशोंमें चले गये। कलि स्वयं हारने पर स्त्रीस्वामिक भवनमें पुसा था। पैवकाचरय चर

हुया। धर्मभ्रष्ट खग चण्डालादि भी मरू देवापि तथा विद्याख्यूपसे भांगे थे।

कोक और विकीकसे कल्किदेव लड़े। मधुकैट-भका युव भक्त मारता था। कल्कि उनके अस्त्रघातसे अत्यन्त पीड़ित हुये। उन्होंने क्रुद्ध हो विकीकका गिर काट डाला। किन्तु कोकके अतदेहकी और देखते ही वह जी उठा और फिर दोनों भाइयोंका जोड़ा कल्किपर टूट पड़ा। कल्किने कई बार दोनोंका गिर काटा था। किन्तु एकदि देखते ही दूसरा जीवित हुवा। श्रेयमें कल्किने अपने अस्त्रको उनपर छोड़ दिया। कामगामी अस्त्रके खुरप्रहारसे दामव बार बार मूर्च्छित होने लगे। फिर भी उन्हें मरते न देख कल्कि चिन्तामें पड़ गये। ब्रह्माने उस समय रणमें पहुँच कर कहा,—'विमो ! यह दानव अस्त्रगणसे अवध्य है। हमने इन्के एकको मरते दूसरेके देखनेसे फिर जीउठनेका वरदान दिया था। सुतरां पाप वह उपाय करें, जिससे दोनों साय ही मरें।' कल्किने अस्त्र रहस्य समझ गदाको हाथसे छाना और दोनोंके एक क्षाल बध्नसृष्टि मारा था। दोनों विदीर्ण मस्तक हो पक्षत्वकी पट्टे च गये और एक दूसरेका अतदेह देख न सके। देवता और मनुष्य सब उनके मरनेसे परम प्रीत हुये। सिंहचारणादि कल्किको सराहने लगे। कल्किपुरमें उन्होंने रथ जीता था।

कल्कि उसके पीछे भ्रष्टानगरको शय्यावर्षोंसे लड़ने चले। भ्रष्टानगरके राजा शग्निध्वज पति कृष्णपरायण और योगियोंमें प्रथमस्थ थे। भगवान् कल्किको लड़ने पाते सुन वहभी प्रीति और भक्ति सहकारसे सैन्य सजाकर प्रस्तुत हुये। उनको विष्णु-परायणा सुशान्ता पत्नीने स्वामीको जगत्पतिसे युधोपात देख कहा था,—'नाथ ! भगवान्की कीमन शरीरपर पाप कैसे अस्त्र छोड़ेंगे। उन्होंने उत्तर दिया,—'प्रिये ! रथस्त्रसमें गुरु मिथको और उपास्य उपासकको शस्त्राग मार सकता है। युद्धमें यदि बर्हेगे, तो कैसेके तैसे राजा बनेही रहेंगे। और साय ही कल्किको जीतनेसे लोग हमारी प्रशंसा करेंगे। नहीं तो युद्धमें मरनेसे स्वर्गप्राप्त होना तो निश्चित हो है।

सुतरां हमें दोनों और लाभ ही लाभ देख पड़ता है। वह ईश्वर और हम सेवकाधर्म है। कल्कि हमसे जो सेवा कराना चाहेंगे, उसके लिये ये हमें प्रमत्त न पायेंगे। सुतरां प्रभु जब हमसे लड़ने पाये हैं, तब हमने भी अपने पक्षगण उठाये हैं। उनकी इच्छाके अनुसार हम कार्य करनेको बाध्य हैं।' रानोंने यह सुनकर उत्तर दिया,—'हरिके सेवक कभी कामनालित नहीं होते। सुतरां स्वर्ग वा यमकी कामनासे आपका लड़ना प्रथमभव है। फिर पाप जब कोयी कामना नहीं रखते, तब वह भी क्या दे सकते हैं। सुतरां हमें आप लोगोंका यह युक्तियुक्त मोहकी बीजामात्र मालूम पड़ता है।' इसी प्रकार कथनोपकथनके पीछे शग्निध्वज हरिनाम स्मरण और हरिध्यान कर हरिसे लड़ने चले। शय्याकर्षण लोग अस्त्र उठा उनके साय हुये। राजकुमार सूर्यकेतु भी परम वैष्णव और अस्त्रविदीर्ण अष्ट थे। यह प्रारम्भ हुआ। विद्याख्यूपसे शग्निध्वज, मरुसे सूर्यकेतु और देवापिसे हृद्यकेतु लड़ने लगे। कल्किसेन्य विवक्षु हुआ था। सूर्यके युद्धमें मूर्च्छित होते ही सारथि मरुको से भागा। हृद्यकेतु देवापिसे हार गये। उनके क्रोधमें निर्णय पित होने लगे। परन्तु इतनेमें ही सूर्यकेतु साहाय्यके लिये पट्टे चले और उन्होंने सुष्टिके पाघातसे गिरा देवापिके सुजवम्भनसे अपने भ्राताको छोड़ा लिया। शग्निध्वज विद्याख्यूपको हरा कल्कि-सन्मुखीन हुये। शग्निध्वजने कल्किसे कहा,—'गुण्डरीकाप ! पादये और हमारे हृद्यपर प्रहार लगाइये, नतुवा हमारे भयसे हमारे अन्धकार हृद्यमें क्षिप जाइये। यदि आप हमें पद, समर्थ, तो निर्विवाद प्रहार करें; जिससे हम पनायास शिव भयश विष्णु नोककी चले।

कल्कि यह बात सुन मनही मन सन्तुष्ट हुये और उपरसे शग्निध्वज पर बाण वर्षण करने लगे। दोनोंमें महायुद्ध हुआ। दोनों दिव्य अस्त्र चलाते थे। श्रेयकी कल्किके सुत्रघातसे शग्निध्वज सुहृत् मात्र अचेतन्य रहे। फिर उन्होंने भी उठकर कल्किके सुष्टि मारा था। कल्कि उस पाघातसे क्षिप्तमूल कदलीकी भांति अचेतन हो गिर पड़े। धर्म एवं

दिल्याका राजत्व कांत शक ८८७—१०४८ उचरता है। विक्रमके पिता २५भाद्रपदक कल्याणनगरीके प्रतिष्ठाता थे। (Ind. Ant. Vol. I. p. 209.) कल्याणप्रदेश विक्रमादित्य महाराजको पतिप्रिय रहा। वह नाना स्थानोंसे युद्ध जीत यहाँ आकर उचरते थे।

कल्याण उपाध्याय—वालतन्त्र नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। यह मञ्जीधरके पुत्र और रामदासके पीठ थे। अष्टिच्छत्र नगर इनका जन्मस्थान रहा। इन्होंने ६४४ शककी श्रावणपूर्णिमाकी रविवारके दिन अपना वालतन्त्र समाप्त किया था।

कल्याणक (सं० स्त्री०) कल्याण स्वार्थे कन्। १ कल्याण, भलाई। (पु०) २ पर्यटक, दमनपापड़ा। (त्रि०) ३ कल्याणयुक्त, भला, अच्छा।

कल्याणकगुड़ (सं० पुं०) ग्रहणरीगका वैद्यकीय औषधविशेष, दन्तोंकी बीमारीमें दी जानेवाली एक द्रव्य। आमलकीका रस २ सेर और इक्षुगुड़ ६ सेर एकत्र पाक करे। पाक प्रायः समाप्त होने पर पिप्पली-मूल, जीरक, चव्य, मरिच, पिप्पली, शण्ठी, गज, पिप्पली, इतुप, अजमोदा, विडङ्ग, सैन्धव, चरीतका, आमलकी, विभीतक, यमानी, पाठा, चित्रक एवं धान्यकका चूर्ण पाठ-पाठ तोले, त्रिहृत्चूर्ण १ सेर और तैल १ सेर डाल अच्छेसे बना लेते हैं। यह अच्छेसे पाठ तोले इलायची और तेजपत्रका चूर्ण मिला कर खानेसे ग्रहणो, श्वास, कास, स्वरभेद, शोथ, मन्दानि, पुष्टपल्लवार्नि और वन्यादोष निवारित होता है। इसे त्रिहृत्के तैलमें तलकर देना चाहिये। (बनदन)

कल्याणकघृत (सं० स्त्री०) वैद्यकीय घृत औषध-विशेष, दवाका एक घी। विडङ्ग, त्रिफला, मुस्ताक, मञ्जिष्ठा, दाडिमत्वक्, उत्पल, प्रियङ्गु, एला, एलवालुक, रत्नचन्दन, देवदारु, वैशामूल, कुष्ठ, हरिद्रा, शालपर्णी, चक्रकुल्या, धनन्तमूल, श्यामा, ऐणुका, त्रिहृत्, दन्तौ, यथा, तालीशयत्र और मान्ती-मूल प्रत्येकका कल्प दो-दो तोले, घृत ३२ पल तथा जल १६ गरावक एकत्र पाक करनेसे यह घृत बनता है। इसके सेवनसे विषमज्वर, श्वास, गुण्ड, उन्माद, विषरोग, अक्ष्मोषध, रसोदोष, अग्निमान्द्य, पप-

स्मार, शकहीनता, वन्यादोष, चतुर्ग और शुभमार्ग-का दोषसमूह छूट पायुर्द्धि होती है। (सूत्र) इसे घृतकी द्विगुण जल और चतुर्ग दुग्ध डाल कर पकानेसे चौरकल्याण कहते हैं। (शरणीकृत) फिर दाहरीय पर महत्कल्याणक घृत चलता है। यथा घृत ४ गरावक, शतमूलिका रस १६ गरावक, दुग्ध १६ गरावक और जीरक, यला, मञ्जिष्ठा, पञ्चगव्या, हरिद्रा, काकोली, चौरकाकोली, यष्टिमधु, मेदा, महामेदा, व्रट्टि व्रट्टि तथा देवदारुका कल्प पाठ-पाठ तोले एकत्र पाककरनेसे महत्कल्याणकघृत प्रसृत होता है। (रघुनाकर)

कल्याणकर (सं० त्रि०) माङ्गलिक, भलाई करनेवाला। कल्याणकामोद (सं० पुं०) मिथरोगविशेष, एक मिलाचरो राग। ईमन और कामोद मिलनेसे यह बनता है। इसे प्रथम प्रहरमें गाते हैं।

कल्याणकार, कल्याणकारक शेषो। कल्याणकारक (सं० त्रि०) कल्याणप्रद, भलाई करनेवाला।

कल्याणकृत (सं० त्रि०) कल्याण-ल-कृत्। १ कल्याण-कारक, भलाई करनेवाला। २ शास्त्रविहित कार्य-कारक, भला काम करनेवाला।

कल्याणकोट—सिन्धुप्रदेशवाले ठाठानगरके पार्श्वका एक प्राचीन गिरिदुर्ग। आजकल इसे तुंगसकायाद कहते हैं।

कल्याणगुड़, कल्याणगुड़ शेषो। कल्याणघृत, कल्याणकघृत शेषो।

कल्याणचन्द्र (सं० पुं०) एक ज्योतिःशास्त्रकार। यह ई० १२ वें शताब्दमें विद्यमान थे।

कल्याणचार (सं० त्रि०) १ शुभमार्ग पयसम्यन करने वाला, जो अच्छी राह चलता हो। २ भाग्यशाली, किरामती।

कल्याणधर्मा, कल्याणधर्मो शेषो।

कल्याणधर्मी, (सं० त्रि०) कल्याणो महत्समया धर्मो-न्यास्त, कल्याण-धर्म-इति। महत्सकर धर्मविगिट, निक, अच्छा।

सत्ययुगके साथ कल्किकी उठानेके लिये शशिध्वज निकट पहुँचे थे। वह धर्म तथा सत्ययुगकी अपने दोनों कर्तव्योंमें तथा और कल्किकी वक्षस्त्रसे लगा अपनी पुरी बसे गये। उनमें धर्ममें पहुँच रानीकी सन्तियोंके साथ हरिगुण गाते पाया था। राजा उनसे कहने लगे,—‘प्रिये! भगवान् कल्कि कुर्वाकसे हमारे वक्षस्त्रमें लग तुम्हारी भक्ति देखने पाये है। फिर हमारे दोनों कर्तव्योंमें धर्म और सत्ययुग है। इनकी यथोचित भर्त्सना कीजिये। सुशान्ता सबको प्रणामकर और हरिप्रेमसे विश्रुत वग नाचने गाने लगीं। स्वयसे तुष्ट हो कल्किने सुसोव्यक्तकी भाँति ईपत् सज्जितमुखसे सुशान्ताका परिचय पूछा। उन्होंने अपनेकी दासी बताया था। धर्म और सत्ययुग सुशान्ताकी हरिभक्ति सराहने लगे। कल्किने कहा यथार्थ तुम्होंने हमको जीत लिया। शेषकी उन्होंने शशिध्वजकी कन्या रमाका पाणिप्रदण किया। फिर कल्किके सहचर राजावीने शशिध्वजसे उस अपूर्व भक्तिकी कथा पूछी। उन्होंने परिचय देकर लक्ष प्रकार हरिभक्ति पायी, उसी प्रकार सब बात खोलकर बताया थी।

उसके पीछे कथाप्रसङ्गमें शशिध्वजने भक्ति एवं वासनातत्त्व देखा दिया और द्विविध तथा ज्ञानवानुकी भाँति मरणकी प्रायश्चा की। राजावीने उन दोनों वानरोंका हस्तान्त सुनना चाहा था। राजाने सब बताया कर कहा,—‘हमों कथावतारमें सत्यभामाके पिता सत्राजित् थे। इसके बाद कल्कि शशर शशिध्वजकी सान्त्वना दे चल दिये और सधेन्य काश्चनपुरी पहुँच गये। वह पुरी गिरिदुर्गसे वेष्टित और सपञ्जालसे रक्षित थी। कल्कि विविध बाणों द्वारा विधात हटा पुरीमें घुसे। पुरीके मध्य सुन्दर प्रासाद हरिचन्दन हृदसे वेष्टित और मणिकाक्षमसे अलङ्कृत थे। किन्तु मनुष्योंका कोई सम्पर्क न रहा। केवल नागकन्या चारों ओर घूमती फिरती थीं। कल्कि पुरीमें घुसते द्विचक्रिचाने लगे। उसी समय देवबाणों दृष्टी,—‘बाप भवेली ही प्रवेश कीजिये। इस पुरीमें एक विपकन्या है। उसके देखते बापको छोड़ सब मर जावेगी। फिर वह केषक युगकी पकड़ और अज्ञपर चढ़ काश्चनपुरीमें

खड़ेगहस्त घुसे थे। विपकन्या एक स्थानपर देख पड़ी। कन्याने कहा,—‘मिरे तुल्य हतभागिनी विपनेत्रा कामिनो दूखरी नहीं। बाप कौन है?’ कल्किने उससे विपनेत्रा होनेका कारण पूछा। उसने उत्तर दिया मैं गन्धर्वराज चित्रवीरकी भार्या सुलोचना हूँ। एक दिन मैं पतिके साथ गन्धर्वादन कुञ्जवनमें रंसात्माप करती थी। उसी समय नद्य मुनिका कर्दय कसेवर देख मुझे बड़ी हँसी आयी। मुनिने कीधवय विपनेत्रा होनेका परिभाषा टिया था। आज बापके दर्शनसे मिरे भापका चन्त हुआ। अब मैं स्वामीके पास जाती हूँ। विपकन्या स्वर्गकी चली गयी। कल्किने उक्त पुरीके अधीश्वर चमपकंकी राज्यपर भूमिपिक्त किया। फिर उन्होंने मरुकी चयौध्या, सूर्यकेतुकी मयूरा, देवापिकी वारणावत, अरिखल, हकखल, कामन्दत एवं हस्तिना, कविप्रभृति भाइयोंकी गौह्व, पोण्ड आदि, ज्ञानिवर्गकी कोकट प्रभृति और विगाखुयुपकी कौह तथा कलाप राज्य दिया था। फिर सब गन्धल सौट गये। धृतिवोपर धर्म और सत्ययुगका अधिकार प्रवर्तित हुआ।

कुछ दिन बीतने पर विष्णु यमाने यज्ञ करनेकी पुत्रसे कहा था। कल्किने उनके पाददेशे राजस्य, वाजपेय और अश्वमेधयज्ञ सम्पन्न किया। ऊपर, राम, वशिष्ठ, व्यास, धीम्य, अक्षतत्रय, अश्वत्थामा, मधुच्छन्दा और मन्दयान प्रभृति महर्षि उन सकल यज्ञोंमें उपस्थित थे। कल्किने यज्ञान्तमें गङ्गायमुनाके सङ्गमस्थलपर ब्राह्मणोंकी खिनाया फिनाया। पीछे सब लोग गन्धल सौट गये।

समय पाकर परशुराम कल्किके भवन पहुँचे। उसी बीच कल्किके पदावता-गर्भजात जय और विजय दो पुत्र हुए थे। रमाके कौथी वासक न रहा। उन्होंने परशुरामको देख अपना परिभाषा कहा। परशुरामने रमासे कल्पपोत्रत कराया था। त्रसके प्रभावसे रमाने केवमान और बलाहक नामक दो पुत्र पाये। कल्कि पत्नीपुत्रके माघ महासुखसे दिन बिताते थे। फिर ब्रह्मादि देवताओंमें उनसे स्वर्ग लानेकी प्रगोध किया। कल्किने पुत्र तथा प्रजापणको कहा अपने

है। स्थान बहुत ही भव्वास्थ्यकर है। शीतकालमें खरका कुछ मादुर्भाव बढ़ती भी अच्छा रहता है। एक दीवानी भदालत और एक धाना है। फोज-दारीकी दो कचेहरियां लगती हैं। कल्याण नगर इस प्रदेशका प्रधान स्थान है। यह अक्षां० १८° १४' उ० और देशां० ७३° १०' पू० पर अवस्थित है। नगरमें बन्दर विद्यमान है। चावल छांटनेका काम बहुत होता है। मुसलमानोंके अधिकार समय कल्याणमें ११ मसजिदें बनी थीं। चतुर्दिक प्राचीरमें वेष्टित नगरमें प्रयोग करनेकेलिये चार द्वार थे।

कल्याण अतिप्राचीन है। नाना स्यामोंके ई० प्रथम, पञ्चम तथा षष्ठ शताब्दके खोदित शिलालेखों में भी इसका नाम मिलता है। पेरिप्लसके मतसे ई० द्वितीय शताब्दकी दाक्षिणात्यमें कल्याण नामक एक प्रधान राज्य था। कसमस इण्डिकोसुट्रेसकी वर्षानुसे समझ पड़ता है, कि ई० षष्ठ शताब्दमें भारतकी वाणिज्यप्रधान पाँच नगरियोंमें कल्याण एकतम और बड़ा पिप्तल प्रभृतिका विस्तृत ध्यवसाय केन्द्र रहा। ई० चतुर्दश शताब्दकी मुसलमानोंने जिलेका सदरधाना बना इसका नाम इसलामाबाद रखा। पोर्तगोलोंने १५३६ ई०की कल्याणपर अधिकार किया था। किन्तु उन्होंने इसकी रक्षा रखनेका कोई प्रयत्न न बाँधा। फिर १५७० ई०की बह इसका उपकण्ठ लूट यथेष्ट धन रत्न ली गये। पीछे यह प्रदेश अहमद नगर राज्यमें लगा। १६१६ ई०की योजापुरके राजाने प्रबल शी इसे अधिकारमें किया। १६४८ ई०की शिवाजीके सेनापति बाबाजी सोमदेवने कल्याणपर आक्रमण कर शासनकर्ताकी बन्दी बनाया। १६६० ई०की मुसलमानोंने इसे शिवाजीके हाथसे छुड़ाया, किन्तु १६६२ ई०की फिर गंवाया। १६७८ ई०की शिवाजीने अंगरेजोंको यहाँ कोठी बनानेका आदेश दिया था। १७०८ ई०की मराठोंका साहाय्य न मिलनेसे अंगरेजोंने यह प्रदेश अधिकार किया। उसी समयसे कल्याण अंगरेजोंके अधीन है।

प्राचीन इतिहास—इसका जो प्राचीन इतिहास मिला, वह अधिकार्य कर्णाटकके खोदित लेखोंसे निकला है।

करनेन मेकेही साधने संस्कृतपुस्तकीका संक्षिप्त इतिहास लिपिबद्ध किया है। उसमें 'महाराज वसराज अंगायलो' संगी है। वह तिरुपती पर्वतके निकट-वर्ती नारायणपुर वा नारायणवरम् नामक स्थानके अधिवसियों या प्राबोल कवेती नगरके मह राजवंशीय राजावाँका अंगविवरण कीर्तन करती है। तोन्दमान चक्रवर्तीके एक अंगीय धनधर्य चोस थे। उन्हीं चोस-राजपुत्रसे उल्ल अंगकी उत्पत्ति है। धनधर्यके अंगमें नारायणराज नामक किसी व्यक्तिने जन्म लिया। उन्हीं नारायणराजने नारायणवरम् या कल्याणपत्तन स्थापित किया था। कल्याण पत्तन प्राचीन कल्याण वा प्रापुरिक नारायणवरम् नदीपर अवस्थित है।

कर्णाटक खोदित शिलालेखोंसे जो प्रमाण मिले उन्हें देख समझ सके हैं—एक समय गोदावरी और कल्याणदीके अन्तर्गत भूभागमें चालुक्य राजा अतिमय प्रबल पराक्रान्त पड़े थे। उस समय कौटुक्य, कल्याण, वनवासी प्रभृति राज्योंपर उनका अधिकार पैसा था। कल्याण बहुत समृद्धिवासी और विख्यात था। चालुक्य राजा शिलालेखोंमें अपना कल्याण वा कल्याणपुरके 'चालुक्य राजा' कक्षकर परिचय दे गये हैं। कौटुक्य-प्रदेशमें चित्ताराज नामक एक महामण्डलीवर नृपति (८४६ अक) थे। उनकी प्रदत्त छाड़के सम्बन्धमें मतामत देते समय अध्यापक सामंजने कहा है,— 'इसकी लिखी शिलालेख ज्ञाति काफिरिस्तानकी उत्तरस्थ काफिर जातीय "गिलार" जातिको छोड़ अन्य ज्ञाति ही नहीं सकती।' किन्तु दाक्षिणात्यमें एक शिलालेख ज्ञाति था। वह लोग पहले मान्य-छेटीय राष्ट्रकुटोंके पीछे कल्याणवासी चालुक्योंके अधीन हुये। उस समय शिलालेखोंके ही शासनमें कौटुक्य प्रदेश, धनगांव और सतारिका मध्यवर्ती समुद्र स्थान था। शिलालेखोंके पराजयके बाद उल्ल अकल प्रदेश कल्याणके अधीन हुआ।

दाक्षिणात्यके चालुक्य राजाओंमें कनिविक्रम विक्रमादित्य त्रिभुवनमहदेवकी महिमाका एक काव्य है। विष्णु नामक कविने उसे बनाया था। काव्यका नाम 'विक्रमाह्वरित' है। उसके मतमें विक्रमा-

स्वर्गगमनका संवाद सुनाया था। वह ध्वज शोकांत
हुये। कल्कि राजत्व छोड़ दोनो पवित्रोंके साथ
हिमालय प्रदेशमें गङ्गा किनारे पहुँचे थे। वहाँ
उन्होंने अपने आपकी स्मरण किया। फिर चतुर्भुज
मूर्तिमें परिवर्तित हो वह मोक्षोक्त गये। पद्मा और
रमान् बननमें देह छोड़ पतिलोक पाया था। पृथिवी
पर सत्ययुगका प्रभाव अत्यन्त रहा। देवादि और मरु
राज्य शासन करने लगे। कल्किपुराण देखा।

भागवतमें कल्कि भगवान्का त्रयोविध अवतार
कहा है। (भागवत १.१.१२-१५)

जैनियोंमें भी कल्कि अवतारकी कथा सुन पड़ती
है। वह कहते हैं—महावीरकी निर्वोध्य पानेकी पीछे
प्रति सदस्य वर्ष कल्कि होता है और वह जैनधर्मके
विश्व मत स्थापन करते हैं। (जैन चरित्र)

कल्किपुराण—एक अतिरिक्त उपपुराण। यह षष्ठादश
उपपुराणोंमें बाहर है। इसमें तीन अंग लगे हैं।
प्रथम एवं द्वितीयमें सात सात बौद्ध और तृतीयअंग
में इक्षोक्ष सब पैंतीस अध्याय हैं। इनमें क्रमानुसारे
शुकमारकण्डेयका संवाद, धर्मके अंगका कीर्तन,
कल्किा विवरण, पृथिवी तथा देवगणका ब्रह्मलोकको
गमन, ब्रह्मवायवानुसार शम्भुलक्ष ब्राह्मण विष्णु युगाके
अद्वैत सुमतिके गर्भमें विष्णु एवं उनके अंशभूत तीन
अद्वैत सद्योदरके लक्ष्मीका विवरण, कल्कि-विष्णु युगा-
का संवाद, कल्किा उपनयन, परशुरामसे कल्किा
साक्षात्, उनसे वेदाध्ययन, ब्रह्मगन्तुगिष्ठा, कल्किा
शिवाराधन, हरपार्ष्णीके समक्ष कल्किा शिवस्वा-
पाठ, शिवसे भद्र, खड्ग, शूक, अस्त्रादि एवं वरका
ज्ञान, शम्भुलक्षी प्रत्यागमन, बभ्रुगणसे वरका कीर्तन,
नरपति विद्याखण्डकी सभामें कल्किा संज्ञेपसे वर्षा-
श्रमधर्मकथन, शुकका पागमन, शुककल्किसंवाद
सिंहलका वर्णन, पद्माका चरित, शिवसे पद्माका वर-
ज्ञान, पद्माके स्वयंस्वरका पाद्योजन, स्वयंस्वरकी सभामें
भागत राजावीका स्तोभाव, पद्माका विवाह, शुकको
दूतद्वारा प्रेरण, शुकपद्मा-संवाद, पद्माका विष्णु-
पूजन, पदादिमें वैशान्त प्रथम विष्णुके प्रत्येक धनुका
वर्णन तथा ध्यान, शुककी पल्लव दान, शुकका प्रत्या-

गमन, पद्माके उद्धार, कल्कि एवं शुकका सिंहलगमन,
ज्ञानके लक्ष्य सरोवरमें पद्माका अभिसार, पद्माका जल
कीगृहण, कल्कि तथा पद्माका मिलन, हृद्ययुगका
संबंधन, कल्कि-पद्मा-विवाह, कल्किके दर्शनसे स्तोत्र
प्राप्त राजावीका पुत्रज्ञान एवं कल्किस्त्व, वर्षाश्रम
धर्मपर कल्किा उपदेश, राजावीका प्राय, अनन्त
मुनिका भागमन, अनन्तका पूर्व वृत्तान्त कथन, शिव-
का स्तव, यिताके मृत्युपर अनन्तका मायादर्शन और
वेदाभ्यासकथन, अनन्तका मोक्ष, राजावीका प्रत्या-
गमन, कल्कि पद्माका शम्भुतको प्रस्थान, विष्णुकर्मा-
का विधान, ब्राह्मणोंका अंगवर्धन, विष्णुयुगाका
यज्ञाभिसार, कल्किा स्वर्गलोकके साथ दिग्विजयकी
गमन, जिनराजका वध, बौद्धोंका निषेध, मायाका
अन्तर्धान, बौद्ध-रमणियोंका बुद्धोद्योग, अश्व देवतादि-
का भाविर्भाव, ज्ञानके योगका कथन, मुनियोंका
भागमन, कुयोदरीका वृत्तान्त, सपुत्रा कुयोदरीका
वध, हरिद्वारको कल्किा गमन, मुनियोंका
साक्षात्, मरु एवं देवाविका मिलन, समयके परिचय-
स्त्वसे सूर्यअंग तथा चन्द्रअंगका कीर्तन, मरुका राम-
चरितकथन, मरु एवं देवाविके साथ कल्किकी
सुहार्थगमन, धर्म तथा सत्ययुगका मिलन, कोक
विकीरुका विनाश, भङ्गाटमें गमन, श्याकपीका
शुक, सुगन्तासे शशिध्वजका विष्णुमूर्तिकीर्तन, रण-
स्वल्पमें शशिध्वज कर्तव्य कल्किधर्म एवं सत्ययुगका
पराजय, उनको उठा शशिध्वजका अपनी पुरीमें
प्रवेश, सुगन्ता कर्तव्य स्तव, कल्किके साथ रमाका
विवाह, शशिध्वजके अष्टपञ्चमका विवरण, द्विविद एवं
जाम्बवान्का वर्णन, स्वमत्तकोपाख्यान, शशि-
ध्वजका मोक्ष, विष्णुका मोक्ष, राजावीकी
राज्यदान, पुत्रादिका अभिषेक, मायान्तव, शम्भुलक्षमें
यज्ञादिका अनुष्ठान, नारदसे विष्णुयुगाका भक्तिज्ञान,
धर्म एवं सत्ययुगका अधिकार, हस्तिचौम्रत, कल्किका
विचार, पुत्रवोयादिका वर्णन, ब्रह्मकल्कि-संवाद,
विष्णुका वेङ्कण्डगमन, पद्माकथाका शिव, शुकदेवका
प्रस्थान, मुनिगणोंका गङ्गास्नान, पुराणका विवरण
और पुराणके अर्थशा फल सिद्धा है।

दिल्याका राजत्व कास शक ८८०—१०४८ ठहरता है। विक्रमके पिता २५भाद्रपदका कल्याणनगरीके प्रतिष्ठाता थे। (Ind. Ant. Vol. I. p. 209.) कल्याणप्रदेग विक्रमादित्य महाराजकी अतिप्रिय रहा। वह नाना स्थानोंसे युद्ध जीत यहीं आकर ठहरते थे।

कल्याण उपाध्याय—बालतन्त्र नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। यह मञ्जीधरके पुत्र और रामदासके पोत्र थे। अहमदनगर इनका जन्मस्थान रहा। इन्होंने ६४४ शककी आषणपूर्णिमाकी रविवारके दिन अपना बालतन्त्र समाप्त किया था।

कल्याणक (सं० स्त्री०) कल्याण स्वार्थे कन्। १ कल्याण, भलाई। (पु०) २ पर्यटक, दमनपावड़ा। (त्रि०) ३ कल्याणयुक्त, भला, अच्छा।

कल्याणकगुड़ (सं० पु०) ग्रहशीरोरुका वैद्यकीय औषधविशेष, दम्भीकी बीमारीमें दी जानेवाली एक द्रव्य। आमलकीका रस २ सेर और इक्षु गुड़ ६ सेर एकत्र पाक करे। पाक प्रायः समाप्त होने पर पिप्पली-मूल, जीरक, चव्य, मरिच, पिप्पली, शण्ठी, गज, पिप्पली, हनुष, अममोदा, विडङ्ग, सैन्धव, हरीतका, आमलकी, धिभीतक, यमानी, पाठा, चित्रक एवं धान्याकका चूर्ण पाठ-पाठ तोले, त्रिहृत्चूर्ण १ सेर और तैल १ सेर डाल अवलेह बना लेते हैं। यह अवलेह पाठ तोले इसाथघी और तेजपत्रका चूर्ण मिला कर खानेसे ग्रहणो, श्वास, कास, खरभेद, गीघ, मन्दाग्नि, मुखपल्लवानि और वन्यादोष निवारित होता है। इसे त्रिहृत्के तैलमें तलकर देना चाहिये। (चन्द्रन)

कल्याणकष्टत (सं० स्त्री०) वैद्यकीय कष्ट औषध-विशेष, दवाका एक घी। विडङ्ग, त्रिफला, मुद्गाक, मञ्जिष्ठा, दाडिमलक, उत्पल, प्रियङ्गु, एला, एलवालुक, रत्नचन्दन, देवदाह, वेणामूल, कुठ, हरिद्रा, मालपर्णी, चक्रकुल्या, पनन्तमूल, श्यामा, ऐशुका, त्रिहृत्, दम्भी, वचा, तालीगपत्र और मात्तली-मूल प्रत्येकका कल्प दो-दो तोले, कष्ट ३२ पल तथा जल १६ शरावक एकत्र पाक करनेसे यह घृत बनता है। इसके सेवनसे विषमन्त्र, श्वास, गुल्म, उन्माद, विषरोग, पनन्तोषह, रसोदोष, अग्निमान्द्य, पच-

कार, शकहीनता, वन्यादोष, चक्षुरोग और शकमार्ग-का दोषसमूह कूट पायुर्हृदि होती है। (चक्र) इसी घृतकी द्विगुण जल और त्रिगुण दुग्ध डाल कर पकानेसे चौरकल्याण कहते हैं। (शरबीहरी) फिर दाह्रोग पर महत्कल्याणक घृत चलता है। यथा घृत ४ शरावक, मतमूलिका रस १६ शरावक, दुग्ध १६ शरावक और जीरक, बला, मञ्जिष्ठा, भग्गन्धा, हरिद्रा, काकीली, चौरकाकीली, यष्टिमधु, मेदा, मष्टामेदा, ऋष्टि हृदि तथा देवदारुका कल्प पाठ-पाठ तोले एकत्र पाककरनेसे महत्कल्याणकघृत प्रसृत होता है। (रघुव्याकर)

कल्याणकर (सं० त्रि०) माङ्गलिक, भलाई करनेवाला। कल्याणकामोद (सं० पु०) मिथरोगविशेष, एक मिलाधरी राग। ईमन और कामोद मिलनेसे यह बनता है। इसे प्रथम प्रहरमें गाते हैं।

कल्याणकार, कल्याणकारक देखा।

कल्याणकारक (सं० त्रि०) कल्याणप्रद, भलाई करनेवाला।

कल्याणकृत् (सं० त्रि०) कल्याण-ल-कृप्। १ कल्याण-कारक, भलाई करनेवाला। २ मासविहित कार्य-कारक, भला काम करनेवाला।

कल्याणकोट—सिन्धुप्रदेशवाले ठाठानगरके पार्श्वका एक प्राचीन गिरिदुर्ग। आजकल इसे तुंगसकाबाद कहते हैं।

कल्याणगुड़, कल्याणगुड़ देखा।

कल्याणघृत, कल्याणघृत देखा।

कल्याणचन्द्र (सं० पु०) एक ज्योतिःशास्त्रकार। यह ई० १२ वें शताब्दीमें विद्यमान थे।

कल्याणचार (सं० त्रि०) १ शुभमार्ग अवलम्बन करने वाला, जो अच्छी राह चलता हो। २ भाग्यशाली, किरामती।

कल्याणधर्मा, कल्याणधर्म देखा।

कल्याणधर्मी, (सं० त्रि०) कल्याणो मङ्गलमया धर्मो-स्यादिति, कल्याण-धर्म-इति। मङ्गलकर धर्मविहित, निक, अच्छा।

कल्किपुराणको लोग देवायन प्रणीत बताते हैं। किन्तु कोई कोई इस बातको नहीं मानते। कारण वेदव्यासप्रणीत सकल पुराण और उपपुराण नामक अन्यान्य ग्रन्थोंमें इसका नाम नहीं मिलता। एतद्विषय कल्किपुराणके मध्यस्थे तृतीयांशके एकविंश अध्यायमें एक स्थानपर लिखा है,—‘सकल पुराणाभिन्न सोम-हर्षणनन्दन सत वेदव्यासके शिष्य थे। हम उन्हें प्रथम करते हैं।’ यदि यह पुराण वेदव्यासरचित रचना, तो उनकी लेखनीसे स्वशिष्यके प्रति प्रणाम-प्रापक श्लोक लिखा देख न पड़ता। फिर कल्कि-पुराणमें वेदव्यासके रचना होनेका प्रमाण कहाँ है ? प्रथम अंशके श्रौतकादि ऋषियोंके प्रत्यानु-सार इस पुराणकी व्याख्याका अनुक्रम लगाया है। पुराणोत्पत्ति निरूपण करते समय उन्होंने कहा, ‘पुराणालकी नारदके पूछनेपर ब्रह्माने यह उपाख्यान सुनाया था। नारदने व्यासदेवके निकट व्याख्या की। फिर वेदव्यासने स्वपुत्र ब्रह्मरात (शुकदेव ?)को यह विवरण बताया था। ब्रह्मरातने अभिमन्युके पुत्र विष्णुरात (परीक्षित ?)की सभामें यह कथा कीर्तन की, किन्तु कथा श्रेय न हुई। विष्णुरात स्वर्गको चले गये। मार्कण्डेय आदि महापुरुषोंने शुकदेवसे अनुरोधकर श्रेय पदंस्त कथा सुनी थी। उनके मुखसे सुना हुआ विषय हम विवृत करेंगे। इसमें अष्टादश सङ्ख श्लोक विद्यमान हैं।’ किन्तु तृतीयांशके श्रेय अध्यायमें ग्रन्थके उपसंहारकालमें उपन्यशके मुखसे ही भिन्नरूप वर्णना मिलती है,—‘निरतिशय्य पापी लोग भी इस पुराणके प्रभावसे अभीष्ट लाभ कर सकते हैं। इस कल्किपुराणके ऋष महत्त्व एतन्नत श्रोत्रोर्गें सकल शास्त्रोका चर्य और तत्त्व संश्लेषत दुपा है। प्रलयावसानमें श्रीहरिके मुखसे यह कल्किपुराण निकला है। इस पुराणमें चतुर्वर्ग मिलते हैं। भगवान् वेदव्यासने ब्राह्मणलक्ष्म परिषद किया था। उन्होंने ही धरातलपर अवतीर्ण हो परम विष्णयकर भगवान् कल्किके प्रभावकी यह वर्णना सुनायी है।’ पूर्वोक्त दोनों अंश देस श्लोक संख्याके सम्बन्धपर भी विभिन्न रूप बयन मिलता है।

कल्किपुराणमें पुराणोपपुराण-वर्णित सङ्ख विषयोकी बहुत वर्णना नहीं। सिद्धक इस सम्बन्धमें जो कथायें लिखते,उनको देखते ही समझा जा सकता है कि यह सकल अंग केवल पुराणके तत्त्वकी रक्षा करनेके लिये ही ग्रन्थमें लगाये गये हैं। रघुवंश, नैषध, कुमार प्रभृति महाकाव्योंमें जैसे किसी एक व्यक्ति वा विषयकी वर्णना चलती है, इसमें भी वैसे ही एक मात्र कल्किचरितकी कथा मिलती है। कल्किपुराणमें गृह्यार, शान्ति एवं वीररघु विग्रेय देखाया, अन्यान्य रसोक्ता भाग अविष्टरूपमें भूलकाया और पुराणादिकी भांति पुनरुक्तिदोष वा अनर्थक अथवा शब्दोंका प्रयोग नहीं लगाया है। इन सकल कारणोंसे इसको एक सुन्दर महाकाव्य कहना अधिक युक्तिवद्गत है। इसको रचनाप्रणाली पुराणोंकी भांति रचधोन नहीं। कल्कि-पुराणकी भाषाकी भी प्राचीन कथनेमें शब्द है।

इसमें कलियुगके श्रेय पादकी वर्णना लिखी है। उसके अनुसार कलिप्रभावसे समस्त पृथिवी एकवर्ष होनेपर भगवान् कल्कि रूपमें जन्म ले कलिको घटायें और सत्ययुग चलावेंगे। सूक्ष्म भावमें मनोदोष पूर्वक विचार कर देखनेसे कल्किके समय पृथिवीकी वर्णित अवस्था श्रेयपादकी नहीं—प्रथमपादकी घटना समझ पड़ती है। कल्किके साथ मायावादी बौद्धोका युद्ध जिस अंशमें लिखते है, यह अंग निविष्ट वित्तमें पढ़नेपर सङ्खमें ही समझ सकते हैं कि यह वर्णना भारतमें बौद्ध धर्म बढने समयकी ठहरती है। यही बात कल्कि शब्दमें उद्धृत श्लोकसे भी प्रतिपन्न होती है। अनुमानसे कल्किपुराणकार उस समयके मानुष पढ़ते,जिस समय बौद्ध धर्मकी प्रवृत्तता घटनेसे ब्राह्मण-धर्मके तत्त्व कुछ कुछ ऊपर उठते थे। उस समय उनकी आंखोंमें भारतकी जो दुर्दशा समायी, उन्होंने यही लिख कल्किके श्रेयपादकी अवस्था बताया।

कल्किपुराणमें जिन स्थानों (माहिषमती, शम्भर, कीकट, सिंघल, पाण्डुर, सोरान, सुराद्र, पुलिन्द, मगध, मध्यकण्ठाट, अन्ध, पांडु, कलिङ्ग, चङ्ग, वङ्ग, कङ्क, कलापक, हारणा, मयुरा, वारणावत, परिखल, हलस्यल, माकन्द, वृक्षिनापुरी, चोल, बर्बर, कर्षट,

कल्याणनट (सं० पु०) मिररागविशेष, एक मिलावटी राग। यह कल्याण धोर नटके संयोगसे बनता है।

कल्याणपद्यमीड (सं० पु०) मास पद्यविशेष, महीनिका एक पाद्य। जिस पद्यकी पद्यमी कल्याणकारक रहती, उसकी संज्ञा कल्याणपद्यमीक पद्यती है।

कल्याणपुर—१ युक्तप्रदेशके फतेहपुर जिलेकी एक तहसील। यह गङ्गा धोर यमुना नदीके बीच अवस्थित है। इसमें २१८ ग्राम लगते हैं। भूमिका परिमाण २८० वर्ग मील है।

२ काश्मीरका एक प्राचीन नगर। ६६० शकमें कल्याणदेवीने यह नगर बसाया था।

३ दाक्षिणात्यके कल्याण प्रदेशका प्राचीन राजधानी। चालुक्य राजाओंके शिलालेखोंमें यह स्थान प्रसिद्ध है। कल्याण शब्दों।

४ युक्तप्रदेशके कानपुर जिलेका एक ग्राम। यह कानपुर शहरसे कीर्ई ६ मील पश्चिम पड़ता है। यहां मुनिशका धाना धोर बम्बई-बरोदा-मध्यभारत तथा राजपूताना-मालवा-रेलवेका ट्रेगन विद्यमान है। फिर बिठूर (मद्रासतं)से कानपुरकी सुवेदार साइकली रेल भी उक्त ट्रेगनसे जाती है। धानिके पास एक पक्का तलाब धोर महादेव तथा देवीका मन्दिर है।

कल्याणभायं (सं० पु०) पुरुषविशेष, एक मर्द। स्त्रीके मरने पर फिर विवाह होनेकी बात उठनेसे पुरुषकी 'कल्याणभायं' कहते हैं।

कल्याणमल—युक्तप्रदेशके प्रान्त हरदोई जिलेका एक परगना। इसका प्राचीन नाम यौलिया है। प्रवादानुसार रामचन्द्र रावणकी मार लडाईसे शीटते समय यहां राईसे उतरे थे। फिर उन्होंने रावणपथजनित पापक्षान्तके लिये 'हत्याहरण' नामक पवित्र कुण्डमें स्नान किया। पाँचवीं वर्ष पक्षसे यह स्थान ठठेरोंके अधिकांशमें था। पीछे वेम्पवार राजपूत-कुलोत्थ राजकुमारने ठठेरोंकी भगा ८४ धामों पर राजत्व चलाया। उन्होंने रयौलिया नगरमें एक दुर्ग बनाया था। उसका भग्नावशेष आजभी देख पड़ता है। जागमल नामक किसी नायकने प्रभुकी मार (किसीके मतसे हलप्रयोग पूर्वक) यह स्थान छोड़

लिया। आजभी जागमलधर्मगोय शहरवार राजपूत ६३ धामका उपभोग करते हैं।

इस परगनेका परिमाण ६१ वर्गमील है। उसमें ११ वर्गमील पर कृषि कार्य होता है। यहांकी भूमि बहुत अच्छी नहीं। हत्याहरणकुण्डके निकट प्रति वर्ष भाद्रमासमें मेला लगता है। उसमें श्रुताधिक पन्द्रह हजार पादमी इकट्ठा होती हैं। इस परगनेमें कल्याण नामक ग्राम ही प्रधान है।

कल्याणमल (सं० पु०) १ अमररत्न नामक रत्नके प्रथिता। २ राजमलके पुत्र। इन्होंने मेघदूतकी भावती नाम्नी टीका बनायी थी।

कल्याणमित्र (सं० स्त्री०) कल्याणस्थ धर्मस्थ मित्रमित्र। १ महर्षि सुतपाके पुत्र। इनका नाम लेनेसे नट द्रव्य मिलता धोर वषका भय भगता है। (शरैरंगसार)

२ धर्मका सद्गी, नेक सलाह देनेवाला।

कल्याणयोग (सं० पु०) कल्याणकरो योग, मध्यपद-स्त्री०। ज्योतिःशास्त्रोक्त यात्राका एक योग। हृदयति केन्द्रस्थल (लग्नेसे १म, ४यं, ७म धोर १०म) धोर सूर्य विकीण (५म धोर ८म) पयवा १०म वा ११म स्थानमें रहनेसे यह योग जाता है। इस योगमें यात्रा करनेसे मङ्गल हुआ करता है।

कल्याणलेश (सं० पु०) पयलेशविशेष, एक सटनी। हरिदा, वषा, कुष्ठ, पिप्ली, शण्डी, लीरक, पत्रमोदा (यमानो), यठी मधु, मधुकमुप्य धोर शैश्वकी सम-भाग बारीक चूर्ण प्रत्यह २१ दिन घोंमें स्नानकर चाटनेसे वातव्याधि, द्रिक्का धोर ग्रासरोग पारोग्य होता है।

(पदवर्ण)

कल्याणवचन (सं० स्त्री०) कल्याणं मङ्गलमयं वचनम्, लसंधा०। मङ्गल वाच्य, भली बात।

कल्याणवर्मा (सं० पु०) १ कीर्ई प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्। इन्होंने मारावली नामक एक ज्योतिष बनाया था। २ काश्मीरवासी राजा हृदयतिके एक मातुल (मामा)। इन्होंने हृदयतिकी गेगवावस्थामें कुछ दिन भ्रातृ-गर्भोंके साथ राजकार्य चलाया था। फिर कल्याण-वर्माने 'कल्याणधर्मा लिंगव' नामक विष्णुकी एक मूर्ति प्रतिष्ठित की। (राजतरंगिणी ३१८८)

कल्याणवाचन (सं० स्त्री०) कल्याणस्य वाचनं उच्चारणम्, ६-तत् । शास्त्रविहितं कर्मसमूहके प्रथमं ब्राह्मण्ये पट्टाया जानिवासा एकं मन्त्रं । यजमानको शास्त्र-विहितं कर्म आरम्भं करोति समयं 'ॐ श्रः कर्तव्येऽभिन् कर्मणि कल्याणं भवन्तीऽधिष्णु वन्तु' मन्त्रसे प्रार्थना करना चाहिये । इस पर ब्राह्मण 'ॐ कल्याणम्' मन्त्र तीन बार पढ़ता है । फिर उसे निम्नलिखित मन्त्रसे कल्याण-वाचन करना पड़ता है,—

“सो इधियामुह तस्यायुं धनुष्याथं पुराहृतम् ।
श्विमिः विहगमर्थं सत् कल्याणं सदाय नः ॥”

कल्याणवादी (सं० त्रि०) कल्याणं वदति, कल्याण-वद-विनि । कल्याणवक्ता, भलाईकी बात कहनेवाला । कल्याणविमोद, कल्याणवद देवो ।

कल्याणवीज (सं० पु०) कल्याणं वीजं यस्य, बहुव्री० । १ मधुरहृत्, मधुरकी दालका पेड़ । मधुर देवो । (६-तत्) २ मङ्गलका कारण, भलाईका सबब ।

कल्याणयमी (सं० पु०) वराहमिहिरकृत हृत्सु संदि-ताके एक टीकाकार ।

कल्याणसिंह—वीकानेरके एक राजा । यह राजा जीतसिंहके पुत्र थे । १६०१ वत्सं कल्याणसिंह राज्याभिषिक्त हुये । २७ वर्ष इन्होंने राजत्व किया था ।

कल्याणसुन्दराभ्र (सं० स्त्री०) राजयन्माका एक रस । ८ तोले जारित भस्त्रकी आमलकौ, सुस्तक, इहती, शतमूली, इक्षु, विस्वपत्र, अग्निमन्य, घाला, वासक, कण्टकारी, शीशाक, पाटलि तथा बलाके ११ पत्र रसमें हृत्क मटेन कर गुच्छा समान घटो बनाये यह पीवध प्रशुत होता है ।

कल्याणवाचार (सं० पु०) कल्याणकरः वाचारः, मध्य-पदलो० । १ मङ्गलकर वाचरण, भला चाल चलन । (त्रि०) २ मङ्गलकरकार्यं करनेवाला, जो अच्छी चाल चलता हो ।

कल्याणवाचारी (सं० त्रि०) कल्याणवाचारं पश्यत्य, कल्याणवाचार-वनि । मङ्गलमय वाचारणयुक्त, अच्छी चाल चलनेवाला ।

कल्याणभिजनन (सं० स्त्री०) कल्याणकरं भूमिजननम्, कर्मधा० । १ मङ्गलकर जन्म, नैक पैदायग । (त्रि०)

२ मङ्गलकर जन्म लेनेवाला, जो अच्छे वक्त्र पैदा हुआ हो ।

कल्याणालय (सं० त्रि०) कल्याणस्य धामलयः, ६-तत् । १ मङ्गलका धामय, नैकीका ठिकाना । (पु०) २ परमेश्वर ।

कल्याणस्यद (सं० त्रि०) कल्याणस्य पाश्र्वदः, ६-तत् । १ मङ्गलका पात्र, भलाईका घर । (पु०) २ जगदोम्बर ।

कल्याणिका (सं० स्त्री०) कल्याण संघायां कन्-टाप्-पत इत्वम् । मनःशिक्षा । मनःशिक्षा देवो ।

कल्याणिकी (सं० स्त्री०) कल्याणं पश्यत्याः, कल्याण-इनि-डोप् । १ वक्ता । वक्ता देवो । २ कल्याणविमिष्टा स्त्री, भली पौरत ।

कल्याणी (सं० त्रि०) कल्याणमस्यादिति, कल्याण-इनि । कल्याणयुक्त, नैक, भला ।

कल्याणी (सं० स्त्री०) कल्याण-डोप् । १ मापपयी । २ गाभी, गाय । “उर्वर्येनेवं कल्याणी नामि कौर्मित एनं क्त्वा” (१५।००) ३ राक्ष हृत्क, राजका पेड़ । ४ सर्ज हृत्क, धुनेका पेड़ । ५ प्रयागकी एक प्रसिद्ध देवो ।

कल्याणीय (सं० त्रि०) कल्याण टक् । कल्याणके योग्य, मङ्गलमय, नैक, भलाई करसकनेवाला ।

कल्याण्यदि (सं० पु०) पाणिनि-व्याकरणका एक ग्रन्थ । कल्याण्यदिनादिहृत्कः वा ३।१।२। इति कल्याणी, सुभगा, दुर्भगा, वन्धकी, अनुदष्टि, अनुदष्टि, जयतो, वजीवदी, छेष्टा, कनिष्ठा, मध्यमा पीर परस्वो यद् धत्तभूर्त है । टक् प्रत्ययके धत्तमें छल्ल ग्यत्के १ नदीय-से इनह्-पाठिय होता है ।

कल्याण (त्रि०) कल्याण देवो । कल्याणाल, कल्याण देवो ।

कल्याणालक, कल्याण देवो । कल्याण (सं० स्त्री०) मधिवन्धा, कलाई ।

कल्ल- (सं० त्रि०) कल्लते शब्दं न शब्दाति, कल्ल-पच् । वधिर, बहुरा, जिमे कानसे सुन न पड़े ।

कल्लट (सं० पु०) कल्लटस्येश्वर पौर म्यदसुत्-विवरण नामक ग्रन्थके प्रणेता । कामीर इनका जन्मस्थान था । पायात्वं पण्डित १५६ ई० ८६० शताब्दके व्यक्ति मानते हैं । किन्तु हमारी विवेचनामें कल्लट

कथाघात (सं० पु०) कशेरु कथया वा पाघातः,

शतम् । कथाका पाघातः, चातुशकी मार ।

कथात्रय (सं० स्त्री०) कथानां कथाघातानां त्रयम्, वहुश्री० । तीन प्रकारका कथाघात, तीन तरहसे चातुशकी मार । यह शूद्र, मध्य और निष्ठुर होता है । अश्वीको साधारण दण्ड देते समय शूद्र पाघात लगाते हैं । किन्तु उपवेशन, निद्रा, स्वप्न, दुष्ट चेष्टा, अश्विनो (घोड़ी) देखनेका औरसुक्य, गर्वित जे पारव (जोरकी जिनटिनाइट), वास, दुखत्याग, विमार्ग-गमन, भय, शिवात्याग, चित्तभ्रम प्रवृत्ति अपराधोमें मध्य और निष्ठुर पाघात देना पड़ता है । अपराध विशेषमें पाघातका स्थान भी प्रयुक्त है । वास एवं भयमें गलदेश, शिवात्याग तथा चित्तभ्रममें पश्च, गर्दित जे पारव एवं अश्विनो देखनेके भीतसुक्यमें बाहु तथा स्कन्धदेश, उपवेशन एवं निद्रामें कटिदेश, दुर्घ्यवहार तथा विमार्ग प्रधानमें मुख, यज्जन एवं दुःखानमें जघन और कुण्ड प्रकृतिमें सर्वस्थानपर कथा मारते हैं ।

कथारि (सं० स्त्री०) यज्ञकी एक वेदी । यह यज्ञ स्थलमें उत्तर दिक् रहती है ।

कथाई (सं० त्रि०) कथा अस्ति, कथा-पह-पत् । कश्य, चातुक लगाने लायक । कथलप ईशो ।

कथायाम् (सं० त्रि०) कथा लिये-पुवा, जो चातुक रहता हो ।

कथिक (सं० पु०) कथति हिनस्ति सर्वम्, कथ बाहुलकात् इक । नकुल, सापकी मार डालनेवाला निवसा ।

कथिकपाद (सं० त्रि०) कथिकस्य पादाविव पादो यस्य, बहुश्री० । इत्यादित्वात् नाभ्यलोपः । पादल कोलोत्तरादिभः । वा. ३. १. ११८ । नकुलकी भांति पद-विशिष्ट (जन्तु), निवसेकी तरह देरवाला (जानवर) ।

कथिका (सं० स्त्री०) चर्मकथा, चर्मकेका चातुक ।

कथिपु (सं० पु०) कथति दुःखं कथति वा, स्यग-यादित्वात् निपातनात् साधुः । पथ, पनाज । २ आच्छादन, कपड़ा । ३ भ्रम, भात । ४ शय्या, पलंग ।

“इको लियो विं इतिः वपाईः” (भातवत १।१।७)
Vol. IV. 65

५ पासन विषय, एक बैठक ।

कथियूपवर्षण (सं० स्त्री०) उपाधान वस्त्र, तकियेका गिलाफ ।

कथिय (फा० स्त्री०) पाकर्षण, खींच ।

कथीका (सं० स्त्री०) कथ बाहुलकात् ईकन्-टाप् । प्रवृत्ता नकुनी, प्यार हुई निवसी ।

कथीदया (भा० पु०) मत्स्यवृक्षा कूटोपायविषय, कुश्रीका एक पेंच । इसमें खेलाड़ी पपनी जोड़की गर्दनपर हाथ रख वाम पदसे उसका दक्षिण पद पपनी और खींच लेता और उसे दक्षिण करसे पकड़ गिरा देता है ।

कथीदा (फा० पु०) सूचिकर्म विषय, कदाव । इसमें वस्त्रपर सूची तथा सूत्रसे नानाप्रकार छत्रिम पत्रपुष्प बनाते हैं ।

कथेरक (सं० पु०) एक पक्ष । (भात २।१०५०)

कथेर (सं० पु०-स्त्री०) के देहे शीयंते, क-शू-ए एरुद्देशिय । इतरकनायं । एप्. १. २. १ पृष्ठास्य, रीद, पाठकी यही बखी । कं कलं वार्तं वा श्रुवाति । २ स्तनामस्थान लणविषय, कसेरु । इसका संस्कृत पर्याय—कथेरक, कसेरु, कसेरुक और कथेरक है । हिन्दीमें कसेरु, बंगलामें केशुर, मराठीमें कषेर, पञ्जाबमें दिसा और तेलगु (तिड्डो)में गुन्द-तुण्ण गही कहते हैं । (Sripus dubius)

कथेर एक प्रकारकी घाघ है । यह समय भारतमें सरोवरां और नदियोंके किनारे उरपस होता है । इसका पतिल मूल जातिफन (लायकल) सदृश रहता और ऊपरसे छाच्छवर्षं देख पड़ता है । यह सद्योचन-शील है । पहली और विशुद्धिका रोगमें देगीय बंध रहे पीपथकी भांति व्यवहार करते हैं । यह रोग न लगनेके लिये भी चयाया जाता है ।

शीतकालमें कथेर छोद कर खाया करते हैं । इसके ऊपरका छिलका खीज डाला जाता है । कोई कोई कसेरुकी उबासकर भी खाता है । रक्षासमें यह देवताओं पर चढ़ता है । कथेर यानमें मधुर और शीतल है । यह ही प्रकारका होता है—राज-कसेरुक और चिखोड़ । यह कथेरकी रासकथेरक

इं० एके शताब्दमें विद्यमान रहे। कारण उस समय काँगोरीमें कन्नड नामक एक गेव राजा राजत्व करते थे। सम्भवतः स्पन्दसर्वस्वकारने उक्त राजाके नामसे ही अपना ग्रन्थ निकाला होगा। स्पन्दसूत्रके वार्तिककार भास्करभट्टके मतानुसार वसुगुप्तने कन्नडकी शिष्यध्वं यताया था। फिर इन्होंने स्पन्दसूत्रकी कारिकाके साथ उसे जनसमाजमें प्रचार किया। कन्नडमें स्पन्दसूत्रकी एक लघुवृत्ति भी बनायी थी। ईशरत्न देखो।

कन्नड (सं० स्त्री०) कन्नस्य भावः, यन्न-त्व । १ छत्र-भेद, भावात्मिका फल । २ वाधिर्घं, यद्धरापन, सुन न पढ़नेकी क्षमता ।

कन्नन—दक्षिणापथकी एक पसम्य छाप्यवर्ष जाति। तामिल, तेलगु (तिलगुड़ी) प्रवृत्ति भाषाके अनुसार 'कन्नन'का एक पर्यं चौर या डाकू है। सम्भवतः पूर्वकालमें द्विपकर माल मारने डाका डाननेसे यह नाम निकला होगा। मदुराराज्यमें इस जातिका वास है। किसी समय कन्नन लोग बलामोसे कुछ स्थान छीन स्वाधीन भावमें रहते थे। अंगरेजोंके आनेसे पहले यह जाति मदुरा और निकटस्थ राज्यमें बड़ा उत्पात उठाती थी। १८०१ ई०को मदुरा अंगरेजोंके अधिकारमें आये। फिर इन लोगोंका वह प्रभाव और दौरात्म्य घटने लगा। फिर भी उच्चत स्वभाव, पतुल साहस और शरीरका तेज आज भी वैसा ही बना है।

कन्नन जातिके विवाहकी पद्धति पति चमत्कारक है। एक रमची पनायाच दो-से दस तक पति ग्रहण कर सकती है। किन्तु एक एक जोड़े पति रखना पड़ता है; जोड़ा फूटनेके खाम बिगड़ता है। इनके सम्मान अर्पणको दह, पाठ या दम जोरोंके नदों—पाठ और दो, दह और दो या चार और दोके पुत्र बताते हैं। अनेक विधा रहते भी कोई गुरुवृद्ध नहीं होती। कारण सम्मान सबसे समझे जाते हैं। फिर सबको उन्हें पालना पड़ता है।

कन्नन अपने पुत्रोंकी श्रेयशक्तिके ही शौर्यहति विश्वासते हैं। इस कार्यमें जो जितना परिश्रम पड़ता,

उसे अजातिके निकट उतना ही पादर और सम्मान मिलता है। यह शिष्यकी पूजा करते हैं। किसीके मरनेपर गव जलाया या भूमिमें गड़ाया जाता है।

कन्नसूत्र (सं० त्रि०) अधिर एव० सूत्र, जो कन्न सुन न सकता हो।

कन्नर (हिं० पु०) १ कन्न, पारी नदी। २ रेव, नोभा। ३ पदुवैरा भूमि, लहर।

कन्ना (हिं० पु०) १ पट्टर, किरा। २ कुना, कुवा, गड्डा। यह भोट पर पान खोदनेका खोदा जाता है। ३ कपोलके अन्वसरका अंग, लघुडा। ४ विवाद, भगडा। ५ शरीरका स्थान विशेष, जिम्माका एक हिस्सा। लघुके गोत्रे मन्त्रक कन्ना रहता है।

कन्नाच ((हिं० वि०) १ दुट, लुधा। २ दरिद्र, कन्नाल। यह तुर्किके 'कन्नाच' शब्दका रूपान्तर भाव है।

कन्नातोड़ (हिं० वि०) प्रयत्न, जोरवार, जो बराबरी कर सकता हो।

कन्नादरान् (फा० वि०) कर्कशवादी, सुँहजोर, कड़ी बात कहनेवाला।

कन्नादराजी (फा० स्त्री०) कठोर बचन, सुँहजोरी, कड़ी बात।

कन्नामा (हिं० त्रि०) सुखमाने पधवा ललजानेके चर्ममें पसल पीड़ा होगा, चमड़ा जमना।

कन्नि (सं० अर्थ०) चांगामी दिवसको, कन्न।

कन्निमाय (सं० पु०) एक प्रसिद्ध सन्नीतमाधारकविता।

कन्नु (हिं० पु०) छाप्यवर्षविशेष, काले रंगवाला। यह शब्द प्रायः काले आदमियों या कुर्षोंका नाम होता है।

कन्नोल (सं० पु०) कन्न वादककात् सोलघ् । १ महा तरङ्ग, बड़ा लहर। २ चप, चूर्ण। ३ मत्सु, दुग्धन। (वि०) ४ मयुता रखनेवाला, जो दुग्धभी मानता है।

कन्नोलित (सं० त्रि०) कन्नोलोऽस्य संज्ञातः, कन्नोल इतत् । तरङ्गयुक्त, लहर सेनेवाला।

कन्नोलिनो (सं० स्त्री०) कन्नोलोऽस्यप्याः, कन्नोल इति-टोय् । नदी, दरवा।

भौर सुस्तासति सप्तको विषोड कश्ते हैं। दोनों प्रकारका कश्यप शीत, सधुर, तुवर (कापय), गुरु, पित्तशीघ्रित दाहघ्न भौर पांखकी बीमारी दूर करनेवाला होता है। (भावप्रकाश)

धिष्णापुरका कश्यप बहुत बड़ा निकलता है। कहीं कहीं इसे ठण्डाईमें भी घोट कर पीते हैं।

१ भारतवर्षका एक विभाग।

“भारतवर्षात् सर्वं न्य भवतीदाप्रियामयः।

रश्मरीषः कश्यपः शायवर्षो गमसिमान्।

गामरीपक्षया वीथी शायवर्षः सवः ॥” (विष्णुपुराण)

कश्यपक, कश्यप देखो।

कश्यपका (सं० स्त्री०) कश्यपक-टाप्। १ घुंठास्थि, रीढ़, पीठकी बड़ी हड्डी। २ कश्यप, कश्यप।

कश्यपमान् (सं० पुं०) यवनराजविशेष, एक राजा।

“इन्द्रदुष्यो इतः कोपाद् यवनस्य कश्यपमान्।” (हरिवंश ११००)

१ भारतवर्षका एक खण्ड।

कश्यपस् (सं० स्त्री०) कश्यप, कश्यप।

कश्यप (सं० स्त्री०) कश्यप परहू चान्सादेशः।

१ ढणकन्दविशेष, कश्यप। २ विश्वकर्माकी चतुर्दशी कन्या। भरकासुरने हस्तिरूपसे इन्हें हरण किया था।

(हरिवंश, १२१०)

कश्यपक, कश्यप देखो।

कश्यपका, कश्यप देखो।

कश्यप (सं० त्रि०) कश्यप ताड़ने वाहुलकात् भोक।

१ हिंसक, मार डालनेवाला। (पुं०) २ राक्षसादि, शैतान बगेरह।

कश्यप (सं० अर्थ०) किम्-चन इति सुभ्रवीधः।

कोई, एक न एक यह अनिर्दिष्टवाचक है। पाणिनिने इसे प्रथम शब्द माना है।

कश्यत् (सं० अर्थ०) किम्-चित् इति सुभ्रवीधः।

कोई, एक न एक। यह अनिर्दिष्टवाचक है। पाणिनिके मतमें ‘कश्यत्’ शब्द प्रथम ठहरता है।

“कश्यत् कानामिरहनुष्या स्वाधिकारप्रमत्तः।” (शिवदूत)

कश्यती, कश्यती देखो।

कश्यस (सं० स्त्री०) कश्य-कल-सुट। उटिकविभोतिथः

प्रत्ययसुट। अर्थ १। १००। १ सूट्टी, गुथ, एकाएक बँधीय

ही जानिकी हालत। २ मोह, कमज़ोरी। ३ पाप, गुनाह। (त्रि०) ४ मलिन, गन्दा। ५ दुराचार, बदकाश। ६ पापी, गुनाहगर।

कश्यम (सं० स्त्री०) वेदे प्रयोदरादित्वात् सप्त शः।

कश्यम देखो।

कश्यीर (सं० पुं०) कश्य-ईरन् सुहागमय। कश्य-ईरन्।

अर्थ ४। ११। काश्यीर जनपद। काश्यीर देखो।

कश्यीरज (सं० स्त्री०) कश्यीरे जायते, कश्यीर-जन-

ह। कुङ्कुमविशेष, ज़ाफ़रान्, केसर। उद्भूत देखो।

कश्यीरजम् (सं० स्त्री०) कश्यीरे जन्म यत्स्य, बहुव्री०।

कुङ्कुम, केसर।

कश्यीरो (सं० वि०) १ कश्यीरसम्बन्धीय, कश्यीरके

सुतासिक। (स्त्री०) २ कश्यीर देशकी भाषा या

बोली। ३ लेह विशेष, एक चटनी। आर्द्रकको क्षीण

सुद सुद खण्ड करते हैं। फिर उनमें घीस कर मरिच,

कड़ौल; कश्यीरज (केसर), ऐला, जावित्री, सौंफ

और लौरक घीसकर मिलाया पड़ता है। अन्नको

लवण, सिरका और शर्करा डालनेसे कश्यीरो-चटनी

तैयार हो जाती है। (पुं०) ४ कश्यीर देशका

अधिवासी यानी रहनेवाला। ५ कश्यीरका अन्न

यानी चोड़ा।

कश्य (सं० पुं०-स्त्री०) कश्य अर्हति, कश्य-य।

दयादिभ्यो यः। पा ३। १। ६६। १ अन्न, घोड़ा। २ अन्न-

का मध्यदेश, घोड़ेका पुट्ट। ३ मय, शराब। (त्रि०)

कश्यघातके योग्य, कोड़ा खाने लायक।

कश्यप (सं० पुं०) कश्यं सोमरसादिजनितं मयं

पिबति, कश्य-प-क। १ कोई ऋषि। ब्रह्मण्डके मानस-

पुत्र मरीचिके धीरस और कलाके गर्भसे इनका जन्म

हुवा था। मार्कण्डेयपुराणके मतानुसार कश्य ऋषीत्

सोमरसके मयसे इनकी उत्पत्ति है, उसीसे कश्यप

नाम पड़ गया।

“ब्रह्मचरन्तयो योऽमृत मरीचिरिति विदुः।

कश्यपस्य पुत्रीऽमृत कश्यपान् स कश्यपः ॥”

(मार्कण्डेयपुराण १००। १)

यज्ञ यज्ञवेद प्रभृति वैदिक संहिताओंके मतमें

द्विरण्यग्नं ब्रह्मसे कश्यपने जन्म लिया था।

“हिरण्यवर्षाः प्रथमः यावत्ता वायुः ज्ञानः कश्यपौ वासिष्ठः ॥”

(वैमिरीयसंहिता १।१।१।१)

कश्यप एक प्रजापति थे। साम, यजुः और ऋग्वेदसंहितामें इन्द्र इन्द्र चन्द्र प्रभृति देवोंमें एक माना है। (साम १।१।१४४, यजुः १।१९, ऋग्वेद १।१।१।१०)

कात्यायनने अपनी वेदानुक्रमणिकामें लिखा है कि कश्यप ऋक्संहितावाले कई सूक्तोंके ऋषि थे। श्रीमद्भागवतमें देखते हैं कि कश्यप ऋषिने इसकी १० कन्धाओंसे विवाह किया। उनके गर्भसे १० जातियाँ उत्पन्न हुईं,— १ अदितिसे देव, २ दितिसे दैत्य, ३ दनुषे दानव, ४ काष्ठसे पश्यादि, ५ परिष्ठासे गन्धर्व, ६ सुरसासे राक्षस, ७ इसासे हृष, ८ मुनिसे अप्सराएँ, ९ क्रोधवशासे सर्प, १० ताम्बासे श्येन शूभ्र प्रभृति, ११ सुरभिसे गोमहिषादि, १२ सस्यसे श्वापद, १३ तिमिसे जलजन्तु, १४ विनतासे गरुड, एवं परुष, १५ कट्टसे नर, १६ पतङ्गोसे पतङ्ग और १६ यामिनिसे श्लक्ष्म। किन्तु महाभारत और अन्यत्र पुराण प्रभृति में कश्यपकी ऋग्वेदभाष्यमें लिखी है। मार्कण्डेय-पुराणके मतसे उनके नाम थे,— १ अदिति, २ दिति, ३ दनु, ४ विनता, ५ खसा, ६ कट्ट, ७ मुनि, ८ क्रोधा, ९ परिष्ठा, १० इसा, ११ ताम्बा, १२ इसा और १३ श्वा।

(भाष्यपुराण १०८५०)

पश्यतीति पश्याः सर्वज्ञः पश्य एव पश्यकः पादा-
न्ताक्षरविपर्ययात् सिध्यति यदा कश्यं पश्यान् पविद्या-
मित्यर्थः पिवति नाशयति पयसा कश्यं विज्ञानमधुनं
पाति रक्षति स्वात्मनीति शेषः । २ परब्रह्म ।

“ तदेव ब्रह्म वा आत्मा एतस्य माता इतो प्रजातां कोशा धारक कश्यपौ च
वीपप्राणमीका मात्मनि ॥” (तापतिबृति १।१)

१ कच्छप, कलुषा। ४ मृगविशेष, एक हिरण।
५ मह्यविशेष, एक मरुक्षी। (त्रि०) ६ श्यावदन्त,
बड़दन्ता।

कश्यपनन्दन (सं० पु०) कश्यपस्यनन्दनः पुत्रः, ६-तत् ।
१ कश्यपके पुत्र गरुड। २ देव, अक्षर आदि।

कश्यपपुर (सं० स्त्री०) कश्यपस्य पुरम्, ६-तत् ।
वर्तमान काशीरंका यह नाम रखा था। कश्यपपुरकी

श्री इन्द्रोदोतसने ‘कम्पतुरम्’ और टलेमिने ‘कश्यपोर’
लिखा है।

कश्यपसंहिता (सं० स्त्री०) कश्यपस्य संहिता, ६-तत् ।
कश्यपप्रणीत एक धर्मशास्त्र।

कश्यपस्मृति, कश्यप संहिता देखी।

कष (सं० पु०) कपति पत्र घनेन वा, कष-पक्ष-यदा-
कष-घ निपातनात् साधुः । गोबरपक्षरक्षत्रभ्राजपण्डि-
नमाय । वा १।१।१।१८ । १ कष्टिप्रद्वार, कसौटी। इसपर
स्वर्णं राय्य घिसकर जांचते हैं। कषका संस्कृत पर्याय—
शाम और निकस है। २ घर्षण, घिसाव। (त्रि०)
घर्षण करनेवाला, जो घिसता या रगड़ता हो।

कषय (सं० त्रि०) कष्यते विलास्यते, कष कर्मणि
व्युट् । १ अपक, कषा। (पु०) कपति पत्र ।
२ कष्टिप्रद्वार, कसौटी। (स्त्री०) भावे व्युट् ।
३ घर्षण, खुजनाहट, रगड़।

“कषयकष्यतिरस्तुत इदितिः कषयिमतस्तुत इति श्रुतिः” (भाषि ४।१०)

कषपापाय (सं० पु०) कषपासो पापायथेति, कर्मधा० ।
स्यर्गमणि, कसौटी।

कषा (सं० स्त्री०) कष्यते ताश्चते घनया, कष बाहुल-
कात् करणे षप्-टाप् । कषा, चाबुक।

कषाघात (सं० पु०) कषाका पाघात, चाबुककी मार,
घबड़े।

कषाकु (सं० पु०) कष—पाकु । १ स्वर्ण, पाफुताव ।
२ घनि, घातिय, प्राग।

कषापुत्र (सं० पु०) निकषात्मज, एक राक्षस।

कषाय (सं० पु० स्त्री०) कपति कण्ठम्, कष—पाय ।
१ रसविशेष, कसेलापत्र। इसका संस्कृत पर्याय—तुवर,
कवर और तूवर है। सुन्दरके मतानुसार पाश्चात्यमें
सुषुको सुषुनि, जिह्वाको ठहराने, कण्ठको यह
घनाने और श्वको सुरब घोड़ा पट्ट पानेवाला रस
कषाय कहाता है। इसीसे वायुपुण्ड्रल जोतिसे यह
उपजता है। पूगफल आदि खानेसे इसका पाषाण
मिलता है। कषाय रस मक्षपाहक, प्रथरोपक,
सूक्ष्म, शोधन, लेहन, शोषक, पोहादायक, क्षेय-
नाशक और वायुवर्धक है। इसके पतिरिक्त ध्य-
हारसे घोड़ा, सुषुमीय, उदराधान, वाक्यपट (वात

रका पड़। ५ त्वक्, दारचोमो। ६ भूर्जपत्र, भोज-
पत्र। ७ मन्दीवृक्ष, वैजिया पीपर। ८ डिण्डिमवाद्य,
जटा, लक्षारा। ९ पाषाण जातिमेद। १० वृक्षो।
कवचपत्र (मं० स्त्री०) कवचस्यैवमसाधने पत्रमिव
पत्रं वस्त्रकर्म यथा, बहुश्री०। भूर्जपत्र, भोजपत्र।
कवचपाग (वै० पु०) कवच व वर्मवन्ध, जिरह
वाधनेका पट्टा। (शं० श्रुतिग)
कवचहर (मं० पु०) कवचं हरति येन वयमा, कवच-
हृत् पञ्च। १ कवच हरणका उदास करनेके उपयुक्त
ययस्क वानक, लडका, बचा। (ति०) २ कवचधारी,
जिरह पहननेवाला। ३ कवचका यन्त्र धारण करने-
वाला, ओ तावीज् पहने हो। ४ कूर्पासकधारी,
मिरझाई पहने हुआ।
कवचित (संचे ति०) कवचं सञ्चरति, कवच-
हृत् पञ्च। कवचयुक्त, जिरह पहने हुआ।
कवची (मं० स्त्री०) कवचं अक्षयस्य, कवच-इति।
१ वर्मयुक्त, जिरह पहने हुआ। (पु०) २ धूमराष्टके
एक पुत्र। (महाभारत १। ११०। ११) गिय, मछादेव।
कवचीयन्त्र (सं० स्त्री०) चौपधके पाकाघं यन्त्रविशेष,
दवा पकानेका एक धाला। किंसा हृद् काचकूपो
(शीमो)का यह घनता है। कूपो न तो पतित्त्व
घोर पतित्त्वो रचना चाहिये। पहले इसे कर्द-
माक (भीम) वस्त्रमे अक्षीतरह लपेट पीके मृदु
भुक्तिकाका लेव चढ़ाते है। फिर धूममें कूपी सुपायी
जाती है। अन्तर्मे इसमें धोषध रग मुग बन्द कर
देते है। इसी प्रकार कठिन घोर हृद् अग्निमें एक
सकनेवाली कूपीका नाम कवचीयन्त्र है। (शं० श्रुतिग)
कवठी (मं० स्त्री०) कौति मन्दायते, कु-पठन् डोय्।
कषाट, क्वाड़ी।
कवट्ट (सं० पु०) केन जलेन वन्ते चमति, क-वल्-
पञ्च सङ्घोरेचमत्। १ घास, लुक्मा, कौर। २ मच्छुप,
हुसा।
कवट्टपट्ट (मं० पु०) कव्यं, २ मोलेकी तौल।
कवती (मं० स्त्री०) कवन्त् पदवल्, क-मत्तु-ट्टोय्
मन्वयः। 'कवामयित' इत्यादि शब्द-विशेष, सा शब्दा
'क' से मत्त हो।

दवट्ट (वै० ति०) १ म्वाघंवर, मतमयी। २ मत्त-
कर्म, बुरा काम करनेवाला।
"इत्येति न देवायः कवट्टे" (शब्० १। ११०)
कवन (मं० स्त्री०) कौति मन्दायते, कु-पठन् डोय्। १ जल-
पायी। (पु०) २ मृदाके एक पुत्र।
कवन (हि०) कोव देखो।
कवन्तक (मं० पु०) व्यक्तियोग, किंसी चाटनीका
नाम। पाणिनिने इनका उल्लेख किया है।
कवन्त् अर्थ देखो।
कवपय (सं० पु०) कु पय, कोः कवादेशः। लक्ष-
वन्ति। १। २। १०८। मत्पय, बुरा रास्ता।
कवयि, कवयी देखो।
कवयी (सं० स्त्री०) कात् जलात् वयते मण्डति,
क-वय-इन् डोय्। मत्तविशेष, सुभा मदानो। इसका
संस्कृत पर्याय—कविकापुच्छे पीर चक्रपटो है।
(Coins coloire) चम्पान्य मत्तकी अर्थात् यह
जलमूय म्यानमें अधिक लय औ मद्धती है।
इसके तालडवपर चट्टनेका प्रवाद सुन पड़ता है।
वस्तुतः यह कर्पदेश्य कण्टकके गहारे उभयान पर
पट्टेच जाती है। फिर भूमिपर भी कवयी बहुत दूर
तक चलती है। बडालके यथोर पीर फरिदपुर
जिलेमें यह हृद्दाकार देव पड़ती है। वेदाक मतमें
कवयी मधुर, सिन्ध, कपाय, रुष्य, वस्य, ईपत्-विताकर
पीर वातघ्न होती है।
कवर (मं० पु०-स्त्री०) के मत्तके वरं गीममानत्वात्
व्येष्टम्। १ लेगयाग, लुक्मा, २ कवठी, वनतुलसी।
कु-परम्। कोवन्। १। ११०। ३ पाठक, व्याख्या
दाता। ४ मन्वय, नमक। ५ पय, मृदाई। (ति०)
६ मच्छुप, गुच्छेदार। ७ कवचित, जङ्गल। ८ पित्त
वर्ष, घितकधारा।
"इत्येति न देवायः कवट्टे" (शब्० १। ११०)
कवर (हि०) कोव देखो।
कवर (सं० पु० = Cover) १ व्याख्यात्म, योग्य,
गिवाक। २ आव, टकना। ३ निकाम, विही।
४ पट्टा, दड़ती।

करते एक जानकी हासत) मन्वास्तम्भ (गला जकड़ जानकी हासत), गात्रस्फुरण, स्त्रोतघबरोध, श्यावत्व (सुरापन), शुकनास, पाकुश्चन, पाचोपण प्रभृति वायुविकार बढ़ते हैं।

२ साध, पाचन, जीर्णांदा, भौंटी, काढ़ा। इसका अपर संस्कार नाम 'निर्युद्ध' है। इसके पांच भेद हैं—स्वरस, कसक, कथित, श्रुत और फाण्ट। स्वरस, कसक, कथित, श्रुत और फाण्ट देखो।

३ निर्यास, गोंद। ४ विलेपन, चुपड़ाव।

“कषायि तो लोध कषायस्ये गोतीपनाच पनिताकरीरे।” (हमारासम्भ)

५ चङ्गराग, उचटन। ६ श्लोनाकहृत्, सोनापान। ७ कपित्थहृत्, कैयिका पेड़। ८ महासर्जहृत्, धूनेका बड़ा पेड़। ९ मण्डलिसर्प, एक सांप। १० राग, पासल्लि, लगाव। ११ कलियुग, बुरा कमाना। निर्विकल्प समाधि का एक विघ्न। वाद्य विषयसे बृट अखण्ड वस्तु ग्रहणमें लगते भी जो राग आदि संस्कार उठ मनको स्वाध और अखण्ड वस्तु ग्रहणसे पृथक् रखते, उन्हें कषाय कहते हैं। १३ लोहितवर्ण, लालरंग। (त्रि०) १४ कषायरसविग्रिष्ट, कसैला। १५ सुरभि, खु, शब्ददार।

“मयुषे च्छुटितक मलाभोदमेवोक्तषायः” (सिंहल)

१६ लोहित, सु, खं, लाल। १७ रक्तपीत मिश्रित, लाल-पीला। १८ अण्ट, नावाकिफू। १९ सुन्याय्य, पक्षीतरह सुन पड़नेवाला, जो कानमें खटकता न हो। २० रञ्जित, रंगदार। २१ पासल्ल, संसार-लित, फंसा हुआ। जैनशास्त्रमें लिखा है,—

“सर्वं संसारकामारमं ते यान्ति शि जनाः।

ते कषायाः क्रोधमात्रमायाक्रोधः इति श्रुतः ॥” (लोचनकाम १७०८)

जैनशास्त्रमें 'कषाय'के ऊपर बहुत विचार किया है। क्रोध, मान, माया, लोभका नाम ही कषाय है। इसके उत्तरोत्तर भेदोंका यही ही सूक्ष्मताके साथ दिग्दर्शन कराया गया है। गोमटसार (जीमकांड)में कषाय शब्दकी दो तरहसे निरुक्ति लिखी है। जैसे—

पुण्ड्रवपुण्ड्रवपुण्ड्र कषायस्ये वरीदि क्रोधवपुण्ड्र।

व'धारद्वार' शेष कषायोपि व'रीदि १८५।

धर्यात् जीवके सुख दुख आदि भिन्न प्रकारके धान्यको उत्पन्न करनेवाली, तथा जिसकी संसाररूपी मर्यादा ध्वस्त दूर है ऐसे कर्मरूपी चैत्र (चेत)का जो कर्षण करता है उसे कषाय कहते हैं। दूसरी प्रकार कष्ट धातुसे भी इसकी व्युत्पत्ति बतलाते हैं—

सकलदेशयत्परिचयिणश्चादपरकपरिचयिणः।

पादलि वा कषाया यदसौलभयकृत्प्रयोगिदा ॥ १८२

जीवके सम्यक्त्व, देशसंयम, सकलसंयम और यथाख्यात चारित्ररूपी शुद्ध परिणामों को जो कर्षण हीने दे उसको कषाय कहते हैं। इसकी भनत्तानुवन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और सञ्ज्वलन ये चार भेद हैं इन चारमें प्रत्येकके क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार चार भेद है इसतरह सोलह ही जाते हैं। फिर इनके भी उत्तरोत्तर अष्टसंख्याते भेद है। कषाय की विशेष व्याख्या करने लिये जैन धर्ममें भिन्नक शास्त्र है। सबसे बड़ा कषायप्राभृत है। गोमटसारमें भी इसका भिन्नक व्याख्यान है।

कषायकृत् (सं० पु०) कषाय कषायरागं करोति, कषाय-कृ-कृप् तुगागमः। १ रक्तलोध, लाल-लोध। इसकी छाल रंगनेमें लगती है। (भि०)

२ कषायप्रस्तुतकारी, काढ़ा बनानेवाला।

कषायचित्र (सं० भि०) लोहितवर्ण द्वारा रञ्जित, फीके सुख रंगसे बनाया हुआ।

कषायजल (सं० ली०) जलविशेष, एक पानी। प्रक्ष (पाकर), अश्वत्थ (पीपर) और बटके सिद्ध जलको कषायजल कहते हैं।

कषायता (सं० स्त्री०) कषायस्य भावः, कषाय-तल्-टाप्। कषायका धर्म, कसेसापन।

कषायदन्त (सं० पु०) नृयिक विशेष, किसी किष्मका चूहा। इसका श्रुत जहाँ गिरता, यहाँ शोथ, कोय आदि उठता है। (सुवृ०)

कषायदशन, कषावरन देखो।

कषायनित्य (सं० त्रि०) नित्य भतिमात्र कषायरससेही, रोज इदसे व्यादा कसेही चीज खानेवाला।

कषायपाक (सं० पु०) द्रव्य विशेषके कषायकी प्रस्तुत प्रणाली, किसी चीजके लोयांदा बनानेका तरीका।

कवरकी (सं स्त्री०) कवरं केशपात्रं किरति विकिरति यत्, कवर-कण्ड-ङीप्। कारागारबद्धसो, कैदमें पड़ी हुई औरत। अपने ब्रेषपात्रको बांध न सकनेसे कारागारमें पड़ी स्त्री कवरकी कहती है।

कवरना, कौरना देखो।

कवरपुच्छी (सं स्त्री०) कवरं चित्रवर्षे पुच्छं चस्याः, इ-तत्। १ मयूरी, मोरनी। २ विचित्रपुच्छविग्रिष्टा, चित्रकवरी पुच्छवान्नी (चिडिया बगैरफः)

कवरा, कवरी देखो।

कवरी (सं स्त्री०) कं शिरः हृषोति प्राच्छादयति, क-ह-भच्-ङीप् पथवा कु-भरन्-ङीप्। १ केशविन्यास, जुल्फ। इसका संस्कृत पर्याय—केशवेश, कवर और केशगर्भक है। २ वदर्ना, बवई। ३ वनसुमरी। ४ कर्पूरक हथ, बमूलका पेड़। ५ रत्न करवोर, साल कनेर। ६ मनःमिता। ७ हिङ्गुपत्नी, होंगकी पत्ती।

कवरीक (सं पुं०) सुगन्ध पत्रहृष विगेष, एक पेड़। इसकी पत्ती खगयूटार होती है।

कवरीकला (सं स्त्री०) मनःमिता।

कवरीकूटक (सं पुं०) कवरी, बवई।

कवरीभर, कवरीभार देखो।

कवरीभार (सं पुं०) कवर्याः भार पाधिकम्, इ-तत्। १ स्थूल कवरो, बडो जुल्फ। २ कवरीका भारत्व, गुल्फका बोझ।

कवरीभृत् (सं द्वि०) कवरीं विभर्ति, कवरी-भृ-क्तिप्। कवरीधारी, जुल्फोवाना।

कवर्ग (सं पुं०) ककारादि पञ्च वर्णसमूह, कवि ह् तत्क पांच पञ्चर। क, ख, ग, घ और ङ पाँचो पञ्चरोक्ता नाम कवर्ग है। यह ऋण्ड स्थानमें उच्चारित होता है।

कवर्गीय (सं द्वि०) कवर्गात् भवः, कवर्गे-ङ। कवर्गसे उत्पन्न, जो क, ख, ग, घ और ङ पञ्चरसे निकला हो।

कवर्धा—मध्यप्रदेशके विन्नामपुर जिलेका एक सुदरा राज्य। यह पचा० २१° ५१' से २२° २८' उ० और देशा० ८१° १६' से ८१° ४०' पू० तक अवस्थित है।

चैत्रक ८८० वर्ग मील सगता है। कोई १८८ पाम इस राज्यके-भन्तर्गत है।

कवर्धके पश्चिम पश्चिमै चित्तवी गिरियेयी है। राज्यमें बड़ स्थान उत्कल्ल समझा जाता है। यहाँ रुयी, धान और गेहूँकी उन्नत अच्छी है। जङ्गलमें लाख, महुवा और कई तरहका गेहूँ पाते हैं।

राज्यका प्रधान नगर कवर्धा। पचा० २२° १' उ० और देशा० ८१° १५' पू० पर बसा है। कापोंस और लाधाका व्यवसाय ही प्रधान है। कवीरपत्नी मन्मदायके प्रधान यहाँ रहते हैं।

कवल (सं पुं०) केन जलेश यत्ने वसति, क-वम-पच्। १ घास, कौर।

“अश्वत्थं कवलप्रसादात्तौ वन्यान् न पावन्।” (रामायण १. ४१. ८)

२ गण्डूष घण्ट, कुसी। कवलका बड़ी मात्रा पातो, जो सुखमें सुखमें बस जाती है। मन्वु देखो। इचिन्निचिमत्स्य, एक मकली।

कवल (हिं पुं०) १ कोण, किनारा। २ पश्चिमिण, एक चिड़िया। ३ पत्र विगेष, किमी किष्कका छोड़ा। ४ प्रतिज्ञा, कौत।

कवलपट्ट (सं पुं०) कर्ष परिमाण, कोई एक तोल की तोल। २ कवलका घण्ट, कुसी लेनेका काम। यह चार प्रकारका होता है—छेड़ी, प्रसादो, गोधी और रोपण। यानमें सिन्धीय द्रव्यमें खेहो, पिलमें खादु, ग्रीत द्रव्यमें प्रसादो, कर्कमें कटु-पत्र-नवप-रुच-उष्य द्रव्यमें गोधी और त्रणमें कपाय-तिक्त-मधुर-कटु-उष्य द्रव्यमें रोपण ग्रहण किया जाता है। (४४०) कवलपट्ट लेनेसे भोजन अच्छा लगता, कफ घटता और खपा, तीव्र, यंत्रण तथा टन्तवानका दोष मिटता है। (रेषनिष्यु)

कवलप्रस्य (सं पुं०) कवलस्य प्रस्यः, इ-तत्। १ कवलस्योप्य परिमाण विगेष, कुसीके मापक एक माप।

कवलिका (सं स्त्री०) प्रथमभारतये उदुम्बरादिवस्त्वन्, लघुम बाधनेके लिये गूजर बगैरहकी छान।

कवलित (सं द्वि०) कवर्नं कुरोति, कवल-विच

जिन सकल ज्ञायोर्नि जलका परिमाण नहीं लिखते, उनमें बाद्रे द्रव्य रहनेसे षट् शुष्ण और शुष्क द्रव्य रहनेसे मोड्य शुष्ण जलसे सिद्ध कर चतुर्थांश भवशिष्ट रहते हैं।

कपायपाण (स० पु०) कपायः पानं यस्य, बहुव्री० षत्वम् । पाणश्चेमे । पाणश्च द गान्धार जाति ।

कपाय प्राञ्चत—एक जैन शास्त्र । इसमें जीवकी संसार-में भ्रमण करानेवाली कपायों का वर्णन है।

कपायफल (स० स्त्री०) पूगफल, सुपारी।

कपाय मार्गणा—जैन शास्त्रमें संसारी जीवोंकी विशेष भवस्था बतलानेकी लिये १४ मार्गणा लिखी हैं। उनमें की एक मार्गणा।

कपाययावनाल (स० पु०) कपायः रक्षयणः यावनालः, कर्मधा० । तुवर यावनाल धान्य, कसेली सुवार।

कपाययोनि (स० स्त्री०) कपायाधिकरण, कसेलेपनकी सुनयाद । यह पांच प्रकारकी होती है,—मधुर कपाय, कटुकपाय, तिक्तकपाय और कपायकपाय । (चरक)

कपायरस (स० पु०) रसविशेष, एक जायका। कपाय देखो।

कपायवर्ग (स० पु०) कपायाथा कपायरसयुक्तद्रव्याणां वर्गः समूहः, इ तत् । कपायरस द्रव्यगुण, कसेली औजीका लुखीरा । त्रिफला, शलकी, जम्बू, आम्र, वक्रस, तिन्दुकफल, लघुघोघ आदि, पञ्चद्वारि, त्रियङ्गु आदि, लोधादि, शालघारादि, कतकशाक, पाषाण-भेदक, धनस्पतिफल, कुरवक, कोयिदारक, जीवन्ती, चिकी पलह्नी, सुनिपण आदि, नीवारकादि और सुद आदि द्रव्य कपायवर्गमें पड़ते हैं। (धृत)

कपायघासिक (स० पु०) सञ्च्युतोक्त कीट विशेष, एक जहराला कीड़ा । यह कीट मोम्य होनेसे रोग-प्रकोपक है। इसका मूल विपाक्त निकलता है।

कपायहृत् (स० पु०) घटामनकादि कपायत्व क फल हृत्, वरगद पावला धगेरु कसेली कालकी फलयाला हृत् ।

कपायश्कन्ध (स० पु०) त्रियङ्गु आदि कपाय द्रव्यकृत आस्थापन विशेष, एक कसेली दवा।

कपाया (स० स्त्री०) कप-पाय टाप् । १ सुद दुरा-भवा, छोटा जवाभा। (Small sort of Hedysarum)

इसका संस्कृत पर्याय—यास, यवसा, दुष्यर्ग, धन्वयास, दुरालभा, समुद्रान्ता, रोदिनी, गान्धारी, कच्छुरा, भनन्ता, जरविपदा और दुरभिपदा है। भावप्रकाशके मतमें यह मधुर, तिक्त एवं कपायरस, सारक, शीतल, सधु और कफ, भेद, मत्तता, यम, पित्त, रक्त, कुष्ठ, कास, तृष्या, विसर्प, वातरक्त, यमि तथा च्वरनाशक है। द्रव्याभादेशोः।

कपायाग्नित (स० त्रि०) कपाय रसविशिष्ट, कसेला। कपायित (स० त्रि०) कपायः रक्तपीतादिवर्णः सञ्जातो ऽस्य, कपाय-इतत् । १ रक्तादि वर्णकृत, ज्ञान रंगा हुआ।

“ चतुर्धेव कपायितशो मुमयीन प्रियदात्मनः॥ ” (हरारसधर ११४)

कपायी (स० पु०) कपायी विद्यते ऽस्य, कपाय-इति । १ शालहृत् । २ लज्जुचहृत्, सुकाटका पेड़ । ३ खजूरी हृत्, खजूरका पेड़ । ४ सर्जहृत्, घुनकापेड़ । ५ शाकवृक्ष, सागौनका पेड़ । ६ च्द्रपनस, छोटा कटहल । (त्रि०) ७ कपायविशिष्ट, गोंददार ।

८ कपायान्वित, कसेला । ९ संसारासक्त, दुनियाकी बातोंमें ललभा हुआ।

कपायीकृत (स० त्रि०) कपायः कपायः कृतः, कपाय-चि-क-कृत । कपायवर्ष हुआ, जो सुख किया गया हो।

कपायीकृतनोचन (स० त्रि०) कपायवर्ष चत् मनये हुआ, जो शर्तें जान कर चुका हो।

कपायीभूत (स० त्रि०) कपायः कपायो भूतः, कपाय-चि-भू-कृत । रक्त वर्ण बना हुआ, जो नाल पड़ गया हो।

कपि (स० त्रि०) कपति इतिन्ति, कप इ । यतिश्चिप्रचिप्रि इत्यादि । उच्यते ११२ । हिंसक, मुकमान पटुचानेवाला।

कपिका (स० स्त्री०) पचिजाति, कोई चिड़िया। कपित (स० त्रि०) कप-कृत । परीक्षित, कसा हुआ, जो चोट खा चुका हो।

कपीका (स० स्त्री०) कपति, कप-इ-कन्-टाप् । चिड़ियाकी वत् । उच्यते ११२ । १ पचि जाति, चिड़िया। कपत्यनया । २ चम्पा।

कपर्कका (सं० स्त्री०) कप-एरक—उ संज्ञायां कन्-टाप् । १ घृष्टास्थि, रीढ़ । २ कशेरु, कसेरु ।
कप्कप (धे० पु०) कप इति अथवा शब्दमुचायै कपति, कप-कप-प्रच् । विषधर क्षमिविषेण, एक जड़रीला काहा ।

“दिवावासः कल्पवास पत्रकाः शिवविबुधाः ।

दृष्टय इत्यादि क्षमितादृष्टय इत्यात्मा ॥” (अथर्ववेद ५ । ११ । १०)

कष्ट (सं० त्रि०) कथ्यते ऽसौ, कपं कर्मणि क्त निट् । कष्ट-गहनयोः कपः । या ० । २ । ११ । १ पीडायुक्त, पुरददं, दुखनेवाला । २ गहन, सुशूल । ३ पीडाकारक, तकनीफ़ देनेवाला । ४ कष्टसाध्य, बहुत खराब । ५ कुत्सित, बुरा । (स्त्री०) कप भावे क्त । ६ पीडा-मात्र, कोई दर्द या वामारी । इसका संस्कृत पर्याय—पीडा, वाधा, व्यथा, दुःख, अमानस्य, प्रसूतिज, कष्ट, कलाकल, अर्ति, आर्ति, पीडन, वाधन, आमानस्य, विवाधन, विष्टेठन, विधानक, पीडित, ज्ञाय और अशर्म है । अर्थ-प्रतीति व्यवहित (अलग) होनेसे कष्ट या क्लिष्टता दोष कहलाता है,—

“ क्लिष्टलनयं प्रतीतिव्यवहितलम् ॥” (मादिश्वरपं० ० च०)

इसका उदाहरण ‘चीरीदजावसतिजन्मभुवः प्रसन्नाः वाक्यं मिलता है । उक्त वाक्य ‘जन्म प्रसन्न है’ अर्थमें प्रयोग किया गया है । किन्तु सज्जमें उसके समझनेका कोई उपाय देख नहीं पड़ता । चीरीदजा लक्ष्मी, उनकी वसति पत्र और पत्रका सम्बन्धान जल है । अतएव यहाँ पर क्लिष्टत्व वा कष्टदोष हागता है ।

(षष्ठी) ७ इत् । हाय ।

कष्टकर (सं० त्रि०) कष्टं करोति, कष्ट-क-ट । १ पीडा-जनक, दर्द पैदा करनेवाला । २ दुःखजनक, तकलीफ़ देनेवाला ।

कष्टकल्पना (सं० स्त्री०) कष्टेन कल्पना, ३-तत् । कठोर अनुमान, कड़ी भन्दाज् । जिसे देख स्थिर करनेमें कष्ट पड़ता और जो सज्जमें कल्पनापर नहीं चढ़ता, उसे विद्वान् कष्टकल्पना कहता है ।

कष्टकल्पित (सं० त्रि०) कष्टेन कल्पितं रचितम् । कष्टसे बना हुआ, जो सुत्रिकल्पसे ठीक किया गया हो ।

कष्टकारक (सं० त्रि०) कष्टकार स्वार्थे कन्, कष्ट-क-ग्लु वा कष्टस्य कारकः, ६-तत् । दुःखका कारण बननेवाला, जो तकनीफ़का सबब ठहरता हो । (पु०) २ संसार, दुनिया ।

कष्टजीवी (सं० त्रि०) कष्टेन जीवति, कष्ट-जीव-इनि । १ कष्टसे जीविका निर्वाह करनेवाला, जो सुशूलसे काम चलाता हो । २ अनेक भोग कर बचनेवाला, जो सुशूलसे बचा हो । १ पक्षिजाति, चिड़िया ।

कष्टतपस् (सं० पु०) कष्टं कष्टकरं तपो यस्मै, बहुव्री० । कठिन तपस्या करनेवाला, जो दसतिफ़गारके सुतात्रिक अमल करता हो ।

कष्टतर (सं० त्रि०) सापेक्ष पीडायुक्त, व्यादा तकलीफ़ देनेवाला ।

कष्टद (सं० त्रि०) कष्टं ददाति कष्ट-दा-क । कष्ट-दायक, तकलीफ़ पहुँचानेवाला ।

कष्टरिपु (सं० त्रि०) कष्टः कष्टसाध्यो रिपुः, कर्मधा० । कष्टसे पराजय किया जानेवाला शत्रु, जो दुश्मन सुशूलसे चारता हो ।

“ प्राचं कुलीनं शूरध दचं दातारमेव च ।

कतत्रं प्रतिमनश्च कष्टमाश्रितं उवः ॥” (मनुस्मृति)

विद्वान्, कुलीन, वीर, दच, दाता, कतत्र और धर्मशाली शत्रुको पण्डित कष्टरिपु कहते हैं ।

कष्टलभ्य (सं० त्रि०) कष्टेन लभ्यम्, ३-तत् । कष्टसे मिलनेवाला, जो सुशूलसे हाथ आता हो ।

कष्टयित (सं० त्रि०) कष्टं यितं आयितं येन, बहुव्री० । १ कष्टपानेवाला, जो तकलीफ़में हो । २ कठोर व्रत-कारक, कष्टे दसतिफ़गारको अमलमें जानेवाला ।

कष्टश्रीत्रिय—वङ्गदेशके श्रौत्रिय ब्राह्मणोंका एक विभाग शीत्रिय श्रेणी ।

कष्टसह (सं० त्रि०) कष्टं करते, कष्ट-सह-प्रच् । कष्टसहिष्णु, तकलीफ़ उठा सकनेवाला ।

कष्टसाध्य (सं० त्रि०) कष्टेन साध्यम्, ३-तत् । १ कष्टसे पारोग्य होनेवाला, जो सुशूलसे अच्छा हो । २ कष्टसे पराजय किया जानेवाला, जो सुशूलसे चारता हो । कष्टस्थान (सं० स्त्री०) कष्टं कष्टकरं स्थानम्, कर्मधा० ।

दुःखजनक स्थान, खराब जगह, तकलीफ़ देनेवाला सुकाम ।

कष्टहरण पर्वत—विहार प्रान्तके मुङ्गेर जिलेका एक पाहाड़ ।

कष्टहरणी (स० स्त्री०) कौकटदेशकी एक नदी । (भविष्य ब्रह्मवल्ग २१।४०) २ अङ्गदेशमें देवीकर्णके निकट प्रतिष्ठित देवीकी एक मूर्ति । (ईशानो ३४।१६) यह मुङ्गेरके निकट वर्तमान थी ।

कष्टागत ((स० त्रि०) कष्टसे आया हुआ, जो मुश्किलसे पहुँचा हो ।

कष्टि (स० स्त्री०) कष्ट भावे क्ति । १ परीचा, जांच, कसायी । अधिकरणे क्ति । २ अग्रमणि, कसोट्टी, कसनेका पत्थर । ३ पीड़ा, दर्द, बीमारी ।

कटो (हिं० स्त्री०) प्रसवका कष्ट छटानेवाली ।

कटोर (स० स्त्री०) रङ्ग, रांगा ।

कष्ट (स० पु०) कसति विकसति क्षर्णादिरक्ष, कस-भच् । १ अग्रमणि, कसोट्टी, सोना-चाँदी कसनेका पत्थर ।

कस (हिं० पु०) १ खञ्जका स्थितस्थापकत्व, तलवारकी सचक । इससे तलवारकी तेजी पहुँचानी जाती है । २ शक्ति, ताकत । धम, काबू । कुशतीका एक पेंच, यह 'कसकी गोदी' कहता है । ३ अरोध, रोक । ४ कषाय, पक । ५ सार, निघोड़ । (स्त्री०) ६ अन्ध-रत्न, कसनेकी रस्मी । (क्ति० वि०) ७ किस प्रकार, कैसे । कसई, कसो देखा ।

कसक (हिं० स्त्री०) १ पीड़ा विग्रेय, एक दर्द । २ कोई पाघात पाने और अच्छा हो जानेसे यह धीरे धीरे छटा करती है । ३ कसनकी चमक । ४ पुरातन बैर, पुरानी दुश्मनी । ५ सञ्ज्ञानमूर्ति, इमदर्दी । ६ अमिताय, हीसला ।

कसकना (हिं० क्ति०) १ पीड़ा करना, दुखना, चमकना, रङ्ग रङ्गके दर्द छटना । २ अमिय लगना, बुरा मानम पहुँचना ।

कसका (स० स्त्री०) कासमर्द, कसौदी ।

कसकट (हिं० पु०) मिश्रधातु विग्रेय, एक मिलावटी फलज । इसमें ताँबा और लक्षा बराबर बराबर पड़ता है । कसकटसे लोटे, कटोरे, पायखीरे यगेर:

वरतन बनते हैं । किन्तु रसकी पातमें पन्न द्रव्य रसमेंसे विगड़कर विधात हो जाता है । कसकटका दूसरा नाम भरत है ।

कसगर (हिं० पु०) जाति विग्रेय, कासागर कौम । यह मुससमान होते हैं । इनका काम महीके लोटे लोटे वरतन बनाना है ।

कसन (स० पु०) कसति छिनप्ति, कम-रुपु । कस, काम, खाँसी । २ वेदना विग्रेय, एक दर्द ।

कसन (हिं० स्त्री०) १ अन्ध, बंधाई, कसाई । २ अन्धकी रीति, कसनेका तरीका । ३ अन्धरत्न, कसनेकी रस्मी । यधी, तङ्ग, पट्टी ।

कसनई (हिं० स्त्री०) पक्ष विग्रेय, एक चिड़िया । इसका पक्ष जल्पवर्ण, वक्षःस्थल एवं श्ठदेश पाटल और चञ्चु रक्तवर्ण होता है ।

कसनमर्दन (स० पु०) कासमर्दहृत्, कसौदीका पेड़ ।

कसना (स० स्त्री०) कच्छसाथ नृता विग्रेय, एक जङ्गली मकड़ी । नृग ह्वो ।

कसना (हिं० क्ति०) १ अन्ध करने समय रत्न पादि दृढ़तापूर्वक खींचना, जोरसे तानना, जकड़ना । २ निष्कर्ष लगाना, दबाग । ३ अन्ध करना, बैठना, ठिकाने पहुँचाना । ४ सञ्ज्ञित करना, (बायो-गोड) सजाना । ५ भरना, ठंसना । ६ खिंचना, तनना । ७ तङ्ग पड़ना, कड़ा रहना । ८ दबना, फुटना । ९ प्रसृत या तैयार होना । १० भर जाना । ११ घिसना, रगड़ना । १२ परीचा करना, परखना । १३ छोटाना, गड़ियाना । १४ सजाना, नचना । १५ परिपाक करना, तनना । १६ कष्ट देना, तकलीफ़ पहुँचाना । (पु०) १७ अन्ध, बंधना । १८ गिलाफ़, खोल । २० क्षमि विग्रेय, एक जङ्गली मकड़ी ।

कसनी (हिं० स्त्री०) अन्ध, बंधाई, खींच ।

कसनी (हिं० स्त्री०) १ रत्न, रस्मी । २ गिलाफ़, खोल । ३ कसकी, सोली । ४ अग्रमणि, कसोट्टी । ५ परीचा, जांच । ६ हथोड़ी । ७ कापायकल्प, कसावका चढ़ाव ।

कवितायी (हिं०) कविता देखो ।

कवितायेदी (सं० त्रि०) कवितां वेत्ति, कविता-विद्विषिणि । कविताज्ञ, शायरी समभनेवाका, जो कवितायो जानता हो ।

कविष्ठ (सं० त्रि०) ज्ञानवान्, अज्ञानम् ।

कवित्त (हिं० पु०) इन्दोविशेष । यह दण्डकके अन्तर्गत है । इसमें चार पाद और प्रत्येक पादमें एकतीस-एकतीस अक्षर लगते हैं । यह मनहरन और घनाक्षरी भी कहता है । कवित्तका अन्तिम वर्षं गुरु रहता, अन्य वर्षोंकेलिये गुरु लघुका कोई नियम नहीं चलता । उदाहरण नीचे लिखा है,—

“मालन पे ताल पे तामनन पे मालन पे, इन्दानन शीपिन विहार
रंजीत पे । कष्टे पदगाकर अक्षर रासमयल पे, मखित समथ मघा
कालिंदीके तट पे । कत पर खान पर कलुन कटान पर ललित मनान
पर शक्तिशेकी लट पे । पायो मल कायो यह मरद जोन्दारै विधिं
पायी कवि खान ही कन्दारैके मुकट पे ॥” (पद्मनाभर)

कवित्त्य (सं० पु०) कवित्त्य वृत्त, कैयका पेड़ ।

कवित्व (सं० स्त्री०) कविभावः, कवि-त्व । १ कविता रचनाकी शक्ति, शायरी करनेका माहा । २ ज्ञान, समभदारी ।

कवित्वन (वे० स्त्री०) १ स्तुति, तारीफ़ । २ ज्ञान, समभ ।

कविनासा (हिं०) कविनाया देखो ।

कविपुत्र (सं० पु०) कविः भृगुपुत्रस्य पुत्रः, इ-तत् । १ शुक्राचार्य । २ भार्गव ऋषि ।

“भृगोः पुत्रः कविर्ब्रह्मन् ॥” (महाभारत, आदि १८०५)

कविप्रमस्त (वे० त्रि०) कवियों द्वारा अत्यन्त प्रशंसित, शायरीसे बड़ा नाम पाये हुआ ।

कविभूषण (सं० पु०) कवीनां भूषणमिष । १ उपाधिविशेष, एक खिताब । २ कविचन्द्रके पुत्र ।

कविय (सं० स्त्री०) कं सुखं पजति, क-पज-क, भोजस्थानि वि आदेयः । खोजन, लगाम ।

कविरञ्जन, वङ्गासके एक विख्यात शास्त्र कवि ।

रामदास देखो ।

कविरथ (सं० पु०) एक राजा । इनके पिताका नाम चित्ररथ था ।

कविराज (सं० पु०) कवीनां राजा अथः, कवि-राजन्-टच् । १ कविश्रेष्ठ, बड़ा शायद । २ भाट, कवित्त कहनेवाली एक जाति । ३ बङ्गदेशीय वैद्यो ना उपाधि ।

कविराज, एक कवि । इन्होंने ‘राधवपाण्डवीय’ काव्य बनाया था । पाश्चात्य मन्त्रे यह ई० १०म शताब्दमें विद्यमान रहे ।

कविराजी (हिं० स्त्री०) १ बङ्गदेशीय वैद्यक चिकित्सा, इक्षीमी । (त्रि०) २ कविराजसम्बन्धीय, इक्षीमीके सुतासिका ।

कविराजी, एक उपासक सम्प्रदाय । रूप कविराजने यह सम्प्रदाय चलाया था । गुरुने रूपसे शङ्खधारिणी रमणीके हाथका भोजन ग्रहण करनेकी रोक था । इसीसे उन्होंने एक दिन शङ्खधारिणी गुरुपत्नीके हाथसे भोजन न किया । गुरुने यह सुमशर उनकी तीन कण्ठियोंमें दो कण्ठियों खीन ली । फिर रूप वची हुयी एक कण्ठो नेशर भागे थे । उड़ीसेमें अनेक वैश्याव उनके मतानुयायी हुये । इसीसे लोग इस सम्प्रदायवालों को कविराजी कहते हैं । कविराजो अन्य वैश्यावोंके घरमें न तो विवाह और न किसी-दूसरेका बनाया भोजन करते हैं । यह प्रायः सभी सदाचारी होते हैं । कोई कोई कविराजियोंको ही ‘स्रष्टावक’ कहते हैं ।

कविराम, दिग्विजयप्रकाश नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता । कह नहीं सकत, यह किस राजाकी सभाके पण्डित थे । इनका ग्रन्थ पढ़नेसे समझते, कि कविराम यशोरवाले राजा प्रतापादित्यके समसामयिक रहे । कविरामके दिग्विजयप्रकाशमें भारतवर्षका तत्कालीन भूखण्डान्त और प्रवाद लिखा है ।

२ विहारमें डोम जातिके चाँईको भी कविराम कहते हैं ।

कविरामायण (सं० पु०) कविना कवितया कविपु काव्येषु वा रामः अयनं आश्रयो यस्य, बहुव्री० । कवितामें रामका आश्रय रखनेवाले वाल्मीकि सुनि ।

कविराय (हिं० पु०) कविराज, भाट ।

कविस (सं० त्रि०) कु कव धा वर्णने इत्तच् । १ स्तोत्र, तारीफ़ करनेवाला । २ शब्दकारक, भाषाज्ञ देनेवाला ।

कसूर, पञ्जाब प्रांतके लाहौर जिल्लेकी अपनी तहसील और प्रधान नगर। यह अक्षांश ३१° ६' ४६" उ० और देशांश ७४° २०' ३१" पू० पर अवस्थित है। लाहौर नगरसे कसूर ३४ मील दक्षिणपूर्व फीरोजपुरकी सड़क पर पड़ता है। पड़ले सिन्धु नदके पूर्वसे पठान लोग आकर यहाँ बसे थे। १७६३ और १७७० ई० को सिखोंने आक्रमण मार कुहक दिनके लिये पठानोंको दबाया, किन्तु १७८४ ई० को उन्होंने फिर अपना पूर्वाधिकार पाया। अन्तपर १८०७ ई० में नवाब कुतब-उद-दौल खान्को रणजित्सिंहने हरा कसूर लादारसे मित्रा दिया। यहाँ घोड़ेका साजसामान बनता है। किसी डिपटी कमिश्नरकी प्रतिष्ठित शिखयालामें नमदे और कालीम तैयार होते हैं। सिन्धु, पञ्जाब, दिल्ली रेलवेकी रायविन्द-फीरोजपुर शाखा इसे लाहौर और फीरोजपुरसे मिलाती है। प्रतिरिक्त प्रसिद्ध कर्मिश्नरकी कचहरी, तहसीलो, पुलिसका थाना, पाठागार, भोपघालय और डाक बंगला विद्यमान है। देशीय द्रव्याके व्यवसायका कसूर केन्द्रस्थल है। वही सड़कें पक्की बनी हैं। पानी निकलनेका बड़ा सुभौता है। लोगोंके कथनानुसार मर्यादा पुरुषोत्तमके पुत्र कुशने कसूर बसाया था।

कसेरा (हिं० पु०) कांस्यकार, कांसिकी चीजें बनाने और धरनेवाला। यह एक वणिक जाति है। संस्कृत पर्याय कांसकार, कांसवणिक और कांस्यकार है। इस जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें मतका भेद लक्षित होता है। ब्रह्मवर्षतपुराणके ब्रह्मखण्डमें लिखा है,—

किन्नी समय विश्वकर्मा स्वर्गकी विश्वा घृताचीकी देख कामके शरसे पोहित हुये। उस समय घृताची कामदेवके निकट जाती थी। विश्वकर्माने अपना अभिलाष उनको बता कर कहा, 'हे सुन्दरी! हमने कामदेवसे कामग्राह्य पड़ा है। हमारी इच्छा पूर्ण कीजिये। हम आपकी विविध पलहार देंगे।' घृताची बोले, 'देखो! आप कामदेवसे कामग्राह्य कीखनेकी बात कहते हैं। इस समय हम उन्हीं कामदेवके चित्तारन्ध्रनका जा रही हैं। आज हम सुन्दरी गुरु कामदेवकी पत्नीके स्थानमें हैं। ऐसे स्थल पर

हमारी कामना करनेसे आपको गुरुपत्नीके गमनका महापातक लगेगा। हम किसी प्रकार आज आपको प्रस्तावमें सम्मत हो नहीं सकतीं।' विश्वकर्माने घृताचीकी बातसे अत्यन्त चषरा आप दिया था, 'तूने मेरा मनोरथ पूर्ण न किया। अब मेरे प्रमोघ आपके प्रभावसे मर्त्यलोकमें शूद्राके गर्भसे तुम्हें जन्म लेना पड़ेगा।' फिर घृताचीने भी विश्वकर्माकी शपथित किया 'तू भो मेरे आपसे स्वर्ग छोड़ नरलोकमें जाकर उत्पन्न होगी।' घृताची नरलोकमें शूद्राके गर्भसे जन्म ले मदनगोपकी पत्नी बनीं। उधर विश्वकर्मा किसी ब्राह्मणके घर उत्पन्न हुये। घटनावश मदनगोपकी स्त्रोसे ब्राह्मणरूपसे विश्वकर्माने सहवास किया था। उससे नौ पुत्रोंने जन्म लिया। उन्हीं नौ पुत्रोंसे मालाकार, कर्मकार, कांसकार (कसेरा) प्रभृति नौ जातियां बनीं हैं। मालाकार, कर्मकार, शूद्रकार, तन्तुवाय, कुम्भकार, और कांसकार (कसेरा) यह जातियां प्रधान हैं। * बृहस्पतिपुराणके मतमें ब्राह्मणके औरस और वैश्याके गर्भसे अश्वत्थ, गन्धवणिक, शूद्रकार और कांसकार (कसेरा) जाति निकली है।†

भार्गवराम विरचित जातिमालामें लिखा है,

"भास्विकः शाङ्गिकयैव कांसिको मणिकारकः।

सुवर्णवणिकयो व पश्चेत् वणिकः स्मृतः ॥"

वणिक अर्थात् बनिया जाति पांच प्रकारकी है—गन्धवणिक, शूद्रवणिक, कांसवणिक (कसेरा) मणिकार और सुवर्णवणिक। गन्धवणिकके औरस तथा शूद्रवणिककी कन्याके गर्भसे ताम्र और कांस्य उपजीवी कांसवणिक (कसेरा) जाति उत्पन्न हुयी है।

भार्गवरामके मतानुसार विज्ञानक्रम पर अथर

* "विश्वकर्मा व शूद्रायां शौर्याचार्येण चकार यः।

मतो बभूवुः पुत्राय त्रैते मित्यकारिणः ॥

मालाकार-कर्मकार-यश्वत्थ-कुम्भकारः।

कुम्भकारः अश्वत्थः पश्चेत् सिन्धुवा यतः ॥"

(ब्रह्मवर्षतपुराण, ब्रह्मखण्ड, १०१२-१०)

† "शिव्यायां ब्राह्मणत्वात्: पत्न्यो भास्विकी वणिकः।

अश्वत्थवर्णवणिकी ब्राह्मण्यत् उच्यते ॥" (बृहत्संहिता)

कविदास (हि० पु०) १ कैलास, महादेवके रहनेका पहाड़। २ स्वर्ग, विद्विष्ट।

कविलासिका (सं० स्त्री०) कं सुखं विलासयति उद्दीपयति, क-वि-लस-णिच्-भृच्-टाप् भत इत्वम्। यौषाविशेष, किंसी किम्बला तम्बूर।

कविवर (सं० त्रि०) कविपुं वरः श्रेष्ठः। कविश्रेष्ठ, शायरोर्मि बड़ा।

कविवल्लभ (सं० पु०) कालादर्शं वा कालनिर्णयं नामकं श्रुतिसंग्रहके रचयिता। इनका अपर नाम प्रादित्यसूरि था। विश्वेश्वर आचार्यने इन्हें शिष्या दीयो।

कविबन्धु (वै० त्रि०) कवियोंको बढ़ानेवाला।

कविवेदी (सं० त्रि०) कविं कवित्वं वेत्ति, कविष्विद्विष्णिनि। १ काव्यवेत्ता, शायरी समझनेवाला। २ कवि, शायर।

कविग्रन्थ (सं० त्रि०) कविषु ग्रन्थः ख्यातः, ७-तत्। कवियोंमें विख्यात, शायरोर्मि भगइर।

कविशेखर (सं० पु०) १ साधनसुहायसी नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। २ सङ्गीत तालविशेष।

कवी (सं० स्त्री०) कवि-कौपी। खलीन, लगाम।

कवीठ (हिं० पु०) कपोष्ठ, कंथा।

कवीन्द्र आचार्य (सरस्वती) कविचन्द्रोदय पीर पद-चन्द्रिका नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

कवीन्द्रनारायण (शर्मा) एकाक्षरचन्द्रिका और विरलामाहात्म्य नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। इन्होंने उक्त दोनों ग्रन्थ उत्कलनाराज भलावुकेमरीके समयमें बनाये थे।

कवीय (सं० स्त्री०) कवि स्त्रायै क्। खलीन, लगाम।

कवीयत् (सं० त्रि०) कविरिव आचरति, कविं स्त्रीतारं इच्छति वा, कवीय-शब्द। १ कविसेहम, शायरके बराबर। २ अपने प्रगंडा इच्छुक, जो, अपने तारोफ पाहता हो।

कवीयान् (सं० त्रि०) अयममघोरतिमयेन कवि, कवि-इयञ्चुत्। विचरन्तिस्त्रयोपदेशस्यैवमुनेः। पा ३।४।२०। समय कवियोंमें श्रेष्ठ, दोनों शायरोर्मि बड़ा।

कबुल, ज्योतिषका एक योग।

कवेरा (हिं० पु०) सामीप्य, देहाती, गंवार।

कवेल (सं० स्त्री०) कं जलं विचति स्तृपाति, क-विल-अण्। १ उत्पन्न, मौसा कवेल।

कविला (हिं० पु०) भ्रमणका कौलक, चक्ररथी कौल। वङ दिग्दर्शनमयम्ब (कुतुपमुमा) की सूची लगती है। २ काकयावक, कौवेका बसा।

कवोड्वक्त्र, बवाटरक देखो।

कवोय्य (सं० स्त्री०) कुत्सितं ईपत् उच्यन्तु, कर्मधा-कोः कवादेगः। ईपत् उच्यस्वर्ग, थोड़ी गर्मी। (त्रि०) २ ईपत् उच्यस्वर्गयुक्त, कुछ गर्मी।

“मत्पुत्रं दुर्लभं कलाभूतमवर्जितं मया।
एषः पूर्यं कनिगाः कवीचतुष्टयम् ॥” (१७ १८०)

कव्य (वै० त्रि०) कवि यत्। (वसुधवर्षकोकविदेनवर्ष-निष्केषणं वक्ष्यन्तवृत्तवर्षरुमतेयविष्ट इवैतिल्लवदवि साधं मन्।
कानिका ५।४।२०) १ श्लोककारी, तारोफ करनेवाला। (सायण) (पु०) २ वेदोक्त पिष्टलोक विशेष।

“सातको वने वंशो वक्रितोमिः।” (अश्वमेधिका १०।१।१)
३ चतुर्थ मन्वन्तरके सप्तयियोंमें एक ऋषि।

(स्त्री) कृतये हीयते पिष्टभ्यः यत् अवादिक्कम्, तु०-अच्-यत्। अको यत् पा। १।१।८०। पिष्टलोक विशेषके उद्देश्यसे दिया जानेवाला भ्रम।

कव्य पदार्थ श्रोत्रिय ब्राह्मणको टान न करनेसे निष्कल हो जाता है। मनुसंहितामें लिखते हैं कि विद्वान् ब्राह्मणको कथं खिलानेसे अनेक पुष्कल फल मिलते हैं। किन्तु अमन्वत् बड़े ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे भी बड़ा लाभ नहीं मिलता। दूररे-अमन्वत् ब्राह्मण जितने घास लेता, पिष्टलोकके सुखमें उतने ही उत्तम कोड़ेके गोसे छोड़ देता है। अतएव प्रथम ही परीक्षाके साथ ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मणका कव्य भोजन कराना चाहिये। वेदतत्त्वविद् ब्राह्मणोंमें ज्ञाननिष्ठ, तपोनिष्ठ, तपःस्वाध्यायनिष्ठ और कर्मनिष्ठ मीदसे चार श्रेणियां होती हैं। इत्युक्त भोजनमें चारो श्रेणियोंका विधान है। किन्तु कव्यके भोजनमें एक मात्र ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मणको ही अधिकार है।

“ज्ञाननिष्ठः विज्ञाः श्रेष्ठिन् तपोविशालदारः।
तत्कामाभ्युदयश्च कर्मनिष्ठश्चदारः ॥

जातियोंके संस्वर्गमें कंसवणिक (कसेरे)से निम्न लिखित जातियां निकली हैं,—

“शक्तिवान् कामिन्कन्यायौ मणिवारय जायते ।
 कांस्यकाराश्च माणिक्यां सुवर्णं श्रीविकी भवेत् ॥
 मणिवृत्तां कांस्यकारान् गोपालश्च च सुभारः ।
 गोपालान् कांस्यवृत्तां देवप्रियाण् निरुचयः ॥” (जातिशास्त्र)

शुद्धवणिकके औरस एवं कंसवणिककी कन्याके गर्भसे मणिकार, कंसवणिकके औरस तथा मणिकारकी कन्याके गर्भसे सुवर्णवणिक, सुवर्णवणिककी कन्याके गर्भ एवं कांस्यकारके औरससे गोपाल और गोपालके औरस तथा कंसवणिककी कन्याके गर्भसे तेली तंबोली हुये हैं ।

किन्तु कसेरे अपनेकी प्रकृत वैश्याजाति बतलाते हैं । वास्तविक शिल्पियों और वणिकोंमें इनका सम्मान कुछ कम नहीं । यह यज्ञोपवीत व्यवहार करते हैं । उपाधिके भेदसे कसेरोंमें सात शाखाये हैं—१ पुरविद्या, २ प्रवेष्टा, ३ गोरखपुरी, ४ तण्ड, ५ तांचरा, ६ भरिचा और ७ गोलर ।

सत्त शाखाओंमें परस्पर पादान प्रदान और बाजार व्यवहार प्रचलित नहीं । मिर्जापुरमें कसेरे अधिक देख पड़ते हैं । वहां यह कसिके पात प्रभृति प्रस्तुत कर दूर देशांतरको विक्रयके लिये भेजते हैं ।

विहार प्रखलके कसेरे हिन्दुस्थानी कसेरोंकी भांति पदमर्यादा पान सकते भी ठठेरे उगैर उगैर वनियोंसे कुस और गोधनें श्रेष्ठ हैं । ठठेरे इन्हींके बनाये द्रव्य पर खोदायो करते हैं । उदपे शकी ।

विहारके कसेरोंमें अपनेको गोत्र चक्षते हैं,—वनौधिया, वसेया, चौखर्गा, चौघरा, हरिहरना, स्रकड़-महोलिया, मलुवा, महोलिया, भोहरिया, सुलरिया और सुचट । यह अपने गोधनें विवाह कर नहीं सकते । फिर कन्याका विवाह माष्यशाधमें ही करना पड़ता है । कभी कभी कन्याका पयस कुछ अधिक हो जाता और भद्रसुमती बनने पीछे उसे पतिका सुभ्य देवाता है । स्त्री रचना, श्रतवस्ता, मृदुगर्भा पदया वस्त्या होती पर पुरुष चतस्र यज्ञीको वरण कर सकता है । विधवाये मनमें आनेसे ‘सगाई’ प्रथाके अनुसार अपना विवाह

गभीर रात्रिको अन्धकार गृहमें होता है । छठमें केवल विधवाये ही जातीं, सधवाये अपवित्र समझ देखने नहीं पातीं । पुरुष सिन्दूर चढ़ा विधवाको अपने पत्नीत्वमें पदस्थ करता है । भोज, पामोद प्रमोद और शायिके धर्मकर्मका पभाव रहता है । समाजमें इन्हें सत्शुद्ध कहते हैं । ब्राह्मण इनके हाथका पानी पी सकते हैं ।

बङ्गदेशके कसेरोंमें पद, घर और गोत्र प्रचलित हैं,— पद—कुण्ड, प्रमाणिक, दास, दां, पास, नन्दन, दे इत्यादि । घर—सप्तधामी, सुहृत्पदावादी, मोता, मैती ।

गोत्र—गृह ऋषि, शाण्डिल्य, सप्तशर्पि, ऋषिकेग, दधि ऋषि ।

विवाहादि कार्यपर इन्हें विपन्न वायुमें गिरना पड़ता है । सब घरोंकी निमन्त्रण देना आवश्यक है । भोजका बड़ा आयोजन होता है । इसीसे गरीब कसेरे एक ही साथ ८८ कन्याओंका विवाह कर सकते हैं । बङ्गाली कसेरोंमें विधवाविवाह नहीं चलता । छोर भाद्रमानके १० वें दिन विष्णुकर्मकी पूजा होती है । उस दिवसको पोथी कसेरा यन्त्रादि नहीं छूता ।

बम्बईके कसेरे अपनेकी कार्तिकारी संश्लेष चरित्र सेनापतिके औरस और चरित्रयात्रीके गर्भसे उत्पन्न बताते हैं । शूद्रोंकी अपेक्षा यह कुल, ग्रीस और मानमें बहुत श्रेष्ठ हैं ।

कसोकापन (हिं० पु०) कपायस, बाकपन ।
 कसेली (हिं० स्त्री०) घृणफल, सुगरी ।
 कसोरा (हिं० पु०) कटोरा, प्याला ।
 कसौजा (हिं० पु०) कासमटं भेद, एक पौदा । यह पर्यां ऋतुमें उपजता और तीन बार फल देने से उठता है । पत्रक एक छपरि (मींके)में परस्पर समूह खोज पाते और प्रगस्त तथा तीक्ष्ण देखाते हैं । ग्रीतकाल इसके फूलनेका समय है । फल लह-माल चक्रुनि दीर्घ एवं समान होते हैं । बीज एक दिक् तीक्ष्ण रहते हैं । रसवर्ण कसौजा सतत हरित् छस है । पत्र और पुष्प रसाभ होते हैं । यह कटु, उष्ण और कफ, पात तथा कास नाशक है । श्लेग रसका शाक भी बनाने

भ्रान्तिरु त्वे कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यततः ।

इत्यानि तु यवाभ्यां सर्वेष्वेव चतुर्विधम् ॥” (मनु १.५०.)

ऐसे ब्राह्मणका अभाव होनेसे मातामह, मातृक, भागनिघ, शशुर, गुरु, दोहिन, कामाता, बन्धु पुरोहित वा यज्ञमानकी कव्य दे देना चाहिये। मनुके मतसे वेदज्ञ रहते भी निम्नोक्त ब्राह्मणकी कव्य खिलाना निषिद्ध है,—[चक्रिस्तक, देवल, कन्याविक्रिता, दुकानदार, चौर्यादि दोषोषि पतित, क्लौष, नास्तिक, जटाधारी, दुर्वल, प्रतारक, राजाके प्रेय, कुनखु, श्यावदन्त, गुरुके प्रतिरोधा, अग्नित्यागी, राजयत्नी, पशुपालक, नग्राहोषी अभिनेता, शूद्राणोपति, विधवाके गर्भजात, कानि, वेतन ग्रहणपूर्वक अध्यापना करनेवाले, शूद्रके ग्निथ, दुष्टवादी, माता पिता एवं गुरुके अकारणपरित्यागी, गृहदाहक, विपदाता, कुण्डान्नभोजी, सोमविक्रिता, समुद्रयात्री, अग्निवाहित, अग्रजके वर्तमान रहते विवाहकारी, जारज, बन्दी, तेलक, कुटकारक, पितासे विवाहकारी, मद्यप, पापरोगी, दान्धिक, रसविक्रिता, धनु तथा शरनिर्माता, दिग्धूपति, मित्रश्रेणी, दूरत-वृत्ति, पुत्राचार्य, अपध्मारोगी, गण्डमालारोगी, शिखरोगी, खल, उन्मत्त, अन्ध, वेदिनिन्दक, ज्योतिषी, व्यंगसायी, पक्षिपोषक, गृहशास्त्रके भाचार्य, स्वपति, दूत, ठगारोपक, कुक्कुरकेसे क्रीडाशील, श्येनपक्षिजीवी, कन्यादूषक, हिंस्र, शूद्रहत्त, गणयागकारी, आचारहीन, क्षयिणीवी, श्लोषदरोगी, और सज्जननिन्दित ।

कव्यता (वे० स्त्री०) १ स्तुति, तारीफ़। २ ज्ञान, समझ। कव्यवाङ्, कव्यवाच देखो।

कव्यवाल (सं० पुं०) कथं वल्यते दीयते अस्मै, कव्य-वल-घञ्। १ पिटलगणविशेष।

“कव्यवाली उगलः कीनी यमये वायंवा तथा ।

अपिवाता बहिः पदः कीमयाः पिटदेवताः ॥” (ब्रह्मसुपुराण)

२ अग्नि, आग। अग्निमुखमें ही पिटलगणके उद्देशसे दान किया जाता है।

कव्यवाह (सं० पुं०) कथं वहति, कव्य-वह-रि। अग्नि, आग। इसमें पिटलगणके उद्देशसे कव्य डाला जाता है।

कव्यवाह (सं० पुं०) कथं वहति प्रापयति पितृनिति

शिवः, कव्य वह-अण। अग्नि, पितरोंको कव्य पङ्कवानि-वाली आग।

कव्यवाहन (घे० पुं०) कथं वहति, कव्य-वह-वाट्। कव्यपुरोवपरीथेयुं ह्यट्। पा १। २। ६५। १ अग्नि, पितरोंको कव्य पङ्कवानिवाली आग।

“अथये कव्यवाहनय खाद्याः” (यजुः १। २८)

यजुर्वेदके मतमें अग्नि तीन प्रकारका होता है,—

हृष्यवाहन, कव्यवाहन और सहरवा। देवगणका हृष्यवाहन, पिटलगणका कव्यवाहन और असुरगणका अग्नि सहरवा कहता है। (नेत्रोवपिंता २। २। ५। १।) कथ (सं० पुं०) कथति शब्दायते ताडयति वा, कथ-अच्। १ अश्वदिताङ्गिनी, चासुक, कोड़ा। यह चर्म, वस्त्र, वेतन पट्टति द्वारा प्रस्तुत होता है।

“स राजा तं कथेन यथाशयम् ॥” (महाभारत १। २६६ पा)

२ हृद् पशु विशेष, एक छोटा जानवर।

कथ (फा० स्त्री०) १ आकर्षण, खींच। २ दम, फंक।

कथकु (सं० पुं०) गवेधुक, कधी, एक पौदा।

कथकीन (फा० पुं०) कपाल, खप्पर। इन्हें भिक्षुक अपने हाथमें रखते हैं।

कथसकथ (फा० स्त्री०) १ आकर्षण, खींचखांच। २ समारोह, रेलपेन। ३ अस्मदस, आगा पीडा।

कथम् (सं० स्त्री०) कथति नीचं गच्छति, कथ-असुन्। जल, नीचे रहनेवाला पानी।

कथा (सं० स्त्री०) कथा टाप्। १ अश्वदिताङ्गिनी, चासुक, कोड़ा। “जवान कथना मोक्षान् तथा राचकथन्निम् ॥”

(भारत १। १००। १०) २ मांसरोहिणी, एक खुशबूदार पेड़। ३ रक्षु, रक्षी।

कशाई—१ नदी विशेष, एक दरया। यह बङ्गालके मेदिनीपुर जिलेमें प्रवाहित है। पड़े लिखे लोग इसे कशयती कहते हैं। किन्तु कालिदासने अपने रघुवर्गमें कपिशानदीके नामसे इसका परिचय दिया है।

कशाईफुलिया—पश्चिम बङ्गालकी एक बागदी जाती। यह कशाई नदीमें नौका चलाते और मत्स्य मार लाते हैं। चौदह प्रकारके बागदियोंमें कशाईफुलिया अपने-को श्रेष्ठ मताते हैं।

हैं। रक्तवर्ष कर्षोजिके पत्र और धातु अर्शोरोगमें औषधकी भांति व्यवहृत होते हैं।

कसौंजी (हिं० स्त्री०) कर्षोजा देखो।

कसौंदा, कर्षोजा देखो।

कसौंदी (हिं० स्त्री०) कर्षोजा देखो।

कसौंटी (हिं० स्त्री०) सर्गमण्डि, चांदीसोना कसनेका पत्थर। यह काली होती है। शालग्राम कसौंटीके बनते हैं। लोग इसके खरस भी तैयार करते हैं। २ परीक्षा, जांच।

कसौली—पश्चात्तक शिमला जिलेका एक सैन्यवास (छावनी) और निरामय स्थान। यह एक पर्वतके शिखर (अक्षां० ३०° ५३' १३" उ० तथा देशां० ७६° ५२' ५०") पर अवस्थित है। कालिकाकी उपत्यका नीचे देख पड़ती है। कसाली अम्बालीसे ४५ मील उत्तर और शिमलीसे ३२ मील दक्षिण-पश्चिम लगती है। १८४४-४५ ई०की देशीय राज्य बीजाये भूमि ले यहाँ छावनी खोली गयी थी। उन समयसे बराबर कसौलीमें अंगरेज सिपाही रहते हैं। पर्वत समुद्रतलसे ६३२२ फीट ऊँचा है। इससे दक्षिणपश्चिम समभूमि और उत्तर हिमालयका दृश्य अत्यन्त मनोहर लगता है। यहाँ कुकुर और शृगाल आदिके विषकी चिकित्सा होती है।

कस्कादि (सं० पु०) पाणिनि व्याकरणोक्त गण विग्रह। इसमें विसर्गस्थानपर नित्य 'स' होता है। कस्कादिके शब्द यह हैं,—कस्त, कौतस्तुत, भ्रांतुप्युव, शुनस्कण, सद्यस्ताल, सद्यस्त्री, सद्यस्त, कास्तान, सर्पिपुञ्जिका, धनुष्कपाल, वङ्गिप्यल, यजुष्यात्र, पयस्तान्त, तमस्तान्त, अयस्तान्त, मेदस्तान्त, भास्तर, अष्टस्तार और आस्तान्तगण। (पं० ८। १। ४८)

कस्तामी (सं० स्त्री०) कं शिरोऽग्रभागं स्तभान्ति, कस्तानुभ-अण-ङीप्। शकटका अर्थः पत्तन रोकनेकी एक अवष्टम्भ, गाड़ीके बाँधकी युग्मी।

कस्तारी (हिं० स्त्री०) दुग्धपात्रमेद, एक वस्तुन। इसमें दूध पकाकर रखा जाता है। सुष्ठु विस्तृत रहता है। फारसीमें इसे 'कसा' और साधारण हिन्दीमें 'दूधघँटी' कहते हैं।

कस्तौर (सं० स्त्री०) पिच्छट, रांगा। इसका संस्कृत पर्याय—पुत्रपिच्छट, मृदङ्ग, वङ्ग, रङ्ग, त्रपुः, सप्तक, नागजीवन, गुरुपत्र, चक्र, तमर, नागज, भाषीनक और सिंहल है। रङ्ग देखो।

कस्तूरीण (सं० स्त्री०) रङ्ग, रांगा।

कस्तूरिका (सं० स्त्री०) कस्तूरी स्वार्थे कन्-टाप्-प्यो-दरादित्वात् साधुः। कस्तूरिका शृंग, एक हिरन। इसकी तोदीसे कस्तूरी निकलती है। कस्तूरिकायन देखो। २ कस्तूरी, मुशक।

कस्तूरमणिका, कस्तूरीमणिका देखो।

कस्तूरा (हिं० पु०) १ कस्तूरी, मुशक। २ सन्धिमेद, एक जोड़। यह लडाकी तख्तोमें पड़ता है। ३ शक्ति मेद, एक सांप। इसमें मोती रहता है। ४ पक्षि-विग्रह, एक चिड़िया। यह धूसरवर्ण होता है। पद तथा चक्षुका वर्ण पीत लगता और उदर श्वेताभ रहता है। कस्तूरा पार्श्वत्य प्रदेशमें काश्मीरसे आसाम तक मिलता है। इसकी बोली सुननेमें अच्छी लगती है। ५ द्रव्य विग्रह, एक चीज। इसे पोर्टेब्लियरके पर्वतोंकी शिलावोंसे खुरच-खुरच निकालते हैं। कस्तूरा पार्श्वत्य मूल्यवान् होता है। इसे दुग्धके साथ १ रत्ती सेवन करते हैं। लोग इसे अवाबील पत्थीके मुखका फेन समझते हैं।

कस्तूरिक (सं० पु०) करवीर वृक्ष, कनेरका पेड़। कस्तूरिका (सं० स्त्री०) कस्तूरी स्वार्थे कन्-टाप्-प्यो-दरादित्वात् इत्यः। कस्तूरी, मुशक।

कस्तूरिकाण्डज, कस्तूरीकाण्ड देखो।

कस्तूरिकाशृंग (सं० पु०) एक प्रकार हरिय, मुशकी हिरन। तक्षपेटके निकट नामिमें कस्तूरी सन्धित रहने और शरीरसे कस्तूरिका गन्ध निकलनेसे ही इसको कस्तूरिकाशृंग कहते हैं। संस्कृत पर्याय—कस्तूरीशृंग, गन्धवाह और गन्धशृंग है। भारतवर्षमें अति पूर्वकालसे यह शृंग परिचित और सुमाहृत है। प्राचीन ग्राह्यकारोंने पांच प्रकारके शृंग कहे हैं। कस्तूरिका शृंग 'पार्श्वशृंग'के प्रथमंत है।

१ विष्णुपुराणमार्गे जीविषयस्य पद्यम्।

विष्णु न कश्चिदाप्युपमा भद्रजगतः ॥

शे गभिनः शीघ्रमोरुचं चोले पादिवा गभयः श्रदिष्टः ३”
(पुत्रिचस्तव)

मृगजाति एक प्रकार नहीं। पार्ष्णिवमृग, जलमृग वायुमृग, गगनमृग और तैलौमृग पांच भेद विद्यमान हैं। जिस मृगका शरीर एवं कर्ण चीथ तथा गन्ध-विभिन्न देखाता, वह पाथिव गन्धमृग कहाता है। गभदीक। इसी गन्धमृगका चपर नाम कस्तूरिका-मृग है। कस्तूरिकामृग रोमन्त्यक (पागुर करनेवाले) चतुष्पद पशुकी परिगणित है। यह माधारण हरि-योकी भांति नहीं होता। दूसरे हरियोंके बड़े बड़े सींग रहते हैं। किन्तु इसके यह देख नहीं पड़ते। फिर भी गति हावभाव विसकुल हरियोंकी ही भांति है। इसीमें यह विभिन्न जातीय हरिय कहाता है। हरियोंकी भांति चतुके मूलमें इसके पश्चिद्धिद नहीं होते। इसकी छोड़ ऊपरी चौड़े गालके दोनों पार्श्वमें इसके दो गलदन्त दो-तीन पट्टुलि बाहर निकल आते हैं। सोमस्य करनसे चंद्रपुच्छके पालकीकी भांति कर्कश लगते हैं। कस्तूरी कीके लिये इसका इतना धादर है। कस्तूरी नामक सुगन्धि द्रव्य बड़ दिनसे भारतवर्षमें प्रचलित है।

“कस्तूरिकागभिनदे पुत्रिचिरेति ।” (माघ)

पहले भारतवर्षमें तीन जगह तीन प्रकारका कस्तूरिकामृग मिलता था। स्थानभेदसे कस्तूरीका भी तारतम्य रहा। काश्मीरपण्डित नरहरिके विर-चित निष्पष्टुराज नामक धन्यमें लिखा है,—

“हयिना विह्वला कृषा कस्तूरी विविधा मता ।

• नैपाथेऽपि काश्मीरके कामरुदेऽपि जायते ।

काश्मीरदेशवा श्रेष्ठा नैपालो मज्जना मरेत्तु ।

काश्मीरदेशतथा कस्तूरी शयना कृता ॥”

नेपाल, काश्मीर तथा कामरूप तीन प्रदेशोंमें कपिला, पिहना एवं छप्य तीन प्रकारकी कस्तूरी उत्पन्न होती है। कामरूपकी सर्वोत्कृष्ट एवं छाप्य-वर्ण, नेपालकी मध्यम तथा नीलयर्ण और काश्मीरकी कस्तूरी अधम एवं कपिनवर्ण रहती है। उक्त प्रमाप द्वारा समझ पड़ता—पूर्वकालमें कामरूप, नेपाल और काश्मीरमें भिन्नप्रकारका कस्तूरीमृग रहता

था। पक्षि टोकाकार मन्निनाथके मतमें हिमालय-प्रदेश ही इस जातीय मृगका प्रधान वासस्थान है,—

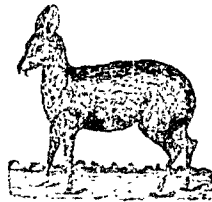
“मुरगभिः कस्तूरी गहनभिः कन दीपयविहानदिभ्युः”

तेन हिमाद्रावति तन्मृगस्य चपाशोऽस्तीति भवति ।”

(उत्तारमन्थके उपर मन्निनाथकृत टीका १। ३१)

यह मृग शीथकालमें समुद्रसे ८००० फीट ऊंचे स्थान पर साइबेरिया, मध्य एशिया एवं हिमालय प्रदेशमें टङ्गिमें और चांसाममें देख पड़ता है। सकल स्थानोंकी अपेक्षा तिब्बत देगीय कस्तूरिका-मृग अधिक धादरणीय है। इसे तिब्बतमें ‘शा’ एवं ‘लव’, काश्मीरमें ‘शैश’, कुनावरमें ‘बिना’, हिन्दुस्थानमें ‘कस्तूरी’, महाराष्ट्रमें ‘मिगीरी’ और ईरानमें ‘मुष्क’ कहते हैं। इसका चंगरेजी वैज्ञानिक नाम मुष्कस मसूचिफेरस (Moschus moschiferus) है।

यह ठाढ़े फीटसे अधिक बड़ा नहीं होता। धर्म कृष्यवर्ष रहता है। बीच-बीच लाल और पीले दाग पड़ जाते हैं। गलदेय पीताम लगता है। :सेज (पुच्छ) कोढ़े एक दूध दीर्घ देखाता है। स्त्रीपुद्ब, दोनोंके पुच्छ पर दो बलर पर्यन्त सोम और निध भागमें पशु रहता है। बड़नेपर पुद्बका सोम :या पशु छड़ जाता है। वयःप्राप्त पुद्बके केवल नाभिसे ही कस्तूरी निकलती है।



कस्तूरिका मृग ।

यह प्रति मोह, निराह, मालुह और निजैनप्रिय है। निविद्ध परख और मानवके शयन्य उपत्यका प्रदेशमें इसके विचरणकी भूमि रहती है। प्रिकारो बड़े कटसे धर पकड़ कर सकते हैं। किसी प्रकार

है। इससे बहूधा पची मर जाती है। पालतू पक्षियोंका कांटा निकाल छाहते हैं। ४ सुखरोगविशेष, मुंजकी एक बीमारी। इससे सुखमें तीव्रताय और पिड़कायें पड़ जाती हैं। ५ लोहकीलक, लोहेकी कील। ६ कंटिया, मछली मारनेकी कील। गीना कांटा लपेट इसको पानीमें डाल देते हैं। धोकेसे खा जाने पर यह मछलीके सुखमें घटकता और निकाने नहीं निकलता। फिर यिकारी कांटेसे लगे मोटे डोरको बन्दीके सहारे खींच मछलीको ऊपर खींच लेता है। ७ यन्त्रविशेष, एक भाजार। यह लोहेकी भुकी हुयी कीनीका एक गुच्छा है। इससे कुपमें गिरे कोटे, गगरे बगैरह निकाले जाते हैं। ८ तीक्ष्णप बसुमात्र, कोरे मुकीयो चोज। ९ घन्ययन्त्र विशेष, गूधनेका एक षोजार। यह लोहेकी एक टट्टी कील है। पटवे इसमें धागा डाल गूधनेका काम बनाते हैं। १० लोहसूचीभेद, लोहेकी एक सूयी। यह तुलादण्डके प्रहदेगपर लगती है। इससे तराजूके दोनों पलङ्गोंकी बराबरी मालूम होती है। ११ लोह तुनाभेद, लोहेकी एक तराजू। इसकी डांडीमें कांटा लगा रहता है। १२ नागालक्षारविशेष, लौग, कील, नाकका एक लेश्वर। १३ खाद्य सम्बन्धीय यन्त्रविशेष, खानेका एक भाजार, इससे छठा छठा चंगरेल रोटी बगी, रह खाते हैं। १४ काष्ठयन्त्रविशेष, बैसाखो, पांचा। इससे ऋषक तथादि बटोरते हैं। १५ सूचिविशेष, सूजा। १६ घटिका सूचि, घड़ीकी सूयी। १७ गचितमें गुणनफलकी शब्दाशयपरोषा, लक्षरकी लांच। इसमें दो रेशायें चारपार बनायी जाती हैं। फिर गुच्छके बद्ध एकल संयुक्त कर ८से भाग संगति है। जिन बद्ध एक रेशाकी किसी सीमापर रहते हैं। इसी प्रकार गुणककी भी बद्ध लोह और मोषे तोड़कर जेब बद्ध रेशाके दूसरे प्रांत पर रखा जाता है। यह संसुखीन समय बद्ध गुणन और ८से विभागकर जेब बद्धकी दूसरे रेशाके एक पवसाग पर संगति है। फिर गुणनफलके बद्ध लोहने और ८से तोड़ने पर यदि जेब बद्ध पूर्वोक्त बद्धसे मिल जाता, तो गुणनफल यह समझा जाता है। १८ गचितसम्बन्धीय शब्दाशय

परोषाकी क्रिया, हिसाब जांचनेकी तरकीब। १९ मङ्ग-युहविशेष, किसी किष्पकी कुम्भी। इसमें पक्ष-वान् भिड़कर नहीं लड़ते, दूर चीने काट छांट करते हैं। २० पतुवेरा भूमिविशेष, एक लक्षर। यह यमुना किनारे मिलता है। कांटेमें कोयो चीज उत्पन्न नहीं होती। २१ किसी किष्पका बेलगूटा। यह दरीमें नोकदार निकाला जाता है। २२ पन्निक्कोड़ा-विशेष, एक पातयमाजी। २३ मङ्गनोका कांटा। २४ दुःखदायी पुद्ग, तक्रुफ देनेवाला पादमो। कांटादार (हिं० वि०) कण्टकान्वित, कंटीना। कांटी (हिं० स्त्री०) १ सुदृ कौलक, छाटो कील। २ सुदृगुवाभेद, एक छोटी तराजू। इससे दृष्टपर सूचि लगती है। कर्मकारादि कांटेसे काम सेते हैं। ३ कंटिया, बंकुड़ी। ४ यन्त्रविशेष, एक षोजार। यह किनारे पर लोहेकी बंकुड़ी लगी एक लकड़ी है। इससे सर्प पकड़े जाते हैं। ५ धिड़ी, केदियांकि पेरमें डाले जानेवाले लोहेके कड़े। ६ किसी किष्पकी खयी। यह धुनि जाने पोड़े विनीसोंमें निपटी रहती है। ७ धानकीकी एक लोहा, लकड़ लगानेका खेल। कांटादार, कांटादार शब्दो। कांठा (हिं० पु०) १ कण्ट, गन्ना। २ चित्र विशेष, एक निधान। यह शुकपक्षीके गनप्राप्त पर मण्ड-साकार पड़ जाता है। ३ उपकण्ट, किनारा। ४ पार्श्व, बगल। ५ काष्ठदण्डविशेष, एक लकड़ी। यह एक बिसे जम्बी और पतली होती है। इस पर तन्तुवाय धाना बुननेकी रेश्म बड़ाते हैं। बादसेका ताना कांटेमें ही बुना जाता है। कांठना (हिं० स्त्री०) १ लक्षण करना, रौंद छानना। २ कूटना, चुनना। ३ मारना-पीटना, सतियाना। कांठसो (हिं० स्त्री०) काण्ड, कुसफा, मोनी। कांड़ा (हिं० पु०) १ हस्तरोग विशेष, पिड़की एक बीमारी। इससे हथोके काष्ठमें कीटादि लग जाते हैं। २ काष्ठकीट, लकड़ीका कीड़ा। ३ टनाकीट, दांतिमें लगनेवाला कीड़ा। कांड़ी (हिं० स्त्री०) १ उद्वृत्तगत, चोषमोका गद्दा। इसमें छात्रकर सुपकसे पन्न कूटा जाता है। २ निर्मिभू

पकड़ सकती; यह इसका नामि काट लेते और अधिक मूल्य पर व्यवसायियोंके हाथ बेच देते हैं।

कस्तूरिकाग्निका नामि (musk-bag) कवुतरके छोटे चण्डेकी भांति होता है। आकार वृक्षकसे मिलता है। प्रसिद्ध भ्रमणकारी टाभार्णिएरने ७६७२ नामि संग्रह किये थे।

यह पर्वतजात सामान्य लण खा जीवन धारण करता है। चारों पैर अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। दूरसे जट्टादिका भेद समझ नहीं पड़ता। इसीसे लोग कहते, कि कस्तूरिकाग्निके घंटेन नहीं रहते।

भारत महासागरीय द्वीपोंमें इसकी भांति दूसरे भी कितने छोटे सुदूर पशु हैं। किन्तु उनके नामिसे कस्तूरी नहीं निकलती। सुमात्रा तथा यवहीपमें उक्त सुदूर पर्वतशृङ्खलपरिमित हिरणको कहीं 'सेमोटन' और कहीं 'नेपू' कहते हैं। अंगरेज़ी वैज्ञानिक नाम ट्रागुलस जवनिक्स (Tragulas Javanicus) है।



कस्तूरी मृगसदृश हिरण।

यह यवहीप-वासियोंको अत्यन्त प्रिय लगता और पासनेसे बहुत दिसता है।

कस्तूरी (१०० स्त्री०) कसति गन्धोऽस्याः, कम्-कार-तुट्-छीप पुषोदरादित्वात् साधुः। सुगन्धि द्रव्यविशेष, सुगन्धक, एक खुशबूदार चीज। कस्तूरिका गन्धकी। इसका संस्कृत पर्याय—मृगनाभि, मृगमद, मृग, मृगी, नामि, मद, वातामोद, योजनगन्धिका, मदनी, गन्धकेसिका, वेधसुरवा, माजारी, सुभगा, बहुगन्धदा, सद्यस्त्रवेधी, श्यामा, कामास्या, मृगाद्रजा, कुरङ्गनाभि, सलिता, श्यामना, मोदिनी, कस्तूरिका, कस्तूरिका, नामी, सता, योजनगन्धा, मार्ग, गन्धमोघिका, कासाद्री,

धूपसंचारी, मित्रा और गन्धपिगायिका है। कस्तूरी-मृगके नामि (एक छोटी घेंसीके पाकारमें) रहता है। उसीमें कस्तूरी उत्पन्न होती है। इसीसे लोग इसे मृगनाभि (नाफा) कहते हैं। परबी और फारसी सुगन्धक, बंगला, तामिल तथा तेलगु कस्तूर, यव एवं मलयमें द्विदेश, सिङ्गली सत्ता, ब्रह्मी दी, चीना पिङ्गिङ्ग, रूसी सुसकस, इटालीय सुसचिषी, जर्मन विमम्, पोर्तूगो जू पल मिस्कार, पोलन्दाज मस्क, डेनमार्की दिसनेर, फरासीसी मस्क और अंगरेजी नाम मास्क हैं। मृगनाभि कुछ उग्र होती है। आखाद कटू लगता है। सुखमें कस्तूरी डालनेसे विपुल सद्गन्ध निकलता है।

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें भूरि भूरि प्रमाण मिलता कि भारतवर्षमें बहुत पूर्वकालसे मृगनाभिका पादर है। प्राचीन वैद्यक मतसे कामरूप, नेपाज और काश्मीर तीन देशोंमें कस्तूरी उत्पन्न होती है। कामरूपकी कस्तूरी सर्वोत्कृष्ट और ज्ञाप्यवर्ण रहती है। फिर नेपालकी मध्यम एवं नीलवर्ण और काश्मीरकी कस्तूरी अधम तथा कपिलवर्ण ठहरती है। यह पांच ज्योषियोंमें विभक्त है—खरिका, तिलका, कुलत्या, पिप्ता और नायिका। (भावप्रकाश) राजवल्लभके मतसे कस्तूरी सुगन्धि, तिक्त, चक्षुके लिये हितकर, और मुखरोग, किलसि, कफ, दौर्गन्ध, वन्धदोष, अलक्ष्मी, मल, रक्तपित्त तथा क्षर्दिनायक है। दूसरे भावप्रकाशमें इसे कटु, घार, उष्ण, शुक्रजनक, गुह और शीत तथा शोषनाशक भी कहा है।

पहले युरोपके लोग कस्तूरीका विषय समझते न थे। १००० मताब्दको परबी इसे युरोप ले गये। परबी और ईरानी कस्तूरीको सुगन्ध कहते हैं। इसी 'सुगन्ध'से लाटिन सुमस्कस (Musculus) और अंगरेजी मास्क (Musk) शब्द निकला है।

युरोपीय चिकित्सकोंके मतसे यह उत्तेजक और पाचोपजनक है। श्यासकाय (१०से १५ घेन), काप (१ घेन दिनको-११४ बार), मृगीरोग; ताण्ड्यरोग, घुटुद्वार, निर्योके प्रसवजामीन पाचोप, डिडिरिया, मोडकर एवं तान्त्रिक एयर (Pneumonia), कुम्भकृमके प्रदाह (२४-३० घेन) और वातरोगमें कस्तूरी विशेष

गड़ा हुआ काष्ठ वा प्रस्तरखण्ड, जमीनमें गड़ा हुआ लकड़ी या पत्थरका टुकड़ा। इसमें भय कूटनेको गर्त रहता है। २ दक्षिणोपविश्रिय, जाघीकी एक बीमारी। इससे घेरके तनवेमें एक बड़ा ग्रन्थ पड़ जाता और जाघी चलने फिरनेमें बड़ा कष्ट पाता है। ग्रन्थमें सुदृ सुदृ क्षमि होते हैं। ४ काष्ठदण्डभेद, लकड़ीका दण्ड। इससे गुहमार द्रव्योंकी चढ़ाते, उतारते और हटाते हैं। ५ लद्रुङ्की डांडी। यह सुड़े हुये चंकुड़ों पर रहती है। ६ वंग वा कांठखण्ड विश्रिय, बांस या लकड़ीका एक सड़ा। यह पतला तथा घीघा रहता और मकामके छळोंमें लगता है। इससे दूसरे काम भी निकलते हैं। ४ काण्ड, सड़ा। ५ रहठा, चरघरकी सुधी नकली। ६ दियासलाई। ७ मख्यमसूद, मछलियोंको टोली।

कांघरि (हिं०) कन्, दिघी।

कादिना (हिं० क्रि०) रोदन करना, चीख मारना, फूट फूट रोना।

कादिव (हिं० पु०) कर्हम, कीवड़।

कांदा (हिं० पु०) १ कन्दकी, एक पौदा। यह प्याजकी भांति पत्न्यविश्रिय होता है। पत्रक प्याजसे कुछ प्रगस्त रहते हैं। कांदा सरोवरोके निकट उपजता है। वर्षाका जल मिलनेसे पत्र निकलते हैं। पुष्प श्वेतवर्ण रहते हैं। रस पर रक्तवर्ण पांच छह खुड़ो रखाये पड़ जाती है। रखाये के पान्त भागपर अर्ध-चन्द्राकार पीतवर्ण चिम्ब होते हैं। कादिके छलेसे माड़ी बनती है। इसका अपर नाम कंदरी वा कंदली है। २ प्याज।

कादू (हिं० पु०) कंदोयी, बमियोंकी एक जाति। यह हलवाईका काम करते हैं।

कादो, बावर दिघी।

काध (हिं० पु०) १ स्तम्भ, काया। २ कौमुदका एक विध्या। यह पतला रहता और जाठमें मुण्डोके छपर पड़ता है।

काधना (हिं० क्रि०) १ कन्धे या गिर पर रखना, उठाना। २ नाधना, मथाना। ३ श्रीकार करना, मानना। ४ भार सधन करना, बोझ उठाना।

कांघर (हिं० पु०) कृष्ण, काया।

कांधा (हिं० पु०) १ स्तम्भ, काया। २ कृष्ण, काया।

कांधी (हिं० स्त्री०) स्तम्भ, पांश।

कांघ (हिं० स्त्री०) १ तोली, पतली कड़। यह बांस या किमो दूसरी चीजकी रहती और लवानसे भूक पड़ती है। २ कनकौबेकी पतली तीली। यह कमनाकी तरह भूका कर कनकौबेके जपरी छियां पर लगायी जाती है। कनकौवा कवियानसे इसमें कसा बंधता है। ३ शूकरका कांटा या खांग। ४ दक्षिदन्त, जाघीदांत। ५ कर्णालहार विश्रिय, कानका एक छेवर, यह सादो और जडाक दो तरहकी होती है। कांघ सोनेकी रहती और पत्रकके आकारमें बनती है। छियां एक साथ पांच-पांच सात-सात कणि चपने कानोंमें डाल लेती हैं। यह धक्का लगनेसे हिल उठती है। ६ कनक-फूल। ७ कसईका चूना। ८ कंघकंघी।

कांपना (हिं० क्रि०) कम्पित होना, धरधराना।

२ भय करना, डरना।

कांपिण (हिं०) कम्पित दिघी।

कांघकांघ (हिं० स्त्री०) काकका शब्द, कौबेकी बोली।

कांघ कांघ (पु०) कांघ कांघ दिघी।

कांघर (हिं० स्त्री०) १ बर्गनी, बांसका मोटा फटा। इसके दोनों किनारे द्रव्यादि रखनेकी छीके लगा देते हैं। २ यात्रियोंके गद्दाजल से आनिका यन्त्र। यह एक टण्डा होता है। किनारों पर बांसको दो टोक-रियां बांध दी जाती हैं।

कांघरा (हिं० वि०) सदिन, घबराया हुआ।

कांघरि, बावर दिघी।

कांघरिया (हिं० पु०) कांघर से जानेवाला।

कांघर (हिं० पु०) १ कामरूप। कामरूप दिघी। २ कामल रोग, एक बीमारी।

कांघराघी (हिं० पु०) एक तीर्थयात्री। यह प्रपनी कामनाके लिये कांघर से तीर्थयात्रा करता है।

कांघि (हिं० पु०) कंधे मयः, कंध बाहुलकात् रज्जु, वेदे प्रयोदरादिध्यात् मय्य मत्वम्। कांघ, कानिका प्यासा। कांघनी, कांघनी-दंघी।

कांघ (हिं०) कन्ध दिघी।

वपकारी है। बासकोंके चासेपरोगेमें अधिक चासेप हीनेसे १-५ घन कस्तूरी पिचकारीसे लगानेमें फल मिलता है।

पालकस तीन प्रकारकी कस्तूरी प्रचलित है— तिब्बती, रुसी और चीना। तिब्बती सर्वात्कृष्ट, चीना मध्यम और रुसी अधम होती है। रुस देशीय मृगकी कस्तूरी उत्कृष्ट नहीं रहती। व्यवसायी रुस देशीय मृगके नामिमें लगा हते हैं। इससे रुस देशीय कस्तूरीका गन्ध बहुत कुछ बदल जाता है।

मृगनाभि अधिक मूल्यमें विकती है। प्रत्येक नामिका मूल्य १५ या १७ रु० है। इससे व्यवसायी मांस और रक्त मिला और कृत्रिम चर्म सेप लगा इसे बेचते हैं। किन्तु मृगनाभिकी परीक्षा बहुत सीधी है। कृत्रिम मृगनाभि अग्निमें डालनेसे दुर्गन्ध उठता है। किन्तु प्रकृत कस्तूरीमें यह घात नहीं होती है।

कस्तूरिया (हि० पु०) १ कस्तूरिकासृग् (वि०) २ कस्तूरी मिश्रित, सुगंधी। ३ कस्तूरी सद्यम चर्ष विगिष्ट, लो सुक्त रंग रहता ही।

कस्तूरिक, कश्तिक देखो।

कस्तूरीकाण्डज (सं० पु०) मृगनाभि, सुगंध।

कस्तूरीतिलक (सं० स्त्री०) कस्तूर्यास्तिलकम्, इ-तत्।

कस्तूरीका तिलक, सुगंधका टीका।

"कस्तूरीमिश्रणं कस्तूरपट्टे" (विचलन)

कस्तूरीभेरथरस (सं० पु०) रसविशेष, एक कुशुल।

चिञ्जुक, विप, टह (सोहागा), लातीकीपक (जाय-फल), भरिच, पिपली और कस्तूरी बराबर बराबर लसमें घोटनेसे यह औषध प्रसृत होता है। मात्राका परिमाण २ रसी है। इसके सेवनसे शीताङ्ग सविपात दूर होता है। (मंगरभाष्य) उद्यत् कस्तूरीभेरथरस वगानिका विधि यह है—कस्तूरी, कर्पूर, ताम्र, घातकी, शूकगिम्बी, रोध, छर्द, सुला, प्रवाल, लोह, पाठा, विडङ्ग, मुस्ताक, शण्ठी, धाला, हरिताल, पम्भ और चामसकी समभाग चर्षकपत्रके रसमें घोटनेसे यह रस प्रसृत होता है। इसे १ रसी पात्रके रसमें सेवन करनेसे विषमन्त्र दूरता है। (रत्नराकर)

कस्तूरीमलिका (सं० स्त्री०) कस्तूरी गन्धयुक्ता मलिका

मध्यपदलो० । १ मृगनाभि, हरिजका नाफा। २ मलिका-पुष्पभेद, किसी किछकी चर्मली। यह मृगमदवासा होती है। कस्तूरीमलिका दो प्रकारकी मिलती है— एक सता सद्यम और दूसरी परखट्टके समान। दोनोंमें फलफूल पाते हैं। पुष्प और फलके वीजमें सद्यम्य रहता है। केग मलनेके समानमें इसका बीज डाला जाता है।

कस्तूरीमृग, कश्तिक देखो।

कस्तूरीमोदक (सं० पु०) मोदकभेद, किसी किछका लड्डू। कस्तूरी, मिषङ्ग, कण्टकारी, दोमी लोरक, तिलक, पककदलीफन, खर्जूर, कण्ठतिलक तथा कीकियासका बीज समभाग और सबके बराबर शर्करा डाल सद्यम्य इस चूर्णको मन्द मन्द अग्निसे धात्रीरस, दुग्ध एवं कुप्पाखरसमें पाक करे। मोदक पचपरिमित वगता है। इस मोदकको खानेसे प्रमेह रोग प्राण्य होता है। (रत्नराकर)

कस्तूरीवलिक्का (सं० स्त्री०) कस्तूरीगन्धयुक्ता वलिक्का, मध्यपदलो० । चताकस्तूरी, एक पुष्पयुक्त फल। भावप्रकाशके मतसे यह सधुर एवं तिष्ठ रस, शीतल, लघु, चक्षुके लिये हितकर, भेदक और वृथा, वक्षि-रोग, सुखरोग तथा श्लेष्मनागक होती है।

कस्तूरीहरिय, कश्तिक देखो।

कस्तूरी (सं० पु०) प्रतिष्ठा, सद्यम्य, बरादा।

कष्मल (सं० स्त्री०) कष्म-कल सृष्ट, निपातनात् गन्ध सत्वम्। १ मृत्नास, घबराहट। २ मोह, मृग।

कष्मात् (सं० पञ्च०) क्रिम कारपये, जिसलिये, काँ।

कश्य (हि० स्त्री०) सुरा, शराब।

कश्यर (सं० त्रि०) कम्-वर्च्। १ गमनशील, चलता हुआ चाल। २ हिंसक, खंवार।

कश्यरी (हि० स्त्री०) पाकपंथ, धौचता।

यह शब्द लज्ज खींचने या ताननेके पर्यमें आता है।

कथा (हि० पु०) धर्मकत्वक, ब्रह्मको ज्ञान। इसमें रंगनेके लिये चमड़ा भिगीया जाता है। २ मध्यभेद, सुरा, एक शराब। यह धर्मके लक्ष्यसे प्रसृत होता है।

कथाचगा (हि० स्त्री०) दुग्धिया मटर, सोढिया।

कष्माव (सं० पु०) गोघातक, कषार्द।

कांस (सं० त्रि०) कंठी देगमेदो ऽभिन्नो ऽप्य, वंश-
 'प्य । हिमूत्पत्तिकादिश्रीषयो । वा ४ । १ । ११ । कंसाधि-
 श्चिन्त भोजदेशीय, कंश देगमें पेदा छीनिवाले ।

कांसपात्र (सं० स्त्री०) आढ़क परिमाण, ४०८६
 भासिकी तोल ।

कांसा (हिं० पु०) १ कांस्य, कसकुट, भरत । यह
 तबि पौर लक्ष्मि मिलकर बनता है । २ कासा, भौष
 सांगनिका लघ्वर ।

कांसगर (सिं०) बालबार देखो ।

कांसिका (सं० स्त्री०) मुहपर्यी, मोठ बनान ।

कांठी (सं० स्त्री०) १ शीराष्ट्रसत्तिका । २ कांस्यधातु ।

कांठी (हिं० स्त्री०) १ धान्यरोगविशेष, धानके पोदेकी
 एक बीमारी । २ कांस्य, कांसा । ३ कनिष्ठा, सबसे
 छोटी पोरत । ४ कामरोग, खांसी । कांठीय, बाल देखो ।

कांसुला (हिं० पु०) यन्त्रविशेष, एक पोज़ार, कंसुला ।

यह कांस्य धातुका एक चतुष्कोण खण्ड होता है ।
 इसकी चारों पोर गोलाकार गते बनाये जाते हैं ।

स्वर्णकार कंसुले पर रौप्य वा स्वर्णके पत्र रख करछा
 हुण्टो तैयार करते हैं ।

कांस्टेबिल (सं० पु० -- Constable) टण्डर, राज
 पुरव, गुरेत, चौकीदार, पुलिसका सिपाही । पुलिसके
 सिपाहियोंका जमादार 'फ़िड कांस्टेबिल' पौर चन्द-
 रोज़का चौकीदार 'स्त्रैगल कांस्टेबिल' कहलाता है ।

कांस्य (सं० स्त्री०) कंसाय पानपात्राय चितं कंसौयं
 तस्य विकारः, कंठीय-यञ् क्लोपः । कंठीय वरव्यव-
 ण्को लुक् । वा ४ । १ । १२५ । कंसमेव इति स्वार्थे यञ्
 वा । १ पानपात्र, कटोरा, प्याला । २ ताम्र पौर
 रङ्गका उपधातु, कांसा, कसकुट, तबि पौर लक्ष्मिकी
 मिला कर बनाया हुआ एक उपधातु । इनका संछत
 पर्यायकंस, कंसांस्य, ताम्राध, मोराङ्क, घोष, कांसाय,
 वद्विषोष्क, दौसिन्ध, घोरधुष्य, दोसिकांस्य पौर
 कांस्य है । राजनिघण्टुके मतसे यह तिष्ठ, उष्य, रघ,
 कपाय, सधु, चन्दिदीयक, पाचक, स्तोःसन्ड तथा
 भस्मके लिये चितकारक, रुषिकारक पौर वायु एवं
 कफरोगनाशक होता है । राजवल्लभमें इसे चन्द्रास,
 विग्रह, सेखर, सारक पौर विस्तनायक भी कहा है ।

सुप्रबोधके मगमें यह देहकी हटना पौर वायु बढ़ाता
 है । इनका गोधन मारण प्रभृति ताम्रमे भांत किया
 जाता है । किसी किसाने इनके गोधन पौर मारणका
 त्रिधि स्वतन्त्र भी माना है । गोधनके लिये कांस्यके
 पतले पतले पत्र चन्दिमें खुब तपाये पौर तीन तीन
 बार तेज, तक, कांस्यक, गोमूत्र तथा कुल्लममें डुभाये
 जाते हैं । मारणमें कांस्यके सुद पत्रोंपर एक पौरसे
 गन्धक रोम गाढ़ सेवन चढ़ाते पौर मूपादुटमें हश्
 रख गजपटसे पकाते हैं । (भावप्रकाश) १ वाद्य-
 विधेय, चाड़ियाल । ४ मानविशेष, एक तोल ।
 (त्रि०) ३ ताम्ररङ्ग उपधातुमें सम्बन्ध रखनेवाला,
 भरतियाय ।

कांस्यक (सं० स्त्री०) बाल देखो

कांस्यार (सं० पु०) वंस्यं तत् पात्रं करोति, कांस्य-ल-
 पत् । कांस्यार, कंसरा । बसरा देना ।

कांस्यज (सं० त्रि०) कांस्योऽजयते, कांस्य-जन-ड ।
 कांस्य धातु द्वारा प्रयुक्त, कामिका बना हुआ ।

कांस्यजाल (सं० पु०) कांस्येन निर्मितः तालः, मन्ध-
 पदनी० । १ करताल । २ भंजीरा ।

कांस्यदाहनी (सं० स्त्री०) कसोरो, लक्षिकी दुदुहनी ।

कांस्यजाल (सं० पु०) कांस्येन कृतः नौलः, मन्ध-
 पदनी० । नौलतुला, गुनिया, मोलायोया । इसका
 संस्कृत पर्याय भूप-तुल्य, हैमसार पौर यितुयक है ।

कांस्यभाजन (सं० स्त्री०) ताम्र पौर रङ्गका उपधातु,
 कंस ।

कांस्यमय (सं० त्रि०) कांस्ये यनो या भरा पूय,
 ओ नमिसे बना या भरा हुआ ।

कांस्यमन (सं० स्त्री०) ताम्रनिष्ठ, अद्धार, तबिका
 कसाक ।

कांस्यपाचिक (सं० स्त्री०) धातु द्रव्यविशेष, किसे
 किछका चकमक ।

कांस्यम (सं० त्रि०) कांस्यमद्य चाम्भारिणिष्ट,
 कामिकी तरह कामकनवाना ।

कांस्यमु, बाल देखो ।

काक (हिं० पु०) १ ह्व विशेषकी वाद्ययन्त्र, चयारा,
 कागनी वाल । यह मृदु रचता पौर दनामें कुछ

कस्सी (हिं० स्त्री०) १ खनिजभेद, एक फावड़ा। यह छोटी रहती और मालियोंके काममें लगती है।
 २ मानविशेष, एक नाप। यह दो पद परिमित रहती और भूमि नापनेमें चलती है।
 कहं (हिं० प्र०) १ को। (क्रि० वि०) २ कहां।
 कहकड़ा (प्र० पु०) अट्टहास, ठट्टा, खिलखिलाहट।
 कहकड़ा दीवार (फ्रा० स्त्री०) १ प्राचीर विशेष, एक ऊंची दीवार। चीनके राजा सीहवाङ्गतीने चीनके उत्तर ई०से पूर्व इय शताब्दके अन्तमें फुकिंग, कुभाङ्ग तुङ्ग और कुभांसी नामक मोङ्गलोंका आक्रमण निवारण करनेके लिये इसे बनाया था। यह १५०० मील दीर्घ, २० से २५ फीट तक उच्च और इतनी ही प्रगस्त है। सौ-सौ गजके अन्तर पर वन (बुर्ज) विद्यमान है। शून्य श्वो। २ कठिन अवरोध, कड़ी रोक।
 कहगिल (हिं० स्त्री०) गारा, फेनिया, घास मिली हुयी गीली मट्टी। यह शब्द फ़ारसी भाषाके काह (घास) और गिल (मट्टी)का समाहार है।
 कहत (प्र० पु०) दुर्मिच्छ, अकाल, बनालकी कमी।
 कहतरी (हिं० स्त्री०) कस्सरी, लहर उठायी।
 कहता (हिं० पु०) कथनकार, कहनेवाला।
 कहतूत (हिं० स्त्री०) प्रसिद्ध वार्ता, मशहूर बात।
 कहन (हिं० पु०-स्त्री०) १ कथन, बोलचाल। २ वचन, बात। ३ शोकोक्ति, मन्त्र, कहतूत। ४ कविता, शायरी। ५ भाषण भाव, बोलनेका तीर।
 कहना (हिं० क्रि०) १ बोलना, बताना, समझना। २ उद्घाटित करना, खोलना। ३ संवाद सुनाना, ख़बर पहुंचाना। ४ बोलाना, नाम सेना। ५ सिखाना पढ़ाना, दिखाना-सुनाना। ६ सन्धी लेना, धोका देना। ७ अयोग्य बोलना, कह बैठना। ८ कविता बनाना, शायरी सजाना। (पु०) ८ अन्वरोध, तरगीय, समभाव।
 कहनायत (हिं० स्त्री०) १ किंवदन्ती, मसल, कहायत। २ कथन, कहासुनी।
 कहर (प्र० पु०) १ चापट, चापट, धनछोनी। (वि०) २ भयङ्कर, खौफनाक।
 कहरना, कहरना श्वो।

कहय (स० पु०) कस्य सूर्यस्य हयः चन्द्रः। सूर्यका चन्द्र या घोड़ा। सूर्यके सातों चन्द्रोंका वर्ष हरित है।
 कहरवा (हिं० पु०) १ सङ्गीततालविशेष, गाने-बजानेका एक ठहराव। इसमें पांच मात्राएँ लगती हैं, -चार पूरी और दो आधी। आघात चार पड़ते हैं। चाल है—धामे टेते नामधिन धा। २ गीत-विशेष, दादरा। यह नाचगानेके पीछे होता है। ३ इत्यभेद, एक नाच। यह सबेरे मिललुत्तकर किया जाता है। ४ कहार, पानी भरनेवाला।
 कहरवा (फ्रा० पु०) १ निर्यासभेद, एक गोंद। यह ब्रह्मदेशकी खनियोंसे निकलता है। वर्ण पीत है। इसे धोवधोंमें व्ययहार करते हैं। चीनमें कहरवा गला मालकी गुटिका और मुहनाक बनाते हैं। इस रंग भी चढ़ता है। वस्त्र प्रगति पर रगड़ गिकट रखनेसे यह लणादिको यह सुम्यक भांति चाकपण करता है। २ सर्जहृत्, धूनेका पेड़। इसीके गोंदको धूप या राल कहते हैं। यह सततहरित हृत् है। पश्चिमघाटके पर्वतोंमें इसकी अधिक उत्पत्ति है। दूसरा नाम सफेद डामर है। तारपीनके तेलमें इसे घोल रंग चढ़ाते हैं। कहरवेकी मात्तामी उत्तम होती है। उत्तर-भारतमें खियाँ इसे तेलमें डबाल गोंद बना लेती और उसी गोंदसे धिपका मस्तक पर टिकनी देती हैं। कषाय प्रगति प्रसुत करनेमें भी यह कहीं कहीं व्ययहृत होता है।
 कहरवा, कहरना श्वो।
 कहल (हिं० पु०-स्त्री०) १ जषा, गरमी, उमस। २ ताप, सुखार, तकलीफ।
 कहलना (हिं० क्रि०) व्याकुल होना, घबराना।
 कहलवाना (हिं० क्रि०) १ कहाना, कहनेका काम दूसरेसे कराना। २ कहलवाना, घबराना।
 कहलाना (हिं० क्रि०) १ कहाना, कहनेका काम दूसरेसे कराना। २ नाम पाना, कहा जाना। ३ दह-साना। ४ संवाद पहुंचाना, संदेश देना।
 कहवा (प्र० पु०) एक पेड़का बीज, काफी (Coffee)। अंगरेजी वैज्ञानिक नाम कफिया अरेबिका (Coffea arabica) है। इसे बंगलादेश काफि, गुजरातीमें

रबरकी तरह सघना है। इससे बोगममें सगानेकी गहा बनाते हैं। पिघान, हाट, काग।

यह शब्द अंगरेजी 'कार्क' (Cork) का अपभ्रंश है। काक (मं० क्री०) कु ईषत् कां जनम्, कौ कादेयः। १ ईषत् जन, थोडा पानो। काकष्य समूहः। २ काक-मकन, कौबोका भ्रूण्ड। ३ सुरतयन्वविज्ञेय।

चाकपर श्लोः।

(प०) कायते शब्दायते, कौ-कन्। १०१०१। वाचस्पतिमिधुः कन्। ७८१। २२। ४ पक्षिविज्ञेय, कौवा, एक चिह्निया। इसका संज्ञक पर्याय—करट, चरिट, यल्लिपुट, सक्त-प्रज, ध्याडल, चाम्बोप, परभृत्, यल्लिभृत्, वायस, वातजय, मन, दीर्घायु, सुषक, क्षण्य, प्रासीण, पिशुन, कटवादक, द्विक, काग, काष, धूलिलंब, निमित्तकृत्, कौशकारि, विरागु, सुखर, खर, मज्जानीन, चिर-क्षीनी, चलाचल, कारटक, नागवीरक, गूढमेघन, सल्लोक, व्यायक और रतल्वर है।

पृथिवीके उत्तरार्धमें प्रायः सर्वत्र काक देख पड़ता है। फिर भारतवर्षमें सकल स्थानोंपर यह मिलता है। हिन्दुस्थानमें इसे कौवा, काग और कागसा कहते हैं। काकको योषीका विभाग नाना प्रकार है। देदेशक शाकुनशास्त्रवेत्ताओंके मतमें काक 'करविडी' (Corvidae) विभागका अन्तर्गत 'करविनी' (Corvinus) योषीयुक्त 'करवम्' (Corvus) जातीय होता है। 'करवध' जातीय पक्षियोंका साधारण कपोलके विनकुन नीचे गर्धे पड़ता, ऊर्ध्व चक्षुके प्रायः मध्य-स्थानमें नासार्क १२।१४ साम (चक्षुषी और पाश्र्वपर तीक्ष्ण नोमकी भांति चाकारविशिष्ट कोमल प्रयत्न सुष्म पाक्षक)से वास्तु रहता है। यही दृश जातिका विनिय चिह्न है। फिर चक्षु दीर्घ, कठिन, गुरु और मरल होता है। ऊर्ध्व चक्षुको सघना कुक्ष पक्षिक लगती है। पक्षका क्रम सुष्म और दीर्घ रहता है। प्रथम पर छोटा होता है। किन्तु द्वितीय पर प्रथमकी अपेक्षा बड़ा पड़ता है। फिर तृतीय और चतुर्थ पर सधम बड़ा निकलता है। प्रथमसे क्रमगः पर छोटे पड़ते जाते हैं। पुच्छ मध्यविध रहता है। पुच्छका अपभ्रंश अधिकारि गोजाकार जाता है। पैर हृद्

लगता है। पत्रि मरल रहते हैं। पैरका धाता मध्यविध लगता है। सुद्र-पद्मियां प्रायः समान पानो हैं। नख तीक्ष्ण और खुर धक होते हैं। यह शाका प्रयासोंपर वेड और भूमिपर भी चल सकता है।

१ देगो कौवा—हिन्दुस्थानमें जो कौबे साधारणतः देख पड़ते, उन्हें 'काग' 'कौवा', 'कागना' प्रभृति कहते हैं। ठीक नाम देगो कौवा है। इनका कपोल, मन्त्रक एवं सुष्ममण्डन विक्षण लक्ष्यवर्ण, धाड, गल-देग, घट, यद्यःस्थान तथा उदर पांशुवर्ण, पुच्छ एवं सुष्ममण्डन विक्षण लक्ष्यवर्ण, और गलदेगका पानक (पर) विरल रहता है। लक्ष्यवर्ण पानकीं विरल और हरित वर्णको विक्षणवा भनकती है। यह १५से १७।१८ इंच दोष होते हैं। पुच्छका पानक ७ इंच, पक्ष ११ इंच और पद २ इंच रहता है। पञ्चात्यपक्षिर्णक मतमें इनका नाम 'करवध-स्फुण्ड' (C. Splendens) पर्याय साधारण काक है। अंगरेज इन्हें 'भारताय साधारण' कौवा कहते हैं। संश्रयलक्षमें यह 'ग्राम्यकाक' कहला सकते हैं। हिमा-लयके पाटमूलत महल पर्यन्त सर्वत्र यह काक देख पड़ते हैं। सिकिममें इसका अभाव है। नेपाल और काश्मीरमें यह कम मिलते हैं। भारतवर्षके भिन्न भिन्न स्थानोंमें जनशयुके गुणमें इनका वर्णोत्पत्तय पड़ता है। सिन्धु राजपूताना प्रभृति शुष्क प्रदेशोंमें इनके नातिक्षण रंगवाले घर प्रायः नादे रहते हैं। फिर सिंघलहाव और दक्षिणपूर्वके समुद्रोपकूलमें इनके पानक (पर) गाढ़ लक्ष्यवर्ण होते हैं।

काकक अज्ञानियोंमें परस्पर बन्धुता देख पड़ती है नगर, ग्राम और वनजनातीं स्थानमें यह अधिक संख्यामें दल बांध पकड़ रहते हैं। एक सरल स्थानके निकटवर्ती सिंहा सुक्ष्म वृक्षपर प्रायः १००२०० देगो मिल कर रात बिताते हैं। अवन गर्मके समय कोई घातना बनाता। चले देनेमें देवन खा प्रहय दो ही खाये घोषनेमें हुगत है। दूसरे सबके सब हल पर ही रह रात काटते हैं। अन्यः कालका सूर्यास्तके पीछे ही १०।२० मान दूरमें कौबे दल बांध घातें और रात्रिको दो तीन टण्ड पक्ष अपने-सामेका कान

कपि, मराठीमें कफकी, मारवाड़ीमें कफि, तामिळमें कपिकोत्तई, तेलगुमें कपिविस्तु, मल्लयमें कांपि, कनाड़ीमें कांपिथोत्र, फारसीमें कुन, ब्रह्मीमें कार्किस और सिंघलीमें कांपिकोत्ता कहते हैं।

अधिकारीय पत्रकार कड़वेकी पर्मिडोनिया, सोदान और गीनिया तथा भोजस्यिककी पूर्व समुद्रतटका वृक्ष मानते हैं। परबमें किमीने इसे उत्पन्न होते नहीं देखा।

कड़वा एक सुदृष्ट वृक्ष है। इसमें शाखायें बहुत होती हैं। यह १५ से २० फीट तक बढ़ता है। यहल लक्ष्मीताम और पुष्प श्वेतवर्ण रहता है। फल पकनेपर लाल पड़ जाता और छोटे शाहदाने की भांति देखाता है। फलमें दो बोज परस्पर चिपटे रहते हैं। यही बोज निकालनेसे वुन कहलाते और बाजारमें बिके जाते हैं। बीजोंकी भूमन और पीसनेसे दुकानका कड़वा तैयार होता है।

दाक्षिणात्यकी इसकी ज्यि अधिक है। कड़वे और रुयीको एक ही प्रकारकी भूमिमें लगते हैं। इसे पानी बराबर सिंजना चाहिये। उष्ण प्रदेशमें यह बहुत पनपता है। निविड़ मिथ ठीक नहीं पड़ता और प्रबल वायु लगनेसे पुष्प पड़ता, जिसमें प्राधा कड़वा निकलता है। विशेष उष्णता और गीय रहनेसे छाया प्रावश्यक आती और प्रबल वायु चलनेसे हर्षोंकी पाहू लगायी जाती है। मित्रप्रदेशकी भूमिमें उपयुक्त आर्द्रता न रहनेसे अच्छे फसल कम होते हैं।

ई० १५वें शताब्दकी ग्रीक महावृक्षीय इसी पदम ले गये थे। यमनसे यह मल्ले, काथरी, दामामरुच, पलेया और कुस्तुमस्तुनिये पडुवा। सबसे पहले १५२४ ई०की कुस्तुमस्तुनियामें ही कड़वेकी दुकान खुनी या १५७६ ई०की पलेप्पोमें रामबोधक नामक यूरोपीयका इसका नाम सुन पडा।

सुसलमानामें कड़वा पीनेका बडा पादर बडा। मसजिदोंमें भी अधिक लोग कड़वेकी दुकानामें देख पड़ने थे। इससे मोसलियोन बिगड़ इसका पर कड़ा मखसल बाधा। गेट हटेनमें यह १५२२ ई०की पडुवा। किन्तु १६७५ ई०का २५ सालमें इसकी

दुकानें बन्द करा दीं। उनका कहना या—कड़वेकी दुकानों पर बगमाय इकहा होते हैं।

ई० १७वें शताब्दके अन्त कड़वेकी ज्यि बढ़ी। भारत, सिंघल, यवक्षीय, जमेका और ब्रिजिनमें यह लगाया जाने लगा। १६८० ई०से पहले यह परबमें ही होता था। आजकल कोटा, रिक्का, गटेमाला, पेनेलु, येला, गिपाना, पेरु, मोनियिया, कूथा, पोर्टो-रिकी और पश्चिम-भारतीय दीपपुष्पमें भी कड़वा पश उपजता है। कड़वे दो शताब्द पूर्व मल्लेमें बाधा वृद्धन कड़वेके ७ बोज मसिचुर लाये थे।

इसकी भूमि उत्तम और आर्द्र रहना चाहिये। यह रक्तवर्ण एवं लज्जवर्ण भूमिमें अधिक पनपता है। प्रबल वायु लगनेसे इसे बडो हानि पडुवाती है। भूमि टालू रहना चाहिये। सीवनेकी सुविधा पडुना अच्छा है। भूमिकी १८से २४ इंच तक गहरी जोत घास फूस निकाल हासते हैं। एकर पीछे ५०म ८०मम तक खाद पड़ती है। पानी निकलनेकी राह ब्यारियां रखी जाती है। बीजोंकी ६ खतारिमें बाधा चाहिये। प्रत्येक खतार ८ इंच छयकू और २ इंच गभीर रहती है। बीज एक एक इंच दूर डाले जाते हैं। सुदरे और उभय्याकाल सिंचायी होती है। बीज उत्तम रहनेसे फसल भी अच्छी निकलती है। दा चार पत्तियां निकलनेसे हर्षोंको छोद दूसरी अगह लगते हैं। जल भरा रहनेसे जड़े सड़ जाती हैं। एक एकर भूमिमें १००से अधिक वृक्ष न रहना चाहिये। गावरकी खाद पच्छी होती है। डालियां बरनेसे याडो याडी काट देते हैं। ५ फीटमें अधिक इसका बढ़ना खर्गव है। इससे मायदूरी भी नू नग नहीं सने। इसकी ज्यिक समय मई या जून मास है। दूरसे वर्षे मार्च मासमें पुष्प आते और फलावर मास कमल काटनग प्रबन्ध लगाने हैं। फल लक्ष्मरसे जलनरी तक पका करते हैं। यह फल ७० बीज गोड़ मला और कलवर्ण कल गिरा देना चाहिये।

न धारचनः देशीय लोग जसोंका भुजम सुया पोषनीमें मूट पडोड़ कर बीज निकालते हैं। किन्तु यह बीज पाथक लाभकर देख नहीं पड़ती। चमरेज

ठहरानेके लिये हचको डालोपर कांकां मचाते हैं। दूसरे दिन सवेरे प्रायः दो टण्ड रात्रि रहते फिर अपना वही धुनि लगा यह इधर उधर चकर लगाते और चक्को सूर्य निकलनेसे प्रायः छोड़ चारो ओर चढ़ जाते हैं। उड़ते समय कौवे तीनसे तोस चालीस तक एकत्र एक टिककी चलते हैं। पाचारकी चेडाको अधिक दूर जानेवाले ही सवेरे सवेरे निकलते हैं। निकट रहनेवाले हचपर बैठ घनेक चष आसाप लगाया वा पर बनाया करते हैं।

यह मनुष्यके खाद्यावशेषसे ही प्रायः जीविका चलाते हैं। कौवे जिस ग्राम या नगरके निकट ठहरते, उसमें घर घरके भोजन बनने और उच्छिष्ट फिकनेसे अवगत रहते हैं। फिर समय देख यह वहां जा पहुंचते हैं। सभी कौवे यह वाते सम्भवते हैं। किन्तु सबके सब एक ही स्थानपर धावा नहीं मारते। कुछ इसी प्रकार लोकाजयोंमें पाते, कुछ नदी किनारे कंकट भेक एवं सुदूर मस्य या कौटादि पकड़ने जाते, कुछ मैदानमें पहुंच बगवदिके शरीर जात कौट प्रयया गत्यकी कषायें खाते, कुछ मृत जन्तुना शरीर टूटने की पैर बदाने और कुछ कदमी, बट, आस्य प्रश्रुतिके फलित वृक्षों पर टट्टि जगाते हैं। वर्षाकालमें सन्ध्या या सवेरे पतिङ्गे उड़नेसे यह फूले नहीं ममाते। दलके दल कौवे पा उन्हें पकड़ पकड़ खाते हैं। शीतकालमें इन्हें बड़ा जट मिलता है। प्रति दिन घाट दग घडी घूप चढ़ते ही शीतसे चषा चष्टा-लिकादि ह्यादिकी छायामें बैठे कौवे उांका करते हैं। रोद्र कम पड़नेसे यह फिर घूमने निकलते हैं। प्रत्यह घुमनेकी चलते समय कौवे राहमें दल बांधते पाते हैं। घूम फिर एक एक चष्टालिकाकी लत या सुद ह्यादिपर बैठ जाते और अपने दलके पावासकी ओर चलते समय सायही दोड़ लगाते हैं।

येगाध और भाद्रके मध्य कौवे पण्टे देते हैं। एक एक हच पर अधिकसे अधिक तीन कौवे घोंसला बनाते हैं। पर पतवारसे ही इनका घोंसला तैयार हो जाता है। किन्तु कलकत्तेवाले कौविके घोंसलोंमें टीनके टुकड़े और तारभी मिलते हैं। यह एक मास

चार पण्टे देते हैं। पण्टे कुछ हरे रहते और सनपर भूरे भूरे दाग पड़ते हैं। पण्टेका रंग बहुत सुन्दर लगता है। कोकिल स्वयं घोंसला नहीं बनाता, कौविके घोंसले हीमें पण्टे ट्रेनका टंग लगाता है। वासना मीखते ही कोकिलके श्रावकको काकी ठोकर मार घोंसलेमें भगा देती है। ईश्वरकी महिमा प्रचार है। जब तक काकिलका श्रावक उड नहीं सकता, तब तक उसे बोलना भी कठिन पड़ता है। सुतरी काकी उसे खीय सन्तानके निर्विशेष पालती है। काक उसको अपने क दिनों पाहार दिया करते हैं।

काक प्रतिद्वन्द्व उड़ सकता है। बड़ी खोल कभी कभी सुखस्थित पाहार हीननेके लिये कौवेकी खदेड़ती है। उस समय यह जिस तंत्रीमें भगता, उसे देख विचित्र होता पड़ता है।

काक शक्तिधर और बुद्धिमन् है। इसकी धूर्तताके सम्बन्धमें यथेष्ट गल्प चलते हैं। यह बहुत निर्भीक रहता है। मनुष्यके भोजन करते और निकट हो बिड़ाल बैठे रहते भी कुछ लच्य न कर काक खिड़कीमें घुस पड़ता और पात्रमें चव उठा चलते बनता है। यह जागोके मामने जूद जूद भूमि पर फिरता, विन्दुमाय भी भय नहीं करता। किन्तु किधीके एक हाट ताक भगति काक उवो चव भाग खड़ा होता है। यह अत्यन्त सन्दिग्धचित्त है। सामान्य भयकी सम्भावना रहते भी कौवा उच और कम जाता है।

काक, स्वजातीयका मन्द्रेष्ट देखने या वन्दूककी पावाज घुमनेसे महाकाणाहन उठा एकत्र होते हैं। फिर यह उस म्यानकी विश्रुत कर डालते हैं। जब तक कौई मय फल नहीं दिखता, तब तक कौवाका दल कर्हा पाता जाता है।

इसकी परिहास बहुत मिय है। द-तीन हाक मिल बिह, मजुनि वा चम्यान्ध पपीका पुच्छ पकड़-पर चघोंटते चघोंटते बववा देन है। उसक विश्रुत ही उड़ जाने या चक्कार मारनेमें महा चानन्द्य यह कर्हा करने लगते हैं। इसी प्रकार लाल विद्यानके सुम्भ पाहार भी निश्चान मिय है।

सोम कलमें सप्त बीजोंका गुदा छोड़ते है। कलका नाम डिस्क-पल्प (disc pulpar) है। इसमें गूदेसे बीज छूट पसल जा पड़ता है। फिर बीजको हीजमें डाल १२ घण्टे धोते हैं। धुलहुवा बीज धूपमें सुखाया जाता है। सुखनेकी भूमिपर मोटी चटायी बिछा देते हैं। सुखते समय कहवेको सोटते रहना चाहिये।

भारतवर्षमें जितना अधिक और उत्तम कहवा उपजता, उतना किसी दूसरे अंगरेजी अधिकारमें देख नहीं पड़ता। किन्तु इसमें अनेक रोग लग जाते हैं। यथा,—पत्तियोंका पीना और काला पड़ना, पत्तियों, फूलों और फलोंका चिपचिपा उठना और कीड़ा लगना। टिड्डियां भी इसको बड़ी हानि पहुँचाती हैं। कहवेकी पत्तियां भी उबाल कर पीनेसे पच्छी लगती हैं। गूदेमें चीनी रहती है। अरबमें सोम गूदेका अर्क तैयार करते है। कहवेमें तेल भी होता है।

यह उत्तेजक है। इसके सेवनसे थकाहट दूर हो जाती है। शिरःपीड़ाका यह उत्तम औषध है। काशरुद्धास रोगमें भी इससे लाभ होता है। विशूचिका और ग्रहणीरोग इनके सेवनसे दब जाता है। कहवा ध्वर पर भी चलता है। पीनेसे मूत्ररुद्ध और यात-रक्त रोग नहीं लगता।

कहवाना (हिं० क्रि०) कहलाना, कहाना।

कहवैया (हिं० वि०) कथनकार, कहनेवाला।

कहा (हिं० पु०) १ कथना, बातचीत। (क्रि० वि०)

२ कैसे, किस प्रकार। (सर्व०) ३ क्या। (वि०)

४ कौन। ५ कथित।

कहां (हिं० क्रि० वि०) १ कुत्र, किस जगह। (पु०)

२ शब्दविशेष, एक भावाज। सद्योजात शिष्यके शब्द

करने या रोकनेको 'कहाँ कहाँ' कहते हैं।

कहाना। (हिं० क्रि०) कहलाना, कहा जाना।

कहानी (हिं० स्त्री०) १ कथा, किस्सा। २ मिथ्या

यवन, झूठी बात।

कहार (हिं० पु०) जातिविशेष, एक कौम। यह

सोम पानी भरते और हानी लेकर चलते समय अनेक

प्रकारके साहोतिन शब्द स्वयंकार करते हैं। देशारमें

कहार भोग जराप्रवृत्ता बंधीय कहलाता है।

कहारा (हिं० पु०) टोकरा, दीरी, भोवा।

कहान (हिं० पु०) वाद्यविशेष, एक बाजा।

कहावत (हिं० स्त्री०) १ जोकीति, मसल, चन्नी

बात। २ कथित विषय, कहां हुयो बात।

कहासुना (हिं० पु०) अनुचित यवन, गेरवाजिन

बात, भूल चुक।

कहासुनी (हिं० स्त्री०) यादविवाद, लगार भगडा।

कहाड़ (सं० पु०) १ महिष, भैंसा। २ कटाह,

कड़ाह।

कहिक (सं० पु०) कहीड़-ठक्। एक ऋषि।

कहिया (हिं० क्रि० वि०) १ किस समय, कब। (पु०)

२ यन्त्रविशेष, एक भोजार। कसरगर इससे रांग

रख जोड़ लगाते हैं। यह एक प्रकारका मोड़ टण्ड

है। इसमें सुट्टि रहता है। एक किनारा काक-

चक्षु की भांति कुटिल होता है।

कहीं (हिं० क्रि० वि०) १ किसी स्थान पर, दूसरी

जगह। २ नहीं। इस अर्थमें यह अग्र रूपसे आता

है। ३ यदि, अगर। ४ अतिशय बहुत, बहुत।

कहं, .. कहीं देखो।

कहं, .. कहीं देखो।

कह्य (सं० पु०) कः सूर्यः ह्ययो यस्य, ह्ये-क्यप्

बहुव्री०। सूर्यको आदान करनेवाले एक ऋषि।

कहाड़ (सं० पु०) एक ऋषि। यह उद्दालकके

शिष्य और अष्टावक्रके पिता थे।

कह्यक, बल्लार देखो।

कह्य (सं० पु०) कल्हण, राजतरङ्गिणीके प्रणेता।

दरभ देखो।

कहार (सं० स्त्री०) कस्य कसस्य हार इव के लक्ष्णे

हसादते वा, क-ह्लाद-पवादाव्-प्रपोदरादित्वात्

साधुः। १ जेत उत्पल, वचन, कोकामिनी।

(*Nymphaea edulis*) यह भारतके नाना स्थानोंपर

जन्मने उत्पन्न होता है। कलहार शीतल, चाही,

विटम्बी, गुद और रुच है। (भावप्रधान) २ रूपम्

जते रक्तकमल, कुह सफेदी लिये सास कंवल।

३ कमलसाधारण, कोर्रि कंवल।

कल्हाराद्यष्टत (सं० स्त्री०) घृतविशेष, एक बी।

यह दृष्ट दरिद्रोंके लिये पति पनिलहर है। सभी सभी कौवा फूसके छप्पर या झोपड़में खावादि दिया रहता है। आवग्गक खान म पति यह अधिकांश खावादि खींच घर तक उभट देता है।

यह कर्पोटियेसे बहुत घबराता है। उसे देखते ही काक भयान छोड़ भागता है। वह भी इसके पंछि पड़ जाता है।

भारतवासियोंके नवान्न पर्पर काकका बड़ा पाटर होता है। प्रत्येक गृहस्थ 'नवान्न' से घरभी कनपक चढ़ता और इसकी पानि बोलाया करता है। किन्तु एक दिन काकका पागा कठिन पड़ता है। क्योंकि यह सर्वत्र भोज्य मिलनेसे उत्त रहता है।

२ (क) गङ्गापारी कौवा—'करवम' जातिमें सबसे बड़ा होता है। भारतवर्षके उत्तराञ्चलमें यह अधिक देव पड़ता है। इसीसे हिन्दूस्थानी इसे 'गङ्गापारी' कौवा कहते हैं। सिन्धु, राजपूताना प्रभृति कई देगोंमें यह बीषकासको नहीं रहता। शत्रुके प्रथम यह पाता और वसन्तके पर्याप्त ही चफगानघान, काश्मीर प्रभृति शीतप्रभाग देगोंको चला जाता है। हिमालय प्रदेशमें १४००० फीट ऊंचे यह मिलता, दूसरे पार्श्व प्रदेशमें देव नहीं पड़ता। बङ्गाल, युक्त प्रदेश और पश्चात्तमें भी यह होता है। गाव गाठ नील पामायुक्त चिह्न लप्यावर्ष रहता है। गलटगके पासक दीर्घ और विरल होते हैं। ऊपरी चोंठ (टोट) वा अधभाग कुछ वक्र लगता है। ऊर्ध्व चञ्चुकी उद्यता अधिक पड़ती है। पच १५ इंच और दृष्ट २५में २० इंचतक दीर्घ होता है। चञ्चुके उभय पार्श्वोंमें गद्दा रहता है। चट्टु और पदद्वय घार कृष्ण वर्ण होता है। ऊर्ध्व चञ्चुका अधभाग कुछ लाल रहता है। इसे बङ्गाली 'होम काग' 'कंगरिन' 'शवेन' (Haven), कुरु 'करो' खोडनशानो 'कुर', टिनमार 'रीन', लमन 'कोलकोट', फानीसी 'करको', इटाली 'करो', रोमक 'करकस', स्पेनीश 'एन कुदवर्न', पश्चिम भारतीय द्वीपवासी 'कच कच गिध', भी 'एम्कुरम' 'सुसुपाक' कहते हैं। दक्षिणक गङ्गाप्रदेशमें इनका करवम कोराज (Corvus Corax) मन्वते है।

हिमालय और युरोपमें रहनेवाला होमकाक अधिक भंड होता है। यह सभी लोहानयमें जाना नहीं चाहता। किन्तु भारतके पश्चिम स्थानीका हांमकाक देसी कौवोको भाति निर्भर रहता और चोंमें इच्छानुसार पाया जाया करता है। यह पति इन्द्रिय है। होमकाक लड़ते लड़ते इनका उन्नत पड़ता, कि दोनों एक न एक पक्ष्य मरता है। सिन्धु-प्रदेशमें पति वर्ष शत्रुकालको लव इनका दान पाता, तब पनेकीको मृत्यु घर टवाता है। इससे लोग अनुमान लगते कि होम काक स्वभावसुनम इन्द्र-प्रियताके कारण ही मर जाते हैं। सिन्धु-प्रदेशसे सातिगत कण्ठघरसे भिय घण्ट के ध्वनिकी भांति एक प्रकार शब्द निकाल मकते हैं। युक्तप्रदेशमें यह घास फूसमें मैदान या हलके लङ्गनमें बड़े बड़े सघाकी मिश्र पौर घोंमसे वनाते हैं। इसके चार-पाँच पंखे जाते हैं। प्रायः दीप मासमें फाल्गुन तक यह पंखे देते हैं। पंखे हरियू पामायुक्त तरल नील वर्ण होते हैं। उनपर काले सटमेंसे, देगनी और माल रहने धव्वे पड़ जाते हैं।

(ख) भूटागना होमकाक—हिमालयके ऊर्ध्व-तम प्रदेश, काश्मीर, कुमायूं राज्य और तिब्बतमें यह प्रकारका २८ इंच दीर्घ काक होता है। इसका पक्ष १८ इंच बड़ता है। ऊर्ध्वपक्षके मूलकी उद्यता अधिक रहती और टंछ भी टंछ लगती है। चन्द्राय पर्यन्त साधारण देगाय काककी भांति होते हैं। दो चार संदेशक गङ्गाप्रदेश सिन्धु इस पक्ष्य जाति माग 'करवम टिपेटनाम्' (Corvus Tibetanus) नामसे परिचय करते हैं। सिन्धु पश्चिमकी सामान्य टोडना छात्र इसमें कोई अन्य विभिन्नता देव नहीं पड़ती। इसीसे बहुतसे लोग तिब्बती कौवो देगोंमें गिनते हैं।

युंवापीय गङ्गाप्रदेशके कर्त कि होमकाक (Haven) कर्णुकीके चण्टघरका पतिमुद्गर पनुहरण घर म.ते है।

(ग) पाटमचू (गुनावी चोटोगना) काक—मध्यप्रदेशमें होता है। इसका कपाल और मसक

कलहार, उत्पल, पद्म, कुमुद और मधुपट्टिकाको जलमें पकाने तथा छतके साथ कल्ल लगानेसे यह मसुत होता है। इसके खानेसे यायतीय हृद्रोग पारोग्य होते हैं। (रसरत्नाकर)

कक्ष (सं० पु०) के जन्ने द्रव्यत क शब्दायते स्वर्धते वा, क-क्षे-क। यक, वगका।

का (सं० चक्ष०) १ काकका शब्द, कौबेकी भावाज।

(त्रि०) कापयचयी। १। १। १००। २ मन्द, खराब।

का (हि० प्रत्य०) १ सम्बन्धीय, वाला। यह षष्ठोका चिह्न है। इसे अधिकारी अधिकृत, आधार भाषिय, कार्य कारण, कर्तृकर्म प्रभृति अनेक भाव देखनेको दो शब्दोंके बीच लगाते हैं। स्त्रीलिङ्गमें 'का' का रूप बदलकर 'की' हो जाता है। (सर्वं) २ क्या।

“का नचं जन इयो सुधाने।

इत्ययं चिदि पुनि कक्ष पविताने ॥” (हचवी)

काई. (हिं० स्त्री०) टण विभिय, एक घास। यह जल तथा शीतल स्थल पर उपजती और सूख्न जगती है। इसका वर्ण और आकार विभिन्न होता है। गिना और भूमिपर पड़नेवाली काई सूख सूखसहज हरिद्वर्ण रहती है। किन्तु जलपर फैलनेवालीमें गोलाकार सूख पत्रक और गुप्प आते हैं। वस्तुतः यह एक प्रकारका मल है। काई उबल कर तरल पदार्थों पर आ जाती है। २ मण्ड, केन, मांड। ३ मल, मैल। ४ चयोमल, मोरचा।

काल (हिं० स्त्री०) १ यद्विधिय, कानी, एक छोटी खूटी। यह पाटेमें बरछेके विरेपर लगायी जाती है।

(सर्वं०) २ जोई। ३ कुच्छ। (क्रि० वि०) ४ कमी।

(पु०) ५ काक, कौवा।

काइयां (हिं० वि०) धूर्त, चासाक, अपने मतलबका पक्का।

काई. (हिं० चक्ष०) १ खी, किस लिये। (सर्वं०)

२ किसि, किसको। ३ क्या।

काक (हिं० पु०) शब्दविभिय, एक पनाज। इनमें कंगनी भी कहते हैं।

काकड़ा. (हिं० पु०) कार्पोसबीज, बिगोला।

काकर (हिं० पु०) यकार, कंकड़।

काकरी (हिं० स्त्री०) सुद ककट, छोटा कंकड़, बजरी।

काकां (हिं० पु०) काकका शब्द, कौबेकी बोली।

कांकुन, कांकुनी, चतनी देखो।

कांख (हिं०) बच देखो।

कांखनां (हिं० क्रि०) १ पीड़ित पवस्यामें दुःखसूचक शब्द उच्चारण करना, कराइना। २ भूखपूरीपोखमाथं उदरके वायुको पीड़न करना, आंतपर जोर देना।

कांखासोती (हिं० स्त्री०) मज्जापरिधानभेद, दुग्धा रक्षनेका एक तरीक। इसमें दुग्धा शयं कंधे और पीठ पर होता और दाहिनी मगलके नीचे पङ्कचता, फिर बायें कंधे पर आ चढ़ता है।

कांखी (हिं०) - बाने देखो।

कागड़ा (हिं० पु०) कक्षपची, एक चिड़िया। यह धूसरवर्ण होता है। इसका वचःस्थल खेत, गण्डस्थल रज और मिखाका वर्ण लक्षण रहता है।

कागड़ा—पञ्जाब प्रांतका एक जिला। यह पचा० ३१° २०' से ३५° ४०' और देशा० ७५° ५८' से ७८° ३५' पु० तक पवस्थित हैं। भूमिका परिमाण ८०६८ वर्ग मील है। इसमें माघः सादेसात भाग फादमी रहते हैं।

कागड़ा सर्वथ भक्त्युश गिरिमानामे परिचिष्ट है। सकल गिरि समुद्रके समतलकी चपेचा ८३०३ १५८५ फीट पर्यन्त उच्च है। धनबाधारगिरि कागड़ेके उत्तर मोमाइरुमें खड़ा है। उसीके आनी बड़ा बड़ादल तिनता, चढ़ता है। गिरिमानामे परिचिष्ट और समाकोर्ण रहते भी इसमें स्थान स्थान पर धाम तथा लविचेत्र विद्यमान हैं।

उत्तर सीमापर हिमालय पर्वत कागड़ेको तिन्वतके वस्तुजनपद और चीन साम्राज्यकी सीमासे दृयक् किया है। दक्षिण पूर्वकी बसहर, मण्डी, विन्नाम-पुर प्रभृति पावंतीय राज्य है। दक्षिणपश्चिम चाम्पियाम्प जिला तथा उत्तरपश्चिम चामी नदी मुददासपुर और पञ्जाब राज्यको धाटती है। कागड़ा जिलेमें पांच तहसीलें हैं, कालू, कागड़ा, हवीरपुर, डेरा और दूरपुर। कागड़ा तहसील मध्यस्थलमें जगती है।

धनबाधार-गिरिने बड़ादल प्रांतकी दो भागीमें

पाटलाभ (गुलाबी) विह्वलवर्ण रहता है। गोड़ेसे शंभ्रसे बैंगनी रंगकी चिह्नयता भलकती है। ऊपरी स्तरके पालक चिह्न एवम् कृष्णवर्ण और निम्न स्थानीय पाटलाभ विह्वलवर्ण लगते हैं। विह्वलवर्ण पालकोंका प्रान्तभाग रहता होता है। चक्षुका पुट काला पड़ता है। दोनों पद भी काले ही रहते हैं। देर्घ २२ इंच है। सिन्धुपदेशके याजूवावाद और सारखानिके मरुपदेशमें शीतकालमें भी यह देख पड़ता है। पन्नाबी लोमकाक (C. corax) से इसके मात्रका वर्ण भिन्न लगता है। दूसरा पार्थव्य गन्देशके पालकोंकी क्षुद्र प्राकृति और देखके परिमाणकी स्रुता है। इसका वैज्ञानिक नाम 'करवम् अम्ब्रिनम्' (C. Umbrinus) अर्थात् पाटलचूड़ काक है। यह भारतके युक्तपदेशसे मिसर और एशियाके पश्चिम तथा दक्षिणस्थ देग तक सकल स्थानोंमें मिलता है।

३ कौड़ियाला कौवाकी उत्तर-भारतीय 'डांड' या 'डास कौवा', दक्षिणमें 'धेरी कौवा', तैलङ्ग 'काकी', तामिल 'काका', सिंधवा 'उलककी', भूटानी 'उलक' और चनेक शंगरेज 'रावेन' (Raven) कहते हैं। किन्तु शाकुनतत्त्वज्ञ शंगरेज पण्डितोंने इसका नाम 'इण्डियन कर्बी' (Indian Corby) रखा है। इसकी श्रेणीके कई भेद हैं। उनमें कुछ नीचे लिखते हैं।

(क) गणित मांसभुक्—भारतीय कौड़ियाले कौबिके ऊपरी पर चिकने और खूब काले होते हैं। किन्तु नीचेवाले अधिक लक्षणवर्ण नहीं रहते। पुच्छके पालकोंका संख्यान ईर्षत् गोलाकार लगता है। पक्ष विभेप दीर्घ पड़ता और प्रायः पुच्छके अन्ततक विस्तृत रहता है। चक्षुका पुट भरल बैठता है। उद्य चक्षुका सम्पुत्र्य भाग उद्य और अधभाग वक्र होता है। गन्देश (घाड़) और चतुपार्श्वदेवके पालकोंमें चिह्नयता कम भलकती है। इस स्थानके पालक रुधीके पालेकी भांति लगते हैं। उनमें खूटी (डांडि) देख नहीं पड़ती। कण्ठ, पद और अङ्गुलिका वर्ण काला होता है। यह १८-२० इंच दीर्घ रहता है। पक्षका ग्यारहसे बीस, पुच्छका सात, पैरकी खूटीका दोसे अधिक और कण्ठका देर्घ दारै इंच है।

इसकी शंगरेकी शाकुनशास्त्रमें 'करवम् माक्रोर्हि-हस' (C. macrorhynchus) अथवा 'करवस कननि-नाटम्' (C. culminatus) लिखते हैं। यह भारत वर्षके वनों, पर्वतों, लोकालयों प्रभृति सकल स्थानोंमें रहते हैं। पूर्व उपद्वीप और भारतीय द्वीपश्रेणियोंमें भी इनकी कोई कमी नहीं। ग्रामकाककी भांति शगव्य न रहते भी अन्वय्य छातोयोंको अपेक्षा यह संख्यामें अधिक बैठते हैं। लोकालयकी अपेक्षा इन्हे वन अथवा पर्वतमें रहना अच्छा लगता है। यह प्रधानतः सृत जन्तुका मांसदि खाते हैं। इसीसे शंगरेज इन्हे 'कर्बी' या 'किरियन' अर्थात् 'मलिनमांसभुक्' (सद्वा गोश्र खानेवाले) कहते हैं। यह भी अण्डे देते समय किष्ठी दुर्गम वनमें निरुपद्रव्य हचपर घोंसला बनाते हैं। घोंसला सुखी घास, पत्ते और बालसे कोमल तथा चण्य कर लिया जाता है। एक घरमें तीन-चार अण्डे होते हैं। अण्डा हलका हरा रहता और उसपर भूरा भूरा दाग पड़ता है। वैशाखसे श्रावण मासके मध्य तक अण्डे देनेका समय है। इनके भी घोंसलोंमें कीयल अपन अण्डे रख देती है। यह सङ्गे चनिटकारी है। छोटे छोटे सुरंग, कसूरके बसे और बिड़े पकड़ से बनाते हैं। यकरीका छोटा अथवा भी इनके चक्षु-पुटाघातसे अत्यसुखमें पड़ता है। दूसरे पक्षियोंका घोंसला या अण्डा तोहते देख इनकी 'राजकाक' अण्डे-हता है। चनेक शंगरेज इन्हे 'जङ्गल-का' (Jungle crow) कहते हैं।

(ख) युरोपीय 'कारियनो' (Carrion crow) बिलकुल भारतीय गणित मांसभुक्की भांति होता है। केवल उद्यके मात्रका वर्ण और लक्षण और कपोल (गाल)का पालक अट्टु नहीं रहता। श्वशरीर चिह्नय लगता है। पुच्छका पालक पाठ, पक्ष गारह बीस और कण्ठ तीग इंच पड़ता। केवल भारत और काश्मीरमें यह काक देख पड़ता है। इस जातीय पक्षीका प्रादि पाषत्यान मारदेरियाके पूर्वोत्तरमें इनसीनदीसे प्रमान-महासागर पर्यन्त है। उस स्थानसे दक्षिण काश्मीर और पश्चिम इण्डोनेश पर्यन्त समस्त देगमें यह रहते हैं। इन्हे शंग-

वांटा है। उत्तरार्धको बड़ा बड़ा हल और दक्षिणार्धको छोटा बड़ा हल करती हैं। बड़े बड़ा हलमें कुलूके मध्य स्थानपर बड़ा बड़ा हल पड़ा है। यह देख्यमें पन्द्रह मील और उत्तरामें १००० हजार फीट पड़ता है। इसमें एक सामान्य घाम है। उसमें कोई ८००० कुनैत रहते हैं। एक वर्ष दाहण सुपरपातसे लोगोंके बहुतसे घर बह गये। इसी गिरिका पत्थु च गृह फोड इरावती नदी निकली है।

छोटे बड़ा हलके बीचमें १००० फीट ऊंचा एक गिरिच्छ्र है। उसने इस स्थानको दो भागोंमें बांटा है। निष्ठागर्भ १८२२ घामागियदामान है। सकल घामोंमें केवल कुनैत और दाधी रहते हैं।

बड़ा हल तालुकके कुछ खंगका नाम और बड़ा हल है। इस स्थानका प्राकृतिक सौन्दर्य मनोहर है।

कांगड़ा जिल्लेके बीच तीन गिरि भेड़ियां समभावसे निकली हैं। इन्हीं गिरिच्छ्र विधोसे विवाहा, चन्द्रभागा, स्थिति और इरावती नदी निकली है।

पुरातन और धर्मशास्त्र—भारत और पुरापादिमें कुलिन्द और कुलूत नामक पार्वतीय जातिका नाम लिखा है। वही यहाँके प्राचीन अधिवासी थे। उस समय कांगड़ा कुछ कुलूत और कुछ कुलिन्द (कुनिन्द) जनपदमें रहा। आजकल कुलूत तथा कुलिन्द जातिको कुलू और कुनैत कहते हैं। इधुत और इलिन्द देश।

कुलूत और कुलिन्द लोगोंको हरा राजपूतोंने यह स्थान अधिकार किया। उन्होंने यह पार्वतीय भूभाग विभागकर बहुकाल राजत्व बनाया। यह अपनेका कुलुपाण्डवके समकालीन जालन्धरका कतोच राजवंश बताते थे। मुसलमानोंके आक्रमणसे उकता कतोच राजकुमारोंने कांगड़ेको गिरिदुर्गमें पायय लिया। उसका विपुत्र राष्ट्र सुदूर खंगोंमें बंट गया। उस समयभी यहाँके नगरकोटवासे भारतीय देवमन्दिर विशेष प्रसिद्ध थे। ऐसा स्थल जन्माथके तिस्रो दूरसे देखसन्दीमें न रहा। भारतीय सागाने देवमूर्तिको बड़ी यथा भक्ति करते थे। १००८ ई०को महम्मूद गजनवीने कांगड़ेके मन्दिरोंको बड़ाई सुनीं। उसका खोम और विहय बड़ गया। यह पितावरक देवाभि-

सुख सनेय पाये थे। भारतीय राजावोंने बाधा देनेको यथा साध्य चेष्टा लगायो, किन्तु कोई बात बन न पायी। महम्मूदने कांगड़ेका दुर्ग अधिकार कर देवमूर्तियोंके साथ क्षुब्ध, रोष, मयिमणिवय प्रकृति बहुमूय धग सटा था। कोई ३५ वर्ष पीछे राजपूतोंने कांगड़ेका दुर्ग छोड़ फिर राजपूतोंने बड़े समारोहसे देवमूर्ति प्रतिष्ठा किया था।

कुछ दिन कोई गड़बड़ न पड़ा। १३६० ई०को फीराजशाह तुगलक कांगड़ेकी ओर लड़ने पाये। कांगड़ेके राजावोंने उनकी वशता माननेसे अपने राज्य तो पाया, किन्तु पवित्र देवमूर्तियोंको गंवाया था। मुसलमानोंने देवमूर्तियोंको लूट मक्के भेज दीं।

१५५६ ई०को चकवर बादशाहने कांगड़ेका दुर्ग अधिकार किया। उसी समयसे यह पार्वतीय भूभाग दिल्लीके साम्राज्यमें मिला गया, केवल दुर्गस महमय स्थान देगी सरदारोंके शाय रहा। राजपूतोंने दो बार विद्रोही हो कांगड़ा दुर्गके उद्धारकी चेष्टा लगायी थी। जहांगीर दोनों बार (१६१५ और १६२८ ई०) कतोच राजकुमारोंको शासन करने पाये थे। पत्तकी घेस-सरदार कर देनेपर सम्मत हुये।

जहांगीरने प्राकृतिक सौन्दर्यसे मोहित हो यहाँ रहनेके लिये घोषभवन बनानेको आदेश किया था। आज भी कांगड़ेके गर्गरी घाममें एक घोषभवनका विष्ट देख पड़ता है।

दक्षिणके मुसलमान बादशाह कांगड़ेके सरदारोंको उपेक्षा करते न थे। सब लोग विशेष सम्मानार्थ रहे। पदके अनुसार मर्यादा मिलती थी। १६४६ ई०को नूरपुरके राजा जगतपन्द्र शाहजघानुके आदेशसे १४०० सेन्चका अधिनेष्टपद पाया। उन्होंने जने सेन्चके साहाय्यसे वलख और बदखशानुके आजमेकोंको हराया था।

१६६१ ई०को चौरंगजीयके राजत्वकाल जगतपन्द्रके पोत्र मान्याता कुछ दिनोंके लिये सुदूरवर्ती घामभवन और गारबन्दक घामनकर्ता बने। २० वर्ष पीछे उन्होंने दा हलारा मनसबदारका पद पाया था।

१०५८ ई०को कांगड़ेके राजा घमण्डपन्द्र जालन्धर

यह दुष्ट दरिद्रोंके लिये प्रति अनिष्टकर है। कभी कभी कौवा फूसके छप्पर या भोपड़ेमें खाद्यादि छिपा रखता है। आवश्यक् स्थान न पाते यह अधिकांश छपादि खोंच घर तक उलट देता है।

यह कर्चोटियेसे बहुत घबराता है। उसे देखते ही काक स्थान छोड़ भागता है। वह भी इसके पाँछे पड़ जाता है।

भारतवासियोंके नवान्न पर्वपर काकका बड़ा पाट होता है। प्रत्येक गृहस्थ 'नवान्न' ले घरभी छतपर चढ़ता और इसको खाने बोलाया करता है। किन्तु उस दिन काकका खाना कठिन पड़ता है। क्योंकि यह सर्वत्र भोज्य मिसलेसे टप रहता है।

२ (क) गङ्गापारी कौवा—'करवस' जातिमें सबसे बड़ा होता है। भारतवर्षके उत्तराखण्डमें यह अधिक देख पड़ता है। इसीसे हिन्दूस्थानी इसे 'गङ्गापारी' कौवा कहते हैं। सिन्धु, राजपूताना प्रभृति कई देशोंमें यह भीषकालकी नहीं रहता। शत्रुके प्रथम यह खाता और वसन्तके पश्चात् ही अफगानस्तान, काश्मीर प्रभृति शीतप्रधान देशोंको चला जाता है। हिमालय प्रदेशमें १४००० फीट ऊँचे यह मिलता, दूसरे पार्वत्य प्रदेशमें देख नहीं पड़ता। बङ्गाल, युक्त प्रदेश और पश्चात्तमें भी यह होता है। गात्र गाढ़ नील आभायुक्त चिकण छाप्यवर्ण रहता है। गलदेशक पासक दीर्घ और विरल होते हैं। ऊपरी चोंठ (टोट) का पयभाग कुछ बन्न लगता है। ऊर्ध्व चञ्चुकी उद्यता अधिक पड़ती है। पय १५ इंच और टूट २५से २० इंचतक दीर्घ होता है। चञ्चुके उभय पाश्योंमें गूदा रहता है। चञ्चु और पदद्वय घोर रूप्य वर्ण होता है। ऊर्ध्व चञ्चुका पयभाग कुछ बन्न रहता है। इसे बङ्गाली 'डोम काग' 'दंगरज' 'राविन' (Raven), स्तव 'कर्वो' स्वीडनवासो 'क्रॉ', टिनमार 'रौन', जर्मन 'कोलकोड', फ्रांसीसी 'करवो', इटालीय 'क्रवो', रोमक 'करवस', स्पेनीय 'एल कुवर्वो', पश्चिम भारतीय द्वीपवासी 'कष कष गिब', सीग समकेंद्रमाने 'तुलपाक' कहते हैं। वैदेशिक शाकुनशास्त्रमें इनका करवस कोराय (Corvus Corax) लिखते हैं।

हिमालय और युरोपमें रहनेवाला डोमकाक अधिक भँर होता है। यह कभी लोकाक्षयमें जाता नहीं चाहता। किन्तु भारतके अन्यान्य स्थानोंका डोमकाक देशी कौवोंकी भांति निर्भर रहता और घरोंमें इच्छानुसार आया जाया करता है। यह प्रति हन्धविय है। डोमकाक लड़ते लड़ते इतना उन्मत्त पड़ता, कि दोमें एक न एका पवश्य मरता है। सिन्धु प्रदेशमें प्रति वर्ष शरत्कालको जब इनका दल आता, तब अनेकोंको मृत्यु धर दधाता है। इससे लोग अनुमान लगाते कि डोम काक स्वभावसुखम हन्धप्रियताके कारण ही मर जाते हैं। सिन्धुदेशवाले जानिगत कण्ठखरसे भिन्न कण्ठके ध्वनिकी भांति एक प्रकार शब्द निकाल सकते हैं। युक्तप्रदेशमें यह घास फूसमें मैदान या हलके जङ्गलमें बड़े बड़े वृक्षकी मिख धोवर घोंमले बनाते हैं। इसके चार-पाँच पक्षे होते हैं। प्रायः दीप मासमें फाल्गुन तक यह पक्षे देते हैं। अच्छे उर्रत्त आभायुक्त तरल नील वर्ण होते हैं। उनपर काली सटमेंसे, दैगनी और सात रङ्गके धब्बे पड़ जाते हैं।

(ख) भूटानका डोमकाक—हिमालयके ऊर्ध्वतम प्रदेश, काश्मीर, कुमायूँ राज्य और तिब्बतमें एक प्रकारका २८ इंच दीघ काक होता है। इसका पय १८ इंच बढ़ता है। ऊर्ध्व चञ्चुकी मूलकी उद्यता अधिक रहती और पंख भी देघ लगते हैं। अन्यान्य पशुव साधारण देशीय काककी भांति होते हैं। दो चार वैदेशिक शाकुनशास्त्रविद् इसका स्वतन्त्र जाति मान 'करवस टिबेटनास' (Corvus Tibetanus) नामसे अभिधान करते हैं। किन्तु साधारण आमान्य दोहैता छाड इसमें कोई अन्य विभिन्नता देख नहीं पड़ती। इसीसे बहुतसे लोग तिब्बती कौवोंको देशीयोंमें गिनते हैं।

युरोपीय शाकुनशास्त्रविद् कहते कि डोमकाक (Raven) मनुष्योंके कण्ठखरका प्रतिमुद्र चतुःतरण कर सक्ती है।

(ग) पाटलचूड़ (मुनाबी चोटोवावा) काक—मध्यप्रदेशमें होता है। इसका कपाल और मक्षक

घोर दरारों तथा गतहु नदीके मध्यवर्ती प्रदेशमें ग्रामनकर्ता बनाये गये।

दिल्लीके बादशाहोंका पूर्व पराक्रम विस्तृत होनेसे राज्यमें एक प्रकारकी पराजकता आई थी। उसी समय प्रायः १७५२ ई०को राजपूत-सरदार खाधीन हो कांगड़ेका अधिकांग उपभोग करने लगे। केवल मन्त दुर्ग अछमद ग्राह दुरानीके आश्रयमें रहा। १७७४ ई०को जयसिंह नामक किसी सिख सरदारने कौयल-क्रमसे कांगड़ेका दुर्ग अधिकार किया, किन्तु १७८५ ई०को कांगड़ेका राजपूत-सरदार संसारचन्द्रको सौंप दिया। इतने दिन पीछे कांगड़ेका दुर्ग फिर कतौच-राजवंशके हस्तगत हुआ। कतौचराज संसारचन्द्र अपने पूर्वपुरुषोंकी भांति खाधीन भावसे राजत्व चलाने लगे। पार्वतीय प्रदेशस्थ नाना स्थानोंके सरदारोंने उन्हें कर दिया। दिग्गिजयकी निकलते समय सब सरदार सैन्य से संसारचन्द्रके अनुवर्ती बनते थे। वर्षमें एक एक बार प्रत्येक सरदार राजदरभूमिकी पाने पर बाध्य रहा। संसारचन्द्रने २० वर्ष प्रवस प्रतापसे राजत्व चलाया। सम्भ्रम घोर यगमें यह सब कतौच राजाकी श्रेष्ठ थी। १८०५ ई०को संसारचन्द्र घोर विलासपुरके राजाने गतहु घोर घघरा नदी-मध्यवर्ती प्रदेशके गोरखा-सरदारोंसे साहाय्य मांगा था। गोरखा गतहु नदी पार पाये। वह मजसमोरी नामक स्थानमें (१६०६ ई०) कतौच-राजपूतों पर टूट पड़े। बाहु-बलके प्रभावमें राजपूतोंने चार पीठ देखायी। गोरखा-सरदार कांगड़े राज्यमें छुस दाह्य चल्यावार मचाने लगे। कांगड़ा रलके स्त्रोतमें हुआ था। नगर, ग्राम, उपवन, सुन्दर राजप्रासाद प्रभृति सब लज्ज गये। उस समय कांगड़ा राज्य अज्ञान घोर मरुभूमिके समान था। कतौच-राजकुमारोंने प्राय छोड़ गिरिकी गुहामें आश्रय पाया। ऐसा सोमहर्ष-काण्ड क्या कीयी कभी भूल सकता है। कांगड़ेके प्रत्येक ग्राम एवं प्रत्येक नगरमें लोगोके हृदय पर, वह भीषण व्यापार घटकता है।

तीन वत्सर चल्यावार देघने पीछे संसारचन्द्रने महाराज रचनित सिंहसे साहाय्य मांगा। १८०८

ई०को रचनितसिंहने गोरखोंके विपक्ष युद्धकी घोषणा लगायी थी। भीषण ममरं पाण्ड्य हुआ। बडे कष्टमें रचनितको जय मिला। गोरखा गतहु उत्तर गये। प्रथम उन्होंने समस्त कांगड़ा राज्य संसारचन्द्रको सौंप दिया, केवल कांगड़ेका दुर्ग घोर ६६ घामोंका कर सैन्यव्ययके निर्वाहको धरने हाय रख लिया। पीछे रचनित घोर घोर पहाडी सरदारोंके अधीनस्थ स्थान अपने समयमें मिलाने लगे। १८२४ ई०को संसारचन्द्र मरे। उनके पुत्र पतिहृदचन्द्र राजा बने थे। पतिहृदचन्द्रने केवल चार वर्ष राजत्व किया। रचनित सिंहने अपने मन्त्रो ध्यानसिंहके पुत्रसे पतिहृदको भगिनौका विवाह ठहराया। कतौच राजकुमारने इससे अपनेको अपमानित होते देख राज्य छोड़ा घोर हरिद्वारकी घोर मुंज माड़ा। उसी समय समस्त कांगड़ा महाराज रचनितसिंहके राज्यमें मिल गया। १८४५ ई०को प्रथम सिख युद्ध होने पर पंगरेजीने कांगड़ा अधिकार किया। १८४५ ई०की मूल-ताना विद्रोहके पीछे यहाँके पहाडी सरदारोंने विद्रोह बढ़ानेकी चेष्टा बनायी थी, किन्तु कुछ बिन्दु न पाये। फिर सिवाही-विद्रोहके समय स्वनामिनी कि कांगड़ेमें सामान्य विद्रोहकी भाग भडकी है। उस समय छह विद्रोही सरदारोंको फाँसी दी गयी पात्र तक फिर कांगड़ेमें कोयी चगालि न फेरी।

इस जिलेके प्रधान नगरका भी नाम कांगड़ा है। यह पचा० १२° ५४' १३" उ० घोर ७६° ०६' १०" ४६" पू० पर अवस्थित है। पहाडी यह नगर नगर-कोट नामसे विख्यात था। कांगड़ा-पाषण्डा घोर विमाणा नदीघट्टमके निकट पर्वत बना है। इस नगरमें एक बहुभाषीन दुर्ग है। मगनी घोर भवानी-पतिका पूर्वनिर्मित मन्दिर सुन्दर है। कांगड़ेमें लड़ाव घोर मीनेका काम अच्छा बनता है।

कांगड़ेके ओग साहसा, बसगाभी, मरन घोर खाधीनचेता है। राजपूत अधिक देख पर्वत है।

यहाँ चिकित्सकोंका एक दन रहता, जो नक्कलीकी अच्छा कर सकता है। पक्कर माह-व-व-दीन एक चिकित्सक थे। उन्होंने नाक बनानेकी

पाटलाभ (गुलाबी) विहङ्गवर्ण रहता है। घोड़ेसे चंगरी रंगकी चिह्नयत्ना भूलकती है। ऊपरी स्तरके पालक चिह्न एवं छत्रवर्ण और निचर स्थानीय पाटलाभ विहङ्गवर्ण लगते हैं। विहङ्गवर्ण पालकोंका प्रान्तभाग रक्तभ होता है। चक्षुका पुट काला पड़ता है। दोनों पद भी काली ही रहते हैं। देह्यं २२ इञ्च है। सिन्धुप्रदेशके याकूबाबाद और तारखानिके मरुप्रदेशमें शीतकालमें भी यह देख पड़ता है। पक्ष्यावी होमकाक (C. corax) से इसके गात्रका वर्ण भिन्न लगता है। दूसरा पार्श्वक मरुप्रदेशके पालकोंकी सुदृष्ट पाकृति और देहके परिमाणकी सजुता है। इसका वैज्ञानिक नाम 'करवसु अम्ब्रिनस' (C. Umbrinus) पर्याय पाटलघुङ्ग काक है। यह भारतके सुप्तप्रदेशसे मिसर और एशियाके पश्चिम तथा दक्षिणस्य देश तक सजल स्थानोंमें मिलता है।

३ कौड़ियाला कौयाको उत्तर-भारतीय 'डांड' या 'डास कौवा', दक्षिणमें 'धेरी कौवा', तैलङ्ग 'काकी', तामिल 'काका', सेपचा 'छलकफो', भूटानी 'उलक' और चनेक चंगरेज् 'रावेन' (Raven) कहते हैं। किन्तु शाकुनतत्त्वज्ञ चंगरेज् पण्डितोंने इसका नाम 'इण्डियन कर्बी' (Indian Corby) रखा है। इसकी श्रेणीके कई भेद हैं। उनमें कुछ नीचे लिखते हैं।

(क) गलित मांसभुक्—भारतीय कौड़ियाले कौबेके ऊपरी पर चिकने और बस काले होते हैं। किन्तु नीचेवाले पक्षिक छत्रवर्ण नहीं रहते। पुच्छके पालकोंका संख्यान ईयात् गोलाकार जगता है। पक्ष क्रियेप दीर्घ पड़ता और प्रायः पुच्छके अन्ततक विरस्त रहता है। चक्षुका पुट मरल बैठता है। सद्य चक्षुका सम्पुष्पस्य भाग सद्य और चक्षुभाग बन्न होता है। मरुप्रदेश (घाङ्ग) और चक्षुपार्श्वदेशके पालकोंमें विहङ्गयत्ना कम भूलकती है। इस स्थानके पालक श्रेणीके पालेकी भांति लगते हैं। उनमें छूटी (डांडि) देख नहीं पड़ती। कण्ठ, पद और चक्षुनिका वर्ण काला होता है। यह १८ इञ्च दीर्घ रहता है। पक्षका ग्यारहस्य शीदह, पुच्छका सात, पैरकी छूटीका दोस्य अधिक और कण्ठका दैह्यं द्वाँरे इञ्च है।

इसकी चंगरेजी शाकुनयाद्यमें 'करवस माक्रोहिं-हस' (C. macrorhynchus) अथवा 'करवस कनमि-नाटस' (C. culminatus) लिखते हैं। यह भारत वर्षके वनी, पर्वतों, लोकात्तली प्रभृति सकल स्थानोंमें रहते हैं। पूर्ण उपदीप और भारतीय दीपपत्रेकी भी इनकी कीर्त कमी नहीं। ग्रामकाककी भांति पण्ड्य न रहते भी अन्त्यान्त श्रातोयोको अपेक्षा यह संख्यामें अधिक बैठते हैं। लोकात्तली अपेक्षा इन्हें वन अथवा पर्वतमें रहना पच्छा लगता है। यह प्रधागतः नृत लन्तुका मांसवादि खाते हैं। इमीसे चंगरेज् इन्हें 'कर्बी' वा 'केरियन' अर्थात् 'गलितमांसभुक्' (सद्दा गोम्य खानेवाले) कहते हैं। यह भी पण्ड्य देते समय किमो दुर्गम वनमें निदपद्रव्य हृद्यपर घोसला बनाते हैं। घोसला सूखी घास, पक्षे और बालसे कोमल तथा सण्य कर लिया जाता है। एक बारमें तीन-चार पण्ड्य होते हैं। पण्ड्या हलका हरा रहता और सस-पर भूरा भूरा दाग पड़ता है। वैशाखमें यावत् मासके मध्य तक पण्ड्य देनेका समय है। इनके भी घोसलोंमें कोयल चपने पण्ड्य रख देती है। यह बड़े पण्ड्यकारी हैं। छोटे छोटे सुरीन, कबूतरके बसे और चिड़े पकड़ ले पाते हैं। बकरीका छोटा बच्चा भी इनके चक्षु-पुटाघातसे मृत्युमुखमें पड़ता है। दूसरे परिवर्त्याका घोसला या पण्ड्या मोहते देण इनको 'राजकाक' खदे-हता है। चनेक चंगरेज् इन्हें 'जङ्गल-का' (Jungle crow) कहते हैं।

(ख) युरोपीय 'कारियननी' (Carrion crow) विनकुल भारतीय गलित मांसभुक्की भांति होता है। केवल उसके गात्रका वर्ण और छत्र और कपोल (गाल)का पालक सृष्ट नहीं रहता। चंगरेजी चिह्न लगता है। पुच्छका पालक पाठ, पक्ष बारह शीदह और कण्ठ तीन इञ्च बड़ता। केवल भारत और कार्मीमें यह काक देख पड़ता है। इस जातीय पक्षीका पादि वासस्थान सार्वभरियाके पूर्वाग-में इनवीनदीमें प्रयाग-महावागर पर्यन्त है। उस स्थानसे दक्षिण काश्मीर और पश्चिम इण्डोस्य पर्यन्त समस्त देशमें यह रहते हैं। इन्हें चंग-

चिकित्सा निराम्नी। अक्षर बाद्याहने गुणकौयससे समुद्र हो उन्हें कांगड़ेका कुछ स्थान जागोर दिया था।

इस जिलेमें स्वर्ण, रौप्य, लौह, ताम्र, रसायन, हीरक, मर्मर प्रभृति नानाप्रकार वहु मूल्य द्रव्य उत्पन्न होते हैं।

उद्विज्ज घोर पण्डित्यमें यव, गेहूँ, चना, गन्ध, कार्पास, शुष्क, तमाखु, धाय, मधु, लवण, घोर धान्य प्रधान है।

कांगड़ी (हिं० खी०) सन्तप्त सुद्र पात्र विशेष, एक छोटी चंगोटी। काशीरके अधिवासों शीतसे परिव्राण्य पानिको इसे कण्डमें बांध बधः स्थलपर लटका लेते हैं। यह बद्ध रके काष्ठसे प्रस्तुत होती है। कांगड़ीके भीतर सृष्टिका चट्टा देते हैं।

कांगड़, कांगड़ देवो।

कांग्रेस (अ० खी० = Congress) सभा, परिषद्, मुल्कीका प्रदेशोंका जलसा। इसमें विभिन्न प्रदेशोंके प्रतिनिधि एकत्र हो राजनीतिक विषयोंपर चयना चयना मन्तव्य प्रकाश करते हैं। संयुक्त अमेरिकाकी राजसभा भी कांग्रेस ही कहती है। भारतमें प्रति वर्ष जातीय कांग्रेस (National Congress) होती है।

कांच (हिं० खी०) १ सांग, घोताका एक छोर। यह दोनां टांगोंके बीचसे निकाल करपरपर खोली जाती है। २ गुदावर्त, गुदाका भीतरी भाग। कभी कभी जोरसे कांचनेपर यह बाहर निकल आती है।

(पु०) ३ मिन्य धातुविशेष, एक मिलावटी धातु। यह बालुका घोर चारको अग्निमें गलानसे प्रस्तुत होता है। इसमें कण्ड, पात्र, दर्पण प्रभृति ननेक द्रव्य बनते हैं। कांच देवो।

कांचरी (हिं० खी०) कच्छ लिका, सांपकी केशुस।

कांचनी, कांचरी देवो।

कांचा, कचा देवो।

कांचू (हिं० पु०) १ कच्छ लिका, केशुस। (वि०)

२ कांचका रोगो, जिसके कांच निकल पड़े।

कांचना, कांचना देवो।

कांका (हिं० पु०) १ कांच, कसरमें पीछे खोसा।

जानेवाला घोतीका किनारा। २ चंगोटा, चिट। (खी०) ३ पाकांजा, खाद्य।

कांजी (हिं० खी०) १ कांजिक, एक रम। यह खड़ी रहती घोर कई प्रकारसे बनती है। इसमें पधार घोर बड़ा भी भिगोया जाता है। कांजी बनानेके चार विधि नीचे लिखते हैं—

१ चायसका माहू किसी सृत्पात्रमें दो-तीन दिन रख लवणादि डालनेसे यह तैयार होती है।

२ राई पीसकर पानोमें खोल दी जाती है। फिर लवण, लौरक, शण्डो प्रभृति वीमजर मिला उसको सृत्पात्रमें रख छोड़ते हैं। खड़ी होनेसे पहले बड़ा घोर अचार भी डाल दिया जाता है।

३ दहीका पानी राई घोर ममक मिलकर रखनेसे ठठनेपर कांजी कहाता है।

४ शर्करा घोर निम्बूकका रस अथवा शिरका मिलाकर पकाया घोर किमाम बनाया जाता है।

महु, दही या फटे दूधके पानीको भी कांजी कहते हैं। कांजिक देवो। २ कारागारका गृहविशेष, कैद खानेकी एक कोठरी। इसमें कैदियोंको माहू पिलाया जाता है।

कांजीवरम् (हिं०) कांजीवर देवो।

कांजी हाउस (अ० पु० = Kine-house) पशुशास्त्र विशेष, मवेशीखाना। इसमें छपि पादिको चतिसन्न करनेवाले पशु घरकार रहती है। फिर प्रभु दण्ड स्वरूप कुछ पैसा रूपया दे वहाँ छोड़ता है। जिसकी छपिको जानि पहुंचाते, वह पशुको एकड़ कांजी हाउसमें हांक आते है।

कांटा (हिं०) कण्टक देवो।

कांटा (हिं० पु०) १ कण्टक, पाट। यह तीख्याप अक्षर होता है। कतिपय वृक्षांकी शाखोंपर खूषीकी भांति कांटा निकलता घोर पुट होनेपर कठिन पड़ता है। २ पदकण्टक, पैरका कांटा। यह मोर, मुर्गी, नीतर यगेरुच नर चिड़ियोंके पैरमें निकलता है। सड़ाईमें उन्न पक्षी इसीसे प्रहार करते है। कटिका दूसरा नाम कांटा है। ३ गन्तरीग विशेष, गन्तरी एक बीमारो। यह पंचियोंके गन्तरीमें उत्पन्न होता

रुकी शाकुनशास्त्रमें 'करवम् कोरोन' (C. Corone) कहते हैं।

(ग) काश्मीरमें दूसरी तरहका एक काक होता है। यह परिमाणमें गलित मांसभुक्से सुदृढ़ लगता है। गात्रका वर्ण अश्वकारकी भांति काला रहता है। यह शक्तिदृढ़ सङ्ग सकता है। चीलसे इसका विषम विवाद है। यह भी गलित मांस खाता है। काश्मीर, सिमला, और दुर्गसायी उपत्यकामें इसे देखते हैं। यह पार्वतीय काक (पहाड़ी कौवा) नामसे विख्यात है। अंगरेजी शाकुनशास्त्रमें इसे डांक काक और ग्राम्य काक मध्यवर्ती काक 'करवम् इण्टरमेडियम्' (C. intermedius) कहते हैं।

(घ) सूक्ष्मचक्षु—मात्र नीलमिश्रित क्षण्यवर्ण होता है। मस्तक, स्तम्भ, छत्र, उदर और चक्षुका वर्ण अपेक्षाकृत तरल रहता है। कपाल गाढ़ क्षण्यवर्ण लगता है। इसका देर्घ्य १८ इंच है। पक्ष साढ़े बारह, पुच्छ सात, चक्षुपुट टाई इंच दीर्घ बैठता है। किन्तु चक्षुपुट पौन इंचसे ज्यादा मोटा नहीं होता। अंगरेजी शाकुनशास्त्रमें इसका नाम 'करवस टेनु-इरोसिटिस' रखा है।

एतद्विन्न चीनदेशीय 'करवम् पेक्टोरालिस' (C. pectoralis) और यवद्वीप 'करवस एन्का' (C. enca) भी डांडकाक जातीय हैं। यवद्वीपका 'करवस एन्का' सूक्ष्मचक्षु काकसे मिलता, किन्तु सुदृढ़काय रहता है। चीन देशीय 'पेक्टोरालिस' भारतीय डांडकाककी जातीय होता है।

ब्रह्मदेशीय ग्राम्यकाक—इसका कपाल, मस्तक, विषुक्त और कण्ठ चिकण क्षण्य होता है। स्तम्भ (घाड़) और चक्षुपात्र तरल पिङ्गलवर्ण रहता है। कर्पावरक और निम्न देशके पालक पिङ्गलाभ मिश्रित क्षण्यवर्ण देख पड़ते हैं। पक्ष, पुच्छ और अवशिष्ट पालक चिकण क्षण्यवर्ण लगते हैं। इसके क्षण्यवर्ण पालकसे मयूरकण्ठकी भांति नील और हरिद्वर्ण-मिश्रित भाभा निकलती है। स्वभाव बिलकुल भारतीय ग्राम्यकाकसे मिलता है। समस्त ब्रह्मदेशसे दक्षिण मरगई और पश्चिम भागामसे मणिपुरके पूर्वाञ्चल तक

यह रहता, पन्थ देख नहीं पड़ता। इसका वक्ष-देशीय नाम 'किगियान' है। वैदेशिक शाकुनशास्त्रमें 'करवम् इनसोलेंस' (C. insolens) लिखते हैं।

५. चोटियाला कौवा—इसके मस्तकपर काका-तुषाकी भांति चोटी रहती है। मस्तक, स्तम्भ, गनदेश, वक्षःस्थलका अधर्भाग, पक्ष, पुच्छ और उर दिक्क देखते हैं। अवशिष्ट पालक गङ्गाकी घालू जैसे धूसर होते हैं। ऊपरी पांशक क्षण्यवर्ण और नोचेवांसे पाटल लगते हैं। पैर, वण्ड और उंगलीका रंग काला रहता है। देर्घ्य १८ इंच है। पुच्छ साढ़े सात, पक्ष साढ़े बारह, पदकी खंडो दो और चक्षुका देर्घ्य दो इंच है। साधारण अंगरेजीमें इसे 'हूडेड क्रो' (Hooded Crow) कहते हैं। अंगरेजी शाकुनशास्त्रसम्मत नाम 'करवस कारनिक्स' (C. Cornix) है। इसकी तीन श्रेणियां होती हैं। प्राकृतिका प्रभेद स्पष्ट देख पड़ता है। एक दूसरेको सङ्गमें ही पहचान सकते हैं। सच्चा चोटियाला कौवा (True Corvus Cornix) पारस्वीपसागरके उपकूलसे पश्चिम युरोप पर्यन्त मिलता है। क्षण्यवर्ण पक्षकी छोड़ इसके दूसरे पालक पांशल धूसर होते हैं। एक जातीय 'करवस कैपेल्लानस' (C. Capellanus) पारस्वी-उपसागरके उपकूल और मेसोपोटेमिया प्रदेशमें रहता है। इसके पर सफेद और कलम काले होते हैं। आकार वर्षादिकी बात पहले ही बता चुके हैं। ग्रीक कालमें यह पञ्चावके उत्तरपश्चिम कोण, हजारा प्रदेश और गिलगिट प्रान्तमें देख पड़ता है। इसका स्वभावदि मांसभुक् काककी भांति होता है। किन्तु यह शस्य मिलनेकी आशासे इसे दल बांध मैदानमें घूमना पड़ता है। भारतवर्षमें न तो यह घोंसला बनाता और न अण्डे ही देता है। साइबेरियामें चोटियाला गलित मांसभुक्की साथ सङ्घवासदि रख सन्तान उत्पादन करता है। यह वर्षासङ्घर काक इस देशमें देख नहीं पड़ता।

६. काश्मीर प्रदेश, पश्चिम एशिया और युरोपमें एक प्रकारका कौडियाला कौवा होता है। अंगरेजी शाकुनशास्त्रके मतसे यह निम्न श्रेणीभुक्त है। इसके

सब पचयवोंका वर्षा कासा रहता है। मस्तक, स्तम्भ, और निम्न देगके पालकोंमें नीलवर्णकी विक्र-
णता तथा पाटनकी चामा भङ्गकती है। परिमाण
दण्डकाकमें मिलता है। इतरविशेष सामान्य है।
अंगरेजीमें इसे 'रुक' (Rook) कहते हैं। ग्राकुन
शास्त्रका वैज्ञानिक नाम 'करवस् फ्रुगिलीगस'
(C. Frugilegus) है। पांच मास घीतते ही इसके
गायककी नासाका लोम (Nasal bristles) गिर
जाता है। फिर दो मास पीछे मुखके सम्मुख भाग
पर्याप्त चक्षुके मूलमें विलकुल पालक नहीं रहते।
यह भारतवर्षमें कहीं रहता या अत्याधुनिक देग
है। इसे गस्यभोजी देखते हैं। यह चुगनेके लिये
दलदल मैदानमें घूमता और नदीतीर तथा लसागयमें
कीटादि ढूँढता है।

७। काश्मीरमें भी एक सुद्राकार दण्डकाक होता
है। इसे सुद्रवसु दण्डकाक कहते हैं। मस्तक तथा
कपाल विक्रण छप्पवर्ण और स्तम्भ गाढ़ धूसरवर्ण
रहता है। मस्तकका पार्श्व एवं गलदेग तरल धूसर-
वर्ण होता है। प्रायः पाघे गसदेगमें सफेद धारियाँ
पड़ जाती हैं। स्तरका पालक और पुच्छ सुविक्रण
नीलाम छप्पवर्ण लगता है। परका कलम भूरा होता
है। गलदेगका निम्नभाग छप्पवर्ण रहता है। अन्यान्य
पालक भी खैटकी भांति वर्षाविशिट देख पड़ते हैं।
दीर्घता १३ इंच है। पुच्छ साढ़े पाँच, पस नो, पैरकी
खंडी छेड़ पार चौच छेड़ इंच है। अंगरेजीमें इसे
'जाक ड' (Jackdaw) कहते हैं। ग्राकुनशास्त्रके
पसुवार वैज्ञानिक, नाम 'करवस मोनेडुला' (C.
monedula) है। भारतके मध्य काश्मीर और उत्तर
पश्चिममें यह देख पड़ता है। शीतकालमें अस्यासा
प्रदेशस्य पर्वतके निवाट भी इसे पाते हैं। काश्मीरमें
यह पुरातन बहालिकाओं और सरोवरों वीषला
जगा रहता है। इसका अण्डा षडे इंचतक दीर्घ
होता है।

८ जेतकाक—काककी भांति विक्रण पाकारका
एक पक्षी है। इसका समस्त मस्तक काकातुयाकी
भांति सफेद रहता है। पदद्वय, चक्षु एवं चक्षु एवं

चक्षुका पाकार भी काकातुयैके मिलता है। इसे
सफेद कौवा कहते हैं।

काकके सम्बन्धमें कई प्रवाद सुन पड़ते हैं। उनमें
कुछ नीचे लिखे जाते हैं,—

(१) कौबे दो पाँचसे देख नहीं सकते। कारण
एक दिन और सीता उभय वनमें घूमते थे। इन्द्रके
पुत्र जयन्त सीताका रूप देख मोहित हुई और काक-
रूपसे उनका वचोपशम खोज ले गये। नखावात नगते
सीताके स्नानसे रक्त गिरा था। रामने यह देख बाध
छोड़ा। वह काकके चक्षुमें नाकर लगा था। उसी
दिनसे कौबेकी एक पाँच फूटी है।

(२) किसी शूद्रस्यके मकानपर बैठ एक काकके
दूसरेका गात्र काँट निकालते या मस्तकस्थित पालक
संवारते सधवापुत्रसम्भाविता सधु या कन्याके देख
पानेसे उठी मासके षटतुछान पीछे उक्त सधु या कन्या
गर्भिणी हो जाती है।

(३) काकका पालक छुनेसे पूर्वधर्म विनष्ट होता
है। बहुतेसे लोग इषी विश्वास पर पर छूकर सक्त्त
नशा डालते हैं।

(४) काक सिवा भङ्गके दूसरे समय नहीं मरता।

(५) काक जब सघरे उठ सोनता और उड़ता
किन्तु पाहारा यज्ञ नहीं करता, तब शुभ उद्देश्य
चलनेपर मङ्गल रहता है।

(६) पक्षियोंमें काक अण्डालसातीय है। यह
शयका देख परिष्कार करता है।

(७) काकका मांस तिष्ठ रहता और किसी पच-
पकीके खाद्यमें नहीं लगता। स्वायंपरताकी तुलनामें
कहा जाता है काक शयका मांस खाता, किन्तु उन्हा
मांस किसी काम नहीं पाता। काचनरिष देवो।

मदनपासके मतमें इसका मांस शसु, अग्निदीपक,
हृदय, बसकारक, पाणु एवं चक्षुके लिये हितकर
और शत तथा अयुरोगनाशक है।

५ एक कपर्दिका चतुर्दश। ६ हीरकविशेष, एक
टापू। ७ तिलकविशेष। ८ शिरोऽवधानग। (ति०)
९ कुक्षित भाषसे गमनकारी, पराव तोर पर चलने-
वाला। १० पतिदुष्ट, बड़ा बदमाश।

फलशि यस्याः, काकतुण्ड-ठन्-टाप् । १ खेतगुप्ता, सफेद घुंघची । २ महाखेतकाकमाची, बहुत सफेद केवैया । काकचिष्वा, घुंघची ।

काकतुण्डो (स० स्त्री०) काकं ईषत् दुःखं तुण्डते नागयति, तुण्डिङ् वधे भष्-डीप् । राजपित्तल, किसी किंछकी पीतल । काकतुण्डस्येव भाकतिर्यस्याः । २ स्नानमध्यात लता, कौघाटीटी । इसका संस्कृत पर्याय—काकादनी, काकपीतु, काकशिष्वी, रक्तसा, धाङ्गादनी, वक्रगस्या, दुर्मोहा, वायसादनी, झाङ्गनछी, वांघची, काकदन्तिका और भांचदन्तो है । राजनिघण्टु के मतसे यह कटु, उष्ण, तिक्त, द्रव, रसायन, वायुदोषनाशक, रुचिकारक और पलित स्तम्भक (बालोंकी सफेदी रोकनेवाली) होती है । ३ गुप्ता, घुंघची । ४ लघुरक्त काकमाची, छोटी लाल केवैया ।

काकतुल्य (स० त्रि०) काकस्य तुल्यम्, १-तत् । काकके समान, कौवेके बराबर, चानाक ।

काकतीय (काकत्य)—दक्षिणापथका एक प्राचीन राजवंश । इस वंशवाले प्रथम कल्याणके चातुर्व्य राजाओंद्वारा शासित रहे । पाश्चात्य पुरातत्त्वविदोंके मतमें ई०पकादश शताब्दके श्रेष्ठ भागसे इस वंशका अन्त्य हुआ ।

इस राजवंशमें जिन जिन राजाओंके नाम मिलते, उनमें काकतिप्रलय प्रधान हैं । कहीं कहीं ऐसी बातें सुन पड़ती हैं कि प्रलय राजाकी पटरानी काकती देवीकी पूजा करती थीं । राजाभी पत्नीके पीछे चल काकती देवीके उपासक बने । इसीसे उन्होंने अपना नाम काकतिप्रलय रख लिया । घटनाक्रमसे राजाने एक शिवलिंग पाया । सम्भवतः वह पारस पत्थर था । उस प्रस्तरके शुण्ठसे राजाको विस्तर धन मिला । पत्थर बहुत भारी था । किसीमें उसको हिलानेका सामर्थ्य न था । इसीसे प्रलयराजकी चनमकीण्ड छोड़ ८८० शक (१०६८ई०)में उक्त शिवलिंग मिस्रनेके स्थान पर गया नगर बसाना पड़ा । प्रथम काकतिप्रलय चातुर्व्य राजाओंके पथःपतनसे खोपिन हुए । पुत्रजन्म लेने पर देवज्ञाने राजासे कहा था, यह पिढ्याली होगा । देवज्ञानेकी बातसे वह पुत्रकी वनमें

छोड़ पाये । किसी व्यक्तिने पाकर उसे पुत्रकी भांति पाला पोसा । वयोप्राप्त होनेपर वह पारसलिंगका रक्षक बना । घटनाक्रमसे किसी रातको प्रलयराज मन्दिरमें देवदर्शन करने गये । साथमें नौकर चाकर कोरे न था । राजकुमार राजाको गुप्तभावसे जाने देख सोचने लगे, सम्भवतः घोर पाता है । फिर उनसे रक्षा न गया । उन्होंने तलवार आघात लगाया था । प्रलयराज घरा पर गिर पड़े । भन्तमें उन्हें मालूम हुआ कि वह उसी पुत्रकी कार्य था, जिसकी मातृ-क्रोडमें निकाल अपना रचाके लिये वनमें छोड़ा । उन्होंने देखा अष्टकला सिंह नहीं मिटती । पुत्रका क्या दोष था । पुत्रके हाथ उन्हें मरना रहा । भस्म काल पर राजाने पुत्रको अपना राज्य दे डाला ।

काकतिप्रलयके पुत्रका नाम रुद्रदेव था । उन्होंने पिढ्यल्यारूप महापातकके प्रायश्चित्तमें सङ्घ्न शिव-मन्दिर बनवाये । उनके वाङ्मलसे कटक और बलनादके राजाने वशता मानी थी । किन्तु कनिष्ठभ्राता महादेवने विद्रोही हो युद्धमें उनकी डराया और राजसिंहासन पाया । रुद्रदेव मारे गये । कुछ दिन पीछे महादेवगिरिके राजासे लड़ने चले और युद्धमें कट मरे । उनके पीछे रुद्रदेवके ज्येष्ठपुत्र गणपतिदेव राजा हुए । उन्होंने देवगिरिके रामराजासे युद्धमें पिढ्यके मृत्युका बदला लिया था । राम राजाको कर देना पड़ा । उन्होंने अपनी कन्या प्रदान कर गणपति देवका चातुर्व्य माना था । गणपतिदेवने पक्षिगारोंके यज्ञसे बलनाद, नेलूर प्रमथि प्रदेश अधि-कार किये । वह बड़े जैनविद्वांस थे । उन्होंने तोड़ फोड़ अशुभ जैनमन्दिरोंके स्थान पर शिवलिंग लगा दिये । फिर गणपतिदेवने अनेक नगर पत्तन बसाये । राजधानीका नाम 'एकशिलानगर' रखा गया और चारों ओर प्राचौर बना । उनके राजत्व कालमें अनेक तैलङ्ग कवियोंने जन्म लिया था । मन्त्री गोपराजके यज्ञसे नियोगो ब्राह्मण मामूली मोहरिरे बनाये गये । वैदिक ब्राह्मणोंने इस नियमका घोर प्रतिवाद किया था । किन्तु राजमन्त्रीका आदेय कोई टाल न सका ।

काककङ्क (सं० स्त्री०) काकप्रिया कङ्कः मधुसो ।
धान्यविशेष, चीना । 'जीनकस काककङ्क' (दिन ३२४४)
काककण्टक (सं० पु०) कान्तर पक्षिविशेष, पानीकी
एक चिट्टिया ।
काककर्षठी (सं० स्त्री०) खजूरी वृक्ष, खजूरका पेड़ ।
काककला (सं० स्त्री०) काकस्य कला चयक इव
चयवो यस्याः, मध्यपदयोः । काकजटावृक्ष,
एक पेड़ ।
काककुहमल (सं० स्त्री०) नीलपद्म, आसमानी कंवल ।
काककुष्ठ (सं० स्त्री०) कङ्क, दवामें पड़नेवाली
एक मट्टी ।
काककूर्मसृगारु (सं० पु०) कौवा कलुषा, हिरन
और चूहा ।
काकक्री (सं० स्त्री०) काकं हन्ति, काक-इन्-ट डीप ।
महाकरस्रवृक्ष, बड़े करोंदिका पेड़ ।
काकचरित्र (सं० स्त्री०) काकस्य चरित्रं वर्णितं यत्र,
बहुस्रो । शाकुनशास्त्रका अंगविशेष, इत्यग्निशूनीका
एक हिसा । इसमें यही उपदेश लिखते काकके शब्द
विशेष चेष्टादिसे कैसे लाभालाभ मालूम कर सकते हैं ।
यसन्त राजप्रणीत शाकुन शास्त्रमें कहा है—
काक पांच त्र्यंशियोंमें बांटा है,—भ्राह्मण, क्षत्रिय,
वैश्य, शूद्र और भन्त्यज । वर्ष, स्त्र और स्त्रभावसे यह
भेद पहचान लेते हैं । जो परिमाणमें वृहत् कृष्णवर्ण,
दीर्घ, विशाल मस्तकयुक्त और गभीरस्त्र रहते, उन्हें
विप्रजाति कहते हैं । मिश्रवर्ण, पिञ्जल अथवा नील
वस्तु, तीक्ष्णरथ और पतिशय बलवान् काक क्षत्रिय-
जाति हैं । पाण्डु वा नीलवर्ण, श्रेत अथवा नीलवस्तु
और शब्द अल्पवृद्ध वैश्यजाति होते हैं । भ्रमकी भांति
वर्णविशिष्ट, कगशरीर, अधिकांश ककार शब्द युक्त,
और चक्षुस स्त्रभाव शूद्रजाति माने गये हैं । रुक्म,
अथवा सूक्ष्म सुष्ठ, दीर्घविशिष्ट स्त्रभ्रदेग, शब्द एवं
बुद्धिहसि स्त्र और अल्प आश्रयावासे भन्त्यज कहाते
हैं । द्रोप नामक कृष्णवर्ण विप्रकाक त्र्यंश होता है ।
अभावमें छिनका कण्ठदेग श्मामवर्ण लगता, धनका
लघुपादि देवता पड़ता है । अहुत दर्शन होनेसे
शतकाक प्राण नहीं ठहरता । विप्रकाक प्रश्र करने

पर परिष्कार उत्तर देता है । क्षत्रियकाक विप्रकाकको
अपेक्षा अल्प रहता है । वैश्यकाक अधिवेगन और
शूद्रकाक पूजार्चन पानसे बोलता है । किन्तु भन्त्यज
काक सर्वदा समस्त प्रश्र लगाया करता है । इन पांचों
काकके शब्दसे उनी समय, तीन दिन, सप्ताह या एक
पक्षमें फल अथवा मिल जाता है ।

शान्त और प्रदीप्त भावमें बोलना श्रमभद है । किन्तु
रौद्र स्त्रविशिष्ट शब्द प्रश्रन नहीं होता । मधुर स्त्र
ही सर्वत्र अच्छा है । प्रदीप्त भाव अथवा पर्यस्त्रसे
बोलनेपर कार्य बनकर भी विगड़ जाता है । किन्तु
प्रदीप्त अथवा शान्तभावसे शब्द करते सिद्ध मिलती
है । यदि काक शान्त एवं प्रदीप्त भावसे एक बार
बाहर बोल भीतर आता और फिर वैसा ही शब्द
सुनाता, तो समस्त विघ्न विनष्ट हो कार्य बन जाता है ।
प्रथम दीप्त और पर्यात् शान्त शब्द निकालनेसे कार्य
विगड़कर बनता है ।

सूर्योदयके समय पूर्वदिक् किसी निर्देय स्थानमें
समूह बैठकर काकके बोलनेसे चिन्तित कार्य निक-
सता और स्त्रीरत्नादि मिलता । अग्निहोषमें बैठ
शब्द करनेसे शत्रुनाश, भयनाश और स्त्रीलाभ होता
है । दक्षिण दिक्में पर्य स्त्रसे शब्द करनेपर पति
दुःख, रोग वा मृत्यु आता, किन्तु मधुरस्त्र रहते कार्य
बन जाता और स्त्रीलाभ देखाता है । नैऋत और
महसा बोल उठनेपर श्रुत कार्य लग जाता, दूत आता
और मनूय मध्यम सिद्धि पाता है । पश्चिम दिक्में
शब्द करनेसे वृष्टि पड़ती, राजपुरुषको अथवा ठहरती
और स्त्रीसे नहार्यो चलती है । वायुकोषमें बोलनेसे
वाञ्छित वस्तु, अन्न एवं यान मिलता, किन्तु पहला
प्राणीवन विगड़ता, पतिथि या पशु चला और अग्नेको
स्त्रदेगसे विदेग जाना पड़ता है । उत्तरदिक्में शब्द
करनेपर दुःख, सर्वका भय, दारिद्र्य, धनका नाश और
प्रियव्यक्तिलाभ होता है । ईशान दिक्में बोलनेसे
अन्त्यज आते, रोगके कारण उठते देवतासे प्रिय वस्तु मिल
जाते और पीडाका आधिपत्यमें रहते मृत्यु पाते हैं ।
ब्रह्मदेग अर्थात् ऊर्ध्व दिक्को मधुर स्त्रसे शब्द करने
पर वाञ्छित अर्थ, प्रभुर अनुपद और धन मिलता है ।

गणपतिदेवके कोई पुत्र न था। उनकी एक मात्र कन्या उमाकदेवीसे राज महेंद्रीके राजकुमार चालुक्यतिलक वीरभद्रका विवाह हुआ। नृत्यसमय गणपतिके दौड़ित्रका भी जन्म न था। सुतरां उनकी पत्नी रुद्रयादेवीने भूमिपत्न हो २८ वर्ष राजत्व रखा। फिर वयोप्राप्त होने पर उमाकदेवीके पुत्र प्रतापरुद्रदेवको मातामह गणपतिदेवका सिंहासन मिल गया। प्रतापरुद्रदेव ही वरङ्गलके अन्तिम स्वाधीन थे। उन्होंने गोदावरीसे सेतुबन्ध-रामेश्वर पर्यन्त अप्रतिहत प्रभावसे राजत्व चलाया। सुननेमें आता है कि उनके प्रथम प्रतापसे घबरा कटकके राजाने दिल्लीमें बादशाहसे साहाय्य मांगा था। सुसलमानोंका इतिहास पढ़नेपर समझ पड़ता है कि १३२३ई०को प्रतापरुद्र उनसे परास्त हुए और पकड़ कर दिल्ली भेजे गये। कुछ दिन पीछे प्रतापरुद्र स्वाधीनता लाभ कर वरङ्गलको छोड़े। किन्तु फिर वह अधिक दिन इहलोकमें न रहे। मरनेपर उनके पुत्र वीरभद्र राजा बने। उनके समय सुसलमानोंके आक्रमणसे वरङ्गल राजधानी भष्मीभूत हुई। वीरभद्रने वरङ्गल छोड़ कोण्डवीड़ नामक स्थानमें एक नूतन नगर बसाया था। उसी समय वरङ्गलके काकतय (काकतीय) राजवंशका राजत्व जाता रहा। कोणवेरु देखो।

काकदन्त (सं० पु०) काकस्य दन्तः। काकका दन्त, कौबेका दांत। कौबेके दांत नहीं होते। इसीसे असम्भव विषयको काकदन्त कहते हैं। शशविषाण, घूर्मसोम, और वन्यापुत्रकी भांति यह भी निरर्थक वाक्य है।

काकदन्तिक (सं० पु०) प्राचीन चन्द्रियजातिविशेष। काकदन्तकौय (सं० पु०) काकदन्तक चन्द्रियोंके एक राजा।

काकदन्तगवेषण (सं० पु०) काकस्य दन्ताः सन्ति न वा इति संशये तत्र वर्षभेदस्य संख्याविशेषस्य च गवेषणमित्यनर्थकः प्रयत्नो यत्न। अकारण अन्वेषणबोधक न्यायविशेष, विकासदा, खोजमें पड़नेका एक लौकिक न्याय। काकके दन्त रहने या न रहनेका सन्देह, निश्चित होनेसे पहले वर्ष और संख्या पर बात बढाना अन-

र्थक है। यह न्याय अनर्थक वितण्डाके स्थान पर लगता है।

काकदन्तिका (सं० स्त्री०) १ काकादनी कता, सफेद या लाल पुंघची। २ दन्तीहृष, दांतौका पेड़। ३ रत्नकाकमाची, लालकेवैया

काकद्रुम (सं० पु०) हृष विशेष, एक पेड़। (Dalbergia rimosa) श्रीहृष्ट (सिलहट)में इसे काकद्रुम कहते हैं। यह भ्राइदार पेड़ है। काकद्रुम पूर्व हिमालयके उष्ण प्रदेशमें ४००० फीट ऊंचा होता है। खसिया पर्यंत, श्रीहृष्ट और आसाममें इसे अधिक देखते हैं। यमुनासे पश्चिम सिवालिक प्रांत और हिमालयके वहिर्भागमें भी यह पाया जाता है। मङ्गलोर (वङ्गलोर)में इसकी छवि होती है।

काकध्वज (सं० पु०) काकं ध्वजलं वायं ध्वज इत्यस्य। बाइवाग्नि, समुद्रका भीतरकी प्राग। राक्षसि देखो। २ शीव ऋषि।

काकनन्ती (सं० स्त्री०) कु इत्यत् कनन्ती निमोसन्ती, कोः कादेगः। काकणन्तिका, पुंघची।

काकनामा (सं० पु०) काकस्य नाम इव नाम यस्य, मध्यपदस्त्री०। वकहृष, भगस्तिका पेड़। काकशिवे देवी काकनामा काकनामा देवी।

काकनास (सं० पु०) काकस्य नासाया वर्षं इव फले यस्य। विकण्टक हृष, मोखुरीका पेड़।

काकनासा (सं० स्त्री०) काकस्य नासा इव फलमस्याः। १ महाश्वेत काकमाची, कौवाटोटी। (Solanum indicum) यह मधुर, शीतल, पिच्छ, रसायन, दाह्यकर और विशेषतः पलितज्ञ होता है। (पाणिपण्ड्य) भावप्रकाशमें इसे कपाय, उष्ण, रस पयं पाकमें कटु, कफघ्न, वाग्निकर, तिक्त और शोथ, भ्रम, शिथिल तथा कुष्ठनाशक कहा है।

काकनासिका (सं० स्त्री०) काकनासा स्त्रायं कन्टाप चत इत्वम्। १ रत्नविहङ्ग, लाल मिशैत। २ काकलंघा, चकसेनी।

काकनिद्रा (सं० स्त्री०) काकस्य निद्रा इव निद्रा, मध्यपदस्त्री०। काककी निद्रा-सेही अतिरक्त निद्रा, कौबेकी तरह होशियारीके साथ सोना।

प्रथम प्रहरके समय पूर्व दिक्को काक बोलनेसे चिन्तित कार्य बनता, पभीट व्यक्ति या पडता और विनष्ट विषय मिना करता है। अग्निशीर्षमें सेवेरे शब्द करनेसे स्त्रीलाभ और शत्रु नाश होता है। दक्षिण दिक्को प्रातःकाल बोलनेसे स्त्री, सुख और प्रियमङ्ग पाते है। नैऋत दिक्में पक्षि पहर टेर लगानेमें प्रियपत्नी, मिष्टान्न सामग्री और चिन्तित विषयकी मिहि मिलती है। पश्चिम और पुकारनेसे पूज्य जन आते और मेघ वरसने लग जाते है। वायुकोषमें बोलने शुभ, राजप्रसाद और पथिक देख पड़ता है। उत्तर कोणको टेर उठानेपर भय, चौर, शोक, सुख अथवा धन लाभका संवाद मिलता है। ईशानकोषसे शब्द जाने पर प्रिय व्यक्तिके साथ आलाप, अग्निका नाश, और बहुतेसे लोगोंका साथ होता है। मध्यदेशमें बोलनेसे सुख एवं कामभोग, सम्मान, सम्पद, धन और सिद्धि पाते हैं।

द्वितीय प्रहर पूर्वदिक्में काकका शब्द सुननेसे कोई पथिक आता, चौरका भय देखता और व्याकुलता तथा अतिशय आगह्वाका वेग बढ़ जाता है। अग्निशीर्षमें बोलना प्रियव्यक्तिके आगमनसंवाद और स्त्रीलाभका सूचक है। दक्षिणके शब्दसे पानी पड़ता, अतिशय भय बढ़ता और प्रिय व्यक्ति या पङ्कतता है। नैऋतमें दो पहरको काक बोलनेसे प्राणभय, स्त्री एवं भोग्यलाभ और यावतीय रोगका नाश होता है। पश्चिममें पुकारनेसे स्त्री मिलती, सम्पद बढ़ती और कुष्ठटि पड़ती है। वायुकोषमें बोलनेसे ध्वज तथा चौर सङ्घ, दूतका आगमन, और स्त्री मांस तथा अन्नलाभ होता है। उत्तरको रम्य रव निकालनेसे स्वर्ण एवं दुष्ट व्यक्ति आता और जयलाभ देघाता, किन्तु परम्य स्त्रर रहते औरभय बढ़ जाता है। ईशानमें हथ भागसे बोलने पर चौर तथा अग्निका भय समाता और विरह बाध सुनाता, किन्तु अरुह लगने पर शुभभागमन एवं जयलाभ देघाता है। मध्यदेशमें दिनके द्वितीय प्रहर सुगन्धसे राजप्रसाद तथा मिष्टान्न मिलता, किन्तु कुगन्धसे औरभय लगता है।

तृतीय प्रहरको पूर्वदिक्में काकके रुच शब्द

निकालते सम्पद बढ़ती तथा चौरभीति या पड़ती, किन्तु रम्य ध्वनि रहनेसे राजाकी अवायो ठहरती और जयप्राप्ति एवं कार्यसिद्धि लगती है। इसी प्रकार अग्नि-कोषमें विरह शब्दसे पत्निभय, कलह, असुख संवाद तथा यात्राकी विफलता और विरह स्त्रसे जयादि संवाद पाते है। दक्षिण दिक् बोलनेसे शीघ्र ही राग लगता, प्राप्त व्यक्ति या पड़ता और सुदृ कार्य बनता है। नैऋत दिक्को शब्द करनेसे मेघागम, मिष्टान्न लाभ, शत्रु नाश, शूद्रागमन, प्रभुके विरह संवाद अथवा और यात्रामें कार्यनाश होता है। पश्चिमको टेर लगानेसे मष्टघन मिलता, दूर पथ चरना पड़ता, सुदृ व्यक्ति या पङ्कतता, पभीट जयादिका संवाद लगता, स्त्रीलाभ ठहरता और यात्रामें कार्य बनता है। वायु-कोषमें बोलनेसे दुर्दिनवार्ता, अपङ्कत वस्तुका लाभ, सन्तोषकर संवाद, उत्तम स्त्रीलाभ और यात्रा होता है। उत्तर दिक् शब्द कर उठनेपर कार्य बनता, अर्थ मिलता, भोग्यव्यक्तिका शुभ संवाद सुन पड़ता और गमन तथा वैश्वसमागम रहता है। ईशान दिक्के सुगन्धसे भोज्य एवं जय मिलता, किन्तु कुगन्धसे हानि तथा कलह उठाना पड़ता है। मध्यदिक्को बोलनेसे तिलतण्डुल एवं ताम्बूलसयुक्त भोग्यलाभ होता है।

चतुर्थ प्रहर—पूर्व दिक्को काक बोलनेसे अर्थलाभ, राजपूजा, अभय, सम्पदवृद्धि और रोग तथा अग्नि-कोषसे शब्द जानेपर भय, रोग, मृत्यु और मिष्टागम, दक्षिण दिक् पुकारनेसे तस्त्र तथा शत्रुका भय बढ़ता, मिष्टान्न या पङ्कतता और रोग एवं मृत्यु देख पड़ता है। नैऋतकी टेरसे अतिवृद्धि, पभीटसिद्धि और पठमें चौरके साथ युद्ध होता है। पश्चिममें पुका-रनेसे द्राघ्यथका आगमन, अर्थ लाभ, स्त्री एवं जयलाभ, अर्थ, यात्रामें मनोरथ पूरण और राजप्रसाद होता है। वायुकोषमें बोलनेसे प्रियपत्नीका आगमन, मसाहके मध्य प्रवास और सत्वर प्रत्यागमन है। उत्तरको शब्द कर उठने पर पथिक आता, ताम्बूल पाया जाता, कुशल संवाद सुनाता, वैश्वसेवन मिनने देघाता, अन्नदि पर आरोहण लगता और विरह यात्रासे रोगी प्राय गंवाता है। ईशान दिक्को शब्द सुन पडने

काकनीला (सं० स्त्री०) काक इव नीला । काक-
जम्बुवृक्ष, जङ्गली जामनका पेड़ ।

काकनी (सं० स्त्री०) कृष्णगोम्बी, काली सेम ।

काकन्दक (सं० त्रि०) काकन्दो देशे भक्षः, काकन्दो-
वृक्ष । रोपणीतः प्रायान् । वा । ४ । २ । १११ । काकन्दो देश-
वासो, काकन्दो मुल्लका रङ्गनेवाला ।

काकन्दि (सं० पु०) क्षत्रिय जातिविशेष ।

काकन्दो (सं० स्त्री०) काकन्दि-डीप् । १ देगविशेष,
कोई मुल्ला । २ चिन्हा, दमलो ।

काकन्दोय (सं० त्रि०) काकन्दो-वृक्ष । काकन्दोदेश-
वासो, काकन्दो मुल्लका रङ्गनेवाला । २ काकन्दि
क्षत्रियोंका राजा ।

काकपक्ष (सं० पु०) काकस्य पक्ष इव आकारो
ऽस्त्यस्य, काक-पक्ष-पक्ष् । १ मस्तकके समय पाखं
केसरचना, शिरकी दोनों ओर वालोंका बनाव ।
इसका संश्लत पर्याय—मिखण्डक ओर मिखण्ड है ।
पूर्व समयमें बालकोंके मस्तक पर ऐसी हो के प-
रचनाका व्यवहार था,—

“कौशिकेन स हिम क्षितोरौ रामनभरतिवातयामने ।

काकपक्षपरनीय शपितसो जवादि न यवः समोद्यते ॥” (१४ । १११)

२ कर्णके समय पाखं केसरचनाविशेष, कानोंकी
दोनों ओर वालोंका बनाव, पटा, लुफ ।

“काकपक्ष मिर सोहत नीके ।

गुच्छा विष विष कुसमबलीके ॥” (१५०)

काकपक्षयुक्त (सं० त्रि०) काकपक्षेण केशसंस्कार-
विशेष युक्तः, इ-तत् । १ मिखण्डकयुक्त, लुफनावाला ।
२ कानोंके पास पट्टे रखाये हुआ ।

काकपद (सं० पु०) काकपद इव आकारो ऽस्त्यस्य,
काक-पद-पक्ष् । १ रतिवन्ध विशेष ।

“जादो रो कक्षयुग्मसो बिप्ला जिह” मने सङ्ग ।

आलयन् कावको जादो रन्धः कावको मतो ॥” (रतिमधरो)

(स्त्री०) काकस्य पदं पदपरिमाणम् । २ काकके
पदकी भांति परिमाण, कौबेके पैरकी तरह नाप ।
स्मृतिग्रन्थमें इसी परिमाणसे मिखा रखनेकी व्यवस्था
है । ३ कपाससे शिरपर्यन्त सुण्डन । काकपदवत्
आकृतिरस्त्यस्य । ४ चिन्ह विशेष, एक नियान् ।

(वा०) पुस्तकमें लिखित विषयकी अपेक्षा स्थान
स्थान पर कुछ अधिक भी मिला देना पड़ता है । ऐसे
स्थलपर यह चिन्ह लगता है । इस चिन्हके नीचे
ऊपर जो लिखते उसे उक्त विषयमें हो संज्ञान
समझते हैं । काकपद छूटे हुये लिखको पूरा करनेमें
व्यवहृत होता है ।

काकपर्णी (सं० स्त्री०) काक इव कृष्णपर्णं यस्याः,
काकपर्ण-डीप् । सुदपर्णी, मोठ । हदगर्णं देवो ।

काकपीलु (सं० पु०) काकप्रियः पीलुः । १ काक-
तिन्तुक, कुचिला । काकादनीलता, कौवाटोटो ।
३ श्वेतगुच्छा, सफेद गुँघची । ४ रक्त गुच्छा, लाल
गुँघची ।

काकपीलुक (सं० पु०) काकपीलु संज्ञायाम् कन् ।

काकपीलु देवो ।

काकपुच्छ (सं० पु०) काकस्य पुच्छ इव पुच्छी यस्य,
मध्यपदलो० । कौकिल, कोयल ।

काकपुष्ट (सं० पु०) काकेन पुष्टः, इ-तत् । कौकिल,
कोयल । कौकिली अपने षण्डेको पीस नहीं सकती ।
इसीसे वह काकके घोंसलेमें जा उड़के षण्डे फेंक अपने
षण्डे रख पाती है । काक उन्हें अपने षण्डे समझ
सेवा करता है । षण्डे फूटने पीछे भी जवतक सम्पूर्ण
रोव्या पन्न नहीं जाये, तबतक कौकिलके श्रावक सुग्-
किलसे पहँचाने जाते हैं । सुतरां काकभी उनका
पालन करता रहता है । काककर्तृक प्रतिपालित
होनेसे ही कौकिल 'काकपुष्ट' कहता है ।

काकपुष्प (सं० स्त्री०) काकवत् कृष्णं पुष्पं यस्य,
बहुव्री० । १ भ्रन्विपर्ण, एक खुगवृद्धार चीज् ।
२ सुगन्धवृक्ष, खुगवृद्धार घास ।

काकपेय (सं० त्रि०) काकेरगतकम्परः पीयते, काक-
पा-यत् । कृष्णरथिकावैष्यने । वा । २ । १ । १२ । काकके पान
कारने योग्य, जिसे कौवा पी सके ।

काकप्राणा (सं० स्त्री०) १ काकनासा, कौवाटोटो ।
२ मझाश्वेतकाकमाची, बड़ी सफेद केथैया ।

काकफल (सं० पु०) काकप्रियं फलमस्य, मध्य-
पदलो० । १ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़ । निम्बदेवो ।
२ काकजम्बु, कठजामन ।

स्वर्णका संवाद आता और रोग नष्ट हो जाता है ।
ब्रह्मादिकमें बोलनेसे मध्यम वार्ता और मध्यम सिद्धि
होती है ।

टिक् और प्रहरादिके अनुसार सकल शुभाशुभ
विभिन्नभावसे कहा है । इसमें दीप्तशब्दको अशुभ
और शान्त शब्दको शुभकर समझना चाहिये । दूसरे
दीप्तदिकका रव शान्त दिककी प्रसारित होनेसे
अधिक फलप्रद है । दीप्तदिकको बैठ उसी और देखते
देखते बोलना अच्छा नहीं होता । दीप्त दिकमें रव
प्रदीप्त दिककी देखते देखते शब्द करना भी दुष्ट है ।
दीप्त दिकमें बैठ प्रशान्त दिककी घूम बोलनेसे तुच्छ
और दुष्टफल मिलता है । शाखा पर रव शान्त-
दिककी देखते देखते रूध शब्द निकालनेसे अल्प
फलिष्ट होता है । शान्त दिकको दृष्टि डालते डालते
शान्त स्वरसे बोलना अल्प अभीष्टप्रद है । शान्त
दिकमें रव दीप्त दिक देखते देखते शब्द करना शीघ्र
अभीष्टप्रद होता है । इसी प्रकार मनुष्योंको काकीका
आकार, प्रकार, भाव और रव विभाग कर दिवारान्नमें
चारो प्रहरोंका शुभाशुभ देखना चाहिये ।

काक और स्याम विशेषमें काकका शब्द निर्माण
देखकर भी शुभाशुभ निरूपित होता है ।

वैशाख मासको निरूपद्रव्य हृत्तमें गृहनिर्माण
करनेसे देशका मङ्गल और कुण्डित, शब्द वा कण्ठक-
युक्त हृत्तमें घोंसला लगानेसे दुर्भिक्ष होता है । प्रशस्त
हृत्तकी पूर्व शाखा पर घर बांधते पानी बरसता, शकुन-
प्रशाद मिलता, नौरोग रहता और विषय हाथ लगता
है । अग्निकोणकी शाखासे हृत्ति, भय, कलह
वा पाप, दुर्भिक्ष एवं शत्रुद्वारा देय नाग और पशु-
वर्षोंकी पीड़ा है । दक्षिण शाखासे अल्प हृत्तिपात,
अन्ननाश और शत्रु विरोध होता है । नैर्ऋत शाखा
पर घोंसला लगानेसे वर्षाकालकी अल्प जल बरसता,
मनुष्यकी रोग शत्रु तथा और भय रहता, दुर्भिक्ष
पड़ता और युद्ध चलता है । पश्चिम शाखासे हृत्ति,
नौरोग, मङ्गल, सुभिक्ष, सम्पद और धानम्द है । वायु-
कोणस्थ शाखापर घोंसला रहनेसे अल्प वायु आता,
भय अल्प जल बरसता, मृषिकोंका उपद्रव बढ़ जाता,

शय्य नसाता और दोनों और महाविरोध देखाता है ।
उत्तर शाखा पर होनेसे वर्षाकालको परिमित हृत्ति,
मङ्गल, सुभिक्ष, सुख, नौरोग, सम्पद-हृत्ति और सत्यदि
है । ईशानदिकस्थ शाखापर रहनेसे अल्प जल बर-
सता, शत्रु बढ़ता, प्रजावर्गका उत्सर्ग पड़ता, वाग्ध्व
कलह लगाने लगता और जनसमूह मर्यादाशून्य
बनता है । हृत्तकी अग्रभागमें प्रति हृत्ति, मध्यदेशमें
मध्यमरूप हृत्ति और निम्न देशमें रहनेसे पनाहृत्ति
होती है । भूमिमें कोण बनानेसे अहृत्ति और रोगादि
भयकी हृत्ति है । शब्द हृत्तपर बसनेसे विषय और
अन्ननाश है । प्राचीरकी रन्ध्रमें काक रहनेसे प्रभूत
भय लगता है । निम्नप्रदेश, तरकोटर, वाल्मो-
रन्ध्र और लतामें सो जाननेसे पीड़ा, अहृत्ति और देशकी
नियमकी शून्यता रहती है ।

अष्टप्रहरके प्रहरानुशुभाशुभका नियंत्रण—एकको वारुण,
दोको अग्नि, तीनको वायु और चार अण्डे देनेको
रेन्द्रे कहते हैं । वारुणसे पृथिवीमें शय्य बहुत बढ़ता,
अग्निसे मन्द वर्षण पड़ता तथा रोपित वीजमें अहृत्त
नहीं उठता, वायुसे शय्य उत्पन्न होते भी सूखते सूखते
शय्य प्रश्रुति कीटोंका भक्षण-बनता और रेन्द्रे अण्ड
प्रसव करनेसे मङ्गल, सुभिक्ष, सुख और कार्य
निकलता है ।

काकके शब्द शेषादिसे यात्राकालीन शुभाशुभका नियंत्रण—काकी-
की दधि और अन्नयुक्त पूजा चढ़ा यात्राके समय प्रवासी
निकीर्ण मन्त्रपाठपूर्वक नमस्कार करते हैं,—

—“सुखसे वसिं पवित्रु मन्त्रपूर्वं लं प्रावित्रु प्रावित्रु वर्षं सचम् ।

शुभे न, च स्त्री भजसे नमोऽस्तु तुभ्यं खगोन्द्राय सहस्रतृषयाय ॥”

नमस्कारके पीछे अपना कार्य सोच सिद्धिकी
कामनासे काक दर्शन करना पड़ता है । उस समय
यदि यह वामदिकसे मधुर शब्द कर दक्षिण और
चला आता, तो सर्वार्थ सिद्ध हो जाता और प्रत्यागमन
देखाता है । फिर वाम दिकसे घूम लौट आने पर
भी अभीष्ट कार्य बनता, मङ्गल लगता और शीघ्र
प्रत्यागमन पड़ता है । वामदिकमें अनुकीम लगाने
अर्थात् ऊपरसे नीचे आते समय मधुर रव निकालने
पर प्रयोजन सिद्ध होता है । वाम और दक्षिण उभय

काकफला (सं० स्त्री०) काकप्रियं फलमस्याः, मध्य-

पदलो० । काकजम्बू, जङ्गली जामन ।

काकवन्ध्या (सं० स्त्री०) काकीव वन्ध्या, पुंवद्भाषः । एकमात्रप्रसवा भार्या, एक ही बच्चा पैदा करनेवाली औरत । काकी केवल एक बार प्रसव करती है, इसीसे जो स्त्री एक ही प्रसवसे वन्ध्या हो जाती, वह काकवन्ध्या कहती है ।

काकवलि (सं० पु०) काकेभ्यो देव्यो बलिर्वादिक्कम् मध्यपदलो० । काकको दिया जानिवाला भन्नादि । प्रथम काकको पाछादि दे निम्नोक्त मन्त्रसे पूजते हैं,—

“कं यमराजप्रसित-नामादिग् देव्योवायसेभ्यो नमः ।”

फिर इस मन्त्रसे प्रार्थना की जाती है ।

“कं काक त्वं यमदूतोऽसि स्वपाप बलिमुपमः ।

यमलोचनतं त्रै तं त्वमाप्यापितुमर्हसि ॥”

इस प्रार्थना पर पिण्डदान वा मन्त्रपाठ करना पड़ता है—

“ (ओं) काकाय काकपुत्राय वायसाय मुधाधमे ।

अथपिण्डं प्रयच्छामि कृपया धमेराजनि ॥”

आङ्गकतत्त्वमें पिण्डदानका दूसरा मन्त्र कहा है,—

“शेन्द्रावाचकवाक्याः सोम्या वे श्वात्कारुपा ।

वायसः प्रतिगृह्यन्नुभूमी पिण्डं मयार्पितम् ॥

कं काकेभ्यो नमः ।”

सक्त मन्त्रसे दान पिण्डपर जल छिड़कना पड़ता है ।

काकमण्डी (सं० स्त्री०) श्वेतगुष्ठा, सफेद गुंघची ।

काकभाण्डी (सं० स्त्री०) काकस्य ईशज्जलस्य मुख-स्त्रावरुपस्य भाण्डी क्षुद्रभाण्डमिव, उपमि० । १ महाकरण, बड़ा करौंदा । २ लघु रक्तमाचिका, छोटी लाल कीवाटीटी ।

काकभीरु (सं० पु०) काकात् भीरुर्भयशीलः, भू-तत् । पेशक, कौबेसे डरनेवाला लड़क । पेशक देखो ।

काकभुगण्डि (सं० पु०) एक ब्राह्मणः । यह रामके सधे भक्त रहे । कौमशके शापसे इन्हें काक होना पड़ा था । काकभुगण्डिने रामकी कथा गढ़से कही है ।

काकमद् (सं० पु०) काक इव लघ्वो मदगुर्जलकर पक्षिमियेयः । दाँतूँ, पानीकी सुरंगी या कुकड़ी ।

“हन् इत्ता गृह्णतिः काकमद्गुः प्रजापति ॥” (भारत, १५१११११११)

काकम^१ (सं० पु०) काकं मृदुनाति, काक-मृदु-षण् । महाकाकलता । किसी किन्नरी कड़वी लकी । यह कौबेकी मार डालता है ।

काकमटक, काकमटे देखो ।

काकमांस (सं० स्त्री०) वायसमांस, कौबेका गोश्त ।

काकमाचिका (सं० स्त्री०) काकमाचो छाये कन्-टापुल्लवः । काकमाचो देखो ।

काकमाची (सं० स्त्री०) काकान् मसूते, मवि-षण् । डीप छुपीदरादित्वात् नभोपः । खनामस्थित पत्रशाक विशेष, एक छोटा पेड़ । इसका संस्कृत पर्याय—वायसी, पाङ्चमाची, वायसाक्षा; सर्वतिल्ला, महुफला, कटुफला, रसायनी, गुच्छुफला, काकमाता, खादु-पाका, सुन्दरी, तिल्लिका और बहुतिल्ला है ।

हिन्दीमें काकमाचीको कौबेया या मकोय, बंगलामें कासते या मधुनी, मराठीमें कसुनी या चाटो और तामिलमें मनोककली कहते हैं । (Solanum nigrum) .

यह शाकप्रधान सुदृग्घृह है । भारत और सिन्धुमें ७००० फीट ऊँचे इसे सर्वत्र पाने हैं ।

भारतके अनेक विभागोंमें इसके पत्र और मृदु अक्षुर पालककी भांति उबालकर खाये जाते हैं । सुपका गुटिकायें बालकोंके खानेमें आतीं और कोरें पसर नहीं दिखातीं ।

राजनिघण्टु तथा राजवैद्यके मतमें यह कटु, तिक्त, उष्ण, हृष्य, रसायन, रोचक, भेदक, धीर कफ, शूल, अश्लीरोग, शोथ, कुष्ठ एवं कण्डूनाशक है । भाव-प्रकाशमें इसे क्ष्वर, मेह, नेत्ररोग, हिक्का, वमि और हृद्रोग मिटानेवाली भी कहा है । यकृत बढ़नेपर डेढ़ पाव काकमाचीके रस प्रयोगसे विशेष उपकार होता है । शोथरोगमें भी इसके पत्रका काथ चयवा रस दिनमें तीनवार एक-एक ड्राम पिलाया जा सकता है ।

काकमाची श्वेत रक्त भेदने दो प्रकारकी होती है । श्वेतकी श्वेता तथा महाश्वेता और रक्तकी अक्षुररक्त काकमाची कहते हैं । श्वेत काकमाची मधुर, रसायन, शीत, कषाय, कटु, तिक्त, उष्ण, वमिप्रद, तनुदायक और कफ, शोथ, अग्नि, पित्त, विष,

दिक् उक्त प्रकारसे ही शब्द करने पर कुछ कार्य बनते और कुछ विगड़ते भी हैं। पृष्ठदेशको मधुर स्वरसे बोलते बोलते पट्टुं चनेपर मङ्गल होता है। शब्द करते करते प्राग्नि, पट्टुं चकर हर्ष देखाने पथवा पद द्वारा मत्या खुजलानेसे पमिष्ट सिद्ध होता है। हाथी वाधनेके खंटे पर बैठ कर हाथी बोलनेसे हाथी मिलता और हाथीपर राजत्व भी चलता है। अश्वके वन्धन-स्तम्भ पर बैठकर पुकारनेसे वाहन एवं भूमिका लाभ होता है। ध्वजसे विजय, कूपसे नष्टवस्तु एवं जयका लाभ, नदीतीरसे कार्य सिद्धि, पूर्ण घटसे धनलाभ, प्रासादसे धान्य राशि और हर्म्यपृष्ठ एवं शस्त्रपथपूर्ण भूमिपर अवस्थित हो बोलनेसे धनलाभ है। फिर शुभ शब्द निकालनेसे भी धन मिल जाता है। पृष्ठदेश वा समुद्रकी गोमय पथवा वटादि हृत् पर बैठ कर विष्टामुख बोलनेसे अभिलषित भोजन पान लाभ होता है। फिर सुखमें अत्यादि, विष्टा, फल, मूल, पुष्य वा मत्स्य देख पड़ते भी मिष्टान्न भोजन पाते हैं। गारी-शिरस्थ पूर्ण घट पर चढ़ कर पुकारनेसे स्त्री एवं धन लाभ है। शय्यापर बैठ कर बोलनेसे सुजन समागम होता है। सामने गोपृष्ठ, हृत्, दूर्वा वा गोमय पर चक्षु रगड़ते पथवा अन्यको बाह्य प्रदान करते देखनेसे विचित्र भोग्य मिलता है। धान्य, यव, दधि वा घृत देख बोल सठनेसे धन पाते हैं। सुखमें हरि-हर्म्य तण से समुद्र पानसे लाभ रहता है। मनोरम अङ्कुर, पत्र, पुष्प, फल तथा छायायुक्त हृत्पर शब्द करनेसे कार्यसिद्धि होती है। हृत्के शिखरदेशमें प्रशान्त भावसे शब्द करने पर स्त्रीसङ्ग गठता है। धान्यादि राशिपर रथ लगानेसे अन्नलाभ है। गोपृष्ठ पर बैठकर बोलनेसे गो एवं स्त्रीकी पाति हैं। इन्द्रि-शिशुके पृष्ठपर शब्द करनेसे मङ्गल होने लगता है। इसी प्रकार गर्दभके पृष्ठसे शत्रु भय तथा वध, शूकरके पृष्ठमें वध, घन पट्टयुक्त शूकरके धन लाभ, मन्दिपके पृष्ठमें सचोत्तर, मृतके शरीरसे मृत्यु, शून्यकलसे कार्यवृत्ति और काष्ठ पर अवस्थित हो शब्द करनेसे कलह है। दक्षिण दिक्में बोल चलते, समुद्रसे मृत्यु, शून्यकलसे कार्यवृत्ति और काष्ठपर अवस्थित

हो शब्द करनेसे कलह है। दक्षिण दिक्में बोल चलते, समुद्रसे भा पड़ते पथवा पश्चाद् दिक् शब्द सुनाते सुनाते विपरीत भावसे गमन करते रक्तपात होता है। वाम और दक्षिण क्रमसे समय दिक् शब्द करनेपर अनर्थ रहता है। वाम दिक्की विपरीत भावसे लानेपर विघ्न पड़ता है। पथान् दिक्से बोलते दक्षिण और गमन करनेपर रक्तपात होता है। लतादि से प्रदक्षिण लगानेपर सर्पभय रहता है। गोपृच्छ और अश्लीक पर बैठ बोलनेसे सर्पदर्शन होता है। अङ्गार, चिता और अस्थिपर अवस्थानकर शब्द निकालनेसे मृत्यु प्राप्ती है। कर चर्षण कर बोलनेसे शानि और पीडा है। पृष्ठदेशको निष्ठुर शब्द करनेसे मृत्यु होती है। शून्यमुख फैलाये रहनेसे पमङ्गल लगता है। पराङ्मुख होते रक्तपात वा वन्धन होता है। परस्पर लड़नेसे वध है। पराङ्मुख ही शब्द हृत् पर रहनेसे रोग लगता है। तिल हृत् पर अवस्थान करनेसे कलह और कार्यनाश होता है। कण्ठ क-युक्त हृत् पर पच ह्य कंपा रुच शब्द करने पर मृत्यु प्राप्ती है। भग्न शाखापर रहनेसे वध है। लता-वेष्टित स्थान पर अवस्थित होते वन्धन पड़ता है। कण्ठकयुक्त रम्य हृत्पर बैठते कलह कार्य सिद्धि है। आच्छन्न हृत्पर रहनेसे रक्तपात होता है। विष्टा, पावर्जना, मृत्तिका, तण, काष्ठ, कूप और भय्यादि पर बैठनेसे कार्य विगड़ जाता है। काकके सुफमें लता, रज्जु, केश, शष्प काष्ठ, चर्म, अस्थि, नीर्णवस्तु वस्तु, अङ्गार तथा रक्तोपल आदि देखनेसे पुष्पक्षय, पाप समागम, पथ एवं भालयमें मङ्गलभय, रोग, वन्धन, वध और सर्वधनापहरण प्रभृति होता है। सुखको क्षपर उठा चक्षल पचसे कर्कश शब्द निकालनेसे मृत्यु प्राप्ती है। एक पैर सिकोड़ और सूर्यकी और मुख मोड़ दीप्त स्वरसे बोलने पथवा काष्ठादि फोड़नेपर युद्धादिमें अनर्थ रहता है। चक्षु से पुच्छदेश खुजला शब्द करने पर मृत्यु होती है। एक पैरसे बैठते वन्धन है। मस्तक पर विष्टा वा गोमय डाल देनेसे यात्राकारी वन्धनमें पड़ता है। अस्थि फेंकनेसे मृत्यु होती है। जख् दिक् बोलनेसे स्त्रीदोष लगता

तथा खेतकुष्ठनामक है। महाखेत काकमाची तुवर, चण्ड, रसायन, कटु, तिक्त, हृदिकर, शौर वात, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, कफ, हृदि, क्षमि, च्वर एवं पलितत्र हीती है। रक्त काममाची जीवत्, वात एवं कफकर, हृद्य रसायन शौर पित्त तथा त्रिदोषनामक है।

काकमाचीतैल (सं० स्त्री०) खनामख्यात पत्रगाकका तैल, मकोयका तैल। मनःशिला, सोमराजी बीज, सिन्दूर तथा गन्धकके डाल चार पल कटुतैल काकमाचीके रसमें एकाते हैं। इस तैलको १ भाण (४ मासे) लगानेसे अर्धविका (सरकी खुबली) अच्छी हो जाती है। (१४४काकर)

काकमाता (सं० स्त्री०) काकस्य मातेव पोषिका तत् फलप्रियत्वात्। काकमाची क्षुप, मकोयका पोदा। काकमुख (सं० त्रि०) काकस्य मुखमिव मुखं यस्य, बहुव्री०। काकवत् मुखमिगिष्ट, जो कौबेकी तरह मंड रहता हो। (पु०) २ पुराणोक्त जातिविशेष। यह सम्भवतः महानदीके उपकूलमें रहते थे।

काकमुहा (सं० स्त्री०) काकेन ईपल्लनेन सुदं गच्छति, काक-मुद्ग-गम-हं-टाप्। सुद्वर्षी, मोट। हृद्वर्षी श्लो। काकमृग (सं० पु०) वायस एवं हरिण, कौवा शौर हिरन।

काकस्यौर (सं० पु०) हृद्यविशेष, लिखी पेड़का नाम। काकयव (सं० पु०) काकवत् निर्गुणो यवः। शस्य-हीन धान्य, खीखसा धान। इसमें चावल नहीं होता।

“ तयैव वाग्वाः सर्वे तथा काकयवा इव। ” (महाभारत)
काकयान (सं० स्त्री०) कौट्यदेगख्यात हासानाम हृद्यविशेष, एक पेड़।

काकर—बस्वई प्रान्तके शिकारपुर जिलेकी एक तहसील। यह पचा० २६° ५८' ७" और देगा० ६७° ४४' ५०" पर अवस्थित है। भूमिका परिमाण ५८८ वर्ग मील है। इसमें ११ थाने और फौजदारीकी २ पदालतें हैं। मालगुजारीमें गवरनमेष्टकी १८६२१०) ६० मिलता है। लोकसंख्या प्रायः पचास हजार है।

काकरव (सं० पु०) भीरुपुरुष, डरपोक भादमी। जो व्यक्ति काकवत् भयभीत हो कोसाहल करता है उसको 'काकरव' कहते हैं।

काकराला (ककराला)—युक्तप्रदेशके बुदाक जिलेकी दातागञ्ज तहसीलका एक नगर। यह बुदाक नगरसे कुछ कोस दूर है। यहां भारतीयोंके देव-मन्दिर और मुसलमानोंकी मसजिदें विद्यमान हैं। सिपाही विद्रोहके समय बलवाइयोंने ककराला जलाया था। १८७५ ई०के फरवरी मासमें अंगरेज सेना-नायक जनरल पेगो विद्रोहियोंका शासन करने आये। किन्तु कुछ मुसलमानों (जानियों)ने उन्हें मार डाला। आखिर इनके सेन्यसमूहने विद्रोहियोंकी सम्पूर्ण रूपसे हराया था। लोकसंख्या प्रायः छह हजार है। भारतीयोंने मुसलमान अधिक मिलते हैं।

काकरासोमी (हिं०) कर्कटग्रो श्लो। काकरिपु (सं० पु०) उलूक, कौबेका ग्रन्थ, उलू। काकरी (हिं०) कर्कटी श्लो।

काकरक, काकरक श्लो। काकरत, (सं० स्त्री०) काकस्य इतम्, इ-तत्। काकरव, कौबेकी बोली। काकरिम श्लो।

काकरहा (सं० स्त्री०) काक इव रोहति मूलशून्य-तया वृक्षाद्यवशस्वनेन जायते, काक-रुह-क-टाप् युदा काकपुरीषान् रोहति उत्पद्यते हृद्योपरि इत्यर्थः। इन्द्राह्व, बांदा, कौबेकी तरह चटने यानी जड़ न रहनेसे पेड़ वगैरहके सहाये उपजने या कौबेके संसेसे निकलनेवाली बेल।

काकरक (सं० त्रि०) कु कुसितं करोति, कु-क-जक कोः कादेगः। १ स्त्रीवशीभूत, शौरतका तावि-दार। २ नग्न, नडा। ३ भीरु, डरपोक। ४ निःस्र, गुरीव। (यु०) ५ दम्भ, धोका। काकेन लूयते हृद्यते, काक-लू कर्मणि लिप् संज्ञायां कन् लय रः। पेशक, कौबेसे मारा जानेवाला उलू।

काकरेजा (हिं० पु०) १ बद्धविशेष, एक कपड़ा। यह काकरेजी होता है। २ वर्षभेद, एक रंग। यह काकरेजी रहता है।

काकरेजी (हिं० पु०) १ वर्षभेद, कौकची, एक रंग। यह लाल-काला होता है। कपड़ेको धालनेके रंगमें बोर सोहारकी खाईसे रंगने पर काकरेजी निकलता है। (वि०) २ वर्षविशेष-शुद्ध, कौकची, कासकाका।

है। मनुष्य, हस्ती वा शशके मस्तक पर बैठ शब्द निकालनेसे मृत्यु आती है। नदीतीर वा वनमध्य घूमते घूमते कर्कश भावसे बोलनेपर व्याघ्रभय होता है। पौड़ित वा दुचेष्ट काक देखनेसे चमत्कल है। मनुष्य वा शशके मस्तक और रथपर देख पड़नेसे सैन्यवध होता है। सैन्यके संमुखसे आनेपर पराजय है। मांस न रहते भी गृध्र एवं कङ्कके साथ शिविरमें प्रवेश करनेपर गन्ध, युद्धमें भाते बड़ी लड़ाई और चले जाते सन्धि होती है। छिन्न ध्वज पर चढ़ समुद्रत गन्धसैन्यकी ओर देखते रहने अथवा वटादि चीरिष्ठव पर बैठ शब्द करनेसे युद्धमें जय मिलता है। एतद्भिन्न दिक् और प्रहरके अनुसार भी यात्राकालकी काक शब्दका कथित शुभाशुभ देखते हैं।

काककी वेदादिशेषी प्रमाणका निरूपण—प्रकारण बहुतेसे काक एकत्र बोलनेसे ग्राममें चक्र नाश होता है। चक्राकृति ही काकोंके शब्द करनेसे ग्राम घेरा जाता है। वाम और दक्षिण दिक् काकसमूह घूमनेसे ग्राममें भय लगता है। रात्रिकालकी शब्द करनेसे लोगोंका विनाश होता है। चरण और चक्षुसे लोगों पर चीट करनेसे शत्रु बढ़ते हैं। नहा कर धूलिमें लीटते बालनेसे वृष्टि होती है। इस प्रकार अन्य जलजन्तुओं और स्थलजन्तुओंके विपरीत, देखाने वर्षात् जलचरोके स्थल पर आने और स्थलचरोके जलमें जानेसे वर्षाकालकी पानी बरसता और दूसरे समय भय बढ़ता है। मध्याह्न काल किसीके गृह पर बैठ काककी शब्द करनेसे चौर उसका धन चौराता अथवा कोई अन्य प्रमाद आता है। अष्टष्ट भावमें ढण्डपूर्ण मुखसे बालने पर अग्नि भय लगता अथवा स्वस्थानमें रहते प्रवासमें चलते भी तीन दिनके मध्य विविध दुःख घटाना पड़ता है। भूमिपर बालनेसे भूमि मिलती है। जलमें रहते शब्द करनेसे विघ्न पड़ता है। प्रस्तर पर बालनेसे कार्य नष्ट होता है। (स्वस्थानमें रहते या प्रवासकी चलते भी मनुष्यको इस शब्दका प्रभाव अनुभव करना पड़ता है) द्वारदेशमें अधिर लिप्त शब्द करनेसे शिशु मरता है। पक्ष हिलाते हिलाते किर-किरानेसे गृहका प्रमङ्गल है। जर्ध

दिक् पक्ष उठा कड़ा बोल बालनेसे प्रसय होता है। कक्ष होकर अथर काक पर चढ़ते शब्द करनेसे शैव द्वारा मृत्यु आती है। काककण्टक द्रव्य नष्ट वा अपहृत होनेसे विनाय और लाभ है।

रोग विनाशका प्रश्न करनेपर काकके सुरवे लगते शीघ्र रोग छूट जाता और शान्त प्रदेशमें किरकिराते रोगके नाशमें विलम्ब देखाता है। पृथ्वी पर शान्त दिक्की पकड़ धीरे धीरे बालनेपर शुभ और विपरीत पड़ने पर अशुभ है। कुम्भ पर शब्द करनेसे गम्भीरी पुत्रोत्पादन करती है। कण्टकयुक्त शाखा लेकर उड़नेसे राजा आता है। अन्नादि विद्या, और मांस प्रभृतिसे पूर्ण मुख काक अमीठ फल देता है। ऐसा काक तन्नादिमें विधि तथा वाषिष्वादिमें लाभ प्रद और विवाहादिमें प्रशस्त है। अन्नादि वाहन पर पशस्थित होनेसे दृष्ट सिद्धि है। छात्रादि पर बैठनेसे तदनु रूप द्रव्य मिलता है। प्राचीर पर चढ़नेसे वधु आती है। मनोरम हृद्यपर अवस्थान करनेसे मनीष विषयका लाभ है। गृहकी ओर घूम कुलकुल ध्वनि निकालनेसे पथिक आता और सर्व कार्य बन जाता है। काकमेथुन वा श्वेतकाक देखनेसे पृथिवी पर महाभय लगता और उत्पात उठता है। ऐसे अद्भुत दर्शनसे उद्वेग, विहेय, भय, प्रयास, धनचय, व्याधिभय, प्रहार, बुधिनाश, व्याकुलत्व और प्रमाद होता है। इस दुःख राशिकी शान्तिके लिये देखते ही सबस्र नष्टाना, ब्राह्मणोंकी वस्त्र दिलाना, कुष्ठ न खाना, भूमि पर सो एक सप्ताह हविष्यान्नसे जीवन चलाना और स्त्रीके पास न जाना चाहिये। सातों दिन अकाकघाती व्रत रहता है। फिर प्रमात होते नहा धो शान्तिविधान और यथाशक्ति गुणों ब्राह्मणोंकी धन दान करते हैं। यह अद्भुत दर्शन जहाँ मिलता वहाँ अवधेय, दुर्भिक्ष, उपसर्ग, चौर, अग्नि तथा शत्रु भय और धर्म नाश वा पङ्घ चलाता है। इसकी शान्तिके लिये राजाकी शान्तिक और पौष्टिक कर्म कर ब्राह्मणोंकी चक्र, गो, भूमि तथा धन देना और एक वर्ष युद्धका नाम न लेना चाहिये।

अर विषयकी प्रमाणका निरूपण—'काक' से महान, 'केका'

काकल (सं० स्त्री०) ईषत् कलो यस्मात्, कोः कादेशः ।
१ कण्ठमषि, गलेका जोहर । (पुं०) का इत्येवं
कलो यस्य बहुव्री० । २ द्रोणकाक, जङ्गली, पहाड़ो
या काला कौवा । यह 'का का' करता है ।

काकलक (सं० पुं०) काकल-कण् । १ कण्ठमषि,
गलेका जोहर । २ कण्ठका चन्त देण, सांस सेने-
वाली नली (इलकूम, नरकसी) का सिरा । ३ यष्टिक
धान्यविशेष, साठीधान ।

काकलि (सं० स्त्री०) कल-इत् कलिः, कूर्ध्वपत् कलिः
कोः कादेशः । १ सूक्ष्म मधुरास्फुटध्वनि, समभ्रमं
न पानिवाली वारीक मोठी पावाज ।

“द्वो काकलिनोत्स तथोवा निन्दस च ।” (कयासरित्सागर)

२ अप्सरो विशेष, एक परी ।

काकली (सं० स्त्री०) काकलि-ह्रीं । १ सूक्ष्म
मधुर अस्फुट ध्वनि, समभ्रम पड़नेवाली वारीक मोठी
पावाज । “कौकलीविलसाहलीवकसेवदोर्षकसंनयाः ।”

(सप्तशतिका, १५०)

२ यन्त्रविशेष, एक वाजा । इसका स्वर नीचा
रहता है । काकली बजानेसे मानूस पड़ता है कि कौन
निद्रामें अचेतन रहता और कौन जगता है । हिन्दीमें
संघकी सबरी, साठी धान और हुंघचीकोभी काकली
कहते हैं । २ रत्नविशेष, एक जवाहर ।

काकलीक (सं० पुं०-स्त्री०) अस्फुट मधुरध्वनि,
मोठी मोठी पावाज ।

काकलीद्राघा (सं० स्त्री०) काकलीव सूक्ष्मा द्राघा,
मध्यपदलो० । द्राघाविशेष, किशमिश । इसका
संस्कृत पर्याय—जम्बूका, फलोत्तमा, लघुद्राघा
निर्वीजा, सुहस्ता और रसाधिका है । राजनिघण्टु के
मतमें काकलीद्राघा मधुर, अम्ल, रसाल, रुचिकारक,
शीतल, ग्रास तथा हृत्तासनायक और जनसमूहको
प्रिया है । किमतिथि देखो ।

काकलीनिपाद (सं० पुं०) विकृत स्वर विशेष, एक
पावाज । यह कुसुदती श्रुतिसे चलता है । काकली
निपादमें चार श्रुति गाते हैं ।

काकलीरवः (सं० पुं०) काकली मधुरास्फुटो रवो
यत्र, बहुव्री० । १ कौकिल, मोठी मोठी पावाज

लगानेवाली कोयल । कर्मधा० । २ सूक्ष्म और मधुर
अस्फुट ध्वनि, मोठी मोठी पावाज ।

काकवत् (सं० अर्थ०) काकको भाँति, कौबिकी तरह ।
काकवप (सं० पुं०) सुनिकर्षणीय एक राजा । यह
शिग्रुनागके पुत्र थे । (विश्वकर्मा ३।१४।२)

काकवर्तक (सं० पुं०) वायस तथा वर्तक, कौवा
और बटेर ।

काकवर्मा (सं० पुं०) नेपालके एक सोमवंशीय राजा ।
इसके पिताका नाम मनाच था ।

काकवल्गमा (सं० स्त्री०) काकस्य वल्गमा मिया ।
काकजम्बू, कौबिको अच्छी लगनेवाला वनजामुन ।

काकवल्लरी (सं० स्त्री०) काकप्रिया वल्लरी, मध्य-
पदलो० । १ कर्णवल्ली, एक सुनहली बेल । २ पीत-
काष्ठन, पीले फूलका कचनार ।

काकविष्टा (सं० स्त्री०) काकमल, कौबिका मेला ।
काकवृन्ता (सं० स्त्री०) रक्त कुसुमक, लाल कुररयी ।

काकव्याघ्रगोमायु (सं० पुं०) वायस, व्याघ्र तथा
शृगाल, कौवा, बाघ और गोदड़ ।

काकशब्दः (सं० पुं०) काकरव, कौबिकी बोली ।
काकशालि (सं० पुं०) कृष्णा शानिधान्य, किसी
किष्कका धान ।

काकशिवी (सं० स्त्री०) काकप्रिया शिवी, मध्य-
पदलो० । १ काकतुण्डो, कौवा ठोंठी । २ रक्तगुच्छा,
लाल हुंघची ।

काकशोष (सं० पुं०) काकः शीघ्रं शयेत्य, बहुव्री० ।
वकहच, अगस्तका पेड़ ।

काकसादी (सं० पुं०) १ प्रथमलक्षणाग्र, ऐसी घोड़ा ।
२ धाम्नेय ।

काकसेन (सं० पुं०) कार्यनिरोधक विशेष, अहाजके
मजदूरोंकी निगरानी करनेवाला एक जमादार । यह
अंगरेजोंके 'काकसेन' शब्दका अपभ्रंश है ।

काकस्त्री (सं० स्त्री०) काकस्य स्त्रीव नामसादृश्यात् ।
वकपुष्पहृत्, अगस्तके फूलका पेड़ ।

काकस्फूर्ण (सं० पुं०) काक-स्फूर्ण-धन् । काकतिन्दुक
हृत्, एक पेड़ ।

काकस्वर (सं० पुं०) काकस्य इव स्वरौ यस्मै, बहुव्री० ।

से अभिन्नवित भोजन एवं यान लाभ, 'कं कू' से चर्य प्राप्ति, 'कं क' से स्वर्णलाभ, 'कैकं' से सुन्दरी स्त्रीप्राप्ति, 'कां कां' से यात्रासिद्धि, 'कौं कौं' से शुभलाभ और 'कुं कुं' शब्दसे मिय सङ्गम है। 'कां कू' 'कां' एवं 'कां क्रां' युद्धजनक और 'कां कां कौं कौं कू कू' तथा 'कौं कुकुकु' मृत्यु लाता, 'कौं कौं' श्वाश्रु घटाता, 'जल जल' अग्नि लगाता, 'कौ कौ' तथा 'को को' कण्ठ कटाता, 'को' सर्वदा विफल देखाता, 'क' मित्र मिलाता, 'काका' ज्ञानि पट्टु वाता, 'कु कु' युद्ध लड़ाता, 'के के', 'का कुट्टि' एवं 'किं टिकिं' परदोष बनाता, 'कां कां कां' मद्य युद्धका समाचार सुनाता, 'कां' वाहन बहाना और 'कु कु कु' शब्द हर्ष दिलाता है। श्रान्त, दीन और उन्मादछीन काक दीर्घ 'का' बोलनेसे कार्य नाशक है। 'वक वक' से भोजन मिलता और 'कलि कलि' से रसनेन्द्रियप्राप्त द्रव्य दूर रहता है। (रुच खरसे बोलनेपर विदेशी व्यक्ति भाता है) 'श्वश्व'से मृत्यु, 'कणकण' से कलह 'कुतु कुतु' से मिय व्यक्तिका आगमन और 'कट कट' से अन्न एवं दधि भोजन होता है। इसी प्रकार कई प्रदीप्त और श्रान्त खरोंसे शुभाशुभ देख पड़ता है।

वलि अर्थात् अभीष्ट आहारादि पानिसे काक नित्य ही हितही कहता है। प्राचीन सुनियोनि काकवलि प्रदानका जो नियम रखा, उसे हमने भी लिखा है,— दक्षिणको छोड़ अन्यत्र और घटादि चोरी हसके पाश्र्वसे बड़ु काकोके एकत्र रहनेके खलपर निवृत्त दिनमें पट्टु च कर वलि पिण्डके लिये निमन्त्रण देना पड़ता है। दूसरे दिन प्रातःकाल सन्न हसका निम्न देग भाड़ पोछ गोमयसे कौपते हैं। फिर वहां बेदी बना ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वैशखत, राक्षस, वरुण, वायु, कुबेर, शम्भु और अष्ट लोकपालकी पूजा की जाती है। पूजाके समय प्रणव और नमः शब्द युक्त पृथक् पृथक् नाम लेते हैं। अर्घ्य, चासन, चाशेपन, पुष्प, धूप, नैवेद्य, दीप, तण्डुल और दक्षिणा पूजाका उपकरण है। पूजान्तपर तर्क-निविष्ट काकोकी मन्त्रपाठपूर्वक आह्वान कर दधि पिण्ड युक्त वलि निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते पढ़ते देना

चाहिये,—

"इन्द्राय यथाय वरुणाय धनदाय भूतपायसाय वलिं स्रज्जातु मे साहा।"

उक्त समस्त कार्यके अन्तको वहांसे अष्ट निवृत्त देशमें निश्चय भावसे छोड़े जो काकोकी विशेष चेष्टासे शुभाशुभ देखते हैं। पूर्वदिक्से खाना प्रारम्भ करते सुख और धन बढ़ता है। अग्निकोणसे भोजन प्रारम्भ होते प्राग लगती है। दक्षिण दिक्से खाते अर्थ नाश है। नैऋतसे कार्य हानि होती है। पश्चिमसे अभीष्ट सिद्धि है। वायु दिक्से अन्न जल बरसता है। उत्तरसे सुख, पारोग्य और कार्य सिद्धि है। फिर ईशान दिक्से काकोक वलि खाते अभीष्ट सिद्धि मिल जाता है। चारों ओरसे वलि बिलकुल विलुप्त होनेपर शत्रु और अशुभ देवों पड़नेकी सम्भावना है। भोजन न करनेसे भयकी पाशङ्गा उठती है।

चोरीहस, उपवन, चतुर्व्यथ, नदीतीर एवं देवालय प्रभृति स्थानों पर भूतदिन (चौदग) तथा अष्टमी तिथिको अर्धमिह गोधूम वा चणक हैं। एतद्विच दूधरे प्रकार भी पिण्डदानकी व्यवस्था है। नारदादिने तीन पिण्ड देनेकी बात कही है।

शुभ दिनको चतुर्थ प्रहरके समय पूर्वोक्त स्थान पर पिण्डद्रव्य खानेके लिये काकोकी सयत्न निमन्त्रण देते हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल भूमि लेप पीछ पूर्वकथित मन्त्र द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, वरुण, लोकपाल और काककी यथाक्रम दध्योदन, आहुवातण्डुल, पुष्प धूप प्रभृतिसे पूजते हैं। फिर पूर्वादि दिक्के अनुसार प्रथम पिण्डमें स्वर्ण, द्वितीयमें रौप्य और तृतीयमें लौह लगा अवशिष्ट द्रव्यसे वलि प्रदानके उपयुक्त पिण्ड बनाना चाहिये। वलि भोजन करनेके लिये निम्नाक्त मन्त्रसे काक बोलाये जाते हैं,—

कं विनि दिगि विदि काकचणालाय साहा।

कं इन्द्रये विनाय काकचणालाय साहा॥"

काकके सुधर्मयुक्त पिण्ड भोजन करनेसे उत्तम कार्य होता है। फिर रौप्य युक्त खानेसे मध्यम और लौहयुक्त लेनेसे प्रथम समझते हैं।

विवाद, वापिष्य, विवाह, दृष्टि, महान्न, धन, क्षयि, भोग, रोग, संशय, सेवा, राजकार्य और देशके

काकवत् खर निकालनेवाला, जो कौवेकी तरह बोलता हो। ६-तत्। २ काकरव, कौवेकी बोनी। काका (सं० स्त्री०) काकवत् पाकारोऽस्त्यस्य, काक-अच्-टाप्। १ काकनासा, कौवाठोटी। २ काकोली-वृक्ष, एक पेड़। ३ काकलङ्गा, मसो। ४ इत्तिका-जता, घुघची। ५ मलपूवृक्ष, निर्मलीका पेड़। ६ काकमाची, केवेया। ७ काकोदुम्बरिका, कठगूलर। काका (हिं० पुं०) पिताका भ्राता, बापका भाई, भाचा।

काकाकौवा (हिं० पुं०) शुकविशेष, काकातुवा, बड़ा तोता।

काकाधि (सं० स्त्री०) काकस्य अधिः चक्षुः, ६-तत्। काकका चक्षुः, कौवेकी आंख।

काकाक्षिगोलकन्याय (सं० पुं०) काकस्य पक्षि-गोलकमिय न्यायः, उपमि०-। न्यायविशेष, एक मन्तिक। काकका एक माद चक्षु जेसे उभय पक्षिके गोलकका कार्य चलता है, वैसे ही एकमें-दो विषयोका सम्बन्ध रहनेसे 'काकाक्षिगोलकन्याय' कहलाता है।

काकाङ्गा (सं० स्त्री०) काकस्य प्रङ्गं जंघेव पाकारी यस्याः, बहुव्री०। १ काकजंघा, चकसीनी। २ काकनासा, कौवाठोटी।

काकाङ्गी, बाबाग देवी।

काकाक्षी (सं० स्त्री०) काकं पक्षति प्राप्नोति, काक-अच्-अण्-ङीप्। काकलंघावृक्ष, मसो, कौवेकी लज्ज-जैसा पेड़।

काकाण्ड (सं० पुं०) काकाया अण्ड इव फलं यस्य, बहुव्री०। १ मङ्गानिम्ब, बड़ी नीम। २ काकतिम्बुक वृक्ष, एक पेड़। ६-तत्। १ काकका अण्डा, कौवेका अण्डा।

काकाण्डक (सं० पुं०) काकाया अण्डं, काकीअण्ड स्वार्थे कन् पुंयद्वाय, ६-तत्। १ काकका अण्ड, कौवेका अण्डा। "किंनू भद्रिदावदायः काकाअण्डनिमाद्यया" (मारु, वन)। २ लूताभेद, किसी किष्कका मकड़ा।

काकाण्डा (सं० स्त्री०) काकस्य अण्डइव बीजमस्याः, बहुव्री०। १ कोलशिम्बी, कोचकी फलो। २ मङ्गानिम्बोतिमती जता, रतनजोत। ३ लूता विशेष।

काकादन्तक (सं० पुं०) काकादन्तो देवी।

काकाण्डावृक्षिक—ब्रह्मरुनें भेदिनीपुरकी ब्राह्मणभूमिका एक ग्राम। यहां 'काकाण्डावृक्षिक' नामक एक जाग्रत देवता विद्यमान है।

काकाण्डी, बाबाग देवी।

काकाण्डोला (सं० स्त्री०) काकाण्डं धोरति तत्सादृश्यं बीजं प्राप्नोति, काक-उर-अच्-टाप् रस्य सत्वम्। कोलशिम्बी, कोचकी फलो। २ अटमी, हव्य-उल्-कलकल, कनफटिया।

काकातुवा (हिं० पुं०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया। वर्तमान शाकुनतत्त्वविदोंके मतमें यह शुक जातीय पक्षी है। सिर्फ भेद यही है कि काकातुवा तोतेसे पाकारमें बड़ा पाया जाता है। मस्तकपर खूब विखरे पक्षकी भांति शिखा रहती है। पुच्छ बहुत बड़ा होता है। अंगरेजोंमें इसे 'कोकातू' (Cockatoo) कहते हैं। शाकुनशास्त्रमें यह पक्षीयंग 'काकालिना' (Cacatuina) माना गया है। काकातुवा शब्द अंगरेजी 'कोकातू'का अपभ्रंश है।

प्रकृत काकातुवेका पालक (पर) श्वेतवर्ण होता है। किन्तु किसी किसीका श्वेतवर्ण पालक प्रत्य रक्त वर्ण वा अपर वर्ण मिश्रित रहता है। भारतवर्षके दक्षिणाञ्चल और अष्ट्रेलिया-क्षीपमें दो प्रकारका काका काकातुवा मिलता है। अंगरेजी शाकुनशास्त्रमें एकको 'कैलिप्टोरिङ्कस' (Calyptorhynchus) और दूसरेको 'मायिग्लोस्सस' (Microglossus) कहते हैं। श्रेष्ठका काका काकातुवा खूब बड़ा होता है। न्यूगिनीमें यह पाया जाता है। इसकी लिङ्गा कण्ठ-कान्धित रहती है। उससे सुलभतया यह खाद्य द्रव्यादि चठा सकता है।

भारत महासागरके क्षीपपुञ्ज और अष्ट्रेलियामें इसकी संख्या सबसे अधिक है। काकातुवा फल, मूल बीज और खेदज कोटादि खा अपनी जीविका चलाता है। यह पालनेसे खूब हिल जाता और सिखानेमें तोतेकी तरह बातचीत करता है। काकातुवा अपनी चोटो इतन्ततः चला सकता है। इसका शब्द मधुर नहीं होता। काकादन्तक (सं० पुं०) काकादन्तो देवी।

सम्बन्धमें शुभाशुभ देखनेको उक्त प्रकारसे धलिप्रदान कर समझते हैं,—

काकके मिश्रको ले भुम्बूक चेट्टा लगाने और दक्षिण पर तथा शीघा उठा बोलते बोलते मनोम्र स्थान वा मनोम्र हृत्त पर जानिसे शुभ और अशुभकी सिद्धि होती है। इससे विपरीत चेट्टामें ललटा फल मिलता है। प्रधान मिश्रको लेकर शान्तादिक् चलनेसे पूर्ण लाभ होता है। किन्तु पिण्डके साथ प्रदीप्तदिक्की प्रस्थान करनेसे कार्य प्रथम बनते भी पीछे विलकुल विगड़ जाते हैं। द्वितीय पिण्ड उठा शान्तादिक्की जानिसे शुभ रहता और कार्यका फल विलम्बमें मिलता है। जघन्य पिण्डके साथ प्रदीप्त दिक्की चलनेसे कार्य भी जघन्य होता है।

पिण्डाटक दानकी व्यवस्था—शुभदिनमें सायंकाल धलि भोजनके लिये काकोको निमन्त्रण देना चाहिये। दूसरे दिन प्रातः काल समस्त उपकरणके साथ किसी निर्जन देशस्थ तरुके तलपर पङ्कच भूमिकी सृष्टिका गोमय प्रस्तितिसे परिष्कृत और पञ्च गव्यसे परिशुद्ध करते हैं। फिर धौम्य उपहार दे कुलदेवताको पूज घृत एवं दक्षिमिन्त्रित भाठ पिण्ड पूर्वादि क्रममें भाठो दिक् इन्द्र, वाङ्ग, भव, नैऋत, विष्णु, ब्रह्मा, कुबेर, महेश्वर और काकको देते हैं। प्रत्येकका नाम ले प्रणव एवं नमः शब्दयुक्त मन्त्र, तथा अर्घ्य, आसन, आलेपन, पुष्प, धूप, नैवेद्य, दोष, आतप और दक्षिणादिसे पूजा करते हैं। पूजाका मन्त्र नीचे लिखा है,—

“कं भमः खगपतये गृह्णाय प्रोषाय परिव्राज्याय साहा।

श्रीगणेशाय नमः पिण्डं गृह्णाय त्वमग्नित्वयः।

यथाष्टटं निमित्तं च वयस्सायं मे ऋतुं त्वं ॥”

पिण्डदानके पीछे वहाँसे खिसक किसी निश्चत स्थानमें खड़े ही काकचेट्टा देखना चाहिये। प्रथम पिण्ड लेनेसे कार्य सिद्ध होता है। द्वितीयसे उद्देग शोक, यात्राकी विफलता, हानि वा फलह, तृतीयसे रोग, आपद्, भय एवं मृत्यु चतुर्थसे युद्धमें जय, पञ्चम सहजमें अभीष्टसिद्धि, षष्ठसे प्रवास तथा विफलता, सप्तमसे अशिद्धि और अष्टम पिण्ड ग्रहण करनेसे

सन्ताप, शोक एवं यात्राकी विफलता है। यदि काक पिण्डको विलकुल नहीं खाता पयशा चक्षुनलसे फेंक जाता, तो सर्वकार्यमें अमङ्गल भाता या गड़रा युद्ध देखाता है।

काकचिञ्चा (सं० स्त्री०) काकवर्ण चिञ्चा प्रान्तभागः फले यस्याः, शृपोदरादित्वात् साङ्घः । १ गुञ्जा, घुंघची । २ उषा देखो । ३ रत्नगुञ्जा, माल घुंघची ।

काकचिञ्चि, काकचिञ्चा देखो ।

काकचिञ्चिक (सं० स्त्री०) काकचिञ्चासुच, घुंघचीका पेड़ ।

काकचिञ्ची (सं० स्त्री०) काकचिञ्चि-डीप । गुञ्जा, घुंघची ।

काकच्छद (सं० पु०) काकस्य छदः पक्षः इव हृदो यस्य, मध्यपदलो० । १ खड्गनपक्षी, खड्गरेवा । २ चापपक्षी, नीलकण्ठ । ३ कौशिका पर ।

काकच्छदि (सं० पु०) काकच्छद बाहुलकात् इच् । कारुच्छर देखो ।

काकच्छदि, कारुच्छर देखो ।

काकजंघा (सं० स्त्री०) काकस्य जंघेयं जंघा आकृतिर्यस्यः, मध्यपदलो० । १ स्वनामख्यातवृक्ष, एक पेड़ । इसका संस्कृत पर्याय—काकाङ्गी, काकाची, काकनासिका, कृषीमल, धाङ्कजंघा, काकाङ्ग, सुसोमशा, पाराशतपदी, दासो और नदीकान्ता है । राजनिघण्टुके मतमें यह तिक्त, उष्ण और व्रण, कफ, वधिरता, अजीर्ण, जीर्णज्वर तथा विषमज्वरनाशक होती है। लङ्कानायके कथनानुसार काकजंघा ज्वर, कण्डू, विषमज्वर और क्षमिको दूर करती है।

पुष्पानचत्रमें इसका मूल उछाड़ रक्त सुतसे गले या छाथमें बांधनेसे एक दिनके अन्तरसे आनिवाला ज्वर (एकातरा) छूट जाता है।

कोई कोई इसे मधु या चकमेनी भी कहते हैं। काकजंघाका नाम तैलगुमें सुरपटि (ट्रिविकि विलमा) है। अंगरेजी उद्भिज शान्तेमें ल्याहिरटा (Leea hirta) लिखते हैं। यह ४।३ हाय बढ़ता है। काण्ड-सन्धिकामध्यभाग काकजंघाकी भाँति अन्नत रहता है। इसी स्थानसे पत्र निकलते हैं। काकजंघाके

काकादनी (सं० स्त्री०) काकैरव्यते भुज्यते ऽसौ, काक-पद कर्मणि ल्युट् डीप् । १ रत्नगुञ्ज, लाल घुंघची । २ श्वेतगुञ्जा, सफेद घुंघची । ३ रत्न काकमाषी, लाल मकोय । ४ काकतिन्दुका, कौया ठेंठी । ५ कण्टकपालीलता । इसका संस्कृत पर्याय—हिंसा, श्वधनशी, तुण्डी, काला, चहिंसा, कटुका, पाणि, कापाल धौर कुलिक है । सुश्रुतमें संक्षेपतः इसे कफप्रमनी कहा है ।

काकानली (सं० स्त्री०) रत्नगुञ्जा, घुंघची ।

काकाम्ब (सं० पु०) समशीलक्षुप, ककवा ।

काकायु (सं० पु०) काकस्य प्रायुर्यस्मात्, बहुव्री० । स्वर्णवस्त्रोत्तता, एक सुनहरी वेल ।

काकार (सं० त्रि०) कं जलं प्राकिरति, क-भा क्-प्रण् । जल-स्त्रावकार, पानी फैलानेवाला ।

काकारि (सं० पु०) काकःपरिर्यस्य, बहुव्री० । पेषक, कौषिका दुश्मन उभू ।

काकाल (सं० पु०) का इति शब्दं कलति रौति, का-कल्-प्रण् । १ द्रोणकाक, पहाड़ी कौवा । २ बल-नामविष, बच्छनाग, एक जहरीली चीज ।

काकावलि (सं० स्त्री०) काकानां अवलिः त्र्येषी, इ-तम् । त्र्येषीवद् बहुसंख्यक काक, कौषिका भुण्ड ।

काकाय्या (सं० स्त्री०) महाश्वेत काकमाषी, सफेद मकोय ।

काकाया (सं० स्त्री०) काकमाषी, मकोय ।

काकिपा—बङ्गालके रङ्गपुर जिलेका एक गण्डधाम । यह त्रिस्त्रोता नदीके वामकूलपर अवस्थित है । इस पक्षके विश्व शोग 'काकिपा' शब्दको 'काहन'का प्रप्रसंग मानते हैं । यह धाम अधिक प्राचीन नहीं । फिर भी एक प्रधान जमीन्दार यहां रहते हैं । बाजार सगा करता हैं । जप, तमाखूँ और सन बाहर विकनेकी भेजते हैं ।

काकिचिका (सं० स्त्री०) काकिषी स्त्रार्थे कन् प्रस्रस्य । पषका चतुर्थ्यां, पांच गण्डा कौड़ी ।

काकिषी (सं० स्त्री०) ककते गणनाकाले चक्षुसी भवति, काक-पिनि-डीप् द्वेषोदादित्वात् नस्य षः । १ पषका चतुर्थ्यां, पांच गण्डा कौड़ी । २ एक-

वराटिका, एक कौड़ी । ३ मानदण्ड, मापकी छद् । ४ रत्निका, घुंघची । माधाका चतुर्थ्यां, माषेका चौथा हिस्सा ।

काकिषीक (सं० त्रि०) एक काकिषीके मूल्यवाला, जो कीमतमें पांच गण्डे कोड़ियोंके बराबर हो ।

काकिनौ (सं० स्त्री०) काकिषी, पांच गण्डा कौड़ी ।

“इंद्रा भूरिदानेन यज्ञमने कस किम ।

इतिदमथ काकिष्वा प्रात्रुथादिनि न कुतिः ॥” (पञ्चतम)

काकिल (सं० पु०) कु-ईषत् किरति, कु-क् क-कोः कादिभः रस्य लत्वम् । कण्ठमणि, गलेका जवाहर ।

काकी (सं० स्त्री०) काकस्य स्त्री । १ वायसी, मादा कौवा । २ श्वेतकाकमाषी, सफेद मकोय । ३ काकोली, एक सूटी । ४ कश्यपकी एक कन्या । इन्होंने ताम्बाके गर्भमें जन्म लिया । काकोही से सब काक उत्पन्न हुये हैं । ५ चाची ।

काकी (हिं० स्त्री०) पिष्टव्यकी पत्नी, बापके भायोकी चौरत, चाची, चची ।

काकीय (सं० त्रि०) काकस्य इदम्, काक-टल् । काकसम्बन्धीय, कौषिके सुताविक ।

काकु (सं० स्त्री०) काक-उण् । १ शोकभयादि द्वारा स्वरका विकार, खोफ गुस्से तकलीफ वगैरहमें पावा-जुको तबदीली । २ विरह चर्षबोधक स्वर विग्रह, उलटा मतलब जाहिर करनेवाली आवाज ।

“मित्रवच्छन्निधोः काकुपिन्निधोयते ॥” (भाद्रियदर्पण ११२)

३ टैन्कोलि, गिड़गिड़ाहट । ५ जिह्वा, जीभ ।

६ उहाप, जोरकी बात ।

काकुत्स्य (सं० पु०) ककुत्स्यस्य नृपतेरपत्यं पुमान्, ककुत्स्य-प्रण् । १ ककुत्स्य राजाका वंशज । इस शब्दसे अनेक, भज, दशरथ, राम और कश्यपका बोध होता है । २ पुराणय राजा । स्वार्थे ण् ।

३ ककुत्स्य नृपति ।

काकुत्स्यवर्मा—पश्चिमिका और बनवासीके एक प्राचीन कदम्ब राजा । इनके पुत्रका नाम शान्तिवर्मा था ।

काकुत्स्यवर्मा (सं० स्त्री०) काकुत्स्यवर्मा ।

काकुद (सं० स्त्री०) काकुत्स्यवर्मा ।

काकुद (सं० स्त्री०) काकुत्स्यवर्मा ।

काकुद (सं० स्त्री०) काकुत्स्यवर्मा ।

काकुद (सं० स्त्री०) काकुत्स्यवर्मा ।

पत्र पाध द्वाय दीर्घ और ४ अङ्गुलि प्रशस्त होते हैं। इनका प्रथमभाग सूक्ष्म तथा बद्ध शिरायुक्त लोमय और किञ्चित् खरशर्ष्य लगता है। फल गुच्छेदार होता है। उसका ऊपरी वर्तुल प्रदेश कुछ निम्न पड़ता है। काकजम्बुकी पुरानी मोटी गांठमें एक कीड़ा भी रहता है। यह वर्षाको पसलौ चमकनेसे शीघ्रकी भांति व्यवहार किया जाता है।

भारतमें नाना स्थानोंपर काकजम्बु उत्पन्न होती है। विशेषतः यज्ञदेशीय यशोर अञ्चलके नदीकूलवर्ती वनमें यह बहुत देख पड़ती है।

२ गुञ्जा, घुंघची। १ सुहृण्णी लता, सुगौन।

काकजम्बु (सं० स्त्री०) काकवर्ष जम्बुः। १ भूमि-जम्बुहृत्, जङ्गली जामनका पेड़। (Ardisia humilis) इसे बंगलामें वनलाम, मलयमें वीषी, उड़ियामें कुदना, तेलगुमें कौदमयाद्य काकी नारदु, नागपुरीमें कततीना, महिचूरीमें बोदिनागिद्, ब्रह्मीमें खेङ्ग मीप और सिङ्गलीमें बलदन कहते हैं।

यह एक छोटो झाड़ी है। भारतमें काकजम्बु प्रायः सर्वत्र पायी जाती है। किन्तु उत्तर-भारत और सिन्धुमें यह नहीं होती। इसके फलोंके रक्त-वर्ण रससे अच्छा पीला रंग निकलता है। काष्ठ धूसरवर्ण एवं ईपत् कठिन घाता और लसाया जाता है। वैद्यक-निघण्टुके मतसे यह कपाय, भस्म, गुरु, पाकमें मधुर, वीर्य-पुष्टि-बलकारक और दाह, अम तथा पतौषारनाशक है।

२ नागरद्वहृत्, नारलीका पेड़।

काकजम्बु (सं० स्त्री०) कंजसं चकति आश्रयत्वेन स्तृह्नाति, क-अक-अण्टाप; काका चासौ जम्बू चिति, कर्मधा०। जलजात जम्बु, विग्रेय, पानीमें पैदा होने वाली एक जामन। इसका संस्कृत पर्याय—काक-फला, नाट्यी, काकवत्तभा, स्तृह्ण्टा, काकनीधा, धाञ्जलजम्बु और धनमिया है। काकजम्बु देखो।

काकजात (सं० पु०) काकैः जातः प्रतिपासेन वर्धित इत्यर्थः। १ काकपुष्ट, काकिल, कौबेसे परपरिम पायी हुई कायल। (त्रि०) २ काकसे उत्पन्न, कौबेसे पैदा।

काकजातुकाः (सं० स्त्री०) काकजंघा, मसी, चकसेनो। काकड़ा (हि० पु०) १ हृत्विग्रेय, एक पेड़। यह सुलेमान और हिमालय पर्वत पर होता है। क्रुमार्थमें इसे अधिक देखते हैं। शीतकालमें इसके पत्र झड़ते हैं। काष्ठ पीताभ धूसरवर्ण होता है। इससे विष्टर (कुरसी), मद्य (मेज), शय्या (पलंग) प्रश्रुति बनाते हैं। पत्र पशुवोंको खिलाये जाते हैं। काकड़के बाटे काकड़ासींगी कहलाते हैं। कर्कटग्रही देखो।

काकड़ासींगी (हि० स्त्री०) कर्कटग्रही, एक पीला यांदा। यह काकड़ पेड़में लगता है। काकड़ा देखो। इससे दूसरी चीजोंपर रंग चढ़ाने और चमड़ा सिंभाते हैं। लौहचूर्णमें मिला देनेसे काकड़ासींगी काली पड़ जाती है। इसका आस्वाद कपाय है। कर्कटग्रही देखो। काकडुस्वर (सं० पु०) कण्ठदुस्वर, काला गूलर। यह छोटो होता है।

काकण (सं० स्त्री०) कु ईपत् कणति निमीनति, कु-कण-अच, कोः काट्यः। १ गुञ्जा, घुंघची। काकड-मिष आक्षतिरस्यास्ति कण्ठरक्तचिह्नितत्वात्। २ कुष्ठ विग्रेय, काले और लाल धब्बेवाला लुलाम या कौद। (Leprosy with black and red spots)

गुञ्जाकी भांति वर्षाविग्रेय, अपाक (न पकनेवाले) और वेदनायुक्त कुष्ठको 'काकण' कहते हैं। यह कुष्ठ त्रिदोषसे उत्पन्न होता है। सुतरां इसमें त्रिदोषके लक्षण देख पड़ते हैं। काकण असाध्य कुष्ठ है।

काकणक (सं० स्त्री०) काकण स्वार्थे कन्। काकण कुष्ठ, घुंघची-जेसा कौद।

काकणप्रवटी (सं० स्त्री०) कुष्ठप्र शोषध, लुलाम या कौदकी एक दवा। लौहमद्य, विष, चित्रकका मूल, कटका, त्रिफला, त्रिकटु और त्रिमद (विडङ्ग, सुप्त तथा चित्रक) समभाग से पीस डालते हैं। फिर इस चूर्णको पय्या (हर), निम्ब, विडङ्ग, वासक और अमृत (शुचं)के ज्ञाप्यसे भावना दे गोलियां बना लेते हैं। भावनाके लिये पटाविग्रेय ज्ञाप्य कहा है। एक मास यह शोषध खानेसे काकणकुष्ठ अच्छा हो जाता है। (रघुनाथर)

काकणन्तिका (सं० स्त्री०) कु ईपत् कणन्ती निमी-

काकुदी : (सं० पु०) ककुदायतमें मन्दादीपान्वित पत्र, एक ऐवी बोड़ा। इससे तानूमें वड़ा दीप होता है।

काकुद (सं० त्रि०) उदगाता। (पतरयामत्रप ०।१)

काकुन (हिं० स्त्री०) एक पनाज। यह चिड़ियोंको बहुत खिलायी जाती है।

काकुम् (स्त्री०) काकुर देखो।

काकुभ (सं० त्रि०) ककुभ इदम्, क-कुभ-पञ् । १ ककुम् छन्दोपायित गाथादि। २ दिक् सम्बन्धीय।

३ ककुभ संयजात।

काकुभवाहृत. (सं० पु०) एक प्रगाथ। यह ककुभसे पारंश्व हो वृहतीपर जाकर पूरा होता है।

काकुभ (सं० पु०) नकुलभेद, कृषि कृषका निवसा। यह तानार देगके ग्रीतल चर्मोंमें होता है। इसका चर्म प्रति खेत वर्ष, मृदु तथा लघ्ण रचता और पोस्तीनमें लगता है।

काकुरत (सं० स्त्री०) विकृत शब्द, बिगड़ो पायाज।

काकुल (फी० स्त्री०) क्षेयपाश, कुम्फ, कानोंके नीचे लटकनेवाले बड़े बड़े बाल।

काकुलीमृग (सं० पु०) चतुर्विध विलेयय मृग, मांद (कुहर)में रहनेवाला चार तरहका हिरन।

काकुवाद (सं० पु०) काक्षा दैन्यस्वरेण वादम्, इ-नत् । दीन स्वरमें ललित, गिड़गिड़ा कर कच्ची छुई बात।

काकूति (सं० स्त्री०) काकुराद देखो।

काकूपुर—(काकपुर) युक्तप्रदेशके कानपुर जिलेका एक प्राचीन नगर। यह कानपुर शहरसे १० कोस उत्तर-पश्चिम पड़ता है। बौद्ध राजाओंके समय काकूपुर श्वष प्रदेशका प्रधान नगर कहाता था। किसी किसी प्रव्रतत्वविदके मतसे यहीं काकूपुर भोट देगके बौद्ध ग्रन्थोंमें 'बागुद' नामसे लिखा गया है। काकपुर और विठूरके बीच 'पञ्चक्रोमी उत्पलारण्य' नामक पवित्र स्थान विद्यमान है। आजकल यहाँ 'छत्रपुर' नामक दुर्गका भग्नावशेष पड़ा है। इस दुर्गको कोरि ८२० वर्ष पहले चन्देल राजा छत्रपालने बनवाया था। काकूपुरमें चीरखर मन्दादेव और पञ्चख्यामाके नामसे दो बड़े मन्दिर खड़े हैं। प्रतिवष देवताके उत्सव उपसर्ष्यमें मेला लगता है।

काकेचि, काकेच देखो।

काकेचु (सं० पु०) काकं र्थञ्जलं यत्र तादृग इक्षुः । १ इक्षुगन्ध लक्षण, जखकी तरह लम्बी एक सुगन्धुदार घास। २ खागड़, खगरा। ३ कासलक्षण, कास। ४ कोकिलाचक्षुष, तालमखानिका भाड़।

काकेन्दु (सं० पु०) काकस्य इन्दुरिव भासादकत्वात्, इ-तत् । कलिक वृक्ष, पावनूस, तेंदू। २ कटुतिन्दुक, कुचिला।

काकेन्दुक, काकेन्दु देखो।

काकेन्दुकी, काकेन्दु देखो।

काकेट (सं० पु०) काकस्य इटः, इ-तत् । निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। मिल देखो।

काकेटा (सं० स्त्री०) १ रेणुका, गिर्द। २ काक-माची, मकोय।

काकोचिक (सं० पु०) कु ईपत् कोची सद्दीची। कु-कच-पिनि स्वार्थे कन् को कादेशः। मत्स्यविशेष, कियो कृष्णकी मछली।

काकोची (सं० स्त्री०) काकोच-डीप् । काकोचिक देखो।

काकोडुस्वर (सं० पु०) काकप्रियः उडुस्वरः, मध्य-पदलो०। चाकोडुस्विका देखो।

काकोडुस्वरिका (सं० स्त्री०) काकोडुस्वर स्वार्थे कन्-टाप् भूत इत्वम्। खनामस्थान वृक्ष, कठगूसर। इसका संस्कृत पर्याय—फसंगुफला, पत्रकी, राजिका, सुद्र-दुस्वरिका, फसंगुवाटिका, फलुगुनी, काकोडुस्वर, फल-वाटिका, बहुफला, कुष्ठो, भजाकी, विजयभेजा, और झाड़ूचनाखी है। इसे बंगलामें काकडुसुर, हिन्दीमें गवला, पञ्जाबीमें देगर, मराठीमें धेदू, मारवाड़ोंमें बरवत, गुजरातीमें जङ्गली अखौर, तेलगुमें करसन और परवीमें तिने-बरी कहते हैं। (Ficus Hispida)

यह एक भंभोला पेड़ या भाड़ है। काकोडु-स्वरिका सेनावसे पूर्व वाघा हिमालय, बङ्गाल, मध्य एवं दक्षिण भारत, ब्रह्मदेश और पान्दागानदीपपञ्चमें होता है। मलका, मिंजल, चीन और चट्टेलियामें भी यह मिलती है।

काकोडुस्वरिकाकी छालका सूख पटलिका बांधनेमें श्ववहार किया जाता है। फल छोटा होता है, जिसपर

कन्ती, काकणन्ती-कन्-टाप्, की: कदादेयः। १ गुच्छा, लाल घुंघची। २ रक्तकम्वल वृक्ष, लाल बघीलिका पेड़। काकणन्ती (सं० स्त्री०) कु-कण-शब्द हीप्।

काकणिका देखो।

काकणान्तक (सं० पु०) चिन्द्रूर।

काकणो (सं० स्त्री०) काकण-हीप्। १ गुच्छा, घुंघची। २ कुष्ठविशेष, किसी किसिका लुजाम।

काकण देखो।

काकण्डा (सं० स्त्री०) काकनासा, सफेद छोटी घुंघची।

काकतन्द्रा (सं० स्त्री०) काकस्य तन्द्रेव तन्द्रा मध्य-पदलो०। १ काककी तन्द्राकी भांति प्रति सतक भावमें तन्द्रा, कौवेकी काहिली-जैसी निद्रायत होशियारीमें सुस्ती। २ काककी तन्त्रा, कौवेकी काहिली।

काकता (सं० स्त्री०) काकस्य भावः, काक-तल्-टाप् १ काकका धर्म, कौवेका फल। २ काकका स्वभाव, कौवेकी आदत, कौवापन।

काकतालीय (सं० स्त्री०) काकतालमधिकृत्य उपदि-ष्टम्, काक-ताल-छ। समासश्च तद्विधात्। पा ३। १०६।

न्याय विशेष, एक मन्तिक। सुपक्ष ताल अपने बाप गिरते समय यदि काक वृक्षपर आकर बैठ जाता, तो कहा जाता कि काक ही ताल गिरता है। इसी प्रकार कोई काम स्वतः सिद्ध होते यदि किसीका हाथ लगता, तो वह उसीका किया ठहरता है। ऐसी ही घटनामें काकतालीय न्याय होता है।

“तदिदं काकतालीयं देवमासादितं त्वया।” (रामायण ३। ४३। १०)

(त्रि०) २ आकस्मिक, देवायत्त, नागदानी, उत्तिफाकी। (अथ०) ३ अकस्मात्, इत्तिफाकी, अचानक।

काकतालीय न्याय, काकतालीय देखो।

काकतालीयधत् (सं० अथ०) अकस्मात्, इत्तिफाकी अचानक।

काकतालुकी (सं० त्रि०) काकवत् तालुरस्यास्ति, काक-तालुक-इति। इन्दीयतापमच्छान् मासिमादिनिः। पा ३।

२। २२८। काककी भांति तालुविशिट, कौवेकी तरह तालू रखनेवाला, खराब, बुरा।

काकतिहका, काकतिहा देखो।

काकतिहका (सं० स्त्री०) काकमांसवत् तिहका, मध्य-पदलो०। १ लताकरञ्ज, वेलदार करौंदा। २ काक-जंघा, मसी, चकसेनी। ३ श्वेत गुच्छा, सफेद घुंघची। काकतिन्दु, काकतिन्दु देखो।

काकतिन्दुक (सं० पु०) कं जले अकृति, क-अक-अण्यः काकयासी तिन्दुकश्चेति, कर्मधा० यदा काकवर्णस्ति-न्दुकः काकप्रियो वा तिन्दुकः, मध्यपदलो०। तिन्दुक-विशेष, किसी किसिका आवनूस। (Diospyros tomentosa)

इसे भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें चन्दुनी, निमाई इल्लिन्द, पेदा इल्लिन्द, नोगरिके, बीलच, उल्लिन्द या उल्लिमेरा कहते हैं। यह मध्य आकारका वृक्ष है। काकतिन्दुक दाक्षिणात्यमें उड़ीसे तक मिलता है। सुरत और नासिकमें यह अधिक देख पड़ता है। इसे गोदावरी वनशा भाड़ कहते हैं। घासाघाट पर्वत और मन्द्राजमें भी यह पाया जाता है। इसका फल गोल बड़े मटरकी भांति होता है। पकनेपर लोग इसे खाते हैं। यह अति सुरस निरुसता है। काठ कठिन, स्यायी और सुन्दर वर्णविशिष्ट रहता है। यह अनेक कार्यांके लिये उपयोगी है।

काकतिन्दुकका संस्कृत पर्याय—काकेन्दु, कुलक, काकपीलुक, काकपीलु, काकाण्ड, काकस्फुर्ज, काकाष्ठ और काकवीजक है। राजनिघण्टुके मतसे यह गुरु, कपाय, भस्म, वातधिकारक और मधुर होता है। इसका पक फल मधुर, किण्वत् कफकारक और वमि तथा पित्तनाशक है।

काकतीयरुद्र (सं० पु०) नागपुरके एक प्राचीन राजा।

काकतुण्ड (सं० पु०) काकतुण्डस्य इव-वर्णा इत्यस्य, काकतुण्डधत्। १ कृष्ण भगुर, काला भगर। २ जल-पक्षिविशेष, पानीकी एक विडिया। ३ प्रोबोधिगत काकतुण्डाकार सन्धि, जिस का एक जोड़। यह हनुदय (दोनों लवणों) की सन्धि है।

काकतुण्डफला (सं० स्त्री०) काकतुण्डमिव फल-मस्याः बहुव्री०। काकनासिका, सफेद घुंघची।

काकतुण्डा, काकतुण्डा देखो।

काकतुण्डिका (सं० स्त्री०) काकतुण्डस्य वर्षः

सपेद रूपां उठता है। यह एक प्रकारका खाद्य है। पतियां काटकर पशुओंको खिलाई जाता है। काष्ठसे कोड़े बड़ा काम नहीं निकलता। यह प्राचीर फाटकर उठ पाती और भयनकी मिट्टीमें मिला देती है।

राजनिघण्टुके मतसे काकोदुम्ब्रिका ब्याधयरस, शीतल, व्रणनाशक, गर्भरक्षाके निवे हितकारक और स्तन्यदुग्धवर्धक है। एतद्व्यतीत भावप्रकाशमें इसे कफ, पित्त, श्लेष्म, कुष्ठ, चर्म, पाण्डु और कामना-नाशक कहा है।

काकोदर (सं० पु०) कु कुम्भितं अकृति, कु-भक्-भक् कः कादेशः, काकं वक्रगमनकारि सदरं यस्य या, बहुव्री० । सर्प, सांप ।

काकोदुम्ब्रिका, काकोदुम्ब्रिका शब्दो ।

काकोदुम्ब्रिकाफल (सं० स्त्री०) अक्षीर, कठगूलर । काकनालक (सं० पु०) ज्वज्जातीय पत्ती, जौड़ेके साथ रहनेवाला परिन्द ।

काकोर—युक्तप्रदेशके लखनऊ जिलेका एक नगर । यह पश्चात् २६° ५१' ५५" सं० और देशां ८०° ४८' ४५" पु० पर अवस्थित है। काकोर नगर पति प्राचीन समझा जाता है। पहले यहां भारजातिके लोग रहते थे। आजकल लखनऊके वकीलों और मुख्तारोंको काकोरमें रहना बहुत अच्छा लगता है। यहां बहुतसे सुसलमान पीरोंके गोरखान मोशूद है। काकोरका बाजार सप्ताहमें दो बारःलगता है।

काकोल (सं० पु०-स्त्री०) कु कुम्भितं तीव्रतरं यथा स्यात्तया ककति पीडयति, कु-कुल-घञ् कोः कादेशः । १ कृष्णवर्णस्यावर विषभेद, पेड़में पैदा होनेवाला काले रंगका एक जड़र । इसका संस्कृत पर्याय—उपतंजः, कृष्णच्छवि, महाविष, गरल, स्नेह, पल्लनाभ, प्रदीपन, शौक्तिकेय, मन्नापुत्र और विष है। २ द्रोणकाक, पहाड़-कोवा । ३ सर्प, सांप । ४ अन्य शूकर, जहली सुवर । ५ कुम्भकार, कुम्हार । ६ काकल नामक भोपधि विशेष, एक वृत् । (स्त्री०) काकेनः ईश्वरायते भक्ष्यते चक्र, एषोदादित्वात् साङ्गः । ७ नरक विशेष, एक दोजबू । इसमें कौबे पापीको नीच मोच म्हाते है। काकोली (सं० स्त्री०) काकोल-होष् । १ कन्दविशेष,

एक डला । यह चीरकाकोलीके भांति लगती और कुछ अधिक कृष्णवर्ण होती है। इसका संस्कृत पर्याय—मधुरा, काको; कान्तिका, वायसोली, चरा, आडचिका, वरा, शृङ्गा, घीरा, मेदुरा, आड्चल, खादुमांकी, वयःस्या, लीवनी, शृङ्गलीरा, पयस्विनी, पयस्या और शतपाकु है। राजनिघण्टुके मतसे काकोली—मधुर रस, शीतल, कफ एवं शूलवर्धक और क्षयरोग, पित्त, शतव्याधि, रक्तदीप, दाह तथा क्लृप्तनाशक होती है। यह नेपाका वा सरङ्गसे पाती है। २ चीरकाकोली । ३ फलघृत, एक प्रकारका दुवा घी । कर्मवत् शब्दो ।

काकोलीद्वय (सं० स्त्री०) काकोलीका जोड़ा, दोनों काकोली । काकोली और चीरकाकोलीको काकली-द्वय कहते हैं।

काकोलुकिका (सं० स्त्री०) काकोलुक-बुन्-टाप् । एतद्बुन् ईश्वरेणिव्योः । पा ४ । १ । ११२ । काक और पैवंककी स्वाभाविक शत्रुता, कौबे और उलूकजानी दुश्मनी । काकोल्यादि (सं० पु०) तन्नामकोपशुद्रशयण, काकोली वगैरह, जड़ी बूटियोंका लक्ष्मीरा । इसमें काकोली, चीरकाकोली, लीवक, श्रेयभक, सुप्रपर्ण, मायपर्ण, मेदा, महामेदा, गुलच, कर्कटशृङ्गी, धर्मनोचन, चीरी, पन्नक, प्रवैण्डरीक, श्टडि, हडि, रुद्रिका, लीवली और मधुका काकोल्यादि द्रव्य है। इसका गुण रक्तपित्त तथा वायुनाशक और शृङ्ग, श्यायुः, स्वास्य एवं श्लेष्मवर्धक है। (दहत) कर्षं पंचकी आकृति विशेष ।

काकोल, काकोल शब्दो ।

काकोलक (सं० पु०) काकस्य षोडश वा कायति प्रकाशते, काक-षड-कै-क । मांस शूय सूत्र प्रप्रभाग और रक्तविश्रिष्ट कर्षं पाली । निर्मांसर्षंसिंघसापात्य गीणितवान्तिः काकोलपालिरिति (सन्तुत ११ च) काकोलक, काकोल शब्दो ।

काक (सं० पु०) कुम्भितं पक्षं यस्य, काः कादेशः । का पक्षवतीः । पा ४ । १ । १०४ । १ कटाप, मज्जारा, तिरछी जजर । कर्मधा० । २ कुम्भितं चतु, बुरी पांशु । काकतव (सं० स्त्री०) ककतुका फल । काकवेनि (सं० पु०) पभिरवतीका नामान्तर । काची (सं० स्त्री०) कसे कच्छे भवः कच-पष्-डोष् ।

नव मवः। वा ३। २। २२। १ सौराष्ट्रसत्तिका, एक खगुव-
दार मही। २ अङ्कुर, तोर।

काचीरो (सं० स्त्री०) वंशलोचना भेद, किमी किछका
वंशलोचन।

काचीव (सं० पु०) कु ईपत् चीवति, चीव-पिच-
काः काटेशः। शोभाञ्जनहृत्, एक पेड़। २ गौतम
ऋषिके एक पुत्र। यह श्रीगोनरो नाचनी शूद्राणीके
गर्भसे उत्पन्न हुये।

“यदायां गौतमो यम महाका वंशिततमः।

श्रीश्रीमयाञ्जनयत् काचीवापान् सुतान् मुनिः ३” (भारत, सप्त।)

काचीवक, काचीव देखो।

काचीवत्, काचीवत देखो।

काचीवत (सं० पु०) कचीवती मनोरपत्यं पुमान्,
कचीवत्-अण्। १ कचीवत् ऋषि सम्बन्धीय।

काचीवती (सं० स्त्री०) काचीवत-ङीप्। व्युपिता-
शक्ती स्त्री। इनका नाम भद्रा था।

काचीवान् (सं० पु०) १ दीर्घतमाऋषिके शूद्रागर्भ-
जात एक पुत्र। २ अण्डकौशिकके पिता गौतम।
३ कौई राजा। (भारत, भादि १ प०)

काग, काक देखो।

कागज (पारसीक शब्द) “कागज” क्या चीज है,—
यह किसी की समझानेकी जरूरत नहीं। छयिचीमें
ऐसे देश बहुत ही कम हैं, जहाँ कागज नहीं। भिन्न
भिन्न देशोंमें इसके नाम भी भिन्न भिन्न हैं। जैसे,—

उत्तर-भारत और पारख्यमें	कागज।
पारथमें	कर्पास।
तामिसर्में	बरक।
देन्कार्कमें	पेपिर।
फ्रांस और जर्मनीमें	पेपियार।
इटली और प्राचीन साटिनमें	काटं वा काटी।
पर्सीगोज और खेगमें	पेपेल।
रुपियामें	बुमाङ्गी।
इंग्लैंडमें	पेपर।

प्राचीन तान्त्रिक संस्कृत ग्रंथोंमें ‘कागद’ नाम
भी मिलता है। आजकल भी आगरा, एटा आदि
प्रान्तोंमें ‘कागद’ नाम प्रचलित है।

अब सब देशोंमें, प्रधानतः लिखनकार्यमें कागज-
का व्यवहार होता है। यह कागज भी आजकल
प्रधानतः नाना प्रकारके वाष्पीय यंत्रोंकी सहायतासे
यूरोप, अमेरिका और एशियामें बनते हैं; किन्तु अब
भी एशियाके दक्षिण और पूर्व प्रदेशसमूहमें हाथोंसे
यथेष्ट परिमाणमें कागज तैयार होता है। यह
कागज दुर्भूष्य है और विविध विधिये कार्योंमें व्यवहृत
होते हैं। भारतवर्षमें विविधतः जैनियोंके प्राचीन
(हस्तलिखित) शास्त्र इसी कागजमें लिखे जाते थे;
और अब भी लिखे जाते हैं। भारत, पूर्व-उपद्वीप,
चीन, जापान, पारख्य आदि देशोंमें ही ऐसे
हाथके बने हुए कागजका अधिक आदर पाया
जाता है।

भारतवर्षमें बंगाल, बिहार, भुटान, नेपाल,
अहमदाबाद, सुरत, धारवाड, कोल्हापुर, औरंगाबाद,
और दौलताबादमें ऐसा (हाथसे बनाया हुआ) कागज
यथेष्ट प्रस्तुत होता है। औरंगाबादका कागज सबसे
सूक्ष्म गिना जाता है। देशीय रजवाड़ोंमें इसी
कागजका अधिक आदर है। यह कागज सब कागजों
की अपेक्षा मृच्छ, चिकण और सूक्ष्म होता है।
इसके बाद दौलताबादके “बहादुरखानि” और
“माधागरि” कागज समधिक आदरणीय होते हैं।
इन कागजोंमें बनाते वक्त इसके मण्ड पर स्वर्णका
सूत्र पात मिला देते हैं, फिर कागज बनने पर उद्यमें
(कागजके) सर्वत्र वक्ष स्वर्णका सूत्रांश फेल जाता
है; जिससे देखनेमें प्रति चमत्कार शोभा देता है,—
इस कागजका नाम “आफगानि कागज” है। देशीय
राजन्वयण इस कागज (आफगानि) पर राजकीय
कार्यदि करते हैं। इन हाथके बने हुए कागजों पर
दलील, सनद, आदि लिखे जाते हैं।

जिसके ऊपर लिखा जाता है, उसे संस्कृतमें “पत्र”
कहते हैं। हिन्दी भाषामें (प्रचलित भाषामें)
‘पत्र’ वा ‘पत्ते’ कहनेसे जो अर्थ प्राप्त होता
है, संस्कृतमें “पत्र” शब्दका उद्यार्थ अर्थ वही है।
किंच लिए अक्षर, पत्र और लिखनप्रणालीकी उत्पत्ति
हुई, इस विषयमें एक कौतूहलजनक होने पर भी

की छाछीसे कागज बनता है जापानवासी इसको "कादजी" कहते हैं; इसमें भातका माड़ "ओरेण" (Oreni) मिलाकर खूबसूरत और मजबूत बनाते हैं और भी एक प्रकारके उष्ण जातीय हृत्तके छालसे कागज बनाते हैं, इस योष्णिके हृत्तको वहाँ "कादज" या "कादजिरा" कहते हैं। इस कागजमें खूब अच्छी छपाई पाती है। यह "कादजिरा" इतना मजबूत होता है कि इससे रक्षा भ बनाये जाते हैं सिरिगा प्रदेशके सिरिगान नगरमें एक तरहका कागज बनता है जो विलकुल रेशमसा जान पड़ता है; हाथमें लेकर देखनेसे भी इसमें रेशका भ्रम होता है। बहुतोंका अनुमान है कि जापानी "कागज" शब्दसे ईराणियोंनि कागज शब्द बनाया है।

समरकंदमें सबसे ज्यादा पतला रेशमी कागज बनता है। चीनके कागजसे भी इसका अधिक आदर होता है। सबसे पहिले चीनवासियोंनि ही रेशमसे कागज बनाया था यहहि भारतवर्षमें भारतसे पारस्य में पारस्यसे आरबमें आरबसे यूसनमें और यूसनसे प्राचीन रोमक राज्यमें रेशमी कागज बनानेकी परिपाटी चली है।

भारतवर्षमें केवल नेपालमें ही वांससे कागज बनता है। नेपालवासी वसोंको काटकर काठकी ढोखकीमें झूट झूट कर "मंड" बनाते हैं फिर पानीमें धो कर साफ करके, नाना उपार्थोंसे उसे रेशमके ऊपर टाक कर सुखा लेते हैं। इसको पत्थरकी बटनियासे घिस घिस कर बराबर करते हैं। यह कागज बहुत कड़ा होता है; और टट्टा नहीं फटता, सीधा ही फटता है। यह कागज "फिल्टर" (Filter) करनेके लिए सबसे अच्छा है, क्योंकि यह पानीमें भोग जानेसे सुरभ्राता नहीं; और न जल्दी नष्ट हो जाता है। "नेपाली कागज" नामका भी एक तरहका कागज होता है। यह महादेव का-फूल (Japhne canabina) नामक हृत्तके बकलसे बनाया जाता है। ईस्वी सन् १८५१ की प्रदर्शनीमें इसी बकलसे बना हुआ एक बड़ा कागज दिखाया गया था, दर्शकोंनि इसे देख कर बड़ा आश्चर्य किया था। इसकी बनाने

की तरकीब जापानके वृत्त-छानके कागज तरीकी ही है, सिर्फ फरक इतना ही है कि, ये लोग डालीकी छवाल कर सिर्फ भीतरी छालको ही उवाकते हैं। यह कागज कभी कभी कड़ी से घिस कर भी बराबर किया जाता है। यद्यपि यह कागज 'नेपाली-कागज' कहलाता है; पर वास्तवमें यह नेपालमें नहीं बनता। भोट राज्यमें और हिमालय प्रदेशमें ही इस हृत्तके बहुतसे जंगल है, और वहीं पर यह कागज बनता है। भुटिया लोक इस हृत्तकी लकड़ी जलाया करते हैं। १८२८ ईस्वीसे पहिले इस काठके ईंटके आकारके कुछ टुकड़े इंग्लैण्डमें परीचायें भेजे गये थे। वहाँ इसके द्वारा हाथोंसे जैसा कागज बना, उसके सम्बन्धमें एक मुद्रकका कहना है कि, इस कागज पर जैसी सूत्रसे सूत्र छपाई हो सकती है, वैसी किसी अंग्रेजी कागज पर नहीं हो सकती। यह चीन देशीय "इंडिया-पेपर"के समान गुणविशिष्ट होता था। नेपालमें ऐसे कागज पर लिखी हुई कुछ प्राचीन पोथियाँ मौजूद हैं, सुनते हैं ये बहुत ही प्राचीन हैं। इन पोथियोंकी देख कर बहुतसे अनुमान करते हैं कि, चीन देशसे प्राय-७०० वर्ष पहिले भुटिया लोगोंनि यह कागज बनाना सोचा है। "महादेव का-फूल" छोटा कांठ-हृत्त मात्र है, देखनेमें बहुतसा विलायतो सरलकी भांतिका होता है। यह दो वर्ष तक जीता है; और जाड़ेमें इसके पत्ते नहीं भरते। इसका फल विपाकृत है। यह हृत्त कई तरह होता है, पर सबसे कागज बनता है। कुछ हृत्तोंके फूल सफेद होते हैं; और कुछका रंग थोड़ा मटौला और बेगनी रंग मिला हुआ सफेद सा होता है। बहुतोंका विश्वास है कि, हिमालयके नीचेके लोग नेपाली कागजमें उड़ताल मिलाते हैं; पर यह विलकुल गलत है, क्योंकि नेपालमें वेसा विष कोई देव नहीं सकता; और खियाकर बेचने पर भी उसे विगिय दंड दिया जाता है। "महादेवका फूल"का हृत्त भी थोड़ा विपैला होता है; पर कागज बन जाने पर उसमें विष नहीं रहता, क्योंकि देखा गया है कि इसमें भी कोड़े लगते हैं। यह सूखने पर बड़ा कड़ा हो जाता है; सूखी चीजों

समूहक प्रमाण रघुनन्दनके 'व्योतिस्तत्त्व' में देखनेमें पाया है,—

"कामानिके तु चक्राने भातिः संशयते यतः ।

भातापरादि दृष्टानि पत्रावकाशतः पुरा ॥"

पर्याप्त कुछ मास बीतने पर भ्रम उपस्थित होते देख विद्यमानने पूर्व कालमें अक्षरकी सृष्टि की और वे पत्र पर लिखे गये। कुछ मासके बाद अधिकांश बातोंमें ही भूल हो जाती है, यह ठीक है।

जगत्की उत्पत्तिका इतिहास पर्यालोचना करने पर समझ सकते हैं कि, पहिले ही कागजके ऊपर स्याही और कलमसे लिखने की प्रथा प्रचलित नहीं हुई। कागज आविष्कृत होनेसे पहिले किस पर लिखा जाता था, किससे कागज चुभा, पहिले किस देशमें कागजकी सृष्टि हुई और कौन कौनसे द्रव्यसे कैसे अब कागज बनता है, यह यथाक्रमसे पढ़ने किया जाता है।

१। कागज बननेसे पहिले कौन कौन सामग्री से स्वरूपमें व्यवहृत होती थी? यह बतलाते हैं।

(क) पत्थर और काठ—सबसे पहिले काठ और पत्थर ही स्वरूपमें व्यवहृत होता था। अति प्राचीन कालमें काठ और पत्थर पर अक्षरादि खोद कर रक्षितव्य विषय लिखे जाते थे। कालदीया प्रदेशमें प्राचीन समाधिस्तम्भके और मिशर देशके पिरामिडके ऊपर खोदित अक्षर अक्षरमाला ही इसका प्राचीनतम निर्दृश्य है।

(ख) इटक—कालदीयगण इटक (इंट) के ऊपर अपना ज्योतिषिक पर्यवेक्षणादिका फलाफल सत्कीर्ण कर रखते थे। इस प्रकारकी लिपि विगिष्ट इटक अब किमी किसी यूरोपीय अज्ञायवचरमें संरक्षित हैं।

(ग) सीसा—प्राचीन कालमें सीसेके ऊपर दलीज आदि खोद कर रखनेकी प्रथा थी। कहा जाता है कि, एरिस्थड की "पत्रायकी और उनका समय" नामक पुस्तक एक बड़ी सीसेकी टेबिल पर खोदी गई थी और बहुत दिनोंतक मेसिसके मन्दिरमें रक्षित थी। सीसेकी पत्ती, इतौड़ासे पीटकर पतली

कर स्वरूपमें व्यवहृत होती थी। रोमनगरमें ऐसे सीसा पर खुदे हुए एक पुस्तक मिली है। उसका आकार ४ इंच लम्बा और ३ इंच चौड़ा है। यह प्राचीन मिसरीय अक्षर अक्षरोंमें लिखित है।

(घ) पीतलआदि—रोमनगरमें साधारण प्रस्तर आदिका फलाफल उस समय पीतल आदिमें खोदा जाता था। प्राचीन रोमीय ऐनिकगण युद्धसेवमें पीतलकी म्यान (तलवार रखनेकी)में अपना "इच्छापत्र" (Wills) लिख रखते थे। १२ शरोंकी कानून (Laws of 12 tables) पीतल पर खोदी गई थी। रोमक सम्राट् मेसेसीयानके राजत्वकालमें जब अग्नि-दाहसे राजधानी जल गई थी, तब करीब ३००० (तीन हजार) पीतलकी पात गट हो गई थी; इन सब पातोंमें बहुत प्रयोजनीय कानून (नियम) और दलीलादि भस्मीभूत हो गये। सिरीयाके प्राचीन नठमें ६०० बुकाननको ६ (छे) धातुफलक मिले थे। वे धातु विमिश्रित थे। ६ धातुफलकोंमें करीब ११ पृष्ठ थे। यह त्रिकोणाकार अक्षरोंमें लिखित थे। कोचीनके यहूदियोंके पास और भी ऐसे कई एक धातुफलक हैं।

(ङ) काठ—चीनके कानून काठके ऊपर खोदित हैं;—इस काठमय कानून-पुस्तक का नाम "अक्सोनस्" (Axones) है। उनमेंसे कितने ही कानून पत्थर पर भी खुदे हुए हैं। इन प्रस्तर-निष्पिका नाम की भाषामें "किरबिस्" (Kyrbies) है। होमरके समयसे पहिले की तानिका-पुस्तक भी (सीसकी) काठ पर खोदी जाती थीं। यक्स नीबूके पेड़का काठ और छापीके दांत ही इन सब कार्योंमें अधिक व्यवहृत होते थे। तब इन सब काठोंके ऊपर सीम लगा कर सीक (सोना, चांदी, पीतल, सोडा या तांबेकी पैनी सलाई) को गड़ा गड़ा कर लिपनेकी प्रथाकी प्रचलित थी। इन सब लिखे हुए काठके टुकड़ोंकी बांध कर रखनेसे जो पुस्तकें बनती थीं, उनको "कडेक्स" (codex) पर्याप्त बोधो कहते थे। इन काठोंके ऊपर कभी कभी खड़ियामिठी भी लिखा जाता था। बंगाल और उत्तर-पश्चिम प्रदेशोंमें

की पुड़िया बांधनेके लिए भी प्रच्छा होता है। कल-कत्तेके पत्रायव घरमें ऐसा एक मौजूद है; जो सम्पूर्ण में ५० फुट और चौड़ाईमें २५ फुट मापका है।

भूटान वासी अपने यहाँके "डिया" नामके एक तरहके हचकी छानमें कागज बनाते हैं। ये लोग एक हचकी छानकी सखी सखी घेर कर, लकड़ीकी खाकके साथ छयासते हैं, फिर पत्थरके ऊपर रख कर काटके मुहरसे फूट फूट कर "मंड" बनाते हैं। बादमें आपागियोंकी तरह कागज बनाते हैं। इससे साटिंग और रोगम बुनी जा सकती है। चीनदेशमें यह उसी रूपसे ही व्यवहृत होता है।

सम्राज्यमें एक मातिका छतासे कागज बनाता है। यह पोट बोर्डकी तरह मोटा और कड़ा होता है। इस कागज पर रंग चढ़ा कर, इस पर सिलेट-पेन्सिलकी मातिका एक तरहके फीके पीले रंगके पत्थरकी पेन्सिलसे लिखते हैं।

श्याम देशमें एक प्रकारके वक्रससे २ तरहके कागज बनते हैं,—१ सफेद और २ रंगे रंगके। जिस हचकी छानसे यह बनाये जाते हैं, उस हचका नाम है—"विलकूली"। यह प्रच्छा कागज नहीं होता; और बनता भी प्रच्छा नहीं।

पहिले ही कह चुके हैं कि भारतवर्षमें भी जायसे कागज नहीं बनते। यहाँ पुराने घोर, फटे कपड़े, पुराने कागज और अग्रमान हवादिसे कागज बनते हैं। पहिले इन सबका पानीमें भिगो कर चूनेकी धूर मिला कर फूटते हैं। फिर "मंड" की धी कर चूनाके पानीमें सड़ाते हैं, ४-५ दिन बाद यह पानी बदल दिया जाता है। इसी तरह दो-तीन बार पानी बदल कर प्रच्छी तरह सड़ा कर फिर उसे साँचेमें टाल कर सजा लेते हैं। कागज सूख जाने पर भातके माँड़से घोट कर सजाया जाता है; फिर दो-चार दिन दबा रखा जाता है; बादमें मिला-पत्थरसे घिस कर चिकना किया जाता है।

१८ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें यूरोपमें कई घोर सन से प्रथमतः कागज बनाये जाते थे; फटे पुराने कपड़े और रोगममें नहीं। अब प्रथम रूपसे फटे पुराने

कपड़े घोर रोगमसे बनाये जाते हैं, क्योंकि इनका सड़नेमें घोर कम खर्चमें "मंड" बन जाता है इसी सड़नेकी विधिसे लिये पात्र कल यूरोपमें माना स्थानोंसे फटे पुराने वस्त्रादिकी प्रामदनी जाती है।

मादागास्कर द्वीपमें "बाबो" नामके हचकी छानसे एक प्रकारका कागज बनाता है। यह कागज भी भूटानके "डिया" नामके हचकी छानके कागजकी तरह बनाया जाता है। इसमें भातका मोड़ दिया जाता है; इस लिए यह कागज स्याही नहीं सोकता।

रुईके कागजका इतिहास।—यूरोपीय विद्वानोंके मतसे, बुकेरिया प्रदेशमें खूटीय ७वीं शताब्दीके अन्तके समयमें अथवा १०वीं शताब्दीके प्रारम्भमें सबसे पहिले "बाम्बिकिनी" (Bombycinnee) नामके रुईका कागज बनाया। चारवींशत कहते हैं कि, जम्बू-पामरा नामकी व्यक्तिके ही सबसे पहिले ऐसा कागज बनाया था। परन्तु हमारी समझसे इससे पहिले भी तुसाट वा रुईका कागज भारतवर्षमें प्रचलित था। इसका प्रमाण माकिदनघोर सिकन्दरके सेनापति नियार्कसके "तुनाचापदान" के विषयके उत्तरेसे मिलता है। पारसियोंने कागज बनानेकी प्रथमी पारसियोंसे सीखी; और इन्हीं लोगोंने सबसे पहिले पाकिस्तानके अन्तर्गत सिन्धु नगरमें, फिर अफगान देशमें कलैटिटा द्वैसेन्धिया घोर टसेडी नगरमें रुईके कागजका कारखाना खोला था यूरोपवासो १२वीं शताब्दीमें पूर्व-यूरोप और सिसिल द्वीपमें रुईके कागज बनाते थे। कागज बनानेके योग्य, वस्तुओंके प्रभावसे ही रुईके कागजका प्रादिभाव हुआ था। इन कागजके बननेमें क्रमशः परिवर्तन कागज उठ गया था। १३वीं शताब्दीमें रुईका कागज अथ ही व्यवहृत होने लगा। यह पहिले ५०० पू० १की शताब्दीसे खूटीय ८मी शताब्दीमें चीन और भारत, क्रमशः पारस, पारस, चीन, अफगान (भिन्धिया) घोर अफगान तक फैल गया। जब इसका नाम था पीक पार्सेनेट; उस समय पीक लोग इसे "अम्बरकनि" कहते थे; क्योंकि पीक भाषामें रुईके हचकी "बम्बिक" कहते हैं। प्राचीन साटिंग लोग इसे "बाटो बम्बिकिनी" (Charta

अब भी छोटे छोटे दूकानदारोंकी दुकान पर ऐसी वस्तु देखनेमें आती है। ये लोग ६—४ इंचके ३ काठकी टुकड़े एकत्र रखीमें पिरो लेते हैं; और उस रखीके धोरमें एक लोहेकी कौल बांध रखते हैं। उन टुकड़ों पर मोम और कालोच मिला कर लगा देते हैं। खरीद विक्री करते करते यदि उधार देनेका या और कोई हिसाब आ पड़ता है; तो ये उन टुकड़ों पर उधी कौलसे लिख लेते हैं। रंगाल प्रांतकी 'होड़कर प्रायः सारे हिन्दुस्थानमें विशेषतः मारवाड़ और युक्तप्रान्तमें काठकी पट्टियों (१ फुट + १७०) पर खड़ियामिठी घोल कर सरपते (हेंटा) की कसमसे लिखा करते हैं। यह सेंटा उन प्रान्तोंमें घासकी तरह अपन आपही उपजता है। सिलेट और पेंसलका उन प्रान्तोंमें बहुत ही कम प्रचार है, वहांके मदर्शीधोंमें तो यही "पट्टे" काममें लायी जाती है। पहिले जमानेमें ऐसे काठकी टुकड़ों पर चिट्ठी लिख कर रखीसे बांध कर, गांठके ऊपर मुहर लगा देते थे। सलोमन-पुस्तकालयमें २ फुट ६ इंच काठके तख्तापर एसा लिखा हुआ मौजूद है। चीनमें भी काठके तख्ते लिखनेके काममें आते हैं।

(च) पत्ता—प्राचीन कालमें अधिकांश जातियां पेड़ोंके पत्तोंको लेख्यरूपसे व्यवहारमें आती थीं। आफ्रिकाके मिसरीयोंने सबसे पहिले ताड़पत्र पर लिखना सीखा था। सिराकिउसके जज लोग 'जलपात्र' वृक्षके पत्ते पर निर्वासन-दण्डके आशामियोंके नाम लिखते थे। भारतवर्षमें, सिंधुधर्म और ब्रह्मदेशमें ताड़-पत्रका अधिक व्यवहार होता है। ब्रह्मदेशमें उत्तम पुस्तकें चाथीके दांतकी पत्तियों पर लिखी जाती थीं। चाथीके दांतकी पत्तियां पहिले कालों रंगबी जाती थीं और फिर उधपर सोनेकी या चांदीकी 'चिह्न' से अक्षर लिखे जाते थे। उड़िया और सिंधुलीय लोग "तालिपत" वृक्षके पत्ते व्यवहार करते हैं; यह पत्ते बहुत चौड़े और पतले होते हैं। इसके ऊपर अक्षरोंकी अष्ट वर्णके सिधे उस पर लोहेकी सोंकसे लिख कर फिर उस पर कीयलका चूरा घिस कर पोंछ देते थे। अब भी सिंधुधर्म 'तालिपत' और भारतमें

'ताड़-पत्र' का बहुत कुछ व्यवहार किया जाता है। दक्षिण (यवणवेलगोला आदि)में ताड़-पत्र पर शास्त्र लिखनेका बहुतही प्रचार था और अब भी है। जैनवद्वी मूडवद्वे नगरमें "जयधवल-महाधवल" नामक ताड़पत्र पर लिखे हुए दिगम्बर जैनियोंके महान् ग्रंथ अब भी मौजूद हैं। आराके जैनसिद्धान्त-भवनमें भी बहुतसे ग्रन्थ ताड़-पत्रोंमें लिखे हुए मौजूद हैं। नेपालमें महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्रीजीने जितने हस्तलिखित ग्रन्थ देखे हैं, उनमेंसे ईंग्रैके ६४ ग्रन्थकी पोयो सबसे प्राचीन गिनी जाती है। परंतु दक्षिणके उपयुक्त ग्रन्थों (जयधवल-महाधवल) परसे निश्चय किया जाता है कि, भारतमें ताड़-पत्रों पर लिखनेकी प्रथा बहुत दिनोंसे चली आती है।

(छ) हस्तवल्कल—पेड़ोंकी छाल भी कियो समय पृथिवीके सर्वत्र लिखने के काममें लाई जाती थी। पहिले कालदीयगण पेड़ोंकी भीतरी छालको "लेबर" (Leber) कहते थे और उसको लिखनेके काममें लाते थे। इसी 'लेबर'से ही अब 'लेवर' शब्दसे पुस्तकका ज्ञान होता है। ब्रह्मदेशमें बांस की खपच पर पवित्र पुस्तकें लिखी जाती थीं। सुमात्राद्वीपमें बुछाजाति अब भी एक तरहके पेड़की भीतरी छाल पर लिखा करती है। ये लोग इस छालको लंबी लंबी चीर कर चौखूटी घरी करके रखते हैं। रजन या टार्पिन-तेलके हथ जातीय एक प्रकारके वृक्षके रसमें इक्षुरस मिला कर स्याही बनाते हैं। साधारणतः व्यवहारके लिए ये लोग बांसके गांठमें लगी हुई खोत्र (असिफलक) पर भी लिखा करते हैं। बोडुसियग लाइन्नेरीमें मेसिसको देशके अष्ट संकेतिक अक्षरोंमें लिखी हुई एक पुस्तक है, उसके अक्षर-समूह भी वल्कलके उपर लिखे हैं। भारतके मलवार उपकूल-वासो अब भी प्रधानतः वल्कलके ऊपर लिखा करते हैं।

(ज) रेगमोवल्कल—ग्रिनि कहते हैं कि, रेगमो वल्कलके ऊपर लिखना पहिले अफसिब व्यक्तियोंमें प्रचलित था। इन रेगमो वल्क पर लिखित पुस्तकादिमें मजिस्ट्रेट लोगोंके नाम और साधारणको

Bombycina) बीचमें लेखकगण "चार्टा गसिपेना" या "एक्सजीलीना" (Charta Gossipena or xglina) और खो निकले लोग "पार्गामिनो डि पानो" (Pergamino di panno) कहते थे। डामास्कासमें जो कागज बनता था, वह अच्छा बनता था; इसलिए उसको "चार्टा डामास्केन" (Charta Damascena) और बहुत से "चार्टा गोटोनिया" (Charta Gotionia) एवं अन्तमें "चार्टा सेरिका" (Charta Serica) कहते थे। क्योंकि, चीनके शेरका प्रदेशसे ही पछिले पहल रुई आसदनी होती थी। उसके बाद क्रमशः उत्पत्ति हुई है।

रुईके कागजके बाद रेशमसे कागज बनना शुरू हुआ। ग्रिन्की वर्षना पढ़नेसे मालूम होता है कि, रेशमी बस्त्रके एक टुकड़ेको माना उपायोसे बनाकर उसी पर लिखनेकी रीवाज भी थी, इसको "लिबि-लिण्टिए" (Libitintie) कहते थे। आजकल रेशम पर चित्र बनानेके लिए, चित्रकर रेशमको पहिले जिस प्रकार बना लेते हैं; उस समय भी रेशम पर लिखनेके लिए ऐसा करते थे। १६०८ ईस्वीमें सबसे पहिले यूरोपमें जर्मनियोंने रेशमसे कागज बनाया था। कोई कोई इटालियोंको प्रथम निर्माता कहते हैं। यूरोपियन चीनवासियोंसे यह सीखा था। कोई कोई कहते हैं कि, ईस्वीकी १२वीं शताब्दीमें भी यूरोपमें रेशमी कागज था।

कागजकी मिलें और व्यापार इत्यादि—भव यूरोपके सर्वत्र, एशिया और अमेरिकाके अनेकानेक स्थानों पर साधारणतः वायोय यन्त्रोंकी सहायतासे तरह तरहका कारखानोंमें कागज बनता है। इस समय कूटना, पीसना, 'मंड' बनाना, घोना, साँचेमें डालना, सुखाना, चिकना बनाना, मापके पतुसार कारना-इत्यादि सबही काम कस या मशीनोंसे होता है। आजकल यूरोप, अमेरिका आदि सर्वत्र फटे पुराने कपड़ेसे ही प्रधानतया कागज बनाया जाता है। बहुतसे मिल वास्तुशा कहना है कि, रुई सरीखी चीजों (बस्त्रादि) से जैसा 'मंड' बनता है, वैसा ही प्रायुजिक मिर्कोंमें अच्छी तरह लग सकता

है; पर कच्ची रुई (पर्यात् सूत वा वस्त्रादिके सिवा दूसरी अवस्थामें) से जो 'मंड' बनाया जाता है, वह सहजमें व्यवहृत नहीं हो सकता। समय समय पर तरह तरहके मत्स्योंने तरह तरहकी चीजोंसे कागज बनाया है; सहजमें और कम खर्चमें अधिक कागज बनानेकी आशासे लोग घास, पूसा, पत्ते इत्यादिके कागज बनानेकी तरकीब निकाल रहे है; पर आज तक रुई और रेशमके बस्त्राओंके कागजकी भाँतिके कागज किसी दूसरी वस्तुसे नहीं बन सके। हाँ, बराबर प्रयत्न करने पर भविष्यमें कौसा फल हो यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि, पेपिरस बहल खूब लम्बके बाद भी प्रायः १२ सौ वर्ष तक बसा था; और रुई रेशमके कागजकी उमर तो अभी १२५० वर्षकी ही हुई है। लन्डनमें ईस्वी सन् १८००में धानके पूसासे कागज बनता था। उस समय मार्कुइस आफ् सन्-वारिने इङ्ग्लैंडके राजा तृतीय जर्जको एक पुस्तक उपहारमें दी थी; जिसका कागज धानके पूसासे बना हुआ था। और जिस जिस चीजोंसे कागज बन सकता था, उन सबका जितना विवरण उस समय मिला था, उसीका इतिहास उस पुस्तकमें सुद्धित था। धानके पूसासे बनाया हुआ कागज आज कल यूरोपमें सर्वत्र प्रचलित है; और यद्येष्ट बनता भी है। एकवार गिल्ससमितिमें भारतवर्षके कुछ जणोंकी परीचा की गई थी, इसमें स्थिर किया गया था कि, सब जणोंसे ही कागज बन सकता है; पर इनमेंसे धानका पूसा ही सबसे अच्छा है। १७०२ ई०में जर्मन भाषामें, एक पुस्तक लिखी गई थी; जिसमें भिन्न भिन्न ६० प्रकारके सतन्त्र द्रव्योंसे बने हुए कागज थे।

अप्रिकामें एस्पार्टा (Esparta) जण और एडान्-सोनिया (Adansonia) वृक्षके सिवा "डिस्" घास (Diss-grass) से भी कागज बनाया जाता है, पर यह सहज-प्राप्य नहीं। आसजिरिया प्रदेशमें एक प्रकारका छोटा ताल होता है, इससे भी कागज बन सकता है; पर यह भी दुर्लभ है और इसमें तैल रहता है, इस लिए कागज भी अच्छा नहीं बनता। दक्षिण-अफ्रिकामें नदीके बहावको रोक कर एक

दक्षीण आदि लिखो जाती थीं। मिमरके लोग भी ऐसी पुस्तकों पर रचित ग्रन्थ लिख रखते थे।

(क) पशुचर्म—एक समयमें कहीं कहीं जोग पशुओंके चमड़े पर भी लिखा करते थे। जोम जाति पुस्तकोंको “डेफ्टेरी” (Defterre) वा चर्म (?) कहती थी। “बिब्लस” (Biblos) पेड़ का एक दुर्लभ पत्र होता था तब लोग बकरी और भेड़ोंकी छाल पर लिखते रहे। ईजिप्टके प्रथम सतकमें ‘कनुटां टिनोपल’ में जो भीषण अग्निकांड हुआ था, तब एक खातिके सर्पके पीट का चमड़ा जल गया था। उसी सर्प-चर्म पर योकाका महाकाव्य “इलियाड” और “वडेसि” खोनेके अक्षरोंमें लिखा गया था। यह हिंसक लिखन-प्रणाली अब कहीं भी नहीं रही।

(ख) पार्चमेंट और विलांम्—बकरी और भेड़ की छालकी रीति अनुसार ऐसा बना लिया करते हैं; जिसमें “छापा” हो सके। ऐसे बने हुए चमड़ेका नाम ‘पार्चमेंट’ है। सूक्ष्म और अच्छा पार्चमेंट विलांम् कहलाता है। विलांम् चमड़ेसे नहीं बनता; अकाल-प्रसृत या दुग्धपायी गोवत्सके चर्मसे बनता है। पहिले यह देवी लोग इस पर कानूनादि लिखा करते थे। पारसी लोग इस पर खदेगप्रचलित गल्प वा इतिहास लिखते थे। दस्तावेज लिखनेमें यह अब भी व्यवहृत होता है। डे सडेन साइबेरीमें इमापचीके चमड़े पर लिखी हुई एक मेक्सिको-पत्रिका और भियेना-साइबेरीमें एक पुस्तक है।

(ग) बना हुआ चमड़ा (जोम छील कर, पीट कर साफ किया चमड़ा; जो आजकल भारतमें भी खूब व्यवहार किया जाता है।)—ऐसे चमड़े पर पारसी लोग अधिक लिखते थे।

२। कागजकी उत्पत्ति—पहिले ही एकदम अंग्रमाम पदार्थके ‘मल्प’से कागज बनानेकी प्रणाली उद्भावित नहीं हुई। पहिले यह और हवादिका अंग्रविशेषमें कागजवत् एक प्रकारका पदार्थ बनता था। इसमें विदेशीय ऐतिहासिकोंके मतमें “पेपिरस” (Pepirus Antiquorum) वा बार्देविलके मतमें “बुलरुश” (Bulrush) नामक पत्रके जड़से बने हुए

कागज सबसे प्राचीन है। इससे जो कागज बनता था, उसको ‘पेपिरस पेपर’ और अंग्रेजोंमें ‘पेपिरि’ कहते थे। नैस नाहब कृत Exodus नामक ग्रन्थमें देखा जाता है कि, ईस्वी १४०० वर्ष पहिले भी पेपिरिका बहुत प्रचार था; और ईस्वीके ३०० वर्ष बाद भी इस पेपिरिके व्यवहारका उल्लेख मिलता है।

यह पत्र शरकी भांति जलाशय-भूमि पर उत्पन्न होता है। मिसरदेशमें, सिरियामें और सिविलिस्वियमें यह पत्र उत्पन्न होते हैं। सिरियामें इसको ‘बेबेर’ (Babeer), योर्कमें ‘बिब्लोस’ (Biblos) और एजिप्टमात्रमें प्राचात्य मनीषिगण ‘साइपेरस सिरियाकास’ (Cyperus Syriacus) कहते हैं। यह करीब ८ फुटसे लेकर १२ फुट तक लंबा होता है। इसके पत्ते शरके पत्ता छोटे नहीं होते, अंगाल प्रांतके “भाउ” हलके पत्तेकी भांति इस पत्रके अग्रभागमें ८ पत्ते होते हैं। इसके सर्वाङ्गमें पत्ते नहीं होते और न शरकी भांति इसमें गांठें ही होती हैं। इसका वर्षे सजुज होता है; पर जो अंग कीचमें रहता है, वह सफेद होता है। इस सफेद अंगकी छाल बहुत ही पतली होती है; और १८.२० घंटे भी होती है। इन घरियोंकी सावधानीसे खोल कर चौड़ाइकी ओर जोड़ देनेसे ही कागज बन जाता था। उन जासोंके जोड़नेके लिए उस समय गिरीय वा अन्य कोई बेंसे ही यन्त्र काममें लाई जाती थी। ‘पेपिरस’ घासकी जड़ मनुष्यके हाथके समान मोटी होती है, पतः जितनी गोब्राई उसकी होती है, उतनी ही कागज की भी चौड़ाई होती है। यह छाल जितने भीतरकी होगी उतनी ही पतली होगी, इसलिए तब मोटा पतला सब तरहका ‘पेपिरि’ बनता था। जो ‘पेपिरि’ सबसे अधिक पतला होता था, उसको प्रीज लोग ‘हेरिटिका’ कहते थे, कारण कि—इस तरहका ‘पेपिरि’ सिर्फ मिसरीय याजकगण ही व्यवहारमें लाते थे, अन्य साधारण वा विदेशीय पण्डित इसकी हीद नहीं सकते थे। मिसरीय याजकगण इस पर धर्मकथा लिख कर विक्रय करते थे। इस समयमें केवल मिसरीय लोग ही ‘पेपिरि’ बना लाते थे, पतः योर्क

प्रकारके छप एकत्रित किये जाते हैं; जो कि "पामेट" (Palmeta) नामसे प्रसिद्ध है। ये छप पाठ-द्वय मुट्ट में ही होते हैं; और इसमें भी कागज बन सकते हैं।

पात्र कल विनोद (कपासके बीज) को सुधीमे कागज बनते हैं। बहुतोंका कहना है कि, इसका कागज बहुत अच्छा होता है। पहिले स्पेन देशीय एम्पाटाके सम्बन्धमें जो कथा है, उनमें "मिरोकोया टेनासिसामर" (Merochoa Tenacissamar) और "लिगेयाम् स्पार्टम्" (Lygeum Spartum) जातीय घास ही अच्छी होती है, यह घास भूमध्यसागरके किनारे पर ही अधिक होती है।

भारतवर्षके वायना वृक्षकी भीतरकी छालसे भी बहुत अच्छे कागज बन सकते हैं।

प्रथिया राज्यमें "वीरो" नामके छपसे कागज बनता है।

कागज पर रंग बढ़ाना।—इङ्गलैंडमें सबसे पहिले लेसा रंगीन कागज बना था, उसका उत्पन्न पहिले कर चुके हैं। पहिलेसे साधारणतः कागजका रंग सफेद होता थाया है; और उसके ऊपर काली स्याही से लिखनेकी रीति चली आई है। कागज बननेसे पहिले जग चमड़े पर लिखा जाता था, तब भेड़ चमड़ेको चमड़े पर पीसा, मोला आदि रंग बढ़ा कर उस पर चुनदरी या रूपैरी छिन्नसे लिखा जाता था। रोमककण चमड़ेके दांतकी पत्तियों पर सज रंगकी मोम लगाते थे। बहुत जगह सिन्दूरसे लिखनेका चम प्रचार था। चीनके राज यममें प्रायः सब ही लिखा-पढ़ी सासरंगसे होती थी। भारतवर्षमें सन्धन, सासरंग और सिन्दूरसे मसालादि लिखनेकी प्रथा बहुत प्राचीन समयसे चली आई है।

रंगालमें और भारतके पन्थान्य स्थानोंमें बालकोंकी पहिले पहल "सिद्धम चमड़ी" नामक एक प्रकारके नरम पत्थरके टुकड़ोंसे कमीन पर लिखना सिखाया जाता है; फिर कसमः ताड़पत्र पर, केसेके पत्ते पर; और आखिरमें कागज पर लिखते हैं। इससे भारतकी सैन्धु वसुधा कर्मविशेष अष्ट भक्तक जाता है। भारतवर्षमें प्राचीन कालमें जितनी सैन्धु वसुध थीं,

उनमेंसे ताड़-पत्र, केसेके पत्ते, बट-पत्र, नैरेट-पत्र, मुर्जे-पत्र, गुन्नात् या वृक्ष-कागज, पत्थर और धातु-फलक आदि ही प्रधान हैं। अब भी ताड़-पत्रका व्यवहार है। मन्त्रादिका 'गढ़ा' बंधनेके लिए अब भी मूर्जे पत्र काममें जाता है। केसेके पत्ते भी अब तक गावोंकी पाठशाखाओंमें लिखनेके काममें लाये जाते हैं। केसेका पत्ता अच्छी छूट कर नष्ट हो जाता है, इसी लिए इस पर कोई रचितव्य विषय नहीं लिखा जाता। इस विषयकी संग्राममें एक कथायत है कि,— "लिखे दिलास कलार पति, मीसे थड़ागू पचे पचे"— अर्थात्, केसेके पत्ते पर लिखा दिया है; इस लिए लिखना न लिखना बराबर है। नैरेटपत्र पर लिखित पोटियों अब भी यथे मिलती हैं। यह ताड़-पत्रकी भांतिका ही होता है; पर उसमें कुछ पतला और चौड़ाईमें बड़ा होता है। यह ताड़-पत्रकी चपेला अधिक स्यायो होता है। बट वृक्षके पत्तेका चम विनकुल व्यवहार नहीं है। धातुफलक और पत्थर पर अब सिद्ध मन्त्रादिमें शिल्पनिधि छोदी जाती है। ताम्बकी चदर पर लैनियाका सिद्ध-यन्त्र भी खोदा जाता है। यन्त्र परम पूज्य होता है; और जैन विवाह पद्धतिसे जो विवाह होता है, उसमें इस यन्त्रकी स्थापना करके पूजा की जाती है। यह यन्त्र प्रायः करके सब ही दि० जैन मन्दिमें प्रतिमाके पास विराजमान रहता है और इसमें सिद्ध भगवान (चट कमीसे मुक्त) की स्थापना करके चट दृष्ट्या वि पूजा की जाती है। तान्त्रिक उदासक लोग ताम्ब, मोने और चांदीमें खोदित देवताओंके यन्त्र मन्त्रादिकी पूजा आदि करते हैं। गुन्नात् या तुलट कागजका भी यथेष्ट प्रचार है। पहिले इस कागज पर गौद, इसनीके विधाकी चूर; और इङ्गलैंड अगा कर घोट कर रंग बढ़ाया जाता था, कोई भातका माट भी लगाता था। इससे न तो कीड़े मगत थे और न कागज स्याही चीपता था। जिन कागजमें माटू लगता था, उस पर संस्कृतकी पुस्तक नहीं लिखी जाती थीं।

सुसजमानोंके कमानमें भारतमें कई तरहके

लोग वैसा सुन्दर 'पेपिरि' नहीं बना सकते थे। रोमकगण भी इसी लिए 'हेरिटिका पेपिरि' नहीं पाते थे; परन्तु पीछेसे इन लोगोंने वैसा बना लिया था। रोमकसम्पाद अगस्तासके समयमें रोमकगण मिसर देशसे यालकीके लिखे हुए 'हेरिटिका' खरीद लाते थे और एक प्रकार की शीपघिसे उसके अक्षर मिटा कर अपने व्यवहारमें लाया करते थे, यह शीपाध भी रोमवासियोंने बनाई थी। इस कागजका नाम, रोमवासियोंने अपने सम्पादके नामानुसार; "अगस्तास" कागज रक्खा। उससे नोचे दर्जेके 'पेपिरि'का नाम, वर्धाकी राजाके नामानुसार, 'लेभियाना' पड़ा। पीछेसे जब इन लोगोंको 'पेपिरि' बनाना भा गया; तब उल्टा दा यूनिके सिवा 'रेम्किथियेटिका' 'फेभियाना' 'एम्पोरटिका' 'क्लभिया' आदि नामके भिन्न भिन्न दामोंके पेपिरि बनाने लगे थे। ग्लिनके इतिहास पढ़नेसे समझ सकते हैं कि, ग्रीस या रोमके सर्वसाधारणका विश्वास था कि, पेपिरि बगानिके लिए, मिसर देशीय नील नदके पानीकी शल्यता ही आवश्यकता है, क्योंकि नीलनदके पानीमें स्वभावतः एक प्रकारका गोंदसा मिला हुआ है, उससे पेपिरि जोड़नेमें अधिक सहायता मिलती है। पेपिरिकी छाल एक टेबिल पर समान भावसे सजा कर उस पर नीलनदके पानीके छींटे दे कर, कुछ देर तक घाममें सुखा लेनेसे ही पेपिरि बनता था; परन्तु यह ठीक नहीं था। पेपिरिकी छालकी भिगोनेसे ही, उसमें एक प्रकारका गोंदसा निकलता था और उसे घाममें सुखा लेने ही वह सूख कर जुड़ जाता था।

इसके बाद कैसे, किस रीतिसे अंशमान् पदार्थको 'मंड' बनाके कागज बनानेकी तरकीब निकाली गई, यह जाननेका उपाय नहीं है। हां, खोजीगणोंका अनुमान है कि, जैसे बरैया, भौरा और मोधारके छत्ते देखनेमें बहुत कुछ कागजसे हैं और वह हृत्त पादिसे ही उत्पन्न होते हैं। उल्टा बरैया आदि जिस प्रकार हृत्तय विभेयको तरल बनाकर थोड़ा थोड़ा सुंघमें लेकर बड़े बड़े छत्ते बना लेते हैं, इसी प्रकार ही गायद कागज बनाया जाता था। अंशय ऐतिहासिकोंने

स्थिर किया है कि, करीब ईस्वी सन् ८५३में चीनके लोगोंने ही अंशमान् पदार्थसे सबसे पहिले कागज बनाया था।

कम्प्यूटिके समयमें चीनवासी बांसके भीतरी छालके ऊपर तीक्ष्ण देखनी द्वारा लिखा करते थे। फिर इन लोगोंने बांसकी ही छाल, रुई, रेशम और अन्यन्य वृत्तोंकी छालसे 'मंड' बनाके कागज बनाना सोचा था। ऐनबंधीय होटि नामक चीनसम्पादके राजत्वकालमें कोई एक वृत्तोंकी छाल, मछलो पकड़नेके पुराने जालके टुकड़े, सन, और रेशम एकसाथ चवाल कर 'मंड' बनाते थे और इसी मंडसे ही कागज बनता था। कागज बनानेके लिए पहिले जो कुछ यंत्र आदि बनाये गये थे, अब उसीकी उत्पत्ति करके उन्ही यंत्रोंसे उत्तमोत्तम कागज बनाये जाते हैं। अब चीनदेशमें नानाप्रकारके कागज बनते हैं। इस देशमें हो-सि नामक घास या फूस इतना अधिक उत्पन्न होता है कि, ये लोग उसीसे शकका दाह करते हैं।

जो कुछ भी हो, इंग्लैंडकी ऐतिहासिक कागज की उत्पत्तिमें चीनको ही प्रथम उपाधि दें या और किसीको; परन्तु ग्रीक इतिहाससे यथार्थ बात जानी जा सकती है। पन्नाब-विजयी ग्रीकसम्पाद अलेक्जन्दरके सेनापति नियरखुस् लिख गये हैं कि, उस समय उनने भारतवर्षमें उत्तम, नरम, चिकने और मजबूत एक तरहके 'रुइके' वस्तुके ऊपर राजगारके लेन देनका हिसाब लिखनेका बहुत प्रचार देखा है। यह गायद तुलात वा तुलाट भयवा तुलाट कागजकी भांतिका होगी। साकिदन-राजने खूट-जन्मसे ३२१ वर्ष पहिले भारतपर आक्रमण किया था, इसलिए उसके बहुत पहिलेसे भारतमें तुलाटके भांतिका कागजका प्रचार था,—यह निश्चित बात है। बहुतांको धारणा है कि विशाखती कागज वा पाधुनिक मिलोंके कागज पर इड़ताल फिर देनेसे ही तुलाट कागज बन जाता है; पर वास्तव में ऐसा नहीं है। पहिले मालद्व जिलेमें यह तुलाट कागज बहुत ही ज्यादा बनता था। देय विदेशोंमें भी इसका बहुत कुछ आदर होता था। इसीलिए माल-

कागज बनते थे, जिनमेंसे (१) सर्वसाधारणके सायक कागज, (२) भीर उमरावोंके कागज और (३) घुटे हुये कागज ही प्रधान हैं। घुटा हुआ कागज भी तीन तरहका था।

१ सफेद।—सिर्फ कुड़िया लुड़ियासे घिस कर चिकना किया हुआ।

२ राजरफसान—सुनहला और रुपहला ; अर्थात् दक्षिणात्यके “अफसानी” कागजकी भांतिका।

३ रा, टिकलीदार—जिसमें छोटी छोटी सुनहली और रुपहली टिकली लगी रहती हैं। यह मर्यादाके अनुसार भिन्न भिन्न रूपसे व्यवहृत होता था।

यह कागज चौड़ाईकी तरफ लम्बा होता था। इन कागजों पर विषय लिखे जानेके बाद, फिर इनको मोड़कर ऊपरसे एक बैसे ही कागजका टुकड़ा लपेट दिया जाता था। ऐसे कागजके टुकड़ेका नाम “कभरबन्द” था। फिर मखमलकी शैलीमें रखकर, उसे मखमलसे या जूरीसे बांध कर रख दिया करते थे।

कश्मीरमें एक तरहका पुराना देग्री कागज देखा जाता है। यह कागज देखनेमें सफेद न होनेपर भी ऐसा चिकना कागज भारतमें बहुत कम ही है। सुना गया है कि, ऐसा कागज कश्मीरमें बहुत दिन पहिलेसे बनता आया है।

आज तक परीक्षा करके जिन जिन उद्दिज बस्तुओंसे कागज बनाया गया, उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं ;—

इससे पहिले मिर्छों में सनकी (परित्यक्त) जड़से कागज बनाया जाता था, परन्तु आज कल मिर्छोंमें सन की जड़ से बोरे बनाये जाते हैं, इस लिये उसका मूल्य बढ़ गया है। इसी कारण सन की जड़से आज कल कागज नहीं बनाये जाते।

साबुई या बबुई घास ही कागजकी मिर्छों में कागज बनानेके लिये अधिक काम में लाई जाती है।

छह लाख या सात लाख मन की करीब यह उत्पन्न होती है। यह घास १५ या १७ मन मिलती है।

‘मस’ और मूँजसे भी कागज बनाया जा सकता है, परन्तु इससे शिफायत नहीं हो सकती। क्योंकि यह

घास अधिक पैदा नहीं होती; और इसका मूल्य भी अधिक होता है।

कहीं कहीं बांस से भी कागज बनाया जाता है। इसदेय में बांस द्वारा कागज बनाने की कल अभी तक स्थापित नहीं हुई है। पासाम और ब्रह्म देय के जंगलों में यथेष्ट बांस उत्पन्न होते हैं। बांसों की कटाई, रेलका किराया, मजदूरोंको मजदूरी आदि जोड़ कर हिसाब लगाने पर १५ या १७ मन से कम नहीं पडेगा। जर्मनी में सिफ धान के पूलों से कागज बनाया जाता है।

हाल ही में क्रायि तत्वविद् श्रीयुक्त निवारणचन्द्र, चौधरी ने गवेषणा पूर्ण यह मन्थ्य प्रकाशित किया है कि, ‘सन-कटो’ से कागज बन सकता है। उन्होंने रासायनिक परीक्षा करके देखा है कि ‘सन कटो’ से सैकड़ा पीछे ६० भाग कागज तैयार करनेके सूत्र होते हैं। उनके परीक्षा फल से जाना गया है कि—

सनकटो से सैकड़ा पीछे ६० भाग सूत्र
बांस से ” ४१ ” ”
सबुई बाबुई घाससे ” ३८ ” ”
नस से ” ३७ ” ”
धान के पूला से ” ३३ ” ”

सनकटो आजकल सिर्फ जलाने के काम में पाती और गांवां में कम कीमत में मिलती है। ५ या ७ आने मन इसका भाव है। श्रीयुक्त निवारणचन्द्र ने हिसाब करके दिखाया है कि बंगाल, बिहार, उड़ीसा प्रदेश की सनकटियों से १ साल में साठे पाँच करोड़ मन कागजके सूत्र बन सकते हैं। भारतवर्ष के लिये सिर्फ २५, पचीस लाख मन कागज-सूत्रकी जरूरत है। बाकी के सूत्र वा बने हुए कागज विदेशों में भेजने से देश को आर्थिक लाभ और गरीबों का कल्याण हो सकता है।

कागजात (अ० पु०) पत्रादि, बहुतसे कागज। यह शब्द कागज का बहुवचन है।

कागजी (अ० वि०) १ पत्रक-सम्बन्धीय, कागजके सुता-लिक। २ पत्रकनिर्मित, कागजसे बना हुआ। ३ सूत्र-त्वक्-विभिन्न, बहुत पतले शिखरेवाला। (पु०) ४

इसमें नामाप्रकारका तुल्य कागज देगविदेगमें रवाना होता था। उस समय चंपेजोनेची चीनके किसी एक तरफके कागजका नाम "India proof" रक्खा था। मानलूम होता है कि, यह कागज पहिले चीन देगमें उत्पन्न नहीं होता था; सबसे पहिले भारतवर्षसे ही यह कागज चीन देगमें पहुँचा हो। क्योंकि अगर ऐसा नहीं होता तो इसका ऐसा नाम हो क्यों पड़ता? और चीनके साथ भारतका अन्तर्वाणिज्य पहिले प्रचलित था, इसका प्रमाण यद्यत् है। चार-पाँच सौ वर्ष पहिले मालद्वयमें इस कागजका व्यवसाय खूब ही विस्तृत था और किसी एक योपीके लोगोंने यही उपजीविका थी। अब भी चीनके पुराने जमीदारोंके घरमें साटिनकी भाँति उज्वल और गरम एकतरफके कागजपर चादभाषी सनद, हाइ इत्यादि देखनेमें पाते हैं। यह सब पुरातन देगी कागज गौड़में बनते थे। हमने तुल्य कागज पर लिखी हुई कुछ बात भी वर्षकी प्राचीन पोथी देखी है। भारतवर्षमें सुसलमान भी कागजका व्यापार करते थे। सुसलमान, तातियोंकी जैसे "लुसाह" तथा मख्यजीवियोंकी "निकारी" चादि कहते थे, वैसेही इन कागजके व्यवसायियोंको "कागजी" कहते थे। अब भी कागजो सुसलमान लोग टाका प्रांतमें "कागज" बनाकर ही जीविका निर्वाह करते हैं। कलकत्तेकी अन्तर्जातीय प्रदर्शनी (२० १८८३-८४) में कई प्रकारके पट सनके कागज, टाका मुंगोसके "मिठू कागज"के बने हुए एक तरफके कागज, साहाबाद सासेरामसे ४ तरफके देगी कागज, बरहमपुर-कण्ठोलि (सुजफपुर) से दो तरफके देगी कागज, और भूटानसे एक तरफके छपकी फालका कागज पाया था। भुटिया कागजमें कीड़े नहीं लगते। यही कागज शुद्ध और गरम होता है—ऐसा प्रसिद्ध है।

पहिले पारस्य देगमें कठिन छप-हाससे एकतरफका कागज बनता था। उस हासका नाम तुज, वा तुज है। पहिलेके पारसीलोग इस तुजकी बमदेके साथ मिश्रकर कागज बनाते थे। ये लोग इस कागजकी खूब व्यवहारमें लाते थे और

उनसे पञ्जाब चादि उत्तर-भारतमें भी यह कागज पाता था।

सुसलमान-धर्मप्रवर्तक सुहन्दकी कुछ पुस्तकें भैषाकी बन्धकी छिट्टियोंकी पत्तियों पर लिखी गईं थी।

१.—विश्रायती कागजका इतिहास—

पहिले कहा जा चुका है कि, चीनवासियोंने ही, ईश्रीके पूर्व समयमें कागज बनानेके लिए; सन, रेशम और फटे वस्त्रोंसे 'मंड' बनानेकी तरकीब निकाली थी। पारसीय लोगोंने इसे चीनसे सीख कर ०६ ईश्रीमें समरवट शहरमें पहिले कारखाना खोला था। इनसे फिर यह कागज ईश्री १२वीं शतकमें पहिले यूरोपमें प्रचारित हुआ। इसी समयमें ही सबसे पहिले स्पेन देगमें रुईमें कागज बनानेका एक कारखाना खुला था। ११५० ई०में मेक्सिसिया प्रदेशके प्राचीन नगर कलेटिमा नगरके कारखानेके कागजकी सबसे अधिक प्रसिद्धि हो गई। यह कागज पूर्ण और पश्चिममें सब देशोंमें लाया जाता था। क्रमशः मेक्सिसिया और टकोसो प्रदेशमें खुशामति कागजके कारखानोंकी दिग्गज उत्पत्ति की। ईश्रीय १२वीं शतकके अन्तमें समयमें—यूरोपमें सर्वत्र रुईके बने हुए कागज व्यवहृत होते थे। उसी कागज पर लिखी हुई एक दलील उत्तर सिरीया प्रदेशके गस नगरके एक मैदानमें सुरक्षित है। यह दलील रोमकसम्नाट हितिया फ़ेदारिकका आदेश-पत्र है। इसमें १२४२ ईश्रीकी तारीख लिखी हुई है। अवशेषमें १४ वीं शतकमें सग और रेशमसे अधिक कागज बन निकले और ये रुईके कागजसे अधिक व्यवहृत होने लगे। तब रुईके कागजसे सनका कागज ज्यादा मजबूत बनता था। उस समय सग चादिसी जो कागज बनता था, वर्तमान प्रणालीकी भाँति तब सन धोकर सफेद नहीं किया जाता था, सिर्फ उमना मिला धो दिया जाता था। ये सब कागज जर्सी हैं, बर्दा बाज तक भी खूब मजबूत और समाग उज्वल हैं;—देखते ही इनकी प्रगंभा करनी पड़ती है। १४वीं शताब्दीमें इंग्लैंड, फ्रांस, इटाली और स्पेनमें

पत्रक विक्रीता, कागज प्ररीणत करने वाला। ५ प्रोत
गणेशपान, मकैद यदूतर। सुन्दरशौकाको 'कागजी
कोक' पौर सुन्दरत्वक विगिट निम्बुक को 'कागजी
नीयू' कहते हैं। कागजी वादासका भी लिखा बहुत
पतला होता है। हिन्दी में जिस वस्तुके पहले 'कागजी'
शब्द लगता, वह पति उत्तम रहता है।

कागद (हिं० पु०) पत्रक, कागज।

काग मुमुण्ड, काक मुमुण्ड (हि०) काकमुमुण्ड १५०।

कागर (हिं० पु०) १ पत्रक, कागज। २ पत्र, पत्र।

कागरी (हिं० वि०) तुच्छ, छद्म, चोखा।

कागस—दम्बर प्रदेशके कोल्हापुर राज्यका एक सुद
राज्य। यह पचा० १६° ३८' ०" पौर देगा० ७४° २०'
३०" पू० पर अवस्थित है। इसकी भूमि का परिमाण
१२८ वर्ग मील है। प्रति वर्ष २००० रु० कर लगता
है। वर्तमान सामन्त राजाके पूर्व पुरुष सपाराम राव
सेधिया के एक कर्मचारी थे। १८०० ई० की उन्हें
कोल्हापुर राज्यके निकट कागसकी सगद मिली। राजा
साहब ८ तोपोंकी सत्तारी पाते हैं। इस राज्यके नगर
का नाम भी कागस ही है। दूग्धगङ्गा पौर वेदगङ्गा
दो नदी हैं।

कागान—पञ्जाब प्रदेशके हजारा जिलेकी एक उपत्यका।
दक्षिण-पश्चिमी इन्के तोर्ना पार कागजोर राज्य
लगता है। भूमि का परिमाण ८०० वर्गमील पौर दैर्घ्य
६० मील तथा प्रत्य १५ मील है। कागानके यह प्रायः
१००० फीट ऊँचे पड़ते हैं। यह हिमालयके पत्त-
निमित्त है। इसमें २२ परराय हैं। यन्में अच्छी चट्टी
लकड़ी होती है। मनुष्य अधिक नहीं। वहीं कहीं
दो चार घरों में लोग रहते हैं। कागान नामक ग्राम
पचा० १४° ४६' ४३" ०" पौर देगांत्तर ७५° ३४'
१५" पर अवस्थित है।

कागाबासो (हिं० स्त्री०) प्रातःकाल की जामिबासो
विजया, कोषे कोसनेके समय लगने वाली भांग।

कागारि (हिं० पु०) कागज परिः कागः परिसो यत्त।
पत्रक, छद्म।

कागारोम (हिं० पु०) काकपत्र, कोषिका मोर, कुड़क।

कागिया (हिं० स्त्री०) मिथी विमिय, एक तरहकी भिड़।

यह तिब्बत में होती है। इसका गिर बड़ा पौर पर
छोटा रहता है। मांसका चाखाद सुमिन्न है।
कागिया मांसके जिये ही पानी पौर मारी जाती
है (पु०) २ लमिविमिय, एक कोड़ा। यह बाकरेकी
विगाहता है।

कागोर (हिं० पु०) काकपत्रि, कोषिकी दिया जानि-
वाला कोर। इसी आहाद के समय कश्मीर निकास कर
पाकको पिनाते हैं। बाबरपि दियो।

कागिनि (सं० पु०) ईदत्त अग्निः। अत्य अग्नि, छोड़ी पाग।
काङ्गायन (सं० पु०) एक मुनि। इन्होंने चरकसंहिता
प्रणेता अग्निवेश अरिपि के साथ भरद्वाज-पुर्गवद्य, से
पायुर्वेद पढ़ा था। चरकसंहिता देखनेसे इनकी बनाई
संहिता का भी पता लगता है। किन्तु वह देखने में
नहीं आती।

काङ्गायममोदक, (सं० पु०) मोदक विमिय, किमी किय
का सट्टू। यह इरीतकी ५ पल, जीरक १ पल, मरिच
१ पल, पिप्पली १ पल, पिप्पलीमूल २ पल, चविका १
पल, चितकमूल ४ पल, शण्डो ५ पल, यबचार २ पल,
भक्षतक ८ पल तथा गुड़कन्द १६ पल (चाँद) पौर
उक्त सब चूर्ण में हिंगुब गुड़ डालने से बनता है।
इसके सेवन से पार्श्वीरोग पच्छा हो जाता है।

काङ्क्षीय (सं० स्त्री०) दच्छा के योग्य, चाहने लायक।
काङ्क्षा (सं० स्त्री०) काञ्चि-चछाय्। चाकाचा,
इच्छा।

काङ्क्षित (सं० स्त्री०) काञ्चि-त्त। १ अभिरुचित, चाहा
जानेवाला। (स्त्री०) २ इच्छा, चाङ्क्षि।

काङ्क्षिता, (सं० स्त्री०) अभिवाच, चाहा।

काङ्क्षी (सं० स्त्री०) काङ्क्षतीति, काञ्चि-विनि। अभिलाषी,
चाहनेवाला।

काङ्क्षोद (सं० पु०) कङ्क्षयो, एक विद्विया।

काङ्क्षयम,—मन्द्राज प्रांतके खोयम्पुर जिले का
एक ग्राम।

यह धारापुर तहसीलके पत्तगैत पचा० ११° १' ०"
पौर देगा० ७५° १६' ५०" पू० पर अवस्थित है। प्राचीन
नाम कोङ्क्ष है। मन्थरतः पूर्व कालकी टाडिशाखके
कोङ्क्ष राजा यहां राजत्त्व रखते हैं।

सन, रोगमादिके कागजके कारखाने खूब ही खुले थे। जर्मनके नुरेबर्गनगरमें ई० १३०० में और इङ्ग्लैंडमें चार्टफीडसायरके टेम्पेनेज नगरमें सबसे पहिले कागजके कारखाने स्थापित हुए थे। इन्हीं लोगोंने कुछ पहिले वस्त्रोभाइल कागज टालनेका बुना हुआ सांचा बनाया था। इसी सांचिको व्यवहार करते करते फ्रांसियोंने इसको और भी उत्कृष्ट की और इसके नतीजमें उन्को सांचोंमें उस समय "वेल्लम" (Vellum) कागज बनते थे। इसी समयमें सन, रोगमादि उवाल कर कूटनेके लिए कैंची और कूटनी-कल इङ्ग्लैंडमें बनी थी। ई० १७८८में फ्रांसमें सुसीडिडोने सर्व-प्रकारके तन्तुघोंसे ही कागज बनानेकी तरकीब निकाली थी। सुसीडिडोने इस तरकीबका ई० १८०१में इङ्ग्लैंडमें प्रचार किया। ई० १८०४में फुड्रिनियार कम्पनीको इसका कांक्ट मिला; इस कम्पनीके सिवा दूसरा कोई ऐसा कागज नहीं बना पाता था। साखीमें दूसराने इनसे भी उत्तमोत्तम कल-कारखाने खोले; जिससे इस कम्पनीको घाटा पड़ा। रुयियाके राजकोषमें तब इसने १ लाखसे कुछ अधिक कर्ज लिया था। ७५ वर्षकी उमरमें फुड्रिनियार नामक एक कर्मचारी अपना एकमात्र कन्याको साथ लेकर यह रुपये वसूल करनेके लिए इङ्ग्लैंड आये। ऐसी दयामें लोगोंने ब्रिटिश गवर्नमेंट से यह आवेदन किया कि, जब यह कम्पनी चालू थी; तब इससे गवर्नमेंटको करीब ५ लाख रुपयेकी आम-दानी थी, इस लिये इस समय सरकारकी कुछ दया करनी चाहिये। पार्लियामेंटमें इस आवेदन पर विचार किया गया कि सरकारकी तरफसे सिर्फ ७००० पाउंड दिया जा सकता है। यह सुन कर अन्धान्य कागजवाले चंदा करके और भी कुछ रुपये देनेको तैयार हुए परन्तु इसी बीचमें वल्ल कम्पनीके मालिकोंके एकमात्र वंशधर ८८ वर्षकी उमरमें इहलोक त्याग गये। इनकी दो कन्याओंको, बहुत कोशिश करने पर; राजकोषसे थोड़ी बहुत मासिक हस्त मिलने लगी।

कागजोंमें जैसे पानीकी सक्तीरें सो रहती हैं; पहिले विनायतके सब ही कागजोंमें वैसे पानीकी सक्तीरें रहा करती थीं। यह बिन्दु भिन्न भिन्न व्यवसायियोंका भिन्न भिन्न प्रकारका होता था। हिसाबमें वा दफ्तील आदिमें जाल तो नहीं किया गया—इसकी परीचा उषी जलीय चिह्न द्वारा हुआ करते थे। पहिले जमानेमें सबसे पुराना जलीय चिह्न, फ्रैंडर्स नगरमें जो कागज बनता था; उसमें हाथका पंजा होता था, इस पंजेके बीचकी अंगुलीसे एक तारकाविद्युत् गलाका घाहिर होती थी। इस कागज पर तब साधारण पत्र व्यवहारका काम चलता था। भिन्नसके एक अजायबघरमें ऐसे कागज पर लिखी हुई एक विद्यो मोजूद है, यह चिट्ठो २० जुलाई १५०२ ईस्वोमें इंग्लैंडके राजा मत्तम हेनर प्रोसिस्को कैपिलोकेने लिखी थी। यह पञ्जा-मार्का कागज "हाथ-कागज" (Hand-paper) कहता था। और एक प्रकारके चिट्ठीके कागज (Note-paper) में उस समय सरावके न्वासका चिन्ह रहता था; पर फिर इसको बदल कर टालके ऊपर राजचिन्ह (Royal arms) रखवा गया। डाकघरके कागज (Post paper) में उस समयके डाकियाका "शिगा" और टालके ऊपर राजमुकुटका चिन्ह रहता था। नफल करनेके कागज (copy paper) में फ्रासी जातीय पुष्पका चिन्ह रहता था। उमी कागजमें फ्रासी-पुष्प और टालके ऊपर राजमुकुटका, रायल कागजमें टेड़ा याया हाथका और कैप (cap) कागजमें घुड़सवारकी टापी (jockey cap) की भांति काई वस्तुका चिन्ह रहता था। इस कैप कागज पर सेकपीयरकी गंयावली सबसे पहिले छपी थी। आर्कियसलियाके मतसे, १६६८ सालमें फुलिस्लेप कागज चला था प्रथम चार्ल्सने अपना खजाना खाली देख कर कुछ व्यवसायियोंको इस फुलिस्लेप कागजका बंधाकट दे दिया था। सरकारी कामोंमें यही कागज चलता था। पहिले इस कागजमें राजचिन्ह रहता था; परन्तु क्रमपीयेसके राजत्वमें इसके स्थानमें "गधेकी टापी" (Foolscap) और एक घंटेका चिन्ह रखवा गया। फिर जब राज्यका शासन भार रोम

काष्ठा (सं० स्त्री०) कुत्सितं अंगं यस्याः, काष्ठा टापु वृद्धी० । स्या, वच ।

काष्ठाक (सं० स्त्री०) पटिक धान्यविशेष, किसी किल्लाका धान । यह रस एवं पाकमें मधुर, वातपित्तघ्नमन और शालिवद् गुण होता है । (धृत)

काच (सं० स्त्री०) कच्यते क्ष्यते अनेन कच-घञ् न कुत्वम् । १ मोम । २ लाख या चपड़ा । ३ काचस्रवण । (पु०) ४ शिकव । ५ मणि विशेष । ६ नेत्र रोगविशेष, मोतियाबिंद लिङ्गनाम और नौलिका ये दो इसके नामान्तर हैं । तिमिर रोगकी पहिली अवस्था में जब केवल चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, विद्युत् और उज्वल रत्न आदि ही दिखाई देते हैं, उषी अवस्थाका नाम 'काच' या लिङ्गनाम रोग है ।

शङ्खनाभि, बहेड़ाकी मींगी, हरोतकी, मनःशिला, पीपल, मिरच, कुष्ठ, और वच,—इन सब चीजोंका समान रीतिसे एकत्र करके बकरी के दूधके साथ पीसना चाहिये । फिर मटर की बराबर मोलिया बना कर उछे सुखा लेना चाहिये । इसके बाद इन मोलियों को पानी में घिस कर खाँड़ों में लगाना चाहिये । इस अञ्जन से काच, तिमिर, पटलरोग, मांसहृदि चर्बुद और रात्रन्ध्र आदि रोग नष्ट हो जाते हैं । ७ समुद्र गुप्त का नामान्तर । ८ भृत्तिका विशेष । इसका दूधरा संस्कृत नाम चार है । राजवल्लभके मत से इसका गुण—घाररस, उष्णवीर्य और अञ्जनद्वारा दृष्टि-प्रसन्नता कारक है ।

काच भङ्गप्रवण स्वप्न घसु है । यूरोपकी सर्व प्रधान व्यवसाय वस्तु यही है । हमारे देशमें जिस प्रशार काँचि, पीतल, पत्थर आदि के वर्तन व्यवहार में पाते हैं, उषीप्रकार इस (काँच) के वर्तन यूरोपमें व्यवहृत होते हैं । इसी लिए इसदेश को अपेक्षा यूरोप में काच अधिक तैयार होता है और इस शिल्प की उन्नति भी खूब हुई । यूरोप में काच इतना अधिक तैयार होता है कि, उससे देश का प्रभाव पूरा कर विदेशीयों को बाणिज्यके लिये भी भेजा जाता है । भारतमें भी यूरोप से काच आता है । काँचसे बोतल, शीशी, काँच की चादर, पीत, कृत्रिम मोती, तरह तरहके वर्तन,

भाङ्ग, लालटेन, फानूस और नाना प्रकार की विलोरी चीजें, चूड़ी, बाना, बानी आदि अलङ्कार बनते हैं और नाना देगोमें भेजे जाते हैं । यूरोपको काँच की चीजें हमारे अकेले भारतमें ही प्रत्येक वर्ष में ३५—३६ लाख रुपये की आती हैं; जिनमें १० लाख के तो मोतो आदि आते हैं ।

वालुकिन और चार से काँच बनता है । भारत में इन दोनों 'चीजों' का प्रभाव नहीं है । साधारण बाल में ही यथेष्ट वालुकिन प्राप्त हो सकता है; और चार नाना तरहकी वस्तुओं से संग्रह किया जा सकता है । अच्छा काँच बनाने के लिये वालुकिन की जगह चूल्हे की लठी हुई मिट्टी (Fire-clay) का चूर काममें लाया जा सकता है, भारतमें उसका भी प्रभाव नहीं है । इतनी सुविधा होने पर भी भारत में आज तक काँचके व्यापार की उन्नति न हुई । यहाँ आज कल जैसा काच बनता है, उससे एक तो चूड़ियाँ और दूसरे जवज्य यंत्रों की कच्ची शीशियाँ या कुप्यियों के सिवा चार कुछ भी नहीं बनाया जा सकता । इस देश के काँच बनाने वाले चार अधिक काम में लाते हैं, इसी लिये काँच अच्छा या साफ नहीं बनता । कभी कभी ये लोग चार इतना अधिक डाल देते हैं कि काँच तक नुन-वरा हो जाता है । इसके बाद जैसी भट्टों में काँच गन्नाया जाता है, वह भी ठीक काम के काचित नहीं । कारण उसमें आदम्यकतानुसार उत्ताप नहीं पैदा होता और जो कुछ होता भी है, वह बराबर एकसाँ नहीं रहता । क्योंकि इस देश की भट्टों में अग्नि प्रव्वलित रखनेके लिए धोंकनी से हवा दी जाती है । इसीलिए धोंकनी को हवा के धनुसार पाग का तेज सर्वदा घटता बढ़ता रहता है । फिर ऐसी हवासे गले हुए काँच में कुछ अंग पतला और कुछ अंग गाढ़ा हो जाता है, इसलिए साफ भी नहीं होना । देगो काचमें विग्रह चारके बदले सञ्जीमिटो काममें खाई जाती है । इससे काच अच्छा नहीं बनता । क्योंकि इसमें ज्यादातर कड़े अंगारकी चार (crude carbonate of soda) कुछ सञ्जिका चार (potash) संयुक्त पीछे १०—३० भाग चूना, ३०—४० भाग कुक पीले रंग की बालू,

पार्लियामेंट (Rump parliament) के हाथमें पाया तब यह चिन्ह उठा दिया गया था ; पर आज तक भी उसका और पार्लियामेंटकी रोकड़ वही पाटिका नाम "कल्लिस्कोप" ही है ।

बहुतसे विज्ञायती कागज नीले रंगके होते हैं । इसप्रकार कागज रंगे जानकी पहिले एक प्राकृतिक घटना घट चुकी है । मि० बुरेन्स नामक एक कागज व्यवसायी १७८० ख्रिष्टाब्दमें अपनी स्त्रीके साथ एकटिन अपने कारखानेमें गया । कारखानेका कार्यादि देखते हुए ये दोनों घूम रहे थे, पधानक ही स्त्रीके हाथमें एक नील रंगकी पुड़िया कागजके 'मंड'के ऊपर गिर पड़ी ; जिससे वह रंग उसी समय 'मंड'में भिद गया फिर उस 'मंड'से जो कागज बना वह नील रंगका बना । इस कागजका खूब पाटर हुआ । सुटेन्सकी स्त्रीने भी नीले रंगकी पाटि (Cake) बचकर यघेट नाम उठाया ।

ईस्वीसन् १६८५में स्कोटलैंडमें कागज बनाना शुरू हुआ । एडिनबरा नगरमें इसके लिए सभा हुई थी । इस सभामें जो कुछ नियमादि स्थिर किये गए थे, वे आज तक भी ब्रिटिश मिजिलियममें विद्यमान हैं । उस समय सबसे ज्यादा छत्र (पतले) कागज स्पेन देमोय एक प्रकारके घास (Espart Alfa, Lygeum Sparteum) से बनता था ।

इसी तरह खुरीय १६वीं शताब्दीके अन्तके समयमें लेकर १८वीं शताब्दीके पूर्वार्धकालके मध्यमें यूरोपीय कागज बनानेके लिए जो चीजें व्यवहारमें आईं गईं हैं और प्रत्येक चीज सबसे पहिले किस किस सासमें किस किसने व्यवहार की है, इसकी एक तालिका नीचे लिखी जाती है ;—

दृष्य	ईस्वीसन्	सबसे पहिले व्यवहार करनेवाले
रुई	} ... १६८२ ...	ग्लाडन (Bladen)
मग		
रेशम		
यमम		
खमड़ा	... १७८० ...	हूपर (Hooper)

धानका पूजा ...	८००	} ... कूप (Koops)
काँटिके पेड़ ...	८००	
सकड़ी ...	१८०१	
पेड़की छान ...	१८००	
सुखी घास ...	१८००	} ...
पशुघिटा ...	१८०५	
गोबान (पोखरकी काँटे)	१८२४	नेसबिट्ट (Nesbitt)
'रप'हस ...	१८१५	दिसा-गर्दे (Dela-Gorde)
बाल, रोम ...	१८११	विलियमस् (Williams)
हलकुमारी	} १८२८ ...	बेरि (Birry)
कैलेके पेड़का खोपटा		
सुंगकी डाँठरा ...	१८१८	डि'हार्कोर्ट (D'Harcourt)
देखकी काँटे ...	१८१८	बेरि (Birry)
पेड़के पत्ते	} ... १८१८	बेनमैन (Balmane)
पेड़की जड़		
जोनी सुखी और डंडल	} १८१८ ...	डि'हार्कोर्ट (D'Harcourt)
मटरका डंडल		
'गटापचा' ...	१८४६	होनोक (Honoak)
पट-सन ...	१८४६	कैलमार्ट (Calvert)
नारियलकी लटा	१८५२	निडटन (Neuton)
भुसी	} १८५२ ...	विल्किन्सन् (Wilkinson)
'करात'का गुड़		
तमाखूका डंडल	१८५२	ऐडकोक (Adcock)
लथादि ...	१८५२	स्टिफ (Stiff)
नारियलकी खोल	१८५४	डिघापर (Diaper)
वादासके चुकन	१८५४	कुपलैंड (oupland)
जनज लथ ...	१८५५	आरचर (Archer)

इसके सिवा और भी नाना प्रकारकी वस्तुयें मिश्र कागज बन सकती हैं ; पर सब चीजोंसे कागज बनाने में व्यापार चल सकता है, ऐसा नहीं । इस विषयमें चीनवासियोंने सबसे अधिक मंथ्यानें मिश्र मिश्र उत्पादानोंमेंसे कागज बनाया था और बनाते हैं । भारतवर्षके प्रत्येक विभागमें, प्रत्येक जिलेमें मिश्र मिश्र उत्पादानोंसे कागज बनते हैं । पहिले कह चुके हैं कि, चीनवासी हो-सि नामक कागजसे गवदाह करते हैं । पि-रुंजि नामक कागज गुंतियाके पेड़की

बहुत छोटा कोवार्टिन, पेल्लार चौर कोचा पादि रहता है। परन्तु यूरोप में काच की बोतलों के लिये जो चीने काममें लाई जाती हैं, उनमें सेकड़ा पीछे ५८ भाग बालू, गन्धक चार, (Sulphate of soda) २८ भाग, चूना ११ भाग चौर उदमिष्ठाकार ११ भाग रहता है। गन्धक चार के सेकड़ा पीछे ४५ भाग चार रहता है। चौर काच मण्ड में सेकड़ा पीछे २८ भागमें १५ भाग मात्र यह चार पड़ता है; किन्तु सल्लोमिडो के कोचकार चार मिलाता है, उसमें ३०—४० भाग चार रहता है, इसी लिए भारतके काच में चौर यूरोप के काचमें चार-परिमाण कभी २५ चौर १५ भाग ही जाता है।

इस द्रव्य में काच पर रंग चढ़ाने के लिए लोहा, तांबा चौर मन्थनचार (arsenic) काममें पाते हैं। पन्नाकमें काच बनानेके कारखाने हैं। यहाँ जिम् बालू में काच बनता है, यह सामान्यतः काच सरीसो चिकनी चौर चार (यान्ट होती है) उस द्रव्य में इस बालू को रंग चढ़ते हैं। यह जिम् जमीन में रहती है, यह जमीन चेतनी के काम में नहीं पाती। बहुत जगह यह क्वारि चर्वने पाप कम कर काच सरीसो ही जाती है। इस कामो दूर बालूका रंग विहायती गिमियों की तरह कुछ नीलापन का लिए हुए रहता है। इसमें बहुत सभ्य मण्ड वगैरे का काच बनता है।

फैरोलावाट (जिन्हा-पागरा) में भी पाज कम काच के कारखाने बहुत हैं। इन में चूड़ियां बहुत बनती हैं।

चीन में भारत की चपेला काच के कारखाने अधिक समुच्चय हैं।

काच के भिन्न भिन्न भावनों में नाम लिखे जाते हैं। काच को चरबी में लियन, फारसी में—मिट्टी, हिन्दी संज्ञा में 'काच'। इटालीमें 'मिट्टो', फ्रांसमें—मेट्रस, अरबियामें—'हिल्की', स्पेनमें—'मिट्टो', जर्मिन में 'कलाति', सेक्रेटमें 'पाइगु' चौर उर्दूमें 'गोला' कहते हैं।

रसायन-तत्त्वके मतानुसार काचमें निम्नलिखित चीने रहती हैं—

बासुकिन (Silica), उद्विजचार (Potash-Pearl ash चौर wood ash), सोडा (Soda, Sulphate of soda, carbonate of soda) बेरायटा (Baryta) स्ट्रोनिया (Strontia), चूना (Lime) चौर फिटलिवरी (Alumina)।

अस्थिचार (bone-ash) में एक प्रकारका काच बनता है; जिमें चूनेज लोग लोग ग्लास (bone-glass) कहते हैं।

काच का पापेचिक यजन करीब २' ७२ है। जर्मनीके बने हुए जैंगलोमि जगाने के काचोंमें चिकनी बालू १०० भाग, उद्विज चार ५० भाग, अस्थियामिडो २५ या ३० भाग, चौर शोरा २ भाग रहता है।

फारसीयोंके (परकोलाकि दर्पणके) काचका पापेचिक यजन २' ४८८ है। इसका रंग कुछ नीलापन को लिए हुए होता है। मिगसीके दर्पणका काच कुछ पीसे रंग का होता है।

बोहिमिया का काच सचरतमें सबसे अच्छा होता है। इसका पापेचिक यजन २' ६८६ है।

विनायती 'क्लाउन' काच बोहिमियाके काचकी तुलना करता है। इसका पापेचिक यजन २' ४८० है स्फटिक काच (crystal glass) का पापेचिक यजन २' ८ से ३' २५ तक होता है। इसमें शीशका कुछ थोड़ा रहता है। इसका विमिश्रण कई वर्ण नहीं। इसमें १०० भाग बालू, ३० या ४० भाग उद्विजचार, ६० या ७० भाग मिगियाम, ४ भाग सुहागा, ३ भाग घारा, १५ भाग मन्थन चाबारा इत्यादि हैं। मण्डनके छटे से सामान्य वैज्ञानिक धर्मोदि बनते हैं।

शोबास काच (Flint glass) सबसे परिशुद्ध शीशों में बनता है। इसमें १०० भाग बालू, ५० भाग उद्विज चार, १०० भाग मिगियाम चौर बाकी स्फटिक की भांति की कोई बस्तु रहती है। रुबिया काच (Ruby glass) एक प्रकार काचकरत रत्न प्रमाण काच है। यह परिमाण करके बनाया जाता है चौर बसंत समय इसके 'मण्ड' में सफेदापक मिश्रण दिया जाता है। यह काच लय बनता है, तब इसके कोई भी रंग नहीं रहता। बाद में फारसीकोटके

खालसे बनता है; यह कागज चीनमें घावकी लिंट (Lint) वा पट्टीके काममें आता है, फटे लत्तेकी जगह भी यह कागज काममें आता है। कियॉसिमें पियाउ-सिन् नामका एक तरहका कागज होता है। इस कागजमें पुड़िया बांधी जाती है। होयामिन् नामके कागजमें सिर्फ द्याईयींकी पुड़िया बांधी जाती है। कियॉसि प्रदेशमें होयांपियान् नामक कागजसे हो-सि कागजकी भांति शवदाह किया जाता है। ता-से और चं-से नामके कागज हिंसाइकी वही-खातीके लिए बनता है। म-पियेन और लियेनसि नामके सुन्दर और पतले कागज, निखन सुट्टादि करनेके लिए तथा चित्रादि बैठानेके लिए और कोइ लियेनसि नामके पोले रंगके पतले कागज भीषधालयोंमें चर्प-भीषधियांकी पुड़िया बांधनेके काममें आता था। ल्म-सियेन नामके चिकने कागज पर पत्रादि लिखे जाते थे। इनके सिवा और भी एक प्रकारका रंगीला कागज बहुत सखी दामोंमें बिकता है, इसके कुछ कागजों पर ७ और कुछ पर ८ लाल रंगकी रेखाएं (लम्बार्डिन) रहती हैं।

ये सब कागज ही भिन्न भिन्न उपदानोंमें बनता है। फो-कियेन प्रदेशमें खूब कच्चे बांस से, चि-कियां प्रदेशमें धानके पूलासे; और कियॉ-नान प्रदेशमें फटो-पुरानो रेशमसे कागज बनता है। इनमेंसे रेशमका कागज कीमता, आदरणीय और देखनेमें खूबसूरत होता है। कागज स्याही न सोंक सके, इसके लिए ये लोग उस पर शिरोपका एक पदार्थ लगाते थे। यह देखनेमें मोमकी 'पटपट्टी' की भांतिका होता है। मल्लकीं काटोंकी खूब अच्छी तरह धोकर उसके तैलाइकी नष्ट करके उन्हें नियमातुसार फिटकिरीके साथ मिला कर रख देते हैं; जिससे दोनों गलकर तरल हो जाते हैं, फिर चोमटोमें एक कागज उठा कर उसमें डुबा कर धाममें वा भागके सामने रखकर उसे सुखा लेते हैं। ये लोग और भी एक भांतिका कड़ा कागज बनाते हैं, वह भाधा दस मोटा होता है; यह कागज सड़नेमें भाग लगते ही जल नहीं सकता। ये लोग "भारत" नामका एक प्रकारका

कागज (India-paper) बनाते हैं, इस पर पत्ति सुझ गिख कोदित होता है और बहुत ही बढ़िया छपाई होती है। चीनमें नौका या घरकी छतमें छेद हो जाने पर, उसमें तैलाइ कागज टूस कर उस पर दागराजी कर दी जाती है। पहिले जिन जिन कड़े कागजोंका उल्लेख किया है, उनसे ये लोग नौका वा लहाजके पालमें धीमा लगाते हैं; और टूकानदार शीश इससे चीज वस्तु बांधनेके लिये छतकी बना लेते हैं। चीनमें नित्य प्रति कागजका इतना खर्च है कि, वह लिखा नहीं जा सकता। इससे सुलभ वापिस्य चीनमें और दूसरा नहीं है। चीनवासियोंकी पूजा, भूषी, बर्ध, सन, कच्चे बांस, रेशम इत्यादि जो कुछ मिलता है, उसीमें से ये लोग कागज बनाया करते हैं। चंनकी कागजों पर मोम लगाया जाता है, इसीसे वे देखनेमें खूब चिकने होते हैं। कागज पर मोम लगानेसे पहिले, उनको पत्थरसे घिस लिया जाता है। चीनमें विदेशीय कागज बहुत कम टिकते हैं। देशीय कागज ऐसे नियमसे बनाया जाता है कि, पक्काम् नष्ट न होनेसे वह जल्दी नष्ट नहीं होता। इस लिये वहां लिखने पढ़नेके काममें, देशीय कागज ही व्यवहार किये जाते हैं। विदेशी काग पर शिरोप लगानेसे वह ज्यादा दिन तक नष्टो ठहरता।

चीनवासी खूब भासानोके साथ बांससे कागज बनाते हैं। खूब कच्चे बांसोंको पहिले पानीमें डाल देते हैं; जब बांसोंमें अच्छी तरह पानी भिंद जाता है, तब उनका और कर चूनाके पानीमें डाल देते हैं। इससे यह कांचको तरह नरम हो जाता है; फिर कूटा जाता है। कूटते जब वह 'मंड' बन जाता है, तब पानीमें उबाला जाता है। इस प्रकार उबाले जाने पर सचिमें टान कर आवश्यकतानुसार पतले और मोटे कागज बनाये जाते हैं। इस कागजसे लिखने और पुड़िया बांधनेके सिवा और भी एक काम लिया जाता है। ईंट खोलाने ईंट बनते समय मिट्टीमें इस कागजको कूट कर मिला दिया करते हैं। बांसका कागज खूब पतले और साफ होते हैं। चीन वासियोंने ईस्वी सन् ५०में इस कागजको सबसे पहिले

६३३ डिग्रि उत्तापसे गरम करने पर खासा सुवी सरोखा रत्नवर्ण हो जाता है।

मीना—कांच (Enamel glass) भी एक तरह का खूबसूरत और चिकना काच होता है।

काचमणि—संस्कृत शास्त्रीकी अनुसार कांच एक मणि माना जाता है।

“काचरे पप्रामानां जन्म काचमणेः पुनः।”

कांच और स्फटिक एकही चीज है—

“काच-स्फटिक-पात्रेणु”

स्फटिक मणिके सम्बन्धमें संस्कृतग्रन्थोंमें लिखा है—

“हिमालये विंशति च विभ्राटशीलते तथा।

स्फटिकं लापते चैव नानावर्णं समममम् ॥

हिमालये चन्द्रकामं स्फटिकं तद्विधा मरुत् ॥

दुर्लभान्मय तत्रैवं चन्द्रकान्तं तथा परम् ॥

दुर्लभं स्वर्गं माने च बभूविं वनति यन्मृषाम् ॥

दुर्लभांतं तदाप्यांतं स्फटिकं रत्नैर्दिविः ॥

पूर्वमुत्तरं स्वर्गं श्रुत् वनति चपाम् ॥

चन्द्रकान्तं तदाप्यांतं दुर्लभं तन् कश्चि दुर्गैः ॥”

हिमालय, सिंहाल और विन्ध्यारण्यमें स्फटिक मणि उपजता है। हिमालयमें यह दो प्रकार का होता है। उसमें एक सूर्य सदृश रहता है, जो सूर्यके किरण खगसे ध्वनि उगलता है। इसीका नाम सूर्यकान्त है। दूसरा चन्द्र सदृश होता है। यह चन्द्रके खगसे भङ्गत उद्गिरण करता है। किन्तु कलियुगमें यह नहीं मिलता। इसकी चन्द्रकान्त कहते हैं।

सूर्यकान्त मणि आतशी शीमेकी भांति गुण-विशिष्ट होता है।

काचक (सं० पु०) काच खाद्ये कन्। १ काच, शीमा, पत्थर। २ काचलवण, रेश।

काचकूपी (सं० स्त्री०) काचनिर्मिता कूपी। शीमी, बोलल।

काचघटी (सं० स्त्री०) काचनिर्मिता घटी चल्प घटः, मध्यपदनी०। काचका गिलास।

काचज (सं० पु०) काचलवण, रेश।

काचतिलिङ्गी (सं० स्त्री०) कामतिलिङ्गी, कच्ची इमली।

काचतिलक (सं० स्त्री०) काचलवण, रेश

काचन, काचनश्चिकी

काचनक, (सं० स्त्री०) काण्णते लेखो निधेध्वते धनेन, कच-ण्णिच् छ्युट् स्वायें कन्। पत्र वा पुस्तक बांधनेका उपकरण, पोथी बपेटनेका डोरा या फीता।

काचनकी (सं० पु०) काचनकं त्रस्वस्य, काचनक इति। पत्र पुस्तकादि, पोथी पत्रा। इधका संस्कृत यथोय-वर्णदूत, स्फुटिसुद्ध, लेख, वाचिक, चारक और तालक है।

काचभव (सं० पु०) काचलवण, रेश।

काचभाजन (सं० स्त्री०) काचनिर्मितं भाजनम्। काचका पात्र, शीमेका बर्तन।

काचमणि (सं० पु०) काचवत् मणिः काच एव मणिरा। १ काचकी भांति भव्य उज्ज्वल मणि, जो जवाहर शीमेकी तरह चमकता हो। २ काच, शीमा।

काचमल (सं० स्त्री०) काचस्य चारुत्तिकाया मलमिद। काचलवण, शीमा।

काचमालिका (सं० स्त्री०) मय्य, शराव।

काचर (सं० त्रि०) कु ईपत् चरति दीप्या दूरं गच्छति, कु-चर-पण्य, कीः कादियः। पीतवर्ण, पीता।

काचर—पूर्ववद्गकी एक कायस्य जाति। इन लोगोंका गीत्र पालिमन, काश्यप तथा पाराशर और उपाधि दे, दत्त एवं दास है। पूर्ववद्ग और फरीदपुरके मदारपुरमें यह अधिक रहते हैं।

काचलवण (सं० स्त्री०) काचात् चारुत्तिकातः जातं लवणम्। लवण विशेष, सर्पचर नोन। इसका संस्कृत पर्याय—नील, काचोद्भव, काचं, नीलक, काचधभव, काचसीवचल, छाप्यलवण, पाकज, काचोत्प, हयगंध, कान्तलवण, कुशविन्द, काचमल और छत्रिम है। राजनिषण्टके मतसे यह ईपत् चार, क्विकारक, पत्निकारक, दिप्तहृदि एयं दाहकारक और कफ, वायु, गुण तथा शूननायक होता है।

काचकयंच (सं० स्त्री०) काचनिर्मितं यक्यंत्रम्, मध्यपद-सोपी कर्मधा०। काचनिर्मितयंत्र विशेष, यक्यंत्रैरञ्ज, उत्तारनेकी शीमेका बना हुआ एक टांटीदार बरतन।

काचविन्दु (सं० पु०) नेत्ररोग विमेष, पांखकी एक बीमारी। काचश्चिकी।

बनाया था। कोई कोई कहते हैं कि, इसमें भी पत्तियों चीनमें बांसके कागजका प्रचार था। चीनमें एक एक प्रदेशमें एक एक चीनसे प्रधानतः कागज बनाया जाता है। कहीं समसे, कहीं कच्चे बांससे, कहीं गूँतहालसे, कहीं धानके पुलासे और कहीं मंडूके पुलासे प्रधानतः बहुत कागज बनाये जाते हैं। रंगमर्जी 'गुटो' से पार्थर्मेटकी भाँतिका एक तरहका कागज होता है, इसको चीन लोग मो-प्योयन-डी कहते हैं। यह पत्यन्त कोमल होता है; और इस पर खुदाई करके लिखा जा सकता है। एक प्रदेशमें 'फो-चा' या 'चा' नामक एक प्रकारके वृक्षसे यद्येष्ट कागज उत्पन्न होता है। ये लोग उस समयका सा कागज सब भी बनाया करते हैं। चीनवासी चीन या वृष देगी नूत-का (*Bronssonetia papyrifera pepernulderry*) के कागज बनानेमें पत्तियोंके १-१ छाय सम्ये टकर करके खारे पानीमें डबाल लेते हैं। इस प्रकार उबाल लेनेसे भीतरी छाल घुसक ही जाती है। फिर उस छालको घुसक करके घाममें सुखा लेते हैं। इस तरह जब पर्याप्त रूपसे छाल एकत्र हो जाती है, तब उसे २-४ दिन तक पानीमें डाल कर नरम बनाते हैं। और बचे हुए पंशसे बाहर निकाली हुई छालको क्रिक देते हैं। सबसे पीछे बाहर निकली हुई छालको फेंक कर; जो कुछ बाकी बचती है, उसको उबालते हैं। जब तक यह उबाली जाती है; तब तक एक घटनेसे उसे घँटा करते हैं। फिर नामा प्रकारके यंत्रोंको सहायतासे इसे 'मंड' (मंड) बना लेते हैं; और कूट कर इसे धा लेते हैं। फिर इसमें भातका माड़ू निना कर साँचेमें टाल कर इसका कागज बनाते हैं। बाँसके कागजसे इसमें अधिक यत्न करना पड़ता है। फिर इनको रखते समय, प्रत्येक कागज पर एक एक तिनका रख कर रखते हैं। बादमें फिर एक एक ताप घाममें सुखाया जाता है। यह कागज सब नरम और पतले होते हैं, इसमें दोनों तरफ नहीं लिखा जा सकता। ये भाग कभी कभी इसके दो ताप चिरिदके एक साथ जाड़ लेते हैं। ऐसा जोड़

देते हैं कि, कोई समझ नहीं सकता कि, यह एक ही या दो।

जापानमें ऐसे कागज बनाते समय, ये लोग (जापानी) छालको खारेपानीमें न उबाल कर खाई (खाव) के पानीमें पात्रके मुँहकी टककर उबालते हैं। सब डालीके दोनों किनारोंकी छाल पावटपक कराल गल जाती है; तब उसे उत्तार लेते हैं; और ठंडा होनेपर उसके बहलन छुड़ाकर २-४ घंटे पानीमें डाल रखते हैं। इसी समय ये लोग ऊपरकी काली छालकी छुरीसे चीन देते हैं। फिर मोटी छाल और पतली छालको पलग धलग कर लेते हैं। इसके बाद फिर इन बकलोंको उबालते हैं; और एक एक छुरीसे घँटा करते हैं। इस प्रकार जब यह 'मंड' (मंड) बन जाता है। तब इसमें भातका मंडू तथा पत्यान्य वसुर्प मिला कर; चटाई पर टाल कर कागज बनाया जाता है। और बने हुए कागजोंको सभाल कर रखते समय प्रत्येक कागजके नीचे एक एक लथ रख देते हैं; फिर उसपर बज्रनदार चीज रख कर उसका पानी निकाल देते हैं। इसको घाममें सुखा लेनेसे ही कागज बन जाता है। इसके पंशुओंके अनुसार यह कागज फाड़ा जाता है। इसको घरी करके रखनेसे उस घरीका दाग नहीं होता; और यूष्पीय कागजसे यह सब मजबूत भी होता है। बाजारमें जो चीनके पंशु विकते हैं; ये इसी कागजके बने हुए हैं। इस कागजके द्वारा धरकी भीत भी बनाई जाती है पड़िया यंधनेके काममें भी यह लगता है। वहकि बहुतसे लोग रुमासको जगह इस कागजको काममें लाते हैं। याम्नायमें यह कागज होता ही ऐसा है कि; इसको देखते ही कपड़ेका भ्रम हो जाता है। कारण, यह कपड़ेकी भाँति कोमल और गर्मज एका ही होता है तथा इसमें भाँज भी नहीं पड़ती वहकि लोग इस कागज पर सावका काम करके टोपी बनाते हैं और तोलियाँ, टिबिसका पादराय, पहिरनेको कपूनी पादि भी बनाते हैं।

जापानमें प्रधानतः "मोरन पेपरिफिरा सैटासमा (*Morus Papyrifera Sativa*) या 'कागजके पेड़-

काचमन्त्र (सं० स्त्री०) काचः मन्त्रः उत्पत्तिमानमन्त्रः
वृषी० । काचमन्त्रः, कासात्मकः ।

काचमोदपत्र (सं० स्त्री०) काचस्यागिर्लं घोवर्चलम्,
मन्त्रपदमोदी कर्मपा० । काचमन्त्रः, कासात्मकः ।

काचसानी (सं० स्त्री०) काचस्य स्यात्कीच, उपमितसमा० ।

१ पाटलावृक्ष, पाटुरीका पिकुः । इमका संकृत पर्याय
पाटलि, पाटला, चमोवा, मधुदूती, फलेददा, छण्ड-
तला, कुवेराची, कादस्यामी चौर ताम्रपुष्पी है ।
भावप्रकाशके मतमे यत् कवाय एवं तिष्ठत्, ईयदुष्पा-
कीर्यं चौर वायु, पित्त, श्लेष्मा, पक्षि, श्वास, शीघ्र,
रक्तपित्त, विद्या तथा लघ्वा नामक होती है । इनका
पुष्प लघाव, मधुररस, शीतवीर्य, श्रद्धयदात्री, कण्ठ-
शोषक चौर कफ, रक्तदोष, पित्त तथा चतिसारघ्न है ।
फल विद्या चौर रक्तपित्तको दूर करता है । २
काचपात्र ।

काचा, (सं० स्त्री०) १ काच-मणि, विज्ञोरी पत्थर ।
२ चमके दन्तकी शुभ रत्ना, घोड़ेके दांतकी सफेद
लकीर । यह पन्द्रहमे सत्रह वर्षकी बचस्या तक
घोड़ेके दांतोंमें सरसोकी तरह पड़ जाती है ।

काचाच, (सं० पु०) काच इव चाचि यच्च, वृषी० ।
१ हृदयक, बड़ा बगला । २ पप्रकन्द, कमसकी लड़ ।
कापाद्या, (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हसदी ।

काचिच, (सं० पु०) कचते दीप्यते, बाहुलकात् इन् ;
काचिं-काचिं चानि गच्छति, काचि-चन्-ठ-उपोदरा-
दित्वात् षष्ठ्यः । १ काचन, मोता । २ सूचिक,
सूत्र । ३ गिन्नी-चान्दविशेष, एक धान ।

काचिदिक (सं० पु०) काचिचिद्या, पुं० चर्षी ।
(सं०) कलिदिङ्-स्त्री ।

चौर बह्वावाजार मोनूद है । १००२ ई०को चैतन्य
साधेवने यह बाजार लगाया था । पामके मध्य एक
नाला निकला, जिसमे यह टी भागमे बँट गया है ।
पाने जानेके लिए पुन बँधा है । वहाँ बसू (धरती)
बहुत होती है ।

काचुक (सं० पु०) काच बाहुलकात् एकञ् । १ कुकुर,
मुरगा । २ चक्रवाक, चक्रवा ।

काच्य (सं० स्त्री०) कच्छस्यामीय, नदीके किनारेका ।
काच्य (सं० स्त्री०) कच्छसमन्वमीय, कच्छीका ।

काच्यम (सं० स्त्री०) परिष्कार, साफ ।

काळ (हिं० पु०) १ ऊहका उपरि भाग, जायका उपरि
दिशा । २ काळा, लाल । ३ द्रवका भराव ।

काळना (हिं० स्त्री०) १ चोसना, लगाना । २ शृंगर
करना, वदना ।

काळनी, (हिं० स्त्री०) एक प्रकार की धोती । यह कम
चौर ऊपर चढ़ा कर पहनी जाती है । २ परिधेय वस्त्र-
विशेष, जाचिदेके उपर पहना जानेवाला करड़ा ।
यह घाँघरेकी तरह रहती चौर चुपट पड़ती है ।
रामकीना चौर लघ्वा कौलामें सुवपमान प्रायः काळनी
पहनते, है ।

काळा (हिं० पु०) लाल, लठी धोती ।

काशी—गुरु प्राज्ञको एक उपक जाति । यह
शोग प्रायः चैत जीतते—योंने चौर भाजा तरकारी
बाजारमें धरते है । गुरु प्राज्ञके काशी ७ अंशियोंमें
विभक्त है—कनोगिया, हरदिया, सिंगोरिया, जोग-
पुरिया, मगहिया, जरेठा चौर कड़ाह । इन ७
अंशियोंमें परस्पर पादान-प्रदान चौर पान भोजनादि
प्रचलित नहीं । मागे अंशियोंमें कनोगिये मगहिया
सन्धानार्थ चौर कड़ाह मगहियोंमें समझे जाते है ।

कड़ाह पहने कि मरी मगहिया सन्धानार्थ
सबसे छोटे होते है । कनोगिये जामो
चपचपे हरदिये, चपचपे हरदिये
येमें शीतपुरिये, मगहिये
मगहिये अथवापुरिये
येचियोंकी छोड़

काच
मोद
पत्र

सुखसेम और सचन। यह बिहारमें पश्चिमीय देश पड़ते हैं।

खलितपुरके कक्षियोंमें पूर्वीय ७ या १० थोपी नहीं जातीं। यह कटवाह, सलौरिया, हरदिया और अम्बर—चार थोपियोंमें बंटे हैं।

भाषीके काछो पपनीको कठवाह बताते हैं। यह कठवाह राजपूतोंसे उषकी और उनके पूर्वपुत्र नरवर प्रदेशसे उस खखलमें पड़ते थे।

काछी जातिकी थोपीके नाम अनुधारण करनेसे समझ पड़ता—यह पपनी वासभूमिके अनुधार भिन्न भिन्न थोपियोंमें बंटे हैं कनौजिया—कन्नौज या कान्धकुल, हरदिया—हरदियामण्ड, सिंगौरिया—सिंगौर (इलाहाबादसे २५ मील उत्तर गङ्गाके पश्चिमकूल पर अवस्थित है। यह रामायणोक्त निषादराज्य की "शुङ्गेर पुरी" है), जौनपुरिया—जौनपुर, मगधिया मगध, कठवाह—कच्छ और सुखसेन सङ्घिया (रामायणोक्त "साङ्गाश्रम"। काली नदीके तीर जौनपुरी और फरखाबादके बीच आज भी इसका भग्नावशेष विद्यमान है) से निकला है।

पनेक स्थलोंमें इन्हें कोरी और सुराई भी कहते हैं। यह क्रमिकक्रममें प्रति पट्टु होती और प्रति परिष्कार परिष्कृत रूपसे उत्तमोत्तम शय्यादि फस उत्पादन कर सकते हैं।

भागरा खखलमें कठवाह काछियोंकी ही संख्या अधिक है। दाखियाखलमें यह जाति यथेष्ट है। यह कुरमी जातिकी सद्य पदवीमें गण्य है। बम्बई प्रदेशमें यह फलमूल और तरकारी बचते तो हैं, किन्तु साधारण लोगोंके लिये नहीं। देशसेवाके लिये यह मत्से पर बीजाकी बचत करते हैं। दाखियाखलमें इनके बीच केवल मात्र २ थोपियोंका भेद है—बंटेला और नरवरी।

राजपूतानेके धौलपुर प्रदेशमें ही काछी जाति यथेष्ट देख पड़ती है।

काज (हि० पु०) १ काथ, काम। २ व्यवसाय, रोजगार। ३ प्रयोजन, मतसव। ४ विवाह, शादी। ५ छिद्रविशेष, बटन लगाने का छेद।

काजर (हि० पु०) कज्जल, चाखमें लगनेवाकी दीपिके पुत्रोंको कालिख। इसको सरसे या परई पर पार लेते हैं।

काजर—सुखलमानेकी एक जाति। पारस्य का वर्तमान राजवंश इसी जातिका है। जिस समय मुकफवी वंशीय प्रथम सम्राट् शाह इल्हाइनने शिया मतको पारस्यके राजकीय मतरूपमें फैलाया, उस समय ७ तुर्की जातियां उनको पृष्ठपोषक थीं। काजर उन्हीं सात जातियोंमें एक हैं। किसी समय प्राचीन छिन्नकौनिया (वर्तमान मसन्दरान) राज्यमें काजरीने महा प्रतिष्ठा पायी थी। १५०० ई०से पहले इस जातिकी बात सुन नहीं पड़ती। उक्त समयके एक इस्तिलाखित ग्रन्थमें "पिरिकी काजर" नामक किसी जातिका उल्लेख है। जिससे पहले किसी भी साहित्यमें "काजर" जातिका नाम नहीं पाया। अक्षराबाद और मसन्दरान प्रदेशमें यह अधिक संख्यक रहते हैं। राजपूतोंकी भांति यह केवल युद्धव्यवसाय करते हैं। इसी जातिके सम्भूत पागा मुहम्मद खां १८२४ ई०को प्रथम सम्राट् हुये और अक्षराबादके निकट रहे। (यह एक सामान्य सैनिकके पुत्र थे और किसी समय नादिर शाहकी सभासे निकाले गये थे) नादिरके एक भतीजेने इन्हें वाखकालमें खोजा बना डाला था। यह लोभी और पराक्रम प्रिय थे। इनके पीछे इनके भ्रातृपुत्र फतेह खली—(१८८८ ई०) सम्राट् बने। उन्हींके समयमें रुस और पारस्यका युद्ध हुआ। करनेल सैकप्रिगरके मतसे तैमूर वाटगाह ८०९ छिन्नकौनियाका काजर वहाँ ले गये थे। इनमें लोकरीबास और भासोगाबास दो थोपी और प्रत्येक थोपीमें वंश भेद है। नियाडोगुतु नामक काजरजातीय एक वंश इसी परसेनियाके गाजी प्रदेशमें जा कर रहा है। अजदानल वंशीय १म तमाश शाहके समय यह मार्थ प्रदेश पड़ते थे। किन्तु बुखारेवाले खां शाहके अधीन राजशाक वंशीयोंने उन्हें निकाला और पवगिष्ट् थनेकीकी समूल विनष्ट कर डाला। काजरी (हि० स्त्री०) एक गांय। इसकी चाँदके किनारे काला काला चिरा रहता है।

दोनो स्तानोंके दर्शनीय वस्तुओंके मध्य शिवकाशीस्थित 'एकाग्रनाथ' नामक महादेवका भादिलिङ्ग, भगवती कामाक्षी देवीकी मूर्ति, भगवान् शङ्कराचार्यकी प्रतिमा एवं समाधिस्थल तथा कम्पानदो तीर्थ और विष्णुकाशीस्थित 'श्रीवरेन्द्राजस्वामि' नामक भगवान् विष्णुकी मूर्ति, उल्लङ्गमूर्ति, वेगवतीधारा तोथे, रवितोर्थ, सोमतीर्थ, महानतोर्थ, सुषतीर्थ, वृहस्पतितीर्थ, शुकतीर्थ एवं शमितोर्थ प्रभृति प्रधान है। इसके अतिरिक्त काशीके निकट केदारेश्वर और बालुकारण्य दो पुण्यस्थान भी हैं। (उक्त तीर्थोंका विवरण शिवकाशीमाहात्म्य, कामाक्षीविश्वास, केदारेश्वर-माहात्म्य प्रभृति संस्कृत ग्रन्थोंमें देखना चाहिये।)

दक्षिण देगीय छातोंके मतसे शिवकाशी वाराणसी तुल्य है। इस स्थानके उत्पत्ति-विषय पर स्थलपुराणमें लिखा, कि महादेवने पार्वतीसे पुण्य तीर्थकी बात करते करते कहा था,—'वाराणसी रामेश्वर, श्रीवेङ्ग भादि पुण्यक्षेत्रोंसे काशीपुर उल्लूट है। यहाँ जो लोग रहते, जो दर्शन करते या इसका विषय सुनते अथवा इसका विषय मनमें रखते एवं आन्दोलन करते और जो पशु पक्षी यहाँ घसते, वह भी मुक्ति लाभ करते हैं। इस नगरके मध्यस्थलमें समस्त शास्त्रकी आत्मके वृक्षरूपमें रखे और अपने लिङ्गरूप एकाग्रनाथ नामसे अभिहित हो हम रहते हैं। इस काशीपुरमें यास करते नर सर्वपापसे मुक्त हो जाते हैं। काशीपुर चारो ओर पंचयोजग विस्तृत है। इसके मध्य पूर्व-पश्चिम एवं उत्तर-दक्षिण ढाई कोस हम सर्वदा विराजमान रहेंगे। फिर प्रलयके समय हम इसकी अपने त्रिशूल पर रखेंगे। अतएव इसका कभी विनाश नहीं। इसका हमारी ही प्राप्ति सम्भरना चाहिए।"

पार्योवर्तके लोग जैसे जीवनके श्रेष्ठ भागमें कामी जा रहते तथा काशीमें मर सकनेपर शिवत्व प्राप्तिका विश्वास रखने, वैसे ही दाक्षिणात्यवासी भी काशीमें रहने और काशीमें मरनेसे अपनी मुक्ति सम्भरते हैं।

दाक्षिणात्यके नाना स्थानोंमें महादेवकी पांच

भौतिक मूर्ति हैं। काशीपुरका 'एकाग्रनाथ लिङ्ग' उनमें चित्तिमूर्ति होनेसे जो शक्तिकासे गठित है। सुतरां अग्र्यान्व देवालयकी भांति यहाँ जलाभिषेक नहीं होता।

एकाग्रनाथका मन्दिर दाक्षिणात्यमें अति विख्यात और देखनेमें भी अति सुन्दर तथा पुरातन है। यह मन्दिर किसी समय एकबारगी ही न बना था। इसकी वृद्धि क्रम क्रम हुई है। इस मन्दिरकी दोवारों परस्पर सरल भावसे नहीं बनीं और सर भा परस्पर सम्मुखोन नहीं। अनेक लोगोंने अनुमानमें इसका मूल स्थान चोन्न राजाशने बनवाया था, फिर विजयनगरकी राजा कृष्णरायने गोपुर निर्माण कराया। इस मन्दिरके प्राङ्गणमें एक पुरातन आम्बडल है। उच्चका वयस ३४ यत् बरकर होगा। दक्षिणके लोग इस आम्बडलको अनादि और सर्वशास्त्ररूपी मानते हैं। इसकी चार शाखाओंमें घृथकूर, मिट्ट, कट्ट, तिळ और अन्न चार प्रकारके आम्ब होते हैं। फल खानेवाले इस विषयका साधन दिया करते हैं। देवसेवकोंके कथनानुसार पहले इस आम्बडलसे प्रत्यह एक पक्का घाम गिरता, जिसका भोग एकाग्रनाथकी लगता था। अनेक लोगोंके कथनानुसार इसीसे लिङ्गका नाम 'एकाग्रनाथ' पड़ा है। किन्तु आजकल प्रत्यह आम्ब नहीं मिलता।

कामाक्षी देवीके उत्पत्ति-सम्बन्ध पर स्थलपुराणमें लिखा है—किसी समय पार्वती देवीने कौतुकच्छलसे पीछे जा महादेवके चक्षु मूट लिये थे। इससे विश्व संसार अन्धकारमय हो गया। कारण सूर्यबन्ध-वृद्धिरूपो नयनत्रय टक जानिये प्रकाश किस प्रकार होता ? इसमें भगवतीको पाव लगा। उसी पावके प्रायश्चित्तकी महादेवके प्रादेशसे उन्हें मत्त्व लाभ आना पड़ा। एकाग्रनाथके मन्दिरप्राङ्गण-स्थित कम्पानदो नामक तीर्थमें कामाक्षी देवीरूपमें वृहत्माश तपस्या करनेपर महादेवने उन्हें फिर पशुण किया। तदवधि कामाक्षीमूर्ति स्वतंत्र मन्दिरमें प्रतिष्ठित है। फाल्गुन मासके पंचदश दिन बराबर एकाग्रनाथका वार्षिक महोत्सव होता है। इसके दशम दिवस रात्रिकी

काचमन्त्र (सं० स्त्री०) काचः सम्भवः उत्पत्तिस्थानमर्थ, बहुव्री० । काचसवण, काकानमक ।

काचसौवर्चल (सं० स्त्री०) काचस्थानिकं सौवर्चलम्, मध्यपदसौधी कर्मधा० । काचसवण, काकानमक ।

काचस्थाली (सं० स्त्री०) काचस्य स्थालीव, उपमितसमा० ।
१ पाटलाह्व, पाड़रीका पेड़ । इसका संस्कृत पर्याय पाटलि, पाटला, भ्रमोवा, मधुधूती, फलेरुहा, कृष्ण-हस्ता, कुवेराणी, काचस्थाली और तान्मुष्पी है । भावप्रकाशके मतसे यह कषाय एवं तिक्तारस, ईषदुष्ण-वीर्य और वायु, पित्त, रसेषा, परुचि, खास, श्रोय, रक्तवमि, हिक्का तथा व्यथा नाशक होती है । इसका पुष्य कषाय, मधुरारस, शीतवीर्य, हृदयपाषी, कण्ठ-शोधक और कफ, रक्तदोष, पित्त तथा भतिसारघ्न है । फल हिक्का और रक्तपित्तको दूर करता है । २ काचपात्र ।

काचा, (सं० स्त्री०) १ काच-मणि, विह्वोरी पत्थर । २ अश्वके दन्तकी शुभ्र रेखा, घोड़ेके दांतकी सफेद सकीर । यह पन्द्रहसे सत्रह वर्षकी अवस्था तक घोड़ेके दांतमें सरसोंकी तरह पड़ जाती है ।

काचाध, (सं० पु०) काच इव पक्षि यस्य, बहुव्री० । १ हृहृक, बड़ा बगला । २ पशुकन्द, कमलकी जड़ ।

काचाध्वा, (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हलदी ।

काचिघ, (सं० पु०) कक्षते दीप्यते, बाहुलकात् इन् ; काचिं-कान्तिं हन्ति गच्छति, काचि-इन्-उ-प्रयोदरा-दित्वात् ह्यस्यः । १ काञ्चन, सोना । २ मूषिक, घड़ा । ३ शिखी-धान्यविशेष, एक धान ।

काचिषिक (सं० पु०) काकचिष्ठा, घुंघुची ।

काचित्—(सं० अर्थ०) कोई भी अनिर्दिष्ट-स्त्री ।

काचित (सं० त्रि०) कथ्यते वध्यते अघो, कच-णिच-त्त । शिखारोपित, शिकहरमें रखा हुआ ।

काचिम, (सं० पु०) कच-णिच-इमन् । देवकुलोद्भव-हृष, पाक पेड़ ।

काचिनिन्द, काचिचि देखो ।

काक्षुया—बहालके खुलना जिलेका एक गाँव । यह भैरव और मधुमती नदीके सङ्गम स्थानपर बाघेरहाट से तीन कोस पूर्व अवस्थित है । यहाँ पुलिसका थाना

और बड़ाबाजार मौजूद है । १७२२ ई०की जेसकेस साडेवने यह बाजार लगाया था । यामके मध्य एक नाला निकला, जिससे यह दो भागमें बंट गया है । पाने लानेके लिए पुस बंधा है । यहाँ कछू (मुरगी) बहुत होती है ।

काचुक (सं० पु०) काच बाहुलकात् उक्त्वा । १ कुकुट, मुरगा । २ चक्रवाक, चकवा ।

काच्छ (सं० त्रि०) कच्छस्थानीय, मदीके किनारेका ।

काच्छप (सं० त्रि०) कच्छपसम्यञ्चीय, कछुयिका ।

काच्छिम (सं० त्रि०) परिष्कार, साफ ।

काह (हिं० पु०) १ ऊरुका उपरि भाग, जाँघका ऊपरो हिस्सा । २ काछा, लाग । ३ रूपका भराव ।

काहना (हिं० क्रि०) १ खोंसना, लगाना । २ शृंगार करना, बनाना ।

काहनी, (हिं० स्त्री०) एक प्रकार की धोती । यह कस और ऊपर चढ़ा कर पहनी जाती है । २ परिधेय वस्त्र-विशेष, जाँघियेके उपर पहना जानेवाला कपड़ा । यह चाँचरेकी तरह रहती और चुनट पड़ती है । रामलीला और कृष्ण लीलामें पुरुषमात्र प्रायः काहनी पहनते हैं ।

काँका (हिं० पु०) सांग, उठी धोती ।

काछी—युक्त प्रान्तकी एक छपक जति । यह लोग प्रायः खेत जोतते—धोते और भाजों तरकारी बाजारमें बेचते हैं । युक्त प्रान्तके काछी ७ श्रेणियोंमें विभक्त हैं—कनौजिया, हरदिया, सिंगौरिया, जौनपुरिया, मगहिया, जरेठा और कड़ाह । इन ७ श्रेणियोंमें परस्पर भादान-प्रदान और पान भोजनादि प्रचलित नहीं । सातो श्रेणियोंमें कनौजिये सर्वापेक्षा सम्मानार्ह और कड़ाह सबसे छोटे समझे जाते हैं । किन्तु कड़ाह कहते कि यही सर्वापेक्षा सम्मानार्ह और कनौजिये सबसे छोटे होते हैं । कनौजसे कायो तक कनौजिये, पूर्व भवधमें हरदिये, भवधके दक्षिण-पश्चिमार्धमें सिंगौरिये, वनोधमें जौनपुरिये, मगहिये और जरेठे विहारमें तथा कड़ाह ब्रज एवं जयपुरादि स्थानोंमें मिलते हैं । इन सात श्रेणियोंकी छोड़-काछियोंमें दूसरी भी ३ श्रेणी रहती है,—धाकल,

कामाची देवीकी भोगमूर्तिके साथ एकाम्बनाथकी भोगमूर्ति मिलायी जाती है।

कामाची देवीका मन्दिर कुछ छोटा है। इसीके प्राङ्गणमें भगवान् शङ्कराचार्यका समाधि है। इसी समाधि पर उनकी प्रद्वारमयी मूर्ति प्रतिष्ठित है।

शिवकाचीमें पनेक शिवलिंग हैं। इनके सम्बन्धमें एक प्रवाद है—किसी समय एकाम्बनाथने एक सुष्टि बालुका छोडी थी। उससे बालुकाके जितने कण गिरे, वही प्रत्येक शिवलिंग बन गये।

एकाम्बनाथकी पूजाकी १४००) ६० पायके कई ग्राम लगे हैं। ८०५) ६० नकद कलकत्तीसे आता है।

इस मन्दिरमें प्रत्यह वेदपाठ और वेदगान होता है। उत्सवके समय भोगमूर्तिकी रत्नालङ्कारसे सजा बाहुक ब्राह्मण अपने स्वस्व पर ले जाते हैं। यीही दूसरे ब्राह्मण वेद गाते चलते हैं। फाल्गुन मास रथोत्सव होता है। उस समय विहार यात्री आते हैं।

यह देवानाथ कर्णाटक युद्धके समय सेनावास या अस्तित्वकी भांति व्यवहृत होता था। द्वार पर उसी युद्धके एक गोलेका चिन्ह आज भी देख पड़ता है।

उक्त शिवमन्दिरसे २ कोस दूर विष्णुकाची है। यहीं वरदराज स्वामीका प्रसिद्ध मन्दिर बना है। स्वल्पपुराणमें वरदराज स्वामीके उत्पत्ति-सम्बन्ध पर इस प्रकार लिखा है,—“किसी समय ब्रह्मर्षि अश्वमेध यज्ञ किया था। काञ्चीपुरमें यज्ञस्थल निरूपित हुआ। यज्ञभूमिका उत्तर द्वार नारायण, पश्चिम द्वार विरश्चि-पुर, दक्षिण द्वार विष्णुलिपट और पूर्व द्वार महाबली-पुर था। सरस्वती देवीने ब्रह्मर्षिके यज्ञकी बात न सुनी। नारदने ब्रह्मर्षिके जा उनकी संवाद दिया था। उनकी इससे बड़ा क्रोध हुआ कि ब्रह्मर्षि उनसे न कुछ यज्ञ करना आरम्भ किया। वह यज्ञस्थल बर्षानकी नदी बन गयीं। ब्रह्मर्षि यह सुन विष्णुसे साहाय्य मांगा था। विष्णुके आकर गति रोकने पर सरस्वती अन्तःसलिला होकर बहने लगी। विष्णु

किर नग्न रूपसे देवीचोरी नामक स्थान पर नदीके सामने जा पड़े। तब सरस्वती देवीने कृपासे पशुमुखी हो अपना पूर्व सङ्कल्प परिवर्त्याग किया था। इधर यथासमय यज्ञीय अन्नमांसकी आहुति दी गयी। भगवान् विष्णु, वही हुत मांस खाते खाते यज्ञीय अग्निसे आविर्भूत हुये। विष्णुके दर्शनसे ब्रह्मर्षी मनस्तामना सिद्ध हुयी। समागत ऋषियों और ऋत्विजोंने विष्णुसे उसी स्थान पर रहनेका प्रार्थना की थी। नारायण उनकी प्रार्थनासे सन्तुष्ट हो काञ्चीपुरमें गीवरदराज स्वामीके नामसे रहने लगे।

सुननेमें आया कि ११५ शताब्दीकी काञ्चीपुरके शासन-कर्ता गंगागोपाल रावने विष्णुमन्दिर प्रतिष्ठा किया था। पहले वह अशुभक रहे। वरदराजकी कृपासे उनके पुत्रसन्तान हुआ। इसीसे उन्होंने एक शिवमन्दिर तोड़वा उसीकी इँटोंसे एक वृहत् विष्णु-मन्दिर निर्माण कराया और उसमें वरदराज स्वामीकी स्था विठायी। इसी विष्णुमन्दिरसे यह स्थान विष्णु-काञ्ची कहाता है।

विष्णुमन्दिरके देवीभवनके एक स्तम्भपर १०३२ शककी एक शिखरलिपिमें लिखा कि—भोलनतन्त्रजी-मल्ल नामक फोई ध्यति उदय्यर पत्नीयमसे वरदराजकी मूर्ति विष्णुकाञ्ची ले गया था। विष्णुमन्दिरके द्वितीय प्रकोष्ठमें कृष्णाराय निर्मित प्रसिद्ध शतस्तम्भ-मण्डप विद्यमान है। एक पत्थरकी काटकर यह मण्डप बनाया गया है। इसके निकट दूसरे भी कई मण्डप हैं। उनमें बाह्यमण्डप और कल्याण-मण्डप ही अछ है। इस मन्दिरकी देवधियाके लिये १०००) ६० पायका एक ग्राम लगा है। किर मन्दाक गवरनमण्ड भी ८८६१) ६० धार्मिक देती है। यह मन्दिर अतिशुद्धिवाली है। इसकी केषल मणिमुहूर्त्ताका मूल्य ही लाख रुपयेसे अधिक होगा। शार्ड स्तम्भयने १६६१) ६० मूल्यका एक कण्ठाभरण चढ़ाया था। वैशाख मास १० दिन बराबर इनका मङ्गोत्सव हुआ करता है। उस समय यहाँ प्रायः पचास हजार यात्री आते हैं।

काञ्चीपुरी (सं० स्त्री०) काञ्चीपुर देवी।

• शिवलिंगके नाम; प्रत्येक विन्दुकी दो मूर्ति होती हैं। सुलभर्षि मन्दिरमें प्रतिष्ठित रहने के और भी मूर्तमें अश्वमेधमें वरदराजकी बनती है। भोगमूर्ति की बचवादिधि बनती जाती है।

सुखसेम और सचन। यह बिहारमें पश्चिमीय देह पड़ते हैं।

कलितपुरके कक्षियोंमें पूर्वीय ७ या १० त्रैषी नहीं जातीं। यह कटवाह, सलीरिया, हरदिया और चम्बर—चार त्रैषियोंमें बंटे हैं।

भाषीके काछो पपनीको कठवाह बताते हैं। यह कठवाह राजपूतोंसे उषकी और उनके पूर्वपुत्रप नरवर प्रदेशमें उष प्रखलमें पड़ते थे।

काछी जातिकी त्रैषीके नाम अनुधारण करनेसे समझ पड़ता—यह पपनी वासभूमिके अनुसार भिन्न भिन्न त्रैषीमें बंटे हैं कनौजिया—कन्नौज या कान्यकुब्ज, हरदिया—हरदियामण्ड, सिंगौरिया—सिंगौर (इलाहाबादसे २५ मील उत्तर गङ्गाके पश्चिममूल पर अवस्थित है। यह रामायणोक्त निवादाख्य की “शुक्रवेरपुरी” है), जौनपुरिया—जौनपुर, मगधिया मगध, कठवाह—कच्छ और सुखसेन सह्या (रामायणोक्त “साङ्गाश्रम” काली नदीके तीर सैनपुरी और फरखावादेके बीच आज भी इसका भग्नावशेष विद्यमान है) से निकला है।

पनेक स्थलोंमें इन्हें कोरी और सुराई भी कहते हैं। यह कृषिकर्ममें प्रति पटु होते और प्रति परिष्कार परिच्छन्न रूपसे उत्तमोत्तम शश्यादि फस उत्पादन कर सकते हैं।

भागरा प्रखलमें कठवाह काछियोंकी ही संख्या अधिक है। दाक्षिणात्यमें यह जाति यथेष्ट है। यह कुरमी जातिकी संशय पदवीमें गण्य है। बम्बई प्रदेशमें यह फलमूल और तरकारी बेचते तो हैं, किन्तु साधारण लोगोंके लिये नहीं। देशसेवाके लिये यह मत्से पर बीजोंकी बेचते फिरते हैं। दाक्षिणात्यमें इनके बीच केवल मात्र २ त्रैषियोंका भेद है—बंटेला और नरवरी।

राजपूतानेके धौलपुर प्रदेशमें ही काछी जाति यथेष्ट देख पड़ती है।

कार्ज (हि०पु०) १ कार्य, काम। २ व्यवसाय, रोजगार। ३ प्रयोजन, मतसब। ४ विवाह, शादी। ५ द्विद्रविग्रेष, घटन लगाने का द्विद्र।

काजर (हि०पु०) कज्जल, चाँदमें लगनेवाकी दीपिके धुँओंको कालिख। इसको सरवे या परई पर पार लेते हैं।

काजर—सुसलमानोंकी एक जाति। पारस्य का वर्त्तमान राजवंश इसी जातिका है। जिस समय मुकम्मबी वंशीय प्रथम सम्राट् शाह इस्माइलने गिया मतको पारस्यके राजकीय मतरूपमें फैलाया, उस समय ७ तुर्की जातियाँ उनको पृष्ठपोषक थीं। काजर उन्हीं मात जातियोंमें एक हैं। किसी समय प्राचीन हिरकीनिया (वर्त्तमान मसन्दरान) राज्यमें काजरीने महत् प्रतिष्ठा पायी थी। १५०० ई०से पहले इस जातिकी बात सुन नहीं पड़ती। उक्त समयके एक इस्लामिखत ग्रन्थमें “पिरिकी काजर” नामक किसी जातिका उल्लेख है। जिससे पहले किसी भी माहित्यमें “काजर” जातिका नाम नहीं पाया। अस्ताराबाद और मसन्दरान प्रदेशमें यह अधिक संख्यक रहते हैं। राजपूतोंकी भांति यह केवल युधव्यवसायी होते हैं। इसी जातिके सम्भूत भागा मुहम्मद खां १८८४ ई०को प्रथम सम्राट् हुये और अस्ताराबादके निकट रहे। (यह एक सामान्य सैनिकके पुत्र थे और किसी समय नादिर शाहकी सभासे निकाले गये थे) नादिरके एक भतीजेने इन्हें वाखकालमें खोजा बना डाला था। यह लोभी और पराक्रम प्रिय थे। इनके पीछे इनके भ्रातृपुत्र फतेह खली—(१८८६ ई०) सम्राट् बने। उन्हींके समयमें रुस और पारस्यका युध हुआ। करनेल मैकप्रिगरके मतसे तैमूर बादशाह ८०९ हिजरकी काजर वर्धा ले गये थे। इनमें लोकरीवास और भासोगावास दो त्रैषी और प्रत्येक त्रैषीमें वंश भेद है। नियाडोगलु नामक काजरजातीय एक वंश इसी परसैनियोंके गाजी प्रदेशमें जा कर रहा है। अजदानल वंशीय १म तमाश शाहके समय यह सार्ध प्रदेश पड़ते थे। किन्तु बुखारेवाले खां साहबके अधीन अजशाक वंशीयोंने उन्हें निकाला और पवगिष्ट प्रदेशोंकी समूल विनष्ट कर डाला। काजरी (हि०पु०) एक गाया। इसकी चाँदके किनारे कासा काला घेरा रहता है।

काष्ठीप्रस्थ (सं० स्त्री०) काष्ठीप्र देवोः।

काष्ठीक (सं० स्त्री०) कु कस्तिता षष्ठिका प्रकाशो
यस्य, कु-षष्ठ-यवुल्-टाप् शत इत्वं कोः कःदेशः।
धान्यास्त, कांजी। अन्नमें लज डाल सड़ानेसे लज
खटा पड़ जाता, तब वही लज 'काष्ठीक' कहता
है। इसका संस्कृत पर्याय—घारनास्त, सौवीर,
कुल्लाप, अमिपुत, षवन्तिषोम, धान्यास्त, कुञ्जक,
कुल्लाप, कुल्लापावामिपुत, काष्ठीक, काष्ठीना, काष्ठीक,
काष्ठी, भक्तवारो, धान्यमूल, धान्ययोगि, तुपास्य,
गृहान्त, महारस, तुपोदक, गृहक, सुक, धातुघ्न,
उन्नाह, रघोघ्न, कुण्डगोलक, सुवीरान्त, वीर,
प्रमिपय और अन्नसारक है।

राजवल्लभके मतसे यह भेदक, तीक्ष्ण, उष्ण,
स्वग्रंथीतन, यम एवं क्लान्तिनाशक, अग्निवर्धक
और पिच, रुचि तथा वस्त्रिशुद्धिकारक है। फिर
राजनिघण्टु देखते इसे अन्नपर मलनेसे वायु, शोथ,
पिच, ज्वर, दाह, मूर्च्छा, शूल, आधान और विषम
रोग विनष्ट होता है।

काष्ठीकवटक (सं० पु०) खाद्यद्रव्य विशेष, कांजी
वड़ा। मटोका एक नूतन पात्र कटु तैल लगा
निर्मल जलसे भरते हैं। फिर उसमें राई सरसों,
जीरा, नमक, हींग और हलदीके चूर्ण साथ कुछ
बड़े भिगो तीन दिन तक सुख बांध रख छोड़ते हैं।
वही बड़े जप खड़े पड़ जाते, तब 'काष्ठीकवटक'
कहाते हैं। यह रुचि एवं वाफकारक और शूल,
अजीर्ण, दाह तथा वायुनाशक है।

काष्ठीकषट्पददृष्ट (सं० स्त्री०) दृष्ट विशेष, एक घी।
दृष्ट ४ शरावक, काष्ठीक १६ शरावक और जिङ्ग,
गुण्डी, दिव्यनी, मरिच, चय्य तथा सैन्धवलवणका
कल्क एक एक पत्र एकत्र पकानेसे यह औषध प्रसृत
होता है। काष्ठीकषट्पददृष्ट आमवातके निवे
दितकर है। (चक्रपाथिः)

काष्ठीना (सं० स्त्री०) कुस्तिता षष्ठिकायस्या, टाप्।
१ लघुजीवन्ती। २ पन्नाशी जता। ३ काष्ठीक, कांजी।
काष्ठीतैल (सं० स्त्री०) काष्ठीक विशेष, एक कांजी।
इसे मननेसे वात बढ़ता, दाह चठता, गात्र मथित

पडता और केय पकने लगता है। किन्तु खानेमें
कोई दोष नहीं। (राशनिष्य)

काष्ठीपत्रिका (सं० स्त्री०) कृष्णदन्ती क्षुप,
काली दांती।

काष्ठी (सं० स्त्री०) कं जलं अमन्ति, क-पन्ज-अण्
डोप्। १ महाद्रोणपुष्पी, एक फूलदार पेड़।
२ काष्ठीक, कांजी। ३ भार्ग, एक औषधि।

काष्ठीक (सं० स्त्री०) काष्ठीक, कांजी।

काट (सं० पु०) कं जलं अमन्ति अत्र, क-अट-अच्।
१ क्षुप, जूवां। २ विषमपथ, नोची-जंघी राह।

काट (हिं० पु०-स्त्री०) १ छेदन, कटाई। २ कर्तन,
तराय। ३ आहत स्थान, कटो छुवीं जगह। ४ षोड़ा,
दर्द। ५ छल, धोका। ६ मल्लयुद्धका कौशल विशेष,
पंचपर लगनेवाला पेंच। ७ कांड, चिह्नी लिखनेका
एक कागज़। ८ त्रायके खेलमें तरुपका रंग। इससे
दूधरे सब रंग कट जाते हैं। ९ मल, कौट।

काटकी (हिं० स्त्री०) यष्टिविषय, एक छड़ी। इससे
मदारी तमाशा देखाते और बकरे, बन्दर तथा भाऊ
नधाते हैं।

काटन (हिं० स्त्री०) खण्डविषय, एक टुकड़ा। यह
निरर्थक होनेसे छोड़ दिया जाता है।

काटना (हिं० क्रि०) १ कर्तन करना, तीक्ष्ण अस्त्रसे
खण्ड उतारना, टुकड़े चड़ाना। २ रगड़ना, पीसना।
३ चर्मपर आघात लगाना, चमड़ा चड़ाना। ४ क्वांटना,
खींतना। ५ मिटाना, छोड़ाना। ६ व्यतीत करना,
बिता देना। ७ गमन करना, चलना। ८ अर्थमें घनो-
पाजन करना, चोरीसे रूपया कमाना। ९ रद्द करना,
हेंकना। १० प्रसूत करना, बनाना। ११ निशानना,
ले जाना। १२ खींचना, तैयार करना। १३ बांटना,
भाग लगाना। १४ तराय लेना। १५ सफाईमें
फिटाना। १६ चठाना, भोगना। १७ दांत मारना,
डम लेना। १८ लगाना, फाड़ना। १९ पार करना।
२० घाना, देख पड़ना। २१ मारना, चड़ाना।
२२ पसिद करना, धाबित होने न देना। २३ चोराना।
२४ अलग करना, तोड़ना। २५ सदन न होना, सड़
न जाना। २६ भाड़ना, साफ करना।

काजल (सं० स्त्री०) कुतूभितं जलम्, कोः कादेशः ।
कुम्भितं जल, खराब पानी ।

काजल (हि०) कन्वर्द्धिषो ।

काजलवास—एक सुसलमान जाति । यह शिया सम्प्रदाय भुक्त है । ईरानका तबरीज, शीराज, मशीद और किरमान नगर इनकी जन्मभूमि है । यह अखपालन, मेयपालन और कृषिकार्यसे अपनी जीविका चलाते हैं । काजलवास विलक्षण साहसी, दुर्दान्त और युद्धप्रिय होते हैं । यह पारस्योवर नादिर शाहकी विपुल वाहिनीमें भरती किये गये थे । नादिर शाहका वध होने पर इन्होंने अहमद शाहमें मिल काबुल जीता । अहमद शाह जब मर गये, तब यह काबुलके निकटवर्ती चान्दोल ग्राममें रहने लगे । इनकी संख्या कीयी डेढ़ लाख है । यह सुन्नीसम्प्रदाय वाले दुरानी सरदारोंके घोर शत्रु हैं । अफगान सरदार काजलवासोंसे डरा करते हैं ।

काजाक (कज़ाक) मध्य एशियाकी घूमनेवाली एक जाति । युरोपमें इन्हें कोसाक कहते हैं । यह मध्य एशियाके उत्तर विभागस्थ मरु प्रदेशमें प्रधानतः रहते हैं । तुर्कोंकी तरह इनमें नानाविध अरबी, शाखा और अंग्रविभाग हैं । युरोपमें यह वृहत्, मध्य और सुदूरदक्षिण विभक्त हैं । किन्तु ऐसा विभाग मध्य एशियामें नहीं होता । अमणप्रियता और युद्धप्रियताके लिये पति दूरवासी भिन्न भिन्न अर्यादिके लोग भा मिलते हैं । एम्बा नदी, चाराल झर और बलकाश तथा आलातौ झरके तीर यह अधिक संख्यक देख पड़ते हैं । किन्तु इतने दूरवर्ती होते भी सर्वदा सकल प्रदेशोंमें घूमते रहनेसे इनमें भाषाका विशेष परिष्कृत नहीं पड़ता ।

टानसाकसियाना प्रदेशमें तोकेल या तियोकेल सुलतान नामक किसी व्यक्तिके अधीन इन्होंने प्रथम अभ्युत्थान किया था । १५१४ ई०की (८४१ हिजरी) सऊरतेश नदीके तीर यह बहुत दुर्दान्त बग गये । सुलतान तोकेलने मास्को नगरको रुस-सम्राट् बेडोवके निकट अपने दार टूट भेजा था ।

यह युद्धप्रिय लोग विख्यात रखते कि "यद तदाहं"

(देवशक्ति सम्मन प्रस्तरखण्ड) पत्यर रोग होता, युद्धमें जय दिनाता और भूत भगाता है ।

१६ वें शताब्दीको तातार सेनादलके मध्य सभ्य भागमें रूठ कज़ाक ही लड़ते थे । रुठ उस समय सुदूर सुदूर राज्योंमें विभक्त था । इन्होंने अभी समय सुविधा देख प्रायः समस्त रुठ-राज्योंको विषयस्त कर डाला और अष्टाकानतक अधिकार किया । अन्तकी प्रचण्ड वीर इमान (Ivan the terrible) ने इन्हें रूसी-सोमासे बाहर भगा दिया । यह परास्त हो समरकन्द, बोखारा और खोवाको चले आये । यहाँ भी यह दुर्दमनीय हो गये । फिर रूसका अधिकार यहाँतक पा जानेसे इन्होंने नाम मात्र रूसकी अधीनता स्वीकार की । काजल प्रदेशमें सत्ताधिक कज़ाक रहते हैं ।

इनमें भिन्न अर्यादिकी भिन्न मसजिद, भिन्न कबर और डेरा डालनेकी जगह रहती है । इनमें अनेक धनी व्यक्ति और अनेक सम्मानार्ह विद्वान् भी हैं । रूसका कोई कानून यह नहीं मानते । भाषा और आचार व्यवहारमें यह तुल्य जातिसे विशेष प्रथक नहीं होते । इनकी स्त्रियाँ और शिशुओंके गावका वर्ष युरोपीयोंसे मिलता, केवल सूर्यके उत्थापसे अर्धचाक्रत काला पड़ जाता है । इनका मस्तक दीर्घ, पगड़ी कोष्णाकार, चबू बादास जैसे तथा मौज्वल्य-विशिष्ट, हनु लच, नाक चपटी, प्रयस्त सलाट, भाठ लहवू और सूख थोड़ी होती है । इनके मतमें कालू नयाजकोंकी स्त्रियाँ ही सुन्दरी हैं । यह शीषकासमें कल्पक नामक पगड़ी और शीतकालमें तुमक नामक टोपी पहनते हैं । इन्हें सामुद्रिक शास्त्र, फलित ज्योतिष और भूतान्तिके आद्यान प्रभृतिपर विश्वास है । उक्त शास्त्रोंकी बहुत आलोचना हुवा करती है ।

१८२२ से १८१६ ई० तक इनमेंसे कितने ही उपयुक्त लोगोंको लेकर रुस-सम्राट्ने ८० सेनादल प्रस्तुत किये थे ।

युरोपीय कज़ाक देखनेमें सुपुट, पातिथेय और सम्मानार्ह हैं । विवाहित स्त्रियाँ मस्तकपर एक रात्रि कानोचित रेशमी टोपी लगातीं और अपने गावमें एक रुमाक खोल लेती हैं ।

काठवेम (सं० पु०) कान्तिदास-प्रणीत गुरुन्तना नाटकके एक टोकाकार।

काठव्य (सं० स्त्री०) कटोर्भाव; कटु-प्यञ् । १ कटुता, कडुभाषण, कडुवाणी। २ काकोश, करकसपन।

काठाशान—दक्षिण कछारवाली घयसीखरी नदीकी एक शाखा। कछते बहृत पछले कछारके किछी राजाने इन नदीमें नहर निकाल वाराक नदीमें जा मिलाई थी।

फिर सन्नि सङ्गम स्थानपर एक बांध बंधाया। आज-कल वारही मास इसमें जल रहता और स्रोत बहता है।

काठान—बङ्गालके मालदह जिलेका एक कंटोला जङ्गल। यह भूभाग पूर्व और उत्तरपूर्वार्धमें विस्तृत है। उत्तरपूर्व और दक्षिणपूर्वको काठाल महानदीको चर-भूमिसे दोनाजपुरकी सीमातक चला गया है। इसका प्रकृत गठन भति श्रद्धत है। बड़ा ह्रद्य या गहन वन कहीं देख नहीं पड़ता। केवल कंटोला झाड़ियां चारो ओर लगी हैं। पछले यहां बहुत लोग रहते थे। पुष्करिणी और शृष्टादिका भग्नावशेष आज भी इनकी प्राचीन समृद्धिका साक्ष्य देता है। प्रसिद्ध पाण्डुवा नगर इसी वनमें बना था। काठालमें कई खाड़ी और नदियां हैं। यहां केवल घसम्य लोग रहते हैं। उनमें पनेक शिकार करते और मछली खा अपना पेट भरते हैं। कुछ कुछ सन्यास भ्रम भी और घर बना रहने लगे हैं।

काठक (सं० स्त्री०) कटुकस्य भाव; कटुक-पण् । कटुता, कडुवाहट।

काट (हिं० पु०) १ कर्म करनेवाला, जो काटता हो। २ भयानक, शौकनाक, काट जानेवाला।

काटोवा—बङ्गाल प्रान्तके वर्धमान जिलेका एक नगर।

यह भागीरथीके पश्चिम तीर पचा० २३° ३०' उ० और दिसा० ८८° १०' पू० पर अवस्थित है। यहां केगव भारतीय चैतन्यदेवकी मंदासकी दोषा दी थी। गौराश्र देवका मन्दिर यमो बना है। मुसलमान नवाबोंके समय यह नगर बहुत बड़ा। १८४२ ई० की मझारार राज-भंती भास्कराण्य बहुरिजयके लिये छोड़े दिन यहीं पाकर ठहरे थे। १०३३ ई०को काठिमपकीने उनसे युद्ध किया। पश्चिमसिधोंमें तन्तुवाय (लुनाई) वर्षिष्ठ

है। पीतल और कांसिका व्यवसाय बहुत होता है।

काथ (सं० त्रि०) काटे विषममार्गें कूपे वा भव; काठ-यत् । १ विषममार्गजात, विद्वव राक्षसे निकला हुआ। २ कूपजात, कूपेसे पैदा। (पु०) ३ रुद्र विगम।

काठ (सं० पु०) काठयते तद्वरते, कठ-घञ् । १ पापाण, पत्थर। (त्रि०) काठस्य इदम्, कठ-पण् । २ कठसम्बन्धीय, कठका लिखा हुआ।

काठ (हिं० पु०) १ काठ, लकड़ी। २ ईंधन, लतानिको लकड़ी। ३ शहतीर, तख्ता। ४ वेड़ी, कलन्दर।

काठक (सं० स्त्री०) कठार्णार्धमें आन्नाय; समूहो वा कंठ-बुञ् । १ कठ शाखाध्यायीका धर्म। २ कठ शाखाध्यायीका शास्त्र। ३ कठ शाखाध्यायीका समूह।

काठड़ा (हिं० पु०) कठोता, काठकी बड़ी परात।

काठवनिधा—विद्यारके वणिकोंकी एक श्रेणी। इनमें अधिकांश वैष्णव होते हैं। सिंधत शास्त्रज्ञ इनका पौरो-हित्य करते हैं। सिन्धू शास्त्रांक देवदेवियोंके प्रतिरिक्त यह सोखा गन्धुनाथ और सत्यनारायण नामक ग्राम्य देवताको पूजते हैं। अपर वणिकोंके मध्य कन्या और वर उभय पक्षमें सतपुरुषका सम्बन्ध रहते भी विगड पड़ते विवाह रुका जाता है। किन्तु इनमें वंसी कीई बाधा नहीं रहती। यह वाष्क्यकारमें कन्याका विवाह करते और एक पत्नी रखते अपर पत्नी ला सकते हैं। इनमें विधवाविवाह प्रचलित है। फिर भी विधवा पूर्वपतिके कनिष्ठ सहीदर पद्यवा सम्पर्कीय कनिष्ठ भ्रातासे विवाह करनेको सप्तन नहीं। कीई गुरुतक अपराध प्रमाणित होते स्वामी पंचायतकी अनुमतिसे पत्नी परिव्राग कर सकता है। इस प्रकार परिव्राग स्त्रियोंका फिर विवाह नहीं होता। यह शवदाह करते और पयोगाथ ३१ दिन आहका नियम रखते हैं। सामान्य व्यवसाय और ज्ञापकार्य इनकी उपजीविका है।

काठवेम (सं० स्त्री०) सताविगम, एक वेम। यह भारतके युल प्रान्त, अफगानिस्तान और फारसमें उपजती है। इसका फल इन्द्रावपकी भांति कटु होता है। बीजसे तंतु निकालते हैं। कहीं कहीं काठ-

काजी—मुसलमान समाजका विचारपति। जहाँ मुसलमानोंका राजत्व रहता, वहीं काजीसमाजनीति, धर्मनीति, फौजदारा और दीवानी विधिके अनुसार विचार करता है। भारतका राज्य मुसलमान राजाओंके अधीन रहते समय काजी लोग विचारक पदपर अभिपिप्त थे। हिन्दुस्थानमें भी अनेक काजी विचार करते रहे। लोगोंके कथनानुसार उनमें पक्षपात और खेच्छाचारिताका कुछ प्राबल्य था। आजकल अंगरेजाधिपत भारतघान्त्राज्यके मध्य काजी मुसलमानोंके विवाह कालमें उपस्थित हो विवाहके बन्धनको टूट किया करते हैं। किन्तु तुर्किस्तान, अरब और ईरानमें यह आजकल भी विचारक हैं। हां देशभेदसे इनकी मर्यादाका कुछ तारतम्य रहता है। तुर्किस्तानमें विचारककी पूर्ण जनता रखते भी यह सुफ़ीके अधीन होते हैं। तुर्किस्तानके खनीफ़ा हाइन् अल रसीदके समयसे काजियोंके षाधमें विचारका भार अर्पित हुआ है। सर्वप्रथम काजीका नाम अबू यूसुफ़ था। सब देशोंकी अपेक्षा अरब राज्यसे काजियोंकी समता अधिक है। यदि प्रजा किसी कारण देगके अधिपति पर अभियोग लगती, तो प्रजल पराक्रान्त मस्कटके अधिपतिकी उपस्थिति भी काजीके समक्ष अनिवार्य आती है। ईरानके प्रत्येक नगरमें काजी रहते हैं। फिर प्रत्येक ग़ेख-उस-इसलामके अधीन होता है।

काजी अश्रीम खां—एक मुसलमान चिकित्सक। यह उमराव भी थे। १५५१ ई० की आगरा नगरमें यमुनाके तीर इन्होंने एक सुन्दर हवाम बनवाया था। उस हवामका पूर्व-सौन्दर्य अब देख नहीं पड़ता, अधिकांश विगड़ गया है। जो बचा है, उसे आज भी "इकीमका बाग" कहते हैं।

काजी अहमद—एक विख्यात ऐतिहासिक। इनका पूरा नाम काजी अहमद बिन मुहम्मद बलगढ़फारी था। इन्होंने मुसल-ए-जिहान-शारा नामक एक इतिहास लिखा। इस ग्रन्थमें मुसलमान-राज्यके स्थापनसे ८७१ हिजरी तक लेख्य घटनावली लिखी है। काजी अहमद पदमजमें (पेदश) ईरानसे

मक्का दर्शन करने गये थे। वहाँ से लौटने पर सिन्धु प्रदेशके देवाल नामक ग्राममें इनकी मृत्यु हुई। (१५६७ ई०)

काजू (हिं० पु०) हृद्यविषय, एक पेड़। इसे बङ्गालमें हिजली बादास, बम्बईमें काजूकलिया, तामिलमें सुन्दरी, तेलङ्गामें जिदीमेमिदी, कनाड़ेमें केम्पू, मलयमें परनकिमाव कुए और ब्रह्मदेशमें यीनोह कहते हैं। (Anacardium occidentale)

यह हृद्य ३०से ४० फीटतक ऊँचा होता है। काजू दक्षिण अमेरिकामें भारतवर्षमें प्राया है। आजकल यह भारत, चट्टग्राम, टनासरिम तथा आन्ध्रप्रदेशमें बहुत होता है। 'काजू' दक्षिण अमेरिकामें 'अकाजाऊ' शब्दका अपभ्रंश है।

इसकी शाखसे पीना या लाल गोंद निकलता, जो पानीमें कम घुलता है। कीड़े इससे भागते हैं।

हालकी गोदनेसे एक प्रकारका रस बहने लगता है। इससे चिड़ डालनेकी पकी रीयनाई बनती है। देयी कारीगर काजूका रस लगा कर धातकी चीज जोड़ते हैं।

हाल रंगनेके काममें लग सकती है। आन्ध्रप्रदेशकी काजूके बीजकी हालका तेल मछली पकड़नेके जाल रंगनेमें व्यवहार करते हैं। गोवामें इसे 'डीक' कहते हैं। वहाँ यह नावों और जालोंमें रालकी भांति लगता है। काजूका तेल दो प्रकार निकलता है—गुठलीके छिलके और मींगीसे। मींगीका तेल कुछ पीना, सुचायम, ताकतवर और बादासके तेलकी तरह होता है। जेतूनका तेल इसकी बराबरी कर नहीं सकता। किन्तु भारतवर्षमें मींगी बहुत खायी जाती है। गुठलीके छिलकेका तेल फाला, कहवा और फकोले डालनेवाला है। लकड़ीमें इसे सुपड़ देनेसे दीमक नहीं लगती।

शोधमें काजूका तेल कोठ, नाघर, गुमड़ी और छानेपर लगता है। मींगी खानेसे रक्त शुद्धता और अङ्गी पीड़ाका प्रकोप दबता है। गुठलीके छिलकेका तेल लगानेसे घेरका फटना बन्द हो जाता है।

जिस श्रीयधर्म इन्द्रायणके प्रभावसे छान दी जाती है। इसका प्रपर नाम 'कारित' है।

काठमाण्डू—खाधीन नैपाल राज्यकी राजधानी। वाघमती और विष्णुमती नदीके सङ्गम स्थलपर नागार्जुन गिरि अवस्थित है। इसी गिरिके पाददेशसे थाध कोस दूर उपत्यकाके पश्चिमांशमें काठमाण्डू नगर है। इसका प्राचीन नाम 'मञ्जुपत्तन' है। देशीय लोगोंके विश्वासानुसार पूर्वकालकी मञ्जुश्री नामक किसी बुद्धने यह नगर स्थापन किया था। राजधानीकी भूमि चतुरस्र वा त्रिकोण भूभवा हस्त अर्धवृत्त कोई नियमित आकार विद्यमान नहीं। हिन्दू इसका आकार देवीके खड्गकी भांति बताते हैं। फिर बौद्ध निवासी इसके आकारको मञ्जुश्री नामक नगरस्थापयिताकी तलवारसे मिलाते हैं। इस स्थित खड्गका मुष्टि नगरकी दक्षिण और वाघमती तथा विष्णुमतीका सङ्गमस्थान और नगरकी उत्तर और 'तिमाली' नामक उपकण्ठ स्थान इसका सूक्ष्म अंगभाग है। मञ्जुश्रीकी तलवारकी मूठमें जैसे एक खण्ड वस्त्र छत्राकार वेष्टित रहता, उक्त तिमाली जनपद भी वैसे ही देख पड़ता है।

प्रकृत पक्षमें प्रायः ७२१ ई०को काठमाण्डू गुणकामदेव द्वारा प्रतिष्ठित हुआ था। नगर उत्तर-दक्षिणकी ही अधिक दीर्घ, कोई थाध कोस हीगा। इसे काठमाण्डू बहुत दिनसे नहीं कहते। १५८६ ई०को राजा लक्ष्मणसिंह मलने नगरके मध्य मन्थासिधोके लिये एक काठमय हस्त मन्दिर वा साधुमण्डप निर्माण कराया। यह मन्दिर आज भी बना और इसी कार्यमें लगा है। इसी काठमण्डपसे 'काठमाण्डू' नाम निकला है। पहले यह नगर प्राचीर वेष्टित था। प्राचीरके गात्रमें बौध बौध सुन्दर तोरण रहे। आलसक स्थान स्थान पर प्राचीरका भग्नावशेष मात्र मिलता, किन्तु अधिकांश स्थलमें कोई चिह्नतक देख नहीं पड़ता। ३२ तोरण विद्यमान रहते भी कवाटका अभाव है।

काठमाण्डू सुद सुद १२पल्लियों या टोकियोंमें विभक्त है। उनमें पासपान, इन्द्रधक, काठमाण्डू टोला,

खण्डटोला और राजभवनका निकटवर्ती स्थान ही अधिक प्रसिद्ध है।

नगरके मध्यभागमें दरवार या राजभवन अवस्थित है। यह देखनेमें अधिक सुन्दर न होते भी बहुत बड़ा है। इसका कोई कोई अंग बहुत प्राचीन ब्रह्मदेशीय मन्दिरादिके आकारका बना है। इस प्रासादके मोटे मोटे ढक्कोर्ण शिखर देखनेमें बहुत अच्छे लगते हैं। प्रासादके मध्यका दरवार बने २० वर्षे हुए। राजभवनका आकार कुछ कुछ चतुरस्र और उत्तर और नगरमुखको उन्मत्त है। इन और पत्थर 'तन्त्रिजु' नामक मन्दिर अवस्थित है। दक्षिण और ग्रिय भागमें मन्त्रणागृह, 'वसन्तपुर' नामक अट्टालिका और नूतन दीर्घ सभागृह (दरवार) है। पूर्वमें उद्यान और प्रथमाला विद्यमान है। पश्चिममें प्रधान तोरण-द्वार है। इसके समुख नगरका प्रधान पथ निकला है। पथके पार्श्वमें हिन्दुओंके अनेक मन्दिर हैं। सभागृहके उत्तर-पश्चिम 'कोट' वा युद्धविषयादिका मन्त्रणागार है। इसी गृहसे १८४६ ई०को भोपण नरहत्याका पादेय निकला था। राजभवनके पश्चिम बाचहरी अदान्त और समुख अनेक सुन्दर देव-मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंमें अनेक प्रति उच्च और बहुतस विद्यमान हैं। मन्दिरोंका ढक्कोर्ण काष्ठ, चित्र और स्वर्णादि वर्णके मुनभेका काम बहुत अच्छा है। अनेकोंके समस्त द्वारों पर पोतन या तबिका मुनभेका चढ़ा है। मन्दिरोंके कारनिघमें बहुतसी पतली घण्टियां लटकाती हैं। कुछ जारसे जवा चलने पर सब घण्टियां टन टन वज्रते प्रति मधुर गच्छ होने लगता है। इन मन्दिरोंमें कईके द्वारोंपर प्रभारके सिंहादिकी मूर्ति अथवा और स्थापित हैं।

अनेक सरदारोंने आजकल गहरमें सुन्दर सुन्दर पटालिका बनवा शोभा बढ़ायी है।

इस नगरमें एक प्रकार दूसरे मन्दिर भी देख पड़ते, जो स्तम्भपर गुम्बज रख बने हैं। इन अंशिकी मन्दिर विशेष काष्ठकार्य न रहते भी देखनेमें बहुत परिष्कार और परिच्छद हैं। पूर्वोक्त तलेजु मन्दिर देखनेमें ब्रह्मदेशीय मन्दिरसे मिलता और

भूतकर खानेसे इसकी मींगी बहुत अच्छी लगती है।

काञ्चकी ककड़ो साब, कुछ कुछ कड़ी और दानेदार होती है। मध्यदेशवासी इसे मन्दूक तथा नाय बमानेमें लगाते हैं।

काञ्जत (सं० पु०) क्षुपविशेष, एक भाड़। महाराष्ट्र देशमें इसे 'जावी' कहते हैं। यह मधुर, उष्ण, लघु, धातुलक्षिकर और वात, कफ, गुल्मोदर, ज्वर, क्षामि, त्रण्य, अग्निमान्द्य, कुष्ठ, खेतकुष्ठ, संपहवी और शर्मा-नायक होता है।

काञ्जभोज (हिं० वि०) देखाज, कार्यमें न जानेवाला।

काञ्ज (सं० स्त्री०) काञ्चलवय, सींचर नील।

काञ्चन (सं० पु० स्त्री०) काञ्चते दीप्यते, कचि-क्षु।

१ स्वर्ण, सोना। २ पुत्रागपुष्य, सुलतानी चम्पा।

३ पद्मकेशर, कंबलकी धल। ४ धन, दीक्षत।

५ नागकेशरका पुष्य। ६ दीप्ति, चमक। ७ बन्धन,

बंधाव। ८ उदुम्बर, गुल्तर। ९ धूसूर, धवूरा।

१० सम्पत्ति, जायदाद। ११ पुरुषरा वंशीय भीमके

एक पुत्र।

"भीमन्तु विजयसाय काचनो चोचबधवा।" (भागवत ८।१।११)

१२ पद्मम बुद्ध। १३ नारायणके एक पुत्र।

१४ धनक्षय-विजय नामक ग्रन्थके प्रणेता। १५ वृक्ष-

विशेष, कचनारका पेड़। इसका पुष्य पीत, रक्त और

खेत भेदसे त्रिविध है। रक्त पुष्यका संस्कृत पर्याय—

रक्तपुष्य, कविदार, युग्मपत्र एवं कुण्डल और खेतका

पर्याय—काञ्चनाल, कर्बुदार तथा पाकारि है। भाय-

प्रकाशके मतसे यह गीतल, घाँही, कपाय, ज्ञेपापित्त,

क्षामि, कुष्ठ, गुदभ्रंश तथा गण्डमाला रोगनाशक

होता है। १६ हरिताल।

काञ्चनक (सं० स्त्री०) काञ्चन संज्ञायां कन्।

१ हरिताल। २ धान्यविशेष, एक धान। ३ काञ्चन

वृक्ष, कचनार।

काञ्चनकदली (सं० स्त्री०) काञ्चनवर्णा कदली, मध्य-

पदनीपी कर्मधा०। १ चम्पा केला। २ कदली-

विशेष, एक केला।

काञ्चनकन्दर (सं० पु०) काञ्चनस्य कन्दरः, इ-तत्।

स्वर्णकी खनि, सोनेकी खान।

काञ्चनकारिणी (सं० स्त्री०) काञ्चनं बहुमूल्यं धन्यं करोति, काञ्चन-क-णिनि-ङोप्। शतमूली, सतावर।

काञ्चनचोरी (सं० स्त्री०) काञ्चनमिव चौरमस्याः,

बहुमौ०। १ स्वर्णचौरिणी क्षुप, एक प्रकारकी खिरनी।

२ चौरिणी, खिरनी। ३ यथतिष्ठा, एक घूटो। इसका

दुग्ध पीत और पत्र हलहत् होता है। ४ कडुहट, किसी

किंसाकी गेरु।

काञ्चनगिरि (सं० पु०) काञ्चनमयो गिरिः। १ सुमेरु-

पर्यंत। २ स्वर्णनिर्मित कृत्रिम पर्यंत, सोनेका बनाया

हुवा पहाड़। यह दान करनिके लिये बनता है।

काञ्चनगुडिका (सं० स्त्री०) चौर्यविशेष, एक देवा।

त्रिफला प्रत्येक एक एक तोलेके हिसाबसे ३ तोला,

त्रिकटु प्रत्येक दो दो तोलेके हिसाबसे ६ तोला,

रक्तकाञ्चन (खाल कचनार) की छाल १२ तोला और

सबके बराबर गुग्गुलुछाल गौली बमानेसे यह चौर्य

प्रस्तुत होता है। इसके सेवनसे गण्डमाला और

गल्लगण्ड रोग दब जाता है। (रघवचर)

काञ्चनगौरिक (सं० स्त्री०) स्वर्णगौरिक धातु, सोना

मिट्टी।

काञ्चनचक्र (सं० स्त्री०) बौद्धशास्त्रके मतसे पृथिवीका

मध्यभाग (दिव्यावतान १८।८।८)

काञ्चनचय (सं० स्त्री०) काञ्चनस्य चयः रागिः, इ-तत्।

स्वर्णराशि, सोनेका ढेर।

काञ्चनजङ्घा—पूर्व हिमालयका एक अत्यन्त शृङ्ग। यह

सिक्किम और नेपालकी प्रांतीय सीमामें अक्षा० २०° ४२'

५' और देशा० ८८° ११' २६' पू० पर अवस्थित है।

धवलगिरिका छोड़ इतना बड़ा शृङ्ग जगत्में दूसरा

नहीं। यह २८१०६ फीट ऊंचा है। यह शृङ्ग

गोखामोखानसे ६५ कोस पूर्व रहते मानो नेपालकी

पूर्व सीमाकी बंधाता है। यह निरवच्छिन्न गुपाराहत

रहता है। सूर्योदयकाल दूरसे ठीक काञ्चनकी भांति

देख पड़ते यह शृङ्ग 'काञ्चनजङ्घा', 'काञ्चनलिङ्ग',

'काञ्चनशृङ्ग' और किसी किसी संस्कृत पुस्तकमें

'काञ्चनाद्रि' नामसे अभिहित है।

काञ्चनपत्रिका (सं० स्त्री०) छायासुपक्षी, कासोमूसर।

काञ्चनपत्नी—यद्वात प्राक्तके चौर्यस्य परगनेका एक

मन्दिरोंमें सर्वापेक्षा उच्च-संगता है। लौकिक कथनानुसार १५४८ ई० की राजा महेन्द्रमल्लने यह मन्दिर बनवाया था। अनेक मन्दिरोंके समुच्च उनके प्रतिष्ठाना प्राचीन राजाओंकी प्रस्तरमूर्तियाँ स्थापित हैं। यह मूर्तियाँ प्रायः मन्दिरकी चौर घुटने लचा हाथ जोड़े बैठी हैं। उनके मस्तक पर राजसम्मानसूचक धातुनिर्मित सर्वप्रथम परिशोभित है। फणापर एक छुट्ट पची बैठा है। राजभवनसे कुछ दूर एक मन्दिरमें एक बड़ा घण्टा लगा और दूसरे दो मन्दिरोंमें एक एक बड़ा दमामा रखा है। समस्त मन्दिरोंमें नानाविध हिन्दू देवदेवीकी मूर्तियाँ विद्यमान हैं।

राजमयनेसे २०० गज दूर अर्ध-युरोपीय प्रणालीसे निर्मित 'कोट' नामक ऋष्टिका है। जहाँ यह स्थान बना, वहाँ सार जङ्गलवाहादुरकी (१८४६ ई०) अभ्युदयसूक्तक भौषण नरहत्या हुई। राज्यके समस्त सम्भ्रान्त और समतागात्री लोग उस समय मर मिटे थे।

यहाँ कई छुट्ट मन्दिर हैं। वह एक ही प्रस्तर-उत्पत्तसे निर्मित हैं। उनकी देवमूर्तियाँ एक इंच प्राय दीर्घ हैं। अनेक मन्दिरोंमें मोर, हंस, छाग और महिषादिका बलिदान होता है।

नगरके पश्चादि पद्मगङ्गा और अपरिष्कार हैं। प्रत्येक पथके किनारे नावदान होता, जो कभी परिष्कार नहीं किया जाता। नगरका मंडा जमीनमें खाट डालनेके लिये खूब होता है। यह प्रायः चतुरस्र, अभ्यन्तर चक्राकार और पथका द्वार पद्मगङ्गा रहता है। बीचमें चौड़ा चबूतरा बनाते हैं।

उत्तरपूर्वके सिंहद्वार होकर नगरके निकले पर दक्षिण चौर 'श्रीगोपीश्वरी' नामक बृहत् दीर्घिका मिलती है। इसके चारों चौर प्राचीर देखित है। दीर्घिकाके मध्यस्थलमें एक मन्दिर है। इसके पश्चिम चौरपर १८४६गर्भित स्तु द्वारा मन्दिरमें प्रवेश करना पड़ता है। मन्दिरके दक्षिण एक बृहत् प्रस्तरके इस्त्री-पृष्ठ पर राजा प्रतापमल्लकी मूर्ति दृश्या है। यही राजा उस मन्दिर चौर दीर्घिकाके निर्माता थे। कुछ दक्षिण चौर प्राय बृहत्तर बड़ाइन (Cape lilac) वृक्षकी

कतारके बीचसे एक राह नगरसे मैदानमें जा मिली है। पहले इस मैदानमें जङ्गलवाहादुरकी तलवार लिये मूर्ति ३० फीट ऊँचे स्तम्भ पर रखी थी। ऐहिकी बह बाघमती नदीके तीर एक प्रासादमें स्थानाम्भरित हुई। इस मैदानकी पश्चिम चौर प्राचीन मेनापति भीमसेन यापाका 'दुबारा' नामक २५० फीट ऊँचा प्रस्तर-स्तम्भ है। इस स्तम्भकी गठनप्रणाली अति सुन्दर है। इन सेनापतिका दूसरा भी बृहदाकार स्तम्भ था, जो १८४२ ई० के भूमिकम्पमें भूमिघात हो गया। यह स्तम्भ १८५६ ई० की व्याघातसे टूटा था। १८६८ ई०की इसकी अच्छी मरम्मत हुई। इसके पश्चिममें एक गोलाकार सीढ़ी है। इन स्तम्भपर चढ़नेसे नगरकी शोभा अच्छी तरह देख पड़ती थी।

इससे कुछ दक्षिण पुरातन-चक्रागार है। मैदानके पूर्व पुराना तोपखाना है। यहाँ बाहुद तोप बगैरके तैयार करते हैं। आजकल नगरसे दक्षिण ४ मील दूर तुकु नामक नदीके तीर एक कारखाना खुला है। वहाँ तोपें बनायी जाती हैं।

इस पथमें पूर्वमुख घूम एक मील चमने पर ठाटपटली नामक स्थान मिलता है। यहाँ बाघमती तीर अवस्थित जङ्गलवाहादुरका महल है। इस महलके सामने बाघमतीका मनोहर चेतु उत्तरमें पंचम नामक स्थान आता है।

काठमाण्डूके रिसीडेण्टका स्थान नगरकी उत्तर चौर एक मील दूर है। जगह अच्छी है। लौकिक कथनानुसार भूतका उपद्रव रहनेसे रसीठण्टके वासके लिये यह स्थान मनोनीत हुआ है।

मन्त्री रहदीप सिंह नगरके उत्तर पूर्व प्राय एक बृहत् प्रासादमें रहते थे। काठमाण्डूमें १२००० पदातिमैत्र्य है। पुरानी बालकी २५० बन्दूकें रहती हैं। काठमाण्डू, लिसी विग्रेप ध्वजघाटके लिये प्रसिद्ध महलें।

काठमाण्डौ (सं० पु०) काठमाण्डौ प्रोत्तं पधीयने, काठमाण्डौ-गिनि। काठमाण्डौ-अधित शास्त्राध्यायी।

काठिन (सं० लो०) काठिनस्य भावः, काठिन-पण्ड। १ इदृता, कड़ापण। (पु०) २ खड्गं रत्नम्, खड्गका पेश।

गण्डधाम (कंसवा)। यह कलकत्से १४ कोस उत्तर अवस्थित है। यहां पूर्ववङ्ग रेलवेका एक ब्रह्मा है। पहले इस धाममें बहुसंख्यक पण्डित और विद्वान् चिकित्सक रहते थे। यहां जगन्नाथ श्रीमन्दिर, भोगमन्दिर तथा दोलमन्दिर बना और निच्यसेवाकी निर्वाहकी जगन्नाथटी नामक गांव लगा है। चैतन्य-चन्द्रादय नाटकके रचयिता पुरीगोस्वामीकी यह जगन्-भूमि है। यहां रथयात्रा बड़े समारोहसे होती थी।

काञ्चनपुर (सं० स्त्री०) कलिङ्ग राज्यका एक नगर।
(लेनहरिचंद्र १३११)

काञ्चनपुष्पक (सं० स्त्री०) काञ्चनमिव पीतं पुष्पं यस्य, काञ्चनपुष्प-कप। बाहुल्य-सूप, तगर। बाहुल्ये लोको। काञ्चनपुष्पिका (सं० स्त्री०) पीतजाती, पीला चमकी।

काञ्चनपुष्पो (सं० स्त्री०) काञ्चनमिव पुष्पं यस्याः, स्त्री। गणिकारिका, धरनी।

काञ्चनप्रभ (सं० पुं०) १ ऐश्वर्यशील एक राजा। (त्रि०) २ स्वर्णकी भांति प्रभाविशिष्ट, सोनेकी तरह चमकनेवाला।

काञ्चनभू (सं० स्त्री०) काञ्चनमयी भू, मध्यपदलोपा कर्मधा०। १ स्वर्णमय स्थान, सोनेकी जगह। २ स्वर्णरेणु, सोनेका बुरादा।

काञ्चनभूया (सं० स्त्री०) स्वर्णगैरिक, सोनामाटी। काञ्चनमय (सं० त्रि०) काञ्चनस्य विकारः, काञ्चन-मयट्। मयट् चैतयीमांशुवामकाञ्चानमयोः। पा ११/१३१। स्वर्णनिर्मित, सोनेका बना हुआ।

काञ्चनमाचिक (सं० पुं०) स्वर्णमाचिक, सोनामाची। काञ्चनमाशा (सं० स्त्री०) १ भगीक राजाके पुत्र कुनासकी पत्नी। २ स्वर्णश्रेणी, सोनेका सड़। ३ काञ्चनवृक्षकी श्रेणी, कचनारकी कतार।

काञ्चनमोहनरस (सं० पुं०) रसविशेष, एक दवा। रससिन्दूर, ताम्रभक्ष्य एवं स्वर्णभक्ष्य समभाग भक्तं (मदार) तथा पत्नी (शूहर) के दुग्धमें दिन भर घोटनेसे यह रस प्रस्तुत होता है। गोक्षी एक रत्नीकी बनती है। काञ्चनमोहन रसके सेवनसे गुल्म रोग हारीय होता है। (रसवाचर)

काञ्चनरस (सं० स्त्री०) हरितालविशेष, किसी किष्कका हरताल। गोदन लोको।

काञ्चनवप्र (सं० पुं०) काञ्चनमयो वप्रः, मध्यपदलोपो कर्मधा०। १ स्वर्णनिर्मित प्राचीर, सोनेकी दीवार। २ सुमेरु पर्वतका सातुदेय।

काञ्चनवर्मा (सं० पुं०) एक प्राचीन राजा।
सिखवर्मा लोको।

काञ्चनशोषी (सं० पुं०) सृष्टय राजाके पुत्र।
(महाभारत, मानि २०-११)

काञ्चनसन्धि (सं० पुं०) काञ्चनवत् दुर्मध्यः सन्धिः। सृष्ट सन्धि, मज्जवृत्त सुलह।

काञ्चनसन्धिभ (सं० त्रि०) स्वर्णवत् सुन्दर, सोनेकी तरह चमकीला।

काञ्चनसूप (सं० पुं०) काञ्चन नामक हिदलधाम्य-साधित सूप, एक दवा। यह सरसोंके तेलमें कल्लार कर बनाया जाता है।

काञ्चना (सं० स्त्री०) मञ्जीरावृक्षकी राजधानी। इसका अपर नाम स्वर्णभूमि है।

काञ्चनाच (सं० पुं०) एक दानव। (हरिचं १००-१०) काञ्चनाधी (सं० स्त्री०) सरस्वती नदी।

काञ्चनाङ्ग (सं० त्रि०) काञ्चनवत् सुन्दरं भङ्गं यस्य, बहुव्री०। १ स्वर्णवत् सुन्दर भङ्गविशिष्ट, सोनेकी तरह चमकीले जिह्वाशा। (स्त्री०) २ स्वर्णनिर्मित भवयव, सोनेका बना हुआ वदन।

काञ्चनाभिधानसन्धि (सं० पुं०) काञ्चनसन्धि, दोनों तर्क बराबर शर्तों पर होनेवाली सुलह।

काञ्चनाभरस (सं० पुं०) रसविशेष, एक दवा। रस-सिन्दूर, सुक्ताभक्ष्य, लोह, अभ्रक, प्रवाल, हरीतकी, शीघ्र, मृगनाभि और मगःगिस्ता दो दो तोले जसमें घाटनेसे यह रस प्रस्तुत होता है। इसे विन्दुमात्र अनुपातके अनुसार सेवन करनेसे सर्वोपद्रवसंयुक्त मानरोग दूर जाते हैं। चय, काष्ठ और द्रवपित्त पर यह बड़ा गुण देखाता है। (रसवाचर) इहत् काञ्चनाभर रस धनानिका विधि यह है—स्वर्णभक्ष्य, रससिन्दूर, सुक्ताभक्ष्य, लोहभक्ष्य, अभ्रभक्ष्य, प्रवालभक्ष्य, वेक्ताभक्ष्य, शीघ्र, ताम्र, वङ्ग, कस्तूरी, श्वेत, लाति-

काठिन्य (सं० स्त्री०) कठिनस्य भावः, कठिन-पथञ् ।
१ कठिनता, कड़ापन । २ निष्ठुरता, बेरहमी ।

“काठिन्यं परोवाहं चक्रं कर्मकृतमपि ।”

(राजतरङ्गिणी ५४७)

काठिन्यफल (सं० पु०) काठिन्यं फले यस्य, बहुव्री० ।
कठिन्यवृक्ष, कैशिका पेड़ ।

काठियावाड़ (सौराष्ट्र) बम्बई प्रान्तका एक प्रायो-
द्वीप । यह अक्षां २०° ४१' एवं २३° ८' उ० और
देशां ६८° ५६' तथा ७२° २०' पू० के मध्य अवस्थित
है । काठियावाड़ गुजरातका पश्चिमांग है । यह प्रायो-
द्वीप २२० मील लम्बा और १६५ मील चौड़ा है ।
क्षेत्रफल कीर् २३४४५ वर्गमील होगा । लोकसंख्या
२५ लाखसे अधिक है । इसमें १२४५ वर्गमील भूमिपर
गायकवाड़ राज्य करते, १२८८ वर्ग मील अहमदा-
बाद जिल्लिके अधीन पड़ते, २० वर्गमील पोर्तगैज़
राज्यमें लगते और २०८८२ वर्गमील पर अग्यान्व
देशी राजा अपना प्रभुत्व रखते हैं । इन राजाओंके
राज्यकी एक एजेन्सी १८२२ई०में बनी । काठियावाड़
रेल्वेकी ४ प्रान्तमें विभक्त है—भालावाड़, डाला,
सौराठ और मोहेलवाड़ । इस एजेन्सीके अधीन राज्य
१८६३ ई० से ७ अंग्रेजोंमें विभक्त है । प्रथमके ८,
द्वितीयके ६, तृतीयके ८, चतुर्थके ८, पंचमके १६, षष्ठ-
के ३० और सप्तम अंग्रेजोंके ५ राज्य हैं ।

काठियावाड़ प्रायोज्ञेय वर्गाकार है । यह अरब
सागरमें कच्छ और गुजरात समुद्र तटके मध्य विद्य
मान है । इसके आकार प्रकारसे समझ पडता कि
पहले यह अग्निउद्गारण करनेवाले दीपाका एक
समूह था । उत्तरीय तटपर रानका उधसा जल और
पूर्वकी लवणाक्त भूमि है । ई० १३ वें और १४वें
शताब्दकी काठियांनी कच्छसे आयाय लिया
और १५ वें शताब्दकी इसे अधिकार किया ।

पर्वत शिखरश्रेणिके हैं । भालावाड़के पश्चिम ढांगा
और माण्डव तथा डालारके कुछ सुद्र पर्वतोंकी छोड़
इन देशका उत्तरीय विभाग खटा है । किन्तु दक्षिणमें
गोधम गौर पर्वत बराबर गिरनार तक चला गया है ।

भाड़र प्रधान नदी है । यह माण्डव पर्वतसे निकल

बरडामें नवी बन्दरके समीप समुद्रमें जा गिरी है ।
इसकी धाराका परिमाण ११० मील है । नदीके दोनों
ओर खेती होती है । दूसरी नदी आज, माकू, भोगाव
और शतरंजो हैं । शतरंजोका बन्ध दृश्य सुप्रसिद्ध है ।

इंसस्थान, भावनगर, सुन्दरी, बवलियाभी और
धोलैरा लवणाक्त जलके खात हैं ।

ज्यामण्डनके उत्तर-पूर्व कोणपर वेयत बन्दर है ।
पिराम, चांव, याल, डिक, वेयत और चाँक प्रधान
द्वीपमें गल्ल है । नव और भेडस छोटे छोटे भील हैं ।
दक्षिण-पश्चिम कोणपर खाराबोड़ नामक लवणा-
गार है । पारबन्दरका पत्थर अच्छा होता है । काठ
बहुमूल्य नहीं । नादियल और जंगली खजूर बहुत है ।
पहले काठियावाड़में सिंध सबल देख पड़ते थे, किन्तु
अब गौर वनके अतिरिक्त दूसरे स्थानमें नहीं मिलते ।
काठियावाड़का जलवायु प्रसन्नताकारक और स्वास्थ्य-
कर है । दक्षिण भागमें तप्त वायु अधिक चलता है ।
काठियावाड़में पिचप्रकोपसे खर आ जाता है । जूना-
गढ़ और राजकोटमें हठि अधिक होती है ।

पुर्वतन समय काठियावाड़में ताद्वर्णानि अपना
प्रभाव बहुत बढ़ाया था । जूनागढ़ और गिरनारके बीच
अग्रेजोंकी मिनासिपि (२६५-२११ पूर्व खृष्टाब्द)
मिलती है । द्वावोंने सारसोसटोस (Sarastost)
सम्भवतः सौराष्ट्रको छो निखा है । ऐसा होनेसे सीदीय
राजावोंने खृष्टपूर्वाब्द १८०-१४४की काठियावाड़
जीता था । चलेकसेन्दरके वणिक भी ई० १म तथा
२य शताब्दको इसमें परिचित थे । किन्तु उन्होंने जिन
स्थानोंके नाम लिखे, उनके मिलावनेमें पिचन् उत्तम
पड़े हैं ।

काठियावाड़का प्राचीन इतिहास बहुत कम
मिलता है । सम्भवतः क्रमागत सुयूर, युनानी और
क्षत्रय इनके अधिपति रहे । फिर गुप्तोंने मेनापतिव्या
दारा यहां छोड़े दिन राज्य किया । मेनापतिव्या
राजा को अपने प्रधानोंको वल्लभी नगरमें (भावनगर
से १८ मील दूर) रखा था । गुप्त साम्रज्यका पतन
होनेसे वल्लभी राजावोंने अपना अधिकार कच्छ तक
बढ़ाया और ४०० तथा ५२० ई० को काठियावाड़में

कोप और एतवानुक दो दो तोले छतकामारी तथा
क्षेत्रालके रस एवं अजाक्षीरमें तीस तीस दिन घोटते
हैं। मात्रा चार रत्ती है। यह रस भो बहुपानके
अनुसार सर्परोग दूर करता है।

काञ्चनार (सं० पु०) काञ्चनं तद्वर्णं ऋच्छति पुष्यः
काञ्चन-ऋ-पण्। रक्तकाञ्चनवृक्ष, सान्न कचनार।
यह कपाय, मंघाही, व्रणरोपण, दीपन और कफ,
वात तथा मूत्रकण्ठ नाशक होता है। (राज निषध्दु)
२ श्वेतकाञ्चन वृक्ष, सफेद कचनार।

काञ्चनारक (सं० पु०) काञ्चनार स्त्रायै कन्।

काचनार देखो।

काञ्चनारगुग्गुलु (सं० पु०) औषध विधेय, एक
दवा। कचनारकी छालका चूर्ण ५ पल, शण्ठी,
पीपल एवं मरिचका चूर्ण एक-एक पल, हरीतकी,
आमलकी तथा विभीतकका चूर्ण चार-चार तोला,
वरुणकी छालका चूर्ण २ तोला, गुडुत्त्वक्, पत्रक
(तेजपात) एवं एलाका चूर्ण एक एक तोला और
सब चूर्णके बराबर गुग्गुलु डाल एकत्र मर्दन करनेसे
यह औषध प्रसृत होता है। इसकी सेवनसे गण्डमाला,
गलगण्ड और पर्वदादि रोग नष्ट होता है। मात्रा
आध तोले तक है। (माधवकाश)

काञ्चमाल (सं० पु०) काञ्चनं काञ्चनवर्णं अस्ति,
काञ्चन-अल्-अण्। १ श्वेतकाञ्चन वृक्ष, सफेद कच-
नारका पेड़। २ चारम्ब वृक्ष, अमिलतास।

काञ्चमाह्वय (सं० पु०) काञ्चनं स्वर्णं आह्वयते स्वर्धते
स्वभासा इति श्रेयः काञ्चन-आ-ह्वे-क। १ नागक्षीर
वृक्ष। २ पद्मक्षीर।

काञ्चनिका (सं० घी०) गणिकारी पुष्पवृक्ष, अरनी।

काञ्चनी (सं० स्त्री०) कच्यते दीप्यते अनया, काचि-
स्युट्-ङीप्। १ हरिद्रा, हलदी। २ गौरीचमा।
३ स्वर्णक्षीरी, खिरनी। हिन्दीमें 'काञ्चनी' नर्तकी और
गायिकाको कहते हैं।

काञ्चनी—गोस्वामी सम्प्रदायविशेष। यह लोग नृत्य
गीत द्वारा जीविका निर्वाह करते और गैरिक वस्त्र
पहनते हैं। आचार-व्यवहार साधारण गौसाधियोंसे
मिसता है। आश्रमिक आनेसे यह विवाह कर सकते

हैं। मरने पर इनके शवको समाधि देते या नदीके
जलमें बहाते हैं।

काञ्चनीय (सं० द्वि०) स्वर्णजात, सोनेका बना हुआ।

काञ्चनीया (सं० स्त्री०) १ हरिताल। २ गौरीचमा।

काचि (सं० स्त्री०) काचि-इन्। १ रसना, करधनी।

२ दक्षिणात्यके द्राविड़ राज्यकी राजधानी। काचोत्तरेको।

काञ्चिक (सं० स्त्री०) काचि संभ्रायां कन्। काञ्चिक,
काञ्जी।

कांची (सं० स्त्री०) काचि-ङीप्। १ रसना, करधनी।

इसका संस्कृत पर्याय—मिखला, सप्तकी, रसना,
सारसन, काचि, कक्षा, कचरा, सप्तका, सारशन, रसन

और बंधन है। इन पर्यायोंमें किसी किसीके मता-

नुसार विभिन्नता रहती है। एक लड़वाली यष्टिकी

कांची कहते हैं। फिर षाठ लड़वाली मिखला,

सोसह लड़वाली रसना और पचोस लड़वाली करधनी

कहाय कहन्ताते हैं। २ द्राविड़ राज्यका राजधानी।

३ गुच्छा, घुंघची।

कांचीनगर (सं० स्त्री०) काचोत्तर देको।

कांचीपद (सं० स्त्री०) काञ्च्याः पदं स्थानम्, ६ तत्।

जघनदेश, नितम्ब, करधनी बांधने की जगह।

कांचीपुर—मन्द्राज प्रांतस्थ चैगलपट जिलेके कांची-

पुरम् तालुकका एक प्रसिद्ध नगर। यह अक्षा १२°

४८' ४५" उ० और देशान्तर ७८° ४५' पू० पर अव-

स्थित है। भूपरिमाण ५८५८ एकर है। यहां

न्यायालय, कारागार, चिकित्सालय और विद्यालय
विद्यमान हैं।

उपलक्ष—कांचीपुर अति प्राचीन नगर है। महा-
भारतमें उल्लेख मिलता है,

“अद्यत् पद्मनवान् प्रपञ्चान् मयसादविवान् स्थितान्।

मक्रतथाजगत् काञ्चीन् शर्वान् वैव पाशं तः” (महाभारत, भाद्रि, १०६, १३४)

अनेक महाकाव्योके मतसे महाभारतमें कांची

नामका उल्लेख रहते भी केवल छठी प्रमाण पर

निर्भर कर इसको महाभारतका समकालीन अति

प्राचीन नगर कह नहीं सकते। तामिल भाषाके

“कांचीपुरं स्वल्पपुराणं”में लिखा कि प्रसिद्ध श्रीहराज

कुलीचुङ्गने कांचीपुर नगर स्थापन किया था। तत्-

प्रभुत्व बनानेवाले मिरोंको नीचा देलाया। गुप्तनेना-
पति महारक यक्ष्मी राजप्रयोगके प्रतिष्ठाता थे। २य
ध्रुवसेनके समय (६३२—४० ई०) चीन-परिवाजक
हिउएन त्शिपन् यक्ष्मी (व-ल पी) और सोराष्ट्र
(सु-म-च) पाये। यह लिखते हैं, —“वहकि पधि
वर्धी मामान्य हैं। वह लिखना पढ़ना नहीं जानते,
किन्तु समुद्र निकट रहनेसे उन्हें लाभ है। यह व्यव-
साय और विनिमयमें लगे रहते हैं। उनकी संख्या
अधिक है। वह धनी हैं। बौद्ध परिव्राजकोंके चर्चक
विहार विद्यमान हैं।”

विदित नहीं यक्ष्मीका पतन कैसे हुआ। मन्नाथतः
सिन्धुमें मुसलमानोंने आकर दखे देवाया था। फिर
राजधानी बनहिलवाड उठ गयी (७४६-१२८८ ई०)।
उन समय अनेक सामन्त राजा बने। काठियावाड़के
पश्चिम जेठवामांशका वन बहुत बढ़ा था। ११८४ ई०की
मुसलमानोंने बनहिलवाड़ लूटपाट १२८८ई०की अपने
राज्यमें लाड़ा। बनहिलवाड़के राजाओंने भ्लातायोको
उत्तर काठियावाड़में बसाया था। गुहिल (पक्ष पूर्व
काठियावाड़में रहनेवाले) ११ वें शताब्दको उत्तरसे
मुसलमानोंके सामने दृष्टते पाये और अपने लिये
नये स्थान बनहिलवाड़के पतनसे जीत पाये। कच्छकी
राष्ट्र पश्चिममें जाड़ेजावे और काठियोंका प्रागमन
हुवा था। १०२६ ई० की मष्टमुद-गज्जन्धी द्वारा
दक्षिण काठियावाड़में सामनायकी लूट खसोट और
१८६ ई० की बनहिलवाड़का विजय काठियावाड़के
मुसलमानी आक्रमणोंकी प्रस्तावना था। १२२४ ई०की
काफूर यान् ने भीमनाथका मन्दिर तोड़ा। यह गुज-
रातके प्रथम मुसलमान राजा थे। उन्होंने ११८६ से
१५३५ ई० तक प्रभुताके भाग राज्य किया। १५०२
ई० की अकबरने गुजरात जीता था। काठियावाड़के
करदार अष्टमदनगरके राजाओंके नीचे रहे। उन्होंने
व्यवसाय बढ़ा मांगरोल, यथायान, ठिऊ, गंधे और
कच्चे मन्दरकी उत्पत्ति की।

कांठ १५०८ ई० की समुद्र तट पर पोर्तगोजों
का भय बढ़ा था। हुमायूँके भंटे आशरसे द्वार बहादुर
उज्जमे आ लिये। फिर पोर्तगोजोंकी एक कारखाना

बनानेके लिये उन्होंने पाचा दीयो। उन कारखानेकी
पोर्तगोजोंने किल्लेमें बंदल डाला। १५३० की उन्होंने
उनसे बहादुरके प्राप लिये थे। पाज भी ठिऊके दीप
और दुगमें पोर्तगोजोंका अधिकार है। १५०२ ई०की
अकबरके विजय करने पीछे दिल्लीसे राजप्रतिनिधि
था काठियावाड़ शासन करते थे। फिर उनके स्थान
पर महाराष्ट्र पाये। महाराष्ट्र १७०५ ई०की गुजरात
पक्षे और १७६० ई० तक पूर्ण रूपसे राजा बन
बैठे। फिर ५० वर्ष तक काठियावाड़में छोटी छोटी
कड़ाइयाँ छेते रहें। १८ वें शताब्दके पश्चिम भागमें
बड़ोदाके गायकवाड़ अपने और अपने प्रभु पेशवाके
लिये कर एकत्र करनेको प्रति वर्ष सेना भेजते थे।
पश्चिम और उत्तर गुजरातके राजा उनके अधीन थे।
१८०३ ई०की निर्बन राजाओंने बड़ोदाके रसीडख्खसे
प्रायेना की कि वह उनको रखा करते। राजा
अपना राज्य रूठ दृष्टिया सम्भोका देनेपर राजो थे।
१८०७ ई०की सन्धिसे अनुसार काठियावाड़के राजा
कर देते हैं। बंगरेज सरकार करका द्रव्या प्रवृत्त
करती और बड़ोदाको भरती है। १८२८ ई०के
सतारा-प्रादेशके अनुसार काठियावाड़में बंगरेजोंको
पेशवाका खल मिला था। पत्थर काटकर बना चुई
बाँहोंको गुफा और मन्दिर जूमागढ़में विद्यमान हैं।
गतरंजा पत्थर और गिरनार पर जैनोके मन्दिर
छड़े हैं। हुमलोमें खितने ही प्राचीन स्थानोंका
ध्वंसाशय देवते हैं।

काठियावाड़के वृष्टसे घादमी बन्धने और
अष्टमदनगरमें रहते हैं। समुद्र तटके मुसलमान
दक्षिण अफ्रीका तथा जेटान जाते हैं। लोगोंमें
सिन्धुओंकी संख्या अधिक है। भूमि दो प्रकारकी है—
नास और काली। जलमें उपज कम होता है।
फाली और उपजाव भूमिको 'कामपाच' कहते हैं।

भाड़र गदीकी स्थलमें मनुष्य और जिलियाके
पाव बहुत उत्तम स्थान है। यहाँ उत्तम फल और
गाक होता है। गन्धकी उपज अधिक है। पोषाणका
पान प्रसिद्ध है। भ्लातावाड़के उत्तरीय और पूर्वीय
प्राकर्म रुद्ध बहुत उपजाती है। जलसारे ज्वार,

पुत्र बदख़ी तोण्डीरके समय इसकी विशेष सम्यक् विहृत है। पाश्चात्य पुराविद् फार्गुसनने उक्तमत समर्थनकर लिखा है,—“पहले यह स्थान जंगलसे परिहृत था। उस समय यहां असभ्य कुदस्वर रहते थे। ई०११वें या १२वें शताब्द बदख़ी चक्रवर्तीने यह नगर पत्तन किया। (Fergusson's History of Indian and Eastern Architecture.)

उक्त उभय मत समीचीन नहीं समझ पड़ते। वास्तिक यह कांचीपुर अति प्राचीन नगर है। प्राचीन शिल्पलिपि और प्राचीन संस्कृत पुस्तक पढ़नेसे ज्ञान-यास उपलब्धि आती, कि चोस राजाओंके अभ्युदयसे बहुत पहले कांचीपुरमें दक्षिणापथके प्रबल पराक्रांति नृपतियोंकी राजधानी स्थापित हुई थी। आज-कल यह जैसा सुदूर नगर है, पूर्वकालकी वैसा न था। उस समय कांचीपुर एक विश्वीय जनपदमें विभक्त था। स्कन्दपुराणके कुमारिकाखण्डमें लिखा है—

“प्रासादां नवनवच काचीपुरे प्रकीर्तिभूम्।” (१० प०)

महाभारतके समय कांचीपुर सभ्रवतः कलिङ्गके क्षत्रिय राजाओंके अधीन था। उस समय भी यह स्थान द्राविड़ राज्यके अन्तर्गत न हुआ था। यही बात महाभारतमें द्राविड़ और कांचीके स्वतन्त्र सल्लेखसे अनुमित होती है। फिर दक्षिणापथके पाण्ड्य राजाओंने इसे अधिकार किया।

पाण्ड्य राजाओंके पीछे ही कांचीपुर पल्लव राजाओंके हाथ लगा। किष्कीसमय पल्लव राजाओंने द्राविड़ और दक्षिणापथका अधिकांश जीत इसी कांचीपुरमें राजधानी स्थापित की थी। बौद्ध और जैन धर्म प्रबल पड़ने भी तत्कालीन कांचीपुरकी पल्लवराज हिन्दू धर्मावलम्बी रहे। ख्रिष्टीय ४४वें और ५म शताब्दकी शिल्पलिपि उक्त विषयका साचा देती है। उक्त शिल्पलिपि पढ़नेसे समझ पड़ता, कि उस समय और उससे पहले कांचीपुरमें जैन धर्म भी विशेष प्रबल था। तत्कालीन पल्लव राजाओंने वेदज्ञ ब्राह्मणोंकी अनुशासन द्वारा जो ग्राम दिये, उन सकल स्थानोंमें ब्राह्मणोंके अभ्यवहित पूर्व जनोंके अधिकार रहे। सभ्रवतः हिन्दू राजाओंने जैनोंकी विकास उन स्थानोंमें

ब्राह्मणोंको रक्खा था। (Indian Antiquary, VIII, 281.)

बौद्ध्यय अनुमान ख्रिष्टीय ३य शताब्दकी काशीसे जा कांचीपुरमें रहे थे। पाण्ड्य राजाओंके समय यहां जैनधर्म प्रबल हो गया और जैन राजाओंने अधिकांश बौद्ध अधिवासियोंको भगा दिया। (Wilson's Mackenzie Collection, p. 40-41.)

शिल्पलिपिके अनुसार सिंहविष्णु ही कांचीपुरके प्रथम पल्लवराज थे, जो ख्रिष्टीय ४४वें शताब्दकी राजत्व कर गये। वह वैष्णव थे। अनेक लोग अनुमान करते, कि उन्हींके समय विष्णुकांचीके वरदराजस्वामी प्राविभूत हुये थे।

ख्रिष्टीय ६४ शताब्दकी पुलिकैरी (२४) ने एक-वार पल्लवराज पर आक्रमण किया। ५०० शकमें खोदित पुलिकैरीकी शिल्पलिपि पढ़नेसे समझते कि पल्लवराज उनसे चार कांचीपुरके प्राकारमें द्विप रहे थे।

“ब्रह्मनामकश्रीव्रतिस्यवरजस्यन्दमहावीरः।”

प्राकाराकरितप्रथापत्तनकथयः पल्लवामापरिभूम् ॥”

(५०० शके खोदित पत्थीन शिल्पलिपि।)

ख्रिष्टीय ७म शताब्दकी चीम-परिव्राजक ह्वेन-त्सुयाङ्ग कांचीपुर (कि-एन-चि-मु-लो) आये थे। उस समय यह द्राविड़ राज्यकी राजधानी था। विस्तृति प्रायः २॥ कोस रही। बौद्ध, निर्गम्य और हिन्दू तीन दल प्रबल थे। १०० बौद्ध सङ्घाराम और ८० देवमन्दिर रहे। कांचीपुर धर्मपाल बोधिसत्वका जन्मस्थान है। इसीसे बौद्ध इस स्थानको पुण्यभूमि समझते और नाना देशोंसे बौद्ध यात्री यहां आ पहुंचते थे।

अनेक लोगोंके अनुमानसे चीम-परिव्राजकके प्रागमकाल यहां बौद्धराज राजत्व करते थे। किन्तु यह बात ठीक नहीं। ख्रिष्टीय ७म शताब्दकी शिल्पलिपि पढ़नेसे समझ पड़ता कि उस समय भी कांचीपुरमें वैष्णव धर्मावलम्बी पल्लव राजाओंका राजत्व था।

पूर्वतन पल्लव राजाओंके वैष्णव होते भी ख्रिष्टीय ८म शताब्दकी शिल्पलिपिमें कांचीपुराधिप नरसिंह-वर्माने अपनेकी शंभु या महेन्द्रापासक लिखा है। सभ्रवतः उसी समय यहां शंभुधर्म प्रबल हुआ था।

चाजरा और गेहूँ अधिक होता है। लिमवडी और काठियावाड़के पूर्वीय समुद्र तटकी भूमिमें खाद छालना नहीं पड़ती। इनदी और मंग बहुत होती है। सींचके लिये कई तालाब बनाये गये हैं।

काठियावाड़में बोहो बहुत अच्छे होते हैं। गौरकी गाय भेमें बड़ी दूध देनेवाली हैं। मेड़का जन, रुई और अनाज बाहर भेजा जाता है।

गौरमें १५०० वर्गमीलका जंगल है। बांकाजि और पंचानमें जंगलके लिये भूमि निर्धारित की गई है। भावनगर, मोरवी, गोंडाल और सानावडारमें बबूल लगा है। भावनगरमें छोहारे और आमके बाग बनाये गये हैं।

काठियावाड़में पत्थर अच्छा होता है। प्रधान धातु लोहा है। पछले बरखा और खतभाजियामें लोहा मलाया जाता था। पौरवन्दरके निरुट की पत्थर निकलता, वह मकान बनानेके लिये सर्वत्रमें बहुत विक्रता है। नवानगरके पास काच्छकी खाड़ीमें अच्छा मोती निकलता है। लुब मोती भेराई और चांचके पास अनागढ़ और भावनगरमें भी मिलते हैं। मांगरोल और सीतमें कुछ लाल रंग का होता है।

काठियावाड़का देश धनी है। रुईका कपडा, चीनी और गुड़ बाहरसे मंगाते हैं। सड़के भी कई बना की गयी हैं। १८६५ ई० की यहाँ कोई सड़क न थी।

१८८० ई० की ट्रेगी राज्योंके ध्यसे यहाँ रेल चली। इन्वई-बड़ोदा-मध्यभारत-रेलवेकी क्रमनी १८८२ ई०की पहले पहल काठियावाड़में रेल ले गयी थी।

१८१४-१५ ई० को यहाँ बड़े बड़े कार्खी चूरे निकल पड़े थे। अर्योंके फसलको बड़ी हानि पहुँचायी। १८८१-१८८२ ई०को काठियावाड़में घोर दुर्भिक्ष पड़ा था।

१८२२ ई०से इन्वई गवर्नमेंण्टके पधोग पोलिटिकल एजण्ट काठियावाड़ शासन करने लगे। १८०३ ई०की उन्ने गवर्नरके एजण्टका पद मिला। यहाँ सेकड़ी सम्पत्ता लुते हैं।

काठो (हिं० स्त्री०) १ पर्यायविशेष, एक तरहका चीन। इसमें काठ लगता है। २ डीलडोल, टांचा। ३ दियामलायी। ४ काठका स्यान। (वि०) ५ काठियावाड़ सम्बन्धीय।

काठू (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पौदा। यह कूटसे मिलता है। हिमालयके पश्चिमी शीत स्थानमें इसकी छपि की जाती है। काठूका शाक भी बनता है।

काठेरणि (सं० पु०) एक ऋषि।

काठेरणीय (सं० ति०) काठेरणेरिदम्, काठेरणि-ऋ० काठेरणि ऋषि सम्बन्धीय।

काठों (हिं० पु०) धान्यविशेष, किसी किसम का धान। यह पञ्जाबमें उपजता है।

काठोड्स्वर (सं० पु०) काठडस्वरिका, कठगूलर।

काड (सं० पु० = Cod) मत्स्यविशेष, एक मछली। यह उत्तर-समुद्रमें रहता और न्युफाउण्डलैण्डके किनारे अधिक मिलता है। अमेरिकाके युनारख्यमें अटलाण्टिक महासागरके तीर भी एक प्रकारका 'काड' होता है। यह मत्स्य तीन वर्षमें बड़ कर पूरा निकलता है। इसका देर्य ६ फीट और परिमाण ६ से ८ सेर तक रहता है। काडका मांस खलकारक है। इसकी जलेजीका तेल (Cod liver oil) निर्वल मनुष्योंको खिलाते हैं।

काटना (हिं० स्त्री०) १ खींचना, निकालना। २ प्रकाश करना, देखाना। ३ चिखकारी करना, धिसबूटा बनाना। ४ ऋण लेना, कर्ज करना। ५ पकाना, उतारना, कानना।

काटा (हिं० पु०) ज्ञाय, जोशांदा, खनाली दुयी द्वा। काण (सं० पु०) कणति एक चक्षुर्निर्माणति, कण-चक्षुः। १ शाक, कोश। (वि०) २ एक चक्षुर्विग्रह, काना, जिसके एक ही चक्षु रहते।

काणकपोत (सं० पु०) कपोतभेद, एक कबूतर। यह कपाय, खादुनवण और गुद होता है। (सं०)

काणत्व (सं० स्त्री०) काण हीनंश भाव, कानापन। काणभाय (सं० पु०) विभाग, चार हिस्समें तोन रिस्सा।

काणभूति (सं० पु०) विद्याचक्षुषी एक यक्ष। यह कुबेरके एक अनुचर रहते। नाम सुप्रतीक था। सून-

ख्रिष्टीय ८म शताब्दको चीनराज कुसोचुङ्गने काञ्चीपुर अधिकार किया। तत्पुत्र चन्द्रगुप्तो चक्रवर्तीके समय काञ्चीपुर तोखीरमण्डलको राजधानी हुवा।

ख्रिष्टीय १०म शौर ११श शताब्दके मध्य चालुक्य राजावर्नि काञ्चीपुर सेनेको देष्टा की थी। विद्वन्मय कवि विरचित विक्रमादित्यपरित पुस्तक पढ़नेसे समझ पड़ता कि चालुक्यराज पाण्डवमहानि (१०४०-६१६०) चीनराजधानीको सर्वाधिको प्राक्रमण किया। वह युद्धमें जय पाते भी चीन राजावर्गको स्वयम्भूत लान सके। उनके आदेश-क्रमसे तत्पुत्र विक्रमादित्य चालुक्य कई बार काञ्चीपुर चड़े।

(विद्वन्मय विक्रमादित्यपरित १६१, ६६, २२-२८)

मालूम पड़ता कि उसी समय काञ्चीका कोई कोई प्रथम पञ्चव राजवर्गके भी अधिकारमें था। कारण गिल्यल्लिपि और विद्वन्मयका ग्रन्थ पढ़नेसे समझ पड़ता कि विक्रमादित्यके पुत्र विनयादित्यसे काञ्चीके तैराज्य पञ्चवकी विपुलवाहिनी भाक्तान्त और पर्यदस्त हुयी।

१००४ शककी एक गिल्यल्लिपिमें खोंदित है कि उस समय (ख्रिष्टीय १२य शताब्द) काकत्यराज रुद्रदेव काञ्चीपुर शासन करते थे। (Ind. Anti-Quary, XI. 19.)

१५य शताब्दके मध्यकाल उत्कलके केशरीवंशीय एक राजाने काञ्चीपुर लूटा था। फिर १४७७ ई०को बहमानी वंशीय सुसलमानराज सुहग्यदने काञ्चीपुर जीत अपना अधिकार-जमाया। इसी प्रकार यह कुछ काल बहमानियोंके शासनाधीन रहा। उसके पीछे विजयनगरके राजा नरसिंह रायने बहमानियोंके हाथसे इसे छोड़ाया। उन्होंने धीरवसन्त रायको काञ्चीपुरमें शासनकर्ताके पद पर बैठाया। नरसिंह रायके पुत्र ज्ञानदेव राय १५०० ई० को राष्ट्याभिपन्न हुये थे। वह १५१५ ई०को यहाँ पाये। उन्होंने काञ्चीपुरके विख्यात गतस्तम्भ धीर कई शिवमन्दिरका

संस्कार कराया था। १४६८ शकके खोंदित चनुयामन-पत्र पढ़नेसे समझते कि ज्ञानदेव रायने काञ्चीपुरके प्रसिद्ध वरदराज स्वामोके मन्दिर ध्यको ११ सो-रुपये धायके विगारा, तिहृष्य, कदाह, संप्रयोगान धीर गोविन्दवटी प्रभृति धनेक ग्राम प्रदान किये।

१६४४ ई० को विजयनगर यवन-कवलिज होंने पर काञ्चीपुर गोलकुण्डावाले सुसलमान राजाके हाथ लगा। कुछ दिन पीछे यह शरकदुरमें शामिल हुवा। १७५१ ई०को लार्ड क्लाइने फरासीसियोंके हाथसे काञ्चीपुर अधिकार किया था। किन्तु उसी वर्ष राजा साहबको छोड़ देना पड़ा। १७५७ ई०को फरासी-सियोंने यह स्थान प्राक्रमण कर प्राग नगाया थी। दूसरे वर्ष चंगरेजों सैन्य काञ्चीपुर छोड़ मन्दाजमें फरासीसियों पर चढ़ा। किन्तु फिर लौटकर फरासी-सियोंके श्वरोधसे इसे उद्धार किया। काञ्चीपुरसे शटर पुल्लनूर स्थानपर चंगरेजों और सुसलमानोंमें एक घोरतर युद्ध हुआ था। उनमें हैदराबदीने (१७६० ई०) जनरल वेलीके सैन्ययुद्धका केंद्र किया।

काञ्चीपुर एक प्राचीन महातीर्थ है। भारतवर्षकी जो सात पुण्यनगरी दर्शन करनेसे जीव चनायास सिद्ध पा सकता, उनमें इसका भी नाम मिलता है,—

“चयोथा मधु रा माया कामो काञ्ची चरलिता।

पुरी शाराश्रीके देव चरता विद्विदाधिका ॥”

तोडुनतन्त्रके मतसे यही तीर्थ विग्रहरूप महादेवका कटिदेग है,—

“तामिपुत्री मङ्गलानि चयोथापुरी चलिता।

काञ्चीवेरु कोटीदेगि शौरहं पंडदेगि ॥”

(तोडुनतन्त्र, २म उद्गाह)

केचन तीर्थ ही नहीं, कांचो महापीठस्थान है। हृदयचित्तत्वके मतसे यहाँ काकशकांची देवो विराजतो है,—

“काया कन हृदावीलादेवकायमिवाकनी ॥”

(हृदयचित्तत्व ४म पटल)।

काञ्चीपुर नगर दो भागमें विभक्त है—विष्णु-काञ्ची और शिवकाञ्ची। शिवकाञ्चीमें शिवमन्दिर धीर विष्णुकाञ्चीमें विष्णु मन्दिर अवस्थित है। इन

• चान्गुन चरनि पाचान् प्रराचिरीके मवठी ख्रिष्टीय ११म वा १२म शताब्दके मध्य इन्दीगुप्त चीनराजका राजवर्गका रखा। किन्तु शिवधारके प्रसिद्ध इन्द्रोचलाशाल नामक पुस्तक देखते ख्रिष्टीय ८म शताब्दकी यह वहाँ राज्य करते थे।

गिरा नामक किसी राजसके साथ इनका बन्धुत्व रहा। कुबेरने उसका साथ छोड़नेकी कहा। किन्तु यह बन्धुत्वके अनुरोधसे उसका साथ छोड़ न सके। इसीसे कुबेरके अविशाप वग इन्हें पिशाच धीनिमें उत्पन्न हो जायतम गाममें विन्याटयो पर कुछ दिन रहना पड़ा। फिर दीर्घजला नामक अपने भ्राताकी चेटा पर पुष्पदन्तके मुखसे इन्हें मर्यादेव कायत हृद्यत्-कथा सुनी और मात्स्ययानुके निकट उसे प्रकाश करने पर पिशाचयानिसे मुक्ति मिली। (ब्रह्मसंहिता-भाष्य)

काणा (सं० स्त्री०) १ काकोनी, एक जह्नी वृत्ती। २ काकिनो, घंघरी। ३ पिपली, पीपल।

काणाट (सं० त्रि०) कणाटस्य इदम, कणाट-पण् । १ यणाटप्रयोग (शास्त्र)। इसे वैज्ञानिक वा पौलक्य कहते हैं। कणाट स्त्री।

२ कणाट-सम्प्रयोग।

काणाटामादर—ब्रह्माल प्रान्तके दुगली जिलेकी एक नदी। पहले यह दामोदर नदीकी एक शाखा थी। किन्तु आजकल इमने दामोदरकी छोड़ दिया है। इसीका निम्नो काणसोना कहलाता है।

काणामटी—ब्रह्मालके दुगली जिलेकी एक नदी। पहले यह दामोदरका प्रधान भाग थी। किन्तु अब सुदूरस्थित खेतीन चौर कुछ भी नहीं। वर्धमानके दक्षिण समोमा-वाटके पास वर्धमान दामोदरसे यह पृथक् हुए, फिर दक्षिणामिमुख जा शिवा नदीसे मिले और कुशी नदीके नामसे नरहरायके निकट भागीरथीमें गिरी है। इसी नदीमें दामोदरका लज वा पड़वता है।

काणक (सं० त्रि०) कण देसो उच्यते । १ कान्त, कर्मनीय, चाहने जायक । २ पाकान्त, दबाया हुआ । ३ पुर्ण, भरापूरा । काणक स्त्री।

काणक (सं० पु०) कणति शब्दापत्ते, कण उच्यते । ब्रह्मसंहिता-भाष्यो उच्यते । १८।

१ कायस, कोश । २ कुकूट, सुगमा । ३ हंसभेट । ४ कण्ट, एक पर्वत।

काणिक (सं० पु०) काणायाः अणत्वं पुमान्, काणा टक । १ एक अक्षुभोताका पुत्र कामी औरतका लड़का । २ बाकगायक, कोषे का बंधा। (त्रि०) २ काय, कामा।

काणिकविध (सं० स्त्री०) काणोयागा विषयो देयाः, काणोय-विधन । भोरिष्वायेषु ब्रह्मसंहिता विष्णु-सूक्तोः । पा ३। १। ३।

काणोयिका विषय वा देग । काणिक (सं० पु०) काणायाः अणत्वं पुमान्, काणा टक । अथायाः पा। ३। १। ३।

१ एकनेत्र स्त्रीका पुत्र, कामीका लड़का। २ फाक-गायक, कोषेका बंधा। (त्रि०) ३ काय, कामा। काणोमी (सं० स्त्री०) १ अविवाहिता कन्या, बेकाही लड़की। २ व्यभिचारिणी, छिनाम।

काणोमीमात (सं० पु०) काणोमीमाता यस्य, बहूमी० । १ अविवाहिता स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न पुत्र, बेकाही औरतका लड़का। २ व्यभिचारिणीका पुत्र, छिनामका लड़का।

काणकसमर्तनिक (सं० त्रि०) काणकसमर्तनेन निर्ह-सम्, काणकसमर्तन-ठक । निर्होऽप्युत्तरिष्णः । पा ३। १। ३।

काणक या शत्रु समर्तन द्वारा सन्पादित, जो कांटी या दुग्मर्तके कुचलनेसे हर्षित हो। काणकार (सं० त्रि०) काणकारस्य पचयथो विकारा वा, काणकार-पच । भाष्येभ्योऽभिहितम् । पा ३। १। ३।

काणकारके काणमे निर्मित, जो किसी वंटीसे पैड़की सकड़ीसे बना हो। काणोविधि (सं० पु०) काणोविधस्य ऋषेः अणत्वं पुमान्, काणोविध-इत् । काणोविध नामक ऋषिके पुत्र।

काण्ड (सं० पु० स्त्री०) कण्डि-उ दे० घंघरव । १ दण्ड, ऊड़ । २ नास, डाल । ३ वाण, तीर । ४ शरद्वय, रम-सर । ५ पत्र, घोड़ा । ६ कर्षणक जातीय वस्तुका एकव समायेग, डेर । ७ परिच्छेद, बाव । ८ अयसर, मोका । ९ प्रस्ताव । १० लल, पानी । ११ लयादिका गुण्य, घामका गुच्छा । १२ तद्वक्काण्ड, पैड़का तना । १३ निजसंग्यान, सुनी जगह । १४ श्राघा, चावलनी । १५ व्यापार, काम । १६ वर्ष । १७ हस्त, बोड़ी । १८ पट्टाठ हथ, एक पैड़ । १९ एक सन्धिके निकटसे पत्त सन्धि पर्यन्त दीर्घ अक्षि, कन्यो इच्छो ।

२० विभाग, महकमा । २१ गुप्तदान, पीयादा लजह । काण्डक (सं० पु०) वासुकककटी, एक ककड़ी।

काण्डकटुक (सं० पु०) काण्डे सताया कटुकः; ७-तत् ।

कारवेक्षक, करेला । कारवेष्ट देखी ।

काण्डकण्ट (सं० पु०) १ अणामां चूप, सटजीरका पेड़ । २ श्वेताणामां, सफेद सटजीरा ।

काण्डकण्टक, काण्डकण्ट देखी ।

काण्डकण्टक, काण्डकण्ट देखी ।

काण्डका (सं० स्त्री०) १ करालत्रिपुटा, मिथी किष्कका धान । २ वास्तुकोककटो, एक ककड़ी । ३ अलायु, औकी ।

काण्डकाण्डश (सं० पु०) काण्डस्य शरद्वक्षस्य, काण्डमिय काण्डं यस्य, काण्डकाण्ड-कप् । १ काम-दृष्य । २ शदरी हृद्य, बेरका पेड़ ।

काण्डकार (सं० स्त्री०) काण्डं स्वभ्यं किरति दीर्घतया उत्थिपति, काण्ड-क-भण् । १ शुषाक, सुपारी । (पु०) काण्डं वाणं करोति । २ वाणनिर्माता, तीर बनानेवाला ।

काण्डकीर, काण्डकार देखी ।

काण्डकीलक (सं० पु०) काण्डे स्वभ्ये कीलमिव यस्य, काण्डकील-कप् । लोभद्रुम, लोवका पेड़ ।

काण्डकृष्क (सं० पु०) एक कृष्ण ।

काण्डकृष्ट (सं० त्रि०) अथम, खराब ।

काण्डगुड़, काण्डगुड़ देखी ।

काण्डगुण्ड (सं० पु०) काण्डेन गुण्डेन गुण्डयति वेष्टयति भूमिम्, काण्डगुण्डि-भण् । १ गुण्डहृद्य, एक पेड़ । २ त्रिधारादृष्य, एक घास ।

काण्डगोबर (सं० पु०) काण्डस्य वाणस्य गोबर इव गोबरो यस्य, मध्यपदनीवी कर्मधा० । गाराव नामक एक लोहमय अस्त्र, लोहेका तीर ।

काण्डग्रह (सं० पु०) काण्डस्य विषयस्य प्रकारणस्य वा पदः ज्ञानम् । काण्डज्ञान, उपस्थित प्रकारण वा विषयसाधके अर्थका बोध ।

काण्डपहररहित (सं० त्रि०) काण्डग्रहेण रहितः चीनः इ-तत् । काण्डज्ञानशून्य, जो कोई भी बात समझता न हो ।

काण्डपारी (सं० पु०) काण्डे तदवाद्यायां धरति, काण्ड-धर-भिति । हथकी शाखापर विधरण करनी-

वाला पची, जो चिड़िया पेड़की डाल पर घूमती हो । काण्डविना (सं० स्त्री०) सर्वजातिभेद, किन्ही किष्कका सांप ।

काण्डज्ञान (सं० स्त्री०) काण्डस्य प्रकारणस्य विषयस्य वा ज्ञानम्, इ-तत् । १ विषयज्ञान, बातकी समझ । २ प्रकारणबोध, मिलसिलेका इलम । ३ साधारण ज्ञान, मामूली समझ ।

काण्डणी (सं० स्त्री०) काण्डेन स्वभ्येन नीयतेऽसौ, काण्ड नी क्तिप्-हीप् णत्वम् । घृष्मपर्णी जता, एक सेन ।

काण्डतिल (सं० पु०) काण्डे स्वभ्ये तिलः, ७-तत् । किरामतिल, चिरायता ।

काण्डतिलक (सं० पु०) काण्डतिल स्वार्थे कन् । चिरायता ।

काण्डधार (सं० पु०) काण्डं धारयति धन, काण्ड-धृ-णिच्-भच् । १ देगविशेष, एक मुल्ल । (त्रि०) स भूमिजनीयस्य, काण्डधार-भच् ।

विष्णुतपस्वितादिभ्यो इभ्योः वा भावात् ।

२ काण्डधार देगवासी, काण्डधार मुल्लका रचनेवाला ।

काण्डनी (सं० स्त्री०) १ रामदूती, एक धूल । २ नागवकीलता, पानकी बेल ।

काण्डनीन (सं० पु०) काण्डे स्वभ्ये नीलः कीटवत्त्वात् । कोध्र, कोध ।

काण्डपट (सं० पु०) काण्डे काष्ठादिनिर्मितस्वभ्ये स्थितः पटः, मध्यपदनीवी कर्मधा० । यवनिक्का, परदा । काण्डपटक, काण्डपट देखी ।

काण्डपतित (सं० पु०) नागराजविशेष, सर्बोके एक राजा ।

काण्डपात (सं० पु०) वाणका पतन वा गमन, तीरका गिराव या उड़ान ।

काण्डपुङ्गा (सं० स्त्री०) काण्डस्य वाणस्य पुङ्ग इव पुङ्गी यस्याः । शरपुङ्गा, सरकीका ।

काण्डपुष्प (सं० स्त्री०) काण्डात् स्वभ्यं व्याप्य पुष्पं यस्य, बहुव्री० । द्रोणपुष्प, चौना ।

काण्डपृष्ठ (सं० पु०) काण्डः वाणः पृष्ठे यस्य, बहुव्री० । १ अश्वजीव, व्याध, मिहारी । २ वैश्यापति । (स्त्री०)

भाधानमें विहित दक्षिणामेदका विकल्प कर्तव्य है, किन्तु समुच्चय नहीं। अनेक साधनकार्यमें ज्वभ्यादि कार्यका समुच्चय करना पड़ता है। सर्वत्र गार्हपत्य तथा आहवनीय कार्यमें प्रदक्षिण कर अपसव्य एवं अपसव्य कर प्रदक्षिण करते हैं। विहारकी उत्तरदिक् समुदाय कार्य किया जाता है। सुतरां ब्रह्म और यजमानका भासन विहारकी दक्षिणदिक् कर्तव्य है। भासनइत्येके मध्य प्रथमतः यजमान एक भासन पर वेदिके मध्य पटका अग्रभाग संस्थापन कर बैठे, फिर ब्रह्मकी बैठना चाहिये। व्यक्तिविशेषका आदेश न रहते अर्धयुकी यज्ञविहित कर्म सम्पादन करना कर्तव्य है, आदेश रहनेसे अन्य किया जाता है। हविःपात्रस्य द्रव्यसमूह जैसे पर पर संगृहीत होता, प्रदान कालमें वैसे ही वह सकल द्रव्य पूर्व पूर्व लेना चाहिये। प्रतापनादि अग्निसाध्य संस्कार गार्हपत्य अग्निमें सम्पादन करते हैं। समुदाय कार्यमें ही हविः प्रदान गार्हपत्य वा आहवनीयमें कर्तव्य है। संस्कार-शून्य घृतमात्रकी प्राण्य शब्दका अर्थ समझना चाहिये। घृत शब्दसे गव्यघृत लिया जाता है। द्रव्यविशेष कथित न रहनेसे सर्वत्र ही घृतद्वारा होम कर्तव्य है, किन्तु विशेष द्रव्यका विधान होनेसे उसी द्रव्य द्वारा होम करते हैं। चालाससे * वहिःस्य पुरीष ग्रहण करना चाहिये। पृथक् आदेश न रहते आहवनीय यज्ञमें ही समुदाय याग कर्तव्य है। किन्तु आदेशकी विभिन्नता भाते आदेशानुसार याग करना पड़ता है। ऐसा आदेश न होने एक वार मात्र गृहीत द्रव्य द्वारा होम करते हैं। आदेश रहनेसे आदेशानुसार किया जाता है। ८म कण्डिकामें—सकल स्थल पर श्रोत्रि वा यव हविःरूप कल्पना करते हैं। उभयके निधानस्थल पर विधानानुसार कहीं पड़ले यव पीछे श्रोत्रि और कहीं पड़ले श्रोत्रि पीछे यव देना चाहिये। किन्तु आपस्तम्बके मतसे सर्वदा केवल श्रोत्रि प्राण्य है। द्विविध ग्रहणका विधान रहनेसे प्रथम वार पुरोडाश चरुके मध्यदेशसे वक्रभावमें एक चक्रु-

परिमित ग्रहण है। द्वितीय वार हविःके पूर्वभागसे ऐसे ही नियममें ग्रहण करना पड़ता है। जमदग्नि प्रभृति पर्व समूहमें तीन वार हविः ग्रहण कर्तव्य है। उसमें प्रथम वार मध्यदेशसे, द्वितीय वार पूर्वभागसे और तृतीय वार पश्चात्भागसे लेते हैं। जहां प्राण्यभाग पत्नीसंयाज, उपासयाज और अग्निहोत्रादि होममें वार वार ग्रहणका विधि है, वहां जमदग्नि प्रभृतिका पांच वार ग्रहण किया जाता है। दधि दुग्धका भी भवदान स्त्रुव द्वारा चक्रुहपर्व परिमित ग्रहण करना पड़ता है। पुरोडाशादि हविःके भवदानसे प्रथम प्राण्य एक वार ले अन्य हविः ग्रहण करना चाहिये। शेष वार फिर प्राण्य लिया जाता है। खिट्टिकत् होममें हविर्ग्रहणके प्रधान भवदानकी अपेक्षा एक वार घटा देते हैं। उपस्ताका कार्य एक वार करते हैं। उपरि देशमें अग्निधारण दो वार कर्तव्य है। भवदेय और भवदान हविःका प्रत्यभिधारण करना पड़ता है। एक कपाल पुरोडाश सर्व स्थानमें आहुति देना चाहिये। “अग्नये अनुश्रीहि” की भांति वाक्यसे चतुर्थी विभक्तत्त्व देवतापद द्वारा अनुवचन करना पड़ता है। प्रायावणके पीछे जहां मैत्रायण्यका अनुसन्धान करते, वहां भी चतुर्थी विभक्तत्त्व देवतापद रखते हैं। किन्तु प्रायावणके पीछे जहां मैत्रायण्यका अनुसन्धान नहीं करना पड़ता, वहां द्वितीयान्त देवतापद प्रयोग करना चाहिये। मैत्रसम्बन्धी अनुवचनस्थलमें द्रव्यके उत्तर पठो होती है। किन्तु दो प्रयोगका सम्बन्ध रहनेसे पठो नहीं लगती। जहां ऐसे प्रयोगका विधान रहता कि नाम ग्रहणपूर्वक इन्हें यजन करो, वहां इन्हें पदके परिवर्तनमें उन्हीं उन्हीं नामोंका प्रयोग करना चाहिये। वपट्टकारके साथ आहुतिप्रदानस्थल पर वेदिके दक्षिण भागमें उत्तर-पूर्व वा ईशान सुख भवस्थित हो वपट्टकारके पीछे वा वपट्टकारके साथ आहुति देते हैं। इन सकल स्थलोंपर घृतमिथित हविः देना पड़ता है। उसका नियम है—प्रथम घृतआहुति, मध्यमें हविःकी आहुति और पीछे फिर घृतकी आहुति प्रदान करना चाहिये। भयवा घृत और हविः एकत्र ही प्रदान करना पड़ता है। १०म कण्डिकामें

* उत्तरवेदी प्रदत्तकरपादों निरी चीद कर बनाया हुआ वर्त।

—'बान्धयो पट्टकपाको भवति' इत्यादि स्वस्व पर
 सट्ट विमलि विधिसिद्धि बोधक समभी जायेगी। कर्तव्य
 कर्मके उपकरणका द्रव्यसमूह प्रथम कल्पना कर
 कर्मदेगस्यागमं स्थापित करना चाहिये। सर्वत्र ही
 उत्तर दिक्को कोम और पूर्व दिक्को प्रीवाविन्यासयुक्त
 चर्मका आस्तरण प्रदान करते हैं। हविःसमूहके मध्य
 जो सकल द्रव्य पद्यात् पठित है, वह देग कालके
 अनुसार पद्यात् ही प्रदान करना पड़ता है। ग्रहणादि
 कार्य पूर्वपठित रहनेसे पूर्व और परपठित रहनेसे
 पर ही ग्रहण करते हैं। ऐसे ही अधिश्रयणादि कार्य
 पूर्वपठित रहनेसे दक्षिण दिक् और परपठित रहनेसे
 उत्तर दिक् स्थापन करना चाहिये। स्थाली, स्तुव
 और घृत दक्षिण हस्तसे गृहीत होने पर वाम हस्त
 द्वारा वेदका उपग्रहण किया जाता है। किन्तु उपभृत्
 प्रभृति द्वितीय द्रव्यका ग्रहणविधि रहनेसे वेदका उप-
 ग्रहण नहीं करते। घृत व्यतीत भन्व द्रव्य द्वारा याग
 करते स्फेगनका उपग्रहण करना चाहिये। वेद वल्गादि
 द्वितीय द्रव्य न रहते कुश द्वारा उपग्रहण करना पड़ता
 है। स्तुक् ग्रहण करते समय स्तुक् और सुह्रु समय
 हस्त द्वारा से उपभृत्के उपरि देशमें स्थापन करते हैं।
 इसके स्थापनकालमें परस्पर अग्रसे शब्द निकलना
 उचित नहीं। विग्रजित् न्यायके अनुसार सकल स्वस्व
 पर फलरूप स्वर्ग कल्पित होता है। एक ही कार्यमें
 वेदाहित वैकल्पिक अङ्गसमूहके मध्य अधिकार
 अनुष्ठित होनेसे फल भी अधिक मिलता है। इसी
 प्रकार षड् दक्षिणापक्षकी अपेक्षा द्वादश और चतु-
 र्यंशति दक्षिणापक्षका फल अधिक है। यजमान
 सम्यन्थी दाग, अन्वारम्भ, वरण और व्रतप्रमाण ग्रहण
 करते हैं। अर्थात् दागविधि, सत्यवाक्य तथा अध-
 श्रयणादि व्रत यजमानका कर्तव्य है और अग्नि, खर,
 वेदि गृह प्रभृतिका परिमाण यजमानके हस्तानुसार
 ही स्थिर करना पड़ता है। प्रोक्षित यूप, क्षिप्र क्रय,
 अवहन गोवि, पिष्ट तण्डुल, दोहनकृत दुग्ध और दध
 इत्यादिसे विहित सकल कार्य समादन करना
 चाहिये। रौद्रमन्त्र, रक्षोदेवतमन्त्र, पशुदेवतमन्त्र
 और शैवमन्त्र उच्चारण कर उक्त देवतासम्यन्थी कार्य

सम्पादनपूर्वक पात्मस्पर्श तथा हस्त द्वारा जलक्षण
 करते हैं।

उक्त समस्त कार्यका उपयोगी विधान प्रथमाध्यायमें
 कथित है।

द्वितीय अध्यायमें ८ कण्डिका हैं। उसकी १५
 कण्डिकामें यह वृत्तान्त वर्णित है,—पौर्णमास यज्ञ-
 काल, उसमें अग्निका अग्न्याधान, अथर्वु और यज-
 मानका अधिकार, उसके विधानकी प्रवाही, दीक्षाके
 ग्रहणमें दोषित धर्मसमुदाय, दिवामेद्युन और मांस-
 परिवर्जन, शिखा पर्यन्त केशपरित्याग, व्रतकालानुसार
 सपत्नीक यजमानकी मद्य मांस लक्षण वर्जित् हवियान
 हविके साथ भोजनका विधि, सत्य वाक्यप्रयोग,
 रात्रिकालको पूर्वविहित विहारस्यागमं अग्निहोत्र
 होम, सार्यकालको भोजनकी इच्छा होनेसे होमके
 पीछे अधिक रात्रि न चढ़ते ही नीवार प्रभृति वन्य
 पोषिके भक्ष और वन्य हृत्के फलका भोजन, पाह-
 वनीय गृह और गार्हपत्य गृहमें शय्या व्यतीत अध-
 श्रयणविधि, ब्रह्मवर्ष आचरणविधान, (यह नियम
 सपत्नीक यजमानका ही समझना पड़ेगा) पौर्णमासकी
 अग्न्याधानादि कार्य समापन होनेसे दो दिन या एक
 दिनमें कार्यभेदका विधि (यह प्रातःकाल ही सम्पादन
 करना पड़ता है।) २५ कण्डिकामें अग्नि होत्रके पीछे
 ब्रह्मवर्ष विधि और उसका प्रकार है। ३५ कण्डिका-
 में ब्रह्मसदनसे पात्मस्पर्श पर्यन्त कर्मसमूहके अनुष्ठान,
 प्रकार और मन्त्रादिका कौतन है।

३५ अध्यायमें ८ कण्डिका हैं। उसमें होत्रसदनसे
 पौर्णमास समाप्ति पर्यन्त कर्तव्य कार्यसमूहका
 अनुष्ठानप्रकार और मन्त्रादि वर्णित है।

३६ अध्यायमें १५ कण्डिका हैं। उसकी १५, २५
 और ३५ कण्डिकामें द्योगके पूर्वविष्ट तथा पिष्ट-
 यज्ञके अनुष्ठानका प्रकार और मन्त्रादिका कथन है।
 द्रवा देवतायुक्तः अस्यातमत्ययान्त कर्म शब्द और वेद-
 बोधित याग शब्दका अर्थ है। समुदाय यज्ञ और
 अग्नीषोमीय पशुमें द्योगपौर्णमास यागधर्मका प्रति-
 देग है। वैश्वदेव, वरुचपाशास, साकमेध और शना-
 शीर नामक चतुः पर्वसय चातुर्मासके प्रथम वैश्वदेव-

काण्डोका प्राचीन नाम श्रीवधेपुर है। पूर्व-कालको सिंहलके राजा यहाँ राजत्व करते थे। १८१५ ई० को मयदा-महा-नेवरा नामक स्थानमें राज विक्रमराज सिंहके साथ अंगरेजोंका एक युद्ध हुआ। उस युद्धमें सिंहलके राजा पराजित और बन्दो हुये। फिर अंगरेजोंने काण्डो अधिकार किया था। तबसे काण्डो अंगरेजोंके अधिकारमें है।

यहाँ काण्डो जातिका वाम है। यह पहाड़ पर रहते हैं। सब बलवान्, स्थूलकाय और मादनी हैं। अधिकभाग प्राय बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। फिर भी अंगरेजोंके पाने पीके किसी किन्हीं ईसाई धर्म अवलम्बन किया है। पहले इनमें बहुविवाह यथेष्ट प्रचलित था। ५० भ्राता एक स्त्रीका पाणिग्रहण कर सकते थे। सन्तान उक्त भ्रातवोंमें ल्येडको ही पिता सम्बोधन करते थे। पुरुष अपनी मनोमत बहु स्त्री ग्रहण कर सकता था। ऐसा प्रायः पुरुषके प्रति स्त्रीका अनुराग होनेसे होता था। स्त्री यदि पतिको ले अपने पिच्छरुद्धमें रहे, तो अपर भ्राताको भाति पिच्छरुद्धपर अधिकार मिले। किन्तु पतिको अपने पूर्व विधयका पात्र्य छोड़ भ्राना पडता है। फिर यदि स्त्री जाकर स्वामीके रुद्धमें रहे, तो उसका पिच्छरुद्धपर कोई अधिकार नहीं; किन्तु पतिपर उसका कर्तव्य चलता है। १८५६ ई० से अंगरेज गवरनमेण्टःकाण्डो जातिकी कुप्रथा उठानेको चेष्टित हुयी है। आज भी स्त्रीपुरुष मत होनेसे परस्पर विवाह बन्धन हटान कर सकते हैं। किन्तु यदि विवाह-भङ्गके ८ मास मध्य स्त्रीके पुत्रादि हों, तो पूर्व पति उस पुत्रकी स्त्रिता और उसका भरण पोषण करता है। विवरण देखो।

काण्डोर (सं० पु०) काण्डः न्द्रम्बः अस्तस्य, कांड-ईरन् ।

काण्डोरादोःलोपो । वा ४।५।१।१ ।

१ अयामाग, लट्ठीरा । २ कारवल्लो सता, करेलेकी वन । इसका संस्कृत पर्याय—कांडकटक नासा-संवेदन, पट्ट, अग्रकांड, स्त्रीमयत्री, कारवली और सुकांडिका है। राजनिवृत्तके मतसे यह काट, तिल, सण्य, सारक और दुष्टवृक्ष, सूतापिप, गुल्म,

उदर, झोडा, शूल तथा मन्दग्नि विनायक होता है। कांडीरा (सं० स्त्री०) कांडीर-टाप् । १ मञ्जिडा, मंजीठ । २ कारवल्लक, करेला । ३ अमृतसूत्रा, एक वेल । कांडीरी (सं० स्त्री०) कांडीर-डीव । काणोर शकी । कांडिचु (सं० पु०) कांडि इक्षुरिव । १ श्रेत इक्षु, सफेद जख । भावप्रकाशके मतसे यह वातप्रकोपन होता है । २ कृष्ण इक्षु, काली जख । ३ काशहृषभेद, एक लम्बी घास । ४ कोकिनाचवृक्ष, तालमखानेका पेड़ ।

कांडिरी (सं० स्त्री०) कांडं वीणाकारं पुष्यं ईतं प्राप्नोति, कांड-ईर-अण्-ह्रीव् । नागदन्तो वृक्ष । नागदन्तो देखो । कांडिरुहा (सं० स्त्री०) कांडि रोहित, कांडि-रुह-क-टाप् । कटकी, कुटकी ।

कांडोल (सं० पु०) कांडोल स्वार्थे षण् । १ वांसका टीकरा । २ वट्ट, जट ।

काराय (सं० पु०) कारावस्य अपत्यं पुमान्, काराय-अण् । १ कराव ऋषिके पुत्र । २ कराववंशीयके छात्र । ३ यज्ञवेदकी एक गाथा । ४ करावहृष्ट सामवेद । (त्रि०) ५ करावसम्बन्धीय ।

कारावक (सं० स्त्री०) कारावेन दृष्टं साम, काराव-बुञ् । कारावहृष्ट सामविशेष ।

कारावगाखी (सं० पु०) वेदकी कारावगाथाका अनुयायी ।

कारावायन (सं० पु०) काराव-अण्-फक् । १ काराव-वंशीय वेदीक्ष प्राचीन ऋषि । २ श्रौत और शृङ्गध्वजके रचयिता एक ऋषि । ३ काराववंशीय राजा । किसी समय यह वंश भारतवर्षमें राजत्व रखता था। ब्रह्मायुड, विष्णु, मत्स्य तथा भागवत पुराणके मतसे— काराववंशीय महामति वसुदेवने यज्ञवंशीय श्रेय ऋषि देवभूमिको मार राज्य पालन किया ।

ब्रह्मायुडपुराणमें कहा है,—

“पार्थिवी वसुदेव्या बाल्यादानमिदं वपम् ।

देवभूमिं ततोऽप्यथ यदं तु मरिता श्वः ॥

भविष्यति सता राजा सथ कारावयनस्तु चः ।

भूमिनिषः सुतस्य वसुदेव्य भविष्यति ॥

भविता श्वदय सता तकापारायनो वयः ।

सुयमो तन् सुतस्यपि भविष्यति सता श्वः ॥

पर्वमें दर्शपूर्ण धर्मका कथन है। अपर तीन पर्वमें त्रिविध बधिः प्रष्टारादि औपदेशिक धर्मविधान है। चातुर्मास्य वरुणप्राचासादि पर्वत्रयमें वैश्वदेव पर्व-धर्मका विधान है। किन्तु मारुत्यादिमें ऐसा विधान नहीं। सौमिक स्नानकी प्रपंचा वरुण प्राचासिक स्नानमें धर्म हुआ करता है। ऐसा सन्देह उपस्थित होनेसे कि कहां करेंगे, लौकिकान्नि ही लेना चाहिये। दर्श और पूर्णमासमें आग्नेयादि छह प्रधान याग हैं। एक देवतायुक्त वेदत कर्मसमुदायमें आग्नेय धर्मका विधान है। अनेक देवतायुक्त कर्ममें अग्नियोमैय धर्मविधि है। द्रव्य सामान्यमें धर्मप्रवृत्ति है। देवता गुणके उपायत्व प्रवृत्तिकी साम्य भवस्थामें धर्मप्रवृत्ति है। द्रव्य देवता उभयका साम्य विरोध रहती द्रव्यकी समानतामें धर्म होता है, किन्तु देवताके सामान्यमें नहीं। गोमें दुग्धका धर्म होता है, किन्तु दधिका नहीं। इसी सिधे चातुर्मास्य प्रवृत्तिमें परि-वाहित श्राद्धा द्वारा पवित्र बन्धनके पीछे वस्त्र दूरीभूत और दोहन चतुष्टय प्राप्त होता है। पयमें दधिका धर्म नहीं, दुग्धका धर्म होता है। द्रव्य समूहमें स्थाना-पत्तिका धर्म रहता है। प्राकृत स्थानयुक्त द्रव्यका जी स्थानीय धर्मके साथ विरोध पड़ता, स्थानप्राप्त द्रव्यमें वद विरोध लग नहीं सकता। जिस विक्रतिये प्राकृत द्रव्य देवतास्थानमें अन्य द्रव्य देवतादिविहित होता, उस स्थानमें प्राकृत मन्त्रका ऊह नहीं जाता। विक्रतिये वचनविशेषसे प्राकृत धर्म नहीं होता। अर्थलोप और प्रयोजनलोपसे प्राकृत धर्म नहीं पाते। विक्रतिये विरोध हेतु प्राकृत धर्मसमूहकी प्रवृत्ति नहीं पड़ती। प्रवृत्तिसे लोपदायंरूपमें विहित है, पदायंकी अप्रवृत्तिसे विक्रतिये उसकी अप्रवृत्ति होती है। जहां पदायं-जात द्रव्य कहीं कर्मान्तरसाधनके सिधे विहित हुआ है, उसमें दूषरेका प्रभाव रहते भी पदायंजात द्रव्यका सद्भाव होता है। समुदाय द्रव्यका सद्यः समयविधि है। ४थं काण्डिकामें प्रजा, पय, अन्न और ययः कामादिका कार्यदासायण यज्ञ, मंत्र एवं पूर्णमासके देव तथा द्रव्यभेद वर्णनपूर्वक एतका विधान है। ५म काण्डिकामें उपाय यज्ञका अर्थकथन और उसमें

द्रव्यदेवतादिका वर्णन है। ६ छ काण्डिकामें त्रीह्रि और यवका पाककालमें प्रायणप नामक कर्म कर्तव्य है। शरत् वसन्त प्रवृत्ति काल, द्रव्यदेवतादिका मंत्रविधान और उसका प्रकार है। दर्शपूर्णमास यज्ञके पीछे अण-याणदिका यथापहृति कार्यविधि है, किन्तु इस यज्ञके पूर्व विहित नहीं। दर्शपूर्णमासका उत्सर्ग होनेपर अग्नि-होत्रमें आहुतिका विधि एवं प्रायणप विधानप्रकार है। दीक्षितका विशेष विधि है। संवत्स (एवं उपसत्कादि यज्ञमें प्रायणपविशेष कथा है। संवत्स (और सुती प्रवृत्तिमें द्रव्यविशेषका विधान है। यथामात्र प्रायणप-का विधानप्रकार है। ७म काण्डिकामें अग्नि, आग्नेय कर्म, काल, देवता और मंत्रका विधान प्रकारादि कथित है। ८म, ९म और १०म काण्डिकामें प्राधानके पङ्क कर्मसमूहका विधान एवं मंत्रादिकथन है। ११थ काण्डिकामें पुनर्वाार प्राधानसे धननाश प्रवृत्ति निमित्त-कथन है। उसका विधानप्रकार है। १२थ काण्डिकामें केवसमाव अग्निहोत्राह्न वासप्रका उपस्थानप्रकार है। १३थ, १४थ और १५थ काण्डिकामें अग्निहोत्रके काल, द्रव्य, देवता, विधान तथा मंत्रादि कामनाभेदानुसार भवस्था भेदयुक्त अग्निमें होमकी कर्तव्यता है। कामनाभेदके होममें द्रव्यभेदका विधि है। ऐसे ऐसे द्रव्यसमूहद्वारा प्रत्यह संवत्सर होम करने पर तदनुसार कामनासिद्धि होनेकी बात है। अग्निहोत्र होम एवं सर्वविध यज्ञमें गार्हपत्य आगारके दक्षिण द्वारसे प्रवेश-का विधि है। सर्वदा यज्ञमानकी स्त्रयं ही होम करना उचित है, कार्यवगतः यज्ञमान अयुक्त होते यज्ञमान-नियुक्त अथर्व्यं भी कर सकता है। किन्तु दर्श और पूर्णमासोंमें सर्वदा स्वयं होम करना चाहिये। प्रवासमें और सूतकादि अग्नौचमें विशेष नियम है।

५म अध्यायमें ११ काण्डिका है। उनके मध्य १म और २थ काण्डिकामें चातुर्मास्य ५ यज्ञान्तर्गत वैश्वदेव यागका पर्वकाल एवं उसके द्रव्य और देवताप्रयोगा-दिका वर्णन है। ३थ, ४थ और ५म काण्डिकामें वरुण-प्राचासका रूप और उसका पर्वकाल, द्रव्य, देवता एवं

• वैश्वदेव, सगरीर, वरुणप्राचा और वाग्नेय यज्ञचतुष्टय-मन्त्र अग्निहोत्र याग है। इस यज्ञचतुष्टयकी बली हवीं पर्व करती है।

पनायः इत्युच्यते इति: कारावायना विना:।
 पनायः प्रवतहागनायवादिभ्यः षट् च।
 इति पर्यायवाची तु प्रतीत्युक्तिः भवति।
 कारावायनं अर्थात् सुदृढं प्रवृत्तं कर्म।

मन्त्रपुराणमें भी लिखा है,—

“पनायः बहुद्वेषः प्रवृत्तः प्रवृत्तः” इति: ११
 द्वेषमिच्छायां चोदयति मन्त्राः इति:।
 भवति: इति: राजानः कारावायनाः इति: १२
 भूमिमित्रं सुदृढं प्रवृत्तं भवति:।
 नारायणः सुदृढं भवति: इति: १३
 सुदृढं तन् सुदृढं भवति: इति: १४
 इति: सुदृढं प्रवृत्तं चोदयति मन्त्राः इति: १५
 पनायः सुदृढं चोदयति मन्त्राः इति: १६
 इति: सुदृढं चोदयति मन्त्राः इति: १७

(भास्करपुराण २८१ पं०)

उक्त मन्त्रावली और मन्त्रपुराणके यथानुसार
 समझते कि बहुद्वेष प्रथम सुदृढराज देवभूमि के
 पनाय है। पीछे उन्हीं अपने प्रसुखी मार राज्य
 किया। उनके यंगीय राजा ‘सुदृढस्य’ नामसे भी
 प्रसिद्ध हुए। मन्त्रावली, मन्त्र और विष्णुपुराणके
 मतसे कारावायन राजाओंका राजत्वकाल सब मिला-
 कर ४५ वर्ष था। उसमें बहुद्वेषने ८, बहुद्वेषके पुत्र
 भूमिमित्र या भूमिमित्रने १४, भूमिमित्रके पुत्र
 नारायणने १२ और नारायणके पुत्र सुगर्भने १० वर्ष
 मात्र राज्यशासन किया। किन्तु श्रीमद्भागवतकी
 देखते कारावर्धनीय राजाओंका राज्य १४५ वर्ष चला
 था। यथा,—

“एवं वना द्वेषमिति कारावायनस्य भूमिमित्रम्।
 एवं भूमिमित्रे राज्यं बहुद्वेषी मन्त्रावली:। १८
 सुदृढस्य सुदृढस्य मन्त्रावली: सुदृढः।
 कारावर्धनीय इति मन्त्रिः पनायः षट् च।
 मन्त्रावली: सुदृढं प्रवृत्तं चोदयति मन्त्राः” इति: १८

(भास्कर, ११ पं० १ पं०)

पाठान्त्य पुत्रादिदोने नारावायन राजाओंका
 शासनकाल हम प्रकार स्पष्ट किया है,—

• भास्कर और विष्णुपुराणके मन्त्रों ‘द्वेषमिति’ नाम था।

बहुद्वेष	सुदृढपूर्वाद्य	०१	से	१२
भूमिमित्र	”	११	से	२२
नारायण	”	२२	से	३२
सुगर्भ	”	३२	से	४२

(R. Sewells Dynatics of Southern India, p.7)

सुगर्भकी मार उनके किसी चन्दाजातीय ब्राह्मण
 राज्य किया था।

कारावर्धनीय (सं० पु०) कारावर्धनीय पदार्थ पुमान्
 कारावर्धनीयः स्त्रियां ङीप् यज्ञीयः वरावर्धनी; कारावर्धनीः
 पुत्रः इ-तत्। कारावर्धनीय एक षट्।
 कारावर्धनीय (सं० द्वि०) कारावर्धनीय इदम्। कारावर्धनीः
 कारावर्धनीयोसे सम्बन्ध रखनेवाला।
 कारावर्धनीय (सं० पु०) कारावर्धनीय पदार्थ पुमान्, काराव-
 र्धनीय। १ कारावर्धनीय। २ कारावर्धनीय।
 ३ कारावर्धनीय।

कारावायन (सं० पु०) कारावर्धनीय।

मन्त्रावली: पनायः ११।

कारावर्धनीयः।

काव (सं० पद्य०) कुक्षितं पतति पतनेन, कु-पत
 क्षिप् को: का-देशः। तिरस्कार, फटकार।
 “यन्मन्त्रैर्नयेन दुःखः वदति वाङ्मनः। (भास्कर १। ०। ८)
 कात (सिं० पु०) १ पद्यादिगीय, एक ङीष्। २ समी
 भेदोंके बाल कतरि जाते हैं। २ सुरगीका काटा।
 कातना (सिं० कि०) काण्डसे सूत्र प्रयुक्त करना,
 सूत्रसे सूत्र बनाना। कातनेका यंत्र रडंटा कहाता है।
 कातन्त्र (सं० द्वि०) कु-ईयत् तन्त्रं पद्य, को: कादेशः।
 क्लृप्ताय व्याकरण। शर्मन्वर्मा इत्येके सङ्गलनकर्ता ये।
 उद्यत् कथासारने इद्य, व्याकरणके सङ्गलन सम्बन्धपर
 लिखा है,—एक समय कारावर्धनीय शर्मन्वर्माके प्रति-
 पत्न्युद्यत् कर दर्शन दिया। कुमारको ज्ञापने शर्मन्वर्माके
 मन्त्रों सरलतोडा पार्थिवभाष हो गया। फिर काराव-
 र्धनीय इत्ये सुवने ‘विद्योवर्धनीयः’ सूत्र उत्पारण

१ उद्यत् पद्युद्यत् नाम सङ्गलनकर्ता मन्त्री विष्णुवर्धनी था।
 किन्तु मन्त्रावली ‘विद्योव’, विष्णुवर्धनी ‘विद्योव’ और भास्करने
 ‘इत्योव’ लिखा है।

मन्त्रविधानादि है। ६४ कण्टिका में साकनेधका रूप और उसके पर्यंकात्, द्रव्य, देवता तथा मन्त्रादिका विधान है। ७म कण्टिका में द्विद्विषयक त्रौद्वितीय में इटिका कालविधान एवं तदीय द्रव्य, देवता और मन्त्रादिका कथन है। ८म एवं ९म कण्टिका में त्रिद्विष्टके काल, द्रव्य, देवता और मन्त्रादिका कथन है। १०म कण्टिका में वैयन्वक होमका कालविधान और द्रव्य, देवता एवं मन्त्रादिका नियम है। ११म कण्टिका में चातुर्मास्य यज्ञान्तर्मत पर्यविशेषात्मक सुनाचीरीयके काल, द्रव्य, देवता और मन्त्रादिका कथन है। सूत्रकादिमें भी चातुर्मास्यका पुनर्धार आरम्भ है। चातुर्मास्य त्रिविध है—ऐष्टिक, पाशुक और होमिक। इस त्रिविध चातुर्मास्यके द्रव्य, देवता और मन्त्रका विधानादि है। १२म एवं १३म कण्टिका में मित्रविन्देष्टि और उसके द्रव्य, देवता तथा मंत्रका विधान है।

६४ अध्याय में १० कण्टिका हैं। उनमें निरुद्ध, पशुमन्यायाग और उसके काल, द्रव्य, देवता तथा मंत्रका विधानादि कथित है।

७म अध्याय में ८ कण्टिका हैं। उनमें ज्योतिष्टोम यज्ञके काल, द्रव्य, देवता और मंत्रादिका विधान है। फिर ज्योतिष्टोमके पूर्वानुष्ठेय होमयज्ञके भी द्रव्य देवतादिका विधान है।

८म अध्याय में ८ कण्टिका हैं। उसकी १म एवं २म कण्टिका में प्रातियज्ञके, उसके द्रव्य, देवता और मंत्रादिका विधान है। ३म कण्टिका में औप-यस्यके काल, द्रव्य, देवता और मंत्रादिका विधान है। ४थ, ५म, ६ठ, ७म, ८म और ९म कण्टिका में ऐसा ही विधानादि कथित है।

९म अध्याय में १४ कण्टिका हैं। १म कण्टिका में सौत्यकर्म और उसके काल, द्रव्य, देवता एवं मंत्रका विधानादि है। अपर कण्टिकाओं में प्रातःसवनका द्रव्य, देवता और मंत्रविधानादि कथित है।

१०म अध्याय में ८ कण्टिका हैं। उसकी समुदाय कण्टिकाओं में प्रायः अध्याय शेष पर्यन्त मध्यन्दिन सवन और रात्रीय सवनके द्रव्य, देवता और मंत्रका विधान

है। अध्याय शेषमें ज्योतिष्टोम यागमें सोमोत्तर कर्तव्य अत्यन्तष्टोम, उकथ्य, पोङ्ग, वाजपेय, पतिमात्र, प्रातयाग और ज्योतिष्टोम यागमें सोमोत्तर कर्तव्य, सोमका ज्योतिष्टोमविधान और उसमें पादपर्यव-विधान प्रकार है।

११म अध्याय में १ही कण्टिका है। उसमें ज्योति-ष्टोमका अङ्ग ब्रह्मविधान है।

१२म अध्याय में ६ कण्टिका हैं। उनमें द्वादशाह यज्ञका विधान है। एकादशाह प्रभृति यज्ञमें ज्योति-ष्टोम धर्मका प्रतिदेश है। किसीके कथनानुसार उसमें अग्निष्टुत धर्मका प्रतिदेश वर्णित है। सत्ररूप और अहीनरूप भेदसे द्वादशाह दो प्रकारका है। इन उभय रूपोंका निरूपण दर्शन है। आद्यस्तमें प्रतिरात्र रहनेसे सत्र और केवल अस्तमें प्रतिरात्र रहनेसे अहीन होता है। सत्रयागमें यज्ञमान सह पोङ्ग अत्विकका कर्तृत्व रहनेसे सकलका यज्ञभागत्व है। सुतरां सकलको फलप्राप्तिका अधिकार होनेसे इस कार्यमें दक्षिणाका अभाव है। पोङ्ग अत्विकमें यज्ञमानत्वका प्रतिदेश रहनेसे सत्रदम व्यक्तिका दीक्षादि यज्ञमान धर्मनिर्देश है। अष्टपतिका अन्वा-रणविधि है। यज्ञसम्पादनके किये पात्रपङ्कपादि कार्यमें एकमात्र जगका ही कर्तृत्व है। तत्कर्तृक सम्पादित होनेपर सकलका सम्पादित होता है। गार्हपत्य और आरुचनीय अङ्गारप्राशन है। अध्याय-समाप्ति पर्यन्त तदीय द्रव्य, देवता, मंत्र, दीक्षा और कालका विधानादि निरूपित हुआ है।

१३म अध्याय में ८ कण्टिका हैं। उसकी प्रथम कण्टिका में गवामयन यज्ञका प्रकार और उसमें द्वादशाह यज्ञधर्मका प्रतिदेश है। २म, ३म और ४थ कण्टिका में द्वादशाह धर्मके द्रव्य, देवता और मंत्रका विधानादि वर्णित है।

१४म अध्याय में ३ कण्टिका हैं। उनमें ज्योति-ष्टोम संख्याभेद, वाजपेय यज्ञके काल, द्रव्य, देवता और मंत्रका विधानादि कथित है।

१५म अध्याय में १० कण्टिका हैं। समुदाय कण्टिका में रात्रिय यज्ञ, उसमें अत्रिय जातिका

किया था। शर्मवर्मा भी सुनते ही उसका परवर्ती सूत्र पढ़ने लगे। कार्तिकेयने इससे समुद्र को शर्मवर्माको उक्त व्याकरणप्रणयन करनेके लिए आदेश दिया और 'कातरं' तथा 'कलाप' नाम निर्देश किया। कलाप देखो। त्रिलोचनदासने 'कातरपञ्चिका' नाम्नी एक टीका बनाई है।

कातर (सं० पु०) कं जलं पातरति, क-धा-त्-अच्।
१ मत्स्यविशेष, एक मछली। यह मधुर, गुरु और त्रिदोषघ्न होता है। २ अन्नविषय।

२ एक ऋषि। (त्रि०) ३ व्याकुल, घबराया हुआ।
४ भीत, डरा हुआ। ५ विषय, साधार। ६ चक्षुष, छायांकी।

कातर (हिं० पु०) १ लवड़ा। (स्त्री०) २ कोरहका मछली। यह कोरहकी कमरमें लगता और चारो ओर घसा करता है। कोरह घेरनेवाला इसी पर बैठ कर बैल हांकाता है।

कातरता (सं० स्त्री०) कातरस्य भावः, कातर-तल्।
१ व्याकुलता, घबराहट। २ भीरुता, डरपोकपन।
कातराचार (सं० पु०) मृत्युका एक इस्तक, नाचकी एक घात।

कातरायण (सं० पु०) कातरस्य ऋषेरपत्यं पुमान्, कातर-फक्। कातर ऋषिके पुत्रादि।
कातररिक्त (सं० स्त्री०) कातरस्य उक्तिः, इ-तल्।
कातर व्यक्तिका वाक्य, डरपोककी बात।

कातर्यं (सं० स्त्री०) कातरस्य भावः, कातर-यच्।
कातरता, डरपोकपन।
कातल (सं० पु०) कातर एव रस्य लः। १ मत्स्य-विशेष, एक मछली। २ एक ऋषि।

कातलायन (सं० पु०) कातलस्य ऋषेरपत्यं पुमान्, कातल-फक्। १ कातल ऋषिके पुत्रादि। २ मत्स्य-विशेषका वधा।

काता (हिं० पु०) १ चाकू, कुरा। इससे बांस काटने या छीकते हैं। २ सूत, डोरा।
कातावारी (हिं० स्त्री०) जहाजकी एक काडी। यह पतली रेश्मी और जहाजमें बड़ी धरनेपर लगती है। इसी पर तख्ते जड़ते हैं।

काति (सं० स्त्री०) १ श्वाव, तारीफ़। (त्रि०)
२ भमिलापी, खाद्विद्यमन्त्र।

कातिक (हिं०) कार्तिक देखो।
कातिकी (हिं० स्त्री०) कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा, कार्तिक सुदी पुरनमासी, कातकी। कार्तिके देखो।

कातिव (सं० पु०) लिपिकार, लिखनेवाला।
कातिव (सं० पु०) इन्ता, मार डालनेवाला।
काती (हिं० स्त्री०) १ कैची, कतरनो। २ चाकू, छुरी। ३ छोटी तलवार।

कातीय (सं० त्रि०) कात्यायनस्य इदम्, कात्यायन-श्च फको वा लुक्। १ कात्यायन-सम्बन्धीय। (पु०)
२ कात्यायनके छात्र।

कातु (सं० पु०) कं जलं पतति सातत्येन गच्छति, क-धत-उन्। कूप, कूयां।

काटण (सं० स्त्री०) कु कुत्सितं सुद्रं वा टणं कीः कादेशः। १ रोहिषटण, एक श्यमूदर घास।

कातोली (सं० स्त्री०) कोहलसुरा, एक शराव। यव, माष आदिके पिष्टसे उत्पित सुरा 'कातोली' कहती है।

कात्कत (सं० त्रि०) अपमानित, वैरज्जत किया हुआ।
कात्त्रेय (सं० त्रि०) कत्त्रे रिदम्, कत्त्रि-ठक्ञ्।

कत्त्रेयविधौ ठक्ञ्। पा ३।१।२।३।

कत्त्रि-सम्बन्धीय, तीन छोटी चीजोंसे सम्बन्ध रखनेवाला।

कात्यक्य (सं० पु०) कात्य-यङुक् स्वायं क्वन्। अग्नि-विशेष। (निवृत्त ५३४)

कात्य (सं० पु०) कतस्य ऋषेर्गात्रापत्यम्, कत-यञ्।
कात्यायन ऋषि।

कात्यायन (सं० पु०) कतस्य गोत्रापत्यम्, कत-यञ्-फक्। १ अति प्राचीन ऋषिविशेष। यशुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक (१३।४।२२), सांख्यायन आरण्यक (८।१०), आश्वलायन श्रौतसूत्र (१२।१।१५), रामायण एवं पाणिनिकी षष्ठाध्यायी (४।१।१८)में भी इनका नाम मिलता है। यह कात्यायन गोत्र-प्रवर्तक समझ पड़ते हैं। आदिका नामपर, १०८।११ देखो।

२ धर्मशास्त्रकारक एक मुनि। पाठसे

अधिकार, वाजपेय यज्ञ करने पर राजसूयकी अनावश्यकता और राजसूयके द्रव्य, देवता एवं मंत्रका विधानादि वर्णित है।

१६थ अध्यायमें ८ कण्डिका हैं। उनसे १म कण्डिकामें पञ्चचिह्निक स्थलविशेषस्थित अग्नि-विधानका प्रकार है। अथनरुपाङ्ग विगिष्टान्निकी सोमाङ्गता कही है। उसमें इच्छानुसार अधिकार है। फिर भी केवलमात्र महाव्रत नामक स्तोत्रसाध्य सोमयागमें पञ्चचिह्निक स्थलका नियम है। अन्वत्र इच्छानुसार विकल्प है। २य, ३य और ४थ कण्डिकामें उखा (यज्ञादिका पात्रविशेष) निर्माण-प्रकार है। ५म कण्डिकामें अग्निचयनप्रकार एवं उसमें देवता और मंत्रादिका विधान है। ६ठ कण्डिकामें पशु अग्निविशेषका अथनप्रकार है। ७म कण्डिकामें तत्-सम्बन्धीय प्रायश्चित्त होमविधान है। ८म कण्डिकामें पूर्वोक्त अग्निचयनका प्रकार-भेद एवं उसके काल, द्रव्य, देवता और मंत्रादिका अथन है।

१७थ अध्यायमें १२ कण्डिका हैं। समुदाय कण्डिकामें प्रायश्चित्तात्म कर्मके परवर्ती कर्तव्यका विधान और उसका भेद, द्रव्य, देवता तथा मंत्रादि कथित है।

१८थ अध्यायमें ६ कण्डिका हैं। उनमें शत-रुद्रोय होम, उसके अङ्गकर्म, द्रव्य, देवता और मंत्रादिका विधान है। ६ठ कण्डिकाके शेषभागमें अग्निचयनकारी पुरुषका नियम कथित है।

१९थ अध्यायमें ० कण्डिका हैं। उनमें सौत्रा-मधि यागका विधान है। इस यज्ञमें धनाभिष्टायी ब्राह्मणका अधिकार है। सोमयज्ञकारी सान्निह्य ब्राह्मणोंकी सोमयज्ञके पीछे इसकी कर्तव्यता है। सोमातिप्लुत अर्थात् सुख, नासिका, कर्ण, गुह्य प्रभृति छिद्र द्वारा पीत सोम निकालनेवाले और सोमवामी अर्थात् पीत सोम सुखसे चमन करनेवालेका इस यज्ञमें अधिकार है। शत्रुकष्टक-स्वराज्यसे वृद्धिप्लुत राजाका पुनर्वाच राज्य प्राप्तिके लिये इसमें अधिकार है। पशुके अभावमें पशु पानेकी कामनासे वैश्वकी

भी इसमें अधिकार है। चार रात्रमें इस यज्ञके सम्पादनका विधि है। इस यज्ञकी अङ्गस्वरूप सुराप्रस्तुतप्रणाली और इस यज्ञका द्रव्य, देवता तथा मंत्रादि कथित है।

२०थ अध्यायमें ८ कण्डिका हैं। समस्त कण्डिकावर्तमें यज्ञका विधान है। इसमें अग्निपितृ चतुर्विध राजाका ही एकमात्र अधिकार है। ब्राह्मण और वैश्वकी अग्निधिकार है। तीन रात्रमें इसका सम्पादन-नियम है। इस यज्ञके फलसे समुदाय प्रभोष्टसिद्धिकी कथा और यज्ञका काल, द्रव्य, देवता तथा मंत्रादि कथित है।

२१थ अध्यायमें ८ कण्डिका हैं। उनसे १म कण्डिकामें नरमेघयज्ञका विधि है। सर्वजीवसे उत्पन्नकामी पुरुषका अधिकार है। पांच रात्रमें इसका सम्पादनविधि है। इसमें एकविंशति दीघा-नियम है। ब्राह्मण और चतुर्विधको अधिकार है। वैश्वकी अग्निधिकार है। इस यज्ञके द्रव्य, देवता और मंत्रादिका विधान विहित है। ३य कण्डिकामें सर्वविध अग्निहोमो वर्तितके सर्वमेघयज्ञका विधान है। दस रात्रमें उसका सम्पादनविधि है। ३य और ४थ कण्डिकामें मनुष्य, अश्व, गो, भेप और हाग पशु पशुका वधविधि है। प्रोषित वा मृत पिताका संवत्सर अतीत होनेसे पित्रमेघयज्ञका विधान और उसके नक्षत्रादि काल, द्रव्य, देवता तथा मंत्रका भी विधान वर्णित है।

२२थ अध्यायमें ११ कण्डिका हैं। उसकी प्रथम कण्डिकामें यज्ञवेदीय आधानादि, पित्रमेघ पर्यन्त कर्मविधि और सामवेदीय एकाहसाध्य यागविधि कथित है। इस सम्बन्धी कई परिभाषा भी लिखी हैं। यथा—विभिससंख्य कथित न रहनेसे यज्ञ अग्निहोमसंख्य द्रव्य करता है। धेनुमात्रदक्षिणा-देय भूनामिक एकाह और ज्योतिर्नामिक एकाहमें कोई संख्य कथा न जानेसे उभय अग्निहोमसंख्य होते हैं। गो और आशुः नामक एकाह उक्त-संख्य हैं। अग्निजित् और विश्वजित् अग्निहोमसंख्य हैं। ज्येष्ठपुत्रके विभागयोग्य द्रव्य एवं भूमि और

कई कात्यायनों का परिचय पाते हैं। उनमें विद्यामित्र-वंगीय, गोमिन्नपुत्र और मोमदत्तके पुत्र वररुचि कात्यायन ही प्रधान हैं। १म विद्यामित्र-वंगीय कात्यायन मुनिने 'कात्यायनश्रौतसूत्र', 'कातायन-श्रद्धासूत्र', और 'प्रतिहारसूत्र' रचनाया था। कात्यायन श्रौतसूत्रको कोई कोई 'कतीयश्रौतसूत्र' कहता है।

कात्यायन श्रौतसूत्रके १म अध्यायकी १म कण्डिकामें यह विषय लिखित है,—वेदवेदाङ्गाध्यायी गपत्रीक द्विज और रथकारका अग्निस्थापनादि कार्यमें अधिकार; षड्भौन, स्त्रीय, पतित और शूद्रका अधिकार, निषाद एवं सूत्रधरका गावेषुक नामक चरुमें अधिकार, सतनहनकारियोंका गर्दभयज्ञ नामक प्रायश्चित्तमें अधिकार, गावेषुक वह तथा सतनहनकारियोंके प्रायश्चित्तपद गर्दभयज्ञकी लौकिक-आग्निमें कर्तव्यता, गर्दभयज्ञमें कपालवर छतदान न कर भूमि ही पर छतदानका विधि, अग्निमें श्रद्धिकारक होम न कर जसमें करनेका विधान, अन्यान्य आधारका अग्निमें ही करनेका विधि, गर्दभके मिश्रदेशसे प्रायश्चित्तप्रदान; यज्ञसमूह, विहार-विषय, गाईपत्य, आश्वनीय और दक्षिणाम्निमें कर्तव्य वैदिक कर्म, आश्वत्थ अर्थात्—श्रद्धसम्यन्वीय लौकिक अग्निमें श्रुतिविहित कर्तव्य और सांस्याकके निषेधकी व्यवस्था। २य कण्डिकामें देवतागणके उद्देशसे द्रव्यत्यागरूप याग, यागलक्ष्य, समामस्या और पौर्णमासी आदि शब्दका अर्थबोधक एक त्याग, छमका प्राधान्य, इस प्रकारपठित अग्न्याधानसे ब्राह्मणोंकी दक्षिणा अर्पण कर्मसमूहकी पद्धता, इसीमकार प्रयाग तथा पूर्वाधार प्रभृति होमविधि, उषका अङ्गसमूह, होममें दण्डायमान हो वपटकार-प्रदान, यज्ञति शब्दका अर्थ, उपविष्ट हो साहाकार प्रदान, शुरुंति शब्दका अर्थ, समुदाय कर्ममें ब्राह्मणका पौरहितविधि, अग्निवैश्रवणपक्षे षषमिष्ट द्विभिर्भोजनमें निषेधके लिये पौरहितमें निषेध, फननाममें अमिकापी होते काम्यकर्मकी अवग्न कर्तव्यता, अग्निहोतादि नित्यकर्मकी अवग्न कर्तव्यता, न करनेपर लघुके होमका विधान, दोषित व्यक्तिका मत्तयाव्य,

भूमितकमें शयन तथा सङ्घवर्षादि नियमकी अवग्न कर्तव्यता, इच्छानुसार अनुष्ठान न करते रहनाइ एवं धनदानि प्रभृति कारणसे प्रायश्चित्तकी अवग्न कर्तव्यता, यथागति नित्य कर्मसमूहका प्रतिपालन, काम्य कर्मका सर्वाङ्गवर्षी प्रतिपालन और कारण रहते भी काम्यकर्मका अनुष्ठान न करते लघु वैदिक पदसमुदाय सम्पन्न करनेकी सामर्थ्य ही; तमो करनेका विधि। ३य कण्डिकामें—चरु, यजुः, साम और प्रेय भेदेमें चार प्रकार मन्त्र, षड्क प्रभृतिशा लक्ष्य, यजुके लिये परिमित पद उच्चारण करते पदसमूहकी आकाङ्क्षा शून्य हो, कर्मकालमें समी परिमित वाक्यका प्रयोगविधि, जहाँ पठित पदसमूह द्वारा यजुः आकाङ्क्षा शून्य न हो, यहाँ यथायोग्य पद अध्याहार कर चयना पूर्व पठितपद संयुक्त कर आकाङ्क्षाशून्य करनेका विधान, कर्मके पारम्भमें मन्त्र-प्रयोगविधि, यजुर्वेदोय मन्त्रसमूह ऐसे धारमें जिनमें मन्त्र सुन न सके और षड्ग्येद एवं प्रेय मन्त्र उषोःसर-से प्रयोग करनेका नियम, वहिर्मन्त्रका कुण्डलाति-मात्र अर्थ, सामिक ब्राह्मणकी होमश्रद्धादि और वसुधारा होम प्रभृतिमें संत्याका कोई नियम न रहते लिये परिमित संत्यामें कार्यसिद्धि हो वही पदण करनेका विधि, इधमयहिव्यनके लिये संमहन और यियम संत्या लक्षमुष्टिका वह नियम, (संमहनमें भेद, यथा—

१ उत्तरदिक्की वडिर्भागमें प्रथमभाग स्थापनपूर्वक धरमाकी भांति दृढ़ रूपसे बन्धनकर बाहर मूलदेशमें अग्नि गोपनकर रचना आदिसे। इसकी प्रयागमें-नहन कहते हैं। २ पूर्वदिक्की वडिर्भागमें प्रथमभाग स्थापनपूर्वक पक्षमेकी भांति बन्धनकर मूलदेशमें अग्नि द्विपानिमें उदगध संमहन होता है।) १८ या २१ आयके पनाम काष्ठवृक्षकी रथ कहते हैं। किन्तु पलागके समावर्तने बेशकाष्ठ, वैगळे समावर्तने गविकारी, गविकारीके समावर्तने वंग, वंगके समावर्तने यज्ञसुर और यज्ञसुरके समावर्तने अटिर काष्ठ पक्ष्य कर्मका विधि, तीन इच्छाकठ द्वारा परिधिरिमाचकी व्यवस्था, अग्निमन्वीयनमन्त्रकी हडिके अनुसार इच्छाकठकी

दास यतीत पदायंको सर्वस्वपदायं कहते हैं। किसी किसीके मतानुसार धारण भ्रमणादिके लिये भूमि चौर यज्याके लिये दास प्रायश्चक है; इन समय द्रव्योंको छोड़ सुवर्णादि अन्य समुदाय द्रव्य सर्वस्व है। पुरुषमेव यज्ञमें गर्भेदासके दानका विधान और भूमिके एकद्वयपरित्यागमें धारणकी सम्भावना है, इसलिये अपने मतमें भी समय द्रव्य व्यतीत अन्य समुदाय सर्वस्व होता है। किन्तु अथभय-खानविहित वस्तुश्चवि और दोषाका उपयोगी द्रव्यसमूह सर्वस्वके मध्य परिगणित नहीं। वस्तुतः यह सब अपेक्षा अधिकसंयुक्त द्रव्य ही सर्वस्व कहता और वही दक्षिणा माना जाता है। विश्वजित् यज्ञमें दादशरात्रि प्रभृति नियमकी विभिन्नता है। अभि-जित् सम्पन्न होनेपर विश्वजित्का अनुष्ठान किया जाता है अथवा अभिजित् और विश्वजित्का एकदा अनुष्ठान कर्तव्य है। किन्तु एक ही समय समय कार्य करने पर देवयजनस्थानका विशेष नियम है, उसमें दोषुग ऋत्विक्का कार्य बाह्यप्रयुक्त अन्यतम ऋत्विक् द्वारा अन्यत्र सम्पादन करना पड़ता है। किन्तु ऋषिर्देविक कर्मसमूह समयका एक रूप है। देवस्य अन्तर्देविक कर्ममें ही समयका विभिन्नता पड़ती है। समय कार्य एक ही समय करते भी अभिजित्का एक एक ऋत्विक् सम्पादन कर विश्वजित्का एक एक ऋत्विक् सम्पादन करते हैं। सर्वजित् नामक एकाष्ट महात्मन नामक सामन्तवसाध है। इन ऋत्विक् अन्तरदोषा, मत्ताका खान और तीन या छह उपसद् विहित है। अर्थात् संवत्सर दोषाके पीछे सप्तम दिवस न्याय करना और उसके अनन्तर सप्ताह पत्नीत होने पर यज्ञानुष्ठान कर तीन या छह उपसद् करना चाहिये। यह सब भी अग्निष्टोमसंज्ञ है। ऋत्विक् समस्त विषय रम ऋत्विक्कर्म कथित है।

२५ कर्षिकामें सर्वजित् यज्ञकी दक्षिणाका भेद और उसका विधानादि है। इस यज्ञकी उक्त्य-संख्या है। कथित अभिजित् ऋत्विक्का नामाक्षर है। यथा—अभिजित्का नाम व्योतिः, विश्वजित्का नाम विश्वव्योतिः और सर्वजित्का नाम सर्वव्योतिः

है। इस समुदायकी दक्षिणाका भेद विधानादि है। चतुर्थ उक्त्यसंख्याका चिरात्रसंज्ञित नाम है। सायस्क नामक छह यज्ञका विधान है। उसका प्रदर्शन उत्तरोत्तर किया है। यथा—प्रथम सायस्कमें स्वर्गकाम, पशुकाम एवं भ्रातृव्य-विष्टि पुरुषोंका अधिकार है। द्वितीय सायस्कमें दीर्घव्याधिगामि एवं प्रतिष्ठा चौर अन्धामित्वापियोंका अधिकार है। तृतीय नामक तृतीय सायस्कमें कर्महीन चार कर्म-निवृत्तिमार्यियोंका अधिकार है। विश्वजित्गामि नामक चतुर्थ सायस्कमें दक्षिणाभेद, सर्वस्व प्रतिनिधि-दक्षिणा विधान और सर्वस्व प्रतिनिधि द्रव्यसमूहका वर्णन है। यथा—धेनु, हय, सोर, धान्य, पक्षादि परिमाणोपयोगी स्वर्ण तथा रौप्य, दास, दासी, मिथुन उपकरणके साथ मङ्गलस, पश्यादि यानारोहण और गृहश्रय्या। अतएव सर्वस्व पद द्वारा इस समस्तका ही ग्रहण कर्तव्य है। श्येन नामक पञ्चम सायस्कमें वैरनिर्यातनकामका अधिकार, उसकी दक्षिणा, अनुष्ठान, मन्व और देवतादि कथन है। फिर एकत्रिक नामक षष्ठ सायस्कका विधान है। दीक्षा अपेक्षा मद्यः क्रियमापनाके लिये इनकी सायस्कसंज्ञा है। प्रात्यक्षोम नामक चतुर्विध एकाष्टयागका विधान है। तीन पुरुष पर्यन्त पतित सावित्रीककी प्रात्य कहते हैं। इस दासकी प्रातिके लिये इनका अनुष्ठान और लौकिक अग्निमें इनका होमविधि है। उनके मध्य प्रथम प्रात्यक्षोममें नृत्यगीतकारी प्रात्यका अधिकार है। द्वितीय उक्त्यसंख्यामें गित्वात्वात्तिका अधिकार है। तृतीयमें कर्मिणका अधिकार है। इनमें गृहपति बना कार्य सम्पादन करना पड़ता है। चतुर्थमें अन्वसन्तित्वादि स्वच्छका अधिकार है। अर्थात् ऐसे स्वच्छको गृहपति बना यह कार्य सम्पादन करना पड़ता है। इन ऋत्विक् कार्यका दीक्षा-विधानादि और प्रात्यक्षोम सम्पादनकारियोंके व्यवहारका विधि है। परिशेषकी ऋत्विक्संज्ञा, षोडश, ऋत्विक् प्रतिष्ठादि अभिष्टोम और श्रौय पवित्रता-मार्यी ऋत्विक् अग्निष्टोमसंज्ञ अग्निष्टु नामक एकाष्टयागकी कर्तव्यता है।

दृष्टिका नियम रहते भी पिष्टवद्विष्ट कार्यमें अग्नि-
सन्दीपनमन्त्रका ज्ञास प्राति दृष्टकाष्ठके ज्ञास-
विधिका अभाव, अग्निप्रणयनके लिये पूर्वोक्त द्रव्य
काष्ठको संख्या अपेक्षा अधिकसंख्यक द्रव्यकी
आवश्यकता, इ कापष्टयज्ञमें २८ हाथ परिमित
पूर्वोक्त काष्ठ द्वारा द्रव्य करनेका विधि और यह
द्रव्य तीन प्रकार संनहन नामक बन्धनविशेष द्वारा
बांधनेकी प्रणाली, अभावश्या और पौर्णमासीको
वेदकरण, स्वोक्त 'भाङ्' शब्दका अभिविधि तथा
प्रतिष्ठा अर्थ, सर्वविध कर्ममें अनुरुक्त होने भी गार्ह-
पत्यके अनुसार आइवनीय तथा दक्षिणाग्निमें उद्धारकी
आवश्यकता, किन्तु अन्य कार्यके लिये उद्धार होने पीछे
दूसरे आगन्तुक कार्यके लिये उद्धारकी अनावश्यकता,
(क्योंकि जिस कार्यके लिये उद्धार किया जाता,
वह समाप्त होति अग्नि फिर लौकिकत्वकी पट्ट चला
है। इसीसे दर्श प्रसृति कार्यमें उद्भूत अग्निसे अग्नि-
होत्र होम सम्पादित होता है। किन्तु लौकिक हो
जानेसे फिर इस अग्निमें आइवनादि कार्य कर नहीं
सकते।) जहाँ पौर्णमासादि कार्यमें पृथक् तंत्रोक्त बहु-
विध यज्ञका नियम होता, वहाँ प्रतियज्ञमें पृथक्
पृथक् अग्नि उद्धार कर सम्पादन करनेका नियम,
खदिरकाष्ठनिर्मित द्रव्यादि कहीं अनुक्त होते भी वहाँ
उसकी कथ्यता, सु३, अम०, नृ०, लुङ् प्रसृति होम-
साधन द्रव्यका लक्षण, यज्ञकार्यमें सबके अग्नि जानेकी
प्रणाली, और उत्तर व्यतीत पद्यविधान और उत्तर-
वेदिकाकार्यमें चात्वाल एवं उत्तरके अन्तरालका
पद्यनियम। ४थं कण्डिकामें—विहित द्रव्यका अभाव
होनेसे काम्यकर्मके आरम्भका निषेध, नित्यकार्य-
समूहमें प्रधान द्रव्यका अभाव होने भी प्रतिनिधि
द्रव्यसे उसके अनुष्ठानका विधि, काम्यकार्यमें समुदाय
अङ्ग संश्लेषित होनेसे कार्य आरम्भ करनेका विधि,
फिर भी आरम्भके पीछे किसी प्रधान द्रव्यका अभाव
होनेसे प्रतिनिधि द्रव्य द्वारा उसका समापन एवं
असमाप्त कार्यके त्यागका निषेध, नित्यकार्य आरम्भके
पक्षसे या पीछे प्रतिनिधि द्रव्यका आयोजन करती,
किन्तु काम्यकार्यकी अवस्यकत्व्यता न रहते

प्रतिनिधि द्रव्य द्वारा आरम्भ किया नहीं जाता ;
इतना ही उभयका भेदकथन एवं श्लोतिष्टोम दीक्षित-
गणके शरीर धारणार्थ पयःपान प्रसृति व्रतमें भी
प्रतिनिधि विधान है। इस प्रतिनिधिमें अनेक
विशेष नियम निर्दिष्ट हैं। द्रव्यके अभावमें तत्सदृश
अन्य द्रव्यकी कल्पना की जाती है। देवात् वह द्रव्य
भी नष्ट होनेसे उसकी भांति अन्य प्रतिनिधि न मिलते
प्रधान द्रव्यभातीय द्रव्य द्वारा प्रतिनिधि कल्पना करना
चाहिये। जैसे ब्रौह्मके अभावमें नीवार द्वारा कार्य
आरम्भ करते देवात् को नीवार नष्ट हो गया, तो
नीवार भातीय अन्य द्रव्यकी कल्पना न कर ब्रौह्मकी ही
कल्पना करना पड़ेगी। इसी प्रकार जहाँ क्षण्य
ब्रौह्मका अभाव होगा, वहाँ उसका प्रतिनिधि शक्य
ब्रौह्म माना जायेगा। किन्तु क्षण्य नीवारकी कल्पना
कर नहीं सकते। फिर जहाँ पुं वस्तुयुक्त गोके दुग्ध द्वारा
विधान है, वहाँ उससे न मिलनेसे स्त्रीवस्तुयुक्त गोका
दुग्ध प्रदान करना चाहिये। किन्तु पुं वस्तुयुक्त मेयो
प्रसृति का दुग्ध प्रदान करनेसे काम न चलेगा। इसी
प्रकार समुदाय द्रव्यका प्रतिनिधि विवेचना करना
उचित है। ५म कण्डिकामें श्रुतिपाठ, मन्त्रपाठ एवं
अर्थसिद्धिके क्रमात्सुसार पदार्थके अनुष्ठानका क्रम
है। जहाँ पाठक्रम और अर्थसिद्धिक्रम उभयका
विरोध आयेगा, वहाँ पाठक्रम अपेक्षा कर अर्थसिद्धि-
क्रम लिया जायेगा और जहाँ श्रुतिपाठ तथा मन्त्रपाठ
उभयका विरोध दिखायेगा, वहाँ श्रुतिपाठक्रम छोड़
मन्त्रपाठसे कार्य चलाया जायेगा। फिर बहु प्रधान
द्रव्यका एकत्र प्रयोग विधान रहते किसी प्रकारके क्रम-
विभागकी व्यवस्था न कर समुदायके प्रयोग करनेका
नियम है। ६ठ कण्डिकामें अवस्यकविधिः नष्ट
होनेसे अन्वहविः द्वारा कार्यसम्पादन, अन्वहविः देवता,
मन्त्र एवं प्रयाज अनुयाज ३ प्रसृति क्रियासमूहके
प्रतिनिधिका निषेध, दृष्टार्थ अवस्यक प्रसृति क्रिया-
समूहके प्रतिनिधिका विधान, किसी विहित वस्तुके

* आशुति प्रस्तावमें यहोत इतिहो अवनहविः उचते है।

† अद्वितीयको अग्रज और अनुग्रज कहते है।

५म कण्डिकामें अग्निष्टुक्के द्रव्य, देवता और अन्नविधानादिका वर्णन है। त्रिवृत्स्तोम नामक अग्निष्टोमसंस्थके चतुर्विध यज्ञका विधान है। उनके मध्य अग्निहस्त प्रातःसवन प्रथम है। उसका नाम द्रव्य यज्ञ है। स्वर्णादि अमिस्रायी किंवा ग्रामादि अमिस्रायीका उसमें अधिकार है। उसके द्रव्य, देवता और मंत्रका विधानादि है। बृहस्पतिसवस्त द्वितीय है। राजाके साथ ब्राह्मणका (धर्मस्थापक रूपसे अङ्गीकार किये जानेवाले ब्राह्मणका) उसमें अधिकार है। छतीयका नाम द्रुप है। यह अनेककी भांति किया जाता है। किन्तु भेद इतना ही है कि यह सव्य अनुष्ठेय नहीं होता। मातृकामनासे इसका अनुष्ठान करना पड़ता है।

६ष्ठ कण्डिकामें सर्वस्वार नामक चतुर्थ एकाह यज्ञ है। जीवनामिस्रायी और मृत्युकामनाकारी उभयका इसमें अधिकार है। सिद्धान्त इसकी दक्षिणा है। इस यज्ञके द्रव्य, देवता और मंत्रका विधानादि है। ऋत्विक् अपोहनोय नामक त्रिविध यज्ञका विधान है। उनमें प्रथमका नाम सर्वस्तोम है। द्वादशाहिक हृन्दीमंत्रयके मध्य उक्त्यसंस्थ उत्तम दिन द्रव्य पृथक् कर द्वितीय और छतीय ऋत्विक् अपोहनोय सम्पादन करना पड़ता है। वाचस्तोम चतुर्विध है। छान्दोग्यमें इनका विशेष विधि लिखा है। परिशीलको त्रिवृत्, पथदग्, सप्तदग्, एकविंश, त्रिग्व और त्रयस्त्रिंश नामक छह एकाह षष्ट्यस्तोम-विद्यया विधान कायित है।

७म कण्डिकामें उनके विधानप्रकार, मंत्र, देवता प्रभृतिका ब्यथन है। अन्नराधेय, पुनराधेय, अग्नि-होम, दग्धपोर्णमास, दाशाधय और अथयथ नामक प्रतिकर्ममें सोमयुक्त छह यज्ञ और उनका विधानादि कथित है। ८म कण्डिकामें मत्तदयस्तोमक पाँच यज्ञका विधान है। उनमें ग्रामामिस्रायी वार्षिकका उपहव्य नामक अग्निहस्त यज्ञविधान और मित्याभिग्य वार्षिकका भी इस यज्ञमें अधिकारविधि है। उसकी दक्षिणाका विधानादि है। दुर्गामिस्रायी वार्षिकका अन्नपेय एवं उसका विधान प्रकार और देवता तथा

मंत्रादिका विषय कथित है। ९म कण्डिकामें पशु-काम और वैश्वकामका वैश्वस्तोम है। उसका विधानादि है। उक्त्यसंस्थ तीव्रसृत् नामक यज्ञ है। तीव्रसृत्में सोमका प्रतिदेय रहते भी विषेय विधान है। उसमें सोमामिपूत खराण्यभृष्ट राजाका एवं दीर्घवराधिगान्ति, ग्राम, प्रजा और पशुकामना-कारीका अधिकार है तथा उसका विधानादि कथित है। १०म कण्डिकामें राज्यप्रायी अत्रियका राष्ट्र नामक यज्ञ है। उसका विधानादि कथा है। उक्त यज्ञकी अग्निष्टोमसंस्था है। ऋषभकी भांति ऐन्द्रपरियज्ञकी कतयत्रता है। अचादि प्रायी वार्षिका विराट् नामक यज्ञ है। ऐन्द्रपरियज्ञकी भांति आद्यन्तमें धाम्नेय पशुसंयुक्त कर इसकी भी कतयत्रता है। पुत्रार्थीका उपसद नामक एकाह है। उसका विधानादि कथा है। उक्त्यसंस्थ पुनस्तोम नामक एकाह है। उसमें प्रतिग्रह दोयगान्ति प्रायीका अधिकार है। उसका दक्षिणादि है। पशुकाम वार्षिका चतुष्टोम नामक और उद्भिद्वनमिद् नामक एकाहद्वय है। दग्ध-पोर्णमासकी भांति मिलित उभयकी फलसाधकता है। द्रुपयज्ञ और उसका विधानादि है। उद्भिद्वयज्ञके पीछे सभी दिनमें धर्ममास, एक मास प्रथवा संवत्सर पर्यन्त प्रत्यह द्रुप यज्ञका अनुष्ठानविधि है। उसका विधानादि है। पुत्राभिजातो वार्षिके अपयचित नामक दो यज्ञोंका विधान है। उनमें राजा वा विजातिका अधिकार है। उनका विधानादि है। उभय यज्ञके मध्य प्रथम ऋक्का नाम पञ्चति और द्वितीय यज्ञका नाम स्तोतिः है। यह उभय यज्ञ भी सर्वजन्तुकी भांति दोषायुक्त हैं। इनका दक्षिणादि विधि है। ऋषभ और गोपथ नामक दो यज्ञाका विधान है। उनके मध्य अग्निष्टोमसंस्था ऋषभमें राजाका अधिकार है और उसका दक्षिणाभेद विधि है। उक्त्यसंस्थ गोपथमें प्रयुक्त गो दक्षिणा और वंश वा पथ्य क्षातिका उसमें अधिकार है। उसका विधानादि है। महत्स्तोम नामक यज्ञविधि है। उसमें एकत्रित भ्रातृसमूह और यन्धुसमूहका अधिकार है। वैश्वस्तोम निर्दिष्ट दक्षिणा-का ही उसमें दक्षिणाक्रम निर्देश है। ऐन्द्रान्तकृनाय

नामक यज्ञविधि है। पुत्रार्थी और पशुपार्थी वाहिका
 छठमें अधिकार है। गोकुल दक्षिणा है। छठमें दो
 आता वा दो सप्ताका अधिकार है, समूहका
 अधिकार नहीं। राजकर्तव्य उक्त्यसंख्य इन्द्रस्तोमका
 विधान है। पुरोहित प्रार्थिका इन्द्राग्नीस्तोम नामक
 यज्ञविधि है। सायुष्य अभिलाषी राजा और
 पुरोहितका छठमें अधिकार है। उमयका एकल वा
 दृष्टक भावसे अधिकार है। ऐसे अधिकारका भेद
 विधि है। पशुकाम वाहिके अग्निष्टोमसंख्य विधान
 नामक यज्ञद्वयका विधान है। छठमें अभिचारकाम
 वा पशुकामका अधिकार है। पशुकाम वाहिका
 मत्त तथा दुग्धयुक्त वृहत् गो और अभिचार कामका
 तीस गो दक्षिणाविधि है। अभिचारकामके संदय
 और वज्र नामक दो यज्ञीका विधान है। इन्द्रवीम-
 भावसे उभय यज्ञीकी कर्तव्यता है। उभयके मध्य
 वज्रका योङ्गिसंख्य रूपभेद-कथन है। संदय
 द्वारा राजाका अभिचार करना चाहिये, देयका नहीं
 और वज्र द्वारा देयका अभिचार करना चाहिये,
 राजाका नहीं। उक्त रूपसे विधान कथित है।
 मत्तान्तरमें उभयका विपरीत भावसे विधान है।
 अभिचार द्वारा राजादिका उपशम वा मारण सम्पादन
 कर षोडशोम यज्ञद्वारा पात्रशुद्धिका विधान है।
 इसी प्रकार सामवेदविहित एकादश निर्दिष्ट है।

२३य अध्यायमें ५ कण्डिका है। उसकी १२
 कण्डिकामें षोडश नामक यज्ञसमूहका द्वादश
 उपसद् एवं एकमासमें उसका समापनविधि है।
 सुखोपसद्का विशेष उपदेय है। दीक्षाके भेदका
 विधि है। यथा सोत्पदिन और उपसद्समूहके दिन
 गिन दीक्षानियम है। दो रात्रिसे द्वादश दिन पर्यन्त
 सम्पादन योग्य याम षोडश कह्यता है। अथके मतमें
 पाठ हेतु पतिरात्रकी भी षोडशमंत्रता है। इष्टादिमें
 दशरात्रादिकी मन्त्रिकी गोप्या कहते हैं। द्वादश-
 दिन कर्तव्य दशरात्रकी द्वादशदिमें कर्तव्यता है।
 द्वादश प्रभृतिमें मन्त्र दक्षिणा है। चार रात्रि
 प्रभृतिमें अधिक दक्षिणादान पर प्रत्यक्ष मममागसे
 दानविधि है। परिशेषकी अष्टविध समुदायका दान

है। त्रयोदश पतिरात्रका विधान है। यथा—
 योङ्गिसंख्यद्वित चार प्रथम पतिरात्र है। उनके
 मध्य प्रजातिकामका नव सप्तदश नामक प्रथम
 पतिरात्र है। षष्ठ आष्टविधिका स्त्रीके षष्ठेपुत्रका
 कर्तव्य विपुवत् नामक द्वितीय पतिरात्र है। जिसके
 आष्टव्य रक्षता, उसका गो नामक तृतीय पतिरात्र
 है। स्वर्गकाम वा पारोग्यकाम वाहिका षाड्-
 नामक चतुर्थ पतिरात्र है। धनाभिलाषीका ज्योति-
 ष्टोम नामक पञ्चम पतिरात्र है। पशुकामका
 विखजित् नामक षष्ठ पतिरात्र है। ब्रह्मन्तज-
 प्रार्थिका त्रिहत् नामक सप्तम पतिरात्र है। पौर्यकाम
 वाहिका अष्टदश नामक अष्टम पतिरात्र है। असादि-
 अभिलाषी वाहिका नवम नामक नवम पतिरात्र
 है। प्रतिष्ठाकाम वाहिका एकविंश नामक दशम
 पतिरात्र है। प्राप्तपशुका ध्वंज होनेसे पुनर्पार
 उसकी प्राप्तिके लिये पानोर्याम नामक एकादश
 पतिरात्र है। आष्टव्यवान्का अभिजित् नामक
 द्वादश पतिरात्र है। ऐश्वर्यप्रार्थिका सर्वस्तोम नामक
 त्रयोदश पतिरात्र है। इसी प्रकार त्रयोदश प्रकार
 पतिरात्रका विषय कहा है।

२४ कण्डिकामें दो सुतीके तीन षोडशना विधि
 है। उनके मध्य द्वितीय और तृतीय षोडशके
 योङ्गिसंख्यद्वित दो पतिरात्र हैं। तीन षोडशके
 आष्टिरस, चैत्ररथ और कापियन तीन नाम कहे हैं।
 द्वितीय द्विरात्रिके उक्त्य पूर्वतादप अन्वका मतभेद
 है। पार्थिक अग्निष्टोमके स्थानमें उक्त्यनिर्देश है।
 संख्यभेदमात्र ही उसका धर्म है। पुण्ययोग्य होने भी
 जो पुण्यहीनकी भांति रक्षता, उमीका आष्टिरसमें
 अधिकार है। पुष्याधी वाहिका चैत्ररथमें अधिकार
 है। स्वर्गकाम वा पशुकाम वाहिका कापियनमें
 अधिकार है। त्रिस्तोके गर्ग, वंद, अन्वोम, पत्न्यसु
 और पराक नामक पांच षोडश यज्ञीका विधान है।
 उनके मध्य वंद त्रिरात्रिमाध्य एवं त्रिहत्तुष्टोमसुक्त
 पपर समुदाय पतिरात्रसाध्य है। इस पञ्चभेद
 यज्ञमें संख्यभेदका कथन है। इस समुदायमें राज्य-
 कामका अधिकार है। फिर पत्न्यसुमें पशुकामका

आधानमें विहित दक्षिणामेदका विकल्प कर्तव्य है, किन्तु समुच्चय नहीं। अनेक साधनकार्यमें अथवादि कार्यका समुच्चय करना पड़ता है। सर्वत्र गार्हपत्य तथा आहवनीय कार्यमें प्रदक्षिण कर अपसव्य एवं अपसव्य कर प्रदक्षिण करते हैं। विहारकी उत्तरदिक् समुदाय कार्य किया जाता है। सुतरां ब्रह्म और यजमानका आसन विहारकी दक्षिणदिक् कर्तव्य है। आसनद्वयके मध्य प्रथमतः यजमान एक आसन पर वेदिके मध्य पदका अप्रभाग संस्थापन कर बैठे, फिर ब्रह्मको बैठना चाहिये। व्यक्तिविशेषका आदेश न रहते पञ्चयुक्तो यजुर्विहित कर्म सम्पादन करना कर्तव्य है, आदेश रहनेसे अन्य किया जाता है। हविःपात्रस्य द्रव्यसमूह जैसे पर पर संश्लेषित होता, प्रदान कासमें वैसे ही वक्ष सकल द्रव्य पूर्वं पूर्वं लेना चाहिये। प्रतापनादि अग्निसाध्य संस्कार गार्हपत्य अग्निमें सम्पादन करते हैं। समुदाय कार्यमें ही हविः प्रदान गार्हपत्य वा आहवनीयमें कर्तव्य है। संस्कार-मूल्य-घृतमात्रको भाज्य शब्दका अर्थ समभक्षना चाहिये। घृत शब्दसे गन्धघृत लिया जाता है। द्रव्यविशेष कथित न रहनेसे सर्वत्र ही घृतद्वारा होम कर्तव्य है, किन्तु विशेष द्रव्यका विधान होनेसे उसी द्रव्य द्वारा होम करते हैं। चात्वालासे * वक्षिःस्य पुरीष प्रहण करना चाहिये। पृथक् आदेश न रहते आहवनीय यज्ञमें ही समुदाय याग कर्तव्य है। किन्तु आदिगकी विभिन्नता भाते आदेशानुसार याग करना पड़ता है। ऐसा आदेश न होते एक बार मात्र श्लेषित द्रव्य द्वारा होम करते हैं। आदेश रहनेसे आदेशानुसार किया जाता है। ८म कण्डिकामें—सकल स्यस पर ब्रौहि वा यव हविःरूप कल्पना करते हैं। उभयके निधानस्यस पर विधानानुसार कहीं पहले यव पीछे ब्रौहि और कहीं पहले ब्रौहि पीछे यव देना चाहिये। किन्तु आपस्तम्बके मतसे सर्वदा केवल ब्रौहि याद्य है। द्विविध प्रहणका विधान रहनेसे प्रथम बार पुरोडास चरुके मध्यदेशसे एकमात्रमें एक पङ्कट-

परिमित प्रहण है। द्वितीय बार हविःके पूर्वभागसे ऐसे ही नियममें प्रहण करना पड़ता है। जमदग्नि प्रथति पर्वसमूहमें तीन बार हविः प्रहण कर्तव्य है। उसमें प्रथम बार मध्यदेशसे, द्वितीय बार पूर्वभागसे और तृतीय बार पश्चाद्भागसे लेते हैं। जहां भाज्यभाग पत्नीसंयाज, सर्पासंयाज और अग्निहोत्रादि होममें चार बार प्रहणका विधि है, वहां जमदग्नि प्रथतिका पाँच बार प्रहण किया जाता है। दधि दुग्धका भी भवदान स्तुव द्वारा पङ्कटपर्व परिमित प्रहण करना पड़ता है। पुरोडासादि हविःके भवदानसे प्रथम भाज्य एक बार ले अन्य हविः प्रहण करना चाहिये। शिव बार फिर भाज्य लिया जाता है। खिलकत् होममें हविर्ग्रहणके प्रधान भवदानकी अपेक्षा एक बार घटा देते हैं। उपस्ताका कार्य एक बार करते हैं। उपरि देशमें अभिघारण दो बार कर्तव्य है। भवदेश पौर भवदान हविःका प्रत्यभिघारण करना पड़ता है। एक कपाल पुरोडास सर्वस्यानमें पाहुति देना चाहिये। "अन्यये भनुजोहि" की भांति वाक्यसे चतुर्थी विभक्त्य देवतापद द्वारा अनुवचन करना पड़ता है। आयावणके पीछे जहां मेवावणका अनुसन्धान करते, वहां भी चतुर्थी विभक्त्य देवतापद रखते हैं। किन्तु आयावणके पीछे जहां मेवावरणका अनुसन्धान नहीं करना पड़ता, वहां द्वितीयात्म देवतापद प्रयोग करना चाहिये। प्रेषसम्बन्धी अनुवचनस्यनमें द्रव्यके उत्तर पहले होती है। किन्तु दो प्रेषोंका सम्बन्ध रहनेसे पठो नहीं लगती। जहां ऐसे प्रयोगका विधान रहता कि नाम प्रहणपूर्वक इन्हें यजन करो, वहां इन्हें पदके परिवर्तमें उन्हीं उन्हीं नामोंका प्रयोग करना चाहिये। वपटकारके साथ पाहुतिप्रदानस्यस पर वेदीके दक्षिण भागमें उत्तर-पूर्व वा ईशान मुख अवस्थित हो वपटकारके पीछे वा वपटकारके साथ पाहुति देते हैं। इन सकल स्यसोंपर घृतमिश्रित हविः देना पड़ता है। उसका नियम है—प्रथम घृतपाहुति, मध्यमें हविःशी पाहुति और पीछे फिर घृतकी पाहुति प्रदान करना चाहिये। अथवा घृत पौर हविः एकत्र ही प्रदान करना पड़ता है। २म कण्डिकामें

* अथवेदी प्रहणप्रकाराणां निती वीद कर भगवा इव भर्ता।

भोर पराक्रमे खर्गकामका अधिकार है। उक्त मात्र भेदका कथन है। अत्रिचतुर्वीर, लामदग्ग, वशिष्ट-संस्पर्ष और विश्वामित्र नामक चार चार दिनसाध्य यज्ञका विधान है। उनके मध्य लामदग्ग यज्ञमें पुष्टिकाम वरुणिका अधिकार है। उसमें विशति दीक्षा एवं इन चार यज्ञमें पुरोडाशविशिष्ट उपसदका विधान कथित है। श्य कण्डिकामें उसके विधानका प्रकारादि है। ४थं कण्डिकामें पञ्चदिन साध्य तीन अहीनका विधान है। उनके मध्य प्रथम अहीनका नाम देवपञ्चाह है। द्वितीयका नाम पञ्चशरदीय है। इन समय अहीनके विधानादिका कथन है। तृतीय पञ्चाहका व्रतवत् नाम कथन है। इस त्रिविध पञ्चाह यज्ञमें ज्योतिर्गौ, महाव्रत और गौरायु नामक तीन एकाह यज्ञका विधि है। सर्वजित्की भांति इसमें दीर्घानियम और उसका विधानादि निर्दिष्ट है। ५म कण्डिकामें छह दिन साध्य तीन अहीनका विधि है। तीन अहीनके ऋतुपङ्क, वृष्टावसभ्य और त्रिकटुक तीन नाम कहे हैं। इस त्रिविध यज्ञमें स्तोमविधानादि है। सप्ताहसाध्य सात अहीनका विधान है। उनके मध्य चारका उत्तम महाव्रत है। इन चारके मध्य तृतीयमें पयकामका अधिकार है। पञ्चम अहीनका नाम इन्द्रसप्ताह है। इस पञ्चम सप्ताहमें द्वितीय एकाहसे चारशकर पङ्क एकाह एवं सुत्याह समुदायका विधान है। इस सप्ताह समुदायके प्रत्येक सप्ताहमें ज्योतिः, गोः, भायुः, अभिजित् और सर्वजित् छह महाव्रतकी कर्तव्यता है। इसी प्रकार समुदाय दिनसाध्य यज्ञमें महाव्रतका विधान है। उत्तम सर्वस्तोमका विधान है। उसके श्रेष्ठ दिनकी ज्योतिः, गोः, भायुः, अभिजित्, विश्वजित् और सर्वजित् महाव्रतविशिष्ट सर्वस्तोम पतिरात्र है। जनक सप्तरात्र नामक पठ सप्ताह है। उसका विधानादि है। उत्तम सप्तम सप्ताहमें बृहद्रथन्तर सामयुक्त पुष्टिका विधान है। इस समुदायकी पुष्टिस्तोम अंश है। इसी प्रकार सप्त-सप्ताह अहीनका विधान कहा है। उसके पीछे उसका विधानादि है। षष्ठसुत्य अहीनमें पाष्टिक

पङ्कके पीछे महाव्रत कर्तव्य है। नवरात्रमें त्रिकटुक, ज्योतिः, गोः, और भायुः नामक महाव्रतका विधान है। उसका प्रकारान्तर है। उसका विधानादि है। चार दशरात्रका विधि है। प्रतिष्ठाकामनाकारी वरुणिका त्रिककुप् नामक प्रथम दशरात्र है। अभि-चारकारीका कौसुक्विन्द नामक द्वितीय दशरात्र है। पूर्वदशरात्र नामक तृतीय दशरात्र है। पञ्चकाम वरुणिका इन्द्रोह नामक चतुर्थ दशरात्र है। उसका विधानादि है। षोडशीक नामक एकादशरात्र एवं उसका विधानादि कथित है।

२४म अध्यायमें ७ कण्डिका हैं। उसकी १म कण्डिकामें द्वादशरात्रसे एक दिन बढ़ा चत्वारिंशत् रात्र पर्यन्त यज्ञविधि है। उसमें जिस क्रमसे जो दिन उपदिष्ट हैं, वही दिन उसी प्रकार समझना पड़ते हैं। भावापिकसमूहका अन्त्यक्रम और औपदेशिक समूहका उपदेशक्रम लिया जाता है। उपदिष्ट दिन व्यतिरिक्त अन्यदिन समूहका भावाप-क्रम कथन है। यथा—यज्ञ अपूर्ण होनेसे दशरात्र भावाप रहता है। यह पङ्कले नहीं, पीछे होता है। छह पाष्टिक षष्ठ और चार इन्द्रोम षष्ठ मिलाकर दशरात्र आता है। अथवा वृष्ट पङ्क, तीन इन्द्रोम और अविवाशके समुदायका नाम दशरात्र है। यह दशरात्र समुदाय दिनके अन्तमें मानना पड़ेगा। दशरात्रके पीछे एकाह विषयमें प्रकृतिविहित समुदायसे महाव्रत होता है। यज्ञ संख्यापूरणके लिये दशरात्र पीछे एकाह व्रतीत महाव्रत पड़ता है। महाव्रत व्रतीत अन्यकार्यसमूह भावापके पीछे और दशरात्रके पङ्कले करते हैं। जहाँ पङ्क व्रतीत यज्ञसंख्यापूरण नहीं होता, वहाँ पङ्क पूरणके लिये अभिज्ञवका वयवहार चलता है। अभिज्ञवसे पङ्कले पञ्चाह समुदाय भी पञ्चाह व्रतीत संख्यापूरण न पङ्कनेसे अनुष्ठित होता है। व्रह्म व्रतीत संख्या-पूरण न होनेसे व्रह्म विषयमें ज्योतिः, गोः और भायुःका विधान है। उक्त तीनोंको त्रिकटुका कहते हैं। चतुरह व्रतीत यज्ञसंख्या पूरण न होनेसे चतुरह विषयमें ज्योतिः प्रकृति तीन और महाव्रतका अनुष्ठान

सहस्र होते भी निर्वाह वस्तुके प्रतिनिधित्वका निषेध, त्याग तथा वपन प्रभृति एवं संस्कार कर्ममें यज्ञमानके प्रतिनिधित्वका अभाव, किन्तु पात्रप्रक्षय, हविर्दग्धन, अग्निस्थापन, व्यूहण और वेदवन्धनादि गुणकर्ममें यज्ञमानके प्रतिनिधित्वका विधि, पत्नीके अभावमें भी हविर्दग्धन, अन्वारम्भ और उपाञ्जन ४ प्रभृति गुणकर्ममें प्रतिनिधिकल्पना, यज्ञमानकर्मके साथ सम्बन्धवशतः प्रतिनिधिद्वयसे कल्पित व्यक्तिके भी दीक्षादि यज्ञमानधर्मका सम्पादनविधि, ब्राह्मणका ही यज्ञाधिकार, अत्रियवैश्याका अनधिकार, ब्राह्मण होते भी एक कल्प ब्राह्मणका अधिकार, किन्तु विभिन्न कल्पका नहीं, अत्रिय तथा वैश्याका गृहपतित्व अधिकार रहते भी यज्ञमें अधिकार नहीं। सहस्र वक्षर साध्य यज्ञ मनुष्यसाध्य है। क्योंकि यहां संवत्सर शब्दका सहस्र दिन मात्र लक्षणविधि है। ८म कण्डिकामें जहाँ एकही फलकी कामनासे एक याक्य द्वारा बहुसंख्यक प्रधान कार्यका विधान है, वहाँ समुदाय कार्यका एकत्र प्रयोग होता है। देय, काल, फल और कर्मादि समान रहते प्रधान कार्य-समूहका प्रायः उपयोगी आधार, प्रयाज और आष्य भाग पृथक् पृथक् न कर एकत्र करनेका नियम है। किन्तु देय, काल वा तन्त्रमेव पढ़नेसे एकत्र कर्तव्य नहीं। एक द्रव्यमें अनेक कर्मका विधान शगनेसे प्रत्येक क्रियामें मन्त्रपाठ न कर केवल एक वार ही करनेका विधि है। किन्तु हविर्दग्धन, कुमच्छेद, कुमस्तरप और पाण्यप्रक्षय कार्यमें प्रत्येक वार मन्त्र पढ़ना पड़ता है। पाण्यप्रक्षय कार्यमें तीन वार मन्त्र पढ़ते और अवागिष्ट वार मौनी रहते हैं। दीक्षित व्यक्तिके अनेक दुःखप्रदग्धनमें एकवारमात्र मन्त्रपाठ विधि है। एक नदीके अनेक प्रवाह उत्तीर्ण होनेसे एक वार मन्त्र पढ़ते हैं। अनेक वृद्धिधाराका संयोग होते भी वर्षणकालमें एक ही वार मन्त्र पढ़ा जाता है। एक ही समय अनेक अमद्गन्त दर्शनमें एकवार मात्र सूर्योपस्थापन करते हैं। विद्यामपूर्वक पुनः पुनः गमन करते समय अग्निध्य दर्शन करनेसे एकवार

मात्र मन्त्रपाठ होता है। एक रात्रिके मध्य वारंवार निद्रादि कालको अमद्गन्त देखनेसे वारंवार मन्त्र पढ़ना पड़ेगा। ऐसे समय एकवार मन्त्र पढ़नेसे काम नहीं चलता। अमघानकालीन अद्गन्त एकवार मात्र होता है, उसका प्रतिधान बदलना नहीं पड़ता। आधानादि कार्यमें केवल यज्ञमान ही नहीं, समुदाय पुरुष कर्त्ता हैं। फिर भी देवताके उद्देश्यसे द्रव्यत्याग प्रभृति आत्मकर्मसमूह यज्ञमानको ही करना और पुरुषयोनि मन्त्रसमूह जपना चाहिये। वपन अभ्यञ्जनादि संस्कार यज्ञमानका ही है। किसी किसी स्थलमें यह संस्कार पुरोहितका भी होता है। इन सकल कार्योंको छोड़ अन्य कार्य विशेष-विधान रहते यज्ञमानको ही करना पड़ेगा। जैसे— यज्ञमान वसुधारा जोम करेगा और पात्र सकल पक्षय करेगा। तद्विन कार्य पुरोहित प्रभृतिका है। जैसे अश्वत्थुका आश्रयव कार्य, होताका होत्रकार्य और उद्गताताका उद्गताव कार्य। समुदाय कार्य यज्ञोपवीतधारीको करना पड़ता है। फिर समस्त कार्य पूर्वदिक वा उत्तरदिकस्थ कर सम्पादन करनेका नियम है। परिस्तरम्भ एवं पर्यन्तवादि कार्य प्रदक्षिण क्रमसे और पित्रकार्य अपसव्य क्रमसे अर्थात् दक्षिणसे क्रमांतुसार वाम ओरको करनेका नियम है। देवकार्यमें जहाँ पुनरावृत्ति करते, पैत्र कार्यमें वहाँ एकही वार निवटते हैं। पैत्रकर्ममें दक्षिणदिक प्रयत्न है। देवकर्ममें जो पूर्वदिकको स्थापन करना पड़ता, पैत्रकर्ममें वह समुदाय दक्षिणदिकको स्थापन करना उचित रहता है। प्रधान द्रव्य विनष्ट होनेसे निकटस्थ अद्गन्तसमूहके साथ उसको पुनरावृत्ति करना चाहिये। ८म काण्डकामें विकल्प विधिसंख्य पर एकही द्रव्यद्वारा कार्य सम्पादन करना उचित है। अद्गन्त बहु विषय विहित रहते समुदायको पक्षय करना चाहिये। यज्ञकालमें मन्त्रसमूह एक नृत्ति स्वरसे प्रयोग करते हैं, अहिताश्वर वा ब्राह्मणस्वरसे प्रयोग कर्त्तव्य नहीं। किन्तु सुब्रह्मण्य, साम, जप, सुक्त और यज्ञमान मन्त्र एक नृत्तिसे प्रयोग न कर संज्ञितासे मिलते स्वरमें ही प्रयोग करना चाहिये।

कर पूर्य कर्तव्य है। दृष्ट वरतीत संख्यापूरण म जोनिसे दृष्ट विषयमें गौः शीर प्रायुः पूर्य हुवा करता है। दृष्टके चारभमें पतिरात्र कर्तव्य है। प्रायणीय शीर उदयनीयके मध्य पावापस्थान करना पड़ता है। जो पावाप करनेका विधि है, उसके पतिरात्रद्वय मध्य करणका विधान है। पावापसमूहके समग्रय द्वारा स्रष्टा यज्ञ पूर्य होता, स्रष्टा जो जो प्रगुष्ठान पश्य पाता वही प्रथम किया जाता है। दो त्रयोदशरात्र यज्ञका विधि है। इसमें दृष्ट सम्पादित होनेसे सर्वस्तोमनामक पतिरात्रका विधान है। अर्थात् समुदाय यज्ञमें द्वादशरात्र धर्मका विधान है। सुतरां इसमें भी द्वादशरात्र समूह सम्पादन शीर सर्वस्तोम पतिरात्रका अनुष्ठान करना चाहिये। ऐसा करनेसे त्रयोदशरात्रका पूरण होता है। इसका नाम है। यथा—प्रथम दिन प्रायणीय पतिरात्र होता है। द्वितीय दिनसे छह दिन पर्यन्त पृष्ट पड़ूह करते हैं। षष्ठमदिन सर्वस्तोम पतिरात्र होता है। नवम दिनसे चार दिन तक चार लक्ष्मोम चलते हैं। त्रयोदश दिन उदयनीय पतिरात्र किया जाता है। द्वितीय त्रयोदशरात्रमें दशरात्रके पीछे मष्टाव्रत करना पड़ता है। इसी प्रकार भेद कथित है। सप्तार्य ऋतीय त्रयोदशरात्रके गवामयनकी भांति सत्तरप-प्रकार है। चतुर्दशरात्रमें गौण यज्ञका विधान है। इनके विधानका प्रकारादि है। उसके मध्य ग्रीय चतुर्दशरात्रमें विवाहोदकतत्पसंगमित गणका अधि-कार है। पशुदशरात्रको चार यज्ञोंका विधान है। इनका विधान प्रकारादि एवं सप्तदशरात्रमें, षष्टादश-रात्रमें, एकीनविंशरात्रमें शीर विंशतिरात्रमें इती प्रकार पावापपूरण कथित है। २य कण्डिकांमें योङ्गरात्र प्रभृति चारमें पावाप प्रकार है। उसके मध्य योङ्गरात्रको प्रायणीयके पीछे पष्टाह है। षष्टादशरात्रमें प्रायणीयके पीछे पड़ूह है। एकीनविंश-रात्रमें प्रायणीयके पीछे पड़ूह एवं दशरात्रके पीछे प्रत है। इसी प्रकार पावाप उल्लेखे द्वारा विधान प्रकार है। एकविंशतिरात्रमें दो पतिरात्र हैं। इनमें पावाप प्रकार शीर समस्त विधानादि है। असादिकाम वरत्रिके द्वाविंशति रात्रका विधान है।

उनके विधानका प्रकारादि है। प्रान्ताकामके त्रयोविंशतिरात्रका विधान है। प्रजाकाम शीर पशुकाम वरत्रिके चतुर्विंशतिरात्रका विधान है। यह द्विविध है। इनमें प्रथमका विधानादि शीर द्वितीयका संसृट नाम तथा उसका विधानादि कथित है। असादि-कामके पञ्चविंशतिरात्रका विधि है। प्रतिष्ठाकामके पड़ूविंशतिरात्रका विधान है। धनकामके मत्त-विंशतिरात्रका विधि है। प्रजाकाम तथा पशुकामके षष्टाविंशतिरात्र एवं द्वाविंशतिरात्रका विधि है। इस समुदायका क्रमशः विधान है। एकीनविंशत्-रात्र, त्रिंशत्-रात्र, एकत्रिंशत्-रात्र एवं द्वाविंशत्-रात्रका विधानादि है। त्रयोविंशत्-रात्रका द्विविध भेद है। उसके विधानका प्रकार है। चतुर्विंशत्-रात्रावधि चत्वारिंशत्-रात्रि पर्यन्त सप्तयज्ञका पावापक्रमानुसार पूरणविधि है। उसका विशेष नियम है। यथा—असादिकामके चतुर्विंशत्-रात्र, प्रतिष्ठाकामके षट्-त्रिंशत्-रात्र, ऐश्वर्यकामके सप्तत्रिंशत्-रात्र, प्रजाकाम एवं पशुकामके षष्टात्रिंशत्-रात्र चार चत्वारिंशत्-रात्र यज्ञका विधान है। एकीनपञ्चमशत्-रात्रमाध्य सप्त यज्ञका विधान है। इनके मध्य प्रथमका नाम विधुति है। उसका विधानादि है। द्वितीयका नाम यमातिरात्र है। उसका विधानादि है। तृतीयका नाम अष्टनाभ्यख्ननीय है। विद्वानोंके मध्य अथवा स्यातिके आकाङ्क्षियोंका इसमें अधिकार है। इसका विधानादि है। चतुर्थका नाम संवत्सरमित है। उसका विधानादि है। ३य कण्डिकांमें इसके नाष्टयज्ञको प्रसङ्गाधीन सुवार्थियोंके कर्तव्य एकषट्-रात्रका विधान है। सवितार्के उदगमे प्रथम लक्ष्मका विधि है। उसका विधानादि है। उसमें सुवार्थीका अधिकार है। षष्ठ शीर सप्तमका नामान्य विधान है। अतरात्रका विधानादि शीर इस विधानमें विकल्प-विवरण कथित है। ४वें कण्डिकांमें सवत सप्तम्य प्रभृति होमका विधानादि है। संवत्सर प्रभृति यज्ञमें गवामयन धर्मका पतिदेय है। आदिन्यगणके अथन नामक यज्ञका विधानादि है। आदिन्यगणके अथनकी भांति आदिन्यगणके अथनविधि है। उसका

विशेष नियम है। इतिवातवान्के भयन नामक यज्ञका विधानादि है। कुण्डपायिगणके भयन नामक यज्ञका कालविधानादि है। इस यज्ञमें सुव्या ख्यान-समूह पर सोम और उपनहन प्रवृत्तिका विशेष विधि है। सर्पसत्र नामक यज्ञका भेद विधानादि और उसमें गवामयन धर्मका अतिदेश कथित है। भूम कण्डिकामें तापयित नामक यज्ञका विधानादि है। महातापयित यज्ञका विधानादि है। सुहृक तापयित यज्ञका विधानादि है। त्रिसंवत्सर यज्ञका विधानादि है। महासत्र नामक यज्ञका विधानादि है। द्वादश वत्सरसाध्य प्रजापतिसत्र नामक यज्ञका विधानादि है। षट्त्रिंशत् वत्सरसाध्य अकृत्यानामयन नामक यज्ञका विधानादि है। शतवत्सरसाध्य साध्यानामयन नामक यज्ञका विधानादि है। सहस्रवत्सरसाध्य विश्वसृष्टामयन नामक यज्ञका विधानादि है। (गोण्डित् भनुसार यह यज्ञ सहस्र-दिनसाध्य समभूता चाहिये) सारस्वत यज्ञसमूहका विधानादि है। यात्सत्र नामक यज्ञविधि है। शतसंख्यक प्रथमगर्भिणी वत्सतरी और एक द्वय सहस्र-संख्या पूरषकी इस यज्ञमें वनमें छोड़नेका विधि है। सारस्वत यज्ञका दीक्षाकाल और देशादि विधान है। (यथा—चेत्र शक्यसमी तिथिको सरस्वती विनयन नामक स्थानमें दीक्षा कर्तव्य है। सरस्वती नाञ्ची जो नदी बहती है, उसका पूर्व और पश्चिम भाग समुप्यकी देख पड़ता है। किन्तु मध्यभाग सूमिमें निमग्न रहनेसे किसीके दृष्टिगोचर नहीं होता। इसी स्थानको सरस्वती-विनयन कहते हैं। इसमें दीक्षा विधानादिका प्रकार है।) १४ कण्डिकामें उसका षड् विधानादि है। सरस्वती और द्रपदतीके सङ्गमस्थलपर उसका विधानादि है। ब्रह्मवत्सवण नामक सरस्वतीके उत्पत्तिस्थानपर भग्नयेकामाय नामक यज्ञका विधि है। इस यज्ञमें कारपच नामक एक देगमें यज्ञमानका भवभ्ययज्ञानविधि है। यज्ञशेषमें उदयसनीयकी कर्तव्यता है। द्रपदसनीयशून्य तीन सारस्वत यज्ञका विधान है। पूर्वार्ध सहस्र यज्ञ पूरण न होते यज्ञपति वा समुदाय गो भर जानेसे यह यज्ञ

समापनका विधि है। सहस्र पूरण होते भी यह यज्ञ समापन करना पड़ता है। सहस्रपतिका मृत्यु होनेसे प्रायुः नामक अतिरात्र यज्ञकर और द्रव्यसमूह नष्ट होनेसे विश्वजित् नामक यज्ञकर समापन करनेका विभिन्न विधि है। उभय घटनावर्षमें ज्योतिर्दाम द्वारा समापनरूप अन्य मतका कथन है। इसी प्रकार प्रथम सारस्वत कहा है। द्वितीय सारस्वत इतिवात-वान्के भयनकी भांति कर्तव्य है। उसका विधानादि है। छठमें तिथिको चयत्रद्विका भी विशेष विधान है। शक्यकथपचका विशेष विधानादि है। तृतीय सारस्वतमें विश्वजित् और परिजित् विधानादि है। उसमें षट्त्विक भववा प्राचार्यके दार्पदत नामक यज्ञकी कर्तव्यता है। इस यज्ञमें एक वर्षके द्विये वनमें गो सकल परिव्रज्य करना चाहिये। द्वितीय वत्सर रहने निकल स्थानमें रचा करनेका विधि है। इसी वर्ष सरस्वती तीर नेतम्भवा नामक जो सकल प्राचीन ग्राम हैं, उनमें अन्त्याधानका पारश्वविधि और कुर्वेत्रमें परीयत् नामक स्थलपर अन्वारभ-विधि है। उसके पीछे तृतीय वत्सर परीयत् नामक स्थलपर ही दर्शपूर्णमासान्त कार्योंको कर्तव्यता है। द्रपदती तीरसे वा यमुनामें भवभ्यय ज्ञान और उसी स्थान पर मन्दापाठका विशेष विधान कहा है। ७म कण्डिकामें चेत्र वा वैशाखमासकी शक्यपश्चिमीको तुरायण नामक सारस्वत यज्ञकी कर्तव्यता है। उसकी दीक्षाका विधानादि है। यह यज्ञ एक वत्सरसाध्य है। उसमें वर्ष पर्यन्त कर्तव्यका उपदेश है। दार्प-दतकी भांति अनियत भवभ्ययज्ञानविधि है। भरत-द्वादशाह प्रवृत्ति द्वादशाह भेद कथन है। उसका विधानादि और उत्सर्पिसमूहमें गवामयनका विकल्प-विधान विहित है।

२५थ अध्यायमें १४ कण्डिका है। उनमें षड्-वैगुण्य दोषके उपयमको प्रायश्चित्तका विधान है। (प्रायश्चित्त शब्दका अर्थ है। यथा—प्रपूर्वक भाय घातुके उत्तर षड्, प्रत्यय लगानेसे प्राय पद गिण्यत होता है। उसका अर्थ विधि अतिक्रमके द्विये दाप है। चित घातुके उत्तर भावमें ह्य प्रत्यय लगानेसे

जाति गृह्णाति, कादम्ब-स-क सख्य रः । १ कदम्ब-
पुष्पोत्थ मद्य, कदमके फूलकी शराव । २ शोध मद्य,
एक शराव । यह मधुर और पिस्त एवं भ्रम तथा मद्ग्न
होता है । (राशनिपथ्) ३ दधिसार, दहीकी मन्दाई ।
४ दत्तजात गुड़ादि, जखसे बना हुआ गुड़ वगैरह ।
५ बलराम ।

कादम्बेरी (सं० स्त्री०) कु कृष्णवर्ण नीलवर्ण चम्बरं वक्षं
यस्य कोः कदादेशः, कदम्बेरी बलरामः तस्य प्रिया,
कदम्बर-पद्म-होप । १ मद्य, शराव । २ कोकिला,
कोयल । ३ सरस्वती । ४ शारिकापक्षिणी, टुइयां ।
५ कदम्बपुष्पोत्थ मद्य, कदमके फूलकी शराव ।
६ सपुष्पक कदम्बके तरुकोटरका वृष्टिजल, फूले हुये
कदमकी खीखमें पड़ा बरसातका पानी । ७ वाष्पमह-
विरचित कथाकी नायिका । यह इंस नामक गन्धर्व-
राज और अन्द्रकिरणसे उत्पन्न चम्परोकुलजात गौरीकी
कन्या थी । वाष्पमह-देवी ।

कादम्बेरीबीज (सं० स्त्री०) कादम्बेरीयाः बीजम्, इ-तत् ।
सुरावीक, खमीर ।

कादम्बेयं (सं० पु०) कादम्बेयं हितम्, कादम्बेरो-यत् ।
१ धाराकदम्ब । २ कदम्बवृक्ष, कदमका पेड़ । (स्त्री०)
३ पद्म, कंबल ।

कादम्बा (सं० स्त्री०) कादम्ब इव पाचरति, कादम्ब-
क्षिप्-पचं-टाप् । कदम्बपुष्पीलता, एक वेल । इसमें
कदम्बकी भांति पुष्प धाते है ।

कादम्बिक (सं० त्रि०) भोग्यद्रव्यकारकं, खानेकी
चीज बनानेवाला ।

कादम्बिनी (सं० स्त्री०) कादम्बाः कलहंसाः सन्ति
पश्याम्, कादम्ब-इनि-होप । मेघमाला, घटा ।

कादर (हि०) कादर देवो ।

कादर—भागलपुर और सत्याक्षपरगनेकी एक जाति ।
दाक्षिणात्यके पनमलय पर्वत और कोयम्बूर जिलेमें
ही "कादर" नामक एक जाति रहती है । इनके लोग
पशुमानसे इन दोनों जातियोंकी एक ही श्रेणीका
समझते हैं ।

कादर कवि और मन्त्रधारण कर प्रधानतः
जीविका चलाते हैं । इनके लोग मजदूरी भी कर

खाते हैं । किसीके मतमें कादर सुइयां जातिसे निकले
हैं । इनमें दो श्रेणी विभाग हैं—कादर और नैया ।
नैया नामक एक स्वतंत्र जाति भी है । कादर नैयोंसे
कोई सम्बन्ध नहीं रखते ।

कादरोंमें अनेक गोत्र होते हैं । सकल गोत्रोंमें
परस्पर भादान प्रदान नहीं होता । इनमें बाड़े,
वारिक, दवें, हजारी, कम्पती, कापड़ी, मन्दर, मांभी,
मरेया, मरीक, मिर्दाह, नैया, रावत और रिखियासन
करके गोत्र हैं । बाड़े गोत्रवाले मिर्दाह, सम्पती
और रावत गोत्रको छोड़ दूसरे किसी गोत्रमें विवाह
नहीं करते । कम्पती केवल वारिक, कापड़ी, मरीक,
दवें, मांभी और बाड़े गोत्रसे विवाह सम्बन्ध जोड़ते
हैं । मरीक गोत्र वारिक, कापड़ी, मांभी, मन्दर और
नैया गोत्रोंमें विवाह करता है । फिर मिर्दाहोंका दवें,
मांभी, कम्पती, और बाड़े गोत्रवालोंमें और नैयोंका
केवल मरीकों, हजारीयों, कम्पतियों और बाड़ियोंमें
विवाह जाता है । यह मातुलकन्या वा पित्रव्यकन्यासे
विवाह नहीं करते । मातृपर्यायमें ३ और पुरुष तथा
पितृपर्यायमें ७ पुरुष छोड़ विवाह होता है ।

इनमें वालिका और वयस्था दोनों कन्याओंका
विवाह होता है । फिर भी वालिकाशासनमें विवाह
होना प्रयत्न समझा जाता है । छोटे हिन्दुओंकी पालसे
विवाह होता है । सिन्दूरदान ही विवाहका प्रधान
कार्य है । ग्रामका नापित इनका पौरोहित्य करता है ।
स्त्रीके सम्मान न होनेसे यह दूसरा विवाह करते हैं ।
विधवा सगाईकी प्रथाके पशुधर निषिद्धगोत्र और
पुरुषादिको छोड़ विवाह कर सकती है । स्त्रीकी स्वामी-
कण्ठक परिव्रतज्ञ होनेपर सगाईकी प्रथाके पशुधर
पुनर्विवाह करनेका अधिकार है । सगाईवाला विवाह
घरसे बाहर भक्तःपुरके पीछे खुली लगड़में और ग्राम
विवाह घरके चतूरे पर होता है ।

यह शयकी जन्मा और छसथा मध्य छठा श्रुत्युके
दूसरे दिन समाहित करते हैं । त्रयोदश दिनको श्रुतके
उद्देशसे बलि दिया जाता है । फिर श्रुत्युके दिनसे
एक मास पीछे इसी प्रकार बलि देते हैं । इनमें
वार्षिक आधादि नहीं होता ।

चित्त पद निष्पन्न होता है। चातुसमूहका विविध पर्यं विहित रहनेसे उसका पर्यं सन्धान है। प्रायका पर्यात् विधि पतिक्रमके लिये दोषका चित्त पर्यात् सन्धान पर्यं आता है। इस वाक्यमें पाणिनि व्याकरणपोल 'प्रायस्य चित्ति चित्तयोः' एवं 'पारस्कार प्रभृति' सूत्र द्वारा मध्यमें 'सुदृ' आदेशपूर्वक यह पद निष्पन्न हुआ है। सर्वकार्यके पत्नमें पद्यवा निमित्तकालमें प्रायचित्तकी कर्तव्यता है।) प्रायचित्त विशेषका आदेश न रहनेसे सर्वत्र महाव्याहृति होमरूप प्रायचित्तका विधि है। विशेष आदेश अनुसार ही प्रायचित्त करना पड़ता है। यथा—'प्रचीताः स्तथा अभिभृतेत' यजुः श्रुतिद्वारा प्रचीताभिर्मर्षणरूप प्रायचित्त विहित होनेसे यही कर्तव्य है।) श्रुत्येदोक्त शौक्लिक कर्म उपघात होनेसे गार्हपत्य अग्निमें 'भूः' स्वाहा शोल अग्निदेवत होम करना चाहिये। इसमें कर्ताका विशेष आदेश न रहनेसे ब्रह्मकी ही करना उचित है। ब्रह्मवरणके पूर्व निमित्त उपस्थित होनेसे ब्रह्मवरणके पूर्व ही व्याहृतिहोमका अन्य अपर ब्रह्मवरण कर उसके द्वारा करते हैं। जिस अग्नि-होलादिमें ब्रह्मवरणका विधि न हो, वह स्वयं कर्तव्य है। काहाहुति द्वारा सोममें इसका समुचय करना पड़ता है। यजुर्वेदोक्त कर्मका उपघात होनेसे 'भुवः स्वाहा' कष्ट होम करते हैं। वह भी पूर्वकी भांति ब्रह्मका ही कर्तव्य है। सोमके आग्नीध्रीय अग्निमें 'भुवः स्वाहा' कष्ट होम करना पड़ता है। इतनी ही पूर्वके साथ हमकी विभक्तता है। इसका देवता वायु है। सामवेद विहित कर्मका उपघात होनेसे आश्वनीय अग्निमें 'स्वः स्वाहा' कष्ट होम करना चाहिये। इसका देवता सूर्य है। सर्ववेदोक्त कर्मका उपघात होनेसे तीग वार श्यक् श्यक् 'भृभु'पः स्वः स्वाहा' वाक्य द्वारा एवं एक वार समुदाय निमित्त वाक्य द्वारा वार वार होम करते हैं। "वयामाने" इत्यादि पञ्च षट्क द्वारा प्रत्येक षट्क पर आश्वनीय अग्निमें पञ्च आहुतिरूप भूः प्रायचित्त नामक होम करना चाहिये। अतिविहित अघात कर्ममें श्यक् और निमित्त भावसे वार महाव्याहृति होम करते हैं।

(क्षेत्रे—यज्ञोपवीतधारो वारिणि गिष्ठा वांघ पवित् दक्षिण हस्त द्वारा बर्ष करता है। इस गियमस्त्रकमें यज्ञोपवीतधारणादि अतिविहित बर्ष है। इसमें किसी प्रकार उपघात होनेसे वास्त और निमित्त वार महाव्याहृति होमरूप प्रायचित्त कर्तव्य है।) उसके पीछे यजुर्वेदोक्त सर्वप्रायचित्त नामक पूर्वोक्त पञ्च षट्कवेदीय आहुतिरूप प्रायचित्त समुदाय ज्ञात वा अज्ञात कारणसे करनेका विधि है। (किन्तु इसमें समुदाय भेद है। यथा—गार्हपत्यमें भूः, दक्षिणाग्निमें भुवः, आश्वनीय अग्निमें स्वः, एवं सर्वप्रायचित्त नामक पञ्च आहुतिरूप प्रायचित्त होममें भूमिः स्वः कष्टा है।) उसके पीछे कर्मविशेषके अनुसार प्रायचित्तविधान कष्टा है। इस अध्यायकी ७म कण्टिकामें ८म सूत्र पर्यन्त उक्त समस्त विषय वर्णित है। उसके आगे ८म सूत्रसे कर्मसमाप्तिके पूर्व यज्ञमानना श्रुत्य होनेसे कर्मसमाप्ति उसी समय ही जाती है। एक ऐसा पक्ष है। दूसरे पक्षमें श्रुत्येक प्रभृति अवगिष्ट भाग समाप्त करते हैं। उसमें कर्मसमाप्ति पर्यन्त उत्तर क्रियाविशेषका विधान विहित है। ८म कण्टिकामें उपकृत पशुके पलायन प्रभृति पर प्रायचित्तके भेदका कथन है। उसके आगे पन्चवागपद्धति है। ८म कण्टिकामें अस्थिके सञ्चयका प्रकार आदि है। १०म कण्टिकामें यज्ञविशेष करनेके लिये उद्यम करनेके पीछे नष्ट क्रिया न जानीसे विग्रभित् नामक अतिरात्र यज्ञ करनेका विधि है। यज्ञ आदिके लिये दीक्षा करनेमें यदि टैवात् वा किंवा मनुष्यके लिये यह दीक्षा अर्घ्येष्ठत रश् वा ज्ञामीका यज्ञ समापन न करे और इस प्रकार मुक्ति उपस्थिति हो जाये, तो मांसमुख साधारण धान्य छतादि सदैव दक्षिणाके साथ विग्रभित् नामक अतिरात्र यज्ञ करना चाहिये। अध्वर्य प्रभृतिका देमात् वा स्व कार्ये क्रिया न जानीसे अदक्षिणाभावमें ही कर्म समापन कर पुनर्वार अन्तकी वरणपूर्वक याग आरम्भ करनेका विधि है। उसमें दिनके भेदका विशेष नियम है। दीक्षित ब्राह्मिकी पक्षी यदि रक्षयना हो, तो दीक्षादप गद्दुतिथान कर रक्षयत्रय पर्यन्त वासुकांम अथक्रान-

हिन्दुधर्ममें यह बहुत छोटे समझ जाते हैं। डोगा और हाकिमोंकी छोड़ दूसरी कोई जाति इनका पुत्र पाने नहीं जोते। कादर मुहम्मद और कहराका पत्र था जेते हैं, किन्तु यह साग इनका पत्र प्रदत्त नहीं करते। यह लोग गोमाघ, गूकरमाघ, सुरगा तथा चहा घाते और मर्यादि भी पो जाते हैं। कभी कभी कति और कुम्हारोंकी पूजा होती है।

कादर हिन्दू होते भी अपर पश्य जातियोंकी भांति कुम्हारोंका पश्य हैं। इनमें कतिने जो लोग विभाग करते कि कुछ विशेष शक्तिप्राप्त पददेवता इनकी शारीरर रहते हैं। उन देवतापामें अनेक इनके पूर्वपुरुषोंके आत्मा होते हैं। टुमरे लोमिके विभागासुसार पददेवता कहीं नहीं, फिर भी नदी पर्वतादिमें शक्ति उद्भूत होती है। उसकी कोई मूर्ति वा प्रतिमा मागे नहीं जाती। कहीं छोड़ीछी रंगी मूर्तिका और कहीं एक शष्प हिन्दूसेवित प्रस्तर शष्पमात्र भगवान्के चहृशमें मार्गके मध्य प्रतिष्ठित रहता है। उक्त मज्जम प्रतिष्ठित देवताधर्मोंमें कारुदानो, हर्दियादानो, विमरादानो, पहाड़दानो, मोहन, हूया, लिनु, परदीना इत्यादि प्रधान हैं। इनके मतमें लोग समझ नहीं सकते उक्त पददेवता लोग लोग शक्ति रखते हैं। कादरके कथनानुसार उक्त मज्जम पददेवताधर्मोंकी पूजामें पचहत्ता करनेसे दिग्में माना पचहत्त होते हैं। पूजाके समय यह लोग गूकरमाघक, हागल, कभूर, और सुरगा काट कर बढ़ाते हैं। मर्याकी गिरा और एतादिका एकत्र किया जाता है। इनके देवता कहीं स्थापित रहते, उन लुखीकी सरना कहते हैं। नापित ही इनके पुराहित हैं। उगासक पूजाका दृश्य घाते हैं। यह पदमेंको हिन्दू बनते और परमेश्वर महादेव, विष्णु प्रकृति नामोंपर विभास करते हैं।

दासिपासके कादर पर्वत विभागमें पाय करते हैं। यह मुस्लिम और मानव आचमनर जातिपर प्रसृत पजाते हैं। कभी कभी लोग और कुछ सत्तादि बहन करते भी दासादिके कार्यमें बहन रहते हैं। पजे-दार कहनेमें बुरा मानते हैं। यह बड़े रिवाजी, मल्-

वादी और बाबू होते हैं। कुचित कोशिका संभार रहता है। मनमें हरिदा, चटरक, मधु, मोम रसाइयो, रोठी, माज्जक इत्यादि संघट्ट कर बाबल और तम्बाकूके साथ बढकते हैं। यह चंगरेकी जगहमें जो पोल खाते, उसका महत्त्व नहीं चुकाते। कोविन-रात्रके पधित्त वनमागमें दसायथी संघट्ट करनेके लिये केवल वार्षिक १०००० रात्रत देते हैं। कादर वनमें पय प्रदर्शकका कार्य करते हैं, किन्तु कभी बोध नहीं होते।

कादसेय (सं० त्रि०) कदसेन निरुचाम्, कदम-उत्प० । कदल निमित्त, केसेका यना हुआ।

कादा (हिं० पु०) कजाजकी एक घटरी। यह गहरीरों और कड़ियाके नीचे जगती है।

कादाविल्क (सं० त्रि०) कदावित् भवन्, कदावित्-उत्प० । समय पर होनेवाला, जो कभी कभी हो।

कादाविल्कता (सं० घो०) कादाविल्कस्य भावः, कादाविल्क-तन्-टाप् । कदावित् उत्पत्ति।

कादिपुर—पनध प्रदेशके सुलतानपुर जिलेकी एक तहसील। यह पचा० २४° ५८' ३०" से २६° २३' ३०" और देगा० ८२° ८' से ८२° ४४' पू० तक पसरित है।

इसके उत्तर पञ्जवरपुर तहसील, पूर्व पाल्पगढ़ जिला, दक्षिण पसी तहसील और पश्चिम सुलतानपुर तहसील है। भूमिका परिमाण ४३८ वर्गमील है। यहां सुलतानपुर और भीमपुरकी सड़क पामिली है। राजकुमार जमिन्दार है। माघप बहुत रहते हैं। तहसीलकी छोड़ बागा और रकूल भी है। एक देशीय बंक खुला है। बाजार बहुत छोटा है। भूमि समान-सुवविभित है। नामे चांगे और भी है। बड़ी नदी पर पुन संघा है।

कादियान—बोरनिघो डोपवाघी एक पनायें जाति। पालकल दृग जातिमें सुगममान धर्म संघट्ट कर लिया है। कादियान ही—बोरनिघो डोपके आदिम पधियागे हैं। यह सरन और गान्तिवि हैं। इनकी जिवा पधिक सुती जाती है।

कादिर—[मेष पशुन कादिरका उपनाम। बाहम-गीरके पुत्र गजनादे सुहस्यद बनकरने रने बनना

करना चाहिये। मृत्यु वतमान रहते चिकित्सा में उपवेशन करते हैं। प्रातःकाल और सायंकाल वेदीके निकट चिकित्सा पर बैठते हैं। चतुर्थ दिवस गोमूत्रमिश्रित जल द्वारा स्मृतिविहित स्नान कर वस्त्र परिधानपूर्वक सात्रिपातिक कार्य करना चाहिये। आरात्उपकारक कर्म कर्तव्य नहीं। (दीक्षणीय भूमि छलेखन प्रभृति कार्यको आरात्उपकारक कार्य कहते हैं।) पत्नी प्रसूना होनेसे दश रात्रिके पीछे स्नान करना चाहिये। मतान्तरमें गर्भिणीको दीक्षा का निषेध है। किन्तु "भयप्रियाः गर्भाः" श्रुतिके अनुसार गर्भवतीको भी दीक्षामें अधिकार है। कात्यायनका यही मत है। दीक्षित व्यक्तिके दुःखप्रादि दर्शन प्रभृतिमें प्रायश्चित्तका विशेष विधि है। चमसके पान और अपान स्वयम्बमें प्रायश्चित्तका विधान है। सोमके उपर मेघ वरसनेसे भक्ष्याभक्ष्य नियमपूर्वक उसमें प्रायश्चित्तका विधि है। चमसके दोषविषयमें और द्रोणकलसके दोषविषयमें प्रायश्चित्तका विधान है। अश्विभेदनमें सोमभेद प्रायश्चित्त है। ११य कण्डिकामें सोमका अपहरण होनेसे अथवा रक्षिमायुक्त पुष्य और षण्य सोमकार्यमें निधान कर अभिषव करनेका विधि है। बहुकालीन खदिर वृक्ष लताकी भांति अद्भुत होनेसे श्येनहृत कहाता है। श्येनहृत यव श्यामा (सोम-सहय पूतिका नामक एक लता), अरुण यव दूर्वा, अथवा रक्षिमायुक्त दूर्वा, हरित्वर्ण कुम अथवा अश्वक कुम—सकस द्रव्यमें पूर्य पूर्य द्रव्यका अभाव जानेसे पर पर द्रव्य प्रतिनिधान कर अभिषव करनेका नियम है। उसमें गोदान प्रायश्चित्त कर उक्त द्रव्य द्वारा यज्ञ समापन कर्तव्य है। अथवा पीछे पुनर्वार उसमें यज्ञविधि है। सोमकलसके भेदात्सुसार सामपाठके प्रायश्चित्तका विधान है। अभिषवण कर्ममें प्रवृत्ति परिमित सोमरस प्राप्त होनेसे जसादि द्वारा उसे बड़ा कलस पूर्ण कर द्रोणकलसकी पूर्णता सम्पादन करना पड़ता है। सोम पीछे मिलने पर जो द्रव्य मिल सके, उसे ही का पुनर्वार यज्ञ करनेका विधि है। उसमें गोदान प्रायश्चित्त करनेका नियम है। ११य कण्डिकामें

सोमका अधिकार होनेसे अथवा प्रभृति सवनविशेषके अनुसार प्रायश्चित्तके भेदका विधान है। दीक्षित व्यक्तिके रोग लगनेसे द्रोणकलसमें जो शृङ्खिपिप्ली प्रभृति सवन किया जाये, उसके मध्य जो द्रव्य लेनेकी इच्छा हो वही लेकर चिकित्सकको उसको चिकित्सा करना चाहिये; किन्तु तदव्यतोत अन्य द्रव्यद्वारा चिकित्सा विधेय नहीं। उसका विधानादि है। ज्वरयुक्त व्यक्तिके लिये भी पूर्वोक्त दशमें प्रवस्थानकाल पर्यन्त रोगकी ग्रान्तिका विधान है, अन्यत्र नहीं। प्रातःसवनमें उसके मन्वविशेष द्वारा अभिषेकका प्रकार है। सवनके पीछे दीक्षित व्यक्तिको ससुदाय ऋत्विक् स्पर्श करते हैं। उसमें यज्ञमानके मन्वभेद द्वारा स्पर्शका विधि है। दीक्षित व्यक्तिका मृत्यु होनेसे उसको जलाने पीछे उसका अस्थिसमूह कृष्ण-शृगके चर्ममें बांध ऋत व्यक्तिकी पत्नीको स्त्रीय कर्म और पतिका कर्म सम्पादन करना चाहिये। पत्नीका मृत्यु होनेसे उसके नेदो भ्रातादि दीक्षित ही यज्ञ समापन करते हैं। इसी प्रकार मतान्तर मिलता है। किन्तु किसीके मतमें मृत्यु होनेसे यज्ञका भी समापन होता है। उभय पक्षपर उसमें प्रायश्चित्तका विधानादि है। ११य कण्डिकामें उवाभरणके दिन यज्ञमानका मृत्यु होनेसे विशेष प्रायश्चित्तका विधान है। यज्ञकी दीक्षाके मध्य ही मृत्यु होनेसे उक्त सोमादि कार्यके लिये दीक्षित व्यक्तिको कर्मफल होता है। किन्तु मतान्तरमें कहा है—दीक्षित व्यक्तिके भ्राता प्रभृतिको ही प्रकृत यज्ञफल मिलता है। स्वकीय अग्निमें स्वकीय द्रव्य द्वारा सामिक नेदो उवादिकर्तव्य मानवित्यादि यज्ञ अनुष्ठित होनेसे नेदोको ही फलप्राप्ति होती है। किन्तु प्रकृत यज्ञफल यज्ञमान पाता है। उसमें उपदीक्षी व्यक्तिको नवहृदनके दिनसे हादश दिन पर्यन्त सात्रिपातिक करना चाहिये। यदि नेदो अहितान्ति न हो, तो यज्ञकारो व्यक्तिका ही अग्निमें कार्य करना पड़ता है। उसमें वेदान्तरनिर्वाय नामक प्रायश्चित्तका विधान है। १४य कण्डिकामें एक राजाके अधीन दो यज्ञमान यदि पर्वत वा नदी प्रभृतिके व्यवधानमूल्य समान, दशमें यज्ञ करे, तो

मुंशी बनाया था। इन्होंने एक 'दीवान् लिखा' है।
२ वलीर खान्का उपनाम। यह आगरेके निवासी रहे।
आलमगौर और उसके दोनों उत्तराधिकारी इन्हें बहुत
चाहते थे। १७२४ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने एक
दीवान बनाया है। ३ बदाऊंवासे शब्दुल कादिरका
उपनाम। इन्हें लोग कादिरों भी कहते थे।

कादिर (सं० स्त्री०) खदिरसार।

कादिर खली—एक मुसलमान वीर। प्रायः सन् ५२७
हिलरीकी सीजोखानमें इन्होंने जन्मग्रहण किया था।
उसके पीछे कुतब-उद्-दीनके राज्यकालमें यह अफगिर
गये। वहाँ सेयद हुसैन मगदीकी कन्यासे इनका
विवाह हुआ। ६२८ ई० का यह भर गये। १०२७
हिलरीमें जहाँगौर बादशाहने इनकी कब्रके पास
एक सुन्दर मसजिद बनवायी थी। इनके अरपार्थ
नगरमें भी एक मसजिद है। मोयला मुसलमान
कादिर खलीकी बड़ी अहामक्ति करते हैं। ११ वां
जमाद-उल्ल-अखीर इनके उत्सवका दिन है।

कादिरगञ्ज—युक्तप्रान्तके पटा जिलेका एक गाँव।
यहाँ कंकड़के बने एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष
विद्यमान है। कादिरगञ्जमें शरबी भापाकी एक
शिलालिपि निकली थी। उसमें लिखा है,—यहाँ सन्
११०४ हिजरीकी आलमगौरके राज्यकालमें शजात
खानकी दरगाह बनी थी।

कादिरशाह—मालवके एक बादशाह। सम्राट् हुमायूँने
मालवी अधिकार कर अपने अफसरोंके हाथ छोड़
दिया था। किन्तु उनके आगरे वापिस जाते ही
पूर्वतन खिलजी राज्यके एक पदाधिकारी सुभू खान्ने
वारह मास दिनीके अफसरोंसे लड़ नर्मदा और भेलसा
नगरके बीचका समस्त देश अधिकृत किया तथा
अपना उपाधि कादिरशाह रख लिया। इन्होंने
१५४२ ई० तक राज्य चलाया था। पीछे शेरशाहने
मालव अधिकार किया और इनके मन्त्री एवं सम्बन्धी
शजा खान्को राज्य सौंप दिया।

कादिरों—१ शाहजहाँके ज्येष्ठ पुत्र शाहजादे दारा-
मिकौदका उपनाम। २ बदाऊंके शब्दुलकादिरका
उपनाम। (अ० स्त्री०) ३ बीसी।

कादीहाटी—ब्रह्मसके चौबीसपरगनेका एक नगर।
यह पचा० २२' १८' १०" उ० और देशा० ८८'
२८' ४८" पू० पर अवस्थित है। साधारण लोग इसे
कोटिटी कहते हैं। यहाँ प्रायः ५००० पादमी रहते
हैं। विद्यालय और डाकघरकी छोड़ कादीहाटीमें
अनेक सम्मान्य लोगोंके घर भी बने हैं।

काद्रीय (सं० पु०) कद्रोरपत्न्य पुमान्, कद्रुठक्-
अपदिप्यश्च। वा ४५। १२२। १ कद्रुके पुत्र। शिप, चनन्त,
वासुकि, तक्षक, सुजङ्गम और कुलिक 'काद्रीय'
कहाते हैं।

२ अर्बुद। ३ कसर्परि।

कान (हिं० पु०) १ कर्ण, गोग। कर्णेश्च। २ अयव-
यक्ति, सुमनेकी ताकत। ३ कथा, सक्कीका एक
टुकड़ा। इसे हलके भागे कूड़ चौड़ा करनेकी बांधते
हैं। ४ स्वर्णालहार विभिय, एक गहना। इसे खानने
पहन्ते हैं। ५ महा काम। ६ कनेध, चारपायीका
टेषापन। ७ पसंगा। ८ रंजकदानो, पियाली।
(स्त्री०) कानि देवो।

कानक (सं० स्त्री०) कनक फलमिव उग्रं फलं चन्द्रस्य,
कनक-अण्। १ लोपालवीज, जायफल। राजवत्समके
मतानुसार यह तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, शरक और उत्-
क्लेदकारक है। २ धुसूरवीज, घमुरका वीज। (त्रि०)
३ कनक सम्बन्धीय, सोनेका बना हुआ।

कानकचूर्ण (सं० स्त्री०) भीषघविभिय, एक दवा।
शुद्धधूम, यवचार, त्रिकटु, पाठा, रसाञ्जन, चव्य,
त्रिफला, कारित सौह और चित्रक बराबर बराबर
कूटपीस कर क्षान्नेसे यह बनता है। इसे मधुके मास
सुषुम्ने रखनेसे सुखरोग श्मारोग्य होते हैं। (शारङ्गदेरी)
कानगी (हिं० पु०) उचविभिय, एक पेड़। यह
कोहण देशमें होता है। इसका तेल पोना रहता
और दवा बनाने तथा लसानीमें लगता है। फल
चायफलसे मिलता है।

* "श्री कौशिकी वादिकि तक्षकश्च सुजङ्गमः।

पुत्रं च कुलिकश्च काद्रीयः प्रकीर्तितः।

(मेघनाथ १। ६२। ७१)

उपमें मोमसंभव होता है। फिर यदि परस्पर विरोधी दो यज्ञमान दूनों प्रकार एक स्थानपर यज्ञके लिये मोमका अभिषेक करें, तो मिलित भावमें कार्य करनेके लिये उनको संभव कहते हैं। उपमें समुदाय कर्म मत्वर सम्पादन करना उचित है। देशकाल भिन्न होनेसे, पर्वतादिका व्यवधान रहनेसे और परस्पर विरोधी होनेसे वक्ष संभव नहीं होता। इसी प्रकार भेटका कथन है। संसयविषयमें भवनी भांति मृत्यु-कामनाकारी होनादिकर्तक कर्तव्य कर्मविशेषका विधान है। यथा—होताके मृत्युकामनाकारी होता, अध्वर्युके मृत्युप्राप्त्यर्थे अध्वर्यु और यज्ञमानके मरण-काही यज्ञमानको वही कर्म सम्पादन करना चाहिये। यह यज्ञ परस्पर द्वेष रहनेसे दोष देगमें अनुष्ठित होता जहाँ यद्यपि वृष्ट एक दिनमें जा सके। परस्पर द्वेष न रहने भयवा उक्त नियमकी अपेक्षा देगका दूरत्व पड़नेसे अनुष्ठान असंभव है। पूर्वोक्त होता प्रभृतिके मध्य एक जनमात्र कर्मका अनुष्ठान करनेसे भयवा एक जन मरनेसे स्व स्व यज्ञमध्यवर्ती अध्वर्यु प्रभृति भवगिष्ठ कर्म सम्पादन करे। उपमें अन्य वरपकी अपेक्षा करना नहीं पड़ती। सोमादि जल जानेसे प्रतिनिधि द्रव्य द्वारा कर्म समापन करना चाहिये। पशु गोदान कर यह यज्ञ समापन करनेका विधि है। दादग रात्रिके पूर्व यह दोष जानेसे पुनर्वार यज्ञारम्भ और परिशेषकी पशु गोदान दक्षिणामात्र प्रायश्चित्त करना चाहिये। इसी प्रकार मत्तान्तरका विधान है। मत्तका ही विहित कर्ममें अधिकार रहने और विशेष प्रादेग न मिलनेसे समुदाय प्रायश्चित्त होममें ब्रह्मका अधिकार है और मत्तशुभ्य अग्निहोत्रादि कार्यमें यज्ञमानके ही अधिकारका विधि कहा है।

२६म अध्यायमें ६ कण्डिका है। इन समस्त कण्डिकाओंमें प्रथमका उपयोगी महावीरसन्तारक कर्म प्रतिपादित है। (यथा—मृत्युपिष्ट, वल्लोक-मोद्ग, शूकरकर्तक सपाटित मृत्तिका, मृत्तिका नामक मत्ताविशेष और गवेधुक नामक जलसञ्चिहित महावृक्षमात्र शूलकलविशेष—समस्त द्रव्य मद्यय-पूर्वक पूर्वदिक् वा उत्तरदिक् रथ क्षत्र्यग्नयमें और

कुहालकी उत्तरदिक् रचना चाहिये।) उक्त समस्तके प्रथम और निधानका मन्त्रकथन है। उपमें शुभकारकत्क भाष्ठादि निर्माणकी उपयोगी एवं पति विक्षय मृत्तिका प्रथम करना पड़ती है। ऐसी मृत्तिका क्षत्र्यग्नयमेंकी उत्तरदिक् रचना चाहिये। उसकी दक्षिणदिक् वल्लोकमोद्ग रचते हैं। सम-चतुष्कोण भूभागकी पूर्वदिक्में द्वार और सात बार मूंसंस्कार कर उसके ऊपर वालुका पाष्ठादनपूर्वक उपमें पञ्च भरद्वाज पर्यात् प्रायः पंच दाय परिमित मृगधर्म डाल उसके ऊपर उपकरणसमूह रख देना चाहिये। उल्लेखन, जलधारा, अभिषिञ्चन और सन्तार द्वारा संसर्गविषयमें मन्त्रसमूहका कथन है। उसके अनन्तर अध्वर्युका गवेधुक और क्षागुप्त्युक्त भावसे रख वल्लोकमोद्गादिके साथ मृत्युपिष्ट मिलाया चाहिये। उसके पीछे महावीर कर्तव्य है। उक्तका स्वरूप है। (यथा—परिमाणमें एक प्रादेग पर्यात् पार्थ हस्त और मध्यदेश उन्नतकी भांति सङ्घटित रहता है। उपरिभागमें तीन चतुर्भुजपरिमित स्थानके अनन्तर ही यह सङ्घटित मिलना लगाना पड़ती है।) महावीर निष्पन्न होनेसे "मच्छय मिवः" मन्त्र पाठ-पूर्वक उसके स्पर्शका विधि है। किसीके मतमें इस मन्त्र द्वारा उसका मद्य है। इसी प्रकार चर दो महावीरका विधान है। अभिसर्गके पीछे समुदायकी भूमिमें निहत करनेका विधि है। सृक्के सुग्रीवी भांति प्राकृतिविगिष्ठ, रोहित्य कपाल एवं वक्ष्यमाण पुरोडागकपालकी भांति गोसाकार दोहनपावश्य भूमिमें स्थापनकर भवगिष्ठ मृत्तिका प्रायश्चित्तके लिये निहत करना चाहिये। "मच्छय त्वेति" मन्त्र पाठ-पूर्वक गवेधुकसमूह चूर्णकर पश्चिमोत्तरीय द्वारा प्रदीप्त दक्षिणाम्निमें "समन्त्र्य त्वेति" मन्त्र पाठपूर्वक रथ मृत्तिकाका धूपदान करने है। उसकी भांति प्रदाहन आदिका विधि है। चतुष्कोण पर्यट बना उपमें यवण पर्यात् पाकसाधन काष्ठादि बिजा उसके ऊपर तीन महावीर वक्र भावसे रचने पड़ेंगे। पीछे उसके ऊपर पुनर्वार इस पाठका आम्पादन उक्त दक्षिणाम्नि द्वारा लगाना चाहिये। दक्ष होने पर फिर

कानड़गोड़ (सं० पु०) कानड़ा और गोड़की उत्पन्न एक राग ।

कानड़गट (सं० पु०) कानड़ा और गटके संयोगसे निकला एक राग ।

कानड़ा (सं० स्त्री०) एक रागिणी । इसका स्वरराम नि मा ष ग म प ध है । ११से १५ दण्ड रात्रि चढ़ते यह गायो जाती है । भिन्न भिन्न राग-रागिणीसे मिलने पर १८ प्रकारके भिन्नकानड़ाकी उत्पत्ति होती है,— १ दरबारी कानड़ा, २ नायकी कानड़ा, ३ सुद्रा कानड़ा ४ कामिकी कानड़ा, ५ वागीश्री कानड़ा, ६ गट कानड़ा, ७ कापी कानड़ा, ८ कोलाबल कानड़ा, ९ मद्रस कानड़ा, १० ग्लाम कानड़ा, ११ टड्ड कानड़ा, १२ नागधनि कानड़ा, १३ चढ़ागा, १४ भाषाना, १५ घुषा कानड़ा, १६ सुपर कानड़ा, १७ दुसिनी कानड़ा और १८ मियांकी उपलप्यती ।

कानड़ा (हिं० वि०) १ काप, काना । २ चण्डो रागीका घर । यह माल समुन्दर खेतमें होता है ।

कानद (सं० पु०) धीमरके पुत्र ।

कानन (सं० स्त्री०) कं जलं चमनं लोचनं चण्ड, यदुभौ- यदा कानयति दीपयति, कन-विष्-स्युट् । १ वन, जंगल । कण्ड मद्रवः चाननम् । २ मद्राका सुख । ३ शूद्र, घर ।

काननचन्द्र—टिकारीके एक विख्यात राजा ।
(ईशानी ११। १। १)

काननाग्नि (सं० पु०) काननाघ्रातोऽग्निः, मध्य-पटनी० । दावानल, जंगलमें जगनेवाली आग ।

काननारि (सं० पु०) काननस्य परिरिय, उपमित समा० । रामीरुच, कुमतिवा पेड़ । इसकी मध्यस्थित आषा रमद्रमेंसे अग्नि प्रज्वलित हो ऊभो ऊभी समप बन लवा आसता है । इसीसे इसको 'काननारि' (लहानका दुग्मल) कहते हैं ।

काननीका (सं० पु०) काननं चोक्तः श्यामवर्ण, यदुभौ० । १ वनवासी, कङ्कणमें रहनेवाला । २ कपि, जङ्गल । ३ वातर, बन्दर ।

कानपुर—कुम्भनदेवका एक जिला और नगर । यह जिला अक्षा० २३' २६' से २६' ३८' उ० और देशा०

०८' ११' से ८०' ३४' पू० तक अवस्थित है । कानपुर इलाहाबाद विभागके पश्चिमीमें पड़ता है । इसके उत्तरपूर्व गङ्गानदी, पश्चिम फर्रुखाबाद तथा इटागा, दक्षिणपश्चिम यमुना और पूर्व फतेहपुर है । इस जिलेका सदर मुकाम कानपुर नगर है ।

कानपुर जिला गङ्गा-यमुनाके पलायन सुविख्यात दोबाब प्रदेशका मध्यवर्ती है । इस जिलेमें गङ्गा और यमुनाकी छोड़ दूधरी भी अन्य सुदृ सुदृ नदी हैं । साधारणतः भूमिका भाग दक्षिण-पश्चिमके पश्चिमसुध टान् पड़ता है । चार प्रधान सुदृ नदियोंके कानपुर जिमा चार प्रधान भागोंमें विभक्त है । गङ्गाकी उपनदी ईरगामने उत्तर दिक् एक खण्ड तिकौंथाकार भूमिको घटि दिया है । मध्यमें घाण्डु (पांडव) और सिन्ध दो नदियोंमें दूधरी दो विभाग बने हैं । फिर अरविष्ट भूखण्डके मध्य यमुनाकी उपनदी सेतुंर वर्तमान है । इन सबके नदियोंका तोड़ फोड़ बहुत अधिक विस्तृत और गभीर है । कानपुर जिलाके मध्य गङ्गा यमुनामें वर्षाके समय बड़ी बड़ी नौका आ-आ चलती है, किन्तु अन्य समय सुदृ सुदृ नौका स्थित बड़ी नौकायेंका चलना याठिन है । सुदृ सुदृ नदी वीरकासमें प्रायः सूख जाती हैं । १८५०ई० तक कानपुर नगरके नीचे पाने-पानेकी गङ्गापर लावका पुत्र रंधा था । फिर अवध-इहेसखण्ड ऐतवधके लिये गङ्गापर पट्टा पुल बना । पात्रकल को० एन० डबल्यू० चार० ने भी अवध दूधरा पट्टा पुल बनवा लिया है ।

कानपुर जिलेकी भूमि अभावतः सफ़ है, किन्तु यह गङ्गाके नहर निक्षलनके कारण अधिक उर्वरा और अच्छाभिलो बन गई है । इन नहरकी माताप्रगाणा-के छोड़ समस्त जिलेमें खल पट्टेबाजेका प्रबन्ध रंधा है । इस जिलेमें कई झील हैं । सिवन्दरा परगनेमें सोना झील है ; यह सिवन्दरेके आंगिनोपुर तक चलती गई है । सोना झील यमुनामें दो झील दूर है । यमुना पानकल जहाँ जैसे जितनी सुख सुख कर बड़ी है, यह झील भी टीक इतके समानाकार भागमें भेजे हो पुन पुन कर चली है । इसीसे कोई कोई सोना झील को टमना नदीका प्राचीन नाम बताते हैं । किन्तु

यह सब ऋगदुग्धसे सीवना पड़ेगा। २य कण्डिकामें महावीरकी विधान पीछे प्रथमके आचरणका विधान है। गार्हपत्यके पूर्व प्रागप्रकृतसमूह फैला उस पर पावससमूहके स्थापनका विधि है। प्रोक्षणी संज्ञात और उल्लित कर व्रह्मकी पतुजाका करण है। होत्रादिका प्रेरण है। गृहके पूर्वधारसे स्तूपा और मयूख निकाल गृहकी दक्षिणदिक् जहां बैठ होता निखात स्तूपा और मयूख देख सके, वहाँ उसके निखात करनीका विधि है। गार्हगत्य और आहवनीयमें उत्तरदिक् खरनिवाप है। दक्षिणदिक् भित्तिलग्नभावसे उच्छिष्ट खरनिवापकी कर्तव्यता है। आहवनीयकी पूर्वदिक् सन्नाडासन्दी आचरण कर दक्षिणदिक् प्राचीग्रहण होता है। उत्तरदिक् राजासन्धा और क्रथ्याजिन आस्तरण कर उसमें महावीर निधान अथवा उसके द्वारा आच्छादन करना चाहिये। अध्वर्युं वा अन्य कीर्ति स्तूपादि निष्क्रामन करेगा। पीछे विहित सिकताके मध्य महावीरका प्रवेशन कड़ा है। ३य कण्डिकामें प्रस्तोताका प्रेरण है। पत्नीगिरिका आच्छादन है। आज्यसंस्कारके काल शरदण जला सिकताके मध्य स्थापनका विधि है। उक्त सकल सुश्रुतसम्बन्धमें संस्कृत द्रव्यपूर्ण महावीरका निधान है। महावीरके ऊपर प्रादेशधारक मन्त्रका पाठ है। दक्षिणदिक् यजमानके उत्तान पाणिका निधान है। उत्तरदिक् प्रादेशका निधान है। महावीरकी चतुर्दिक् भस्मलेप कर परिश्रवणका विधि और महावीरके आच्छादनका विधि कथित है। ४थ कण्डिकामें आच्छादनके समय प्रस्तोताका प्रेरण है। महावीरकी चतुर्दिक् क्रथ्याजिन निर्मित व्यजन द्वारा व्यजन करनेका विधि है। व्यजनके समय वाम और दक्षिणभाषसे तीन बार प्रदक्षिणका विधान है। तीन प्रदेश होनेसे उसमें सौ तोसे द्रव्य महावीरके सीवनेका विधि है। उसी समय प्रतिप्रस्थाताके चरुपाकका विधि है। पाकशेष पर चरुके स्थापनका नियम है। प्रस्तोताका प्रेरण है। यजमानके साथ ऋत्विक्की परिक्रमण है। प्रस्तोता यतीत अपर पक्ष ऋत्विक्के उपस्थानका विधि है। प्रस्तोताके साथ ऋत्विक्की परिक्रमणका विधि

है। पत्नीके गिरिका आच्छादन खीन उसके द्वारा महावीरमोक्षणविधि है। परिश्रवणी रोद्धिण आहुतिकी विषय कथित है। ५म कण्डिकामें धर्मयुक् बन्धनके लिये रज्जु और उसके पद बन्धनकी सन्धान ग्रहणपूर्वक गार्हपत्यमें जा मन्त्र एवं उपांश नाम आचरणपूर्वक उचोःखरसे तीन बार उसके आच्छानका विधि है। प्रस्तोताका प्रेरण है। मन्त्रपाठके पतुसार समागत गीको उक्त रज्जु द्वारा स्तूपामें बांध और सन्धान द्वारा उसके पद बन्धन कर "धर्मय दीव्येति" मन्त्र पढ़ वस्तुकी स्तानयानसे विरत करना चाहिये। विहित मन्त्रपाठपूर्वक पिन्वन नामक पात्र-विशेषमें उसके दोहनका विधि है। स्तानान्धनका विधि है। ऐसे ही मयूखमें ऋग बांध प्रतिप्रस्थाता उसकी दोहन करेगा। प्रतिप्रस्थाताके प्रेषणका विधि है। गीके निशटसे अध्वर्युंके उत्थानका नियम है। परोयासद्वयके ग्रहणका विधि है। परोयासद्वय द्वारा महावीर ग्रहण एवं उद्धे उत्थितकर पुनर्वार उद्धे ग्रहण करनेका नियम है। दुग्धरूप धर्मके निन्देगमें उपयमनीका स्थापन है। उपयमनी द्वारा गृहीत महावीर पर ऋगदुग्ध सेवन कर निर्वाचित करने और गोदुग्ध उपयमन करनेका विधि है। ६ठ कण्डिकामें आहवनीयमें जा यातनाम जपका विधि है। उपयमनीमें पतित दुग्ध वा द्रव्यका सिञ्चनविधि है। जपके पीछे प्रस्तोताके प्रेषणका विधि है। षट्कारके साथ मन्त्रपाठपूर्वक होमका विधि है। तीन बार महावीर उक्तमन करनेका नियम है। षट्कारयुक्त मन्त्रपाठपूर्वक पुनर्वार होमका विधि है। इतानगिष्ट द्रव्यका ब्रह्मातुर्मंत्रण है। यजमानकर्मके धर्मका पतुक्रमण है। पतितद्रव्यके लिये पात्रमें उच्छ्लिषित धर्मके लिंगसमूहका पतुमन्त्रण है। ईग्रागदिकुकी गमन कर सिकताके मध्य आध्वर्युं कर्मके महावीरके निधानका विधि है। निन्दस्य धर्मके मध्य शकल डाल आहुतिदानपूर्वक प्रथम परिधिमें विक्रमण शकलसमूह निधान करनेका विधि है। ऐसे ही तीन बार आहुति दे षवगिष्ट शकल दक्षिणदिक् कुगमें प्रेषण करा देना चाहिये। अहुत सप्तम शकल महावीरस्य द्रव्यद्वारा

भाल भी इस संख्यत्वमें कोई प्रमाण वा प्रतिवाद नहीं मिलता। इसी प्रकार रसूलावाद और गिवराजपुरमें २५ मील विस्तृत स्रोत है। इसे भी लोग प्राचीन नदी का गम मानते हैं। इस जिलेमें जंगल न होते भी स्थान स्थान पर भूमि पड़ी है। पतित भूमिमें किंशुक (टाक) हथ ही अधिक विद्यमान है। कानपुर जिलेमें चीता, बाघ, नोलगाय, हरिण, लोमड़ी, गृगास, गृकर इत्यादिको छोड़ अन्य कोई वन्य जन्तु देख नहीं पड़ता।

इस जिलेमें युद्धप्रान्तके सब जातिवासे हिन्दू, सकल श्रेणीके मुसलमान और यूरोपीय रहते हैं। ग्रामका सामाजिक बन्धन अन्तर्वेदके अन्यान्य स्थानकी भांति है। जमीन्दार ही प्रथम गण्य है। प्रधानतः ब्राह्मण और राजपूत ही जमीन्दार होते हैं; उसके पीछे साविक अधिवासियोंके अंगधर लक्ष्य हैं। यह जमीन्दारोंकी जमीन बंशानुक्रमसे मोरुसे तौरपर जोतते हैं। फिर बनिथा और दुकान्दार हैं। इसी प्रकार टुधरे किसान, नार्ड, सोडार, कुन्हार इत्यादि रहते हैं।

कानपुर जिलेमें खेती वाराका विशेष प्रभेद देख नहीं पड़ता। दोबावके अन्यान्य खेतोंमें लेसी प्रपाशीसे लक्षिकार्य चलता, यहाँ भी वैसे ही जुवा करता है। कानपुरमें दो बड़ी फसले होती हैं। शरत्कालमें जेनिवाली फसलकी खरीफ और वसन्त कालमें जेनिवाली फसलकी रबी कहते हैं। ज्येष्ठकी प्रथम छट्टिमें खरीफ बोते हैं। इस फसलमें धान, मकई, बाजरा, ज्वार, कपास, नील इत्यादि होता है। इसका अधिकतम आश्रित भासमें पक जाता है। धान शीघ्र शीघ्र पकनेसे भाद्रमें भी काट लेते हैं, किन्तु कपास फासगुन ध्यतीत बुननेके लायक नहीं होती। रबी आश्रितमें बोई और चैत्र वैशाखमें काटी जाती है। इस जिलेका प्रधान खाद्य गेहूँ है। आज कल कानपुरमें कपास बहुत बाते हैं। कारण इससे लाभ बहुत होता है। यहाँ ऐसीजर नाग एक प्रकार छच्छन्द, संसारयात्रा चलते हैं। किन्तु चमार, काकी, झरमी प्रभृति लक्ष्य श्रेणी बहुत दरिद्र हैं। इसीसे कानपुरको दरिद्रता

प्रति प्रसिद्ध है। उत्तराखलमें ज्वार तथा गेहूँ और दक्षिणाखलमें बाजरा अधिक उपजता है। बिस्हौर, रसूलावाद और गिवराजपुरके दक्षिणागमें धान्य होता है। गिवराजपुरके उत्तरागमें नील ही प्रधान है। सकल चैत्र गङ्गाकी नहर, कूप, पुष्करिणी, गड्ढे, भील इत्यादिसे शीघ्र आवाद किये जाते हैं। कानपुरमें अनाहटिका भय अधिक रहता है, सुतरां दुर्भिक्ष भी यथेष्ट ठहरता है। प्रधानतः इस जिलेके पयिमागमें दुर्भिक्षके भयसे लोग चबराया करते हैं। कानपुरमें कई दुर्भिक्ष पड़े और उनसे लाखों लोग और जान-वर मरे हैं।

कानपुरसे गङ्गा, कपास और नालका वीज बाहर भेजते हैं। यहाँ जो नील उपजता, उससे केवल वीज ही संशुद्ध होता है, वह वीज बिहार प्रदेशमें अधिक विक्रता है। कानपुर नगरमें घोड़ेका साज, जूता, पोटापाटो इत्यादि चमड़ेका द्रव्यादि यथेष्ट और उत्कृष्ट रूपसे प्रस्तुत होता है। चमड़ेके कई कारखाने खुले हैं।

कानपुरके पुतलोहरोंमें रुईका कपड़ा भी बनता है। बहुतसे तखू और डरे तैयार किये जाते हैं। कानपुरके पुराने किलेमें गवरनमेण्टने अपना चमड़ेका कारखाना खोल रखा है। उसमें सेन्यका व्यवहार्य द्रव्यादि बनता है। सरकारी भाटकी कल भी है। इसमें सेन्यके लिये भाटा, सत्त इत्यादि तैयार करते हैं। रेलपथ, नदी, नहर, पक्की और कच्ची सड़क प्रभृति नानाविध पथ यथेष्ट है। आर्यावर्तका प्रधान मार्ग घाण्ट-ट्राइरीड गङ्गाके समाप्तरान इस जिलेमें प्रायः ६८ मील विस्तृत है।

यहाँ एक कलेक्टर मजिस्ट्रेट, दो ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट, एक एसिस्टण्ट और दो डिपटी मजिस्ट्रेट रहते हैं। सकल प्रकारके राजस्वका पूरा परिमाण ३६०२६०५ रु० है। पुलिस, टेलीग्राफ, विद्यालय इत्यादि सुविधाके अनुसार विद्यमान हैं।

कानपुर जिलेमें चार प्रधान नगर हैं। उनमें प्रत्येकमें ५ हजारसे अधिक लोग रहते हैं। प्रधान नगर कानपुरमें कीर् २०१००, बिठूरमें २०३३

लिप्त कर प्रतिप्रसताको देत है। उसके पीछे द्वितीय रोहिषर्ज होमका विधि है। मध्यम परिधिमें निष्ठम पक्ष विकटत शकल षाड्भनोयमें पाहुति देना चाहिये। उपयमनोष्ण धर्माव्य पन्निहोत्रके विधानानुसार पाहुति दे समुदाय ऋत्विक् प्रश्रुति भक्षण करते हैं। परमं चञ्छिह्रत धोत कर उपयमनोको निधान करना पड़ता है। इसी समय उपश्रित पक्ष शकल षाड्भनोयमें प्रहार किये जाते हैं। उसके पीछे धेनुको छप जल देनेका विधि है। समुदाय पात्रसमूह षासन्दा करनेका विधि है। खर, सूषा, मयूच, लघ्वाजिन, पन्नि, उपगय और पासन्दीके एक बार षासादन और प्रोक्षणका विधि कथित है। ७म कणिकामें उपसदके पीछे प्रथमं उक्तादनका प्रकार है। पदभ्यकी भांति पध्वर्यकटक सामगानके त्रिये प्रसोताका प्रेषण है। पदभ्यकी भांति देगगति और निधम है। सामगानके पीछे सकलके उक्तादन देगमें पर्यात् महावीरादि पात्रके त्यागदेगमें गमनका विधि है। उस त्यागमें यज्ञ पन्निचितिशुभ्य होनिसे सकलके उत्तर वेदिमें गमनका विधि है। किन्तु यज्ञ पन्निचितियुक्त रश्मिसे परिव्यन्में जाना पड़ता है। उक्त उक्तादन देग या उत्तर वेदि परिवेक कर उत्तर कार्यकी कर्तव्यता है। पध्वर्यकी उत्तर वेदिमें प्रथम महावीर और सर्वदिकमें चपर दो महावीर निधम करना चाहिये। यहाँ उपयया पर्यात् महावीरादिकी निर्माणावग्रेय श्रुतिका स्थापन करना पड़ती है। महावीरादिकी चारो ओर परीयासदय निधान करते हैं। नीचे ओर बाह्य देगमें रोहिषी एवं हरषी नामक सूक्ष्म निधान करना चाहिये। रोहिषीकी उत्तरदिक् पन्नि तथा दक्षिणदिक् षासन्दी और पन्निही उत्तरदिक् पन्नि पर्यात् लघ्वाजिन निर्मित ध्वजन समूहमें निधान करते हैं। उसके परिधि, उपयमनी, रक्त, सन्दा, विष्णु, रोहिष, कपाल, मू, चार प्रयति ओरादि धम पात्रके साद सकलके षात्यास

पीछे ध्वज प्रश्रुतिको याज्ञिक द्रव्यसमूहके प्रदानका विधि है। महावीर भद्र होनिसे यथाकाम प्रायचित्त करनेका विधान है। दस प्रायचित्तका प्रकारादि है। प्रथमं चै चरपका विधि है। उपमं पूर्णोहुति होमका प्रकार है। मन्ध्रियताप महावीर भग्न होनिसे उसके प्रायचित्तका नियम है। प्रथमंके पधिकारीका निर्देश है। हुतगेय द्रव्यके भक्षणका विधि है। प्रथमं-चरपके षाद्यन्तमें गान्तिकाध्यायके पाठका विधि है। इन दोनों अध्यायोंके मध्य १म पद्याय द्वापरिधान पीछे और २य अध्याय षासन्दामें पात्र निधानके पीछे पढ़ना पड़ता है।

कात्यायनसूत्रमें उक्त समस्त विषय प्रति विस्तृत भावसे वर्णित है।

निम्नलिखित व्यक्तिये कात्यायनश्रौतसूत्रका भाष्य बनाया है,—

१ अनन्त, २ कर्क, ३ कल्याणोपाध्याय, ४ गङ्गाधर, ५ गदाधर, ६ गर्ग, ७ पित्रमूर्ति, ८ भल्लंयज्ञ, ९ महादेव, १० मिश्राग्निहावी, ११ श्रीधर, १२ हरिहर। याज्ञिक-देवने श्रौतसूत्रपद्धति और पद्मनाभने कात्यायनसूत्रपद्धति नामसे अतन्त्र पद्धति रचना की है।

३ गोभिलके पुत्र कात्यायन। इन्होंने सृष्टार्थपद और कन्दोपरिग्रिष्ट या कामप्रदीप रचना किया है। किसी किसीके अनुमानमें श्रौतसूत्रकार कात्यायन और याति-प्रकेता कात्यायन उभय पन्निसे व्यक्तिये। न्युक्त समयकी रचनाप्रयासी देखें वैसे बोध नहीं होता।

हरिश्चन्द्रमें विग्रामिन्द्रश्रेणीय कतिके पुत्र कात्यायनो का नाम मन्त्रता है। किंर इसी विग्रामिन्द्र वंशमें

• "विग्रामिन्द्र वंशानुसारः कृतः ।
 विष्णुसंहिता, भाष्य, १००० नामानि के सूत्र ।
 ईश्वरः कर्कः ३ कल्याणोपाध्यायः कृतः ।
 महाभारत विष्णुसंहिता विष्णुसंहिता ३५ ईश्वरः ।
 काठ श्रौतसूत्रके सूत्रसूत्रेति विष्णुसंहिता ।
 मयूचको कर्कः ३ ईश्वरः कृतः ।
 पन्निही हरिश्चन्द्रके विष्णुसंहिता के सूत्र ।
 कात्यायन श्रौतसूत्रेति विष्णुसंहिता ।
 सूत्रसूत्रेति विष्णुसंहिता के सूत्र ।
 कात्यायनश्रौतसूत्रके सूत्र ।

कानड़गोड़ (सं० पु०) कानड़ा और गोड़से उत्पन्न एक राग ।

कानड़गट (सं० पु०) कानड़ा और गटके संयोगसे निकला एक राग ।

कानड़ा (सं० स्त्री०) एक रागिणी । इसका स्वरपान नि सा पर ग म प ध है । ११से १३ टण्ड रावि चक्रे में यह गायो जाती है । मिस्र मिस्र राग-रागिणीसे मिलने पर १८ प्रकारके मिस्रकानड़ाकी उत्पत्ति होती है,— १ टरवाती कानड़ा, २ नायकी कानड़ा, ३ सुदा कानड़ा ४ कामिकी कानड़ा, ५ बागीची कानड़ा, ६ गट कानड़ा, ७ काफ़ी कानड़ा, ८ कोराबल कानड़ा, ९ मद्रक कानड़ा, १० ग्याम कानड़ा, ११ टण्ड कानड़ा, १२ नागधनि कानड़ा, १३ चढ़ाना, १४ ग्राधाना, १५ रूधा कानड़ा, १६ सुधर कानड़ा, १७ ह्रुसेनी कानड़ा और १८ मियाची लयलयती ।

कानड़ा (हिं० वि०) १ खाद्य, ज्ञाना । २ चण्डो रानीका घर । यह मात समुन्दर खिलमें होता है ।

कानद (सं० पु०) धीमरपके पुत्र ।

कानन (सं० स्त्री०) कं जलं चननं क्रीडनं पक्ष्यं, मनुष्यो यदा कानयति दीपयति, कन-विच्-स्त्युट् । १ वन, लंगल । कन्य ब्रह्मणः काननम् । २ पत्नीका सुख । ३ पक्ष, घर ।

काननचन्द्र—टिकारीके एक विख्यात राजा ।

(ईसाके ११११११)

काननाग्नि (सं० पु०) काननाघ्रातोऽग्निः, मध्य-पदको० । दायानल, लंगलमें लगनेवाली आग ।

काननारि (सं० पु०) काननस्य परिचित, उपमित समा० । शमीवृक्ष, कुमतिवा पेड़ । इसकी मध्यस्थित दायाँ रगहनेसे अग्नि प्रज्वलित हो करी करी समस्त वन लला, ज्वलता है । इसीसे इसको 'काननारि' (जङ्गलका दुश्मन) कहते हैं ।

काननोद्या (सं० पु०) काननं कोकः काननपद्या, मनुष्यो० । १ वनवासी, जङ्गलमें रहनेवाला । २ कवि, कर्तुर । ३ वादक, वादक ।

कानपुर—पुञ्जन्देवका एक जिला और नगर । यह जिला अर्थात् १३' २६' से २६' १८" और देश०

०८' ११" से ८०' ३४' पू० तक अवस्थित है । कानपुर इलाहाबाद विभागके पश्चिमीमें पड़ता है । इसके उत्तरपूर्व गङ्गानदा, पश्चिम फर्रुखाबाद तथा इटावा, दक्षिणपश्चिम यमुना और पूर्व फतेहपुर है । इन जिलेका सदर मुकाम कानपुर नगर है ।

कानपुर जिला गङ्गा-यमुनाके पत्तमगत सुविख्यात दोवाय प्रदेशका मध्यवर्ती है । इस जिलेमें गङ्गा और यमुनाकी छोड़ दूसरी भी परमेश सुद्र सुद्र नदी है । साधारणतः भूमिका भाग दक्षिण-पश्चिमके अधिभुज टान् पड़ता है । चार प्रधान सुद्र नदियोंमें कानपुर जिला चार प्रधान भागोंमें विभक्त है । गङ्गाकी उपनदी ईशानने उत्तर दिक् एक पच्छ तिकोंवाकार भूमिकी बंटी दिया है । मध्यमें पाल्नु (पालन) और सिद्ध दी नदियोंसे दूरसे दो विभाग बने हैं । फिर अरविट भूपच्छके मध्य यमुनाकी उपनदी गेगुंर वर्तमान है । इन सबके नदियोंका गोड़ छोड़ बहुत पश्चिम विस्तृत और गभीर है । कानपुर जिलाके मध्य गङ्गा यमुनामें वर्षाके समय बड़ी बड़ी नौका आना सकती है, किन्तु अन्य समय सुद्र सुद्र नौका व्यतीत बड़ी नौकाईका चलना कठिन है । सुद्र सुद्र नदी पीछकालमें प्रायः सूख जाती है । १८५०ई० तक कानपुर नगरके नीचे पानी-जानेकी गङ्गापर नावका पुल बंधा था । फिर अथ-दहेनपण्डे रेलपथके लिये गङ्गापर पहा पुल बना । आजकल बी० एन० उपस्थ० चार० में भी पवनवा दूसरा पका पुल बनवा निधा है ।

कानपुर जिलेकी भूमि आभावतः उच्च है, किन्तु पत गङ्गाके नहर निकलनेके कारण पश्चिम उत्तरा और मध्यभागमें बग गदरे है । इस नहरकी मायावमाया-से छोड़ समस्त जिलेमें लल पर्ववाँसेका प्रथम बंधा है । इस जिलेमें कई झील हैं । पिबन्दरा पारमनेमें सोना भील है ; यह सिद्धसे भीमिनीपुर तक चलने गदरे है । सोना झील यमुनामें दो झील दूर है । यमुना पानकल जहाँ केने जिनमे कुछ कुछ कर बंधी है, यह भीकमे डीक उगले यमानानार भाईमें बंधे हो घूम घूम कर बली है । इसीके कोर कोर सोना झील की यमुना नदीका प्राचीन गर्भ समझते हैं । किन्तु

वेदशास्त्राप्रवर्तक साङ्गति, गान्धव, सुहस्र, मधुच्छन्दा, देवल, अष्टक, कश्यप, चारित, पाणिनि, वसु, ध्यानजप्य, देवरात, शालङ्कयन, वास्कर, वेषु, याज्ञवल्कर, अचमयण, षोडश्वर, तारकायन प्रभृति आदिर्भूतं हुये । उनमें याज्ञवल्करने शुक्रयज्ञः अर्थात् वाजसनेयी श्राद्धा का प्रचार किया । श्रौतसूत्रकार कात्यायन उक्त वाजसनेयी श्राद्धाके अनुवर्तक थे । इसी कारण समझते हैं कि विश्वामित्रवंशीय (याज्ञवल्करके अनुवर्ती) कात्यायन ऋषि ही कात्यायनश्रौतसूत्रके रचयिता थे ।

ऋषित्थकार कात्यायन गोमिलके पुत्र थे । * कात्यायनके कर्मप्रदीप नामक ऋषि ग्रन्थमें निम्नलिखित सकल विषय आया है,—

यज्ञोपवीत, आचमन, माह्यगण, आभ्युदयिकश्राद्ध, उक्तयात्राहंका कृत्य, परिवेदनदोष, उसका प्रतिप्रसव, स्रग्जिह्वरक्षा, अग्न्याधान, अरुषिनिधि, अम्युद्धार, सुवादिश्लेषण, सायंप्रातर्होमकाल, होमेतिकर्तव्यता, स्नानादिक्रिया, सन्ध्यावासना, तर्पण, पञ्चयज्ञप्रकरण, दक्षिणादिपात्र, प्राच्यस्याह्यादि, अमावास्या श्राद्धकाल, श्राद्धभोक्तृकथन, कर्षुविधि, दर्शवैश्विमासहोमकालादि, प्रवासियोंका पूर्वकृत्य, स्त्रीकर्तव्यकर्म, दाम्पत्यसच्चिकर्ष कृत्यादि, प्रेतकार्य, शोकोपनोदन, पर्जन्यदाहादि, अग्नीचर्म वल्लभद्रवारादि, षोडशश्राद्धादि, होमोपविशेष, चरु, गो अश्वयज्ञादि काल, नरयज्ञकाल, अन्वाहयं नाम एवं विधि, अक्षातादिसंज्ञा और नामा विधि ।

शृष्टांशपद्धतं ब्राह्मणोका दशविध संस्कार और वास्तुक्रियादि लिखा है ।

४ कात्यायन वररुचि । अनेक लोग इन्होंने पाणिनिपुत्रका वार्तिककार बताते हैं । सोमदेव भद्रविरचित कथासरित्सागरमें लिखा है,—“गुण्यदन्त नामक महादेवके एक अनुचरने गौरीकण्ठके अभियस हो मर्त्यलोक भा वत्सराजधानी कोशाश्वी नगरीमें सोमदन्त नामक ब्राह्मणके औरससे जन्म ग्रहण किया था । वही कात्यायन वररुचिके नामसे विख्यात हुये । उनके जन्मकाल आकाशवाणी सुन पड़ी थी, ‘यह बालक श्रुतिधर होगा और वर्ष पण्डितके निकट समस्त विद्या लाभ करेगा । वशाकरण शास्त्रमें इसकी असाधारण बुद्धिपत्ति होगी और घर अर्थात् श्रेष्ठ विषयमें रुचि बढ़नेसे वररुचि * नाम पड़ेगा ।’ वयोवृद्धिके साथ वह असीम बुद्धि और धीमत्तिसम्पन्न हो गये । एक दिन उन्होंने किसी नाटकका अभिनय देख माताके निकट वही नाटक समस्त आद्योपान्त आह्वति किया और उपनयनके पूर्व वशाङ्गिके मुखसे प्रातिश्राव्य सुन उसे समस्त फण्डस्य कर लिया था । कात्यायनने पवशेषको वर्षका शिथिल ग्रहण कर नामा शास्त्रमें पाण्डित्य लाभ किया, यहाँ तक कि उन्हें वशाकरणीक तर्कमें पाणिनिको भी घबरा दिया । पवशेषमें महादेवके अनुग्रहसे पाणिनिने जय पाया । कात्यायनने महादेवको क्रोधघाम्तिके निमित्त पाणिनि-वशाकरण पढ़ उसको सम्पूर्ण और संशोधित किया था । परिशेषको वह समधराज योगानन्दके मंत्रिपदपर नियुक्त हुए ।

इमचन्द्र, मेदिनी और त्रिकाण्णशेष अभिधानमें कात्यायनका एक नाम वररुचि * लिखा है ।

अध्यापक मोक्षमूलरके मतमें भी वार्तिककार कात्यायन वररुचि और प्राज्ञतप्रकाय नामक

* अथातो गोमिलोऽज्ञानाभिर्षो वैष कर्मणाम् ।
अथटातां विषं सत्यम् दर्शयिष्ये प्रदीपवत् ॥ (कर्मप्रदीप १११)
यदा टीकाकारोंने गोमिलको कात्यायनका पिता माना है ।
महास पद्धतं भी वेदा की परिचय मिलता है । यथा—
“गुण्यदन्तनामकं यच्च विद्वांसोऽभिमतम् ।
गोमिले धीमन् यथासि न ते प्रासन्ति गोमिलम् ॥
गोमिलस्याप्युपमेषु गोमिलीति धं वदं पुमान् ।
वररुचिर्लक्ष्यः परां पितृमन्त्रायाम् ॥”

(मध्यमपर १। २७-२८)

* एकमुत्तिथो जातो रिपां वशोदशापुन्यति ।
विध आकरयं लोके प्रतिष्ठां प्रापयित्वा ॥
माया वररुचिर्भोके यमदधौ हि रोषते ।
यद्वदन् वरं वसेत् विधित्स्वत्सा वाट्टवामान् ॥
(सोमदेवकृत कथासरित्सागर)

+ इतन्मन्त्रत अनेवाकं वद १।११६ मेदिनी नाम १७२ और
विद्यापरी १।११२

आज भी इस सम्बन्धमें कोई प्रमाण वा प्रतिवाद नहीं मिलता। इसी प्रकार रज्जुलावाद और शिवराजपुरमें २५ मील विस्तृत खेत है। उसमें भी बोग प्राचीन नदी का गम मानते हैं। इस जिलेमें जंगल न होते भी स्थान स्थान पर भूमि पड़ी है। पतित भूमिमें किण्वक (टाक) वृक्ष ही अधिक विद्यमान है। कानपुर जिलेमें चीता, बाघ, नोलगाय, हरिण, लोमड़ी, गृगल, शूकर इत्यादिको छोड़ अन्य कई अन्य जन्तु देख नहीं पड़ता।

इस जिलेमें शुक्रग्रन्थके सब जातियाँ हिन्दू, एकल श्रेणीके मुसलमान और यूरोपीय रहते हैं। ग्रामका सामाजिक बन्धन अन्तर्वेदके अन्धान्य स्थानांकी भाँति है। जमीन्दार ही प्रथम गण्य है। प्रधानतः ब्राह्मण और राजपूत ही जमीन्दार होते हैं; उसके पीछे साविक अधिवासियोंके अंगरथ कृषक हैं। यह जमीन्दारोंकी जमीन अंगारुक्रमसे मोड़ने तीरपर जोतते हैं। फिर बगियाँ और दुकानदार हैं। इसी प्रकार दूसरे किसान, नार्स, लोहार, कुम्हार इत्यादि रहते हैं।

कानपुर जिलेमें खेती बारांका विविध प्रभेद देख नहीं पड़ता। दोषावके अन्धान्य स्थलोंमें जेसी प्रपासीके कृषिकार्य चलता, यहाँ भी वैसे ही हुआ करता है। कानपुरमें दो बड़े फसले होती हैं। अरतफालमें होनेवाली फसलको खरीफ और वसन्त कालमें होनेवाली फसलको रबी कहते हैं। एतेकी प्रथम छटिमें खरीफ बोते हैं। इस फसलमें धान, मकई, बाजरा, ज्वार, कापास, नील इत्यादि होता है। इसका अधिकांश आग्निन मासमें पक जाता है। धान शीघ्र शीघ्र यकनेसे भाट्टमें भी काट लेते हैं, किन्तु कपास फासगुन व्यतीत बुननेके सायक नहीं होती। रबी आग्निनमें बोई और चैत्र वैशाखमें काटी जाती है। इस जिलेका प्रधान खाद्य गेहूँ है। आज कल कानपुरमें कपास बहुत बोते हैं। कारण इससे लाभ बहुत होता है। यहाँ खेतीकर भाग एक प्रकार खच्छन्द, असारयादा चलाते हैं। किन्तु अमार, काकी, छारमी प्रभृति कृषक श्रेणी बहुत दरिद्र हैं। इसीसे कानपुरको दरिद्रता

पति, प्रसिद्ध है। उत्तराखलमें ज्वार तथा गेहूँ और दक्षिणाखलमें बाजरा अधिक उपजता है। बिस्होर, रज्जुलावाद और शिवराजपुरके दक्षिणागमें धान्य होता है। शिवराजपुरके उत्तरागमें नील ही प्रधान है। सकल चैत्र गङ्गाकी नहर, कूप, पुष्करिणी, गड्डे, भील इत्यादिसे ही च आवाद किये जाते हैं। कानपुरमें अनाहृष्टिका भय अधिक रहता है, सुतरां दुर्मिच भी यद्येठ ठहरता है। प्रधानतः इस जिलेके पश्चिमागमें दुर्मिचके भयसे लोग चबराया करते हैं। कानपुरमें कई दुर्मिच पड़े और उनसे लाखों लोग और जान-घर मरे हैं।

कानपुरसे गङ्गा, कपास और नासका बीज बाहर भेजते हैं। यहाँ जो नील उपजता, उससे केवल बीज ही संग्रहीत होता है, वह बीज बिहार प्रदेशमें अधिक विक्रता है। कानपुर नगरमें चोड़का साज, जूता, पोतमाण्डो इत्यादि चमड़ेका द्रव्यादि यद्येठ और उत्कृष्ट रूपसे प्रसृत होता है। चमड़ेके कई कारखाने खुले हैं।

कानपुरके पुतलीघरोंमें रूईका कपड़ा भी बनता है। बहुतसे तम्बू और डेरे तैयार किये जाते हैं। कानपुरके पुराने किलेमें गवरनमेण्टने अपना चमड़ेका कारखाना खोल रखा है। उसमें सेन्यका व्यवहार्य द्रव्यादि बनता है। सरकारी घाटकी कल भी है। इसमें सेन्यके लिये घाटा, सत्तू इत्यादि तैयार करते हैं। रेलपथ, नदी, नहर, पक्की और कच्ची सड़क प्रभृति नानाविध पथ यद्येठ है। आर्यावर्तका प्रधान मार्ग पाण्ड-टाडरोड गङ्गाके समान्तरान इस जिलेमें प्रायः ६८ मील विस्तृत है।

यहाँ एक कलेक्टर मजिस्ट्रेट, दो क्वार्टर मजिस्ट्रेट, एक पमिण्ट और दो डिपटी मजिस्ट्रेट रहते हैं। सकल प्रकारके राजस्वका पूरा परिमाण ३८०२६९० ६० है। पुलिस, टेनीसफ, विद्यालय इत्यादि सुविधाके अनुसार विद्यमान हैं।

कानपुर जिलेमें चार प्रधान नगर हैं। उनसे प्रत्येकमें ५ हजारसे अधिक लोग रहते हैं। प्रधान नगर कानपुरमें कोई ८०२००, बिठूरमें ७२०३,

सित कर प्रतिप्रसाताको देत है। उसके पीछे द्वितीय रोहिषके होमका विधि है। मध्यम परिधिमें निरुत पद्म विकसित गजस आश्विनोद्यमें पाहुति देना चाहिये। उपयमनीय धर्माव्य पन्निहोयके विधानानुसार पाहुति दे समुदाय ऋत्विक् प्रथति भक्षण करते हैं। परमं अर्चकृत धोत कर उपयमनीको निधान करना पड़ता है। इसी समय उपयित पद्म गजस आश्विनोद्यमें प्रहार किये जाते हैं। उसके पीछे धेनुको ष्य कस देनेका विधि है। समुदाय पावसमूह आसन्दा करनेका विधि है। खर, स्युषा, मद्युष, छप्पाजिन, पन्नि, उपयय और पासन्दीके एक बार पाछादन और प्रोक्षणका विधि कथित है। ७म कणिकामें उपसदके पीछे प्रवर्ग्यं उक्तादनका प्रकार है। अवभृथकी भांति अर्घ्यकलंक सामगानके निये प्रसोताका प्रेषण है। अवभृथकी भांति देगगति और निधन है। सामगानके पीछे सकलके उक्तादन देगमें पर्यात् महावीरादि पात्रके त्यागदेगमें गमनका विधि है। उस स्थानमें यज्ञ पन्निषितिशुभ्य होनेसे सकलके उत्तर वेदिमें गमनका विधि है। किन्तु यज्ञ पन्निषितियुक्त रहनेसे परिषन्दमें जाना पड़ता है। उक्त उक्तादन देग या उत्तर वेदि परिषेक कर उत्तर कार्यको कर्तव्यता है। अर्घ्यको उत्तर वेदिमें प्रथम महावीर और सर्वदिग्में अपर दो महावीर निधन करना चाहिये। वहीं उपयय पर्यात् महावीरादिकी निर्मापायमेव सृष्टिका स्थापन करना पड़ती है। महावीरादिकी चारो ओर परीमासहय निधान करते हैं। नीचे और बाह्य देगमें रोहिषी पर्वं हरवीं सामक स्रुकुदव निधान करना चाहिये। रोहिषीकी उत्तरदिक् पन्नि तथा दक्षिणदिक् पासन्दी और पन्निकी उत्तरदिक् अथवा पर्यात् छप्पाजिन निर्मित स्यजन समूहमें निधान करते हैं। उसके पीछे परिधि, उपयमनी, रत्न, सन्दाग, वेद, पिन्वन्, स्युषा, मद्युष, रोहिण, कपाज, अट्टि, स्रुष, सुप्रकुट, खर, अर्च्यट्ट पर प्रथति निधानका विधि है। दुग्ध द्वारा महावीरादि सप्त पात्रके गर्तपरुत्का विधि है। पयोके साय सकलके पात्रास मार्गनका विधि है। उसके

पीछे ब्रह्म प्रथतिकी याज्ञिक द्रव्यसमूहके प्रदानका विधि है। महावीर भङ्ग होनेसे यथाकाल प्रायश्चित्त करनेका विधान है। दस प्रायश्चित्तका प्रकारादि है। प्रवर्ग्यके चरणका विधि है। उसमें पूर्वाहुति होमका प्रकार है। सन्धियमात्र महावीर भङ्ग होनेसे उसके प्रायश्चित्तका नियम है। प्रवर्ग्यके पथिकारीका निर्देश है। हुतमेव द्रव्यके भक्षणका विधि है। प्रवर्ग्य-चरणके पाद्यन्तमें शान्तिकाप्रायके पाठका विधि है। इन दोनों अध्यायोंके मध्य १म अध्याय दारपिधान पीछे और २य अध्याय पासन्दायें, पात्र निधानके पीछे पढ़ना पड़ता है।

कात्यायनसूत्रमें उक्त समस्त विषय पति विश्रुत भावसे वर्णित है।

निम्नलिखित व्यक्तिये कात्यायनश्रौतसूत्रका भाष्य बनाया है,—

१ पमना, २ कर्क, ३ कथ्यापोपाध्याय, ४ गङ्गाधर, ५ गदाधर, ६ गर्ग, ७ पित्रभूति, ८ भर्तृयज्ञ, ९ महादेव, १० मिश्रानिन्हायी, ११ शीघर, १२ हरिहर। याज्ञिक-देवने श्रौतसूत्रपद्धति और पञ्चनाभने कात्यायनसूत्रपद्धति नामसे अतश्च पद्धति रचना की है।

३ गोभिलके पुत्र कात्यायन। इन्होंने ऋद्धार्थद्वय और छन्दोपरिगिट वा कर्मप्रदाय रचना किया है। किसी किसीके अनुमानमें श्रौतसूत्रकार कात्यायन और याज्ञिक प्रथेता कात्यायन समय पमिय प्पति थे। निष्क समयकी रचनाप्रवाची देख वैसा बोध नहीं होता।

हरिवंशमें विष्णुमित्रथगीय कतिके पुत्र कात्यायनी का नाम मिलता है। फिर इसी विष्णुमित्र वंशमें

• "विश्वविद्यालय का स्थापनादयः कृतम् ।
 विद्यालयसु काश्चिद्विधा नामनि मे सुप्रु ।
 द्विषयाः कतिचिं च कात्वा नामनाः कृतः ।
 कल्याणका विद्यालयी विधीमे एव विद्यमान् ।
 कात्वा विद्यालयी व सुप्रुपति विष्णुः ।
 मयुष्यो कतिचिं द्विषयः कृतः ।
 कतिचिं कतिचिं च विष्णुमित्र मे सुप्रु ।
 विष्णुमित्र कीर्तिके कतिचिं महाकलात् ।
 पतिचो पमरचिं च आनन्दकाले च ।
 द्विषयः कतिचिं च कात्वा विद्यालयी ।
 कीर्तनाः कतिचिं च कात्वा विष्णुः कृतः । (हरिवंश १७ क०)

दिसंबरमें १९४३ और दसंबरमें ८१४८ जार्जेस नाम है।

कानपुर नगर गङ्गातटके दक्षिण कूल पर अवस्थित है। प्रदागके त्रिवेणीगङ्गामें १३० मील ऊपर यह नगर पड़ता है। मुसलमनमें कानपुर, चतुर्थे नगर है। समुद्रतटमें यह ५०० फीट ऊपर है। यहाँ मेनागिषाम (हाथने), पदासन, ऐगन हत्यादि विद्यमान है। मेनागिषाम और पदासन गङ्गा किनारे है। पूर्वोत्तरमें देवीय पद्मगोष्ठी मेनागिषाम और कवायद परेडकी लमीन है। कवायद परेडकी लमीनमें पवित्र सुरोपीय पदातिकी शरीर और सेण्ट्रान गिरजा है। इसके मध्य गङ्गा किनारे मेमोरियल गिरजा है (यह १८५० ई०को विवाही-विद्रोहके स्मरणार्थ बनाया)। नगरके उत्तरीगमें माधारण कवायदपरेडकी लमीन है इसके समुप्य गङ्गातीर म्मनिसिधम मार्गन है। इस उद्यानमें एक कूप था। आज कल लमी कूपपर एक स्तम्भ बनाया और उसकी चारों ओर प्राचीरका घेरा लगाया गया है। इस स्तम्भ पर एक स्वर्गविद्यापीठीकी मूर्ति है। स्तम्भके गाठमें चंगरेजीसे लिखा है,— "विद्रोहके विद्रोही नामा भुमुपन्यके दशमें १८५० ई०को ११वीं जुलाईको इसी स्थानके निकट पनेक सुरापियों विधियतः सुरोपीय जियो और मिशनोंको पन्दापदपमि मार इन कूपमें डाल दिया था।" इस उद्यानको रखाके किये गवरनमेंष्टक। वार्षिक ५००० रु० खर्च होता है। उक्त विद्रोहमें लो निहत हुए, पर इसी उद्यानके दक्षिण ओर पवित्रार्थमें गढ़े हैं।

कानपुर नगर प्राचीन नहीं। इस किये यहाँ शूरपीय पद्मगिषा, माघाद और मन्दिरादि कम है।

१८५४ ई०को बकसर और १८५२ ई०को खोढ़के मुहमें दला-उद्-दोला (पचपके मशरफशौर) पदागत चोरेनर यह नगर बना। मशरफ चंगरेजीमें मन्त्रिकर चनेहनद और कानपुरमें सेठ खचने पर खीसत हुये है। १८८८ ई०को बर्तमान स्थान मशरफत कानकी बालमीमाके देगादिशःपका निरुपिन होमिधे इस नगरको नीर पड़्यै। १८०२ ई०को चंगरेजीके उदयके मशरफे दसको चारी औरका स्थान पाया था।

उस समयमें कानपुर एक बिना और प्रधान नगर गिना जाता है। १८५० ई०के विवाही विद्रोहको टोड टुमरी कोई ऐतिहासिक घटना यहाँ नहीं हुई।

सुगलमागोके पञ्चम यह लिखा पनेक परमेशीं विमल था। उस समय कानपुर रवाहाबाद और प्यगरेमें लगता था। १९८४ ई०को माहव उद्-दोन गुरोरीमें टोषाव पविशार किया, लमीके साथ कानपुर भी उनके हाथ लगा। चोरंगसेठके समय यहाँ दो एक सामान्य मशरफे नहीं थे। सुगल मशरफीकी दुर्दशाके समय १८१५ ई०को यह चंग मशरफाके पविशारमें गया। पचपके मशरफे मन्त्रि होने पीछे चंगरेकी मेनासे प्रथमतः वेसगाव (विशरपाम) और फिर कानपुरमें था पचकाम किया।

विवाहीविद्रोहके समय कई दिन तक समस्त जिलेमें विद्रोहानक लया था। मिरठमें विद्रोह पारक होने पीछे ही मानाशाहको कानपुरके धनागारकी रखाका भार भोगा गया। जूनमागके प्रथम यहाँ चारो ओर किले और गढ़े बना समस्त सुरोपीय भेडे थे। ५वीं जूनको कानपुरका देवीय दियोय पद्मगोष्ठी दन रया। प्रथम पदातिकदने विगड़ लील मोड़, धनागार मूटा और पालिब पादिकी गिरा छासा। उसके पीछे विद्रोही दियोके पमिमुप बने गये। लमी समय ३३ पव १४ चंगरेक केन्द्रदल विद्रोही दूबा। मानाशाहने विद्रोहियोंमि मिल चुनके माहापमें सुरोपियोंके पावास पाक्रमचपूरक लोग मशरफ पर-रोक किये थे। धनीगारदमें चंगरेक (सेवल सात को या एक चमार ही लोग जमि) धुपमें कड़े को लड़ने लगे। विद्रोहियोंका पाहमच मीनवार हया दूबा था। जेपको पविशारम चंगरेक मारे गये। विद्रोही लर्ष परास कर लमल भारने खिग्य और सिद्धोंकी भी मारने लगे। २५वीं जूनको मानाशाहने दलापविट चंगरेजीकी रखा करमें प्रतिदुन को मरको निहर कानपुरके मनीषोरापाटमें लोका पर बंठाया था। लोवा रवाहाबादको खुननेके पहले तोरल विद्रोही विवाही नामो रया चारोदिनोंमि मिरामे लगे। दो लोबादीमें मामनेको चेष्टा को दी। किन्तु विवाहियोंमें

वेदशास्त्रप्रवर्तक साङ्गति, गान्धव, मुद्गल, मधुच्छन्दा, देवल, अटक, काश्यप, हारित, पाणिनि, वसु, ध्यानजय, देवरात, शास्त्रहायन, वास्तक, वैष्णु, याज्ञवल्कर, पञ्चमर्षण, षोडश्वर, तारकायन प्रसूति भाविर्भक्त हुये। इनमें याज्ञवल्करने शुक्रयजुः अर्थात् वाजसनेयी शाखा का प्रचार किया। त्रैलोक्यकार काव्यायन उक्त वाजसनेयी शाखाके अनुवर्तक थे। इसी कारण समझते हैं कि विश्वामित्रवंशीय (याज्ञवल्करके अनुवर्ती) काव्यायन ऋषि ही काव्यायनत्रैलोक्यके रचयिता थे।

ऋत्तिकार काव्यायन गोमिलके पुत्र थे। * काव्यायनके कर्मप्रदीप नामक ऋत्ति ग्रन्थमें लिखित सकल विषय पाया है, —

यज्ञोपवीत, आचमन, मातृगण, आभ्युदयिकश्राद्ध, उक्तश्राद्धका कृत्य, परिवेदनदीप, उसका प्रतिप्रसव, स्पर्शस्त्ररेखा, अग्न्याधान, अरविविधि, अग्न्युद्धार, सुवादिहचक्षण, सायंप्रातर्होमकाल, होमेतिकर्तव्यता, स्नानादिक्रिया, सम्भोपासना, तर्पण, पञ्चयज्ञप्रकरण, दक्षिणादिदान, पाण्यस्थाल्यादि, अमावास्या श्राद्धकाल, श्राद्धमोक्षकथन, कर्पु विधि, दर्शवैष्णोमासश्रीमकासादि, प्रवासियोंका पूर्वकृत्य, स्त्रीकर्तव्यकर्म, दाम्पत्यसन्धिकर्ष कृत्यादि, प्रेतकार्य, शोकोपनोदन, वर्षानरदाहादि, अग्नौघमें वर्जनद्रव्यादि, षोडशश्राद्धादि, होमोपविशेष, चरु, गो अन्नयज्ञादि काल, नरयज्ञकाल, अग्न्याहार्य नाम एवं विधि, पञ्चातादिसंज्ञा और नामा विधि।

शुद्धांशुधर्मं ब्राह्मणोंका दमविध संस्कार और वालुक्कियादि लिखा है।

४. काव्यायन-वररुचि। अनेक लोग इन्हेंको पाणिनिस्वरुचि का वार्तिककार बताते हैं। सोमदेव भद्र-विरचित कथासरित्सागरमें लिखा है, —“गुप्तदत्त नामक महादेवके एक अनुचरने गौरीकण्ठक अभि-शय हो मर्त्यलोक था वत्सराजधानी कौशाम्बी नगरीमें सोमदत्त नामक ब्राह्मणके भौरससे जन्म ग्रहण किया था। वही काव्यायन वररुचिके नामसे विख्यात हुये। उनके जन्मकाल आकाशवाणी सुन पड़ी थी, ‘यह वालक श्रुतिधर होगा और वर्ष पण्डितके निकट समस्त विद्या लाभ करेगा। वशाकरण शास्त्रमें इसकी प्रसाधारण दुरुत्पत्ति होगी और वर अर्थात् थोड़ा विषयमें रुचि बढ़नेसे वररुचि * नाम पड़ेगा।’ भयोहृदिके साथ वह असीम बुद्धि और धीमाक्षिसम्पन्न हो गये। एक दिन उन्होंने किसी नाटकका अभिनय देख माताके निकट वही नाटक समस्त पाठ्योपान्त प्राप्त किया और उपनयनके पूर्व ब्राह्मिके सुखसे प्रातिशाल्य सुन उसे समस्त कण्ठस्थ कर लिया था। काव्यायनने पवशेषको वर्षका शिष्यत्व ग्रहण कर नामा शास्त्रमें पाण्डित्य लाभ किया, यहाँ तक कि उन्होंने ब्राह्मणिक तर्कमें पाणिनिको भी ध्वस्त किया। पञ्चश्रेयमें महादेवके अनुग्रहसे पाणिनिने जय पाया। काव्यायनने महादेवकी क्रीडामान्तिके निमित्त पाणिनि-वाकरण पढ़ उसको सम्पूर्ण और संशोधित किया था। परिशेषको वह मगधराज योगानन्दके मंत्रिपदपर नियुक्त हुए।

हेमचन्द्र, मेदिनी और त्रिकाण्णश्रेय अभिधानमें काव्यायनका एक नाम वररुचि * लिखा है।

अध्यापक मोक्षमूढरके मतमें भी वार्तिककार काव्यायन वररुचि और माझतप्रकाश नामक

* “यथातो गोमित्रीनामभिर्वा षड् कर्मपातुः।
 पञ्चदशानां विषुं सख्युं दर्शयित्वा वसोपवन् ॥” (कर्मप्रदीप १११)
 यहाँ टीकाकारोंने गोमिलको काव्यायनका पिता माना है।
 पञ्चदशधर्म भी वहा ही परिचय मिलता है। यथा—
 “पुनश्चमनिकानां यद्य विंशतिर्गोमिलकम्।
 गोमिलके धेनु यथापि न ते श्राद्धानि गोमिलकम् ॥
 गोमिलसाधार्यपुनश्च वीरुनीते षड्धर्म उग्रम्।
 षड्धर्मैस्तद्गुरुः परां विदित्वापुन शान् ॥”

* “एकश्रुतिधरो जातो रिप्यां ब्रह्मदेवात्पुनति।
 किञ्च आचरन्ते लोके प्रतिष्ठां प्रापयिष्यति ॥
 माया वररुचिर्भवेत् यमदत्तं हि रोचते।
 यद्वदन् वरं भवेत् विदित्युक्त्वा आशुपारमम् ॥”
 (सोमदेवकृत कथासरित्सागर)
 † हेमचन्द्रकृत पद्मेनाम्बकचर १।१।६, मेदिनी भाष्य १७२ और
 विशाखशिर १।६।१२।

दोनों किनारेसे गोली बरसा एकको डबा दिया। यहसि कई लोग कूद फाँद गिराकरपुर भाग गये थे। सिपाहियोंने वहसि भी ४ घादमो छोड़ सबको पकड़ मार डाला। नौकामें जितनी स्त्रियाँ और शिशु थे, सब सवादाकी कोठीमें धाबह किये गये। पीछे जब कानपुरके बहिर्दुर्गमें हाबसककी तोपका प्रथम शब्द सुना, तब सिपाहियोंने उक्त सकल स्त्रियों और शिशुओंको टुकड़े टुकड़े उड़ा दिया था। प्रायः दो सौ प्राणी विनष्ट हुये होंगे; जहाँ यह ब्यापार हुआ, वहाँ सेमीरियल क्लब और स्नाथ बना है।

१५ वीं जुलाईको हाबसकने पाखु नदीके तीर और पवङ्गरमें युद्धकिया था। उसके दूसरे ही दिन कानपुर अधिकृत हो गया।

२०वीं नवम्बरको ग्वालियर और पवधके विद्रोहियोंने भापसमें मिला कानपुर आक्रमणपूर्वक नगर अधिकार किया था। दूसरे दिन सन्ध्याकाल लाहँ क्लाइडने आ फिर आक्रमण किया और १५ दिवसमेंको विद्रोहियोंको नगरसे भगा उनका तोप रहसँका सब छीन लिया। जनरल बोयालपोहनने प्रकवरपुर, रघुलवादा और डेरापुर उद्धार किया था। १८५८ई०के मई मास कालपी उद्धार होनेसे कानपुरमें शांति स्थापित हुई।

कानकरम्म (अ० स्त्री० Conference) १ समाज, मजलिस। २ सम्मथा, सलाह।

कानसक (अ० स्त्री०) कनस-कुल। कनस नामक प्यक्ति द्वारा निर्मित, कनसका बनाया हुआ।

कानटेबिल (अ० पु० Constable) दण्डधर, चौकीदार, पुलिसका-सिपाही। पुलिसके जमादारको 'हेड कानटेबिल' कहते हैं।

काना (हिं० वि०) १ काण, एक पाँखवाला। २ क्लिम कोटादि द्वारा विदारित, कीड़ा लगा हुआ। ३ वक्र, टेढ़ा, जो बराबर न हो। (पु०) ४ आकारकी मात्रा (।)। यह व्यञ्जनवर्धनमें लगता है।

कानाकामी (हिं० स्त्री०) गुप्तकथन, कानाफूसी।

कानाटीटी (हिं० स्त्री०) लघुविशेष, एक घास।

कानाड़ा—दाक्षिणात्यके पश्चिम उपकूलका एक प्रदेश।

इसके उत्तर बम्बई प्रान्तका बेलागाँव जिला, दक्षिण मन्द्राज प्रदेशका मलवार जिला, पूर्व बम्बई प्रान्तका चारवाह जिला, महिसूर राज्य एवं कुर्ग, पश्चिम अरब-सागर तथा भारत महासागर और उत्तरपश्चिम कोण गोया प्रदेश है। प्रेसिडेन्सी विभागके समय कानाड़ा दो भागमें बाँटा गया था। उससे उत्तरीय बम्बई प्रेसिडेन्सी और दक्षिणीय मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विभागमें पड़ा।

उत्तर कानाड़ा अक्षा० १३° ५३' एवं १५° ३२' उ० और देशा० ७४° ४' तथा ७५° ५' के मध्य अवस्थित है। उसका प्रधान नगर और मन्दर करवर है। उत्तर कानाड़ाके मध्य पश्चिमघाट पर्वतका सद्माद्रिखण्ड उत्तरदक्षिण विस्तृत है। उसकी उचता २५०० से ३००० फीट तक है। सद्माद्रि उभय पार्श्व भूमिकी एक दिक् उच्च और अपर दिक् निम्न है। उच्च भूभागका नाम वासाघाट है। परिमाण प्रायः ३००० वर्गमील है। अनेक सुद्र और सुद्रन् नदियोंका मुखभाग रहनेसे उपकूल भागकी रेखा बहुत क्षिन्न भिन्न हो गई है। (नदीका मुखप्रगस्त होनेसे) समुद्रकी खाड़ी देशके मध्य दूरतक विस्तृत है। उपकूलके उत्तरपश्चिम कोण करवर अत्यारीप है। समुद्रतीरकी भूमि प्रायः वातुकामय है, बीच बीच पहाड़ भी हैं। आगे नारियलके पेड़से भरा जंगल और उसके आगे अप्रशस्त धान्यक्षेत्र है। उक्त निम्नभूमिका विस्तार कहीं १५ मीलसे अधिक नहीं। फिर कहीं कहीं यह ५वीं मील पहुँचा है। सभी भूभागके पार्श्व प्रायः ३००० फीट उच्च पर्वत है। पर्वतमालाके मध्य हजार फीट ऊँचे जंगलसे भरे शिखर भी खड़े हैं। शिखरोंमें बीच बीच उत्तम कथित धान्यक्षेत्र और उद्यानगोमित पट्टालिका हैं। वासाघाटकी उपजाऊ भूमि २५०० फीट तक ऊँची है। नदीतीरवर्ती कुछ स्थानोंको छोड़ यह जंगलसे भरी और गिरी है। नदीके तीर सामान्य धाम और सुद्र गन्धर्व वर्तमान हैं।

सद्माद्रिके उभय पार्श्व नदी है। उनसे कुछ पश्चिम मुख अरब-सागर और कुछ पूर्व मुख बङ्गो-

किची शरत् पर सुत परिवर्तन किया है। (४) फिर शरत्परिणय पर पाणिनिके सूत्रका होय देखा उसका प्रतिषेध किया है। (५) पनेक स्थान पर परिमित लगा दिया है।

पतञ्जलिने अपने महाभाष्यमें वार्तिकपाठ उद्धृत कर उसका भाष्य बनाया है।

पाणिनि और पतञ्जलि देवोः।

इन्होंने कात्यायनके घटकी सर्वांगुलमची और प्रातिशास्त्रकी प्रणयन किया है। कात्यायन और सर्वांगुलमची देवोः।

यह पतञ्जलिके बहुत पूर्ववर्ती और पाणिनिके परवर्ती है।

५ एक बौद्ध आचार्य। इन्होंने अभिधर्मप्रदान-प्रस्थान नामक बौद्धशास्त्र रचना किया है। नेपासी बौद्धग्रन्थके पाठसे समझते हैं कि यह बुद्धनिर्वाणके ४०० वर्ष पीछे प्रादुर्भूत हुये।

६ जैनोके एक प्रधान और प्राचीन साध्विर।

कात्यायनवीथा (सं० श्री०) कात्यायनके भाष्यक तथा योगी, मध्यपदसी०। कात्यायन-श्रुट गततन्त्री योगी।

कात्यायनी (सं० श्री०) कात्यायन-श्रीव् । १ दुर्गा। महिषासुर द्वारा पत्न्या उत्पीड़ित हो उसके विनाश-साधनको लक्ष्मा, विष्णु और महेश्वरने अपने अपने देहसे यह मूर्ति बनायी थी। महर्षि कात्यायनके सर्वप्रथम इनकी स्थापना करनेसे ही यह कात्यायनी कहायी। इन्होंने पाणिनकी उत्पत्तुष्टमीको जग्य किया और यहसप्तमी, षष्ठमी तथा नवमी—तीन दिन कात्यायन जयिकी पूजा यहव कर दशमीको महिषासुर मारा था। २ अथायवदापरिधाना मोदययच्छा विधवा, गीहृष्टे खपडे पचने हुयी पथेष्ट धिया औरतः। ३ कथाय यथा, गीहृष्टा खपडा। ४ कात्यायन जयिकी पद्योः। ५ वासवस्तुकाकी द्वितीय पद्योः।

कात्यायनीनम् (सं० श्री०) तन्त्रविगीय। इसमें शिवने कात्यायनीपूजाके मन्त्रादि बड़े हैं।

कात्यायनीपुत्र (सं० पु०) कात्यायन्याः पुत्रः, १-तन् । १ वार्तिकवेद्य। २ एक ब्रह्म बौद्धाचार्य। यह बुद्धके चार ओ वर्ष पीछे प्रादुर्भूत हुये।

कात्यायनीय (सं० त्रि०) १ कात्यायन-प्रयोग, कात्यायनका बनाया हुआ। (पु०) २ कात्यायनके छात्र।

कात्यायनीव्रत (सं० श्री०) कात्यायन्याः व्रतम्, १-तन् । कात्यायनी देवीके उद्देशसे किया जानेवाला एक व्रत। हन्दावनमें गोपियों श्रीलक्ष्मीकी स्त्रामोदपसे पानिके क्रिये उपाकाल यमुनामें नहा और बान्काकी प्रतिमूर्ति बना भगवती कात्यायनीकी पूजा करती थीं।

कायक (सं० पु०) कयकस्य अपत्यं पुमान् कयक-पत्न्य् । १ कयकके पुत्र। (त्रि०) २ कयकधर्मयोगी। ३ कयक सम्बन्धीय।

कायक्य (सं० पु०) कयकस्य गोत्रापत्यन् कयक-यन् । कयक ऋषियंभीय पुत्र।

कायक्यायन (सं० पु०) कयकस्य गोत्रापत्यन् कयक-यन्-फल्य् । कयक-धर्मयोगीय पुत्र।

कायक्यत् (सं० त्रि०) कयक्यत् ठक् ।

विषयविभाषणम् (पृ ३१४)

किची प्रकार सम्पादन किया हुआ, जो सुश्रुतके बना हो।

काथरी (त्रि० श्री०) कथ्या, कथरी।

काथिक (सं० त्रि०) कथायां साधुः, कथा-ठक् । कथाविभाषणम् (पृ ३१४) १ कथासुत्रके विषयमें सुनिपुण, अच्छी अच्छी कहानी बनानेवाला। २ कथा-सम्बन्धीय, कहानीसे सरोकार रखनेवाला।

कादम्ब (सं० पु० श्री०) कदम्बे समूहे भवः, कदम्ब-पत्न्य् । १ कदम्बस्य। इसका मांस मीतल, भेदक, यक्षकारक और वायु, रक्त तथा पित्तनाशक है। (राज०) कदम्ब-सायें पत्न्य् । २ कदम्ब-तृक्ष, कदम्बका पिक्र। ३ कदम्ब पुष्य, कदम्बका फूल। ४ इष्ट, कथ। ५ पाप, तीर। ६ दाक्षिणात्यका एक प्राचीन राजवंश के नाम देवोः। ७ पुष्यविषयिक, एक लक्षरीका फूल। (त्रि०) ८ कदम्ब-सम्बन्धीय।

कादम्बक (सं० पु०) कदम्बकस्यै कन् । वाप, तीर।

कादम्बकर (सं० पु०) कदम्बक, कदम्बका पिक्र।

कादम्बर (सं० पु० श्री०) कादम्ब कदम्बोद्वर्ष रथं

विन्हीरमें ५१४३. और अकबरपुरमें ८३४८ लोगोंका वास है।

कानपुर नगर गङ्गानदीके दक्षिण कूल पर अवस्थित है। प्रयागके त्रिविषीसङ्गमसे १३० मील ऊपर यह नगर पड़ता है। युक्तप्रदेशमें कानपुर, चतुर्थ नगर है। समुद्रपृष्ठसे यह ५०० फीट ऊपर है। यहाँ सेना-निवास (क्लब्स), अदालत, ऐशान इत्यादि विद्यमान हैं। सेनानिवास और अदालत गङ्गा किनारे है। पूर्वाश्रममें देशीय अम्बारोही सेनानिवास और क्लबायद परेड़की जमीन है। क्लबायद परेड़की जमीनसे पश्चिम युरोपीय पदातिकी बारीक और सेण्ट्रल गिरजा है। इसके मध्य गङ्गा किनारे मिमोरियल गिरजा है (यह १८५७ ई०की सिपाही-विद्रोहके स्मरणार्थ बना था)। नगरके उत्तराश्रममें साधारण क्लबायद परेड़की जमीन है इसके सम्यक् गङ्गातीर म्युनिसिपल गार्डन है। इस उद्यानमें एक कूप था। आज कल उसी कूप पर एक स्तम्भ बनाया और उसकी चारों ओर प्राचीरका घेरा लगाया गया है। इस स्तम्भ पर एक खूंगविद्याधरीकी मूर्ति है। स्तम्भके गात्रमें अंगरेजीसे लिखा है, — “विद्रोहके विद्रोही नाना धनुषपत्रके दसन १८५७ ई०की १५वीं जुलाईकी इसी स्थानके निकट अनेक युरोपियों विशेषतः युरोपीय स्त्रियों और शिशुओंको अत्यायरूपसे मार इस कूपमें डाल दिया था।” इस उद्यानकी रक्षाके लिये गवरनमेण्टका वार्षिक ५००० रु० खर्च होता है। उक्त विद्रोहमें जो निहत हुए, वह इसी उद्यानके दक्षिण और पश्चिमाश्रममें गड़े हैं।

कानपुर नगर प्राचीन नहीं। इस लिये यहाँ दर्शनीय अष्टालिका, प्रासाद और मन्दिरादि कम हैं।

१७६४ ई० की बखसर और १७६५ ई०की कोड़ेकी युद्धमें राजा-उद्-दौला (अवधके नवाबवज्जोर) परालित होनेपर यह नगर बना। नवाब अंगरेजोंसे सन्धि कर फतेहगढ़ और कानपुरमें सैन्य रखने पर स्वीकृत हुए थे। १७०८ ई०की वर्तमान स्थान नवाबजित स्थानकी प्रान्तसीमाके सेनानिवासको निर्दिष्ट होनेसे इस नगरको गौर पड़ी। १८०१ ई०की अंगरेजोंमें अवधके नवाबसे इसको चारों ओरका स्थान पाया था।

उस समयसे कानपुर एक जिला और प्रधान नगर गिना जाता है। १८५० ई०के सिपाही विद्रोहकी कोड़े दूसरी कोड़े ऐतिहासिक घटना यहाँ नहीं हुई।

सुलझमानोंके अधीन यह जिला अनेक परगनोंमें विभक्त था। उस समय कानपुर इलाहाबाद और आगरामें लगता था। ११८४ ई० की साइब उद्-दीन गुरीने दोबाध अधिकार किया, उसीके हाथ कानपुर भी उनके हाथ लगा। औरंगजेबके समय यहाँ दो एक सामान्य मसजिदें बनीं थी। मुगल सम्राटोंकी दुर्दशाके समय १७३६ ई०को यह अंग महाराष्ट्रके अधिकारमें गया। अवधके नवाबसे सन्धि होने पीछे अंगरेजी सेनाने प्रथमतः वेलगांव (विरवग्राम) और फिर कानपुरमें आ अवस्थान किया।

सिपाहीविद्रोहके समय कई दिन तक समस्त जिलेमें विद्रोहान्त जला था। नेरठमें विद्रोह आरम्भ होने पीछे ही नानासाहबको कानपुरके धनागारकी रक्षाका भार सौंपा गया। जूनमासके प्रथम यहाँ चारों ओर किले और गढ़ बना समस्त युरोपीय बैठे थे। ६ठीं जूनको कानपुरका देशीय द्वितीय अम्बारोही दल तथा प्रथम पदातिदलने विगड़ मील तोड़ा, धनागार लूटा और आफिस खादिकी गिरा डाला। उसके पीछे विद्रोही दिल्लीके अभिमुख चले गये। उसी समय ५१ एव ५४ संख्यक सैन्यदल विद्रोही हुए। नानासाहबने विद्रोहियोंसे मिल उनके साहाय्यसे युरोपियोंके आवास आक्रमणपूर्वक तोन सप्ताह अवरोध किये थे। वीकोशारदसे अंगरेज (केवल सात सौ या एक हजार ही लोग छगि) घूममें खड़े हो लड़ने लगे। विद्रोहियोंका आक्रमण तीनबार हुआ हुआ था। शेषको अधिकार्थ अंगरेज मारे गये। विद्रोही उन्हें परास्त कर उन्मत्त भावसे स्त्रियाँ और शिशुओंकी भी मारने लगे। २६वीं जूनको नानासाहबने जतावगिट अंगरेजोंकी रक्षा करनेमें प्रतिश्रुत हो सबको लेकर कानपुरके सतीचौराघाटमें नौका पर बैठाया था। नौका इलाहाबादको खुलनेके पहले तोरख विद्रोही सिपाही गोली चला आरोहियोंको गिराने लगे। दो नौकानेनै भागनेकी चेष्टा की थी। किन्तु सिपाहियोंने

दोनों किनारेसे गोली चला एकको डूबा दिया। यहाँसे कई लोग क्रुद फाँद गिधराजपुर भाग गये थे। सिपाहियोंने वहाँसे भी ४ भादमी छोड़ सबकी पकड़ मार डाला। नौकामें जितनी स्त्रियाँ और शिशु थे, सब सुवादाकी कोठीमें बाँधकर किये गये। पीछे जब कानपुरके इन्डिस्ट्रियमें हायलककी तोपका प्रथम शब्द सुना, तब सिपाहियोंने उक्त सकल स्त्रियों और शिशुओंकी टुकड़े टुकड़े उड़ा दिया था। प्रायः दो सौ प्राणी विनष्ट हुये होंगे; जहाँ यह व्यापार हुआ, वहाँ मेमोरियल क्रुप और स्तम्भ बनाए।

१५ वीं जुलाईको हावलकने पाण्डु नदीकी तीर और भवङ्गरमें युद्धकिया था। उसके दूसरे ही दिन कानपुर अधिकृत हो गया।

२०वीं नवम्बरको ग्वालियर और भवङ्गके विद्रोहियोंने आपसमें मिल कानपुर आक्रमणपूर्वक नगर अधिकार किया था। दूसरे दिन सन्ध्याकाल लार्ड क्लाइडने आ फिर आक्रमण किया और १६ दिवसकी विद्रोहियोंको नगरसे भगा उनका तोप रक्षकता सब छीन लिया। जनरल घोयालपोलने भकवरपुर, रघुनाथाबाद और डेरारपुर उधार किया था। १८५८ई०के मई मास कानपुर उधार होनेसे कानपुरमें शान्ति स्थापित हुई।

कानपुरमें (१) कौ० Conference) १ सभा, मजलिस। २ मन्वणा, सलाह।

कानलक (सं० वि०) कानल-दुज। कानल नामक व्यक्त द्वारा निर्मित, कानलका बनाया हुआ।

कानटेबिल (सं० पु० Constable) दण्डधर, चौकीदार, पुलिसका सिपाही। पुलिसके जमादारको 'हेड कानटेबिल' कहते हैं।

काना (हिं० वि०) १ काण, एक पाँखवाला। २ क्षमि कोटादि द्वारा विदारित, कीड़ा लगा हुआ। ३ वक्र, टेढ़ा, जो बराबर न हो। (पु०) ४ आकारकी मात्रा (।)। यह व्यञ्जनवर्णमें लगता है।

कानाकानो (हिं० स्त्री०) गुप्तकथन, कानाफूसी।

कानाटीटी (हिं० स्त्री०) लपविगीत, एक वाद्य।

कानाड़ा—दक्षिणात्यके पश्चिम उपकूलका एक प्रदेश।

इसके उत्तर बम्बई प्रान्तका सेलगांव जिला, दक्षिण मन्द्राज प्रदेशका मन्सवार जिला, पूर्व बम्बई प्रान्तका धारवाड़ जिला, मद्रिपुर राज्य एवं कुर्ग, पश्चिम परवसागर तथा भारत महासागर और उत्तरपश्चिम कोण गोवा प्रदेश है। प्रेसिडेन्सी विभागके समय कानाड़ा दो भागमें बाँटा गया था। उससे उत्तरार्ध बम्बई प्रेसिडेन्सी और दक्षिणार्ध मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विभागमें पड़ा।

उत्तर कानाड़ा अक्षा० १३° ५३' एवं १५° ३२' उ० और देशा० ७४° ४' तथा ७५° ५' के मध्य अवस्थित है। उसका प्रधान नगर और बन्दर करवर है। उत्तर कानाड़ाके मध्य पश्चिमघाट पर्वतका सद्माद्रिखण्ड उत्तरदक्षिण विस्तृत है। उसकी उच्चता २५०० से ३००० फीट तक है। सद्माद्रि उभय पार्श्व भूमिकी एक दिक् उच्च और अपर दिक् निम्न है। उच्च भूभागका नाम वालाघाट है। परिमाण प्रायः ३००० वर्गमील है। अनेक सुद्र और सुद्र नदियोंका मुखभाग रहनेसे उपकूल भागकी रेखा बहुत क्षिन्न भिन्न हो गई है। (नदीका मुखप्रगस्त होनेसे) सुद्रकी खाड़ी दिग्के मध्य दूरतक विस्तृत है। उपकूलके उत्तरपश्चिम कोण करवर अन्तरीप है। सुद्रतीरकी भूमि प्रायः बालुकामय है, बीच बीच पहाड़ भी हैं। चागे नारियनके पेड़से भरा जंगल और उसके चागे चप्रगस्त घान्यक्षेत्र है। उक्त निम्नभूमिका विस्तार कहीं १५ मीलसे अधिक नहीं। फिर कहीं कहीं यह ५५ मील पड़ता है। उष्ण भूभागके पार्श्व प्रायः ३००० फीट उच्च पर्वत है। पर्वतमालाके मध्य हजार फीट ऊँचे जंगलसे भरे शिखर भी पड़े हैं। शिखरोंमें बीच बीच उत्तम कर्पित घान्यक्षेत्र और उद्यानयोमित घटानिका हैं। वालाघाटकी उपजाऊ भूमि २५०० फीट तक ऊँची है। नदीतीरवर्ती कुछ स्थानोंकी छोड़ यह जंगलसे भरी और गिरी है। नदीके तीर सामान्य पाम और सुद्र वन्यक्षेत्र वर्तमान है।

सद्माद्रिके उभय पार्श्व नदी हैं। अनेके कुछ पश्चिम मुख परवसागर और कुछ पूर्व मुख बङ्गोप-

काण्डर (हि० पु०) १ श्लोक्या। २ कोरकको एक लकड़ी। यह कातरके छोरपर लगता और टेढ़ा मेंढा रहता है। इसके दोनों प्रान्त निकल पड़ते हैं। काण्डर कोरककी कमरके पास चारों ओर घूमा करता है।

काण्डरा—कानका देवी।

काप—बङ्गालके वारेन्द्र शास्त्रियोंकी एक कुस-श्रेणी।

कापटव (सं० पु०) कापटोर्गोत्रापत्यम्, कापटू-भण्। कापट षट्पिके संश्लेष्य। (क्ली०) कुक्षितः पटुः तस्य भावः, कापटु भावे षण्। २ निन्दित पाटुता, बुरी चालाकी।

कापटवक, कापटव देखो।

कापटिक (सं० पु०) कापटिन चरति, कपट-ठक्। १ छात्र, विद्यार्थी। २ पत्निका मर्मज्ञ, दूसरेका भेद जाननेवाला। ३ प्रतारक, धोकेवाक।

कापट्य (सं० क्ली०) कापटस्य भावः कार्यम्या, कपट षण्। १ कपटता, चालाकी। २ प्रतारणा, धोकेका काम।

कापट्टी (हि० पु०) जातिविशेष, एक कौम। गुजरातमें कपट्टे बघनेवालोंकी कापट्टी कहते हैं।

कापय (सं० पु०-क्री०) कुक्षितः पत्याः, कु पयिन्-षच्-कीः काट्टेयः। कापयषयीः। पा० १। २। ३। ४।

१ कुक्षित पय, खराब राह। इसका संस्कृत पर्याय—ब्यध, टुरध, विपय, कदध्या, कुपय, पमत्-पय और कुक्षितवर्त्म है। २ उद्योग, प्यस। ३ एक दानव।

कापर (हि० पु०) वस्त्र, कपड़ा।

कापरगादि—बङ्गाल प्रान्तके मिर्चभूम जिलेकी एक गिरिमाला। उसका शृङ्ग समुद्रतटसे १३६८ फीट ऊंचा है। यह गिरिमाला दक्षिणपूर्वामुमुख चल मध्यभूमकी उत्तर सीमाके भेद्योगिन पर्वतसे जा मिली है। उसके उत्तर पयारमें ताँबा निकलता है। पहासे कुछ साहब खोम वहाँ ताँबा तैयार करते थे। किन्तु अधिक व्यय लगनेसे १८६८ ई० की उन्हीं वर्ष कार्य छोड़ दिया।

कापरप्लेट (सं० पु० = Copper plate.) ताम्रपट्ट,

ताँबेकी पट्ट। यह सुदृढ यन्त्रालयमें काम पाता है। इस पर पत्थर खोदे जाते हैं। पत्थरों पर स्याहो लगा पोंछ डालनेसे खुदे, पत्थरोंके सिवा दूसरा स्थान खूब निकल आता है। इसी प्रकार कापरप्लेट प्रेसपर चढा कागज छापा जाता है। चित्र आदि छापनेकी तैयारीके काम लेते हैं। जिम प्रेसमें कापर-प्लेट छपता है, उसका नाम 'कापरप्लेट प्रेस' पड़ता है।

कापा (वै० स्त्री०) कं सुषं प्राप्यते धनया, क-पाप-घञ्-टाप्। बन्दियोंका प्रातःकालीन स्तुतिपाठ।

“प्रातर्नैवे नरकेष कापया।” (चम् १. १४. १२)

‘प्रातः प्रबोधवच्च बन्दिनीनाथी तया।’ (भाष)

कापाटिक (सं० क्ली०) कापाटिक एव, कपाटिक स्वार्थे षण्। सुदृढ कपाट, झोटा किनाड़ा।

कापाल (सं० पु०-क्री०) कपालमेश, कपाल स्वार्थे षण्। १ घटाद्य कुठामार्गत वातिककुठ, एक कोढ़। (कपाल देखो)। २ कण्ठकलता, वायविडंग।

३ कपालका पत्थ, खोपट्टीकी छड्डो। ४ कर्कटीभेद, एक ककड़ी। ५ किसी ग्रंथ सम्प्रदायका धनुशायी।

६ पञ्चविशेष, एक हथियार। ७ सन्धिभेद, एक सुलह। इसमें विषयो तुल्य स्तल मानते हैं। (त्रि०)

८ कपाल-सन्ध्याश्लेष, सरके सुताश्लिक।

कापाला (सं० स्त्री०) रत्नविषयिका, लाल फूलोंका एक पेड़।

कापालि (सं० पु०-स्त्री०) पहिंस्त्रा, कौवाटोटो।

कापालिक (सं० पु०) कपालेन नरकपालेन चरति, कपाल-ठक्। १ जातिविशेष, एक कौम। यह बङ्गदेशमें मिलता है। २ वामाचारी, एक तान्त्रिक साधु। यह श्रवणतापत्रय्यो होते हैं। मांस खाना और मद्य पीना उन्हें अनुचित नहीं मान्ना पड़ता। कापालिक अपने हाथमें मनुष्यका कपाल रहते और मरव वा शक्तिको बलि चर्पण करते हैं।

३ कुष्ठरोग विशेष, एक तरहका कोढ़। कपालदृष्ट देखो।

कापालिका (सं० स्त्री०) वायविशेष, एक यात्रा। पहासे यह सुषसे बनायी जाती थी।

कापाली (सं० स्त्री०) कापाल-हीप्। १ विडङ्ग। २ कण्ठकपाली, कौवाटोटो।

सागरमें जा गिरी है। पूर्वांशकी नदीमें तुह्रभद्राकी उपनदी वर्षा अलेखयोग्य है। पश्चिमांशकी नदीमें उत्तर काशीनदी, बीची बीच गङ्गावकी एवं तट्टि और दक्षिण गिरावती प्रसिद्ध है। गिरावतीका जलराशि होनावाड़ नगरके ३५ मील ऊपर ४२५ फीट उच्च पर्यंतसे भीषणवेगमें गिरता है। वही विख्यात गारसप्पा प्रपात है। पर्यंतमें अधिकांश घेनाइट पत्थर है। फिर अनेकोंके मूलदेशमें लेटराइट है। करवर और होनावाड़के निकट पार्श्व प्रदेशसे लेटराइट प्रसार संश्लेषित हो गृष्टादिके निर्माणमें लगता है। उक्त प्रदेशके स्थान स्थान पर कौड़खनि है। कुमपतासे १८ मील दूर जान उपत्यकामें चूनेका पत्थर मिलता है।

उत्तर कानाड़ाके वनविभागमें सकल प्रकार वृक्ष उत्पन्न होते हैं। उनमें सागवन, पियासाल प्रभृति अधिक देख पड़ते हैं। वर्षा गवरनमेंटके वनविभागसे लकड़ी कटती है। छपकोंकी वनसे विना व्यय जलानिके लिये काठ, खादके लिये पत्ता और गृष्ट-निर्माणके लिये बांध, खंटा वगैरह मिल जाता है। पक्षी उत्तर कानाड़ेकी लकड़ी गुजरात और बम्बई जाकर बिकती थी। आजकल उसे बेचनेकी करवर से जाते हैं।

दक्षिण कानाड़ा पचा० १२' ०' एवं १३' ५८' उ० और दिया० ७४' ३४' तथा ७५' ४५' पू०के मध्य अवस्थित है। यह मन्द्राज प्रेसिडेन्सीमें लगता है। प्रधान नगर मङ्गलूर (मंगरोल या बंगनोर) है।

उक्त प्रदेशका प्राकृतिक दृश्य अति सुन्दर है। नदी अनेक क्षेत्रोंमें क्षेपणपूर्ण रहता है। वन नाना वृष्टादिस भरा है। नारियलके वाग् यगैरह काफी हैं।

उसके उपपुल्लभागमें (विस्तारमें ५ से १५ मील तक) उत्तर दक्षिण सब जगह लाग रहते हैं। आषादी कुछ घनी है। भूभाग लेटराइट प्रसारसे पूर्ण और समुद्रतट पर ४०० से ६०० फीट तक उच्च है। उनके आगे ही पश्चिमघाटकी सुदृग्गिखरमाला है। कानाड़ावादका पर्वत (वल्लभगङ्गाके निकट) और गदभकर्ण पर्वत सर्वापिष्ठा विख्यात है। उक्त

प्रदेशमें पश्चिम घाट ३००० से ६००० फीट तक ऊंचा है। पूर्वांशमें उसीकी एक प्रकारकी सीमा मान सकते हैं। उसमें अनेक गिरिधर हैं। उनमें सम्पजी, अण्डम्बी, चरमादी, हैदरगदी या हुसेनगदी, मंजरावाद तथा कलूर प्रभृति कुर्ग और मङ्गिसुरके मध्य अवस्थित हैं। मंगलोरसे उक्त गिरिपथ तक शकटयमनोपयोगी मार्ग है।

दक्षिण-कानाड़ेकी कोई नदी १०० मीलसे अधिक विस्तृत नहीं। फिर सब नदियां पश्चिम घाटसे निकली हैं। उनके मध्य धीपकासकी भी अनेकोंमें नौका गमन कर सकती है। नदियोंमें नेत्रवती, गुरपुर, गङ्गोली और चन्द्रगिरि वा पयस्वनी ही प्रधान है। कारकल नामक स्थानमें एक सुदूर और सुन्दर झर है। फिर कुण्डपुरमें निर्मल जलका अपेक्षाकृत वृद्ध झर भरा है।

वहाँ श्रुतिके सुन्दर झर दिखते हैं। बहुतसे लोग कलमें उस श्रुतिके गण और इंट तैयार करते हैं। फिर वहाँ चीनी मट्टीकी भाँति एक प्रकारकी श्वेतवर्ण उज्ज्वल मृच्छ श्रुतिका भी मिलती है। मिजार नामक स्थानमें खण्ड, सुन्नहराय एवं केम्पल नामक स्थानमें दाड़िम-बीजाकार सुदूर पुलक-मणि और उदियी तथा उद्यारंगही तालुकके मध्य लौहकी खनि है। लोहा निकालनेका कोई प्रबन्ध नहीं।

दक्षिण कानाड़ेकी अधिकांश भूमि अधिवासियोंके अधिकारमें है। गवरनमेंटके अधीन केवल पश्चिम-घाटकी निकटवर्ती वनभूमिका कुछ अंग है। उक्त घनमें नाना प्रकार काठ, वंश, एसा, वन्य पारारोट, खदिर, दासचीनी, (कास और तेल), गोंद, रास और तरु तरुका रंग उपजता है। मधु, मोम और अन्यैय द्रव्यादि पहाडों लोह (मलयकुदी) संग्रह करते हैं। वहाँसे प्रतिवर्ष प्रायः उद्गु नायका चन्दनतेल बनकर बाहर जाता है। मङ्गिसुरसे चन्दन काठ आता है। किन्तु उसका तेल केवल दक्षिण कानाड़ांमें ही बनाया जाता है।

असलमें तो कानाड़ा नामका कोई स्वतंत्र देश

कापाली (सं० पु०) कपालं धार्यत्वेन अस्यास्य, कपाल इति । १ शिव । २ वासुदेवके एक पुत्र । ३ एक जाति । पूर्ववद्वर्गमें एक प्रकारके लुलाहे रहते हैं । किसीके मतमें लोहारके घोरस घोर तेलीकी कन्याके गर्भसे यह उत्पन्न हुये हैं । फिर कोई मनुष्यके घोरस घोर ब्राह्मणकीके गर्भसे कापालियोंका जन्म वताता है । यह अपने पूर्वपुरुषोंकी युद्धप्रदेशसे भाये कहते हैं । दूसरा प्रवाद यों है—“पादिशूरके समय कापाली शूद्र समझे जाते थे । कान्यकुब्ज देशसे पांच ब्राह्मण घोर कायस्थ भाये । पादिशूरने कापालियोंसे उनके पैर धोनेकी कहा । किन्तु कापालियोंने उनका पादेश माना न था । इसीसे गौड़राजने उन्हें समाजकी नीच श्रेणीमें गिन लिया ।”

उनमें अधिकांग वैष्णव हैं । विवाह शास्त्रानुसार होता है । प्रथम स्त्री वन्या होनेसे द्वितीय स्त्री प्रहण कर सकते हैं । भाषीयकी मृत्यु होने पर ३० दिन शमौषके पीछे ३१ वें दिन श्राद्ध किया जाता है ।

कापिक (सं० पु०) कपिरव ठक् । अष्टादशसहस्र । भा३ । १ । १०८ । १ कपि, वानर । (त्रि०) २ कपिवत् आचरण करनेवाला, जो बन्दरकी तरह पैग जाता या देखा जाता हो ।

कापिकेघण (सं० पु०) कौकिलाघ घुप, तास मखानिका पेड़ ।

कापिचल (सं० पु०) कपिचलस्य अपत्यं पुमान्, कपिचल-अण् । कपिचलके पुत्र ।

कापिचलान्दि (सं० पु०) कपिचलान् तन्मान्मानि अस्ति, कपिचल-अद्-अण्-इत् । चातक तथा तित्तिर पक्षीका मांसभक्षक, जो पपीहे घोर तीतरका गोशत खाता हो ।

कापिचलनाय (सं० पु०) कापिचलनादेरपत्यं पुमान्, कापिचलान्दि-इत् । उर्ध्वदिगो षः । भा३ । १ । १२१ । कापिचलान्दिका पुत्र, पपीहे घोर तीतरके गोशत खानेवालेका बेटा ।

कापित्य (सं० स्त्री०) कपित्यस्य विकारः, कपित्य-अण् । अष्टादशसहस्र । भा३ । १ । १०८ । १ कपित्य द्वारा निर्मित वस्तु, कौपीकी चीज । २ कपित्यफल, मोटा ।

कापित्यक (सं० स्त्री०) देशविशेष, एक मुक्त । (भा३ उर्ध्वदिगो) वर्तमान उत्तर भारतके सङ्घि नामक नगरकी चारो घोरका स्थान 'कापित्यक' कहाता है ।

उर्ध्वदिगो चारुका स्थान ।

कापिल (सं० पु०) कपिलेन प्रोक्तं शास्त्रं वेत्ति पथीति वा, कपिल-अण् । १ सांख्यशास्त्रवेत्ता । कपिलमधिष्ठत्य हतो ग्रन्थः । २ कपिल मुनिके मतायुसार लिखित एक उपपुराण । ३ पिङ्गलवर्ण, भूरा रंग । ४ कपिलवर्षाके पुत्र । (त्रि०) ५ कपिल-सम्बन्धीय । ६ पिङ्गल, भूरा ।

कापिलिक (सं० पु०) कपिलिकाया अपत्यं पुमान्, कपिलिका-अण् । कपिलवर्षाके पुत्र ।

कापिलेय (सं० पु०) कपिलाया अपत्यं पुमान्, कपिला-ठक् । कपिल मुनिके एक शिष्य । कपिला नाम्नी किसी ब्राह्मणकी स्तनपान करनेसे यह 'कापिलेय' कहाये हैं । (भा३, भा३, २२८ च०)

कापिल्य (सं० त्रि०) कपिलेन निष्ठं तम्, कपिल-अण् । कपिलनिर्मित, कपिलका बनाया हुआ ।

कापिवन (सं० स्त्री०) दो दिनमें होनेवाला एक अष्टौन यज्ञ ।

“कापिरव वैश्वदेव कापिवनः ।” (कात्यायन, २१ । १४)

कापिग (सं० स्त्री०) कपिगा माघवी तत्पुण्यात्, जातम्, कपिगा-अण् । १ द्वाद्यामद्यविशेष, माघवीके पूर्वकी शराव । २ मद्यमात्र, कोई शराव ।

कापिगायन (सं० स्त्री०) कापिग्या जातम्, कापिगी-ठक् । कपिग्या-अण् । भा३ । १ । २८३ । १ मद्य, शराव । २ मद्य, शहद । ३ देवता । ४ कापिगी जनपदमें रहनेवाला । (त्रि०) ५ द्वाद्यानिर्मित, दाणका बना हुआ ।

कापिगायनी (सं० स्त्री०) द्वाद्या, दाण । कापिगी (सं० स्त्री०) प्राचीन जनपदविशेष, एक पुरानी बस्ती । पापिनिने अपने स्वयंमें उत्तका उल्लेख किया है । (भा३८८) सिद्धयन्तसिद्धाङ्गने उस जनपदका नाम 'कि च-पि-मि' लिखा है । उत्त चीन परिभ्रमकके समय भी कापिगी जनपद अद्विय राजाके अधीन रहा । उस समय यहाँ निर्यन्त्र, पाण्डपत, आपासिक,

नहीं है। पहले उसकी सत्तुःसीमा सता चुके हैं। उसके दक्षिणके कितने ही अंगका नाम मलयालम् (मलय) है। फिर मध्यांय तुलुव और उत्तरका कुछ अंग कर्णाट कहता है। अनेकोंके कथनानुसार कानाड़ा कर्णाट देशका नामान्तर है। किन्तु यह बात ठीक नहीं। उपांत देखो।

दक्षिण कानाड़ेके उदीपी परगनेका उत्तर पर्यन्त भूभाग प्राचीन केरल राज्यके अन्तर्गत है। कहा जाता है कि परशुरामके सत्रियविनाशके पीछे पाण्ड्य राजाशनि जा उक्त स्थान पर अधिकार किया था। १२५२ ई० तक पाण्ड्यराज प्रबल रहें। फिर १३३८ ई०को वल्लभियनगरराजके अधिकारमें गया। १५६८ ई०को तालिकोटके युद्धमें विजयनगरराजका पराक्रम खर्च हुआ और बदनूरके सरदारने स्वाधीनता या बदनूर राज्य स्थापन किया। उन्हीं कानाड़ेके इनर नामक स्थानसे नीलेश्वर पर्यन्त अधिकार किया था। पीछे चेरकलराजके साथ दृष्टदण्डिया कम्मनौका बन्दोवस्त हुआ। उस समय उक्त प्रदेश शक्रराज्य कानाड़ाके नामसे लिखा जाता था। कानाड़ाका उत्तरांग तुलुव प्रदेशके अन्तर्गत रहा। १६१९से १७१६ ई० तक वल्लभियनगरराजके अधिकारमें था। उक्त देखो।

फिर १७१६से १७३५ ई० तक कानाड़ाका उत्तरांग बहालवंशके अधीन रहा। उक्त देखो।

१७६३ ई०को हैदरअलीने बदनूरके अधिकार काल कानाड़ाके मध्य मङ्गलोर वासपुर लेनेके पीछे मलबार और समस्त जिला अधिकार किया। दो वर्ष पीछे अंगरेज सेनाने इनर और मङ्गलोर जा कूड़ाया था। किन्तु अल्प दिन पीछे ही टीपू सुलतानने पुनरधिकार किया। उसके पीछे १७८३-८४ ई०को टीपूसे अंगरेजोंका दक्षिण कानाड़ेमें महायुद्ध हुआ। अक्टोबर १७८१ ई०को वल्लभियनगरके अंगरेजोंके अधिकारमें पहुँच गया।

१८३८ ई०को कुर्गराजके साक्ष्यप्रणयके समय अमर और सुलिय प्रदेशके सीमोंने स्व स्व प्रदेश अंगरेज राज्यसुल करनेकी प्रार्थना की थी। १८३७ ई०को दृष्टिगणन उक्त प्रदेश पर खीजत हुए। समय

मगनिष्ठ जिला दक्षिण कानाड़ाके पुत्तुर विभागसे मिटाया गया। उसी वर्ष कल्याणपा सुवराय नामक किसी सरदारने कुर्गराजके पतनसे अंगरेजोंके विरुद्ध यत्न धारण किया। पुत्तुरसे मङ्गलोर पर्यन्त विद्रोह फैला था। उसके पीछे विद्रोही शासित होने पर कानाड़ा प्रदेश दो भागोंमें बंट प्रसिद्ध और मन्दाज प्रेसीडेन्सीमें मिला गया। दक्षिण कानाड़ाका प्रधान नगर मङ्गलोर, यन्तवाल और उदीपी है। उसमें प्रधानतः हिन्दू, पोर्तगीज, फरासीसी, अरब और अनाथ लोग रहते हैं। हिन्दुओंमें ब्राह्मणोंकी संख्या अधिक है। वह सारसत और कौडुथी नामक दो समाजोंमें विभक्त हैं। द्राविडोंसे उद्भूत ब्राह्मण गिजली कहते हैं।

उक्त देशके अरब मोपला कहते हैं। अनार्य लोगोंने मलयकुट्टिराज प्रधान हैं। वह जिस प्रणालीसे क्षत्रिकार्य करते, उसे 'कुमारी' प्रणाली कहते हैं।

उत्तर कानाड़ाके मध्य हिन्दुओंमें सुपारीके व्यवसायी हारिक ब्राह्मण ही विख्यात हैं। सुवलमामोंमें नाविक अरब बणिकोंके प्रतिनिधि कहते हैं। किन्तु वह अल्प संख्यक मिलते हैं। अफरीकासे आनीत पोर्तगीजोंकी छत दासियोंके गर्भजात सुवलमान सीदो नामसे आख्यात हैं। उनकी आज्ञाति इस समय भी बहुत कुछ काफिरोंसे मिलती है।

कानाफुसी (हिं० स्त्री०) गुप्तशयन, धीरेसे कही जानिवाली बात।

कानावाती (हिं० स्त्री०) १ गुप्तकथन, कानाफुसी। २ बांसक हंसानेका एक कार्य। बांसकके कर्षमें 'कानावाती कानावाती कु' कहते 'कु' शब्द लोरसे बोलते हैं। इससे बांसक हंसने लगता है।

कानाथिज (हिं० पु०) यक्षविशेष, एक कपड़ा। यह चीकियेसे मिलता-जुलता रहता है।

कानि (हिं० स्त्री०) १ मर्यादा, इज्जत। २ गिचा, सीख। कानिद (हिं० पु०) बांसकी कमची। इससे परादते समय हीरा पत्ता दबाया जाता है।

कानिष्ठिक (सं० स्त्री०) कनिष्ठिका इय, कनिष्ठिका-पण्। अर्यतदिव्योक्त्य। वा ५। १। १००। कनिष्ठिका सदृश।

देवीपासक और बहुत बौद्ध वास करते थे। उसका विस्तार ४००० लि (करीब ३३३ कोस) था। (Beal's Buddhist Record I, 54-58 देखो)

वादात्य प्राचीन भौगोलिक टलेमिने उसका नाम 'कपिया', झिनिने 'कपिग्नि' और सलिनासने 'कफसा' लिखा है।

कनिंहाम साहबकी मतसे उक्त प्राचीन जनपद काफरस्थान घोरमन्थ और पञ्चाग्रि पर्यन्त विस्तृत था। चीन-परिव्राजककी वर्णनासे समझ पडा, कि वर्तमान बन्नु (पाणिनि-कथित वर्ण) उपत्यका प्रदेश भवधि कापिणी क्षत्रिय राजाका अधिकार रहा।

झिनिने उसकी राजधानी 'कपिष्ठा' बताया है। उसका वर्तमान नाम कुसान पथवा भोपियान है।

कापिण्य (सं० पु०) कपियाया अपत्यं पुमान्, कपिमा-टक्। पिशाच, शैतान्।

कापिष्ठल (सं० पु०) कपिष्ठलस्य इदम्, कपिष्ठल-घण्।

१ प्राचीन जनपद विशेष, एक पुरानी बसती। लहत्-संज्ञितार्थे वह 'कापिस्थल' नामसे उक्त है। फिर प्राचीन ग्रीक भौगोलिक परियानने उसे 'क्वास्त्रिस्थली' लिखा है। वह पञ्चावकी घन्तमंत कुरुक्षेत्रका मध्यवर्ती है। वर्तमान नाम कदघर है। वहां अज्ञानामन्दिर प्रसिद्ध है। २ गोतभेद।

(छाण्डोग्य १०-२१२)

कापिष्ठलि (सं० पु०) कपिष्ठलस्य गोत्रापत्यम्, कपिष्ठल-रञ्। कपिष्ठल ऋषिके श्रेणी।

कापी (सं० स्त्री०) १ नदी विषय, कोई दरिया। २ स्त्रीविशेष एक तरहकी औरत।

कापी (सं० स्त्री = Copy) १ प्रतिलिख, नकल। यह शब्द पंगरेजों Copyका अर्थमें है। (दि०) २ गहारी, घिरनी।

कापी-राइट (सं० पु० = Copy right) सुद्रष्टव्यामित्य, इक् तसनीफ या मुसविफी। उक्त शब्द राजविधिके अनुषार अत्यन्त वा प्रकाशककी मिल्ता है। विना अनुमति लिखे दूसरा व्यक्ति किसी अत्यन्त वा प्रकाशककी कोई पुस्तक छपा नहीं सकता।

कापु—मन्दाज मान्तकी एक जाति। उसे खान-

विशेषमें कापु, रेडो या नायडू भी कहते हैं। नेलूर, कदवा, कारनूल और समस्त तेलङ्ग देशमें कापु लोग रहते हैं। उनको उपजीविका प्रधानतः कृषिकार्य ही है। किन्तु कोई कोई व्यवसाय भी चलाते हैं। यह चतुर, साहसी और कार्यन्तम होते हैं। कापु जाति १३ शाखामें विभक्त है। १ पारे, २ कानिदे, ३ चन्नकुट्टी, ४ देसुरि, ५ नेरातु, ६ पण्टा, ७ पाकानटी, ८ पेदाकान्ति, ९ पत्ते, १० मोटाति, ११ रत्तु, १२ येराप और १३ रेलामा कापुल।

कापुरुष (सं० पु०) कुः पुरुषः कीः कादेयः। विभाषा ३२६।

पा० १। १। १। १। निन्दित पुरुष, खराब चादमी।

कापुरुषता (सं० स्त्री०) कापुरुषत्व भावः, कापुरुष-तन्।

१ निन्दित पुरुषका कार्य, खराब चादमीका काम। २ भौरता, निकम्पान।

कापुरुषत्व (सं० स्त्री०) कापुरुष-त्व (भाव मूलत्वात्)।

पा० १। १। १। १। निन्दित पुरुषका कार्य। कापुरुषता शैवी।

कापुरुष्य (सं० स्त्री०) कापुरुष्य भावः, कापुरुष-त्थञ्।

कापुरुषता, निकम्पान।

कापेय (सं० त्रि०) कपेर्भावः कार्यन्त्वा, कपि-टक्।

१ कपिधर्मस्थीय, बन्दरके सुतान्त्रिक। २ पत्रिवा ऋषिके शंभुमें उत्पन्न। (पु०) ३ शौनक ऋषि। (स्त्री०) ४ धानर जाति, बन्दरकी कौम। ५ धानरके कार्य, बन्दरकी धान।

कापोत (सं० पु०/स्त्री०) कपोतानां समूहः, कपोत-घण्।

१ कपोतसमूह, कन्नूरकीका कुण्ड। २ सौधौराक्षन, सुरमा। ३ सर्जिघार, सज्जीखार। ४ रुचक-सयक, काना नमक। ५ कपोत वर्ण, भूराङ्ग (त्रि०) ६ कपोत-सम्बन्धीय, कन्नूरके सुतान्त्रिक। ७ कपोत-वर्णविगिट, भूरा।

कापोतक (सं० त्रि०) कपोतः सन्ति पश्यान् कपोत क-कुक् च तत्र भवः घण् छय लुक्। कपोतविगिट देशान्त, कन्नूरके भरे मुस्लमान रहनेवाला।

कापोतपाव (सं० पु०) कपोतानां पाकः डिम्बः, तस्य समूहः, कपोतपाक-ण्य। कपोतके डिम्ब, कन्नूरके शंङ्गीका समूह। २ कपोतपाकीका राजा।

कापोतवक्रक (सं० पु०) कपोतवक्र, एक बूटी।

कानिष्ठिनिय (सं० पु०) कनिष्ठाया अपत्यं पुमान्, कनिष्ठा-ठञ्-इणञ् प्रादेश्य । कन्यायादीकानिष्ठम् । पा ४।१।२२६। कनिष्ठाका पुत्र ।

कानी (हिं० स्त्री०) १ एक चतुर्वाली स्त्री, जिस औरतके एक ही बाँख रहै । २ कनिष्ठा, सबसे छोटी ह्याथकी छंगली ।

कानीत (सं० पु०) कनीतस्य अपत्यं पुमान् । कनीत नामक ऋषिके पुत्र, पृथुश्रवा ।

कानीन (सं० पु०) कन्यायाः जातः, कन्या-अण् कनीन प्रादेश्य । कन्यायाः कनीनश्च । पा ४।१।२२६।

१ प्रविवाहिता कन्याका पुत्र, वीर्याही लड़कीका लड़का । २ कर्ण राजा । ३ व्यासदेव । ४ अग्निवेश । ५ लोभहृच, लोभ । (त्रि०) ६ चक्षुके लिये हितकर, बाँखकी पुतलीको फायदा पहुँचानेवाला औषध ।

कानीयस (सं० त्रि०) कनीयसः इदम् । कनिष्ठ-सम्बन्धीय, शुभारमें कम ।

कानून (अ० पु०) व्यवस्था, आईन, सुक्तमें अमन-चैन रखनेका कायदा ।

कानूनगो (अ० पु०) राजस्य विभागका एक कर्म-चारी, कीर्दे माली भफधर । यह पटवारियोंके कागज देखता भासता है । कानूनगो दो प्रकारका है— गिरदावर और रजिष्ट्रार । गिरदावर घूम घूम पटवारियोंका काम देखा करता है । रजिष्ट्रारके दफ्तरमें पटवारियोंके पुराने कागज पहुँचाये जाते हैं ।

कानूनगोई (अ० स्त्री०) कानूनगोका काम या धोइदा । सुसलसामांके राजत्वकालमें जो राजकर्मचारी भूसम्पत्तिके ज्ञातव्य विषय नवावकी निकट पहुँचाते, वही यह पद पाते थे । आईन-मकधरी पढ़नेसे समझ पड़ता है कि उस समयप्रत्येक सरकारमें एक कानूनगो और उसके अधीन प्रत्येक महलमें एक पटवारी रहता था । चतुःसीमा, विभाग, विक्रय और इस्तान्तरकरण प्रभृति भूसम्पत्ति-सम्बन्धीय कीर्दे कार्य आवश्यक पानेसे पहले कानूनगोसे फइना या उसके प्रादेश्य ले कार्य करना पड़ता था । भूमिसम्पर्कीय किधी विषयपर तर्क ठठनेसे कानूनगो भीमांसा कर देता था ।

कानूनदा (फा० पु०) १ व्यवस्था समझनेवाला, जो

कानून जानता हो । २ व्यवस्था भाड़नेवाला, जो कानून छोटता हो ।

कानूनिया (हिं०) कानूनदा देखी ।

कानूनी (अ० वि०) १ व्यवस्था जाननेवाला, जो कानून समझता हो । २ व्यवस्था-सम्बन्धीय, कानूनके सुतात्रिक ।

३ नियमानुसूल, कायदेके सुतात्रिक । ४ हठी, हजलती ।

कानून—पञ्जाबके कुनावर उपविभागका प्रधान नगर ।

यह समुद्रतलसे ८३०० फीट ऊँचे पर्वत पर अक्षा० ३१° ४' ८०" और देशा० ७८° ३०' पू० में अवस्थित है । यहाँ एक प्रसिद्ध बौद्ध मठ है । उसमें मोटदेग्रीय विस्तार बौद्धग्रन्थ संरक्षित हैं । कानून साधकवाले प्रधान लामाके अधीन है । कस्यलका व्यवसाय अधिक चसता है ।

कान्त (सं० पु० स्त्री०) कनते दीव्यते, कन कर्तृरिति ।

१ कुडुम, रीरी । २ कान्तलौह, एक लोहा ।

३ श्रीकण्ठ । ४ चन्द्र, चाँद । ५ स्वामी, खाविन्द ।

६ चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त और अयस्कान्त मणि, चातग्रो

शीशा गगैरह । ७ नन्दोहच, एक पेड़ । ८ वसन्त ऋतु,

मोषम-वहार । ९ विष्णु । १० शिव । ११ कार्तिकेय ।

१२ कामदेव । १३ चक्रवाक, चक्रवा । १४ वर्षा,

बरसात । १५ द्विजलहृच, एक पेड़ । १६ प्रियतम,

प्यारा । (त्रि०) १७ मनोरम, खूबसूरत । १८ अभि-

लपित, चाहा हुआ ।

कान्त—युक्त प्रदेशके शाहजहाँपुर जिलेका एक गण-

ग्राम (कसबा) । यह शाहजहाँपुर गहरसे साढ़े चार

कोस दक्षिण जलाकावाटकी राह किनारे अक्षा०

२७° ४८' २०" ८०" और देशा० ७८° ४८' ४५" पू० पर

अवस्थित है ।

यह नगर अति प्राचीन है । शाहजहाँपुर वसनेसे

पहले कान्त अत्यन्त महद्विख्याल था । प्राचीन पहा-

लिका और दुर्गादिके ध्वंसावशेषिष्ठ स्तूप प्रभृति देखनेसे

इसका कितना ही पूर्व परिचय मिलता है । आजकल

यहाँ पुलिसका थाना, डाकखाना और सराय मौजूद

है । यह जनपद महामारतोत 'कान्ति' (भेष ८।०)

और पायात्व भौगोलिक टेलिमि-वर्णित 'किष्किया' समझ पड़ता है ।

कापोताफ्नन (सं० स्त्री०) कपोतं तत् पफ्ननञ्चेति, कर्मधा० । शीवीराफ्नन, हरमा ।

कापोति (सं० द्वि०) कपोतश्च इदम्, कपोत-इञ् । कपोत सम्बन्धीय, कबूतरके सुतात्त्विक ।

काप्य (सं० पु०) कपेर्गोत्रापत्यम् कपि-उञ् । १ कपि षट्पदिके वंश्रीय, पाङ्गिरस । २ वानर वंश्रीय, वन्दरसे पैदा होनेवाला । (स्त्री०) ३ पाप, गुनाह ।

काप्यकर (सं० पु०) कुम्भितं काप्यं काप्यं पापं करोति, काप्य-क-ट । १ स्वकृत पाप प्रकाश करनेवाला, जो अपना किया हुआ गुनाह कष्ट डालता हो । (द्वि०) २ पापकारक, गुनाहगार ।

काप्यकार (सं० पु०) काप्यं करोति, काप्य-क-अण् । १ पाप करके प्रकाश करनेवाला, जो गुनाह करके कष्ट डालता हो । २ पापकी स्वीकृति, गुनाहको तसनीम । ३ पापकारक, गुनाहगार ।

काप्यायनी (सं० स्त्री०) कपेर्गोत्रापत्यम्, कपि-यञ्, फ-ङ्गीप् । कपिवंश्रीय, कपिके वंशकी धौरत । काफरो (द्वि० स्त्री०) किषी किष्पका मिर्धा । इसका आकार चपटा गोल और वर्ष पीत होता है । काफल (सं० पु०) कुम्भितं फलं यस्य, कोः कादेशः । फटफल वृक्ष, कायफल ।

काफ्रिया (अ० पु०) अनुमास, तुक । अनुमास जोड़नेको काफ्रियावन्दो कहते हैं ।

काफिर (फा० वि०) १ मूर्तिपूजक, बुतपरस्त । २ नास्तिक, ईश्वरको न माननेवाला । ३ निर्दय, बेरहम । ४ दुष्ट, पापी । ५ काफिरस्तानका रहनेवाला । (पु०) ६ अफरोका का एक सुल्तान ।

काफिर—एक जाति । अफरोकाके दक्षिणस्थ काफेरिया नामक स्थानके अधिवासी ही काफिर हैं । किन्तु सुदानके दक्षिणदिग्दर्शो समुदाय अफरोकावासी भी उन्हीं नामसे पुकारे जाते हैं । आजकल अधिकांश स्थानोंमें यह देख पड़ते हैं ।

भारतवर्षमें भी काफिर हैं । उन्हें शायरपतः हबशी कहते हैं । यह खिर कर नहीं सकते काफिर किश समय कैसे रह देयते या पढ़ लेते । फिर भी अनुमान जाता, जिस समय अरबके साथ

भारतका बहिर्वापिष्य रहा, उन्हीं समय अरबोंके साथ काफिरोंका यहाँ आगमन हुआ । अफगानों, मुगलों और तुर्कोंके साथ भी अनेक आये हैं । काफिर यहाँ या और कसमः विग्रह प्रत्यय या शेषको किषी किषी स्थानमें राजा तक हो गये हैं ।

आजकल उत्तर कनाड़ेके दक्षिणी लिसेके पार्यन्त प्रदेशमें काफिरोंका वास अधिक है । बम्बई उपकूलके जंजीरा नामक स्थानमें 'हबशी' या "सीदी" जातीय राजा हैं । यह राजवंश अबसीनियाके काफिरोंमें उत्पन्न है । खुडीय १८म शताब्द पर्यन्त अबसीनियाके काफिर भारत-उपकूलमें जलदख्यका व्यवसाय उठा निकटवर्ती सामरमें घमा करते थे । खुडीय १५म और १६म शताब्दको विजयपुरमें पादित्त शाही तथा निजामशाही वंश राजत्व करता था । उसके अधीन काफिर पुररची सैन्यश्रेणीमें नियुक्त रहे । सिन्धु प्रदेशमें तालपुरके अमीर एक दिन काफिरोंका सैन्य रखते हैं । कर्णाटकके नवाबके पास भी काफिर दास रहते हैं । कर्णाट केलाम और मेकरान नामक स्थानमें बहुत काफिर हैं । फिर निजाम राज्यमें निजामके नियमित सैन्यके मध्य उनको संस्था कुछ अधिक है । भारतके अन्य प्रदेशोंमें भी सुसलमानोंके साथ काफिर फैल पड़े । पहले सुसलमान नवाबोंके अधीन यह पुररची सैन्यदलमें नियुक्त रहते थे । नगराटकी शांति रचा उनके हाथमें था । उनकी रसयिया भी नवाबोंके अन्तःपुरमें दाम्नी थीं । नवाबोंके अनुकरणसे हिन्दू जमीन्दार और राजा पुररचाको काफिर नियुक्त करते थे । शोध होता कि काफिरोंको बड़े विज्ञापी, प्रभुभक्त और बलिष्ठ समझ कर ही इस कार्यका भार दिया जाता था ।

पूर्व-भारतीय हीयपुत्र और दक्षिण-एशियाके अन्यस्थानमें भी काफिरोंका वास है । काफिर वहकि उपनिवेशी नहीं । यह सकल स्थान उनको पादित्त वाम-भूमि है । उक्त स्थान अफरोकाके काफिरोंको मासभूमिके साथ समसूत्रपातमें रहनेसे उन दोनोंके मध्य देशगत पायंदाके सिवा अन्य कोई विभिन्नता देख नहीं पड़ती । इसीसे दोनों जातियोंके लोग काफिरमाने जाते हैं ।

कान्ता (सं० स्त्री०) कान्तस्य भावः कान्त-तत्त्वं टाप् ।
१ सौन्दर्यं, खूबसूरती । २ स्वामित्व, खाविन्दी ।

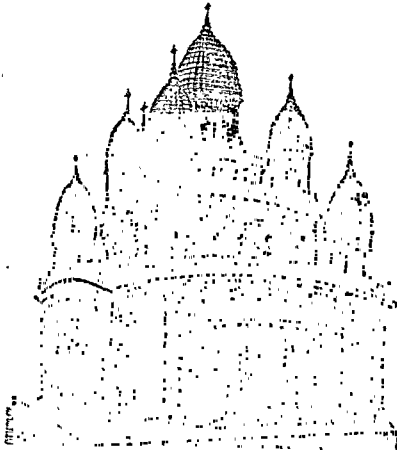
कान्तत्व (सं० स्त्री०) कान्तस्य भावः, कान्त-त्व ।
१ मनीषारिता, खूबसूरती । २ स्वामित्व, खाविन्दी ।

कान्तनगर—बङ्गाल प्रदेशके दीनाजपुर जिलेका एक
गण्डग्राम (कसबा) । यह वीरगञ्ज थानेमें लगता है ।
दीनाजपुर शहरसे कान्तनगर ६ कोस दूर है ।

दुर्गादिके ध्वंसावशेषसे स्पष्ट समझ पड़ता
कि उक्त स्थान किसी समय विघ्नेष सृष्टिहाली था ।
अनेक लोगोंके विश्वासानुसार स्तूपकार ध्वंसावशेष

विराटराज्यका दुर्ग रहा । वह उक्त दुर्गमें बास भी
करते थे । पाण्डव अज्ञातवासके समय यहाँ भाये थे ।

कान्तनगरकी चारो ओर पड़े हुए विस्तीर्ण भूभाग-
का नाम उत्तर-गोखड़ है । प्रवादानुसार कान्तनगरकी
घाघा नदीके पूर्वतीर और कचाई नदीके उभय
तीर विराटराजका गोधन चरता था । उक्त गोचारण-
भूमि किसी समय अत्युच्च प्राकारसे वेदित थी । आज-
कल वृक्ष लतादिके उक्त सकल स्थान ढक गया
है, इसीसे उस प्राचीन प्राकारका विह पर्यन्त पा
नहीं सकते ।



कान्त मन्दिर ।

कान्तनगरका कान्त-मन्दिर अति प्रसिद्ध है ।
ऐसा सुन्दर और विचित्र मन्दिर बङ्गदेशमें दूसरा नहीं ।
राजा प्रायनाथ दिक्षीसे कान्त नामक विष्णुविग्रह
आये थे । उक्त कान्तविग्रह प्रतिष्ठा करनेके लिये ही
सुप्रसिद्ध कान्तमन्दिर बना । १७०४ ई०को इस
मन्दिरका निर्माण कार्य और कोर्से १७२४ ई०को
यह महान् कार्य सुसम्पन्न हुआ था । राजा प्रायनाथने

इस मन्दिरके निर्माणार्थे लाखों रुपये खर्च किये ।
यह मन्दिर बङ्गाल देशके स्वपति और गिष्ठी खोतीका
गौरवप्रकाशक है ।

• यहांके अधिवासी कदा करते हैं कि दीनाजपुरका अधिवास स्थान
ही प्राचीन मत्स्यदेश है । किन्तु महाभारतादि पद्यमें किन्हीं कान्ति उक्त
अवयवमें मत्स्यदेशका अन्वयान्ति निर्धारित ही नहीं सकता । मत्स्यदेश का
विराटराज्य पुष्यदेश है ।

टेलीमिके पुस्तकपाठसे समझ पड़ता कि उन्हें उनका विवरण प्राप्त था। उनके "परिया खेरसनेसास" "याबाहस इल्लिडलि" और "इयिषोपिस इकयिषो-अजि"में सुमाना, यद्यदीप एवं नव गिनीकी पपुया जातिका विवरण भरा है। उसे ही रामायणोक्त राक्षसजाति अनुमान करते हैं।

प्राचीनकाल भारतवर्षके दक्षिणप्रायमें वाणिज्य करनेकी मिसरीय वणिकोंके साथ अफरीकाके पूर्वा-क्षलाले लोग अरब और अफरीकाके उभय स्थानोंसे यहां आते थे। प्रायः तैतिहासकोंके मतमें वेसा-व्यवसायवाणिज्य प्रायः तीन हजार वर्ष रहा। उस समय यही नहीं कि उक्त सकल देशोंके लोग केवल पण से पोषारोहण द्वारा इस देशमें आते और क्रय विक्रय कर बन्दरसे चले जाते थे, किन्तु अनेक वणिकरूपसे इस देशमें रहने भी लगते थे। उक्त सकल स्थानों, वणिक विंशकमें "मुसरजाति" और दक्षिण-प्रायमें "मोपला" या "लव्वाइ" नामसे ख्यात हुए। किसी किसीके कथनानुसार दक्षिणप्रायमें आर्योंका अधिकार विस्तृत होनेसे पहिले ही काफिर रहने लगे थे। उक्त मत समर्थनके लिये बताते हैं—

"दक्षिणप्रायके अधिवासियोंके आर्यजातिका जितना पार्यव्य आशंकस देख पड़ता है, उतना भारतमें किसी दूसरे स्थानपर नहीं मिलता। फिर दक्षिणप्रायकी सकल भाषा संस्कृतसे सम्पूर्ण भिन्न है। दक्षिणप्रायके अधिवासियोंमें कितनी हीका आकृतिगत सौमादृश्य अधिकांश ईरानियोंकी भांति, कितनी हीका सामंतीय ईरानियोंकी भांति, कितना हीका अष्ट्रेलियोंकी भांति और कितनी हीका मलय पपुयोंकी भांति है। फिर निम्नवर्षीके लोगोंमें अधिकांशकी आकृति अफरीकावासियोंमें मिलती है। उक्त लोगोंके मतानुसार विषय एवं घाटपर्वतके पूर्व प्रान्तवर्ती असभ्यजातिकी आकृति अधिकांश उत्तर भारतीय आर्यजातिकी आकृतिसे सौमादृश्य रखती है। किन्तु घाटपर्वतके पश्चिमोत्तरवासी मलय दीपको जाकून जातिकी भांति होते हैं। जाकून जातियोंके साथ अफरीकावासियोंका अधिक सादृश्य है।

पूर्व भारतीय दीपावलीमें प्रधानतः चार जातिका वास है—(१) विशद मलय जाति, (२) मलय उप-दीपवासी खर्शकार काफिर या सेमांजाति, (३) फिलिपाइन दीपकी सुद्राकार काफिर जाति और (४) नवगिनीकी वृक्षकाय काफिर या पपुया जाति। एतद्विना नवगिनी और मलयदीपके मध्यवर्ती कई दीपोंमें उनकी मध्यवर्ती एक जातिके लोग देख पड़ते हैं। उन्हें मलयकी काफिर जाति कह सकते हैं। मिन्निबिस और सत्यक द्वीपके पूर्व जो सकल दीप हैं, उनके अधिवासी साधारणतः पष्ट्रेलियावासियोंकी भांति होते हैं। उक्त पार्यव्य देख अनेक लोग अनुमान करते हैं कि एशियाके दक्षिणार्धके साथ पूर्व भारतीय दीपपुञ्जके पश्चिमभागस्थ द्वीप प्रति प्राचीन कालमें संक्रमण से और फासक्रममें प्राकृतिक परिवर्तनसे विच्छिन्न हो गये। *

अफरीकामें जितने काफिर रहते हैं, अनुमानतः उनकी संख्या दो करोड़से अधिक नहीं। इस पूर्वी संख्यामें काफिरियावासी काफिर और इटेग्रेट भी रख दिये गये हैं।

सोडितसागरके पूर्वकूल, पारसीपसागरके तीर और मलय उपद्वीपमें काफिरोंकी संख्या अधिकसे अधिक ५० लाख होगी। किन्तु यद्वापसागरके आन्दामान द्वीपसे पूर्व दिक्की दीपायकीमें जिन जिन जातीय लोगोंकी साधारणतः काफिर कहते हैं, उनमें मध्यमें मूलमूलतः १२ आकृतिगत श्रेणी-विभाग हैं। उन १२ श्रेणीगत पार्यव्योंकी देख प्राप्त होता है— उनमें कितने ही सादृष्टे तीन छाय या चार छाय तक और कितने ही सादृष्टे चार छाय तक शब्दे निकलते हैं।

* यह अनुमान केवल आर्योंके आकृतिगत सौमादृश्य पर निर्भर नहीं करता। सुनाल, मोनिकी, पण, बालि आदि दीपको परन्तु मध्यवर्ती प्रवासों और एशियाके प्रधान मूलमूलकी मध्यवर्ती प्रवासों कहीं भी १३०। १०० छायसे अधिक नहीं गते। किन्तु मिन्निबिस दीपके पूर्वांशकी प्रवासों और सुद्रांश अनेक स्थानों ३०० छायकी प्रवासों भी गते हैं। एतद्विना एशियाके दक्षिणार्धके उत्तर मूलमूल इत्यादि भारत मलय और प्राचीन अफरीकावासियोंके साथ इन सब दीपोंके उक्त समस्त श्रेणियोंका सम्पूर्ण पर्य देख पड़ता है।

वान्तनगरका यह पवित्र देवमन्दिर देखनेसे समझ पड़ता है, कि अंगरेजोंके आनेसे पहले बङ्गालके दीग मिश्रियोंने स्थापत्य और मिश्रविद्यामें कितना उत्थितनाम किया था। यह नवरत्न मन्दिर है। मन्दिरकी चूड़ाके विष्णुचक्रसे पाददेश पर्यन्त सुगठित सुचित्रित और कारुकाय-सुशोभित है। इस मन्दिरमें विनकुल पत्थरका सजाव नहीं, भित्तिसि चूड़ा पर्यन्त समस्त इष्टक-निर्मित है। मन्दिरके गात्रमें इष्टक खोद बहुसंख्यक देवदेवी मूर्ति-गठित हैं। देवदेवीकी मूर्ति देखनेसे यह भी समझ सकते हैं कि प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व बङ्गाल देशमें रीति, पद्धति और वस्त्रादि कैसे प्रचलित थे। हम कह सकते हैं कि ऐसा इष्टकनिर्मित एवं इष्टकखोदित कारुकायविशिष्ट मन्दिर दूसरा कहीं नहीं है।

कान्तनगरसे थोड़ी दूर सनका नामक स्थान है। प्रवादानुसार बिख्यात वणिक् चांदसीदागरने वहां मटीका एक किला बनवाया था।

कान्तपत्नी (सं० पु०) कान्तस्य कार्तिकेयस्य पत्नी, इ-तत्, यदा कान्तः मनोहरः पत्नीं ज्यास्ति, कान्त-पत्न-इति। मयूर, मोर।

कान्तपापाण (सं० पु०) चुम्बक नामक प्रसार, मङ्ग-मिक्नातीस। यह शीत, लेखन (खुजसी पैदा करनेवाला) और विषदोष, मेद, पाण्डु, ज्वर, कण्डू, मोह तथा सूक्ष्माणयक है। (वैद्यत्रिणिपट्ट) इसके शोधनका विधि यह है—कान्तपापाणको पीस मझिपी-दुग्ध तथा गन्ध छत्रमें पकाते हैं। पका कर यह लवण पार और मोभास्त्रनमें डाला जाता है। फिर दोसा यन्त्रमें मझिपीवीरादिसे दो बार पकाते हैं। अन्तको चक्करसे रौद्रमें एक दिन भावना दी जाती है।

(रक्षितकारण)

कान्तापुष्य (सं० पु०) कान्तानि मनोरमाणि पुष्पाण्यस्य, बहुश्री०। कोविदारहृष, साक कचनार।

कान्तबाबू—कासिमबाजार राज परिवारके प्रतिष्ठाता। इनका प्रकृत नाम छाप्याकान्त नन्दी था। जातिके यह नैकी थे। प्रथम कान्तबाबू सामान्य मोदीका व्यवसाय करते थे। इसीसे अनेक लोग इन्हें 'कान्तमाटी' कहते

हैं। वारन हेट्टिङ्गसके कासिमबाजारमें ईष्टइण्डिया कम्पनीके अधीन कर्म करते श्रीराज-उद-दोलाने वहाँके अंगरेजोंको पकड़ बंध करनेका आदेश निकाला था। उसी घोर संकटके समय इन्होंने वारनहेट्टिङ्गसको अपनी दुकानमें निरापद स्थान पर बैठा करनेसे बचाया। फिर हेट्टिङ्गस गवरनर जनरल होकर आये। किन्तु वह कान्त बाबूका महा अपकार भूल न थे। प्रथमतः इन्होंने इन्हें अपना दीवान बनाया। कुछ दिन पीछे कान्त बाबूने कम्पनीसे गाजीपुर और आजम गढ़ जिलेके पन्तर्गत (डूचा विहार) परगना जागीर पाया। इनके पुत्र लोकनाथको भी राजा बहादुरका उपाधि मिला था। ११८५ ई०के घोषमासमें कान्तबाबूका मृत्यु हुआ। यह हेट्टिङ्गसका दाहना हाथ थे। कान्तबाबूके द्वारा ही उनका सब काम चलता था। प्रयोजन होनेसे यह उनको रुपये उधार लाकर देते थे। हेट्टिङ्गसके साथ ही साथ कान्तबाबू रहते थे। एक बार हेट्टिङ्गसने इनके लिये काशीकी राजमाताकी भी डंडा लपटा था। (लल्लुभाबु चरित चम्पूधर्म Beveridge's The Trial of Nanda kumar, p. 234-45, 267-401. देखो।

कान्तलक (सं० पु०) कान्तं लपयते पास्त्रायते, कान्त-लक लपयते कः। १ नन्दीहृष, एक पेड़। २ तुषलहृष, तुनका पेड़।

कान्तलौह (सं० स्त्री०) कान्तं लौहं श्रेष्ठत्वम् कमनीयं लोहम्। १ अयस्कान्त, ईसात। २ लौह विशेष, एक लोहा। कान्तलौह उसीको कहते, जिसके पात्रमें जल रख कर तैलविन्दु डालनेसे तैल इतदातः न चले, जिसके स्वयंसे हिङ्गु स्त्रीय गन्ध परित्याग करे, गोमका काष्ठ भी जिसमें मधुर, आद, इ, जिसमें दुग्ध पकानेसे वालुकारांगिकी भांति जमी और जिसके पात्रमें चना भिगानेसे छप्यवर्ण देण पड़े। इस लौहसे वैद्यशास्त्रोक्त अनेक चोपष प्रचलित होते हैं। चोपष प्रयोग करनेके लिये नारण्य मारण्य प्रभृति कई कार्य आवश्यक हैं। लोहम् देखो।

इसके निरुत्पीकारणसम्बन्ध पर रसेन्द्रारसप्रहमें ऐसा उपदेश लिखा है,—“यह पारद, १ भाग, गन्धक २ भाग, और सम्यके समपरिमाण लौहचूर्ण एकतः

उनके मध्यमं अपेक्षाकृत कई विर्यात त्रैविर्गोके बात कहते हैं।

प्राग्भास्य हीपके मीनकपी काफिर—मानुस पड़ता है कि मनुष्य ये चीमें उनकी अपेक्षा असभ्य जाति दूसरी काम मिलेगी। उनके वासस्थानकी स्थिरता नहीं, परिधेय वस्त्रादि नहीं और उन्हें यह भी ज्ञान नहीं जैविकाके लिये किम प्रकार कार्य करना पड़ेगा। मीनकपी जोगोंके माय मिलना तो चाहते हैं, किन्तु पनिष्टप्रिय होते हैं। नरमांस नहीं खाते भी वह शूकरमांस, मत्स्य प्रभृति मत्स्य करते हैं। मीनकपी खड्गनी फल एवं मूल तोड़कर और भीषण तथा पुष्करिणीमें मत्स्य पकड़कर खा जाते हैं। वह धनुर्वाप से वन वन और पुष्करिणी पुष्करिणी घूमते फिरते हैं। बौमकी खपाचने मच्छकी पकड़नेका कौटा यह लोग बना लेते हैं। वह वड़ा नहीं रखते और मछू रहनेमें कोई सज्जा नहीं करते। मीनकपी सुद्रकाय होते हैं। उनका मस्तक छोटा और तालु चपटा रहता है। वह अपना सर्वाङ्ग कांचसे खरौंख खरौंखकर शरीरकी शोभा सम्पादन करते हैं। बाहुमूल तथा कण्ठमूलसे मण्डि-यन्त्र एवं कटिद्वेग पर्यन्त पद्मकी चारो ओर गोलाकार खरौंखके दानोसे मीनकपी पति विन्धी और भयानक लगते हैं। किन्तु वह उसीकी अपनी प्रधान शोभा समझते हैं। किसी विषय पर सम्मोष प्रकट करते समय मीनकपी दक्षिण हस्तमें तालुके निम्न भागपर धीरे धीरे दस्ताघात कर वाम स्तन्येपर एक घण्टा लगाते हैं। कई घण्टाके बाद मसलत वल जैसे ठपक देते हैं, जैसे ही शब्द निकल वह चुम्पा लेते हैं। परस्पर कयोप-कयन करते समय मीनकपी सिमा गठवड उच्चारण करते हैं, मानो 'धूं धूं' कर ही मनोभाव प्रकाश करते हैं। किन्तु वास्तवमें यह बात ठीक नहीं। उद्भिर्गोकी भांति उनकी उच्चारण-प्रणाली पति द्रुत और पम्पट होती है। उनकी गायना बहुत अच्छा लगता है। गायते समय यह दोनो हात मस्तककी ओर उठा मञ्जितके तास तास पर कुदते फादते हैं। फिर तृत्वमें सभी मीनकपी मस्तक घुमाते और सभी समस्त शरीर सम्पुष्पकी ओर मुका खाते हैं। इसी प्रकार मीनकपी सङ्गीत और

तृत्वके तान तान पर गानाउप अङ्गभङ्गी बिया करते हैं।

सेमां, विना—प्राग्भास्य हीपके पूर्व मलय उप-हीपके अन्तर्गत केटा, पेराक, पाङ्गाङ्ग और विङ्गानु प्रदेशमें जो काफिर रहते हैं, उन्हें मलयके लोग "सेमां" तथा "विना" कहते हैं। उनका वषं जल्प, केग ऊर्ध्व-घट्टण और गठनादि अफरीकावासियोंकी भांति खर्वा-कार होता है। पूर्णवयस्क पुरुषकी उम्रता तीन हायमें अधिक नहीं बैठती। उनके भी निर्दिष्ट वासस्थान और कृषिकार्यका अभाव है। उनमें अधिकांश घूम घूम कर वनका उत्पत्तादि संग्रह करते हैं और उसे ही मलय-जातीयोंके निकट व्यवहार्य द्रव्यादिसे बदलते हैं। वह गिकार भारतमें और गिकारमें पाये पशु-पक्षी वा उसका चर्म पालकादि विनिमय कर खाद्यादि खाते हैं।

क्रियान नदीकी उपनदी द्वाजाके तीरवर्ती स्थानमें "सेमां बुक्ति" नामक ये लोके काफिर रहते हैं। वह पूर्णवयसमें सवा तीन हाय होते हैं। उनका मस्तक सुदृ, मस्तकका सम्पूर्णभाग कुछ कोषाकार उच्च, और पश्चाद्भाग वतुंलाकार तथा मध्यांगकी अपेक्षा अग्रगन्त होता है। मलयजातीयोंमें सेमां बुक्तिनेका मुखमण्डल साधारणतः अग्रगन्त, अद्वेग उच्च, नयनकीटर पति गभीर, नासिका नोषी और छोटी एवं नासिकाका अग्रभाग सूक्ष्म तथा उठा हुआ होता है। पाँखका परदा पीला, पद्म घन-दीर्घ-कुञ्चित, हनुदेग एवं मुखविषर अग्रगन्त और चौंठ मोटा तथा छाटा रहता है। भ्रू तथा नासिकाके अग्रभाग और द्विदकी उम्रता समान होती है। उनका उदर हृदय रहते भी शरीर अपेक्षाकृत चौध लगता है। वह वानरकी भांति उदरको घटा बड़ा सकते हैं। गात्रका चर्म साधारणतः कोमल और चिद्रण होता है।

विङ्गानुकी सोमाङ्ग नामक ये लोके केटादियोंकी भांति कुछ तरलवर्ण हैं। वह लोग सेमाङ्ग बुक्तिनेकी भांति मलय और जल्पवर्ण नहीं होते। उनके बाल ऊनसे नहीं मिलते, टेढ़े टेढ़े और घटोत्तुल्यकी भांति ऊँचे रहते हैं। साङ्गारियोंकी भांति खूब घनी मोटी सूक्ष्म रहती है। मस्तककी बनावट मलयों वा काफिरोंकी

दृत्तकुमारीके रसमें दो पहर घाट ताम्बके पात्रमें छोटी
कोटी गोली बना रखना चाहिये । फिर यह गोतियां
दो पहर परणपत्र द्वारा भाच्छादित रखनेसे चण्य
हो जायेंगी। उस समय इन्हें धान्यराशिके मध्य तीन
दिन तक रख चूर्ण कर लेते हैं। यह चूर्ण कपड़ेसे
झान जलमें छाननेसे उतरा पायेगा।

कान्तलीह (सं० स्त्री०) कान्तं मगोरमं लोहम्, कर्मधा० ।
कान्तलीह, ईसपात । कान्तलीह ईको।

कान्ता (सं० स्त्री०) काम्यते प्रसी, कम-विच्-ल-टाप् ।
१ पत्नी, बीवी। २ सुन्दर स्त्री, खूबसूरत औरत।
३ प्रियङ्गु, एक खड्गबुंदार वृक्ष। ४ स्थलेला, बड़ी
इलायची। ५ रणका, बाहु। ६ नागरमुस्ता, नागर-
मोया। ७ त्रिसन्धिपुष्प-वृक्ष, एक फूलदार पेड़।
८ खेत पूर्वा, समेद वृक्ष। ९ वाराहीकन्द, एक लता।
१० प्राकारवल्ली, एक वृक्ष। ११ मृषिकपर्णी, एक
वृष्टी।

कान्ताई—विहार प्रान्तके मुजफ्फरपुर जिलेका एक
ग्राम। यह मुजफ्फरपुरसे ४ कोस दूर पश्चात् २६°
१५' उ० और देशात् ८५° २०' ३०" पू० पर अवस्थित
है। यहां नीलका प्यवसाय अधिक होता है।

कान्ताङ्गु दोहद (सं० पु०) कान्ताया पञ्चिष्णा चरण-
सम्येन दोहदः पुष्पोद्गमो यस्य, बहुव्री० । पयोक्त
वृक्ष।

कान्ताचरणदोहद, पयोक्त ईको।

कान्तायस (सं० स्त्री०) भय एव, पायसम् स्त्रायं चण्य;
कान्तं पायसम्, कर्मधा० । १ तुल्यक लोह, सङ्ग-
मिकनातीस। २ कान्तलीह, एक तरबका बोहा।

कान्तार (सं० पु० स्त्री०) कस्य सुखस्य अन्तं षट्छक्ति
गच्छति कान्ता मगोष्ठं षट्छक्ति या, कान्त-षट्-अण् ।
१ वन, जङ्गल। २ पक्षविशेष, किसी कियका
कंसल। ३ कोविदार वृक्ष, कचनारका पेड़। ४ वंश,
बांस। ५ महावन, बड़ा जङ्गल। ६ दुर्गम पथ, सुत्रिकस
राह। ७ गतं, गङ्गा। ८ विद्वि, विद। ९ दुर्भिक्ष, कष्ट।
१० पारश्वधवृक्ष, भमलतासका पेड़। ११ शोप-
सर्गिक रोग, छोटी बीमारी। १२ साधारण इष्ट, फल।
१३ रत्नेष्टु विशेय, कतीरा। भावप्रकाशके मतसे यह

गुरु, सारक और शरीरकी स्थूलता, शक तथा श्रेया-
वृद्धिकारक है।

कान्तारक (सं० पु०) कान्तार स्त्रायें कन्। रत्नेष्टु-
विशेष, कतीरा।

कान्तारग (सं० त्रि०) कान्तारं गच्छति, कान्तार-
गम-ङ। वनका गमन करनेवाला, जो जङ्गलको
जाता हो।

कान्तारपय (सं० पु०) कान्तारावृतः पत्या, मध्य-
पदलो०। वनमार्ग, जङ्गली राह।

कान्तारपथिक (सं० त्रि०) कान्तारपथेन प्राकृतम्,
कान्तार पथ-टञ्। पाठपरबरेके गरिजलस्यवृक्षात्पुं-
पदादपठ्यमानम्। या शा०(१००)—वार्तिष १। १ वनपथद्वारा
प्राकृत, जङ्गली राहसे लाया हुआ। २ वनपथसे गमन-
कारी, जङ्गली राह जानेवाला।

कान्तारवासिनी (सं० स्त्री०) कान्तारि वासोऽस्तारस्थाः,
कान्तार-वास-इनि-ङीप्। १ दुर्गा। २ वनवासिनी,
जङ्गलमें रहनेवाली औरत।

कान्तारि (सं० पु०) कान्ता ईको।

कान्तारिका, कान्तारी ईको।

कान्तारी (सं० स्त्री०) कान्तार-ङीप्। १ मयिका
विशेष, एक प्रकारकी मल्ली। मषिका ईको। २ इष्टुविशेष,
कतीरा।

कान्तारिष्टु (सं० पु०) इष्टुविशेष, कतीरा।

कान्तारिक (सं० पु०) मन्दोष्ठस्य, एक पेड़।

कान्ति (सं० स्त्री०) कम् भावे क्तन्। १ दीप्ति, चमक।
२ शोभा, खूबसूरती। इसका संस्कृत पर्याय—शोभा,
श्रुति, दीप्ति, हवि, शभा, भासा, भा और पमित्या
है। ३ स्त्री-शोभा, औरतकी खूबसूरती।

“इत्येवमवतिव्य भोगायेऽहमूषवम्।

शोभा शोभा चैव कान्तिर्ननुमनायावित्वा पुक्तिः” (उपनिषद् ४)

रूप तथा योग्यके साहित्य और चमकद्वारादिसे
होनेवाले सौन्दर्यको शोभा कहते हैं। यही शोभा काम
चेष्टा-विशेष इन्हेंसे 'कान्ति' कहती है। ४ इच्छा,
छाहिये। ५ कामयक्ति विशेष। ६ दुर्गा। ७ गङ्गा।
८ चन्द्रकी एक कला। ९ चन्द्रकी एक स्त्री। ९ वाराही-
कन्द, एक लता। महासकलवृक्ष, शोभाका पेड़।

मांति नहीं होती, अधिकतर पापुयाओंसे मिलती है। उनका घर परिष्कार तथा कीमल सजता, किन्तु अनुनासिक रहता है। यह कपास और कपोलमें गोदना गोदाने हैं। दक्षिण कर्ण छिदा कर बड़ा छेद रखते हैं और सम्मुखभागमें बालोंका एक गोलाकार गुच्छा छोड़ समस्त मस्तक सुखल करते हैं। पिराकके नदीकुलवर्ती सेमाङ्ग "सेमातिङ्ग पाय" कहते हैं। यह समुद्रतीरसे पर्वतके ऊपर तक सकल स्थानमें रहते हैं। किन्तु बुकित वन और पार्वत्य स्थान भिन्न जलके उपकूलभाग वा नदीतीरको नहीं जाते। फिर "सकि" श्रेणीके लोग पार्वत्य प्रदेशसे नीचे उतरना कब जानते हैं। केदा और पिराकके सेमाङ्गोंकी भाषामें दो शब्दोंके योगज शब्द छोड़ अन्य कोई बड़ी कथा वा समासवाक्य नहीं। जिन सकल स्थानोंमें सेमाङ्ग लोग रहते हैं, उनमें मलयजातीय नहीं मिलते।

पापुया श्रेणीके काफिर—फोरिस, सुम्बव वा हम्बगा, अदेनारा, सलर, सम्बटा, रताव, भोम्बे, पोयेउर, रसी, सर्बति, बव्वर, तिमर, तिमरसाउत, साराट, नव कालिडोनिया, नव भायलेंड, पाटाहायटी पलिनिसिया, फिजी, मालकुस, नवगिनी, पोपो, वासम्दा, किहीप, अम्बयना, सालवती प्रभृति पूर्वांगकी द्वीपश्रीमें वास करते हैं। जिन सकल द्वीपोंमें उस जातिके काफिर रहते हैं, उन्हें मलयके लोग "तानापापुया" (पापुया जातिके वासस्थान) कहते हैं। बाल घूँघर वाले हीमिये ही उनका नाम "पापुया" पड़ा है। क्योंकि मलय भाषामें टेढ़ बालोंको "पुया-पुया" कहते हैं। पुया-पुया शब्दसे पापुया शब्द निकला है। उनकी प्राकृति विलकुल काफिरोंसे मिलती है। नासिका प्रयत्ना होता है। घाँट मोटा और बड़ा रहता है। कपास दबा हुआ होता है। रङ्ग मटमैला सजता है। चाँदनासकका चतुष्पायर्ण संफेद होता है। यह दक्षिणपूर्व एशियाक अन्यत्र काफिरोंसे पूर्णगठित और बलिष्ठ है। पापुया लोग लताही, अश्ववसायो और परिश्रमी होते हैं। उल्लसब गुणोंसे किसी समय उनको सम्बन्धमें दासकी मांति प्रेषित वेधते थे और लोग भी भाष्यव्यवहारसे के लेते थे। उनकी

मानसिक वृत्ति मलयजातिकी अपेक्षा हीन न रहते भी बहुत चञ्चल होती है। इसीसे वह स्वाधीन भावमें रह नहीं सकते। मलयजातिके साथ विवाहमें इसी कारण पापुया धार जाते हैं।

यह नवगिनी तथा उसके निकटवर्ती द्वीपों समुद्रके उपकूलपर वास और अन्त्याय स्थलोंमें पार्वत्य-प्रदेशपर अवस्थान करते हैं। बहुतसे द्वीपोंमें तो उनकी संख्या विलकुल घट गई है। घिराम और गिलोनी द्वीपमें यह कभी कभी सुखिलसे देह पड़ते हैं। बहुतोंका अनुमान है कि, काल पाकर पापुया पृथिवीसे उठ जायेंगे, क्योंकि विकारके भ्रूक्ष अपेक्षा-कृत ताम्रवर्ण जातीय लोग उनकी अविकार मारते हैं। किन्तु यह भ्रम है। कारण जहां जहां प्राजकल युरोपीय सभ्यता फैलती, वहां वहां उन्हें परस्पर दिन दिन मिलजुल कर रहनेको शिष्टा मिलती जाती है। घिराम और गिलोनी द्वीपमें रहनेवाले अत्याचारमें उपरोक्त ही पतियय भीष वन गये हैं। वह किसी सभ्य जातिके साथ एक दम ही बैठते उठते नहीं। अपरिचित वा भिन्न जातिके लोगोंको देख जंगलमें भाग छिप जाते हैं। मारसल नामक वृहत् द्वीपमें उस जातिको छोड़ अन्य कोई जाति नहीं रहती। केवल उपकूल भागमें एक प्रकारकी मिथ वा सद्व्यवृत्ति देख पड़ती है। उसकी भी प्राकृति मूलतः उनसे बहुत कुछ मिलती है। उल्लसब जाति नाविकतामें विभेय पारदर्शी होती है। यह सुरापीयोंसे सद्य व्यथहार करती है। मारसलमें पापुया जातिके लोग देख पड़ते हैं। किन्तु उसके निकटवर्ती जेनु द्वीपमें यह विलकुल नहीं पाये जाते। यह भी उनमेंमें नहीं पाता किसी समय वहां पापुयावांका वास था। नवगिनी, कि, अरु, मारसल, साक्षवति प्रभृति द्वीपोंमें उस जातिके लोग रहते हैं और वही श्रेणी फिजी द्वीप तक विस्तृत है। उनके साथ कुछे और बहुत टेढ़े होते हैं। पूर्वव्यवस्थाके मस्तकपर उसी प्रकारके बाल खूब बढ़ कर टापीकी मांति बन जाते हैं। उन्हें वैसे ही बाल अच्छे भी लगते हैं। उनकी

सिद्धिपत्रके अधीन रहा। उस समयका इतिहास विद्वेय नहीं मिलता। उसके पीछे पारद और सासान वंशीयोंने उसे अपने अधीन किया। किन्तु उनके समयका भी विवरण विदित नहीं। फिर हिनरी सन्तकी प्रथमायस्थानि सुसन्नमान धर्मप्रचारक मुहम्मदके वंशधर वहाँ आये। ८६५ ई० को याकूब बिन-सिच नामक 'साफरी' वंशके प्रतिष्ठानोंने उस पर अधिकार किया। सासानवंशीयोंने उनके हाथसे उसे छीन लिया। फिर गज़नवी वंशीयोंने सासानोंको कान्दाहारसे भगाया था। पीछे गोरी वंशीयोंने गज़नवियोंको खदेड़ वहाँ अपना अधिकार जमाया। उनके अनन्तर कान्दाहार सेलजुकियोंके हाथ लगा। अवशेषमें ११५३ ई० को तुर्कोंने कान्दाहार पट्टेच नगर अधिकार किया था। फिर कई वर्ष पीछे बह गयासु-उददीन मुहम्मद गोरीके हस्तगत हुआ। १२१० ई० को खौरजमके सुलतान अलाउद् दीन मुहम्मदने वहाँ स्थान अधिकार किया था। १२२२ ई० को उनके पुत्र जहान्गौर खान्ने उन्हें वहाँसे निकाल भगाया। फिर मलिक कुतुबवंशीयोंके हाथ जहान्गौर खान्के उत्तराधिकारी टूरीभूत हुए। कुछ दिन पीछे मलिक कुतुबीय स्थानीय सरदारोंसे हार और नगर छोड़ भाग गये। अवशेषमें १३८८ ई० को तैमूरजहाने सरदारोंके हाथसे कान्दाहार छीना था। १४६८ ई० तक वहाँ तैमूरके वंशीयोंका अधिकार रहा। फिर अबू सैयदके मरनेसे कान्दाहार और कतिपय पार्श्व-यर्ती स्थान स्वधीन हो गये। १५१२ ई० को भारतके सुमल राज्यस्थापयिता बाबरने शाहबेग नामक स्वधीन राजाको हरा उसे भारतके राज्यमें मिला लिया। कुछ दिन पीछे पारसियों (ईरानियों) ने वहाँ स्थान अधिकार किया। इसी प्रकार एक बार पारस्य (ईरान) और दूसरी बार भारतकी अधीनता स्वीकार करते करते कान्दाहारकी राजसत्ता कुछ दिन स्थिर रही। अर्थात् १६२० ई० को फिर ईरानियोंने उसे अधिकार किया था। १५३० ई० को नादिरशाहने दम साध फौजके साथ १८ मास अवरोध कर कान्दाहार जीता। १८३४ ई० को

शाहशजा कान्दाहार पर चढ़े, किन्तु परास्त हो खोटा पड़े। फिर सादोजाहयोंने उसे जीतनेकी चेष्टा की थी। १८१८ ई० को शाहशजा फिर पंगरेजोंका साहाय्य ले कान्दाहारमें घुसे। उन्होंने सिन्धु नदीके तीरवर्ती सेनासाहाय्यसे २० वर्षों परसेसकी उसे जीता और नगरमध्यस्थ पहमदमाहके समाधिमन्दिरमें ८ वर्षों मईकी राजपद पर अभियेक पाया। उसके पीछे उनका सैन्यदल समुदाय अफगानस्थान अधिकार करनेके लिये कानुल और गजनोकी और पपसर हुआ। सैन्यका कुछ अंश कान्दाहारमें शजाके पास रह गया था। उसी समय दुरानियोंने विद्रोही हो सादोजाई जातीय अकबर खान् और सफदरजहानके अधीन कान्दाहार आक्रमण किया। अवशेषमें १८४३ ई० को नाना सुहविषहादिके पीछे सफदर जहान्ने उसे जीता था। किन्तु पति पत्य दिन पीछे ही काहनदिल खान्ने उन्हें वहाँसे भगा दिया। काहनदिल पति पत्याचारी था। १८५५ ई० को काहनदिल खान्की मृत्यु हुई। उनके पुत्र मुहम्मद सादिकने पिछत्यज्ञ सम्पत्तिको लूट लिया और पिछत्य रहीमदिल खान् पर पत्याचार किया, इसीसे रहीमदिल खान्ने अफगानस्थानके पमीर दोस्तमुहम्मदको साहाय्य भेजनेको लिखा था। दोस्त-मुहम्मद खान्ने जा नगर अधिकार किया और अपने पुत्र गुलाम हैदरकी शासनकर्ताके पद पर रख दिया। गुलाम हैदरके पीछे गेर अली प्रथम कान्दाहारके शासनकर्ता रहे, फिर बह कानुल चले गये। उन्होंने अपने भ्राता पमीन खान्को कानुलसे शासनकर्ता बना वहाँ भेजा था। पमीन खान्ने गेर अलीके विरुद्ध अस्त्र धारण किये और १५६५ ई० को कान-वाजके युद्धमें मारे गये। पमीनके कनिष्ठ मुहम्मद शरीफने एक बार हया चेष्टा की, बाविर छोड़की अधीनता स्वीकार की। पमीन खान् नामक गेर अलीके वैचिदेय भ्राताने विद्रोही बन १८६० ई० को खिलाति-ए-घिस्तजाई नामक स्थानमें गेर अलीको हरा दिया। उसके पीछे गेर अलीके पुत्र याकूब-खान्ने पिछराज्य हार किया।

दाढ़ीके बाल भी घेरे ही टेढ़े होते हैं। दोनो हाथ, पैर और हाथीमें भी कुछ बेशे ही बाक रहते हैं। उम्रतामें वह मलय जातिकी अपेक्षा दीर्घ, प्रायः युरोपीयाकी भांति होते हैं। पदद्वय दीर्घ रहते हैं। सुषमच्छल दीर्घाहार, कपास चपटा, नासाडिट्ट प्रमत्त, सुषुधिवर बड़ा और भीछ मोटा तथा भारी होता है। वह कामकाज और बातचीतमें बड़े दृढ़प्रतिष्ठ होते हैं। वह भोग विहा कर और खूब खीरसे हंस हंस कर तथा छहस कूद कर आनन्द प्रकाश करते हैं। वह गृह, दार, नौका और तैलस पादिकी खोद कर विद्य बनाते हैं। अपनी अपनी गिम्सखाना पर पापुया बहुल कूद रहते हैं। वह अपने कमी सामाजिक बन्धनमें पड़ रह न सकेगी। समझमें ऐसा पाता कि कास पाकर युरोपीय सभ्यता फैलनेमें उस युद्धप्रिय जातिका भोग होगा। वह बड़े विद्याधी होते हैं।

सहस्रकाय पापुया प्राकृतिकमें अंध और बलादिमें विख्यात हैं। उनका विस्तृत स्कन्ध और गभीर वक्षस्थल प्रीतिकर देख पड़ता है। काफिर जातिका साधारण दोष पदद्वयकी चीपता और अपूर्णता है। पापुयाधर्ममें भी उसका अभाव नहीं। स्त्रीधर्म पापुया जाति बड़ी प्रतिहिंसापरायण और सहतल्लभाव है। भय निजिके उत्तरपूर्व प्रान्तमें वह रहते हैं। पापुया अपने देगमें अन्य किसी जातिकी गिरापद बसने नहीं देते। गिहायत परेशान करके भी भगान सकनेसे अपना स्थान छोड़ अत्यन्तरभागमें पार्यन्त प्रदेश पर वह चले जाते हैं। पापुया गोदना नहीं गोदाने। किन्तु जार, वध और वृह पर एक प्रकारके प्रलेपसे चमड़ेकी उभार पद कड़ा कड़ा चाबका बना लेना चपुया समझते हैं। कभी कभी वध कर पापुया उसे एक चंगुल तक ऊंचा छटा देते हैं।

क्रौरिस और नवगिनिके प्रकृति दीर्घमें काफिर ही बसते हैं। नवगिनिके पापुया भिन्न भिन्न ओषीके मांघ परकर बुद्धमें क्षिप्त रहते हैं। उन बुद्धमें विपद्य पसका मष्टक खाट ग मद्धनेसे जोरें पच गिराए नहीं होता। नवगिनिके काफिर एक काठमयी प्रतिमाकी उपासना करते हैं। उस देवताका नाम "कारवर" है।

प्रतिमा १८ इंच उंच रहती है। प्रत्येक घटनाको वह उस देवताके निकट प्रकाश करते हैं। उनकी विधवायें स्वामीके गृहमें रहती हैं। पन्थाख खानोंके काफिरोंकी अपेक्षा नवगिनिके पापुया मध्य हैं। किन्तु अधिकांश पति सामान्य पर्वकुटीरमें रहते हैं और यिकार या समावजात फससूखने कीविका गिराए करते हैं। चपकूलभागके पापुया अपेक्षाकृत मध्य हैं। वह जैसे जन्मोपर खसीकी भांति भदे घर बांध रहते हैं।

ठोरी दीपमें पापुयावांको "माइफोर" कहते हैं। वह साढ़े तीन हाथ दोर्घ होते हैं। जातिधुलम कुचित केमोंकी माइफोर स्त्रियोंकी भांति बड़ाकर रखते हैं। उन वानिके कारण वह अधिक भयानक लगते हैं। पुरुष गिरमें एक कंधी खीस रखते हैं, किन्तु स्त्रियां घेसा नहीं करतीं। उनकी दाढ़ीके भीम कुचित, कपास उद्य एवं प्रमत्त, चपुद्वय बड़े, वर्ष काना, नाक चपटी और भीछ मोटे होते हैं। किन्तु दांत त्रिमकुल मोतीकी भांति रहते हैं। पुरुष सर्वांग की भांति एक प्रकारका छोटा कपड़ा पहनते हैं। वह कपड़ा "मार" नामक लक्ष्मी कासन बनाता है। उनकी स्त्रियां नीले रंगके सूचका वस्त्र परिधान करती हैं। वह घंटनेके गोचे नहीं पहनता। उम्रवादिमें वह गोदना गोदाने हैं। वह गोदना पक्षिक दिन नहीं रहता। गोदना गुदाने समय मष्टकीके काटिमें लहा गोदना बनाता चाहते हैं, वहां रक्त मिहान कर मूया लगा देते हैं। यह समुद्रगतमें प्रतिगय वारदर्यी होती हैं। नौकाके शासन, सन्तरण और समुद्रमें बुद्धी मार समुद्रके गर्भपर कर्मोदि करनेमें उनकी बराबर निपुण और कौरें नहीं होता। वह लक्ष्मी पीठी खोद अपनी नौका प्रयुक्त करते हैं। मकई, धान और मिमनेने गूरर मांस भी खा जाते हैं। वह बोय-हसिकी सर्वापेक्षा दुष्प और हृष्टा भवराध समझते हैं। माइफोर नाम्यन्व-दीपवर्मित हैं। विवाह एक ही बार होता है।

वह दीपमें खान-खान पर परिव्यार लक्ष्मण दहदल और दुर्गम अंगक हैं। वहाँके लोग-मलय

उसी समय अफगानस्थानके भाग इङ्ग्लैण्डका मनोमालिन्हा बटुनेके कारण १८७८ ई०को जेटासे सर होनाबन्ड टुयाटने एकदल सेन्य ले अफगानस्थान राज्यमें प्रवेश किया। सेफे उद्-दौन नामक सेनापतिने तख्तोकुल नामक स्थानमें उन्हें रोका था। किन्तु वह हार गये। १८७८ ई० को कान्दाहार अंगरेजोंके अधीन हुआ।

शेर अलीके मरने पीछे याकूब खान्ने गण्डमक नामक स्थानमें अंगरेजोंसे सन्धि की थी। उससे युवादि बंद हो गया। सन्धिके अनुसार कान्दाहार छोड़ विधिममें ज़ानिके लिये अंगरेजोंको भादेश मिला। उसी बीचमें सर लुई कैभागनारी काबुलके दरबारमें सदल निहत हुये। सुतरां अंगरेजोंने फिर कान्दाहार अधिकार किया और कान्दाहारकी रक्षाके लिये खिलात-प-घिसज़ाई नामक स्थान भी ले लिया। १८८० ई०को सय्यईसे मिलर जेनरल मिमरोलके पहुँचने पर सर टुयाट सैन्य कौटि घे। सरदार शेर अली खान् अंगरेजोंके अधीन कान्दाहारके 'वाली' नियुक्त हुये। सरदार सुहभद अयूब खान्ने उससे बिगड़ युद्धोपस्था की थी। अंगरेज सेनानी वाराने पयमें वाधा डाली। किन्तु उनका सेन्यदल एकवारगी ही मारा गया। अयूब खान् कान्दाहारका पथ मुक्त पा अपसर हुये। उसी बीच अकबर रजमान खान् अंगरेज गवर्नमेण्टके साथ प्रबन्ध कर अमीर बन बैठे। उससे पहले सर राबर्टस कान्दाहारके अहारकी नूतन सेन्य ले आगे वढ़े थे।

सर राबर्टसके पहुँचने पर वावावाली काटाल और गच्छी-भूला-साहबदाद नामक स्थानमें अयूबके साथ भीषण युद्ध हुआ। युद्धमें अयूबका सफलता गया था। उनका सेन्य, शिविर, तोप, बन्दूक, बाण्डूक, सब सामान् दुश्मनके हाथ लगा। अयूबके १८८१ ई० को अफरेन भास कान्दाहार प्रदेशमें शान्ति स्थापन कर सर राबर्टस जेटा लौट आये। फिर अमीर अकबर-रजमानने सुहभद इब्राम खान् नामक किसी बोड़भयर्षीय बालकको सरदार अमस-उद-दौन खान्के अधीन कान्दाहारका शासनकर्ता नियुक्त किया।

अयूब खान् हिरातमें भाग कर रहे थे। वहाँ वह अमशीदो जातिके अधिपति खीय खसरको मार खर्च अधिनेता बन और अमीरके विरुद्ध अपसर हुये। उन्होंने पाड़ा कुरेज नामक स्थानमें अमीरके सेन्यको हरा कर कान्दाहार देखल किया था। फिर अमीरने खर्च सेन्यके साथ आगे बढ़ घीरे घीरे अयूबको रसद और तोप लीन ली। अयूब फिर हिरातको भागे। किन्तु सरदार अकबर लुइस खान्ने उसी बीच हिरात अधिकार कर लिया था। इस लिये अयूबको पारस-राजके शरणगत हो वास करना पडा।

इसके बाद अमीरने गुलाम हैदर खान्के अधीन ७००० शिखित सेन्य भेज कान्दाहारकी रक्षा की। १८८२ ई०को सरदार नूर सुहभद खान् शासन कार्यमें नियुक्त हुये।

कान्दाहार नगर देखनेमें आयाताकार और साढ़े तीन मील विस्तृत है। उसके चारो ओर उपरोध और गढ़े हैं। मण्डू (गढ़ा) २४ फीट गभीर है। उपरोध और गर्तके पीछे रौद्रदग्ध स्यमय प्राचीर है। उसमें इटक वा प्रस्तर नहीं लगा। उसे रौद्रमें सुखा पत्थरकी तरह कड़ा बना दिया है। वह पश्चिम दिक्में १८६० गज, पूर्वमें १८१० गज, दक्षिणमें ११४५ गज और उत्तरमें ११४४ गज लम्बा है। नगरमें ६ फाटक हैं। पूर्वको दारदुरानी तथा काबुल द्वार दक्षिणको शिकारपुर द्वार पश्चिमको हैरात एवं तोपखाना द्वार और उत्तरको ईदगाह द्वार है। लहो द्वारोंसे नगरको ६ बड़ी राहें गयी हैं। मध्यस्थलमें शिकारपुर द्वार और काबुल द्वारकी राह लड़ा मिली है, वहाँ चारस मसजिद खड़ी है। उसके मुख्यका व्यास ५० गज है। राहें ४० गज चौड़ी हैं। गहरके उत्तर किता है। उसीके निकट तोपखानिका मैदान है। मैदानके पश्चिम अहमदशाह टुगामीकी कबर है। वह प्रति उच्च अट्टालिका है। नगरके प्रत्येक द्वार और प्रत्येक मार्गसे उसका गुम्बज, देख पड़ता है। उसकी चारो ओर अहमदशाहके रथघरोंकी दूधरी भी कौटी कौटी १२ कवरें हैं।

कान्दाहारका वाषिण्य विशुद्ध ईरानियाई

भार पल्लिनेषीय काफिरोंकी मध्यवर्ती जाति है। अष्टौलीयोंके साथ ही उनकी पाकृति प्रकृति और व्यवहारका सादृश्य अधिक है। पुरुष जांघ तक तुनी बुनी चटाई या कपड़ा पहनते हैं और दुपट्टा व्यवहार करते हैं। वृद्ध क्रीडनस्वभाव नहीं होते। किन्तु गुरुर्षी वा स्त्रियोंसे तिरस्कृत होने पर हठात् विगड़ उठते हैं। स्त्रियां तुनी बुनी चटाईका एक खण्ड सम्मुख और एक खण्ड पश्चात् दिक्कलटका लेती हैं। उनमें कितने ही सुसज्जमान और कितने ही ईसाई हैं। भोलान्दालोंने श्रम्ययना हीपमें ईसाई धर्म प्रचार कर देयके प्रायः प्रधान प्रधान लोगोंको ईसाई बना डाला है। यह हीपके पापुया अपने अपने गृहकी धातुफलक और हस्तिदन्त द्वारा सजाते हैं। हस्तीके मर जानिसे यह दन्त संपन्न करते हैं।

कि हीपके काफिर सुसज्जमान होते भी शूकरमांस खाते हैं। उनकी स्त्रियोंमें भी श्वशुरोपप्रथा नहीं। बालक बालिका बड़ी पामोदमिय होती हैं और पूर्णवयस्क भी प्रायः सकल विषयमें गडबड करते हैं। इस हीपमें दो जातिके लोगोंका वास है। उनमें पापुया नारिकेलका तेल, नीका और काष्ठका गमला बनाते हैं। उनकी बनाई बड़ी बड़ी नावोंमें २० से ३० टन तक बोझ लाद सकते हैं। उनमें किमी प्रकारकी सुद्राका चलन नहीं। समस्त क्रय विक्रय विनिमयसे सम्पन्न होता है। वह पेडकी छाल या सूतका कपड़ा पहनते हैं। वहाँकी दूसरी जाति बान्दाहीपके सुसज्जमानोंकी है। वह शक्ति भगाये जानि पर यहाँ पाकर बसे हैं। वह सूतका कपड़ा पहनते हैं। वह मनयजातीय मालूम होते हैं। किन्तु राजकन उक्त जातिकी सत्तानपरम्पराके परस्पर संमिश्रणसे एक स्वतन्त्र मध्यवर्ती जाति बन गयी है।

शेरम हीप मलकास हीपपुञ्जके मध्य संवर्षिवा छह है। वहाँ गिरीलो हीपवासे अधियासियोंके साथ पापुयावोंका प्रति निकट सादृश्य है। उनके पुरुषका पूर्ण गठन होता है। किन्तु देह कर्कर रहता है। स्त्रियोंकी पाकृति मलयजातिकी अपेक्षा श्रमोति-

कर है। उस हीपके अधियासी पापुया "बालफारो" नामसे ख्यात हैं। वह मस्तककी वाम दिक्के बाल बांधते हैं। बाँकोंके मध्य एक शंयुत मोटा सूजा रखते हैं। सूजाका अग्रभाग और पाददेय सास रंगा रहता है। वह प्रायः नन्द और अलहारवर्जित होते हैं। केवल पुरुष घास या रूपकी वाली बजुजा और पोत या छोटे छोटे एक फनकी माला पहनते हैं। स्त्रियां बाल नहीं बांधतीं। किन्तु उक्त समस्त अलहार वह भी परिधान करती हैं। वह अपेक्षाकृत दीर्घवृद्ध होते हैं।

त्रिनिविध हीपके काफिर मलय हीपवासी और काफिर जातिकी मध्यवर्ती अथवा समक पड़ते हैं। यह मलय जातिकी भांति श्रम्य होते हैं। उनका नाम "बुगि" है।

फिलिपाइन हीपमें प्रथमकी भांति बासवाले काफिरोंकी संख्या अधिक है। अशरीकावासियोंकी अपेक्षा उनके यात्रका वर्ष कुछ तरन लम्ब रहता है। स्पेनीय उन्हें "सुद्रकाय काफिर" कहते हैं। क्योंकि तीन हाथसे अधिक दीर्घ नहीं होते। उनका जातिगत नाम "इटा" वा "भाएटा" है। उस हीपपुञ्जके पानाग, निशोष, समर, लेयटो, मधवेत, बोहल और जेबू हीपके मध्य उस जातिके लोग देख पड़ते हैं। श्रम्यान्व हीपोंमें विशुद्ध इटा अथवा काफिर नहीं मिलते। जेबुहीपमें एक भौ इटा अथवा काफिर कहा है।

गिनि हीपके पापुयावोंकी नाक चपटी होती है। हाँठ मोटा, चतुर्कोटरगत और रक्त वादाभी रहता है। अनेकोंके शतमानमें नवगिनिकी पापुया जाति और मलय जातिके मिश्रणसे वह जाति उत्पन्न हुई है। उनके बाल भी पापुयावोंसे नहीं मिलते। पट्टे-लिया, नवकाञ्चिडनिया, पिलु प्रकृति हीपोंमें जो सकल पापुया काफिर देख पड़ते, वह पल्लिनेषिय पापुया काफिरोंके संमिश्रणसे उत्पन्न या मध्यवर्ती जाति ठहरते हैं।

फिजी हीपके पापुया ही पापुया अथवा काफिरोंकी पूर्ण मूर्ति है। वह लयावर्तीमें नन्द और व्यवहारमें भद्र होते हैं। किन्तु नवगिनि, नव-

हायमें है। कान्दाहारमें रंगम और उनके कपड़े बहुत बनते हैं। साखकी खेती भी अधिक होती है। मिवाकी कोई कमी नहीं। शुष्क फल यहाँका प्रधान खाद्य है।

कान्दाहारी वेगम—बादशाह शाहजहानकी प्रथमा महिला। वह पारस्यराज इब्नरास शाह (१५) के यशोव्रत सुलतान मिर्जाशफीकी कन्या थीं। सनाट अकबरने पारस्यराज शाह अज्जामको कान्दाहारका शासनभार सौंपा था। किन्तु उन्होंने वह कार्य सुलतान हुसेन मिर्जाके हस्त परंपण किया। हुसेन मिर्जाके मरने पर उनके पुत्र मुजफ्फर हुसेनको कान्दाहारका शासनभार मिला था। वह १५८२ ई० को तीन भ्राता साथ से अकबरकी समामें पहुँचे। अकबरने उनकी सम्यर्धना कर पाँच हजारोंका पद और सम्पत्त नामक स्थान जागीर दी थी। कान्दाहारी वेगम उनकी भगिनी थीं। १६१० ई० को उन सुन्दरी रमणीके साथ युवराज खुरम (शाहजहान) का विवाह हुआ। आगराके कंधारीबाग नामक उद्यानमें कान्दाहारी वेगमको समाधि दिया गया। उनका समाधिमन्दिर अति सुन्दर है। आजकल वह भारतपुरराजके अधिकारमें है।

काँदि—बङ्गाल प्रान्तके मुर्शिदाबाद जिल्लाका उपविभाग। उसका परिमाणफल १८८ वर्ग मील है। उसमें काँदि, भरतपुर और खड़गाँव तीन याने लगते हैं। वीरभूमसे मयराची नदी जाकर जहाँ मुर्शिदाबाद जिल्लेमें घुसी है वहाँ काँदि नगरी बसी है। पायकपाड़ेके राजाओंका वहाँ आदिवास है। उक्त राजवंशके आदिपुरुष गङ्गा-गोविन्द सिंहने कान्दिमें ही जन्म लिया था। उन्होंने २० लाख रुपये सगा अपनी माताका याह किया और अन्धगतोंको ब्राह्मण वादकोंकी डाक बैठाने हायें हाय लगवायसे ताज्जा प्रसाद मंगा लिखा दिया।

कान्दिभूम (सं० सि०) काँ दिशं गच्छामि, इत्या-
कुलीभूम; कान्दिभूम-भूम। १ पसायित, टूटे राह न
पानेवाला, भगौड़ा। २ भीत, डरा हुआ।

"स बर्षान् मन्वानान् सिन्धुको ब्रह्मचरः।

कान्दिभूमो नौरिगारो ब्रह्मचरीवर्ष दिवम्।" (माल, अर्थ, १२८ व०)

कान्दिशोक (सं० पु०) 'काँ दिशं यामि' इत्येवं
यादिनो अर्थे ठक् प्रत्ययेन एयोदरादित्वात् सिद्धं।
यद्वा कदि ऐक्ये भावे इन्, कन्दि धैक्यं; शोक
सेवने भावे घञ्, शोकः अन्वृणतः; कान्दिश शोकश्च
तौ विद्यते अर्थे कदिशोक-अण्। भय देखकर पना-
यनकारी, डरसे भगनेवाला।

कान्दू (काण्डु) बङ्गाल और बिहार प्रान्तवासी एक
जाति। कहीं कहीं उसे भटभूजा, भुरजी आदि
भी कहते हैं। मध्यकण्डन ही इस जातिकी प्रधान
उपजीविका थी।

कान्यकुल (सं० स्त्री०) कन्याः कुलाः यत्र, कन्यकुल
स्त्राथं अण्। १ देशविशेष, एकमुक्त। हिन्दीमें इसे
कनौज कहते हैं। संस्कृत पर्याय—महोदय, कन्याकुल
गाधिपुर, कौम और कुमस्थल है। रामायणमें लिखा
है कि राजपिं कुमनाभके औरस और छताची अस्त्राके
गर्भसे १०० कन्याओंने जन्म लिया था। उनका रूप-
यौवन देख वायुदेव कामातुर हुये। किन्तु बिना
पिताकी आज्ञाके कन्याने उनसे अछवास करना स्वीकार
न किया। इसपर वायुदेवने उन्हें शाप दे कुबड़ी
बना दिया। पिताने प्रसन्न हो अपनी कन्याओंका
विवाह कम्पन्न नगरके राजा ब्रह्मदत्तसे किया था।
उनके सभसे कन्याओंकी कुलता मिट गई। २ ब्राह्मण-
जातिविशेष। बमोत्रग १६०।

कान्यकुलो (सं० स्त्री०) कान्यकुल-स्त्री। कान्यकुल
देशकी स्त्री।

कान्यजा (सं० स्त्री०) कात् जलात् अन्धमन् अत्रते
क-अन्ध-जन्-उ-टाप्। नलीनामक गन्धद्रव्य, एक
खशबूदार चीज।

काण्ड (हि० पु०) शीकण्य।

काण्डहा— कानडा १६०।

काण्डो (हि०) बर्षतो १६०।

काण्डम (हि० पु०) कन्यवर्षं भूमि, काकी मिट्टी
की जमीन। यह भदौवकी ओर होती है। इनमें
कपास बहुत उपजती और पनपती है।

काण्डमी (हि० स्त्री०) कर्पासविशेष, एक कपास।
यह भदौवकी ओर काण्डम भूमिमें उपजती है।

काजिहोनिया और क्रिश्चिये पापुया नरमांभुक् है। क्रिश्चियेके पापुया बफरीबाई डेटेपटोकी भांति चक्काकार केग बांधते हैं, सानोंकी भांति करोटो (रोपटो) चपमय्य डेती है। नवगिनिके पापुया धार्मिकता, गुदजनभक्ति और पातिधेयताके लिये विख्यात है। प्रायः मकल खल्लिमें काफिर क्रियोंके मध्य खमिमारदोप देख नहीं पड़ता।

काफिरस्थान—भारतवर्षकी उत्तरपश्चिम सीमा और हिन्दूकुश पर्वतके मध्यका एक प्रदेश। उसकी पश्चिम सीमा अफगानिस्तानकी अफोसाङ्ग नदी है। पूर्वसीमा कुमार नदी सेा सकती है। उस स्थानके अधिवासी काफिर या सिवाहपोग कहलाते हैं। १८८२ ई०में पश्चिमे कोई चंगरेज उस प्रदेशमें प्रवेश न कर सका था। सुतरां उसके पहले उसका जो विवरण सुनते, उसपर प्रकृत एतमें आस्था कैसे सा सकते हैं। प्राचीन चंगरेज ऐतिहासिकोंने उस स्थानके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा, उसका अधिकांश पार्श्ववर्ती सुसलमानोंने संपाद किया था। किन्तु अब सुनते समझते कि सुसलमान उस प्रदेशमें रहना ही चुस नहीं सकते या चुसना असम्भव नहीं करते। कारण काफिरोंसे उनकी चिर शत्रुता है। कोई काफिर यदि अपने जीवनमें किसी उपायमें एक भी सुसलमानको मार नहीं सकता, तो वह सजाति, सभ्येची और अर्धगर्भे अच्युतार्थ एव' ही रहता है। सुतरां इधर उधर सुसलमानोंसे उस प्रदेश या उस जातिका विवरण ठीक ठीक कैसे मिला जागा।

वहाँ सिवाहपोय नामक एक जाति रहती है। कोई कोई सिवाहपोय जातिके सम्बन्धमें कहता कि यह पारस्यकी गहर जातिकी भांति आचार-व्यवहार-विधिमें किसी धरती जातिसे उत्पन्न है। कोई अन्य बलेश्वरन्दके पीछे सेम्पकी औरसीत्यव यतामें है। फिर किसीके अनुसार सुसलमानोंका मत फैलनेमें पहले भारतवर्षमें जो लोग पर्वतादिमें रहनेको समतल प्रदेशमें निवास गये, सिवाहपोय उन्हींकी एक जाति है।

काफिरोंकी भाषाके शाय धरती, फारसी या तुर्की

भाषाका विन्दुपात्र भी साह्य नही। हां, संस्कृतके शाय उसकी यद्यत् समिहता पाती है। इनकी कारण आधुनिक ऐतिहासिक धरती या अफगानोंकी भांति उन्हें बिनकुल सतन्त्र जाति नहीं मानते। यह भारतीय जातिके ही अन्तर्गत है। केवल देमभेदसे काफिर सतन्त्र हो गये हैं।

१८८२ ई०के पूर्व वहाँका जो विवरण मिला, उससे समझ पड़ा कि उस देशमें ऊतार, गधोर, रेक-डुन्ज, धरमस, इधरम, अमीसीज, पशिडन, वेगल प्रभृति जनपद विद्यमान हैं। १८८२ ई०का निहार ड०एल् म'नेयार नामक चंगरेज ही सभ्यता सर्वप्रथम उस प्रदेशमें ला सके थे। उन्होंने वहाँकी लोक संख्या अनुमानमें ६ लाख स्थिर की। प्रति घाममें १००० ६०० तक लोग रहते हैं।

उनके दैनिक आचार व्यवहार और पाकृतिके सम्बन्धमें मानास्य विभिन्न मत मिलते हैं। किसी किसीके कथनानुसार सिवाहपोय देखनेमें बलिष्ठ, दृढगठित एवं साहसी रहते भी सभाधर्म सम्पूर्ण विपरीत अर्थात् असस, विलासी तथा सभदा सभ्यपायी होते हैं। अफगानिस्तानमें अनेक पकड़े काफिर बसते हैं। उनका शरीर दृढ समझ पड़ता है। उनमें युतीपोय गठनके लोग ही अधिक हैं। ऊष्णार्ध और विडासाचीकी भी कोई कमी नहीं। उन्हें आसन बांधकर बैठना कठिन लगता है। काफिर कुर्सी पर ही सुविधासे बैठ सकते हैं। उनकी शियां रुपवती और बुद्धिमती होती हैं। वर्ष रक्तोत्पन्न होते हैं। अनेकके कथनानुसार अतिरिक्त सभ्यपान करनेमें यह रक्तवर्ष हो गये हैं। यदि उनके पूरा शाय उन्हें कैसा पागाहार अच्छा लगता है, तो वह शीतल बह सठे'गे—प्रतिदिन एक मटका शराब चाहिये। एक मटकेमें प्रायः पंद्रह सेर शराब पाती है।

मनेयारका विवरण पढ़नेसे समझते कि काफिर-स्थानके लोग सुपुत्र, साहसी और क्षयिणीवो हैं। उनकी शियां बागका काम करती हैं। नृत्यगीतमें यह बहुत अनुत्सुक रहते हैं। प्रायः प्रति क्षया नृत्य-गीतादिमें बीतती है। उनमें आत्मकलह या कुहविषय-

जनित रक्तपात नहीं होता। सुसप्तमानोंसे इनका सर्पनकुल सम्बन्ध है। एक दूसरेको देखते ही युद्ध छिड़ जाता है। अंगरेजोंके साथ इनका कोई विवाद नहीं। इनमें दामलप्रया और दासव्यवसाय विद्यमान है। किन्तु समझ पड़ता है कि वह ग्रीष ही छूट जायगा। यह प्रायः बहु विवाद नहीं करते। स्त्रीको धमिचार टोपमें सामान्य देख मिश्रता है, किन्तु पुरुष को बहुतसा गोमेषादि जुर्मना देना पड़ता है। यह शवको सन्दूकमें बन्द कर रख छोड़ते हैं। एक मात पश्चिमीय देवता "इम्बू" (या इन्ड) पूज्य हैं। इम्बूका मन्दिर होता है। उक्त मन्दिरमें पवित्र प्रस्तरमूर्ति स्थापित रहती है। पुरोहित पाकर पूजा करते हैं। यह धनुर्वाणधारी है। गोमेषादि ही इनका मुख्यवान् वस्तु है। यही जिसके पवित्र रहता है, वही धनी ठहरता है। इनमें १८ लोग सरदार हैं।

यह लोग परस्पर शपथ घठा बन्धुताके सूत्रमें बंध जाते हैं। किसीके साथ घुलकी सन्धि टूटनेसे पड़से एक तौर भेजा जाता है। यह बड़े प्रतिघि-भक्त हैं। यदि कोई प्रतिघि इनके घर आता, तो स्वयं गृहकर्ता उसकी परिचर्या उठाता है। फिर यदि कोई दूसरा उन प्रतिघिको उठा अपने घर ले जाता, तो उभयके मध्य विषम विवाद देखनेमें आता है। यहाँ तक कि रक्तपात होने लगता है। स्त्रियोंके यथेच्छा-भ्रमणमें कुछ बाधा नहीं, भयपृष्ठन नहीं। किन्तु उन पुरुषोंके साथ पानभोजन करने कम पानी है। प्रति प्राममें स्त्रियोंके प्रसवकी स्वतन्त्र भवन रहते है। इनके भावसमें विवाद होनेके पीछे मिटते समय विवादियोंके मध्य एक भादमी दूसरेका स्नान और दूसरा स्नान घुमनेवालेका मस्तक तुस्यन करता है। इसी प्रकार विवाद मिट जाना है। काफिर अपने सन्तानको विक्रय नहीं करते। किन्तु कष्टमें पड़नेसे प्रतिवासीके सन्तानको चोरीसे बेच लेते है। किसी किसीके कथनानुसार यह व्यापार व्यवहारके मध्य गण्य है। इसीसे विवाहके सरदार विक्रयायं वासक-वासिकायों पर कर लगा देते है। किसी सुसप्तमान जाति पर युद्ध-यात्रा करने समय जितने दिन तक आयोजन उपायादि

निर्धारित नहीं होता, उतने दिन कोई पुरुष अपने घर जाने नहीं पाता। दिवारात्रि मन्वषाष्टकमें रहना और वहीं पानभोजन शयनादि करना पड़ता है। जिस स्थानमें आक्रमण करना ठहराते, दिनके समय सब वहाँ पहुँच दो दो तीन तीन भादमी भाड़ियोंमें छिप जाते है। फिर जैसे ही निकलते सुसप्तमान निकलते, वैसेही उनपर टूट मारने लगते है। प्रति दिन मन्वषाकान स्व स्व कार्यका विवरण वता पामाद प्रमाद करते है। सुसप्तमान भी ऐसे ही काफिरस्थानमें घुस वासक-वासिका चुरा लाते है।

यह सक्की गेहूँ, यह प्रभृत्तिके पीस पाटकेको रीटी बनाते है। रीटीके लौहकटाह (तथे) पर चक खाया करते है। यह गृहपालित पशुका भी मांस खाते है। काफिर एक ही वारमें गन्ना काट पशुहत्या करते है। यदि दो साथ मारनेका प्रयोजन आता, तो वह मांस अपवित्र समझ छोड़ दिया जाता है। फिर काफिर वारिजातिके मध्य पारिया गेयोको बोसा उसे दे देते है।

यह अंगूरसे शराब बनाते है। अंगूरके वर्षभेदसे मद्यका वर्ण दो प्रकार होता है। वासक वर्षमें सकल समय मद्य पीने नहीं पाते। सुगल-सन्माट वावरने लिखा है कि काफिर अपने गलेमें मद्यपूर्ण "किर्र" नामक चमड़ेकी कुप्टी लटका रखते है। उन्हेनि यह भी कष्ट कि वह लसके बदले मद्य पान करते है।

इनका साहाय्य न मिलनेसे काफिरस्थानमें घुसने-को कोई कैसे साहस कर सकता है।

काफिरस्थान देखनेमें पतिमुन्दर देग है। यह निविड हजमालामें प्रकृतिका रम्य उपवन समझ पड़ता है। प्रान्त भागमें महावन है। काफिरस्थान प्रधानतः तीन उपत्यकायोंमें विभक्त है। इन्हीं तीन उपत्यकायोंसे यहाँको तीन प्रधान जातियोंका नामकरण हुआ है—रामगल, वेगल और वासगल। इनमें वेगल सर्वापेक्षा पराक्रान्त और उनकी उपत्यका भी सर्वापेक्षा हृहत् है। काफिर या सिवाइपीय इनका जातीय नाम नहीं। पार्श्ववर्ती सुसप्तमान इन्हे इस नामसे परिचित करते है। सुसप्तमान धर्मदर

६ इच्छा, चाह। ७ सङ्गमेच्छा, मिलनेकी चाहिय।
८ वर, शौहर।

“सवान्नामाय तथैति कामं
राजे प्रतियुक्तं पवलिनी वा।” (रघुवंश)

८ महादेव। १० विष्णु। ११ धलदेव।
१२ कामदेव। कामदेव शिवो। १३ ककार अक्षर।
१४ टण्या, लालच। इस सम्बन्ध पर भगवद्गीतामें
लिखा है,—

“आद्यतो विवयान् पुंसः सङ्गोपशायते।
सवान् सञ्जयते कामः कामान् श्रीशोभिशायते।” (५६२)

प्रथमतः विषयचिन्ता करते करते ईदृशमें आसक्ति
उत्पन्न होता है। फिर उसी विषयमें काम अर्थात्
टण्याका वल बढ़ता है। उसके पीछे वही काम
किसी कारण प्रतिष्ठत होने पर क्रोध आ जाता है।

इसी कामके सम्बन्ध पर भगवद्गीताके शङ्कर-
भाष्यमें भी कहा है,—“जो शत्रु हो कर भी समुदाय
प्राणिवर्गको स्वयंमें रख सकता, उसीका नाम काम
पड़ता है। कामही सब अन्तर्गोका मूल है। यही
किसी कारणसे प्रतिष्ठत होने पर क्रोध रूपमें परिष्कृत
हो प्राणिवर्गको कर्तव्याकर्तव्य विषयमें विचारहीन
बनाता है। सुतरां उस समय यह पापाधारी हो जाते
हैं। इस लिये प्राणिमात्रको उस विषयमें यत्न करना
चाहिये, जिसमें दुरात्मा काम चिन्तसे दूर रहे।”

१५ चन्द्रवंशीय माहात्म्य राजपुत्र। इनके पुत्र शङ्कु
थे। (सप्तमोऽध्याय १। १०। १५)

१६ महिसुरके एक शास्त्रराज। कादम्बरराज
विजयादित्यदेवके साथ इनकी भगिनी चट्वाटवीका
विवाह हुआ था। ११४८ ई०को यह विद्यमान रहे।

१७ छठिय महाकके अत्यंतमयो जिलेका एक
विभाग। यह अक्षा० १८° ४८' से १८° ५' उ०, और
देशा० ८४° ४५' से ८४° १४' २०' पू० तक अवस्थित
है। इसके उत्तर अर्धमें तथा सिद्धपुर, पूर्व इरावदी,
दक्षिण पदोह और पश्चिम पाराकान-योमा है।
भूमिका परिमाण ५०५ वर्गमील है।

पहले यह स्थान मयटुगीके अधीन था। १०८३
ई०को मयटुगी इलाकेंमें १४२ चाम थे। पहले

हिडिदारोंकी भांति मयटुगीर भी समतायासी थे।
सकल विषयमें कर्तृत्व चलते भी यह किसीके जीवन-
मरणमें हस्तक्षेप कर न सकते थे। फिर उन्हें स्वर्ण-
छत्र व्यवहार करनेकी भी समता न रही।

पहले ब्रह्मराज कामसे ८५००, ६० कर पाते थे।
आजकल इसकी मासगुजारी कुल ७४८० ६० है।
लोकसंख्या कोरे साठे पैंतीस हजार होगी।

इस विभागका प्रधान नगर काम है। यह इरावदी
नदीके दक्षिण पाख अक्षा० १८° १' उ० और देशा०
८५° १०' पू०के मध्य अवस्थित है। इस नगरके बीचमें
'मदे' नामक एक झील बहता है। योही दूर पर
मत्तून नदी प्रवाहित है।

इस नगरमें अनेक बौद्ध देवालय और पायम हैं।
पहले इसका नाम “महापाम” था। यही बौद्ध
शास्त्रमें महापाम और पायाव्य प्राचीन भौगोलिक
टलेमि कर्तक माग्राम (Magrama) नामसे उल्लेख हुआ
है। ब्रह्मराज भलम्याने इसका नाम काम रखा।
लोकसंख्या दो हजारसे कम है।

१८ राजपूतानेके कामान परगनेका प्रधान नगर।
यह भरतपुर राज्यके अधीन है। काम भरतपुर
राज्यकी उत्तर-पूर्व सीमा पर अवस्थित है। पहले यह
स्थान जयपुर राज्यके अधीन था। राजा कामसेनने
इसकी शीलहि कर अपने नामसे परिचित किया।

यह नगर पतिप्राचीन है। किंवदन्तीके अनु-
सार भगवान् श्रेष्ठणकी यहां कुछ काल अवस्थिति
रही। बौद्ध राजावर्षके समय भी यह स्थान प्रसिद्ध
हुवा। आज भी यहां विश्वर बौद्ध-कीर्तिका ध्वंसाव-
शेष पड़ा है। उसमें शतस्तम्भ देखनेकी चीज है।
इस मन्दिरमें बुद्धमूर्ति खोदित है। १०८२ ई०को
यह स्थान सेनापति पिरों कर्टक रणजित् सिंहके
अधिकाररुक्त हुआ। यहांसे भरतपुर तक धातुवर्क
चला गया है।

काम (हि० पु०) १ कर्म, कार्य। २ कठिन कार्य,
सुखिकल बात। ३ उद्वेग, मतलब। ४ सम्बन्ध,
सरोकार। ५ व्यवहार, इच्छासात। ६ व्यवसाय,
रोजगार। ७ रचना, कारीगरी।

विश्रास न करनेमें ही यह काफिर कहते हैं। फिर अधिक संख्यावाले वेगनाका छत्र बर्ष हागधर्मका परिरुद्ध पहनने में ही विवाहयोग नाम है। इसीमें सबके सब विवाहयोग नाममें पुकारे जाते हैं। रामगल वा बासगल काममें बमड़ेका परिरुद्ध नहीं पहनते। यह उनके बटने सुतके कपड़े की पीगाक बनाते हैं। उह लोनों जातियोंकी भाषा स्वतन्त्र है।

यह भूत ऐतमें विश्रास रखते हैं। काफिरोंके मतानुसार लो कुछ दुःख कष्ट मिलता, वह सब भूत प्रेतादिक कारण ही पड़ता है। इनके पानका मध्य राद्यप्रभुत-प्रधानीके नियमानुसार नहीं बनता। वह आनिध चंगूरका ताका रस होता है।

परस्पर गुह विषहादिके पीछे परालित लोगोंकी स्त्रियां इन्दी बन टापीकी भांति विकती हैं। स्त्रियोंमें सज्जा, मौलता वा धर्मभाव नहीं देखते। इनके समाजमें छे विगैव दोष कह गिनते हैं। कारण पूर्व ही लिख चुके कि ऐसी दोषमें उभय पक्ष केही सामान्य गान्ति रखते हैं।

यह अंगरेज अफगान या तुर्क किमीके अधीन नहीं सम्पूर्ण स्थाधीन हैं। विन्धु और अरबमरु नदीके मध्य समस्त गिरिवर्त्ममें इनका अच्युत प्रताप है। हिमालय पर्वतके गेय प्रान्तमें अकसम नदीके तीरपती मदच्छगान पाथल प्रदेश पर्वत और हिन्दूकुम पर्वत-माथामें यह अधिकार रखते हैं। फानुन नदीके उत्पत्ति क्षमपर पहनेवाले सकुम गिरिवर्त्म भी इन्दीके अधीन है।

यह देगनमें सुपुख्य होती भी दीर्घचन्द्र नहीं। इनमें दूधरी लो सुद सुद जाति है, उनमें दारानरी जाति अफनकी ताजक मतायसम्बी और अति प्राचीन बताती है। जम्बाक (समघाम) नामक व्यानकी भाषाके साथ इनकी भाषा और अफगानोंके आकारके साथ इनके आकारका सोमाहस है।

मेषदा (गिवा ?) नामक स्थानके वामपायमें तुगुनो नामक एक जाति है। इनके लोग अर्धसाहस्य संख्यामें अधिक हैं। विद्वर काफिर इन्हें "जिम्बा" अर्थात् बर्षसंकर कहते हैं। क्वीकि यह काफिर

और अफगान उभय जातियोंके मन्दाका पाषिषदध और काफिरव्याप्तमें निर्भय प्रवेश करते हैं। यह प्रधानतः पयप्रदर्मकका वाम बनाते हैं। कुन्द पर्वतमें ही इनका अधिक वास है। तुगुनो अफगानोंकी अर्धेका सुदकाय होते हैं। इनकी आकृति भी अर्धेसाहस्य कोमनतापूर्व रहती है। यह सुमनमान धर्मावलम्बी हैं। किन्तु इनमें स्त्रियोंके पर्वोर्धको प्रथा नहीं।

इस प्रदेशकी परत उपत्यका ७१०० फीट दीर्घ है। अत्यन्त-इवानिक नामक गिरिपथका इत्य परत रमणीय है। कुन्द पर्वतके सिधरपर एक सुद जट है। प्रबादानुसार इसी जटके तीर नूदकी नोकाका भन्दा-वगीय प्रभतीरभूत ही गया था, फिर निम्न उपत्यकामें उधीसे नूदके पिताका समाधिस्थल बना है।

काफिसा (५० पु०) यास्त्रियोंका समूह, सुसा-फिरोंका झुण्ड। काफिसाके लोग तीर्थ या व्यावार करने मिल-चुलके निकलते हैं।

काफी (५० वि०) १ पर्याप्त, पूरा, कम न ज्यादा, गया हुआ। (पु०) २ रागविशेष। इनमें कोमल गन्धार लगता है। काफीके कई भेद हैं,—काफी कानडा, काफी टीही, काफी होकी इत्यादि। यह राग प्रायः लष्ट लष्ट गाया जाता है।

काफी—(हि० फी०) कड़वा, तुन।
काफी—(अ० = Collee) कड़वा, एक प्रकारका रत्नवर्ष सुद फस। इसे तोड़, भून कर और मुकनी बना पायकी भांति दूधके माध्य बहुतरपी लोग प्रत्यह पान करते हैं। इनके मिय भिन्न नाम यह है,—

हिन्दी	तुन, कड़वा, काफी।
बङ्गला	कापि, काफि, कावा।
गुजरी	मुद, कापी।
बम्बेया	कव, तुन, काफी।
दिल्ली	कुन्द, तथैम-कीरे।
महाराष्ट्री	कन, बन्द।
तामिल	कापि फोटा।
तेलुगु	कापि भिन्नु।
करनाटी	भीन्द बोत।
अरबी	तुन, कड़वा।

फारसी	कहवा ।
चायनी	कापडत ।
सिंहली	कोपि-भत्ता ।
अंगरेजी	काफी (Coffee)
फारसीसी	काफि (Cafe)
जर्मनी	कफ़फ़ो (Kaffee)
वैज्ञानिक	कफिया एराबिका (Coffea Arabica)

इसका पेड़ १५ से २० फीट तक ऊँचा होता है। इसमें बहुत संख्यक शाखा प्रगल्भा रहती हैं, किन्तु यह अधिक नहीं बढ़ती। इसके पेड़की काल सजना पेड़की कालकी भाँति कुछ खंत वर्ण होती है। नारङ्गीके आकारका सफ़ेद फूल निकलता है। फूल सुदूर वकुल-फलकी भाँति पाते हैं और पकनेपर लाल हो जाते हैं। प्रति फसमें केवल दो बीज होते हैं। बीज निकाल कर फल भेषे जाते हैं। फिर सूखे फलोंकी भून कर और चुकनी बना लेनेसे पीनेका कहवा प्रसृत होता है।

अनेकके अनुमानमें इसके घरकी "कहवा" नामसे प्रथमतः मध्य समझा जाता था। किन्तु आजकल उससे काफ़ीका बोध होता है। फिर किसीके अनुमानसे यह शब्द अबसोनिया (अफरीका)के अन्तर्गत काफ़ा प्रदेशके नामसे बिगड़कर बना है। इसके हिन्दी नाम "बुन" से हृद्य तथा फल और "कहवा" नामसे काफ़ीकी चुकनीका बोध होता है।

इस फलका आदिनिवाग अफरीकाके अन्तर्गत अबसोनिया, सुदान, गिनी, और मोजाम्बिक प्रदेशका उपजूल है। उक्त सकल स्थलोंमें यह हृद्य अपने पाप वर्णमें उपजता है। अरबदेशमें यह इस प्रकार नहीं होता। फिर भी यह नहीं सकते कि अरबके दुर्गम मध्यप्रदेशमें यह है या नहीं।

काफ़ीके अनेक अर्ध-विभाग हैं। उनसे भारत-वर्षमें ७ प्रकारकी काफ़ी मिलती है।

१ अरबी काफ़ी। (Coffea Arabica) भारतके नाना स्थानोंमें इस काफ़ीकी यद्यत् हृद्य होती है।

२ बङ्गालकी काफ़ी। (Coffea Bengalensis) कुमायूँसे सिमरी तक, युक्तप्रदेश, बङ्गाल, पाषाण,

ओड़िस, चड्याम और तेनासारिम प्रदेशमें यह उप-जती है। इसका फल ईषत् प्रायताकार होता है। चड्याममें इसे "इरीषा" फल कहते हैं।

३ सुगन्धि काफ़ी। (Coffea Fragrans) यह ओड़िस और तेनासारिम प्रदेशमें मिलती है। फल उक्त दोनों जातिकी भाँति होता है।

४ पाषाणी काफ़ी। (Coffea Jenkinisii) पाषाणके खसिया पर्वतमें उपजती है। फल ईषत् डिम्बाकार लगता है।

५ खसिया काफ़ी। (Coffea Khasiana) खनिया और जयन्तो पहाड़ी पर होती है। इसके फल केवल चोयार्द रक्ष मोटे पड़ते हैं। बीज टेढ़े ढेरकी भाँति होते हैं।

६ त्रिवाङ्गुकी काफ़ी (Coffea Travancotensis) त्रिवाङ्गुमें होती है। फल सम्यार्दमें छोटा और चौड़ाईमें बड़ा रहता है।

७ महवारी काफ़ी। (Coffea Wightiana) दार्चिणाल्यके पश्चिमार्धमें उपजती है। इस फलका आकार त्रिवाङ्गुके फलकी भाँति होता, किन्तु एक तरफ बहुत दृष्य रहता है।

प्रथम ओपोको छोड़ कर दूसरी सकल श्रेणियोंकी काफ़ी कम उत्पन्न होती है। दार्चिणाल्यके जोग ही अधिक काफ़ी पीते हैं और अरब ही इसकी खेती अधिक की जाती है। दार्चिणाल्यमें आजकल इतनी काफ़ी उपजती है कि विदेशमें भी जाकर विकती है।

१५° उत्तर और १५° दक्षिण अक्षांशके बीचमें काफ़ी अनेकी भाँति उपजती है। फिर ३६° उत्तर और ३०° दक्षिण अक्षांशके मध्य प्रदेशमें इसकी उत्पत्ति साधारण है। कपासकी खेती जैसे लुमीनमें की जाती है, वैसे ही लुमीन इसकी खेतीके लिये भी प्रायः उपजती है। इसकी भाँटी देखनेमें प्रति मसोहर पाती है। इसीसे अनेक लोग इसे उष्यानकी शोभाके सिधे लगाने हैं। जहाँ फारिनहीटके तापमानमें ६०° से ८०° पर्यन्त उष्णता मिलती है, वहाँ यह उपजती है। मार्चमें एकवार हट्टि होगा और वर्षमें १५ इंचसे अधिक जल न पड़ना, इसकी उत्तम उत्पात्तिका

महायज्ञ है। काफ़ीकी ज़रिमें बड़ा यज्ञ करना पड़ता है। अतिमय जेध चटना वा अतिवेगसे वायु चलना, इनके लिए अद्यय है। जोरसे हवा चलने पर काफ़ीके दून भङ्ग जाते हैं और फल नहीं बगते, सुतरां जलक प्रायः पाये गयेकी अति उठता है। अत्यन्त शीघ्र होनेसे हृदयके लिये हावा आवश्यक है। समुद्रके उपकूलमें काफ़ी अच्छी नहीं जाती। अफरीकाके अन्तर्गत अश्वीनियाके साथ समस्तद्वीपानमें भारतमें पड़नेवाले अश्वीनीमें यह भली भांति उपजती है। विजयनगर नौकलगरि उपत्यकामें काफ़ीकी उपजति अच्छी है।

अश्वीनियामें इनके फलका "बुन" कहते हैं। प्राचीनकालमें मिन्नर और सिरीयामें यह नाम प्रचलित था। उस समय सिरीयाके रहनेवाले इनके बीजकी कैव (Cave) कहते थे और पका कर खाते थे। अरबी अत्यादिको पानोवनाके अनुसार ग्रेष महाबुदीग धमानी नामक किसी व्यक्तिने अफरीकाके उपकूलमें काफ़ीका व्यापार देख कर सर्वप्रथम अदनबन्दरमें एक दुकान खोली थी। १४७० ई०को यह मर गये। सुतरां १४वीं शताब्दीके मध्यभागमें काफ़ी अरबमें पहिले पाई। १५०१ ई०को यह अमन, मका, कायरो, दामास्कस, अलेपी और कुनतुनियामें फैली थी। १५५४ ई०को कुनतुनतुनियामें सर्वप्रथम काफ़ीका एक पानागार स्थापित हुआ। १५७१ ई०को अलेपी गहरमें रनडल्फ नामक किसी युरोपीयनने इसका प्रथम परिचय पाया। फिर यह नहीं सकते कि भारतमें काफ़ी कैम पाया। अनेकोंके कथनानुसार यावा बूटन नामक एक सुनल मान अश्वीनी महेदी सौतेने समय ७ बीज लेकर अहिपुर पहुँचे थे। अहिपुर भारतमें एक मतपर बड़ा बिश्राम करते हैं। इसीसे उसका समस्त अमूलक होना ध्यानमें नहीं आता। १५७६ से १५८० ई० तक जिनसेटिन (Jan Huygen van Linschoten) नामक एक जोनडाल इस देशमें घूमनेको पाये थे। यह अपने अन्वेषणनाममें सलवार उपकूलके समस्त अत्यन्त दूरको वर्णन कर गये हैं। किन्तु उसमें काफ़ीका नाम नहीं मिलता। उसने समसामयिक अफ़्रीकी

पुस्तकमें मिन्नरियोंके बुन कथना काय पानेको ज्ञान देयते हैं। इनसे अनुमान होता है कि भारतवर्षमें प्राये समय जिनसेटिनने काफ़ीको बात नहीं सुनी। डाक्टर चोयानिनने विनयनमें "हाउ-ए-थ कानम"के नामक साधु देने समय कहा था — "कनकसेके अम्यनी बागमें जो काफ़ी होती है, उसको छोड़ हमने दूनरी कोई काफ़ी नहीं पी।" उसके पीछे मिन्ननेवाला विवरण भी १८वीं शताब्दीका विवरण है। मिन्नकने पोर्तुगोसोंके दौराअरसे पहले अरबीमें ऐसे प्रथम प्रचार किया था।

पूर्व भारतीय दीपग्रन्थोमें १६०० ई० के अन्तमें गवर्नर वान हूरने (Van Hoorne) अरब बणिक्कीसे योज संघट कर अरबीपके बटेबिया नगरमें लगाये थे। उनमें जो पिट्ठे उनी उनका एक पीटा अन्नोन्न पधुंवाया गया। फिर इन्होंनेके सुखोहा एक पीटा १०१८ई०को सुरिनाम नामक स्थानमें पाया था। इनके दग सर्व पीछे अमटरडमके काफ़ीबागुधै एक पीटा १४वीं सदीको उपटोकन दिया गया, फिर उसका पीटा अहिम भारतीय दीपग्रन्थमें रोपित हुआ। इनमें नूतन महादीपमें काफ़ीकी खेती फल पड़ी। अमेरिका और युरोपकी काफ़ी-अपिका मूल अरबीय है। किन्तु आजकल अमेरिकाको भांति अहिपिके दूधरे स्थानमें नहीं काफ़ी नहीं उपजती। पहलेसे मैत्रिकमें ही पांच करोड़ तीन लाख पीटोसि यज्ञके साथ फल संघट किया जाता है। फिर कोटारिका, गायाटिमाहा, वेनजुइला, गोयाना, पेद्र, बनिबिया, जामिका, क्रिडवा, पोर्टारिका, अत्यान्त अहिम भारतीय दीप, अट्टेलियाके मध्य किन्तलेण्ड, पूर्वाभारतीय दीपअमीके मध्य सुमात्रा, बोर्नियो, अमयठवपीव, जामदेग, सिंगापुर अहिमि प्रचाली मध्यगत, दीपविभाग और किसी दीपमें इनको नुमां जाती है। अहिम और अरबीयके भांति पाहाट जमीन् दूधरी लगह नहीं। इनके पीछे भारतवर्ष और मिन्नकदीपकी पाहाट जमीन् अहिम योज है।

अरब देशमें इस प्रकारके अहिममें सुसलमान अहिम-याकल काफ़ीवागुधै विद्वर वठे थे। अरब अहिमि अहिम

दरगाहकी अपेक्षा काफी-पानागारमें खोगोंकी घासक्ति चतुर्युग बढ गई थी। घासासक्ति घटानेके लिये इस पर बहुत शुक्त स्थापित हुआ। ग्रेटब्रिटेनमें चायकी पहली दुकान खुलनेसे पहिले (१६५७ ई०) काफी पानागार बना था (१६५२ ई०)। डि, एडवार्डस नामक एक तुर्कस्थानका चंगरेज बणिक काफी पोनेमें इतना अभ्यस्त हो गया कि, देग जाते समय उसे प्यास्कीया रोसी नामक एक ग्रीक नौकर प्रत्यह काफी बना देनेके लिये अपने साथ रखना पड़ा। उसके बन्धुभाकी भी क्रमशः काफीपानका अभ्यास पड़ गया। श्वशुरपमें बन्धुबान्धवोंका तिल्य उपद्रव न सह सकनेके कारण उसने रोसीकी करनहिसवासे सेण्टमाइकेलके भाखी नामक स्थानमें प्रकाश्र्य रूपसे काफीका पानागार खुलवा दिया। क्रमशः व्यवहार बढ़नेसे पानागारोंकी संख्या भी बढ़ी। २५ चार्ल्सने (१६७५ ई०) पानागारोंमें खोगोंकी भीड़ देख इसका व्यवहार घटानेकी राजादेय विधिबद्ध किया था। फ्रांसमें १६४० ई०को काफीका व्यवहार चला और १६६६ ई०को पारिस नगरमें प्रथम पानागार खुला। उसके बाद युरोपमें सर्वत्र इसका व्यवहार बहुत बढ़ा गया था। श्वशुरपमें १८४७ ई०को चायका व्यवसाय और व्यवहार अधिकतर बढ़ जानेसे काफीका पादर घटा। ब्रह्मदेशमें काफीकी खेती होती है, पर बोलका प्रभाव है। दिन दिन इसके पीनेकी चाह बढ़ रही है।

भारतके दक्षिणपूर्वमें काफीकी खेती अब होती है। १८८३। ८४। ८५ ई०को तीन वर्ष दक्षिणपूर्वमें प्रायः १८६५०० एकर भूमिपर काफी बोई गई थी। उसमें महिसुरकी ८२१०० एकर भूमिमें ७११०००० पाउण्ड, मन्डालकी ५५१०० एकर भूमिमें १११६०००० पाउण्ड, त्रिशाङ्गकी ४८०० एकर भूमिमें ८२००००० पाउण्ड और कोचीनकी २२०० एकर भूमिमें ८३००००० पाउण्ड काफी उत्पन्न हुई।

इसके सम्बन्धमें बाबाबूदनकी बात लिख चुके हैं— भारतवर्षमें सर्व प्रथम काफी कैसे पाई थी। महिसुरमें प्रवाद है कि दो गताष्ट्री युधि मकासे कौटने समय

बहु कई एक फल और ७ बीज लाये थे। महिसुरमें बहु लिप्त पर्वत शिखरपर रहते थे, भाल कम लोग उनके नामानुसार उसको "बाबा बूदनगिरि" कहते हैं। उक्त शिखर पर उन्होंने अपने कुटोरेकी बगलमें उन्हीं ७ बीजसे वृक्ष उगजाये थे। क्रमशः उस पर्वतमें काफीके अनेक वृक्ष हो गये। फिर ६०।७० वर्ष बीतने पर दूरसे भी निकटवर्ती कई स्थानोंमें इसकी खेती बढ़ी। शेषको आज प्रायः ४० वर्षसे चंगरेजोंकी इस और दृष्टि पड़नेसे काफीकी खेती भलो भांति की जाती है। मि० क्यानन नामक किसी चंगरेजने सर्वप्रथम बाबा-बूदनगिरिके दक्षिण एक ऊँची ज़मोन् पर काफी बोयी थी।

चंगरेजाधिकृत देशोंके मध्य भारतवर्षमें हो सर्वा-पेक्षा उत्तम सुगन्धि काफी बहुपरिमाणसे उत्पन्न होती है। काफीकी पत्ती उपयुक्त नियमसे बना लेनेपर चायको भांति काममें लायी या चायमें मिलायी जा सकता है। सुमात्रामें पाडाङ्ग नामक स्थानके लोग काफीकी पत्ती चायकी भांति बना प्रतिदिन पान करते हैं। चायकी भांति इसमें भी ज़ेगहर आन्तिनाशक गुण होता है।

काफीके फलके छिलकेमें एक प्रकारका तेल रहता है। किन्तु इस तेलके निकालनेकी प्रणाली अभी प्रयत्नस्थित नहीं हुई।

अमेरिकामें काफीका फल उत्तम प्रकारका औषधकी भांति काममें आता है। किन्तु इहसँदमें इसका चलन नहीं। सुरासार गरीरमें औस कार्य उत्पादन करता, यह भी वेमा ही प्रभाव रखता है। काफी चायकी अपेक्षा सारक है। यह कौडबहु नहीं करती। फिर भी अधिक परिमाणमें काफी पीनेसे दस्त कम उत्तरता है।

टाइफिड ज्वरमें फरासी नौसेनाके मध्य रोगीकी द्वा-देा घण्टे पीछे दो चम्पस काफी पिना बीव शेषमें क्लारिट या बराण्टी मद्य सेवन कराते हैं। इससे यथेष्ट उपकार होता है। काफी पीनेसे फरासीनियोंमें मूलस्थलोके अशरी रोगका चातिमय घट गया है। तुर्कस्थानमें काफी पीनेसे यातकी पीड़ा नहीं रहती है। तुर्क प्रत्यह काफी पीते हैं। यही उनका

“वापश्चात्प्रतिता स्वे नाः मयं वा कामगदिकाः ।

सुरान् कामव्यगिनीं गामीषीद्वृक्षमात्राः ॥” (याज्ञवल्क्य)

कामगामी (सं० त्रि०) कामं यथेच्छं योनिविचारं पशुत्वे व गच्छति इत्यर्थः, काम-गम-गिनि। योनि-विचारशून्य हो यथेच्छ भावसे स्त्रीगमन करनेवाला, रङ्गीघाज, छिनरा। २ कामचारी, खाद्विषके सुवा-फिक, चलनेवाला।

कामगार (हिं० पु०) राज्यप्रवन्धकर्ता, कामदार।
कामगिरि (सं० पु०) कामप्रधानो गिरि, मध्यपदसौ०।
१ कामरूपका एक पर्यंत। (काश्चिकापुराण) २ दाधि-पात्यका एक पर्यंत।

“कामगिरिं वसाम्ब शरकामं महेवरी।” (प्रकृष्टप्रमत्तक)

कामगुण (सं० पु०) कामकृतो गुणः, मध्यपदसौ०।
१ अहुराग, सुहृद्व्यत। २ विषय, ऐश। ३ भोग, मजा।
कामङ्गामी (सं० त्रि०) कामं यथेच्छं गच्छति,
कामम्-गम-गिनि। कामगामी देवी।

कामवर (सं० त्रि०) कामेन चरति, काम-चर-ट।
‘स्नेच्छाचारी, मर्जीके सुवाफिक संव जगह घूमनेवाला।
“तां नारदः कामचरः कदाचित्।” (उमात्मश्रव)

कामचरण (सं० स्त्री०) कामं यथेच्छं चरणं विचरन्म,
कर्मधा०। यथेच्छभावसे विचरण, मनमानी चलफिर।
कामचरत्व (सं० स्त्री०) कामचरण्य भावः, काम-
चर-त्व। कामचरका कार्य, मनमानी चलफिर।

कामचलाज (हिं० वि०) त्रिसी म किसी प्रकार कार्य
निकास देनेवाला, जो काम चला देता हो।

कामचार (सं० त्रि०) कामेन स्नेच्छया चरति, काम-
चर-चञ्। १ यथेच्छभावसे विचरणकारक, मर्जीके
सुवाफिक घूमने फिरनेवाला। २ यथेच्छभावसे पशु-
चरानेवाला, जो मर्जीके सुवाफिक मषेगी चराता हो।

कामचारिणी (सं० स्त्री०) सुगन्ध लताविशेष, एक
खुशबूदार वृक्ष।

कामचारी (सं० त्रि०) १ कामेन स्नेच्छया चरति, काम-
चर-गिनि। कामुक, ऐयाश, छिनरा। २ यथेच्छचारी,
मर्जीके सुवाफिक चलनेवाला। (पु०) ३ गरुड़।
४ कलविह, एक विहिया।

कामज (सं० त्रि०) कात्मा जायते, काम-जन-ड।

१ अभिज्ञापजात, खाद्विषसे पैदा। कामज व्यसन
दश प्रकारका होता है,—

“अवयाचो दिवास्तः परोवायः त्रियो मरः।

नोर्विक्रं इथाया च कामजो दशको तथाः ॥” (मनुवर्दिना)

सृगया (गिकार), द्यतक्रीडा, दिवानिद्रा, पर-
निन्दा, स्त्रीसभोग, मद्यपान, नृत्य, गीत, वाद्य और
वृथापर्यटन दश कामज व्यसन हैं। इनमें मद्यपान,
द्यतक्रीडा, स्त्रीसभोग और सृगया चार उत्तरोत्तर
अधिक कष्टदायक होती हैं। कामज व्यसनमें पापल
होने पर धर्म और धर्मसामसे बन्धित रहना पड़ता है।
इसलिये इनको सर्वदा छोड़ना चाहिये। २ कामजात,
सुहृद्व्यतसे पैदा। (पु०) ३ कामदेवके पुत्र, पनिरुह।

कामजत्वर (सं० पु०) कामजयासो ज्वरयेति, कर्मधा०।
कामजन्य ज्वर, एक मोखार। कामरिपुके आधिक्यसे
यह ज्वर पाता है। वैद्यशास्त्रके मतसे इसका लक्षण,—

“कामके विपश्चिभं शक्तात्प्राजन्ममोजनम्।” (आचरनिदान)

मनकी विकलता, तन्द्रा, पाकस्य और प्रमोजन
है। भावप्रकाशके मतानुसार प्राज्ञाधवाक्य, प्रमोट
वस्तुके ज्ञान, वायुके उपगमकारक कार्य और हृद
रहनेके लयावसे यह ज्वर छूट जाता है। क्रोधसे भी
इस ज्वरका उपगम होता है।

कामजननी (सं० स्त्री०) नागवल्ली, पामकी वेल।

कामजनि (सं० पु०) कामस्य जनितृत्पत्तिः अघ्यान्,
बहुव्री०। १ कोकिल, कोयल। (वि०) २ सुगन्धि,
खुशबूदार।

कामजा (सं० स्त्री०) हृद्यविशेष, एक भाड़। यह
कर्पाटक देगमें प्रसिद्ध है। इसका योज भी ‘कामजा’
कहाता है। वैद्यकनिघण्टु, इत्ये मधुर, सख्य, काम-
उद्विकर, इन्द्रियवृत्तिकर और रुष्य बताया है। राज-
निघण्टुके मतसे इसके बीजमें भी उत्तम गुण होता है।

कामजान (सं० पु०) कामं जनयति, काम-जन-गिच्-
पच् निपातनात् न ङङ्। अथवा कामजं कन्दर्पभायं
पानयति, कामज-पान-नी-ङ। कोकिल, कोयल।

कामजित् (सं० पु०) कामं जयति, काम-जि-गिच्।
१ महादेव। २ कान्तिकेय। ३ जिनदेव।

कामज्येष्ठ (सं० त्रि०) कामको बड़ा समझनेवाला,
जो खाद्विषका पाबन्द हो।

प्रियतम पानीय है। मधिराम खरमें कुनेनकी भांति कफी काफी पिछाते है। किन्तु इसमें उतना फल नहीं होता। मुझे काफीमें गलित बीजबरीर वा हवादिवा दुर्गन्ध दूर हो जाता और दूधित वायुकी संक्रामकताका दोष नहीं जाता है। मन्दाज और मध्यमके अल्पतात्ममें प्रत्यक्ष काफीकी सुकनो जना वायुका दूधित अंग नष्ट करते है। अरबके कथगानुसार काफीमें कामिच्छानिधारक गुण है। घरके चांगल या खुले मैदानमें काफी जलानेमें हवा साफ होती है। उष्ण मत अनेक विधा चिकित्सकीका अनुमोदित है। इसमें फकीमका विष भी नष्ट होता है।

लाइबेरियाकी काफो (Liberian Coffee) अफ-रोकाके पश्चिम उपकूल पर लाइबेरिया, अट्रोलिया, गोलको, अमटो प्रभृति स्थानोंमें उत्पन्न होती है। इसका हल अरबीके काफी हलसे हृद् और फल तथा पत्र दीर्घ रहता है। लघु समय काफी हलका धिंधलमें अनुसन्धान हुआ, उस समय इस अफ्रीकी काफोका हलान्त युरोपोंमें प्रथम जाना। इस अफ्रीकी काफोमें शायद अधिक फीड़ा नहीं लगता।

लिखकर काफीकी रोतीका उपाय बताना कठिन है। कारण अफ्रीकी काफी इसकी रोती या बाग न देखनेमें कौंम समझ सकते है। अरबी काफीके हलमें नागदप पोड़ा छठ पड़ी होती है। बादहवा और रोती शरीके दोषसे ही अधिकतर पोड़ा उपजती है। रोतीके दोषमें अंककृषि घीटा टूट जाता है। पत्तीमें पीकी धूल निकल जाती है। फिर पत्ती जाली पड़ और भिङ्गू जाती है। काफीमें कौड़ा और मक्की लगनेका हर रहता है। इसकी छोड़ टिण्टी, पूहा, गिलहरि, गोदड़ बगैर भी ह्यो बहुत बिगा-दते है। अन्तर्मात्रिक अत्याचारसे को फल गिर जाने वध अंधक किये जानेपर "अन्तर्मात्रिकी" (गोदड़ काफो) कहते है।

काफो—१ मिर्का अला इन्दोनाया उपभाग। बादगाह अजरबसे मलय इन्को मन्दि रहते। २ गुदादाबादके एक सुसम्मान करि। इनका उपयोग भ्राम किरायेत

अनी था। इन्को 'बहार सुन्द' नामक अन्ध निधा। काफूर (अ० पु०) कर्पूर, कपूर। अ० २६०। काफूर मलिक—दिलीगर्भे बादगाह अला इन्दोनाय सिन्धुकी एक प्रिय कश्मी। इन्को बादगाहमें अफगा अजोर बनाया था। बादगाहके मरने पर इन्को एक अन्ध ग्यालियर, अनेक पुत्र गिन्धिर गान् और मादी गान्की अन्धे निधाअने भेजा था। दादप अन्धने यह कर्म सम्पन्न किया गया। फिर काफूर मलिकने बादगाहके कनिष्ठ पुत्र गद्दाइन्दोन्को सिंहासन पर बैठेया और स्वयं राज्यका कार्य बनाया था। किन्तु १३० ई०के जनवरी मास अन्धराटके मरने पर इनका वध हुआ। अन्धराट्-दीन्के तीसरे अङ्कसे पोदे सिंहासन पर बैठ गये।

काफूरी (अ० वि०) १ कर्पूरजाल, कपूरने बना हुआ। २ कर्पूरवर्ण विभिन्न, कपूरका रङ्ग अरबमें पाना। (पु०) ३ अर्धविभेद, कपूरी रङ्ग। इसमें अरिस् प्रामा रहती है (कपूरके टोपककी 'काफूरी गमा' कहते है।

काव (अ० श्री०) पाय विभेद, चीना महीको बड़ी रफावी।

काव—पारस्य उपसागरके किनारे रहनेवाली एक परब जाति। अरबमें भास्करसे रामहरसुत्र और पूर्वमें श्वेदजने हिन्दियन तक गच्छ जाति बसती है। इसकी राजधानी सुहमेरा है। काव भोगीकी पार-भूतिक मध्य बन्दु शापाविभिन्न ताव मदी बहती है। अरबी भोगीविक इस मदीकी टोरक कहते है। ई० के १२वें शताब्द अन्तमें कई अंगरेजी अन्धराज आक्रमण किये थे। अन्धे अन्धमें इनमें सुद अन्ध पड़ा। फिर अन्धराजा पामान सुहमेरा नगर अधिकार किया। १२५० ई०में पारस्य सुहमेरा बाद अन्ध नगर भारत अन्धराज्यके अन्धोन् हुआ।

काबर (अ० पु०) कुलितो अन्धः कोः अन्धिमः अन्धोदरादित्यात् सिन्धुः। कुलित अन्ध, बुरा अन्ध। काबर (अ० वि०) १ कर्पूर, कहरा। (पु०) अन्ध विभेद, दोमट, रत मिर्का इन्को गन्को। २ अन्धविभेद, एक अन्धकी भेना।

कामज्वर, कामज्वर देवी।

कामठ (सं० त्रि०) कामठख इदम् कामठ-पण् ।
१ कण्ठपसम्बन्धीय, कण्ठसे सरोकार रखनेवाला।
२ कामण्डलु-सम्बन्धीय।

कामठक (सं० पु०) सर्पविशेष, एक सांप। धतराष्ट्र नामक नागवंशमें इसने जन्म लिया था। फिर जनमेजय राजाके सर्पयज्ञमें यह मारा गया। (महाभारत आदि०)

कामठा—मध्यप्रदेशके भण्डारा जिलेके तिरोरा विभागकी एक जमीन्दारी। भूमिका परिमाण २८१ वर्गमील है। लोकसंख्या ७५ हजारसे अधिक है। कोई सवा सौ गांवोंसे तेरह हजारसे अधिक घर बने हैं। प्रायः सौ वर्षसे ऊपर हुए नागपुरके राजाके अधीन यह कुनबी वंशकी एक जमीन्दारी रही। किन्तु राजाके विपक्षमें विद्रोहकारणसे उनके हाथसे निकाल यह किसी नौदो वंशीयकी दी गयी। यह मालगुजारी दे इसे भोग करते हैं। इसमें कामठा नामक एक ग्राम भी है। यह अक्षा० २१° ३१' और देशा० ८०° २१' पू० पर अवस्थित है। लोकसंख्या डेढ़ हजारसे अधिक है। अधिवासी खेतीबारी करते हैं। कामठाके सरदार या जमीन्दार यहाँ रहते हैं। उनके घर चारों ओर प्राचीर और गड्ढेसे घेरित हैं।

कामठो—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलेका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° १३' ३०" उ० और देशा० ७८° १४' ३०" पू० पर अवस्थित है। यहाँ सेना-निवास (क्लबनी) है। कामठो नागपुर शहरसे उत्तर-पूर्व भाड़े चार कोस पड़ती है। लोकसंख्या पचास हजारसे अधिक है। यहाँ देवी विदेहीके मन्दिर और नवयण पञ्चादिका क्रय-विक्रय होता है। गण्डका व्यवसाय प्रायः माड़वारी मण्डालनोंके हाथ है। यहाँ वंशीलास पवीरचंदकी बनयायी एक सुन्दर पक्षी पुष्करिणी और उससे लगा एक मन्दिर तथा उद्यान है। जनहान नदीपर सेतु बंधा है। उसके ऊपर नागपुर और हत्तीसगढ़की रेल-गाड़ी चलती है। रेलका एक स्टेशन भी है। औद्योगिक, विद्यालय और प्रति-विद्योके लिये धर्मशास्त्रा बनी है। यहाँ ४५० रूप देख पड़ते हैं।

कामडिया (हि० पु०) धर्मकार-साधुसम्प्रदायविशेष। यह साधु राजपूतानिमें रहते हैं। रामदेवकी बांकी गाना और भिचा मांग कर अपनी जीविका चलाना इनका काम है।

कामण्डलव (सं० त्रि०) कामण्डलोर्भावः, कामण्डलु-पण् बद्धुमी० । १ कामण्डलु सम्बन्धीय। (क्ली०)
२ कामण्डलुका कार्य, कुन्दारका पेया।

कामण्डलेय (सं० त्रि०) कामण्डलोविदम्, कामण्डलु-ट चवर्षस्य लोपः टस्य एय। टेलीपिडकद्रवाः। न (१५११७७)
आयसे लोकोपिणः चटस्रहर्ष प्रथमोनाम्। पा ३१११०

कामण्डलु-सम्बन्धीय।

कामतश् (सं० पु०) कामं यथेच्छं जातस्तद्, मध्य-पदसो० । १ बन्दाक वृक्ष, बाँदा। यह पेड़ों पर चाप ही चाप उत्पन्न होता है। २ कल्पवृक्ष।

कामता—युक्तप्रान्तके बाँदा जिलेका एक ग्राम। यह चित्तकूट पर्वतके निकट अवस्थित है। कामदगिरिके नाम पर इसे कामता कहते हैं।

कामतापुर—कोषविहार प्रान्तका एक धर्मसाधुगण्ड प्राचीन नगर। कामरूपके राजा नीलध्वज इसके स्थाप-यिता थे। यह नगर कामरूपके कामपीठमें अवस्थित है। जब कामरूपका राज्य पश्चिममें करतया नदी तक विस्तृत था, तब यह नगर उस राज्यकी राजधानी रहा। उस समय इसकी शोभासम्पन्न (जेसी थी, उसका चिह्नमात्र भी भव नहीं) आजकल यह एक सुन्दर ग्रामकी अपेक्षा भी हीनावस्थामें हो गया है। भग्नावशेषके मध्य दुर्ग, राजमासाद, सरोवर, उद्यान, देवालय इत्यादि सकल विषयोंका धर्मसाधुगण्ड है। इसके पश्चिम लालबाजार नामक एक छोटा शहर है। युरोपीय साधारणतः इस लालबाजार ही कहते हैं।

पहले कामतापुर धरना नदीके पश्चिम तट पर अवस्थित था। किन्तु आजकल धरना प्राचीन स्थान छोड़ कितना ही पूर्वकी ओर चला गया है। इसलिये यह उससे बहुत दूर पड़ता है। धरनाका प्राचीन-गमौर विस्तृत स्थान आज भी कामतापुरके पूर्व खाली पड़ा है। उस स्थानको देखनेसे मालूम होता है कि पहले धरना आजकलकी अपेक्षा बहुत विस्तृत और

कावला (छिं० पुं०) नीरञ्ज, लहाजकी रखा या लखौर। यह शब्द अंगरेजीके 'केबिल' (Cable)का अपभ्रंश है। टेबरी कबे जानिवाले बड़े पिय या बालूटकी भी 'कावलां' कहते हैं।

कावा—१ एक जाति। इस जातिके लोग भारतके पश्चिम गुजरातके उत्तरकच्छ उपसागरके उपकूल पर महाराष्ट्र राज्यमें रहते थे। आज कल इनकी बात अधिक सुन नहीं पड़ती।

२ सुसलमानोंका एक परिच्छेद। यह चपकनकी भांति रहता, केवल वषल्य पर अर्धाय कटता है। इसके भीतर सुतका कपड़ा पहनते हैं। उस कपड़े पर वषल्यसमें लूरीका या कोरेंदूसरा काम रहता है। काधिके कटे अंगसे यह देख पड़ता है। काधिका व्यवहार पहले बहुत था, किन्तु अब घट गया है।

३ समचतुष्कोष पाकृति, बराबर चौकोर शक।

४ सुसलमानोंका एक पवित्र गृह। यह अरब देशके मक्का नगरमें प्रायः चतुष्कोष एक भवन है। इसे सुसलमान एक पवित्र तीर्थ मानते हैं। यह उत्तर पश्चिमसे दक्षिण पूर्व तक २४ हाथ लम्बा, २३ हाथ चौड़ा और २० हाथ ऊँचा है। पूर्व दिक्की इसका द्वार है। द्वारके निकट रीव्यासन पर कल्पवर्षका एक प्रस्तर रखा है। यात्री मक्का पहुँचते ही इससुख प्रवालन वा घानादि कर मसजिदमें जाते हैं। पहले कल्पवर्षका प्रस्तर चूम पीछे कावाकी चारो ओर प्रदक्षिण लगाना पड़ता है। कावाकी दक्षिण रख तीन बार जल्द जल्द और चार बार धीरे धीरे प्रदक्षिण कर कावाकी वाम ओर रखते परिभ्रमण शेष करते हैं। कावाके निकट एक प्रस्तर पर इम्राहीमका पदचिह्न है। प्रदक्षिणके पीछे यात्री इसी प्रस्तरके निकट जा मन्त्र पढ़ते हैं। उसके पीछे कल्पवर्षका फिर चूम चले पाते हैं। परभी परिवारवर्गके मध्य पुत्रघन्तानकी उत्पन्न होनेके ४० दिन पीछे काधेमें से जानिकी प्रथा है। यहाँ लाकर उस पर मन्त्रादि पढ़े जाते हैं। उसके पीछे लड़केको घर जाने पर मापित पाकर गण्डदेशमें छुरसे चतुके कोंपसे सुखके कोंप पर्यन्त समान्तराक्षमें तीन दाग बना देता है।

पति प्राचीन कालसे कावा परकीका तीर्थस्थान गिना जाता है। कथनानुसार पादमके समय एक प्रस्तरभूति सम्राजसे गिरी थी। क्रमशः इसमें १६० भूति प्रतिष्ठित हुयीं। सुहृदादके धर्मप्रचारसे इसका गौरव कितना ही बिगड़ गया। भारतमें खोसीका जमरके यशोय करनाटकके नयावोंने इस काधेमें चढ़नेके लिये एक स्वर्णसोपान प्रदान किया था। १६२०ई०को कावेका गौरव फिर प्रतिष्ठित हुआ।

कावाइज—एक जाति। पारस्यके पूर्व ओर पश्चिम कुर्द लोग रहते हैं। कवाइज उर्लीके पत्तगंत हैं। कावाबयकैरा (सं० स्त्री०) कवाब चीनो।

कावालखेल—एक जाति। काश्मीर प्रान्तमें बलुके निकट बजौरी लोग रहते हैं। वहे मझाद्यों ओर बजौरियोंमें कावाल खेल हाते हैं। इनकी तीन श्रेणी हैं,—मियाभी, सेफासी ओर पिपासी। इनमें हजारेों बलवान् होता पाये जाते हैं। १८५० ओर १८५४ई०को इन्होंने भारतके प्रान्तभागमें अंगरेजोंका अधिकार रहते भी २० बार लूट मार की थी। अंगरेजोंने इन्हें कई बार मारा ओर घेरा है।

काविल (५० वि०) अधि कारप्राप्त, कबला रखने वाला। काविल (५० वि०) १ योग्य, सायक। २ विद्वान्, समझदार।

काविल खान् (कबलाई कबान) एक विख्यात मुगल सम्राट्। यह चंगेज खान्के प्रपौत्र और तातारराज मङ्गूके भ्राता थे। १२५८ई०को ई० भाइसल प्राप्त हुआ। यही चीन राज्यमें मुईन अंगके प्रतिष्ठाता थे। १२६०ई०को यह अर्धव्य दल चल साय ले चीन राज्यमें सुभे। फिर इन्होंने तातारोंकी हरा उत्तर चीनपर अधिकार किया था। १२०५ई०को इन्होंने सङ्घ अंग निर्मूल कर दक्षिण चीन लीता था। इसी समय यह उत्तरमें उत्तर महासागरसे दक्षिणमें मन्तका प्रपासी ओर पूर्वमें कोरियासे पश्चिममें पगिया माइनर पर्यन्त समुद्रय भूखण्डके एकाधिपति थे। दूधरे मुगल सम्राटोंकी भांति यह अत्याचारी और प्रजापीडक न थे। सुवासनके गुणसे चीनवासी भाष इनकी प्रशंसा करते थे। १२८४ई०की इन्होंने हङ्गोक छोड़ दिया।

प्रवल नदी थी। कामतापुरकी बीच इस समय भी एक सुदूर नदी प्रवाहित है। इसको "शिङ्गीमारी" * (शुङ्गीमारी वा सिँहमारी) कहते हैं। इस सुदूर नदीनि प्राचीन नगर दो भागोंमें बांट दिया है। पूर्व खण्डसे पश्चिम खण्ड छोटा है। अर्द्ध शिङ्गीमारी नगरमें हुसी या अर्द्ध नगरसे निकली है, वहाँ यहाँ पश्चिकांश स्थान स्तौतिक प्रवाहसे विनष्ट हो गया है।

नगर बहुत कुछ भ्रायताकार है। परिधि प्रायः १८ मील होगी। उसके मध्य पूर्वकी ओर ५ मील धरसाका पुराना कोट उत्तर-पश्चिमसे दक्षिणपूर्व कोणके प्रथिमुख पड़ता है। नगर पपर तोर्नी टिक मलाकह तथा मयमय हहत् प्राकारसे परिवेष्टित है। खाई दो हैं—एक नगरकी चारो ओर, और दूसरी नगरके अन्तर्गत दुर्गके चारो ओर। ऐसा जान पड़ता है कि—दुर्गकी खाईकी मिट्टी खोद दुर्गके मुरचे बनाये गये हैं। फिर नगरकी खाईकी मिट्टी निकाल खाईके बाहर डाल पुत्रा बांधा है। यह पुत्रा और दुर्गका मुर्चा आजकल पश्चिकांश स्थलोंमें टूट गया है। नगरकी खाई और दुर्गका मुरचा ही उक्त कारणसे अति हहत् और विस्तृत था। नगरकी खाईके भाग ही इसकी तीर्ना और नगर रचायं मुरचे हैं। पूर्वकी धरसा नदीकी ओर कोई मुरचा नहीं। दुर्गकी खाईका विस्तार आजकल कहीं कम कहीं ज्यादा है। इसके किनारे पर आजकल खेती बारी होने लगी है। इसीसे ध्वनमें जलसंधारके प्रिये दुर्गकी खाई काट कर नाना स्थानोंमें मैदानसे मिला दी गयी है। दुर्गके मुरचाका तलभाग प्रायः १२० फीट विस्तृत और २०। १० फीट ऊँचा होगा। किन्तु देखते ही इसके पश्चिक उच्च रहनेकी प्रतीति होती है। कालक्रमसे मिशरदेशकी श्रुत्तिका छूट मूलदेशमें पा लगनेसे तलदेशकी वस्तुति कुछ बढ़ गयी है। किन्तु इसके समझनेका कोई उपाय नहीं—पहले पायतन कितना बड़ा था? मुरचे भीचसे ऊपर तक मिट्टीके घने हैं। भली भाँति समझ पड़ता है कि बाहरी और इटकवा

बाहरण था। नगरकी खाईका विस्तार इस समय भी २५० फीट है। किन्तु अब ठीक अनुमान कर नहीं सकते—गभीरता कितनी थी। कारण खाई बहुत भर पायी है। बाहरका पुत्रा देखनेसे मालूम होता है कि गभीरता भी बहुत सामान्य न होगी। नगरमें तीन तोरण वर्तमान हैं। फिर शिङ्गीमारीके पश्चिम पूर्व एक तोरण रहनेका अनुमान लगाते हैं। सम्भवतः इस तोरणके पास ही सुसलमानोंका डेरा था। ऐसा अनुमान करनेका कारण यह है कि यहाँ भी वैसी ही रचणोपयोगी ध्ववस्था देख पड़ती है, जैसी पस्थान्य तोर्नोंकी निकट खाई और मुरचांनि मिश्रती है। एतद्विच यहाँ एक तोरण रहनेका दूसरा प्रमाण भी है। इस स्थानसे एक पुरातन प्रमस्त राह बराबर उत्तरकी ओर नगरके मध्य कोवागार नामक पहालिकाके भग्नावशेष तक चली गयी है। फिर यहाँ यह कुछ टेढ़ी पड़ दक्षिणमुख छोड़ावाट पड़ चुकी है। इस राह पर दूसरे भी साधारण कार्योके विन्द देख पड़ते हैं। यह राह नगरके दक्षिणमें सीदल दीधीके तीरसे छोड़ावाटकी ओर गयी है। नगरसे दीधीतक राह प्रायः १ मील है। इसके भी उभय पार्श्व पर कई पहालिकावोंका भग्नावशेष है। इस देशके मोगोंके कथनानुसार नगरसे सीदल दीधी तक पयिपार्श्व भग्न पहालिकाके सुगलोंनि बनवायी थीं। किन्तु यह उनका भ्रम मालूम होता है। इसके मध्य एक इटकखूपके ऊपर दो और दूसरे इटकखूप पर चार यागारठ पत्यके पसम्पूर्ण एवं सीदलवशुभ्य स्तम्भ हैं। हिन्दुराजावके समय यहाँ बहुत पहालिकाकार्य थीं। अतरोधके समय सुसलमाननि उन पहालिकावोंपर पश्चिकार कर वास किया था। फिर उनकी दुर्दगा भी सुसलमानोंके हाथसे हुई जिस स्थानमें एक तोरण रहनेका अनुमान किया जाता है, उस स्थान और शिङ्गीमारी नदीके दो मील पश्चिम एक भग्नप्रायः तोरण मिला है। प्रस्तर-निर्मित स्तम्भादि रहनेसे इस तोरणका नाम "गिस्तादार" है। यह सकल स्तम्भप्रस्तर सीदलवशुभ्य हैं। और किसी प्रस्तर काश्चकार्यविगिट नहीं। गिस्तादारसे दो मील पश्चिम दूसरा भी तीरण

* बहुत ही पुरानी मन्सूबे के बंदा नाम मन्सूबेकी बताते हैं। फिर दूसरी भी मन्सूबे के बंदा नाम मन्सूबेकी बताते हैं।

काविलीयत (च० खी०) १ योव्यता, क्रियाकृत, पृथ्व। २ विद्वता, समझदारी।

काबिम (हिं० पु०) कविप्रवर्ण, एक रंग। इसमें महीश्वर जैसे बरतन रङ्ग कर पाया जगानेसे खाल निकल जाते और समझीसे दिखते हैं। काबिम जगानेमें सीठ, मही, श्व, यामकी दास और बबूल तथा बामकी पत्नी घोस कर जानते हैं। २ मूर्तिकावियेय, पद मिष्टो। यह शब्दवर्ण होता है। जन मिलागेसे इसमें लक्ष पा जाती है।

काकी (हिं० खी०) मङ्गयुक्तका एक इस्लामाधय, कुत्तीका कोई घेस। इसमें एक पक्षजवान् दूधरके घोड़े ला एक दायमें उसके आधियेका पिछोटा पक्षक लेता और दूसरे हाथमें घेर खींच कर पटक देता है।

काबुक (फा० खी०) बभूतरीका दरवा।

काबुल—१ अफगानस्थानका एक जिला। इसके पश्चिम कोणरावा, उत्तर हिन्दूकुश पर्वत, उत्तर पूर्व पक्षरा नदी, पूर्व सुलेमान पर्वतश्रेणी, दक्षिण छफेदकीड तथा गज्जो और पश्चिम जलारा प्रदेश है।

काबुलका अधिकांशखल पर्वतों परितूर है। इसकी अनेक उपत्यका उर्वरा है। इन उपत्यकावेमें बड़े बड़े हृष होते हैं। उनके कई और बरगी बनते हैं। कोहखान और कुरममें अच्छा पक्षका काष्ठ उपजता है। काबुलके जगानामोंमें भिनेके बाग हैं। कोहदामन और जस्ताकोफ उपत्यकामें बाग बहुत हैं। बाग देखनेमें प्रति मनोरम हैं। नगर और औरबन्द नामक प्रदेशमें पथपारपका स्थान है। यहां पन्नादिका बाजार भी अधिक मिलता है। यहां मीठ और सब घण्टे उत्पन्न होता है। किन्तु उसे खेचक दरिद्र लोग व्यवहार करते हैं। सब सम्पन्न लोग मांस अधिक खाते हैं। गज्जोमें जानाविध मत्स्य यहां जाता है। उत्तर बडेलगान्, जवालाबाद, जामगन और कुरारी खासकी चामदनी होती है। इन लिलेमें खान खान पर सध्यादि अधिक उपजता है। रामगान और जगरीमें सीं जाता है। यहां सध्यादिका मत्स्य नहीं। दोकके समय लोग अधिक भाग खीमेमें रहते हैं। इस्लाम और इस्लामिनि

धर भी हैं। चरकी बहुत भातबर्णको भांति बन-तक होती है। मो घोर निय ही यहां धन मिला जाता है। उत्तरमें तुर्कस्थान और दक्षिणमें भारतवर्षके साथ वाणिज्य होता है। तुर्कस्थानके पन्नाका ही वाणिज्य अधिक चलता है। याम छोटे बड़े नामा प्रकारके हैं। एक एक याममें मो-सेढ़ मो चरकी चलती है। यामके भीतर बीच बीच छोटे किले बने हैं। जन अनेक स्थानोंमें मिलता है। उपत्यकामें प्रायः घेसगाड़ी चलती है। यहवाणिज्यमें बड़, धन्न और अंग्रतर व्यवहृत होते हैं। तुर्कस्थानमें कविधामें यत्न बढ़ाया था, इस निये यहांका वाणिज्य कुछ घट गया। पहले भारतसे बपड़ा और चाय मज्जे थे। किन्तु यह काम भी बन्द हो गया। इससे हमको यहको चामदनीमें घटी चार है।

काबुलके प्रादेशिक शासनकर्ताको काबिम कहते हैं। १८८२ ई०को अमीर गीर पत्नी खान्द भीता सरदार अहमद खान् यहकि काबिम थे। काबुलका चाय प्रायः पठारच साथ रूपया है। अफगानस्थानके पन्नाय प्रदेशकी अथवा काबुलकी गेम्प-संख्या कुछ अधिक है। यहांकी राठे भी खराब नहीं। इसका बहुत प्रमाण मिलता है कि पहले काबुलमें हिन्दू राजाओंका अधिकार था।

२ एक काबुल जिलेका प्रधान नगर। यह अक्षा० ३८° ३' उ० एवं देशा० ६८° १८' पू० में काबुल और नगर नामक दो नदीसे अङ्गमण्य पर अवस्थित है। काबुल गज्जोमें ८८, पिलात एगिलजईमें २२८ और वेगावरसे २८५ मील दूर है। जोकरास्ता हिन्दू जायसे कम है। यहां तापमानवन्द ३०° डिग्री उतरता और १०° डिग्री बढ़ता है।

कोह ताकतगाह और कोह खीत्रामन्द नामक दो गिरिधियो मिलनेमें कोल्की भांति बन्देबाका खान ही समतल है। उसी खानपर काबुल नगर अवस्थित है। यह चारोदिक् ईश्वर कीर्णसे अधिक न निकलेगा। प्रधान दुर्ग पामादिनगर नगरके दक्षिण पूर्व भागमें बसा है। वही काबुलकी चारी और इस्लामका प्राचीन वा। किन्तु पानक

अनुभव करनेका मैदान जा देखा कि उसका गोरघक एक पेड़के नीचे पड़ा मीठा है और एक सर्प फफा फेंसा उसके मुँहकी धूप रोक रहा है। ब्राह्मण सर्प देख कर हरा और द्रुतपद भागने लगा। उसी समय सर्प मनुष्य भाति देख मरक गया। ब्राह्मणने पास जा कर देखा कि उसके पदतनमें षटदल पद्म, विशून, ऊर्ध्वरेखा प्रभृति राजलक्षण है। यह देख ब्राह्मण उसे जगा कर घर ले गया और किसी प्रकारका नीचकर्म करनेकी निवेद किया। भवगोपकी एक दिन ब्राह्मणने उससे बुलाकर प्रतिष्ठा करा ली—किसी दिन राजा होने पर यह उनको मन्त्री बनायेगा। कालक्रमसे कामरुपराज धर्मपालके तदामौस्तन वंशधर दुर्वल पड़ गये। फिर वही गोपालक उनको मार स्वयं नीलध्वज नामसे राजा हुआ और अपने राज्यका "ब्राह्मणराज्य" नाम रख प्रतिपालक ब्राह्मणको मन्त्री बनाया। दूसरे प्रवादके अनुसार किसी ब्राह्मणके घर एक दाम्नी थी। उसीके गर्भसे एक पुत्रसन्तान हुआ। ब्राह्मणने उसे गोरघामें नियुक्त किया। कालक्रमसे एक रूपसे वही गोरघक नीलध्वज हुआ। फिर कोई कहता है कि गोरघक असुर (असभ्य जातीय) था। अन्ततः राजा नीलध्वजने मिथिलासे ब्राह्मण और काट्यर ले जाकर कामरूपमें बसाये थे। फिर "कामतापुर" * नामसे उन्हें एक नगर भी बसाया। नीलध्वजने इस नगरमें राजधानी स्थापन कर "कामतेश्वर" उपाधि ग्रहणपूर्वक अपनेको "सच्छूद्र" नामसे प्रचारित किया था।

नीलध्वजके पीछे उनके पुत्र चक्रध्वज और चक्रध्वजके पीछे उनके पुत्र नीलाम्बर राजा हुए। नीलाम्बरने ही घोड़ाघाटके गढ़ और अनेक कौतिली स्थापन किया। एकवार नीलाम्बरराजके मन्त्रिपुत्र राजरानी पर आसक्त हुए। राजाने उन्हें मार और

उनका मांस पका, मन्त्रीको खिलाया था। मन्त्रीके खा चुकने पर राजाने उन्हें पुत्रसुख देखाया और समस्त विवरण बताया। मन्त्री सपु पाप पर गुदगुद देख पतित राजसंसर्ग परित्याग पूर्वक गङ्गाके स्नानच्छुद्धसे कामरूप छोड़ चल दिये। फिर उन्होंने गङ्गास्नान कर प्रतिशोध लेनेको गौड़ेश्वर दुर्जन शाह नवाबसे साहाय्य मांगा था। नवाबने राज्यकी पक्का समझ भूक कर बड़े सैन्य सह कामरूपकी यात्रा की। घोर युद्ध होते भी कामतेश्वर पराजित न हुये। इसीसे नवाब नगर घेर बैठ गये। भवरोध १२ वर्ष पर्यन्त रहा। सुसलमानोंने इस दीर्घकालके मध्य नगरके बाह्यभागमें अनेक कौतिली बिनष्ट कर अपने रहने योग्य अष्टात्मिका और पुष्करिणी तक बनवा लीं। भवगोपमें उन्होंने कौमल प्रवलम्बन किया था। राजाको यह सन्वाद भेजा गया—मुसलमान भवरोध छोड़ चले जायेंगे, किन्तु जानेंसे पहले मुसलमानोंकी रमणी रानीसे साक्षात् करना चाहती हैं। नीलाम्बर प्रत्याप पर सम्मत हुये। किन्तु मुसलमानोंने दोलामें स्त्रियोंको न भेज सशस्त्र योद्धा रवाना किये। उन्होंने भीतर पहुँच नगर अधिकार किया और राजाको बांध लिया। किसीके कथनानुसार वन्दे राजा गौड़को प्रेरित हुये और किसीके कथनानुसार वह मार डाले गये। फिर कोई कहता है कि राजा प्राय बधा भाग्ये। अन्ततः नगर सुसलमानोंने अधिकार किया। १४२० शककी कामतापुरमें मुसलमानोंकी जयपताका छोड़ी थी। प्राय वही नगर भग्नरूप मात्रमें परिणत है, जिसने ४००घो वष पूर्व एककास मुसलमानोंका आदेश बर्षिक परराध बनायास सड़ लिया। कालकी विचित्र महिमा है।

"गुरुजनक्याचरित" नामक आसामके ग्रन्थमें लिखा है,—कामतापुरमें दुर्लभनारायण नामक एक राजा थे। उनके साथ गौड़ेश्वर धर्मनारायणका एक भीषण युद्ध हुआ। दुर्लभनारायणको ही कोई कामरूपके राजा धर्मपालका और कोई "धितारि"का र्वगीय बताया है। अन्ततः युद्धमें अनेक लोग मारे गये। फिर दोनों राजाओंने रातको लग्न देव दूसरे दिन सख्यता-स्थापन-पूर्वक सन्धि कर ली।

* नीलध्वजने सन्वतः १२११(६) शकाब्दको कामतापुर पदम किया था। विष्णु विहोके विहोके अनुसन्धमें कामतापुर नामक एक पद नगर पदमें ही था। नीलध्वज उसी नगरका विहार रहा और दुर्गादि जग शैल्य राजधानी बसाई रहे। १२११(६) शकमें भी एक नगरका नामहीन लिखा है।

स्थान स्थान पर उसका भग्नावशेष देख पड़ता है। नगरका अधिकांश स्थान टुकड़ाटुकड़े परिपूर्ण है। बस्ती ५००० घरसे अधिक नहीं। नगरमें जाने जानेके लिये पहले सात फाटक थे। आजकल लाहौरी और सरदार नामक दो ही बँटके फाटक देख पड़ते हैं। लोतीके घर अधिकांश बस्ती बँट और मट्टीके बने हैं। नगर कई मजल्लोंमें विभक्त है। फिर मजल्ले कूचेमें बटे हैं। कूचे प्राचीरसे वेष्टित हैं। युद्ध विपद्के समय प्राचीरकी मरम्मत होती है। उस समय एक एक कूचा दुर्गकी भांति देख पड़ता है। प्रवेशके लिये कूचेमें सिर्फ एक फाटक रहता है। ऐसी आभरणके व्यवहारको कूचाबन्दी कहते हैं। भीतरकी राहें अत्यन्त सद्दीर्घ हैं। नगरमें अनेक बाजार हैं। उनमें दो प्रधान हैं। वह दोनों प्रायः समान्तरालमें अवस्थित हैं। एकका नाम शोरबाजार और दूसरेका नाम लाहौरी बाजार है। नगरकी दक्षिण और शोरबाजारमें चहार-छाता नामक एक इमारत है। यह देखनेमें बहुत सुन्दर है। बाजारमें यह देखने लायक चीज है। इसके ऊँचे चित्र-विचित्र बने हैं। अन्नी मरदान खानने यह इमारत बनवायी थी। नगरके बाहर बाबर और तैमूर शाहका समाधिस्थान है। यह दोनों चीजें भी देखने लायक हैं। काबुलके शासनकर्ता खुद भीतर हैं। पहले बालाहिसारमें ही राजभवन था। आजकल भीतर नगरके मध्य अन्व स्थानमें रहते हैं। नगरमें एक विद्यालय है। विदेशी बणिक्की या व्यवसायिकीके रहनेको यहां १४१५ सराय हैं। इन्हें कारवान-सराय कहते हैं। साधारण लोगोंके मजानिको छांगानगर है। उन्हें जगाम कहते हैं। जगाममें गर्म पानी रहता है। योषके समय चारों ओरसे बणिक् आते हैं। अत्यधिक अधिकांश दस्ताविकी द्वारा सम्भ्रम होता है। नगरमें स्थान स्थान पर झूप है। किन्तु उनका जन्म कुछ भारी होता है। नदीका जल बहुत अच्छा है।

नगरमें जानेके लिये कई पुल हैं। उनमें किशीका पुल प्रधान है। कई नावें जोड़कर नावका पुल

बना है। पक्के पुल भी कई हैं। अनेक स्थानों पर नदीमें जल कम रहनेसे सेतुकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

तैमूर शाहने काबुलमें अफगानस्थानकी राजधानी स्थापित की थी। उस समय तक सादुजाई बंगीय राजा ही काबुलमें रहते थे। सादुजाई बंगका पतन होने पर यह नगर दोस्तमुहम्मदके हाथ लगा। अंगरेजोंके राज करते समय काबुलमें बहुत सुहविषह हुआ। अफगानताम देखो।

१८१६ ई० की ७वीं अगस्तके दिन अंगरेजोंने सैन्य शाहशजाको काबुल भेजा था। अंगरेजोंका सैन्यदल दो वर्ष वहां रहा। फिर १८४६ ई० की २री अक्टूबरके दिन काबुलके सिपाहियोंने विद्रोही ही भीतर शाहशजाको मार डाला। दोस्त मुहम्मदके पुत्र अकबरखानने फिर अंगरेजोंसे सन्धि करना चाहा था। सन्धि होनेकी बात इस मर्म पर चली थी कि अंगरेजोंको काबुल छोड़ना पड़ेगा। सर विलियम माकनाटन सन्धिकी बात चेत करने गये थे। किन्तु वह पिस्तौलसे मारे गये। उनके साथ ड्रेवर, मिनेस्त्री और लारिन्स साहब थे। गिलजाई सिपाहियोंने ड्रेवरकी भी मार डाला। दूसरे साहब बांध लिये गये। श्रेयमें स्थिर हुआ कि अंगरेजोंको अपना पैसा सब देना और उन्हें सिर्फ ६ तोपें ले लौटना पड़ेगा। १८४२ ई० की ६ठीं जनवरीको अंगरेजी सेना कोर्टने लगी। ४५०० सिपाही और १२००० नौकर सख्त ठण्डो बरफकी तोड़ते घाघर आते थे। इस दलके मध्य कैप्टन डाक्टर ब्राइडन सयरीर जनानावाद पहुँचे। बन्दी हुए २५ लोग भी अश्वमेधमें आ गये। १८४२ ई० की १५वीं अक्टूबरकी अंगरेजी सेना से कप्तान योशकने काबुल पहुँच बालाहिसार देखल किया था। १२वीं अक्टूबर तक अंगरेज नगर पर अधिकार किये रहे। माकनाटन साहबकी हत्याके पीछे उनका देह बाजारमें छतकाया गया था। इसके बदलेमें अंगरेजोंने चहार-छाता बाजार तोपोंसे छड़ा दिया।

१८०८ ई०के मई मास गणकामकमें याकूब खानके साथ अंगरेजोंकी सन्धि हुई। अगले काबुलमें अंग-

उसके पीछे गौड़ेश्वरने कामरूपकी चपस्या देख राजा दुर्लभनारायणके पास सात ब्राह्मण और सात कायस्थ भेजे थे। इन्होंने चौदह मनुष्योंने प्रधान १२ पादमियोंको राजा दुर्लभनारायणने "वारभेंया" आख्या दी। कामरूप देवी। वारभेंया ही सम्भवतः गौड़ेश्वरके सेनापति थे। दुर्लभनारायणने उनके साहाय्यमें भीट-राजका विद्रोह दबाया था। कामरूपमें कामरूपके मध्य कोचजानिकी संख्या और प्रभाव बढ़नेसे राजा दुर्लभनारायण कुछ शीघ्र ही मरे। फिर पादि भूयोंके मरनेसे वह अधिक उत्कृष्ट हुए। कुछ दिन पीछे कोचोंके मध्य राजा नामक किसी सरदारकी प्रधानत्व मिला। वह क्रमशः अपना अधिकार बढ़ाने लगा। और चपसमें घोड़ाघाटकी छोड़ आसाम प्रदेशका राजा बन बैठा। इसके हीरा और नीरा दो कन्या भिन्न चपस कोई सन्तान न थी। दोनों कन्यावाके अविवाहितावस्थामें अति अल्प दिनोंके आगे पीछे दो सन्तान हुये। जीराके सन्तानका नाम शिशु और हीराके सन्तानका नाम विशु था। राजा राजकुमारी कन्याओंके पुत्र होते देख मन्त्रा विस्तान्ति हुये। उसी समय देवबाणी सुन पड़ी थी—यह दोनों पुत्र देवदेव महादेवके औरसमें उत्पन्न हुये हैं। किसी किसीके कथनानुसार हरिया नामक किसी भेच जातीय सरदारसे हीराका विवाह हुआ था, किन्तु उसके औरसमें उत्पन्न नहीं। अन्तमें यह दोनों सन्तान विशेष पराक्रमी हुये। इन्होंने अपना नाम "विश्वसिंह" और "शिशुसिंह" रखा तथा अपनेकी शिवधर्मोय एवं स्वयंकी लोगोंकी "राजधर्मोय" बना प्रचार किया। क्रमशः विश्वसिंह नाना देय (बुद्धोंके मतमें १४२० से ३० शकके मध्य) कामतापुर अधिकार कर राजा हुये और शीघ्रसे वैदिक ब्राह्मण का "कामरूपी ब्राह्मण" आख्या दे खराचवमें बसा दिये। इन्होंने बौद्धधर्म बढ़ाने समय सुतप्राय कामास्यापीठका उधार किया था।

कामतापुर कितने दिनोंका है ? बुद्धोंके मतसे राजा नीलध्वज कामतापुरके स्थापयिता नहीं, संस्कारकर्ता और राजधानीकर्ता मात्र थे। उसके अनुसार राजा नीलध्वजने १२५०—६० शकको (११२८—३८

ई०) यहाँ राजधानी स्थापित की। उस चपसको ही देखते १४२० शकमें (१४८८ ई०) हुयेन शाहने कामतापुर अधिकार किया था। १२ वर्ष पर्वरोधके पीछे नगर अधिकृत हुआ। सुतरां १४०८ शकको (१४८६ ई०) हुयेन शाहने प्रथम नगर पर आक्रमण किया। उस समय नीलध्वजके पौत्र नीलाश्वर कामतापुरके सिंहासन पर अधिकृत थे। सुतरां नीलाश्वरके समयसे नीलाश्वरकी राज्यकाल-समाप्तिके मध्य प्रायः १५०। १६० वर्ष व्यतीत हुये। फिर नीलध्वजधर्मोय राजा-वोंने प्रत्येक मनुष्यके ५५ वर्ष राज्य किया। पूर्व-भारतके इतिहास-लेखक मिटर मन्टूगोमारी मार्टिन साहबने इस समयमें जो कालसंख्या निर्दिष्ट की है, उसके साथ इसका मेल नहीं। उनके कथनानुसार १४८६ ई०को (१४१८ शक) हुयेन शाहने और १५२३ ई० को (१४४५ शक) चपसवर्ष परवर्ती गौड़राज नसरत शाहने राज्यारोहण किया था। सुतरां हुयेन शाहका राज्यकाल २० वर्ष रहता है। २० वर्षसे नगरवरोधके १२ वर्ष (मार्टिन साहब इसे नहीं मानते। वह इस बातकी प्रतिगोष्ठी समझ छोड़ देना चाहते हैं। फिर वह स्वयं भी पर्वरोधकालकी कोई संख्या नहीं बताते।) निकाल डालने पर १५ वर्ष बचते हैं। फिर विश्वसिंहके कामतापुरका अधिकारकाल बुद्धोंके मतमें १४२० और १४३० शकके (१४८८ और १५०८ ई०) मध्य था। मिटर मार्टिनने विश्वसिंहके कामतापुर अधिकार की कोई बात नहीं लिखी। उक्त कालसंख्याके अनुसार हुयेन शाहने स्वयं राज्यारोहणके कालसे (मार्टिनके मतमें १४८६ ई० या १४१८ शक) प्रायः ७० वर्ष पीछे (बुद्धोंके मतमें १४०८ शक या १४८० ई०) कामतापुर पर आक्रमण किया था। किन्तु मार्टिनके मतसे उनके राजत्वकालका परिमाण केवल २० वर्ष था। फिर बुद्धोंके मतसे कामतापुरका आक्रमण-काल १४०८ शक या १४८६ ई० रहा। किन्तु मार्टिनके मतसे उक्त समय (१४८६+१५) १५११ ई० (१४४३ शक) या उससे दो-चार वर्ष पूर्व था। कारण बुद्धोंके मतसे विश्वसिंहके कामतापुरका

रेकीके एक रघीट्ट रघनीका बात ठहरौ। सर दूरुच रघीट्ट कन कावुल गये। उस समय भी अफगान बिचकुल शांत न थे। १री सितम्बरके दिन श्री सर सुदम सभेस्य लक्षपूर्वक मारे गये। उस समय जुलम उपद्रवकारि सर खेडरिख राबर्ट पंगरेकी सेना निये अयेथा करतें थे। पंगरेख गवरनमेंगुने उभे कावुल जानेकी अनुमति दी। राबर्टने सभेस्य प्रस्थान किया था। रास्तेमें नाना विद्र बाधाओंका अतिक्रम करना पड़ा। ८वीं अफगानोंको उभेनि कावुल पर अधिकार किया था। पंगरेख सभेस्य बानाहिसार, डिना घोर राजभयनबा अधिकार्य तोड़ लाया। पमीर याकूब खान्ने परत्याग किया। पंगरेख कावुल अधिकार किये रहे। अफगानोंने मोचा था कि पंगरेख भीट जायिगे। किन्तु उभे मैठा देण सय लोग अमनुष्ट हो गये। चौड़े दिन पीछे अफगानोंने कावुल घोर बानाहिसार दखल किया। २२वीं सितम्बरको जैपुरमें एक युद्ध हुआ। उभेमें पंगरेख श्री जीतें थे। किन्तु उभे जैपुरमें अचरह हो रहना पड़ा। २३वीं दिनम्बरकी वहाँ ५० हजार अफगान सेनाने पहुंच पंगरेखों पर आक्रमण किया था। किन्तु यह पराजित हुई। दूसरे दिन अधिकतर पंगरेखसेना पहुंच गई। कावुल फिर पंगरेखोंके अत्यागत हुआ। उभेके पीछे ३ मास तक कोई उपद्रव न उठा। २२वीं जुलाईको अचरहमास कावुलके पमीर मंगोनीत हुये। अगस्त मासमें पंगरेख सेना लौट पाई। पमीर अचरहमासके आसने शांति स्थापित हुई। १८८१ई०को याकूब खान्ने आक्रमण किया था। किन्तु यह पराजित हो हिरातकी राह पारसकी घोर अक्षे गये। उभे वर्ष पमीरमें एक बार कावुल छोड़ दिया था। फिर वार्टक घोर कोहिस्यानके लोग विद्रोही हुये। किन्तु धीरे धीरे शांति हो गई। १८८४ई० को अम-सभेस्य मार्च पर अधिकार कर अफगानस्थानकी सीमासे आ पहुंची थी। पंगरेखोंने रुम घोर अफगानस्थानकी सीमा स्थिर करनेके लिये ४० कर्मचारों घोर ४०० सिपाहों भेज दिये। १८८५ ई०को भारतके गवरनर लेबरह कार्टे अवरिनने राबल-

पिछीमें एक दरबार किया था। अमीर उभेनि निम्नस्थित हुए। मार्च मासके मीमें अमीर अचरहमास वहाँ पाए थे। एकपक्ष तक यह बह चाल चल गया।
 पात्रसे कोरे तीन वर्ष पहिले मृतपूँ अमीरको घोतेमें कियेने मार डाला था। उनके पीछे कनिष्ठ पुत्र अमान खन्ना खान्को कावुलका राजपद प्राप्त हुआ, किन्तु उभेनि पंगरेखोंके विरुद्ध युद्ध घोषणा की। जितनी भी खून खराबीके पीछे युद्ध बन्द हुआ। फिर अफगानोंका एक दूतदल सन्धि करने भारत आया, भारतसे भी पंगरेखोंका दूत-दल कावुल सन्धि की बातचीत करने गया। गत २८वीं फरवरीको कावुल घोर रुससे भी एक सन्धि हुये है। कहते हैं हम सन्धिके अनुसार अमीरने रुसी मोसमेबिकोंको भारत पर आक्रमण करनेके लिये अफगानस्थानकी राह सेना से जानेका अधिकार दे दिया है। कावुलकी समस्त आज़कूब बहुत टेढ़ी पड़ गयी है।
 २ अफगानस्थानकी एक नदी। इमी नदीके तीरे कावुल नगरी है। अरम्भदेमें यह नदी जुभा नामसे कह्यो गयी है। उम १५०।
 कावुली (हिं० खी०) कुमासम्बन्धीय, कावुलके मुतालिम्।
 कावुली बहूल (हिं० पु०) उच्च विधिय, एक तरहका बहूल। यह भारतमें प्रायः सर्वत मिलता घोर फरीकी तरह मीथा असता है। इमी राम बहूल भी कहते है।
 कावुली मस्तगी (फा० खी०) निर्वास विधिय, एक गोट। यह रुमी मस्तगीमें मिलती घोर उभकी उमद काममें पाती भी है। उच्च अयरे वाला घोर उभार भारतमें होता है। इमी 'बम्बईकी मस्तगी' भी कहते है।
 कावु (सु० पु०) १ अकड़, पछा, पहुंच। २ अधिकार, दपतिदार।
 काम (सं० खी०) कामाय जितम्, अम्-दम्। १ अक, धीरे। २ घण्ट, मात्रिक बात। ३ शान्दा, आचिय। ४ कोकारबाक, इकरारिया कुम्भा। ५ अनुमति, मसाह। (पु०) आम्ने अघी अम्।

अनुभव करनेका मैदान जा देखा कि उसका गोरक्षक एक पेड़के नीचे पड़ा सोता है और एक सर्प फला फौला उसके मुखकी धूप रोक रहा है। ब्राह्मण सर्प देख कर डरा और द्रुतपद भागने लगा। उसी समय सर्प अनुप्य खाते देख सरक गया। ब्राह्मणने पाठ जा कर देखा कि उसके पदतलमें षट्पदल पद्म, त्रिशूल, लघ्वरेखा प्रभृति राजलक्षण है। यह देख ब्राह्मण उसे जगा कर घर ले गया और किसी प्रकारका नीचकर्म करनेकी निषेध किया। अथर्वेयको एक दिन ब्राह्मणने उससे बुनाकर प्रतिष्ठा करा ली—किसी दिन राजा होने पर वह इनको मन्त्री बनायेगा। कालक्रमसे कामरूपराज धर्मपालके तदानीन्तन वंशधर दुर्बल पड़ गये। फिर यही गोपालक इनको मार खंड मौलध्वज नामसे राजा हुआ और अपने राज्यका "ब्राह्मणराज्य" नाम रख प्रतिपालक ब्राह्मणको मन्त्री बनाया। दूसरे प्रवादके अनुसार किसी ब्राह्मणके घर एक दासी थी। उसीके गर्भसे एक पुत्रसन्तान हुआ। ब्राह्मणने उसे गोरक्षामें नियुक्त किया। कालक्रमसे उक्त रूपसे यही गोरक्षक मौलध्वज हुआ। फिर कोई कहता है कि गोरक्षक असुर (असभ्य जातीय) था। अन्ततः राजा मौलध्वजने मिथिलासे ब्राह्मण और कायस्थ ले जाकर कामरूपमें बसाये थे। फिर "कामतापुर" नामसे उन्होंने एक नगर भी बसाया। मौलध्वजने इस नगरमें राजधानी स्थापन कर "कामतेश्वर" उपाधि ग्रहणपूर्वक अपनेको "सच्छूद्र" नामसे प्रचारित किया था।

मौलध्वजके पीछे उनके पुत्र चक्रध्वज और चक्रध्वजके पीछे उनके पुत्र मौलाश्वर राजा हुये। मौलाश्वरने ही घोड़ाघाटके गढ़ और अनेक कीर्तिकी स्थापन किया। एकवार मौलाश्वरराजके मन्त्रिपुत्र राजरानी पर आसक्त हुये। राजाने उन्हें मार और

उनका मांस पका मन्त्रीको खिलाया था। मन्त्रीके खा चुकने पर राजाने उन्हें पुनसृष्ट देखाया और समस्त विवरण बताया। मन्त्री लघु पाप पर गुरुदण्ड देख पतित राजसंसर्ग परित्याग पूर्वक गद्गाके खानच्छलसे कामरूप छोड़ चल दिये। फिर उन्होंने गद्गास्राग कर प्रतिग्रोध लेनेकी गौड़ेश्वर दुर्बल शाह नवाबसे साहाय्य मांगा था। नवाबने राज्यकी अवस्था समझ बूझ कर बड़े सेन्य सघ कामरूपकी यात्रा की। घोर युद्ध होते भी कामतेश्वर पराजित न हुये। इसीसे नवाब नगर घेर बैठ गये। अथर्वेय १२ वर्ष पर्यन्त रहा। सुसलमानोंने इस दीर्घकालके मध्य नगरके बाहर्भागमें अनेक कीर्ति विनट कर अपने रहने योग्य श्रद्धालिका और पुष्करिणी तक बनवा लीं। अथर्वेयमें उन्होंने कौशल अवलम्बन किया था। राजाको यह सम्वाद भेजा गया—मुसलमान अथर्वेय छोड़ चले जायेंगे, किन्तु जानसे पहले मुसलमानोंकी रमणी रानीसे साक्षात् करना चाहती है। मौलाश्वर प्रस्ताव पर सगत हुये। किन्तु मुसलमानोंने दोलामें शिखोंको न भेज सफल योद्धा रवाना किये। उन्होंने भीतर पहुंच नगर अधिकार किया और राजाकी बांध लिया। किसीके कथनानुसार मन्त्री राजा गौड़की प्रेरित हुये और किसीके कथनानुसार वह मार डाले गये। फिर कोई कहता है कि राजा पाप बचा भागे थे। अन्ततः नगर मुसलमानोंने अधिकार किया। १४२० तककी कामतापुरमें मुसलमानोंकी जयपताका उड़ी थी। पात्र यही नगर भग्नरूप मात्रमें परिणत है, जिसने ४०० वर्ष पूर्व एककाल मुसलमानोंका हादग वार्षिक अथर्वेय बनायाम सघ किया। कालकी विचित्र मर्दिमा है।

"गुरुजनक्याचरित" नामक चासामके ग्रन्थमें लिखा है,—कामतापुरमें दुर्लभनारायण नामक एक राजा थे। उनके साथ गौड़ेश्वर धर्मनारायणका एक भीषण युद्ध हुआ। दुर्लभनारायणको ही कोई कामरूपके राजा धर्मपालका और कोई "जितारि"का श्रेणीय बताते हैं। अन्ततः युद्धमें अनेक लोग मारे गये। फिर दोनों राजाओंने रातकी क्षत्र देख दूसरे दिन सख्यता-स्थापन-पूर्वक सन्धि कर ली।

• मौलध्वजने अथर्वेय १२११/१६० महापदकी कामतापुर परत किया था। किन्तु किसी किसीके अनुसारमने कामतापुर नामक एक बड़े नगर परबंदी की रखा। मौलध्वज उसी नदरका विचार रखा और दुर्बल बना ६०० राजधानी बसाई रहीं। १२११/१६० तकमें भी उस नदरका नामोउंठ ख निरता है।

उसके पीछे गोड़ेश्वरने कामरूपकी भवस्था देख राजा दुर्लभनारायणके पास सात ब्राह्मण और सात कायस्थ भेजे थे। इन्हीं चौदह मनुष्योंमें प्रधान १२ बादसियोंकी राजा दुर्लभनारायणने "वारभंया" भाख्या दी। कामरूप देवी। वारभंया ही सम्भवतः गोड़ेश्वरके सेनापति थे। दुर्लभनारायणने उनके साहाय्यसे भोट-राजका विद्रोह दबाया था। कालक्रममें कामरूपके मध्य कोचजातिकी संख्या और प्रभाव बढ़नेसे राजा दुर्लभ-नारायण कुछ खोशचिन्त हो गये। फिर चादि भूयान्तिके मरनेसे वह अधिक उत्कण्ठित हुये। कुछ दिन पीछे कीचोंके मध्य हाजो नामक किसी सरदारकी प्रधानत्व मिला। वह क्रमशः अपनी अधिकार बढ़ाने लगा। और अन्तमें घोड़ाघाटकी छोड़ भासाम प्रदेशका राजा बन बैठा। इसके हीरा और जौरा दो कन्या भिन्न अन्य कोई सन्तान न थी। दोनों कन्यावाँके पवित्राहितावस्थामें प्रति अल्प दिनके आगे पीछे दो सन्तान हुये। जौराके सन्तानका नाम गिण और हीराके सन्तानका नाम विण था। हाजोरानकुमारो कन्यावाँके पुत्र होते देख महा विन्तान्वित हुये। उसी समय देवबाणी सुन पड़ी थी—यह दोनों पुत्र देवदेव महादेवके औरससे उत्पन्न हुये हैं। किसी किसीके कथनानुसार हरिया नामक किसी भेच जातीय सर-दारसे हीराका विवाह हुआ था, किन्तु उसके औरससे उत्पन्न नहीं। अन्तमें यह दोनों सन्तान विणसे पराक्रमी हुये। इन्होंने अपना नाम "विणसिंह" और "शिवसिंह" रखा तथा अपनेकी शिववंशीय एवं सन्तानकी लोमोकी "राजवंशीय" वंशा प्रचार किया। क्रमशः विणसिंह नाना देश (बुढ़लीके मतमें १४२०से ३० शकके मध्य) कामतापुर अधिकार कर राजा हुये और थोड़ेदिवसे वैदिक ब्राह्मण सा "कामरूपी ब्राह्मण" पाख्या दे स्मरान्धमें वसा दिये। इन्होंने वैदिकधर्म बढ़ने समय लुप्तप्राय कामाख्यापीठका उद्धार किया था।

कामतापुर कितने दिमका है ? बुढ़लीके मतसे राजा नीलध्वज कामतापुरके स्थापयिता नहीं, संस्कार-कर्ता और राजधानीकर्ता मात्र थे। अन्यके अनुसार राजा नीलध्वजने १२५०—६० शककी (११२८—३८

ई०) यहां राजधानी स्थापित की। उक्त अन्यकी ही देखते १४२० शकमें (१४८८ ई०) हुसेन शाहने कामतापुर अधिकार किया था। १२ वर्ष अथवा दोके पीछे नगर अधिकृत हुआ। सुतरां १४०८ शककी (१४८६ ई०) हुसेन शाहने प्रथम नगर पर आक्रमण किया। उस समय नीलध्वजके पौत्र नीलाश्वर कामतापुरके सिंहासन पर अधिष्ठित थे। सुतरां नीलध्वजके समयसे नीलाश्वरकी राज्यकाल-समाप्तिके मध्य प्रायः १५०। ६० वर्ष व्यतीत हुये। फिर नीलध्वजवंशीय राजा-वाँने प्रत्येक न्यूनाधिक ५५ वर्ष राज्य किया। पूर्व-भारतके इतिहास-लेखक मिटर मन्टगोमारी मार्टिन साहबने इस सम्बन्धमें जो कालसंख्या जितेंग की है, उसके साथ इसका मेल नहीं। उनके कथनानुसार १४८६ ई०की (१४१८ शक) हुसेन शाहने और १५२३ ई० की (१४४५ शक) अन्त्यवहित परवर्ती गोड़राज नगरत शाहने राज्यारोहण किया था। सुतरां हुसेन शाहका राजत्वकाल २० वर्ष रहता है। २० वर्षसे नगरारोहके १२ वर्ष (मार्टिन साहब इसे नहीं मानते। यह इस बातकी प्रतियोगिता सम्भन्न छोड़ देना चाहते हैं। फिर यह स्वयं भी अथरोहकालकी कोई संख्या नहीं बताते।) निकाल डालने पर १५ वर्ष बचते हैं। फिर विणसिंहके कामतापुरका अधि-कारकाल बुढ़लीके मतमें १४२० और १४३० शकके (१४८८ और १५०८ ई०) मध्य था। मिटर मार्टिनने विणसिंहके कामतापुर अधिकार की कोई बात नहीं लिखी। उक्त कालसंख्याके अनुसार हुसेन शाहने श्रीय राज्यारोहके कालसे (मार्टिनके मतमें १४८६ ई० या १४१८ शक) प्रायः ७० वर्ष पीछे (बुढ़लीके मतमें १४०८ शक या १४८० ई०) कामता-पुर पर आक्रमण किया था। किन्तु मार्टिनके मतसे उनके राजत्वकालका परिमाण केवल २० वर्ष था। फिर बुढ़लीके मतसे कामतापुरका आक्रमण-काल १४०८ शक या १४८६ ई० रहा। किन्तु मार्टिनके मतसे उक्त समय (१४८६+१५) १५११ ई० (१४४३ शक) या उससे दो-चार वर्ष पूर्व था। कारण बुढ़लीके मतसे विणसिंहके कामतापुरका

कामरूपि (सं० स्त्री०) अन्नविशेष, एक जघियार ।
विश्रामितने इसे रामचन्द्रकी मंत्रके अन्न विफल
करनेके लिये दिया था ।

कामरूप (हिं०) कामरूप देवी ।

कामरूप (सं० स्त्री०) काम मनीष रूपं यस्य, बहुव्री०
१ मनोवृत्त रूपविशिष्ट, खूबसूरत । २ इच्छानुसार
विविध रूपधारी, सर्वाङ्गी सुवाफिक तरह तरहकी
सूरत बनानेवाला ।

“कामरूपः कामरूपेः कामनीये विद्वज्जनाः ।” (महाभारत)

कामरूप—वर्तमान पाचाम प्रदेशका एक विस्तृत
जिला । यह पश्चा० २५° ४४' से २६° ५३' ७" और
दिशा० ८०° ४०' से ८२° १२' पू०के मध्य ब्रह्मपुत्रके
उभय पार पर अवस्थित है । इसके उत्तर भूटान,
पूर्व दरङ्ग एवं नोर्गांव जिला, दक्षिण खसिया पहाड़
और पश्चिम स्वासपाड़ा जिला है । कामरूपका बड़ा
शहर गोहाटी है ।

इस जिलेका प्राकृतिक दृश्य पति मनोहर है ।
भूमि बहुत उर्वरा है । ब्रह्मपुत्रके तीरका खान
नौका रहनेसे वर्षाकालमें डूब जाता है । यहां धान्य
और सर्पपत्तियां उत्पन्न होता है । शर, यंत्र प्रभृति
सम्भावतः अधिक निकलता है । ब्रह्मपुत्रके तीरसे
भाग उत्तर भूटान और दक्षिण खसिया पहाड़ तक
भूमि क्षामशः उच्च एवं समतल है । ब्रह्मपुत्रके दक्षिण
इस जिलेमें बहुतसे छोटे छोटे पहाड़ हैं । उनमें एक
एक दो हजारसे तीन हजार फीट तक ऊंचा है । उक्त
पर्वतोंके पार्श्व देगमे चायके बाग हैं ।

ब्रह्मपुत्र ही कामरूपकी प्रधान नदी है । बहुतसी
नदी और उपनदी ब्रह्मपुत्रमें गिरी हैं । उनमें उत्तर
दिकसे मानस, चावलखोया तथा वरनदी और दक्षिण
दिकसे कुलसी नदी प्रायी है ।

ब्रह्मपुत्रके मध्य कई सुद्र सुद्र द्वीप हैं, इसको
संख्या नहीं—ब्रह्मपुत्रमें रेत पड़नेसे जितने सुद्र द्वीप
बनते और विघटित हैं ।

कामरूपके पर्वतोंसे कई सुद्र नदी निकली हैं ।
बीसकाल प्रायः उनमें जल नहीं रहता । फिर भी
बहु भीतर भीतर बहा करती हैं ।

यहां माला या नहर नहीं । किन्तु मय्यती
रक्षाके लिये बीच बीच सामान्य बांध मौजूद हैं ।

इस भूभागमें प्रायः १३० वर्गमैल जंगल हैं । इस
जङ्गलसे भी गवरनमैण्टको यद्येष्ट भाग होता है । इसमें
कुलसी नदीके तीरका वनविभाग प्रधान है । जिस
जिस वनसे रूपया जाता, उसमें बड़हार, दिमिया,
पस्तान, मयरापुर और वरभ्ये नामक वन उल्लेखयोग्य
दिखाता है ।

वनमें सागू, शोशम, तुम, सूम, नाहर प्रभृति वृक्ष
यद्येष्ट उपजते हैं । उनमें खूब कीमती कड़ियां,
वरगे और तखूत बनते हैं । सासुङ्ग, काहारी, गारी,
मिकिर और खाभी प्रभृति पशुभ्य लोग वनसे चाख,
मोम, तन्तु, गोंद वगैरह एकठा कर अपनी जीविका
बलाते हैं । उत्तराञ्चलमें भूटान पहाड़के पास
गोचारणका बड़ा मैदान है । वहां नानाविध वृक्ष
उपजते हैं । *

जीवजन्तुमें हड्डी, गेंडा, नानाजातीय व्याघ्र,
मछिप, हरिण, वन्य शूकर, नाना प्रकार सर्प और
नानाप्रकार पक्षी देख पड़ते हैं । मय्य भी यहां नाना
प्रकार होते हैं । उनमें रेङ्ग, चित्तो और पमी नामक
मय्य ही अधिक है ।*

* यहांके विविधोत्तममें उक्त ४ बादिवा उल्लेख मिलता है । क्या,—

“इन्द्र दीपतन्त्रिभक्ति वदरासकर्मणि च ।

सन्निरे पदसर्वे च तथा तापकर्मणि च ।

वाहिनि कवचीर्षे च

मन्त्रार्थ तापार्थं मुक्तं तदा पूजकर्मणि च ।

यस्य कर्म विनाशक तस्य दासं प्रोचकम् ।

वास्तुकल्प च आशयक दानकर्मणः मन्त्रि विदे ।

विश्वानि विद्याध्यानाम् तथा च विभिन्नीकृतम् ।

इत्यादि दार्शनिक तथा कारकश्रमम् ।

कर्मणोः शीघ्रैश्च रामश्च योगबलना ।

योगधार्थं इन्द्रार्थं वदरासकर्मणि च ।

राजधार्थं कर्मणश्च ईश्वरकर्मणश्च ।

चतुर्षु कोटरैश्च च

आशु इन्द्रार्थं चतुर्षु कर्मणोः शीघ्रम् ।

* “यथाशु चतुर्षु चतुर्षु कामरूपिणाम् ।

अधिकारकाल विधेयता करनेसे समझ पड़ता है कि कुछ दिन कामतापुरमें सुसलमानोंका अधिकार रहा। कामतापुर नामका कारण क्या है? बुरुझीदे मतसे तोलध्वज इसके स्थापयिता नहीं। किन्तु उनके द्वारा संकलित होनेसे इसका प्राचीन नाम मौजूद रहा। क्योंकि बुरुझी पढ़नेसे १२२० गकमें भी इसका नाम मिलता है। किन्तु इसके मूल स्थापयिताका नाम बुरुझीमें नहीं मिलता है। इस नगरमें शिष्टीमारीके तीरवर्ती गोसाईंजीमारी नामक स्थानपर कामतेश्वरी देवी हैं। अनिकोंके मतानुसार इन्होंने देवीके नाम पर नगरका नामकरण हुआ है। कामतापुरके दुर्गमें भग्नावशेषके विवरणस्थल पर कामतेश्वरी देवीका उल्लेख किया गया है। दुर्गमें उत्तरांशके वृहत् स्तूप पर इनके प्राचीन मन्दिरका भग्नावशेष है। इन देवीके सम्बन्धमें एक प्रवाद है,—“प्रागुष्योतिष्यु राधिपति भगदत्तकी शिवके वरसे एक कवच मिला था। महा-भारतके युद्धमें भगदत्तके मरने पर यह कवच इक्ष्तिना-पुरमें ही रहा। ग्रेपको छल नीलध्वजके पुत्र चक्र ध्वजने एक दिन स्वप्नमें देखे और स्वप्ननिर्दिष्ट उपायसे कवच आहरण कर दुर्गके मध्य मन्दिर निर्माण पूर्वक स्थापन किया। उन्हें स्वप्नमें ही कवचकी पूजा-पद्धति और अधिष्ठात्री देवीकी मूर्ति अवगत हुई थी। उन्होंने उसीके अनुसार देवीकी प्रतिमा बनवा उसके मध्य कवच रख दिया। पड़से इसके निकट बलि होता था। अवशेषको सुसलमानोंके हाथ देवीकी प्रतिमा विनष्ट होने पर कवच एक पुष्करिणीमें छिप गया। उसके पीछे विश्वसिंह-वंशीय विद्यारके चतुर्थ राजा प्राय-नारायणके अधिकारकालमें भुना नामक एक धीवरने उस स्थान पर एक पुष्करिणीमें मख्य पकड़नेको आज्ञा दाला, जहाँ शिष्टीमारी गद्दीने नगरमें प्रवेश किया है। किन्तु वह जाल इतना भारी समझ पड़ा कि किसी प्रकार उठ न सका। अवशेषको धीवरने राजाके निकट मख्याद भेजा। राजा प्रायनारायण कवचका व्यापार जानने और उसके गिये उल्लेख भी थे। छल मख्याद सुन वह उत्सहित हुए। उन्होंने ब्राह्मणोंमें परामर्श कर हाथी पर बड़ा एक ब्राह्मण भेजा था।

ब्राह्मणको वहाँ जाने पर इधकी लगानेसे जालमें कवच मिला गया। उन्होंने इम्नास्थित एक शैलमें शैलीमें डाल उसे हाथीकी पीठ पर रखा और हाथीकी उसकी इच्छाके अनुसार चलने दिया। हाथी शिष्टी-मारीके तीरसे जाने लगा। अवशेषको जहाँ नदीने प्राचीन नगरकी सीमाको छोड़ा है, उसीके निकट गोसाईंजीमारी नामक स्थान पर वह खड़ा हो गया; फिर किसी प्रकार वहाँसे न हटा। ब्राह्मणोंने स्थिर किया कि देवी वहाँसे जाना चाहती न थीं। इधने राजाने वहाँ मन्दिर बनवा दिया। प्रथमतः विश्व-सिंहके शान्ति वैदिक ब्राह्मणोंमें एक पूजक नियुक्त हुआ था। किन्तु देवीने स्वप्नमें मैथिली ब्राह्मणोंके मध्य पूजक नियुक्त करनीकी आदेश दिया। कारण यही पहले देवीकी पूजा करते थे। इसी प्रकार एक मैथिली ब्राह्मण पूजक बनाये गये। कुछ दिन बीतने पर उन्होंने राजासे कहा—देवीके आदेशसे हमें प्रत्येक रात्रिकी मन्दिरमें चक्षु बांधकर जाना पड़ता है। हम वहाँ तबला बजाते हैं। देवी एक सुन्दरीके वेगमें नग्न होकर ताल ताल पर नाचती हैं। किन्तु देवीके निपटसे हमने उन्हें कभी इस प्रकार आँसु नहीं देखा। यह बात सुन राजाकी कौतूहल उत्पन्न हुआ। वह उसी रात्रिकी मन्दिर जा दरवाजेकी आँसुसे झाँकने लगे। देवी अस्तर्वाग्मिनी हैं। उन्होंने राजाको देखते ही नृत्य बन्द कर भाग दिया,—अतःपर यदि वर्तमान नारायणवंशीय कोई राजा किसी दिन या रातको मन्दिरकी सीमामें पायेगा, तो उसी समय वह मर जायेगा। हम दिनसे आज तक उनके वंशीय मन्दिरकी सीमाके मध्य प्रवेश नहीं करते। किन्तु सेवाका प्रबन्ध लगा दिया जाता है। यह मन्दिर आज भी बना है। मन्दिर इटकनिर्मित है। गठनप्रणाली सुसलमानोंी चानकी है। मन्दिरकी चारों ओर पुष्पोद्यान है। प्रतिमा नूतन है। निर्मित प्रतिमाके गर्भमें छल कवच रखा है। मन्दिरके मध्य एक प्रस्तरफलक पर वासुदेवकी मूर्ति उत्कीर्ण है। कथनानुसार यह प्रस्तरपण्ड प्राचीन नगरके भग्नावशेषसे मिलता है। प्रवादानुसार अर्थ जाने पर पतक

यात्रियोंको प्रतिमाके गर्भसे कवच निकाल कर देखा देते हैं। किन्तु यह कार्य बहुत क्षिप कर किया जाता है।

कामतापुरके ध्वंसावशेषमें आजकल कृष्णकाय भालुकका प्रावास बना है।

श्राईन-अकबारीमें भी कामतापुरका उल्लेख है। मार्टिन साहब मासदहसे इस्लामिजित एक प्राचीन पुस्तक लाये थे। उसमें बंगदेशका विवरण लिखा है। उसके लेखानुसार नगरत शाहके भव्यवहित पूर्ववर्ती हुसेन शाहने कामतापुरेश्वर हरपनारायणको मार उनका राज्य जीता। हरपनारायण सदा लक्ष्मोमान् राजके पौत्र श्री मालिकाङ्गराजके पुत्र थे।

कामताल (सं० पु०) कामं तालयति प्रतिष्ठापयति, काम-तल्-यिष्-अप्। कोकिल, कोयल।

कामतिथि (सं० स्त्री०) कामस्य पूजार्थं प्रशस्ता तिथिः, मध्यपदलो०। त्रयोदशी, तैरस। इसी तिथिकी कामदेवकी पूजा करते हैं।

कामद (सं० त्रि०) कामं अभिमायं ददाति, काम-दा-क। १ कामदाता, सुराद पूरी करनेवाला। (पु०) कामं दति स्वसौन्दर्येण चयलण्डयति कर्ष्वरैतद्व्यात् नाशयति वा, काम-व्यो-क। २ कार्तिकेय।

कामदगिरि (सं० पु०) चित्रकूट पर्वत। विवश्ट-द्वेषो।

कामदमणि (सं० पु०) चिन्तामणि।

कामदमिनी (सं० स्त्री०) कामस्य दमः उपशमः भस्त्रास्याः, काम-दम-इति। कामरिपुकी वधोभूत करनेवाली स्त्री, जो भीरत अपनी खाद्विग दवा चकी हो।

कामदर्शन (सं० त्रि०) कामं मनोन्नं दर्शनं यस्य, बहुव्री०। सुन्दर, खसहरत।

कामदहन (सं० पु०) शिव।

कामदा (सं० स्त्री०) कामं अभीष्टं ददाति, काम-दा-क-टाप्। १ कामधेनु। २ नागवदो जता, पान। ३ शरीरकी, हर। ४ एश देवी। महिरावण इन्हे पूजता था। ५ कन्दो विशेष। इसमें दश अक्षर रहते श्री क्रमानुसार रगण, यगण तथा जगण समर्पते हैं।

कामदात्री (सं० स्त्री०) १ कृत्रिम पुण्यादि, बेहूबूटा।

यह बादलेके तार या सलमेचितारसे बनती है। २ वन्दविशेष, एक कपड़ा। इसपर सलमेचितारके फूल निकाले जाते हैं।

कामदार (सं० पु०) १ राज्यप्रबन्धकारो, रियासतका इन्तिजाम करनेवाला। राजपूताने, और मालवेके राज्योंमें कामदार रहते हैं। (वि०) कलावस्त्रके बेल-बूटोवाला।

कामदीपकरस (सं० पु०) बाजीकरणशा एक शौचध, ताकतकी कोई दवा। खेतपुनर्नवाका मूल, मोचरस, पारा और गन्धक बराबर शास्त्रलोकी छानके रसमें मिलाकर गोला बांधनेसे यह प्रसृत होता है। इसका नाम चाण्डालिकयोग है। एक गोला दीपक दूधके साथ खानेसे बहुत बलवीर्य बढ़ता है। (एकरावर)

कामदुघ (सं० त्रि०) कामं दोग्धि, काम-दुह-ऊ ह्यस्य घः। अभीष्टसम्पादक, सुराद पूरी करनेवाला।

कामदुघा (सं० स्त्री०) कामं-दुह-टाप्। कामधेनु। कामधेनु शब्दसे शब्दो।

कामदुह (सं० त्रि०) काम-दुह-क्तिप्। अभीष्टपद, खाद्विग पूरी करनेवाला।

कामदुहा, कामदा शब्दो।

कामदूता (सं० स्त्री०) मनःशिक्षा।

कामदूति, कामो शब्दो।

कामदूतिका (सं० स्त्री०) कामस्य दूतिका इव उद्दो-पकत्वात्। नागदन्ती, हाथीसूंड।

कामदूती (सं० स्त्री०) कामस्य दूतीय, उपमित-समा०। १ मनःशिक्षा। २ पाटलवृक्ष, परवलकी विल। ३ कोकिला, कोयल।

कामदेव (सं० पु०) काम एव देवः। १ कल्प। इसका संस्कृत नामान्तर—मदन, मन्मथ, मार, मद्यन्, मीनकेतन, कल्पं, दंपक, अनह, पद्मर, धर, शम्भारि, मनसिज, कुसुमेषु, चन्द्रक, पुष्यधन्वा, रतिपति, मकरध्वज, धामभू, मद्रघ्न और विष्णुकेतु है। शास्त्रकार कामदेवके पचास भेद बताते हैं,— १ काम, २ कामद, ३ कामल, ४ कामिमान्, ५ कामग, ६ कामधर, ७ कामी, ८ कामुक, ९ कामधर्त,

१० राम, ११ रम, १२ रमण, १३ रतिगाय, १४ रति-
 म्रिय, १५ रातिनाय, १६ रमाकात्म, १७ रममाय,
 १८ गिगाचर, १९ नन्दक, २० नन्दन, २१ नन्दो,
 २२ नन्दयिता, २३ पञ्चषाय, २४ रतिचय, २५ पुष्प-
 धन्या, २६ मञ्जाधनु, २७ भ्रामक, २८ भ्रमण,
 २९ भ्रममाय, ३० भ्रम, ३१ भ्रान्त, ३२ भ्रामक,
 ३३ भद्र, ३४ भ्रान्तचार, ३५ भ्रमावष्ट, ३६ मोहन,
 ३७ मोहक, ३८ मोह, ३९ मोहवर्धन, ४० मदन,
 ४१ मन्मथ, ४२ मातङ्ग, ४३ म्हुनायक, ४४ गायन,
 ४५ गीतिज्ञ, ४६ नर्तक, ४७ खेलक, ४८ उष्मन्तो-
 ऋसक, ४९ विलास चौर ५० मोमवर्धन ।

निम्नलिखित कई स्थान कन्दर्पके माने गये हैं—

“गङ्गे तुङ्गे तपोरी च समी नामो रूपे इति ।
 कच कच्ये च षोडशे च नखे भवे सुगन्धिः ॥
 एकादशे शीर्षेऽथ कामकान्तं तिष्ठितमान् ।
 दशे तुङ्गां शिवायामि पञ्चमके विपर्ययः ॥
 पादाङ्गुले प्रतिवदि शितौषामाय गुरुवर्धे ।
 कन्दर्पेऽथ शीर्षायां चतुर्थां मन्ददन्तः ॥
 नाभिस्थाने च पञ्चमां वरुणां तुचमण्डी ।
 मयमां हृदये चैव षट्त्वां कचदन्तः ॥
 मयमां कचदन्ते च दशमां चोददन्तः ।
 एकादशां कचदन्ते द्वादशां नवमे तथा ॥
 नवमे च त्रयोदशां चतुर्दशां सप्तदशे ॥
 शीर्षमां शिवायाय शतम्बुध इति प्रथमां ॥”

(शरदौषधौ)

पदहय, गुल्फहय, सारुहय, भग, नाभि, कुचहय,
 हृदय, कच, कण्ठ, षोड, गण्ड, चक्षु, कर्ण, लसाट,
 मस्तक और केशमें तिथिके अनुसार कामदेवका अधि-
 स्तान होता है। शक्यपक्षमें पुत्रपक्षके दक्षिण चक्षु एवं
 श्लोकके वाम चक्षु और कल्पपक्षमें पुत्रपक्षके वाम चक्षु तथा
 श्लोकके दक्षिण चक्षुके क्रमानुसार उरु स्थान समूहका
 विपर्यय पड़ता है। प्रतिपद् तिथिके पदके चक्षु, छ,
 दितीयाको गुरुफ, द्वितीयाको लहदेग, चतुर्थीको भग,
 पञ्चमीको नाभि, षष्ठीको कुचमण्डन, सप्तमीको
 हृदय, षट्ठमीको कच, नवमीको कण्ठ, दशमीको
 षोड, एकादमीको गण्ड, द्वादशीको चक्षु, त्रयोदशीको
 कर्ण, चतुर्दशीको लसाट और पूर्वमासी मस्तकमें
 कामदेव रहता है।

कामदेवको ध्येयमूर्ति इस प्रकार कही है,—

“कामदेवतु कामेशः प्रपदपिभुवचः ।
 पादशयनकर्ये च महाकृपितनीचनः ॥
 रतिः प्रीतिलयादिभिर्भाष्येः सः प्रीतिलयाः ।
 चतसराय कामेशः पञ्चमी वरुणोदराः ॥
 चत्वारण चरामस्य चार्वां भाष्येः प्रीतिलयाः ।
 श्वेतुष मन्वरः कामः पञ्चमायस्यो महात् ॥”

(ईमादिपत्र विष्णुभेतर)

कामदेव गङ्ग, पद्म, घनुः चौर वायु धारण करते
 हैं। मटकके कारण चक्षु रीपत् कुक्षित हैं। श्वेतु मकर
 है। पञ्च षाय हैं। रति, प्रीति, शक्ति और उल्लङ्घना
 नाम्नी चार स्त्री हैं।

षट्ठमें कामकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहा है,—

“कामो कश्चि प्रथमो भूतः देवा पादः ।” (सह. १. १. १. १. १. १. १. १.)
 सर्वप्रथम मनके ऊपर कामका भावित्वात् जाता
 है। सुतरां उसीसे पहले उत्पत्तिका कारण
 निकला है।

कान्तिकापुराणमें भी लिखा है,—

ब्रह्मने दृष्ट प्रसूति मानस पुत्रोंकी सृष्टि की थी।
 उसी समय सन्ध्या नाम्नी एक रूपवती कन्याभी उत्पन्न
 हुई। उस 'मनोरम कन्याकी देख ब्रह्मके हृदयमें
 चिन्ता उठी—‘यह जगत्का कौन कार्य करेगी?’ इसीसे
 परम रमणीय मूर्ति कामदेवका जन्म हुआ। ब्रह्मने
 उन्हें जगत्के नरनारीसमूहकी सुख करनेके लिये
 आदेश दे पुष्यधनुः चौर पुष्यगर प्रदान किया। काम-
 देवने यह देखना चाहा कि उस पुष्यवाच द्वारा कार्य
 सिद्ध होगी या नहीं। इसीसे उन्होंने परीक्षाके लिये
 मनोपश्य ब्रह्मा, दक्षादि षट्पि चौर समूह पर वाचा-
 घात किया। उससे सकल कामधोहित हो गये।
 उसी समय महादेव वर्षा जा पड़्ये। उन्होंने कन्याके
 प्रति ब्रह्माका कामभाव देख उपहास किया था।
 ब्रह्मने उस उपहासमें चतुस्र सज्जित हो कामका विषय
 रोका। फिर उन्होंने कामकी पत्यन्त क्रुद्ध हो अभि-
 माय दिया था—नृ हरके कोपानुसन्धे जन जायेगा।
 कामदेवने चकारण इस प्रकार परिमत्त हो ब्रह्मसे
 अनुसहकी प्रार्थना की। उस समय ब्रह्मने भी काम-
 देवका वैसा उपराध न देव यह कह कर वाच्यही

पीठे एतद् युगमिं शक्रमेव चौर क्षत्रियुगमिं क्षत्रियाप-
 विनायक कामान्य वर्षत एव वहा । से मष्टेग्रि ।
 प्रत्येक वर्षमिं तुम्हारे पीठ, उपपीठ, तीन महादेव चौर
 तीन महादेव विराजित हैं । फिर प्रत्येक पीठमिं
 महादेव, चतुर्भुज विष्णु, गङ्गा चौर पार्वतीका पधि
 हान है । प्रत्येक पीठ चौर प्रत्येक क्षेत्रमिं एक एक
 पुण्यारण्य व्यवस्थित है ।

‘क्षत्रियानामिं यज्ञमे दूरयमीं स्थान मात्र पर तीर्थ-
 बुद्धि रहती है । किन्तु लक्षा भायनाको निहि पाती, वही
 भूमि तीर्थ मानी जाती है । प्रत्येक पीठमिं धर्म चौर
 पाचार प्रयुक्त प्रयुक्त है । देगभेदेके धनुषार कुलका
 पाचार भी प्रयुक्त होता है । इसमिथि प्रत्येक पीठका
 पूजन चौर मत्त ध्यतना है । हे पार्वति ! सर्वभूमिमिं
 तीर्थपीठ, दासिणाव्य देगमिं भद्रपीठ, पायाव्य देगमिं
 कामधर चौर पूर्व दिक्मिं पूर्वपीठ है ।

‘ईमान चौर पूर्वभागमिं कामरूप है । इसके वायु-
 कोचमिं कामधर, उत्तरमिं कौबयापुर, मष्टेन्द्रके किञ्चित्
 उत्तर ईमानदिक्मिं विहार चौर पूर्वमिं श्रीरुद्र है ।
 हे ऐश्वरि ! पतःपर उपपीठका विवरण श्रवण
 करो । चोत्रपीठ १८ योजन विस्तृत है । शकटाकार
 पीठ चतुष्कोण, चार दारयुक्त चौर वायुविषय चिह्नित
 है । मित्रभद्रक पीठमिं द्वां कोटि तीर्थ है । फिर
 उक्त स्थानमिं सोमेश्वरमिन्द्र व्यवस्थित है । विरज
 नामक क्षेत्र चौर एकाग्रक्षेत्रमिं कामधेनु तथा चक्रेश्वर
 शिवका व्यवस्थान है । भास्कर नामक महाक्षेत्रमिं
 मातङ्ग महादेव, पवित्र कुण्डलनी, दत्तकवन चौर
 सुमन्तवन है । इस क्षेत्रके पूर्व शिवपुण्ड, पश्चिम धेनु-
 कारण्य, उत्तर गयामिरः चौर दक्षिण चन्द्रभागा तथा
 चोत्रपीठ है । हे वरानम ! इसका देव्यं मत्त योजन
 चौर विस्तार तीम योजन है । लक्षा योगिमुद्राद्विची
 कामिगरी देवी, भूगोलपीठ, गोशोकेश्वर, धर्मपीठ,
 महापीठ, कामेश्वर शिव, पवित्रुक्ष एवं चंमप्रपतन क्षेत्र,
 ब्रह्मपुण्ड, शैतयट, कुरुक्षेत्र, माणस्यना नदी, पवित्र
 श्योधारण्य, धर्मरत्न, कषाशक नामक महाशरणा
 तथा दातामश्वरका व्यवस्थान है चौर जिसके पूर्व
 मण्डली नदी, पश्चिम विष्णुपुर, दक्षिण तपसद्विज एवं

उत्तर कटनीयन है ; शमीका मध्यवर्ती धनुषाकार
 पीठ वक्र तथा शरवर्ण है । यह पीठ त्रिकोणाकार है ।
 इसका देव्यं १०८ योजन चौर विस्तार ८८ योजन है ।
 रत्न पीठस्थानमिं भी महादेशिका क्षेत्र है । यह क्षेत्र-
 तप चौर माधवारण्य, महादेशारण्य एवं सर्गारण्य
 परस्परव्यव वर्तमान है । इस पीठके उत्तर ब्रह्मरत्न,
 दक्षिण ममुद्र, पूर्व उदयकूट चौर पश्चिम गौरवत है ।
 इसीके मध्यवर्ती पीठका नाम पुण्यपीठ है । काम-
 रूपके मध्यस्थानमिं पटकोण, तपस्युद्ध चौर त्रिमण्डलदुर्ग
 पवित्रतम एकवेदी है । फिर यहाँ दम्य पूर्वत चक्र-
 स्थित है । मध्यपीठ नामक महापीठस्थानमिं कामेश्वर
 महादेव चौर चम्पावती नदी है । कल्याणम नामक
 महाक्षेत्रमिं रुद्रदेवका पटपट है । एकाग्रक्षेत्रमिं गागाद-
 गदर है । मानसक्षेत्रमिं विष्णेश्वर, माटकारण्य चौर
 चम्पकारण्यका व्यवस्थान है । गौतमके दक्षिण भागमिं
 पिण्डिना चौर महावन है ।

प्राचीन कामरूप प्रदेशके समस्त उत्तरांशका नाम
 गौमार है । योगिनीमन्थमिं इस प्रकार चतुर्धाम
 निर्दिष्ट है,—

“पूर्व अर्धं नदी कारन्तु करतोडा च पश्चिम ।
 दक्षिण मन्दोदरान् उत्तरं विहारण्यकः ॥
 उत्तरे चैव कामरूपं कोमलानाथं चक्रवर्तु ।
 चतुर्भुजं विभीतः चोरीशं तथा वन ॥
 चक्रकोचक कोमलं वन विहरण्यदिनी ।
 त्रिकुण्ड पश्चिमि मा देवीः पानान् भवन्तयतीति च ॥
 त्रिभिः देविकाः उवाचैव त्रिभिः स्थानि नामवहा ।
 चोरीशो नरं देवीं श्रीमन्मालं तु चक्रवर्तु ॥
 चक्रवर्तु चक्रवर्तु चक्र विहरण्यदिनी ।
 त्रिभुजा च चक्रवर्तु कीर्तनीं मुकुण्डं च ॥
 दम्य कामेश्वरी देवी श्रीमन्मालं चोरीशो ।
 चक्रवर्तु चक्रवर्तु चक्र विहरण्यदिनी ॥
 चोरीशो चक्रवर्तु चक्रवर्तु चक्र विहरण्यदिनी ॥
 चक्रवर्तु चक्रवर्तु चक्र विहरण्यदिनी ॥”

‘गौमारकी चतुर्धाममिं पूर्व अर्धं नदी (वर्तमान
 अर्धनी), पश्चिम करतोडा, दक्षिण मन्दोदर चौर
 उत्तर विहारण्य है ।

‘पटकोण गौमार चौर विहारण्यदिनीके नाममिं

किया कि वह फिर शरार पायेगा और दचकी देह-
जात रति नाभी सुन्दरी रंमणीकी कामदेवकी पत्नी
बना दिया। (कालिकापुराण १५०)

इधर सन्ध्या यह सोच अत्यन्त दुःखित हुई कि
पिता तथा भ्राता उन्हें चाहते थे और अपना दृष्टित
देह छोड़नेकी तपस्या करने लगे। कठोर तपस्यासे
प्रीत ही भगवान्‌न उनसे धर मांगनेको कहा। सन्ध्याने
प्रथमतः अन्य कोई वर न मांग यही चाहा था कि
प्राणी उपजते ही सखाम न हों। भगवान्‌न उनकी
इस प्रार्थनाके अनुसार श्रेयस, कौमार, यौवन एवं
वार्धक्य चार भागमें वयःक्रम बांट लतीय भाग अर्थात्
यौवनको कामात्यक्तिके कालरूपमें निर्देश किया
और कौमारका श्रेय समय भो उसीके भीतर लगा
दिया। (कालिकापुराण १६५०) इसीसे प्राणियोंके उत्पन्न
होते ही कामभाव प्रकाशित नहीं होता।

देव तारकासुरके उत्पन्नसे अत्यन्त व्यतिव्यस्त
हुये थे। उसी समय इन्द्रके आदेशसे कामदेवको
शिवका ध्यान भङ्ग करने जाना और कुछ दिनों लिये
पहलूहीन होना पड़ा। शिवपुराणमें इसको आख्या-
यिका इस प्रकार वर्णित है,—“महादेवी सतीने
दचके यज्ञमें देह छोड़ा था। उसके पीछे महादेव
कठोर जितन्द्रियता अवलम्बनपूर्वक महायोगमें
निमग्न हुये। उसी समय तारकासुरने देवसमूहके
प्रति अत्यन्त उत्पीड़न आरम्भ किया। देव व्यतिव्यस्त
हो उसके वधसाधनका उपाय सोचने लगे। इन्द्रादि
देवगणने स्वयं कोई उपाय नियम न कर सकने पर
ब्रह्मासे परामर्श मांगा था। ब्रह्माने उनसे कहा,—
‘महादेवके वीर्य व्यतीत तारकासुरका निघन न होगा।
महेश्वरी सती जिमासयके रहमें पुनर्जन्म से महादेव-
की शय्युपाकी सर्वदा उनके निक्षेप रही हैं। इस
समय महादेवका योग तोड़ उनकी पार्वतीके प्रति
अभिसाया कर सकने पर महादेवके शौरससे महावीर
कुमार जन्मग्रहण कर तारकासुरका निघनसाधन
करेंगे। देवगणने उसी परामर्शके अनुसार कामदेवकी
महादेवका ध्यान छड़ाने पर नियुक्त किया था। आधा
पाते ही कामदेव रति एवं वसन्तके साथ अभियान

पूर्वक महादेवका योग तोड़ने पड़ने और पुण्यधनुः पर
पुण्यवाण चढ़ा महादेवको लक्ष्यकर फेकने लगे। महा-
देवने क्रन्दपूर्वापसे आहत होते ही क्रीधके साथ उन
पर अपनी दृष्टि डाली थी। फिर महादेवके लसाटसे
प्रदीप्त भग्निशिखाने निकल क्रन्दपूर्वकती विसकुल
जला दिया।” दूसरे जन्ममें कामदेव ही श्रीकृष्णके पुत्र
प्रद्युम्नरूपसे आविर्भूत हुये। हरिवंशमें कामदेवके
जन्मका विवरण इस प्रकार वर्णित है,—“श्रीकृष्णक
औरस और कृष्णियोंके गर्भसे प्रद्युम्नका जन्म हुआ था।
जन्मके पीछे सातवों रातको शम्भुरासुरने मायाके वल
उन्हें सुतिकाग्रहसे हरण कर स्त्रीय पत्नी मायावतीको
दे दिया। मायावतीके कोई शिशु न था। वह
प्रद्युम्नका पा कर अत्यन्त आश्चर्यित हुई। फिर
शिशुके अद्भुतप्रत्यक्ष आदि विविध रूपसे लक्ष्य कर माया-
वतीने समझा कि वही शिशु उनका प्रियतम स्वामी
क्रन्दर्प था। उनकी यह भी धारणा पाया कि इरके
कीपानरुसे जलनेके पीछे देवगणने वेसे ही उन्हें पुनर्वार
पतिको प्रातिका विषय बतला दिया था। सुतार वह
माखवत् शिशुका पालन न कर सकीं। उन्होंने पत्नीके
हाथ उसे छोपाया। फिर रसायन आदिके प्रयोगसे
सत्वर वर्धित कर मायावती उससे मिल गयीं।
प्रद्युम्न भी वैष्णव अक्षसे शम्भुरासुरको मार पत्नीके
साथ पिच्छरह सौट पाये। कइनेकी शम्भुरासुरकी
पत्नी होते मो वसुतः मायावती उसको पत्नी न थीं।
क्रन्दर्पको पत्नी रति पुनर्वार पतिप्रातिका कामनासे
देवगणके आदेशानुसार मायावतसे शम्भुरासुरकी
पत्नी बन कर रहती थीं।” (हरिवंश १११५०)

महाभारत और विष्णुपुराणमें कामदेव धर्मके पुत्र
माने गये हैं,—

“वशा कामं वशा दुर्पं नियमं धनिराचक्रत् ।

उन्नीपथ तथा दुष्टिर्लभं उदिरदुस्तम् ।

केवा सुतं विपाद्युं नर्दं विमलमेव च ।

शेषं बुद्धिं सया जन्मा विनर्दं यजुपाजन्तम् ।

अवसायं प्रकटं च वेमं प्राणिरवृषत् ।

सुष्टं विविधम् कोऽभिरिचं वे नर्दं वृषत् ॥”

(हरिवंश, १११५-१६०)

तेरह धर्मपत्नियोंके मध्य रहाने काम, वसानं दुर्पं,

महादेवी प्रवस्थान करती हैं। फिर उक्त स्थलमें देवीके प्रनुपहर्षमें पीठादि भी प्रवस्थित हैं। यतःपर नवपीठका विषय कथित है। दिक्करवासिनीमें प्रथम नामक प्रत्यक्ष पीठ और दिक्करके वायुकोणमें दुर्लभ नीलपीठ है। इसी स्थान पर योगिसुहृत्कृपियो कामेश्वरी देवीका प्रवस्थान है। आदित्यशंकरको प्रवस्थितिके स्थलका नाम महाक्षेत्र पारिजात और अपर पीठका नाम कौषेयपुर, अमरकण्ठक, आरख, आश्विन, गौतमाख्य और शिवनाथारख्य है।

सोमारके अंगविशेषका नाम सोमारपीठ है। यह आसामके उत्तर-पूर्व भागमें प्रवस्थित है। इसकी चतुःसीमा इस प्रकार निर्धारित है,—

“अरख्य शिवनाथश्च यत्र पीठान्धि दिशि ।
पूर्वे शौरिगिराश्च पश्चिमे स्वर्ध्वी धमा ॥
दक्षिणे ब्रह्मयूपश्च उत्तरे मानवः परः ।
एतन्मध्यगतं पीठं सुश्रुतिप्रदायकम् ॥
शोमारख्यं महावीरं बट्कोपत्रु विनाह्वयम् ।
सद्यद्योगप्रदस्थानं जयतावद्य पश्यन् ॥” (योगिनौतक, १११)

है प्रिये। इस शिवनाथके अरख्यको चतुःसीमाका निर्देश शक्य करी। इसके पूर्व शौरिगिरारख्य, पश्चिम स्वर्ध्वी, दक्षिण ब्रह्मयूप और उत्तर मानसरोवर है। इसीके मध्यस्थलमें सुश्रुतिप्रद पदकोय और विमलसोमार नामक महापीठ है। इस पीठका परिमाण सद्यस्त्र योगप्रद व्याम है। इसको पश्य जयतान्त्र भी कहते हैं।

पाषाणकी सुरञ्चोके मतानुसार भेरघोषे दिक्कराई नदी तक सोमारपीठ है।

श्रीपीठकी चतुःसीमा इस प्रकार है,—

“वाराहो प्रथमं पीठं त्रितीथं कोष्ठपीठकम् ।
कुमारचन्द्रं द्वयमं त्रितीथं मन्मनाह्वयम् ॥
दक्षीणं शशतीथं च मानवः प्रथमं वनम् ।
विहारचंद्रं त्रितीथं वनोदं विपुलं वनम् ॥
कोटिकोटिपुत्रं त्रिहं कोटिकोटिमयं च नम् ।
पञ्चतीर्थं मरुतं पूर्वं पश्चिमे धनदा नदी ॥
पशाव्या दक्षिणे चैव उत्तरे कृष्णखापनम् ।
एतन्मध्यगतं द्विषु कोपीरं काम मानसम् ॥”

(योगिनौतक, १११ पटव)

प्रथम पीठका नाम वाराही और द्वितीयका नाम

कोलपीठ है। प्रथम क्षेत्रको कुमार क्षेत्र, द्वितीयको मन्दन और तृतीयको गाम्दनी क्षेत्र कहते हैं। प्रथम वन मानव, द्वितीय विहारख्य और तृतीय विपुलवन कहलाता है। यह वन कोटिकोटि निरङ्गयुक्त और कोटिकोटि गणाधिष्ठित है। पूर्व सीमापर पञ्चतीर्थ, पश्चिम धनदा नदी, दक्षिण पद्मा और उत्तर कुण्डका वन है। इसीके मध्यस्थलमें श्रीपीठ प्रवस्थित है।

रत्नपीठका वर्तमान नाम कोषविहार है। सम्भवतः कामेश्वरी देवीके यहाँ रहनेसे रत्नपीठ नाम पड़ा है। पाषाणकी सुरञ्चोके मतमें स्वर्णकोपी नदीमें कृपिका नदी तक रत्नपीठ है। योगिनौतकमें लिखा है,—

“रत्नपीठे तु पद्मम्” कोषिथा चर उत्तरे ॥”

पाषाणकी सुरञ्चोके मतमें करतोया और स्वर्णकोपी नदीका मध्यवर्तीस्थान कामपीठ है। किन्तु योगिनौतकमें कामपीठका अपर नाम योगिनीवाठ लिखा है। योगिनीपीठका वर्तमान नाम कामाख्या है। कामगिरिके ऊपर प्रवस्थित होनेसे उक्त पीठका नाम कामपीठ पड़ा होगा। यथा,—

“योगिपीठं कामगिरी कामाख्या तत्र द्विधा ॥” (तन्त्रबुधानधि, पीठनामा) कामाख्या देवी ।

कामाख्यासे कुछ दूर योगिनौतकमें उदपीठ और ब्रह्मपीठ है। यथा,—

“ब्रह्ममुखाश्च पीठं उदपारारधिदेवतम् ।
तत्र पीठं विविधं पीठं गुणं नामं नक्षत्रम् ॥
मनोमन्त्रगुहायज्ञो द्वीगोमिखारुद्रतम् ।
नभश्चोपनिधिं स्वार्णं पीठं परमदुर्लभम् ॥
विह्वलानीं ब्रह्मना देवता मुपनेचरी ।
निवर्धनत वा ज्ञानी चारुतैर्विनामिकी ॥”

(योगिनौतक, १११)

सुरञ्चोमें स्वर्णपीठ नामक एक पीठका उल्लेख है। किन्तु कालिकापुराण और योगिनौतकमें स्वर्णपीठका नाम नहीं मिलता। कानिदामने अपने रघुवंशमें इसीको “ह्रिमपीठ” लिखा है,—

“ह्रिमः कामदवापावना बन्धनार्थकम् ।
सिद्धं निरुद्धं तैरेव्यानुपरोषि कैः ॥ ८३ ॥
आमरुद्धेन्द्ररुक्मं ह्रिमपीठं विदितम् ।
रघुपुत्रोत्तरेण कामानामार्थे पदयोः ॥ ८४ (रघुवंश ३६ वं ८३)

धृतिने नियम, सुष्टिने सन्तोष, पुष्टिने जोष, मेघाने श्रुत, क्रियाने दण्ड, जय एवं विजय, वपुने व्यवसाय, शान्तिने श्रम, सिद्धिने सुख और कौर्तिने यमः नामक पुत्र प्रसव क्रिया। यह सभी धर्मके पुत्र कहलाते हैं।

भागवतके मतसे कामदेव सद्भाके पुत्र हैं,—

“हरि नामो भुवोः सोमो सोमदाधोरव्यवदात्।”

सद्भाके हृदयसे काम, भ्रू हृदयसे क्रोध और पद्म-रोहसे सोमकी उत्पत्ति हुई है।

भागवतके ही अन्यत्रलमें फिर कामदेवकी सद्म-स्यका पुत्र कहा है,—

“सद्मकायस्य सद्मस्य कामः सद्मस्य जन्तः।” (भागवत ६।६।०)

सद्भाकी कन्या सद्मस्यका पुत्रसद्मस्य है। सद्मस्यसे ही कामकी उत्पत्ति हुई है।

यजुर्वेदमें भी कामका उल्लेख मिलता है। उसमें कामकी ही दाता और सृष्टीता माता है,—

“सोदात् स्यात् सदात् सतीरात् कामस्यादात्।

सतीराता कामः प्रतिगृहीता कामेतेतु ॥” (यजुः ४।१८)

यह प्रश्न होने पर कि—किसने दान किया और किसकी दान दिया है, उत्तर होगा कि कामने दान किया और कामकी ही दान दिया है। क्योंकि काम ही दाता और काम ही प्रतिगृहीता है। अतएव है काम। यह द्रव्य तुम्हारा ही है।

२ गोपकपुरीके एक राजा कदम्बरान्। इनकी महिषीका नाम केतसादेवी था। यह विख्यात वीर थे। इन्होंने बाहुके वन मलय, फोदप और सद्भाद्रि जाता था। गिञ्जालिखके अनुसार कामदेवने १२८१ ई० से १२०४ ई० तक राजत्व किया। १ भद्र-नारायणके पुत्र। महानारायण ६को। ४ परमेश्वर।

५ महादेव। ६ कोई कवि। ७ कोई राजा। इनकी राजधानी जयन्तीपुरमें थी। यह “राघवपाण्डवीय” प्रपेता कविराज नामक कविके प्रतिपालक थे।

८ प्रायश्चित्त-पद्धति नामक धर्मग्रन्थके प्रपेता।

९ “सत्सङ्गसुहावसो” प्रपेता रघुनाथके प्रति-पालक।

१० “वसुधैवकुटुम्बकम्” प्रपेता हेमाद्रिके पिता। इनके पिताका नाम वासुदेव और पितामहका नाम कामधनु था।

११ कोई प्राचीन पद्योतिर्विदुः।

१२ “कर्मप्रदीपिका” “पारस्करपद्धति” “पारस्कर-सृष्ट्यापरिगिटपद्धति” प्रश्रुति ग्रंथ बनानेवाले। इनके पिताका नाम गोपाल था।

कामदेव कविवल्लभ—चण्डीके एक प्राचीन टोकाकार।

कामदेवद्वत (सं० श्लो०) द्रुतविशेष, एक थी। अत्र-

गन्धा १०० पल, गोक्षुर ५० पल और शतावरी, भूमि-

कुषाण्ड, शालपर्णी, बला, गुलेचीन, अश्वत्थकी शृङ्गा,

पद्मबीज, पुनर्नवा, गांधारीफल तथा मापवीज प्रत्येक

द्वग द्वग पल २५६ शरावक लसनें पका कर

६४ शरावक लस शीघ्र रहनेसे उत्तार कर ज्ञान

लेना चाहिये। फिर पुष्पकेक्षुरस १६ शरावक,

दुग्ध १६ शरावक, और जीवक, अजपक, भेदा,

महामेदा, काकाशी, औरकाकोशी, जीवन्ती, मधुक,

वृद्धि, हृदि, द्राक्षा, पद्मकाष्ठ, कुष्ठ, पिप्पली

रक्तचन्दन, वासक, नागदेशर, शुक्रगिम्बोवीज,

नीलोत्पल, श्यामा तथा अनन्तमूलका कस्तूर

दो-दो तोला एवं शर्करा २ पल उक्त द्वायमें डाल

यह द्रव्य यथारुति पकाते और बनाते हैं। इसको

व्यवहार करनेसे रक्तपित्त, चत, कामसा, यातरस,

हृत्पीडक, पाण्डु, विषयता, स्वरभेद, मूत्रकृच्छ्र,

पक्षीदाह और पाय्शूश्ल आदि रोग निवारित

होते हैं (अरुच्य)

कामदेव मीमांसक (दीपित)—“प्रायश्चित्तपद्धतिके

प्रपेता।

कामदोषी (सं० त्रि०) कामं दोषि, काम-दुष्ट-चित्ति।

अभीष्टप्रद, सुराद पुरी करनेवाला।

कामधर (सं० पु०) काम इति संघां धरति धारयति

वा, काम-ध-पठ्। कामरूपदेशीय मन्त्रध्वज नामक

पर्वतस्थित सरोवरविशेष, एक तालाब। यह नरोवर

एक तीर्थ माना गया है। इसमें स्नान और लक्षण

करने पर अनुदाय पापसे छूट मुक्ति पाते और गिञ्जोब

जाते हैं। (कविचक्रवर्तय)

कामधरप (सं० श्लो०) अभिनायप्रति, सुरादका

‘धरु’।

कामधनु (सं० श्लो०) कामप्रतिपादिषा धेनुः

किर कामरूपपर चमत् भूपातोंके चाकमचये लः-
 प्रतिष्ठ इमिहमरुत मव हाथी से कर इन्द्रविजयो रूपके
 मरवापच द्येय और सुवर्षीठके पधिरदेवता मरुदप सनके
 परचकमम पर इन्द्ररूप पुष्पोपहार प्रदान किये ।

चागामकी मुराहीके मतमें रुषिका वा रुषयो
 नदीये भेरवी वा भरवी नदी तक खरंठीठ है ।

कालिकापुराणके मतानुसार कामदेवकी महादेवके
 प्रीधानमसे भयोभुम हीनेके पीठे इसी स्थानमें महा
 देवकी कपामे खरुप प्राप्त हुआ था । इसीमे इमका
 नाम कामरूप पड गया । (कालिकापुराण, २५०)
 पद्यमें महाप्रति यहाँ रच लक्ष्मीकी छवि की थी । इसीसे
 कामरूपका प्राचीन नाम प्राग्प्योतिथ है ।

“अनेक वि किली कदा कल्पिते” मरुते व ।

मरु मरुतीवियानेके द्येय मरुदुकी वना ।”

(कालिकापुराण, २०५०)

कामरूप पति प्राचीन लीठ है, यह पद्यमें ही
 लिख चुके हैं । कालिकापुराणमें कामरूपतीर्थका
 विषय इस प्रकार लिखा है,—

‘पूर्वकालकी महापीठ कामरूपकी नदीमें महा,
 जन पी और तयाकार देवता पूज अनेक भोग स्वर्ग
 ज्ञाने थे । किर किमीने निर्वाणमक्ति और किमीने
 शिवरथसे प्राप्त किया । पार्थीतेके भयसे यमराज इन
 भोगोंमें किमीको न तो स्वर्ग ज्ञानसे रोक सके और
 न पवन पर से जा सके । प्रथमतः उन्होंने कई बार
 यमदूतोंकी भिजा । किन्तु शिवके दूतोंने यमदूतोंको
 भोगोंके निकट जानने न दिया । सुतां यमराजका
 कर्तव्यकार्य एक प्रकार बन्द हो गया । उन्होंने किर
 विधाताके निकट पहुंच कर कहा,—हे विधाता !
 मनुष्य कामरूपमें महा, जन पी और देवता पाटि पूज
 मरुदके पीठे कामारुपादेवी वा शिवके पार्श्वपर हो जाते
 हैं । वहाँ पदमा अधिकार न रहनेसे हम उन्हें किमी
 प्रकार भाया नहीं पढ़ूँगा सकते । इसीमें हमारा काम
 बन्द हो गया है । यह हम मरुदमें किमी उचित
 उपायका अवसरगत बहुत आग्रह है । जितामह
 महा पद्य कथा सुन यमकी आज्ञा ही विष्णुके निकट
 पहुंचे और उन्हींके सल समझा कथा विष्णुके कहने

लगे । विष्णु भी सब बातें सुन यम और महा देवीकी
 भाप से शिवके निकट उपस्थित हुए । महादेवने
 मरुदपरपूर्वक अभ्यर्चना कर उनसे पानिका पारण
 पूजा था । विष्णुने कहा,—कामरूप समझ देवता,
 सकल तीर्थ और सकल देव हारा परित्रण है । यमकी
 पदेवा उत्कृष्ट स्थान दूसरा कार्य नहीं । सुतां यम
 पीठमें मरनेमें मवकी स्वर्ग वा पापका पार्श्वपर
 मिलता है । किर वहाँके भोगों पर यमराजका कोई
 अधिकार नहीं रहता । यमका भय छूट जानेसे उक्त
 पीठका नियम भी बिगड़ सकता है । इसलिये यहाँ
 ऐसा उपाय करना चाहिये, जिसमें यमका अधिकार
 पूर्वयत् पक्षुप रहे ।

‘महादेवने विष्णुवाक्य पालन करने पर प्रीकृत हो
 उन्हें विदा किया । किर महादेव अपने मवके
 माय कामरूपमें था पहुंचे । कामरूपमें पाने ही
 उन्हीं देवी उपायारा और पवने मवके कहा,—
 ‘मत्वर यहाँसे सब भोगोंको भगा दो ।’

‘शिवकी प्राप्ता पाने ही महादेवी उपायारा और
 यममसूहने मसुदाय भोगोंका भगाना पारण किया ।
 क्रमशः उन्होंने कामरूपके पन्थाय भोगोंको दूरीभूत
 कर वसिष्ठकी निकामनेकी चेष्टा की थी । रमसे
 यमिहने बहुत क्रुद्ध हो उपायाराको पशिमार्ग दिवा,—
 ‘हे वामे ! हम मुनि हैं । फिर भी तुम हमें भगानेके
 लिये चेष्टा कर रहे हो । हमलिये तुम मातृमणके
 माय पाम पार्श्व वेदविद्वद् भावसे पूजित होंगे ।
 तुम्हारे पमशयण मदमत विषये श्रेष्ठशी भक्ति प्रमत्त
 किरते है । हमलिये यह श्रेष्ठरूपमें हम कामरूपमें
 वास करेंगे । हम गम-दम-गुणविगिट, वेदपारण
 और तपोनिरत मुनि हैं । किर भी महादेवने विदे-
 यनाश्रय हो श्रेष्ठकी भक्ति हमें भगानेकी कहा है ।
 हमलिये यह भी श्रेष्ठकी भक्ति भय और पश्वि
 पारण कर हम कामरूपमें रहेंगे । किर यह कामरूप-
 पित पन्थायशिव श्रेष्ठपरिहृत होंगा । जगतके सर्व
 विष्णु यहाँ न पायेंगे, तब तक हममें यहाँ भाव
 दिगायेंगे । कामरूपके माहात्म्यकायक सकल मव
 विरस हो लयेंगे । किर भी का पश्वित विरसपार

मध्यपदकोपो कर्मधा० । गो विशेष, एक गाय । इस गायसे इच्छानुसार जो वस्तु मांगते, वही पाते हैं ।

अग्निपुराणमें कामधेनुका दान महापुण्य माना गया है । दानविधि पर भी उसमें इस प्रकार लिखा है,—‘कार्तिक मासकी शुक्ल पकादशीकी उपवास कर चार दिन तक ब्रह्मीके साथ नारायणकी पूजा करना पड़ती है । फिर पंचम दिन प्रातःकाल स्नानकर शुक्ल वस्त्र, शुक्ल माल्य और शुक्ल अनुलेपन धारण करते हैं । दानकी भूमिकी मृगके चर्म, तिन्नके प्रस्य और स्वर्ण पादसे सजा सब्बा कामधेनु बर्ष लायी जाती है । धेनुके शृङ्ग और चुर स्वर्णसे सदा समस्त गात्रमें शुक्ल बस्त्र चपेट देते हैं । अनन्तर यथाविधि मन्त्रादिसे गायकी पूजा नारायणके उद्देश्य दान होता है ।’

२ दानके लिये स्वर्णनिर्मित धेनुविशेष, देनेकी सोनेकी गाय ।

दान-सागरमें स्वर्णनिर्मित कामधेनुके दानका विधि लिखा है,—‘शक्तिके चतुस्रार तीन पलसे अधिक सङ्कल्पना तक स्वर्ण द्वारा सब्बा कामधेनु बना रदसे विभूयित करना चाहिये । सङ्कल्प पल सत्सप्त, पांच सौ पल मध्यम और टाई सौ पल सुवर्ण अधम विधि है । अत्यन्त अधमर्गके लिये तीन पलसे अधिक सुवर्णका भी विधान है । तुलापुरुष कथित समयके मध्य किसी दिन दानका काल निर्दिष्ट कर उसके पूर्व दिन गुरु, पुरोहित, यजमान और जापक चारो लोग हविष्य-भोजनादि कर निवेदन एवं सङ्कल्प कर रखते हैं । दूसरे दिन यजमानको गोविन्दादिकी आराधना, मधुपर्कका दान और ब्राह्मणोंकी अनुमतिकी ग्रहण करना चाहिये । उसी दिन गुरु, पुरोहित और जापकको उपवास करना पड़ता है । उसके परदिन अनिस्त्यापनादि कार्य समाप्तपूर्वक पुरोहित प्रधान वैदिके मध्यस्थसमने लिखित चक्र पर मृगचर्म एवं गृहप्रस्य यथाक्रम स्थापन कर उसके ऊपर कौप्य बस्त्रद्वारा पाच्छादित सब्बा धेनुको बद्धा करते हैं । धेनुके पाशदेगमें पाठ पूर्ण कुम्भ, चटादश प्रकार धान्य, ज्ञानाविध फल, रत्न, इक्षुदण्ड, कांडपात्र, पदवस्त्र, ताश्चनिर्मित दोहनपात्र, प्रदीप, चातपत्र तथा

पादुकादय और धेनुके सम्मुखभागमें मधुरादि ऋष रथ, हरिद्रा, पुष्य चादि विविध पूजा द्रव्य जोरक, धान्यक एवं शर्करा रखते हैं । फिर मङ्गलगीत वाद्य तथा स्तुतिपाठके साथ यज्ञकुण्डके समोपस्थ चार कुम्भाके जन द्वार यजमानको स्नान कराया जाता है । स्नानके पन्तमें यजमान शुक्ल बस्त्र परिधान कर शुक्ल माल्य एवं विविध फलद्वारधारणपूर्वक कुण्डहस्तसे पुष्पाञ्जलि से कामधेनुको प्रदक्षिणपूर्वक पूजा गुरुको प्रदान करता है । परिशेषमें गुरु पुरोहित और याचकको दक्षिणा तथा प्रतिधि ब्राह्मणोंको भयं दे दानका व्रत समाप्त करना पड़ता है ।’

३ स्वर्गधेनु सुरमिकी एक दोहिया धेनु । इसकी उत्पत्तिका विवरण इस प्रकार लिखा है,—‘शासनूहकी चादिप्रसूति सुरभि दसकी कन्या थीं । प्रजापति कश्यपके औरससे उनके गर्भमें रोहिणीका जन्म हुआ । रोहिणीने ही तपोनिधि शूरसेन नामक वसुके औरससे सर्वलक्षणवम्पया कामधेनुको प्रसव किया था । कामधेनुका वर्षं खेत है । चतुर्वेद चतुष्पदस्वरूप है । चारो क्षत्रमेंसे धर्म, धर्म, काम और मोक्ष निकला करते हैं । शिवके पाहन हयने कामधेनुके गर्भसे ही जन्म लिया था । यौवनमें कामधेनुकी लावण्यही अधिकतर बढ़ी । इसीसे जोर कामुक चेतान उनको देख कामातुर हुआ और स्वयं हयकी मूर्ति बना उनके साथ भोग किया । इस सङ्गमके फलसे एक विशाल काय हय निकला था । उसने अपनी तपस्याके बल महादेवका पाहनत्व लाभ किया ।’

(बालिषापुर २१ ९०)

४ कामधेनुकी कुलप्राता मन्दिनी वा शबसा नाभी वगिष्ठकी एक धेनु । कामधेनुके लिये ही वगिष्ठके साथ विश्वामित्रका भयंकर विवाद उठा था । उसी विवादके फलसे विश्वामित्रने क्षत्रिय जाति होने भी ब्रह्मर्षि बननेका लिये हृद्योग किया । रामायणमें लिखा है,—‘किसी समय राजा विश्वामित्रने बहु मेन्य एवं भ्रमात्य परिवार प्रभृतिके साथ वगिष्ठ ऋषिके निकट आश्रय ग्रहण किया था । वगिष्ठने कामधेनुके सकल उत्तमोत्तम प्रभुर द्रव्यादि से उनका स्नान उठाया ।

कामरूपतन्त्र समझेंगे, उन्हें यथाकाल सम्पूर्ण फल मिलेगा।

‘यह भूमियाप दे वशिष्ठके अन्तर्हित होते ही कामरूपके प्रसवगण स्नेह्य बन गये। उग्रतारा धामा दुर्यौ। महादेव स्नेह्यवत् फिरने लगे। कामरूप-माहात्म्य-प्रवाहक सकल तन्त्र विरहप्रचार दुर्यौ। सुतरां अणकालके मध्य कामरूप वेदमन्त्रहीन और चतुर्थपेशून्य बन गया। फिर कामरूपपीठमें विष्णुका प्रागमन हुआ। इससे कामरूपका प्राप छुट गया। फिर यह सम्पूर्ण फल देने लगा। किन्तु देवता और मनुष्य पूर्ववत् उसका माहात्म्य समझ न सके। उसी समय ब्रह्माने सब कुण्ड और नदी छिपानेके लिये शान्तसुषोभी अमोघाने गर्भसे एक जलमय पुत्र उत्पादन किया था। उस पुत्रने परशुरामः द्वारा अश्व्य भागमें अवतारित हो समुदाय कामरूपकी जलमें डुबा दिया। सुतरां अन्यान्य तीर्थ गुप्त हो गये।

‘जो अन्य किसी तीर्थका विषय न समझ कियत ब्रह्मपुत्रका ही अस्तित्व जानते और उसमें नहाते हैं, वह केवल मात्र ब्रह्मपुत्रके स्नानसे ही सकल फल पाते हैं। फिर जो ब्रह्मपुत्रमें समस्त तीर्थोंका गुप्त भाव समझ कर नहाते हैं वे लोग समस्त तीर्थोंके स्नानका फललाभ करते हैं।’ (बालिवापुराण पृ ४०)

उक्त विवरणके पाठसे समझते हैं कि किसी समय कामरूपमें बहुत तीर्थ थे। वास्तविक आज भी कामरूपके नानास्थानोंमें पर्यटन करनेसे देखते हैं कि कामरूपके अनेक तीर्थ और अनेक पवित्र स्थान ब्रह्मपुत्रके गर्भमें दबे हैं। ब्रह्मपुत्र कामरूपके प्राचीन गोरवके साथ ही हिन्दुओंकी सकल प्राचीन कीर्तियां भी खा गया है। योगिनीतन्त्रमें लिखा है,—

‘क्षोभे च कामरूपं विदितं न ननु समम्।’

अन्त विरहा देवो कामरूपे पश्य सदा॥

कामरूप देवीदेव है। ऐसा स्थान दूसरा देख

नहीं पड़ता। अन्यत्र देवीका दर्शनसाम सुकठिन है। किन्तु कामरूपमें घर घर देवी विराजती है।

योगिनीतन्त्रके पाठसे भी कामरूप तीर्थका ऐसा ही परिचय मिलता है,—‘महापोठ कामरूप पति युद्ध तीर्थ है। यहाँ महादेव पार्वतीके साथ नियत अवस्थान करते हैं। इस पीठमें शत नदी और कोटि-सिद्ध अवस्थित हैं। वायुकूटकी अन्तिम सीमा पर धनुर्छेद परिमित वायुदण्डो चन्द्रका अवस्थान है। वायुगिरिकी पूर्व ओर चन्द्रकूट शैल, मध्यभागमें गोदन्त और चन्द्रशैलके मध्यस्थलमें इन्द्रशैलसे कुछ दक्षिण एवं चन्द्रशैलके कुछ उत्तर चन्द्रकुण्ड नामक सरोवर है। इस सरोवरके दक्षिणदिक्भागमें चार धनु परिमित मानसतीर्थ है। मानसकी दक्षिणदिक् २८ धनु परिमित पयुततीर्थ है। उसके दक्षिण भागमें दय धनु परिमित षष्ठमोचन नामक सरोवर है। अश्वक्रान्त पर्वतके दक्षिण और अग्निशोणाममें अश्वक्रान्ता नामक सरोवर भरा है। चन्द्रशैलसे गिरनेवाले निर्भरकी जाइवो और इन्द्रशैलसे निकलनेवाले निर्भरकी सरस्वती कहते हैं। वर्षाकाल अश्वक्रान्ता तीर्थमें दानो निर्भर मिन जाते हैं। इस लिये यह प्रयागतीर्थके तुल्य माना जाता है।

‘इन तीर्थोंमें स्नान, दान और पूजादि कार्य करनेमें विविध पुण्यफल मिलता है। विशेषतः प्रयागतीर्थके तुल्य माना जानेसे अश्वक्रान्ता तीर्थमें मच्छक सुण्डगादि कार्यका भी विधान है। इससे इन्द्रलोकमें यावतोय सुखसम्भोग और परलोकमें स्वर्गलाभ होता है।’

(शक्तिमाल २। १५ पृष्ठ)

‘अस्ततीर्थकी किञ्चित् पश्चिम पार पाठ धनु-परिमित स्थानमें सिद्धकुण्ड है। इस तीर्थके पश्चिम मरुके निकट ६४ धनु-परिमित स्थानमें ब्रह्मसरः तीर्थ है। इन्द्रकूटके उत्तर ८० धनु-परिमित रामसेन है। यहाँ भी एक कुण्ड विद्यमान है। रामतीर्थके ८ धनु दूरवर्ती पूर्वदिक्भागमें सीतातीर्थ है। सीतातीर्थके दक्षिण १० धनुपरिमित विजयतीर्थ है। यहाँ विजय नामक शिवलिङ्ग अवस्थित है। इसीके निकट योगतीर्थ है। यहाँ योगीय नामक शिवलिङ्ग अवि-

* वर्तमान आशानके उत्तरपूर्व प्राणकविधामे प्रयाग है कि परंपराने अन्वये इतारथे उक्त स्थानमें ब्रह्मपुत्रका अवतरण विना वा। अर्थात् उक्त स्थानका नाम “अविब्रह्मरः” है। यह एक पवित्र तीर्थ है। अविब्रह्म अन्वये ब्रह्मपुत्रके निकट अविब्रह्मरः अवस्थित है।

विश्वामित्र राजा होते भी उक्त समझ द्रव्य देप समस्तत द्युते। उन्होंने देखा कि कामधेनुसे वैसा अनाधारप रक्षण भोग किया जा सकता था। इसीसे विश्वामित्रने शत महत्त्व दुग्धवती गायोंके बदले वगिष्ठसे कामधेनु मांगी। किन्तु वगिष्ठने धेनु देना स्वीकार न किया। उस समय विश्वामित्रने हरप्य करनेके लिये सैन्यको पादिक दिया था। सैन्यने कामधेनुको शोन से जानका उद्योग किया। नन्दिनी यह शोध कर पत्यन्त दुःखित द्युयी कि वगिष्ठने उनको छोड़ दिया था। फिर वह अपने बन्धु वधु सैन्यको मार वगिष्ठके निकट था पहुंची। उन्होंने वगिष्ठसे पूछा था,—‘आपने क्या हमें परित्याग किया है? नतुवा विश्वामित्रके सिपाही हमें क्यों क्रिये आते हैं?’ वगिष्ठने उत्तर दिया, ‘मर्छा हमने तुम्हें परित्याग नहीं किया है। तथा फिर हम कभी तुम्हें परित्याग न करेगे। अतएव तुम शत शत महावीर सैन्य उद्वि कर विश्वामित्रको पराजित करोगे। वगिष्ठकी आज्ञा पालन ही नन्दिनीने योनिदेशसे यवन, पुरीपसे शक और रोमशूपसे ज्ञेच्छ, इराती तथा किरात सैन्य निकाले थे। उन्होंने विश्वामित्रको समुदाय सैन्यका विनाश कर पराजित किया। विश्वामित्रके पुत्र इससे बहुत क्रुद्ध द्युते और (एकवारगी ही भी पुत्र) वगिष्ठको छपर भ्रपट पड़े। वगिष्ठने क्रोधके साथ एक ही हृद्धारसे उनको जला डाला। इस अपमानके धीके विश्वामित्रने राजगणिकी अपेक्षा तपस्याकी शक्तिको बढ़ा माना था। वह राजकार्य छोड़ कठोर तपस्यामें लग गये। सभी तपस्याके फलसे उन्होंने ब्रह्मर्षिकी भाति ‘समतामाली ब्रह्मर्षि नाम पाया था।’

(राजपर्व, अरण्य, ११५०)

कामधेनुतन्त्र (सं० स्त्री०) कामधेनुविरचिता सर्वाभेद्युतं तन्त्रम् । गिष्योक्त एक तन्त्र ।

कामधेन्यु—रामात या मिमात सम्प्रदायसुक्त सैन्यव । इन्में अधिकांश भिक्षुक रहते हैं। कामधेनु नामक भिक्षापत्र व्यवहार करनेसे ही कामधेन्यु नाम पड़ा। कामधेनुतन्त्र बेगीकी भाति होता है। उसकी दोनो ओर दो श्यते लभे रहते हैं। एक ओरका तस्याता

गायके आकारका होता है। दूसरी ओरके तन्त्रमें इनमानकी मूर्ति रहती है। यह लोग सधरे ओर गाम दोनो समय उक्त तन्त्रकी पूजा तथा चारती करते हैं। कामधेन्यु कामधेनुतन्त्र कन्ने पर रथ भिचा मांगते निकलते हैं। यह किसीके द्वार पर पहुंचे नहीं रहते, ‘धनुषधारी राम धनुषधारी राम, कहते राह राह घूमा करते हैं। श्यही यह नाम सुन इच्छागुहार कामधेनुपात्रमें भिचा डाल देते हैं।

कामध्वंशे (सं० पु०) कामं कन्द्यं ध्वंसयति, कामध्वन्सु-गिष्-पिनि। कामको ध्वंस करनेशसे शिष। कामध्वज (सं० पु०) मत्स्य, महाकी। कामदेवकी पताका महाकी है।

कामग (सं० त्रि०) कामयतीति, काम-गिष्-युष् । १ कामुक, चाहनेवाला। (स्त्री०) भावे युष् । २ अभिलाष, आदिश।

कामना (सं० स्त्री०) कामगटाप् । १ इच्छा, आदिश । २ वन्द्याक, वांदा।

कामनागक (सं० पु०) कामं कन्द्यं नामयति, काम-गम्-पिष्-युष् । १ महादेव । (त्रि०) २ कामशक्तिनागक ।

कामनीडा (सं० स्त्री) कन्दारिका, सुरक ।

कामनीयक (सं० स्त्री०) कामनीयस्य भावः, कामनीय-युष् । रमणीयता, प्रवृत्तता।

कामन्दिक (सं० पु०) कामन्दकस्य अपत्यं पुमान्, कामन्दक-इष् । एक नीतिशास्त्र-ग्रन्थेता। इनके वगये अन्यका नाम कामन्दकीय नीतिशास्त्र है। वह १८ अध्यायमें विभक्त और महाभारतकी भाति प्राचीनकाल-रचित है। बहुत पहले उक्त नीतिशास्त्र बालि प्रभृति दीपमें नीति बना था। वहां महाभारतकी भाति वह कविभाषामें अनुवादित भी हुआ। उसके यद्यपि पद्यनेका समय निर्धारित नहीं। जोई अनुमान करता, कि महाभारतके ही समयकाल वह भी पद्यचा होगा। महाभारतके। उसकी चार टीका मिलती है। एक टीकाका नाम उवाध्याय-निरपेक्ष है। बाकी तानमें एक जयराम, दूसरी आकाराम और तीसरी बरदाराजकी बनायी है।

द्वितीय है। उसमें निकट २२ धनु परिमित मुक्ति-
 तीर्थ है। मुक्तितीर्थमें बहुत दूर हणकुण्ड है।
 इन्द्रमेखके दक्षिण १२ धनु परिमित सुयंतीर्थ
 है। यहाँ सुयंदेव पद्मस्य मुक्तिमें पवस्त्रान
 करती है। रामदेवके मध्य दो दुर्गक्षुप और एक
 ब्रह्मगुप देवते है। इन्द्रकूटमें मन्विलाय नामक
 महादेव पवस्त्रित है। सोमतीर्थकी शिव सीमा पर
 ५ धनुपरिमित नामतीर्थ है। चन्द्रमेखके उत्तर ६४
 धनुपरिमित एक पर्वत पवस्त्रित है, उसमें जन्मायका
 नाम गयाकुण्ड और गौरकी भूमिका नाम देव है।
 पूर्वमें भोजिच्य और उत्तरमें ब्रह्मयोगि पर्वत विद्युत
 २२ धनुपरिमित स्यानको गयातीर्थ वा गयातीर्थ
 कहते है।

‘इम समुदाय तीर्थोंमें छान, दाम, पूजा एवं
 प्रदक्षिण और गयातीर्थमें आहादि कार्य करनेमें पचय
 पुण्य मिलता है।’ (दक्षिणमेख, १। ४८८ पर ५)

‘सोमशैलकी ईशानदिक् मन्विशं ६। मन्वि-
 शैलके किञ्चित् पूर्वाय ईशानकोपमें ० धनु दूर वारा-
 चयी नामक कुण्ड है। इस कुण्डका देव्य २२ धनु
 है। इसको दक्षिण दिक् ५ धनु दूर २२ धनुपरिमित
 मन्विकदिका नामक कुण्ड है। मन्विशैलकी ईशान
 कोपमें महाला नदी है। फिर दक्षिण दिक् कामिपरी,
 पविम इययोग, उत्तर कमलनिद्रा और पूर्व विरजा
 है। इस चतुःसीमाके मध्यस्थानमें तीज कोम परिमित
 स्यानका नाम मन्विषेठ है। मानशैलके वायुकोपमें
 महावर्षत है। उसमें पूर्व-दक्षिण भागमें नर-
 नारायण शरीवर है। इसके वायुकोपमें ८ धनुदूर
 येनादक तीर्थ और १०० धनुपरिमित दोष प्रमासतीर्थ
 है। प्रमासतीर्थके वायुकोपमें विष्णुमः है। नाटका-
 चक्रके पूर्व भागमें मातङ्ग नामक पर्वत और पत्नि
 कोपमें प्रमासक है। इस तीर्थकी शिवका पत्न्यां
 कहते है। इवाचलके पूर्व और ईशानदिक् भागमें
 प्रमासक है। इसकी उत्तर और उत्तरी नामक तीर्थ
 है। उत्तरी तीर्थके पूर्व चार शृङ्गेरी है। उत्तरे ५
 धनु दूर उत्तरी तीर्थके नामात्वा शरीवर है। मदन
 तीर्थकी दक्षिण चार महाशरीवर तीर्थ है। महातीर्थों

८ धनु दूर उत्तरी दक्षिण दिक्में पागस्वतीर्थ है। इस
 पागस्वतीर्थके किञ्चित् पश्चिमागमें पत्नि कोप पर २२
 धनुपरिमित स्यानमें वाचय नामक तीर्थ है। इसको
 पश्चिम चोर पत्निदूरपती ० धनुपरिमित कर्णाम्
 रथातीर्थ है। उत्तरी १० धनुपरिमित दूरपती
 पश्चिम दिक्में रुचिपती कुण्ड है। इस कुण्डके वायु-
 कोपमें ८ धनुपरिमित स्यान पर विद्यतीर्थ है। उत्त
 भयगलके पत्निकोपमें ८ धनु दूर विद्यासमीपन
 तीर्थ है। यहाँ कर्पदीगर नामक शिवनिद्रा पवस्त्रित
 है। भयकूटके वायुकोपमें कपालसमीपन तीर्थ है।
 यहाँ कपालेश्वर नामक शिवनिद्रा पवस्त्रित है।
 कपालसमीपनसे ५ धनु दूरपती उत्तरकी कलि-
 तीर्थ है। इस स्यानमें उपमध्यज नामक शिवनिद्रा
 पवस्त्रित है। इस शिवनिद्राके पश्चिमभागमें २२ धनु
 परिमित मातङ्गदेव है। मन्दर पर्वतकी ईशान
 चोर १६ धनु-परिमित चक्रतीर्थ है। चक्रतीर्थके
 पश्चिम मन्दर पर्वत है। इसका परिमाण ६२ धनु
 है। यहाँ बुधरूपी जगदीशदेव पवस्त्रित है। मन्दर
 शैलके उत्तरभागमें ईशान कोपपर विरजातीर्थ है।
 गजशैलके दक्षिण-पश्चिम भागमें शोभनिद्रा है।
 चक्रतीर्थके पत्निकोपमें २ धनु परिमित स्यान पर
 शोभनिद्रातीर्थ है। इसीके निचट महाशरी-श्यावित
 यक्षेश्वर नामक शिवनिद्रा पवस्त्रित है।

‘इन तीर्थोंमें छान, दाम, पूजा, प्रदक्षिण और
 स्यान विगेषके समय आहादि कार्यमें विनिय पुण्य प्राप्त
 होता है।’ (दक्षिणमेख नाम पर ५)

‘नोदित्यने दक्षिण दिक् जामे वायुकाय पर कोम-
 पर्वत है। कोमपर्वतकी पश्चिम चोर वायुकाय है।
 उत्तरे वायुकोपमें ब्रह्मकुण्ड नामक १२ धनु विद्युत
 शरीवर है। इस शरीवरमें पत्निदूर दक्षिण दिक्
 धर्मनार कुल पर्वत विद्युत विष्णुकुण्ड है। विष्णु-
 कुण्डके दक्षिणागमें शेरतकोपवा ११ धनुपरिमित
 शिवकुण्ड है। इसीके निचटपती स्यानमें वायुतीर्थ
 है। वायुशैलके ५ धनुदूरपती शेरतकोपमें
 पद्मनिद्रा पवस्त्रित शरीवर है। फिर इसी कोपमें ३
 धनु दूरपती पूर्वदिक्में पद्मनिद्रा पवस्त्रित शिव है। यह

कामन्दकीय (सं० स्त्री०) कामन्दकेरिदम्, कामन्दकि-
क । इन्द्राः । वा ३ । २ । ११० । कामन्दकि-प्रणीत एक
नैतिशास्त्र ।

कामन्वमी (सं० पु०) कामं यथेष्टं धमति, काम-धा-
पिनि बाह्वलकात् धमादेशः निपातनात् सुमि साधुः ।
वास्यकार, कसेरा ।

कामपति (सं० स्त्री०) कामः पतियस्याः, विकल्प-
त्वात् न ङीप् । १ रति, कामदेवकी स्त्री (पु०)
२ चन्द्रवशीय पृथुकुसजात एक राजपुत्र । इन्दोने पुत्रेष्टि
याग किया था (उद्याद्विषय १ । २० । ११)

कामपत्नी (सं० स्त्री०) कामस्य पत्नी, इ-तत् । रति,
कामदेवकी स्त्री ।

कामपत्निका, कामपत्नी देवी ।

कामपर्णी (सं० स्त्री०) चाद्रुस्यस्य, एक पेड़ ।

कामपाल (सं० पु०) कामान् पालयति, काम-पाल-
षण् । १ बलदेव । २ विष्णु ।

“कामः कामपालश्च शतौ भालः इत्यामः” (विष्णुसहस्रनाम)
३ महादेव । ४ चन्द्रवशीय इन्द्रमण्डन राजाके पुत्र ।
इसके पुत्रका नाम मलिल था । (उद्याद्विषय १ । २० । ११)
५ एकवीरा देवीभक्त गौतम कुलज जनपालवंशके एक
राजा । (उद्याद्विषय १ । ११ । १०) ६ कुमारिकामल
चम्बलक कुलज दसरराजके पुत्र । इनके पुत्रका नाम
सुदर्शन था । (उद्याद्विषय १ । ११ । १०) ७ महाराजपुत्र, एक
बदिया भाम ।

कामपीठ (सं० पु०—स्त्री०) कृपादिके उपरिभागका
संस्कार, कुपेके ऊपर दंडी इयो जगड़ ।

कामपीडित (सं० स्त्रि०) कामेन कन्दर्पवीडुया पीडितः,
इ-तत् । सङ्गमेच्छुक, यज्ञवतको छाद्विग रछनेवाला ।

कामपूर (सं० स्त्रि०) कामं अभीष्टं पूरयति, काम-
पूर-पिष्-षण् । १ अभीष्टप्रद, सुराद पूरी करनेवाला ।
२ परमेश्वर ।

कामप (सं० स्त्रि०) कामं पिपतिं काम-पृ-क ।
अभीष्टप्रद, छाद्विग पूरी करनेवाला ।

कामपद (सं० पु०) कामं कामजरतिभेदं प्रददाति,
काम-प्र-दा-क । १ रतिवन्धवियेव, एक ढोसा ।

“शे पदो क्लमश्च नभो विष्णुनामिह नभे तथा ।

कामपेत्त वावुः शीला वनः कामपदो हि कः ।” (अश्वोपनिषद्)

कामानां सर्वपुरुषार्याणां प्रदः, इ-तत् । २ विष्णु ।
(त्रि०) ३ अभीष्टप्रद, सुराद पूरी करनेवाला ।

कामप्रवेदन (सं० स्त्री०) कामस्य अभिलाषस्य प्रवेदनं
भाविव्हरणम्, इ-तत् । अभिलाष प्रकार्य, छाद्विगका
इज्जहार ।

कामप्रय (सं० पु०) कामं यथेष्टं प्रयः । यथेष्ट प्रय,
मनमाना चवात् ।

कामप्रस्य (सं० पु०—स्त्री०) कामस्य कामगिरेः प्रस्यः,
(कामगोत्राय वा इत्येव) प्रादियर्थ उदात्तः, इ-तत् ।
१ कामगिरिका सातुदेय, काम पहाड़की जंषी
जमवार जमीन् । २ एक नगर ।

कामप्रस्थीय (सं० स्त्रि०) कामप्रस्थे भवः, कामप्रस्थ-श्च ।
कामगिरिके सातुदेशमें उत्पन्न, काम पहाड़की जंषी
जमवार जमीन्का पेदा ।

कामप्रि (सं० स्त्रि०) कामं पिपतिं, काम-पृ-कि ।
अभीष्टपूरक, छाद्विग पूरी करनेवाला ।

कामप्रियकरी (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा, अश्वगंध ।
कामफल (सं० पु०) कामं यथेष्टं फलमस्य, बहुव्री० ।
महाराजास्य, एक बदिया भाम ।

कामवधुय—वादयाश्च पालमगोरके कनिष्ठ पुत्र । यह
ग्राहजादे बड़े अभिमानी भोर निर्दय रहै । इनके
पिताने इन्हें दक्षिणका राज्य सौंपा था । किन्तु इन्होंने
व्येष्ट भ्राता बहादुर शाहका संरक्षण स्वीकार न किया
भोर अपने मामका सिद्धा चला दिया । इसीसे वह
एक बड़ी सेना से इनसे लड़ने चले । ईशानवादके
निकट युद्ध हुआ था । युद्धमें यह हार गये । घोर-
दुःखसे आहत होने पर १००८ ई० के फरवरी या मार्च
मास इनका प्राण छूटा था । इनकी माताका नाम
उदयपुरी-महल रक्षा । १६६० ई० की २५वीं फर-
वरीकी कामवधुय ग्राहजादेने जन्म लिया था ।

कामम् (सं० अश्व०) काम-पिष्-पसु । १ यथेष्ट,
मर्जीके सुपाकिक । २ अशुमतिसे, मञ्जरीके साथ ।
३ अचन्द्र, सुगोषे । ४ पच्छा, बहुत पच्छा ।
५ माना, इवा । ६ निःसन्देह, शेषक ।

काममञ्जरी (सं० स्त्री०) दक्षिणप्रणीत द्यकुमार-
चरितकी एक नायिका ।

गिला लक्ष्मी नामसे भूमिहित होती है। इससे
 अनतिदूर दक्षिणदिक्में ८ धनुपरिमित कीलक्षेत्र है।
 इसी स्थान पर अखत्यके मूलमें विष्णुकी पाषाण-मूर्ति
 विराजित है। ब्रह्मकुण्डके निकट श्रीकुण्ड नामक
 २ धनुपरिमित सरोवर है। उसकी पूर्व ओर २२
 धनु दूरवर्ती स्थानमें कनखल नामक तीर्थ है। उसके
 दक्षिणदिक्भागमें मगोहर पर्वतके ऊपर ४ धनु-
 परिमित चम्पकेश्वरकी मूर्ति विराजित है। इस
 मूर्तिकी पूर्व ओर ८ धनुपरिमित पुष्करतीर्थ है।
 पुष्करकी नैऋत ओर किञ्चित् वामभागमें २८ धनु-
 परिमित बदरिकाश्रमतीर्थ है। यहाँ विभाण्डक
 नामक शिवलिङ्ग पध्दित है। पुष्करके पूर्वभागमें
 कुमार नामक सरोवर है। यहाँ स्थाणु नामक
 महादेव है। उल्ल चम्पकेश्वरके नामानुसार ६२
 धनुपरिमित स्थानमें एक वन है। वहु चम्पकवनके
 नामसे प्रसिद्ध है। नीलकण्ठकी पूर्व ओर दुर्गाकूपसे
 ३ धनु दूर पाम्नातकेश्वर नामक महादेव है।
 पाम्नातकेश्वरकी दक्षिण ओर ८ धनु दूरवर्ती स्थानमें
 कृष्णवर्ण गजाकार गणदेवकी मूर्ति है। उसकी पूर्व
 ओर १ धनु दूर त्रिविक्रमकी मूर्ति विराजती है।
 इस मूर्तिसे १ धनु दूरवर्ती स्थानमें ४० हस्तपरिमित
 सोमाय्य सरोवर है। यह कामाख्या देवीका क्रीडा
 सरोवर कहाता है। इसीकी ईशान ओर लोहित्य
 सरोवर, पद्मिण्युण्ड ओर यामलसरोवर है। सोमाय्य-
 सरोवरसे ५ हस्त दूरवर्ती नैऋत दिक्में गङ्गासर है।
 इसके उपरिभागमें पगख्यकुण्ड है। इस कुण्डकी
 पूर्व ओर लण्डगिनाकी पश्चिम ओर बराहतीर्थ है।
 इसके पश्चिमकोणमें कम्बल नामक शिवकी मूर्ति
 पध्दित है। पनलकुण्डकी पश्चिम ओर पशि
 नदी है। उससे पश्चिम बहणा नदी बही है।

‘यह सञ्जल स्थान श्रेष्ठ तीर्थ गिने जाते हैं। यहाँ
 यथाविधान पूजादि कार्य करनेमें पनल पुष्प
 होता है।’ (शनिशोभन, पृ ४४८)

‘मानवतीर्थ नाम्नी महानदीकी उत्तर ओर २ धनु
 दूरवर्ती स्थानमें प्रेतगिना है। वासुदेवसे १८ धनु
 दूर पश्चिम ओर पक्षकीर्ण उत्तरतीर्थ है। कांठि-

विद्वेषे दक्षिण धनुष्कोण शिवमूर्तिका नाम दक्षिण-
 मानस है। कामनायसे ७ धनु दूर पश्चिम ओर
 दीर्घेश्वरी देवी है। कामेश्वरदेवकी उत्तर ओर १२ हस्त
 दूरवर्ती स्थानमें कामसरोवर है। कम्बलदेवकी दक्षिण
 ओर ८ धनु दूरवर्ती स्थानमें कीटीश्वरी देवी है।
 लोकचक्र देवीसे २ धनु दूरवर्ती स्थानमें तीन धारा है।
 उनमें मध्यधारा सरस्वती, दक्षिण धारा बहणा ओर
 उत्तर धारा यमुना कहाती है। त्रिधाराके सङ्गमस्थान
 पर भाकागगङ्गा है। उनकी उत्तर ओर अनतिदूर
 शक्तवर्ण वासुदेवकी मूर्ति है। कामेश्वरके पश्चाद्भागमें
 सिद्धेश्वरकी मूर्ति है। उनके निकटवर्ती स्थानमें
 छायारुद्र है। विख्याचलके निकटवर्ती स्थानमें
 विख्याश्वरी गिला है। उसकी पूर्व-उत्तर ओर १००
 धनु दूर भाकागगङ्गाका विक्रम मिलता है। इसके
 दक्षिणभागमें सुरदीर्घिका गिला है। यह गिला
 क्षितिताकान्ता कहाती है। इस स्थानमें नन्दि-
 रूपी अखत्य ओर उसके मूलके देवमें कूर्माक्षति
 गिला है। इससे अनतिदूर व्यासतीर्थ ओर व्यानिश्वर-
 देवका अवस्थान है। व्यासतीर्थसे २० धनु दूर पूर्व
 ओर हस्तक्षुण्डिणी देवीमूर्ति है। इसीकी पूर्व ओर
 अनतिदूर ८ हस्त परिमित सुवनेश्वरकी मूर्ति है।
 उसके वायुकीर्ण पर अगस्त्याश्रममें गङ्गाधरकी मूर्ति
 है। गङ्गाधरकी अनतिदूरस्थ उज्ज्वल श्वेतगिनाका
 नाम जख्यीय है। उसकी पश्चिम ओर सदाशिव-मूर्ति
 है। सदाशिवके निशठवर्ती स्थानमें ही गोविन्द
 पर्वतस्थित गोविन्दकी मूर्ति है। उसकी पूर्व ओर
 ८ धनु परिमित रत्नवर्ण गिलाका नाम शरविगो है।
 उच्च शिवाचलमें प्रकटा नाम्नी महादेवी है। विख्या-
 चलकी उत्तर पार ८ धनु दूरवर्ती स्थानमें महालक्ष्मी
 है। श्रीपर्वतमें श्रीकुण्ड नामक तीर्थ है। गोमनाश्रममें
 सपमध्वज नामक शिवकी मूर्ति और शंभतीर्थ सरोवर
 है। पाण्डुकुण्डमें निकलनेवाली धाराका नाम नर्मदा
 नदी है। शिव ओर विष्णुमूर्तिके मध्यवर्ती स्थानसे
 शो धारा पाती, वह महागदी कहाती है। नितम्ब
 ओर धन सप्तकी मध्यवर्ती धारा मङ्गला नामसे
 विख्यात है। विश्वेशी पर्वतके भीमादेवसे निःसृत

काममय (सं० वि०) कामस्य विकारः, काम-मयत् ।
 मन्वन्तीसीमांता ब्रह्मचारिण्योः । का० (११३३) । कामविकार,
 याद्विगमे भरा द्वा ।
 काममर्दन (सं० पु०) कामं कन्दपं मर्दयति नागयति,
 काम-मृद-ञ्च् । कामको मर्दन करनेवाले महादेव ।
 काममनोनुप (सं० पु०) मद्दयेद्य, अच्चा इकीम ।
 काममनोनुप, काममनोनुप ईषी ।
 काममज (सं० पु०) कामस्य मज छल्लो पय, बहुमी० ।
 कामदेवके छदेग छल्लवका दिन । चैत्री पूर्वमा
 दस छल्लवका निर्दिष्ट समय है ।
 काममानिका (सं० स्त्री०) मयविशेष, एक शराव ।
 काममापी (सं० पु०) गपेय ।
 काममुद्रा (सं० स्त्री०) तन्त्रशास्त्रोक्त एक मुद्रा ।
 काममूढ (सं० वि०) कामिन मूढः, इ-तत् । कामको
 पीड़ासे हित धीर पड़ितकी विवेचना न रखनेवाला,
 जो गृहवतके लोखे पन्था बन गया हो ।
 कामभूत (वे० वि०) कामिन भूतः मूर्च्छितः, काम-
 मय-लक्ष्णमत्वात् इत् प्रभावः लट् । १ काममूर्च्छित,
 गृहवतसे गुण छाये हुआ । २ पत्न्यन्त कामपीडित,
 गृहवतके लोखे वही तकसीफ पाये हुआ ।
 काममोदी (सं० स्त्री०) कन्दूरी, सुरक ।
 काममोहित (सं० वि०) कामिन कामजरत्या मोहितः,
 इ-तत् । १ कामको पीड़ासे हित धीर पड़ितका
 ज्ञान न रखनेवाला, गृहवतके लोखे पन्था बना
 हुआ । २ सुरतामल, गृहवत-परस्त ।
 'मा निराह मतिर्वा लमन्तः माधुरीः वनः ।
 वनू बोधनिवृत्ताईवमन्तोः काममोहितम् ॥' (रामायण)
 कामयमान (सं० वि०) काम-विद्-मानच् । कामुक,
 याद्विगमन्त् ।
 कामयान (सं० वि०) काम-विद्-मानच् सुगभावः
 काममशास्त्र्य चतित्वत्वात् । कामुक, याद्विगमन्त् ।
 कामायाना (सं० स्त्री०) गर्भिणी, जामिका, जिसके
 घेठमें सड़का रहें ।
 कामयाव (ज्ञा० वि०) सकल, नतीजा पाये हुआ ।
 कामयावी (ज्ञा० स्त्री०) सकलता, मक्षदयरी,
 बाकबासा ।

कामयिता (सं० वि०) कामयति, काम-विद्-ञ्च् ।
 कामुक, याद्विगमन्त् ।
 कामरस (सं० पु०) कामः कामजरत्यादिरेव रसः ।
 सुरतादि, गृहवत वगैरह ।
 कामरसिक (सं० वि०) कामि कामजरत्यादौ रसिकः
 सुनिपुणः, अ-तत् । सुरतादि विषयमें सुनिपुण,
 गृहवतपरस्त ।
 कामराज—१ कासिकामरुत कौण्डिन्य सुनिपुणोद्व
 श्रीधरराजके पुत्र । इनके पुत्र मातुल थे । (पद्यरिचय
 ११११) २ कैवल्य-दीपिका-प्रणेता हेमाद्रिके प्रति-
 पाक्षक । ३ गोपालचम्पू-प्रणेता श्रीधरराजके पितामह ।
 इनके पुत्र पर्याप्त लीधरराजके पिताका नाम ब्रह्मराज
 था । फिर इनके पिताको श्यामराज कहते थे ।
 कामराज दीक्षित—काव्येन्दुप्रकाश, मुद्रारकसिद्धाकाथ
 प्रसूतिके प्रणेता ।
 कामरान् मिर्जा—बादशाह शाबर शाहके २य पुत्र धीर
 बादशाह हुमायुंके भ्राता । १५३० ई० को सिंहा-
 सनासुद् होने पर हुमायुंने दखे काबुल, कन्दहार,
 गुजनी धीर पञ्जाबका राज्य घोषा था । किन्तु
 १५५३ ई० को काबुलमें हुमायुंने इनकी भाँचें ग़रामे
 छेदवा कर निकलवा भी । कारण इन्होंने राज्यमा
 प्रबन्ध बिगाड़ बढ़ा गड़बड़ किया था । बाँचेंमें
 नीयका रस धीर नमक पड़ते समय इन्होंने कहा—
 'दू परमीश्वर । मैंने इस संसारमें जो पाप कमाया,
 उनका यथेष्ट फल पाया है । अब परलोकमें भीरे
 ऊपर जपाइति रहिये ।' फलमें इन्हें मरके ज्ञानिकों
 पाशा मिनो यो । वहाँ यह तीन वर्ष रहें धीर
 १५५६ ई० को थपनी मीत मरे । इनके तीग कन्या
 धीर चतुस कासिम मिर्जा नामक एक पुत्र बार
 सन्तान रहें । १५६५ ई० को चकवरकी बाँचामें
 चतुस कासिम मिर्जा ग्वालियरके किसमें कैद क्रिये
 धीर मार गये ।
 कामरिपु (सं० पु०) १ शरीरस्य हृद्द रिपुके मय
 प्रथम रिपु । चमिभाव धीर स्त्रीगभोगादि इववा
 कार्य है । २ मित्र ।
 कामरी (वि० स्त्री०) कम्बल, कमरी ।

धाराको शरवती कहते हैं। मत्तक पर्वतकी धारा भी मर्मदा नामकी पुकारी धारा है। कामकुण्डकी धाराका नाम कामगङ्गा है। कामाख्याकी धारा गङ्गा कहती है। मौलकुण्डकी धाराको शरवती कहते हैं। कामकुण्डकी धारा सुमद्रा नामकी समिद्धि है। कामकुण्डकी धाराका नाम चन्द्रमाया है। कामकुण्डकी धारा शरवती नामकी प्रसिद्ध है। यमगेशकी धाराको वेतरवी चौर मन्दाकिनीकी धाराको मोदावरी कहते हैं। धर्मगण्डके मध्य रामकृत नामकी तीर्थ है। यमके ३० धनु दूर उत्तर चौर कोटिविह्व है। इसी निह्वके मध्य मर्मदा नामकी मन्दाकिनी है।

वराह चौर कामके मध्यवर्ती स्थानमें सप्तमंथ प्रसक्तया सप्तमंथ नामक ८ धनुपरिमित शरीर है। यमके उत्तर तीर मन्दाकिनी वर्तमान है। इसी पर्वतमें पीतविद्या चौर शिवस्थिति मिना है। यमके ५ धनु दूरवर्ती स्थानमें चरवतीकी नामकी प्रसक्त है। सप्तमंथकी पूर्वचौर ८ धनु दूर ० धनु विस्तृत वाराहकीकुण्ड है। यमकी पूर्वदिक् ५ धनु दीर्घ मार्कण्डेय ऋषि है। ऋषिके उत्तर तीर मार्कण्डेयार शिव है। गोकर्णमें पत्तनदूर महाभारत नामकी कुण्ड है। उत्तकी पश्चिम दिक् गोकर्णकी महादेव है। गोकर्णकी ईशान दिक् ३ धनु दूरवर्ती स्थान पर मदन पर्वत है। वहां वेदाङ्ग नामकी महादेवकी मूर्ति विराजित है। वेदाङ्गकी पश्चिम दिक् महावटप्रसक्त है। वेदाङ्गकी उत्तर दिक् ३ धनु दूरवर्ती पोषक नगरमें कामराज महादेव है। महावट नामकी सप्तप्रसक्त ३ धनु दूर दक्षिणदिक्की उत्तरी पर्वत है। इसीके मध्य देवमें मन्दाङ्ग नामकी उत्तम गिरि है। उत्तरीचौरकी पूर्वचौर मातृपुत्रात्मक विष्णुकी मूर्ति है। इसी पर्वतकी उत्तर दिक् ३० धनु दूर कपिलाश्रम है। वहां कपिलेश्वर देवता है। कपिलाश्रमकी पूर्व दिक् ११ धनु दूर विद्यामोचन तीर्थ है। वहां कामेश्वर देवता है। कामेश्वरदेवकी ईशान दिक् १० धनुदूर कपिलाश्रम है। मदन पर्वतकी ईशान दिक् ३ धनु दूर वादिसर, महावातात्मदेव चौर मन्दाकिनी है। वादिसरके वायुकीधर्म मन्दाकिनी

है। उत्तकी पश्चिम दिक् विष्णुका मन्दिर है। मन्दि-
कुण्डकी उत्तर दिक् यमना मदी है। मन्दि-
कुण्डकी पूर्वदिक् पत्तनदूर विष्णुका पुष्करतीर्थ है।

‘यथाविधान इत’ तीर्थमें शान, शान, पूजा,
प्रदक्षिण चादि कार्य करके मध्य पुत्रा काम
होता है।’

(संस्कृत १ : ४-८ १५५)

कालिकापुराण चौर योगिनीश्वरके पाठमें काम-
रूपके प्राचीन भूतनाम्नका सूक्त परिचय मिलता है।
कालिकापुराणके मत्तानुसार कामरूपमें निम्न-
लिखित पर्वत विद्यमान हैं,—

- १ चन्द्रगिरि, २ सुरस, ३ नील, ४ लक्ष्मी-
बाणा, ५ सुतीर्थ, ६ विन्हाट, ७ सुभाषण, ८ शरव,
९ गन्धामदन, १० गोप्राप्त, ११ मन्दि-
कुण्ड, १२ मदन,
१३ दर्वण, १४ रोहण, १५ पत्तनान्, १६ कर्मकर,
१७ वायुकुण्ड, १८ दुर्गाशैल, १९ चन्द्रकुण्ड, २० पातक-
वा मन्दाचल, २१ मन्दाचल, २२ काम, २३ सुकाशक,
२४ रघुकुण्ड, २५ पाण्डुनाम, २६ शिवशर, २७ महा-
गिरि, २८ कर्कट, २९ वराह, ३० चर्वाक, ३१ यज्ञक,
३२ दुर्जयगिरि, ३३ चोभक, ३४ गन्धामदन, ३५ भग-
वान्, ३६ मन्दाट, ३७ नाटक, ३८ ईश, ३९ मन्दाङ्ग,
४० मन्दन। इनकी छोड़ योगिनीश्वरमें निम्नलिखित
पर्वत भी कहे हैं,— ४१ मन्दमैल, ४२ विद्ययाचल, ४३,
जर्मोचल, ४४ महावट, ४५ विजयाचल, ४६ मानमैल,
४७ शिवदूष, ४८ चन्द्रमैल, ४९ श्रीगोक, ५० मन्दा, ५१
वाय्याचल, ५२ शोभपर्वत, ५३ शक्तिचर्वाक, ५४ विजयचर्वाक,
५५ चामाचल, ५६ सुमना, ५७ कर्मक, ५८ नील-
कोहित, ५९ गन्धर्व, ६० विद्याच, ६१ चादिसर,
६२ महाशर, ६३ पतक, ६४ मन्दीप, ६५ जगल, ६६
नल, ६७ मन्दाङ्ग, ६८ यम, ६९ गोविन्द, ७० विजयो-
७१ मन्दीप, ७२ वनक, ७३ पतिवास, ७४ पूर्वचर्वाक
इत्यादि।

कालिकापुराणमें कामरूपकी निम्नलिखित
मन्दिनीका नाम मिलता है,—

- १ सुवर्णमानस, २ लतीकेश, ३ विद्याता, ४ शिव-
प्रसा, ५ नवतीला, ६ योदटा, ७ महाभारी, ८ कर्वा

रोका, ८ करतोया, १० छपप्रदा, ११ चन्द्रिका, १२ केषिका, १३ गतानन्दा, १४ सुमदना, १५ भेरव-गङ्गा, १६ देवगङ्गा, १७ भद्रा, १८ पुनर्मा, १९ मानसा, २० भेरवी, २१ वर्षाणा, २२ कुसुममालिनी, २३ श्रीरोदा, २४ नीसा, २५ शिवाचण्टी वा चण्डिका, २६ मिह-त्रिस्रोता, २७ वृहदेविका, २८ भद्रारिका, २९ दिक्क-रिका, ३० स्वर्णवहा, ३१ सुवर्ण्यो, ३२ कामा, ३३ सोमासना, ३४ तपोदका, ३५ श्वेतगङ्गा, ३६ कन-खला, ३७ सीता, ३८ सुमङ्गला, ३९ श्यामती, ४० कालिका, ४१ दृश्यमान, ४२ कपिलगङ्गिका, ४३ दमनिका, ४४ वृषा, ४५ कास्ता, ४६ खलिता, ४७ संध्या, ४८ दीपवती, ४९ अगद नदी ।

एतद्विषय योगिनीतन्त्रमें दूसरी भी कई नदियोंका नाम लिखा है,— ५० चम्पावती, ५१ मानस, ५२ पिच्छिका, ५३ स्वर्णो, ५४ शेरिका, ५५ धनदा, ५६ पत्राख्या, ५७ मङ्गला, ५८ धवला, ५९ कपिला, ६० सरस्वती, ६१ जाङ्गवी, ६२ दिक्षु इत्यादि ।

सुवर्णमानस, जटोडवा और त्रिस्रोता तीनों नदियां जलपाईगुडी जिलेमें प्रवाहित हैं। सुवर्णमानसका वर्त-मान नाम स्वर्णकोशी है। चलाती बोधीमें सानकोशी कहते हैं। यह नदी भोटाङके पर्वतसे निकल ब्रह्मपुत्रमें पा मिली है। जटोडवा नदी भोटाङके पर्वत पर उत्पन्न हो जटोडा नामसे जलपाईगुडी जिले और काँचविहार राज्यके मध्य श्री कर ब्रह्मपुत्रमें गिरी है। त्रिस्रोताका वर्तमान नाम तिस्ता है। इसके प्राचीन नाममें बहुत परिवर्तन हुआ है। आजकल यह सिकिमके पहाड़से निकल जलपाईगुडी और रङ्गपुर जिलेके मध्य श्री कर ब्रह्मपुत्रमें पा मिली है। इस नदीसे धनतिरूर फकीर-गङ्गके मध्य जलपाईगुडी नगरसे प्रायः उदकीच दूर जल्योग नामक पुष्पपोठ है। कालिकापुराणमें कहा है,—

“तत्र कामरूप नाम विदुषात्मकः ।

आसने विश्वमनुषं जल्योगात्” इत्यर्थं यन् ॥”

कामरूपके वायुकोषमें महादेवने जल्योग नामक चपला चतुस्र सिद्ध दिखाया है ।

“वराहवचनोऽयं विदुषात्मकः ।

तत्पुत्रकश्च तन्मोक्षं दृष्टयेद्विदुषात्मन् ॥

एव पुष्पकः पीगे जल्योगस्य महात्मनः ।

एतन्प्रधाना नदी यानि महात्मासु च प्रति ॥”

(कालिकापुराण, १० पं०)

यह जल्योग नामक महादेव वरदाभयहस्ता और कुन्दरुख्य श्वेतवर्ण है। इन्हें तत्पुत्रपत्नी भाति पूजना चाहिये। जल्योगका विषय जिसे अच्छी तरह मालम हो जाता, वह शिवलोक पाता है ।

कालिकापुराणके मतमें नन्दीने महादेवको धारा-सना कर यहीं सगरीर गाणपत्य पाया था ।

जल्योगदेवका मन्दिर प्रथम जल्येश्वर नामक किसी राजाने बनवाया था। सुषलमामोने प्राचीन मन्दिर तोड़ डाला। उसके पीछे काचविहारके प्राण-नारायणने (कोई २२५ वर्ष हुए) वर्तमान मन्दिर निर्माण कराया। आज कत मन्दिर पहिलेकासा सुन्दर नहीं रहा, जोर्ण बरबसामें पड़ा है। म मालूम कब कब भूमिसात हो जावेगा। पहिले यहाँ बहुतसे यात्री भाते थे। किन्तु अब कब समय नहीं है।

जल्योगपीठसे धनतिरूर तलमा नदीके पास प्राचीन प्रथुराजके नगरका धंसावशेष पड़ा है। किसी समय यहाँ प्रथुराजका राजभवन, दुर्गपरिखादि था। आज भी उसका निदर्शन देख पड़ता है। यह प्राचीन स्थान प्रव्रतस्वामुसन्ध्यायियोंके देखने योग्य है।

इसके निकट कई चूड़ चूड़ नदी है। वही कालिकापुराणमें लिखी गई सितप्रभा और ज्वलाया समझ पड़ती है।

इससे थोड़ी दूर पाटगञ्ज नामक स्थानमें पाटेश्वरी देवीका प्रसिद्ध मन्दिर है। कोई कोई पाटेश्वरी देवीको ही कालिकापुराणमें उल्लिखित सिद्धेश्वरी मानता है।

भेरवी नदीका वर्तमान नाम भरली है। यह पक्काजातिके देमसे निकल ब्रह्मपुत्रमें पतित हुयी है।

वर्षाणा वर्तमान कामरूप जिलेसे उत्पन्न हो योगीचोमके निकट ब्रह्मपुत्रमें मिली है।

वृहदेविका कामरूपमें प्रवाहित सुकुपुडी नदी है। दिक्करिकाका वर्तमान नाम दिकराई है। यह नदी पक्का पहाड़से निकल दरङ्ग जिलेके मध्य श्री कर ब्रह्म-पुत्रमें पा गिरी है।

नारायण कोषज्ञानी प्रदेशमें भीरू लक्ष्मीनारायण कोषविहारमें राजत्व करने थे। पाटगाइनामा लक्ष्मीनारायणकी परीक्षितके पितामहका सहीदर बतलाता है। जहांगीरके राजत्वके दस वर्ष सुभद्रके राजा रघुनाथने परीक्षितके विरुद्ध दरवारमें अभियोग लगाया कि उन्होंने उनके परिवारवर्गका अपरोध किया था। शिव अना-उद्-दीन फतेहपुरी इसलाम खान उस समय बद्दालके नवाब रहे। उन्होंने मकराम खानकी कोषज्ञानी जीतने भेजा था। लक्ष्मीनारायणने सुभलमानोंके पक्ष पर योग दिया। युद्धमें पराजित हो परीक्षितने आत्मसमर्पण किया था। फिर उनके भ्राता बलदेवने पद्मामराज स्वर्गदेवका आश्रय लिया। उसके पीछे परीक्षित सम्राटके आदेशानुसार दिल्ली भेजे गये और मकराम खान ज्ञानिके शासनकर्ता नियुक्त हुये।

बलदेव आसामराजकी सहायतासे हाजीके उद्योग करने लगे। पद्मामराज स्त्रीय अधीनता स्वीकार करा उनका साहाय्य करने पर प्रतिश्रुत हुये। मकरामखान उसी समय शासनकर्तृत्वसे हटे थे। उनके स्थान पर कोई नूतन शासनकर्ता बानिवाला था। इसी अवसरमें सुयोग देख बलदेवने दरङ्ग अधिकार किया। उस समय दस देशमें बद्दालके नवाबकी भोरसे हाथी-खेदाकी रक्षा करनेकी जागीरदार पायक रहते थे। कासिम खानने बद्दालके नवाब रहते समय बहुत दिन तक हाथियोंकी आमतनी न पायी थी। उन्होंने हाथी-खेदाके सरदारोंकी उपस्थित होनेका आदेश दिया। उपस्थित होने पर नवाबने उन्हें बन्दी बनाया। उनमें सन्तोय भीरू जयरामने भाग कर आसामराज स्वर्गदेवका आश्रय लिया था। फिर इसलाम खान नवाब हुये। उस समय पाण्डुके अत्याचारी यानेदार शत्रुजित् बलदेवसे मिल गये। उन्होंने उनको हाजीके शासनकर्ताके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये गोपनमें परामर्श दिया था। बलदेव कीर्षा भीरू आसामियोंका सैन्य ले बुद्ध करनेकी उपस्थित हुये। १६३६ ई० की इसलाम खानने यह बात सुनी। उन्होंने कई मनसबदारोंकी १००० सवार, १००० बन्दूकवाले पैदल, १० घराब नामक गौका, २००

कोषाङ्ग, नौका भीरू बहुसंख्यक लसबाह नौकाके साथ भेजा था। श्रीघाट भीरू पाण्डुके निकट महा-युद्ध हुआ। उभय पक्षमें मरते भीरू घायल होते भी युद्ध चलता रहा। इसलाम खानने फिर दिगुण सैन्य भेज दिया। किन्तु उसी समय फिर पायकोंने बलदेवका पक्ष लिया था। इसमें सुभलमानों सेनाकी रसद बन्द हो गयी। इसलामखानने संवाद सुन रसद भेजी। किन्तु उसके पट्टचनेमें विफल लगा था। उसी समय बलदेव समेन्य श्रीघाट भीरू पाण्डु, छोड़ हाजीके अभिसुद्ध चले गये। फिर उन्होंने राज्य अपरोध कर रसद पट्टचनेकी राह रोकी थी। हाजीके शासनकर्ता पयद-उम्-सलामको स्त्रीय भ्राताके (यही प्रधान सेनापति बन टावेसे आये थे) साथ विपक्ष शिविरमें शत्रुका प्रस्ताव करनेके लिये जाना पड़ा। किन्तु वह मदन बांध कर आसाम भेजे गये। उनके भ्राता सैयदने बलपूर्वक शत्रुशिविरमें निकलनेकी चेष्टा की थी। किन्तु विफल होने पर वह मदन मारे गये। उसके पीछे भीरू पत्नी सेनापति हुये। इसी बीचमें ब्रह्मपुत्रके उत्तरकूल राजा चन्द्रनारायण पर सुभलमानोंने आक्रमण किया। चन्द्रनारायण भीत हो दक्षिणकूलके परगने सोलामारीकी भागे थे। सोलामारीके जमीन्दार चन्द्रनारायणके भयसे सुभलमानोंमें जा मिले। सुभलमान उसके पीछे गुप्तशत्रु शत्रुजित्के अनुसन्धान करनेकी धुवड़ी पट्टे थे।

शत्रुजित् राय भूपलवासे जमीन्दार (राजा) सुकुन्दरायके पुत्र थे। सम्राट जहांगीरके समय शिव पला-उद्-दीन बद्दालके शासनकर्ता रहे। उस समय उन्होंने सुकुन्दरायके ही अधीन एक दल सैन्य भेज एक बार हाजीपट्टे पर अधिकार किया था। सुकुन्दराय युद्धमें जीतने पर पाण्डु भीरू गोहाटीके यानेदार बने। उसी सुयोगमें आसामियोंके साथ

* उस समय इसराकार नौका नन्दुवरी बुरहीरकी भांति व्यवहार होती थी। कोशा नौकामें एक मनुष्य लगता है। फिर उसमें बांध बहुत रहते हैं। उस नौकाके आसाममें भोग नहीं की बुरहीर नौका (बुरी) जूनेमें बांधके सहारे न चले पायी करते हैं। वही वही भांति है।

वापसदा वा सुवर्णयो नदीका वर्तमान नाम सुवर्णविरो वा सोवर्णविरो है। यह नदी लघोमपुर त्रिलोक प्रवाहित हो ब्रह्मपुत्रमें मिली है। कामा नद्योमपुर त्रिलोकी वर्तमान कारणदा है। यह भी ब्रह्मपुत्रमें मिल गयी है।

सोमामलाहा वर्तमान नाम विरो है। यह लघोमपुर त्रिलोक प्रवाहित है।

शेखरगढ़ा वर्तमान सदियाडे निकट प्रवाहित दिक्-राज नदी है। इसीके निकट दिक्करवासिनोका प्राचीन मन्दिर है।

दिव्य यमुनाको पानकल हंसल यमुना कहते हैं। यह नदी मागावहाइमें निकली है।

दमनिका राज यमुना नदीके पूर्व प्रवाहित है। पानकल यह दियोना नाममें प्रसिद्ध है।

कलिका नोगाव त्रिलोको खलन नदी है। यह ब्रह्मपुत्रमें पतित हुयी है।

कविलगङ्गिका वा कविलाको पानकल कपिली कहते हैं। यह जयन्ती पहाड़में निकल ब्रह्मपुत्रमें मिली है।

उदगङ्गा दरङ्ग त्रिलोकी बहगङ्ग नदी है। दीपवती दरङ्ग त्रिलोकी दीवीता नदी है।

दिसुनदीका वर्तमान नाम दीघ है। यह शिव-मातरके निकट ब्रह्मपुत्रमें मिली है। योगिनोतखाके मतमें यही नदी प्राचीन कामरूपकी पूर्व भीमा थी।

गन्दावती ग्वालवाड़े त्रिलोक प्रवाहित वर्तमान गन्दावती नदी है। इसके दक्षिणामेला नाम नदी-धर है।

मानवा ग्वालवाड़े त्रिलोकी मानवा नदी है। विष्णुमा दरङ्ग त्रिलोकी विहला नदी है। यह विष्णुमाके निकट ब्रह्मपुत्रमें मिली है।

हौरिका नदीका वर्तमान नाम हिलिक है। यह शिवमातर त्रिलोक लघोमपुर त्रिलोक मध्य हो कर ब्रह्मपुत्रमें मिली है।

खलदा पानकल पधेवती कहानी है। यह मागा पहाड़में निकल ब्रह्मपुत्रमें पतित हुयी है। यही कोरीठकी पचम भीमा है।

चापामकी सुवर्णमें लिखा है कि—महाेश्वर नामक एक राजा कामरूपके पति राघोव राजा है। इस बातका कोई विशेष विवरण नहीं मिलता—यह राजव कोल से चोर कैम वा किम तरह उनके नाममें कामरूप था।

महीरगुम्फके पीछे नरकापुर कामरूपके राज-पट पर प्रतिष्ठित हुए। कालिकापुराणके शुरूके से लेकर ४०के अध्याय तक यह मध्य-उपमे विस्तृत है—नरकापुर कोल से चोर कैम कामरूपके राजपट पर बैठे। (उनके विशेष विवरणमें लिखा कि भगवान् विष्णुकी लपामे उन्हें कामरूपका राजत्व मिला।) नरकापुरकी कीर्ति अध्याय कामरूपमें देख पड़ती है। नरकापुर चोर कामार्याके सम्बंधमें निम्नलिखित कई किंवदन्ती प्रचलित हैं—

नरकापुरमें किसी समय श्रीय चाचुरिक दण्डमें उग्रता ही भगवती कामार्यामें विवाह करनेका प्रस्ताव छुटाया था। उस समय भगवती कामार्याका मन्दिरादि बना न था। पत्नि कामार्या भावसे परस्परके मध्य पीठछानमात्र था। नरकका प्रस्ताव सुन भगवतीने कहा,—‘यदि थाप एक शानमें हमारा मन्दिर, मार्ग, पुष्करिणी इत्यादि समस्त निर्माक कर लेंगे तो हम थापका पति बना लक्ष्मी है। नरकने उसी समय विष्णुमाकी बुला लनके माहात्म्ये शशि-गुप्तात हीनेसे पक्षिसे ही माघः समस्त कार्य मध्य कर दिया। भगवतीने देखा,—‘महाविष्णु था पदों।’ ‘उब हमें पुरकी भागी बनना पड़ेगा।’ इस प्रकार गिलाकर पक्षिमें एक मायादयो कुहूट बनाया। नरकके कार्यसमाप्त होनेसे कुहूट पक्षिसे ही वह अपना पानः-काशेल धनि पुनर्गन जगा। कुहूटधनि जाने ही भगवतीमें नरकमें कहा,—‘कार्येय होनेसे पक्षिसे ही कुहूट कीर्तन जगा। शक्तिवोत गई। प्रमान हुआ। हम थापकी वरध करने पर प्रसुत नहीं हो लक्ष्मी।’ भगवतीके बाल्यमें माघःमा ही नरकने लप कुहूटकी मार हाथा था। कुहूटके मार कामरूप काम पानकल भी ‘कुहूटाबटावकी’ नामसे प्रसिद्ध

उनका सोझाई स्थापित हुआ। फिर उन्होंने भूपथिके जमीन्दारकी भांति चासाम और कामरूपराज्यके पनेक प्रधान व्यक्तियोंके साथ बन्धुता बढ़ाई। ग्रेव चासा-उद्-दीनके पीछे होनेवाले सब नवाबाने उन्हें दरबारमें जानेके लिये कई बार आदेश किया था। किन्तु न तो वह कभी उपस्थित हुये न नियमित पेश-कग ही भेजी। नवाब इसलाम खानने देखा कि मुकुन्दरायका दरबारमें पहुँचना कभी सम्भव न था। इसलिये उन्होंने उनके पुत्र शत्रुजित्को बुला भेजा। शत्रुजित् गये। उन्होंने दरबारमें यथारीति नवाबकी वय्यता दिखलाई थी। उस समय नवाब हाजोके विरुद्धमें सेन्य भेज रहे थे। उन्होंने शत्रुजित्को भी उसी सेन्यके साथ भेज दिया। किन्तु शत्रुजित् चासामराज्य एवं राजा बलदेवने बन्धुता मान चुपके चुपके गूढ़ संवाद और दूसरे जमींदारोंको उनसे मिलनेके लिये उताव देने लगे। अन्तमें नवाबकी सेनाने धुबड़ी पहुँचतेही शत्रुजित्को वापस लिया और अहाोरनगर भेज दिया। वहाँ विचार होने पर शत्रुजित्को प्राणदण्ड मिला था।

चमद-उस् सलामके विनष्ट होने पर कीर्ची और चासामिर्थाको सेना १२००० पदाति तथा बहुसंख्यक कासा नौका से: यनाग नदीकी राह ब्रह्मपुत्रके तीर योगीघोषा (योगीगुहा) नामक पर्वत पर पहुँच गयी। उक्त पर्वतके नीचे ही ब्रह्मपुत्रका घनाग-सङ्गम है। चासामी वहाँ एक सुदृढ़ दुर्ग बना नवाबके सेन्यकी प्रतीक्षा करने लगे। फिर उक्त दुर्गके बिलकुल सामने ब्रह्मपुत्रके दूसरे तटपर भी हीरापुर नामक स्थानमें वेसाही एक और दूसरा दुर्ग बना था। योगीगुहाके दुर्गमें १००० और हीरापुरके दुर्गमें अवशिष्ट ८००० सेन्य रह्य। नवाबका सेन्य धुबड़ी छोड़ खानपुर नदीकी राह ब्रह्मपुत्र पार हुआ। फिर वह अङ्गल काट और मार्ग बना योगीगुहाको पार बढ़ा था। नवाब-सेन्यके प्रधान सेनापति और सेनागीके पधीन १००० पथरकसावासे सिपाहो थे। कामग: राहमें दोनों दल संधीन हुये। चासामी प्रथम आक्रमणसे ६ कोस हटे थे। दूसरे दिन नवाबके सेन्यने योगीगुहाके

दुर्ग पर आक्रमण किया। फिर ठीक उसी समय जमान् खान् दक्षिणकुलके चन्द्रनारायणको ध्वंस कर ससेन्य ला मिले। इसीसे बलदेव नूतन और वर्धित सेन्यहा विग सह न सके। वह ससेन्य दुर्ग छोड़ भागे थे। दुर्ग अधिकार कर नवाबका सेन्य चन्द्रनकोटकी चला गया। राहमें बङ्गनगरके जमीन्दार उत्तमनारायणका पत्रवाचक एक पत्र ले कर पहुँचा। उसमें लिखा था,—“बलदेवने हृदय सेन्यदलके साथ बङ्गनगर पर आक्रमण किया है। किन्तु उत्तमनारायण उन्हें बाधा न पहुँचा सकने केकारण नवाबके सेन्यमें मिलनेको आगावे खुपटाघाट गये है।” सुप्रसद जमान् खान्ने कुछ सेन्य ले उसी समय बलदेवके विरुद्ध बङ्गनगरको यात्रा की। राहमें उत्तमनारायण मिल गये। नवाबके सेन्यका अवशिष्ट अंग चन्द्रनकोट पहुँचा था। नवाब जमान् खान्ने पोमारी नदी पार हा बलदेवके एक सुदृढ़ दुर्ग पर अधिकार किया। फिर वह पथपर होने लगे। बलदेवने देखा कि जमान् खान् प्राय: जा पहुँचे थे। उसी समय उन्होंने बङ्गनगर छोड़ चवी नामक स्थानको गमन किया। वहाँ बलदेव पर्वतके किनारे किनारे कई एक दुर्ग बना कर बैठ गये। जमान् खान्ने भी प्रथमै लौट विष्णुपुरके जंगलमें स्तम्भावार स्थापन किया था। फिर उन्होंने वर्षा ऋतौ होनेपर बलदेव पर आक्रमण करना ठहरा लिया। उसी समय बलदेवने विष्णुपुरसे डेढ़ कोस दूर कालापानी नदीके तीरपर रहनेवाले विपलियाँका रक्षिदल छिन्न भिन्न कर डाला। पाण्डु और श्रेष्ठाटमें उसी समय उनका भा नूतन सेन्य पा पहुँचा था। उन्होंने योचवीधमें रातका आक्रमण मार नवाबके सेन्य को व्यतिथ्यत कर दिया। वर्षा भीत गयी। चासाम-राजके जामाता बलदेवसे जा मिले थे। उसके पीछे १६१०ई० को ११ वर्षे भगवत्की रातके समय बलदेवने विपलियाँके दो सुदृढ़ दुर्ग अधिकार कर लिये। किन्तु दूसरे दिन सबेरे जमान् खान्ने हठात् मिलने ही सेन्यके साथ बलदेव पर आक्रमण मारा था। उसके कुछ सिपाही बलदेवसे सामने नहने रहे। फिर अवशिष्ट सेन्यके साथ उन्होंने बलदेवके रक्षित स्थानोंपर

प्राक्रमण किया। उस समय उनमें वैसा सैन्य न था। इसीसे वह एक एक कर विपक्षीके हाथ जा लगे। अनेक सेनापति मरे थे। फिर वहु सैन्य भी खय हुआ। कितनी ही बन्दूकों, तोपों और दृष्टरे हथियारोंकी हानि हुयी थी। किन्तु बलदेवकी सम्पूर्ण पराजित होती न देख नवाबका सैन्य उषी दिन रातकी विष्णुपुरके जङ्गलमें भाग गया। उसके पीछे मवय्यर मासमें चन्दनकोटसे नूतन सैन्यने जा तोन तरफसे बलदेव पर प्राक्रमण किया था। उस समय बलदेव या पासामराजका सैन्य वहुसा न था। इसीसे विपक्षके भीषण प्राक्रमणमें बलदेवका पक्षसंख्यक सैन्य ठहर न सका। वह शीघ्र ही रण छोड़ भागा था। बलदेवने स्वयं दरङ्गकी राह पकड़ी। पासामराजके जामाता बन्दो बन गये। हतावगिष्ट सैन्यदल त्रीघाट और पाण्डुकी ओर भागा। यहाँ पासामराज ससैन्य रसद बगैरह लिये उपस्थित थे। नवाबका सैन्य एक बार उन पर प्राक्रमण करने गया। पक्षय पर्यंत, त्रीघाट और पाण्डुमें भीषण युद्ध हुआ। पासामराज परास्त हो स्त्रराज्य लौट गये। कोचहाजी प्रदेश सुसलमानोंके अधिकारमें हो गया। पासामप्रान्तमें कलङ्ग नदी और ब्रह्मपुत्रके मध्य काजली दुर्ग अधिकार कर सुसलमान चान्त हुये। उधर एक दल सैन्यने दरङ्ग जा बलदेवको भगाया था। बलदेवने अवधोपकी पासाममें चुप गिन्नी नामक स्थानमें आश्रय लिया। पन्तिम अवस्थामें दो पुत्रोंके साथ उन्होंने यहाँ खर्गनाम किया। इसी युद्धमें कामरूप सम्पूर्ण सुसलमानोंके अधीन हो गया।

उपरि-उल्ल घटना पादगाह-नामिसे भी गयी है। किन्तु बुरखी या मिटर मार्टिनके ग्रन्थमें बलदेवका नाम नहीं मिलता। परीचित् नारायणके चन्द्र नारायणके पुत्रकी बात भी किधी ग्रन्थमें देख नहीं पडती।

नरनारायणके पीछे हीनेवाले सब राजावाँका विषय कोचविहारके इतिहासमें लिखा जावेगा।

कोचविहार देखो।

• प्यारकी पादगाहनामके मतमें राजा पादमारायण परीचित्के पुत्र थे।

पासामकी बुरखीकी देखते गुरुध्वजके पुत्र रघुदेवने राजा ही नगर संस्कार और हयग्रीव-माघवका मन्दिर निर्माण कराया। उनके पिताने पासामके अहाम राजावाँकी युद्धमें परास्त कर अपने गामनाधीन रखा था। किन्तु रघुदेव बह कर न मरने। उन्होंने पासामके अहामराजकी महानदेवी नाम्नी निज कन्या दे निरापद राजत्व किया। प्राधुनिक बुरखीके मतमें १५१५ गकको रघुदेव राजा हुये थे। रघुदेवने गदाधर तीर जो नगर बनाया, उमसा वनित नाम गिनाभाङ्ग या गिशाविजय है। (यहाँ गिना गोलहा या चियन हृच्छका वन यधेट था।)

रघुदेवके पुत्र परीचित्-नारायणके जो मन्ता दिल्लीके बादशाहके पाससे कानूनगो हो कर पाये थे, उनका नाम कवीन्द्र बहुवा था। रांगामाटोके वर्तमान जमीन्दार उन्हें कवीन्द्र बहुवाके वंशधर हैं।

पटनामें परीचित्की मृत्यु हुयी। उनका राज्य सुसलमानोंके हाथ पडते भी मानहानदोके पश्चिममें खर्गकोयोके पूर्व पर्यन्त उनके पुत्र विजितनारायणके अधीन रहा। वह सुसलमानोंके गोचे करद राजा बने थे। इसी प्रकार मानहानदोके पूर्वमें दिकराई तक परीचित्के भ्राता विजितनारायण भी करद राजा हुये। विजिनोके राजा विजितनारायण और दरङ्गके राजा वनितनारायणके सन्तान है। सम्भवतः विजितनारायण ही विजितनगर या विजनी स्थापन किया था। पहले वह सुसलमानोंका करमें अर्पण देते थे। फिर कर-स्वरूप छाया देनेका नियम हुआ। गेयको चंगरेजोंके अधीन अर्पण देनेका नियम पुनः बंध गया है।

सुसलमानोंके अधिकारसे कामरूप समस्त परिवर्तित हो गया। देगका पाचार स्प्यरहार, भूमिका प्रधन्य और राज्यप्रणाली बङ्गदेशकी भांति दीखने लगी।

वनितनारायण त्रिभूगके राजा हुये, कामनापुरका राजवंश मिटनेमें वह स्थान उत्तम दिनी तक एक प्रकार पराजक बन गया था। शिवमें चण्डीबरादि अंगारोंमें वह देग कितना ही सुभाषित किया। किन्तु वह बात भी अधिक दिन न चली। सुसलमान राज्य जीत कर शूट मार करते थे। सुतराँ उनके समय

देशमें शान्ति स्थापित होना दूरकी बात थी, अधिक प्रशान्ति बढ़ गयी। भोंट और कटारके पश्चिमी दोनों ही उक्त प्रान्तमें महा उपद्रव मचाते थे। फिर भी वलितनारायण दरङ्ग नगरमें राजधानी बना देगके शासन पर मनोयोगी हुये। किन्तु चासामराजका उपद्रव न घटा। पीछे उनकी भ्रातृपुत्रीका विवाह होनेसे चासामराजके साथ उनकी मित्रता हो गयी। स्वर्गनारायणने नूतन पत्नीके नाम पर नगरकी स्थापना और एक नदीका नामकरण किया। वलितनारायणकी धर्मशीलता तथा मद्दयवहारमें प्रीत हो उन्होंने उन्हें 'धर्मनारायण' उपाधि दिया और उनके कनिष्ठ भ्राता गजनारायणको विसतलाका राजा बनाया। विसतलाके राजा उक्त गजनारायणके बंधुधर हैं। प्राधुनिक बुरष्ठीके मतमें १६३८ गजको वलितनारायणने स्वर्गनाम किया और उनके पुत्र महेंद्रनारायणको मिंहासन मिला। महेंद्रनारायणने मद्राष्ट्रकी बहुतसी निष्कर भूमि दी थी। उन्होंने १८ वर्ष निरापद्रव शान्तिसे शासित्व कर १६४३ गजकी परलोक गमन किया। फिर उनके पुत्र चन्द्रनारायण राजा हुये। चन्द्रनारायणका राज्यकाल १७ वर्ष रहा। पीछे तत्पुत्र सूर्यनारायण राजा बने। प्राधुनिक बुरष्ठीके मतमें उनके समय १६८२ ई०को मञ्चूर खानू नामक किसी मुसलमान सेनापतिने उक्त देश पर आक्रमण किया था। उस युद्धमें सूर्यनारायण बांध कर दिल्ली भेजे गये। राष्ट्रसे सूर्यनारायण किसी प्रकार भाग पाये। किन्तु वह मल्लासे फिर सिंहासन पर न बैठे। सूर्यनारायणके बन्दी होते समय उनके भ्राता इन्द्रनारायण पांच वर्षके थे। मन्त्रियोंने मिल कर उन्हें राजा बनाया। किन्तु मन्त्रियोंने परस्पर विवाद उठनेसे चासामके पक्षीमराजने कामरूप पर्यन्त अधिकार कर लिया

* पक्षमें यह पुत्र है कि परोक्षनारायणने चासामराजके आक्रमणमें बचावत होनेके निमित्त सूर्यनारायणको महारङ्गी नाथी बना कराना ही था। इससे उक्त सचने कि परोक्षनारायणके राज्यकालमें ही वलितनारायण उक्त प्रदेश पर शासन करते थे। पीछे आताके मतने पर उनकी भाषीन ही सुवर्णनारायणराजसहित निज राज्य बन कर गया।

था। फिर भी वलितनारायणका बंधु विसकुल मिटा गया। उनके बंधीय दरङ्गके सिंहासन पर प्रतिष्ठित रहे। फिर इन्द्रनारायणके पीछे चादित्यनारायणने सिंहासनधारिण्य किया। उनके समय राज्यकी सीमा उत्तरमें गीसाई-कमनकी पालि, दक्षिणमें ब्रह्मपुत्र, पूर्वमें धनगिरी और पश्चिममें बहमनी निरूपित हुये। उसीके मध्य कियदंग भाग कर चादित्यके भ्राता मधुनारायण राजा बने। चादित्यके मर्ने पर ध्वजनारायणको सिंहासन मिला। उनके समय दरङ्ग राज्य मध्य रणरूपसे पक्षीमके पक्षीन हो गया। सूर्यनारायणके धीरनारायण नामक एक पुत्र थे। (प्राधुनिक बुरष्ठी मतमें १७४४ गज।) उन्होंने ध्वजनारायणको मार राज्य लिया। किन्तु वह तीन वर्ष ही राज्य कर डिमरुयाकी और भाग गये। उनके पीछे महत्नारायण बड़े पराक्रमी हुये। वह दोनों भाई एकत्र राजा बने थे। उनके पीछे (१७८८ ई०) कौर्तिनारायणके पुत्रने राज्य पाया। उनके समय दरङ्गके राजाओंका पराक्रम विसकुल खड़े हो गया।

वलितनारायणके समयसे इन्द्रनारायणके समय पर्यन्त बड़ी कामरूप पर शासन करते रहे। मध्य मध्य मुसलमानोंके आक्रमणमें भी उक्त बंधुभा ही प्राधान्य था। इन्द्रनारायणके समय कामरूपमें पक्षीमका अधिकार हुआ। किन्तु ध्वजनारायणके समयमें ही कामरूपकी स्वाधीनता मिटी थी। उनके पीछे कौर्तिनारायणके पुत्रके समयसे दरङ्ग राज्यका नाम छठ गया।

विलोकी राजबंशका इतिहास पालोचना करनेमें समझते है कि महाराज विजसिंहके दो पुत्र रहे। एके नरनारायण भूप करतोया तथा विहारके मध्य और कनिष्ठ शुद्धध्वज भूप विहारसे दिकराई तक राज्य करते थे। शुद्धध्वजके पुत्र रघुदेवनारायण रहे। रघुदेवके तीन पुत्र थे। उनमें एके परोक्षनारायण विजनीके, मध्यम वलितनारायण दरङ्गके और कनिष्ठ गजनारायण विसतलाके राजा हुये। एके परोक्षनारायणकी दिल्लीके सम्राटने विसतला दे दी थी। देगको दिल्लीसे कौटमें समय उन्होंने राष्ट्र

श्यामवर्णा कामाख्या देवी सहास्रमुख कोल-
जिह्वा विस्तारपूर्वक योगिनियोंके साथ पर्वतके
गिखर पर चढ़ कर रथका शोषित पान करेंगी।
कुवाच (कोच) इस युद्धमें जोत दस दिन वास कर
स्वदेगकी लौट जायेंगे। इसके पीछे कामरूपदेगमें
ब्राह्मण राजा होंगे। राज्यमें बड़े प्रजादिकी पूजा
और जप प्रभृति कार्यमें लगा देंगे। इसी प्रकार बड़े
तीन वर्ष राजशासन करेंगे। फिर ब्राह्मणराजा योनि-
मण्डलके निकटवर्ती स्थानमें वासस्थान ठहरा क्रम
क्रमसे एकच्छत्री राजा बन बैठेंगे। इन राजाका पत्नी
श्यामवर्णा होंगी। पति और पत्नी दोनों सर्वदा
पार्वतीकी पाराधनमें रह गयाकाल सवित नामक एक
पुत्र लाभ करेंगे। इस पुत्रके जन्मसे बारह दिन पर्यन्त
स्वर्गाचल पर्वतसे स्वर्गमणिका आविर्भाव होगा।
उससे कामरूपवासी सब धनी बन जायेंगे। फिर इसी
समय ब्रह्मिष्ठ ऋषिका भ्रमिशाप कूटगा।

१६ गताब्दके आरम्भमें कौचविहार राजवंशके
मूलपुत्र शिवशंयीय विखसिंहने पराजयका हटायी
थी। कौचवंशसम्भूत हाजा नामक किसा व्यक्तिके होरा
और लौरा नामकी दो परमसुन्दरी कन्या रहीं।
कामरूप पराजक होते समय कौच निकटवर्ती
पन्थान्य इतर लोगोंको बगोभूत कर कुछ पराक्रान्त
बन गये थे। पराक्रममें कौचोंके मध्य हाजा अपणी
रहे। प्रवादानुसार महादेवके चौरससे हीराके गर्भमें
शिशु वा शिवसिंहने और लौराके गर्भमें विद्यु वा विख-
सिंहने जन्म लिया था। * कामतापुर देखो। ई० १६ वें
गताब्दके प्रारम्भ पर ही विखसिंहने कौचविहारमें
राजत्व किया। विखसिंहने सुसलमानों द्वारा विध्वस्त
कामतापुर राज्य छुड़ा लिया था। प्राधुनिक सुरक्षीके
मतमें उन्होंने १४२० ई० अथ (१४८२-१५०० ई०)के
मध्य कामरूप अधिकार किया। उससे पड़ले
कामरूपमें थोड़े दिन सुसलमानोंका राजत्व रहा।

इवेनगाहके पुत्र शासनकर्ता थे। किन्तु उस समय
कीचोंका बड़ा उत्पात रहनेसे इवेनगाहके पुत्र मसरत
शाह कामरूप छोड़ने पर बाध्य हुये। विखसिंहने
उसी सुयोगमें प्रवर्गित सुसलमानोंको भगा राज्य
अधिकार किया था। उन्होंने पति पराक्रमके साथ
१५२८ ई० तक राजत्व चलाया। उन्होंने राजत्वकालमें
तुम कामाख्यापीठका उद्धारसाधन किया गया था।
फिर कामाख्याके षडुवर्ती बनेक पीठस्थान आविष्कृत
भी हुये। कौचविहारके प्रकृतपक्षमें राजा होते भी
कामरूप उस समय विखसिंहके शासनाधीन था।
कामरूपकी सीमा कौचविहार तक फैली हुई थी।
विखसिंहके समय अहोमोंने उजनिखण्ड पर आक्रमण
किया। विखसिंहने सैन्य भेज आक्रमण हटाया
था। किन्तु उनके सैन्यदलके उत्त स्थान हाइते हो
फिर अहोमोंने उत्पात उठाया। सुतरां विखसिंहने
बाध्य हो उनसे सन्धि की थी। उसी समय राष्ट्रगुप्त
कामरूप और विहार राज्यकी पूर्वोत्तमा माना
गया।

विखसिंहने डिमरुया प्रभृति स्थानोंके सकल
समतागाकी विप्लवत लोगोंको समीभूत कर लिया
था। फिर उन्होंने कपास, तांबे, रांगे, चीसे, हूपे, साने,
चांदी, लोहे, काँच, मिट्टी, नमक वगैरह पर कर
लगा राज्यका भाय बढ़ाया। उन्होंने समय भंडाल-
वाले सर्वदा उपद्रव उदाया करते थे। उन समय
भोटानमें देवराज राजा थे। विखसिंहने उनके
साथ सन्धि की। राज्यके सीमान्त-प्रदेशमें भ्रान्ति
रथाके त्रिये विखसिंहके सिपाही नियुक्त थे।

विखसिंहके १८ सम्मान रहे। उनमें नरनारायण
सर्वजगत्त थे। उनको ही सिंहासन मित्रा। उनके
परवर्ती कनिष्ठ भ्राता चित्ताराय वा यक्षध्वज राज्यके
दीवान या सेनापति बने। नरनारायणने महारदेशके
भ्राता रामरायकी कन्या कमनप्रिया प्राणीमे विवाह
किया था। किसी किसीके कथनानुसार यक्षध्वजका

* यह महारदेश की राजदेवके समकालिक थे। यह मुबारकोट रहे,
समकालिक, बादवर्ती देशवर्षमें चकार किया था। पता है कीरादेशकी
भानि बड़े भी हालवर्षमें विचवा परमार मान जाते हैं।

* प्राणीमे नाममें रामहरमणी पश्चिमका निवासी बड़े बड़े थे।
उसकी देवने से मान्य पड़ता है कि हरिदास नामक किसी प्राणीके
चौरस और होराके गर्भमें विद्यु वा विखसिंहका जन्म हुआ। रामहरमणी
महाराज नरनारायणकी कन्याके दंतित थे।

पर राजमहलमें स्वर्गनाभ किया। उनके साथ जो मन्त्री या दीवान् थे, वह कामरूपके काननूगो हुये। परीक्षितके चन्द्रनारायण नामक एक पुत्र थे। उन्होंने वर्षसे विजयनौके राजावोंकी उत्पत्ति है।

वसुतियारके सहयोगी मिनहाजुवहोनुने तबकात-२ नासिरी नामक अपने इतिहासमें लिखा है,—“लक्ष्मणावती अधिकांशके कई वर्षे पीछे (सम्भवतः ६०१ ईजरीकी) वसुतियार तिब्बत और तुर्कस्थान जीतनेकी प्रयत्न हुये। तिब्बत और लक्ष्मणावतीके मध्यवर्ती भूभागमें उस समय कौच, मेरु तथा तिहाइ (वर्तमान थारू) नामक तीन प्रधान जातिका वास था। कौचा और मेरुकी एक सरदार (तबकात-२-नासिरीमें इस सरदारका नाम मेरुका “अनो” लिखा है) वसुतियारसे चार गया। फिर उसने सुसज्जमान धर्मप्रवण किया था। वही प्रथमदर्शक वन वसुतियारको सैन्य वधनकोटकी राह बाधमतीके तीर ले गया। उस स्थानमें वह दस दिनमें पार्वत्य प्रदेशके किसी बीचसे भी अधिक मेहराबवाले प्रस्तर-सेतुके निकट पहुँचे थे। उस सेतुकी रक्षाके लिये वसुतियार एक दस सैन्य छोड़ जाने बड़े। सेतु पार होने पर कामरूपके रायने किसी विद्यासे व्यक्तिको भेज कक्षा भेजा कि उस समय तिब्बत पर आक्रमण करना युक्तिसङ्गत न था। उस समय लौट कर पश्चिम सैन्य संग्रह करना उचित था। फिर उन्होंने भी स्वीकार किया कि भागामी वर्ष वह अपना सैन्यदल से उक्त देश जीतनेका प्रयास उठावेंगे। वसुतियारने किन्तु उक्त प्रस्ताव माना न किया। उसके पीछे वह १६ वर्षे दिन तिब्बत पहुँचे। वहाँ युवादिके पीछे अपने सैन्यमें कुछ गड़बड़ हो जानेसे लौटनेकी वाध्य हुये। उनके लौटनेका मार्ग कामरूप और विदुनके मध्य तीस गिरिवर्णका एकतम था। फिर १६ दिन पनाहार पविद्यान्त चल उक्त सेतुके निकट जाने पर उन्हें उसके दो मेहराब टूटे मिले। सेतु रक्षाके लिये नियुक्त सैन्यदलमें दो भायकोंके मध्य विवाद बढ़ा था। इसीसे वह सख्यकार्य छोड़ चलते बने। फिर कामरूपके ईन्द्रने भी उसे तोड़ा था। पार जानिका लपय न देख वसुतियारने सैन्य एक देवमन्दिरमें आश्रय लिया।

फिर उन्होंने वेड़ा बांध कर पार होनेके लिये काष्ठाटिके संग्रह करनेकी चेष्टा की। कामरूपके राय उक्त संवाद सुन सन्तुष्ट बड़ा गया। उन्होंने मन्दिरका चारों ओर तीक्ष्णमुख संग्रहण गाड़ और उनमें धरनेबन्दो डाल सुसज्जमानोंके सैन्यका नियोजन रोकना चाहा। वसुतियारका सैन्य विपद् देख एक ओर तोड़ कर निकला और विजकुल नदीतीर पहुँचा था। कामरूपका सैन्य पीछे लगा। फिर प्रत्येकने प्राणभयमें घोड़ेके साथ नदीमें कूद कर पार जानेकी चेष्टा की। किन्तु नदीके मध्यस्थलमें पहुँच प्रायः सब डूब सर। केवल वसुतियार और कुछ घोड़े लोग प्रति कष्टसे प्राण बचा दूधरे पार पाये। उक्त कौच-सरदार असोने जा कर उन्हें उठाया और दोनाजपुरके देवकोटमें पहुँचाया।” बहानावाली एशियाटिक सोसाइटीकी पत्रिकाओंमें २० खण्डके २८१ पृष्ठ पर हाइटन साइबने सिलहाको नामक सेतुकी वर्णना इस प्रकार लिखी है,—“यह सेतु पश्चिम कामरूपमें गोहाटो पहुँचनेकी एक पुरानी लंबी राहके बीच पड़ा है। सम्भवतः इसी सेतुसे वसुतियार विजयी (मत्तान्तरसे वसुतियारके पुत्र सुभद्रद विजयी) तातारके भग्नारीको ले गोहाटीमें घुसे थे। कारण, यह गोहाटीके उत्तर-पश्चिम प्रान्तकी गिरिसालासे प्रति निकट अवस्थित है। इस पर्वत पर आज भी नगरप्रवेशके मार्ग और पथरचबोपयोगी बहिर्दुर्गके भग्नावशेषादि देख पड़ते हैं। किन्तु इसके विद्याप्र करनेका यथेष्ट कारण मिलता है कि वह मध्यप्रदेश-वसुतियार विजयीके तिब्बत-पथका सिलहाकोशका छद्म प्रस्तर-सेतु हो नहीं सकता।

उसके पीछे गौड़के नवाब गयास-उद्-दीन (१२१२-१० ई०) कामरूप जीतने गये। कामरूपसे मरिया नामक स्थान पर्यन्त उन्होंने जय किया और कर लिया था। किन्तु मरियाकी पूर्वओर पहुँच वह परास्त हुये। १२५०-५८ ई०को गौड़के सेनापति मलिक ऐबकने कामरूप पर आक्रमण किया था। उन्होंने वहाँ एक मसजिद बनवायी। किन्तु वह युद्धमें जयनाभ न कर सके। वर्षोंसे देग जनमें डूब जाने पर उनकी यथेष्ट सैन्यहानि हुयी। अन्ततः वह मर्या

दुरवस्थामें पड़ कर गौड़ नौटे। फिर १२५८ ई०की गौड़के नवाब तुगलक खान् स्वयं कामरूप पर चढ़े थे। कामरूपराजने उन्हें बांध कर मार डाला। यह निरूपित करना दुःसाध्य है, उस समय कामरूपमें कौन राजा थे। कामरूप जिनमें "वेदरगड़" नामक एक पुरातन गढ़ है। प्रशादानुसार १२०४ से १२५८ ई० बीच कोई सुसलमान-सेनापति कामरूप पर आक्रमण करने गये थे। उनके हाथसे देशकी रक्षा करनेके लिये फेगुवा नामक राजाने यह गढ़ बनवाया। परन्तु उसके पछले वैद्यदेवने उक्त गढ़ स्थापित किया था। फेगुवाके पीछे फिर सुसलमान वहां न पड़े। एक बार राजा नीनाभ्यरके समय गौड़के नवाब हुसैनशाहने (१४८८-१५०६ ई०) १२ वरसर भवरोध करनेके पीछे कामरूप पर अधिकार किया था। हुसैन शाह कामतापुर जीत कर स्वीयपुत्र नसरत शाहकी प्रतिनिधि बना बङ्गालकी नौटे। नसरत शाह कोचविहार-राजवंशके चादि-पुरुष विग्वंसिंहसे उधारकर भागे थे। फिर कामरूपके सोमारखण्ड (वर्तमान पासाम)में चहुंसुख वा खर्ग-नारायण राजा हुए। (१४८७-१५१६ ई०) उस समय तुरवक नामक किसी पठान-सेनापतिने कामरूपके पत्तगंत उजाई देग पर आक्रमण किया। पासाममें कलियाबर नामक स्थान पर युद्ध हुआ। युद्धमें तुरवक जीत थे। किन्तु खर्गनारायणके प्रधान मन्त्री कन्हैगने उनके विरुद्ध युद्धयात्रा की। यह तुरवकको पराजित कर करतीयाके अपर पार भगा गये थे। फिर विग्वंसिंहके पुत्र नरनारायणके समय कालियवने कामरूपमें गौहाटी तक पहुँच कर अनेक दिवालय नष्ट किये। परीक्षितनारायणके मरने पर टाकाके नवाबने

कामरूपके पत्तगंत जामोप्रदेग (परीक्षितका राज्य) ले लिया था। सुसलमान सेनापति मकरम खान् रांगामाटीमें रह उक्त प्रदेश पर शासन करने लगे। फिर बहुदेनीनक्षत्री नामक कोई व्यक्ति रांगामाटी गया था। उसके पीछे सेयट पचू बकर नामक एक व्यक्ति पासाम जीतने गये। तेजपुरके निकट भरनीमें युद्ध हुआ। युद्धमें पचूबकर मारे गये। उस समय कामरूपका अधिकांग पछोम राजाके, कुछ भाग रांगामाटीवाले सुसलमान शासनकर्ताके और कुछ भाग राजा टरंगके अधीन था। कुछ दिन पीछे मिर्जाबाद नामक रांगामाटीके किसी शासनकर्ताने पछोम राजाकोके हाथमें गौहाटी निकाल लेनेका यत्न किया। किन्तु वह बन न पड़ा। शेषको उनके परवर्ती बहरामवेग उसमें कृत-कार्य हुये। फिर क्रमशः मिर्जा रमन खान्, पबदुन-इसलाम शाह, इसलाम खान्, शेष बहराम खान्, शेष समदौ खान्, मकदूम इसलाम और मन्ही-उद्-दोन रांगामाटीके शासनकर्ता बने। उसी बीच मोमार्-ताम्बूली बड़बडुवा नामक किसी पासामी सेनापतिने एक बार अत्यल्प दिनके लिये गौहाटीका उधार किया था। किन्तु वह फिर छोड़नेकी बाध्य हुये। फिर मिर्जा जैन-उल-पायदीन, इसपखर खान्, नवाब नर-उल ला अनवर खान्, मिर्जा हुसैन खान्, जारो मियान्, सेयट हुसैन, सेयट कुतुब, मासुदा, प्रभृति कई लोगोंने कुल २६ वर्ष कामरूप पर शासन किया। उक्त शासन-कर्तावीमें कोई राजा, कोई रांगामाटी, और कोई गौहाटीमें रहता था। शेषको उस समय मसदा कामरूप जिना एक प्रकार सुसलमानोंके अधीन था। विजनीका राज्य और ग्वालपाड़ा जिन्हा भी सुसलमानोंके ही हाथ था। केवल टरङ्ग-राज आधीन रहे। किन्तु यह भी सुसलमानोंका प्रभुत्व मानते थे। १६५४ ई०की जयध्वज सिंह वा सुताम्ना रङ्गपुरमें पछोम-मिर्जामन पर बैठे। उनके किसी सेनापतिने गौहाटी अधिकार किया। १६६२ ई०की मीर जुमला कोचविहार जीतने गये। गौहाटीके पूर्व उजाई गढ़गांव तक उनका अधिकार हुआ। फिर मीर जुमला स्वयं पौडित हुये। उनके सेव्यमें भी

• इससे पहले इस प्रदेशके किसी प्तन पर कामतापुरके विरुद्धमें मसदा शाहके हाथसे विग्वंसिंह शाह कामतापुर वा कामरूपराजके उधार होनेकी बात लिखी जा चुकी है। फिर यहां लिखते हैं कि पछोम राजा खर्गनारायणके लक्ष्मी अमरेश्वर दरतीया तथा तुरवकके पीछे लगे थे। पचास पर तुरवक नामक किसी पठान सेनापतिने कामरूप जीतनेकी बात भारतवर्ष वा बङ्गालके दूसरे इतिहासोंमें नहीं लिखते। यह विषय पंथापत्तना के लिये समझ पड़ता है कि तुरवकके कामरूप आक्रमणकी कथा प्रमाणमय है। किंतु विग्वंसिंहके कोचविहार और कामतापुरमें रहते तुरवकके अनुयायकों के लिये यह भी पत्तगंत।

जाते प्राण नहीं उठाता। किसी कार्यवश कामाख्या-की चोर गमन करते समय कपड़ेसे मुँह छिपा लेते हैं।

मृत्युके पीछे विश्वसिंहका राज्य नरनारायण और शुकुध्वज दोनों पुत्रोंके मध्य बँटा था। नरनारायणको श्वरगंभीरीके पश्चिम तीर और शुकुध्वजको उसके पूर्व तीरका समस्त राज्य मिला। शुकुध्वजके अंगमें ही ब्रह्मपुत्रके उभय तीरका भूभाग पड़ा। सुतरां कामरूपमें भी उन्हींका अधिकार था।

शुकुध्वजके पीछे उनके पुत्र रघुदेवनारायण राजा हुये। उनके दो पुत्रोंमें बृहत्त परीक्षित थे। कनिष्ठका नाम प्रात नहीं। उन्हें जायगोरकी भति दरङ्ग प्रदेश मिला था। उनके वंशधर आज भी पासाम्भी राजाओंके अधीन उक्त प्रदेश अधिकार करते हैं। परीक्षितने समय राज्यके अधीश्वर ही गिलाभाङ्ग नामक स्थानमें प्रासाद बनाया। वहाँ राजप्रासादका भग्नावशेष आज भी देख पड़ता है। प्रासादके निकट ही १८ दुर्ग भो धने थे। उनकी सभामें नित्य ७०० घेदवारग ब्राह्मण उपस्थित रहते थे। फिर उक्त नगरमें ही ब्राह्मणोंका आवास था। परीक्षितके ही समयमें टाकेके सुसलमान शासनकर्ताने सुगलसम्प्राट्के प्रतिनिधित्वमें राजस्य मांगा था। फिर उन्होंने सतना भी गुरु किया। परीक्षितने भीत ही मन्थिवीसे परामर्श लिया था। फिर वह सम्प्राट्के पास आगरे गये। वहाँ सम्प्राट्ने उन्हें दरवारमें सादर पचप किया। टाकेके नवाब पर चादेश्य हुआ कि परीक्षित जितना रुपया राजस्यमें दें उतना ही वह ले लें, कोई दिहलिन न करें। राजाने नोट कर सरल गमने नवाबको दो करोड़ रुपये देने कहा। उनके मन्त्रीने यह चुन सुसलमानोंके पगलत चर्च-कोमकी बात बतायी। इससे वह मझाभीत ही गये। शेषको परामर्श करने पर स्थिर हुआ कि एक बार वह फिर सम्प्राट्के दरवारमें जा अन्न संशोधन कर पाते। एकते समय मन्त्री भी छाद्य हो गये। किन्तु दुर्भाग्यक्रमसे जाने समय पटनेमें (किसीके मतानुसारं राजप्रासादमें) राजा परीक्षित मर गये। इसी-सुयोगमें

नवाबको फौजने प्रतिश्रुत चर्चके सीमसे राज्य पर अधिकार कर लिया। परीक्षितके मन्त्री बनिक कटने सम्प्राट्के दरवारमें पहुँचे थे। उन्होंने जा कर समस्त विवरण निवेदन किया। सम्प्राट्ने उन्हें कानूनगोके पद पर नियुक्त कर विदा किया था। उस समय यह राज्य चार सरकारोंमें बँट गया—ब्रह्मपुत्रक उत्तर उत्तरकुल या टेंकेरी सरकार, दक्षिण दक्षिणकुल, पश्चिम बङ्गाल सरकार और गोहाटीके माय कामरूप सरकार। परीक्षितका भाइयराज्य दरङ्ग उन्हींके अंगमें रहा। परीक्षितके पुत्र चन्द्रनारायणने एक बड़ी जमीन्दारी भी पायी थी। वह जमीन्दारी आज भी उनके वंशीय मोगते हैं। प्राचीन मन्त्री (नये कानूनगो)को भी उनके निये बहुतसी जमीन्दारी मिली। उक्त घटना प्रायः १६०३ ई०में हुयी थी। एक सुसलमान फौजदार नियुक्त ही रांगामाटी नामक स्थानमें रहने लगे। फिर राजा मानसिंहके बङ्गाल-विहारके नवाब जाते समय १४ देशकी विजय उन्नति हुयी। औरङ्गजेबके समय मीरजुमना सेन्दस से आसाम जय करने भाये थे। उनके पीछे कामरूपराज्यके उक्त अंगसे कामरूप, उत्तरकुल और दक्षिणकुल सरकारका कुछ भाग पासामवासे राजाओंके अधिकारमें चला गया। उक्त घटनाके २० वर्ष पीछे रांगामाटीकी फौजदारी उठ घोड़ाघाटमें स्थापित हुयी।

मीरजुमलाके पालनचर्चके पीछे पासामके राजाओंमें हिन्दूधर्म पहचप किया था। फिर वह नाममात्र फौजदारकी अधीनता मान राजत्व करने लगे।

नरनारायण और शुकुध्वज उभयके मध्य राज्य-विभागको बात पचले सिद्ध हुके हैं। किन्तु शुकुध्वजके जीवित कालमें राज्यविभाग हुआ न था। शुकुध्वजके मरनेके पीछे नारायण पपुत्रक थे। इसीसे उन्होंने शुकुध्वजके पुत्रे रघुदेव नारायणको पोषपुत्र मान पचप किया। उसके कुछ दिन पीछे उनके एक पुत्र हुआ। रघुदेवको उभयसे भविष्यत्में राज्यप्राप्तिकी आशा न रही। इससे वह भीतर ही भीतर विद्रोहाचरचमें प्रवृत्त हुये। संसने

विद्रोह होनेकी सूचना मिली थी। इसीमे वह राजा जयध्वजसे सन्धि कर लौट गये। मजूम खान् अधिष्ठत प्रदेशमें शासनकर्ता रहे। उनके पीछे मसौद खान् और सैयदकीराज खान् उक्त प्रदेशके शासनकर्ता हुये। अहोमराज चक्रध्वज सिंहके निकट राजस्व वसूल करनेके लिये उनका दूत गया था। उन्होंने उसे अपमान कर निकाल दिया और गोहाटी पर्यन्त स्थान अधिकार किया। दिक्षीखरने क्रुह हो १६६८ ई० के समय राजा रामसिंहकी मीजा था। रामसिंहने जा गोहाटी पर अधिकार किया। फिर वह उनरके अभिसुख अपसर हुये। उस समय कामरूपके सीमान्तस्थानमें बड़फूकन उपाधिधारी कोई शासनकर्ता रहते थे। १६२० ई०को स्वर्गनारायणने उस पदकी शक्ति की थी। वह सीमान्तस्थानमें रह अहोम राज्यका विदेशीय आक्रमण रोकते थे। राजा चक्रध्वजके समय साक्षित बड़फूकन रहे। वह उक्त मोमार्दे-तामूलो फूकनके पुत्र थे। साक्षित बड़फूकनने राजा रामसिंहकी गर्वित वचनसे कहला मीजा कि १६६२ ई०को मीरजुमसा रणमें हार, अहोमराजसे सन्धि कर गये थे। उस समय अहोमराज न तो दिक्षी-सम्राटके अधीनस्थ रहे और न उन्हें राजस्व देनेकी प्रस्तुत थे। साक्षित बड़फूकनका उदय याव्य सुन सुसमामांकीका सेन्य युद्धकी अपसर हुआ। १६६८ ई० को औरंगजेबकी सेनाके साथ कामरूपके शासनकर्ता साक्षित बड़फूकनका घोरतर संघाम साराघाट नामक स्थानमें पड़ा। उस संघाममें सुसममानसेन्य पराभूत ही भागा। अहोम-सेन्यने मानदा नदी तक उसका पीछा किया। उसी समयसे मानदा नदी अहोमराज्यकी पश्चिम सीमा मानी गयी। अहोमराजने नदीतीर पर चायोरात नामक स्थानमें एकदल सेन्य रखा था। १६०१ तकमें पर्याय १६०८ ई० को दिक्षीमे फिर सेन्य गया। उस समय अहोम-शासनकर्ता भीतस्रभाव गोला बड़फूकन थे। उन्होंने कलियाघर पर्यन्त देश सुसमामांकी दे सन्धि की। उसके पीछे १६०८ तककी सन्धिकी बड़फूकनने निरुपद्रव गोहाटीका उच्चार किया।

फिर दूसरे वर्ष मंजूर खान् नामके एक नयाव युद्ध करने गये थे। गोहाटीके निकट गच्छेश्वरके इट-खोलिमें भयानक युद्ध हुआ। उस युद्धमें परास्त हो सुसममान रांगामाटो, राजो, गोहाटी और कामरूपकी सीमा तक छोड़ कर भागने पर बाध्य हुये। कामरूप सम्पूर्णरूपसे अहोमराजके अधिकारमें पड़ गया। फिर दिक्षीके बादशाह हीनप्रभ हुये। बहामने भंगरेजी, प्रोसन्दाजा, फरामीसियां, पोर्तगीजी प्रभृति सुदूर युरोपवासियोंका उपद्रव बढ़ा था। इसीमे नवाबोंकी भी कामरूपकी वात भोचनेका समय वा पदकाग न मिला। अहोमराज निरुपद्रव कामरूप भोगने लगे। गोला बड़फूकनके सन्धिपत्रमें कामरूप राजका नाम लिखा था। उस सन्धिपत्रकी अक्षम-राजने अक्षम किया। इसीमे कामरूप राजका नाम लोप हो गया और यह आसामका अन्तर्गत प्रदेश बना।

आसाम देशके राजका अहोम नाम है। पनेकीके अनुमानमें वह शान वंगके लोग हैं। वह आसामकी पूर्वधर्ती पर्वतमाता अतिक्रम कर ई० तयोटाग गताष्टके प्रारम्भमें मध्य और श्यामदेशसे सीमारपीठ राजत्व करने पड़ते थे। फिर आसामका राज स्वयंपित हुआ। दूसरा समकक्ष न माना जानिसे उक्त राजका नाम 'असम' पड़ा था। कामरूपसे म के स्थानमें उ नग जानिसे लोग अहम वा अहाम कहने लगे। अब उसका परिणत नाम आसाम है। पूर्वकाल अहाम लोग हिन्दू न थे। वह अहोमदेश नामक देवताकी पूजते रहे। राजत्व स्थापनके कुछ काल पीछे उन्होंने हिन्दूधर्म ग्रहण किया और अपनेकी स्वर्गके राजा इन्द्रका वंगोद्व बताना दिया। पहले ही लिख चुके हैं कि योगिनीतन्त्रमें बड़ इन्द्र-वंगोद्व 'सोमार' नामसे अभिहित हैं।

११५१ शकाब्द (१२२६ ई०) को चुकाफा नामक कोई प्रतापशाली अति समर्थ पूर्वदिक्षे अपसर हुये थे। फिर उन्होंने बादिम निवासी कुटियावा और बराहियोंकी जीत आसामके पूर्वभागमें राज्य स्थापन किया। पीछे उनके वारह पुत्र क्रमसे राजा

दुरवश्यामें पड़ कर गौड़ नीटे। फिर १२५८ ई०की गौड़के नयाव सुगन्धक खान् स्यं कामरूप पर चड़े थे। कामरूपराजने उन्हें बांध कर मार डाला। यह निन्दित करना दुःसाध्य है, उस समय कामरूपमें कौन राजा थे। कामरूप जिनमें "वेदरगड़" नामक एक पुरातन गढ़ है। प्रयादानुमार १२०४ से १२५८ ई० ५५ वर्षोंको सुमनमान-सेनापति कामरूप पर आक्रमण करने गये थे। उनके हाथसे देशकी रक्षा करनेके लिये फेंगुवा नामक राजाने यह गढ़ बनवाया। परन्तु उसके पड़ने सेयदेशमें उल्ल गढ़ स्थापित किया था। फेंगुवाके पीछे फिर सुमनमान वहां न पड़ें। एक बार राजा नीलाख्यरके समय गौड़के नयाव हुसैनगहने (१४८८-१५०६ ई०) १२ वात्सर अवरोध करनेके पीछे कामरूप पर अधिकार किया था। हुसैन गह कामतापुर जीत कर श्लोयपुत्र नसरत गहकी प्रतिनिधि बना सद्गानको नीटे। नसरत गह कौचविहार-राजवंशके चादि-पुत्र विखसिंहसे हारकर भागे थे। फिर कामरूपके सौमारखण्ड (वर्तमान पासाम)में चहुँसुगु वा खर्ग-नारायण राजा हुए। (१४८७-१५३६ ई०) उस समय तुरवक नामक किसी पठान-सेनापतिने कामरूपके चत्तर्गत उजाई देग पर आक्रमण किया। पासाममें कलियावर नामक स्थान पर युद्ध हुआ। युद्धमें तुरवक जीत थे। किन्तु खर्गनारायणके प्रधान मन्त्री कन्धेगने उनके विरुद्ध युधयाया की। यह तुरवकको पराजित कर करतोवाके अपर पार भगा गये थे। फिर विखसिंहके पुत्र नरनारायणके समय कालियवनने कामरूपमें गौहाटी तक पहुँच कर अनेक देवालय गढ़ किये। परीचत्तनारायणके मरने पर टाकाके नयावने

कामरूपके चत्तर्गत हाजोपदेग (परीचत्तका राज्य) ले लिया था। सुमनमान सेनापति मकरम खान् रांगामाटीमें रघ उल्ल प्रदेश पर शासन करने लगे। फिर बहूदेनीनन्तो नामक कोई व्यक्ति रांगामाटी गया था। उसके पीछे सैयद चन् बकर नामक एक व्यक्ति पासाम जीतने गये। तेजपुरके निकट भरनीमें युद्ध हुआ। युद्धमें चन्बकर मारे गये। उस समय कामरूपका अधिकार पक्षोम राजाके, कुछ चंग रांगामाटीगामे सुमनमान शासनकर्ताके और कुछ चंग राजा टरंगके अधीन था। कुछ दिन पीछे मिर्जाशद नामक रांगामाटीके किसी शासनकर्ताने पक्षोम राजाकी हाथमें गौहाटी निकाल लेनेका यत्न किया। किन्तु वह बन न पड़ा। शैयको उनके परिवर्ती बहरामशेग उसमें छत-कार्यं हुये। फिर क्रमशः मिर्जा रमन खान्, चबदुन-इसलाम गह, इसलाम खान्, शैख बहराम खान्, शैख समस्तौ खान्, मकदूम इसलाम और मशौ-बद-दीन रांगामाटीके शासनकर्ता बने। सभी बौध मोमार्-तामूलो बड़बड़वा नामक किसी पासामी सेनापतिने एक बार अत्यन्त दिनके लिये गौहाटीका उधार किया था। किन्तु वह फिर छोड़नेको बाध्य हुये। फिर मिर्जा जैन-उस-पावदीन, इसपखर खान्, नयाव नूर-उस मा अनवर खान्, मिर्जा हुसैन खान्, जारो मियान्, सैयद हुसैन, सैयद कुतुब, माखुना, प्रथति कई लोगोंने कुल २६ वर्ष कामरूप पर शासन किया। उल्ल शासनकर्ताओंमें कोई हाजा, कोई रांगामाटी, और कोई गौहाटीमें रहता था। शैयको उस समय ममद कामरूप जिना एक प्रकार सुमनमानोंके अधीन था। विजनीका राज्य और ग्वालवाड़ा जिन्हा भी सुमनमानोंके ही हाथ था। शैयन दरङ्ग-गाल स्थापित रहे। किन्तु यह भी सुमनमानोंका प्रमुख मार्ग थे। १६५४ ई०की जयध्वज सिंह या सुतामूल रङ्गपुरमें पक्षोम-मिर्जासम पर बैठे। उनके किसी सेनापतिने गौहाटी अधिकार किया। १६६२ ई०की और सुमना कौचविहार जीतने गये। गौहाटीके पूर्व उजाई गढ़गांव तक उसका अधिकार हुआ। फिर और सुमना स्वयं पीड़ित हुये। उनके सैन्यमें भी

• इससे पहले इस प्रदेशके किसी अन्य पर कामतापुरके विरुद्धमें ममद गहके हाथमें विखसिंह हावा कामतापुर वा कामरूपराजके उजाई देगेके बान बिलो जा चुके थे। फिर यहां स्थिति है कि चकोमगान खर्गनारायणके मन्त्री कन्धेग हारतोवा तक तुरवकके नीचे लगे थे। दवाखर पर तुरवक नामक किसी पठान सेनापतिके कामरूप औरतेके बान भारतवर्ष या पठानके हुकर प्रतिहासीने नहीं लिये। यह लिये पर्याप्तका कारणसे यत्न करना है कि तुरवकके कामरूप आक्रमणकी सहा करतुमात्र है। और विखसिंहके कौचविहार और कामतापुरमें रहने तुरवकके चतुरवकको बलबैत भी लगे।

नारायण कोषहाजी प्रदेशमें भीर लक्ष्मीनारायण कोषविहारमें राजत्व करते थे। पाटगाहननामा लक्ष्मीनारायणको परीक्षितके पितामहका सहीदर बतसाता है। जहांगीरके राजत्वके दस वर्ष सुषुद्धके राजा रघुनाथने परीक्षितके विरुद्ध दरबारमें पञ्चयोग लगाया कि उन्होंने उनके परिवारवर्गका पयरोध किया था। शिव अना-उद्-दीन फतेहपुरी इसलाम खान उस समय बङ्गालके नवाब रहे। उन्होंने मकराम खानको कोषहाजी जीतने भेजा था। लक्ष्मीनारायणने सुसलमानोंके पक्ष पर योग दिया। युद्धमें पराजित हो परीक्षितने आत्मसमर्पण किया था। फिर उनके भ्राता बलदेवने अहमदराज स्वर्गदेवका प्रायय लिया। उसके पीछे परीक्षित सखाटके आदेशानुसार दिल्ली भेजे गये और मकराम खान हाजीके शासनकर्ता नियुक्त हुये।

बलदेव आसामराजकी सहायतासे हाजीके उद्यारथ यत्न करने लगे। अहमदराज स्त्रीय अधीनता स्वीकार करा उनका साहाय्य करने पर प्रतिश्रुत हुये। मकरामखान उन्ही समय शासनकर्तृत्वसे हटे थे। उनके स्थान पर कोई नूतन शासनकर्ता पानेवाला था। इसी अवसरमें सुयोग देख बलदेवने दरङ्ग अधिकार किया। उस समय इस देशमें बङ्गालके नवाबकी भीरसे हाथी-खेदाकी रक्षा करनेको जागोरदार पायक रहते थे। कासिम खानने बङ्गालके नवाब रहते समय बहुत दिन तक हाथियोंकी आमदनी न पायी थी। उन्होंने हाथी-खेदाके सरदारको उपस्थित होनेका आदेश दिया। उपस्थित होने पर नवाबने उन्हें बन्दी बनाया। उनमें मन्तीय भीर जयरामने भाग कर आसामराज स्वर्गदेवका प्रायय लिया था। फिर इसलाम खान नवाब हुये। उस समय पाण्डुके पत्नीवारी यानेदार शत्रुजित् बलदेवसे मिला गये। उन्होंने उनकी हाजीके शासनकर्ताके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये गोपनमें परामर्श दिया था। बलदेव कोषा भीर पाषामिथीका सैन्य ले बुद्ध करनेको उपस्थित हुये। १६११ ई० की इसलाम खानने यह बात सुनी। उन्होंने कई मनघवदारोंको १००० सवार, १००० बन्दूकवासे पैदल, १० घराब नामक गौका, २००

कोषा* नौका और बहुरूप्यक जलवाह नौकाके साथ भेजा था। श्रीघाट भीर पाण्डुके निकट महा-युद्ध हुआ। उभय पक्षमें मरते भीर घायल होते भी युद्ध चलता रहा। इसलाम खानने फिर दिगुण सैन्य भेज दिया। किन्तु उसी समय फिर पाण्डुने बलदेवका पक्ष लिया था। इसमें सुसलमानों सेनाकी रसद बन्द हो गयी। इसलामखानने संवाद सुन रसद भेजी। किन्तु उसके पट्टुचनेमें विफल लगा था। उसी समय बलदेव समन्य श्रीघाट और पाण्डु, छोड़ हाजीके पञ्चमुख चले गये। फिर उन्होंने राज्य पयरोध कर रसद पट्टुचनेकी राह रोक दी। हाजीके शासनकर्ता अहमद-उस्-सलामको स्त्रीय भ्राताके (यही प्रधान सेनापति बन टाकैसे पाये थे) साथ विपक्ष गिरिवरमें सन्धिका प्रस्ताव करनेके लिये जाना पड़ा। किन्तु वह सदन बांध कर पाषात भेजे गये। उनके भ्राता सैयदने बलपूर्वक शत्रुगिरिवरसे निकलनेकी चेष्टा की थी। किन्तु विफल होने पर वह सदन मारे गये। उसके पीछे भीर पत्नी सेनापति हुये। इसी बीचमें ब्रह्मपुत्रके उत्तरकूल राजा चन्द्रनारायण पर सुसलमानोंने आक्रमण किया। चन्द्रनारायण भीत हो दक्षिणकूलके परगने सोलामारीकी भागे थे। सोलामारीके जमीन्दार चन्द्रनारायणके भयसे सुसलमानोंमें जा मिले। सुसलाम उसकी पीछे गुप्तगद्द शत्रुजित्के अनुसन्धान करनेकी धुबड़ी पट्टुचे थे।

शत्रुजित् राय भूपयवासे जमीन्दार (राजा) मुकुन्दरायके पुत्र थे। सखाट जहांगीरके समय शिव अना-उद्-दीन बङ्गालके शासनकर्ता रहे। उस समय उन्होंने मुकुन्दरायके हो अधीन एक दन सैन्य भेज एक बार हाजीप्रदेश पर अधिकार किया था। मुकुन्दराय युद्धमें जीतने पर पाण्डु और गोहाटीके यानेदार बने। उन्ही सुयोगमें पाषामिथीके साथ

* उस समय इरावार नौका जलपुर्षमें दुबरीतकी आदि व्यवहन होती थी। नौका नौकामें एक सट्टक लगता है। फिर उसमें बांध बहुत रहते हैं। उस नौकाके माथापरी कोम नहीं होती, दुबरी नौका (बड़ी) होनेसे हाइके चारों तरफने जाती है। नौका के जाते हैं।

विद्रोह होनेकी सूचना मिली थी। इसीसे यह राजा जयध्वजसे सन्धि कर लौट गये। मजूम खान् अधिकृत प्रदेशमें शासनकर्ता रहे। उनके पीछे मसीद खान् और सैयदकीरान खान् उक्त प्रदेशके शासनकर्ता हुये। अहोमराज चक्रध्वज सिंहके निकट राजस्व वसूल करनेके लिये उनका दूत गया था। उन्होंने उसे पचमान कर निकाल दिया और गोहाटी पर्यन्त स्थान अधिकार किया। दिल्लीखरने क्रम ही १६६८ ई० के समय राजा रामसिंहको भेजा था। रामसिंहने जा गोहाटी पर अधिकार किया। फिर वह उत्तरके पश्चिमवर्त अथवा उत्तर हुये। उस समय कामरूपके सीमान्तस्थानमें बड़फूकन उपाधिधारी कोई शासनकर्ता रहते थे। १६२० ई०को स्वर्णनारायणने उस पदकी सृष्टि की थी। यह सीमान्तस्थानमें रह अहोम राज्यका विदेशीय आक्रमण रोकते थे। राजा चक्रध्वजके समय नाक्षित बड़फूकन रहे। वह उक्त सीमान्तस्थानमें फूकनके पुत्र थे। नाक्षित बड़फूकनने राजा रामसिंहको गर्वित वचनसे कहना भेजा कि १६६२ ई०को मौरसुसला रणमें हार अहोमराजसे सन्धि कर गये थे। उस समय अहोमराज न तो दिल्ली सम्राटके अधीनस्थ रहे और न उन्हें राजस्व देनेकी प्रवृत्त थे। नाक्षित बड़फूकनका सदैव वाक्य सुन सुसलमामाँका सैन्य युद्धको अथवा १६६८ ई० की औरंगजेबकी सेनाके साथ कामरूपके शासनकर्ता नाक्षित बड़फूकनका घोरतर संपाम साराघाट नामक स्थानमें पड़ा। उस संपाममें सुसलमानसैन्य पराभूत हो भागा। अहोमसैन्यने मानदा नदी तत्र उसका पीछा किया। उसी समयसे मानदा नदी अहोमराज्यकी पश्चिम सीमा माने गयी। अहोमराजने नदीतीर पर हाचौरात नामक स्थानमें एकदल सैन्य रखा था। १६०१ शकमें अर्थात् १६०८ ई० की दिल्लीसे फिर सैन्य गया। उस समय अहोम-शासनकर्ता भीतसमाप्त गोला बड़फूकन थे। उन्होंने कलियावर पर्यन्त देश सुसलमामाँकी दे सन्धि की। उसके पीछे १६०८ शककी मन्दिनी बड़फूकनने निरुपद्रव गोहाटीका उद्धार किया।

फिर दूसरे वर्ष मंजूर खान् नामके एक नयाव युद्ध करने गये थे। गोहाटीके निकट युद्धकरके इट-खोसेमें भयानक युद्ध हुआ। उस युद्धमें परास्त हो सुसलमान रांगामाटो, हाजो, गोहाटी और कामरूपकी सीमा तत्र छोड़ कर भागने पर बाध्य हुये। कामरूप सम्पूर्णरूपमें अहोमराजके अधिकारमें पड़ गया। फिर दिल्लीके बादशाह हीनप्रभ हुये। बहामनी अंगरेजों, पोन्नन्दार्जों, फरामीसियों, पोर्तूगोर्जों प्रभृति सुदूर युरोपवासियोंका उपद्रव बढ़ा था। इसीसे नवाबोंकी भी कामरूपकी वात मोचनेका समय वा अवकाश न मिला। अहोमराज निरुपद्रव कामरूप भोगने लगे। गोला बड़फूकनके सन्धिपत्रमें कामरूप राजका नाम लिखा था। उस सन्धिपत्रको अहोम-राजने अघाघ किया। इसीसे कामरूप राजका नाम खोप हो गया और यह आसामका अन्तर्गत प्रदेश बना।

आसाम देशके राजका अहोम नाम है। अनेकोंके अनुमानमें यह शान वंशके लोग हैं। यह आसामकी पूर्ववर्ती पर्यन्तमासा पत्तिक्रम कर ई० त्रयोदश शताब्दके प्रारम्भमें ब्रह्म और ज्वालामुखसे सीमारण्डे राजत्व करने पड़े थे। फिर आसामका राजा स्थापित हुआ। दूसरा समकक्ष न माना जानेसे उक्त राजका नाम 'असम' पड़ा था। कामरूपसे म के स्थानमें ह नग जानेसे लोग अहम वा अहोम कहने लगे। अब उसका परिष्कृत नाम आसाम है। पूर्वकाल अहोम लोग हिन्दू न थे। वह अहोमदेव नामक देवताकी पूजते रहे। राजत्व स्थापनके कुछ काल पीछे उन्होंने हिन्दूधर्म ग्रहण किया और अपनेकी स्वर्गके राजा इन्द्रका वंगोद्वय बना दिया। पहले ही लिख चुके हैं कि योगिनीतन्त्रमें यह इन्द्र-वंगोद्वय 'सोमार' नामसे परिचित हैं।

११५१ शकाब्द (१२२६ ई०) की चुकाका नामक कोई प्रतापशाली अर्थात् सैन्य पूर्वदिकसे अथवा हुये थे। फिर उन्होंने आदिम निवासी कुटियावाँ और बराहियोंकी जोत आसामके पूर्वभागमें राजा स्थापन किया। पीछे उनके बारह पुत्र क्रमसे राजा

नारायणको सब बात मालूम हो गयी। फिर रघुदेव भाग कर पूर्वाञ्चलके गढ़वाँसे मिले और उनका सेन्य ले ज्येष्ठभ्राताके राज्य प्राप्तमार्थ्य था पहुँचे। नारायण भी स्वराज्य रक्षार्थ्य ससेन्य भ्रमसर हुये। स्वर्णकोपी नदीके पूर्व पार रघुदेव और पश्चिम पार नारायणकी छावनी पड़ी थी। नारायण स्वयं भ्रमरारोही सेन्य ले प्रागे बढ़े। रघुदेव भीत हो ससेन्य भागे थे। नारायणने पापेप कर कहा,—“दुःख है कि-हम राज्य देनेके लिये ही भाये थे। किन्तु यह बात न हुयी। इस लिये यह नदी ही अब दोनों राज्य सीमा रहगी।” आधुनिक आसामको बुरखीके मतमें उक्त घटना १५०३ तककी हुयी थी। रघुदेवके राज्यकी सीमा पश्चिम स्वर्णकोपी एवं पूर्व दिकराई और नारायणके राज्यकी सीमा पूर्व स्वर्णकोपी पश्चिम करतोया थी। रघुदेवने ग्वालपाड़े जिलेके जोयार परगनेमें आधुनिक गौरीपुर नगरसे १० मील दूर गदाघरनदीके तीरे नगर स्थापन किया था।

शुक्रध्वजके जीते समय कामाख्याका मन्दिर फिरसे बना था। मन्दिर समाप्त होनेमें १० वर्ष लगे। किन्ती पश्चिमी हिन्दुस्थानीने उसे बनाया था। मन्दिरके पूर्व द्वारके सम्मुख उक्त केन्दुकलाई पुरोहितके द्विष मुण्डकी प्रतिमूर्ति वर्तमान है। शुक्रध्वजके जीवित कालमें नरनारायण एक बार अनिष्ट हुये थे। ज्योति-पियोंने गणना कर उक्त कथा कहदी। फिर नरनारायणने शुक्रध्वजको राज्यका प्रतिनिधि बना हीययात्वा की थी। प्रायः एक वर्ष पीछे यह लोटे। उक्त भ्रमणके समय आसामराज्यके ज्येष्ठहस्ती पर उनको शोभ बढ़ा। शुक्रध्वजको यह खबर लग गयी। यह भ्राताकी दक्षिके लिये आसामराजको युद्धमें परास्त कर हायी ले भाये थे। अनेकके कथनानुसार उक्त घटनासे ही उनका नाम “शुक्रध्वज” हुआ।

आधुनिक बुरखीके मतमें १५०६ तककी नर-नारायण मरे थे। फिर उनके पुत्र सञ्जीनारायणके राज्य मिला। स्वर्णकोपीसे महानन्दा और सरकार घोडाघाट तथा मोटानके दक्षिणस्व पार्वत्य प्रदेश तक समस्त भूभाग उनके राज्यके अन्तर्गत था। उक्त राज्य

पश्चिमोत्तरसे दक्षिणपूर्व तक ८० मील दीर्घ और पूर्वोत्तरसे दक्षिणपश्चिम तक ६० मील विस्तृत रहा। उत्तर पश्चिममें कछटा सीमान्त प्रदेश शिवसिंह (उक्त हीरा और लीराके मध्य लीराके पुत्र) के सन्तानोंको दिया गया। सञ्जीनारायण अपने राज्यको पहलसे ही “विहार” कहते थे। कारण शिव हीरा और लीराके साथ विहार करते थे। किन्तु मध्यदेशके वर्तमान विहार (पटना) प्रदेशसे स्वतंत्रता दिखानेके लिये “कोचविहार” नाम रक्खा गया।

फ्राईन-भकवरीके पतुसार सञ्जीनारायणने भक-वरकी वधता मानी थी। उनके समय राज्यकी सीमा उत्तरमें तिब्बत, दक्षिणमें घोडाघाट, पश्चिममें विष्णु और पूर्वमें ब्रह्मपुत्र थी। भूमिका परिमाण-फल देव्यंमें प्रायः २०० कोस रहा। उनके ४००० भ्रमरारोही सेन्य, २ लाख पदाति, ७०० हस्ती और १००० जहाज थे। फिर फ्राईन-भकवरीमें सञ्जीनारायणके पिताका नाम शुक्रगोस्वामी लिखा है। शुक्रगोस्वामी नहीं, उनके कनिष्ठ भ्राता बाल-गोस्वामी राजा थे। उन्होंने विवाह न किया था। हमसे उनके सन्तान कोई न था। बालगोस्वामी प्रति सुविन्न राजा थे। उन्होंने अपने भ्रातृपुत्र पाटकुमारको राज्याधिकारी ठहराया। शुक्रगोस्वामीने दूसरा विवाह किया था। उसीसे सञ्जीनारायणका जन्म हुआ। पाटकुमार विद्रोही बने थे। उसी समय मानसिंह बङ्गालके नवाब रहे। सञ्जीनारायणने मानसिंहसे सम्राट्के निकट परिचित होनेको प्रार्थना की। किन्तु मानसिंहने यह बात न सुना। मानसिंहने उनकी एक कन्याका पापिपद्यण किया था। बाल-गोस्वामीने १५७८ ई० को एक बार बङ्गालके नवाबकी अधीनता मान दरवारमें ५४ हाथियोंके साथ विहार उपटोकन दिया। सञ्जीनारायण १५८६ ई०में राजत्व करते थे।

ताजक-जहांगीरके पतुसार सञ्जीनारायणने १६१८ई०को गुजरातकी राजसभामें ५०० चमरकी नजर भेजी थीं।

बादशाहनामिको देखते जहांगीरके समय परीक्षित

हुये। उन्होंने अपने राजविस्तार और किसी किसी पाटिल मित्रों की जातिके साथ युद्ध करनेको छोड़ दूसरा कोई योग्य कार्य न किया। फिर १४१८ तकको चुंगुंगराज राजा या हिन्दू बने और स्वर्ग-नारायण नामसे ख्यात हुये। वह भी कोई कीर्ति छोड़ न गये। पीछे उनके पुत्र और पोत्र राजा हुये। उन्होंने भी सिधने योग्य कोई कार्य न किया। फिर १५३३ तकको च्छेगकाने राजा पाया था। हिन्दू मतसे उनका नाम बुद्धिस्वर्गनारायण वा प्रसाद सिंह रखा गया। उन्होंने उक्त देशमें दुर्गासिंह और स्वर्ण एवं रौप्यकी मुद्राका प्रचार किया। उन्हींके शासनकाल १५४८ तकको कामरूपके शासनकर्ताके पासाम पाक्रमण करने पर युद्ध हुआ। उसमें मैयट मारे गये। गौहाटी पासामराजके हाथ लगे। उन्होंने बहुत मार्ग और घाट बनवा पासामकी सचति की थी। देवमन्दिर और ब्राह्मणके प्रति-पालनार्थ भूमि देनेकी गौरव उन्हींके समय हुई हुयी। मरने पर उनके ज्येष्ठ और फिर कनिष्ठपुत्र सिंहासन पर बैठे। किन्तु वह दोनों अत्यन्त हठदृष्टी थे। इसीसे मन्त्रियोंने उन्हें राजश्रुत किया। उसके पीछे पुत्रमत्ता या जयध्वज राजा हुये। वह पराक्रमी राजा रहे। उन्होंने पासामकी बहुत सचति की। १५७० ई० की मीरजुमना और मजूम खान् दोनोंने पासाम पर आक्रमण किया। पासामराज पराभूत हो मन्त्रि करने पर बाध्य हुये। उनके मरने पर च्यंगराज या चक्रध्वज सिंहको राजा मिला। उन्होंने मन्त्रिके अनुसार कर न दिया और बादशाहके दूतका अपमान किया। इस कारण बादशाह औरगञ्जकी ब्राह्मण राजा रामसिंह पासाम पर चढ़े थे। किन्तु वह युद्धमें हार भागनेको बाध्य हुये। इसलिये कामरूप फिर पासामराजके हाथ लगा। राजधानी ऊपरी पासाममें थी। वहाँसे दूरस्थ कामरूपका शासन-कार्य अच्छी तरह चलना कठिन था। इसीसे राजाने गौहाटीमें एक बड़फूकन बर्षात् अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। उनके मन्त्रपागारका चिह्न अर्थात् यतमान है। पीछे उनके आता चुम्पतका या

उदयादित्य राजा हुये। उनके मरने पर तदभ्यास चक्रध्वज या रामध्वज सिंहने सिंहासनारोहण किया। उनके पीछे हीनेवाले चार राजावोंने हिन्दू धर्म या हिन्दू नाम रखा न था। उनमें से राजा चुतयका १६०१ तकको कामरूप प्रदेश सुमनसामोके हाथ समर्पण करनेको बाध्य हुये। उनके मरने पर बुलिकफा या लहराजाको राजा मिला। मन्त्रियोंने उन्हें सिंहासनसे हटा चामुण्डरीयवर्गीय युवातका या गदाधर सिंहका अभिषेक किया था। वह हिन्दू न थे। हिन्दू और हिन्दूधर्म दोनोंसे उन्हें बड़ी छुपा रहने। ब्राह्मणोंने उनका विजातीय विदेष था। फिर उन्होंने अनेक ब्राह्मणोंको नगरसे निकाल भी दिया था। वह वलवान् और हठदृष्टीय पुरुष थे। मय-मांस विना रहना उनके लिये असम्भव था। भेक और गोमांस उनका प्रधान खाद्य रहा। वह कहते थे कि हिन्दूधर्म ही अहोम संघके पतनका कारण होगा। वह हिन्दूधर्म मानते न थे। इसीकारण उन्होंने कोई हिन्दू देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा न की। किन्तु गौहाटीके निकट ब्राह्मणपुत्रमध्यस्थित भग्नाचल पर्वत पर उमानन्द-शिवका मन्दिर उन्हींके राजत्वकालमें प्रतिष्ठित हुआ। वह अर्थात् यतमान है। उनके राजत्वकाल १६०५ तकको सुसरामागोने फिर पासाम पर आक्रमण किया था। किन्तु युद्धमें हार कर वह पासाम छोड़ने पर बाध्य हुये। पासामराजने गौहाटीमें राजधानी स्थापन कर एक बड़फूकन भेजा था। उनके मरने पर ज्येष्ठपुत्र चुसरंगका या रुदनाय सिंह राजा हुये। उनके पिता जैसे हिन्दू और हिन्दूधर्मविदेषी रहे, वह जैसे ही हिन्दूधर्मपरायण और ब्राह्मणभक्त बने। उन्होंने अनेक ब्राह्मणोंकी भूमि दी और देव-मन्दिरोंकी स्थापना की। उन्हींके पादशासुनार शिव-सागरके पश्चिम नामहांग नदी पर बना हठ् और सुदृढ़ प्रसारमय सेतु अर्थात् विद्यमान है। उस पर अनेक हस्तो, पत्त और मनुष्य गमनागमन करते हैं। तदभिव उनके स्थापित अनेक देवमन्दिर भी यतमान हैं। उन्होंने ब्रह्मणसे मायक और वायक से जाकर अपने देशमें बंगला मोत-वायका प्रचलन बढ़ाया था।

वह गङ्गा नदीकी निज देशान्तर्गत करनेके पश्चि-
 मायसे बङ्गदेश पर घटनेकी समेन्य गुहयात्रापुर्वक
 गोहाटीमें उपस्थित हुये। किन्तु दुर्भाग्यवश वहाँ
 उनको रोग लग गया। फिर कालके कराल कवलमें
 पड़नेसे उनका पश्चिमाप सिद्ध न हुआ। उनके पुत्र
 सुतनफा या शिवनाथ सिंहको सिंहासनका अधिकार
 मिला था। चासामके समस्त देवोत्तर, ब्रह्मोत्तर वा
 अन्यप्रकार निष्कार भूमिमें अधिकांश उन्हींका प्रदत्त
 है। उनकी पट्टमहिषी फूलेश्वरी वा प्रथमेश्वरीके
 पादेशानुसार गौरीसागर नामक छद्म पुष्करिणी बनाई
 और उनके पार एक शिवमन्दिरकी स्थापना हुयी।
 उनके मरने पर महाराजने उनकी भगिनी द्रौपदी वा
 पश्चिमाका विवाह कर पट्टमहिषी बनाया था।
 उन्हींके अपनी जीसहाके पादेशसे शिवसागर जिलेकी
 दिक्षु नदीके उत्तर पार किश्चिदधिक चार सौ बीघे
 भूमिमें शिवसागर नाम्नी एक पुष्करिणी खोदा उसकी
 तीर शिव, दुर्गा तथा विष्णुके तीन छद्म मन्दिरोंकी
 प्रतिष्ठा की और देवसेवाके लिये बहुत सी भूमि दी।
 उक्त तीनों मन्दिर और पुष्करिणी आज भी विद्यमान
 हैं। उन्हींके पुष्करिणीके नामानुसार उक्त देशका
 नाम शिवसागर पड़ा है। फिर उन्हींके तीर वर्तमान
 समुदाय राजकार्यालय और चंगरेज राजकर्मचारियोंके
 निवासस्थल स्थापित हैं। राजा शिवनाथ सिंहके
 मरने पर उनके भ्राता प्रमत्त सिंह वा चुचैनफानि
 सिंहासन अधिकार किया। शिवसागर जिलेके
 पश्चिमदिक्षु नदीके दक्षिण पार रंगघर (रङ्गशाहा)
 नाम्नी हितल पहाणिका उन्हींकी बनायी है। उन्हींके
 उन्नी, व्यास, महिष प्रभृति पशुवर्षीका युद्ध देखनेके लिये
 उसे बनाया था। उनके पीछे उनके भ्राता सुराम्फा
 वा राजेश्वर सिंह सिंहासनारुद्ध हुये। उन्हींके
 तदानीन्तन राजप्रसादके परिवर्तमें शिवसागरकी
 दिक्षु नदीके उत्तर पार "गङ्गात्र" नामक छद्म और
 वितल भवन बनाया था। कुछ समय वहाँ रहनेके
 बाद वह पश्चिमाप हुये। फिर उक्त नदीके पार
 पार रंगघरके पास उन्हींके प्रति छद्म और धततल
 राजप्रसाद बनवाया। उसका नाम रंगपुर रख गया।

उसके निकट शिवसागरकी भांति छद्म "जयसागर"
 नाम्नी पुष्करिणी उन्हींकी प्रतिष्ठित है। फिर तोरस्य
 शिवमन्दिर भी उन्हींके स्थापित किये थे। उनके
 पीछे उनके भ्राता चुचैश्रीका वा सञ्जीनाथ सिंह
 पश्चिमाप हुये। उन्हींके भी कतिपय देवमन्दिर
 स्थापित किये थे। उनमें कामरूपके पश्चिमदिक्षु
 मणिपर्वत पर अक्षयान्तका देवानय प्रधान है।
 उनके मरने पर उनके वीरपुत्र सुहितपांगफा या
 गौरीनाथ सिंह सिंहासनाधिष्ठित हुये। उनके
 राजत्वकालकी प्रधान घटना डिब्रुगढ़के निकटस्थ
 हिन्दूधर्ममें दोषित भटक, मोघामरीया या मरान
 नामक आदिम निवासी लोगोंकी विद्रोहिता है।
 वह द्वा बार विरोधी हुये। प्रथम बार ही राजाने उन्हें
 दमन किया, किन्तु दूसरी बार दबाव सकनेसे भागना
 पड़ा। उन्हींके कलकत्ते दूत भेज चंगरेज गवरन-
 मन्टसे साहाय्य मांगा था। उससे साईं कारन-
 वालिसके पादेशानुसार कप्तान वेन्स और सेफ्टिनेगट
 मित्रेगर कितने ही देशीय सैन्यके साथ चासाम पहुँचे।
 उन्हींके विद्रोह दबा देनेमें शान्तिको स्थापना किया
 था। राजाके भागने पर विद्रोहियोंने प्रतीय मिहुर
 भावसे पश्चिम निराश्रय प्रजाको मार डाला। उसीमें
 उन्हें मरान कहते हैं। विद्रोह-शान्तिके पीछे गौरी-
 नाथने रंगपुर नगर छोड़ शिवसागरके पश्चिमदिक्षु
 छोट नामक स्थानमें नगर स्थापन किया। उसी स्थान
 पर वह कालपासमें पतित हुये। उनके पीछे काम-
 रूपीय वंशके कामेश्वर सिंहने राज्य पाया था। यहाँ
 यह बात देना भी उचित है कि हिन्दू धर्ममें दोषित
 होनेके समयसे पद्दोम राजा पपरापर पद्दोमकी
 भांति अपने सन्तानिकी हिन्दू नाम रखते थे। फिर
 उनमें राजा होनेवाले पश्चिमके समय पद्दोम
 शासनानुयायी कोई कार्य कर पद्दोम नाम पदच करती
 थे। किन्तु उक्त कार्य प्रतीय अयमाध्य था। इसी कारण
 कामेश्वर उसको कर न सके। उनके पद्दोम
 नाम न पानेका यही कारण है। उनके पीछे न तो
 किसी राजाने उक्त कार्य किया और न उसको पद्दोम
 नाम ही मिला। उन्हींके पश्चिमापकने बहुतसे

है। उनके मतमें पूजादि भावग्रहक नहीं, एकमात्र हरिनामकीर्तनसे ही सकल कामनायें सिद्ध हो सकती हैं। उसीसे सर्वत्र सद्गीर्तन करनेके लिये सत्र वा धर्माश्रय वर्तमान है। उन सत्रोंमें अधिकारी और महन्त रहते हैं। उक्त सकल सत्रोंमें माधवदेव प्रतिष्ठित बड़पैठाका सत्र ही प्रधान है। महन्त ब्रह्मसके गुरुश्वशुराचारी गोस्वामिर्यात्री भांति शिष्याके प्रदत्त पर्यसे लौकिका चलाते हैं। उच प्रकार पर्य न देनेसे शिष्य समाजस्थ होते हैं। माधवके वीरि बहूतसे ब्राह्मणोंने, वैष्णव वन धर्मप्रचार किया था। उन्होंने माधवके धर्मसे कुछ भिन्न भावमें वैष्णवधर्म चलाया, जिससे उनका "वात्सुन्या" और माधवका मत "महापुरुषीय" कहलाता है। महापुरुषीयोंमें भी एक "ठकुरिया" शाखा होती है। शहरके माधव पादि शिष्योंने भनैकानैक यन्त्र और सद्गीतादिकी रचना की। वैष्णव पौराणिक क्रियाकलाप पर उतने भाष्यावान् नहीं होते। वैष्णव व्यतीत कामरूपमें तान्त्रिक मत भी प्रचलित है। श्रीरतिया या पूर्णसेवाके नामसे उक्त देगमें आजकल एक मत चल पड़ा है। उक्त सम्प्रदायी जातिभेद नहीं मानते। उनमें सकल जातीय लोग एकत्र मद्यमांसादि खाते पीते हैं। उक्त सम्प्रदायकी उपासनामें भक्तिमाता गायत्री किसी स्त्रीका प्रयोजन पड़ता है। वह सबकी पूज्य होती है। पूर्णसेवाचारी अपने धर्मकी पूर्णरूपमें शहरदेवके प्रचारित धर्मसे मिलता जुलता ब्रताते हैं। किन्तु वह वामाचारी और वैष्णव मतके मिश्रणसे बना है।

कामरूपके सुसंस्मृत सुखी मतावलम्बी है। देहाती सुसंस्मृत विपद्दरी प्रथति हिन्दू देवतावीकी पूजा करते हैं। श्राद्धो नामक स्थानमें "दोषा मन्त्रा" नामक एक सुसंस्मृतोका तीर्थस्थान है। दोषाचारी लोग सब कामरूपमें देख नहीं पड़ते। किन्तु लेन-धर्मके माननेवाले लोग सब भी वर्तमान हैं। पलाय-बाड़ी, डिङ्गुद पादि स्थानोंमें इनकी संख्या काफी है। वहाँ लेनमन्दिर भी है। लेनगण प्राय व्यापार करते हैं। छोटे छोटे बहूतसे गाँवोंमें भी उन लोगोंकी दुकानें हैं।

प्राय कल नामा धर्मोंके लोग पासाधर्म वर्तमान है। ब्राह्मणादि वर्णोंके मध्य कल्याकी कुमारीबालनमें वर दंड कर विवाह करनेका नियम है। अन्य जातियोंमें उक्त नियम नहीं मिलता। ब्राह्मणोंमें विधवाविवाह प्रचलित नहीं, अन्य जातिमें ही होता है। गन्धर्वविवाहकी भांति एकपक्षर विवाह शूद्रादिके मध्य चलता है। कोई प्राप्तवयस्ता विधवा अपने मातापिता वा पतिभावककी सम्मतिसे स्वीय समाजमें किसी व्यक्तिके साथ पाहारादि और सहवास कर सकती है। उक्त स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न मन्त्राणादि विवाहिकाके गर्भशात मन्त्राणोंकी भांति पितामाताके घनाधिकारी और समाजमें गण्य होते हैं। किसी किसी स्थलमें वैसे दम्पतीकी संधवा धान्यदूर्वासे प्रागोर्वाद करती हैं। एक प्रकारके जयम्बरकी प्रथा भी देख पड़ती है। कोई पुरुष या स्त्री इच्छानुसार किसी स्त्री वा पुरुषके घरमें स्त्रीस्त्री-रूपसे रह सकती है। उक्त सकल व्यवहारमें समाजमें कोई दोष नहीं लगता। हिन्दूधर्मके मतमें जिनका विवाह हो जाता है, उनमें स्त्रीकी छोड़ पत्यन्तर प्रह्व करनेका मार्ग नहीं दिखाता। किन्तु उक्त अन्य प्रथाओंके अनुसार ऐसा होता है। कामरूपके लोगोंके मतमें शरीरकी शुद्ध करनेके लिये ही विवाह पावग्रहक है। इसी कारण विवाहके सम्यन्तमें उनका ऐसा दृढ़ नियम नहीं। किसी किसी स्थलमें विधवाका विवाह पत्यकी शुद्धिके लिये किसी पुन्तक, गिलाखण्ड वा कदकीद्वारा किया जाता है। कहीं दूसरे किसी पुरुषके साथ वैधेरी पत्यगृहिका विवाह होता है। अन्तमें उसे कुछ दक्षिणा देकर विदा करते हैं। फिर स्त्री पुनःपत्य प्रह्व करती है।

कामरूपवासियोंमें प्रागज्युक्तकी पासन देनेका नियम नहीं। सब लोग भ्रमण करते समय अपना अपना पासन, तासका रत्नयत्रा और छट साथ रखते हैं। वह लोग धर्मके अनुसार पश्यपी और मक्ष्य पाहार करते हैं। दूसरेका क्या श्रांतिका सब भी ले लिया जाता है। किसी किसी स्थल पर धाममें एक ही स्त्री रहती है। फिर उसीके हाथका रत्न

भोगीको जे का कर भैतिक कार्यमें लगाया और पदरक्षेकी चलाया। उनके परबोक पङ्चवने पीछे भ्राता चन्द्रकान्त सिंह राजा हुये। उनके राजत्व-कालमें मन्त्रियोंमें विरोध उठा था। फिर गोजाटीके राजप्रतिनिधि बहलूकन ब्रह्मशास्त्रमें पङ्चसे और कितने ही सैन्यके साथ नोट पड़े। उन्होंने राज-धामोंमें उपस्थित हो विगलियोंको टमनपूर्वक राजाकी स्वायत्त किया और अपने ऊपर राजाके गौघनका भार लिया। ब्रह्मदेगीय सैन्य पीछे लौट गया।

उक्त सैन्यकी स्पदेगयादाके पीछे बहलूकनके किसी किमी विपत्तने राजमाताको पचोदित किया और उन्होंने उनका गिर काट लिया। उनके मरनेके बाद उनके विपत्त प्रधान राजमन्त्री रुचिनाथ बुढ़ा-गोसाईंमें पयरापर प्रधान राजपुरुषोंमें मिल चन्द्रकान्त सिंहको राज्यसे उटा। पुरन्दर सिंहको पभियेक किया था। उसके पीछे ब्रह्मदेगीय सैन्य पासाय पर चढ़ा। युद्धमें परास्त हो पुरन्दर सिंह भागे थे। ब्रह्मदेगीयोंने फिर चन्द्रकान्त सिंहको राज्य दे प्रस्थान किया। अनन्तर ब्रह्मदेगीय राजाने चन्द्रकान्त सिंहके निकट बन्धुताके भावसे कितने ही सैन्यके साथ एक दूत भेजा था। किन्तु मन्त्रियोंने उनका पभियाय न समझ पदरोध किया। उससे ब्रह्म-देगीयोंने पपमानित और कुछ ही बुढ़की घोषणा की। पासायियोंका सैन्य युद्धमें परास्त हुआ। राजाने फिर पलायन किया था। उसके पीछे ब्रह्मदेगीय पधिक्ष सैन्य भेजा गया। उसमें पासाय-वासियोंकी पत्न्यात्त सताया। घन और प्रायकी निरोध जानि हुयी थी। बहू कष्टके पीछे पासायका सोभायोदय हुआ। अंगरेज गवरननेएने दुर्दान्त और निदारुण ब्रह्मवासियोंकी निकान कर पासाय पधियार किया था। १८२५ई०की २री फरवरीकी पासायको दुःख रात्रिका पत्न्या हुआ। प्रजा पमद्व यातनामें लुटी थी। ६०० वर्ष राज्य भोग कर पञ्चोत्तमसिंहवासन श्रुत हुआ।

पदोत्तम चंद्रके राजाओंकी तानिका नीचे दी जाती है—

नाम	राज्यभोगकाल
१ सुकाफा	१२२८—१२६८ ई०
२ उनके पुत्र चुतेउका	१२६८—१२८१ "
३ " सुविनफा	१२८१—१२८६ "
४ " सुजांगफा	१२८६—१३३२ "
५ " सुखरांगफा	१३३२—१३६४ "
६ उनके भ्राता सुतुफा पराजक	१३६४—१३०६ "
७ त्यापोखामती सुतुफाके भ्राता पराजक	१३०६—१३२० "
८ सुडांगफा, त्यापोखामतीके पुत्र	१३२०—१४०० "
९ उनके पुत्र सुजांगफा	१४००—१४२२ "
१० " सुकाफफा	१४२२—१४३८ "
११ " सुचेनफा	१४३८—१४८८ "
१२ " सुहेनफा	१४८८—१४८९ "
१३ " सुविमफा	१४८९—१४८० "
१४ " सुहुंगमंग वा खर्गनारायण	१४८०—१४९८ "
१५ " सुकसेनमंग या गहगायां राजा	१४९८—१४५२ "
१६ " सुखामफा या खोडा राजा	१४५२—१६०१ "
१७ " सुकेगफा या बुढ़ा खर्ग नारायण वा प्रतापसिंह	१६०१—१६४१ "
१८ " सुरामफा वा भगा राजा	१६४१—१६४४ "
१९ " सुत्विंगफा वा नडिया राजा	१६४४—१६४८ "
२० " सुतामफा वा जयध्वज सिंह भगानिया राजा	१६४८—१६६२ "
२१ " चारिंगिया चंगके सुवंगमंग वा चक्रध्वजसिंह	१६६२—१६८० "
२२ उनके भ्राता सुतामफा वा उदयादित्य	१६८०—१६८३ "

सब कोय ज्ञान है। राजराजिमें उभोने भोजन बनाया पढ़ता है। अन्य काल पर बीजा और सुभावम दो प्रकारका बाणक लकमें भिगा दधि, गुड़, खटनी प्रभृति मिला साधारणतः निम्नस्वादिमें स्वाया जाता है। पान पानेकी काल बहुत है।

पैत, पात्रिय और पोषकी संक्रान्ति कामरूपियोंके प्रधान उपायका दिन है। उक्त तीनों पर्वोंको विष्ट कहते हैं। उक्त पर्वोंमें पिताको प्रणाम करने और सामीप्य कुटुम्बादिमें निमग्न हैं। फिर महा चाङ्गुवरके साथ पानभोजनादि होता है। संतकी संक्रान्तिको मात दिन किसी प्रकाश स्यल पर स्त्रीपुरुष मिल नाचने-गाने हैं। उक्त नृत्यगीतमें पद्याद्य पद्याद्य पद्योप गीत और पद्यभङ्गी प्रदर्शित की जाती है। दुर्गासप्त, श्रौतिका, जन्माष्टमी और गृहर-साध्यके गृहाहकी तिथिको साधारण पर्व मानते हैं।

कामरूप जिनके दक्षिण प्रान्तमें किसी ज्ञान पर प्रस्तरनिर्मित एक गृह है। प्रवादानुसार चाँद गोटागरने उभे पवने सप्तमीन्द्र पुत्रदे रजनेके जिये कोर्षमें बनाया था। यह बात बहुत लोगोंको मान्य है मधुकाके कौशल और नेता धोपानीकी लपासि सप्तमीन्द्र केसि जी चढे थे। भुवङ्गीके निष्ठ "नेता धोपानीका घाट" नामक एक घाट अभी वर्तमान है। किन्तु आज कल सप्तकी भग्नावस्था है। चाँद गोटागर एक विख्यात बन्दर है।

तेजपुरके निष्ठ दृष्टि भी कई प्रस्तर-गृहोंके भग्नावशेष हैं। प्रवादानुसार यह वायराजकी कन्या लपाके प्रमाद है। फिर नोगावके संवागला पर्वतपर कई प्रस्तर-प्रामाटोका भग्नावशेष है। कहते हैं यह महाभारतका संस्रजके प्रामाटका भग्नावशेष है। लोमापुरमें देसि है। भग्नावशेष महाभारतकी हिन्दुवा मन्दन पटोन्धकी राजधानीका भग्नावशेष माने जाते हैं। स्वासपाहेके इवङ्गाघाट परगनेमें "त्रोसुरेपर्वत" नामका एक पहाड़ है। वहाँ एक गोलाकार लक १ प्दारवाय पर चढ़ीके निमानकी तरफ कई रेशा है। किसी किसीके अनुमानों एक समय वहाँ मानसिन्द्र रहा।

किसी समय कामरूप प्रदेश इन्द्रजालकी विधासे निये प्रसिद्ध था। पनेक घिया इन्द्रजाल मीसुकी थीं। किन्तु आज कल चंगरेकी मध्यतामें कामरूपकी यह प्राचीन विद्या विलुप्त है।

अनेक कामरूप वा परगना नामावली के नाम पानक विषयों के नाममें Hunter's Statistical Account of Assam, 2 vols; Dalton's Ethnology of Bengal; Meach's Topography of Assam; Robinson's Assam; M. Martin's Eastern India, vol. III; Journal of the Asiatic Society of Bengal, vol. XLI, XLII, Gait's Assam पर्वत पुस्तक देखी।

कामरूपवल (मं० स्त्री०) मिहिविरीय, एक वरवत। केनमासके पनुमार यह कामादिमें निरपेक्ष रहने, मन्वसिद्ध करने पर या किसी देवके प्रसन्न होने पर मिलता है। इसमें साधक मनमाणा रूप बना सकता है।

कामरूपधर (मं० लि०) कामं यथेच्छं रूपं धरति धारयति, काम-रूप-धृ-धप्। इच्छानुसार विविधरूप-धारक, मनमानी धरत बना सेनेवाला।

कामरूपपति (मं० पु०) 'मारदात्मिक' नामक गंतके टीकाकार।

कामरूपिणी (मं० स्त्री०) कामं मनोभं रूपं पश्यन्त्या, काम-रूप-इनि-ङीप्। १ चमगन्था, चमगंध। २ सुन्दरी, सुबधुरत धोरत। ३ इच्छानुसार विविधरूप धारण करनेवाली, जो मनमानी धरत बना सेती थी। कामरूपी (मं० पु०) कामं कमनीयं रूपं पश्यन्ति, काम-रूप-इनि। १ विधाधर। २ साधक जगु, रोपार, एक जातवर। ३ गृकर, धूर। (कि) ४ इच्छानुसार विविधरूपधारी, मनमानी धरत बना सेनेवाला।

"नर्मदा विष्टके रविः कामरूपिणी" (रामाय)

कामरूपोद्भवा (मं० स्त्री०) लप्यलसूरी, काला सुहृत्। कामरेणा (मं० स्त्री०) कामानां कामस्यापारणा रेशा विष्टं सत्त्वं वा यव, बहुमी०। पिशा, रष्टी, किनाल।

कामरु (मं० पु०) कम्-विष्-कमप्। १ शोमविरीय, कं-कसवाई। २ जना देवा।

२ वसन्तकाल, शीतम-बहार। ३ मन्देश, रोगघ्न। (मि०) ४ कामुक, चाहनेवाला।

नाम	राज्यभोगकाल
२३ उनके भ्राता सुक्लामफा वा रामध्वज	१६०३-१६०५ "
२४ चामुण्डरीया वंशके सुद्धंग राजा	१६०५ (१ मास १५ दिन)
२५ तुंगवर्धगिया वंशके गोबर राजा	१६०५ (२० दिन)
२६ दिर्घगिया वंशके सुजिनफा	१६०५-१६०७ "
२७ तुंगवर्धगिया वंशके सुटैफा	१६०८-१६०९ "
२८ चामुण्डरीया वंशके सुलिकफा वा शरा राजा	१६०९-१६०९ "
२९ चामुण्डरीया वंशके गदापाथि वा गदाधर सिंह वा सुवातफा	१६०९-१६१६ "
३० उनके पुत्र शार्ङ्ग वा सुखवर्गफा वा रुद्रसिंह	१६१६-१६१८ "
३१ सुतागफा वा शिवसिंह	१६१८-१६४४ "
३२ उनके भ्राता सुचेनफा वा प्रसन्नसिंह	१६४४-१६५१ "
३३ " सुरामफा वा राजेश्वरसिंह	१६५१-१६६८ "
३४ " सुन्दरीफा वा सस्मोसिंह	१६६८-१६८० "
३५ " सुहितवांगफा वा गौरोगाव सिंह	१६८०-१६८५ "
३६ सुकसिंहफा वा कमलेश्वर सिंह	१६८५-१६९० "
३७ उनके भ्राता चन्द्रकालसिंह	१६९०-१६९८ "
३८ " पुरन्दर सिंह पुनः चन्द्रकाल सिंह	१६९८-१६९८ १६९८-१६९९ "
३९ तुंगवर्धगिया वंशके योगेश्वर सिंह	१६९९-१६९९ "
१६२५ ई०की कामरूपमें हवा।	

भावसे हिन्दू बन गये हैं। पहले देवमन्दिरों और राजप्रासादोंका विवरण दिया गया है। उनमें प्रायः सब वर्तमान हैं। किन्तु उनकी व्यवस्था पति हीन है। इनका अधिकारग मिवसागर जिलेमें है। तंजपुर और नौगांव एक स्थान कुछ कम हैं। कामरूप जिलेमें पाषाणकाली राजाओंके स्थापित पत्थर के देव मन्दिर देख पड़ते हैं। किन्तु कामाख्याका मन्दिर पाषाणके राजाओंने बनाया न था। जिस समय कामरूप कोषविहारके अन्तर्गत था, उसी समय कोष-विहारके राजा नरनारायणने उसे निर्माण किया। पाषाणके राजाओंने पुराने मन्दिरको केवल सुधाराया था। कामाख्या ही।

पाषाणके राजाओंकी राजधानी शिवसागर जिलेमें रही। इसीसे कारण दूसरे किसी स्थानमें राजभवन नहीं है।

एक समयके पीछे कामरूपको कोई विदेशी सत्त्व-योग्य घटना नहीं मिलती। केवल ई० षष्ठादश शताब्दके शेषभागमें कामरूपके रहनेवाले हरदत्त और वीरदत्त नामके दो भाइयोंने पक्षीम-राजाओंके विरुद्ध विद्रोहभाव प्रदर्शित किया। हरदत्तके पद्मकुमारी नामकी एक परम रूपवती कन्या थी। सम्भवतः पद्मकुमारी ही हरदत्त और वीरदत्तके द्रोहका प्रधान कारण थी। पक्षीम-राजाके प्रतिनिधि कलिया-भोमोरा बहू-फुलनके साथ हरदत्त वीरदत्तका युद्ध हुआ। युद्धमें हरदत्त हार गये। कलिया-भोमोरा बहू-फुलनके किसी कुमिदान नामक सेनापतिने पद्मकुमारीका दण्डगत किया। पश्चादानुसार पद्मकुमारीके हस्त और पदमें पद्मका चिह्न था। पद्मचिह्न ही उनके पद्मकुमारी नामका मूलकारण रहा। अद्यापि कामरूपमें दाम्य महीन दास हरदत्तका द्रोह और पद्मकुमारीका विवरण गाया जाता है।

राजा रुद्रसिंह जगन्नेव मदीयावासे जय्यराम श्यायवाभोग नामक क्रिषी भद्राचार्यके निकट द्रोष्टिन हुई। भद्राचार्यमें बहुत पक्षीकिक ज्ञानता थी। उसीसे पापासुर आचारण सब लोग रुके हीकी पुत्र मान

पक्षीमकी आजकल पत्नीव देव्यावस्था है। उन्हेंनि निज धर्मके साथ भावा भी छोड़ दी है, वे सम्पूर्ण

कामलकीरक (सं० त्रि०) कामलकीरकस्य इदम् कामल-
कीरक-पत्रम् । मधोत्तरपक्षमादिकीरकादयः । वा ३।१।१० ।
कमलकीरक नामक कीटसम्बन्धीय, एक कीड़ेके
सुताक्षक ।

कामलता (सं० स्त्री०) कामस्य जता इव, उपमित-
समा० । उपस्य, गित्र । २ जताविशेष, एक वेल ।
कामला (सं० स्त्री०) काकल-टाप । रोगविशेष, कंवल
बाई । (A form of Jaundice) पाण्डुरोग पवि-
कित्तित रङ्गने या पाण्डुरोगमें पित्तकर वसु आहारदि
करनेसे विकृतपित्त रोगोका रक्त मांस बिगाड़ कर
कामला रोग उत्पादन करता है । फिर प्रथमसे भी
कामला रोग हुआ करता है । इस रोगमें पचु, चर्म,
गर्भ और मुखदेश हरिद्रावर्ण देख पड़ता है । मलमूत्र
रक्त वा पीतवर्ण लगता है । सर्वेशरीर स्वर्णभेकवर्ण
बन जाता है । इन्द्रिय शक्तिहीन रहते हैं । दाह,
पथीर्ष, दुर्बलता, भ्रमस्रता और अरुचिका वेग बढ़ता
है । यह दो प्रकारकी होती है—कीटाशय्या और
शाखाशय्या । आमाशय्यादि प्राथम्यत्वरिक कोष्ठ मूत्रहमें
उत्पन्न होनेसे कोष्ठकामला वा कुम्भकामला और अस्त-
पादादि स्थानमें निकलनेसे शाखाकामला कहलाती
है । कुम्भकामलामें वमन, अरुचि, अल्पश्लेष्म, प्वर,
ह्लासि, श्वास और कास उपजता और मलमूत्र होनेसे
रोगी मरता है । फिर उभयविध कामलामें मल-
मूत्र कृष्ण एवं पीतवर्ण लगने प्रथवा मल, मूत्र तथा
वमनमें रक्त पड़ने, शरीर शोथविमिश्रित एवं भ्रमस्र
रङ्गने और दाह, अरुचि, पिपासा, आनाह, तन्द्रा,
मोह, बुद्धिनाश प्रभाति पड़नेसे भी रोगी बहुत दिन
तक नहीं जीता ।

बंध्याश्लक मतमें इस रोगमें त्रिफला, गुलबोन,
दाहहरिद्रा वा निम्बका ज्ञाय मधुके साथ पीना
चाहिये । द्रोणपुष्पसकं पत्रका रस पाँचमें लगाने
है । गुलबोनकी पत्ता पीस कर तक्रकं साथ पानिसे भी
लाभ होता है । कामलकी, लोहचूर्ण, शण्डी, पिप्पली,
मरिच तथा हरिद्राचूर्ण, छत, मधु और मकैरा मिना
घाटना चाहिये । कुम्भकामलामें भी उक्त सकल औषध
उपयोगी है । गोमूत्रके साथ मिनाक्षतु सेवन करनेसे

अधिक लाभ होता है । विभोतक काष्ठसे मण्डुर लता
पाठ बार गोमूत्रमें छालने और मधुके साथ सप्तधा चूर्ण
घाटनेसे कुम्भकामला अच्छी हो जाती है । (मत्तवचन्य)

गहड़पुराणके मतानुसार इस रोगके निवारणार्थ
मरिच और तिलपुष्प एकत्र पीस पाँचमें लगाने हैं ।
फिर दुग्धके साथ भ्रमामार्ग और गांसुरमूल पीनेसे भी
कामलादि रोग अच्छे हो जाते हैं । इस औषधसे
सुखरोग भी नहीं रहते ।

कामलाची (सं० स्त्री०) कामसे परिचितो यस्याः, काम-
ला-क-पच् डीय् । आकर्षणकारक देवीमूर्तिविशेष ।

“वामात्प्रविश्ये च कामलाचोमृ” इति । (तन्त्रसार)
कामलायन (सं० पु०) कामस्य अपत्यं पुमान्,
कमल-पञ्-फक् । कमलके पुत्र, एक मुनि । इनका
नाम उपकोसल था ।

कामलायनि, कामलायन देवी ।

कामलाश्लाघिचन्दो (सं० स्त्री०) नागदन्ती, ज्ञायीर्षुड ।
कामलि (सं० पु०) वैशम्पायनके एक शिष्य ।

कामलिका (सं० स्त्री०) कङ्क, धान्य, एक धान ।

कामली (सं० त्रि०) कामलो रोगविशेषो इत्यादि,
कामल-बिनि । १ कामलारोगवीहित, कंवल बाईकी
बीमारीसे तकनीक उठानेवाला । (पु०) कमलेन
वैशम्पायनस्य पत्नेवासिबिगेषेण मोक्षं प्रधीयते ।
अत्रापि वैशम्पायनात्तं वशिष्ठम् । वा ३।१।१०२ । वैशम्पायनके
शिष्यका-वनाया हुआ शस्त्र पढ़नेवाला ।

कामली (त्रि० स्त्री०) सुदृ कम्पक, कमरी ।

कामलेष्वा (सं० स्त्री०) कामलां कामलापारायां श्लवा
चिक्कं सप्तणं यत्, बहुव्री० । वैश्या, रण्डी ।

कामलोक (सं० पु०) लोकविशेष, एक दुनिया । बोह-
मतानुसार यह एकदय प्रकारका होता है,—याम्य,
तुवित, नरक, निर्माचरित, तिर्यकलाक, प्रेतलाक,
असुरलोक, त्रयस्त्रिंश, चातुर्मेहाराजिक, परनिमित्त-
वगवती और मनुष्यलोक ।

कामलोत्त (सं० त्रि०) कामेन कम्प्यं पीडयां शोकः
चक्षक, १-तत् । कामकी पीड़ासे पाकुन, गहबतके
सीरसे सबड़ाया हुआ ।

कामवती (सं० स्त्री०) कामः कामवीयता अदयस्याः,

वह हिन्दुस्थानी पंगरेशकी पत्नी थी। सुतरां उनका दवागना साठ माहवर्षे पचता कर्तव्य समझा। उसीमें १०८२ ई०की कप्तान वेल्स साहब मर्तवा मिले गये। उन्होंने वहाँ पढ़ते ही हिन्दुस्थानियोंको दवागना चाहा था।

उधर भरतसिंह राजा ही निरुत्तर भावसे शासन करते थे। सिपाहियोंका पादेग रहना,—“तुम जिस प्रकार हो, पक्षीमपत्ताको मूटो मारो।” रस साहबके बरकतदाज पोर मन्चिपुरके सिपाही विमट होनेसे उन्होंने पचना राज्य लक्ष्मणक समझ लिया। उन्होंने गोहाटीके निकटस्थ कई स्थान अधिकार किये थे। राजा गौरीनाथ उक्त संवाट या कुहू सेन्य से उभरी पोर बन पड़े। फिर कप्तान वेल्स साहब भी जा पढ़े। राजाके मुखसे देगकी पचव्या सुन १०८२ ई०की २५वीं नवम्बरको उन्होंने गोहाटी प्रदेश उधार किया। मीयामरीया दल क्लिष्ट भिन्न हो गया। गौरीनाथ गोहाटीमें ही रहे। कप्तान वेल्स ६ठौं टिमस्वरकी मोहित्यके उधार कूज गये थे। मीयामरीयावासीका पराजय सुन लक्ष्मणनारायणका भी सेन्य भाग। लक्ष्मणनारायणने कहा,—“हम गौरीनाथके विपक्षमें नहीं थे। मीयामरीया-विद्रोह निवारण करना हमारा भी उद्देश्य था। किन्तु गौरीनाथ यह बात समझ न सके। उसीमें उन्होंने हमें भी विद्रोही मान रखा है।” फिर कप्तान वेल्सने गौरीनाथ पोर लक्ष्मणनारायणके मध्य सन्धि करा दी। सन्धिमें शर्त थी लक्ष्मणनारायणको दरङ्ग, कुटिया तथा चाय-दोषाबके पादमी देनेके बदले ५५००० पोर भोट राज्यमें व्यवसाय करनेके लिये मद्रगुलके हिसाबमें १०००० रु० देना पहेंने। कप्तान वेल्सने गोहाटीमें रह देना कि गौरीनाथकी बुद्धि विवेचना बड़ी न थी। फिर लक्ष्मणक होने भी उनके द्वारा राज्य स्थापित होनेमें बड़ा मन्द्-रहा। उन्होंने निम्नलिखित मर्मका पत्र कमकत्ता भिजा था,—“हम यह काम करते चाना चाहते हैं, जिसमें राज्यका सुव्यवस्था रहे। हमें बोध होता कि राजाके पन्थाय पाह-रदमें ही लक्ष्मणनारायण प्रवृत्ति विद्रोही होते थे।”

१०८३ ई०के मार्चमास कप्तान वेल्सने प्रधान नगर

पाकमण करनेको पर बटाया। गौरीनाथ भी भाग्य ही। जिस दिन वह नगरके निकट पहुँचे, उसी दिन नगरकी पचव्या घात ही दूसरे दिन प्रातःकाल १३ सिपाही, १ जमादार, १ नायक और १ स्वकदार हुआ १५ पादमी नगरके निकट मिले गये। राजा गौरीनाथ यह व्यापार देख विस्मय हुए। उन्होंने यह सोच व्यक्त चाया छोड़ी थी कि ५००० मीयामरीयावासीके साथ उन सृष्टिमय सिपाहियोंका युद्ध होगा। मीयामरीयावासी चारो पोर घेर कर पड़े हो गये। उन्होंने सोचा कि उन्हें कई सिपाहियोंके मारनेसे जय होगा। अन्तको सिपाही घोरभावसे गोली छोड़ने लगे। यद्यपि मीयामरीयाके लोग मरे थे। उन्हें कई सिपाहियोंमें गम, पच प्रायः निःशेष कर डाला। फिर कुछ पंगरेश सिपाहियोंने जा नगर अधिकार किया। उसके दूसरे दिन बड़ा गोसाईं गौरीनाथकी नगरमें मिले गये। १०८५ ई०के चैत्र मास कप्तान वेल्स नगरमें पहुँचे थे।

गौरीनाथ फिर जा कर सिंहासन पर बैठे। कप्तान साहबने बड़ा गोसाईं प्रवृत्ति प्रधान कर्मचारियोंके बहूत उपदेग दिया और गवरनर जनरलका परिभाषा समझा कर कहा,—“दिगमें सुशासन रखनेके लिये कुछ हटिम सेन्य यहाँ रहेगा और कामरूपकी सामदगीमें उस सेन्यदलका पर्व बसेगा।”

उधर लर्ड कारनवालिस उद्देश्य गये। १०८५ ई०की सर लाग और गवरनर हो कर पाये थे। उन्होंने कप्तानको मोटनेका पादेग किया।

फिर १८२० ई०की पुरन्दर सिंघने चन्द्रकालसिंह स्वर्गदेवकी बन्दी बना कर राज्य लिया था। उसी समय बहुककनके लोगोंने लखदेगके पक्षीय पापुत्र सिद्धि या किवया सिद्धिमें जा कर उक्त विषयके सूचना की। उन्होंने साहाय्यार्थ १०००० संख्य भेज था। ब्रह्म-सेनापतिके राज्यमें प्रयोग करने पर पुरन्दर सिंघने सेन्य भेज कर चाया दी। मुबई पुरन्दर सिंघका सेन्य पराप्त हुआ। पुरन्दर छर कर गोहाटी भाग गये। ब्रह्मसेनापतिने चन्द्रकालकी राजा बन पुरन्दरकी पकड़नेके लिये सेन्य भेजा था। पुरन्दरके

काम-मनुष्य-स्त्री मध्य कः । १ दाहहरिद्रा । कामः कर्त्तव्यभावः कर्त्तव्यः । २ मैथुनका अभिवाय रपज-वाको, त्रिम चौरतको मद्यवत चक्षी से ।

कामधर (सं० लि०) कामादपि मोक्षयैव धरः श्रेष्ठः । १ पतिमुन्दर, मिहायत पृथ्वरत । (पु०) २ यथेच्छ धर, मनमामो वरुमिग ।

कामधरम (सं० पु०) कामः कामनीयः पतएव वरुमः मिष्टः, कामधा० । यथा कामस्य कर्त्तव्यं धरुमः, १-तत् । १ पामरुष, पामका पेट । पामका मुकुल कर्त्तव्यं की वृद्ध प्यारा है । इमीं कर्त्तव्यं की पूजामं पामरुकुल चपय्य मगता है । २ वधला, बहार । ३ मारण पची ।

कामधरमा (सं० स्त्री०) कामस्य कर्त्तव्यं वरुमा मिया । १ रति । २ ज्योत्स्ना, चांटमी ।

कामधर (सं० लि०) कामस्य धरः धर्मोभूतः, १-तत् ।

कामरिपुके धर्मोभूत, सी मद्यवतके ताधेमें रहता है ।

कामधर्य (सं० लि०) कामस्य धर्यः धर्यतामापयः, काम-धर-यच् । कर्त्तव्यं पीडाके धर्मोभूत, सी मद्यवतके ताधेमें है ।

कामधाप (सं० पु०) कामस्य कर्त्तव्यं धापः धरः, १-तत् । कर्त्तव्यं का धाप, कामदेवका तीर । कामदेव पुष्पके धाप धाप रपने है ।

“वर्तिमान्मोक्ष विधिं चतुष्टयम् ।
पञ्चैतन्नि कर्मिणो पञ्चाधपे धापयन्तः”

पद्म, पद्मोक, गिरीय, धार्य चौर उत्पल पाचो पुष्प कर्त्तव्यं पञ्चाधप है ।

धाप पञ्चारके धर्मोभूतार कर्त्तव्यं धाप चरु नामो-धि भी अभिहित है,—

“वर्तिमान्मोक्ष विधिं चतुष्टयम् ।
पञ्चैतन्नि कर्मिणो पञ्चाधपे धापयन्तः”

धर्मोभूत, उन्मादन, गीधप, तापन, चौर श्वाभन धाप कामधापके नाम है ।

कामधाट (सं० पु०) कामं यथेच्छं धाटः । यथेच्छ-धवाट, मनमामो धाट ।

कामधात् (सं० पु०) कामः पञ्चाधपि, काम-मनुष्य मध्य कः । १ अभिवायमुक्त, धादिमन्द । २ मैथु-निष्कायुक्त, मद्यवतकी धादिम रपनेवाटा ।

कामधातो (सं० लि०) कामं यथेच्छं धाति, काम-धन्-धिति । यथाशुभार मानात्यात्मं धामिभायके धाम धरनेवाला, सी धादिमके मुवायिक, रहता है ।

कामविह (सं० लि०) कामधादिन विहः, १-तत् । कर्त्तव्यं धादिह, श्रेष्ठको यथासे धाकुम ।

कामविहता (सं० पु०) कामस्य कर्त्तव्यं विमोक्षेण हता माययिता, काम-वि-हन्-लृप् । १ मधादेव । (लि०) २ कामरिपु जयकारी, कामदेवकी लोत मिह-वाला ।

कामवीर्य (सं० लि०) कामं पर्याप्तं वीर्यं यस्य, बहुव्री० । १ चपरिमित वीर्यवालो, पूव ताकूत रपनेवाला । (ली०) कामस्य वीर्यम्, १-तत् । २ कर्त्तव्यं की गति, कामदेवका वल ।

कामवृत्त (सं० पु०) कामं यथेच्छं ज्ञातो वृत्तः, मध्य-पदलो० । वृत्ताक, वाटा ।

कामवृत्त (सं० लि०) कामं यथेच्छं निरदृग् वृत्तमस्य, बहुव्री० । यथेच्छाचारी, मनमामो धाल चभनेवाला ।

कामवृत्ति (सं० स्त्री०) कामिण स्नेहवृत्ता वृत्तिः, १-तत् । १ स्नेहवृत्ताचार, मनमामो धाल । २ कामरिपुका कार्ये, कामदेवका काम । (लि०) कामतो वृत्तिरस्य, बहुव्री० । ३ यथेच्छाचारवृत्त, मनमामो ।

कामवृद्धि (सं० पु०-स्त्री०) कामस्य वृद्धिर्धनान्, बहुव्री० । १ कामजा नामक महापुत्र, एव बड़ा भाई ।

कर्वाटक देयमें इमे 'कामज' कहते है । कार्य कामवृद्धि सेवन करनेमें बलवीर्यं बहुता है । इमका संस्कृत पर्याय—धर्मवृद्धिमंत्र, मनोवृद्धि, मदनानु-कर्त्तव्यं, किर्तिश्रुवाद्य, कामेकीय चौर मोरध है । राजनिघण्टुके मतमें यह महुररम चौर वल, रुचि, कामगति तथा इन्द्रियकी गति बढ़ानेवाली है । २ कामरिपुकी वृद्धि, कामदेवकी वृद्धी ।

कामवृत्ता (सं० स्त्री०) कामं ज्ञानवीर्यं तुल्यं यस्याः, बहुव्री० । पाटकहण, यक पिह ।

कामवृत्ति (सं० स्त्री०) कामस्य-गतिनीयकारिणः, १-तत् । कामदेवकी एक पत्नी । राघवमहर्षे इह कामवृत्तिके पञ्चम विभाग द्विपे है,—१ रति, २ मोहि, ३ कामिनी, ४ मोहिनी, ५ कामकिया, ६ विधाविनी ।

भौर बड़फूकनने युद्ध किया। किन्तु उनके भी द्वारने पर पुरन्दर भाग कर चित्तमारीमें जा रहे। ब्रह्मसेनापति चन्द्रकान्तके रक्षार्थ २००० सैन्य छोड़ खदेष्ट लौट गये। पुरन्दरने निरुपाय हो कनकते जा १८१६०के सितम्बर मास हट्टिय गवरनमेण्टके निकट मिन्त्र-लिखित प्रावेदन किया था,—“यदि हट्टिय गवरनमेण्ट सैन्य भेज कर हमारा राज्य उबार कर दे, तो हम उसके लिये व्यय देने और अवशेषको हट्टिय गवरनमेण्टके अधीन कर दे राजा वरुनके लिये प्रस्तुत है।” किन्तु हट्टिय गवरनमेण्टने उल्ल प्रावेदन न सुना।

उस समय कोचबिहारमें मिटर स्कट कमिश्नर थे। वह प्रतिपत्रमें गवरनमेण्टको देशकी अवस्था देखाते रहे। फिर ब्रह्मसेना रीतिके चतुस्रार देशमें घुस पडे। चन्द्रकान्तको नाममात्र राजा रख ब्रह्मसेनापति सर्वभय कर्ता बन बैठे। चन्द्रकान्त भी भक्तकी उनके हाथसे देशोच्चार करनेकी चेष्टामें लगे। १८२०ई०की ब्रह्मसेनापति मिर्झिमाहा देशकी अवस्था देखने गये थे। जयपुरके निकट एक गढ़ बनते देख उन्होंने कौशिकसे बहकके बड़फूकनको मार डाला। चन्द्रकान्तने उससे भीत हो सोचा कि उस धार ब्रह्मसेनापतिने शत्रु रूपसे राज्यमें प्रवेश किया था। उसी विवेचनमें वह बूढ़ा गोसाईंको नगरके रक्षार्थ रख स्वयं गोहाटी भाग गये। मिर्झिमाहाने वहाँ पहुँच कर चन्द्रकान्तकी अभय दिया था। किन्तु उनके सममें विज्ञास न कर सकनेसे नगरभी सैन्यके साथ ब्रह्मसेनापतिका युद्ध हुआ। बूढ़ा गोसाईं द्वार गये। चन्द्रकान्त जोड़-हाटकी भौर भागे थे।

मिर्झिमाहा योगेश्वर नामक किसी कुमारकी कक्षके लिये राजा बना स्वयं राज्यशासन करने लगे। उस समय राज्यमें प्रायः दस सहस्र ब्रह्मसेना उपस्थित थे। दरहराज भी उसी समय ब्रह्मकी अधीनता स्वीकार करने पर बाध्य हुये। उसके पीछे ब्रह्मसेनापतिके साथ चन्द्रकान्त और पुरन्दरका नामा स्थापनेमें युद्ध हुआ। उसी अवस्थामें ब्रह्मसेनापतिने हट्टिय गवरनमेण्टकी पत्र लिखा था कि वह किसी पासामो राजाका पक्ष ग्रहण न करे। किन्तु हट्टिय

गवरनमेण्टने उल्ल प्रावेदन सुना न था। प्रयत्न उसने किसीकी सहायता न की।

उसी समय गारो प्रकृति असभ्य जातियोंकी सभ्यता मिथाने भौर उनके देशमें हट्टिय अधिकार फैलानेके लिये १८२२ई०की १०वें व्यवस्था निकली थी। कोचबिहारके कमिश्नर स्कट साइव उल्ल पाईन (व्यवस्था) का कार्य करनेकी उत्तराश्रयके एजण्ट हुये। उसी समय रङ्गपुरसे विच्छिन्न हो ग्वालपाड़ा एक स्वतन्त्र जिन्ना बन गया। पासाममें उस समय ब्रह्म-अधिकार होनेसे ग्वालपाड़ेमें एकदस अंगरेजी सैन्य रहा। सेफटेनेण्ट डेविडसन साइव उल्ल सैन्यदलके माध्यम थे। मिटर डेविडसन और मिटर स्कट पासामियोंसे बड़ा खेद रखते थे।

उधर महगड़के युद्धमें सम्पूर्ण परास्त हो चन्द्रकान्तने ग्वालपाड़े जा अंगरेजोंका प्रायत्न लिया। सेफटेनेण्ट डेविडसनको भय देखा ब्रह्मसेनापतिने मिन्त्रलिखित पत्र भेजा था,—“ब्रह्मराज चाहते हैं कि कान्यकुब्जके साथ मित्रता रहे और ब्रह्मसेना किसी प्रकार अंगरेजी सेना पतिक्रम न करे। किन्तु चन्द्रकान्तने अंगरेजोंके अधिकारमें प्रायत्न लिया है। पतएव उन्हें एकड़नेके लिये प्रादेश देना प्रावश्यक है।” मिटर डेविडसनने उल्ल पत्र मिटर स्कटके पास पहुँचा दिया। फिर स्कटने वही पत्र गवरनर जनरलके पास भेजा था। गवरनर जनरलने टाकेके अंगरेजी सेनापतिकी प्रादेश दिया कि मिटर स्कटको प्रावश्यक सैन्य मिल सकता है। ब्रह्मसेना यदि अंगरेजी सेनामें घुस आवे, तो वह बलपूर्वक भगायी जावे।

१८१० ई०की कछारके राजा गोविन्दचन्द्रने गवरनमेण्टसे प्रावेदन किया कि मण्णिकौरकी सेना पर ब्रह्मसेनका प्राक्रमण हो सकता है। १८२० ई०की मण्णिकौरसे चोरसिंह सिंह, मारसिंह सिंह और गम्भीर सिंह नामक तीन राजकुमारोंने ब्रह्मके पत्न्याचारसे उपोडित हो कछार जा कर प्रायत्न लिया था। उनके पीछे गोविन्दचन्द्रके गृहविशदमें राज्यभूत होने पर उल्ल तीनों अत्याचारके सिंहासनके लिये बड़ी इच्छा रख पडे। १८२३ ई०की चोरसिंह

७ कल्पमता, ८ श्यामला, ९ अचिन्ता, १० विधि
ताक्षी, ११ विद्याताक्षी, १२ खेतिहाना, १३ दिग्म्वरा,
१४ यामा, १५ कुला, १६ घरा, १७ नित्या, १८
कन्यापी, १९ मोहिनी, २० सुजीवना, २१ सुलावण्या,
२२ विमर्दिनी, २३ कलहप्रिया, २४ एकाक्षी, २५
सुमुखी, २६ नलिनी, २७ लटिका, २८ वाणिनी, २९
गिवा, ३० सुधा, ३१ रसा, ३२ भ्रमा, ३३ चारुलोका,
३४ अक्षता, ३५ दीर्घनिद्रा, ३६ रतिप्रिया, ३७
सोलाक्षी, ३८ अङ्घ्रिणी, ३९ पाटला, ४० मादिनी, ४१
माता, ४२ हंसिनी, ४३ विप्रतीमुखी, ४४ नन्दिनी,
४५ रञ्जिनी, ४६ कान्ति, ४७ कलकण्ठे, ४८ सुकोदरा,
४९ मेघश्यामा, शौर ५० ह्योग्मता ।

ध्यात्मके मन्त्रमें कामशरि इष्ट प्रकार वर्णित है,—
“मन्त्रः कुङ्कुमनिभाः सर्वाभरणभूषिताः ।
मीमीपवकरा ध्याया विनीतगार्भरचरणाः ॥”

कामकी शक्ति कुङ्कुमकी भांति वर्णगाली, सर्वाङ्गमें
अभरणधार पहने, हाथमें मीलोत्पल लिये शौर त्रिलो-
कको धीरे सकेनेवाली है ।

कामशर (सं० पु०) १ कन्दर्पवाप, कामदेवका तीर ।
कामस्य कन्दर्पस्य गर इव कामोद्दीपकत्वात् । २ आम्ब-
हृत्, आमका पिट्ट ।

कामशास्त्र (सं० स्त्री०) कामस्य अङ्गदेः प्रतिपादकं
शास्त्रम् । मध्यपदलो० । १ अभीष्टसम्पादकं शास्त्र,
सुराद पुरां करनीवाला इत्यम् ।

“वर्षाभासनिर्दिष्टं शीतं अभीष्टशक्तिर्दं मन्त्रः ।
कामशास्त्रनिर्दिष्टं शीतं श्यामितामिदुक्तिः ॥”
(महाभारत, भाषि, १ । ४)

२ रतिशास्त्र । रतिशास्त्रं इत्यम् ।
कामसंयोग (सं० पु०) अभिलषित विषयकी प्राप्ति,
सुरादकी तद्वसिल ।

कामसख (सं० पु०) कामस्य सखा, काम-सखि-ट्टम् ।
१ वसन्तकाल, मौसम बहार । २ आम्बहृत्,
आमका पिट्ट ।

कामसखा (हि०) कामस्य सखा ।
कामसुत (सं० पु०) कामस्य सुतः पुत्रः, इ-तत् ।
कन्दर्पपुत्र, पतिव्रत ।

कामसू (सं० स्त्री०) कामं अभीष्टं सृति, काम-सू-क्तिः ।
१ अभीष्टदम्, सुराद-पुरी करनीवाला । (पु०) २

श्रीलक्ष्मि । (स्त्री०) कामं पश्यन् सृति । १ काम गो ।
कामसू (सं० स्त्री०) कामस्य तद् व्यापारस्य प्रति-
पादकं सूत्रम् मध्यपदलो० । कामव्यापारबोधक एक
शास्त्र । इसे वैशम्पायनने बनाया है ।

कामसेन (सं० पु०) कामवतीके एक राजा ।
कामस्य इत्यम्

कामसेना (सं० स्त्री०) निधिवतिनी पत्नी ।
कामसुति (सं० स्त्री०) कामस्य सुतिः इ-तत् ।
प्रतिपक्षकी शान्तिके लिये कामदेवकी सुतिका एक
मन्त्र । यह मन्त्र प्रतिपक्षीताकी पटुना पटुता है,—

“कीदृशान् शक्यं पश्यन् कामोद्गतान् कामापादान् कामी वान्
कामः प्रतिपक्षीता कामतर्कम् ॥” (पञ्चतन्त्रः ७४८)

सूतिशास्त्रमें भी प्रतिपक्षकी दीपशाक्तिके लिये
निम्नलिखित मन्त्र पढ़नेकी कक्षा है,—

“प्रतिपक्षप्रदायकं शक्यं कामसुतिं पठेत् ॥”

कामदा (सं० पु०) कामं कंदर्पे हतवान्, काम-हन्-
क्तिः । १ महादेव । २ विष्णु ।

कामहेतुक (सं० स्त्री०) कामः हेतुर्व्यस्य, कामहेतु-
कन्तु । १ किंबल अभिजायजात, धिक् खादिमसे पैदा ।
२ कामरिपुसे उत्पन्न, कामदेवसे निकला हुआ ।

कामा (हि० स्त्री०) सुन्दरी, खूबसूरत पौरत ।

कामा (च० पु० Comba) १ विराम, ठहराव । २
विरामका एक विद्, ठहरनेका एक निदान । यह
समान पर्यवाचक दो शब्दों या वाक्योंके बीच पाता
है । कामा चिह्नका रूप यह है, है ।

कामास (सं० पु०) कुमारिकाभक्त चम्पकसुनिष्ठसजात
शुद्धार राजाके पुत्र । इनके पुत्रका नाम पारिजात
था । (उद्योगनिघण्टु १ । १११ । ४५)

कामाक्षी (सं० स्त्री०) कामं रमणीयं पति यस्याः,
काम-पति-यच्-ङीष्वा । १ देवमूर्तिविशेष, एक देवता ।
२ तन्वीर कोर्दी योनि ।

कामारव्या (सं० स्त्री०) कामयते भक्तानां कामं पूर-
यतीति कामा चारव्या यस्याः । १ दिव्यविशेष, एक
देवता । इनके इस नाम सत्यम् पर भी लिखा है,—

कामारव्याच—

“कामार्चं मानता वक्तव्या वार्ष्णे” महर्षिरी ।
कामारव्या योचते देवी श्रीवृद्धे रत्नोत्तमा ॥

सिंहने इष्टिम गवरनमिष्टको एक पत्र लिखा,—
 “मान्य पदता है कि ब्रह्मराज गौड़ ही इस पत्रल
 पर आक्रमण करनेवाले हैं। पतपय हम कछार राज्य
 पंगरेजोंका मोचना चाहते हैं।” इष्टिम गवरनमिष्ट
 एक प्रत्याघ पर मग्नत हो गयी। मारजित्मिंह पहले
 ही ब्रह्मके माहाय्यसे मन्चिपुर पधिकार कर वहाँ ब्रह्मके
 करट राजा बन बैठे थे।

इष्टिम गवरनमिष्टको कछार राज्य ज्ञापन लेने पर
 मंथाट मिला कि ब्रह्मवाले पासामसे कछार आक्र-
 मणके उद्योगमें थे। मिष्टर स्कटने ब्रह्मसेनापतिको
 एक पत्र लिखा,—“कछारके साथ इष्टिम गवरनमिष्ट-
 का सम्बन्ध है। आप इस प्रदेश पर आक्रमण न
 कर्तिये।”

पासाम और कछारके मध्य सुद्व जयन्ती राज्य
 है। ब्रह्मसेनापतिने उक्त देगके राजाको भय देखा
 यमोभूत करना चाहा था। किन्तु जयन्तीराजने
 वय्यता न मानी। ब्रह्मसेनापति भी कछारकी पंगरेजो
 सेनाके भयसे डटात् उक्त राज्यको आक्रमण कर न
 सके।

उसके पीछे एक ही साथ पासाम और मन्चिपुर
 दोनों टिक्रम आक्रमण करनेके लिये जयन्ती एवं
 कछारके माल तथा योद्धको सीमा पर ब्रह्मसेना
 पहुँची थी। पंगरेजाधिकृत धाराकान ब्रह्मवालीने
 जीत लिया। १८२३ ई०की उन्हेनि चंइवामके
 निकटवर्ती माहपुर नामक एक सुद्व होव पर
 पधिकार किया था। लार्ड पामवर्ट उस समय
 गवरनर जनरल थे। उन्हेनि देखा कि ब्रह्मका
 पधिकार ब्रह्मवाली सीमा तक फैला था। फिर स्थिर
 रहनेसे ब्रह्मके सीमान्त प्रदेशमें मग पत्याघार
 करेंगे। १८२४ ई०की ब्रह्ममें युद्ध करना ठहर गया।
 गवरनर जनरलने टाकांगे ब्रिगेडियर निकमरिनको
 म्यान्मार्के जामेका प्रादेश दिश था। उधर सेकटि-
 नेष्ट इन्डियनको पासाम प्रदेग खरनेकी भी अनुमति
 मिली। मिष्टर स्कटने समस्त प्रत्यक्ष मार पाया
 था। १८२४ ई० की २८ वीं मार्चको ब्रिगेडियर
 निकमरिनने विना युद्ध गौड़को पधिकार कर लिया।

ब्रह्मवाले पंगरेजोंका आगमन सुनते ही नगर होइ
 भाग गये। फिर ब्रिगेडियर निकमरिन, कप्तान
 डरमहरा, सेकटिनेष्ट रिचार्डसन, करनल रिचार्डसन
 प्रभृतिमे कलियाघर, भोगाव, रवा, मरासुष पादि
 स्थानोंपर कई बार युद्धमें ब्रह्मसेना परास्त हुई। युद्धमें
 ब्रिगेडियरके मरनेमें करनल रिचार्डसन प्रधान सेनापति
 बने थे। पन्तमें १८२४ ई०के मई मास पासाम
 प्रदेशमें पंगरेजोंका पधिकार हो गया। उसके पीछे
 लोइहाट, जयन्ती, कछार, गोरीसागर प्रभृति स्थानोंमें
 मालिके रणार्थ सुद्व सुद्व युद्ध हुए। ब्रह्मके पयोगल
 ग्रामफूकन और वगसी फूकनने ६०० सेनाके साथ
 पासामसम्बंध किया था। योगेश्वरसिंह योगीयोगां
 १८२५ ई०की परलोक गये। उनके वंशीय इष्टिम
 गवरनमिष्टके उत्तिसोगी बने।

१८२६ ई० की २४ वीं फरवरीको यण्डाबू गढ़में
 पंगरेजा और ब्रह्मवासियोंने एक सन्धि हुई। उसके
 अनुसार धाराकान, मार्तांडम, सेनासरीम और पासाम
 पंगरेजोंकी मिला था। स्कट माघम उक्त नयजित
 राज्यके कमिगनर हुए। किन्तु वह उतापूर्वकमें
 गवरनर जनरलने एकपत्र एवं कमिगनर तथा कोष-
 विहार, इष्टपुर, मन्चिपुर एवं कछारके कमिगनर और
 योद्धके लज थे। सुनरा एक पादमोके ज्ञापनमें
 उसने कार्योकी सुविधा न पड़नेसे समस्त पूर्व-भारत
 निम्न और येष्ट खण्डमें विभक्त हुआ। उक्त खण्ड
 दयकी उत्तरसीमा भरकी और दक्षिणसीमा बनगिरी
 नदी थी। चीनियर वा येष्ट खण्डके मिष्टर स्कट और
 जूनियर वा निम्नखण्डके करनल रिचार्डसन कमिगनर
 हुए। किन्तु प्रधान कर्तव्य फट्ट साइबकी भी
 मिला था। गौड़को पासामकी राजधानी हुई।

१८२५ ई० के पत्तोवर मास करनल रिचार्डसनके
 पीछे करनल कूपर कमिगनर बने थे। येष्ट
 विभागमें पहले कार्य सला न सकनेसे स्कट साइबने
 कप्तान एडम ड्राइटको सहकारीरुग्में पदस्थ किया।
 स्कटने पासाम प्रदेशकी योद्ध उचति हुयो।
 १८२६ ई०की श्रीरापूर्वामें वह मर गये। उनके पीछे
 टि, गि, रवाटंसन प्रधान कमिगनर हुये।

संज्ञा कर्मिणी कर्मिणी कर्मिणी कर्मिणी ।
 सन्निवृत्तौ कर्मिणी कर्मिणी कर्मिणी ।
 (कर्मिणीकर्मिणी)

महादेवी कथा—महादेवी कामाख्या पश्चिमाय
 दुःख कर्मिणी कर्मिणी कर्मिणी कर्मिणी कर्मिणी ।
 देवी कामाख्या नाम प्राप्त कथा । यह कामाख्या,
 कामिनी, कामा, कामा, कामाख्यादिभिः चौर कामाख्या-
 नामिणी इति च "कामाख्या" कथायां च ।

२ पीठस्थान विषय । कामाख्यादेवी चो इम
 ज्वालनी पश्चिमोत्तरी-देवता च । कामिका-पुराणमें इम
 पीठस्थानके उद्भव पर लिखा है,—“दक्षके यज्ञमें
 मर्त्येण दक्ष क्रीडा था । महादेव उनका अतद्वेद्य
 अथ पर रथ बहुत दिन परंतु रतःस्तः पुनर्त रथे ।
 प्रसन्नः उभ देवकी जाल स्थान पर पचयव विषय गिरा
 था । मर्त्येण रथ सकल स्थानों पर एक एक पवित्र
 पीठ बन गया । परिश्रमको कुशिका नामक पीठ-
 स्थानमें देवीका योनिमण्डल गिरा । उभ समय
 महाभागा योगिनी भी महादेवमें भोजनी चो । उन्मि
 चिर अति उच्च परंतुका रूप धारण कर पातालमें
 उभय किया । यह व्याघार देव मण्डलमें परंतुदपने
 उभे उल्ला था । विष्णु भी पृथिवी आक्रमण
 कर उभके निकट उपस्थित हुए । उभ परंतुदपने अत
 जन योनिमण्डल ही, किन्तु देवीके आक्रमणमें पक्षी-
 मल को एक कोम परिमित उच्च रह गये । उनमें
 पुत्र दिव्या परंतु मण्डल ही । उभे 'मि' कहते हैं ।
 यह महादेवा पश्चिम उच्च है । पश्चिम दिक्का
 परंतु कामाख्या नामक विष्णुनेम है । चिर उभयके
 मध्यस्थित तिळीय उच्छ्रुत्कालति मेलका नाम भोज
 है । उभे महादेवका उपासक है । पतञ्जल ईमान-
 दिकके ऐतिहासिक परंतुदपने कर्मका नाम 'मदि-
 क' है । बादुकीपश्चिम परंतु 'मदिपरंतु' कहलाता
 है । उभ परंतु पीठस्थानका अति सिद्धांत है ।
 मर्त्येण क्रीडा परंतुका नाम 'मि' कहते हैं । यह
 महादेवका सिद्धांत है । उच्छ्रुत्कालि-मिणाया पुत्र-
 भाग्यलता परंतु भी महादेवका उपासक है । उभे
 'मि' कहते हैं ।

उभे प्रकार पवित्र भोजकूट परंतुदपने कुशिकापीठमें
 देवी मर्त्येणमें महादेवके साथ पचयान किया ।
 उभका योनिमण्डल ही गिर कर प्रसार बन गया था ।
 यही कामाख्यादेवीके नाममें विख्यात हुआ । मनुष्य
 उभ गिराके अर्धमें देवता पाते चौर देव मण्डलका अति
 है । उभ स्थानका महाभागा अति चतुर्ण है । उनमें
 भोज जाल देवमें उभो समय मध्य चो जाता है ।
 उभ योनिमण्डल २२ पदुमि दोष चौर २ वितति
 (बालिका) वि २ है । चिर यह सिद्ध चौर
 कुशिकादिमें स्थित है । देवी महाभागा उभे अथ
 पचयानिनीमूर्तिमें पचयान कर्ती है । पदुमि
 नाम—कामाख्या, मिपुरा, कामिनी, मारदा चौर
 मर्त्येणका है । देवीकी चारी चौर पट योनिनी
 रहती है । उभके नाम—गुणकामा, योचामा, विष्णु-
 वाग्निनी, क्रीडागी, धनका, पाददुर्गा, दीर्घायी चौर
 प्रकटा है । उपरापरतीर्ण भी उभे अथ उभके अ-
 स्थित है । विष्णु उभके तीर कमल नाममें पचयान
 कर्ती है । देवीके उभमें सप्तो कलिता नाममें चौर
 सरस्वती मातङ्गी नाममें पचयान है । देवीके विष्णु-
 पुत्र मण्डल परंतुके पूर्वभागमें धारदेम पर मिह नाममें
 रहते हैं । अथ उभ चौर अथ उभ, तिलिका तथा
 उपराजिता उभमें उभे पचयान है । धार-मूर्ति
 उभे पाण्डुनाथ नाममें पचयान चो रहते हैं । उभे
 उभे मयु चौर क्रीडागीको भार गिराया, उभे निकट
 ही मण्डलमें मण्डलका उपासक है । उभ मण्डलके
 निकट गया चौर धारपयोचित योनिमण्डलका
 कुशिकाउभे पचयान है । उभे चाम उभे उभे
 पचयान देवमें महादेवको मण्डलके कर्मिणी उभे उभे
 पचयानकूट स्थित किया था । उभके निकट कामि-
 नी नामक महापुच्छीय कामकूट है । सिद्धकूट
 चौर कामकूटके मध्यभागमें धार नामक चित है ।
 उभे उभे १४ स्थान उभे है । उभे उपासक भी
 कहते हैं । मुग्धकूटके मध्यभागमें कामिनी परंतुमें
 मण्डल मण्डलका नाम 'कामाख्या' है । कामिनी
 चौर कामाख्याके मध्यभागमें कामाख्या है । पीठ-
 स्थानमें दीर्घायी, कामाख्याके पचयान चौर

उत्तराखण्डमें पुरन्दर सिंह राजा माने गये थे। उन्होंने वार्षिक ५००००० रु० कर देना अङ्गीकार किया। विश्वनाथ नामक स्थानमें एक पोलिटिकल एजण्ट रहने लगे। १८२३ ई०की कामरूप प्रदेश दरङ्ग, कामरूप और नौगांव तीन जिलोंमें विभक्त हुआ। उसमें एक स्वतन्त्र कलेक्टर और मजिस्ट्रेटकी अमताके साथ एक प्रधान सचकारी कमिश्नर (Chief Assistant Commissioner) रखा गया। रावर्टसनके पीछे १८२४ ई०की जैनकिन्स साइव कमिश्नर हुए। उन्होंने जिले और मौजूका सीमा-विभाग ठोक किया था। १८२५ ई० को उक्त प्रदेश छोड़ फर्ग्युके अधीन गया। १८२६ ई० की जयन्तीराजने कम्पनीसे सन्धि कर अधीनता मानी थी। किन्तु १८२५ ई०में राजाको मासिक ५००००० रु० हस्ति दे जयन्ती प्रदेश कम्पनीके अधिकारमें लाया गया। १८२८ ई० की पुरन्दर सिंह नियमित कर देना सके थे। उसीसे उन्हें राजस्थान कर तत्प्रदेश शिवसागर और लक्ष्मपुर दो जिलोंमें बांटा गया। चन्द्रकान्त सिंह गौहाटोमें ५००००० रु० हस्ति पाते थे। किन्तु उस साल ही उन्होंने परसाक गमन किया। पुरन्दर सिंहको भी हस्ति दे जोड़हाटमें रखनेकी बात उठी थी। किन्तु गवर्नेर पुरन्दरने हस्ति न की। उसी स्थान पर सुकाफा-बंगके हाथसे पासासका उत्तर-दण्ड चपट्टन हुआ और पासास वा प्राचीन कामरूप राज्य प्रस्ताव पुरन्दरके अधीनमें गया।

उसके कुछ दिन पीछे १८२८ ई०की एक कमिश्नरके हाथ शासन और विचारका भार रहनेसे कार्यमें सुगुहवा न देख पड़ी। उसीसे एक सचकारी नियुक्त हुआ। उक्त सचकारी नियुक्त होनेसे एक पदका नाम लुइसल कमिश्नर और दूसरेका नाम डेप्युटी कमिश्नर रखा गया।

१८३० ई० की इनकमटैक्स प्रचलित होनेसे फूस-मुझेकी लोग भड़क उठे थे। एक्विटण्ट कमिश्नर सेफ्टनएट सिंगर गड़बड़ मिटाने लगे, किन्तु निहत हुए। अन्तमें बड़े कोषधर गड़बड़ धमने पर दोषियोंकी उचित माफि मिली।

१८३१ ई० की कमिश्नर जैनकिन्सने स्वपक्षे अवसर लिया था। फिर उसी-पद पर कप्तान डचकिन्स नियुक्त हुए। १८३६ ई० की गौहाटोमें जैनकिन्स मर गये।

१८३२ ई०की खसिया और जयन्ती पर्वतमें भयानक विद्रोह उठा था। फिर १८३४ ई०में भूटानका युद्ध लगा। पंगरेज कोत गये। १८३५ ई० की सिखोसा नामक स्थानमें सन्धि हुई। उक्त सन्धिके अनुसार भूटानके दक्षिण करे स्थान पंगरेजोंका मिले थे। गारो और नागाओंके कई सरदारोंने अधीनता स्वीकार की। उनमें सभ्यता-केलानेके लिये उक्त प्रदेश दो जिलोंमें बांटा गया। १८३६ ई०का गारो पर्वतमें तुरा और नागा पर्वतमें सामागुटिंग राजधानी हुआ। उसी वर्ष कोचबिहार और खाल-पाहा पासामवाले कमिश्नरके हाथमें मित्राल स्वतन्त्र कर दिया। १८३९ ई० की सेफ्टनएट गवर्नर सर-जॉन कमपेल उक्त देग देखने पड़ेंगे थे। उन्होंने सबके विचारालयों और विद्यालयोंमें पासासो भाषा व्यवहार करनेका आदेश दिया।

१८३८ ई०की कारनेल डचकिन्सने अवसर लिया था। फिर पासाम देग बङ्गालके सेफ्टनएट गवर्नरके हाथसे निकल एक प्रधान कमिश्नरकी मित्ता। कारनेल किटिंग प्रथम चीफ कमिश्नर हुए। चीफ कमिश्नर बनने पर शिलङ्ग नगर राजधानी हुआ और खालपाहा तथा गारो पर्वत फिर पासाममें चला गया। उसके पीछे कटार और श्रीहट पञ्चप्रदेशोंमें स्वतन्त्र हो चीफ कमिश्नरके अधीन हुए।

उसी वर्ष एक्विटण्ट कमिश्नर सेफ्टनएट इनकमटैक्स नौगावपर्वतकी पैमायम शुल्क की थी। नौगावमें पड़ोसों पर कई नागाओंने विद्रोह उठाया। शिलङ्गमें शिविरमें सुस उन्हें मार डाला। इनकमटैक्स प्रथम १८० आदमियोंमें उसी दिन ८० लोग मारे गये। ५१ लोग पाहत हुए थे। कुछ दिन पीछे उन नागाओंको उपयुक्त माफि मिली। कारनेल किटिंगके पीछे सर टर्बर्ट थैली और उनके पीछे मिटर एक्विटण्ट पासामके चीफ कमिश्नर हुए। सर एक्विटण्ट

कामाख्याप्रस्तारके प्रान्तदेशमें कुष्पाखी नाम्नी योगिनी रहती है। दक्षिण पीठमें कामेश्वरके भयोर नामक शिखरको परमार्या, भैरव नामसे अभिहित करते है। उन्हीं भैरवके निकट चामुण्डा भैरवीका भवस्थान है। कामेश्वर और भैरवके मध्यवर्ती स्थानमें सुराग्गा देवी है। यद्यो ज्ञात नामक शिखरदेशमें भाम्नातकेश्वर है। उन्ही स्थानमें योगरूपिणी दुर्गा नाम्नी नायिका है। फिर उक्त स्थानका चपक पत्रविशिष्ट लतावेष्टित भाम्नातक वृक्ष ही कल्पलतावेष्टित कल्पवृक्ष है। उन्ही भाम्नातक वृक्षके निकट स्वयं गङ्गा सिद्धगङ्गा नामसे अवस्थित है। उन्के समीप भाम्नातकक्षेत्र नामक पुष्करक्षेत्र है। ईशान दिक् तत्पुरुष नामक शिखरके उपरिभागमें भुवनेश्वर देवका पीठ है। उन्के निकट कामधेनु नामसे सुरभिकी गिसामूर्ति है। मध्यदेशमें कीटलिङ्ग नामक महाभैरवकी मूर्ति है। यह पांच मूर्ति द्वारा पांच भागमें विभक्त है। ब्रह्मपर्वतके उत्तर देशमें भुवनेश्वरीके नाम पर महागौरीकी गिसामूर्ति है। जहाँ ब्रह्मा पर्वतरूपसे पर्वतरूपी महादेवके साथ मिलित हुये, वहाँ चपराजिता नामकी कल्पलता अवस्थित है। कामधेनुके निकट अग्निक्षीणमें योनिरूपा कामाख्याका पीठ है। उन्ही स्थान पर, विन्ध्यवासिनी नामसे चण्डघण्टा, वनवासिनी नामसे स्कन्दमाता और कात्यायनी नामसे पाददुर्गा योगिनीका भवस्थान है। उक्त सकल योगिनी नीलशैलकी नैऋत दिक् अवस्थित है। पश्चिम द्वार पर हनुमान्पीठमें पाषाणरूपी नन्दीका भवस्थान है।

(अथ भवराज ६१ पं०)

देवीगीतामें भी कामाख्या-पीठस्थान सर्वोत्कृष्ट माना और लिखा गया है—

देवी कामाख्या प्रतिमास इक्ष स्थानमें रजस्तला होती है।

(सोनिनेतक, ५१ पं०) और कामधेनु रूप हृदय है।) कामाख्याकी कुमारी-पूजा भगवतीपूजाका विशेष पद है। कामाख्यामें चनेक द्वादश-कुमारीका पूजा-सङ्घ एक व्यवसाय स्वरूप है। पूजा हो या न हो, कामाख्यादर्शनके लिये पङ्क्तमें ही कुमारी यात्रीकी घेर कर प्रकङ्गेगी और दक्षिणा मांगने लगेगी। न्यूना-

धिक ३०० कुमारी सर्वदा कामाख्यामें रहती है। चनेक समय यह यात्रियोंको दक्षिणाके लिये व्यतिव्यस्त कर डालती है।

कामाख्याके भीतर न्यूनाधिक ५२ तीर्थस्थान यद्यपि वर्तमान हैं। किन्तु दुःख है कि उनमें चनेक दुर्गम, परस्परसे समाहत है। उक्त समस्त तीर्थोंके मध्य भगवती भुवनेश्वरी और दम महाविद्याका पीठस्थान ही समधिक प्रसिद्ध है।

कामाख्याके पूजादि निर्वाहको चण्डोम-राजावेनि चनेक स्वत्व (पायकः) और निष्कर भूमिका दान किया है। पायक कार्य विशेष पर भगवतीकी सेवामें लगे रहते हैं। फिर चंगरेज गवरजनेष्टने भी पूर्ण नियमसे भगवतीकी पूजाके लिये प्रथम बांध दिया है। पायः सकल देवाल्योंमें पायक निष्कर भूमि पाते हैं, जो कामाख्या, केदार और माधवमें सर्वोपेक्षा अधिक है।

कामाग्नि (सं० पु०) कामः अग्निरिव, उपमितसमा०। १ कामरूप अग्नि, खाद्यिकी प्राग। २ कामरिपुत्री यन्त्रणा।

कामाग्निसन्दीपन (सं० स्त्री०) कामाग्नीनां सन्दीपनम्, ६-तत्। कामोद्दोषक रक्षविशेष, ताकृतकी एक दवा। यह एक प्रकार मोदक है। वारा २-तोला, गन्धक २-तोला, अक्षर २ तोला, यवचार, सजिंवार, चित्रक, पञ्चसवण, शटी, यमानी, वनयमानी, कीटमारी तथा ताकीयपत्र एकत्र ४-तोला, जीरा, तेजपत्र, दारचीनी, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, जवड़ा एवं जातोफन एकत्र ६ तोला,—हृच्छदार, गुण्टी, सरिच तथा पिप्लीा एकत्र ८-तोला, धन्याक, यष्टीमधु, एवं कयेद फल दो-दो तोला, यतावरी, भूमिकुष्पाण्ड, गजपिप्ली, बला, इन्दिक्कपपलाय, गोक्षुरबीज, धीत्रपत्रयुक्त इन्द्रियव-बराबर-बराबर और सबके समान घीनी, धो तथा गूदद ढोंड़ इस चोपबका पाक करते हैं। पाक उत्तरने पर २ तोला कपूर डाल देते हैं। मोदक ६को। यह चोपध हृष्यते भी हृष्य है। इसे धवन करनेमें मनुष्य सङ्घस्य धमदाको रिक्ता और वनसे प्रमत्त मागाधिपको हरा सकता है। (ईश्वरारत्नरी)

मिहने हटिंग गवरनमेण्टका एक पत्र मिला,—
 “मात्रम पक्षता है कि ब्रह्मराज गीत ही इस पत्र पर
 पर पाक्षमप करनेवाले हैं। पत्रपत्र हम कक्षार राज्य
 पंगरेजोंका भोगना चाहते हैं।” हटिंग गवरनमेण्ट
 उक्त प्रस्ताव पर सन्तप्त हो गयी। भारजित्मिह पक्षके
 ही ब्रह्मके माहात्म्यमे मन्दिपुर अधिकार कर वह ब्रह्मके
 करद राजा बन बैठे थे।

हटिंग गवरनमेण्टकी कक्षार राज्य हाथमें लेने पर
 मन्वाट मिमा कि ब्रह्मवाले पासाममें कक्षार पाक्ष-
 मपक्ष उद्योगमें थे। मिटर स्कटने ब्रह्ममेनापतिकी
 एक पत्र मिला,—“कक्षारके साथ हटिंग गवरनमेण्ट-
 का सम्बन्ध है। आप इस प्रदेश पर पाक्षमप न
 कीजिये।”

पासाम और कक्षारके मध्य सुद लयन्ती राज्य
 है। ब्रह्ममेनापतिने उक्त देशके राजाको भय देना
 योग्यभूत करना चाहा था। किन्तु लयन्तीराजने
 वश्रता न मानी। ब्रह्ममेनापति भी कक्षारकी पंगरेजों
 मेमाके भयसे हठात् उक्त राज्यको पाक्षमप कर न
 सके।

उमके पीछे एक ही साथ पासाम और मन्दिपुर
 दोनों टिकके पाक्षमप करनेके लिये लयन्ती एवं
 कक्षारके प्रान्त तथा श्रीहृदकी सीमा पर ब्रह्ममेना
 पहुँची थी। पंगरेजाधिलत पाराकान ब्रह्मवालेनि
 श्रौत लिया। १८२३ ई०की उन्नेनि पक्षामके
 निकटवर्ती गाहपुर नामक एक सुद्रीय पर
 अधिकार किया था। आठ पासमहट्टे उस समय
 गवरनर जनरल थे। उन्नेनि देना कि ब्रह्मका
 अधिकार ब्रह्मणकी सीमा तक फैला था। फिर स्थिर
 रहनेसे ब्रह्मणके सीमास्त-प्रदेशमें मग पक्षार
 करेंगे। १८२४ ई०की ब्रह्ममे युद्ध करना ठहर गया।
 गवरनर जनरलने टाकाशे मिगेडियर मिहमरिनकी
 गालवाके जगिहा पादिग दिया था। उषर सेकटि-
 नेण्ट डेविडमणकी पासाम प्रदेश करमेकी भी पत्रमति
 मिली। मिटर स्कटने समस्त प्रबन्धका भार पाया
 था। १८२४ ई०की २८ वीं मार्चकी त्रिगेडियर
 मिहमरिनने विना युद्ध गौहाटी अधिकार कर लिया।

ब्रह्मवाले पंगरेजोंका पासाम सुगने ही नगर छोड़
 भाग गये। फिर त्रिगेडियर मिहमरिन, कप्तान
 हरमबरा, सेकटिनेण्ट रिचार्डसन, करनल रिचार्डम
 प्रभृतिमे कनिगावर, नोगाव, रक्षा, मरागुष पादि
 स्थानोंपर कई बार युद्धमें ब्रह्ममेना परास्त हुए। युद्धमें
 मिगेडियरके मरनेमे करनल रिचार्डसन प्रधान मेनापति
 बने थे। पक्षाम १८२४ ई०के मई मास पासाम
 प्रदेशमें पंगरेजोंका अधिकार हो गया। उससे पीछे
 जोड़हाट, लयन्ती, कक्षार, गोरोगागर प्रभृति स्थानोंमें
 गालिके रचार्य सुद सुद युद्ध हुए। ब्रह्मके पक्षीम
 ग्रामफकल और बगनी फकलमें ००० मेमाके साथ
 पाक्षमपके किया था। योगेश्वरमिह योगीश्वरामें
 १८२४ ई०की परलोक गये। उनके बंगीय हटिंग
 गवरनमेण्टके हतिभोगी बने।

१८२४ ई०की २४ वीं फरवरीको यण्डाम् गहरमें
 पंगरेजों और ब्रह्मवासियोंमें एक सन्धि हुई। सन्धि
 पत्रवार पाराकान, माताबाग, मेनाश्रीम और पासाम
 पंगरेजोंकी मिला था। स्कट साहब उक्त लयजित
 राज्यके कमिश्नर हुए। किन्तु वह उत्तरपूर्वाञ्चलमें
 गवरनर जनरलने एजण्ट एवं कमिश्नर तथा कौच-
 विहार, रङ्गपुर, मन्दिपुर एवं कक्षारके कमिश्नर और
 श्रीहृदके जज थे। सुताएँ एक पाटमोके हाथमें
 उतने कापोंकी सुविधा न पढ़नेमे समस्त पूर्व-भारत
 निश्र और येष्ट सञ्चमें विभक्त हुआ। उक्त सञ्च
 एकी उत्तरसीमा भरकी और दक्षिणसीमा बगमिरी
 लदी थी। सीनियर वा येष्ट सञ्चके मिटर स्कट और
 सुनियर वा निश्रसञ्चके करनल रिचार्डसन कमिश्नर
 हुए। किन्तु प्रधान कर्त्ता स्कट साहबकी ही
 मिला था। गौहाटी पासामकी राजधानी हुई।

१८२४ ई०के पक्षामपर मास करनल रिचार्डसनके
 पीछे करनल कूपर कमिश्नर बने थे। येष्ट
 विभागमें चर्कसे कापें चला न सञ्चनेमे स्कट साहबने
 कप्तान एडम हाइटकी मङ्करीद्वयमें पक्ष किया।
 स्कटने पासाम प्रदेशकी पट्टेड उपति हुई।
 १८२४ ई०की चौरापूर्वमें वह मर गये। उमके पीछे
 टि, मि, रचार्डसन प्रधान कमिश्नर हुए।

कामाद्गुण (सं० पु०) कामि कामोद्दीपने चद्रुय रूप ।
१ मय, मायुज । २ मिय, वयण । (ति०) १ काम-
मात्रिकाकार, खादिमकी टप्रा कारनिवाला ।

कामाद्गु (सं० पु०) कामं कामोद्दीपकं चद्रुं मुकुलं
वय, वदुमी० । १ महाराजघन, एक चद्रुं चाम ।
२ चायवृष, चामका पीड़ । ३ ग्रेमवयो, वाज
विह्वया ।

कामाद्गुणचक्र (सं० पु०) शारीकरवोष विरीच,
'ताकृती एक द्रुग । यह चारिखे वरावर मन्थक टाल
रह वरपलके द्रुमि एक महर घोटिते है । फिर पकलेमि
पाका मन्थक मिनाने पर यह तेधरा होता है । माता
ठारि रती है । ममूल इन्द्रयव, सुपमी तथा मकरंरा
धरावर कूट वीम वृत्तं मनाति चौर इन रमकी चापं
वन मीदुम्य एवं छल चूर्चके माघ घाति है । इसके
मिवनमि मरुनीदय होता है । (रमकावर)

कामाची (सं० स्त्री०) लपुकाकामाची, कीटी कीघाटीटी ।

कामाता (सं० स्त्री०) १ बन्दा, बाटा । २ फाक-
माची, कीघाटीटी ।

कामातुर (सं० त्रि०) कामिन चातुरः, इ-तत् । काम-
वीहित, चाचका मारा दूया ।

कामात्मज (सं० पु०) कामज्य चात्मजः पुतः, इ-तत् ।
कन्दर्पके चात्मज, चनिहह ।

कामाकता (सं० स्त्री०) कामप्रधानः चाका दण्ड
तण्य भावः, कामात्मन्-तत् । १ चनुरामप्रधानविजाता,
कीमदार तर्दीगत । २ कामाकुलविजाता, चाइकी
माची दूमी तर्दीगत ।

कामाका (सं० पु०) कामप्रधानः चाका दण्ड, वदुमी० ।
१ चनुरामो, चाइकेवाला । कामचमीभूत, प्यारमि महा-
दूया । २ काममय, चाइके भरा दूया । ३ क्लामिनामी,
लतीनिका खादिममन् ।

कामाधिकार (सं० पु०) कामज्य अधिकारः, इ-तत् ।
१ कामविदुषा अधिकार, खादिमका दोरदोरा ।
२ मातवादिमात-मन्थर्मिद माइका एक माग ।

कामाधिकार (सं० स्त्री०) कामज्य अधिकारं न्यायम्,
इ-तत् । कामका ज्ञान चर्चात् माग, खादिमके वदुमीकी
कमच कामि दिक ।

कामाधिकारि (सं० त्रि०) कामिन अधिकारिणम्, इ-तत् ।
१ कन्दर्प द्वारा अधिकार, प्यारमि प्रीता दूया । (स्त्री०)
भावे क । २ कामाधिकार, खादिम या प्यारकी
कमच ।

कामानन (सं० पु०) काम एव चामनः, काम चमन
इव वा । १ कामज्य चमि, खादिमकी चाम ।
२ कामकी तोम यातना, प्यारका महरा दूट ।

कामानयन (सं० स्त्री०) कामं चमनं यत्, वदुमी० ।
१ दृष्टापूर्वकं चमाहार तपस्या । २ रागकेवादि
रहित इन्द्रियमय द्वारा विषयका त्याग ।

कामागुण (सं० पु०) कामका चगुण, कोप, गुणः,
खादिमका छोटा भावे ।

कामाग्य (सं० पु०) कामिन कामोद्दीपने चम्यवनि
प्राप्तगुण्यं करोति काम-चम्य-विष-चच् । १ कौबिल,
कोयल । (ति०) कामिन चम्यः । २ कामके विगमे
हिताहितका प्राप्त न रचनेवाला, जो खादिमके कोमर्मे
भनापुरा समझता न हो ।

कामाग्य (सं० स्त्री०) कामं यदेतं चम्यवनि, कामाग्य-
टाप् । १ कन्दूरी, मुजक । (कामिन चम्य) २ कामके
विगमे हिताहितका प्राप्त न रचनेवाली वी, जो चौरन
खादिमके कोमर्मे चम्यी पड़ गयी हो ।

कामामी (सं० त्रि०) १ इन्द्रामागी, खादिमके
मुताबिक, घानेवाला । २ चाइर कामकर्ता, याना
चाइेवाला ।

कामामिकाम (सं० त्रि०) कामज्य अधिकारिणा दण्ड,
वदुमी० । काममीगिण्ड, महरकगरल ।

कामागु (सं० पु०) कामं यदेतं चागुणं, वदुमी० ।
१ चम, नीव । २ महर ।

कामागुच (सं० पु०) कामज्य चागुचमिह । १ महा-
राजघन छय, महे चामका पड़ पीड़ । (स्त्री०)
२ मिय, वयण ।

कामारण्य (सं० स्त्री०) कामं कामन परचम्य, कर्मधा० ।
मनोहर चम, चममूरक कुरुम । २ कन्दर्पक, काम-
देवका माग ।

कामारणी (त्रि०) व-वैकेकी ।

कामारि (सं० पु०) कामज्य चमि मन्, इ-तत् ।

सहारखण्डमें पुरन्दर-सिंह राजा मानी गये थे। उन्होंने वार्षिक ५०००० रु० कर देना बन्नीकार किया। विश्वनाथ नामक स्थानमें एक पोलिटिकल एजण्ट रखे गये। १८२२-२३ ई०को कामरूप प्रदेश दखन, कामरूप और नौगांव तीन जिलोंमें विभक्त हुआ। उसमें एक स्वतन्त्र कलक्टर और मजिस्ट्रेटकी अमताके साथ एक प्रधान सहाकारी कमिश्नर (Chief Assistant Commissioner) रखा गया। राबर्टसनके पीछे १८२४ ई०को जेनकिन्स साइव कमिश्नर हुये। उन्होंने जिले और मौजूका चौमा-विभाग ठोक किया था। १८२५ ई०को उक्त प्रदेश बोर्ड ऑफ रेविन्यू के अधीन गया। १८२६ ई०को जयन्तीराजन कम्पनौस सन्धि कर अधीनता मानी थी। किन्तु १८२५ ई०में राजाको मासिक ५०००० रु० हत्ति दे जयन्ती प्रदेश कम्पनौके अधिकारमें लाया गया। १८२८ ई०को पुरन्दर सिंह नियमित कर देना सके थे। उसीमें उन्हें राजस्थान कर नत्पुर्देश शिवसागर और सचमोपुर दो जिलोंमें बांटा गया। चन्द्रकांत सिंह गोहाटीमें ५०००० रु० हत्ति पाते थे। किन्तु उस माल ही उन्होंने परसोक गमन किया। पुरन्दर सिंहको भी हत्ति दे जोड़हाटमें रखनेकी बात उठी थी। किन्तु गवर्नर पुरन्दरने हत्ति न की। उसी स्थान पर चुकाका-बंशके हाथसे आसामका कल-दण्ड अपहृत हुआ और आसाम-वा पाषीन कामरूप राज्य प्रकृत प्रस्तावसे बंगरेजोंके अधिकारमें गया। उसके कुछ दिन पीछे १८२८ ई०को एक कमिश्नरके हाथ मासन और विचारका भार रखनेसे कार्यमें सुदृढ़ता न देख पड़ी। उसीसे एक सहाकारी नियुक्त हुआ। उक्त सहाकारी नियुक्त होनेसे एक पदका नाम लुइसस कमिश्नर और टूथरेखा नाम दुइयो कमिश्नर रखा गया।

१८६० ई०को इनकमटेक्स प्रचलित होनेके फल-गुड़ीके शोग भड़क उठे थे। एसिस्टेंट कमिश्नर सेफटेनगट सिंगर गड़बड़ मिटाने गये, किन्तु निहत हुये। अन्तमें बड़े कौमनसे गड़बड़ यमने पर दोपियाके हत्ति मासि मिली।

१८६१ ई०को कमिश्नर जेनकिन्सने स्वपदसे अवसर लिया था। फिर उसी पद पर कप्तान हफकिन्सन नियुक्त हुये। १८६६ ई०को गोहाटीमें जेनकिन्स मर गये।

१८६२ ई०को खसिया और जयन्ती पर्वतमें भयानक विद्रोह उठा था। फिर १८६४ ई०में भूटानका युद्ध लगा। बंगरेज जीत गये। १८६५ ई०को सिधोला नामक स्थानमें सन्धि हुयो। उक्त सन्धिके अनुसार भूटानके दक्षिण कई स्थान बंगरेजोंका मिले थे। गारो और नागावर्तिके कई नरदारोंने अधीनता स्वीकार की। उनमें सभ्यता फेलानेके लिये उक्त प्रदेश दो जिलोंमें बांटा गया। १८६६ ई०का गारो पर्वतमें तुरा और नागा पर्वतमें सामागुटिंग राजधानी हुआ। उसी वर्ष कौचविहार और स्वात-पाड़ा आसामवाले कमिश्नरके हाथसे निकाल स्वतन्त्र कर दिया। १८७१ ई०को सेफटेनगट गवर्नर सर जर्ज कमथेल उक्त देग देखने पड़ूँसे थे। उन्होंने यहकि विचारारथों और विद्यालयोंमें आसामो भाषा व्यवहार करनेका आदेश दिया।

१८७८ ई०को करनेल हफकिन्सनने पवसर लिया था। फिर आसाम देग बहानके सेफटेनगट गवर्नरके हाथसे निकल एक प्रधान कमिश्नरकी मिला। करनेल-किटिंग प्रथम चीफ कमिश्नर हुये। चीफ कमिश्नर बनने पर गिलेड्र नगर राजधानी हुआ और ग्लानपाडा तथा गारो पर्वत फिर आसाममें चला गया। उसके पीछे ककार और यौहट बहमप्रदेशके स्वतन्त्र हो चीफ कमिश्नरके अधीन हुआ।

उसी वर्ष एसिस्टेंट कमिश्नर सेफटेनगट इनकमन्सने नागापर्वतकी पैमायग शुक की थी। नीसगावमें पड़ूँने पर कई नागावोंने विश्वासघातकतापूर्वक गिरिमें हुए उन्हें मार हाहा। इनकमन्स प्रथम १८७० आदिसियोंमें उसी दिन ८० शोग मारे गये। ५१ शोग पाहत हुये थे। कुछ दिन पीछे उन नागावोंकी उपयुक्त शांति मिली। करनेल किटिंगके पीछे सर ट्रुवर्ट बेसी और उनके पीछे मिटर एसिस्टेंट आसामके चीफ कमिश्नर हुये। सर एसिस्टेंट

१ महादेव । २ विद्मामोक्त धातु, किसी क्रियका चकमक पत्यर ।

कामार्त (सं० त्रि०) कामिन ऋतः पीडितः, ३ तत् । कामपीडित, गृहवतका मारा हुआ ।

कामार्थी (सं० टि०) कामं अर्थयति प्रार्थयते, काम-अर्थ-षिच्-णिनि । कामप्रार्थी, गृहवत चाहनेवाला ।

२ अमीठपार्थी, सुरादमांगनेवाला ।

कामान्तिका (सं० स्त्री०) कामं अन्तति भूययति, काम-अल्-खल्-खु-ट्-टाप्-अन्त इत्वम् । मद्य, शराव ।

कामालु (सं० पु०) कामं यद्येत् अन्तति पुष्पविक्रा-ग्निन पर्याप्नोति, काम-अल्-उष् । रत्नकाचन, जाल-कचनार । (त्रि०) २ अत्यन्त कामुक, जो गृहवतके निये बड़ी खादिस रखता हो ।

कामावधर (सं० त्रि०) कामं यद्येच्छं अवधरति, काम-अव-धर-अप् । १ स्नेच्छाधारी, मनमौजी । (पु०) २ बौद्धिके एक देव ।

कामावतार (सं० पु०) कामस्य अवतारः, १-तत् । १ कामके अवतार, प्रद्युम्न । श्रीकृष्णके पौरस पौर दक्षिणोके गर्भसे इन्होंने जन्म लिया था । २ एक कन्द । इसमें ऊह ऊह मात्राके चार पाद होते हैं ।

कामावशायिता (सं० स्त्री०) कामेन स्नेच्छया अवशाय-यति, स्वचित्ते पदार्थान् निश्चिनोति तस्य भावः, काम-अव-शो-षिच्-णिनि-तल् । सत्यसद्व्यवस्था, खादिसका सुधार ।

कामावशाय (सं० पु०) कामेन स्नेच्छया अवशायः स्वचित्ते पदार्थानां स्थिरीकरणम् । इच्छानुसार अपने चित्तमें पदार्थसमूहका स्थिरीकरण, खादिसका दबाव या सुधार ।

कामावशायिता (सं० स्त्री०) कामावशायिनः सत्य-सद्व्यवस्थाकारिणे भावः, कामावशायिन्-तन् । १ सत्य-सद्व्यवस्था, खादिसका दबाव । अपिमादि पाठमें यह भी योगीका एक ऐश्वर्य है,—

“अविमा अविमा भाविः भावान् अविमा तथा ।
ईदित्थं अदिवत्तया कामावशायिता ॥”

कामावशायित्व (सं० स्त्री०) कामावशायिनी भावः,

कामावशायिन्-त्व । सत्यसद्व्यवस्था, खादिसका दबाव । कामावशायी (सं० त्रि०) कामान् स्नेच्छया अवशाययितुं शीलस्य, काम-अव-शो-षिच्-णिनि । सत्यसद्व्यवस्था, खादिसकी दधानीवाला ।

कामाग्र (सं० स्त्री०) कामं यद्येच्छं पर्याप्तं वा अग्रं भोजनम्, कर्मधा० । १ इच्छानुसार भोजन, मनमंगा खाना । २ पर्याप्त भोजन, काफी पुरात ।

कामाग्र्य (सं० पु०) कामः रमणीयः प्राग्र्यम्, कर्मधा० । रमणीय प्राग्र्यम्, अच्छा ठिकाना या सुकाम ।

कामाग्र्यपद (सं० स्त्री०) कामं मनाच्च प्राग्र्यमपदम्, कर्मधा० । रमणीय प्राग्र्यमस्थान, अच्छी जगह ।

कामासक्त (सं० त्रि०) कामेन आसक्तः, ३-तत् । १ कामरिपुके बगैभूत, गृहवतका तावेदार । २ अभिमायमात्रके बगैभूत, खादिसका तावेदार ।

कामासक्ति (सं० स्त्री०) कामे आसक्तिर्निष्ठा, ७ तत् । कामरिपुके कार्यमात्रको इच्छा, गृहवतको खादिस ।

कामासन (सं० स्त्री०) काममस्थति क्षिपति अनेन, काम-अस-स्य-ट् । आसनविशेष, एक बैठक । गृहहासन कर कनिष्ठाङ्गुलि भूमिमें जगानेसे यह आसन बन जाता है ।

“अथ कामाननं यथा काममर्शनं वीना ।
मदहासनमात्रं च निष्ठापं न्यु मीद मुवि ॥” (अदवागम)

कामाह (सं० पु०) राजान्, बड़ा काम । कामि (सं० पु०) कामयति, काम-षिङ्-इष् । १ कामुक, गृहवती । (स्त्री०) २ कन्दर्पपत्नी, रति ।

कामिक (सं० पु०) काम अख्याति, काम-ठन् । १ कारण्यव पत्नी, एक दरयायी बिडिया । (कामाचि-कारेण कृतो पत्यः ।) २ ईमाद्रि-प्रचीत एक पत्य । (त्रि०) ३ अभिनयित, बाहा हुआ । ४ अभिमायमात्र, सुराद पाये हुआ ।

कामिका (सं० स्त्री०) १ लकारका एक पौराणिक नाम । २ आरव्य लक्ष्या एकादशो, सावन बदे ग्यारव ।

कामिकी (सं० स्त्री०) कामिक-छोप । १ कारण्य-पत्नि, एक दरयायी बिडिया । २ कामनाका कार्यादि, खादिसका काम ।

“दा ददि” बहावर्षिक से पुत्रवर्तिको ।” (महाभारत, अदवागम)

पननार घोषाई क्लिपवर्द्धक एवं शेटनेण्ड और उनसे बाद क्लिपटन माहब चौक क्लिपगनर बने थे। उनके मधिपुरमें मारे जाने पर घोषाई माहबको चौक क्लिपगनरका पद मिला।

१८३३ ई०को सर्वप्रथम कामरूप (बाघाम) में पंरगनेको विद्यालय खुला था। १८३०ई०को कोष-विहारके क्लिपगनर रावटेसनने विचारमंज्जान्त कई देगीय व्यवहारसिद्ध नियम बना दिये। उक्त निय-मीकी 'बाघामकी व्यवदेश्ये' कहते हैं। १८३८ ई० को बाघाममें एक टन ईसाई मिशनरीने प्रवेश किया। उसने प्रथम जयपुर फिर गिजसागरमें गिरजा-घर बनाया था। १८४३ई०को ईसाइयोने बाघाममें माघामें "बहुपोदय" नामक एक मासिक पत्र निकाला। १८४३ई०को दासत्वप्रथा रोकनेकी कानून बनाया। उसी वर्ष बाघामकी प्रसिद्ध "बाय" कल्पनी भी गठित हुई। १८८३ई०को बाघाममें प्रथम पब्लिकनरी चैती की गई थी। पत्रामें १८२०ई०को गवरनमेण्टकी ओरसे साधारणके लिये यह बन्द हुई।

कामरूपमें ब्राह्मणोंके मध्य मतस्रोत सर्व श्रेष्ठ है। यहां ब्रह्मसंन्यासीकी कौकीश्वप्रथा नहीं चलती। मियि-जावासी ब्राह्मणोंकी संन्या पधिका है। देवक यहां प्रियेय सम्मानके पात्र है।

ब्राह्मण कायस्थ अपने हाथसे चल नहीं बनाते। कायस्थोंमें भूयोंके हई घर विमोप विस्तृत है। कसिता छविप्रधान लोग हैं। यह आत्मधर्म श्रेष्ठ होने भी इसवाहनके दोषमें पतित है।

बैषट आदिम जाति है। यह भा क्लवक होती है। बैषट कैवर्मा (मह्यश्रीविदी)के पन्तर्गत है। उनको डोड कोष, मेष, सातुंग, नट, गावित, घटवा, कुंभार, कनधार, धोषी, डोम प्रभृति भी रहते हैं।

यहसे रिन्दू धर्म पीछे बौद्धधर्म यहां प्रचल रहा। मनुष्य भारतमें बौद्ध प्रभाव नष्ट करते महाराष्ट्रायके संस्कारका प्रभाव कामरूप पर भी पड़ा था। देवघर नामक मूढ़ राजा को समझा मूल थी। दूसरे प्रदेशोंकी भांति बौद्धधर्म शीघ्र कामरूपमें दूर न हुआ। ई० १२म सताब्दी भी यहाँ उषका प्राचल रहा। आज भी

राजोंके इयपीबकी मूर्तियों बहुतने लोग बुद्धदेवका प्रतिमूर्ति मानते हैं। योगिनी तन्त्रमें भी कामरूप-बाघी बुद्धमूर्तियोंकी कथा मिली है। पीछे महारदेश और माधवदेव नामक दो कल्पियोंने वैष्णवधर्म प्रचार किया।

बारह भूयोंमेंसे अष्टीवर गिरोमणिके संगमें कुड़-खर गिरोमणि भूयोंके एक पुत्र हुआ था। उसका नाम महार भूया-गिरोमणि या योगहरदेश था। उन्होंने पयःपात हो नामा तीर्थादि दर्शन कर कल्पकी नामक किसी व्यक्तिके संस्कृत भाषा पढ़ी। संस्कृत सीध कर महारदेशने भागवतमें "कीर्तन दशम" नामक पुस्तकका अनुवाद और महत्जन किया था। (१८६०ई०) महार वैष्णव हो बदेशमें वैष्णवधर्म फैलाने लगे। उन्होंने देगीय भाषामें नामाविध ग्रन्थ और महौग बना धर्मप्रचारकी सुविधा तथा भाषाकी शोधकी। उससे कामरूपमें पौराणिक इतिहासके अभिनयादि (खेल) चल पड़े। वाष्टुका नामक स्वामवासे दीर्घक-गिरिके पुत्र माधवमहारने ग्रन्थ हो गृहकी वैष्णवधर्मके प्रचारमें यथेष्ट साहाय्य किया था।

पहोमसोम उन्हें उपदेशसे वैष्णव हुए। किन्तु उसी पूर्व पचोमोंने वैष्णवधर्मके प्रचारके विरुद्ध ही महारदेशके कामाता हरिको पति सामान्य अपराध पर प्राचदण्ड दिया और माधवदेवकी बांध किया था। महार उसी स्वामी पचोमका अधिकार खीड़ पाटवावकी नामक स्थानमें जा कर रहे और माधव किसी ठपायमें बच उनसे साय मिल गये। यहाँ और अमाषा-रिगेने कई बार राजा नरनारायणके पास उनके विरुद्ध अभियोग पढ़ाया, किन्तु कोई फल न पाया था। दिन दिन बहुतने लोगोंने वैष्णवधर्म ग्रहण किया। उनसे पीछे राजाकी आज्ञा पानेमें कोषविहारमें भी उक्त धर्म प्रचारित हुआ। १४८० मखकी महार-देशने जर्मसाम किया। आज भी कामरूप पञ्चकमें यह शैतन्यदेवकी भांति प्रवतार माने और बसाने जाते हैं।

महारदेशके पीछे माधवदेशने उनके धर्मकी जमा रखा था। माधवदेश "महाभुवणपुर" नामसे विख्यात

५ भोग्य, पङ्के-या उठाया जानिवाला। (स्त्री०)
१ अभीष्टकर्म, चाहा हुआ काम। (पु०) ७ अचन
वृत्त, एक पैड़।

काम्यक (सं० स्त्री०) १ वनविशेष, एक जङ्गल। २ सरो-
वरविशेष, एक तालाब। ३ काष्ठविशेष, एक काठ।
काम्यकर्म (सं० स्त्री०) काम्यच तत् कर्म चेति,
कर्मधा०। स्वर्गादि-भभीष्टकामनासे किया जाने-
वाला एक कर्म, ज्योतिष्टोमादि, जो काम किसी
मतसबसे किया जाता हो।

काम्यकथन (सं० स्त्री०) वनविशेष, एक जङ्गल।
यह सरस्वती नदीके तीरे अवस्थित था। पाण्डव बहुत
दिन इस वनमें रहे।

काम्यगिर् (सं० स्त्री०) मधुर गन्ध, एक सुगन्धवार गीत।
काम्यता (सं० स्त्री०) कामस्य भावः, काम्य-तत्त्व।
१ कमनीयता, खूबसूरती। २ भोग्यता, ऐश-भाराम।
३ वाञ्छनीयता, चाह।

काम्यदान (सं० स्त्री०) काम्यस्य तत् दानचेति,
कर्मधा०। १ स्त्रीरत्न प्रथति, कामनीय-वस्तुका दान,
धौरत-दोस्त वगैरह पसन्द जानिवाली चीजोंकी
वस्तु प्रथ। २ पुत्र, ऐश्वर्य, जय प्रथति मिलनेकी
कामनासे किया जानिवाला दान।

“अथविशेषेणैवैवर्गोर्वा” यत् प्रदीयते।
“दानं तत् काम्यमाद्यार्तं अविभिन्नं वैचिक्रमेः ३” (नृचक्रपुराण)

काम्यफल (सं० स्त्री०) काम्यस्य फलः, इ-तत्। काम्य-
कर्मका वाञ्छनीय फल, चाहा जानिवाला नतीजा।
काम्यमरण (सं० स्त्री०) काम्यं वाञ्छनीयं मरणम्,
कर्मधा०। वाञ्छनीय मरण, पाप्महत्या।

काम्यव्रत (सं० स्त्री०) काम्यं काम्यफलप्रदं व्रतम्,
अध्यपदधी०। अभीष्टफलप्रद व्रत।

काम्या (सं० स्त्री०) काम-ण्डु भावे क्वथ-टाप्।
१ म्रियव्रतकी पत्नी। यह कर्दमकी कन्या रही।
विभवत देवी। २ कामना, चाहिग।

“वर्तमानावृत्तानि आदीयुं कथं पयः।
“वर्तिगण्डकामना च शरीरेचनोत्पन्नम् ३” (भ्रात० शेषवर्ण)

काम्याभिषाय (सं० पु०) काम्यः वाञ्छनीयः अभिषायः,
कर्मधा०। वाञ्छनीय अभिषाय, मतसबकी बात।

काम्येष्टि (सं० स्त्री०) कामनाविशेषार्थं अनुष्ठित यज्ञ,
जो यज्ञ किसी मतसबसे किया जाता हो।

काम्यापसना (सं० स्त्री०) काम्यया कामनासिद्धीच्छया
उपासना, इ-तत्। कामनासिद्धिके अभिषायसे की
जानिवाली उपासना, जो पूजा अपने मतसबसे की
जाती हो।

काम्ब (सं० पु०-स्त्री०) कु कुम्भितं ईयत् वा पम्ब,
कोः कादेयः। १ कुम्भित पम्बरस, खराब खटार।
२ ईयत् पम्बरस, थोड़ी खटार। (त्रि०) ३ कुम्भित
वा ईयत् पम्बरस युक्त, काम खटार।

काय (सं० स्त्री०) कः प्रजापतिर्देवता अस्य, क-पय
इदादेयस्य आदेष्टुं हिः। कलंत्वा वा प्राजापत्ये, १ प्राजा-
पत्यतीर्थ। कनिष्ठा अङ्गुलिके अधोभागका नाम
प्राजापत्यतीर्थ है,—

“अङ्गुलमप्य तमे प्राज्ञं तीर्थं” इत्यस्मिन्।
कायमङ्गुलिके एते देव विराजन्तीर्यः ३” (मनु ११२८)

२ मनुष्यतीर्थ। ३ ब्रह्मतीर्थ। (कायति प्रकाशने,
अब्) ४ मृत्ति, शरीर, जिष्ण। बरीरुको। ५ समूह,
टेर। ६ सख्य, निशाना। ७ स्वभाव, वादत।
८ प्राजापत्य विवाह। ९ मूलधन, जमा। १० गृह,
घर। ११ ब्रह्मा। १२ तद्वक्त्रकाष्ठ, तना। (त्रि०)
१३ प्रजापति सम्बन्धीय।

कायक (सं० त्रि०) शारीरिक, जिसमानी, बदनके
सुतासिक्त।

कायकारणकर्तृत्व (सं० स्त्री०) कायस्य शरीरस्य
कारणं उत्पत्तिकारणे कर्तृत्वम्। शरीरोत्पत्तिकारक
कारणकी सृष्टिके विषयका कर्तृत्व, जिष्णानी कामाक्षी
इरकत।

कायक्षेत्र (सं० पु०) कायस्य क्षेत्रः, इ-तत्। शारीरिक
परिचय, जिष्णानी सिद्धत या तकसौफ।

कायचिकित्सा (सं० स्त्री०) कायस्य चिकित्सा, इ-तत्।
आयुर्वेदीय अष्टाङ्ग चिकित्साका एक अङ्ग, तमाम जिष्ण
पर अक्षर हानिवाली बीमारियाका इलाज। इसमें
ज्वर, उन्माद, कुछ प्रथति शरीरस्यापी रोगोंकी
चिकित्सा है।

कायज्ञा (सं० पु०) वनगारज्जु, जगामकी छोरी।
कायप (त्रि०) कायक देको।

यद्वर्षमंतस्वमे एक कायस्थको उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई गई है,—

“मादिशयनितामृतुर्वेदिशयः प्रपुवते ।
म कायस्थ इति शीघ्रस्थस्य कर्म विधीयते ॥
एवार्थे श्यामा मादिश्या विष्णाविनाको वेदिशः ।
नीयानो द्वेषजातानां मेखनं स समापरेणु ॥
मपकलं विविशय बीजवाटी प्रविशतः ।
अधमः शुद्धमातिभ्यः पचस्य कार्यामसो ।
आनुवंश्यान्व सेवादि निदिशेखनप्रभयम् ॥
मिवां यमोपवीतय कायस्थानो विवन्नयेत ॥”

‘वेदेहके पौरसमे पौर मादिशयजोके गर्भसे जो उत्पन्न हुये है, वे कायस्थ है । देशीय भिक्षिका मिलना, गणना करना, गिन्त्य हाथे करना, बीज आटिका होना, चार वर्षकी सेवा करना इत्यादि उनका कार्य बतलाया गया है । यह वांछो संस्कार अधम शूद्रजातिके करनेके है, इसलिये इनकी चोटो, यज्ञोपवीत, गैरकवच पौर देवताका स्पर्श न रखना चाहिये ।’

इसके प्रतिरिक्त शब्दकल्पद्रुमोद्धत देवीवरके “उपविशानिनाः पच तरेण यदपचथाः” इस कथनसे यही प्रमाणित होता है कि, आदिशूरको समाने पच ब्राह्मणके साथ साथे हुये पचकायस्थ आदि शूद्र ही ठहराये गये थे । इसके सिवा छद्मवर्णपुराणमें भी लिखा है,—

“यदायां मे विनाशः करको वर्णवहः” (उत्तर ११ च०)
इत्यादि प्रमाणसे किसी शौंगोका मत है कि वैश्यमें उत्पन्न वर्णवह करण भी कायस्थ थे ।

विद्वहमत-पण्डन ।

विद्वहवादे शौंग चित्रगुप्तके वर्ष पौर धर्म संबन्धमें जिन युक्तिर्षाकी दिखनाति है, उनके उचारमें हम पहिले ही कमलाकारधृत हृदयब्रह्मण्डका प्रमाण लक्ष्य कर चुके हैं कि, ब्रह्माने उत्पत्ति कालमें ही चित्रगुप्तके कहा था—“तुम कायस्थ” जिस स्थानसे अश्रिय उत्पन्न हुए हैं उसी स्थानसे उत्पन्न होनेके कारण अश्रिय नामसे प्रसिद्ध होगी। तुम्हारे वंशके शौंग भी तुम्हारे ही समान पश्चात् कायस्थ नामसे पुकारे जायेंगी । उन शौंगोका विवाह अश्रिय कन्यायोंके साथ होगा । अश्रियवर्णके लिये भी

संस्कारादि कर्म बतलाये हैं, उन धर्मको वे मेरी आशाके अनुसार करेंगे ।”

ब्रह्मणके इस कथनसे चित्रगुप्त पौर जनके वंशधर कायस्थ अश्रिय है, इसमें कुछ भी संन्देह उत्पन्न नहीं होता ।

मिताशरामे कायस्थोंको राजवह्नम, शूलपायिकृत दीपकलिकामे राजसम्यन्धेत्प्रभावगाली पौर पचवर्क-विरचित याज्ञवल्क्यनिबन्धमें कराधिकृत या कराधिकारी कहा गया है । कायस्थ सदासे राजावर्णके प्रिय होते पाये हैं । यह राजकार्यमें निपुण होते हैं, पौर कर वसूल करनेमें इनका सुत्वतः हाथ रहता है ; इस लिये इन शौंगोंके द्वारा प्रजाका अधिक बोझा पट्टेच सकती है । अतः याज्ञवल्क्य पौर अग्निपुराणकार राजाधीका इन (कायस्थ) शौंगोंके प्रति विशेष मन्त्र रखनेका आदेश दे गये हैं ।

कायस्थोंके हाथसे किसी किसी जगह प्रजा अधिक पीड़ित होती रही, इसी लिये शौंगमध-धर्मशास्त्रमें, ब्रह्मवेदवर्णपुराणके अन्त्यर्धमें पौर राजतरङ्गिणी, यन्में कायस्थोंकी निन्दा की गई है । सेकन-किसी भी शास्त्रमें कायस्थोंको हीनवर्ण नहीं कहा गया है । कमलाकरने जिन प्रतिशोभजात कायस्थोंका उल्लेख किया है, वह चित्रगुप्तके वंशधर कायस्थ नहीं हैं पौर न इनमें उन जगह लिखे गये बातें जो सद्गटिन होती हैं । ऐसा मानन पड़ता है कि मेदनीपुरवासी प्राथुनिक ‘काय-जातिका नाम संस्कृत भाषामें उन्ही (कमलाकर)ने ‘कायस्थ’ रूप दिया है । किन्तु चित्रगुप्तके वंशधर कायस्थोंको उन्हीं भी कायस्थ-अश्रिय कह कर परिचय दिया है । चित्रगुप्तने देवकन्या सुदचिपासे साथ विवाह किया था । “ब्रह्मण्योदेवकानो देवधरदेव-धुश्चके । भोजनय सस ब्रह्मण्यदि दैवदे विरेः” इत्यादि पद्यपुराणके कथनानुसार ब्राह्मण जब चित्रगुप्तको देव मान कर पूजते थे, तब धर्ममार्गमें पवनी कन्याका धनमें पाषिण्डक कर दिया ; तो इनमें दाय कौनसा हो गया ? इसके सिवा उस समय योनवृट्टि या महारोपनिषीकी रीति रीतों न थी ; नर्षी तो ब्राह्मण

कायदा (सं० पु०) १ नियम, तरीका। २ रीति, टप्पू। ३ व्यवसाय, कामकाज।

कायकर (हिं०) कर का देण्ड।

कायकल (सं० ली०) कटकल, एक पेठ। इसकी काल शोधमें प्रयोग है। हिमालयके प्रवाग्धाम ज्वालामुखी दह जगद्व होता है। कायामक कायिका वर्णत शीत कट्टेदमें भी इसकी प्रयुक्त है।

कायकर्म (सं० ली०) कार्य बंधानि, काय-कर्मन्तुः पतिव्रत, बभारकम्।

कायम (सं० वि०) १ स्थित, ठहरा हुआ। २ व्यापित, रखा हुआ। ३ नियमित, ठहराया हुआ। ४ समाप्त, बराबर।

कायम—कायम जानूँका प्रपणाम। टोंकवाले लवाय मन्नेर मुहकट धान्नेर चधोन दह येनामीके पट पर प्रतिष्ठित रहै। १८५३ ई० की दलीमें उन्नेमें एक धीवाङ्क बनाया था।

कायमकट्ट—पू.कथावादावामे लवाय मुहकट धान् बहकके पुत। १०४३ ई० के लून मासमें दन्ने चपने विनाका सत्तासाधिका रिखा था। दन्नेने चधोर लवाय कट्टर कट्टी मेरवा पर उन्नेमें मुह ठाम। किन्तु पनाकय धीमेपर १०४८ ई० के लवाय मासमें दन्नेने दन्ने मार डाला था। फिर चधोर दलका शक्य दवा भेठे। दलके प्रधान कमेचारी दलावादाकी बन्नी बलाकर भेठे गये। किन्तु दलकी माताकी १२ छोटे लिकाके साथ पहवावादा लवाय चधोरके भरलपोषकके निन्दे रिखा था। विगत देग लकीरके प्रतिनिधि बाला लवल शक्यके भरलचधोर रहा। सोने दिग वेठे हो दलके माता चधोरक धान्नेर मुहमें बाला लवल शक्यके मार, देग पर चपना अधिहार जमा रिखा था।

कायमलोवाक (सं० लि०) कायः मलः कायच चय, बहूमे०। चधोर, मल और कायके चोलेवाका, का दिनाकाङ्के कलमें पर बलना हो।

कायममुकाम (सं० वि०) व्यामाउव, दहली, जगद्व पर रहनेवाका।

कायमान (सं० ली०) कायस्य मानसिक मानस्य,

मन्व्यदलो०। १ व्यवहारी, जनता औरवा। २ देवप्रियाप, निरमकी भाव। कायप (हिं०) बला देको।

कायना (हिं०) कायना देवा। कायकर्मयम (सं० पु०) पानचाल-कठित एक धान। इसमें चपने दपका मंदम कडा है।

कायल (सं० वि०) दयापनाका शोकाय कर्मिवाका, लो भूठ निकलने पर चपनी बाल पकडना न हो।

कायमी (हिं० ली०) १ स्थानि, मन्ने। २ मदायी।

कायबलम (सं० ली०) कायो बलने पादरायने चपने, काय-बल-कट्टः। कवच, बहुरः।

कायस्थ (सं० ली०) महाभारताक एक दयावाक। दलके लमका विवरण दम प्रकार दिग है, जिसे निवारके गर्भ और सतिपके चोरपरी कायस्थका बल हुआ। दह टप्पूदलाधिप बलने भी सर्वदा धम-कर्ममें ली रहने थे। चनुचरीके प्रति दलका पादेग रहा—तुम लोग कायस्थ, लपयो, भीद, मिद, लो चोर मुहरी भागे लजिके कर्मी मत मारो। यह शक्य बनवायो, लघीतवा कायस्थकी पुनरी चोर मुहरी मार उन्ने पदांत बाधा दिने थे। इसी प्रकार टप्पूवृत्ति चपने भी कायस्थने सिद्ध पायो। (लवाय-कर्म, १४५-५०)

कायस्थ (सं० पु०) कायि शरीरे च्युः वागदोना स्वमादोना मतधानुनाय क्युदलम्, ० लम्। शरीरके बाल, पिना, यक्षा, लक, पयति वागधानुका रिखाय, पादकिकुम् पारवा कर्ममें पर दयाकम लक, रक, मांस, छाद्य, चव्यि, मज्जा चोर मुहरी गते है। बाल, पिना चोर लोका शरीरके चभदलामें प्रवक्तु प्रवक्तु स्थानपर चवस्थित है।

दल लोनी दायीं की चवस्थित चवकाका काल दह प्रकार निर्दिष्ट है,—नित्य्य चधे मुहरीके क्युदल, पहामय (नित्य्य चधे मुहरीके क्युदल) चधे चधे लामिके लोने दलायय चवका है। तथा चामादधे मज्जा पिनाका चोर चामामय लोकाका काल है। चधेचधे पाकान्नेके चधेचधे कव लोनी क्युदल लोनी दायींके क्युदल गये है। (१५०)

चधेचधे दोष चधे चधे भागीमें विरम है। दम

श्रृष्टिकन्या शर्मिष्ठाका विवाह शत्रिय राजा ययातिके साथ कभी नहीं हो सकता था। शब्द कल्पद्रुममें "वाचारनिर्णयतन्त्र" और "पद्मिपुराणीय जातिमाला" से जो प्रमाण लिये गये हैं, वच पाण्डुनिक रचना है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। तन्त्रसार, महासिद्धि-सारस्वत, प्रागमतन्त्रविलास, वाराहोतन्त्र और रुद्रयामनतन्त्रमें भिन्न भिन्न ५०। ६० तन्त्रोंका उल्लेख है। परन्तु उपर्युक्त किसी भी तन्त्रमें "वाचारनिर्णयतन्त्र"का नाम तक नहीं आया है। भारतके नाना स्थानोंमें सेकड़ों तन्त्र-ग्रन्थोंका पता लगा है, परन्तु दूसरी जगह कहीं "वाचारनिर्णयतन्त्र" की एक भी प्रतियाँ नहीं मिली। सिर्फ शब्दकल्पद्रुमके सङ्कल्यिता राजा राधाकान्त देवके पुस्तकालयमें ही एक प्रति मिलती है। इस पुस्तकमें ७० श्लोक हैं। इसकी लिपि देखनेसे ही स्पष्ट मालूम हो जाता है कि, यह किसी पाण्डुनिक लेखककी लिखी हुई है। यह पुस्तक किसी उद्देश्य-सिद्धिके लिये ही लिखी गई है;—इस बातको वे ही हृदयङ्गम कर सकेंगे, जो इस पुस्तक को देख चुके हैं। पद्मिपुराणीय जातिमालाके विषयमें भी ऐसा ही है। कलकत्तेकी एशियाटिक सोसाइटी और सन्देश आदि नाना स्थानोंसे मूल पद्मिपुराण प्रकाशित हुये हैं, पर उनमेंसे किसीमें शब्दकल्पद्रुममें कही गई पद्मिपुराणीय जातिमालाका एक भी श्लोक नहीं मिलता। और की तो क्या, भारतसे जितने हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त हुये हैं, उनकी विवरण-पुस्तिकाओं में भी इस जातिमालाका उल्लेख नहीं। बङ्गालके बाहर जो चित्रगुप्तके ग्रंथके कायस्थ रहते हैं, उन्हें भी इस जातिमालाका पता न था। बङ्गालमें सिर्फ वसु, घोष आदि उपाधि धारियोंका वास है और इसके उल्लेखसे यह जातिमाला किसी बङ्गालीकी बनाई हुई और पाण्डुनिक ही प्रतीत होती है। इसलिये "वाचारनिर्णय तन्त्र"की तरह यह जातिमाला भी किसी विशेष उद्देश्यसिद्धिके लिये रचाने बनाई गई है इसमें संन्देह नहीं। इसी तरह शब्दकल्पद्रुमके "कुलप्रदीप"के वचन भी प्राचीन-शास्त्र-सम्मत श्रृष्टिके कारण पाण्डुनिक है; और वच किसी विशेष उद्देश्यसिद्धिके लिये लिखे गये हैं, इस लिए वह भी

स्वाग करने योग्य हैं। 'शब्दकल्पद्रुम'में कही गई देवी-वरकी उक्ति भी कायस्थनिक है, क्योंकि देवीवरके मूल कुलग्रन्थमें कहीं भी ऐसे वचन नहीं हैं। उपरोक्त प्रमाणोंकी भाँति "हृदयङ्गमपुराण"के वचन भी कायस्थके विषयमें ठीक नहीं जंचते। शब्दस्त्राकार अभिधागके—
 "करव"वाचने गाने पुमान् पदापिभ्योः सुते।
 पुत्रे कायस्थमेदपि भेदं करवमस्तिवाम् ॥"

इत्यादि प्रमाणमें कारण कायस्थ और शूद्र-वैश्यासे उत्पन्न कारण, सम्पूर्ण भिन्न प्रतीत होती है।

साम्न्ध-विपश्चिक ।

कायस्थका अर्थ लेखक या राजाका लेखक है—इस बातकी सब ही स्वीकार करते हैं। विष्णुस्मृति और हृदयपुराणश्रुतिमें राजसभाके लेखकको ही कायस्थ कहा है। उक्त स्मृति और श्रुतिसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि, पहिले कायस्थ लोग ही हिन्दूराजाओंके समयमें सेना-विभागका हिसाब रखनेके लिए, कर वसूल करनेके लिए और विचारालयके कागजात लिखनेके लिए राजसेखक रूपसे रखे जाते थे। अर्थात् लिखनेका काम एकमात्र कायस्थोंके ही हाथमें था। पहिले हिन्दू-राजसभामें लिखनेके काममें कायस्थोंके सिवा दूसरे नहीं रखे जाते थे। इसी लिए कायस्थ या राजसभाके लेखक राजका साधनाङ्ग समझे जाते थे। मनुसंहिताके ८वें श्लोकके भाष्यमें सिधातिथिने ऐसा लिखा है:—

"राजापराचारमायस्थिककायस्थ-हस्तलिखितायैव प्रमाणी भवति ॥"

अर्थात्—राजदत्त ब्रह्मोत्तर भूमि आदिका शासन, जो एक कायस्थके हाथका लिखा हुआ है, वही प्रमाणित है। मिताक्षरामें लिखा है,—

"सन्धिविपश्चिकारो तु भवेत्तस्य लेखकः।
 स्वधे राजा समारिष्टः स त्रिपेटागवाचनम् ॥"

(भाष्याराध्याय, १११ श्लोक)

जो व्यक्ति राजाका सन्धिविपश्चिकारी लेखक होगा, वह ही राजाके आदेशानुसार राजशासन लिखेगा।

अपराधके याज्ञवल्करनिबन्धमें भी व्यासके वचन ऐसे उद्धृत हैं,—

"राजा तु स्वयमारिष्ट-सन्धिविपश्चिकः।
 तायपरे पटे वारि त्रिपेटागवाचनम् ॥"

स्यानेकी क्रीड तीर्ता दीप दूमरी जगह भी रहते हैं ।

वायु, कफ, और विण मन्द् र्दकी ।

२ कर्मभोगके लिये योगियों द्वारा कल्पित कायसम्पद् । योगी कर्मत्यागके लिये कायस्थ्युद्घ घनाते हैं ।

“नाभिचक्रे कायस्थ्युद्घामम् ।” (पातञ्जलम्)

नाभिचक्रेमें संयम रखनेसे योगी कायस्थ्युद्घ समझ सकते हैं । फिर ‘महत्स्यादेव तच्छ्रुतेः’ शाण्डिल्यसूक्तके अनुसार योगी बहुविध फल भोगनेके लिये जो शरीर बनाते, उससे चित्तमें प्रत्येक दृष्टिय और चद्रकी कल्पना समगते है ।

कायसम्पद् (सं० स्त्री०) कायस्थ सम्पद् इ० तत् । शरीरकी सम्पत्ति, जिष्णुकी दीनता । रूप, नावस्थ, वन और सुगठन प्रभृतिको ‘कायसम्पद्’ कहते हैं ।

कायस्थीस्थ (सं० स्त्री०) शरीरसुख, जिष्णुका पाराम । कायस्थ (सं० पु०) कविये सुसंभृतदेहेषु तिष्ठति, काय-स्था-क । १ चन्तर्थाग्नी परमेस्वर ।

“कायस्थोऽपि न कावस्थः कावस्थोऽपि न जादते ।

कायस्थोऽपि न सुप्रानः कावस्थोऽपि न चक्रेते ॥” (उपनिषत् १।१।८)

२ जातिभेद । भारतवर्षके प्रधान प्रधान स्यानेमें जो कायस्थ वास करते हैं, उनमेंसे सामाजिक और विद्युक्त कायस्थ मात्र चपनेको चित्रगुप्तके संश्रर बननाते हैं । इनके सिवा और एक श्रेणीके सम्भ्रात और चल्पमेंस्यक कायस्थ हैं, जो चान्द्रमैत्रीय प्रभु कहलाते हैं । जिन क्षत्रिय संश्रधरोंने युद्धक्षत्ति त्याग कर एक प्रभु कायस्थकी क्षत्ति चक्षकी वा उत्तके साथ सम्बन्ध जोड़ा, वे भी ‘प्रभु’ कहलाते हैं । चित्रगुप्त देव ही कायस्थ जातिके चादिप्रह्व है । देवी दशार्में मन्वे पक्षिसे चित्रगुप्तके विषयकी ही पालोचना करनेको चाडिजे ।

चित्रगुप्तका परिचय ।

इत्यल्लिखित भविष्यपुराणमें० लिखा है,—

“दशवर्षं महाभाषिच दशवर्षं यतामि न ।

म समाधिं समाधाय जित्तेःपुनः कल्पनामने ॥

० भागवतके द्वे द्वे भविष्यपुराणमें चित्रगुप्तके विषयमें ऐसी कोई बात न देख कर कोई कोई इस विवरणको द्रष्टिमान बनाते हैं ; परन्तु भागवत महापुराणके अविश्रान्तस्यही अविश्रान्तपुराणकी जो विलसु विषय-रूपी है, उसमें कर्मिकी दृष्टा विनीतके जन्म कर्मके विवरणमें ही पूजा और विलसु विवरणका आभाव दिवता है । इसके विवा कहे ज्ञानोंके

जिनके समाधी कर्ममें यत्नमें तरदासि न । तच्छरीरायाकाशतः श्यामः कल्पनामनेनः ॥ कल्पु प्रीयो गूढमिराः पूर्णचन्द्रनिभायनः ॥ सेखनोच्छे दनोदकी मकीभागतव पुनः ॥ निःशुभ दमेने तस्यो ज्ञपयोऽस्य ज्ञपयनः ॥ उत्तमः सविचिताही ध्याननिमित्तनाचनः ॥ दक्षा समधिं गाह यत्तं ददमे वितामहः ॥ चयोर्ष क्षत्रियोवाय पुत्रवशातः जित्नाम् ॥ पश्यत को मवावर्षे तिष्ठते पुत्रकीनम् ॥ इति इवोऽनरीशोच ज्ञपार्थं कर्मकोऽहम् ॥

पुत्र उवाच ।

उत्तमा विविता नाव ज्ञपरोराव संभवः । नामधेय चि मे तात । वज्रमईस्यनः परम् । यद्योचितय यन्नुवाचै त्पु त्वं नामगुणाय ॥ पुत्रस्त उवाच । इत्याहली ततो ज्ञप्रा पुत्रवर् ज्ञगरोरत्रम् । प्रक्षय मन्वु वाषेदमानन्दितमतिः पुनः ॥ स्थिरमाथाय मिथारी ध्यानस्थमपि सुन्दरः । ज्ञप्रीया ।

मच्छरीराय समुद्र तुमवाण कायस्थसंश्रम् । विवदुम नि नावः वे श्यानी सुवि भविवाति । धनीवर्षेविशेकावर्षं धर्मतागुपरे सदा ॥ जित्निभेनन नै वक्षः । समाप्तं प्राय निचक्राम् । यववर्षोचिनो धर्षः पाचनोव ददाविधि ॥ दना उत्तम भीः पुत्र सुवि मारधनादिन । तको दृष्टा वरे ज्ञप्रा तको वाचनोऽप्य ॥” (पद्म-उपनिषत्)

ज्ञानि जगत्की सृष्टि करनेके बाद स्थिरचित्तमें दृष्टियोंकी संयत कर ११०० वर्षे तपस्या की । उन्में पवस्यामें ज्ञप्राके शरीरमें श्यामवर्ण, पद्मनीचन, कम्पुपीध, गूढमिरा और परमसुन्दर एक पुत्र उदय उद्युत । वह देवाता-कल्पन में कर ज्ञप्राके सामने पा खड़ा हुआ । तब ज्ञानि समाधि भङ्ग कर उसे नीचेमें ऊपर तक देख कर पूहा, तुम कीन हो ? और मेरे सामने क्या खड़े हो ? उत्तरमें उस पुत्रयने कहा, —“हे नाथ ! मैं पापके शरीरमें ही उत्पन्न हुआ हूँ ।

ऐसी दृष्टान्तिवित्त दुलके जो जिनो है ; जिनमें अविश्रान्तपुराणके विवरणमें प्रतका विवरण पया जाता है । सुदतिह “कल्पवृक्षनिषात” और “कल्पवृक्षदम्” महाभाषमें भी अविश्रान्तपुराणके कल्पमें उक्त विवरणकी कथा उद्धृत है । चन्द्रर आन पक्षता है कि, भागवतके द्वे द्वे अविश्रान्तपुराणके यह प्रतकवा विवरण ही सही है ।

सन्धि-विग्रह-लेखक, स्वयं राजाकी प्राप्ताये ताम्ब-पट्ट या कपासके कागज पर-राजशासन लिखेंगे। भारतवर्षके नामा स्थानोंसे ताम्बखण्डों पर लिखे हुए जितने शासन निकले हैं, उनके सन्धिविग्रहकारी लेखक "सन्धिविग्रहिक" नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। पहिले सान्धिविग्रहिकका पद एकमात्र कायस्थोंकी ही मिलता था। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें सान्धिविग्रहिक, "सन्धिविग्रह-लेखक" (अपराज १८६, नोरनिगोदय और केमरवै जयकी इतां ५०) "सन्धिविग्रहकायस्थ" (कीमदीनका काया-परिष्कार ३१६१) और "सन्धिविग्रहाधिकारपाञ्चिकत" (Ind. Ant. VI p.10) नामसे प्रसिद्ध थे।

अग्निपुराणमें लिखा है :-

"सान्धिविग्रहिकः कायः वाग्गुल्फादि विचारदः।" (११०११)

सान्धिविग्रहिक छह गुणोंमें विचारद होना चाहिये। वे षट्गुण-कीम-कीनसे हैं? मनुसंहिताके मतसे—

"सन्धिच विग्रहचैव वातमासममेव च।

देषीभाव' च'अथच' षड्गुणविभविस्त्वा॥"

सन्धि, विग्रह, यान, शासन हे घोभाव और संशय इन छह गुणोंकी चिन्ता, गभीरतापूर्वक करना चाहिये। मनुसंहितामें और भी है,—

"मीलान् शास्त्रिवः शूरान् सन्धिवान् कृणुइतान्।

सचिवान् सताष्टो वा प्रकुर्वीत परोचिन्तान् ॥

ते साह' विनयीतिथ' सामान्यं सन्धिविग्रहम्।" (०। १०, १६१)

सुप्रतिष्ठित वेदादि धर्मशास्त्रोंमें पारदर्शी, शूर और बुद्धियुक्तोंमें निपुण और कुलीन—एसे सात षाठ मन्त्री, प्रत्येक राजाके पास रहने चाहिये र सन्धिविग्रह प्रादिकी सहाय करने बुद्धिमान् सचिवोंसे लेनी चाहिये।

मिताक्षरामें विज्ञानेश्वरने लिखा है,—

"१४' सन्धिः पून' कृत्वा ते साह' राजे सन्धिविग्रहादिलक्ष्यं कार्यं विनयेत् । समसे अंशे य चमत्सर' तेषामभिप्रायं ज्ञात्वा सन्धिविग्रहाय-विचारकुशलं प्राप्तयेन पुरोहितेन सह कार्यं विनियत ततः स्वयं उवाच कार्यं विनयेत् ।"

मिताक्षरके उपर्युक्त बचनसे यह मालूम होता है कि, राजाके जो ०८ मन्त्री रहते थे, वे सब ही ब्राह्मण

नहीं थे। कौं कि; उसके बाद ब्राह्मणके साथ क्या क्या परामर्श करेंगे—यह भी लिखा है।

(शासनका, १ म अध्याय, १११वां श्लोक)

शुकनीतिमें छठ लिखा हुआ है,—

"पुरोधा च प्रतिनिधिः प्रधानसचिवश्चरा ॥ ६६ ॥

मन्त्री च प्राण्विवाक्य च पण्डितश्च सुमन्त्रकः ।

अमात्यो दूतश्चैव ता रायः प्रकृतयो दमः ॥ ७० ॥

दय शीलाः पुरोधायाः ब्राह्मणा सर्वे यव ते ।

अभावे चमिया योग्योत्तरदमावे तयोदजाः ॥ ७१ ॥

मैन शूद्रास्तु स'धोऽन्याः शुभवन्तोऽपि पार्थिवैः ।" (१५ अध्याय)

पुरोहित, प्रतिनिधि, प्रधान, सचिव, मन्त्री, प्राण्विवाक्य, पण्डित, सुमन्त्र, अमात्य और दूत ये दश व्यक्ति राजाकी प्रकृति हैं। उक्त पुरोहित चादि दमो लोग ब्राह्मण होने चाहिये, ब्राह्मणके अभावमें अत्रिय और अत्रियके अभावमें वैश्य भी नियुक्त हो सकेंगे। शूद्र गुणवान् होने पर भी राजा उक्त कार्योंके लिए नियुक्त न कर सकेंगे। अपरोक्त सात-षाठ सचिवोंमें एक सान्धिविग्रहिक भी थे। शुकनीतिमें इन्हीं सान्धिविग्रहिकका "सचिव" नामसे उल्लेख किया गया है। यह सान्धिविग्रहिक सचिव शूद्र नहीं हो सकते—इस बातका भी शुकनीतिमें छठ प्रमाण मिलता है। हारीतस्मृतिसे यह साफ जाहिर होता है कि, सन्धि विग्रह चादि अत्रियोंका ही धर्म है।

"राज्यस्थाः सचिवश्चापि प्रजा सर्वं च पालयन् ।

इयं दक्षदत्त' समग्रमन्त्रेन्द्रमन्त्रान् यथाविधि ॥

नीतिशास्त्रां कुलसः सन्धिविग्रहस्तचरित् ।

द्वेषब्राह्मणभक्ष्य विद्वेषायेपरसथा ॥

च'अथ यजन' वादेमन्त्रपरिवर्त्तनम् ।

उपनामं प्रतिभाश्रीति सचिवोऽप्यवभाषरन् ।"

(हारीतस्मृति १५ ५०)

इन प्रमाणोंसे जब यह सिद्ध हो गया कि, सन्धिविग्रह चादि कार्य अत्रियोंका ही था, तब अतमें कहे गये सन्धिविग्रहकार कायस्थ या सान्धिविग्रहिक, अत्रियके सिवा दूसरी जाति नहीं हो सकते। ब्राह्मणोंके धर्मप्रतिष्ठापक गुप्तवंशीय सम्राटोंसे ले कर गोब्राह्मण-भक्त बह्मसके विनययोगीय राजाओंके समय तक जितने राजा हुए हैं, उनको समाधीमें

श्रृष्टिकन्या गमिष्ठाका विवाह क्षत्रिय राजा ययातिके साथ कभी नहीं हो सकता था। शब्द कल्पद्रुममें "आचारनिर्णयतन्त्र" और "अग्निपुराणीय जातिमाला" से जो प्रमाण लिये गये हैं, वरु आधुनिक रचना है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। तन्त्रसार, महासिद्धि सारस्वत, पागमतस्त्रविम्लास, वाराहोत्तन्त्र और रुद्रयामनतन्त्रमें भिन्न भिन्न ५०। ६० तन्त्रोंका उल्लेख है। परन्तु उपर्युक्त किसी भी तन्त्रमें "आचारनिर्णयतन्त्र" का नाम तक नहीं आया है। भारतके नाना स्थानोंमें सेकड़ों तन्त्र-ग्रन्थोंका पता लगा है, परन्तु दूसरी जगह कहीं "आचारनिर्णयतन्त्र" की एक भी प्रतियाँ नहीं मिली। सिर्फ शब्दकल्पद्रुमके सहाय्यिता राजा राधाकान्त देवके पुस्तकालयमें ही एक प्रति मिलती है। इस पुस्तकमें ७० श्लोक हैं। इसकी लिपि देखनेसे ही स्पष्ट मालूम हो जाता है कि, यद्यपि किसी आधुनिक लेखककी लिखी हुई है। यह पुस्तक किसी सद्देश्य-सिद्धिके लिये ही लिखी गई है;—इस बातको वे ही हृदयङ्गम कर सकेंगे, जो इस पुस्तक को देख चुके हैं। अग्निपुराणीय जातिमालाके विषयमें भी ऐसा ही है। कश्मिरीकी एशियाटिक सोसाइटी और बम्बई आदि नाना स्थानोंसे मूल अग्निपुराण प्रकाशित हुये हैं, पर उनमेंसे किसीमें शब्दकल्पद्रुममें कही गई अग्निपुराणीय जातिमालाका एक भी श्लोक नहीं मिलता। और की तो क्या, भारतमें जितने हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त हुये हैं, उनकी विवरण-पुस्तकामें भी इस जातिमालाका उल्लेख नहीं। बङ्गालके बाहर जो चित्रगुप्तके चंशके कायस्थ रहते हैं, उन्हें भी इस जातिमालाका पता न था। बङ्गालमें सिर्फ वसु, घोष आदि उपाधि धारियोंका वास है और इसके उल्लेखसे यह जातिमाला किसी बङ्गालीकी बनाई हुई और आधुनिक ही प्रतीत होती है। इसलिये "आचारनिर्णय तन्त्र"की तरह यह जातिमाला भी किसी विदेश्य सद्देश्यसिद्धिके लिये कालमें बनाई गई है इसमें संदेह नहीं। इसी तरह शब्दकल्पद्रुमके "कुलप्रदीप"के वचन भी प्राचीन-मोक्ष-सम्मत न होनेके कारण आधुनिक हैं; और वरु किसी विदेश्य सद्देश्यसिद्धिके लिए लिखे गये हैं, इस लिए वरु भी

त्याग करने योग्य हैं। 'शब्दकल्पद्रुम'में कही गई देवी-वरकी उल्लिख भी कायस्थिक है, क्योंकि देवीवरके मूल कुलप्रथममें कहीं भी ऐसे वचन नहीं हैं। उपरोक्त प्रमाणोंकी भांति "सुहृद्वैभंगपुराण"के वचन भी कायस्थोंके विषयमें ठीक नहीं लंचते। शब्दद्वाराकर अभिधानके—

"हरश्च" वाचते गाने प्रमाण श्रुताभिः सुते।

युद्धे कायस्थभेदेऽपि येऽहं हरश्चमन्त्रियाम् ॥"

इत्यादि प्रमाणमें करण कायस्थ और शूद्र-वैश्यासे उल्लेख करण, सम्पूर्ण भिन्न प्रतीत होती है।

साम्बि-विषयिक।

कायस्थका श्रेय लेखक या राजाका लेखक है—इस बातको सब ही स्वीकार करते हैं। विष्णुस्मृति और ब्रह्मपुराणश्रुतिमें राजसभाके लेखकको ही कायस्थ कहा है। उक्त स्मृति और श्रुतिके यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि, पहिले कायस्थ लोग ही हिन्दूराजाओंके समयमें सेना-विभागका हिसाब रखनेके लिए, कर वसूल करनेके लिए और विधायकके कार्याजत लिखनेके लिए राजलेखक रूपसे रखे जाते थे। श्रेय लिखनेका काम एकमात्र कायस्थोंके ही हाथमें था। पहिले हिन्दू-राजसभामें लिखनेके काममें कायस्थोंके सिवा दूसरे नहीं रखे जाते थे। इसी लिए कायस्थ या राजसभाके लेखक राजका साधनाङ्ग समझे जाते थे। मनुसंहिताके ८वें श्लोकके भाष्यमें सिधातिथिने ऐसा लिखा है:—

"राजापराकारासगानिकेकायस्थ-इति लिखितायेव प्रमाणो मरणि।"

श्रेयान्—राजदत्त ब्रह्मोत्तर भूमि आदिका शासन, जो एक कायस्थके हाथका लिखा हुआ है, वही प्रमाणित है। मिताक्षरामें लिखा है,—

"सम्बिदिदकारो तु भवे यस्तस्य लेखकः।

भयं रामा समदितः स लिखेद्राजशासनम् ॥"

(आचारार्थ, ११८ श्लोक)

जो व्यक्ति राजाका सम्बि-विषयकारी लेखक होगा, वरु ही राजाके आदेशानुसार राजशासन लिखेगा।

अपराकके याज्ञवल्करनिबन्धमें भी व्यासके वचन ऐसे उद्धृत हैं,—

"राजा तु सयमादित-सम्बिदिदकारः।

तायने पटी यदि सन्निवेशराजशासनम् ॥"

पुनर्यामोश्च धर्माका । धृपुमान्यातुवीरयेः ।
 मन्त्रित्वायितवे न षट्पट्टिस्त्रमन्त्रितः ॥ ८
 परंस्तु तपसस्तप्य चित्तव्य रिमनामनः ।
 तदा तुष्टः सङ्घर्षाद्यः चाश्विन महता विभुः ॥ ११
 अमरुद्गुप्तम भद्रं ति चरं वारय सुप्रत ।
 कोऽत्रवोदादि मि तुष्टो भगवन्कील्योद्विपतिः ॥ १२
 प्रीदुष्यं सर्वैर्वास्तु जायतां सा चक्षिषयाः ।
 तपदीनं प्रतिप्राते मूषेय चरवर्दिनि ॥ १३
 ततः सर्वेयतां प्रास्तुदितो मिनङ्गुभोद्वयः ।
 नं प्रायः धर्मराजस्तु तुष्टा न परया युतः ॥ १४
 चित्तवासाय विधावो विरुकोऽयं भवेत्तु यतिः ।
 ततो मि सर्वैर्निहितुस्तु निरुदित्य परा भवेत्तु ॥ १५
 एषं चित्तव्यतन्त्र्य धर्मराजस्य भासिनि ।
 अपितीयं गवर्षितं धामार्थं लक्षणाभश्च ॥ १६
 स तत्र प्रविशते न मोतस्तु वंशार्थि इवैः ।
 सगरीरो महादेवि यमादेमररायणेः ॥ १७
 स चित्तव्यतानामुर्विचकारित्तमिच्छकः ॥”

(प्रभासखण्ड, १२१ पं०)

हे देवि ! पक्षिसे इमी भूमण्डलमें, सर्वभूतोंके मिय और उनके हितैषो 'मित्र' नामक एक काव्यस्य ये। ऋतुकाश्रमं ऋषीके साय मन्मोग करके उन्मोनि चित्र नामका एक तेजस्वी पुत्र पैटा किया। मित्रके रूपयती एक कन्या भी हुई थी। पुत्र-पुत्रीके होते ही मित्र परलोक सिधारे, साथमें उनको स्त्री भी चितामें लस कर मर गई। इनकी मृत्युके बाद पसहाय पुत्र-पुत्री दोनोंका ऋषियोंके पात्र्यममें पालन-पोषण होने लगा; और वे दिन दूने रात चौगुने बढ़ने लगे। इन दोनोंने बालकपनमें ही ब्रत पारम्भ किये; और प्रभासपेठमें गमन किया। वहाँ इन लोगोंने महादेय तथा सूर्यकी मूर्ति स्थापित की, और धूपमाल्यसे उनकी पूजा कर तपस्या करनी प्रारम्भ कर दी। इनकी तपस्यासे संतुष्ट हो कर सूर्य-देव वहाँ गये और विद्वत्के कहने लगे,—

“हे सुप्रत । तुम्हारा मंगल ही; तुम हमसे वर मांगो।”

चित्रने कहा,—“हे भगवन् ! पाप जगत् सुकर्म घनगुह्य हूय है; तो मुझि यह वर दीजिये कि, मैं धर्म काममें दक्षता प्राप्त करूं।”

सूर्यदेवने “तयास्तु” कह कर उनको वर दिया और चित्रने सर्वज्ञता प्राप्त कर ली। चित्रको अपने समान क्षमतापन्न देख कर धर्मराज मन ही मन विचारने लगे,—“यदि यह बुद्धिमान् मेरा शिष्यक बन जाता तो मेरे सब काम सिद्ध हो जाते। हे भामिनि ! एक दिन धर्मराजने, लवणसमुद्रमें नहाते हुए चित्रको पशुचरों द्वारा अपने पुरीमें बुना लिया; और अपनी रक्षाकी पूर्ति की। यह चित्र ही “मंगार-चरित्र”के लेखक है, पार वाटमें विचगुप्त नामसे प्रसिद्ध हुए हैं।

देवीपुराण (१८ अध्याय)-से मान्य होता है,—

“दशमोऽस्तु सूर्यो सर्वान्मोक्षतदापनं ।
 अथ महाप्रदा हृष्टः देवान् देवर्षिर्मेष्टान् ।
 सद्योऽस्मिन् रतेः मन्त्राणां सुभक्तिम् ।
 विष्णुश्चाश्चारायत् सद्योऽस्मिन् रतिम् ।
 षट्पट्टं सुदपायं महावीरं महाबलम् ।
 मन्त्रोद्वेगमं रत्ये काव्यसर्वं इवाभयम् ।
 अथ तत्र चित्रये ऋं हृष्टः ज्ञातो महावनः ।
 मन्त्राणां समावष्टा दीर्घमर्षिं चक्षुषयम् ।
 नं हृष्टा मन्त्रिणं सर्वोद्वेगवाचिर्मेष्टान् ।
 पाददक्षिणतुष्टय चास्त्रैस्तुष्टमन्त्रिणः ।
 हस्ताभ्यां निहृष्ट इव वसदधी मन्त्राभ्यः ।
 परगु निशिर्निर्मचे तुष्टये च तदागुणः ।
 अत्रपापिः सुरलायः परब्रह्मचक्षणमनः ।
 बभूवैर्षं समादाय इन्द्रर्षिं समागतः ।
 बदरी चारुवैर्षिं कं वनः वामधरकः ।
 ब्रह्मवार्त्तं समादाय षट्पट्टं मन्त्रिणः ॥”

महावली बलासुर विष्णुके कौमस्तसे मारा गया था। इसलिये उसके पुत्र सुवन्सासुरने क्रोधान्ध हो कर देवी पर ब्राह्मण किया। उस समय दानव-गणके साथ देवोंका तुंमल युद्ध होने लगा। देव-राज इन्द्र देवतोंकी हारते देख सद्योपसु चर्षनके समान ऊँचे देरावत जायो पर मवार हुए। इनके बाद पुरन्दरको देरावत पर सवार देख कर महायक्षिमान् पन्निदेवने लागराज पर सवार हो कर प्रदीत मन्त्रि धारण की। उनको देखते ही महावली यमराजने और हस्तात्मके समान कठोर वषदच्छपावरी महावस-पराक्रान्त चित्रगुप्तने आत्मकेतुके साथ मन्त्रिय पर

सन्धि-विग्रह-लेखक, स्वयं राजाकी आज्ञासे ताम्ब-पट्ट या कपासके कागज पर राजशासन लिखेंगे। भारतवर्षके नाना स्थानोंसे ताम्बखण्डों पर लिखे हुए जितने शासन निकले हैं, उनके सन्धि-विग्रहकारी लेखक "सन्धि-विग्रहिक" नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। पहिले सन्धि-विग्रहिकका पद एकमात्र कायस्थोंको ही मिलता था। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें सन्धि-विग्रहिक, "सन्धि-विग्रह-लेखक" (अपराजक ३५६, नीरजितीय और कैमवर्षेण्यनी ६३० च०) "सन्धि-विग्रहकायस्थ" (कोमदेवका कथा-संस्कार ४१६१) और "सन्धि-विग्रहाधिकरणाधिकृत" (Ind. Ant. VI p.10) नामसे प्रसिद्ध थे।

भग्निपुराणमें लिखा है :-

"सन्धि-विग्रहिकः कार्यः साह-गुणादि विगारदः" (११०१२)

सन्धि-विग्रहिक छह गुणोंमें विगारद चीना चाहिये। वे षट्गुण कौन कौनसे हैं? मनुसंहिताके मतसे—

"सन्धि-विग्रहके व यान्तासमयेव च ।
द्वेषोभाव' स'ग्रयण वरु गुणादिमदीक्या ॥"

सन्धि, विग्रह, यान, पासन हे धोभाय और संय्य इन छह गुणोंकी चिन्ता, गभीरतापूर्वक करना चाहिये। मनुसंहितामें और भी है,—

"कीमान् आसविदः शूरान् समलक्षान् कुनीदतान् ।
सचिवान् सतपाठो वा प्रकृतीति परीशिवान् ॥
ते साह' चिन्तयेत्स' सामान्यं सन्धि-विग्रहम् ॥" (७। १४, १६।)

सुप्रतिष्ठित वेदादि धर्मशास्त्रोंमें पारदर्शी, शूर और युद्धविद्यामें निपुण और कुलीन—एसे सात पाठ मन्त्री, प्रत्येक राजाके पास रहने चाहिये र सन्धि-विग्रह आदिकी सलाह उन्हीं बुद्धिमान् सचिवोंसे लेनी चाहिये।

मिताक्षरामें विद्वानेश्वरने लिखा है,—

"एवं सन्धि-विग्रहः कृता ते साह' राजे सन्धि-विग्रहादिलक्षणे कार्यं चिन्तयेत् । समसो अक्षे च अन्तर' तेषामभिप्रायं ज्ञात्वा सकृत्सामान्य-विषयाङ्गमथैव प्राप्तेन पुरोहितेन सह कार्यं विधिष्ये ततः स्वयं इदृशा कार्यं चिन्तयेत् ।"

मिताक्षरके उपर्युक्त वचनसे यह मालूम होता है कि, राजाके जो ७-८ मन्त्री रहते थे, वे सब ही ब्राह्मण

नहीं थे। कौं कि; उसके बाद ब्राह्मणके साथ क्या क्या परामर्श करेंगे—यह भी लिखा है।

(शाश्वतका, १म अध्याय, १११वां श्लोक)

शुक्रनीतिमें स्पष्ट लिखा हुआ है,—

"पुरोधा च प्रतिनिधिः प्रधानसचिवस्तथा ॥ ६६ ॥

मन्त्री च प्राङ्गविवाक्य पण्डितय सुमन्त्रकः ।

भ्रमात्सो दूतस्येता राज्ञः प्रकृतयो दमः ॥ ७० ॥

दय शीला पुरोधाया ब्राह्मणा सर्वे एव ते ।

भ्रमासे चतविया योग्याचरमावे तयोऽज्ञाः ॥ ४१८ ॥

नैव शूद्राश्च संयोग्याः शुचरन्तोऽपि पाधिं विः ।" (१५ अध्याय)

पुरोहित, प्रतिनिधि, प्रधान, सचिव, मन्त्री, प्राङ्ग-विवाक्य, पण्डित, सुमन्त्र, भ्रमात्स्य और दूत ये दस व्यक्ति राजाकी प्रकृति हैं। उक्त पुरोहित आदि दसो लोग ब्राह्मण होने चाहिये, ब्राह्मणके भभावमें चत्रिय और चत्रियके भभावमें वैश्य भी नियुक्त हो सकेंगे। शूद्र गुणवान् होने पर भी राजा उक्त कार्योंके लिए नियुक्त न कर सकेंगे। उपरोक्त सात-पाठ सचिवोंमें एक सन्धि-विग्रहिक भी थे। शुक्रनीतिमें इन्हीं सन्धि-विग्रहिकका "सचिव" नामसे उल्लेख किया गया है। यह सन्धि-विग्रहिक सचिव शूद्र नहीं हो सकते—इस बातका भी शुक्रनीतिमें स्पष्ट प्रमाण मिलता है। चारीतस्मृतिसे यह साफ जाहिर होता है कि, सन्धि-विग्रह आदि चत्रियोंका ही धर्म है।

"राजस्थः सचिवयाधि प्रजा धर्मं च पालयन् ।

कुर्वाद्दक्षयन' समाय-सुनेदयमान् यथाविधि ॥

नीतिशास्त्रार्थ' कुर्वातः सन्धि-विग्रहस्तस्यवि ।

दिव-प्राङ्गवर्षकस्य रित्रकार्येपरसथा ॥

ध'च यजन' कार्यमधर्मपरिचरन् मन् ।

उत्तमो वतिमात्रोति चतवियोऽप्यवभाषरन् ॥"

(चारीतस्मृति १२ च०)

इन प्रमाणोंसे जब यह सिद्ध हो गया कि, सन्धि-विग्रह आदि कार्य चत्रियोंका ही था, तब स्मृतिमें कहे गये सन्धि-विग्रहकार कायस्थ या सन्धि-विग्रहिक, चत्रियके सिवा दूसरी जाति नहीं हो सकते। ब्राह्मणोंके धर्म-प्रतिष्ठापक गुप्तवंशीय सप्ताटोंसे ले कर गौब्राह्मण-भक्त बह्मसके सेनवंशीय राजाओंके समय तक जितने राजा हुए हैं, उनको सभाओंमें

पाप मेरा नामकरण कीजिये ; और मेरे लिए कार्य दीजिये ।”

भगवान् ब्रह्माने उसके मधुर वाक्योंको सुन कर वड़ी प्रसन्नतासे कहा;—“हे वत्स ! मैंने स्थिरचित्त हो कर समाधि लगाई थी, उषी अवस्थामें तुम मेरे कायसे पैदा हुए, इसलिए तुम संसारमें कायस्थ नामसे प्रसिद्ध होगे और तुम्हारा नाम चित्रगुप्त हुआ। धर्माधर्मके विचार करनेके लिए यमराजके न्यायालयमें तुम्हारा स्थान निर्दिष्ट हुआ। तुम वहाँ चतुरिय धर्म पालन करना और पृथिवीमें वनिष्ठ प्रजा उत्पन्न करो।” ऐसा वर दे कर ब्रह्मा वरदासि अन्तर्धान हो गये। कमलाकर-भट्टोद्धत वृहत्सत्रप्रखण्डमें भी लिखा है,—

“भवान् चतुरियवर्षेण समस्थान-सहस्रवान् ।
 कायस्थः चतुरियः ख्यातो भवान् सुनि विराजते ॥
 तत्र शसम्भवा ये वै तैःसि त्वत् समतां गताः ।
 तेषां लोकादिशक्ति चतुरियाः रतन्तपराः ॥
 संस्कारादीनि कर्माणि यानि चतुरियजातिवु ।
 तानि सर्वाणि कार्याणि मदाश्रमव्यवहिताः ॥
 उक्त्वा प्रजापतिरिदं तवैवानुदधे विभुः ।
 एवमुक्तपित्रमुनः प्रसन्नहृदयोऽभवत् ॥”

(Vyavasthá Darpana by Syámácharan Sarker, 3rd, Ed. Part I, p. 664.)

ब्रह्माने कहा था कि, हे चित्रगुप्त ! समस्थान पर्यात् कायसे पैदा हुए हो ; इसलिए तुम भी चतुरियवर्षे हो। तुम पृथिवीमें कायस्थ-चतुरिय नामसे प्रसिद्ध होगे। तुम्हारे वंशधर कायस्थ भी तुम्हारे समान कायस्थ-चतुरिय गिने जायंगे। उनकी लोकादि वृत्ति होगी और चतुरियकन्याके साथ उनकी विवाह होगा। चतुरियोंमें जो जो संस्कार होते हैं, हमारी आश्रातुशर उनको भी वे ही संस्कार करने होंगे।” इतना कह कर ब्रह्मा वरदासि अन्तर्धान हो गये ; और चित्रगुप्त उनके वचन सुन कर प्रसन्न हुए।

गरुड़पुराणमें और एक जगह लिखा है—

“प्रयाति चित्रनगरं नीचको वन पार्थिवः ।
 यमशैवानुनः शौरियेन राज्यं प्रगाति हि ॥” (उत्तरखण्ड १० च०)

फिर यह ऋषि चित्रनगरमें पहुँचे ; जहाँ नीचिवत्,—यमके छोटे भाई—शौरि अर्थात् सूर्यके पुत्र

राज्यशासन करते थे। चक्र गरुड़पुराणसे यह भी ज्ञात होता है कि, यही चित्रनगर पीछे ‘चित्रगुप्तपुर’ नामसे विख्यात हुआ है।

“चित्रगुप्तपुरं तत्र योजनानां तु विस्तारितः ।
 कायस्थान्न पयानि पापमुष्णानि सर्वथाः ॥” (उत्तरखण्ड १०२)

उस यमलोकमें (२० योजनमें विस्तृत) चित्र-गुप्तपुर है। वहाँके कायस्थ सबके पाप-मुष्णका विचार करते हैं।

देवीभागवतमें लिखा है ;—

“याम्यामायां यमपुरी तत्र दण्डधरो महान् ।
 समदेषं हतो राजन् शिवगुप्तपुरोत्तमैः ।
 निज शक्तिगुप्तो भास्वपनयोति यमो महान् ॥” (११ स्क० १० च०)

हे राजन् ! दक्षिण दिशामें यमपुरी है ; जहाँ चित्रगुप्त षाटि अपने सुभटों सहित और अपनी समस्त शक्तियों सहित सूर्यके पुत्र यम विराजमान हैं।

गरुड़पुराणमें भी लिखा है,—

“वायुः सर्वगतः सृष्टः सूर्येकीविवर्दिमान् ।
 धर्मो राजस्ततः सृष्टपित्रगुप्तेन संयुतः ॥
 सृष्टैवमादिकं सर्वं तपते पितृ पदजः ॥”

(गण्डपुराण, प्रथमस्कन्ध, १ च०)

ब्रह्माने सबसे पहिले सर्वव्यापी वायुकी ; फिर तेजोमय सूर्यकी सृष्टि की थी। उसके बाद सूर्यमेंसे चित्रगुप्त सहित धर्मराज (यमराज) की सृष्टि की। इस तरह षाटि जगत्की सृष्टि करके ब्रह्मा तपस्थामें रत हुए।

स्कन्दपुराणके प्रभास-खण्डमें चित्रगुप्तको कायस्थ कहा गया है। और उनकी उत्पत्तिकी कथा इस प्रकार है,—

“मितो जाम पुरा द्विज धर्माकाशपूहरोत्तमैः ॥ १ ॥
 कायस्थः सञ्जुगानां निज्यं पितृदितैरतः ।
 तस्यापत्वं सद्यं यमं शत्रुकात्यागिगामिनः ॥ २ ॥
 पुनः परमतेजस्यो चित्तो भास वरानमै ।
 तथा विनाभवत् कन्या हृद्यवाशोभनमरुता ॥ ३ ॥
 चाभ्यां तु ज्ञातमायायां मितः पद्यतमा वान् ।
 पय तस्य च ध्या मायां सृष्ट तेनादिमाविशम् ॥ ४ ॥
 पय तो वायुकी होमादिभिः परिपाजितो ।
 इदं गतो महारथो बालायेव स्थितो मते ॥ ५ ॥
 प्रभासार्थं समासाद्य तपः परममाश्रितो ।
 प्रतिष्ठायां महार्थं भास्वैः कारितकर्म ॥ ६ ॥

कायस्थ ही सान्निविपश्चिकके पद पर नियुक्त रहते हैं। इस विषयमें एक पुरातत्वविद् ब्राह्मणने लिखा है,—

"It is a noticeable fact that the सन्निविपश्चिकी or minister of war and peace and the secretary, were always Kāyasthas or men of the writer-caste. This not only occurs in the Katakā plates, but in grants or inscriptions found in Ceylon and Central India." (Indian Antiquary, Vol. V. p. 57.)

संस्कृतग्रन्थेन विद्वानां सान्निविपश्चिकशब्दका इस प्रकार अर्थ किया है,—

"A great officer for making treaties and declaring war. This officer or a subordinate, is deputed at the end of the grant, to give effect to it." (Journal of the Asiatic Society of Bengal, 1875. pt. 3. p. 5)

"Secretary for foreign affairs."—(Tawney's Kathāsarit Sāgar. Vol. IV. p. 383.)

कायस्थ या लेखक ।

यदि कोई कहे, जो कायस्थ सान्निविपश्चिक जैसे ऊंचे पद पर नियुक्त थे, वे या उनके वंशधर चात्रिय ही भी सकते हैं; परन्तु जो कायस्थ पटवारी सुहरिर आदिका काम करते थे, वे तो कामलाकरद्वारा कहे गये साहिब्या और वेदेहसे उत्पन्न हुए अधम शूद्र ही हैं। प्रकृत शास्त्रमें सामान्य पटवारी और सुहरिरके लिए कौसा स्याम था, हमें इस बातकी जांच करना जरूरी है।

शुक्रनीतिमें लिखा है—

"साधीरुं वगतिरुं दक्षपाताधिः सदा ॥

धर्मस्यो दमदलं तु यथादिष्टं वृत्तिकाः ।

पचदलं वधेवर्णं ननिषो लेखकाः सदा ॥" (१।१६६—०)

राजाकी आग्नेय-पश्चिम और उत्तरी पश्चिम गिरते हैं—ऐसे स्थानमें सदा दूर ही रहना चाहिये। राजासे दक्षिण-पश्चिम की दूरी पर उनके प्रिय भ्राताधारी, पांच दायकी दूरी पर मन्त्री और उनके पास एक बगनमें लेखक रहेंगे।

शुक्रनीतिमें और एक जगह लिखा है—

"दशोपहितमथाप वा निर्दिष्टकथेषु च ।

दिनाष्ट्रं शुभं धनुस्वनाः साधनादिति चो दस ॥

प-द्वाराकारणं यदा मन्त्रस्य पाठितः ।

साधनाद्यैः कृतमितिः सा सभाभरवतिमः ॥" (१।१२०—६)

राजा, पञ्चक, मन्त्र, क्षति, गणक, लेखक, हेम, अग्नि, जल और सत्पुरुष—ये दस साधनाङ्ग हैं।

सर्वशुभ प्रमाणसे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि, जो लेखक राजाके ब्राह्मण-मन्त्रीके पास बैठते थे, और जो राजाके पङ्क गिने जाते थे, वे कदापि शूद्र नहीं हो सकते।

पङ्क्तिः क्षतिमें कहा है,—

"पङ्क्तिं शूद्रस्यैव शूद्रेण च सहासतम् ।

शूद्राद्युपानामने क्षयित्वा स्वयमपि पातयेत् ॥ ४६ ॥

इस क्षतिवचनके अनुसार जब शूद्रके साथ बैठना भी ब्राह्मणके निये निषिद्ध है, तब हिन्दू-राज-सभामें ब्राह्मण-मन्त्रीके पास जो लेखक या कायस्थ बैठते थे, वे अवश्य ही द्विजाति होने चाहिये।

धर्मकोषमें भी लेखक शब्दका वर्ग चात्रिय बतलाया गया है और शुक्रनीतिमें भी स्पष्ट लिखा हुआ है,—

"पानयो ब्राह्मणो योगः कायस्थो लेखकनाम ।

यत्कणयो न वैश्यादि प्रतिहार्य पादकः ॥" (१।१२०)

अर्थात् हिन्दू राजाओंके समयमें धार्मिक शासन ब्राह्मण करते थे, कायस्थ उनके सहकारी (लेखक, सुहरिर वा पटवारी) रहते थे, वेश्य कर वसूल करने थे और शूद्र नौकर (शैवक)का काम करते थे। शुक्रनीतिके एक बचनसे साफ जाहिर है कि, लेखक-कायस्थ ब्राह्मण नहीं, वेश्य नहीं और न शूद्र हैं। जब शास्त्रमें चार वर्णके सिवा पांचवां वर्ण ही नहीं माना गया, तब ब्राह्मण, वेश्य और शूद्र वर्णके सिवा चात्रियवर्ण ही बच रहता है, इस लिए कायस्थ चात्रियवर्ण ही प्रमाणित होते हैं। कोई कोई कायस्थोंके लिए पांचवें वर्णकी कल्पना करता है। परन्तु मनु ही जब पांचवां वर्ण नहीं है ऐसा कह गये हैं, तब पांचवें वर्णकी कल्पना अपाङ्ग और अमान्य है। दाक्षिणात्यमें जो जाति पञ्चम

पुत्रवामास चर्माका धृष्टनाभ्यामुपैरने ।
 मित्त इमित्तव न चरवटि समन्विनेः ॥ ८
 एवंशु सदासद्व्य चित्तव्य विमथाचनः ।
 मलय नुष्टः सदासः काशिन मरुता भिष्टः ॥ ११
 अत्रवोरनृम भद्र' तै चर्च वरव्य सुप्रतः ।
 मोडरवोपदि से शुष्टु भगवन्कीच्छरीरिपिनिः ॥ १२
 प्रोदत्त' शर्मकारेणु जायतां मा चचित्तया ।
 तमदेनि प्रतिश्रुतं मूषेच चरवदिनि ॥ १३
 तमः शर्मप्रतां मास्तपिनो मित्तवृन्तोडवः ।
 तं यावः शर्मराजस्य सुडा व यावः पुनः ॥ १४
 चित्तवामास्य मिधारी छिद्यकीर्यं मनेन यदि ।
 ततो मे सर्वमिद्विष्टु भिष्टानिप परा मनेन ॥ १५
 एवं' चित्तयतलव्य चर्मराजस्य भासिनि ।
 अप्रतोयं गतपितं चामासं तत्रंभाभिव ॥ १६
 सं तत्र मविमत्रे व गीतसु यमिष्टि हरेः ।
 समरोगो महादेवि यमादेमवरायणेः ॥ १७
 स चित्तगुणानामाभुर्विचरित्तकीचवः ॥"

(प्रमासस्य, १२१ प०)

हे देवि ! पहिले इसी भूमण्डलमें, सर्वभूतोंके प्रिय और उनके हितैषो 'मित्र' नामक एक कायस्थ थे। षट्सुकाक्षमें स्त्रीके साथ सभोग करके उन्होंने चित्र नामका एक तिलस्त्री पुत्र पैदा किया। मित्रके रूपयत्ती एक कन्या भी हुई थी। पुत्र-पुत्रीके जोति ही मित्र परलोक सिधारे, साथमें उनकी स्त्री भी चित्तमें बस कर मर गई। इनकी मृत्युके बाद पद्महाय पुत्र-पुत्री दोनोंका ऋषियोंके पात्र्यमें पालन-पोषण होने लगा; और वे दिन दूने रात चौगुने बढ़ने लगे। इन दोनोंने वानकपनमें ही व्रत पारम्भ किये; और प्रमासदेवमें गमन किया। वहाँ इन लोगोंने महादेव तथा सूर्यकी मूर्ति स्थापित की, और धूपमाल्यसे उनकी पूजा कर तपस्या करनी पारम्भ कर दी। इनकी तपस्यासे संतुष्ट हो कर सूर्य-देव वहाँ गये और चित्रसे कहने लगे,—

"हे सुप्रत ! तुम्हारा मंगल ही; तुम इससे बर मांगो।"

चित्रने कहा,—"हे भगवन् ! पाप चगर मुझसे सन्तुष्ट हुए हैं; तो मुझे यह बर दीजिये कि, मैं सब काममें दक्षता प्राप्त करूं।"

सूर्यदेवने "तयासु" कह कर उनको बर दिया और चित्रने सर्वश्रुता प्राप्त कर ली। चित्रकी चपने समान क्षमतापन्न देख कर धर्मराज मन ही मन विचारने लगे,—"यदि यह बुद्धिमान् मेरा सेवक बन जाता तो मेरे सब काम सिध हो जाते। हे भामिनि ! एक दिन धर्मराजने, सयचमसुद्धमें नछाते हुए चित्रकी पशुचरों द्वारा अपनो पुरीमें बुला लिया; और चपनी इच्छाकी पूर्ति की। यह चित्र ही "संसार-चरित्र"के लेखक हैं, और साटमें विचगुप्त नामसे प्रसिद्ध हुए हैं।

देवीपुराण (३८ अध्याय)-से मालूम होता है,—

"षट्सुकाक्षे सुप्रत सर्वान्गोभ्यन् तदासं ॥
 अथ सदासरा इष्टा देवान् देवतिसंज्ञान् ॥
 सदासद्विमर्शं च' अत्रासं सुभुविमम् ॥
 सिद्धराक्षसरासाय' सदास'मरुटिभम् ॥
 अमुहं सदास' मदावी' महाबन्धम् ॥
 गरीडनुभु' मय कामसं इशामयम् ॥
 अथ तम ध्विनचे म' इष्टा ज्ञानी महावरः ॥
 ब्राह्मणं महाबन्ध' दीवर्गि' म्भाधयम् ॥
 न' इष्टा मदिप' चर्मीरुच्यवर्गि'म'कारम् ॥
 आरुद्विपयसुप्रत कामरैनुभवमिनिः ॥
 हताभी मिष्टु' इव वषट्ठो महावरः ॥
 वरुणु निधि' निर्म'वे सुप्रवे च तदासुप्रतः ॥
 सदासपिः सदासः सदास'चामनमः ॥
 अहर्षे' म' समाराय इष्ट' म' म' समानतः ॥
 सदासो सदासै' र्गि' म' वदः कामचारः ॥
 इत्यसारां समादाय षट्सु' म' न सदी' चः ॥"

महायत्ती यन्नासुर विशुके कौमलसे मारा गया था। इसलिये उसके पुत्र सुवन्नासुरने क्रोधाग्न्त हो कर देवों पर आक्रमण किया। उस समय दानव-गणके साथ देवाँका तुलना युद्ध होने लगा। देव-राज इन्द्र देवतर्षोंकी सारने देव सदासबल पर्यन्तके समान ऊँचे रिरावत जायो पर सवार हुए। इसके बाद पुरन्दरको रिरावत पर सवार देख कर महावर्णिमान् पन्दिदेवने क्षागराज पर सवार हो कर प्रदीप्त मलि धारण की। उनकी देवत ही महायत्ती यमराजने और हतात्मके समान कठोर वन्देच्छधारी महाबल-पराक्रान्त चित्रगुप्तने बालकेतुके साथ मदिप पर

और समाजसे वहिष्कृत होती है, वह 'पद्म' कहलाती है। काव्यस्योको ऐसा मानना बिल्कुल अनुचित है। कोई कोई कपों हुई 'व्याससंहिता'के "विक्रान्तकाव्य नामाकारकट्टिमिनः।" इस वचनसे काव्यस्योकी अन्वय कछता है। परन्तु यह श्लोक वास्तविक नहीं; बल्कि "विक्रं विराट्-काव्यस्य नामाकार-कट्टिमिनः।" इत्यादि श्लोकका विकृत पाठ है, इस बातका अन्वय प्रमाण मिलेगा।

(काव्यस्यका वर्णनियं ७ वृत्तमें देखिये।)

अब पहिले कहे हुए पुराण और स्मृतिके प्रमाणी द्वारा काव्यस्य चरित्रवर्ण हो ठहरते हैं। कोई कोई कछा करता है कि, स्कन्दपुराणमें रेणुकाके माहात्म्यसे : दाल्भ्रायममें चान्द्रसेनी काव्यस्योकी उत्पत्तिकी कथामें—

“काव्यस्य एव उत्पत्तिं चरित्र्यां चरित्रोक्तं ततः।

रामाश्रया स दाम्भ्येन चावधर्माद्विहितः ॥७७॥

वचकाव्यस्यधर्मोऽयं विवगुहस्य सः धृ तः।

मातृकाव्यस्यनामत्वात्तस्या इतिथ भूषणम् ॥७८॥

तत्र मायाकृता चित्रशून्य-काव्यस्यधर्मजा।

तद्-प्रजाय काव्यस्याः दाम्भ्येनोक्तोऽनवन् ॥७९॥”

इन श्लोकोंके आधार पर कोई कोई कछता है कि, विवगुह चरित्र चन्द्रसेन राजाके औरसेसे उत्पन्न होने पर भी अब उनके पुत्रको "चात्रधर्माद्विहितः" कछा है, तब काव्यस्य और चरित्र एक नहीं हो सकते। इस विषय पर महापण्डित गामाभट्टने अपने "काव्यस्य-धर्मप्रदीप"में ऐसा मत प्रकट किया है,—

“रामाश्रया स दाम्भ्येन चावधर्माद्विहितः” इति वचनविरोधः तत्र चावधर्मं मन्दस्त्रीयदिचरित्रविधाधारवधर्मपरः न तु श्रोतकारोपावधर्मपरः मदासे द्वैवार्थनादि धर्मोक्तानि निर्वधापत्तेः बिन्दु तथायमि महाभाग इत्यादिप्रकृत्य काव्यस्योत्पत्तिमुक्त्वा “दाम्भ्येनोक्तोऽनवन्” इत्यादि यद्वादानततः शोभाप्रतयोर्भवः सदा” इत्युच्यते इति उपक्रमोपसंहाराभ्यामपि चान्द्रसेनीयकाव्यस्योपायं पदचरित्रवत् प्रतीयते।”

(गामाभट्टक काव्यस्यधर्मप्रदीप)

महामहोपाध्याय श्रीयुक्त वापुदेव शास्त्रीजी और महामहोपाध्याय, कौलागचन्द्र गिरोमपिजी जैसे प्रमुख विद्वान् भी गामाभट्टके उक्त वचनका समर्थन कर गये हैं।

सहाद्विषयके भमलक्ष्मीधामके माहात्म्यमें सह-स्वार्जुनवधके प्रसङ्गमें ६६थे अध्यायमें लिखा है,—

“चन्द्रसेनस्य रामधर्म्यायां का इच्छिता सती ॥६४॥

ममत्वं प्रथियथा च रामं दाम्भ्यं च यतनः।

सुमीड्यं मम काव्यस्य भविष्यति वचसा ॥६५॥

धर्मोऽस्य को भवेद्वद्वन्तु चावधर्माद्विहितः।

श्रुत्वा तदवचनं रामः पुनराह महात्मनः ॥६६॥

राम उवाच

चरित्रायां हि मं श्करोऽभ्ययन् यद्दहमं यत्।

तत्करिष्यति पुनस्तं प्रजापानवधर्मेषु ॥६७॥

नियतः विवगुहस्य स्वधर्मोऽस्य भविष्यति।

उपजोष्यं भवेद्वदं शेषेण रामसु सधर्मैः ॥६८॥

अर्थात्—“उस समय राजर्षि चन्द्रसेनको भार्या दुःखित हो कर राम और दाम्भ्यको नमस्कार करके पूछने लगीं, ‘पापके वचनानुसार मेरा यह गिय (पुत्र) काव्यस्य नामसे प्रसिद्ध होगा यह ठीक है; परन्तु हे ब्रह्मन्! यह पुत्र जब चात्रधर्मसे वहिष्कृत कर दिया गया है, तब इसका कौनसा धर्म होगा?’

महासुनि परशुराम उनके इस प्रश्नको सुन कर फिर कछने लगे,—‘तुम्हारा पुत्र प्रजापाननमें रत रहेगा। चरित्रोका जैसा संस्कार है, जैसा अध्ययन है और जैसा यत्नकर्म है, तुम्हारे पुत्रका भी वही होगा। अर्थात् विवगुहके समान ही रहेगा। हे भद्रे! राजाधोक पास रह कर लेखनकार्यमें ही इसकी उपजीविका होगी।’ इसके बाद उक्त पुराणमें अष्ट ही लिखा है,—

“काव्यस्य एव उत्पत्तिं चरित्र्यां चरित्रायासा।

रामाश्रया स दाम्भ्येन चावधर्माद्विहितः ॥७७॥

ततः चरित्रधर्मोऽस्य विवगुहस्योत्पत्तिः।

ततः मधर्मनिर्णयं गाईस्त्रयो भविष्यति ॥७८॥

उपजोष्यं तत्पते न विवगुहस्य यत्पुत्रम्।

दाम्भ्येन सुविना तेन सुखिनो नोमनात् ॥७९॥

भविष्यति न सन्देहो यावत्प्रदक्षिणावरी।”

काव्यस्य ऐसे ही चरित्रों द्वारा चरित्राणियोंके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। परशुरामके आदेशानुसार वही काव्यस्य चात्रधर्मसे वहिष्कृत होने पर भी दाम्भ्य सुनिने उन्हें चरित्र संस्कारोंमें संस्कृत करके वेद अध्ययन कराया, फिर उन्हें स्वधर्मनिष्ठ काव्यस्यो-की गाईस्त्रय धर्म यतसायां : विवगुहकी उपजीविका ही उनको उपजीविका हुई। दाम्भ्यसुनिने चाशोर्वाद

आरोहण किया। इस प्रकार यमराजने अपने सुभटों और बहुतसी सेनापनोंको साथ ले कर इन्द्रको युद्धमें सहायता की। पाशपाणि वरुणदेव भी मत्स्यपर सवार हो अपनी सेनापनोंको साथ ले कर पा पड़ुंचे। इत्यादि।

श्रीहर्षके "नेपथ्यचरित"में पाया जाता है,—
दमयन्तीकी स्वयम्बर-सभामें इन्द्रादि देवोंके साथ चित्रगुप्तदेव क्षत्रिय रूपमें आये थे। नेपथ्यकारने उनका परिचय इस प्रकार दिया है,—

"इन्द्रोचरोद्भूय चित्रगुप्तः कायस्थ उद्येगं च पत्नीय ।
ऊडेणु पत्न्य मदीद एकी मदीदेषमीरि पत्नमथाः ।" (१४ सर्ग)

चित्रगुप्तके प्रार्थनामन्त्रमें यह भी मिलता है—

"दिया सद्यः सप्तपत्र सद्गुह-मदनोद्भव ।
चित्रगुप्तं महाभावी मनाय परदो भव ॥"

उपर्युक्त भिन्न भिन्न पुराणोंसे यह प्रमाणित होता है कि, ब्रह्माके शरीरसे चित्रगुप्तकी उत्पत्ति है ; और फिर कल्पभेदसे चन्द्र सूर्यादि देव जिस प्रकार नाना भाव और नाना रूपसे अवतीर्थ हुए हैं, वैसे ही चित्रगुप्त भी विभिन्न कल्पोंमें कभी सूर्यदेवके पुत्ररूपसे और कभी मित्रके पुत्ररूपसे अवतीर्थ हुए हैं। इन्द्र, चन्द्र, वायु और वरुणकी भांति वह भी देवक्षत्रिय-रूपसे देव-सैन्यमें रहते थे।

विरुद्धवादिश्रीका मत।

उपर्युक्त प्रमाणोंके रहते हुये भी विरुद्धवादा यह कहा करते हैं कि, चित्रगुप्तदेव चार वर्षोंकी लृष्टिके पीछे हुए हैं, इसलिये वे चार-वर्षोंमें नहीं गिने जा सकते।

कमलाकरके— "चर्चं भगवत्प्रसवस्थानं सर्वकालादिनिर्गमः ।"
इत्यादि वचनके अनुसार चित्रगुप्त ब्रह्माके समस्त शरीरसे उत्पन्न हुए हैं और ब्रह्माकी "सर्ववर्षांपित्तं परं पावनीया यथापिभि—"इस उल्लिखे चित्रगुप्तका क्षत्रिय होना सिद्ध नहीं होता। "मन्त्रवायोऽथो यजाम् कायस्थवर्षं उच्यते" इस युक्तिसे कायस्थ एक स्वतन्त्र वर्ण ही प्रतीत होते हैं।

इसके अतिरिक्त मन्वादि धर्मशास्त्रमें चित्रगुप्त चयदा कायस्थ जातिकका तत्त्व निश्चित नहीं हुआ है।

किसी किसी स्मृति-शास्त्रमें चित्रगुप्त और कायस्थ नाम पाया जाता है। परन्तु इससे यह नहीं समझा जा सकता कायस्थ कौन जाति है ?

पुराणको— "धर्मशास्त्राधिकारो चित्रगुप्तो भव्य २।" इस उल्लिखे द्वारा यही सिद्ध होता है कि, चित्रगुप्त यमराजके लेखक थे। विष्णु, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, इत्यादि स्मृति-शास्त्रोंसे और कायस्थोंके धर्माधिकरणमें भी उनके लेखक रहनेका प्रमाण मिलता है। भौयनस धर्मशास्त्र, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, अग्निपुराण, याज्ञवल्क्यस्मृति और राजतरङ्गिणीमें जगद्भूत जगद्कायस्थोंके प्रति कठोर-उल्लिखिका प्रयोग पाया जाता है। विशेषतः अष्टाध्याय-कामधेनुके नवम वसोद्भूत भविष्यपुराणान्तर्गत कार्तिक-शुक्ल-द्वितीया-व्रत-कथा-सन्दर्भमें कहा है,—

"एतन्निवेशं काशिकं शुभं यथागी विज्ञोत्तमः ।
अप्यर्थात् च धातारामायाभमजसदा ॥
परमिष्टिपरादिनं लम्बा कथाविराचयतीम् ।
चित्रगुप्तं च तां दत्त्वा विवाचमकरोत्तदा ॥"

उपर्युक्त प्रमाणसे यहो मालूम होता है कि, चित्रगुप्तका विवाह ब्राह्मण धर्मशर्माकी पुत्री दरावतीसे हुआ था। इसलिये प्रतिलोम विवाहसे उत्पन्न हुये कायस्थ कदापि श्रेष्ठवर्ण हो नहीं सकते। इसके अतिरिक्त शब्दकल्पद्रुमाद्गत आचार-निर्णय-तन्त्रमें कहा है,—

"बादो प्रजापतिर्जाता सद्यारिदाः सदाशुभाः ।" इत्यादि उपर्युक्तमें पादाङ्क द्वय-सम्बन्धित्ववर्षंश्च च विषयः ।
सोमनामा पुत्रस्य प्रदोपस्य पुत्रकः ।
कायस्थस्य पुत्रोऽभूत् भव्यं निविकारकः ।
कायस्थस्य सयः पुत्राः विख्याताः जगतीतसे ॥
चित्रगुप्तश्चित्रसेनो विपिचय सयं च ॥
चित्रगुप्तो मतः स्वर्गं विषयो नामसन्निधौ ।
चित्तसेनः इन्द्रियो चो इति युद्धः प्रथम्यते ॥
वसुधोवा मुषी निभो दामः करण्य एव च ।
स्युः सयं चरते चित्तसेनसुता सुभि ॥"

इत्यादि वचनोंसे और अग्निपुराणमें कही गई जाति-मात्रासे, चित्रगुप्त और उनके संशयोंकी श्रेष्ठ वर्ण नहीं कह सकते। फिर कमलाकरके

दिया कि, जब तक चन्द्र और सूर्य रहेंगे, तब तक तुम्हारे वंशीय और तुम सुख भोग करती रहोगी।

उपर्युक्त प्रमाणोंसे यह स्पष्ट विदित होता है कि, चित्रगुप्तके वंशीय और चन्द्रसेनके वंशीय कायस्थ वंशिय हैं।

चित्रगुप्तका वंश।

चित्रगुप्तकी उत्पत्तिके विषयमें सबसे पहिले जो पुराणके वचन उद्धृत किये गये हैं, उन वचनोंके साथ चित्रगुप्तके वंशका ऐसा परिचय मिलता है;—

“चित्रगुप्तस्य ज्ञानः द्रष्टुं तान् कथयामि ॥
गौड्याया सायु राधे व भट्टगामरुचिनकाः ॥
चक्रिष्ठानाः श्रीवास्यया मन्वसुनासय व च ॥
कुम्भनाः सर्वशास्त्रेषु पद्महादा नराधिप ॥
पुमान् वि स्थापयामास चित्रगुप्तो महीतले ॥
धर्माधर्मविशेषकः चित्रगुप्तो मङ्गलनिः ॥
मृगयान् वीर्यदासास सर्वसाधनसुप्रसम् ॥
पूजं दीव्यतानास पितृणां यज्ञसाधनम् ॥
वर्षानां ब्राह्मणानां च सर्वदातिपिषिचनम् ॥
प्रजाप्यः कर्मदाय धर्माधर्मविभोजनम् ॥
कर्तव्यं हि प्रथमं न पुनाः सर्वस्य काय्यते ॥”

अथस्याकामधनुर्मे उद्धृत भविष्यपुराणमें भी लिखा है;—

“चित्रगुप्तं सा कन्या चाष्टौ पुत्रानञ्जलिन् ॥
पादःसुचारिपितासौ मतिमान् हिमवांसया ॥
चित्तवाच्यारुचय सप्तमोऽनौष्टियसया ॥
विदोया दीवकल्पे व दक्षिणा या विमार्जिता ॥
एसाः पुत्राश्च ज्ञानार्थे वा ज्ञानार्थि वै मय ॥
मानुसदा विमार्जय विप्रमानुष वीर्यवान् ॥
पुत्रा बादम विप्राता विधिंरक्तं महीतले ॥
मयु राधां नक्षत्रात् सायु राक्षसिनी सतः ॥
सुचारु गौडिंमै तु तिन गौडिंमैमय पुः ॥
मङ्गलदोऽमरिनी मङ्गलावर्जिकः कृत्वा ॥
श्रीवास्यनरै भाग्यदकाच्योऽसायुः पदः ॥
चत्वारिंशत् हिमवान् विमार्जय इति कृत्वा ॥
चत्वार्यो मतिमान् सत्या सद्योऽपि सन्मार्गः ॥
दूरिणं विमान् य तैव हृदयैकः कृत्वा ॥”

युक्तप्रदेशके कायस्थोंके “कुलपत्न्य”में, यज्ञके समाजमें प्रचलित “पातालखण्ड”के कथनमें और चित्रगुप्तकी पूजापद्धतिमें गौड़, माधुर, मटनागर,

सेनिक या शकसेन, चन्वष्ठ, श्रीवास्य, पटान, करण, सूर्यध्वज, वाल्मीक, कुसत्रेष्ठ और निगम—ऐसे बारह भेद चित्रगुप्तके कायस्थोंके पाये जाते हैं। इन्हीं बारह श्रेणियोंके कायस्थोंसे इकोस प्रकारके कायस्थ हुए हैं—ऐसा उक्त “पातालखण्ड”में लिखा है। उनके भेद इस प्रकार किये गये हैं;—

१ सूर्यध्वज, २ चन्द्रहास, ३ शूरिचन्द्राह, ४ चन्द्रदेह, ५ रविदास, ६ रविरत्न, ७ रविधीर, ८ रविपूजक, ९ गभीर, १० प्रभु, ११ वल्लभ, १२ उदारहास रवि, १३ मधुमान्, १४ भद्र, १५ सुभद्र, १६ श्रीगौड़, १७ राजधाना, १८ अनिन्द, १९ सम्यग्, २० विश्वास, और २१ पञ्चतत्त्वज्ञ। इन इकोस श्रेणियोंमें भी हर एकके बीच बीच भेद हैं। पश्चिमाञ्चलके कायस्थोंके कुलपत्न्यकी भांति बङ्गालके उत्तरराष्ट्रीय कायस्थोंके कुलपत्न्यमें भी लिखा है;—

“चित्रगुप्तः क्रियोपेतः सर्वशास्त्रेषु पूज्यते ॥१३३॥
श्रीगौड्याया सायु राधे व भट्टगामरुचिनकाः ॥
गौड्याया सायु राधे व भट्टगामरुचिनकाः ॥
चन्वष्ठव श्रीवास्यः कर्त्तव्यं हि उच्यते ॥”

कुलाचार्य पद्माननने अपनी “कुलकारिका”में इसी लिखा है;—

“विदीयराष्ट्रमताथे माके कुलपत्न्यमाकरे ॥
नाथाः श्रीवास्योऽप्येव सदा श्रीद्वय वष च ॥
कायवर्धिकादिनी च पद्यमोमकर्म च ॥
जगदिनरविं कथं धीमधोवप सुधीरः ॥
पुत्रवोपमदासय दीवदसो मङ्गलनिः ॥
सुधीराप्रमथथ दिवकुषि सुदर्मनः ॥
चयोऽप्यनिवासी विंकी पोषधेन तथा पुनः ॥
सायु राधिवासी दामः कोलपद्मनाथः ॥
सायुऽप्युदीनिवासिनी दक्षिणी तथा सती ॥
“नमो दयासीरे पुरो कर्त्तव्योति मनोहरम् ॥
महीचर्ममयं कीरं विचकर्म च निमित्तम् ॥
सदा श्रीकथं चक्रीकमभरन् तनुपुरीधरः ॥
तनुपुत्रिन पुरी दत्ता चर्मराजपुरं दयो ॥
सर्वदनी बहुमनोविं शारवाप नदिरः ॥
सर्वदनाः कर्मवैव मातादिनाकरं मताः ॥
राक्षस्युपानपुत्रय राधाश्रीवास्यः प्रथः ॥
सत्याकनौजगदिनरविं कः धामो मङ्गलनी ॥

शुद्धमंतव्यमं एक कायस्थकी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई गई है,—

“माद्विद्यानिताभूतवैश्वदेवः प्रवृत्तः ।
 स कायस्थ इति प्रोक्तस्तस्य कर्म विप्रोचते ॥
 पुरा वैश्यानां माद्विद्या वैश्याविराजो वैश्वः ।
 मोक्षानां दैवज्ञानानां जैतुमं स समामरेत् ॥
 मयकर्म विप्रिभयं योजयती प्रदीयतः ।
 यधमः शुद्धजातिभ्यः यधमं चारवागमो ।
 पातुं वैश्यांश्च संशोधि निविशेखननापनम् ॥
 निषां यज्ञोपवीतय कायस्थावो विभक्तयैतु ॥”

‘वैश्वदेवकं श्रीरामसे श्रीरामाद्विष्यपत्नीके गर्भसे जो उत्पन्न हुये हैं, ये कायस्थ हैं । देशीय निषिका निषना, गणना करना, शिल्प हाथें करना, वीज पाटिका बोलना, चार वर्णकी सेवा करना इत्यादि उनका कार्य बतलाया गया है । यह वांचो संस्कार अथवा शुद्धजातिके करनेके हैं, इसलिये इनकी घोटी, यज्ञोपवीत, गेरिकवस्त्र और देवताका स्पर्श न रखना चाहिये ।’

इसके प्रतिरिक्त शब्दकल्पद्रुमोद्धृत देवीवर्क ‘वपविद्या रिताः १७ तर्कं यद्वचनः ॥” इस कथनसे यही प्रमाणित होता है कि, पादिशूरकी सभामें पद्य ब्राह्मणोंके साथ पाये हुये पद्यकायस्थ पादि शूद्र ही ठहराये गये थे ।

इसके सिवा हहदमपुराणमेंभी लिखा है,—
 “यथायं वैश्यानामः चरयो वरं चरः ॥” (अमर ११५०)
 इत्यादि प्रमाणसे किसी लोगोका मत है कि वैश्यासे उत्पन्न वर्णचर करणें भी कायस्थ थे ।

विश्वमत-संछेद ।

विश्ववादी लोग चित्रगुप्तके वर्ण चौर धर्म सम्बन्धमें जिन युक्तियोंकी दिग्गताति है, उनके उत्तरमें हम पहिले ही कमलाकराधृत हहदमपुराणका प्रमाण उद्धृत कर चुके हैं कि, ब्रह्मामें उत्पत्ति कालमें ही चित्रगुप्तसे कहा था—“तुम कायस्थ” जिस स्थानसे चत्रिय उत्पन्न हुए हैं उसी स्थानसे उत्पन्न होनेके कारण चत्रिय नामसे प्रसिद्ध होगी। तुम्हारे वंशके लोग भी तुम्हारे ही समान पर्याप्त कायस्थ नामसे पुकारे लायेंगे । उन लोगोका विवाह चत्रिय कन्याओंके साथ होगा । चत्रियवर्णके लिये जो

संस्कारादि कर्म बतलाये हैं, उन सबको ये मेरी पाशाके अनुसार करेंगे ।”

ब्रह्मकि इस कथनसे चित्रगुप्त चौर वर्णके वंशधर कायस्थ चत्रिय हैं, इसमें कुछ भी संदेह उरस्थित नहीं होता ।

मिताचरामें कायस्थोंकी राजवशम, शून्यपाणिभक्त दीपकसिंहामें राजसम्बन्धहेतु प्रभावशाली चौर चवराकं विरचित याज्ञवल्क्यनिष्यममें कराधिकृत या कराधिकारी कहा गया है । कायस्थ सदासे राजाधिके प्रिय होते पाये हैं । यह राजकार्यमें निपुण होते हैं, चौर कर वसूल करनेमें इनका सुप्यतः हाथ रहता है ; इस लिये इन लोगोके द्वारा प्रजाका अधिक होड़ा पट्टे च सकती है । अतः याज्ञवल्क्य चौर पत्निपुराणकार राजापीता इन (कायस्थ) लोगोके प्रति विशेष अल्प रखनेका पादेय दे गये हैं ।

कायस्थोंके हाथसे किसी किसी जगह प्रजा अधिक पीड़ित होती रही, इसी लिये यौधमन्यधर्मशास्त्रमें, ब्रह्मवैवर्तपुराणके जम्बवल्क्यमें चौर राजतरङ्गिणी, यत्नमें कायस्थोंकी निन्दा की गई है । लेकिन किसी भी शास्त्रमें कायस्थोंको हीनवर्ण नहीं कहा गया है । कमलाकरने जिन प्रतिज्ञोमज्ञात कायस्थोंका उल्लेख किया है, यह चित्रगुप्तके वंशधर कायस्थ नहीं हैं चौर न इनमें उस जगह लिखो गई बातें भी सङ्कटित होती हैं । ऐसा मानना पड़ता है कि मिदनीपुरवासी पापुनिक ‘काय’-जातिका नाम संछेद भाषामें लम्बी (कमलाकर)ने ‘कायस्थ’ रूप दिया है । किन्तु चित्रगुप्तके वंशधर कायस्थोंको छद्मामें भी कायस्थ-चत्रिय कहा कर परिषय दिया है । चित्रगुप्तने देवकन्या सुदचिचाके साथ विवाह किया था । “हहदमपुराणकी देवकीचर-मुक् चरे । मेरुनाम चरा चकारादि दैवके रिभेः ॥” इत्यादि पद्यपुराणके कथनानुसार ब्राह्मण जब चित्रगुप्तको देख मान कर पूजते थे, तब धर्ममार्गमें चरणी कन्याका अन्तसे पाचिपदय कर दिया ; तो इसमें दाप कीनमा ही गया ? इसके सिवा अब समय योग्यदृष्टि वा सहरोत्पत्तिकी कीटि चर्चा हीं न हो ; नहीं तो ब्राह्मण

धार्मिकः सत्यवादी च जितेन्द्रिय सदाययः ।
 महाचतुर्षु रो शौरः कुलदेवः कुलापिपः ॥
 राजाकार्यपरिग्रहात् सवर्षाद्यविवारदः ॥
 "विद्युत्प्रसव्ये कावी निमान् उपरुच्यन्तः ।
 तस्यात्मनः एधेभ्यो चोच्यते शर्मभोगिः ॥
 सुयुद्धैः प्रसादिन सुवीर्यो नगरं वसित् ।
 तत्र यज्ञकर्मैश्च भागादेशान्तरं गताः ॥
 चन्द्रासमिती वैचिन् चन्द्रासमिती शरः ।
 मध्यदेशे लयोध्यावां चन्द्रानुस्यदीश्वरः ।
 तत्र यज्ञः श्रीसोमधोयः शौक्यंश्च कुलाश्रमः ॥"

इस विषयमें कुलानन्दने अपने उत्तरराष्ट्रीय 'कायस्थकारिका' नामके बङ्गला कुलप्रणयमें जो कुछ लिखा है, उसका अक्षरशः अनुवाद नीचे दिया जाता है :—

"विधिने किया एक जन, कर्म सिखनेके लिए ।
 चित्रशुभ नाम उसका, हुआ फिर वह इस लिए ॥
 कायस्थकी उत्पत्ति, हुई यमके समान ।
 पापपुण्य सिखनेके, हेतु हुआ फिर विधान ॥
 चादमें फिर हुए, उनके तीन जो सङ्के ।
 चित्रसेन चित्ररथ, नाम विचित्र उनके ॥
 चित्रसेन खर्गमें गया विचित्र पातालमें ।
 चित्ररथ मर्त्यमें आया, सेनो जो कहाता ॥
 यमुना विभा करमें हरिपके भन्तरमें ।
 सुखसे नियसे सेन-पत्नीके मन्दिरमें ॥
 यमुनाकी गर्भसे हुए पैदा बहुत जन ।
 जो गौड़, मायूर, भद्र, सकसेन श्रीकरण ॥
 श्रीवास्तव, षडिष्ठान भस्वट निगम ।
 मुनिकी पूजन सभामें गोत्रका सिखन ॥
 तपोव्रतसे श्रेष्ठ बन्नी श्रीकरण गण्य ।
 उसमें अनेक गोत्र गोभते बहुमान्य ॥

* * * *

गौड़ (देश) के महाराज आदित्यशूर नाम ।
 गङ्गाके समीप वास सिद्धेश्वर धाम ॥
 आदरसे बुझाते उन्हें, विप्र पञ्चजन ।
 साध उनके पञ्चमोत्र भाये श्रीकरण ॥
 ध्रुवानन्दमित्रकी "बङ्गलायस्थकारिका"में भी
 ऐसा ही लिखा है :—

"विमदिवद्वृतापाटी समाचनु वे सहाययाः ।
 त्रेषानु कन्ययासाच काश्यपो मातकर्म च ॥
 एकैव बहुधा भावि गोविन्दा गोमदीयता ।
 तेषां भयो प्रवरर एकभिःशतमः क्षु तः ॥
 सुयुधयो चन्द्रासमन्तार्यं चन्द्रदेवकः ॥
 विन्दासी रविरो रविरीरथ मीरुचः ॥
 इति आष्टदुता शशाताः कुलातां पतयोऽभवन् ॥
 शोयः स ईजनाज्जातचन्द्रासाष्टदुसुता ॥
 रविरकाणु शुचयेव चन्द्रदीहाणु मिमकः ॥
 चन्द्रादीन् करषो मातः रविदासाच दसकः ॥
 मयु क्षयसु गौडाच कथंति यन्कारणैः ।
 दसकी नामनाथो च करवाच समुद्राः ॥
 मयुक्षय-मुतोशतः दीवसेनथ पालितः ॥
 शि'रथैव तथा खाताः एते पहलिकारथाः ।
 मयु क्षय-कुलीश्वरी निजानन्दो षडेश्वरः ॥
 तस्मादि बंधे स'जाताः सतामितिः प्रकीर्तिताः ॥
 कुलाचारमेदेन विस्फुल्लपत्राभवन् ॥"

इसके अतिरिक्त बंगालके दक्षिणराष्ट्रीय कुलप्रणयमें भी वसु वंशकी श्रीवास्तव शौर दत्त वंशकी शकसेन कुलीन कह जा है। अतएव उपरोक्त कुलप्रणयोंके प्रमाणोंसे यह निश्चय किया जाता है कि उत्तरराष्ट्रीय, दक्षिणराष्ट्रीय शौर वङ्गल—क्या कुलीन शौर क्या मौलिक सब ही—कायस्थ चित्रशुभके वंशधर हैं; भारतके भिन्न भिन्न देशोंकी भिन्न भिन्न श्रेणियोंके कायस्थोंके "दायाद" हैं। अब यह देखना चाहिये कि उक्त भिन्न भिन्न श्रेणियोंके कायस्थोंका पूर्व परिचय कैसा शौर क्या है।

प्राचीन शिक्षालेख शौर ताम्रलिपियोंमें, श्रीवास्तवोंकी वास्तव्य-वंशका वतसाया है। मध्य-प्रदेशके महेश्वर नामक एक स्थानमें चेदिराज जाजल-देवकी एक प्रशस्ति मिली है। उसमें श्रीवास्तव रत्नसिंहका ऐसा परिचय दिया है :—

"काश्यपोवाचवादीवमय-सिद्धान्वेदिना ।
 विषयपादिधि'देन रवशि'देन भीमता ॥११
 श्रीरथपात्रिष्ठमशानु चराभियं क-

सन्वीरयपतयवाचमशौचशैव ।
 वासव्यं महामनाचामानुषैयं
 मामिदृते रचिता रचिवा प्रशस्तः ॥"

पारोक्ष्य किया। इस प्रकार यमराजने अपने सुमनों और बहुतही सेनापोंको साथ ले कर इन्द्रको युद्धमें सहायता की। पाशुपाणि वरुणदेव भी मत्स्यपर सवार हो अपनी सेनापोंको साथ ले कर आ पहुँचे। इत्यादि।

श्रीहर्षके "नेपथ्यचरित"में पाया जाता है,—
दमयन्तीकी श्वशुर-सभामें इन्द्रादि देवोंके साथ चित्रगुप्तदेव चतुरिय रूपमें आये थे। नेपथ्यकारने उनका परिचय इस प्रकार दिया है,—

"इन्द्रोपरोऽसूदय चित्रगुप्तः कायस्थ उच्यते च परतीव ।
ऊर्गेण पत्यस मशोद एको मधेदंघोचरि पत्यमथः ।" (१४ सर्ग)

चित्रगुप्तके प्रायःनामन्वयमें यह भी मिलता है—

"दिया यह सगुण्य चतुर-मदनीहव ।
चित्रगुप्त महापादो नगण्य परदो मव ॥"

उपर्युक्त भिन्न भिन्न पुराणोंसे यह प्रमाणित होता है कि, ब्रह्माके शरीरसे चित्रगुप्तकी उत्पत्ति है; और फिर कल्पभेदसे चन्द्र सूर्यादि देव जिस प्रकार नाना भाव और नाना रूपसे अवतीर्ण हुए हैं, वैसे ही चित्रगुप्त भी विभिन्न कल्पोंमें कभी सूर्यदेवके, पुत्ररूपसे और कभी मित्रके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए हैं। इन्द्र, चन्द्र, वायु और वरुणकी भांति वह भी देवचतुरिय-रूपसे देव-सैन्यमें रहते थे।

विरहवादिप्रीका मत।

उपर्युक्त प्रमाणोंके रहते हुए भी विरहवादा यह कहा करते हैं कि, चित्रगुप्तदेव चार वर्षोंकी सृष्टिके पीछे हुए हैं, इसलिये वे चार वर्षोंमें नहीं गिने जा सकते।

कमलाकारके—“एवं ध्यातश्रितध्यायः सर्वकारादिनिर्गमः ।”
इत्यादि वचनके अनुसार चित्रगुप्त ब्रह्माके समस्त शरीरसे उत्पन्न हुए हैं और ब्रह्माकी “चतुर्वर्षोचित धर्म पाशुपत्या यदादिपि—”इस उक्तिसे चित्रगुप्तका चतुरिय होना सिद्ध नहीं होता। “ब्रह्मवायोऽने यथात् कायस्थवर्षं उत्पन्न” इस युक्तिसे कायस्थ एक स्वतन्त्र वर्ष ही प्रतीत होते हैं।

इसके अतिरिक्त मन्वाटि धर्मशास्त्रमें चित्रगुप्त अथवा कायस्थ जातिका तत्त्व निर्धारित नहीं हुआ है।

किसी किसी स्मृति-शास्त्रमें चित्रगुप्त और कायस्थ नाम पाया जाता है। परन्तु इससे यह नहीं समझा जा सकता कायस्थ कौन जाति है ?

पुराणको—“धर्मशास्त्राधिष्ठारो विभक्तौ धर्म ॥” इस उक्ति द्वारा यही सिद्ध होता है कि, चित्रगुप्त यमराजके लेखक थे। विष्णु, याज्ञवल्क्य, बृहस्पत्याग्रर इत्यादि स्मृति-शास्त्रोंसे और कायस्थोंके धर्माधिकारणमें भी उनके लेखक रहनेका प्रमाण मिलता है। चौथनस धर्मशास्त्र, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, अग्निपुराण, याज्ञ-यल्क्यस्मृति और राजतरङ्गिणीमें जगह जगह कायस्थोंके प्रति कठोर उक्तियाँका प्रयोग पाया जाता है। विशेषतः अहल्या-कामधेनुके नवम बखोद्धत भविष्यपुराणान्तर्गत कार्तिक-शास्त्र-हितोपा-तत-कथा-सम्बन्धमें कहा है,—

“एतस्मिन् व काशे मु धर्मशर्मो रिजोमनः ।
अपत्याचो च धातारामाध्यममजसहा ॥
परमेष्ठिमहादेव सन्ध्या कथामितारवतीम् ।
चित्रगुप्तं च मां दत्वा विवाहमकरोऽपरा ॥”

उपर्युक्त प्रमाणसे यहो मालूम होता है कि, चित्रगुप्तका विवाह ब्राह्मण धर्मशर्माकी पुत्री-इरावतीसे हुआ था। इसलिये प्रतिशोम विवाहसे उत्पन्न हुये कायस्थ कदापि श्रेष्ठवर्ण हो नहीं सकते। इसके अतिरिक्त शब्दकल्पद्रुमाद्धत आचार-निर्णय-तन्त्रमें कहा है,—

“मादो प्रजापतेर्जाता सुचादिषाः सदारवाः । इत्यादि उपक्रमसे पादाच्छ्र दृष्टः सभृतिस्त्रिवर्षं च शिवः ।
होयनामा सुतस्य प्रदोपस्य पुत्रकः ।
कायस्थस्य पुत्रोऽभूत् धर्मव विधिकारकः ।
कायस्थस्य वयः पुत्राः विद्याशा अन्तोतले ॥
चित्रगुप्तविद्येनो विचित्रवर्षं च यः ।
चित्रगुप्तो गवः सर्गं विचिंतो भावसन्निवो ।
विमर्षिनः इदित्यां च इति यदः मधुप्रादे ॥
वधुर्षोया शुभो भिको दत्तः करच एव यः ।
सुखस्यस्य समं ते चित्तस्यमुता सुभि ॥”

इत्यादि वचनोंसे और अग्निपुराणमें कही गई जाति-भाषासे, चित्रगुप्त और उनके धर्मशर्माकी श्रेष्ठ वर्ण नहीं कह सकते। फिर कमलाकारके

चेदिराजके गिलाखेखमें एक रत्नसिंहके पुर्वोका परिचय "निःशिवानुपदहोपरिभवः" ऐसा मिलता है। मध्यप्रदेशके खलरि यामसे मिले हुए राजा हरिहरप्रदेयके १४१० संवत्के गिलाखेखमें यों लिखा है—

"शोभास्यभवेना प्रदक्षिरजमसदा।

मिविता रामदासिन परिचयतोत्रेव च॥"

पञ्जयगड दुर्गमें राजा भोजवर्माके समयकी (ई० बारहवीं शताब्दीके नागवाचरोमें लिखी हुई) दो बड़ी बड़ी गिला-लिपियां हैं, इन्हीं गिला-लिपियोंमें श्रीवास्तव वंशका विस्तृत परिचय मिला है। इनमें मव ही 'ठकुर' उपाधिधारी थे। कोई सर्वाधिकारी था, कोई दुर्गाधिप था, कोई कोयाध्यक्ष था, और कोई प्रधानमन्त्रीके पद पर नियुक्त था। ग्रावस्थीसे मिले हुए १२०६ संवत्के गिलाखेखसे मान्य होता है कि, श्रीवास्तव वंश कर्कोटनागका रखा किया हुआ वंश है (Indian Antiquary, vol. XVII. p. 62)।

काश्मीरके श्रीनगरमें श्रीवास्तवोंका पादस्थान है—ऐसा भी इतिहास पाया जाता है। राजतरङ्गिणीसे यह मान्य होता है कि, वहाँके सब अधिकारोंमें कायस्थोंका हाथ था। इसके मिया कर्कोटवंशीय कायस्थ राजापति काश्मीरमें २६० वर्षसे ज्यादा राज्य किया—इसका खासा प्रमाण मिलता है। इसी वंशके राजा जयादित्यके साथ गौड़के राजा जयस्तने (कुलधन्यने जिनका आदिशूर नामसे सम्बन्ध है) अपना नङ्की कल्याणदेवी स्थायी थी। तब ही से गौड़ोंका श्रीवास्तवसे वैवाहिक सम्बन्ध बना जाता है। इन ही जयादित्यने पाणिनीय व्याकरणकी कामिकाहनि बनाई थी। इसमें उनके वेदपाठ करनेका भी पता लगता है। उस समय वे ही वेदपाठ करनेके अधिकारी होते थे, जिनके संस्कारादि दिनोंके सहाय थे। ऐसी अवस्थामें जयादित्यके संस्कारादि दिनोंकी भांति थे—इसमें सन्देह नहीं। श्रीवास्तव कायस्थोंके पिता माधुर, भटनागर, प्रकसेन, निगम, गौड़ आदि विभिन्न श्रेणियोंके कायस्थ भी, ई० ४ वीं शताब्दीसे लेकर

१४वीं शताब्दी तक हिन्दू राजाओंके मन्त्री, सेनापति, काराधिकारी, प्रतिनिधि, राजपण्डित आदि जैसे पदों पर नियुक्त थे—इसका सर्वप्रथम गिलालिपि तथा ताम्र-लिपियोंमें पाया जाता है। पहले शास्त्रीय प्रमाणांसे यह बता चुके हैं कि, गौड़देशमें रहनेवाले कायस्थ गौड़-कायस्थ कहलाते हैं। संवत् ११६१ के गिला-खेखसे मिला हुआ माधुर-कायस्थोंके एक राजकीय पद और विद्वत्ताका परिचय (Indian Antiquary, vol. XV. p. 201), १८१८ संवत्को गडवाकी गिलालिपिमें मिला हुआ भट्टनामके वैदिक धर्मनिष्ठ सकसेन कायस्थ महीश्वर (एक गिलाखेखके अनुवादकने इन्हीं महीश्वरका anointed "sacrificer" या "धर्मविक्ष-याज्ञिक कह कर परिचय दिया है), (Cunningham's Arch. Sur. Reports, vol. III p. 59), राज-चक्रवर्ती यमोधर्मोंके मालवीय संवत् ५८८में लिखित मन्दगोरसे पाये गये गिलाखेखसे 'राजस्थानीय' तथा महापण्डित निगम वा निगम कायस्थ वंश (Fleet's Corpus Inscriptionum Indicarum, vol. III. p. 152), ग्वालियरसे मिला हुई ११५० संवत्की राजा महीपाल देवकी गिलालिपिमें भट्टकायस्थ वा भट-नागर वंशीय कायस्थ शूरि शोह और "शाब्दिक भटन" सूर्यध्वज श्रीभद्रका नाम—ये सब विशेष उल्लेखयोग्य हैं।

(Cordier—Catalogue du fonds Tibetan deb Bibliotheque Nationale, p. 67.)

ई० पहिली शताब्दीसे लेकर चौथी शताब्दी तक भारतके शासनकर्त्ता प्रकसेन वंशीय क्षत्रिय, गुप्त वंशीय सम्राटोंका प्राधिपत्य नष्ट हो लानेके बाद क्षत्रिय-कायस्थके नामसे प्रसिद्ध हुए—भट्टभट्टके "देववंश" नामक संस्कृत-ग्रन्थसे इस बातका पता लगा है। श्रीकरण-कायस्थोंमें; "शाङ्गधर-पद्मिनी" और "सङ्गीतरत्नाकर"के बनावेवाले शाङ्गदेवके पिता सोदकका नाम प्रसिद्ध है। ये देवगिरि-बाद-राजके महापण्डितविद्वान् थे। इनकी श्रृष्टिके बाद इनके पद पर चरितोय शाङ्गविहारट, "चतुर्वर्ग-चिन्तामणि"के प्रथिता चिमादि नियुक्त हुए। गौड़

उनके १२ कुटुम्ब पङ्क्ति थे। फिर दूसरी बार बौध, तीसरी बार तीस और चौथी बार प्रखी कायस्थोंकी मण्डली मिथिला गयी। सारांग—कुल ११३ कायस्थ नान्यदेवको समय मिथिलामें जाकर रहे। अपने देशको न छोड़ने और मिथिलामें ही निवास ग्रहण करनेसे वह 'कर्णकायस्थ' नामसे अभिहित हुए। राजा नान्यदेवके वंशज राजा हरिसिंह देवने जब मिथिलास्य उच्च वर्णोंकी पञ्ची बनायी, तब कायस्थोंके वंशकी विवेचना करके गुडाचरण और उच्च पदानुग्रहणके क्रमसे उन्हें ४ श्रेणियोंमें विभक्त किया। नान्यदेवके साथ गये १३ कायस्थोंके वंशधरोंने पञ्चीप्रवन्धके मध्य प्रथम श्रेणीमें स्थान पाया था। द्वितीय श्रेणीमें उन २० कायस्थोंके वंशज रहे, जो त्रिद्वत राज्य मिलने पर बुलाये गये। फिर तीसरी बारको गये ३० कायस्थोंके वंशज तृतीय श्रेणी और चौथी बारको पङ्क्ति के अवशिष्ट कायस्थसन्तान चतुर्थ श्रेणीमुक्त हुए।

उक्त कायस्थ मिथिलामें वस जाने पीछे अपने दूसरे भाइयोंकी भांति स्थानान्तरको नहीं गये। इसी लिये वह पुरानी मिथिलाकी सीमाके बाहर नहीं मिलते श्रेणीत् उसीके भीतर रहते हैं।

महाराज नान्यदेवके घरानेसे लेकर भोदनवार घरानेके मध्य समय तक मिथिलाके कायस्थ 'ठाकुर' कहलाते रहे। फिर किसी भोदनवार भूदेव-संघाय-तंत्र महातुभक्तको कायस्थों और ब्राह्मणोंकी पदवीजा सादृश्य प्रसङ्गत लगा। इस लिये उन्हें गभीर विचारापन्न हो कर कायस्थोंकी 'ठाकुर' पदवीको अनैकानैक पदवियोंमें विभक्त किया। जो जिस विषयमें निपुण देख पड़ा, वह उसी पदवीसे विभूषित हुआ। कायस्थोंने राजोपजीवी होनेसे सहर्ष नाना प्रकारकी उच्च पदवियोंकी स्वीकार कर लिया।

भाजकनके मेथिल पञ्चियार कहा करते कि कर्णोटकसे मिथिलावासी होने कारण मिथिलाके कायस्थ 'कर्णकायस्थ' कहलाते हैं। परन्तु हमें सम-सामयिक गिज्ञान्तिपि वा ग्रन्थसे इसके समर्थनका कोई प्रमाण नहीं मिला। उलटे, कर्णोटक नान्य-

देवके सहयात्री और प्रधान मन्त्री श्रीधर ठाकुर, जो वंशपञ्ची ग्रन्थमें कुलीन कर्णकायस्थोंके मध्य सबसे बड़े समझे गये हैं, अपने गिज्ञान्तिपिमें 'स्रववङ्गालभानु' नामसे परिचित हुए हैं। दरभङ्गा जिलेमें जवदी परगनेके बौध प्रभाड़ाठाड़ी नामक एक ग्राम है। उसमें कमलादित्य मन्दिरके ध्वंसा-वशेषमें एक टूटी हुई विष्णुकी मूर्तिके पादवीथ पर निम्नलिखित गिज्ञान्तिपि उल्लेख है—

'को श्रीमन्मन्त्रपतिज्ञता गुणरत्नमहापं बः ।
यत् कौलीयनिर्दिष्टं द्वितीयो श्रीधरो वरः ॥
मन्त्रिणा मध्य नान्यस्य स्रववङ्गालभानुना ।
द्वितीयं कालिः श्रीमान् श्रीधरः श्रीधरेषु च ॥'

'जिनको कीर्तिसे विश्व उच्छ्रलित श्रेणीत् व्याप्त है, जो दूसरे हृदयसत्तिकी बराबर वर्णन करनेयोग्य है और जो गुणरूप रत्नके समुद्र हैं, वही श्रीमान् नान्य-पति जिनयो हो'। उन्हीं नान्यदेवके मन्त्री वङ्गपद्मका-चतुरिय-सूर्यस्वरूप श्रीधरने उक्त श्रीधर नामक श्रीमान् देवमूर्ति प्रतिष्ठित की है।

समसामयिक गिज्ञान्तिपिमें श्रीधर ठाकुर 'स्रव-वङ्गालभानु' लिखे गये हैं। ऐसी प्रवृत्तियोंमें निःसन्देह वह कायस्थ-चतुरिय और वङ्गवासी रहे। गौड़के सेनवंशीय कर्णोट-चतुरिय थे और नान्यदेव उन्हींके प्राति थे। राठदेशमें गङ्गातीर कर्णोटोंका एक प्रधान उपनिवेश रहा। सम्भवतः उसी स्थानसे नान्य-देव और श्रीधर ठाकुर अपने भाँस्योय स्रजन से करके मिथिला जीतनेकी प्राप्ति बड़े। वङ्गान्तके उत्तरराष्ट्रीय कायस्थोंके प्राचीन कुलप्रथम उत्तरराष्ट्रीय कायस्थोंके पूर्वपुत्र 'श्री कर्णव' गुरुभूत, 'श्री कर्णव' श-श्रेणीमुक्त और 'श्रीकर्णके कुलानुग' कहलाये हैं। वङ्गदेशके प्रसङ्गमें उक्त प्राचीन कुलपञ्चीका प्रमाण उद्धृत हो चुका है। मान्य पद्धति कि राठीय-कायस्थोंके 'प्रादिकुशुका'की भांति श्रीधरदास और उनके कुटुम्बो 'कर्णकायस्थ' नामसे मेथिल-समाजमें परिचित हुए हैं। वङ्गान्तके कायस्थोंकी भांति मेथिल कायस्थ समाजमें भी दास, दत्त, देव, कच्छ, निधि, मल्लिक, साभ, चौधरी, रङ्ग इत्यादि पदवी

मान्त्रिकवाचक वारिष्ठ कायस्थ प्रजापति नन्दी और उनके पुत्र 'रामचरित'-रचयिता 'बलिबालवास्तीक' मन्त्राकर नन्दीका नाम विशेष उल्लेखयोग्य है। पाल राजाओं के समयमें बहुतसे कायस्थ बौद्ध-सङ्घके विहारमें प्रधान आचार्य भी हो गये थे।

ब्राह्मणोंके समान अधिकार होनेसे ही वे कायस्थ—ब्राह्मणोंके पशुदण्डके समयमें भी—ऐसे ऐसे लंके पदोंके अधिकारी बने; और इसी लिए ही ये वहीय ब्राह्मणप्रमाणके विधिप्रमाणन हुए थे। वैदिक ब्राह्मणोंने इन सद्गमियों पर कैसे कैसे बर्ताचार किये हैं, इसका पता 'शुन्यपुराण'के अन्तर्गत 'निरञ्जनकी रक्षा'से खूब अच्छा लगता है। इसके फलस्वरूप ब्रह्मसममें बौद्धोंका प्रभाव नष्ट हो गया और ब्राह्मणोंके प्रभावसे कायस्थोंको सच्छूद्रवत् बनना पड़ा। इससे कायस्थोंकी समाज-सम्बन्धी कोई इज्जत नहीं उठानी पड़ी, यही कुमल है। ब्राह्मणों नीचे कायस्थोंका ही स्थान था। और तो क्या; अकबर बादशाहके समयमें ब्रह्मसममें अधिकतर कायस्थ ही राजा थे। खाली सेनिक, हजारीं मुकुसवार और सेकड़ां तोपे उनके आधिपत्यमें रचाके लिए रखा करती थीं। "पाइन-र-अकबरी"में इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। अकबर बादशाहके दरबारमें कायस्थोंके चतुरियत्वके विषयमें बड़ा भारी आन्दोलन हुआ था। उस दरबारमें मधुसूदन सरस्वती जैसे प्रमुख विद्वानोंने भी कायस्थोंके चतुरियत्वके अनुकूलमें अपना मत प्रकट किया था। जहाँगीर बादशाहके समयमें प्रकटित "बयान ए कायस्थ" नामक पारसी ग्रन्थमें उनके मतोंका उल्लेख ही नहीं, वरन् उद्धृत किया गया है। किसी किसी पण्डितका यह कहना है कि, ब्रह्मसमके प्रातःअरचोय औरगुणन्दन ही जब वसु, घोष आदिकी शूद्र निर्हय गये हैं; तब ब्रह्मसमके कायस्थ शूद्र ही समझे जायेंगे। परन्तु निरपेक्ष हो कर यदि गुरुनन्दनके शब्द देखे जाय तो उनमें कहीं भी "कायस्थ" शब्द तक न मिलेगा। ऐसी दृष्टिमें उनके मतसे कायस्थ शूद्र हैं—यह कहना विमल्लभ वास्तविक है। वसु और घोष उपाधि ब्राह्मणोंसे

लेकर ब्रह्मसमकी बहुतसी जातियोंमें पाया जाता है। ऐसी दृष्टिमें केवल गुरुनन्दनोक्त वसु, घोष आदि शब्दोंमें ब्रह्मसमके कोई कायस्थ शूद्र नहीं माने जा सकते। ई० १४वीं शताब्दीमें गौड़से कुछ कायस्थ-पण्डित राजा दुलभनारायणकी धोरसे कामता (कोवविहार) में बुलाये गये थे। ये वहाँ "वारहभुंइया" कहलाये और पीछे इन्होंने वहाँ अपना आधिपत्य जमा किया। इनके आचार-व्यवहार ब्राह्मणोंकी भांति ही थे। इन्हीं भुंइयाओंके चपची गिरोमणि भुंइया कायस्थ अष्टोत्तरके ग्रंथमें (महाप्रभु चैतन्यदेवके पहिले) ई० १५वीं शताब्दीकी महापुरुष और चरिणीय पण्डित श्रीगङ्गदेव पाविभूत हुए। आसामके बीस लाख हिन्दू इनको भगवान्का अवतार मान कर पूजते थे और सब भी ऐसा ही है। कायस्थ-अवतार गङ्गदेवके प्रधान कायस्थ गिण्य माधवदेव भी उनकी तरह प्रचार कार्यमें दक्ष थे और इन्होंने "महापुरुषोय" सम्प्रदाय भी फैलाया था। आसामके प्रधान प्रधान स्थानोंमें महापुरुषोयोंके शताधिक सत्र (पुण्यस्थान) वर्तमान हैं। उनमें कायस्थ समाधिकारी सब भी ब्राह्मण आदि सब वर्णोंके दीक्षागुरु और ब्राह्मणोंके सद्यः संस्कारवाले देखनेमें आते हैं। उनके पूर्वज लोग गौड़वन्धुसे जा कर आसामवासी हुए थे। वहीय कायस्थ पहिले दिन कहलाते थे—इसका प्रमाण भी यही है। जण्यदास कविराजके "श्रीचैतन्यचरिता-मृत"में गौड़के राजाके प्रमात्य केशव वसुका (ई० १५वीं शताब्दीमें) 'केशवकर्म' नामसे उल्लेख किया गया है। उत्तरराष्ट्रीय नन्दराम सिंह स्वयं (४०० वर्ष पहले) गोपीनाथकी पूजा करते थे। यह प्रथा प्यारह पीढ़ियों तक चली आयी। इस ग्रंथमें सर्वदा यज्ञकी प्रथा और प्रथोचारणकी प्रथा प्रचलित रही है। गिण्य रचाकी प्रथा और पूजाकी प्रथा भी बराबर बनी रही है। दरियाककी तरफ "जैसोकनारायणकी पञ्चाली" नामक पुस्तकका बहुत ही प्रचार है। इस पुस्तकमें लिखा है कि, बार घी वर्ष पहिले जब चन्द्रदीपके राजाका दरियाहमें आधिपत्य था, तब वहाँके चाँदनी नामके निवासी ब्रह्मणों

कायस्थप्रभुवर्गमें जातागोष् और गृतागोष् १२ दिन रहता है। तयोदय दिवस मृतोद्देशसे ग्राह किया जाता है। वेगवावोके प्राधान्यकाल उनके नातिहुट्स्ववासे कोह्लपस्य ब्राह्मणोंने कायस्थ प्रभुवों पर खपेट पत्याचार किया। उस समय वैदिक कर्म सम्पादनको ब्राह्मण पुरोहित न मिलनेसे कोई कोई अपने पाप धोरोहित्य और होमादि वैदिक कर्म कर लेते थे। आज भी किसी किसीने उक्त वृत्ति नहीं छोड़ी। * यद्यत्क कि ब्राह्मणोंके उक्त प्रभावकाल जिनोंने अधर्मरक्षाके लिये गुलरात, कच्छ प्रभृति दूर देशोंमें जा कर पापय लिया और उपयुक्त पुरोहितके पभावमें बाध्य हो समाप्तोय राजनकायं ग्रहण किया था, आज भी उनके वंशधर पुरोहित, सेवक और गण्यर्थावो बने हैं। † इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मणोंके पीढ़नसे व्यथित और हताश हो कर ही कायस्थ प्रभु वेसा कार्य करने पर बाध्य हुये थे। फिर उनके किसी किसी वंशधरने उक्त उद्य पधिकार परित्याग करना उचित न समझा।

दाक्षिणात्यके प्रभुवोंमें किसीकी समस्या मन्द नहीं। दाक्षिणात्यमें वह आज भी देशपाण्डेय तथा कुसकरवो बने हैं और महाराष्ट्रप्र-प्रदक्ष जागोर भोग करते हैं।

कोह्लपके अन्तर्गत दमन नामक स्थानमें को चान्द्र-शैलीय प्रभु रहते, उन्हें और पत्तनप्रभुवासे चन्द्रवंशीय कामपतिके दमन नामक अन्तर्गतके वंशधरोंको 'दमनप्रभु' कहते हैं। उनका पाचार-व्यवहार और संस्कारादि समस्त चान्द्रशैलीय प्रभुवोंके मिलता है। दमनशैलीय चान्द्रशैलीय और पाठारीय उभय शैलीका मिलन देख पड़ता है।

चेउम, बमई, कुमावा, बम्बई, घागा, पूना इभृति जिलानोंमें पत्तन-प्रभुवोंका नाम है। वह भंज्यामें

पति पश्य हैं। उनकी अल्प संख्याका कारण क्या है? कोई कोई समझता कि सुषुक्तमागोडे पाधिपत्यकाल उनमें अनेक चान्द्रशैलीय प्रभुवोंके साथ मिल गये थे। किन्तु आजकल पत्तनप्रभु चान्द्र-शैलीय प्रभुवोंका कोई सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते। वह अपनेको विद्युत् चतिय और चान्द्रशैलीयोंकी अपेक्षा अर्थ बतलाते हैं। वेगवा चयवा कोह्लपस्य ब्राह्मणवंशीय प्रतिनिधियोंसे सतारें जिस समय चिट्तलीनोंका दाहण विवाद चलता था, उसी समय पधिकार्य पत्तनप्रभु ब्राह्मणोंके पत्याचारसे बचनेकी स्वतन्त्र हो गये। फिर भी जो चान्द्रशैलीयोंके भाव गाढ़ मियता और हुट्स्वित्तके सूत्रमें पावह रहे, वह स्वतन्त्र हो न सके। उनके वंशधर आज भी चान्द्र-शैलीयोंके मध्य 'पाटन' उपाधि भोग करते हैं। यद्यत्क कि वह पत्तन-शैलीयके पृथक् हो गये हैं।

पत्तनप्रभुवोंकी मायनापा पनहलवाड़ा पत्तन (पाटन) के राजपूतोंकी भावामि मिलती है। इस लिये बहुतसे लोगोंके विज्ञान है कि उक्त राजपूतोंमें ही पत्तनप्रभुवोंका उद्भव और पाटन नगरसे उनका नाम-करण हुआ होगा। *

कोह्लपस्य ब्राह्मणों द्वारा प्रकृत चतिय स्वीकार न किये जाते भी वह बुरावर यजन, 'अध्ययन एवं' दान त्रिविध द्विकोचित कर्म सम्पादन और चान्द्रशैलीय कायस्थोंकी भाति सलन संस्कार पालन करते हैं। पत्तनप्रभु दमन वयं पुत्रका उपनयन देते और पगोवमें १२-दिन मात्र लेते हैं। आज भी कोह्लपके नामा स्थानोंमें प्रभुभोग बहुतसे जागोर रहते और बड़े बड़े पद भोग करते हैं। †

महाराष्ट्रदेशमें ध्रुवशु नामक एक शैलीय कायस्थ देख पड़ते हैं। वह अपनेको पुरापावर्षित उत्तानपादराजपुत्र ध्रुवका वंशधर कहते और पत्तन-प्रभुवोंका एकशैलीय समझते हैं। उनके प्रधान

* "It is certain that some have ascribed to the priests, an office everywhere carefully retained by the Brahmans, and so to whisper the sacred formula, perform sacerdotal rites, and to officiate at the Home, or householding." (Stern's Tribes and Castes, Vol. II.)

† Indian Antiquary, Vol. V, p. 171.

* Bombay Gazetteer, Vol. XVIII, Pt. I, p. 185.

† पत्तनप्रभुके वंशधर कायस्थ-वंशधर सम्बन्ध निम्न विषय Bombay Gazetteer, Vol. XVIII, Pt. I (Poona), p. 193-205. और किसी किसीके 'कल्याण' कर्ममें रहते हैं।

कायस्थ-हरिनारायण दास 'विद्यासागर'-उपाधिसे विभूषित थे। दक्षिणराष्ट्रीय कायस्थ-समाजमें सुगन्धाकी विकासाके व्यवहारों जहांगीर बादशाहके विक्रयक वसुधेश्वर चिन्तामणि राय 'वैद्यराज' और रत्नमणि राय 'धन्वन्तरि' उपाधिसे बलवृत्त थे। पीछे इसी वंशमें 'तपस्वी' 'सर्वभौम' 'वाचस्पति' 'वैद्येश्वर' 'कण्ठहार' 'वैद्यतिलक' 'वैद्यविशारद' 'वैद्यचूडा-मणि' 'तर्कतीर्थ' 'वैद्यरत्न' इत्यादि इत्यादि उपाधियोंके अधिकारी हो गये हैं। इनके रचे हुए बहुतसे वैद्यक ग्रन्थ भी मिले हैं।

दिनागपुरके वर्तमान कायस्थ-महाराजके समयसे ३०० वर्ष पहिले तक ब्रह्मोत्तरके दान-पत्रमें 'वर्ष्म' उपाधि देखनेमें आता है। इस वंशमें विजया-दशमीके दिन-चित्रगुप्तका नमस्कार-मन्त्र-पढ़ कर पुरोहित जब इनके हाथमें तलवार देते हैं, तब-ये उसे ग्रहण करते हैं; और फिर उसी तलवारसे केलेके पेड़को काटते हैं। यह प्रथा पहलेके क्षत्रियोंकी मृगयाका अनुकूल्य है। ब्रह्मसूक्तके कायस्थ-समाजने तान्त्रिकताके प्रभावसे वैदिक गायत्री आदिके त्यागने पर भी गर्भाधान, कर्णवेध और चण्डाकरण आदि हिजोचित-संस्कार पाते हैं, ऐसी-हासतमें यहांके कायस्थ कभी शूद्रोंमें नहीं गिने जा सकते।

ब्रह्मसूक्तके अधिकांश सामाजिक-कायस्थ चित्रगुप्तके सन्तान हैं; उनमें बराबर ये संस्कार भले पाये हैं। और उनमें-बहुतोंने तान्त्रिक आचारकी ग्रहण नहीं किया है। वे बराबर-वैदिक आचार पालन करते पाये हैं—इसका आभाव भी ग्रन्थोंमें मिलता है। इनके सन्तान ब्रह्मसूक्त और शुक्लपदेशमें भव भी रहते हैं और वे भव भी-हिजो संहय-संस्कारवाले हैं। ब्रह्मण्य १२२४ संवत्के रूपे हुए "कायस्थ-धर्म-निरणय" नामक प्राचीन-ब्रह्मसूक्त-ग्रन्थमें ऐसा लिखा है कि,—'गौड़ और बङ्गराज्यवासी दक्षिणराष्ट्रीय, उत्तरराष्ट्रीय और बङ्गल कायस्थ-सन्तानोंको आचारमें हिन्दुस्थानो-कायस्थोंके आराधन व्यवहारमें सृष्टित होना पड़ता है। क्योंकि हिन्दुस्थानी कायस्थ मात्रका क्षत्रिय आचार, वेदवेदाङ्गपाठ, द्वादशाह

अथौष, इत्यादि-देख कर सन् १२१९ बङ्गाली वर्षको महाराज गोपीमोहन देव बहादुरकी सन्ध्यातिसे तारिणीचरण-मित्रज महाशयने भद्र-विवरणका भामूल सन्धान करके चित्रगुप्तवंशजात कायस्थ शूद्र नहीं, इस प्रकार प्रमाण पौराणिक पाने पर समाचारपत्रमें प्रचार किया था। उस काल नीमतज्ञानिवासी दत्तज महाशय और वैकुण्ठवासी तारिणीचरण वसुज महाशयने भद्र विवरणका भामूल सन्धान करते केवल पौराणिक प्रमाणसे भयधारण किया, नियय न समझ चुपके रहे। पीछे छत्र वैकुण्ठवासी दत्तज महाशयके पुत्र गुणाकर श्रीगुरु विश्वेश्वर दत्तज महाशय इलाहाबादसे फारसी पत्रोंमें लिखा एक पुस्तक से पाये। जिसमें पद्म-पुराणोक्त चित्रगुप्त-सन्तान कायस्थ वंशका द्वादशाह अथौष और क्षत्रिय धर्म दृष्ट होता है। कहना गया है कि छत्र फारसी पत्रोंमें लिखित कायस्थवयान्-नामक इतिहासिक ग्रन्थ महाराज गोपीमोहन देवके पुत्र-राजा राधाकान्त देवके पुस्तकालयमें अद्यापि विद्यमान है। राजा गोपीमोहन देव और राजा राजलक्ष्मणदेव-बहादुरके मध्य-महाराज नवलक्ष्मीके विपुल सम्पत्तिके उत्तराधिकार पर कलकत्तेकी सुपरीम कोर्टमें जो सुकहमा चला, उसमें भी दोनोंने अपनेकी शूद्र और वैश्यसे भिन्न उच्च वर्णको भांति घोषणा की है। निकटन साहब कलकत्ते-१८२४ ई० की प्रकाशित उस सुकहमे की कैफियत पढ़नेसे सभी जान सकेंगे। * भव बात आती है—राजा राधाकान्त देव बहादुरके पिता और पित्रव्य-अपनेकी शूद्र वैश्यसे भिन्न उच्च वर्णको भांति परिचित करते भी राजा राधाकान्त देवने अपने शब्दकण्ठमें कायस्थोंके विषय पर अभाषीय कया क्यों लिखी है? जिस समय शब्द-कण्ठमें प्रकाशित होता था, उसी समय पाण्डुसूक्तके राजा राजनारायण प्रधान प्रधान पण्डितोंका मत ले कर कायस्थ-समाजमें उपनयन-संस्कार प्रवर्तन पर अग्रसर हुये थे। राजा राधाकान्तके पिता राजा

* Consideration on the Hindu Law as it is current in Bengal, by Hon'ble Sir Francis W. Meghastan, 1824.

व्यक्ति कक्षा करते हैं—'पहले हम लोगोंके साथ पत्तनीप्रभुओंका विवाह सम्बन्ध प्रचलित था। मध्यमें उन्हें पत्तनीप्रभुओंमें मिसलकी चेष्टा की। पत्तनीप्रभुओंने उन्हें स्वजातीयकी भांति स्वीकार करते भी समाजमें प्रवृत्त किया न था। उनका आचार-व्यवहार और गठनादि पत्तनीप्रभुओंकी ही भांति लगता है। उनकी स्थिति भी मन्द नहीं। वह चन्द्रियोचित संस्कारादि सम्पादन करते और ब्राह्मण-व्यतीत अपर सकल जातिकी अपेक्षा अपनेकी थोड़ा समझते हैं। ब्राह्मणकी छोड़ दूसरी किसी जातिके हाथ भुवप्रभु आहार नहीं करते। अष्टमसे दशम वर्षके मध्य वह पुत्रको उपनयन देते हैं। द्वादश दिन नृतागौष ग्रहण किया जाता है। फिर त्रयोदश दिवस नृतके उद्देश्य आह-क्रिया सम्पन्न होती है। उपनयन, विवाह और आह तीनों संस्कार मन्दा-समारोह और बहुव्ययसे किये जाते हैं। विधवा-विवाह वा बहुविवाह उनके मध्य प्रचलित नहीं।*

सिन्धु, गुजरात और मध्यप्रदेशमें ब्राह्मणत्रिय नामक कायस्थ रहते हैं। सप्ताद्विषयमें सर्वव्ययी और चन्द्रव्ययी प्रभु ही ब्राह्मणत्रिय नामसे वर्णित हुये हैं। अधिक संभव है कि अश्वपति एवं कामपतिके सन्तानोंमें जो पैठनपत्तन अथवा अनहल-वाहपाठनमें रहते उन्हें "पत्तनीप्रभु" और गुजरात, सिन्धु तथा कर्णाट प्रदेशमें स्थानोंमें जो रहते उन्हें "ब्राह्मणत्रिय" कहते हैं। कर्णाट और सिन्धु प्रदेशमें एक ब्राह्मणत्रिय किसी समय प्रति प्रबल पड़े गये थे। सिन्धु और कच्छ प्रदेशमें उन्होंने बहुकाल राजत्व किया। कच्छमें बहुसंख्यक ब्राह्मणत्रियाँका वास है। वहाँ ब्राह्मणत्रिय कक्षा करते हैं—"परशुरामकी परशु-धारासे जो चन्द्रिय आकारचा कर सके थे, हम उन्हेंके वंशधर हैं। सिन्धुप्रदेशमें हमारे पूर्वपुरुषोंने बहु-काल राजत्व किया। विदेशी वर्वर लोगोंके हाथ

राज्यपत और विताड़ित हो उन्होंने ब्रह्मराज-देवीका आश्रय लिया था। उन्हें देवीने दया करके उनके मनको कितने ही अधिकार प्रदान किये।* गवर्न-मेंपटने स्वीकार किया है कि काठियावाड़ और कच्छ-प्रदेशमें शान्तिस्थापन तथा छोटिय शासनके प्रचारकाल एक ब्राह्मणत्रिय-व्ययी सुन्दरजी शिवाजीने कर्नाट वाकर प्रभुतिको यथैष्ट साहाय्य दिया था। पेशवावैके समय कोई कोई प्रभु जा कर उनके मित्र गये। जहाँ प्रभु कायस्थोंका वास अधिक और ब्राह्मणत्रियोंकी संख्या कम है, वहाँ उभयव्येषीके मध्य विवाह-सम्बन्ध हो जाता है।

पष्ठसे दशमवर्षके मध्य वह पुत्रका उपनयन करते हैं। उनके विवाहका आचारादि दाक्षिणात्यके ब्राह्मणोंकी भांति है। आश्वीय और सपिण्डके मरने पर दश दिनमात्र शमौष ग्रहण करके पीछे आह-भोजादि करते हैं। अधिकार्य स्वधर्मोंमें ब्राह्मणत्रिय मसिजीवी और वयिकका कर्म चलाते हैं। कहीं कहीं उन्हें पौरोहित्य करते भी देखा जाता है।

ब्राह्मणत्रिय देशमें अधिकार्य गुजरातों ब्राह्मणों-जैसे होते हैं। सकल ही सुयो, परिष्कृत और विचित हैं।

उपकायस्थ।

भारतवर्षमें सर्वत्र कितने ही उपकायस्थ मिसले हैं। कायस्थोंसे शुद्धकन्याके अर्थे संयोगमें एक सकल उपकायस्थोंकी उत्पत्ति है। उनके साथ प्रकृत कायस्थोंका कोई सामाजिक संबन्ध नहीं। फिर भी अनेक उपकायस्थ कायस्थोंके निन्दावाद और नीच-जातिल प्रतिपादन करनेकी चेष्टामें लगे रहते हैं। उनकी धयसा देख कर ही संभवतः शौमनस धर्म-शास्त्रका वचन गठित और कमलाकर द्वारा सुहृ-कायस्थोंकी व्यवस्था लिपिबद्ध हुयी है। योहीही आलोचना करनेसे समझ पड़ेगा—भारतवर्षीय प्रकृत कायस्थ-समाजके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं।

* भुवप्रभुओंके लयसे वसु-पर्वण आचार-व्यवहारादिका विवरण Bombay Gazetteer, Vol. XVIII, pt. I. p. 185-192 में दृश्य है।

* Indian Antiquary, Vol. V, p. 171.

गोपीमोहन १२११ सालकी कायस्थोंका चरित्रालय संवादपत्रमें घोषणा करते भी प्रकृत कोई कार्य कर न सके। उनके साथ पान्दुस-राजवंशकी वंशवार सामाजिक प्रतिद्वन्द्विता रही। कहना उचित है कि उस काल कलकत्तेके दक्षिणराष्ट्रीय कायस्थोंके मध्य १२ दल थे। दूसरे स्थानकी और क्या बात कहेंगे। राजा राधाकान्त देवके सुयोग्य दीक्षित स्वर्गीय पान्दुसस्य वसु महाशयसे सुना है कि उस सामाजिक प्रतिद्वन्द्विताके समय राजा राधाकान्त देवने पान्दुसके राजा राजनारायणका विरुद्ध पत्र प्रत्यक्ष भेज दिया था। उसी सुयोगमें उनके शब्दकल्पद्रुमके संश्लिष्ट पण्डितने 'भाषारनिर्णयतन्त्र' और 'अग्नि-पुराणीय जातिमार्ग'की रचना कर कौशलसे शब्दकल्प-द्रुमके मध्य प्रक्षिप्त किया, यह विदित नहीं। जो हो, राजा राधाकान्त देव बहादुर हृदयधर्म अपना न्यम समझ सके थे। शब्दकल्पद्रुमका वही भ्रम संशोधन करनेके लिये वह अपने सुयोग्य और सुपण्डित जामाता अमृतलाल मित्र और मित्र दीक्षित पण्डितवर पान्दुसस्य वसु महाशय पर भार थपथप कर गये। यह केवल सुखसे ही कह कर मान्य न हुये, अपने हृदयसवासे निज धीत्रके विवाहमें द्विजोचित कुण्डिका करके पितृपुत्रवैवा सुखोपवस कर गये हैं। यह बात उनके धार्मिक स्वजन सब जानते हैं। इतिहासमें भी यह बात लिखी है। *

राजा राधाकान्त देव छोड़े दिन अधिका जीनेसे चरित्राधार प्रवर्तनमें उद्योगी बनते, चन्देह नहीं। जो हो, पान्दुसके राजा राजनारायणकी भांति स्वर्गीय राय मोहनलाल मित्र महाशय चरित्र-भाषारके प्रचलनमें उद्योगी हुये थे। किन्तु उस समय संस्कृत भाषामें अधिचित शास्त्रज्ञानहीन स्वजातीयके निकट उपयुक्त सहायनृत्ति न मिलनेसे उनका महत् उद्देश्य 'सुखि हो न सका। जो हो, पान्दुसके राजा राज-नारायण जो धीत्र हो गये हैं, वर्तमान कायस्थ-

समाजमें संस्कृत विद्या-प्रसारके साधक मर्मसे वह फलफूससे सुयोमित महाशयमें परिणत होते जाता है। पाण्डक वङ्गके उत्तरराष्ट्रीय, दक्षिणराष्ट्रीय, वङ्ग और वारेन्द्र इन चार क्षेत्रोंके कायस्थोंके मध्य प्रायः सत्ताधिक कायस्थ-सन्तान द्विजोचित उपनयन-सम्पन्न है। उक्त चारों समाजोंके बहुकुलीन और मौनिक कायस्थ सन्तानोंने प्रायः प्रायचित्तके अन्तमें उपधीत शक्य किया है एवं उनके मध्य तयोदयाहमें यात्रादि चतवर्षोचित पाचार प्रचलित हुआ है। विद्येयभाषसे वङ्गके प्रधान प्रधान पण्डित भी इस स्थानके विद्वत्सुसर्गशीय कायस्थोंकी चरित्रवर्ण-सम्पत्त समझने हैं। जब संस्कृत कालेजमें कायस्थ छात्र लिये जायेगे या नहीं—बात उठी, उस समय संस्कृत-कालेजके अध्यक्षरूप प्रातःभारतीय स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशयने विद्या-विभागके डिरेक्टर महाशयको १८५१ ई० की २० वीं मार्चको लिखा था—'जब वेद्य कालेजमें पढ़ सकते हैं, तब कायस्थ वर्ग न पढ़ सकेंगे? जब शूद्रजाति वेद्य और जब शोभावाजारके राजा राधाकान्त देवके जामाता हिन्दु-स्कूलके छात्र अमृतलाल मित्रने संस्कृत कालेजमें पढ़नेका अधिकार पाया है, तब पन्थाय कायस्थ क्यों पढ़ न सकेंगे? कायस्थ चरित्र पान्दुसके राजा राजनारायण बहादुरने इसे प्रभाव करनेको प्रयास उठाया। कि कायस्थोंकी संस्कृत कालेजमें लेना उचित है।' उसके पीछे संस्कृत कालेजके अध्यक्ष स्वर्गीय महाशयोंपाध्याय महाशयन्द्र न्यायरत्न महाशय बङ्गला विद्वत्कीर्षमें कायस्थ शब्द पढ़ तत्-कालीन संस्कृत कालेजके स्रुति-भाष्यायक स्वर्गीय मधुसूदन स्रुतिरत्न महाशयको बड़ा था—'कायस्थ-जाति चरित्रवर्ण है, यह हम अच्छी तरह समझ सके हैं।' उनके परवर्ती अध्यक्ष महाशयोंपाध्याय नीलमणि न्यायरत्नहार महाशयने कायस्थोंकी चरित्रकी भांति स्वीकार किया है। (जबरा बङ्ग-इतिहास द्रष्टव्य) अतः परमहाशयोंपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री महाशय लिख गये हैं—'वङ्गमें बङ्गाल-धर्ममतिहाके लिये ही शास्त्रोंकी भांति कायस्थके प्रधान रूप

देशमें पाये थे। भतएव बङ्गीय काव्यस्यसमानका-
 द्विजाचार लक्ष्य कर गत ११२१ सालके १८
 भाषादूको संस्कृत कालेजके अध्यक्ष महाप्रहोपाध्याय
 डा: सतीशचन्द्र विद्याभूषणके सभापतित्वमें सकल अध्या-
 पकाकी एक विचारसभा हुयी। इस सभामें, संस्कृत
 कालेजके टोल-विभागमें बङ्गीय काव्यस्य छात्रोंके वेद
 अध्ययनका अधिकारसूचक सम्पत्तिपत्र प्रदत्त और
 विद्वान्त् पढ़ानेके लिये काव्यस्य छात्र गृहीत हुवे।
 बङ्गदेशीय दूसरे जो सकल प्रधान प्रधान अध्यापक हैं,
 उन्होंने इसानौत्तनकाल बङ्गदेशीय काव्यस्यके चित्रित
 और उपनयन सम्बन्धमें व्यवस्था दी है। बङ्गदेशीय
 काव्यस्य-सभासे प्रकाशित व्यवस्थापत्रमें उन सकल
 अध्यापकोंके नाम सुद्धित हुवे हैं। केवल व्यवस्थापक
 यत्कित ही नहों, परमहंसकल्प साधु महात्मा भी इस
 स्थानकी काव्यस्य जातिको चत्रियवर्ण मानते हैं। कहनेसे
 क्या—काश्मीरके उत्तरप्रान्तवासी श्रीश्रीनारद बाबा
 बाबानन्द स्वामी-महाराज बङ्गकी काव्यस्यजातिको
 आदान कर उसका चत्रियवर्णल और उपवीत प्रहणको
 स्थापकता घोषणा कर गये हैं। ११ वर्ष हुवे उन्होंने
 स्वयं दक्षिणराष्ट्रीय कुलीन काव्यस्य द्वय श्रीगुरु विहारी-
 शाल बसु महाशयको उपवीत-दान कर बङ्गके
 काव्यस्यको सम्मानित किया है। कुछ दिन हुवे
 वारिन्द्र काव्यस्य अध्यापक हेमचन्द्र सरकार महाशय
 और बङ्ग काव्यस्य हेमचन्द्र घोषराय मुरीके गहर-
 मठके प्रधान प्राचार्यके निकटसे उपवीत-संस्कार पाया
 था। स्वामी विवेकानन्द काव्यस्य थे। यह अपनी
 जातिको विशद चत्रियकी भांति प्रचार कर गये है।
 सुतरां सामाजिक बङ्गीय चित्रगुप्तदेशीय काव्यस्य
 निःसन्देह हिजवर्ण हैं, यह कहना ही हथा है।

पुस्तकप्रदेय।

पञ्जाबके पश्चिमप्रान्तसे विहारके पूर्वप्रान्त पर्यन्त
 सर्वत्र काव्यस्य रहते हैं। वह सभी अपनीकी चित्रगुप्तका
 वंशधर बताते और अपनी उत्पत्तिके सम्बन्धमें भविष्य-
 पुराण तथा पद्मपुराणके उपाख्यान सुनाते हैं। इसकी
 छोड़, उनके सुसूचित-सम्बन्ध पर पुस्तकप्रदेयमें निम्न-
 लिखित प्रवाद भी प्रचलित है :—

सबसे पहले यमपुरमें ११ यम राजत्व करते थे।
 उन ११ लोगमें श्रेष्ठ यमका नाम चित्र रखा। उस
 समय किसी स्थानमें इसी एक नामके तीन व्यक्तिये।
 उनमें एक राजा, एक ब्राह्मण और एक नापित था।
 राजाको काल-पूरा होने पर से जानिके लिये यमदूत
 पा पहुंचा। दूतने क्रमक्रमसे राजाको छोड़ ब्राह्मण
 और नापितको ले जा कर वहां उपस्थित कर दिया।
 यम शीघ्र ही यह भ्रम समझ सके थे। ब्रह्मा भी यह
 संवाद सुन कर बहुत ही दुःखित हुये। ब्रह्मा इस
 लिये चिन्तित हो ध्यानस्थ हो गये, जिसमें वेसा फिर
 न हो सके। उस समय भी यौन सम्बन्धसे जीवकी
 उत्पत्ति होती न थी। देवताके दुग्धसे जीव बनते
 रहे। ब्रह्माके ध्यानस्थ होनेसे सहस्र बत्सर ध्यानमें
 बीत गये। पीके ब्रह्माने देखा कि उनके निकट एक
 श्यानवर्ण पुत्रव उपस्थित था। उसके हाथमें मणि-
 पात्र और लेखनी थी। ब्रह्माने कथा—'तुम हमारी
 कायासे उत्पन्न और उसी कायामें स्थित हो। इस लिये
 तुम्हारा नाम 'काव्यस्य' है।' उसके पीके भी ब्रह्मा बोल
 उठे—'तुम गुप्तभावसे हमारे शरीरमें रहे हो। इस
 लिये हमने तुम्हारा नाम चित्रगुप्त रखा है।' चित्रगुप्त
 कीटनगर जा कर देवी चण्डिकाकी पूजा करने लगे।
 चण्डिकासे सन्तुष्ट हो उन्हें तीन वर दिये थे—१ तुम
 दूसरेके उपकारकी तत्पर रहोगे, २ तुम अपने
 कार्यमें हृदयैता होगे और ३ तुम बहुत दिन जीवोगे।
 उक्त वर प्रदान कर देवी वन्तर्हित हुयीं। फिर
 ब्रह्माने चित्रगुप्तकी यमपुरोका भार सौंपा और यौन
 सृष्टि पारम्भ करनेको पादिय दिया था। सूर्य, विष्णु,
 देवी भगवती, शिव तथा गणेश उनके उपास्य और
 ब्रह्मा दृष्टदेव हुवे। देवताओंने जब सुना—पशु
 मानसी सृष्टि न होगी, तब धर्मगर्मा सृष्टिने अपनी
 कन्या इरावतीके साथ चित्रगुप्तका विवाह कर देना
 चाहा। सूर्यके पुत्र मनुने भी अपनी सन्दरी कन्या
 सुदक्षिणाके साथ चित्रगुप्तका विवाह करनेको प्रापह
 प्रकाय किया था। ब्रह्माने दोनों की प्रायश्चा मान
 ली। इसी प्रकार चित्रगुप्तने दो कन्याओंका पाणि-
 यहण किया। इरावतीके गर्भसे चित्रगुप्तके ८ पुत्र

चौर शब्दके योगमें पञ्चमी लगती है। पञ्चम्यात्परिभिः। पा १।१।१०। चप, पाङ् चौर परि शब्दके योगमें पञ्चमी आती है। प्रतिनिधिविदाने च यकात्। पा १।१।११। प्रतिनिधि चौर प्रतिदाने अर्थमें प्रति शब्दके प्रयोगसे पञ्चमी पड़ती है। अर्कतुं च पचनी। पा १।१।१४। कर्तृशून्य ऋणः हेतुका स्वरूप होनेसे पञ्चमी आती है। विभाषा गुणैः क्रियाम्। पा १।१।१५। अस्त्रीसिद्ध गुणवाचक शब्द हेतुस्वरूप रहनेसे विकल्पमें पञ्चमी होती है। इष्यविना नानाभिन्नु तोयाभ्यतरस्याम्। पा १।१।१२। इष्यक्, विना चौर नाना शब्दके योगमें द्वितीया, द्वितीया एवं पञ्चमी विभक्ति लगती है। करणे च लोकात्कृच्छ्र कतिपयस्वात्सवनचनञ्। पा १।१।१३। अद्भ्यवाचो स्त्रीक, अथ, कृच्छ्र चौर कतिपय शब्दके उत्तर करणमें द्वितीया तथा पञ्चमी विभक्ति पड़ती है। दूरानिवाये स्त्री द्वितीया च। पा १।१।१४। दूर एवं समीपार्थ शब्दके उत्तर द्वितीया चौर पञ्चमी विभक्ति रखते हैं। पञ्चमी विभक्ति। पा १।१।१५। जिससे कुछ निकाल लिया जाता, उसमें पञ्चमी विभक्तिका प्रयोग आता है। अधिकरणका लक्षण है, — चास्योऽधिकरणम्। पा १।१।१६। क्रियाके आधारस्वरूप कर्तृ कर्मके आधारकी अधिकरण संज्ञा है। उसमें समी विभक्ति होती है। सम्यधिकरणे च। पा १।१।१७। अधिकरण चौर दूर तथा निकटार्थ शब्दके योगमें समी लगती है। यत् च भावेन भावस्य चम्। पा १।१।१०। जिसकी क्रिया द्वारा क्रियास्तर लक्षित होता, उसमें समी आता है। वही आनादरे। पा १।१।१८। आनादर अर्थमें पठो चौर समी विभक्ति होती है। सामोऽपराधिविदाद्यदस्यचिः प्रतिपुष्टे च। पा १।१।१९। सामी, ईश्वर, अधिपति, दायद, चाची, प्रतिभू एवं प्रसूत शब्दके योगमें पठो चौर समी विभक्ति लगती है। आशुक्रुशब्दात् प्रायेणोपपत्। पा १।१।२०। आशुक्रु चौर कुशल शब्दके योगमें तादर्थ्य अर्थसे पठो तथा समी विभक्ति होती है। वने च निगरचम्। पा १।१।२१। जाति, गुण, क्रिया चौर संज्ञा द्वारा एकदेश मात्र जिससे प्रथक् क्रिया आता, उसमें समी विभक्तिका प्रयोग आता है। आशुक्रुशब्दात् प्रायेणोपपत्। पा १।१।२२। आशु चौर निपुण शब्दके योगमें

पूजा अर्थसे समी विभक्ति लगती है। किन्तु उसमें प्रति शब्दका प्रयोग नहीं होता। प्रथितोऽनुपवासात् वतीका च। पा १।१।२३। प्रथित एवं अनुक शब्दयोगमें द्वितीया तथा समी विभक्ति रखते हैं। नचने च लुपि। पा १।१।२४। अनुसत् नचत् शब्दमें अधिकरण अर्थ पर द्वितीया चौर समी विभक्ति लगायी जाती है। समोपचयी कारक मध्ये। पा १।१।२५। शक्तिप्रयका मध्यवर्ती जो कालवाचक एवं अधवाचक शब्द रहता, उसमें पञ्चमी चौर समीका प्रयोग पड़ता है। यकादधिकं यत् वेचत्परत्नं तत्र समी। पा १।१।२६। जो जिससे अधिक अथवा ईश्वर ठहरता, उसमें समीका प्रयोग लगता है। उसकी छोड़ साधु वा पसाधु शब्दके प्रयोग चौर कर्मपदयोगसे निमित्त्वाचक शब्दमें भी समी विभक्ति होती है। यथा—

“धर्मेषु शेषिने इति दन्वोर्धनि कृचरम्।
किञ्चु वरती इति सोषि पुत्रवकी इतः ॥”

उक्त संज्ञक कारकोके मध्य उभयकी प्राप्ति-सम्भावना रहनेसे परवर्ती कारक ही लगता है। यथा—

“अपादान-अपदान करवाकारकं चाम्।
अतुं योग्यमपानतो परत्वेव प्रवर्तते ॥”

सम्बन्धकी कारकता नहीं होती। उसीसे यह कारकोमें गिना भी नहीं जाता। सम्बन्ध अर्थमें चौर कारक व्यतीत अन्य अर्थमें पठो विभक्ति होती है। पठो मी। पा १।१।२७। कारक चौर प्रातिपदिक अर्थ व्यतिरिक्त स्वकीय स्वामिभावादि सम्बन्धका नाम शेष है। उसीमें पठो विभक्ति होती है। उक्त कारक विभक्ति-समुच्चकी मति अर्थ विशेषमें भी पठो विभक्तिका विधान है। यथा— वही हेतुपठो। पा १।१।२८। हेतु शब्दके प्रयोगमें हेतुवाचक चौर हेतु शब्द उभय स्वरुप पर पठो विभक्ति होती है। अर्कतुं च लोकात्। पा १।१।२९। हेतु शब्दके प्रयोगमें सर्वनाम शब्द चौर हेतु शब्दमें पठो विभक्ति लगती है। वेकालपर्यं यत्पठेन। पा १।१।३०। अंतसुच् अर्थमें कप्रत्ययान्त शब्दके योगसे पठो विभक्ति होती है। पठो विभक्ति। पा १।१।३१। एतत् प्रत्ययान्त शब्दके योगमें द्वितीया चौर पठो आता है। दूरानिवायेः वचत्परनञ्।

गणेश कायस्य—विद्यगुप्तपुत्र विमानु या वीर्यमानुके
सन्तान कहते हैं। विमानुके सपत्न्याकाल शरीरमें
वर्त्मक उत्पन्न हुआ था। उसीमें उर्जा और उसके
संगधरोनि 'वाल्मीक' नाम पाया।

उनमें तीन श्रेणो हैं। बम्बईमें पानिवासे
'बम्बेया', कच्छमें पानिवासे 'कच्छी', और सुराष्ट्रमें
पानिवासे 'सौरठी' कहते हैं। वाल्मीकींमें कुछ कुछ
दाक्षिणात्यका आचार-व्यवहार भी प्रचलित है।

गणेश—कायस्यीका नाम मयूराके वाससे पड़ा है।
वह अपनको विद्यगुप्तके पुत्र आरुका संगधर बताते
हैं। उनमें भी तीन श्रेणियां देख पड़ती हैं—देह-
जयी, कच्छी और लचोली। दिल्लीमें रहनेवाले
'देहजयी', कच्छमें रहनेवाले 'कच्छी' और योधपुरमें
रहनेवाले 'लचोली' नामसे परिचित हैं। लचोलीयोंकी
पक्षीकी भी कहते हैं। उनके कथनानुसार योधपुर
या मरुदेशमें पूर्वकालकी पञ्चनामक एक राजा
थे। उसीसे पक्षोनी नाम निकला है। फिर
किष्कीके मतमें पञ्चान्त देशसे 'पक्षोनी'
बना है।

शंभर—अपना परिचय विद्यगुप्तपुत्र विमानुके नामसे
देते हैं। उनका कहना है कि इन्द्राजयंभीय राजा
शूरसेनने यज्ञकाल विमानुको साहाय्य करनेसे 'सूर्य-
ध्वज' उपाधि दिया था। उनका आचार-व्यवहार
कुछ कुछ ब्राह्मणोंसे मिलता है।

उपबन्ध—कायस्य विद्यगुप्तपुत्र पत्नीन्द्रियके सन्तान
हैं। उक्त श्रेणोके कायस्य कहा करते कि जितेन्द्रिय
(पत्नीन्द्रिय) परमधार्मिक रहे। वह प्रति वर्ष
अपने भार्याका बुलाकर उनके घेरे धो देते थे। उनका
काल पूरा होने पर यमदूतोंने जा कर पूछा—'व्या-
प्य अप्य स्वर्गो जगाम आहते है।' जितेन्द्रियने उत्तर
दिया कि वह पश्चिमस्व स्वर्गो जगाम आहते थे। उसी
समय स्वर्गसे विमान उतर पड़ा। जितेन्द्रिय विमान
पर चढ़ कर पश्चिमोक्त पट्टे थे। पश्चिमोक्तसे प्रजा-
पतिभोक्त होते हुए महाप्रोक्तमें जाकर उद्योनि
अपना सुखभोग किया। अपना गुप्त लक्षण
करनेसे ही उनके संगधरोनि 'कुलशेठ' उपाधि पाया

है। उनमें 'करुणार' और 'श्रेणार' दो श्रेणियां हैं।
उक्त दानो श्रेणियोंमें पानाहार प्रचलित नहीं।

शरद—कहते कि नर्मदातीर कर्णोनि नामक एक
ग्राम है। उसी ग्राममें उनके पूर्वपुरुषोंके ग्राम
करनेसे 'करण' नाम पड़ा है। उनमें भी दो
श्रेणियां हैं—गयावान और तिरहुतिया। गयामें
गयावाल और दिपुतसे तिरहुतिया गावाका नाम-
करण हुआ है। कारण कायस्य प्रायः उड़ीसामें ही
रहते हैं।

शेर—कायस्य नाम गोड़देशकी प्राचीन राजधानी
गोड़से निकला है। वह कहते कि उनके पूर्व-
पुरुष भगदत्त कुश्चेवके महासमरमें निहत हुए थे।
गोड़कायस्योंमें दो कान्ठिन या कामसेन नामक एक
राजकुमार रहे। कायस्योंमें आज भी उनकी पूजा
होती है। कायस्य-कन्थाके विवाह-काल पदीपके
कलसमें एक मूर्ति पड़ित की जाती है। उसीका कान्-
सेनकी मूर्ति मान लोग पूजा करते हैं। गोड़कायस्य
कहते और उनके कुरसीमामेमें भी पढ़ते कि गोड़ाधिप
सेनराल उक्त कायस्यवंशीय ही थे। सुहृत्पद-
यज्ञतियार तुर्कने कौमलकर्मसे सप्तमनियाके निकट
यज्ञराज्य अधिकार किया था। उसीसे अनेक गोड़-
कायस्य युक्तप्रदेश भाग गये। हिमाचलवस्य सुप्रेत,
मन्चे प्रभृति स्थानके राजा आज भी अपनेको गोड़-
राजवंशीय बताते हैं। प्रकृत प्रस्तावमें गोड़कायस्यवंशीय
होते भी आजकल वह अपना परिचय गोड़राजपूतके
नामसे देते हैं।^{१०} बसवन् जय यज्ञान पट्टे, तब
वहाँके कायस्य-राजा और लक्ष्मीन्दर उनके पक्षे
सहायक हुए। उनके पुत्र मसीर-उद्-दौनने गोड़से
बहुसंख्यक कायस्योको बुलाकर इलाहाबाद नृपके
अन्तर्गत मिजामाबाद, भदोई, कोली, ग्रंपी और
बिरियाकोट प्रभृति स्थानोंमें कानूनगोईका पद प्रदान
किया था। उनके सभी संगधर गोड़कायस्य कह-
नाते हैं।

• Elliot's History of the N. W. P., ed. by Beames,
vol. II, p. 107; Sir Lepel Griffin's Panjab Rajahs; and
Crook's Tribes and Castes of the N. W. P., Vol. III,
p. 125.

वहाँके भटनागरोंने गौड़ोंसे पहले ही सुसलमानों की सरकारके अधीन कार्यको स्वीकार किया था। फिर सुसलमानोंके संस्वरसे गौड़कायस्थ भी उनमें मिल गये। भटनागर वाममार्गी रहे। उस समय उनके साथ सम्मिलित होने पर गौड़कायस्थ भी वाममार्गी बन गए और भैरवीवक्रमें पूजा करने लगे।

गौड़कायस्थोंने जब भटनागरोंको आहार करनेके लिये निमन्त्रण दिया, तब भटनागरोंने तो उनके घर जा कर खा लिया, किन्तु पीछे जब भटनागरोंने गौड़कायस्थोंको अपने घर खाने पीनेके लिए बुलाया, तब बहुत थोड़े लोगोंको छोड़ कर अधिकांश गौड़ोंने निमन्त्रणमें जानसे अपना सुँह छिपाया; फिर जिन लोगोंने भटनागरोंके घरमें जा कर खाया था, उन्हें समाजच्युत भी ठहराया। इससे भटनागर बहुत चिढ़े थे। उस समय दिल्लीमें नहोर-उद्-दीन् सम्राट् रहे। गौड़ और भटनागर उभय श्रेणीके कायस्थ उनके अधीन कर्म करते थे। दिल्लीके भटनागरोंने जब सुना कि उनके प्रातिकुटुम्बके घर गौड़कायस्थोंने आहार किया न था, तब उन्होंने गौड़ोंके घर खाने-वाले सकल भटनागरोंको समाजच्युत कर दिया। बात ठहर गयी—गौड़ जितने दिन उनके घरमें न खायेंगे, उतने दिन वह भी समाजमें मिलाये न जायेंगे। इस पर समाजच्युत भटनागरोंने सुसलमान-सम्राट्के निकट नालिश की थी। सम्राट्को गौड़कायस्थोंके प्रत्याय आचरणका परिचय मिला। उन्होंने दिल्लीमें रहने-वाले गौड़ों और भटनागरोंको एकत्र आहार करनेके लिये आदेश दिया था। उस समय वाष्प ही दिल्लीवासी अनेक गौड़ों भटनागरोंके घर जा कर खा लिया। किन्तु कई गौड़ भटनागरोंके घर जा कर खानेके भयसे दिल्ली छोड़ कर चले गए। उनमें एक पूर्णगर्भा रमणो रहें। किशो ब्राह्मणके घर आय्य लेने पर उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। बड़ा होने पर उसके साथ ब्राह्मणने अपनी कन्याका विवाह कर दिया था। अपरापर गौड़ वदायूँ जिलेमें जा कर रहने लगे।

भटनागरोंके घरमें भोजन करनेवाले गौड़कायस्थ गौड़भटनागरी नामसे ख्यात हुए। जो वदायूँ भाग

गये थे, दिल्लीके भटनागरोंने उनको भी इत्तान्त सम्राट्से कह दिये। वदायूँके उन्हें पकड़ बुलानेके लिये आदमी भेजे थे। उस समय उन्होंने ब्राह्मणोंका प्राय्य लिया। राजपुरुष जब पकड़नेके लिये पहुँचे, तब ब्राह्मणोंने उन्हें अपना आकांक्ष बताया था। किन्तु उससे राजपुरुषोंको विश्वास न हुआ। उस समय ब्राह्मणोंको गौड़कायस्थोंके साथ एक पात्रमें खाना पड़ा। इसी प्रकार गौड़कायस्थ वहाँ बच गये। अभियुक्तोंको निकाल न सकने पर वदायूँके विरक्त ही भटनागरोंका आवेदन अग्रगण्य किया था। उन्हींके साथ दूसरे भटनागरोंने भी उन्हें समाजच्युत कर दिया। उक्त समाजच्युत भटनागर गौड़भटनागर और दूसरे (गौड़ोंका अन्न ग्रहण न करनेवाले) विग्रह भटनागर समझे गये। इसी प्रकार गौड़कायस्थ चार श्रेणियोंमें बँटे थे—१म आदि गौड़ हैं। वह ब्रह्मणके सीमान्तपर मित्रामावाद, जौनपुर प्रभृति स्थानोंमें कानूनगोईका पद भाग करते थे। २य भटनागरोंके घर खानेवाले, श्य ब्राह्मणोंके घर आय्य लेनेवाले और ४थं ब्राह्मणएवम्में पुत्रवध-कारिणी रमणोको समाजमें मित्रा लेनेवाले हैं। उक्त चारो श्रेणियोंमें पहले आदान-प्रदान बन्द रहा। फिर वदायूँके गौड़ मित्रामावादमें जा कर रहे और वदायूँके ब्राह्मण उनके पुरोहित बने। २य श्रेणीके गौड़ोंने श्य श्रेणीवालोंके साथ मिलनेकी चेष्टा की थी। पहले कोई फल न निकला। प्रथमपक्षी वदायूँके ब्राह्मणोंकी चेष्टासे हीजाहोड़ी मिट गई। यहाँ तक कि उभय श्रेणियोंमें विवाहके समय आदान-प्रदान चलने लगा। किन्तु ४थं श्रेणी बहुतदिन कन्यादान करनेको समत न हुई। अन्तमें श्य श्रेणीकी चेष्टासे ४थं श्रेणी भी दक्षमें मिल गयी। १म श्रेणी उक्त तीनों श्रेणियोंको कुलमें हीन समझ उतने दिन अन्नग रही थी। अन्ततः जब उसने देखा कि तीन श्रेणियां परस्पर मिली हैं, तब वह भी क्रम क्रम स्वयं मिलकर एक हो गयी। आज कल चारो श्रेणियोंमें आदान-प्रदान चलता है। गौड़-

प्रतिमूर्ति 'गुमटा' कहाती है। स्थानीय सुद्र पर्वत प्रायः ३० हाथ ऊँचा होगा। इसी पर्वतपर गौमठ स्थापित है। यह मूर्ति ११४८ गजकी बनी थी। जैनोके चन्दान्यासमन्दिर भी इसी पर्वत पर बने है। इस नगरमें एक प्रकाण्ड पर्वतखण्ड है। उसका तलदेश प्रगस्त है। ऊर्ध्व दिक्की पर्वतखण्ड क्रमशः सुस्त पड़ गया है। नाम ध्वजस्तम्भ है। हिन्दुवोंके चानलदेवका मन्दिर देखने योग्य है। यहाँ चावलकी बड़ी धादत है।

कारकविभक्ति (सं० स्त्री०) कारकशक्तिबोधिका विभक्ति; मध्यपदसो०। कर्मादि कारकबोधक द्वितीया प्रथति विभक्ति।

कारकहेतु (सं० पु०) प्रधान कारक, खास सबब।

कारकुचीय (सं० पु०) कारकुचि-छ। १ शास्वदेश, एक मुल्ल। यह हिन्दुस्थानके उत्तरपश्चिम हिमालय गिरिके प्रान्तभागमें अवस्थित है। २ शास्वदेशवासी।

कारकुन् (फ्रा० पु०) १ स्थानापन्न, एवजी। २ प्रबन्धकर्ता, कारिदा।

कारखाना (फ्रा० पु०) १ कार्यालय; कामकी जगह। २ व्यवसाय, धन्दा। ३ दफ्तर, तमाशा। ४ व्यापार, काम।

कारगर (फ्रा० वि०) १ लाभकारक, सुफीद। २ प्रभावोत्पादक; बसर डालनेवाला।

कारगुजार (फ्रा० वि०) कर्तव्य पूरा करनेवाला, जो कामको अच्छी तरह करता हो।

कारगुजारी (फ्रा० स्त्री०) १ कर्तव्यपालन, कामको अच्छी तरह करनेकी हालत। २ पाठ्य, होमियारी। ३ यत्नश्रमता, काम करनेकी पादत।

कारधोष (फ्रा० पु०) १ पट्टा, सक्कीका कोई खोटा। इस पर पन्न तान जूरोजी या कूसीदा बनाते है। २ जूरोज, कूसीदिका काम बनानेवाला। ३ कूसीदा या गुलकारी। यह जूरीके तारोंसे सक्कीके खोखटे पर निकाला जाता है।

कारधोषी (फ्रा० स्त्री०) १ जूरोजी, कूसीदा; गुलकारी। (वि०) २ कूसीदेके सुताजिक।

कारण (सं० वि०) कारत्वात् क्रियातो जायते; कार-जन-

ड। १ क्रियाजोत, केलसे पैदा। (कारत्वात् भवः करजस्य इदं वा, करज-ण्य) २ नखजात, नाखूनसे निकला हुआ। ३ नखसम्बन्धीय, नाखूनके सुताजिक। (पु०) ४ गजधावक, बन्धा हाथो।

कारण (हिं) कां० देको।

कारण (सं० वि०) करणस्य इदम्, करण-ण्य।

१ करणफलजात, करोंदेके फलसे निकला।

२ करणसम्बन्धीय, करोंदेसे सरोकार रखनेवाला।

कारणतेल (सं० स्त्री०) कारणत्वात् जातं तैलम्, मध्यपदसो०। करणफलजात तैल, करोंदिका तैल। यह तीक्ष्ण, लघु, उष्णवीर्य, कटुरस, कटुपाक, मृदक धीर वायु, श्रष्णा, कृमि, कुष्ठ, प्रमेह तथा शिरोरोगनाशक है। (इहव)

कारणसुधा (सं० स्त्री०) करणचूर्ण, करोंदेकी सुकनी। यह रुचिपद होती है। (वैद्यकविषय)

कारटा (हिं० पु०) करट, कौवां।

कारटन (सं० पु० Cartoon) हाथोत्पादक चित्र, इसीकी तबवीर। यह कल्पित एवं उपहासपूर्ण रहता और गूढ़ रहस्य प्रकट करता है।

कार्ड (सं० पु० Card) १ पत्र, चिट्ठी, कांगज़। २ क्रीडापत्र, ताम।

कारण (सं० पु०-स्त्री०) कार्यते चनेन, क-णिच्-स्युट्। १ हेतु, सबब। जिसके व्यतीत कार्य निपन्न नहीं होता, उसीका नाम कारण है। उसका संस्कृत पर्याय—हेतु, बीज, निमित्त और प्रत्यय है।

कार्यके पथवहित पूर्वक्षण कार्याधिकरणमें लिप्त वस्तुका समाव उपलब्धि नहीं पाता, वही वस्तु अन्यथा सिद्ध्यिये हीमेंसे कारण कहाता है। अथवाविधि देको। उदाहरणमें घटके प्रति सृत्तिका है। नैयायिकोंने समवायी, असमवायी और निमित्त भेदसे कारणके तीन प्रकार विभाग किये हैं। कार्य जिससे समवेत हो निकला करता, उसका नाम समवायी कारण पड़ता है। जिस प्रकार वस्त्रके प्रति तन्तु है। समवायी कारणसे समवेत कारणको असमवायी और उक्त कारणइससे भिन्न कारणको निमित्त कारण कहते हैं। जैसे वस्त्रके प्रति तन्तुवाय होते हैं।

कायस्थोंकी मायावीर्या नाम खर, दूमर, बडामो, टिन्नीमोमानी चौर बदायूनी है।

या हिन्दू-राजत्व था मुसलमान-शरकार दोनों समय कायस्थ साम्प्रदायिक या राजसमाज्य मेघकहा पटमोग करते थे। उनमें पनेक मंडूत दन्दकार चौर सुपण्डित प्राविभूत हुये। मुसलमानोंके अधिकारमें पयिमके बहुतसे कायस्थोंमें नैतिक-विभागका भी उद्य पद पाया था। उनमें अकबरके राजस-मन्त्रि टोडरमल, महाराज नवलराय, पटनाके गामनकर्ता राजा रामनारायण प्रभृतिका नाम उल्लेखयोग्य है। आजकल भी कायस्थ उटिम गवर्नमेण्टके अधीन था गिष्वा-विभाग था न्याय-विभाग (कचहरी-भदासत) सर्वत्र उद्य प्रासन चौर मद्रान नाम करते पाते हैं। आजकल मुसलमनके समस्त कायस्थ एकताके सूत्रमें पाबड होनेकी चेष्टा करते हैं। युद्धप्रदेगमें प्रायः साठे पांच लाख कायस्थोंका वाम है।

राजपूताना।

राजपूतानेके कायस्थ प्रायः अपनेकी राजधाना करते हैं। मुंदीमें माथुर चौर भटनागर कायस्थोंका वाम है। मारवाड़में कायस्थोंकी 'पवौकी ठाकुर' कहा जाता है। राजपूतानेमें अजमेरी, रामसरी चौर केकरी तीन श्रेणियाँ मिलती हैं। उनमें सभी ब्रह्मचर्य धारण करते हैं। फिर अग्राय भोजन करनेवालोंका दक्षमूत्र सतार उासा जाता है। वहाँ सभी कायस्थ अपनेकी सन्धिय वतानेके लिये तैयार हैं।* उनका पारार-पवहार अधिकतर युद्धप्रदेगके कायस्थों-सेवा है। राजपूतानेके कायस्थोंमें बहुतोंने राजद्वारमें नैतिकहस्तिकी भी अवसम्पन किया है।

विहार।

विहारके कायस्थ अपनेकी चित्तगुप्तका प्रकृत संश्रुत बनाते हैं। उनमें प्रवाद है—मन्ययुगमें जब मय देवता उद्य करने लगी, तब यम मद्रामे बोल पडे—'पितामह! इन्द्रादि प्रकृत दिक्पान हैं। पचच उके टहादि खरनेका समय मिल जाता है।

किन्तु हमने ऐसा था पपराध किया है कि हम अपने कार्यभारके एक सुहृत्के लिये भी छोड़ नहीं सकते। आप हमें उद्य करनेका उपाय बता दीजिये।' मद्राने यमकी उक्त प्राथनाके अनुसार अपने शरीरमें बित-गुप्तकी उत्पन्न करके कहा था—'यह महाभाग साहाय्य करके तुम्हारे कर्कका पचमरकाल ठहरा देंगे चौर सबके कर्मोकार्मकी वर्धना करेंगे। उसकी अनुसार तुम स्वर्ग-नरकादिकी व्यवस्था कर सकागे।'

पयिमी कायस्थोंकी भाति विहारके कायस्थोंमें भी हाटय गाणा है। उक्त हाटय गाणाओंके पादि पुद्दय चित्रगुप्तके संग्रधर थे। विहारके कायस्थ आज भी उपवीत धारण करते हैं। कारण उनके कयना-नुमार चित्रगुप्तने सोपवीत जन्म लिया था। उनकी हाटय गाणाका नाम है—पहिठाना, पम्बठ, वाष्ठीक, गौड़, कुलयेट, माथुर, निगम, गकसेन, श्रीवास्तव, सूर्यध्वज चौर करण। उक्त हाटय गाणा-वोंमें पहिठानोंका पादिनिवास जोनपुर है। पटना चौर सिद्धत पम्बठमें पम्बठ गाणाके लोग ही अधिक देख पड़ते हैं। वाष्ठीक गाणाका पादि वाम खान गुजरात है। पम्बठ, श्रीवास्तव चौर करण एक ही कुक्षी तन्वजू पिया करते हैं। करण चौर पम्बठ मद्रापप्रसुत पत्र एक जगह बैठकर पा सकते हैं।

निगम गाणाके कायस्थ विहारमें अधिक देख नहीं पड़ते। सूर्यध्वजोंके पधिदेवता सूर्य माने जाते हैं। माथुर, गकसेन, श्रीवास्तव चौर भटनागर अपनेकी चित्रगुप्तकी मयमा पत्नीका गर्भजात वंश बताते हैं। विहारके गौड़ कायस्थोंकी विग्राम है कि बह्मन्के सेन राजा उर्दोंकी श्रेणीके पन्तगत रहे। श्रीवास्तव गाणाके दो श्रेणी विभाग हैं—खर चौर दूमर। खर श्रेणीके लोग पन्थाम्य श्रीवास्तवोंमें श्रेष्ठ होते हैं। उद्य अपनेका 'वाडे' बताते हैं। खर चौर दूमर लोगोंमें पाना-द्वार तथा पादान-प्रदान नहीं चलता। गकसेन गाणामें भी उमी तरह श्रेणी विभाग है। माथुर, भटनागर चौर गकसेन परस्पर एक दूसरेका पचसपनादि उद्य करते हैं।

वातचक्र-दर्शनमें कारण भी प्रकारके विभक्त

है,—

"कारण-विभक्तिकारणविभक्तिकारणः।"

विश्वकर्मणः कारणं यथा कर्मम्।"

(योगसूत्र २।१८ सूत्रवाच्य)

कारण तो प्रकारका है—उत्पत्ति, स्थिति, पश्चि-
यक्ति (प्रकाश), विचार, ज्ञान, प्राप्ति, विच्छेद,
पक्षय और धारण। कार्यके भेदमें उक्त नवविध
कारणकी विभिन्नता देण पड़ती है। यथा—उत्पत्ति
ज्ञानका कारण मन, शरीरकी कृत्तिका कारण पाह्वार,
दृष्टकी पश्चिद्यक्तिका कारण आलोक, पक्षनीय वस्तुके
विचारका कारण चक्षु, चक्षुके प्रत्यय (ज्ञान) का
कारण धूमपान और विचारकी प्राप्तिका कारण
योगाङ्गानुष्ठान है।

योगाङ्गका अनुष्ठान ही पशुचिके वियोगका
कारण, वस्तुकारी सुवर्णकार कुत्सलदण सुवर्णका
पक्षय कारण और ईश्वर इष्ट जगत् तथा दक्षिण-
मसूह शरीरकी कृत्तिका कारण है।

पार्श्विकोंके कथनानुसार कारण नामका कोई
पदार्थ नहीं होता। कारणके सम्बन्ध व्यतिरेक ही
नव पदार्थ उत्पन्न होते हैं। वस्तुतः उसकी बात
बनसकती है। यदि कारणका अस्तित्व न रहते भी
कारणकी उत्पत्ति चलती, तो कार्यकी सर्वदा विद्य-
मानता उपलब्ध हो सकती है। जिन प्रकार
मृत्तिकादि समुद्रय मिलनेमें घट बनता, उसी प्रकार
उसके पूर्व भी घट बन सकता है। फिर कारणका
अस्तित्व न माननेमें परिष्कृत-गत संमर्षादि दूर करनेके
मनमें मद्दका प्रयोगादि भी निष्फल हो जायगा।
जिन वस्तुके न रहनेमें जिन वस्तुकी विद्यमानता आभ
कारणमें कठिणता उठते किंवा जिन वस्तुके रहनेमें
जिन वस्तुकी विद्यमानता घटते, परिष्कृत उन वस्तुको
उसी वस्तुका कारण बताते हैं। कृत्तिकाका अभाव
हीनेमें घटकी विद्यमानता नहीं और कृत्तिका
घटकी विद्यमानता हीनेमें घटका कारण टूटती
वस्तु निव्य हो सकती है।

नामक पदार्थ स्वयम् मानना चाहिये। कथाद प्रकृति
दार्शनिक परमाणुकी साक्षय्य जगत्का उत्पादन
(समर्षादि-कारण) बताते हैं। उनके मतमें परमाणु
सकल परस्पर संयुक्त होनेमें एक एक मद्ददवयवी उत्पन्न
होता है। किन्तु वैदिकान्तक उभे नहीं मानते और
कथादके मत पर दीय जगती है—निरवयव परमाणुमें
कभी ऐकदेशिक संयोग नहीं हो सकता। किन्तु
वस्तुका कोई अवयव नहीं, उसका एकदेश होता
पसभव है। सुतरां उनमें पारोप्याप्तिक (ऐक-
देशिक) संयोग कैसे लग सकता है। उक्त विद्यालय
ठहर जानेमें परमाणुके संयोगका होना पसभव है।
फिर परस्पर संयुक्त परमाणुके मद्ददवयवी कार्यकी
उत्पत्ति भी नहीं हो सकती। सुतरां कार्य समुद्रय
पञ्चान द्वारा परब्रह्ममें कल्पित-वैसा मानना पड़ेगा।
रक्षुमें सर्वकी भांति ब्रह्ममें भी पञ्चान द्वारा कार्य-
समूहकी कल्पना की जाता है। रक्षुविषयक ज्ञान
द्वारा पञ्चानकी निवृत्ति होनेमें जैसे कल्पित सर्व देख
नहीं पड़ता, वैसे ही ब्रह्मज्ञानमें तदीय पञ्चानकी
निवृत्ति होनेमें समुद्रय जगत्का मयव मिटा करता
है। जगत्की कल्पनामें ब्रह्म पश्चिद्योग है। उभेमें
वैदिकान्तक ब्रह्मकी जगत्का उत्पादन (समर्षादि)
बताते हैं।

वास्तविक मतमें सत्व-रजः-तमोगुणान्तिका प्रकृति
ही मूल कारण है। उसमें भी वैदिकान्तिकोंके कथना-
नुसार चेतनका साहाय्य न मिलने पर अचेतन
प्रकृतिमें कैसे कार्यकी उत्पत्ति हो सकती है। सुतरां
वास्तव्यादिकोंका प्रकृति-कारणवाद अममूलक अनुभूत
होता है।

पार्श्विक वासिमाचक (चन्द्रपरिमाणु) को
कारण नहीं मानते। उनके मतानुसार परिमाणमान
जगत्मान जातीय उत्पन्न परिमाणका कारण है।
उत्पत्ति जिन परिमाणमें वा परिमाण उपलब्ध, वही
उत्पन्न परिमाण कारणोद्भूत परिमाणमें उत्पन्न
होनेमें समुद्रपरिमाणमें समुद्रयक प्रकृति-
अपेक्षा उत्पन्नहोता होता है।
कारण मानने पर

पूर्वोक्त द्वादश शाखाके सासा कायस्थोंको छोड़ दूसरे कई प्रकारके नीच कायस्थ भी होते हैं। किन्तु वृद्ध आप ही अपनीको कायस्थ बताते, अपर जातीय वा पूर्वोक्त द्वादश शाखाके कायस्थ उन्हें कायस्थ कहना नहीं चाहते। सारन जिलेके सेवन नगरमें कितने ही दरजी और कितने ही ठेकेदार भी कायस्थ-नामसे अपना परिचय देते हैं। किन्तु उनके साथ सासा कायस्थोंका कोई संस्व नहीं। बहुतेसे लोग अनुमान करते कि वृद्ध वस्तुतः कायस्थ हैं, फिर भी नीच काम ग्रहण करनेसे समाजव्युत्त हो एकवारगी ही भिन्न श्रेणी समझे जाते हैं। कारण आज भी जो सासा कायस्थ वंशानुक्रमसे गांवके प्रठवारी होते आये हैं, बहुतेसे लोग उनके घर आदान-प्रदान करना नहीं चाहते। प्रठवारी, कानूनगो, खजौरी, पांडे वा वृद्धोंके उपाधिधारी कायस्थ शतगुण धनी वा सत्-कर्मशास्त्री होते भी सामाजिक मर्यादामें हीन समझे जाते हैं।

युक्तप्रदेश और विहारके कायस्थोंका धर्मकर्म प्रायः मिलता जुलता है। किन्तु देशभेदसे आचारमें भी कुछ भेद पड़ गया है।

विहारी-कायस्थानि वैष्णव, शैव, शाक्त, कबीरपन्थी, नानकशाही प्रभृति हुवा करते हैं। उनमें शास्त्रोंकी ही संख्या अधिक है। आठद्वितीयाके दिन वृद्ध चित्र-गुप्तकी पूजा करते हैं। औपसमी अर्थात् वसन्त पंचमीकी द्वावात कचम पूजते हैं।

वृद्धदेव ।

वृद्धालमें प्रधानतः चार श्रेणियोंके कायस्थोंका वास है। वृद्ध स्थानभेदसे उत्तरराष्ट्रीय, दक्षिण-राष्ट्रीय, वृद्ध और वारिन्द्र कहलाते हैं। उक्त चारों श्रेणियां अपनी परिचय चित्रगुप्त-सन्तानके नामसे दिया करती हैं। उत्तरराष्ट्रीय कुलग्रन्थमें लिखा है—

“चित्रगुप्तः क्रियोपेतः सर्वशास्त्रेषु पुराणैः ।
 सेनो पुत्रादकाः पृथुः शं सर्वस्यचित्रः सुताः ॥१॥
 मीमांस्त्री मायु रथैव वृद्धसेनो भद्रनामकः ।
 चन्द्रवर्ष श्रीवास्तवः कर्षाधिकर्ष उच्यते ॥१॥
 पुत्राचार्येणकानाच ये सः कर्षः प्रकीर्तितः ।
 श्रीकृष्ण इति धर्मः सः विद्याभो मुनि सर्वतः ॥१०॥

तत्र ऋषेः समुद्रगाः पञ्चविंश महात्मनाः ।
 वास्तवोऽपिनादिवरः सोमः शौकालिनस्तथा ॥१॥
 पुरुषोत्तमो मीमांस्यः विष्णुमित्रः सुदर्शनः ।
 काश्यपे देवनामा इति ते कथितं सुदा ॥” १८

(पटकरीकी उत्तरराष्ट्रीय कुलदेविका)

अर्थात् क्रियावान् चित्रगुप्त सर्वशास्त्रमें पूजित हुये थे। उनके वंशधर सेनो रहे। इस पृथिवी पर सेनोके सर्व-सम्पत्तिशाली भाट सन्तान हुवे। उनका नाम गौड़, माधुर, शकसेन, भटनागर, चम्पवट, श्रीवास्तव्य, कर्ण और उपकर्ण था। पाठोंमें कर्ण श्रेष्ठ रहे। उषीसे वृद्ध इस पृथिवी पर श्रीकर्ण नामसे विख्यात हुवे। उनके वंशमें पांच विद्व महात्मावोंने जन्मग्रहण किया था। पांचोंका नाम वास्त्यगोत्र बनादिवर, शौकालिन सोम, मीमांस्य पुरुषोत्तम, विष्णुमित्र सुदर्शन और काश्यप देव रहा।

उत्तरराष्ट्रीय-कुलाचार्य पद्मानमी कारिकामें कहा है—

“क सर्वंभूये चित्रगुप्तः पञ्चविंश महात्मनाः ।
 वास्तव मीमांस्यदिवरः सोमः शौकालिनस्तथा ॥
 पुरुषोत्तमो मीमांस्यः विष्णुमित्रः सुदर्शनः ।
 काश्यपो देवनामा च इति ते कथितं सुदा ॥
 सर्वंभूयोऽपि वयो देवदासो महात्मनो ।
 चन्द्रवर्ष गौडवः पत्नो मितकुले सुदर्शनः ॥”

श्रीकर्ण-वंशकी श्रेणिसे पांच महाजन पाविभूत हुवे। उनमें वास्त्यगोत्र बनादिवर (मिंछ), शौकालिन गोत्र सोम (घोप), मीमांस्य गोत्र पुरुषोत्तम (दास), विष्णुमित्र गोत्र सुदर्शन (मित्र), और काश्यप गोत्र देव (दत्त) थे। दत्त तथा दास श्रव्यवंशीय और मित्रकुलमें सुदर्शन चन्द्रवंशीय भी कहलाते हैं।

वृद्धकायस्थकारिकामें लिखते हैं—

“चित्रदेवसुतापाटी समावन् वै महात्मनाः ।
 तेषाम् कल्पयामास कश्यपो लातकर्म च ॥
 एतेन बहुधा भवति मीमांस्यो मीमांस्येताः ।
 तेषां मध्ये प्रवरश्च एकविंशतमः सुतः ॥
 सर्वेषाम् चन्द्रवर्षश्चाप्येकसुदर्शनकः ।
 रविदासो रविवयो रविधोरश्च गौडकः ॥

अणुपरिमाणसे उत्पन्न परिमाण अणुपरिमाणकी अपेक्षा छोटा संग सकता है। जैसे महत् परिमाण जन्तु परिमाणकारणभूत परिमाणकी अपेक्षा महत्तर रहता, वैसे ही अणुपरिमाणजन्तु परिमाण भी अणुतर ठहरता है।

साधारण और असाधारण भेदसे कारण दो प्रकारका होता है। ईश्वरच्छा, काल, पट्टर, उद्योग और प्राग्भाव कई साधारण अर्थात् समुदाय कार्यके कारण हैं। उसीसे उन्हें साधारण कारण कहते हैं। फिर जो विशेष कार्योंके कारण दिखाते, वह असाधारण कारण कहते हैं। जैसे आन्वहृत्तके प्रति आन्वहीज है। आन्वहीज केवल आन्वहृत्तकी उत्पत्तिके ही कारण है, कण्टकहृत्तकी उत्पत्तिके नहीं। सुतरां उक्त बीज उक्त हृत्तके असाधारण कारण सिद्ध हुये।

२ साधन, वसीला। यह नैयायिकोंका मत है। ३ कर्म, काम। ४ कारण, काररवाई। ५ वध, कृत्न। ६ भादि, मूल, शुरु, जड़। ७ प्रमाण, उद्युत। ८ इन्द्रिय। ९ शरीर, निष्क। १० हेतु, वज्र। ११ सङ्घ, मकसद। १२ उत्तरविशेष, कोई जवाब। १३ मध्यपानविशेष, एक शरांशखोर। तान्त्रिक तन्त्रानुसार पूजादि कर मध्यपान करते हैं। उसीका नाम कारण है। १४ कायस्थ, कायव। १५ वाद्यविशेष, कोई बाला। १६ गानविशेष, किसी किष्कका गाना। १७ विष्णु। १८ शिव।

कारणकः (सं० स्त्री०) कारणमेव, कारण स्वार्थे कन्। कारण, सबब। यह शब्द यौगिक पदके अन्तमें पाता है।

कारणकारण (सं० स्त्री०) कारणस्य कारणम्, इ-तत्। १ कारणका कारण, सबब-उत्-सबब। यह भी पांच प्रकारके अन्वयासिद्धमें पड़ता है। जैसे पुत्रके जन्म-विषयमें उसका पितामह है। पुत्रके जन्मका कारण पिता और पिताके जन्मका कारण पितामह होता है। सुतरां पितामह कारणका कारण ठहरते भी पुत्रके प्रति अन्वयासिद्ध है। २ परमेश्वर। ३ प्रयोजक, संगनिवाला।

“कारणकारण अन्वयासिद्धि प्रतीकवत्” (भंडा०)

कारणगत (सं० स्त्री०) कारण-गच्छति प्राप्नोति, कारण-गम-गत। कारणस्थ, सबब पर सुनहसिरः या मोकूफ। कारणगुण (सं० पुं०) कारणस्य गुणः, इ-तत्। उपादान कारणका गुण, सबबका वस्त्व। यही कार्यके गुणका उत्पादक है,—

“कारणगुणः कार्यगुणमारभते।” (न्याय)

कारणका गुण ही कार्यके गुणकी आरम्भ करता है। जैसे रूप कारणका शुक्त कण्य प्रभृति वर्ण वस्त्र-रूप कार्यका भी शुक्त कण्यादि वर्ण उत्पादन करता है।

कारणगुणपूर्वकत्व (सं० स्त्री०) कारणगुणः पूर्वं यस्य तस्य भावः, त्वं। कारणकी गुणविशिष्टता, सबबके वस्त्व, रखनेकी जानत।

कारणगुणीस्यगुणत्व (सं० स्त्री०) कारणगुणेन उपयुज्यो यो गुणः तस्य भावः, त्वं। कारणके गुणसे निकले गुणका धर्म, सबबके वस्त्वसे पैदा वस्त्वका काम। न्यायशास्त्रमें इसका लक्षण इस प्रकार निर्दिष्ट है,—

“साध्यवसमादिमातवमवसज्जातीयगुणगन्धरसिः पृथक्त्वसंस्था-साधिका भावतात्त्विक्या च या कानिहादयमातिमत्ते संयुज्जन्तम्।”

कारणगुणीद्वय (सं० पुं०) कारणगुणेन सङ्गो यस्य, बहुव्री०। उपादान कारणके गुणसे उत्पन्न एक गुण।

कारणगुणोद्भवगुण (सं० पुं०) कारणगुणोद्भवासी गुणार्थेति, कर्मधा०। कारणगुणजात गुण, सबबके वस्त्वसे निकला वस्त्व। भाषापरिच्छेदमें कारणके गुणसे निकले गुण लिखे हैं,—रूप, रस, गन्ध, अपाकज स्रग्, द्रवता, स्रज, वेग, गुरुत्व, एकत्व, एयकत्व, परिमाण और स्थितिर्यापक संस्कार।

कारणजल (सं० स्त्री०) कारणरूपं जलम्। ब्रह्माण्डकी सृष्टिका कारणस्वरूप जल, दुनियाकी पैदा करनेवाला पानी। भगवान्ने ब्रह्माण्डकी सृष्टिसे पूर्व केवल जल बनाया था। फिर उसमें बीज हासकी ब्रह्माण्डकी सृष्टि की।

“एव एव स्रजरी गह वीममस्रजम्।” (मनु-१८)

कार्यता (सं० स्त्री०) कारणस्य भावः, कार्यत्वेत्त्वं। श्रुतता, तस्यैव, कारणका धर्म।

एतन्नाशयन्तः स्यात्तः कुलानां पश्यन्तः ॥
 एतेनाथ युवाः सर्वे दीक्षायाश्च संदिग्धाः ॥
 धर्मः सर्वोऽप्यस्यैव कर्तव्यः ॥
 रविश्चानु कुर्वन् चन्द्रदेवगुणितः ॥
 चन्द्रार्धं चरन्ती आसः रविश्चाप्य दलकाः ॥
 मनुश्चन्द्रो मोक्षकः कल्पनः पञ्चकारकेः ॥
 रामको मातृनाथो च करवाच सन्तुष्टयाः ॥
 मनुश्चन्द्रसुतो जगः दीर्घमित्रः पालितः ॥
 विंशतिं तदा ध्यात्वाः एतं पश्यन्ति शरदाः ॥
 मनुश्चन्द्रकोऽसौ निवृत्तस्यो धर्मेश्वरः ॥
 मन्वादि रक्षि कर्मानाः सन्तः प्रसीतितः ॥
 कुलाचारधर्मैर्न रिक्तस्तथात्मनः ॥

चित्रगुप्तदेवके षाठ महागय पुत्र हुये थे। कश्यपने उनका जातकर्म किया। उनमें एक एकसे फिर बहुर्यश (गोत्र) उत्पन्न हुये। उनके मध्य २१ वंश ही प्रधान माने जाते हैं। उक्त एकविंशति वंशोंमें सूर्यध्वज, चन्द्रहास, चन्द्रार्ध, चन्द्रदेवक, रविदास, रविदत्त, रविधीर और गौड़क कुलपति गिने गए। उनका सन्ततिवर्ग देशनामसे भी प्रख्यात है। सूर्यध्वजसे घोष, चन्द्रहाससे वसु, रविदत्तसे सुह, चन्द्रदेवसे मित्र, चन्द्रार्धसे करण, रविदाससे दत्त और गौड़से मृत्युञ्जयकी उत्पत्ति है। फिर करणसे नाग, नाय एवं दास और मृत्युञ्जयसे देव, सेन, पालित तथा सिंह नामक प्रसिद्ध पशुतिकारकीने जन्मलाभ किया। मृत्युञ्जयके वंशमें मित्याहम्द नामक एक लृपेत्तर प्राविभूत हुये थे। उन्हेंके वंशमें ८० घर कायस्थ निकले। उनमें ७२ घर कुलाचारके प्रभेदसे 'सचला' कहलाते हैं।

उत्तरादायीय कायस्थकारिकामें निम्न प्रकार चित्रगुप्तसे विभिन्न शाखाके कायस्थोंकी उत्पत्ति वर्णित हुयी है, चित्रगुप्तको पूजा और व्रतकथाके मध्य भी उसी प्रकार ओङ्कारोंसे देव पड़ी है—

“चित्रगुप्तस्यै वन्द्यः सन्तु मनुश्चन्द्रस्यै नमः ॥
 रामायाः शारदायै च नमः करवाचस्यै नमः ॥
 रविश्चानुः श्रीवसुदेवः श्रीवसुदेवस्यै नमः ॥
 कुलनाः करवाचस्यै चन्द्रहासस्यै नमः ॥”

उक्त ओङ्कार कुलपत्यके अनुष्ठान जाते भी इन विषयमें धीरतर मतभेद विद्यमान है। बङ्गालके किसे किसे

कुलपत्यमें सेनक या सेनोकी चित्रगुप्तका भ्राता और चित्रगुप्तव्रतकथा तथा पवित्रमाखलके कायस्थकुलपरिचय-ग्रन्थसमूहमें उनकी चित्रगुप्तका पुत्र बताया है। प्राचीन पुराणमें चित्रगुप्तका भ्रातृ-परिचय न रहने और बहल्याकामधेनुदत्त यमसंहिता तथा युक्तप्रदेशीय कायस्थोंके कुलपत्यसमूहमें चित्रगुप्तमें विभिन्न श्रेणीके कायस्थोंकी उत्पत्ति विवृत होने पर हमने प्राचीन मतके अनुसार सेनी वा सेनकाकी चित्रगुप्तका पुत्र ही माना है। युक्तप्रदेशमें विभिन्न श्रेणीके की सकल कायस्थ मिलते, उनके मध्य शीवाम्नाथ, शकसेन, करण, सूर्यध्वज, चम्बल, राजधाना और गौड़ कई श्रेणीके कायस्थ बङ्गाल पहुँचे थे। इनके वंशधर विभिन्न स्थानमें इस समय विभिन्न श्रेणीसुक्त हो गये हैं। सुतरां कुलपत्यके अनुसार वसु, घोष, मित्र, दत्त, सिंह प्रभृति उपाधिधारी कायस्थ भी युक्तप्रदेशीय शीवाम्नाथ प्रभृति विभिन्न शाखाके ज्ञाति होते और युक्तप्रदेशके कायस्थोंकी भांति बङ्गालके घोष, वसु, मित्र प्रभृति विद्युत् कायस्थवंशधर क्षत्रियवर्णके पन्तर्गत ठहरते हैं।*

मिथिला।

कर्पोटकवंशीय महाराज नाम्नादेव ई० १११३ताब्दीकी मिथिला पदार्पण करते हुये अपने साथ निज पत्नी कायस्थकुलभूषण शोधर तथा उनके १२ सम्बन्धियोंको लाये थे। बड़ लक्ष समस्त मिथिलाके अधिपति हुये, तब उनके सविय शोधर और उक्त १२ कुटुम्बों पर उक्त पद पर नियुक्त किये गये और उन्हें खान्गीमेंके निये बहुतथे गाँव मिले। उस समयमें उक्त कायस्थ मिथिलामें ही रहने लगे। उनके पीछे मन्विवर शोधर महादयने अपने बहुरि बन्धु-बान्धवोंकी धीरे धीरे मिथिला बुलावा और उन्हें जौविका दिना करके मिथिलामें ही बसाया था। कायस्थ चार बारकी जा कर मिथिलामें बसे। प्रथम बार (जैसे पहले लिख चुके हैं) शोधर और

* यह ही लक्ष्मीवर्तन "कायस्थशास्त्र"में बहुरि श्रेणीके कायस्थोंकी उत्पत्तिपर और विचार दत्त है।

कारणत्व (सं० स्त्री०) कारण-त्व । हेतुता, तसवीव, कारणका धर्म ।

कारणध्वंस (सं० पु०) कारणस्य ध्वंसः, इ-तत् ।

कारणका नाम, सबवका ज्वाल । समवायी और असमवायी कारणका ध्वंस होनेसे कार्य भी मिट जाता है, परन्तु निमित्त कारणके ध्वंससे कार्यध्वंस नहीं पाता ।

कारणध्वंसक (सं० त्रि०) कारणं ध्वंसते नाशयति, कारण-ध्वंस-णञ् । कारणध्वंसकारक, सबवका मिटानियाला ।

कारणध्वंसो (सं० त्रि०) कारणं ध्वंसते नाशयति, कारण ध्वंस-णिनि । कारणनाशक, सबवकी बरवाद करनेवाला ।

कारणनाश (सं० पु०) कारणस्य नाशः, इ-तत् । कारणका विनाश, सबवकी बरवादी ।

कारणनाशक (सं० त्रि०) कारणस्य नाशकः, कारण-नाश-णिच्-यञ् । कारणको नाम करनेवाला, जो सबवकी मिटाता हो ।

कारणभूत (सं० त्रि०) कारणं भूयते येन, कारण-भू-त् । कारणस्वरूप, बायम बना हुआ ।

कारणमात्रा (सं० स्त्री०) अलङ्कारमाश्रीक एक अर्थो-सङ्कार ।

“परं परं प्रति यदा पूर्णस्य हेतुता ।
तदाकारणमात्रा सात्—” (साहित्यदर्पण)
“पर पर के प्रति हीत लक्ष पूर्ण पूर्ण को हीत ।
कारणमात्रा नाम तर्क अतुर सुपश्चित देत ।”

पूर्व पूर्व वाक्य अपने पर परवर्ती वाक्यका हेतु होनेसे कारणमात्रा अलङ्कार लगता है । जैसे—

“हले इतथियां उद्यान जायते विनयः सुभात् ।
शोकानुरागे विनयान्त्रिं शोकानुरागवत्—”
“द्विपुत्रको समस्त विनयं श्रुतिप्रदानको हीत प्रकाश अपनाया ।
प्राप्तको लो विमिशान मिटे घर जायति यानि चने क प्रकाश ।
“शाम-श्रीम सुभासिके जायत शोकेनको चतुरांग पराया ।
“शोकेनके चतुरांगको हीत प्रकाश-मन्त्री मयसिन् संकाप ।”
यहां पच्छताका-सङ्कार, श्राद्धप्राप्त, विनय और

शोकानुराग यथाक्रम अपने पर पर वाक्यको कारण रहनेसे कारणमात्रा अलङ्कार होता है ।

कारणवादी (सं० पु०) कारणं वदति, कारण-वद्-णिनि । एकल विषयमें कारणको स्वीकार करनेवाला, जो सब बातोंमें सबवकी मानता हो । २ मुहर्दे, यिक्वायत करनेवाला ।

कारणवादि (सं० स्त्री०) कारणस्वरूपं वादि, मध्य-पदको । ब्रह्माण्डकी सृष्टिका कारणस्वरूप एकार्ष्य जल, असली पानी ।

कारणविहीन (सं० त्रि०) कारणरहित, बेसबब ।

कारणशरीर (सं० स्त्री०) कारणं श्रविद्या सेव शरीरम्, कर्मधा० । सत्वप्रधान अन्नान्, कृहके रहनेकी जगह । सुयुक्तिकाल पर जो कोषगत अन्नान् अङ्गुलारादि शरीरौत्पादक पदार्थके संस्कारमात्रमें अवगिष्ट रहता, वेदान्तमतसे उसीका नाम ‘कारणशरीर’ पड़ता है । इसका संस्कृत पर्याय—आनन्दमय कोष और सुयुक्ति है ।

कारणा (सं० स्त्री०) कारयति हिंसयति, कृ-णिच्-युष्-टाप् । आरंभको इच्छा । पा १।१।० । १ यातना, तकलीफ । २ गाढ़, वेदना, गहरा दर्द । ३ शरक-यन्त्रणा, दीर्घखुकी तकलीफ ।

कारणान्वित (सं० त्रि०) हेतुयुक्त, सबव रहनेवाला ।

कारणभाव (सं० पु०) कारणस्य अभावः, इ-तत् । कारणका अभाव, सबवकी अदममौलदगी ।

कारणिक (सं० त्रि०) कारणैः कारणैर्वी चरति, कारण वा कारण-ठक् । चरति पा १।१।० । १ परीक्षक, जांच करनेवाला । (कारणस्य इदम्, कारण-ठञ् जिट् वा) २ कारणसम्बन्धीय ।

कारणोत्तर (सं० स्त्री०) कारणेन उत्तरम्, इ-तत् । असामान्य उत्तर, खास बहस । विचारस्वयमें वादीकी बात सत्य मानते भी जो उत्तर प्रतिकूल कारण देखा कर दिया जाता, वही ‘कारणोत्तर’ कहता है । इसका संस्कृत नामान्तर प्रत्यवस्कन्दन है । कारणोत्तर तीन प्रकारका होता है—बनवत्, तुल्यवत् और दुर्धन । बनवत् यथा,—वाक्पात्रिक मैंने आपसे ही रुपये कर्ज लिये थे, किन्तु आपकी बह दे

दिये।' तुल्यवत् यथा,—'वादीने कथा—में पुरुषानु-
क्रमसे इस जमीनको देखल करते भाया हं, इस लिये
यह मेरी है।' प्रतिवादीने उत्तर दिया,—'में भी
पुरुषानुक्रमसे इस जमीनको देखल करते भाया हं,
इस लिये यह मेरी है।' दुबल यथा,—'वादीने कथा—
में यह जमीन पुरुषानुक्रमसे देखल करते भाया हं, इस
लिये यह मेरी है।' प्रतिवादीने उत्तर दिया,—'में दश
वर्षसे यह जमीन देखल करते भाया हं, इस लिये
यह मेरी है।' (अध्यात्म)

कारणोपाधि (सं० पु०) ईश्वर ।

कारण्यव (सं० पु०) कारणं वाति प्रथया कारण्यस्य
इदं कारणं तदाकारं वाति; कारण्य-वा-क। अल्-उप-
वर्णः क। वा ३। १। १ हंसविशेष, कोई बतक। २ दीर्घ-
चरण कृष्णवर्ण पक्षी; लम्बे पैरवाली काली
दूरयायी चिड़िया।

कारण्यवती (सं० स्त्री०) कारण्यवः हंसविशेषः अस्ति
अस्याम्, कारण्यव-मसुप-ह्रीप् मस्य वः। नदीविशेष,
एक दरया। इसमें हंस बहुत रहते हैं।

कारण्यव्यह (सं० पु०) १ कोई बौद्ध। २ बौद्धोंका
कोई शास्त्र।

कारण्यव (हिं० पु०) टोटा, एक लम्बी नली
(Cartridge)। इसमें गोली छरा घौर बारुद भरते
हैं। कारण्यवकी एक घोर टीवी लगती है।

कारण्य (हिं० पु०) १ कारण्य, सुवर्णः (स्त्री०) २ कहण्या,
रहम।

कारण्य (सं० स्त्री० Cornice) प्राकारशीर्ष, शीका,
कंगनी, कगर।

कारणी (हिं० पु०) १ ईश्वर, प्रेरक। २ भेदक,
भेदिया।

कारण्यम (सं० पु०) कारण्यमस्य अर्थस्यम्, कारण्यम-
पण्य। १ कारण्यम राजाके पुत्र; अर्थस्यम् (कारण्यमस्य
गोत्रापत्यम्) २ कारण्यमके पौत्र मन्त्र। (स्त्री०)
३ नागीतीय विश्वेष, चीरतीका कोई तीर्थ। महाभारतमें
उक्त तीर्थकी उत्पत्ति कथा लिखी है,—'अर्जुनको तीर्थ-
अभ्यस्यके समय तपस्त्रियोंने अणुत्व, सोमद्र, पीलोम,
कारण्यम और भारद्वाज पांच तीर्थ देखाये थे। अर्जुनने

उन तीर्थोंकी जनश्रुत्य देख कर त्रियोंने इसका कारण
पूछा। उन्होंने कहा कि उन पांचों तीर्थोंमें अणु-
जन्तुका अत्यन्त उर था, उसीसे कोई जन्म उतरता न
रहा। अर्जुन यह वाक्य सुनके एक तीर्थमें उतर पड़े।
उसी समय जलजन्तुने उनका पाददेग पकड़ा था।
किन्तु वह उससे न डरे। फिर उन्होंने अणुप्रयोगसे
कुम्भोरको तीर्थमें उतारना किया। यह कुम्भोर-तीर्थमें
उत्थित होते ही सुन्दरो नारीकी मूर्ति बन गया।
अर्जुनने वह देख गितात विषयसङ्कार उससे पूछा
—'वह कौन था, क्यों उस प्रकार कुम्भोरमूर्तिमें जलके
मध्य रहता था। नारी उन्हें उत्तर देने लगी कि
वह अमरा थी। किसी समय वह अपने चार
सखियोंके साथ इन्द्रालय जाती थी। राहमें उन्होंने एक
रूपवान् ब्राह्मण युवकको तपस्या करते देखा। फिर
वह उनकी तपस्या मङ्गल करनेको नाचने-गाने लगी।
ब्राह्मणने उससे झूठे बोध भूमियाप दिया था,—'तुम
पांचों जलजन्तु बन विरकास जन्मसे विवरण करो।'
उन्होंने उक्त भूमियाप सुनके रोते रोते उनकी समा
मांगी। उन्होंने कहा जब वह कुम्भोररूपसे किसी
पुरुषकी पकड़ेंगी, तभी श्रापमुक्त हो अपने पूर्व रूपको
पहुँचेंगी। फिर वह जिन जलाशयोंमें जलजन्तुरूपसे
रहेंगी, वह नारीतीर्थ नामसे पवित्र तीर्थकी ख्याति-
लाभ करेंगी। ब्राह्मणके उक्त वाक्यसे कथञ्चित्
प्रावृत्त हो वह पिन्ता करती थी—'उन्हें कुम्भोररूप
धारण कर कथा प्रवसान करना पड़ेगा, जहाँ
सुद्धिकारक पुत्रपक्षा दर्शन मिलेगा। उसी समय
देवर्षि नारदने वहाँ पहुँच उक्त पांचों स्थान उनको
बतके कहा था कि अल्पदिनमें ही अर्जुन वहाँ पहुँच
उनकी मुक्त कर देंगे। उसी आशयसे वह उक्त एक
एक जलाशयमें रहती थी। फिर नारीने कहा,
कैसे अर्जुनके अनुग्रहसे उन्होंने मुक्ति पायी, वेसे ही
वह उक्तकी चारों सखियोंको भी अनुग्रहपूर्वक मुक्त
करके उपगत करतें। अर्जुनने तदनुसार क्रम क्रम
दूसरे चार तीर्थसे सखियोंको मुक्त किया। (शास्त्र, अदि ११० पु०)
कारण्यमी (सं० पु०) कारण्येव कारणः तं प्रथमति,

बनेता है। अथवा अन्य दस्तुका प्रभाव होनेसे सकल कार्योंमें केवल तान्त्र द्वारा दीपपात्र निर्माण करते हैं। उक्त दीपमें कार्यानुसार एक, तीन, पांच या सात बत्तियां लगती हैं। अथ कार्तमें प्रथम और महत् कार्योंमें अधिक संख्यक बत्तियां डालनेकी विधि है। कार्तविशेषमें सफेद, पीली, लाल, कुसुम्भी, काली और रंग रंगकी बत्तियां बनायी जाती हैं। प्रभावमें केवल सफेद सतकी बत्तियोंसे काम चलाने हैं।

कार्तवीर्यके लिये इस प्रकार दीपदानकी विधि देख सतः सन्देह ही सकता है—ये उस प्रकार क्यों उपास्य हैं। कार्तवीर्य दत्तात्रेयसे योग लाभ कर अथवा प्रज्ञावतार रूपसे जन्मप्रचण्ड कर वैसी उपासनाके योग्य हुये हैं। उनके ध्यानमें प्रज्ञावतारत्वका उल्लेख मिलता है। यथा—

“उद्यम्यं वदव्यथानिरखिलकोपीयै” इति
 दत्तात्रेयं यत्नचक्रे न च दधमायानि वृत्तावता।
 कष्टं चाटकमात्रया प्रकृतवकावतारो हरेः।
 पावान् सन्देहगीदधवाभयघनः शोकार्तवीर्यो नमः ॥”

कार्तवीर्यारि (सं० पु०) कार्तवीर्यस्य अरिः शत्रुः, इ-तत्। कार्तवीर्यके शत्रु परशुरामः कार्तवीर्यने कामदम्निके प्रायमसे होमधेतुका सुराया था। इसीसे कामदम्निके पुत्र परशुरामने इतकी मार डाला।

कार्तवेद्य (सं० त्रि०) ज्ञतवेद्यस्य इदम्, ज्ञतवेद्य-अण्। ज्ञतवेद्यसम्बन्धीय।

कार्तस्वर (सं० स्त्री०) ज्ञतस्वरे तदास्य आकरविगमिभ्यं अथवा ज्ञताः पठिताः स्वरा येन सः ज्ञतस्वरः सामगायकः तस्मै दक्षिणात्वेन देयम्, ज्ञतस्वर-अण्।
 श्रुते १-पा ३।२११। १, स्वर्णं, गीगा। “स तत्र कार्तस्वर-मात्रात्मकः” (भाष १।१०) २ धुस्तं रफल, धमूरा।

कार्तान्तिक (सं० पु०) ज्ञतात्सं वैति, ज्ञतात्सं-उक्।
 : कर्तृत्वादि दत्तात्कार्त्तुक्। पा ३।२११। १। ज्योतिर्विद, नज्मी,
 : शोणहार यथा देनेवाला।

कार्तोपधि (सं० पु०) कात्स्यस्य अपत्यम्, कात्स्य-फिच्, यकीयः। १-चो इत्यच्। पा ३।२।११६। कर्त्तके वीत्र।

कार्ति (सं० पु०) ज्ञतके गीजापत्य।
 कार्तिक (सं० पु०) ज्ञतिका नक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी

यत्र मासे, ज्ञतिका-अण्। १ वैशाखादि द्वादशमासके मध्य सप्तम मास, कार्तिक, उसका संस्कृत पर्याय—बाहुल, सज, कार्तिकिक और कौमुद है। यह चान्द्र और और भेदसे दो प्रकारका होता है। फिर चान्द्र-कार्तिक भी मुख्य और गौण भेदसे द्विविध है। सूर्ये तुलाराशि पर जागने यत्न प्रतिपदसे चारम्भ कर प्रभावस्था पर्यन्त गिननेसे मुख्य चान्द्रकार्तिक और पूर्ण कृष्ण प्रतिपदसे पूर्णिमा पर्यन्त गौण चान्द्रकार्तिक होता है। फिर सूर्यके तुला राशि पर प्रवस्थान करते और कार्तिक मास सिखा जाता है।

“गीमादिस्थौ रवेर्षं चामारम्भः प्रथमचर्षे।
 अर्षेतेन्द्रे चान्द्रमासायं वावा वायव्यं कृत्वाः” (भाष)

पूर्णिमा ज्ञतिकावत्तसे मिलनेके कारण ही उसका नाम कार्तिकमास पड़ा है। शास्त्रमें वह पुष्यमास माना गया है। उसीसे उक्त मासके आदित्य धर्म-पिपासु व्यक्तियोंका कर्त्तव्य पुराणमें इस प्रकार कहा गया है,—

कार्तिकमें प्रत्यक्ष अति प्रत्युप गावीद्यान कर प्रातः स्नान करना विधेय है। निज शरीरकी किसी प्रकार व्याधिपद्द करनेकी इच्छा न रखनेवासे शोर्गोकी कार्तिकमें अवश्य प्रातःस्नान करना चाहिये। फलतः उस मास उक्त समय पर स्नान करनेसे सबको स्वास्थ्य लाभ होता है। धर्मपिपासासे नञानेवालोंको निम्न-लिखित सङ्कल्प और मन्त्र पढ़ स्नान करना चाहिये।

सङ्कल्पः—

“शो तन्सुतं चय कार्तिकमासे अमुकपक्षे अमुकदिशावाचये तुनर-
 रादिल्लरि” यावत् प्रथमं अमुकयोगः शो अमुकदिशान् शो निरुपरीतिनामः
 प्रातःप्रातः सर्वं अरिभ्यः।

मन्त्रः—

“शो कार्तिकैर्षं करिष्यामि प्रातःप्रातः” जगदीश।
 श्रीगर्भे तत्र दीपये दामोदर मया च ॥”

उक्त मास प्रत्यक्ष निगामुखकी विष्णुपुत्र वा पांशायादिमें छत तैसादि द्वारा प्रदीप देना कर्त्तव्य है। प्रदीप देते समय निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना पड़ता है,—

“शो शमीदत्तय मन्त्रि तुनामी रोभना मय।
 शोपे ते मन्त्रद्वानि मनीदनाय ईषये ॥”

कारभा-इनि प्रबोदशदित्वात् साधुः । १. कार्त्तिकार, कसेरा । २. धातुप्रबोधक, भादमयात् ज्ञाननिवासा ।

कारपचन (सं० पु०) द्विविशेष, एक सुक्ल, । यह यमुनाके निकट अवस्थित है ।

कारपरदाज (फ्रा० वि०) कर्मचारी, कारगुजार ।

कारपरदाजी (फ्रा० स्त्री०) कार्यकी सञ्चालना, कारगुजारी ।

कारबन (अ० पु० Carbon) अङ्गार, कोयला । यह एक भौतिक पदार्थ है । प्रकृतपचमें कारबन, कोई धातु नहीं । सम्पूर्ण सकरण मिश्रणमें यह अधिकशय पाया जाता है । कारबन दहनशील है । यह दग्ध काष्ठका अधोभाग बनाता और खनिज अङ्गारमें बहुत लग जाता है । अपनी विशुद्ध स्फटिकरूप घनीभूत स्थितिमें कारबन हीरा होता है । एक परिमाणशील स्फटिकमें यह समग्र विदित पदार्थसे कठिन है । कारबन सीमेंमें अधिक पहुँच जाता, अद्दु देखाता और पत्राकार खाता है । कार्बिजनके साथ मिलने पर यह कारबोनिक एसिड (कोयलेका तेजाब) और कारबोनिक शोक्साइड (कोयलेका लुब्धलुवाब) बनाता है । हाइड्रोजन (पानीकी हवा) के साथ इसका संयोग लगने पर कई पानीकी हवासे तैयार होती हैं । उनमें प्रकाश करनेकी एक असाधारण गैस (वायु) है ।

कारबोनिक (अ० वि० Carbonic) अङ्गारसम्बन्धीय, कोयलेके सुताक्षिक । कोयलेके तेजाबकी कारबोनिक एसिड (Carbonic-acid) और कोयलेके तेजाबकी हवाकी कारबोनिक एसिड गैस (Carbonic-acid-gas) कहते हैं ।

कारबोलिक (अ० वि० Carbolic) १ अङ्गारके सज्जसे सम्बन्ध रखनेवाला, जो अलकतरेसे सरोकार रखता हो । (पु०) २ पदार्थविशेष, एक बीज । यह अलकतरेसे निकलता है । कारबोलिक फोड़ा फुनघी और खुजलीके बीड़े मार देता है । इससे तेल और सानुन भी बनाते हैं ।

कारबोलिक एसिड (अ० पु० Carbolic acid) तेल-अभय द्रवविशेष, एक तेलिया बर्क । यह वर्षाविहीन

रहता और खाया जानेसे सुखमें जलन उत्पन्न करता है । कारबोलिक एसिड अलकतरेसे बनाया जाता है ।

कारभ (सं० त्रि०) करभस्य इदम्, करभ-पण । १ अस्तिशायक-सम्बन्धीय, हाथीके धंसेके सुताक्षिक । २ उद्भ्रसम्बन्धीय, जंटसे सरोकार रखनेवाला ।

कारभ (जंटका) दुग्ध-रुच, उष्णवीर्य, किञ्चित् लवण एवं स्वादुस, लघु और शोथ, शुक्ल, उदर, अग्नि, कुष्ठ, क्षमि तथा विपरीगनायक है । जंटके दूधका दही इसमें चाररस, गुद, भेदकारक, पाकमें कटरस और वायु, अग्नि, क्षमि तथा उदररोग पर हितकारक होता है । कारभ छत पाकमें कटरस, चग्निदीपक और कफ, वायु, कुष्ठ, शुक्ल, उदर, शोथ, क्षमि तथा विपरीगनायक है । उद्भ्रका मूल शोथ, कुष्ठ, उदर, चन्द्राद, वायु, क्षमि और अग्निनायक होता है । (उद्भ्र)

कारभू (सं० स्त्री०) कर एव कारः तस्य भूः इत्यत् । करको भूमि, लगानकी जमीन । निच भूमि पर राजकर लगता, उसका नाम 'कारभू' पड़ता है ।

कारमिहिका (सं० स्त्री०) कार-जलसम्बन्ध मिहिति, कार-मिह-क स्वार्थे कन्-टाप् अत इत्वं यद्वा कारस्य तुयारगैलस्य मिहिका मोहार इव, उपमि० । कपूर, कपूर ।

कारभा (सं० स्त्री०) ऊ ईप्त् रभा इव, कोः कादिभ्यः । मियङ्ग, एक खुशबूदार वेल ।

कारयत् (सं० त्रि०) करनेकी शक्ति वा अधिकार देनेवाला, जो कराता हो ।

कारयमाण (सं० त्रि०) नियत कार्य करनेवाला, हुकम चजानेवाला ।

कारयितव्य (सं० त्रि०) क्त-पिच्-तव्य । करानेके उपयुक्त, जो कराने लायक हो ।

कारयितव्यदत्त (सं० त्रि०) किया जाने लायक, काम करनेमें होशियार ।

कारयिता (सं० त्रि०) कारयति, क्त-पिच्-त्त्वात् । करानेवाला, दूसरेकी काममें लगानेवाला ।

कारविष्णु (सं० वि०) क्त-पिच्-त्त्वात् । कारयिता, करानेवाला ।

प्रदोष प्रदानसे विशेष फल कामना करनेवालोंको दीपदानके पूर्व खानवत् सङ्कष्ट कर और तदनन्तर मन्त्रपठ दीप देना चाहिये।

कार्तिक मासमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी अर्थात् भूतघटुर्दशीके दिन खानान्तर यमतर्पण कर निम्नलिखित मन्त्र पाठपूर्वक मस्तकौपरि अपासागं घुमाना पड़ता है,—

“भोगीषवमावुक्तमष्टबदनाम्बिगः।

१२ वापमवामां मान्वायः पुनः पुनः ॥”

उस दिन लोकाचारके हित चतुर्दश शाक भोजन करना विधेय है। शास्त्रीय शाक्तोंके नाम हैं—शोल, केसुक, वासुध, सर्पप, कास, निम्ब, जयन्ती, शालिन्धो, द्विलमोषिका, पटोल, पित्तपापरा, गुडूची, भयट्टाकी और सुदिनु। किन्तु लोग उक्त शाक संचय न कर जो पाते वही खा जाते हैं।

अनन्तर अमावस्याके दिन बालक, चातुर और बृद्ध व्यतिरेक सबको दिवाभोजन निषिद्ध है। उस दिन पाषण्य आद्य कर प्रदोषकालमें पिष्टगणके उद्देश्य उल्कादान करना चाहिये। किसी कारण आद्य न करते भी उल्कादान देना पड़ता है। फिर प्रदोषकालमें लक्ष्मी, नारायण और कुबेरकी पूजा करना आस्तिक धार्मिकोंका कर्तव्य है।

अनन्तर प्रमात अर्थात्, प्रतिपत् तिथिको अक्षक्रीड़ादि कारना चाहिये। अतक्रीड़ा शास्त्रनिषिद्ध होते भी उस दिन समस्त वर्षका शुभाशुभ जाननेकी बहुत आवश्यक है। उस क्रीड़ामें जीतनेवालाका संवत्सर शुभ और हारनेवालेका संवत्सर अशुभ होता है। केवल उसी दिन क्रीड़ा करनेका कारण है—

“को धी यावद्यथापि विद्वत्सोः सुविद्विः।

एवं देवादिना तेन तस्य धर्मः प्रयाति हि ॥”

जो व्यक्ति जिस भाव अर्थात् आनन्द वा अलसते उस दिन काल मिताता, उसका संवत्सर उगी भाधमे बना जाता है। अतएव उस विषयमें सबको सचेष्ट रहना आवश्यक है, जिसमें उक्त दिवस मनीसखसे प्रतिवाहित किया जाता है।

अनन्तर द्वितीया तिथि अर्थात् आष्टद्वितीयाके दिन दीर्घजीवनकी कामनासे भगिनीके हाथका भोजन करना विधेय है। उस दिन स्व स्व भगिनीको बल्लार-द्रादि द्वारा सम्मान कर और उसके हाथका बना सादर एवं आनन्दपूर्वक भोजन करना बहुत आवश्यक है। भोजनके समय यमराज, चित्रगुप्त, यमदूत और यमुनाकी पूजा कर निम्नलिखित मन्त्रपाठ पठ गच्छ पक्ष कर खाना चाहिये। कनिष्ठ भगिनी होनेसे इस प्रकार मन्त्र पठतो है,—

“भावसवानुजातां शुद्धं मन्त्रिदं यमम्।

श्रोतये यमराजस्य यमुनाया विभक्तः ॥”

भगिनी ज्येष्ठा रहनेसे “आतस्तवाजुजाताह”के स्थानमें “आतस्तवायजाताह” कष्ट कर गच्छप प्रदान करना चाहिये।

एतद्व्यतीत कार्तिक मासमें शुकपक्षकी नवमी तिथिको सोमवारके दिन ब्रह्मायुगकी उत्पत्ति होती है। उसीसे बट दिन अतिशय पुण्याह माना गया है। फिर कार्तिक मासके शुकपक्षकी एकादशीसे पूर्णिमा पर्यन्त पक्षतिथिको एकपक्षक कहते हैं। शास्त्रके कथनानुसार उन तिथियोंमें एक भी मन्त्र भक्षण नहीं करते। अतएव एकपक्षकमें किसीकी मांसादि खाना विधेय नहीं। एतद्व्यतीत भूत-चतुर्दशीके पीछे अमावस्याका काशीपूजा, शुक नवमीको जगद्धात्री पूजा और संक्रान्तिके दिन कार्तिक पूजा होती है। पूजाकी पहति नानाविध है। उसीसे यहां उसका और उल्लेख नहीं किया गया।

कोष्ठोप्रदोषके मतसे कार्तिक मासमें जन्मलेनेवाले सुहृद्वियारद, व्यवसायपटु, मानाविध विद्ययाप्रवित्तुः सुवला और अतिशय सुन्दराकृति होते हैं।

ब्रह्मपुराणके मतानुसार कार्तिक मासमें विष्णुके लिये तुलसीदान कर्तव्य है। उससे प्रभुत-गोदानका फल मिलता है। ब्रह्मपुराणके मतसे देवद्वय, आश्राय और मच्छपमें हतादि द्वारा दीपदान करना चाहिये। उससे अक्षयपुण्य होता है। ब्रह्मपुराणके मतानुसार उस मासमें इविष्यात्र खानेसे विष्णुका पद मिलता है। इविष्यद्रव्य यह है,—पक्षिय हैमन्तिक धान्द।

कारवाड़ (फ्रा० स्त्री०) १ काय, काम। २ कर्मस्थता, कामका सुभाव। ३ प्रयत्न, तदवीर।

कारव (सं० पु०) का इति रथो यस्य कुक्षितो रथो यस्य वा, बहुव्री०। काक, कीवा।

कारवली (सं० स्त्री०) कारा इतस्ततो विक्षिप्ता वल्ली यस्याः, बहुव्री०। १ छत्र कारवेलक, कारेली।

यह तिष्ठ, लघु, दीपन, शीर कफ, वात, शरीरक

तथा रक्तदोष नाशक है। (रत्नविषयु) इसका फल

हिम, भेदी, लघु, तिष्ठ, वातन शीर विश, रक्त,

कामला, पाण्डु, कफ, मेघ तथा जलिको दूर करने-

वाला होता है। (मदनमाल) २ कटुदुषी, करेला।

कारवां (फ्रा० पु०) यात्रियोंका समूह, सुमाफिरांका

समूह। यह एक देशसे दूसरे देशको जाता है। इसके

ठहरनेकी जगह 'कारवां सराय' कह्यती है।

कारवाड—बम्बई-प्रान्तके अन्तर्गत उत्तर-कानाड़ेका

प्रधान नगर। यह अक्षा० १४° ५०' ०" और देशा०

७४° १४' ५०" पर अवस्थित है। लोकसंख्या साठे

तीस हजारसे अधिक होगी। कारवाड एक बन्दर

है। इस बन्दरके सामने उपसागरमें अनेक छोटे छोटे

द्वीप हैं। उन्हें बस्तूरिकी द्वीपवली कहते हैं। उनमें

एकका नाम देवगड़ है। देवगड़में एक शालोक-गृह

बना है। समुद्रसे १४० हाथ ऊंचे उसकी भग्निशिखा

प्रकाशित होती है। यह आसोक १२ कोससे देख

पाकिव्यथा विनाशय प्रादुर्भाव रहा और उक्त स्थान

विजयपुरके अन्तर्गत था। कारवाड़के देगारि पर्याप्त

खुजानिके तत्त्वावधायक विजयपुरके प्रधान कर्मचारी

माने जाते थे। १६३८ ई० को यहाँ अंगरेजोंको

कार्टेन कम्पनीने वाधिष्य पारम्भ किया। उसके

योग बहुली अक्षरमें प्रायः ५० हजार लुनाफे जगाके

अच्छे अच्छे सुसलमानी कपड़े बनवा रसमी करते

थे। इलायची, दालचीनी, चीठ और दहाड़ी नामक

मौसे रंगका वस्त्र-वस्त्रोंसे बाहर भेजा जाता था। १६५६

ई० को महाराष्ट्राधिपति शिवाजीने यहाँके अंगरेज

वधिकोंसे (११२०) रु० शक्य बसूल किया। फिर १६७३

ई० को कारवाड़के फौजदारने अंगरेजों को फोडो पर

घावा मारा। दूसरे बखर उन्होंने नगरलगाया था, किन्तु

अंगरेजी कारखानेको ह्राय न लगाया। 'बरा' अंगरेज

अधिसामियोंके प्रति यत्न भी किया गया। उनके पीछे

शिवाजीने भी अंगरेजोंको सताया न था। विन्तु स्थानेय

प्रभुओंके अत्याचारसे १६७६ ई० को अंगरेज अपना

कोठो उठा ले गये। तीन वर्ष पीछे फिर अंगरेजोंने

कोठो खोल कार्य पारम्भ किया। दो वर्ष पीछे १६८४

ई० को एक विषम काण्ड हुआ। यिलायतो जहाजके

शिनायतो नाविक हिन्दुओंके मवेशी चोराने लगे। यह

हिन्दुओंसे सहा न गया। अंगरेजोंकी कोठो उठानेको

हिन्दुओंने चेटा को थी। उसदश शताब्दीके शेष भाग

सीठका अंगरेजी व्यवसाय कारवाड़से उठानेके दिने

श्रीकान्दाज विमिय चेटित हुये, किन्तु कतकाय ही न

सके। १६८७ ई० को महाराष्ट्रने कारवाड़में मूट-

मार करके अंगरेजोंका विमिय बनित किया था।

१७१५ ई० को नगरका पुरातन दुर्ग गिरा सान्ताधि-

पतिने सदाशिवगड़ नामक एक दुर्ग बनाया। फिर

यह अंगरेजों पर अत्याचार करने लगे। समस्त चररा

कर १७२० ई० को अंगरेजोंने अपनी कोठो उठा

लानी। १७५० ई० को यह फिर जा पड़्ये। किन्तु

दो वर्ष पीछे पो गीजोंने रणतरी ला सदाशिवगड़

दफन किया था। उसके पीछे कारवाड़का वाधिष्य

पूर्णरितिसे उनके हाथों चला गया। एषीसे अंगरेजोंने

अपना कारवार उठा दिया था।

सुप्त, तिल, यव, कलाय, कद्दुधान्य, नीगरधान्य, वास्तुक, हिलमोचिका याक काचयाक, मूलक, सेन्धव एवं समुद्रलवण, गव्यदधि, गव्यहृत, मखन न निजाना हुआ दुग्ध, पनस, भान्द्र, उरीतकी, तिमिड्डी, जीरक, नागरङ्ग, पिप्ली, कटली, लवली, पात्रला, इक्षु और गुड़। अतैलपत्र द्रव्य द्वारा ज्विष्यातकी व्यवस्था है। नारदीयपुराणके मतसे मख्य, जूमे और अन्त्या सकल जन्तुका मांस खाना निषिद्ध है। क्योंकि वैसा करनेसे चण्डालतुल्य बनना पड़ता है। महाभारतमें भी सर्वमांस परित्यागका विधान है। वज्रपुराणके मतसे बोल, पटोल, कदम्ब और भण्डाकी भोजन करना निषिद्ध है। फिर कांस्यपात्रमें भी खाना न चाहिये। कार्तिक मासमें ही पत्न्यान एकादशी होती है। उस दिन हरि शय्या त्याग करती हैं। मनुष्योंको यथानियम उपवास कर और हरिको भर्चना करना पड़ती है। पुराणके मतानुसार कार्तिक मासमें छह सब वार्य करानेसे पुण्य मिलता है। फिर छह कार्य प्रतिपादन न करनेसे नरकादि विविधं यातनायें उठाना पड़ती हैं।

२ वर्ष विधेय, कोई साल। क्षत्तिका वा रोहिणी मन्वन्तमें हृहक्षतिका उदय वा अस्त होनेसे कार्तिक वर्ष कछाता है। ३ कार्तिकेयः।

“इहा वात् क्षत्तिकाः स्वर्गः मयःविद्वन्मागधाः।
कार्तिके कथयामासुर्वं सन् ब्रह्मतेजसा।” (ब्रह्मवैवर्ते ५०)

४ चरकादि चिकित्साशास्त्रके कोई संघकार।
५ यस्वरे प्रदेशकी एक जाति। इस जातिके लोग भेद चादि पशुओंको मार कर उनका मांस बेचते हैं। कर्माईका काम करनेसे ये गाँवके बाहर रहते हैं और सिन्दूर इस जातिके लोगोंकी नहीं है।

कार्तिकमहिमा (सं० पु०) कार्तिकेय महिमा माहात्म्यम्, इतत्। १ कार्तिक मासका माहात्म्य। २ कार्तिकेय देवका माहात्म्य।

कार्तिकमाहात्म्य (सं० ज्ञी०) पञ्चपुराणका एक अध्याय।
कार्तिकव्रत (सं० ज्ञी०) कार्तिके कर्तव्यं व्रतम्,

मध्यपदको०। कार्तिक मासमें किया जानेवाला प्रातःस्नानादि नियम।

कार्तिकमासि (सं० पु०) कार्तिके परिपक्वः शक्तिः, मध्यपदको०। कार्तिक मासमें पकनेवाला धान्य; कतिकछा धान।

कार्तिकविद्वान्त (सं० पु०) कार्तिकी पार्ष्णमासौ चम्पित् मासे, कार्तिक-उक्त्। १ कार्तिक मास, कातिकका मसौना। २ कार्तिकीयुक्त पक्ष, जिस पक्षशरिमें कतिकी पड़े। ३ कार्तिक नामक एक वर्ष।

कार्तिकी (सं० स्त्री०) कार्तिकेय इदम्, कार्तिक-पण्डुडोप। १ ऐश्वर्य विधेय। कौमारी देवी। २ नवग्रहिकाश्चै जयन्तीस्य एक देवी। ३ क्षत्तिका मन्वन्तयुक्त पूर्णिमा, कतिकी। कार्तिकीको वज्रावत (विद्वर)में गङ्गाखानका बड़ा मिला लगता है।

कार्तिकेय (सं० पु०) क्षत्तिकानामपत्यं पाश्व-त्वेन इति शेषः, क्षत्तिका-उक्त्। श्रीशे उक्त्। पाश्याः। गिवपुत्र। पार्वतीके साथ छेदने समय गिवका बोर्य भूमि पर गिरा था। भूमिने पत्निमें और अग्निने फिर शरवणमें उसे निवेश किया। वहाँसे क्षत्तिका-गणने उसे उठा पाला-पोसा। (ब्रह्मवैवर्ते ५०)

कल्पविशेषमें कार्तिकेयने पुनर्वा रश्मिपुत्ररूपसे जन्मग्रहण किया था। उसी समय अग्निके बोर्य और गङ्गाके गर्भमें उनका जन्म हुआ। उसके पीछे क्षत्तिका-गणने उन्हें प्रतिपादन किया। क्षत्तिकागणके स्तनपात्र काल उनके छह मुख उत्पन्न हुये थे। फिर क्षत्तिका-गणके प्रतिपादित होनेसे ही वह कार्तिकेय नामसे विख्यात हुये हैं। (राधायण)

समय जर्मोंका एक ही कारण समझा जाता है। दुर्दान्त तारकासुरके लप्योडनसे देव बहुत व्यतिथस्त हो गये थे। बहु सेटाये-भी वह अक्षुरकी मार न सके। फिर अर्द्धानि ब्रह्मासे जाकर अपने मिथनका उपाय पूछा। ब्रह्माने उनमें महादेवका ध्यान तोड़नेकी कला या। तदनुसार अर्द्धाने कन्दर्पके पापायने महादेव का ध्यान मङ्ग किया। अर्द्धायाथ-विष महादेवने पापंशय पार्वतीके प्रति-साभिप्राय इष्टि

कारवारि (सं० स्त्री०) करकाजल, बोलेका पानी ।
 यह विषद, शुद्ध, रुच, स्थिर, घन, कफकारक, वातल,
 अतिशीत और पित्तविनाशक होता है । (वैजनिषध्)
 कारवी (सं० स्त्री०) कारं भवति, कृद्दिंसायां स्वायं
 णिच्-क्षिप्-पव-भृष्-डीप् । १ मधुरिका, सोंफ ।
 २ क्षण्णोरक, कालाजीरा । ३ तेजपत्र । ४ गुडत्वक् ।
 ५ शताह्वा, सतावर । ६ अजमोदा । ७ चन्द्रशूर ।
 ८ मेथिका, मेथी । ९ सूक्ष्म क्षण्णोरक, पतला काना
 जीरा । १० शिङ्गुपत्री । ११ सुद्रकारवेक्षी, छोटी
 करेली । १२ स्त्रीजाति काक, मादा कौया ।
 कारवीर्य (सं० त्रि०) कारवीर्यं निर्वृत्तः, कारवीर-
 टञ् संख्यादिवात् । कारवीरसे उत्पन्न, कनिरसे
 निकला हुआ ।
 कारवेक्ष (सं० पु०-स्त्री०) कारेण वातगमनेन वेक्षति
 चलति, कार-वेक्ष-भृच् । १ स्वनामख्यात फलशाकलता,
 करिलेकी वेल । इसका संस्कृत पर्याय—कठिल है ।
 भावप्रकाशके मतसे यह शीतल, भेदक, क्षुद्र, तिक्तारस,
 और ज्वर, पित्त, कफ, रक्त, पाण्डु, मेह तथा क्षमिरोग-
 नाशक होता है । २ सुद्र कारवेक्ष, छोटा करेला ।
 इसका संस्कृत पर्याय—कठिलक, सुगवी, सुषवी,
 कण्डुर, काण्डकटुक, सुकाण्ड, उग्रकाण्ड, कठिल,
 नासासंवेदन और पट्ट है । राजवृक्षभङ्गे मतानुसार
 इसका पुष्प धारक और क्षमि तथा पित्तरोगमें हित-
 कारक है । फल रुचिकर और शुद्ध, कफ तथा पित्त-
 नाशक है । करेला देखो ।
 कारवेक्षक (सं० पु०-स्त्री०) कारवेक्ष एव स्वायं कन् ।
 करेला ।
 कारवेक्षिका (सं० स्त्री०) कारवेक्षक-टाप् पत इत्वम् ।
 सुद्र कारवेक्ष, छोटा करेला ।
 कारवेक्षी (सं० स्त्री०) कारवेक्षं पत्यायं डीप् ।
 सुद्र कारवेक्ष, करेली ।
 कारव्य (वै० त्रि०) कारु (गायक) सम्बन्धीय प्रथम-
 वेदका एक मन्त्र । कपायभेद, एक काढ़ा ।
 क्षण्णोरक, कृष्ट, एरण्डमूल, जयन्ती, शण्डी, गुडूची,
 दग्गमूल, गटी, कर्कटशुद्धी, दुरालभा, भार्गी तथा
 पुनर्षवा भाठ भाठ रत्ति १२ तोले गोमूत्रमें पकाने

और ८ तोले श्रेष्ठ रहते उतारनेसे यह तैयार होता
 है । इसका सेवन अभिष्यासज्वरमें रोगीको लाभ-
 दायक है । (भेष्यभवावली)
 कारसाज (फ्रा० वि०) कार्यं संभासनेवाला, जो विगड़ा
 काम बनाता हो ।
 कारसाजी (फ्रा० स्त्री०) १ कार्यसम्पादन, कामका
 संभाल । २ छल, फरेब, धोका ।
 कारस्कर (सं० पु०) कारं वर्धं करोति, कृ-ट ।
 इव तास्मिन्नादुबोवेड । वा १११२० । १ कुपीलुहृष्ट, इसका
 संस्कृत पर्याय—किम्बाक, विषतिन्दु, करट्टम,
 रम्यफल, कुवीलु और कालकूट है । राजनिषण्टुके
 मतसे यह कटु, तिक्तारस, उष्णवीर्य और कृष्ट,
 वायु, रक्त, कण्डू, कफ, भ्रम तथा त्रणनाशक है ।
 २ हृद्यसामान्य ।
 कारस्कराटिका (सं० स्त्री०) कारस्कर इव पटति,
 कारस्कर-भृट्-खुल्-टाप् पत इत्वम् । कर्णजधोका,
 कानसलाई ।
 कारस्तानी (फ्रा० स्त्री०) १ प्रयत्न, तदवीर । २ छल,
 धोका ।
 कारा (सं० स्त्री०) कीर्यते क्षिप्यते दण्डार्थं यस्याम् ।
 कृ-भङ्-गुणः दीर्घत्वं निपातनात् । षट्शोडशोऽनु-
 वा १०१११ । १ कारागार, कैदखाना । इसका संस्कृत
 पर्याय—बन्धनालय और वधाङ्गक है । २ दूती ।
 ३ धोपाका अधस्थित बक्र काष्ठ सितारकी नीचेकी
 टेढ़ी सकड़ी । ४ सुवर्णधारिका, सोनारिन । ५ बन्धन,
 कैदा । ७ पीड़ा, तकलीफ । ८ शब्द, आवाज ।
 ९ दुःख, दर्द ।
 कारा (हिं० वि०) क्षणवणे, बाला ।
 कारा—युक्तप्रान्तके इलाहाबाद जिलेकी मिराठ तह-
 सीलकी एक नगर । वह भन्ना० २५° ४१' ५५" तथा
 देशा० ८१° २४' २१" पू० पर इलाहाबाद नगरसे
 २० कोस उत्तरपश्चिम गङ्गाकी दक्षिण दिक् अधस्थित
 है । लोकसंख्या कुछ हजारसे अधिक है । युक्तप्रदेशके
 ८ प्रधान तौरांमें एक यह भी है । -वहाँ कालेश्वरका
 मन्दिर बना है । उसीसे उसका एक नाम काल
 नगर है । पुरातन ताम्रशसनमें कालखल नामसे

छासो यो। उसमें प्रथम कार्तिकीयका जन्म हुआ। फिर उन्होंने देवोंके सेनापति यन तारकासुरकी मार डाला। दूसरे कल्पमें भी उसी प्रकार तारकासुरका छलीङ्गन बटने पर ब्रह्माने देवोंमें अग्निकी आराधना करनेकी कहा था। तदनुसार उन्होंने अग्निकी सन्तुष्ट किया। अग्नि शक्तव्य धारण कर अतिगापनमें महादेवके समीप पहुँचे थे। किन्तु महादेव सब भेद समझ गये। उसीसे सुरत विघ्न समझ करूँ छो उन्होंने खरचितवीर्य अग्नि पर फेंका था। अग्नि रक्तता तेज धारण करन सके। फिर उन्होंने उसे गह्रामें डाल दिया। उसीसे कार्तिकीयने द्वितीय बार जन्म लिया था। उनका नामान्तर—महासेन, शरजया, पट्टानन, पार्वतीमन्दन, स्कन्द, सेनामी, अग्निभू, गुह, बाहुलेय, तारकजित्, विशाख, शिखिवाहन, पापमातुर शक्तिधर, कुमार, कौशदारण, आग्नेय, दीप्तकीर्ति, चनमिय, मयूरकेतु, धर्मात्मा, भूतेग, सच्चिदान्न, कामजित्, कामद, कान्त, सत्यवाक्, भुवनेश्वर, शिय, शोघ, शक्ति, चण्ड, दीप्तवण, शमानन, चमोच, चमय, रौद्र, प्रिय, चन्द्रानन, दीप्तशक्ति, प्रगान्तात्मा, भद्रकृत्, कूटमोहग, पक्षीप्रिय, पवित्र, मातृवत्सन, कन्याचर्ता, विमल, स्वाह्य, देवतीसुत, प्रभु, नेता, नैगमिय, सुदुश्चर, सुधत, सलित, बालक्रीडनप्रिय, खनामी, ब्रह्मचारी, शूर, शरयनोद्भव, विश्वामित्रप्रिय, प्रियक, गात्र, स्वामी, हादगमोचन, देवसेनाप्रिय, वासुदेवप्रिय, देवसेनापति, बालचय, छकवाङ्गुधन, महाबाहु, सुह-रद्र, शिखिध्वज, पावकाम्बज, रुद्रधनु, पटंगिरा और दितिजातक है।

कार्तिकीयदेवका ध्यान इस प्रकार है,—

“कार्तिकीं महाभागं मयूरीपरि वल्लितम् ।
 तप्तहाचण्डनदीर्घं शक्तिधरं वरपदम् ॥
 दिवसं मयूचकारं मानसहारमुत्तमम् ।
 मङ्गलवदनं दीर्घं चर्चसेनावमात्रणम् ॥”

महाभाग कार्तिकीय मयूर पर अवस्थित है। उनका वर्ण तप्त स्वर्णको भांति चमकता है। शक्ति धारणमें शिबे है। वट वर देनेशक्ति है। मूर्ति दिव्यज है। शत्रुघ्न नाम करते हैं। माता चण्डहार विभूषित

है। मुख प्रसन्न है। समुदाय सेना चारो ओर खड़ी है। (कार्तिकप्रमाणवहति)

अनेकीके विख्यातसमुदाय कार्तिकीयका विशाख नहीं हुआ। यह चिरकाल पवित्राहित घबस्यामें है। किन्तु वट भ्रममात्र है। उनकी पत्नी देवसेना है। देवसेनाको ही जन्म पडो कहते हैं। सधावनः पडोको पडो माननेसे ही अनेक छिन्दू पुत्रकी कामनासे कार्तिकीयका व्रत किया करते हैं। देवसेनाके पत्न और वाचनादि कार्तिकीयके समान हैं। मार्कण्डेयपुराणमें वर्णित है,—

“कीमारी शक्तिवक्त्रा च मयूरीपरि वल्लिता ।
 योऽहं महायथो तव अग्निना गृह्यविभो ॥”

कुमारशक्ति कार्तिकीय सट्टय मूर्ति धारण और शक्ति ग्रहण कर मयूरवाहनोपरि चारोहृषपूर्वक देखीसे युद्ध करने पायो।

कार्तिकीयपुर—युक्त प्रदेशमें कुमायं जिलेके मध्य दानपुर परगनेकी हुजूर नामक तहसीलका एक नगर। राजकल उसे वैखानाथ या वेजनाथ कहते हैं। वरू प्रचा० २८° ५४' २४" उ० और देगा० ७८° १८' २८" पू० पर अवस्थित है। वहाँ रांजुना नामक एक पुरातन दुर्ग है। उसमें एक काशीमन्दिर बना है। दूसरे भो कर्क पुरातन मन्दिर पडे हैं। किन्तु उनमें कोई मूर्ति नहीं, उनमें राजकल गस्थादि रखा जाता है। चीन-परिव्रजक युचमचंगारकी वर्णनाके अनुसार ई० १७वें शताब्दीमें वहाँ बौद्ध धर्म प्रचलित था। मन्दिरकी दीवारमें एक स्थानपर बुद्धदेवकी मूर्ति आज भी देख पड़ती है। उदयपाल देवकी खोदित प्रक्षारल्लिपिके दो खण्ड वहाँ वर्तमान हैं। उस पर क्रयान्त जन पड़नेसे चकर मिट गये हैं। वहाँ ११२४ शकमें इन्द्रदेवद्वारा प्रदत्त एकलख ताम्बल्लिपि आज भी पड़ी है। उसमें नीचे १४२१ शक लिखा है और गणेशकी एक मूर्ति है। उस मूर्तिके नीचे ११२५ और १२४४ शक भी बना है। कार्तिकीयवत् (सं० प्लो०) कार्तिकीय प्रसूते या, कार्तिकीय-र-सूक्तिप्। दुर्गा, पार्वती। पार्वतीमें शिववीर्य पड़ते देवोंने विघ्न डाला था। उसीसे वह

सकता लखे है। फिर उसकी कर्कोटक नगरभी कहते हैं। कथनानुसार विष्णुचक्रसे खण्डित हो सतीदेवीके कारका एक शंभु वर्षा गिरा था। सुसलमान परिव्राजक इन वस्तुके घन्में लक्ष तीर्थकी बात लिखी गयी है। भाषाट् मासके कृष्ण पक्षमें प्रायः सप्ताधिक लोग कारा जा गङ्गास्नान करते हैं।

वहाँ एक अति पुरातन दुर्ग है। वह ठीक गङ्गा पर अवस्थित है। राजकल उसकी भग्नदगा है। दुर्ग देख्य एवं प्रस्थमें प्रायः ६०० और ३५० हाथ होगी। संवत् १०६५ विक्रमाब्दके (१०१५ ई०) राजा यशोपालकी कितनी ही मुद्रा मिली है। सुतरां निर्देश करना दुःसाध्य है कि—दुर्ग फिर भी कितने दिनका पुराना है। किसी किसीके कथनानुसार कन्नौजके राजा जयचन्द्रने उसे बनाया था।

दुर्गमें निम्नभागके बाजार घाट पर एक मन्दिर देख पड़ता है। उसकी चारो ओर चतुर्वरा या दासाना है। उसमें दुर्गाकी मस्तकशय्य एक मूर्ति पड़ी है। किसी स्थान पर एक शिवलिंग और स्थानान्तरमें नन्दीकी मूर्ति है। सम्भवतः सुसलमानोंने ही उस मन्दिरकी वह दगा की होगी घाटके निकट एक कूप है। उसकी चारो ओर स्तम्भाकृति मीनार उठी है।

सुसलमानोंकी भी बहुतसी इमारतें वहाँ देख पड़ती हैं। उनमें खोजाका कबरस्तान, जामा मसजिद, श्रेष्ठ कुलतानका रोजा मगरेह प्रधान है। निकट ही दारानगरकी एक मसजिद और दो कबरस्तान, कचदरिया गाँवके कुतुब 'शाहमका' राजा और शाहजादपुरके बहादाद खानकी मसजिद भी देखने योग्य है।

पहले लक्ष नगर बहुत समृद्धिशाली और विस्तृत था। गङ्गाकी पश्चिम दिक् उसकी लंबाई एक कोस और चौड़ाई आध कोस रही। पुरातन नगरका भग्नावशेष आज भी देख पड़ता है। पूर्वे लक्ष स्थान पर शुक्रप्रदेगका प्रधान नगर था। किन्तु सन्नाट पकवर इलाहाबादको प्रधान नगर उठा से जय। वहाँसे काराकी समृद्धि नष्ट हुई।

कारा नगर सुसलमानोंकी पनेक ऐतिहासिक घटनाओंके लिये भी प्रसिद्ध है। अवधके नवाब सादफ-उद्-दौलाने कारिके अच्छे अच्छे भवन तोड़े थे। फिर उन्हींका सामान से जाकर नवाबने लखनऊमें अपनी इमारतें बनायीं।

कारामें बट्टिया कंबल बनता है। वहाँ नाना-विध शष्पादि भी उत्पन्न होता है। कारिका कागज भी खराब नहीं। प्रयोध्या और फतेहपुरके साथ कपड़े कागज और और भनाजका कारबार चलता है।

कारागार (सं० स्त्री०) कारा एव भागारं काराये बन्धनाय वा भागारम् । बन्धनगृह, कैदखाना ।

कारागुप्त (सं० त्रि०) कारायां बन्धनागारे गुप्तः बद्धः, ०-तत् । काराखण्ड, कैदी ।

कारागृह (सं० स्त्री०) कारा एव गृहं काराये बन्धनाय वा गृहम् । कारागार, कैदखाना, जेल ।

कारागोला—विहार प्रान्तके पुरनिया जिलेका एक गाँव। यह पचा० २५° २३' ३" उ० और देशा० ८०° ३०' ५१" पू० पर अवस्थित है। उत्तरवर्द्धमें रेल निकलनेसे पहले लोग कारागोलकी राह ही दार-जिलेक जाते थे। आजकल भी साहबगञ्ज और कारागोलके बीच जहाज (स्टीमार) चलता है। किन्तु कारागोलके सामने रेल पड़ जानेसे वर्षाकाल व्यतीत पारोहीकी एक कोस दूर ही उतार देते हैं। यहाँ एक बड़ा मेला लगता है। पहले यही मेला भागलपुर जिलेके पोरपेती स्थानमें होता था। फिर कुछ समय तक मेला पुरनियामें रहा, १८५१ ई० से कारागोलेमें लगने लगा। यहाँ दरभङ्गाके महाराजको कुछ बालकामय भूमि पड़ी, जो मेलाका स्थान बनी है। १० दिन घूमधाम रहती है। कितनी ही दुकानें लगती हैं। नाना प्रकारके श्यामी-जनी तथा सुनो-पञ्च, लौहद्रव्य और प्रयोजनीय वस्तु विक्रिते हैं। नेपासी कुची, मुजाली, कुकरी, बैल, चंवर, साख और टट् खाते हैं। मेलेमें कोई तीस-चाबीस हजार लोग आते हैं।

काराधुनी (सं० स्त्री०) कारायाः गन्दस्य प्राधुनी

भूमिमें गिर गया। फिर वह शरवणमें पहुँच गया, जिससे कार्त्तिकेयका जन्म हुआ। किन्तु वीर्यकी पतन-विषयमें पार्वती ही मुख्य कारण थीं। उसीसे-उन्होंने कार्त्तिकेयप्रसूके नामसे प्रसिद्धि नाम की है।

कार्त्तिकीकोत्सव (सं० पु०) कार्त्तिकियां कार्त्तिकी पौर्ण-मास्यां भयः उत्सवः। कार्त्तिकी पूर्णिमाकी होनेवाला उत्सव, कतकीका उत्सव।

कार्त्तिक (सं० पु०) कर्त्तृपत्यम्, कर्त्तृण्य। कर्त्तिकी पुत्र।

कार्त्तिक (सं० स्त्री०) कर्त्तृपत्य भावः, कर्त्तृ-पत्य्। १ समुदाय, कुलियत। २ सम्पूर्णता, खातिमा।

कार्त्तिक (सं० स्त्री०) कर्त्तृ-पत्य्। १ साकश्य, कुलियत। २ सम्पूर्णता।

कार्त्तिक (सं० स्त्री०) कर्त्तमेन रत्नम्, कर्त्तम-पत्य्। १ कर्त्तमयुक्त, कीचड़से भरा हुआ। २ प्रजापति कर्त्तम सम्बन्धीय।

कार्त्तिक (सं० स्त्री०) कर्त्तम-ठक्। कार्त्तिक, कीचड़से भरा हुआ।

कार्पट (सं० पु०) कर्पट इव पाकारी-इत्यास्ति, कर्पट-पत्य्। १ जल, लाल। २ कार्यप्रार्थी, उम्मेदवार। (कर्पट एव स्वार्थे पत्य्) ३ लीपवस्तुल्लङ्घ, चिद्यङ्गा।

कार्पटगुप्तिका (सं० स्त्री०) कार्पटेन खण्डवश्वेष गुप्ता, कार्पटगुप्ता स्वार्थे कन्-टाप् भवति इत्यम्। १ वृक्षा। २ भोजी।

कार्पटिक (सं० पु०) कार्पटं भक्तस्तत्त्वं वेत्ति-कर्पटेन चरति वा, कार्पट-ठक्। १ मर्मवेदी, मतसवकी वात समझनेवाला। २ तीर्थयात्रासिक्क।

कार्पण्य (सं० स्त्री०) क्षणस्य भावः, क्षण-पत्य्। १ क्षणपता, कंजूसी। २ दीनता, दुर्द्वारी।

कार्पास (सं० स्त्री०) युक्त, सङ्घर्ष।

कार्पास (सं० पु० स्त्री०) कर्पास एव स्वार्थे पत्य्। १ कार्पास वृक्ष, कपासका पेड़। वैद्यकीके मतमें इसकी पत्रादिसे सर्पविष निवारित होता है। चिकित्साका क्रम है—दहन मात्र पर ही रोगीके कपासकी पत्तीका टाई तोले उस पत्राका चौर-सत स्थानकी जलसे

परिष्कार कर वही-पत्तीका रस-उस पर लगाया जाइये।; फिर-उसी समय-शरीरका-कोई स्थान फूल जाय तो-भी उस पर कपासकी पत्तीका रस ही लगाया जाता है।

कार्पास वा रुई सूक्ष्म केशवत् अथव नर्म-शुभ्र पदार्थ है। वह कार्पास नामक वृक्षके फूलमें होती है। कार्पास वृक्ष दस देयमें बहुत होते हैं। उक्त जातीय वृक्ष प्रायशःके उष्ण प्रदेशमें ही प्रायः देख पड़ता है। अंगरेज उद्भिदतत्त्वविदोंने कार्पास वृक्षको Malvaceae श्रेणीके भन्तगत रखा है। उसका अंगरेजी वैज्ञानिक नाम Gossypium है। कार्पासके कई प्रकार भेद हैं। यथा—

१ Gossypium arboreum—हिन्दोमें इसकी देवकपास या सुरमा, सन्थालोमें भांगकुचकोम या बुदो कस कोम, बंदेशखण्डीमें योगली या सुरमा, युक्त-प्रदेशोंमें मनुष्य, रबिया या सुरमा, पञ्जाबीमें कपास, मध्यप्रदेशमें मन्नावा या देव, बम्बेयामें देवकपास, मराठीमें देवकपास, मडिचुरीमें देवकपास, तामिलमें सेमपाशुयो, तेल्ङ्गीमें पट्टी चौर ब्राह्मी भाषामें उरको तु-वा कहते हैं।

२ Gossypium herbaceum—हिन्दुस्थानमें रुई या कपास, बङ्गालमें तुला या कपास, पञ्जाबमें रुई, सिन्धुमें घीम, बम्बईमें कपास वा रुई, गुजरातमें रु या कपास, दक्षिणमें कपास, तामिलमें वनपरतो या पाउली, तेलङ्गामें पाउली, पट्टुदो, परली या परिच, ब्रह्मदेशमें-शङ्ख या वा, अरबमें क्रातम या उम्पू ल चौर फारसमें डग हो-पत्या कहते हैं।

३ भारतमें एक दूसरी कपास भी होती है। उसका अंगरेजी वैज्ञानिक नाम Gossypium barabense है। भारतमें उसे चमरीकाकी रुई कहते हैं।

कार्पासका वृक्ष अष्टाक्षत सुदृ-होता है। पत्र फराकार वा हस्तसदृश रहते हैं। उसके देवनेसे मानस पड़ता है मराना तीव्र पत्र एकद संसन्न हुये हैं। मध्यका अंश अष्टाक्षत बढ़ा होता है। जानसे स्वतन्त्र बोड़ी निकलने पर पीला फूल लगता है। बोड़ीके फटने पर भीतर रुई निकलती है। बौद्धियां पत्तोंसे

सत्त्वादिका, ६-तत् । शब्दोत्पादक यष्ट प्रभृति, एक यात्रा ।

कारापय (सं० पु०) दिशविशेष, एक सुक्त । प्रस देशके शासनकर्ता सङ्ग्रामपुत्र अङ्गद और चन्द्रवृत्तु घे ।

“अष्ट चन्द्रकेतुच सप्तोऽप्यात्मनश्चतुः ।

शासनान् रघुनाथस्य शब्दं कारापयशरीरं” (रघुवंश १११०)

कारापान्न (सं० पु०) कारा कारागार पालयति रक्षति, कारा-पाल-यच् । कारागार-रक्षक, कैद-स्थानिका मुहाफिज् ।

काराभू (सं० स्त्री०) कारायै बन्धनाय भूः स्थानम् । बन्धनस्थान, कैदकी जगह ।

कारायिका (सं० स्त्री०) कं जलं आराति विचरण-स्थानत्वेन गृह्णाति, क-आ-रा-गु-ल-टाप् इत्वच् । १ सारसी, मादा सारस । २ बच्चाका, मादा बगला ।

कारावर (सं० पु०) चर्करा जातिविशेष, एक चमार निपादके औरस और वैदेही स्त्रीके गर्भस यष्ट जाति उत्पन्न है ।

“कारावरी शिवदातुर्भक्तारः प्रसूतिः ।” (सु १०३२)

कारावास (सं० पु०) कारायां वासः, ७-तत् । कारा-गृहमें रह रहनेकी स्थिति, कैद ।

कारावेश (सं० स्त्री०) कारा एव काराय वा वेश्म गृहम् । कारागार, कैदस्थाना, जेल ।

काराष्ट्र (सं० पु०) १ काराष्ट्रदेशीय ब्राह्मण । २ काराष्ट्र देश । महाभारतमें यष्ट-कारघाटक नामसे उक्त है । वर्तमान नाम काराह है । काराष्ट्रदेवी ।

कारि (सं० स्त्री०) क्रियते असौ, कृ-इच् । विभाषास्व-परिप्रयोगेणच । पा ३३३१ १ क्रिया, फल, काम । (त्रि०) करोति, कृ-इच् । कृषकेशोर्ण कारुः । उच्यं ३१२८ । २ शिल्पी, कारीगर ।

कारिक (सं० स्त्री०) कारिः स्वायं कौत् । क्रिया, याम् । कारिक (सं० स्त्री०) खरकृत, कारवेनी एक चिकना ककड़ी । यह तानिकी ठीक करती है ।

कारिक (सं० पु०) कुररकी करनेवाला ।

कारिकर (सं० त्रि०) कारिं क्रियां शिल्पकर्म इति यायत् करोति, कारि-क-ट । शिल्पकारक, कारीगर । कारिकरी (सं० स्त्री०) कारिकर-डीप् । शिल्प-कारिणी, कारीगरः औरत ।

कारिका (सं० स्त्री०) करोतीति, कृ-ख-ल-टाप् अत इत्वम् । १ अमिनेत्री, नटिनी । २ क्रिया, काम । ३ विवरण, तर्कशील । ४ श्लोक, शिर । ५ शिल्प, कारीगरी । ६ यातना, तकलीफ । ७ छद्म, सूद । ८ कष्टकारी, कटैया । ९ बहु अर्थबोधक अथ बंधन, विग्रिष्ट कविता, एक गायत्री । १० सममें घोड़ेसे बड़ा मतलब निकानते है । १० कर्त्वी, करनेवाली । ११ मर्यादा, हद । १२ एक सङ्कीर्ण रागिणी ।

कारिकाल—करमगृहल उपकूलका फरासीनी उपनिवेश और नगर । तामिल भाषामें उसे ‘कारिखाल’ प्रयात् मङ्गलाका माला कहते हैं । उसके उत्तरपश्चिम एवं दक्षिण तक्षोर-राज्य और पूर्व बङ्गीपसागर है ।

कारिकाल प्रदेशमें कोई ११० ग्राम विद्यमान हैं । लोकसंख्या ८१ हजारसे अधिक है । कावेरी नदी पांच सुख होकर वहांसे सागरमें जा गिरी है । उक्त प्रदेशके प्रधान नगरका भी नाम कारिकाल है ।

यष्ट यत्ना १० ५५ १० ७८ और देशां ७८ ५२ २० ५० पर समुद्रसे कोई पौन फीस दूर अवस्थित है । सिङ्गलहोपके साथ कारिकालका वारहो मास वापसका याणिय चलता है । समझो छोड़-आष्ठा-मान हीप और फरासीके साथ भी याणिय होता है । वहांसे नाना स्थानोंको भारतीय कुली भेजे जाते हैं । कारिकाल बन्दरने एक आलीकगृह है । यह समुद्रसे २२ हाय ऊपर स्थापित है ।

१७३६ ई० को फरासीसियोंने कारिकाल का एक दुर्ग निर्माण किया था । अल्पकाल पीछे ही राजासे फरासीसियोंका विषाद उपस्थित हुआ । १७४४ ई० को ५ वीं अपरलको तक्षोरराजनी समर्थ कारिकाल पर आक्रमण किया था । किन्तु १७४८ ई० को २१ वीं दिसम्बरको लन्देने कारिकाल और तत्-संलग्न ८१ ग्राम फरासीसियोंके दे डाले । १७६० ई० को अंगरेज-सेनाने कारिकाल घेरा था । फरासी-सियोंने दसदिन अनवरत युद्ध किया अंतमें ५ वीं अपरलको अंगरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया । उसके पीछे फिर कारिकाल तीन बार अंगरेजोंके हाथ लगा । १८२० ई० को १४ वीं जनवरीको उक्त स्थान सर्वदाके

हामी थी। उसमें प्रथम कार्तिकेयका जन्म हुआ। फिर उन्होंने देवीदे सेनापति वन तारकासुरकी मार हासा। दूसरे कल्पमें भी उमी प्रजा तारकासुरका उत्पीड़न करने पर ब्रह्माने देवीमें अग्निनी चारावना करनेकी कहा था। तदनुसार उन्होंने अग्निकी समुत्पत्तिया। अग्नि शक्तव्य धारण कर प्रतिगापनमें महादेवके समीप पहुंचे थे। किन्तु महादेव सब भेद समझ गये। उसीसे सुरत विघ्न समझ करूँ हो उन्होंने अन्नक्षितवीर्य अग्नि पर फेंका था। अग्नि रुद्रका तेज धारण कर ग सके। फिर उन्होंने उमि गङ्गामें डाल दिया। उसीसे कार्तिकेयने द्वितीय वार जन्म लिया था। उनका नामान्तर—महासेन, शरजन्मा, पड़ामन, पांडेतीमन्दन, स्कन्द, सेनानी, अग्निभू, सुष्ट, बाहुलेय, तारकाजित्, विद्याध, शिखिशङ्कन, पावमासुर, शक्तिधर, कुमार, शौचदारण, आग्नेय, दीप्तकीर्ति, अग्नेय, मयूरकेतु, धर्मात्मा, भूतेग, महिपादन, कामजित्, कामद, कान्त, सत्यवाक्, भुवनेश्वर, शिष्य, शीघ्र, शुचि, चण्ड, दीप्तवक्, शुभानन, अमोघ, चनघ, रोद्र, प्रिय, अन्धानन, दीप्तशक्ति, प्रगान्तात्मा, भद्रकत्, कूटमोडग, यष्टीप्रिय, पवित्र, माण्ड्यकन, कन्यावती, विमल, स्वाङ्ग्य, रिवतीसुत, प्रभु, नेता, नैगमिय, सुदुश्चर, सुश्रुत, मलित, बालक्रीडनप्रिय, खवाही, ब्रह्मशारी, शूर, शरवकोह्य, विद्यामित्रप्रिय, प्रियक, गाङ्ग, स्वामी, द्वादशभोजन, देवनेमाप्रिय, वासुदेवप्रिय, देवसेनापति, बालवय, लकवाकुब्ज, महाबाहु, सुह-रङ्ग, शिखिध्वज, पावकालम, रुद्रसूनु, यद्विरा और दितिजात्मक है।

कार्तिकेयदेवका ध्यान इस प्रकार है,—

“कार्तिकेय महाभाग मयुरोपरि स्थितम् ।
 तप्तबाणधरपीथे शक्तिधरं धरप्रदम् ॥
 विभुं सद्गुणधारं शान्तं धारमुत्तमम् ।
 प्रसन्नवदनं शैवं सर्वसौभाग्यदायकम् ॥”

महाभाग कार्तिकेय मयूर पर अवस्थित है। उनका वर्ण तप्त स्वर्णको भाति चमकता है। शक्ति हाथमें लिये हैं। घट पर देवशाले हैं। मूर्ति दिभुज है। मयूका नाम करते हैं। माता अलङ्कार विभूषित

है। सुष्ठ प्रसन्न है। समुदाय सेना चारो ओर घुंघो है। (कार्तिकपूजावर्ति)

अनेकीके विद्यासाधुसार कार्तिकेयका विवाह नहीं हुआ। वह चिरकाल पवित्राश्रित सवस्थामें है। किन्तु वह भ्रममाव है। उनकी पत्नी देवसेना है। देवसेनाको ही हम पत्नी कहते हैं। सभागतः घटोको पत्नी माननेसे ही अनेक छिन्दू-पुत्रकी कामनासे कार्तिकेयका जन्म लिया करते हैं। देवसेनाके अन्न और याचनादि कार्तिकेयके समान हैं। मार्कण्डेय-पुराणमें वर्णित है,—

“कीमारी मदिहसा च मयुरोपरि स्थिता ।
 योऽनु मन्वाययी तव पत्नि वा गुह्यविवो ॥”

कुमारशक्ति कार्तिकेय सट्टग-मूर्ति धारण और शक्ति घटप कर मयूरयाचनीपर चारोपधपूर्वक देवोंसे युद्ध करने पायो।

कार्तिकेयपुर—युक्त प्रदेशमें कुमायूं जिलेके मध्य दान-पुर परगनेकी झुंझूर नामक तटस्थानका एक नगर। आजकल उसे वेद्यानाथ या वेजनाथ कहते हैं। यह अक्षां २८° ५४' २४" उ० और देशां ७८° १८' २८" पू० पर अवस्थित है। वहां रांजुला नामक एक पुरातन दुर्ग है। उसमें एक कालीमन्दिर बना है। दूसरे भी कई पुरातन मन्दिर पड़े हैं। किन्तु उनमें कोई मूर्ति नहीं, उनमें आजकल गस्यादि रखा जाता है। चीन-परिव्रजक युपनचंयाङ्गकी वर्णनाके अनुसार ई० १०वें शताब्दीमें वहां बौद्ध धर्म प्रचलित था। मन्दिरकी दीवारमें एक स्थानपर बुद्धदेवकी मूर्ति आज भी देख पड़ती है। उदयपान देवकी जोदित प्रसन्नरूपिके दो खण्ड वहां वर्तमान हैं। उस पर क्रमागत जन पड़नेसे अक्षर मिट गये हैं। वहां ११२४ शकमें इन्द्रदेवद्वारा प्रदत्त एकालख्य ताम्रलिपि आज भी पड़ी है। उसमें नीचे १४२१ शक लिखा है और गणेशकी एक मूर्ति है। उस मूर्तिके नीचे ११२५ और १२४४ शक भी बना है।

कार्तिकेयप्रसू (सं० स्त्री०) कार्तिकेय प्रसूत या, कार्तिकेय-प्रसू-क्षिप्। दुर्गा, पार्वती। पार्वतीमें गियवीर्य पड़ते देवोंने विघ्न हासा था। उसीसे यह

निये फरासीसियोंको सौंप दिया गया। आज भी वहाँ फरासीसियोंका अधिकार है। भारतमें उनका प्रधान स्थान मुन्डिचेरी है। उसीके गवर्नरकी देखभालमें कारिकानका शासनकार्य निर्वाहित होता है। आज भी वहाँ फरासीसियोंकी साधारण-तन्त्र प्रथा प्रचलित है। म्युनिसिपाल कौन्सिलको छोड़ वहाँ एक दूसरी सभा भी है। उसे लोकल कौन्सिल कहते हैं। उसमें नगरस्थ म्युनिसिपलिटिकी अधिकार व्यक्त होकर विषयोंकी भी प्राप्ति चला होती है। उसको छोड़ दूसरी भी एक सभा है। उसका नाम कौन्सल जनरल (Consul General) है। मुन्डिचेरीमें उसका अधिकार होता है। उसमें भारतके प्रत्येक फरासीसी अधिकृत स्थानसे प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। प्रतिनिधि व्यवस्था प्रजाके निर्वाचित होते हैं। उसको छोड़ फरासीसकी सेनेट और डिप्युटी सभामें एक एक भारतीय प्रतिनिधि रहता है। वह प्रतिनिधि भारतकी प्रजा द्वारा निर्वाचित होते हैं। कारिकानके वन-विभाग, पूर्ण विभाग और शास्त्रिणाके विभागमें एक एक कर्ता (Chief) रहता है। भारतीय प्रगरेज गवर्नमेण्टका भी एक प्रगरेज प्रतिनिधि कारिकानमें नियुक्त करता है।

कारिख (हिं० स्त्री०) १ कासिमा, स्याही, कालापन। २ कज्जल, काजल। ३ कलङ्क, धव्वा।

कारिणी (सं० स्त्री०) करीति, क-थिनि-डाप्। अपना कार्य निष्पादन करनेवाली स्त्री, जो औरत अपना काम कर लासती हो।

कारित (सं० लि०) क-थिच् कर्मिण्यत्। १ पत्न्य द्वारा सम्पादित, कराया हुआ। (स्त्री०) २ क्रिया-विशेष, मुताही-उल्-मुताही।

कारित (हिं० पु०) काठवेष्ट।

कारिताः (सं० स्त्री०) कारित-टाप्। अधिक हठि, प्यादा हृद।

“अधिकेन तु या इतिरविद्या सम्पद्यतिता।

काम्नावाचरता निवृत्तं दातव्यं देवा तु कारिताः” (रिवा० गी०)

पाप्यु जासमें पट्टणी व्यक्ति को अधिक हृद देना स्त्रीकार करता, सखीका नाम कारिता है।

कारितात् (सं० लि०) अन्तमें कारित, क्रिया रखने-वाता, जिसके अखीरमें मुताही-उल्-मुताही रहे।

कारी (सं० पु०) करीति, क-थिनि। दारक, कर्ता, करनेवाला। यह योगिक मन्त्रके अन्तमें पाता है।

कारी (सं० स्त्री०) कथयति चिन्सि कण्टकरिंति शेषः, क-इच्-डीप्। स्वनामख्यात सुप्रविशेष, एक विह।

यह कण्टकारी और प्राकृतकारी भेदसे दो प्रकारकी होती है। इसका संस्कृत पर्याय—कारिका, कार्या, गिरिजा और कटपत्रिका है। राजनिघण्टुके मतसे यह कथैलो एवं मोठी, पिचनमायक, अग्निवर्धक, मस-रोधक, रुचिकारक, कण्टघोषक और भारी होती है।

जारी (फा० वि०) घातक, गहरा मर्मभेदी।

कारी (हिं०) काशे दोष।

कारीगर (फा० पु०) १ गिस्ते, कारीगरी करनेवाला, जो हाथसे काम बनाता हो। (वि०) २ निपुण, कुशलमन्द्।

कारीगरी (फा० स्त्री०) १ गिस्ते, हाथका काम। २ रचना, बनावट।

कारीगरी (हिं० स्त्री०) कण्ठजीरक, काली जीरी।

कारीर (सं० स्त्री०) करीरस्य अवयवः, करीर-अण्। पञ्चादिभ्यो वा पा० श्च० श्च०। १ करीर फल, करीरका फल। २ करीरपुष्प, करीरका फूल। करीरका फल कटु, घाही, चण्य, रुचिप्रद, कफपित्तकर,

किञ्चित् कषाय तथा वातनाशक है और पुष्प भेदी, कटुक, कफनाशक, पिचकर, कषाय, रुचिकर, भव्य एवं पथ्यद होता है। (वेद्यकनिघण्टु) (वि०) २ वंश्याङ्कुर निर्मित, बांसकी जड़का बना हुआ। ४ करीरफलसम्बन्धीय, करीरके फलसे शरीकार रखनेवाला।

कारीरी (सं० स्त्री०) कारं (कं जसं षष्ठ्यङ्कितं, क-चट् थिच्) मन्त्रसमेधं ईरयति, कार-ईट्-थप्-डीप्। छटिके स्थिये क्रिया जानेवाला एक यज्ञ।

कारीर्य (सं० स्त्री०) करीरस्य अवयवः, करीर-अण्। १ कारीर, बांसकी जड़ या खाक। (लि०) २ करीर-फलसम्बन्धीय, करीरके फलसे शरीकार रखनेवाला।

कारोप (सं० स्त्री०) करीरपाना समूहः, करीर-अण्।

भूमिमें गिर गया। फिर वृष्ट शरवणमें पड़च गया, जिससे कार्त्तिकेयका जन्म हुआ। निन्तु धीरेकी पतन-विषयमें पावती ही मुख्य कारण थीं। उधेसे उन्होंने कार्त्तिकेयप्रसूके नामसे प्रसिद्धि लाभ की है।

कार्त्तिकोत्सव (सं० पु०) कार्त्तिक्यां कार्त्तिकी पौर्ण-मास्या भवः उत्सवः। कार्त्तिकी पूर्णिमाको होनेवाला उत्सव, कतकीका जलसा।

कार्त्तिक (सं० पु०) कर्त्तरपत्यम्, कर्त्तृ-ण्य। कर्ताके पुत्र।

कार्त्तिक (सं० स्त्री०) छत्तुल्लस्य भावः, छत्त-पण्। १ समुदाय, कुलियत। २ सम्पूर्णता, खालिमा।

कार्त्तरन् (सं० स्त्री०) छत्त-पण्यञ्। १ साकण्य, कुलियत। २ सम्पूर्णता।

कार्दम (सं० त्रि०) कर्दमेन रत्नम्, कर्दम-पण्। १ कर्दमयुक्त, कीचड़से भरा हुआ। २ प्रज्ञापति कर्दम सम्बन्धीय।

कार्दमिक (सं० त्रि०) कर्दम-ठक्। कार्दम, कीचड़से भरा हुआ।

कार्पट (सं० पु०) कर्पट इव आकारो ऽस्यास्ति, कर्पट-पण्। १ जतु, लाड़। २ कार्यप्राप्ति, उभेद-वार। (कर्पट एव स्वार्थे षण्) ३ जीर्णवस्त्रखण्ड, चिथड़ा।

कार्पटगुहिका (सं० स्त्री०) कार्पटेन खण्डवस्त्रेण गुहा, कार्पटगुहा स्वार्थे कन्-टाप् भत इत्वम्। १ बट्वा। २ भोसी।

कार्पटिक (सं० पु०) कार्पटं भगवत्स्वच्छं धेत्ति कर्पटेन चरति वा, कार्पट-ठक्। १ मर्मवेदी, मतज्ञकी बात समझनेवाला। २ तीर्थयात्रासेवक।

कार्पण्य (सं० स्त्री०) छपणस्य भावः, छपण-पण्यञ्। १ छपणता, कंजूसी। २ दीनता, युद्धारी।

कार्पाण (सं० स्त्री०) युद्ध, लड़ाई।

कार्पास (सं० पु० स्त्री०) कर्पास एव स्वार्थे षण्। १ कार्पास वृक्ष, कपासका पेड़। वैद्यकी कृतमें इसके पत्रादिसे सर्पविष निवारित होता है। चिकित्साशास्त्रमें—दंशन मात्र पर ही रोगीको कपासकी पत्तीका टाई तोले रस पिनामा घोर रक्त-स्नानको जलसे

परिष्कार कर वही पत्तीका रस-उस पर लगाया जाइवे। फिर उसी समय घरोरका कोई स्थान फूल जाय तो-भौ उस पर कपासकी पत्तीका रस ही लगाया जाता है।

कार्पास वा रुई स्वम् केयवत् अयच नर्म-शुभ्र पदार्थ है। वृक्ष कार्पास नामक वृक्षके फूलमें होती है। कार्पास वृक्ष इस देशमें बहुत होते हैं। उक्त जातीय वृक्ष प्रायशेकै उष्ण प्रदेशमें ही प्रायः देख पड़ता है। अंगरेज उद्भिद्गतत्वविदोंने कार्पास वृक्षको Malvaceae श्रेणीके वनस्पत रखे है। उसका अंगरेजी वैज्ञानिक नाम Gossypium है। कार्पासके कई प्रकार भेद हैं। यथा—

१ Gossypium arboreum—हिन्दुओंमें इसको देवकपास या नुरमा, सन्थालीमें मागकुसुमीय या बुदो कसुमी, बंगालमें योमली या नुरमा, गुज-प्रदेशमें मनुषा, रविद्या या नुरमा, पञ्जाबीमें कपास, मध्यप्रदेशमें मनुषा या देव, बम्बेयामें देवकपास, मराठीमें देवकपास, मद्रिपुरीमें देवकपास, तामिस्रमें सेमपाद्यो, तेलेङ्गीमें पट्टी भोर माली भाषामें इसको नु-वा कहते हैं।

२ Gossypium herbaceum—हिन्दुस्थानमें रुई या कपास, बङ्गालमें तुला या कपास, पञ्जाबमें रुई, सिन्धुमें योम, बम्बेयमें कपास वा रुई, गुजरातमें रु या कपास, दक्षिणमें कपास, तामिस्रमें वनपरती या पासती, तेलेङ्गमें पासती, एदुदो, परती या परिक्त, मद्रप्रदेशमें वाह या वा, अरबमें कुरातम या उस्मूल भोर फारसमें उत सो पम्वा कहते हैं।

३ भारतमें एक दूसरी कपास भी होती है। उसका अंगरेजी वैज्ञानिक नाम Gossypium barbaense है। भारतमें उसे अमरोहाकी रुई कहते हैं।

कार्पासका वृक्ष अर्धवृक्षात्त सुदृ-होता है। पत्र कराकार वा हस्तसदृश रहते हैं। इसके देवनेसे आत्म-पड़ता है मानो तीन पत्र एकत्र संलग्न हूये हैं। मध्यका अर्ध-अर्धवृक्षात्त बड़ा होता है। जलसे अत्यन्त बौद्धी निकलने पर पीला फूल लगता है। बौद्धी फूलने पर भीतर रुई निकलती है।

१ करोपसन्नुह, कसं या गोबरका टेर। (त्रि०)
 २ करोपसे उत्पन्न होनेवाला जो गोबरसे निकला हो।
 कारौपि (सं० पु०) १ व्यक्तिविशेष, कोई शख्स।
 २ वंशविशेष, एक खान्दान या घराना।
 कार (सं० पु०) करोति, क-उष्। (कषपागिमिसरिताय्यः
 :उष्। उष्। १।) १ विश्वकर्मा, (भावे उष्) २ शिल्प,
 कारीगर। ३ शिल्पी, दस्तकार। ४ कवि, गायर,
 घडाई करनेवाला (त्रि०) ५ भवानिवाला। ६ भया-
 षड, खौफनाक।
 कारक (सं० त्रि०) कारु स्वार्थे कन्। १ शिल्पी, काम
 मानेवाला। (पु०) २ कर्मरत्न हृद्य, कर्मरत्नका पेड़।
 कारककर्म (सं० स्त्री०) स्वरूपकर्म, व्यवर्षापिन।
 कारुचौर (सं० पु०) कारुणा शिल्पेन चोरयति, कार-
 चुर-धत्। सन्धिचौर, संधे लगानेवाला चौर।
 कारुज (सं० पु०) कं जलं कारुजनि, का-घा-रुज क।
 १ करम, हाथीका यन्त्र। २ फेन, भाग। ३ इच्छोक,
 चीटीका, टीला। ४ नागकेशर। ५ गौरिक, गेरू।
 (कारुतो जायते, कारु-जन-ड) ६ शिल्पिनिर्मित चित्र,
 कारौंगरकी, चनाथी, तसवीर। ७ शरीरमें स्त्रतः
 तिलकी भांति काला काला निकलनेवाला चिह्न।
 कारौणक (सं० त्रि०) करुणायां गौलमस्य, करुणा-
 षड्। दयाल, मिहरबान।
 कारुण्डिका (सं० स्त्री०) कारुण्डो स्वार्थे कन्-टाप,
 ङखय। जलोका, लौक।
 कारुण्डिणी (सं० स्त्री०) कुतमिता ईश्वत् वा रुण्डो मूर्ध्व-
 क्षीन इय कोः कादेशः। जलोका लौक।
 कारुण्यं (सं० स्त्री०) कारुण्यस्य भावः करुणा एव वा,
 करुणा-यञ्। करुणा, मिहरबानी। स्वार्थे ङोङ्
 दृष्टरेके दुःखनिवारणकी इच्छाका नाम वारुण्य है।
 कारुण्यसागर (सं० पु०) ज्वरानिसारका एक रस,
 वोखारके दस्तौकी एक दवा। पारिका भेष्यं (भक्ष न
 निमनेसे एक पाश) १ तोला, गन्धर्क २ तोला तथा
 अथ २ तोला संघंपतेसमें घोट और भेड़रोजके रसमें
 पिस प्रहर काल बालुका यन्त्र वा मृत्तुर्घटने प्रकाने
 है। फिर घबघार, सर्जिघार, सोहागा, विटं, संस्त्रं,

सींचर, सीभर, करकचलयण, त्रिकट (घोठ, मिटं,
 पीपल), चींतेकी कड़, विप, लौरा और विडङ्ग सबका
 ५ तोला कस्तूरी डालनेसे यह औषध बनता है।
 (रश्मिद्वारा ६४४)
 कारुप (सं० पु०) करुपस्य राजा। १ करुप देगके
 अधिपति, दन्तवक्र। (करुपोभिजन एषाम्) करुप-
 देशवासी। इस अर्थमें यह शब्द नित्य बहुवचनान्त
 रहता है। ३ मनुके पुत्र।
 कारुपक (सं० त्रि०) कारुप-स्वार्थे कन्। १ करुप-
 देशवासी। (पु०) २ करुपदेशके राजा। सर कनिष्ठाम-
 के मतसे वर्तमान ग्राहावाद जिला ही प्राचीन करुप-
 देग है।
 कारुण् (सं० पु०) १ हजरत मूसलके चचेरे स्नाता।
 यह बड़े धनी थे, परन्तु कभी खैरान न करते थे।
 इनके खजानेकी चाबियाँ चाकीम खूबरो पर चलती
 थीं। (वि०) २ कृपण, इच्छील प्रकार धनराशिको
 'कारुण्का खजाना' कहते हैं।
 कारुणी (सं० पु०) अश्वविशेष, किसी विश्वकर्मा घोड़ा।
 कारुरा (सं० पु०) १ मूकनी शीमी। इसमें रोगीका मूत्र
 रख वैद्यकी देखते हैं। २ मूत्र, पेगाव। ३ बाहुदकी
 कुपी। यह जलाकर शत्रुपर चलायी जाती है।
 कारुष (सं० पु०) करुषस्य राजा, करुष-यण्। १ करुष
 देगके राजा। २ करुषदेशवासी। ३ एक जाति।
 प्रायः वैश्यकी सवर्ण स्त्रीसे यह जाति उत्पन्न हुयी है।
 "वेद्यात् नु कारुषे प्रायान् सुधन्वाथै एव च।"
 कारुषव विगना च रेतः खालन एव च।" (मनु १०।११)
 कारुष्य (सं० पु०) करुषस्य राजा, करुष-यण्। १ करुषके
 राजा दन्तवक्र। (स्त्री०) २ निवमल, पांखका मेल।
 कारियव (सं० त्रि०) करिपोरिदम्, करिणःपण्। अस्ति-
 सन्ध्वनीय, हाथीसे सरीकार रखनेवाला। 'इयिनीको'
 दूध ईश्वत् कपाययुक्त मधुर रस, बलकारक और
 गुह्यक है। हाथीका दधि—कपाययुक्त मधुर रस और
 मलयवृक्षकारक होता है। कारियव-वृत्त मन्मथुरीषक,
 मित्ररथ, घनि-कर, कृष्ण और धक्क, कुल, विप्ररीग तथा
 क्रमिनायक है। मूत्र ईश्वत् तिलयुक्त लवणरस, नादेन,
 वायुनाशक, पिचवदेन और तोषण है।

टकी रहती है। फ़टनेके समय टका पंग फ़ैल जाता है। इसमें स्वतन्त्र फ़ूल फूटते हैं, कपास बोना जाता है। नई तो धूप या पौधमें वष दिगड़ जाता है। कार्पासके फ़ुटसे बीज निकाल लेना पड़ता है।

स्थानभेदसे कार्पास बीजके बोनेका समय निर्दिष्ट है। प्रायः आश्विन और कार्तिक मास ही बपनका उत्तम समय है। खाक गोबर या गोरे प्यथा तोनोंकी एकत जनमें गसा इसमें बीज भिगो देते हैं। एक दिन भिगोनेके पीछे बीज जलमें निकास कर कुछ देर धूपमें सुपाते हैं। अधिक शुष्क करना भी निषिद्ध है। उसके पीछे अच्छी ज़ोती जमीनमें एक या डेढ़ हाथके अन्तर ४५ पंगुलि परिमाण गत छोड़ ३४ बीज छाल ऊपरसे कुछ मट्टी चढ़ा देते हैं। एक दिनमें ही अद्दर फूट जाता है। अद्दरोंमें जो उत्कृष्ट होते, उनमें केवल दो उषी स्थान पर रख दूसरे निकाल कर स्थानान्तरमें लगाये जाते हैं। पौदा निकलने पर निरर्थक हथ नष्ट करना पड़ता है। कार्पासका बीज फेंक देनेकी बीज नहीं। इसकी खरीसे अच्छी खाद बनती है। फिर विनोला विनानेमें गाय-भैंस दूध भी पड़त देती है। किसी जमीनमें परावर २३ वर्ष कार्पास उपजनेसे फिर उसमें अच्छी उपज नहीं होती। किन्तु विनोलेकी खरी खाद तो तरङ्ग हासनेसे जमीनकी सर्वरतागति कुछ बनी रहती है। कपासको जमीनमें सब तरङ्गकी खरी खादकी भांति पड़ती है। खनीकी अच्छी तरङ्ग पूर कर इसमें खरी मट्टी नराबर मिला एक सप्ताह रख छोड़ना चाहिये। फिर उसे खेतमें डालनेसे अच्छा लाभ होता है। प्रायः प्रति बीघे मन या आधमन चर्द उपजती है। किन्तु विवेक यत्न करने पर एक बाघमें छह मन तक कपास निकल सकती है।

हिन्दुस्थानमें साषों बीघे कपास बोयी जाती है। प्रति वर्ष उसकी बढ़ती होती है। नम और मनुष्य दो तरङ्गकी कपास यहाँ उपजती है। रवाहावादकी राधिया कुछ अच्छी होती है। कुमायूं और गढ़वालमें पहाड़ी कपास लगायी जाती है। फोनपुरके सरकारी खेतोंमें १८८१-८२ ई० को अमेरिकाकी

कपास बोयी गयी थी। फल अच्छा मिलता। ध्यानसे खेती करने पर हिन्दुस्थानमें अमेरिकाकी कपास कुछ उपज सकती है।

कपास खुरीफकी फसल है। वर्षा पारश्व होनेसे पहले ही जमीनको सींच कर कपास बो देते हैं। अतीव्रसे जनवरी मास तक कमल तैयार होती है। किन्तु गर्म और राधिया कपास अपरज और मई तक कीड़े ग्यारह महीने खड़ी रहती है। जमीनमें पाद देना पड़ती है।

प्रायः कपासके साथ अद्दर बो देते हैं। उससे कपासको धूप और बीघ नहीं सताती। फिर कपासमें तिल, उद्दर और मूंग भी डाल देते हैं। कपासके किनारे किनारे एरण्ड और पटसनकी गोट रहती है।

कपास बोनेके दोमास यादही फसलें लगती है। जनवरी मासतक उसे बोना करते हैं। पाला पड़नेसे कपास मारी जाती है। अच्छे खेत तीन या चार दिन पीछे बीने जाते हैं। बिनाई सर्वेसे दोपहर तक होती है। कारण उस समय घोंसली तरी रहनेसे कपास निकालनेमें असुविधा नहीं पड़ती। जोरसे कपास निकालनेपर रुई खराब हो जाती है। प्रायः द्विपया कपास मीगती है, उन्ह प्रपनी प्रपनी द्विनी कपासका ८ दां भाग या कुछ हीनाधिक मजदूरीकी तोर पर मिलता है।

चरखीमें कपास पीट कर रुईसे विनोलेकी रजग करते हैं। अमेरिकाके दक्षिण राखोंमें भी ऐसी ही प्रसिद्धा चलती हैं। परन्तु आजकल क्लोसे भी विनोले निकाले जाते हैं।

पानी भरा रुईसे कपासको बड़ी हानि पहुंचती है। इसी लिये कपासके खेतमें पानी ठहरने नहीं देते। फलियां खुल जाने पर भी छिटसे पवार नहीं होती है। क्योंकि पानीमें बीज जानेसे रंग दिगड़ जाता है। और सूख सूझने लगता है। कपासको पानीके पड़नेसे भी हानि पहुंचती है। कीड़ा और सूँड़ी लगनेसे भी कपास का सत्ताभाग हो जाता है। प्रायः हिन्दुस्थानके खेतोंमें कपास बहुत कम उपजती है।

कारेणपालि (सं० पु०) करेणपालस्य प्रथमम्, करेण-
पाल-इत् । इतिपालकका पुत्र, महावतका लडका ।
कारो, काना देवो ।

कारोख (चिं० स्त्री०) १ कालिमा, स्याहो । २ धूमकी
। कालिम, धूयेकी कालिख । ३ काला खाता ।

कारोतर (सं० पु०) १ सुरा खाननेको साफी । २ सुरा-
मण्ड, शरावका भाग ।

कारोत्तम (सं० पु०) कारेण सुरागलनेन उत्तमः ।
। सुरामण्ड, शरावका भाग ।

कारोत्तर (सं० पु०) कारेण सुरागलनक्रियया
। उत्तरति, कार-उत्-त-भर । १ सुरामण्ड, शरावका
भाग । २ कूप, कूवां । ३ वंशादि निर्मित पात्र
विशेष ।

कारोवार (फा० पु०) कामशाज, लेन देन ।

कार्क (सं० पु० Cork) एक दृक्की त्वक्, किषी
पेङ्की खाल । इसका काष्ठ प्रथम लघु होता है ।
इसकी छोट बनाकर पीतघर्म लगते हैं । यह खेन
की पीतगामर्मे अधिक उत्पन्न होता है । दृक् ४०
फीट तक बढ़ता है । त्वक्की स्थूलता २ इंच पर्यन्त
रहती है । त्वक् उत्तर लेनसे चार-छह वर्ष पीछे
फिर निकल पाती है । दृक् कार्क डेढ़ सौ वर्ष
जीता है ।

कार्कट (सं० पु०) कार्कटदृक्, काशरोल ।

कार्कटक, कार्कट देवो ।

कार्कटेलय (सं० स्त्री०) कार्कटनां निवासोऽयम्, कार्कटु-
। अय् । कोरल् । वा ३११२२१ । कार्कटु पचीका निवास-
स्थल, एक विडिदेकी रहनेकी जगह ।

कार्कण (सं० त्रि०) कर्कणस्य इदम्, कर्कण-पञ् ।
१ कर्कणपक्षि सम्बन्धीय, एक विडिदेसे सरोकार
रखनेवाला । २ क्षमिसम्बन्धीय, कीड़ेसे तालुक रखने-
वाला । ३ देहस्य वायुमियेय सम्बन्धीय, जिम्नकी
किषी हवासे सरोकार रखनेवाला । (पु०) ४ वन-
कुण्ड, जंगलो सुरगा ।

कार्कन्धव (सं० त्रि०) कार्कन्धुनां विकारः प्रथमो वा,
कार्कन्धु-पञ् । विताडिभेत् । वा ३११२२२ । कार्कन्धु
सम्बन्धीय, भङ्गवैरीसे सरोकार रखनेवाला ।

कार्कलासिय (सं० त्रि०) कर्कलासस्य इदम्, कर्कलास-
टक् । एकादिकम् । वा ३११२२१ । कर्कलास सम्बन्धीय,
गिरगिटसे तालुक रखनेवाला ।

कार्कवाकर (सं० त्रि०) कर्कवाकोरिदम्, कर्कवाङ्क-
पञ् । कुण्ड सम्बन्धीय, सुररीसे सरोकार रखनेवाला ।

कार्कश्य (सं० स्त्री०) कार्कश्यस्य भावः, कार्कश्य-पञ् ।
१ कर्कश्यता, कड़ीमोली । २ कठिनता, सख्ती ।
३ निर्दयता, बेरहमी ।

कार्कष (सं० पु०) व्यक्तिवियेय, एक शब्द ।

कार्कषायणि (सं० पु०) कार्कषस्य प्रपत्यं पुमान्,
कार्कष-फिञ् । कार्कषके पुत्र ।

कार्कषि (सं० पु०) कार्कष-फिञो विकल्पविधाताम्
। इत् । कार्कषके पुत्र ।

कार्करी (वै० त्रि०) निजका प्रावाधकर ।

“दमस्त ननकेत् किं वा कार्करीवोऽनरोत् ।”

कार्कीक (सं० त्रि०) कार्कः शक्तीऽयः स इत्,
कार्क-इकम् । श्वेत पद्मवृत्त्य, सफेद घोड़ेके
मानिन्द ।

कार्ड (सं० पु० Card) १ खलपत्र, मोटा कागज ।
२ खुली चिठी । यह लिखा जाता है । ३ तारा, पन्ना ।

कार्ण (सं० पु०) कर्णस्य प्रपत्यं पुमान्, कर्ण-पञ् ।
१ कर्णके पुत्र, प्रपकेतु । (स्त्री०) २ कर्णमण, कानवा
सेल । (त्रि०) ३ कर्णेन्द्रिय सम्बन्धी, कानसे, तालुक
रखनेवाला ।

कार्णपाधिक (सं० पु०) कार्णप्राहस्य प्रपत्यं पुमान्,
कार्णप्राह-टक् । २११२२२१ । ताविक-पुत्र,
मलाइका लडका ।

कार्णस्त्रिक (सं० त्रि०) कार्णस्त्रिस्य इदम्, कार्ण-
स्त्रि-पञ् । स्त्रायं कन् । कर्णस्त्रिसम्बन्धीय, कामने
। छेदसे सरोकार रखनेवाला ।

कार्णवेदिक (सं० त्रि०) कार्णवेदिकाभ्यां समपादि-
कार्णवेदिकाभ्यां प्रथमं शोभते इत्यर्थः, कार्णवेदक-ठञ् ।
। एपादिनि । वा ३११२२२ । कार्णवेदनु प्रसङ्गद्वारा द्वारा शोभित
। होनेवाला, जो शोभनी वगैरे रह रहने हो ।

कार्णव्यय (वै० स्त्री०) सानभेद ।

कार्पाटक (सं० पु०) कार्पाटः प्रभिन्नोऽयम्, कार्पाट-

वर्षों कभी तो ऊपजका खर्च भी वसूल नहीं होता। लेकिन अबध और बनारसकी तरफ उपज अच्छी रहती है।

बहु तया विहार देशके निम्नलिखित स्थानोंमें किस किस समय उच्च जमाते और किस किस समय कपास बीजते हैं इसकी तालिका नीचे लिखे प्रकार है—

	बीजेका समय	बीजनेका समय
कटक	ज्येष्ठ, कार्तिक	भास्विन चैत्र
चट्टग्राम	वैशाख, ज्येष्ठ	अश्लेषायण, पीप
दरभङ्गा	कार्तिक, ज्येष्ठ	भाद्र
	आषाढ़	श्रेष्ठ, वैशाख
मानभूम	ज्येष्ठ, आषाढ़	अश्लेषायण, पीप
	अश्लेषायण, पीप	श्रेष्ठ, वैशाख
मिदिनोपुर	ज्येष्ठ, आषाढ़	भास्विन चैत्र
	कार्तिक	वैशाख, ज्येष्ठ
लोहारडागा	कार्तिक	वैशाख, ज्येष्ठ
	आषाढ़	आश्लेषायण, पीप
सारन	आषाढ़	वैशाख, ज्येष्ठ
	माघ	भाद्र, भास्विन

बहु देश और विहारके मध्य कटक, चट्टग्राम, दरभङ्गा, मिदिनोपुर, मानभूम, लोहारडागा, सारन, त्रिपुरा, ललवाइगोड़ी प्रभृति स्थानोंमें ही अधिक परिमाणसे कपास उपजती है। पटना प्रञ्चमें सिर्फ छाकी रंगकी कपास होती है। सन्थाल देशके लोग उसे खड़वा कपास कहते हैं। और सफेद कपासको हरना। सारनमें भागवा, मोचरी, फतुवा, कोकता प्रभृति नामोंकी कपास उपजती है। गङ्गाके अञ्चलमें बङ्गीय, राठी, तोषार इन तीन प्रकारकी कपास, दरभङ्गा प्रञ्चमें कोकटी मेरा और भागला यह तीन प्रकारकी कपास प्रचलित है। कटककी और भुवना और हलदिया प्रविष्ट है।

भारतमें कपासकी खपत पहले बिलम्ब थी। प्राजकल उत्पन्न कार्पासका अधिकार बाहर भेज

दिया जाता है। बाहर भेजे जानेवाली कपासके अनेक नाम हैं। नीचे उनमें कुछ मखित विवरण दिया गया है। अंगरेज मद्राजनेके छाया ही कपासकी रफतगो होती है। अतः कितने ही अंगरेजी नाम लिखे हैं। अक्षरे—बड़ोदा, कच्छ और काठियावाड़से रफतनी होती है। वह भावनगरी, मोवाई, वादवाहरी, बीरमगांववाली, वेरावली, कच्छी आदि कई प्रकारकी रहती है।

बङ्गाली—बङ्गाल, पक्खाव, युत्तपदेश, राजपूताना और मध्यभारतमें उपजती है।

अमरावती—के भी कई भेद हैं। खानदेशी—खानदेशसे आती है। उमरा—बरार प्रदेशमें होती है। विलायती खानदेशी—अमरावती प्रभृति स्थानोंसे आती है।

वेष्टारनस—मन्द्राज, निजामराज्य और पश्चिम भारतकी कपास है।

धारवाड़ी—धारवाड़, बिलयपुर और दक्षिण महाराष्ट्रमें उपजती है।

कुमता—विजयपुर, धैतगांव, कोल्हापुर और दक्षिण महाराष्ट्र प्रदेशकी कपास है।

भड़ौची—बड़ोदा, भड़ौच और चत प्रदेशसे प्राप्त होती है।

कोरुनदी—सात रंगकी होती है। वह मन्द्राजके अन्तर्गत छप्पा जिले, नेलूर और गोदावरी प्रदेशमें उत्पन्न होती है।

विनवली—विनवली, कोचेम्बूर, तञ्जोर प्रभृति स्थानसे आती है।

हींगनघाटो—मध्यप्रदेशमें उपजती और बम्बईमें रफतनी होती है।

सिन्धी—सिन्धुप्रदेशमें पैदा होती है।

पासामी—पासाममें उत्पन्न होती है।

कार्पासके असंख्य प्रकार भेद हैं। फिर भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे उत्पादन करनेकी रीति और प्रणाली खचित होती है।

कार्पासका घागा बितना ही बढ़ा रहैगा, सतना

अथ सार्धं कन् । १ कर्पाट देगवासी । (त्रि०)
२ कर्पाट देगसम्बन्धीय ।

कार्पाटभाषा (सं० स्त्री०) कार्पाटानां कर्पाट-
देगीयानां भाषा, इत्यन्तम् । कर्पाटदेगीयानां भाषा,
एक बोली ।

कार्पायिन (सं० त्रि०) कर्पेण निर्हन्तम्, कर्ष-फिञ् ।
कार्षि (सं० त्रि०) कर्ष-फिञ् विधानस्य विकल्पत्वात्
इञ् । १ कर्ष द्वारा निष्पादितम् । २ कर्ष सम्बन्धीय ।
कार्षिक (सं० त्रि०) कर्षस्य इदम्, कर्ष-ठञ् ।
कर्ष सम्बन्धीय ।

कार्त (सं० त्रि०) कर्तस्य इदम् । १ कर्तृप्रत्ययस्य
सम्बन्ध रखनेवाला । (क्ली०) कर्तमेव सार्धं अण् ।
२ सत्ययुग । कर्तः कर्तृप्रत्ययस्य व्याख्यानां ग्रन्थः,
कर्तृ-अण् । ३ कर्तृ प्रत्ययकी व्याख्याका एक ग्रन्थ ।
(पु०) ४ धर्मनेत्रके पुत्र ।

कार्तकौजपादि (सं० पु०) पाणिनि व्याकरणोक्त एक
गण । इन्द्र समासयुक्त इस गणके सकल शब्दके पूर्व-
पदमें प्रकृतिस्वर लगता है । कार्तकौजपादयश्च वा १।१।२०।
गण यथा—कार्तकौजपी, सार्धर्षि माण्डुकेयी, अवन्य-
श्मकाः, पैलश्यापणैयाः, कविश्यापणैयाः, शैतिकाश-
पाशालियाः, कटूकवांधूलियाः, शकलस्तनवाः, शकल-
शणकाः, गणकवाभ्रवाः, शर्षाभिमोहनाः, कुन्ति-
सुराष्ट्राः, तण्डुवेतण्डाः, अविमत्तकामविहाः, वास-
वशामह्वयानाः, वाभ्रवदानच्युताः, कठकालापाः, कठ-
कौयुमाः, कौटुमलौकापाः, स्त्रीकुमारम्, सौश्रुत-
पार्थवाः, जराश्रुत्य, याज्यानुवाक्ये ।

कार्तयम (बे० क्ली०) सामभेद ।
कार्तयुग (सं० पु०) कर्तमेव कार्तः कार्तयासी युगयोति
कर्मधा० । सत्ययुग ।

कार्तवीर्य (सं० पु०) कर्तवीर्यस्य अणत्वं पुमान्, कर्त-
वीर्यं अण् । १-बन्धुबंधीय कर्तवीर्य राजाके पुत्र ।
उत्तका नामान्तर हैइय; दोःमहस्त्रश्रुत् और चर्तुन
है । माहिशगौपुरी कार्तवीर्यका राजधानी थी ।
उन्हींने दत्तात्रेयके योगबलसे युद्ध समय चन्द्र इन्द्र
नाशित था पर पा कर शुक्रबलसे उसागरा शंखपी पर
अधिकार किया था । लङ्कापति रावण दिांबंधके समय

उन्हींसे हार निगड़बड़ हुये । पीछे रावणके पितामह
पुत्रस्तार सुनिने जाकर हड़ा दिया । कार्तवीर्य जम-
दग्निके आश्रमसे सतता धेनु चुरा लाये थे । उन्हींसे
जमदग्निके पुत्र परशुरामने उन्हें मार डाला । (भाष्य,
पृ० १५१५०) २ कौरि चक्रवर्ती राजा । द्रुपका दूसरा
नाम सुभोम था ।

कार्तवीर्यदोष (सं० पु०) कार्तवीर्यद्वेग्नः दीयमानो
दोषः, मध्यपदभोषो कर्मधा० । कार्तवीर्यके उद्देश्यसे
प्रदत्तदोष, जो दीया कार्तवीर्यके लिये दिया जाता हो ।
उल्टानरेखरतन्त्रमें उक्त दोष देनेकी विधि लिखी है ।
यथा—किसी शुद्ध स्थानको गोमयसे लीप उतके मध्य-
स्थलमें विन्दुयुक्त त्रिकोणमण्डल बनाया चाहिये ।
मण्डलकी बाहिर्दिक् कुटुम्ब एवं रत्नचन्दन मितित
तण्डुल द्वारा षट्कोण और मण्डलके मध्यदेशमें मून्त-
मन्त्र लिखते हैं । मन्त्रके ऊपर छतपूर्ण प्रदीप रख
सहस्य करनेकी विधि है । सहस्यका मन्त्र यह है—

“कार्तवीर्यं महावासी महालामभवम् ।
सहस्य दोषं महत्तं कल्याणं प्रदत्तं च वा ॥
अनेन दोषदानेन कार्तवीर्यं च शोचयाम् ॥”

शुभफलकी कामनासे दीपदानकाल एक प्रदोष
पश्चिममुख स्थापन करना चाहिये । फिर अग्निचार
कार्तमें तीग प्रदोष दक्षिण, उत्तर एवं पश्चिममुख और
गृह वस्तु प्रासिकी कामना पर पांचसे ततोधिक विषम
संख्यक प्रदोष रखते हैं । चतुर्वर्गका फल पानकी
एक गत दोष और मारणके कार्यमें एक सफल वा
दश सफल दोषका दाग विधेय है । बांदी, तावा,
लोहा, मट्टो, गेहूं, उड़द और मूंगके चूर्णसे सब दोष
बनाना पड़ते हैं । चूर्ण द्वारा प्रस्तुत करने पर कार्य
सिद्धि होती है । शौचका दोष देनेसे जगत् समीभूत
हो जाता है । तान्त्रिके दोषसे शत्रुका भय कूटता है ।
कांस्य द्वारा निर्मित दोषके चिंसाकार्य सम्पादित होता
है । मारणके कार्यमें लोह द्वारा दीपनिर्माण करते
हैं । उष्णतममें नृत्तिकाका दीप बनता है । गोधूम
चूर्णका दीप देनेसे शुद्धमें जयसाम होता है । गन्ध-
सुद्ध क्षाप्रलके निम्ने मादका दीप दिया जाता है ।
अग्निके कार्यमें नदोके उभयधूलकी नृत्तिकाका दीप

पद्योपयोगक या दृष्टान्त द्रव्यादिके लिये कपासकी
 छोट्टा कपड़ा धरीदनेसे होता था विक्रेताकी २००
 पाउण्ड या २०००) रु० चुमांवा देना पड़ता था ।
 किन्तु कार्पासके लवर लीगोंवा इतना पैसा रहा कि
 गोपनमें उसका व्यवहार करने लगा । क्रमशः इङ्-
 लैण्डमें भारतीय वस्त्रपर छोट्टकी मोहर लगी और
 भारतके बने दोहों वस्त्रोंके प्रचारसे ऊनका पादर घटा
 था । फिर यही बगानेके लिये कार्पासकी भांति दूसरी
 सामग्री नहीं मिलती । उसका साधारणको प्रयोजन
 भी पड़ता है । अन्ततः उसके लिये भी कार्पासका
 प्रयोजन हुआ । कानूनने उसे रोकना चाहा न था ।
 पार्लियामेण्टमें इस सम्बन्ध पर बहुत तर्क पड़ा कि
 भारतीय कार्पास इङ्ग्लैण्डके ऊनका प्रतिस्पर्धा
 करता है । १६२३ ई०की ८ वीं मार्चको पार्लियामेण्टने घो-
 रतर तर्क वितर्क कर स्थिर किया कि प्रति
 वर्ग पक्षे कार्पासके लिये ही ८ साख रुपया
 विसायतसे बाहर जाता है । वैसा चर्चाना जातीय
 स्वार्थके लिये विशेष चमिष्टकर है । इतिहासकी वही
 कथा आजकल भारतमें प्रतिफलित है । मन साइव
 इंट इण्डिया कम्पनीके एक डिरेक्टर थे । उन्होंने १६२१
 ई० की हिंसाय लगा कर देखा कि उस वर्ष ५००००
 लख कार्पास वस्त्र विनायत गया था । एक खण्ड
 धरीद लज्जामे सेजाने पर साठे तीन रुपया सधं
 पड़ता, वो विनायतमें १०) रु० की बिक्रता था । उससे
 लाभ यथेष्ट रहा, कम्पनी उतना लाभ छोड़नेको मन्तुत
 न थी । ग्रामदनीके माघ २ सामका भाग भी बढ़ने
 लगा । १००८ ई० को प्रसिध पण्डित डिफो साइवने
 थोककी रिब्यू (Weekly Review) नामक पत्रमें
 लिखा था,—“भारतके साथ यह बाधिय्य दठनेसे
 ऊनका कारवार बाधा विगड गया । इङ्ग्लैण्डके
 अधिसासियोंका चर्चांग लम्बीकी भांति चयन होन हुआ”
 १०२० ई० में दूसरा कानून निकला । उसमें नया
 इङ्ग्लैण्ड, या स्कॉटलैण्ड या पायरलैण्ड लहों भी
 कोई व्यक्ति किसी प्रकारका कार्पासवस्त्र पहनकर परि-
 धान कर न सकता था । कार्पासवस्त्र पहननेमें ५०)
 रु० चुमांनकी घणा थी । फिर विक्रीता, तजिया

परदा या किमी दूसरे काममें सते कपड़ा जगानेसे
 २०) रु० चुमांन देना पड़ता था । किन्तु कानून
 बननेसे ही क्या हुआ, इङ्ग्लैण्डिय मरिक्काकी दृष्टि
 कार्पासकी धोर जा चुकी थी वेगभूषाका कानून उसके
 हाथमें था । १०२६ ई०में कानूनकी कठोरता लीगोंको
 घटाना पड़ी । पीछे कानून निश्चया था—“कपासके
 कपड़ेका ताना पाट (क्लिनन) के सुवका रहनेमें
 इङ्ग्लैण्डमें थोड़े भी दृष्ट्या करनेसे उसे बना सकेगा”
 उसके पीछे १५ वर्षके बीचमें पाट चार्वाराइठ प्रकृति
 साधनेने तरह तरहकी कलें निकालीं उनमें बहुविध
 सुलभ सूखसे उक्त वस्त्र बनने लगा । १००४ ई० में
 इङ्ग्लैण्डमें कार्पासवस्त्र प्रस्तुत करनेके लिये व्यवस्था
 भी हुई थी । फिर लम्बके कारखानोंमें वस्त्रवयनको
 कपासकी रुईका प्रयोजन पडा । छठीसे भारतके
 सर्वनागका सुवपात हुआ था । भारतसे कार्पास
 वस्त्रके बदले कपासको रुई इङ्ग्लैण्ड जाने लगी ।
 कलके कारखानोंमें अधिक रुईकी जड़रत थी ।
 भारतकी रुईके साथ साथ अमेरिकाकी रुई भी वहां
 पहुंचने लगी । १८ वें शताब्दके श्रेय धोर १८थें शता-
 ष्दके पाठिमें अमेरिकाकी रुई संगायी गयो । उससे
 पहले अमेरिकाकी रुई इङ्ग्लैण्ड जाती न थी । क्रमशः
 वह अधिक परिमाणमें वहां पहुंचने लगी ।

ईष्ट इण्डिया कम्पनी भारतसे अधिक परिमा-
 णमें रुई भिजना चाहती थी । किन्तु अमेरिकाकी
 रुई प्रेषणाकृत उल्ट थी । छठीसे उसका पादर
 भी अधिक रहा । १०८८ ई० की कोर्ट आफ डिरे-
 क्टरने भारतके गवरनर-जिनरलको उत्तुष्ट रुई
 भेजनेके लिये पत्र लिखा था । उससे समझ पडा
 कि इङ्ग्लैण्डके बाजारमें अमेरिकाकी रुईके साथ
 भारतीय रुईकी विलक्षण प्रतिद्वन्द्विता लगी थी । उस
 दृष्टिमें कभी भारत धोर कभी अमेरिकाने लय लाभ
 किया । किन्तु अमेरिकाकी लंये धामेवाली रुईका
 पादर धोर-भारतकी छोटे धामेवाली रुईका पना-
 दर क्रमशः होने लगा । फिर भारतीय रुईमें मिला-
 बट रहनेसे पनादर अधिक बढ़ गया । किन्तु
 पहरेज भारतमें अमेरिकाकी भांति पच्छी रुई

पदा करनिको विशेष चिह्नित हुये। भारतमें लखि एवं पुण्य समितिके सभों और बहुतसे दूसरे लोगोंने उसके लिये बड़ी चेष्टा की थी। १८३० ई० में कलकत्तेके निकट पाखाडा नामक स्थानमें ५०० बीघे जमीन ले कपासकी खेती करायी गयी। तीन वर्ष पीछे देखने पर कोई विशेष फल न निकला। उसीसे वह परित्याग हुयो। १८३८ ई० में अमेरिकासे बीज और नये नये यंत्रोंके साथ दस पारदर्शी लोग भारत बुलाये गये। उनमें तीन बख्शई, तीन मद्रास और चार पादमो बङ्गालमें रहे। बहुत चेष्टा करते भी शेषको कोई खासी फल न मिला। फिर अमेरिकीकाई रुईका बीज भारतके लखकोको दिया गया। १८३२ ई० को अमेरिकामें युव लगा था। उससे यहाँकी रुई बाहर जान सकी। अंगरेज भारतमें अमेरिकाकी भाँति रुई पैदा करनिकी विशेष चेष्टा करने लगे। भारतकी रुई भी खूब खयी थी। १८३० ई० से पहले सिर्फ तीन करोड़की कपास बिलायत जाती थी। किन्तु १८६६ ई० को ३० करोड़की रुई भारतसे बिलायत भेजी गयी। १८८७ ई० की अमेरिका विषंवाद मिटा था। उसीके साथ भारतीय रुईकी रफतभी भी घट चली। ३२ वर्ष ८ करोड़ रुपयेसे भी कमकी रुई की रफतनो हुयो।

१८६३ ई० में एक बख्शई प्रदेश और एक मध्य प्रदेशमें काटन-कमिशनर नियुक्त हुआ था। उसी वर्ष बन्धेया रुईकी मिलावट निवारण करनिको कानून बना। शेषको विदेशीय बीज छोड़ यन्त्र द्वारा देशीय कार्पासकी उदति करनिकी चेष्टा हुयी। वह चेष्टा कुछ कुछ फलवती हुई थी। आज भी बिलायतमें भारतकी रुईका घटत पादर है। नीचे तालिका दो जाती है कि १८७० ई० की इङ्ग्लैण्डमें किस किस देशसे कितनी रुईकी गाँठ पहुँचीं।

अमेरिकामें १६६४०१०, भारतसे १०६१५४०, मेजिकसे ४०२७६०, मिसरसे २१८८२०, और वेष्ट इण्डीज होपुण्डसे ११२१०० गाँठ। भारतकी रुईका घट पीछे ११ ग्यारह आना सूख पड़ा था।

घट जाते भी आजकल इङ्ग्लैण्डमें भारतकी रुईका बहुत पादर है। इङ्ग्लैण्डको छोड़ भारतका रुई

अन्यान्य देशोंमें भी भेजी जाती है। १८८८-८९ ई०को इङ्ग्लैण्ड १७ लाख, इटाली ७ लाख, फ्रिड्या ७ लाख, बेनजियम ८ लाख, फ्रांस ५ लाख, चीन १ लाख, जर्मनी १ लाख ८० हजार और रूस उड़ लाखकी रुई भारतसे पहुँची थी। एतद्व्यतीत इङ्ग्लैण्डसे अन्यान्य देशोंमें उसे ले जाते हैं। चीनमें सर्वत्र कार्पास उपजता है। फिर भी वहाँ भारतीय रुईकी जरूरत पड़ती है। किन्तु युरोपमें महानमर हो जानेसे भारतीय रुईकी कम रफतनो होती है। दूसरे महात्मा गांधीने भारतमें बीस लाख चरखे चलानिका आदेश दिया है, उसीसे रुईका बाहर निकलना अब लोग अच्छा नहीं समझते।

बाहर भेजनेके लिये रुईकी गाँठ बांधना पड़ती है। फिर पाने जानेमें लडाजकी सुविधा अनुविधा भी देखते हैं। निघत चेष्टा होती रहती है—लडाजकी थोड़ी लगइमें कैसे ज्यादा माल भर दिया जाय। लडाजके खानानुसार किराया भी ठहरता है। मछ-जनोंकी किराया देना पड़ता है। सुतरां समझनेको चेष्टा की जाती है—अल्प खानमें कितना अधिक माल लद सकेगा। उससे लद्देशसे रुईकी गाँठ घटाने और उसमें ज्यादा माल लगानेकी चेष्टा हुवा करतो है।

रुईके परिमाणानुसार गाँठ घटती बढ़ती है। फिर लडाजके लिये रुईकी गाँठ बहुत घटा दी जाती है। उससे भारतमें बिलायती बायोयकल प्रस्तुत हुयी है। उक्त कलकी संख्या दिन दिन बढ़ रहा है। १८८८ ई० को भारतमें कोई ठाँव भी बेसो कलेँ थी।

भारतकी रुई इङ्ग्लैण्ड जाती है उससे बहुतथी कर्षीमें उस देशका प्रयोजन शक्ति होता है। फिर इङ्ग्लैण्ड देशके प्रयोजनसे अधिक कार्पासवस्त्र प्रस्तुत कर सकता है। शेषको कलका यन्त्रादि भारत भी भेजा जाता है। वह भारतमें आकर पड़ता है। क्रमशः मैनचेटरकी कर्षीमें भारतीय लोगोंके परिश्रय यन्त्रका अनुकरण होने लगा है। वह इङ्ग्लैण्डसे भारतको भेजा जाता है। सामान्य लोग स्वल्प मूल्यमें उसे खरीद व्यवहार करते हैं। उसीसे भारतीय तन्तुवार्धाका व्यवसाय जोप होनेकी व्यवस्थामें जापड़ा है। व्यवसाय

मात्रमें प्रागल्भ्यता रहती है। विधायकमें मजदूरी
 प्यादा और भारतमें कम पड़ती है। फिर भारतमें रुई
 विधायक से जाने और वहाँ कपड़ा बनाकर भारत
 पहुँचानेमें भी खर्च लगता है। भारतमें क्या बुननेकी
 कला खोजे करनेसे वह व्यय निवारित हो सकता है।
 इसी विवेचनासे इङ्ग्लैण्डके लोगोंने यहाँ का कल
 खोजनेकी व्यवस्था की है। इससे समझ पड़ा कि
 इङ्ग्लैण्डमें कल माने और उसके चलानेमें पन्ततः
 इङ्ग्लैण्डकी धानसे भारतकी कलमें बहुत अधिक व्यय
 लगा था, विन्तु उसके पोछे दूधरी सब सुविधा रहीं।
 १८५१ की एक समिति बनी थी। १८५४ ई० की
 प्रथमतः बन्वईमें कपड़ेकी कल खुली। उस समयसे
 पंगरेज व्यवसायो क्रमशः कर्नाकी संख्या बढ़ा रहे हैं।
 आजकल बम्बई, इन्दौर, जयपुर, होमनघाट, नागपुर
 और झावाड, ईदरावाड, कुल्दघर्ग, कानपुर, पागरा,
 कसकत्ता, मन्दास, देवारी, कानिबट, कोयलपुर
 गूंतफूडी, तिनबली, त्रिवांडुर, मन्नोर और पुंदि-
 चेरीमें कपड़ेकी कलें चलती हैं। उनमें कहीं सूत
 फाता और कहीं कपड़ा बुना जाता है। प्रतिघण्टे
 सातों मन रुई खर्च होती है। हजारों पुरुष, स्त्रियाँ,
 बालक और बालिकायें कामपर नियुक्त हैं।

धार्मास हथके रुई संघट्ट कर परिष्कार की
 जाती है। रुईमें बीच बीच बहुतसे योज लगे
 रहते हैं। उन्हें निकाल डालना आवश्यक है।
 इसीसे किसी समस्त प्रसार गुण्ड वा समतल
 स्थान पर रुई फैला देते हैं। उसपर एक हाथ संघा
 मोहदण्ड रखा जाता है। फिर उसपर गुड़े हो
 कर पैरसे माड़ते हैं। उधरसे बीच बीच गिरने पर
 ऊपर साफ रुई रह जाती है। रुई साफ करनेकी
 चरखी भी होती है। उनमें मोटे या लकड़ीके
 दो मोल चक्के बराबर बराबर लगे रहते हैं। फिर
 गुमानिसे यह दोनों संलग्न भागमें घूमने लगते हैं।
 दाहने हाथसे सुठिया पकड़ चरखी चलानेकी और
 बायें हाथसे उर्ध्व निम्न दृष्टिमें रुई समायो
 जाती है। ऐसा करनेसे नीचे रुई समायो
 और बायें साफ रुईके

भागमें इसके लिए सजिन नामक एक प्रकारकी कल
 भी बनी है। फिर किसी चलनेके लिए उक्त
 रुई विद्यारीमें साफ की जाती है। उबका नाम
 धनुकी घोर कमान भी है। उनमें तांतका एक
 खिंचा रोदा चटा रहता है। सामने रुई रख जमान
 की बायें हाथसे पकड़ते हैं। फिर रोदा रुई पर
 जमाया और उसपर एक छोटे मोटे डप्टेसे
 धावात लगाया जाता है। इससे रुई खूब साफ
 होती है।

पहले हिन्दुस्थानमें रुई हाथसे साफ की जाती
 थी। यह काम प्रायः स्त्रियाँ ही करती थीं। रुई
 साफ होनेपर चरखीमें सूत कातते थे। पहले हिन्दु-
 स्थानमें घर घर चरखा चलता था। गृहस्थारमणों
 गृहस्थालीका कर्म निवटा प्रवकागके समय परसे पर-
 डेठ सूत कातती थीं। तन्त्रुवे पर सूतकी चाँदी
 या पीनी जमी रहती थी। यद्यवयन तन्त्रुवाय
 लोगोंका कार्य था। यह गृहस्थोंके घरसे पाई
 खरीद ले जाते थे। तन्त्रुवायकी शिष्यां धावनका मांड
 लगा सूतकी दृष्ट बनाती थीं। उसका नाम घोर है।
 तन्त्रुवाय उस सूतकी तांतपर चढ़ा यद्यवयन करते
 थे। आज भी धेमा ही होता है। पहले देगके
 सब भोगीना बस्त ऐसे ही बनता था। हिन्दु-
 स्थानमें ग्यान, स्थानपर सुन्दर सुन्दर कार्यान्वयन
 बनते थे, जिन्हें विदेशीय यणिक समादायें मोल ले
 धनोपाार्जन करती थीं। टाईमें सर्वविधा उत्कृष्ट वस्त्र
 प्रस्तुत होता था। ऐसा सूत्र यद्य कहीं देव पड़ता
 न था। योही टमके सुद्ध नाम लिखते हैं,—

१ मजमन—धावरीयान्, तमजे, व, मजमन—
 सर्वविधा उत्कृष्ट है। यवनन, खासा, भीगा, सरदार
 वाली, गद्दाजन और तेरिन्दम हितोय अंशोमें परि-
 गणित है। साफता,—यथा जगाम, डिगाटो, गाम,
 गद्दाज, व, पीर, गुनुबन्द हतोय अंशोमें है।

२ धारियाँ—डोराकाट, मधलिन (धारिक यद्य)
 राजकोट, डालान, पादगाहदार, कुन्दीदार, कामो,
 कथायात।

३ धारवाना—छोट मनसिन दृष्ट प्रकारकी थी।

ब्रह्मण्युगारमं भी लिपा है,—

'न्य, दोता, दापर चोर कलि चारी कानक
सुप है। कल्पयुग चार त्रिद्विविधित प्रोतवर्ष, चंता
विशिष्टाविगिट २४वर्ष, दापर युग द्विजिद्धा
विगिट २४ विद्वन्वर्ष एवं भयद्वर ; चौर कलि—पुनः
पुनः लिद्धमान एकविद्यायुद्ध २४वर्षविगिट कल्पवर्ष
होता है। ब्रह्मा, विष्णु चौर दण्ड नी-नी वातके
कलाघट्टण है। समुदाय चारावरमं कानकं विग
दसाध्य कुछ भी नहीं। वात ही सर्वभूत सट
कर फिर क्रमगः संहार करता है।"

(ब्रह्मण्युगार, ११५०)

वातक (सं० जी०) काल स्वार्थे कन् यद्वा कस्यपि
नोटदति २४ताम्, कल-विद्-२५सुम् । १ कालशाक,
गामी । २ कलाक र्थकोः २ यत्तु, गुणटा। (पु०)
३ कल्पक, रंभनी । ४ कलमर्दं सर्वं, पानिका एक
सिप। ५ राससविगिय, एक पादमखोर। ६ चक्षुका
दस्य चंग, चापनी पुतनी। ७ वीजगपितोक्त
कलाक रागिकी एक मंथा। ८ जनपदविगिय, एक
वसनी। ९ पञ्चकिके महाभाष्य मतमं सक्त स्यात्
माथीग चार्थवर्षको पूर्वमीमा वा। (च० ३१०० मत्तमच)
८ कोटं प्रसिद्ध जंगलुर। यह महापोरनिर्दिष्टके
३३५ वर्षं पोक्षे जीवित ये। जिसेके मतःसुमार सन्नि
दसुंयवापर्वं ददना या। वातक ही गर्दभिके
धर्मके कारण ये। १० कोटं जेनसिद्ध। पदले भाद्र-
पदकी सल्लपदमीको पसुंयवापर्वं होता या। चनेक
भोगिके मतमं सन्नि महापोर-निर्दिष्टके ८८३ वर्षं
पीछे चर्दार्ग ३३३ दिक्कमं संवत्सुो पदमीमं चतुर्दि-
निदिमं वर्ददिन स्थिर किया या। इनकेही सन्निमान
सन्निमान् सैन पसुंयव परं मानते है। वास्तु दिग्द्वय
सैन चय भी वही महापोर चामी दाग उपदिष्ट गुरु
८८३की ही वर्द मानं करते है। (सि०) ११ काल-
वर्षंयुक्त, काला। १२ चन्विय वर्षविगिट, वषे
रिगारा। १३ कल्पवर्षं, सुषं, काल।

कालकण्ठक (सं० पु०) गिकीय कसुसल, गिकीय
पिह।

कालकण्ठक (सं० जी०) काला कल्पवर्षं कण्ठः कर्मभा० ।
कण्ठमेत, काली सुपया।

कालकण्ठक (सं० जी०) कण्ठं विगिय, एक सुसनी।
२४५सुम, यन्चार, पाठा, व्याप, रमाप्यन, तिरोह्य,
दिकला, विद्यक चौर गृह मोह यथाहर यथाहर फूट
पीय सौदके माय सुपुमं रत्ननेमै दन, सुप गदा
गनरोग विनट होता है। (२४५वर्षवत्)

कालकण्ठक (सं० जी०) कालं कल्पवर्षं कण्ठः,
कर्मभा० । १ मोसपद्य, काला कंवस। (५०) २ कोटं
दानव।

कालकण्ठक (सं० पु०) कालकण्ठः कण्ठकण्ठः, मध्य-
पटलापी कर्मभा० । सिव, महादेव।

"विचरं पश्ये तापी यपी कालकण्ठकः ।" (भा०, च० ३१०० २०५)

कालकण्ठक (सं० वि०) कालः कल्पवर्षः कण्ठः
दस्य, सुसनी० । कल्पवर्षं कण्ठकण्ठः, वाते-काटि-
वाला। (पु०) कालकण्ठके।

कालकण्ठकरस (सं० पु०) रसविगिय, एक दंश।
चोरकमथ १ भाग, पाद २ भाग, चम्प ३ भाग,
स्य ४ भाग, तास ५ भाग, चौर तोस्य मोहकि
६ भाग चश्मनगमं ३ दिन मर्दन करते है। फिर
यन्चार, नर्जिचार, मोहागा, चौर पय मन्च एक
मर्दिन दस्यके समान हाव ३ तोन दिन निगुं निश्चये
रसमं रगडा जाता है। सुपने पर चर्षं यथा पटमीग
दियवर्षं एवं मोहागिशा कला मिना कर १ दिन
निवृत्ते रसमं पीटनेसे यह चोपय प्रसुन जाता है।
मात्रा २ गुण्टा है। पादू के रसमं यह पाया जाता
है। इसके सेवनसे वातरोग पातोम्य जाता है।

(१०३१५०००० २५०)

कालकण्ठक (सं० पु०) कालः कल्पवर्षः कण्ठो यस्य,
सुसनी० । १ सिव, महादेव। २ दीनमाल सक्त, चमने-
का पीड। ३ मयूर, मोर। ४ चक्षुनचो, चक्षुंशा।
५ कलविद्ध, विहा। ६ जन कुहट, गुणगरो। ७
कालमर्दं, कमीदी। ८ चम्पका, चंभा कोश।

कालकण्ठक (सं० पु०) कालः कल्पः कण्ठं स
कालकण्ठक कल्पकण्ठकं स्यात् कन् वा। १ दाम्य

यथा—नन्दनगाड़ी, अनारदाना, कबूतरखोप, सफून, बझादार और कुँडिदार ।

४ जामदानी—पहरेज इसकी नैनसुख कहते थे। साधारण यह बूटेदार होती थी। यथा—सुबरन-बूटी, कुब्बाल, दुबनीजाल भिल, तिरहा। एतद्व्यतीत टाकेकी होती, थोटीनी और साड़ी चिर-प्रसिद्ध है।

टाकेके तन्तुधारोनि दिखाया और दिखाते भी हैं—फर्रुका भागा कितना बारीक बन सकता और उन धागेमें कैसा समटा कपड़ा बुना जा सकता है। इसके सम्बन्धमें एक गल्प है। यह बात कपर लिखे नामोंकी पद्यते ही ममभ पद्यती है कि सुमलमान बादगाहोंके समय उन स्त्रियोंका विग्रिय आदर रहा। कहते हैं कि औरइजैवकी एक कन्या उनकी निकट उक्त टाकेके वस्त्र पहनकर एडुंकी थी। पितानि उसे भर्खना दी कि यह लष्ठाहीन है। उत्तरमें कन्याने कहा कि उसने सात तरहका कपड़ा पहना था। नवाह अनीवर्द्धों खान्की समय किसी बुनाईने एक घोटा कपड़ा घासपर सुवानेकी जाना था। उएकी गाय वहाँ घास चरने गयी। गायने कपड़ेकी घास ममभ चबा लिया। सूखनाका इससे अधिक परिचय दूसरा क्या हो सकता है। उक्त सूख वस्त्र प्रस्तुत करनेमें बड़ा समय लगता है। २० हाथ लम्बा और २ हाथ चौड़ा वेसा कपड़ा बुननेमें पूरे मास बीत जाते हैं। तिसपर भी शीघ्रके समय बुननेका डौल नहीं बँटना। पर्याकाल हो वैसै कार्पासवस्त्रके बुननेका उत्तम समय है। उसका सूख तीन चार सौ रुपयेसे कम नहीं लगता। जो स्त्रियां वेसा सूख सूत कानती थीं, उनमें पनिक न रहें दो एक पाज भी इनी हैं। पाज उन वस्त्रोंका विशुद्ध आदर नहीं होता। फिर प्रागा भी नहीं कभी उनका आदर होगा। पाजकल विलायती कलके कपड़ेसे देग भर गया है। सीधाय-क्रमसे पाज भी देयके कुछ लोग देयीय कार्पास-वस्त्र पहनते हैं। उधीसे हिन्दुस्थानमें खान खान पर देयी कपड़ा थोड़ा बहुत बनता जाता है। किन्तु

सूत इङ्गलेण्डसे आता है। पहले दस देयमें वस्त्र बनाकर विदेग भेजते थे। पाजकल सिर्फ फरेकी रफतनी होती है। सुतरां वस्त्रवयन करनेवालोंमें पनिक अस्त्रहीन और अन्यव्यवसाय-पायित हैं।

आसाममें पाज भी देशों कार्पाससे देयी वस्त्र प्रस्तुत होता है। स्त्रियां ही सूत कानती और कपड़ा बुनती हैं। किन्तु वहाँ भी विलायती वस्त्रका आदर क्रमशः बढ रहा है। आसामियोंके बहुतसे कपड़े कपाससे बनते हैं।

युकप्रदेशके विकन्दरावाद और बुलन्दगहरमें बहुत बारीक कपड़ा तैयार होता है। उसके किनारे जरीरी गोठ लगते हैं। दुपट्टे और पगडीमें ही जरीकी गोंटहा अधिक व्यवहार है। विकन्दरावादके दुपट्टे बहुत अच्छे होते हैं। पाजमगट्टका बना बारीक कपड़ा नेपालमें बहुत खपता है। अबधका गरवती, मसमल, पची और तारन्दम सूक्ष्म वस्त्र प्रसिद्ध है। रायवरेल्लोके जई नामक खान, कायी और फेजाबादके टाडेमें अतिचमत्कारी मूष्म वस्त्र प्रस्तुत होता है। किन्तु अबधके अधःपतनसे उक्त कारुकार्य भी विगड़ गया है। रामपुरका कार्पासनिर्मित खेसा कलकत्तेको प्रदर्शनी-में सुरक्षित रखा था। शुरादावाद, प्रतापगढ़, कानपुर, लखनपुर, गाहपुर, मिर्सीनो, अलीगढ़, भाँषीके चम्पगत मज, पाजमगट्टके चम्पगत मज, सहारनपुर, मेरठ, और प्रागरा पञ्चसमें मानाविधि कार्पासवस्त्र बनता है। उनमें कितना ही पाज भी विदेग भेजा जाता है। एतद्व्यतीत गाढ़ा, गजी और धोवी जोड़ा युक्तप्रदेशके प्रायः सकल स्थानोंमें प्रस्तुत होता है। देयके सामान्य लीग अधिकांश वही वस्त्र व्यवहार करते हैं।

पञ्जाबप्रदेशके पूर्व एक प्रकारके मसलिनसे सुन्दर पगड़ी बनती थी। यह वस्त्र पाजकल देख नहीं पड़ता। होशियारपुर, मिरमा, जालन्धर, मोशियाना, गाहपुर, सुनदामपुर और पटियालेमें पगड़ीका कपड़ा बनता है, किन्तु यह पूर्वकी भाँति उल्ट नही होता। रीजतकमें तंजैद नामक एक प्रकारका अपेक्षाकृत उल्टट मसलिन बनाया जाता है। जालन्धरमें घाट नामक मारकानको भाँति मोटा कपड़ा होता है।

पक्षी, एक विडिया । २ पीतसालवृक्ष, भस्मिका पेड़ ।

कालिकन्द (स० पु०) महाकन्द, बड़ा डाला ।

कालिकन्दक (स० पु०) कालः कन्द इव कायति प्रकाशते, काल-कन्द-कौ-क यद्वा कालं क्षण्यसर्पे कन्दति स्वरूपतया स्पर्धते, काल-कदि-भच् स्वाद्यं कन् । जलसर्पं पनिहां साय ।

कालकम्ब (स० पु०) तमालका पेड़ ।

कालकन्या (स० स्त्री०) जरा, बुढ़ापा ।

कालकमुष्क (स० पु०) कृष्णपुष्प, छपटापाटलिका, काले फूलका बनपलास टाक ।

कालकरञ्ज (स० पु०) काला कच्चा ।

कालकरण (स० स्त्री०) समयका स्थिरीकरण, बलका ठहराव ।

कालकर्षिका (स० स्त्री०) कालस्य कर्षिका इव, उपमित समा० । बनछो, बदकिछती ।

कालकर्षी (स० स्त्री०) वानः कर्षीऽप्याः, काल-कर्ष-भच्-ह्रीप् । बनछो, बदकिछती । प्लको देखी ।

कालकर्म (स० स्त्री०) कालं पनितकारि कर्म, कर्मधा० । १ पनितकारक कार्य, सुराई पैदा करने-वाला काम ।

“यत्सं योजितस्तान् सवना कालकर्म वा ।” रामायण ६। ७१

२ मृत्यु, मौत ।

कालकलाय (स० पु०) कालः क्षण्यवर्णः कलायः, कर्मधा० । १ क्षण्यकलाय, काला मटर । २ काला छद्द ।

कालकलाय (स० स्त्री०) ईपत् समाप्तः कालः, कास-कल्प । यमतुल्य, मौतकी सराबरी कंठनेवासा ।

कालकवि (स० पु०) चम्पू, पाग ।

कालकहृद्योय (स० पु०) कालको हृद्यो यत्न देये तत्र भयः, कालक-हृद्य-हृ । काकचरित्रस्य एक पृथ्वि ।

कालकस्तूरी (स० स्त्री०) कस्तूरी वृक्ष विशेष, एक पेड़ । इसका बीज मलकर खंढनेसे कस्तूरी की तरह महकता है ।

कालका (स० स्त्री०) काल एव स्वार्थे कन्-टाप् । १ कालवेद्यनामक पशुकी माता । २ पश्चिमिष्य, एक विडिया । ३ दक्षमाता । ४ वैश्यावरकी कन्या ।

कालकाच (स० पु०) पशुरविशेष, एक राक्षस ।

कालकाञ्च (स० पु०) १ वेदोक्त कालचिह्नयुक्त प्रथमेद, काले निशानुका एक जानवर । २ राशिभेद ।

कालकार (स० स्त्री०) समय धनानिवाला, जो वस्तु पैदा करता हो ।

कालकारित (स० स्त्री०) समयपर किया हुआ, जो वस्तुसे बना हो ।

कालकामुक (स० पु०) खट्टूपणकौ सेनाका एक अधिपति । इसी रामने मारा था । (रामायण)

कालकास (स० पु०) कालं कसयति नोदयति, काल-णिच्-कल-भण् । १ परमेस्वर '२ मन्दाग्न प्रदेशस्य टाडूद्वारका निकटस्थी एव प्राचीन तीर्थस्थान ।

कालकीर्ति (स० पु०) एक राजा, यह पशुर सुपर्णके समान थे ।

कालकील (स० पु०) कालं प्रकृतकालोपयुक्तं सुप-महादिकं कीलयति ब्राह्मणोति, काल-कील-भण् ।

कोलाहल, हल्ला । किवी प्रसङ्गके समय कोलाहल उठनेसे यह प्रसङ्ग दृढ़ जाता और 'कालकील' कहलाता है ।

कालकुण्ड (स० पु०) कालेन कालरुपिणा परमेखरेण सुकृतते पक्षी, काल-कुण्ड कर्मणि छञ् । यम ।

कालकुष्ठ (स० स्त्री०) कालात् क्षण्यपर्वतात् कुण्यते, काल-कुष्ठ कर्मणि छ । पार्वतीय शक्तिकाविशेष, कृष्ण पहाड़की मट्टी । कृष्ण देखी ।

कालकूट (स० पु० स्त्री०) कालस्य मृत्योः कूटं दूत इव उपमि० यदा कालं विवमपि कूटयति अवसद्यति, कालकूट भच् । १ विषसामान्य, मामूली जहर । २ वाक, खून खराबी, ३ वल्लभाभ, बच्छनाग । ४ काक, कौवा । ५ गिरिविधेय, एक पहाड़ । यह वर्तमान कालीगण्डक नदीके निकट अवस्थित है ।

“कृष्णः मन्त्रिणां तु मन्त्रेण कृष्णकण्ठम् ।

एवं प्रसूते मत्स्य कालकूटमतीव च ॥” (भारत १।१०।१६)

६ स्वानर विषविशेष, काला वच्छनाग । देवावर युद्धके समय पृथुमान्नी नामक कोई पशुर देवगण द्वारा मारा गया था । उससे रक्तसे पच्यत वृक्षकी भांति एक वृक्ष उत्पन्न हुआ । उसी वृक्षके निर्यातका नाम काल-

उपपर एक प्रकारका कारकाये रहता है। यह बुनबुन मशीनों के चालक पादों पर बुना जाता है, इसे "बुनबुन-पाद" कहते हैं। आजकल इन गिन्धका कोप हो रहा है।

पय तो केरन रोम, लंगी एवं मूनी नामक बारीक यज्ञ और टुसुतो, गाटा तथा गजी नामक मोटा कपड़ा ही दिन पड़ता है। राजपुताने में भी यीपोंल चार प्रकारका यज्ञ बनता है। ग्वालियरके चाटेरी नामक स्थानमें उत्कृष्ट मसलिन तैयार होता है। इन्दौरका मसलिन भी बहुत खराब नहीं रहता। देशग राज्यके पल्लगत सारंगपुरमें धोती, साड़ी और पगड़ी प्रचलन होती है।

मध्यप्रदेशके नागपुर, भण्डारा और चांदा जिलेमें चात्र भी सूत्र सूत कतता और उसमें यज्ञ बनता है। १८६७ ई० को चांदा प्रदेशमें एक प्रदर्शनी हुई। उसमें हाथका बना सूत देखाया गया था। यह सूत इतना बारीक रहा कि सिर्फ चांध सेर सूत ५८ कोम लंबा निकला। नागपुरमें दरईका पेंच खुल जानेसे उक्त गिन्धका बहुत गौरव घट गया है। किन्तु पेंचका सूत प्रायः भी उतना उत्कृष्ट नहीं होता। उसमें कुछ कुछ गौरव हुआ है। देगी यज्ञ अधिक दिन टिकता है। इसीसे यहाँके गरीब लोग यिनायतीसे देगी यज्ञका पादर अधिक करते हैं। शीगहाबादमें देगी यज्ञका व्यवसाय बढ़ रहा है।

दालिथात्यके शेरवाबाद पञ्चन पर रायपूर जिलेमें यज्ञो रंगका मोटा कपड़ा और मन्देर जिलेमें बारीक मसलिन तैयार होता है। मन्द्राज प्रांतके चरनी नामक स्थानका बारीक मसलिन प्रति उत्कृष्ट रहता है।

दम्पेर प्रदेशमें विनायती यज्ञका विशेष पादर बढ़ते भी गांध गांधमें रुईका देगी मोटा कपड़ा बनता है। सामान्य लोग मोटो साड़ी और पगड़ीका विशेष पादर करते हैं।

पनेक स्थानमें रुईके सूतमें रंगम या लाल गिला तरह तरहका कपड़ा बनते हैं। कहीं कहीं रुईके कपड़ेमें रंगमी क्लिनाए लगाया जाता है। फिर कहीं रंगमी थैल मूटे, लोके थैलमूटे और रुईका काम

बनाते हैं। उसके पनेक नाम है—कारभोवी, कलावचू, विहन, कामदामी और जामदामी। जामदामी—करला, गोडेदार, चूटोदार, और तिरटा बादि कई प्रकारकी होती है।

पूसादार रुईके नागाविध यज्ञ कालकपोंके निबट बनये जाते हैं। उनको कियो हलके बाजारमें अधिक द्योतो है।

रुईके यज्ञपर तरह तरहका रंग चढ़ाया जाता है। उपपर छाप भी कई प्रकारको लगने है।

रुईका कपड़ा पड़ने अंगरेज कानी कटमें से प्राते थे। उसीसे उन्होंने उसको केलिको (Calico) नामसे परिचित किया है। रंग देनेको केलिको-डाइंग (Calico-dying) और छाप मार क्रीट बगानेकी केलिको-प्रिण्टिंग (Calico-printing) कहते हैं। कियो किसी कपड़ेपर सुनहली छाव पड़तो है। छाव लगानेमें तरह तरहकी क्रीट बनती हैं। क्रीटके कपड़ेसे रजारी, तकियेका गोलाफ, तोसक, पर्सगोग, ज्ञात्रिम, गामियाना बगैरह तैयार होते हैं। रंगदार कपड़ेमें मान बहुत अच्छी रहतो है। फिर छावदार कपड़ेमें चुनरीका प्रचार अधिक है। इन देगमें रजक ही रुईका कपड़ा धोते हैं।

यिनायती पेंचके प्रभावसे देगस्थ कार्पास-गिन्ध क्रमशः लुप्त हो रहा है। मन्धावना ऐसी दुनि लगे है—जो गिन्ध है वह भी काल वाकर न रहेगा। पहले कार्पासयज्ञ देगके प्रयोजनमें लग उद्भूत होनेपर विदेश भेजा जाता था। अब वह समय नहीं रहा। आजकल गिन्धो बस हीन हो गये हैं।

भावप्रकाशके मतमें कार्पासयज्ञ—सधु, इपन् उष्-वीथ, मधुररम और वायुनागक है। उसका पत्र—वायुनागक, रक्तकारक और सूत्रवर्धक होता है। योज—सूग्य-दुग्धवर्धक, सुकवर्धक, विथ, कफकारक और शुष्क है।

(त्रि०) कार्पासयज्ञ विकारः भवयती वा, कर्पासी-पत्र। निरालिभः वा कश्चरारः २ कार्पासजान, कर्पासी, कर्पासक बना हुआ। इसका संस्कृत पर्याय—काल और पादर है।

“एतं यज्ञवारीकविषं मनु चरितम्” (आल २५०१)

कार्पासक (सं० पु० लो०) कार्पास स्वार्थे कन् ।
कार्पासं हृद्य, कपासका पेठ । इसका संस्कृत पर्याय—
कार्पास, कार्पासे, तुण्डकेरी और मसुद्राम्ना है ।

कार्पासक्री (सं० स्त्री०) कार्पासो, कपास ।

कार्पासतैल (सं० लो०) नाडीव्रणका तैलत्रियेय, कपासका
तैल । तिलका तैल ४ शरायक, जल १६ शरायक और
कार्पासमूल तथा हरिद्राका कण्ठ १ शरायक यथाविध
पकानेसे यह तैल बनता है । (रघुवाकर)

कार्पासधेनु (सं० स्त्री०) कार्पासवस्त्रनिर्मिता धेनुः,
मध्यपदलोपी कर्मधा० । दानके लिये कार्पासनिर्मित
धेनु, कपासक्री गाव । वराहपुराणमें इससे दानका
विधि कही है । यथा,—“विषुवसंक्रान्तको, युगजन्मके
दिन और अष्टवीडा, दुःखप्रदर्शन एवं शरिष्ठ दर्शनादि
अमङ्गल पड़नेसे पवित्र देवालय दृष्टवा विग्रह गोचारण
स्थलपर गोमय द्वारा दानस्थान लीपना चाहिये ।
फिर उसके ऊपर कुण्ड तिल फेंका देते हैं । उसके
पीछे उक्त स्थानके मध्यस्थानमें धेनु स्थापनकर वस्त्र,
भास्य, अनुलेपन, नैवेद्य और धूप दीपादिसे पूजा करना
चाहिये । अनन्तर कुण्डस्थ दानमन्त्र पढ़ अर्वाके साथ
कार्पासधेनु द्विजातिकी देनी पड़ती है । यह ४ भार
वस्त्र द्वारा निर्मित होनेसे उत्तम, २ भार वस्त्र द्वारा
निर्मित होनेसे मध्यम, और १ भार वस्त्र द्वारा निर्मित
होनेसे अधम गिनी जाती है । उक्त परिमाणके
चतुर्थांश द्वारा बलि बनाना पड़ता है । फिर कार्पास-
धेनुकी गफल दन्त नानाविध फल द्वारा, सुर गैय्य
द्वारा और अन्न स्वर्णद्वारा निर्माण करते हैं । उसका
गर्भस्थल विविध रत्नसे पूर्ण किया जाता है । इस
प्रकार यथाविधि धेनु दान करनेसे अन्तिम समय
इन्द्रलोक मिलता है ।”

कार्पासनासिका (सं० स्त्री०) कार्पासस्य नासिका इव,
उपमि० । तर्कुं, तक्षता, तक्षवा ।

कार्पासपर्वत (सं० पु०) कार्पासवस्त्रनिर्मितः पर्वतः,
महाप० । दानके निमित्त कार्पासवस्त्रनिर्मित पर्वत.
इदंके कपड़ेका पहाड़ । ब्रह्माण्डपुराणमें उसके दानका
विधानादि इस प्रकार लिखा है,—“देवालय प्रभृति
पवित्र स्थानका कियदर्श गोमयके कौप चस्पर कुण्ड

और तिल फेंका देना चाहिये । फिर उसके मध्य
देशमें कार्पासवस्त्रनिर्मित पर्वत स्थापना कर यथाविधि
पूजा समापनान्त कुण्डस्थ मन्त्रपाठपूर्वक द्विजातिकी
दान करते हैं । उक्त कार्पासवस्त्रराशि विंशति भार
होनेसे उत्तम, दश भार होनेसे मध्यम और पञ्च भार
होनेसे अधम गिना जाता है । उसमें विविध धान्य
प्रभृति और नानाविध भौषधि तथा रस सम्विष्ट
करते हैं । कार्पासपर्वत चारो दिक् स्वर्ण गिखर,
विविध रत्न और नानाप्रकार मध्यमोच्चयुक्त चार
कुलाचन स्थापन कर दान करनेका विधि है । इस
प्रकार दान करनेसे स्त्रीय वंश उदार होता है ।”

कार्पासबीजिक (सं० त्रि०) कार्पाससूत्रेण निर्मुक्तः,
कार्पाससूत्र ठक्, द्विपदशुद्धिः । कार्पासके सूत्र द्वारा
निर्मित, कपासके सूत्रका बना हुआ ।

कार्पासास्थि (सं० लो०) कार्पासानां अस्थि, ६-तत् ।
कार्पासबीज, धिनौला ।

कार्पासिक (सं० त्रि०) कार्पासाज्जातम्, कार्पास-ठक् ।
कार्पास द्वारा निर्मित, कपासका बना हुआ ।

कार्पासिका (सं० स्त्री०) कार्पासी स्वार्थे कन्-टाप्
पूर्वकत्वः । कार्पासी, कपास ।

कार्पासी (सं० स्त्री०) कार्पास-जातित्वात् ङीप् ।
रत्नकार्पाससुप, ज्ञान कपास । इसका संस्कृत पर्याय—
वदरा, तुण्डकेरी, मसुद्राम्ना, शरिणी, चम्या, तुत्रा,
गुड़, तुण्डकेरिका, मरहवा, पिपु, और वादर है ।

कामे (सं० त्रि०) कर्मसु गौतमं पश्य छात्रादित्वात् णः,
निपातनात् साधुः । १ फलकी पाकाहा छाड़ कर्म-
करनेवाला, जो नतीजा मिलनेकी खाहिय न रहे काम
करता हो । २ कर्मशील, कामकाशी ।

कामेक, कामेक शब्दो ।

कामेय (सं० लो०) कर्म एव, कर्म स्वार्थे षण् ।
तदनुकूलान् कर्मेषु । या शरणं १ मूलकर्म, ज्ञादू,
टोना । भौषधादिके मूलसे जो दासक, उचाटन,
मारण, यगीकरण प्रभृति कार्य किया जाता, वही
कामेय कहाता है । २ मन्त्रतन्त्रादि योग । (त्रि०)
इमंसाध्यत्वेन पश्यस्य, कर्मज्ञ-षण् । ३ कर्मदण,
काममें जोगियार ।

पक्षी, एक विडिया । २ पीतघासवृक्ष, 'पचनेका पेड़ ।

कालकन्द (सं० पु०) महाकन्द, बड़ा डला ।

कालकन्दक (सं० पु०) कालः कन्द इव कायति प्रकाशते, काल-कन्द-को-क यथा कालं कल्पसर्पं कन्दति स्वरूपतया स्पर्धते, काल-कदि-भृच् स्वार्थे कन् । जलसर्पं पमिदा साय ।

कालकम्ब (सं० पु०) तमालका पेड़ ।

कालकन्या (सं० स्त्री०) जरा, बुढ़ापा ।

कालकमुष्क (सं० पु०) छठपपुष्प, छष्टापाटलिका, काले फूलका वनफलस टाक ।

कालकरञ्ज (सं० पु०) काला वृक्षा ।

कालकरण (सं० स्त्री०) समयका स्थिरीकरण, वक्रका ठहराव ।

वासकपर्णिका (सं० स्त्री०) कालस्य कर्णिका इव, उपमित समा० । पचन्ती, वदकिस्रोतो ।

कालकर्णी (सं० स्त्री०) घालः कर्णाऽभ्यां, काल-कर्ण-पच्-ठोप् । पचन्ती, वदकिस्रोतो । कलको देवो ।

कालकर्म (सं० स्त्री०) कालं पमिदकारि कर्म, कर्मधा० । १ पमिदकारक काठ, बुराई पैदा करने वाला काम ।

"विश्वं योगितकालं मरणा कालकर्मणा ।" रामायण ६।१२

२ कृत्य, मोत ।

कालकसाय (सं० पु०) कालः कल्पवर्णः कलायः, कर्मधा० । १ कल्पकसाय, काला मटर । २ काला उट्ट ।

कालकल्प (सं० स्त्री०) ईदम् समाप्तः कालः, काच-कल्पम् । यमतुष्य, मोतकी बराबरी करनेवाला ।

कालकवि (सं० पु०) पचने, पाग ।

कालकवृक्षोय (सं० पु०) कालको वृक्षो यत्र देयि तत्र भवः, कालक-वृक्ष-क । काकचरित्रस्य एक षट्पि ।

कालकक्षुरी (सं० स्त्री०) कक्षुरी वृक्ष विशेष, एक पेड़ । दृशका-बीज ममकरं च्छंभेनै कक्षुरी की तरह मरकता है ।

कालका (सं० स्त्री०) काल एव स्वार्थे कन्-टाप् । १ कालदेयनामक पचुरेकी माता । २ पचिविशेष, एक विडिया । ३ दृशनामा । ४ वैखानरकी कन्या ।

कालकाच (सं० पु०) पचुरविशेष, एक राक्षस ।

कालकाक्ष (सं० पु०) १ वेदोक्त कालचिह्नयुक्त पद्मभेद, काले निधानका एक जानवर । २ रागभेद ।

कालकार (सं० स्त्री०) समय धनानिवाला, जो वक्त पैदा करता हो ।

कालकारित (सं० स्त्री०) समयपर किया हुआ, जो वक्तसे बना हो ।

कालकार्मुक (सं० पु०) खट्टूपणकी सेनाका एक अधिपति । इसे रामने मारा था । (रामायण)

कालकाल (सं० पु०) कालं कल्पयति नोदयति, काल-णित्-कल-पण् । १ परमेस्वर । २ मन्द्राज प्रदेशका टाड्डेवरका निकटवर्ती एक प्राचीन तीर्थस्थान ।

कालकौतिल (सं० पु०) एक राजा, यह पचुर सुपर्णके समान थे ।

कालकौल (सं० पु०) कालं प्रकृतकालोपयुक्तं सुप-महादिकं कोनयति प्रावृणोति, काल-कौल-पण् ।

कोलाहल, हल्ला । किसी प्रसङ्गके समय कोनाहल उठनेसे वह प्रसङ्ग दृढ जाता और 'कालकौल' कहलाता है ।

कालकूप (सं० पु०) कालेन कालरुचिणा परमेस्वरस्य वृष्टयते पक्षी, काल-कूप कर्मणि छञ् । यम ।

कालकूट (सं० स्त्री०) कालात् कल्पवर्णतात् कुवते, काल-कूप कर्मणि क्त्वा । पार्यतीय सृष्टिज्ञानविशेष, कङ्कठ पहाड़की मट्टी । कृष्ट देवो ।

कालकूट (सं० पु० स्त्री०) कालस्य कृत्योः कूटं दूत इव उपमि० यदा कालं शिवमपि कूटयति पचसादयति, कालकूट पच् । १ विपशामान्य, भामुनी जहर ।

२ दौन, जून खराबो, । ३ बखनाम, बच्छनाम । ४ काक, फोवा । ५ गिरिविशेष, एक पहाड़ । यह वर्तमान कालीगण्डक नदीके निकट अवस्थित है ।

"छुबनाः प्रसिधत्ते तु मन्थेन इवमाहवचम् ।

एवं पचसती मता कालकूटमतीव च ॥" (भारत २।५।१६)

६ स्वाधर विपविशेष, काला वृक्षनाम । देवाधर युद्धके समय घृष्टमासी नामक कोई पचुर दिवगण द्वारा मारा गया था । उससे रहस्ये पचसती वृक्षकी भांति एक वृक्ष उत्पन्न हुआ । वही वृक्षके निर्धारका नाम काल-

उपपर एक प्रकारका झरझराये रहता है। वह बुनबुन गंधकी चाँदने पादमें पर बुना जाता है, उसे "बुनबुन-पटन" कहते हैं। आजकल इस गिण्टका लोप हो रहा है।

पच ती केवल रोम, मूंगी एवं मूमी नामक बारीक धरा और दुसुतो, गाटा तथा गन्नी नामक मोटा कपड़ा ही देख पड़ता है। राजपुसानमें भी गीवोत चार प्रकारका बन्ना बनता है। खालियरके चाँटेरी नामक स्थानमें उल्लूट मसलिन तैयार होता है। एम्पोरका मसलिन भी बहुत खराब नहीं रहता। देशम राज्यके पन्नामें सारंगपुरमें धोती, साड़ी और पगड़ी प्रचलन होती है।

मध्यप्रदेशके नागपुर, भण्डारा और चाँदा जिलेमें चाज भी सूत्र मूत कतता और उसमें वस्त्र बनना है। १८६० ई० की चाँदा प्रदेशमें एक प्रदर्शनी हुई। उसमें जापका बना मूत देखाया गया था। वह मूत इतना बारीक रहा कि सिके चाँध में मूत पूर कोम लंबा निकला। नागपुरमें रुईका पेंच खुल जानेसे उक्त गिण्टका बहुत गौरव घट गया है। किन्तु पेंचका मूत चाँध भी उतना उल्लूट नहीं होता। उससे कुछ कुछ गौरव हुआ है। देगी वस्त्र अधिक दिन टिकता है। इसीसे वहाँके गरीब लोग वितावतीसे देगी वस्त्रका पादर अधिक करते हैं। होयझाबादमें देगी वस्त्रका व्यवसाय बढ़ रहा है।

दाक्षिणात्यके हैदराबाद पञ्चन पर रायपूर जिलेमें पान्की रंगका मोटा कपड़ा और नन्देर जिलेमें बारीक मसलिन तैयार होता है। मद्राज प्रान्तके पन्नी नामक स्थानका बारीक मसलिन अति उल्लूट रहता है।

एम्पेर प्रदेशमें विलावती वस्त्रका विशेष पादर बढ़ते भी गाँव गाँवमें रुईका देगी मोटा कपड़ा बनता है। सामान्य लोग मोटो साड़ी और पगड़ीका विशेष पादर करते हैं।

पन्नेक स्थानमें रुईके सूतमें रेशम या ऊन मिला तरह तरहका कपड़ा बनते हैं। कहीं कहीं रुईके कपड़ेमें रेशमी निशान लगाया जाता है। फिर कहीं रेशमी थैल मूटे, जरीके थैलमूटे और रुईका काम

बनाते हैं। उसके समेक नाम है—कारभोवी, कलायकु, विथन, कामटामो और नामटामो। कामटामो—करला, तोड़ेदार, घूटादार, और तिरला चाँद कर प्रकारको होती है।

घूटादार रुईके नामाविध वस्त्र कनककके निम्न बनाये जाते हैं। उनकी बिक्री इन्डोके बाजारमें अधिक होती है।

रुईके वस्त्रपर तरह तरहका रंग चढ़ाया जाता है। उसपर छाप भी कई प्रकारको लगती है।

रुईका कपड़ा पड़ने अंगरेज कानीपटने से प्राप्त है। उसीसे उद्योग उद्योगी कैलिको (Calico) नामसे परिचित किया है। रंग देनेको कैलिको-डायिंग (Calico-dying) और छाप मार छीट बनानेको कैलिको-प्रिण्टिंग (Calico-printing) कहते हैं। विशेषी कपड़ेपर सुनइली छात्र पड़ते हैं। छाप लगानेसे तरह तरहकी छीट बनती है। छीटके कपड़ेसे रभाई, तकियेका गोलाफ, तोसक, पलंगगोग, जाजिम, गामियागा वगैरह तैयार होते हैं। रंगदार कपड़ेमें साल बहुत अच्छी रहती है। फिर छापदार कपड़ेमें चुनरीका प्रचार अधिक है। इस देशमें रजक ही रुईका कपड़ा धोते हैं।

यिहायती पेंचके प्रभावसे देशस्थ कार्पास-गिण्ट काममें सुप्त हो रहा है। सम्भावना ऐसी होने लगी है—जो गिण्ट है वह भी काम पाकर न रहेगा। पहले कार्पासवस्त्र देशके प्रयोजनमें लग उद्देश्य होनेपर विदेश में जाया था। अब वह समय नहीं रहा। पानकक गिण्टी अच होन हो गये हैं।

भावप्रकारके मतमें कार्पासवस्त्र—लघु, ईषय उपा-वीर्य, मधुररस और वायुनाशक हैं। उसका पत्र—वायुनाशक, रक्तकारक और सूत्रवर्धक होता है। बीज—सूत्र-दुग्धवर्धक, शुक्रवर्धक, विष, कफकारक और शुक्र है।

(नि०) कार्पासवस्त्र विकारः श्वेतपित्तं वा, कर्पासी-मल। (सिद्धिः) वा. ३-१-१-१ २ कार्पासवस्त्र, कपासी, कपासका बना हुआ। इसका भोजन वर्धक—काय और पादर है।

“वस्त्रं वस्त्रकार्पासवस्त्रं गुरु चाँदनी” (भावा १-१-१-१)

कार्पासक (सं० पु० लो०) कार्पास स्वार्थे कन् ।
कार्पास वृक्ष, कपासका पेट । इसका संस्कृत पर्याय—
कार्पास, कार्पासो, तुण्डकेरी और समुद्रात्वा है ।

कार्पासकी (सं० स्त्री०) कार्पासो, कपास ।
कार्पासतेज (सं० स्त्री०) नाडीप्रणयका तैलविशेष, कपासका
तेल । तिलका तैल ४ शरावक, जल १६ शरावक और
कार्पासमूल तथा हरिद्राका कल्क १ शरावक यथाविध
पकानेसे यह तैल बनता है । (रत्नवाकर)

कार्पासधेनु (सं० स्त्री०) कार्पासवस्त्रनिर्मिता धेनुः,
मध्यपदलोपी कर्मधा० । दानके लिये कार्पासनिर्मित
धेनु, कपासकी गाय । ब्राह्मपुराणमें इमके दानका
विधि कही है । यथा,—“विपुवसंक्रान्तिको, युगजन्मके
हिम और प्रह्वीडा, दुःखप्रदग्नेन एव चरिष्ट दर्शनादि
असङ्गन पङ्कनेसे पवित्र देशालय अथवा विशुद्ध गोचारण
स्थानपर गोमय द्वारा दानस्थान लीपना चाहिये ।
फिर उसके ऊपर कुग्र तिल फैला देने हैं । उसके
पेछे उल्ल स्थानके मध्यस्थानमें धेनु स्थापनकर वस्त्र,
माख, अनुलेपन, नैवेद्य और धूप दीपादिके पूजा करना
चाहिये । अनन्तर कुग्रवस्त्र दानमन्त्र पढ़ अर्थात् साध
कार्पासधेनु डिजातिको देने पड़ती है । वह ४ भार
वस्त्र द्वारा निर्मित होनेसे उत्तम, २ भार वस्त्र द्वारा
निर्मित होनेसे मध्यम, और १ भार वस्त्र द्वारा निर्मित
होनेसे अधम गिनी जाती है । उल्ल परिमाणके
सुसुधीय द्वारा वस्त्र बनाना पड़ता है । फिर कार्पास-
धेनुके मकल दन्त नानाविध फल द्वारा, सुतरीय
द्वारा और अन्न अर्थात्द्वारा निर्माण करते हैं । उसका
गर्भस्थल विविध रत्नसे पूर्ण किया जाता है । इस
प्रकार यथाविधि धेनु दान करनेसे अन्तिम समय
इन्द्रलोक मिलता है ।”

कार्पासनासिका (सं० स्त्री०) कार्पासस्य नासिका इव,
उपमि० । तर्कु, तर्कला, तर्कवा ।

कार्पासपर्वत (सं० पु०) कार्पासवस्त्रनिर्मितः पर्वतः,
अप्यप० । दानके निमित्त कार्पासवस्त्रनिर्मित पर्वत,
इसके कपड़ेका पहाड़ । ब्राह्मपुराणमें उसके दानका
विधानादि इस प्रकार लिखा है,—“द्विषालय प्रभृति
पवित्र स्थानका कियदर्थ गोमयसे लीप उसपर कुग्र

और तिल फैला देना चाहिये । फिर उसके मध्य
देशमें कार्पासवस्त्रनिर्मित पर्वत स्थापना कर यथाविधि
पूजा समापनान्त कुग्रवस्त्र मन्त्रपाठपूर्वक डिजातिकी
दान करते हैं । उल्ल कार्पासवस्त्राणि विंगति भार
होनेसे उत्तम, दग्य भार होनेसे मध्यम और पञ्च भार
होनेसे अधम गिना जाता है । उसमें विविध धान्य
प्रभृति और नानाविध औषधि तथा रस समिष्ट
करते हैं । कार्पासपर्वत चारो दिक् स्पर्श गिखर,
विविध रत्न और नानाप्रकार भक्ष्यमोक्ष्ययुक्त चार
कुलाधन स्थापन कर दान करनेका विधि है । इस
प्रकार दान करनेसे स्त्रीय रथ उद्यार होता है ।”

कार्पाससौत्रिक (सं० स्त्री०) कार्पाससूत्रेण निर्वृत्तः,
कार्पाससूत्र ठक्, द्विपदवृद्धिः । कार्पासके सूत्र द्वारा
निर्मित, कपासके सूत्रका बना हुआ ।

कार्पासास्त्रि (सं० स्त्री०) कार्पासार्त्ता प्रस्त्रि, इ-तत् ।
कार्पासबीज, बीनोला ।

कार्पासिक (सं० स्त्री०) कार्पासज्जातम्, कार्पास-ठक् ।
कार्पास द्वारा निर्मित, कपासका बना हुआ ।

कार्पासिका (सं० स्त्री०) कार्पासो स्वार्थे कन्-टाप्
पूर्वङ्गत्वः । कार्पासो, कपास ।

कार्पासी (सं० स्त्री०) कार्पास-जातित्वात् स्त्रीप् ।
रत्नकार्पासलुप, लाल कपास । इसका संस्कृत पर्याय—
बदरा, तुण्डकेरी, समुद्रात्वा, मारिषी, चय्या, तुवा,
गुड़ तुण्डकेरिका, मसहवा, विपु, और वादर है ।

कर्म (सं० स्त्री०) कर्मसु गौलं पश्य छावादित्वात् णः;
निपातनात् साधुः । १ फलकी प्राप्ताह्वा ह्वाङ् कर्म-
करनेवाला, जो नतीजा मिलनेकी चाहिये न रख काम
करता हो । २ कर्मशील, कामकाजी ।

कर्मिक, कर्माङ्क शब्दो ।

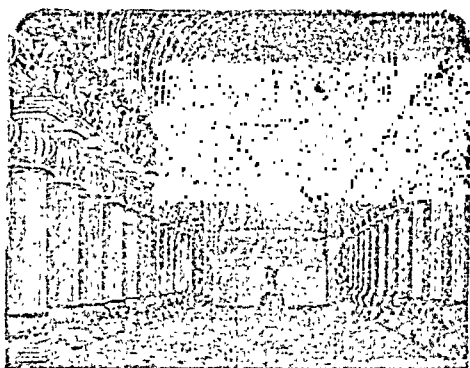
कर्मण्य (सं० स्त्री०) कर्म एव, कर्म स्वार्थे ण्य ।
गदप्रकृतम् कर्मण्येऽ । सा शशरत् १ मूलकर्म, जगद्,
टीना । औषवादिके मूलसे जो वासन, लपाटन,
मारण, वगीकरण प्रभृति कार्य किया जाता, वही
कर्मण्य कहलाता है । २ मन्त्रतन्त्रादि योग । (स्त्री०)
हर्मसाध्यत्वेन अस्वस्थ, कर्मन्-ण्य । ३ कर्मदण,
कातमें होमियार ।

कालखण्डन (सं० स्त्री०) कालेन कालान्तरेण खण्डति विकृतिं गच्छति, काल-खण्ड-ख्य। यकत्, कलेजा।
 -कालखण्ड (सं० स्त्री०) कालं कृण्वन्वर्षं खण्डं मास-खण्डम्, कर्मधा०। १ यकत्, कलेजा। २ कालप्रति-पाटक एक धन्य। ३ यकत्तुरोगभेद, कलेजेकी एक बीमारी।
 -कालगङ्गा (सं० स्त्री०) काली कृण्वन्वर्षा गङ्गा गङ्गावत् पर्वतकारिणी, कर्मधा०। १ यमुना नदी। २ विंध्य-की एक नदी।
 कालगण्डका (सं० स्त्री०) नदीविशेष, एक दरया। प्राजकन इसे कालीगण्डक कहते हैं।
 कालगण्डेत (हिं० पु०) सर्पविशेष, काले गण्डे वासा साप।
 कालगन्ध (सं० पु०) कालः कृण्वन्वर्षः गन्धः गन्धवत् द्रव्यम्, कर्मधा०। १ काला चण्डू नामक औषध। २ बालसेण, घोडा कालापन। ३ काला चन्दन। ४ सर्पविशेष, किसी विषका साप।
 -कालगति (सं० स्त्री०) समयका प्रवाह, वक्रकी चाल।
 कालग्रन्थि (सं० पु०) कालस्य ग्रन्थिरिय, उपमित समा०। वस्त्र, साल, वक्रकी गाँठ।
 कालघाम (सं० पु०) कालस्य कृतान्तस्य प्रासः, इ-तत्। मृत्यु, मौत, वक्रवा कौर।
 -कालघट (सं० पु०) एक ब्राह्मण। जनमेजयकी सर्प-रुद्रमें यह भी पोरों-इत्य कायं पर नियुक्त है।
 (मारु, यदि ३१ २०)
 कालघानी (सं० स्त्री०) काने यथाकाले धातयति नाग-यति णिनि। यथावाक्य विनाशकारक, दहसे मारने-याना।
 कालघ्न (सं० पु०) कुत्सितोऽपि पलघ्नः, कीः कादेगः। सुवर्णसुखी, सोनासुखी। २ कासमद, कर्मोटी।
 कालवक्र (सं० स्त्री०) कालस्य कालग्रतेऽपक्रमित, इ-तत्। १ कालरूप वक्र, वक्रका पहिथा या फेर। चक्रकी भाँति इसमें भी, निमि, नाभि और घरादि प्रकृति कल्पित है। मुख्यपुराणके मतानुसार दिवा-

भागका पूर्वोक्त, मध्याह्न एवं पपरारु तीन धंय तीनों नामि, संवत्सर, परिवत्सर प्रकृति पांच पर पर्यात् यलाका पीर लडो ऋतु कालचक्रके निमि पर्यात् प्रान्तभाग है। दिवादि कासावयव नियत चक्रको भाँति घूमता है। इसीसे कालचक्रके साय उपमित हुआ है। सुयुतमें लिखते हैं कि निमिवादि युग पर्यन्त वासावयव नियत घूमनेसे कुछ लोग कालचक्र कहा करते हैं। २ ज्योतिषक विशेष। ३ राजा लोगोके विजयप्रद ८४ चक्रोंमें एक चक्र। ४ ६०। ४ दानके लिये रीत्यनिमित्त एक चक्र। यह चक्र दान करनेसे भवमृत्युका भय नहीं रहता। ५ दण्ड विशेष। ६ भोटपथलित एक कालप्रापक चक्र। (पु०) ७ भल-विशेष, एक हथियार।
 कालविलोक (सं० पु०) कालं विलोकयति विचारयति, कालचिन्ति खल्। ज्योतिर्विद्, मज्जुमी, समयकी विचारनेवाला।
 कालचिह्न (सं० स्त्री०) कालस्य मृत्योर्घातकं चिह्नम्, मध्यय०। मृत्युदापक लक्षण विशेष, मोतकी पत्ताप्रतः काभीखण्डमें उलके कई लक्षण लिखे हैं,—“जिषके दक्षिण नासापुटसे एक पक्षोरारात्रकाल निष्कास्य चलता, वह तीन वर्षमें पचवष्य मरता है। ऐसे दो पक्षो-रात्र या तीन पक्षोरात्र चलनेसे छेड़ वर्ष तक पायु-काल रहता है। नासापुटद्वय परिव्याग कर पायु यदि सुखसे जाता जाता, तो मनुष्य तीन दिनमात्र जीवित देखाता है। इसी प्रकार सूर्यं समम रागिष्य और चन्द्र लक्ष्मणचन्द्रस्य ज्ञानसे पक्षघात मृत्यु, जाता है। पक्षघात किसी व्यक्तिको जो व्यक्ति कृण्व वा पित्रलवर्षकी भाँति समझता, यह दो वर्षमें मरता है। मन्, मूत्र और यक प्रथवा मन्, मूत्र और स्रुत (खखार) एक साथ गिरनेसे एक बरबरमात्र पायु-काल रहता है। जो व्यक्ति पाकागमें इन्द्रनीलवर्ष सर्प सकल सञ्चरण करत देखता, वह छह मास जीताज्ञागता है। फिर परिष्कार दिवसको सूर्यको विपरीत दिक् कृत्कार द्वारा छोडने पर यदि जनमें इन्द्रधनुः देख पड़ता, तो भी मनुष्य छह मासमें मरता है। अपनी जिज्ञा, भासिहाका प्रथभाग, मूद्रयका

मिलती है। गुहारे मकबरा (पागे) सिंहद्वार है। सिंह-
द्वारकी दोनों दिक् दी स्तम्भोंके होनेका अनुमान किया
जाता है। किन्तु आजकल उनमें एकमात्र वर्तमान
है। इसके निर्णय करनेका उपाय नहीं—दूसरे स्तम्भके
स्थानमें एक छोटा प्रस्तर-मन्दिर बना या पथवा एक ही
स्तम्भ बराबर रहा। स्तम्भ गोलाकार है। उस पर ३२
टाक पल बने हैं। वध भूमिमें समभावमें ऊपर उठा
है। स्तम्भके चारि भागमें कारनिम या ऊगर है।
ऊगरके ऊपर चारों ओर चार सिंहमूर्ति खोदित है।
किसी विधौके अनुसार उनमें उल्लासो मूर्तियाँ एक एक
धारण करती थीं। सिंहद्वार पार होते ही दूसरा एक
द्वार मिलता है। उसका विस्तार प्रायः ३४ हाथ होगा।
उसके दोनों पार्श्व दो स्तम्भ हैं। दोनों स्तम्भ चट्टान

या चटपनविगिट है। उनमें मोचे या ऊपर की
कारुकार्य देय नहीं पड़ता। फिर भी उपरिभागपर
दोनों स्तम्भोंमें दो प्रसन्न प्रस्तरफलक लगे हैं। उसके
पोंके फिर कुछ ऊपरकी ओर एक पंगवो है। उसमें
चार स्तम्भाकृति कुछ मोचे उत्तर गये हैं। उसके पन-
त्तर कुछ पागे बजने पर मन्दिरमें प्रवेग करनेकी तीव्र
द्वार है। उनमें कई लक्षण हैं, किसी प्रकारके खपाट
नहीं लगे। तीनों द्वार एक कतारमें प्राचीरवत् प्रस्तर-
खण्डसे संलग्न हैं। पक्ष प्राचीर द्वारके मस्तक पर्यन्त
समतल भावमें व्यवस्थित है। उसके उपरिभागमें
गुम्ब है। उसी स्थानमें पानोक (रोगनी) मन्दिरमें
पहुँचता है। गुम्बके ऊपर बड़ी मिहराय है। मिहराय
मन्दिरके प्रवेगद्वारमें शेष पर्यन्त विस्तृत है। उक्त



काशि ।

द्वार पार होनेके उपरान्तकी सपूर्व शोभा देय कर
उनमें एक सपूर्व भाषणा उदय होता है। केही मिल्प
चाहती। क्या सन्धर पवित्रम्। दोनों पार्श्वों पर दो
बागमदे दोनों ओर चले गये हैं। मध्यस्थानमें मादा-
मन्दिरका मण्डप है। प्रवेगद्वारकी उपरदिक् गुम्बज-
जैसा पेशका स्थान है। द्वारमें प्रवेगद्वार देवते है कि

द्वार बजतार स्तम्भोंकी दोनों पार्श्व दृष्टावमान
है। दोनों पार्श्वके स्तम्भोंके पीछे दोनों ओर बरामदा
है, बरामदेमें मध्यस्थानको मन्दिरमें चानेके जिये दोनों
पार्श्वके स्तम्भोंके मध्यस्थान विद्यमान है। भूमिके मध्य
स्थानमें मिहरायके मध्यस्थान तक जावने पर सन्धर-
तीव्र हाथ चत्तर निकलेगा। एक ही स्तम्भकी

कूट गिय है। यह विषं श्रावैर, कोहण पीर मनय
 पर्वतमें होना है। कानकूटको मोघिन करनीके निये
 प्रथम ३ दिन मोन्वमें भिमोकर रहते हैं। फिर
 स्वर्णतोलेमें जोषं वषट्क भिमो कुरु दिन बांधकर
 रहनेपर यह ग्रह होता है। कानकूट प्राणनागक,
 संवर्गरीरयापो, अग्निगुणवहुन, भोजः, रुखा, सन्धि-
 दंष्टका गौथिल कारक, रंगुक दृक्का गुणप्राणक और
 सुहमःशरु है। किन्तु विग्रह होनेसे कालकूटके उक्त
 सकल गुण घट जाते हैं। ऐसे भयकर गुण रहते भी
 सुनिगुण रूपसे प्रयोग करनेपर यह रसायन और वायु,
 शोका तथा सविपात दीपनायक है। (भाष्यकाम)
 ० मून्मैट. एक छह। इसका हृष मीगियाही तरह
 रचना और विक्रम तथा भोट्टेगमें मिलता है। इस
 पर द्रुद्र सुद्र गोनाकार चिह्न होते हैं।

कालकूटक (सं० पु० क्ली०) कालस्य कूटमिव कायति
 प्रकाशते, काल-कूट के-क। १ वारस्कर वृष्ट, कुचिलेका
 पिट्ट। २ कारस्कर फल, कुचिला। ३ श्रिय, महादेव।

“रतो दुर्धनः वन्द्यये कालकूटकम्।

विषं चपेयनासा भोनसिभजिषोयशः” महाभारत १। ११८५०

कालकूट्ट (सं० पु०) कालः कालस्वर्णः कूट्टट्टः
 कर्मधा०। काल-ट्टट्ट, महादेव।

कालकूटरजोद्धन (सं० पु०) राज।

कालकूटि (सं० त्रि०) कलकूटे भयः, कलकूट-इत्।
 वाहवाचनप्रत्ययककूटाग्रभादि। पा ३। १। १०२। कलकूट-
 ज्ञान, कलकूट मुक्तमें पैदा होनेशाला।

कालकूत् (सं० पु०) कालं करोति उदयास्ताभ्यां
 कालस्य दण्डादि परिमाणं करोति इत्यर्थः; काल-क-
 क्तिप् तुगागमः। १ सूर्य, आफनाव। २ परमेस्वर।
 कालकूत (सं० पु०) शालेन परमेस्वरणं कृतः सृष्टः यदा
 कालं कालपरिमाणं कृतः कर्ता काल-क कर्तारि क।
 १ सूर्य, सूरज। २ पाण्डविशेष, एक गुणाह। इसके
 मिटानेका काल निर्दिष्ट होता है। (त्रि०) ३ काल-
 ज्ञान, वक्तमें पैदा। ४ निर्दिष्ट, सुकरर। ५ कुरु समयके
 स्थि रखा हुआ।

कालकैतु (सं० पु०) एक देवोभक्त। इन्द्रपुत्र
 मोनाम्बर महादेवके अभिगावसे धर्मकेयु नामक

व्याधके पुत्र हुए थे। उस समय उनका नाम कालकैतु
 पड़ा था। (कविचरित्र पद्य)।

कालकैय (सं० पु०) कालकाया पपत्यम्, कालका टप्।
 एक दानव। हवासुरके मननेपर कालकैय समुद्रमें
 रहते और रात्रिकालको गुप्तभावसे देवगणका अनिष्ट
 साधन करते। फिर देवगणने उनमें कितनीहीको
 मार डारा। अन्तिम कालकैय हिरण्यपुरमें जाकर
 ठहरे। पीछे चलनेने उन्हें भी निहत किया।
 (हरियं १०१-१०५०)

कालकैभी (सं० स्त्री०) कालः कैय इव पतादियं स्याः
 वासकैय-स्त्री। १ नीली, छोटीनील। २ कालकैयगुण
 स्त्री, काले वालीवाली औरत। ३ काल-देवी।

कालकोटि (सं० स्त्री०) देवविशेष, एक मुक्त।

कालकोठ (सं० पु०) कन्दगाक विशेष, तरकारीका एक
 छत्ता, इसे प्रायः लोग मनसाह कहते हैं।

कालकोठरो (हि० स्त्री०) कारागारका स्थान विशेष,
 कैदखानेकी एक जगह। यह सहीणं और पञ्चकार-
 मय होती है। इसमें पन्नग रहनेवाले कौंदी रखे जाते
 हैं। २ कलकत्तेके फोर्टविलियमकी एक जगह। इसमें
 सिरालुहोलेने कितने ही चंगरेजोंको कैद किया था।

कालकमः (सं० पु०) समयका प्रवाह, वक्तकी चाल।
 कालक्रिया (सं० स्त्री०) काले यथाकाले निष्पन्ना अनु-
 ष्ठिता वा क्रिया, मध्यपदसो। १ यथाकाल सम्पादित
 कार्य, वक्तसे क्रिया हुआ काम। २ ऊर्ध्वदेहिक कार्य।
 ३ कासनिर्दग्, वक्तका ठहराव। ४ सूर्यसिद्धान्तका
 एक अध्याय।

कालकौतक (सं० क्ली०) नानीहृष, नीलका पिट्ट।

कालकैय (सं० पु०) कालस्य कैयः इ-तत्। १ समयका
 प्रतिवाहन, वक्तकी बरवादी। २ कर्तव्य कार्यके
 समयका लक्षण, देर।

“उत्पन्नानि हुनमपि हवि कृतवियार्थे विदासोः।

कालकैयं बहुमसुरभो पतिं पतिं वै॥” (देवत ११)

कालकैयप (सं० क्ली०) कालस्य कैयपं प्रतिवाहनम्,
 इ-तत्। कालकैय, वक्तका गुण।

कालखञ्ज (सं० पु०) १ दानवविशेष। २ यज्ञ-
 कलेजा।

वर्षना करना प्रसन्न है, सबकी वर्षना कौन कर सकता है। खारी कारीगरी है। तल्लभागमें क्रमान्तर धने चार स्तम्भक हैं। उनको संख्य ई धीरे धीरे घटती गयी है। उनमें कुछ गोरुजति है। उनके ऊपर षट्पल है। पञ्चोपर स्तम्भोंके मस्तक हैं। उनपर कंगनी लगी है। कंगनी पर दोनी टिकु हस्तिमूर्ति है। अर्धतृणपर कर्षी दो मानव, कर्षी दो मानवी, कर्षी एक मानव और कर्षी एक मानवीकी मूर्ति है। स्तम्भश्रेणों पार होने पर एक गुम्बज उसी भाङ्गति देख पड़ेगी। उसके ऊपरभागमें "५" इस चिन्हको भाँति एक पदार्थ और उसपर एक छत्र है। राजकल छत्र छत्रका कुछ रंग टूट गया है। गुम्बजके पञ्चाङ्गामें षट्पलविशिष्ट दूसरे मास स्तम्भ हैं। उनकी वनावट सीधी सादी है, विशेषादृशार्थयुक्त नहीं। मन्दिरके द्वारद्वेगमें छल्ल स्तम्भोंके मूलद्वेग पर्यन्त ८४ हाथ अन्तर होगी। प्रथम दोनी टिकुकी स्तम्भोंका मध्यस्थान सट्टे सोनह रैठेगा। वरामदाथोंका परिभर रूपिजात छोटा है। ६ हाथसे अधिक नहीं। छल्ल बडी मेहरावके पीछे ही बाठकी कडियाँ मेहरावमें संलग्न हैं। कडियोंकी कतार दंडी है। यह मेहरावको एक ओरसे दूसरी ओर तक चली गयी है। कडियाँ हमारे घरकी तरह सरल भावमें अवस्थित नहीं। वह बल्ल भावपर मेहरावसे मिन सरल भावपर शून्यमें अवस्थित हैं। उनका कोई आधार देख नहीं पड़ता। राजकल कोर्द निर्णय कर नहीं सकता—कैसे वह उस प्रकार संलग्न हुई है। न देखने पर वर्षनासे रूप मन्दिरका सौन्दर्य कैसे दृशभूत हो सकता है। कौन कह सकता—वह कैसा कितने दिनका पुराना है। बाहरके सिंहास्तम्भपर कोई खोदित अक्षर देख पड़ते हैं। लोगोंके कथनानुसार महाराज भूति वा देवभूतिने वह अक्षर खोदाये थे। पायाल्ल मनमें भूति राजा ई० यथाष्टमे ७८ वर्ष पूर्व राजत्व करते थे। उससे भी पूर्व मन्दिरका बनना असम्भव नहीं।

कार्यकैय (सं० पु०) जगदस्य षट्पेरपत्यम्, जगत्कारणम् । जगत्क मुनिके पुत्र ।

कार्यकैयोपव (सं० पु०) कार्यकैयः पुत्रः, इत्तम् । जगत्क षट्पेरके दोहिव, यह एक पाचपथे ।
 वार्यन (सं० वि०) मुक्ताविशिट, मोतियाँराना ।
 कार्यानिव (सं० वि०) कृपा गेटम्, जगानु-पण् । जगानुसम्बन्धीय, पातगयो, गर्मी ।
 वार्यखीय (सं० वि०) जगत्केन निवृत्तम्, जगत्क-कण । जगत्क द्वारा निवृत्त ।
 कार्यागे (सं० स्त्री०) कार्या राति, जगत्काले विष्णु भावे मन्त्रि रा कळोप । १ कासमारो । २ अयोपथी । ३ रंगारोचना ।
 कार्यायं (सं० पु०) गार्भारोपुत्र, एक पेड़ ।
 कार्या (सं० पु०) जगत् स्वार्थे व्यञ्ज । १ कर्पूरक, कर्पूर । २ गार्भारोपुत्र । ३ लक्ष्मणपुत्र, सुगुणका पेड़ । ४ सुद्वर्णास । ५ गालहृत् । ६ गालहृत् । (स्त्री०) जगत्स्य भावः, जगत्-व्यञ्ज । वर्षहर्षाभिः व्यञ्ज । पाशाराः ७ जगता, कामजोरो, दुवनापन । ८ जगत्-तारो, कामजोरोकी बीमारी । इस रोगका कारण—यात, रुक्ताश्रयन, लक्ष्मण, पत्तिमाश्रय, शोक वेग, निद्रा विनिपह, नित्यरोग, भरति, नित्य व्यायाम, भाजन ही अल्पता, भीति और घनादिका धर्म है । (भावभाव)
 कार्याहरकोट (सं० पु०) जगत्का एक षोडश, कामजोरोकी कोई दशा । खेतपुनर्वा, दन्तोमून, अश्वगन्धामून, विकला, विकट, विमद, शत-मूली तथा खेतवेलेडा वरावर वरावर ओर सबके वरावर कोट, भीमराजके रसमें खोदनेसे यह षोडश बनता है । (शिवशास्त्र)
 कार्या (सं० वि०) जगतिः शीलमस्य, जगत्-पण । वकारि-भेदः । पाशाराः । जगत्कर्मकारक, काश्ट हार, किरान ।
 कार्याक (सं० पु०) कार्या स्वार्थे कन् पथवा कर्षति जगत्-कान् । वर्षहर्षोरोपण । ७९ । १० । जगत्क, खितिहर ।
 कार्यापण (सं० पु० स्त्री०) कार्यास्य कार्यापण वा पापणः व्यहाराय, कार्यापण-पण् । १ षोडश पण, १६ कौड़ी या रत्ती । २ कर्षपरिमाण, १६ मापा । यह सोना तोलनेको १६ मापे, चाँदी तोलनेको १६ पञ्च और ताँदा तोलनेको ८० रत्तीका रक्ता है । ३ घन दोलत, सोना चाँदी । ४ जगत्क, किरान ।

कालखण्डन (सं० स्त्री०) कालेन कालान्तरेण खण्डति विकृतिं गच्छति, वान-खण्डि-ख्य। यजत्, कलेजा।
 कालखण्ड (सं० स्त्री०) कालं कृण्वन् खण्डं मास-
 खण्डम्, कर्मधा०। १ यजत्, कलेजा। २ कालप्रति-
 पाटक एक ग्रन्थ। ३ यजत्सूत्रोद्देशे, कलेजेकी एक
 बीमारो।

कालगङ्गा (सं० स्त्री०) काली जगन्मयी गङ्गा गङ्गावत्
 पवित्रकारीणी, कर्मधा०। १ यमुना नदी। २ सिंहल-
 की एक नदी।

कालगण्डिका (सं० स्त्री०) नदीदिग्ध, एक दर्या।
 पाञ्चकन इसे कालीगण्डक कहते हैं।
 कालगण्डेत (हिं० पु०) सप विभोग, काले गण्डे वासा
 सांप।

कालगन्ध (सं० पु०) कालः कृण्वन् गन्धः गन्धवत्
 द्रव्यम्, कर्मधा०। १ काला अगुरु नामक औषध।
 २ बालसेग, घोडा कालापन। ३ काला चन्दन।
 ४ सप विभोग, किसी विश्वका सांप।

कालगति (सं० स्त्री०) समयका प्रवाह, वस्तुकी
 चाल।

कालप्रत्यि (सं० पु०) कालस्य प्रत्यिरिव, उपमित
 समान। वस्त्र, सान, वस्तुकी गति।

कालप्राम (सं० पु०) कालस्य कृतान्तस्य प्रासः, इ-तत्।
 मृत्यु, भीत, वस्तुका कौर।

कालघट (सं० पु०) एक ब्राह्मण। जननेजयके सप-
 यज्ञमें यह भी पोरोंद्वय काय पर नियुक्त थे।

(भारत, भाद्र ३१ प०)

कालघाती (सं० स्त्री०) काले यथाकाले घातयति माय-
 यन्ति णिनि। यथावाल विनायकारक, दण्डसे मारने-
 वाला।

कालद्रुत (सं० पु०) इत्सितोऽपि अलद्रुतः, कोः
 काटिगः। सुवर्णसुखी, सोमासुखी। २ कासमट,
 कर्मोदो।

कालचक्र (सं० स्त्री०) कालस्य कालगतपक्षमिन्,
 इ-तत्। १ कालखण्डक, वस्तुका पहिया या फिर।
 चक्रकी भांति इसमें भी निमि, नाभि और अरादि
 प्रथति कल्पित हैं। मुख्यपुराणके मतानुसार दिवा-

भागका पूर्वाङ्क, मध्याङ्क एवं अपराङ्क तीन प्रथ तीनों
 नाभि, संवत्सर परिवत्सर प्रथति पांच पर चर्यात्
 मलाका और छोटी ऋतु कालचक्रके निमि धर्यात्
 प्रान्तभाग हैं। दिवादि कालाशयव नियत चक्रको
 भांति हूमता है। इसीसे कालचक्रके साथ उपमित
 हुआ है। सद्युत्तमें लिखते हैं कि निमिआदि युग पर्यन्त
 यातावयव नियत घूमनेसे कुछ भोग कालचक्र कहा
 करते हैं। २ व्यातिचक्र विभोग। ३ राजा लोगोंके
 विजयपद ८४ चक्रोंमें एक चक्र। ४ दानके
 क्रिये रीत्यनिमित्त एक चक्र। यह चक्र दान करनेसे
 अपमृत्युका भय नहीं रहता। ५ दण्ड विभोग।
 ६ भोटपंचलित एक कालप्रापक चक्र। (पु०) ७ पक्ष-
 विभोग, एक हथियार।

कालविक्रम (सं० पु०) कालं विक्रमयति विचारयति,
 काश्चित्किल खलु। ज्योतिर्दिद, गजमी, समयको
 विचारनेवाला।

कालचिह्न (सं० स्त्री०) कालस्य मृत्योर्प्रापकं चिह्नम्,
 मध्यय० मृत्युप्रापक लक्षण विभोग, मोतकी पशुमत।
 कायीखण्डमें उक्तें कई लक्षण लिखे हैं,—“जिबके
 दक्षिण नासापुटसे एक अहोरात्रकाल निखास चलता,
 वह तीन वर्षमें पचय्य मरता है। ऐसे ही दो अहो-
 रात्र या तीन अहोरात्र चलनेसे छिट् वर्ष तक पायु-
 काल रहता है। नासापुटद्वय परित्याग कर वायु
 यदि सुखसे पाता जाता, तो मनुष्य तीन दिनमात्र
 जीवित देखाता है। इसी प्रकार सूर्य सप्तम राशिख
 और चन्द्र अक्षमचक्रस्य इन्से पक्षघ्नात् मृत्यु, पाता
 है। पक्षघ्नात् किसी व्यक्ति को जो व्यक्ति ज्ञय वा
 विश्वलक्षणकी भांति समझता, वह दो वर्षमें मरता
 है। मन्, मूत्र और यज्ञ प्रथवा मन्, मूत्र और द्रुत
 (खहार) एव साथ गिरनेसे एक बरसमात्र पायु-
 काल रहता है। जो व्यक्ति पाकागमें इन्द्रनीलवर्ण
 सप सकल सधरण करते देखता, वह छह मास
 जीताजागता है। फिर परिष्कार दिवसकी सूर्यको
 विपरीत दिक् फुत्कार द्वारा छोड़ने पर यदि जलमें
 इन्द्रधनुः देव पड़ता, तो भी मनुष्य छह मासमें मरता
 है। पपनी जिह्वा, नासिकाका पपभाग, मूत्रयुक्त

कार्यावपक (सं० पु० स्त्री०) कार्यावप्ये व्याप्यं कन् ।
 कार्यावप, एव ताव ।
 कार्यावपावर (सं० वि०) एक कार्यावपके मूल्यवान् ।
 त्रिवर्षी कममे कम १३ कोटिदा मर्ष ।
 कार्यावपक (सं० वि०) कर्षावपेन पाठार्थम्, कर्षा-
 वपे टिटम् । कर्षावपव्यवहारेण । पाठार्थम् । (कर्षिण)
 कार्यावपे दारा पाठव्यवहारेण, १३ कोटिमे पाठवपका ।
 कार्या (सं० पु०) कर्षति, कर्षयति, कर्षयति इन् । १ पश्चि-
 म्पाग । (स्त्री) २ पाठार्थक, कर्मिणः । ३ कर्षयति, जा-
 ताई । (वि०) ३ कर्षक, खेग लो निशान्ता । ४ कर्ष-
 मन्त मलनायक, भोक्षरी मन्त कुडामेवात् ।
 कार्यावपक (सं० पु०) कर्षे व्याप्ये ठक । १ कार्यावप,
 १३ कोटिका एक ठका । (कर्षः शोलमस्य) २ कर्षक,
 त्रिवाण । (वि०) कर्षस्य पयम् । ३ कर्षपरि-
 मित, शोलक मामेवात् । ४ कर्ष परिमित मूल्य दारा
 कर्ष किये दृग, जा १३ कोटिमे लोदीदा गवा द्वा ।
 कार्यावप (सं० वि०) कर्षक, त्रिवाण ।
 कार्या (सं० वि०) कर्षस्य भावः कर्ष-कम् । कर्षता,
 कर्षाई ।
 कार्या (सं० वि०) कर्षस्य इदम् कर्ष-पयम् ।
 १ कर्षक मन्तश्रीय, काले त्रिवाणान् । २ कर्षक पा-
 यन कर्षव्यव । (कर्षा देवता पय) ३ कर्षमन्त ।
 (स्त्री) ४ कर्षमन्तमर्ष, काले त्रिवाणका पयम् ।
 (पु०) ५ कर्षकार मन्त, काला त्रिवाण ।
 कार्या (सं० स्त्री०) कर्षु गतावरी, लोरी मन्तार ।
 कार्याजिनि (सं० पु०) कर्षाजिन्स्य कर्षवैपत्यम्
 कर्षा जेन-इन् । १ कर्षाजिन मुनिके पुत्र । २ कार्या
 विमेय, एक उपाद । ३ मन्त विवाणविद, कोरे मुह-
 विन, मोमिमा-पुत्र, ब्रह्मचर्ये चोरे काल्यवनशो-पुत्रने
 इतका नाम मिलगा ई । ४ कारि रज्जु मेषाण्यथे वा ;
 रैठीनवि, जेमाट्ट, माधवाचार्य, शुभन्दन प्रथमि-
 ष्य मं पयितीन इतका मत वदन्त किये ई ।
 कार्यावप (सं० पु०) कर्षस्य व्यासस्य गतावपम् कर्ष-
 कम् । १ व्यासमन्तके कर्षक । २ वासिह, वर्गमन्तमी ।
 कार्यावप (सं० स्त्री०) कर्षस्य पयमा विवाः कर्ष-
 पयम्-पयम् । १ कर्षक कर्षिण, मन्त, वासि कोटिको

वनो पुत्री चीन । २ मोह, लोडा । (वि०) ३ कर्ष-
 कोट (निमित्त, काले कोटंता मन्त दृग ।
 कार्या (सं० पु०) कर्षस्य पयस्य कर्ष-इन् । १ काम-
 देव । २ मन्तवैपत्य । ३ व्यासके पुत्र युवदेव ।
 ४ मन्तम् ।
 कार्या (सं० स्त्री०) कार्या-होप् । गतावरी, मन्तार ।
 कर्ष (सं० स्त्री०) कर्षस्य भावः कर्ष-इन् । कर्ष-
 वर्धता, म्याही कानावप ।
 कार्यावप (सं० वि०) १ कर्षावपनिमित्त, काले
 कोटिका मन्त । मोह, लोडा ।
 कार्या (सं० स्त्री०) कर्षति पय, कर्ष कार्या विच-
 पाधारे मन्तम् । १ युव, मन्तार । भावे मन्तम् ।
 २ कर्षक, जोताई ।
 कार्या (सं० स्त्री०) कार्या वर्धयति गति ददाति,
 कार्या-होप् । श्रीवर्षी इत ।
 कार्या (सं० पु०) कार्या विवाः, कार्या-यम् ।
 श्रीवर्षीहृत्ता पयम् ।
 कार्यावप (सं० वि०) श्रीवर्षी हृत्त दारा निमित्त ।
 कार्या कर्ष-ठको ।
 कार्या (सं० पु०) कर्षक व्याप्ये व्याप्य । गतावप ।
 कार्यावप (सं० स्त्री०) गतावपका वप ।
 कार्या (सं० पु०) १ मन्तक, धूमेका पिङ्ग । २ कर्ष-
 कार मन्त, काला त्रिवाण ।
 कार्या (सं० स्त्री०) कर्षवत् कालि मन्तानि,
 कु-का-क, काः कार्याः यदा घ तुपु कुर्षितकालया
 कर्षिण, कु-क-पययोः कार्याः । १ मोह, लोडा ।
 २ कर्षक, शोलमवनी । ३ कालीयत नामक मन्तक
 विमेय, एक शुभचदर चीन । (वि०) कर्षक पय-
 विगिट, काला । (पु०) ५ कर्षवर्ष, काला रंग ।
 ६ मन्त, मीत । ७ मन्तकाल । ८ मन्तवप । ९ काममर्ष
 हृत्त, कोटिका पिङ्ग । १० मन्तविमक, मन्त चीन । ११
 मन्त, राक, लोशान । १२ लोशान, कोयल । १३ गिह ।
 १४ विष्णु । १५ पयतविमेय, कोटिका इत । कर्षवति
 पयः कर्ष-विष्णु पय-पयम् ततोऽप्य यदा कर्षवति
 मन्तानि मन्तानि, कर्ष-विष्णु पय-पयम् । १६ मन्त,
 पय । इतका कर्ष मन्तक नाम दिट कोर पयंदा ई ।

मध्यस्थान और निवृत्तयोति: देख न पढ़नेसे अल्प दिनमें ही मृत्यु होता है। नीलादि वर्ण वा पञ्चादि रस अन्वयाभावमें अनुभव करने पर्यात् वस्तुका प्रकृत वर्ण छोड़ अन्यवर्ण देख पढ़ने और वस्तुका प्रकृत वासादन वा अन्य वासाद मिननेसे ६ मासके मध्य मृत्यु प्राप्ताता है। कण्ठ, श्रोत्र, जिह्वा और तालु प्रकृति स्थान निरन्तर सुखनेसे ६ मासमें मनुष्य मरता है। जिसका दन्त, मुख और निवृत्तकोय नीलवर्ण कगता, उसका भी आयुःकाल ६ मासमें अधिक नहीं चलता। देहकालमें मध्य और शेष समय छीक घानिसे ५ मासमें मृत्यु होता है। छानके पीछे प्रथम ही जिसका वक्षःस्थल और हस्तपद सुख जागा, वह व्यक्ति ३ मास मात्र जीवित रहता है। धूम्र और कर्दमके मध्य जिसका पदविज्ञ खण्डरूपसे उभरता, वह ५ मासके मध्य मरता है। देह निचल रहने भी जिसकी छाया हिलती हुलती, उसको जीवितावस्था ४ मास तक चलती है। जिस व्यक्तिको प्रतिविम्बमें पपना सुकृष्ट और मस्तकादि देख नहीं पड़ता, वह उसी मास चल बसता है। बुद्धि भ्रान्त होना, वाक्य गिर जाना और रातको इन्द्रधनु, दो चन्द्र अथवा पाकाग नक्षत्रशून्य, दिवाभागमें दो सूर्य, आकाशमें नक्षत्रसमूह, चारोदिक् एक ही समय इन्द्रधनु, पिशाच-मृत्यु, एवं हृष वा पर्यंत पर अन्यत्र देखाना सब क्रम मृत्युके लक्षण हैं। इनमें एक भी उपस्थित होनेसे एक मासके मध्य मृत्यु पाता है। हस्त द्वारा कर्ण चापरित कर ही व्यक्ति किसी प्रकार शब्द सुन नहीं सकता, उसका जीवन जैसे-रैसे चलता है। रूक्ष व्यक्ति जठरात् क्रम अथवा क्रम व्यक्ति जठरात् स्थूल ही जानिसे एक मासके मध्य मृत्यु पाता है। अपनी छाया दक्षिणदिक् अवस्थित होनेसे पांच दिनमें पक्षत्व मिलता है। जो व्यक्ति स्वप्नमें अपनेकी पिशाच, असुर, काक, भूत, भ्रत, कुकुर, शूद्रभी, अगस्त, गर्दभ, शूकर, शरभ, वृद्ध, यागद, श्येनपक्षी, अखतर वा हक प्रकृति जन्तु द्वारा भक्ष्य वा आश्चर्यण किये जानि देख पाता, वह एक वर्ष पीछे मर जाता है। स्वप्नमें पपना शरीर गन्ध, द्रव्य और रक्तवस्त्र द्वारा भूयित देखनेसे ८ मासके मध्य

मृत्यु होता है। धूम्रगणि, वल्मीक, दूध अथवा दण्ड पर चारोहण करते देख ६ मासमें मनुष्य प्राण छोड़ता है। फिर स्वप्नमें गर्दभ चारोहण कर भूयित शरीर दक्षिणदिक् जानि अथवा अचना मस्तक किये शरीर शक्त काष्ठ एवं जणयुक्त देख पानेसे भी आयुःकाल ६ मास रहता है। स्वप्नमें कण्यवस्त्र पहने और कीह-दण्ड किये कण्यवस्त्रको कन्ध पर खड़ा देखनेसे ६ मासके मध्य मनुष्य मर जाता है। स्वप्नमें प्रतिज्ञाय-वर्ण कुमाँरी आनिह्नन करनेसे एक मासके मध्य मृत्यु पाता है। स्वप्नमें वागद पर चट्ट पूर्वदिक् गमन करते देखनेसे ५ दिनमें यमलोक यात्रा होती है। कृपण व्यक्तिका जठरात् दाता और दाता व्यक्तिका जठरात् क्षरण हो जाना भी मृत्युका एक लक्षण है।

(आरोहण, ४१ पं०)

आयुर्वेदशास्त्रमें भी मृत्युके नानाप्रकार लक्षण निर्दिष्ट हैं। जैसे सृष्ट्युगमें—शरीरका आचार व्यवहार सामाजिक अपेक्षा अकारण विकृत हो जाना संक्षेपमें मृत्युका लक्षण कहा जाता है। जो व्यक्ति किसी प्रकारका शब्द न होते भी दिश्य शब्द सुनता और इमीप्रकार जिसे समुद्र भिष प्रकृतिका शब्द न निकलते भी दिश्य शब्दसमूह सुन पड़ता एवं शब्द होते जो नहीं सुनता अथवा अन्य शब्दकी भांति उसे समझता पर्यात् विरक्तिकारक शब्दके सन्तोद तथा सुगन्धसे असन्तोद रहता; उसका मृत्यु प्रतिशय निकट था पड़चता है। शीतल द्रव्य अथवा एवं अथवा द्रव्य शीतल लगने, शीतपीडित होने कण्यस्पर्शमें कट पढ़ने अथवा अत्यन्त अथवा गात्र रहने शीतसे कंपने, प्रहार वा अङ्गुष्ठेदन करनेसे किसी प्रकार वेदना न मासूम पढ़ने, शरीरपर धूलि चढ़ने, शरीरका वर्ण बदलने, या मयं शरीरमें सूत्र कैसा पदार्थ निकलने, छानके पीछे पशु-लेपनादि शत्रुमें लगाने, नील मलिका या लुटने और अथवा सुगन्धि वातकर निकल चलनेमें भी मनुष्य मृत्युपासव माना जाता है। रससमूहकी व्यक्ति विपरीत भावसे आवादन करता और यथा-युक्त रससमूह जिसके किये दापवर्षि करके तथा

मल्लिका, बद्धरि । (स्त्री०) कालस्य मानं परिमाणम् ।
 ३ कालका परिमाण, वस्तुकी तोल ।
 कालमानक, कालमान देखी ।
 कालमार, कालमान देखी ।
 कालमारिप (सं० पु०) हृष्टत्पत्र तखडुसीय ग्राक,
 बहीपत्तीकी चीराई ।
 कालमाल (सं० पु०) कालिन कृष्णवर्णन मानः सख्य-
 न्बोडस्य, बडुत्री० । कृष्णतुलसी, काली तुलसी ।
 कालमानक, कालमान देखी ।
 कालमाला (सं० स्त्री०) कृष्णाञ्जक, काली तुलसी ।
 कालमुख (सं० पु०) कालं मुखं यस्य, बडुत्री० ।
 कृष्णमुख वानर विगेष, काले सुंइका एक बन्दर ।
 (भारत, ११ १८१ १०) । (त्रि०) २ कृष्णवर्ण मुख वा
 अग्रभागयुक्त, कालमुख ।
 कालमुष्क, कालमुखक देखी ।
 कालमुष्कक (सं० पु०) कालो मुख इव कायति
 प्रकाशते, काल-मुखक-कै-क । १ घण्टापाटलहृद्य,
 मोखा । २ कृष्णपुष्पघण्टा, काले फूलकी मोखा ।
 कालमूर्ति (सं० स्त्री०) कालस्य मूर्तिः, इ-तत् । १ यम-
 मूर्ति । २ मृत्युकारक जन्तुकी मूर्ति । ३ कालयम ।
 कालमून (सं० पु०) कालं मूलं यस्य, बडुत्री० । रत्न-
 चिह्नक, ज्ञान चीत । चिह्नक देखी ।
 कालमेघ (सं० पु०) १ सुदृढ हृद्यविगेष, एक छोटा
 पेड़ । यह अत्यन्त तिष्ठ होता है । इसे मचातीता
 और मचाभाग भी कहते हैं । पत्र अधिकांग मरिचके
 पत्रसे मिलते हैं । हृद्यके शीर्षमें चपटा फल लगता
 है । इनके वैद्य इसको च्चरनागक यताते हैं ।
 २ कोरि विख्यात तामिल कवि । द्राविडके लोग
 इन्हे 'कालमेकम्' कहते हैं । कविता विद्वेष एवं रूपकसे
 परिपूर्ण है । अधिकांग शोक इत्यर्थमूलक है । यह दो
 द्विगं एक काव्य लिख सकते थे । कालमेघ मन्त्रवतः
 ई० के पद्यद्वय गताश्रमं औचित्ये । ठीक नहीं कहा
 जा सकता—इनका प्रकृत नाम क्या रहा ।
 कालमेशिका (सं० स्त्री०) कालो मिथ्यते कालोऽयं
 इति पथ्यते जनैरिति श्रेयः काल मिग-डीप्-कन् टाप्
 कृष्णस्य । मञ्जिष्टा, मंजोठ ।

कालमेगी, कालमेशिका देखी ।
 कालमेषिका (सं० स्त्री०) कालं मिपति पथ्यते म्बका-
 ष्टेन, काल-मिप्-मण्-डीप् स्वायं कन्-टाप् कृष्णत्व-
 च्च । १ श्यामा विहता, काली कटैया । २ मञ्जिष्टा,
 मंजोठ । ३ कृष्णजीरक, काला जोरा । ४ विहता,
 कटैया । ५ वाकुची । ६ हरिद्रा, हनदी । ७ श्लेत्त-
 जीरक, सफेद जोरा । ८ श्यामालता ।
 कालमेषी, कालमेषिका देखी ।
 कालमेषी (सं० पु०) मेहराग विगेष, जिरियाकी एक
 बीमारो ।
 कालयवन (सं० पु०) यवनिका एक अधिपति । महा-
 देवके नियमानुसार गार्ग्य ऋषिकी भार्याके गर्भसे
 इसका जन्म हुआ । उक्त ऋषिने मथुरावासियोंके
 प्रति जातक्रोध हो वैरनिर्घातनके निमित्त अतिसत्वर
 नामक स्यानमें द्वादश बरार लौहचूर्णमात्र भक्षण
 और नियम भवत्वान्नपूर्वक रुद्रदेवकी प्रीतिके लिये
 तपस्या की थी । गार्ग्यके पौरस और गोपाली नाम्नी
 ऋषराके गर्भसे कालयवनने जन्म लिया । यह राज-
 घर्मज्ञ, राजोचित पट्टगुणसे अस्मद्धत, विद्वान्, सत्ववादी
 जितेन्द्रिय, रणकुशल, शूर और सुमन्दिमहाय थे ।
 मगधराज जरासन्धसे इनको संघीति रही । यह
 जरासन्धके साथ मथुरा आक्रमण करने गये । उसमें
 पहले श्रीकृष्णने मथुरावासियोंको द्वारका भेज दिया
 था । यह जानते थे कि कालयवन मथुरावासियोंद्वारा
 मारे जाने योग्य न थे । सुनरां श्रीकृष्ण कालयवनके
 समूहसे भाग किसे पर्वतकी गुहामें घुसकर छिप रहे ।
 उस गुहामें सूर्यवर्णश्री महाराज सुबहुद्वन्द्वके परि-
 श्रमसे बहुत हताहत हो सोते थे । कालयवनने उनमें घुस
 कृत्य समझ कर उनके ज्ञात मार दे । सुबहुद्वन्द्वको कीप
 दृष्टिसे फिर यह विगत हो गये । (हरिवंश १११ १०)
 कालयाप (सं० पु०) कालस्य यापः अतिवाहनम्,
 इ-तत् । काल अतिवाहन, वस्तुका गुणारा,
 टाकमटोल ।
 कालयापन (सं० स्त्री०) कालस्य यापनं अतिवाहनम्,
 इ-तत् । १ समयका विनाश, वस्तुका कटाव । २ लोभ-
 यात्राका निर्वाह, गुणारा ।

यह वक्रगामी या मन्दस्थानगत ही जन्मनक्षत्रकी सताने, जिसकी होरा, उल्का तथा अग्नि-हारा अभिभूत होती, जिसके गृह, द्वार, शय्या, आसन, याग, धाहन, मणि, रत्न प्रभृति सकल उपकरण कुलक्षणयुक्त होते, उसे अचिरात् मरते देखते हैं। शरीरकी प्रभा श्याम, लोहित, नील वा पीत वर्ण पड़ते मृत्यु निकटवर्ती संभवा जाता है। जिसकी कान्ति और लज्जा विनष्ट देख पड़ती, अकस्मात् जिसके शरीरमें तेज, भोजन, स्मृति तथा प्रभा उपस्थित होती, जिसका भोष्ठ लटकने लगता, जिसका अन्तरोष्ठ ऊर्ध्वगत होता अथवा जिसके उभय भोष्ठ जामनकी भांति कासे पड़ जाते, उसका जीवन अतिदुर्लभ है। सकल दन्त रक्तवर्ण श्यामवर्ण वा खल्वमवर्ण होने, जिह्वा कृष्णवर्ण, स्तब्ध, अवलिप्त, शोथयुक्त या कर्कश लगने, नासिका कुटिल फटीफटी तथा शुष्क पड़ने, स्वर अधिक प्रकाशित अथवा बह ही जाने, चक्षुर्हय सङ्कुचित, स्तब्ध, रक्तवर्ण अथवा अशुभ्युक्त रहने, केश अपनै आप उलझने, भ्रू हय भ्रुकने और सकल अक्षिपद्म गिरनेसे अविश्वस्य मृत्यु होता है। जो मुखमें खाद्यवस्तु डालनेसे निगल नहीं सकता, जो अपना मस्तक धारण करनेमें असमर्थ रहता, जो एकाग्र दृष्टिकी भांति एक विषयमें चक्षु सन्निवेश करता अथवा मुग्धचित्त बनता, यह अवश्य मरता है। वल्लवान् वा दुर्वल व्यक्तिका वारवार भोहमें पड़ना भी मृत्यु लक्षण संभवा जाता है। जो व्यक्ति सर्वदा उत्तान होकर सोता, पदहय विषेय वा प्रसारण करता, जिसका हस्त, पद एवं निश्वास शीतल पड़ जाता, जिसका श्वास क्लिष्ट रहता और निःश्वास काकोच्छ्वासकी भांति लगता, यह अधिक दिन नहीं चलता। अचिरत सोने, एकवारभी निद्रा भङ्ग न होने अथवा एकवारभीही निद्रा न पड़ने, धोनेकी चेष्टा करनेमें मूर्छा पाने, सर्वदा उद्गार देवाने, प्रेतके साथ बतलाने, विधात न होने भी रोमकूपद्वारा रक्त निकलने और वाताहीला हृदयमें घटनेसे मृत्यु निकट था पड़ सकता है। किसी रोगके उपद्रव व्यतीत केवल शोथरोग (पुरवके पदहयमें, स्त्रीके मुखदेगमें और पुद्गपक्षी

दोनोंके गुह्यदेगमें) लगनेमें ही प्राण विनष्ट हो जाता है। श्वास अथवा काम रोगमें अतिचार, प्वर, हिका, वमन, अण्डकोप एवं लिङ्गमें शोथ प्रभृति उपद्रव उठनेसे मृत्यु आता है। वल्लवान् रोगी भी खेद, दाह, हिका और श्वास प्रभृति उपद्रवयुक्त होनेसे नहीं बच सकता। जिस व्यक्तिकी जिह्वा श्यामवर्ण बन जाती, घामघण्ट कोटरगत होता, मुखसे पूतिगन्ध निकलता, अन्तुसे सुखमण्डल भर जाता, पदहयमें घर्म (पसीना) आता, चक्षु अकुल पड़ता, शरीरके सकल गुरु अवयव उटाने पतने पड़ जाते, जो पद्म, मत्स्य, वसा, तैल और घृतशा गन्ध अशुभय कर नहीं सकता, मस्तकके लुंभा जिनके सन्नाटपर विचरण करते, जिनके हाथसे प्रदान यारनेपर काज खाद्य नहीं खाते, जिसको किसी विषयमें सन्तुष्टि नहीं आती, उसका मृत्यु अति आसन्न है। औप व्यक्तिकी चुधा लप्या रुचिकारक एवं हितजनक मिष्टान्न पान-द्वारा निवारित न होने और एक ही काल आमामय रोगमें शिरःशूल तथा दारुण कीष्ठशूल घटनेसे लोमोका अचिरात् मृत्यु होता है।

(सुश्रुत सुगम्यान् २०, २१, २२ ५०)

कालपोदित (सं० त्रि०) कालिन चोदितः प्रेरितः इ-तत् । यथाकाल विना चेष्टाके उपस्थित, मोतक भेजा हुआ, जिसे समय या मृत्यु भेजे।

कालचोदितकर्मा (सं० त्रि०) भाग्यके प्रभावसे कर्म-करनीयाता, जो किस्मतके जोरसे काम करता ही।

कालजानि (सं० स्त्री०) नदी विशेष, एक दरया। ब्रह्मांडपुरी और दीमा नामक दो नदियाँ भूटानके पर्वतसे निकल जलपाईगोड़ी जिलेमें पत्नीपुर नामक स्थान पर आ मिली हैं। इसी सङ्गमपर उक्त दोनों नदियोंका नाम 'कालजानि' पडा है। यह नदी प्रागे चल कीचविहार राज्यकी पूर्व और पड़ोसी और रङ्गपुरके निकट रंधक नामक नदीमें जा गिरी है।

कालसुवारी (हि० पु०) प्रसिद्ध द्यूतकार, नामी जूबा-वाज, जो खूब जूबा खेलता ही।

कालजीपक (सं० त्रि०) काले यथाकाले लुपते भोजनादि इति शेषः, काल-लुप-यजुत् । यथा समय

कालयुक्त (सं० पु०) कालेन युक्तः, ३-तत् । १ प्रमवादि पट्टि संवत्सरके चत्वारिंशत् ५२वां संवत्सर । (त्रि०)
२ अपरिपक्व नीय कालनियमयुक्त, वहके कृष्यदेसे मिला हुआ । ३ मृत्यु युक्त, मौतके मिला हुआ ।

कालयोग (सं० पु०) कालस्य योगः संयोगः, ६-तत् ।
१ समयका सम्बन्ध, वहका सिलसिला ।

“कालो कालयोगिन महति कालनैरुचः ।” (भारत, वन, १०५०)

२ ज्योतिष-शास्त्रोक्त कालरूप एक योग ।

कालयोगी (सं० पु०) काल एव योगः पश्चाद्भिः, कालयोग-इति । शिव ।

“कालयोगी महाशयः सर्वकामधनुषधः ।” (भारत, अ०, १०५०)

(त्रि०) २ कालसम्बन्धीय, वहके सुताजिक ।

कालयोगी (सं० पु०) काले यथाकाले योषः युक्तं कर्तव्यत्वेन पश्चाद्भिः, काल-योष-इति । यथासमय युक्त करनेवाला व्यक्ति, जो प्रत्येक वह पर लड़ता है ।

कालर (सं० पु० Collar) शैवेय, पट्टा, कुरते या कमीचर्मे गलेकी चारो ओर लगनेवाली उठी हुयी पट्टी ।

कालरात्रि (त्रि०) कालरात्रि देवोः ।

कालरात्रि (सं० स्त्री०) कालरूपा सृष्टिसंहारभृता रात्रिः, मध्यप० । १ प्रलयरात्रि, कयामतकी रात ।

ब्रह्माकी रात्रिकी कालरात्रि कहते हैं । उस समय समुद्रय संहार विनष्ट हो जाता है । केवलमात्र नारायण एकात्मके सोया करते हैं । इसीसे उस समयका नाम कालरात्रि है । २ मृत्यु सूचक रात्रि, मौतकी रात । अपने वा प्राणोप्य व्यक्तिके मृत्युकी रात्रि कालरात्रि कहाती है । ३ भयामक रात्रि, खोफनाक रात । ४ ज्योतिषशास्त्रसे कियेके प्रयोग्य रात्रि विग्रह, खराब रात । उसमें समस्त रात्रिकी ८ भाग करनेका नियम है । फिर वारके अनुसार प्रतिदिन पाठ भागमें एक भाग कालरात्रि माना जाता है । यथा—रविवारके रात्रिका पठ भाग पर्यात् २० दण्डके पीछे ४ दण्ड, शनिवारके चतुर्थ-भाग पर्यात् १२ दण्डके पीछे ४ दण्ड, मङ्गलवारके द्वितीय भाग पर्यात् ४ दण्ड, बुधवारके सप्तम भाग पर्यात् २४ दण्डके पीछे ४ दण्ड, वृहस्पतिवारके पंचम भाग पर्यात् १६ दण्डके पीछे ४ दण्ड, शुक्र-

वारके छतीय भाग पर्यात् ८ दण्डके पीछे ४ दण्ड और गनिवारके प्रथम एवं त्रिप भाग पर्यात् प्रथम ४ दण्ड और त्रिपको ४ दण्ड कालरात्रि होती है । वह समुदाय कार्यारम्भमें परित्याज्य है । साधारणतः रात्रिपरिमाण ३२ दण्ड लगा यह हिस्सा निश्चय गया है । किन्तु रात्रिपरिमाण घटने बढ़नेसे भी ८ भाग कर एक नियमानुसार कालरात्रि मागी जाती है ।

“एते षष्ठं दिने षष्ठं कुम्भारं द्वितीयकम् ।

षष्ठं सप्तमं षष्ठं भद्रवारं तृतीयकम् ।

जलाभाषं तथा चानं रात्रौ कामं विवर्नेत् ॥” (दीर्घा)

५ दुर्गा देवीकी एक मूर्ति ।

“कालरात्रिसंहारविमोहरात्रिप दारवा ।” (माण्डेयपु०, २२५०)

६ दुर्गाकी कालरात्रि मूर्तिका प्रतिपादक एक मन्त्र ।

७ दीपावित्ता प्रमायस्था, दिवाला ।

“दीपारकी तु या शोका क्षात्ररात्रिषु सा मता ।” (वाल्म)

८ यमकी भगिनी । वही सर्वप्राणीका विनाश करती है ।

९ भीमरथी, चत्यस्त वृहदावस्था । मनुष्यके पापमें ७०वें वर्ष पर ७वें मासके ८वें दिन पड़नेवाली रात कालरात्रि कहलाती है । उसके पीछे मनुष्य नित्य-नेमित्तिक कर्मसे छुटकारा पाता है ।

कालरुद्र (सं० पु०) कालः कालरूपः सर्वसंहारको रुद्रः, कर्मधा० । कालाग्निरूप एक रुद्र ।

“येषु नः कालरुद्रस्य नामास्तीवतपद्मः ।

विश्वदत्तं विनाया इतले मीववृत्तः ।” (ऐशु०)

कालरूप (सं० त्रि०) प्रशस्तः कालः; काल-रूपप० । सर्वकामो हर्षः । या शोकरः । १ चत्यस्त रूपवर्ण, निहायत काला । २ कालसदृश, मौत-जैसा । ३ रूपवर्ण, काला ।

कालरूप-धृक् (सं० पु०) कालरूपं धृपति धारयति, कालरूप-धृक्-क्षिप् । १ यम । २ मृत्यु, मौत ।

कालल (सं० त्रि०) कालः कालके विच्छिन्नैः पश्यत्य, काल-लच् । विधमादिभ्यः । वा १५१८० । कालविश्वयुक्त, काले दागवाला ।

काललवण (सं० स्त्री०) कालं रूपवर्णं लवणम्, कर्मधा० । १ विद्वलयण, कालागम ह । भायप्रकाशके मतमें यह अग्निदीप्तकारक, लघु, तीक्ष्ण, सप्यवीर्य,

अथ आहारादि द्वारा सन्तुष्ट, जो वस्तु पर छोड़ा खाना पानसे खुश रहता हो। (पु०) २ गोपविशेष ।

कालज्ञ (सं० पु०) कालं उपदिशसमर्थं जानाति, कालज्ञा-क। कुकुट, सुरगा। (त्रि०) २ उचित समयवेत्ता, ठीक वस्तु समझनेवाला। ३ ज्योतिषी, नज्जूमो।

कालज्ञान (सं० स्त्री०) कालो ज्ञायते अनेन, काल-ज्ञा करणे ख्युट् । १ ज्योतिषशास्त्र, नज्जूम। (भाषि ख्युट्) २ उपयुक्त समयका ज्ञान, ठीक वस्तुकी पहचान। (कालो मृत्युर्ज्ञायते अनेन) ३ मृत्युबोधक चिह्न, मौतकी वतानेवाला निग्रान् । ४ चिकित्साशास्त्रविशेष। इससे काल समझ पड़ता है। ५ रूग्णविनश्य-शास्त्रविशेष, बीमारी पहचाननेकी एक किताब, इसे शम्भूनाथने बनाया था।

कालज्ञर (सं० पु०) कालं जरयति काल-जृ-णिच्-अच् वाहुलकात् सुम् । १ योगिधर्ममेलक । २ भैरव विशेष। (कालेन कीर्यति) ३ मेरुके उत्तरका एक पर्वत। (विष्णुपुराण २४५८) ४ नगर विशेष, एक शहर। कालिजर देको। ५ शिव। (त्रि०) ६ मृत्युनिवारक, मौतकी डटनावाला। ७ सद्यस्व छोड़ सब गुणमात्रमें मनोनिवेशकारक।

“ पादस्य सर्वहस्तान् सर्वं चित्तं निवेशयेत् ।
सर्वे विषां समारोशं शतं शान्तये भवेत् ॥ ” (भारत मांति २४ प०)

कालज्ञरक (सं० त्रि०) काल-जृ-ण-वुञ् । षष्ठ्यादि षड्बन्धन-विषयान् । पा० । २ । १२१ । कालज्ञर नामक जनपद संवन्धीय।

कालज्ञरा (सं० स्त्री०) कालं जरयति, कालम्-जृ-णिच्-अच्-टाप्, सुम् । चण्डिका, दुर्गा देवी।

कालज्ञरी (सं० स्त्री०) काल-जृ-ण-डीप् । शिवपत्नी, चण्डी।

कालतम (सं० त्रि०) प्रथमेयात्मतियेन कालः कल्प-वयः, काल-तमप् । प्रतिमय कल्पवर्षं, निहायत काला।

कालतर (सं० त्रि०) कालो प्रतिशेते कालीम् काली-तरप् । विनोयान् प्रतिमपकालान् । (पा० । २ । १२१ । वातिक ६)

कालीकी अघोषा भी अधिक कल्पवर्षं, व्यादा काला।

कालता (सं० स्त्री०) कालस्य भावः काल-तल् । कालका भाव, बरवस्तुगी।

कालताल (सं० पु०) कालताय कल्पत्वान् अमति पर्याप्नोति, कालता-अल्-अच् । तमाल हृष।

कालतिन्दुक (सं० पु०) कालदाघो तिन्दुकयेति, कर्मधा० । कुपीषु हृष, किषी किस्मका भावन्मू ।

कालतिल (सं० स्त्री०) कालदाघो तिलश्च, कर्मधा० । कल्प तिल, काला तिल।

कालतीर्थ (सं० स्त्री०) कोशन्तास्थित एक तीर्थं । इस तीर्थका जन अग्नि करनेसे एकादश छपके दानका फल मिलता है।

“ कोशान्तु समाशय काशतीर्थमुत्सृजेत् ।
इष्वेकादशरुचं लभते नाव संशयः ॥ ” (भारत, वन ८६ प०)

कालतुण्ड (सं० स्त्री०) कल्पामुण्ड, काला अण्ड।

कालतुनसी (सं० स्त्री०) कालो तुलसी ।

कालतुल्य (सं० त्रि०) मृत्युके समान, मौतकी बराबर, मार डालनेवाला।

कालतुष्टि (सं० त्रि०) समयापेक्षी सन्तोष, वस्तुकी कनात। सर्व्यमें समय आनेसे स्वतः कार्यकी सिद्धि हो जानेका सिद्धान्त “ कालतुष्टि ” कहाता है।

कालतोयक (सं० पु०) प्राचीन जनपद विशेष, एक पुरानी मस्ती। महाभारत और ब्रह्माण्ड प्रभृति पुराणोंमें यह स्थान आभीर तथा अथरान्तादि जनपदके साथ उक्त हुआ है। टोलेमिने भी कोलक और एरियान् कोकल नामक जनपदकी बात लिखी है। (Ptolemy, Geog. VII. ch. I. p. 58; Arrian, Indika Sec. 21.) उक्त समय नाम कालक वा कालतोयक शब्दके रूपान्तर समझ पड़ते हैं। कराची उपसागरके उपकूलमें कालकज्ञ वा कारकज्ञ नामक एक जिला है। इसी स्थानको पुराणीक कालतोयक जनपदका अंग मान सकते हैं।

कालत्रय (सं० स्त्री०) कालस्य त्रिवयवः, काल-त्रिवयच् । त्रिकाला त्रयवयवा । १ यामान, भूत एवं भविष्य तीनों काल, हाजिर, माजो और बादन्दा जमाना।

कालत्रयप्र (सं० त्रि०) कालत्रयं जानाति, कालत्रय-प्रा-क। वर्तमान, भूत एवं भविष्य तीनों कालका विषय जाननेवाला, जो हाजिर, माजो और बादन्दा तीनों जमानेसे वाकिफ हो।

कालत्रयदर्शन (सं० स्त्री०) कालत्रयस्य दर्शनं प्रत्यक्ष-वत् प्रबलोकनम्, इ-तत् । प्रत्यक्षकी भांति कालत्रयके विषयका प्रबलोकन, तीनों जमानेका देखाव।

रुच, रुचिकारक, व्यवयी और विद्वन्, आनाह, विष्टम्, इन्द्रवेदना, शरीरकी रुचता तथा शुल-नामक है। २ काचलवण, सेंचरमोन।

काललीचन (सं० पु०) एक दानव।

“मन्थो मरुको बाधो खचमः काललीचनः” (इति०, २४ ५०)

काललीह (सं० स्त्री०) कालह तत् लोहश्चेति, कर्मधा०।

लीह्य लोह, लोहा लोहा। इसका संस्कृत पर्याय कृष्णा-यस, रुक्म, तीक्ष्ण और कालायम है। लो० देखो।

कालवह (सं० पु०) ह्युपविशेप, एक भाइ। लोग इसे कालियाकदा कहते हैं।

कालवदन (सं० पु०) १ दैत्यविशेष। (त्रि०) २ कृष्ण-वर्ण मुखयुक्त, काले भंजवाला।

कालवलन (सं० स्त्री०) कलयति उपभुनक्ति विषयम्, कल-णिवृ-षच् कालस्य कायस्य चलनं आवरणं वा, ६-तत्। वर्म, आवच, जिरह, वस्तुतर।

कालवस्ति (सं० पु०) वर्षाके आदिमें बात प्रभृतिके उपशमनार्थ वस्ति, श्रुत वरसातमें सफाईके खास्ते लगायी जानेवाली पिचकारी। यह पक्ष्दशविध होता है। पहले एक खेहवस्ति लगता है। उसके पीछे एक निरुहवस्ति लगती है। पुनः खेहवस्ति लगाया जाता है। उसके पीछे निरुहवस्ति चलाता है। इसी प्रकार हादय वस्ति अन्यतर क्रमसे लगा चन्तमें तीन खेहवस्ति देते हैं। (बरह)

कालवाघ—पञ्जाब प्रदेशके बन्, जिल्लाका एक नगर। यह अक्षा० ३२° ५०' ५०" उ० और देशा० ७१° ३५' ३०" पू० पर अवस्थित है। लोकसंख्या हह हजारसे कुछ अधिक है। यह पठकसे ५२ कोस दूर सिन्धु नदीके कूल पर एक लवणका पर्वत है। कालवाघ नगर उसी पर्वतके गाढसे संलग्न है। चक्र पर्वत लवण-मय है। खण्ड खण्ड काट कर बुकनी पीम लेनेसे ही उत्तम लवण बन जाता है। यहाँ मारीनामक स्थानमें लवण खोद कर निकाला जाता है। राशि राशि लवण काट जाने भी पर्वत कुछ घटता मालूम नहीं पड़ता। सिन्धुनदीकी लूना नामा एक गाछा नदी है। उसके पश्चिमभागमें एक स्थानपर हह लवणकात है। उसकी बाईं ओर गमकला गुदाम है।

यहाँ लवण विक्रता है। पर्वतमें लवणका एक एक प्रस्तर कहीं डेढ़ और कहीं १२ हाय तक प्रगस्त है। यहाँ १५ मन लवण काट लेनेमें सिर्फ एक रूपया देना पड़ता है। गुदाममें जानेसे मूल्य अधिक लगता है। निकट ही दूसरा पहाड़ भी है। उसमें किटकरी भरी है। वहाँ किटकरी साढ़े तीन रूपये मन विक्रती है। कालवाघ नगरमें लोहेकी अच्छी चीजें बनती हैं। वहाँ म्युनिसिपलिट्री, डारुखंगला, पौषधालय, सराय और विद्यालय वर्तमान है।

कालवाचक (सं० त्रि०) कालप्रबोधक, वक्त वताने-वाला।

कालवाचो (सं० त्रि०) समय वतानेवाला, जो वक्त,को वताता हो।

कालवान् (सं० त्रि०) कालः कल्प्यर्थः अमृतस्य, काल-मत्पु मस्य वः। कल्प्यवर्णविशेष, काले रंगवाला।

कालवानर (सं० पु०) कल्पसुख वानर, काले सुं-वाला वन्दर।

कालवार—बस्वर प्रेसिडेन्सीके पन्तर्गत काठियावाड़ प्रदेशका एक नगर। यह नमनगरसे १४ कोस दक्षिण-पूर्व अवस्थित है। कालवार नामक राजस्वविभागका एक मण्डल भी है। कालवार नगर उसीका प्रधान स्थान है। नगर प्राचीर वेष्टित है। लोकसंख्या टारि हजारसे कम है। १८०८ ई० को दुर्भिक्षके समय यहाँ कोई ३०० लोग मरे थे। बालाकाठी जातिकी बसती पास ही है। प्रवादानुसार बाला नामक किसी राजपूतने यहाँ जा काठी जातिकी किसी रमणीका पाणिपट्टण किया था। उसी परिणयके फलसे बाला-काठी लोग उत्पन्न हुये। श्रतयर्षपूर्व कालवारमें एक प्रकारका दङ्गड़ी नामक कार्पासवृक्ष बगता था। देगस्थ राजा उसका बड़ा समादर करते थे। किन्तु प्याजकल यह देख नहीं पड़ता।

कालवाहन (सं० पु०) महिष, भैरव।

कालविक्रम (सं० पु०) कालस्य यमस्य समयस्य वा विक्रमः, ६-तत्। १ यमका विक्रम। २ मृत्युका विक्रम, मौतकी ताकत। ३ समयका विक्रम, वक्तकी ताकत। कालविध्वंसन (सं० पु०) १ वैद्यकरसविशेष, एक दवा

यह धारद, स्वर्ण, रोष्य, ताम्र चौर हरिताम्र, समभाग मर्दनकर पाण्डु चौर चाभय रोग नष्ट हो जाता है।

(रुद्राचार)

(स्त्री०) कालस्य विध्वंसनम् । २ समयनाग, पल्लकी बरवादी।

कालविध्वंसनरस, चान्दिमं देखो।

कालविध्वंसी (सं० स्त्री०) कालं विध्वंसयति नाशयति, काल-वि-ध्वंस-विष्-विनि । समयनागक, वल्ल वरवाट करनेवाला।

कालविपाक (सं० पु०) समयकी परिपक्वता, वल्ल पूरा होनेकी मिथाद।

कालविप्रकर्ष (सं० पु०) कालस्य विप्रकर्षः दूरत्वम्, ६-तत् । समयकी दूरता, वल्लका वटाव।

कालविपायिका (सं० स्त्री०) काकोली और चौर काकोली।

कालवीजक (सं० पु०) महाविष्य, बड़ी नीम।

कालवृक्ष, चान्दिम देखो।

कालवृद्धि (सं० स्त्री०) वृद्धिविग्रेष, एक सूद । प्रति-दिवस वा प्रति मासके हिमाशसे जो वृद्धि बढ़कर दिगुण हो जाती, वही कालवृद्धि कहती है।

"वृद्धिः चाशुद्धिः चारिता चारिका च वा।" (मन्त्र, ८। १११)

कालवृत्ता (सं० पु०) कालं वृत्तं यस्य, यदुन्नी० । कुल्य, कुल्यो।

कालवृत्ता, चान्दिम देखो।

कालवृत्ताक (सं० पु०) पेटिका, एक पेट।

कालवृत्तिका (सं० स्त्री०) कालं वृत्तं यस्याः काल-वृत्त-डीए स्वार्थे कन्-टाप् ईकारस्य ऊलत्वम् । रत्नपाटल-हल । २ पेटिका पिटारी।

कालवृत्ती (सं० स्त्री०) कालवृत्त-डीए । पाटलाहच, एक पेट।

कालधेग (सं० पु०) नागविग्रेष, कोई नाग। यह बासुकिके पुत्र थे।

कालवेना (सं० स्त्री०) कालस्य वेना, ६-तत् । १ समस्त दिवारात्रिके मध्य क्रियाका अयोग्य समयविग्रेष, तमाम-दिन और रातके बीच काम न करने लायक वल्ल । दिनमाम और रात्रिकास समयमें प्रत्येकको ८ घाट

भागमें बाँट वारके अनुमार एक वा दो भाग काल-वेना मागते हैं। रात्रिकारको दिनका पचम एवं रात्रिका षष्ठ, सोमवारको दिनका द्वितीय तथा रात्रिका चतुर्थ, मङ्गलवारको दिनका षष्ठ एवं रात्रिकी सप्तम, बुधवारको दिनका छतीय तथा रात्रिका अष्टम, गुरुको दिनका चतुर्थ तथा रात्रिका छतीय और शनिवारको दिनरात्रि उभयका प्रथम एवं षष्ठम भाग कालवेना है। (शोतिषवेदिना)

कालव्यापी (सं० त्रि०) कालं व्याप्नोति काल-वि-पाप-विनि । एकरूपबहुदिन स्थायी, एक ही तरह बढ़त दिन चलनेवाला।

कालगम्य (सं० पु०) एक दानव।

कालगाक (सं० स्त्री०) कालं ज्ञप्यं ग्राकम्, कर्मधा० । १ ग्राकविग्रेष, करेन्, पटुया। उसका संस्कृत पर्याय—नाडिक, आरग्राक और कालक है। भावप्रसागके मतसे यह सारक, रुचिकारक, शीतल, पवित्र, वायु एवं वनवर्धक और कफ, शोथ तथा रक्त-पित्तनागक है। २ तिष्ठपूतिका। ३ कुल्य, कुल्यो। ४ अर-सुडा, मरफोका। ५ तुलसी वृक्ष।

कालगालि (सं० पु०) कालः ज्ञप्यः गालिः धाम्य-विग्रेषः कर्मधा० । ज्ञप्यगालि, काला धान, उस धानका चावल और भूषी दोनों काली होती हैं। सुश्रुतके मतानुसार यह कपाय, मधुररस, मधुरपाक, शीतवीर्य यस्य अभियन्दी, ममवृक्षकाक, सप्तु और यष्टिक धान्यके तुल्य गुणयुक्त है।

कालगिरा (सं० स्त्री०) काला ज्ञप्यवर्षा गिरा, कर्मधा० । ज्ञप्यवर्षा गिरा, काली रंग।

कालशुद्धि (सं० स्त्री०) कालस्य शुद्धिः ६-तत् । शुद्धकाल, पाक वल्ल । जिस समय समुदाय शुभ कर्म सम्पादन कर सकते, उसे कालशुद्धि कहते हैं।

कालशेय (सं० स्त्री०) कलश्यां भयम्, कलशो-टक् । १ पादश्रमने त्रिभाग दक्षिणत तक, एक शिरसे पागो और तीग शिरसे टहीका बना मन्त्र। २ चाल, इरताल। कालशैल (सं० पु०) कालः ज्ञप्यवर्षः शैलः कर्मधा० । पर्वतविग्रेष, एक पहाड़।

को राज द्रव्यादि कलकत्ते भेजनेमें जितना व्यय पड़ता मटोकी राज उससे पत्य लगना है। इसीसे नावपर लटकर हो वहाँमें द्रव्यादि कलकत्ते आते हैं। उसकी मसजिद, बाज भी इमाम न होनेका यही कारण है। दीनाजपुर और बल्लपुरमें वहाँ चावल जाता है। १८३१ ई० की वर्षमानके मझाराजतेजचन्द्र वहादुरने कालनामसे वर्षमान पर्यन्त एक अच्छी मठक बनवा दी थी। उसमें ४ कोमके पत्तर पर एक एक तानाव और डाकवंगला बना है। वह मझाराजके गङ्गाछानकी सुविधाके लिये तैयार किया गया था। सुसनमानेके शासनकाल वर्षा एक दुर्ग रहा। उसका भग्नावशेष बाज भी भागीरथीके तीर देखपड़ता है। दो पुराने टूटी मसजिदे भी वहाँ गङ्गाके तीर वर्षमानराजके भवनमें १०८ गिवमन्दिर, अन्यान्य देवदेवीके मन्दिर, पतिदिशाना और समाधिस्थान हैं। समाधिस्थानमें सुधंतन राजाओंका अस्थिपञ्जर रक्षित है। राजभवन पति मनोगम स्थान है। वहाँका बाजार बहुत बड़ा है। सहस्राधिक इटकनिर्मित गृह देख पड़ते हैं।

कालनाग (सं० पु०) कालप्रापको नागः, मध्य-पदना० । १ नियत मृत्युकर मर्षविशेष, काया सांप । एकके काटनेसे नियम मृत्यु होता है। २ नाग-जातिकी एक श्रेणी ।

कालनागिनी (सं० स्त्री०) नियत मृत्युकारिणी सर्पिणी, काकी नागिन ।

कालनाथ (सं० पु०) कालस्य कालभैरवस्य नाथः, इ-तत् । १ महादेव ।

“कालनाथाय कल्प्ये षण्णोपचक्राय च” (भारत, शानि २८६ च०) २ कातोय यजुर्वेदमन्त्रो नामके ग्रन्थकार । ३ काल-भैरव ।

कालनाभ (सं० पु०) कानः कल्पः नाभिरस्य, कान-नाभि भ्रंश्यां ऋत् । १ शिरस्थान असुरका कोई पुत्र । (शिवच १५) २ शिरस्थकगिपुका एक लडुका ।

कालनिधि (सं० पु०) शिव, महादेव ।

कालनियोग (सं० पु०) कालेन कृतो नियोगः, कालस्य नियोगो यः । १ देवकी आज्ञा । २ कालकृत नियम, वक्तृका कायदा ।

कालनिरूपण (सं० पु०) कालस्य निरूपणं निर्धारणम्, इ-तत् । समयका नियोजकरण, वक्तृका ठहराव ।

कालनिर्णय (सं० पु०) कालस्य निर्णयः निरूपणम्, इ-तत् । १ समयका निर्धारण, वक्तृका ठहराव ।

२ साधवाचारप्रथात कालसाधवीय नामक एक पत्य । कालनिर्याम (सं० पु०) कालः कल्पवर्षो निर्यामः कर्मधा० । गुगलु, गूगुन ।

कालनिर्वाह (सं० पु०) कालस्य निर्वाहः पतिवाहनं । समयका पतिवाहन, वक्तृका निशाह ।

कालनिगा (सं० स्त्री०) १ दीपमालिकाकी रात्रि, दीवालीकी रात । २ भयङ्कर रात्रि, अंधेरे रात ।

कालनेत्र (सं० त्रि०) कालं मृत्युप्रापकं कल्पवर्षं वा नेत्रं यस्य वधुनी० । १ मृत्युलक्षणयुक्त नेत्रविशिष्ट, आंखोंमें मोतकी चलामत रखनेवाला । २ कल्पवर्षं चक्षुर्विशिष्ट, कालो पांडुराजा ।

कालनेमि (सं० पु०) कालस्य मृत्योर्नेमिरिव, उपमि० । १ राजम विरोध, लक्ष्मणपति रावणकामातुन । यक्षि-शेनके आघातसे लक्ष्मण आहत हुये थे। इनमान् उनके लिये शोषण करने गन्धमादन गये; उधर कालनेमि रावणमें अर्धराज्य मिलनेका प्रलोभन पा लक्ष्मणसे इनमान्को विनष्ट करने पट्टा चाया । वहाँ कुम्भीरा द्वारा विनाग साधनेके उद्देशसे उसने इनमान्की कौशल क्रमसे किमी सरोवरमें मछाने भेज दिया। जनमें प्रवेश करते ही कुम्भीराने इनमान् पर आक्रमण किया; किन्तु उन्होंने उसे मार डाला। इनमान्के प्राय मारो जाने पर वह अभिग्राहसे क्रुष्ट गयो। उसी समय उसने कतघ्न द्वयमें इनमान्की कालनेमिकी कपटताको बात बतायी थी। फिर उन्होंने पत्यन्त क्रुद्ध हो कालनेमिकी मार डाला। (इतिशयो रामायण)

२ दानवविशेष, कोई राक्षस। इस दानवका रूपादि इस प्रकार वर्णित है,—यह दानव शिरस्थ-कगिपुका पुत्र था। शरीर मन्दारपर्वतको भाँति दृष्टत् श्वेतवर्ण रहा। गत दृष्ट और गत मुख थे। किंग धूमन्त्रं रहै। अश्रु हरित्कर्णं था। दन्त वृद्धि-भाग पत्यन्त विस्तृत थे। कालनेमिने स्त्रीय प्रतापके

समीचीन नैतिक निर्दिष्ट तथ्य मात्र ।

समतोतुषि कौन्वय कामयेत्येव पाठिषु" (भारत, वन, १९२५)

कालसंरोध (सं० पु०) कामस्य संरोधः, ६-तत् । १ चिर काम प्रश्रयान्, इमेगा मोजूदगी । २ दीर्घ समयका प्रतिवाहन, लम्बे वल्लका गुजारा ।

कालसद्वर्षा (सं० स्त्री०) कालेन सद्वृथते अमौ, काल-सम-क्षण-कर्मणि घञ् । नववर्षीय कन्या, नौ सालकी बहकी ।

"एकवर्षां भवेत् सत्या हिरणां च सरस्वती ।

द्विर्षा च द्विर्नृपि चतुर्वर्षा तु कानिका ॥

सुभगापंचवर्षा च षड्वर्षा च वना भवेत्

सप्तभिर्मासिणी सात्त्वत् षड्वर्षा च कुजिका ॥

नवमिः कालसद्वर्षां दशमियापराजिता ।

एकादशे तु श्रद्धापो शान्तान्धे तु मेरुके ॥

दशोदशे महालक्ष्मीदिसा पीठनायिका ।

चैत्रशा षड्दशभिः दोषभ्ये शान्ता भवा ॥" (चन्द्राक्षर)

अथष्टाकल्पमें कुमारीके वर्षक्रम पतुसार नामकायै भेद निर्दिष्ट है । यथा एक वर्षं ययस्ता सन्ध्या, दो वर्षकी सरस्वती, तीन वर्षकी त्रिमूर्ति, चार वर्षकी कालिका, पांच वर्षकी सुभगा, छह वर्षकी उमा, सात वर्षकी मालिनी, आठ वर्षकी कुजिका, नौ वर्षकी कानसद्वर्षा, दस वर्षकी पश्चरा, ग्यारह वर्षकी रुद्राणी, बारह वर्षकी भैरवी, तेरह वर्षकी महालक्ष्मी, चौदह वर्षकी पीठनायिका, पन्द्रह वर्षकी चैत्रशा, और सोलह वर्षकी कुमारी अथवा नामसे अभिहित होती है ।

कालसदृश (सं० त्रि०) १ समयात्कूल, वल्लके सुषाफिक । २ मृत्युतुल्य, मीतके बराबर ।

कालसम्पन्न (सं० त्रि०) कालेन काले वा सम्पन्नम् । १ कान-वर्द्धक सम्पादित, वल्लका क्रिया हुआ । २ यथाकाल निष्पन्न, जो वल्ल पर बना हो ।

कालसर्प (सं० पु०) कालः कल्पः सर्पः, कर्मघा० । कल्पसर्प, काला सांप । (Coluber naga) उसका संस्कृत पर्याय—चल्लगर्द और महाविष है । यह फणी सर्पोंके प्रथमभूत है । उसका वर्ष प्रतिगय चिकण कल्प रहता और मस्तकमें फणापर पदचिन्ह देख पड़ता है । कुमारीके विलोमें जा बह प्रायः बाध करता

है । किन्तु कहीं कहीं कालसर्प मोक्षानयमें भी रहता देख पड़ता है । अन्यान्य सर्पोंकी अपेक्षा उसमें क्रोध प्रतिगय अधिक होता है । यदि कोई अत्याचार करता, तो कालसर्प बहुत दूरतक दौड़कर उसे डसता है । हिन्दुस्थानमें उसका बहुत प्रादुर्भाव है । वर्षोंके समय राह चलनेमें विशेष सावधान रहना पड़ता है । किन्तु सोभाग्यकी बात है किधी प्रशारका अत्याचार न करनेसे वह कम काटता है । पदका शब्द सुनते ही कालसर्प दूर छट जाता है । किन्तु जब दैवयोगमें उसपर किसीका पैर पड़ जाता तो वह झुड़ हो उसे काट खाता है ।

कालसार (सं० स्त्री०) कालः सारो यस्य, बहुव्री० । १ पीत चन्दन । काशीवक देवी । २ कल्पसार नामक मृग-विशेष, काला हिरन । ३ कल्पगुरु, काला अंगर । ४ तिन्दुक । ५ हरिताल । ६ काली तुलसी ।

१ अथार क्षी ।

कालसाध्य (सं० स्त्री०) कालेन समानः पादशो यस्य, बहुव्री० । १ नरकविशेष, कोई दोख । पुत्र विह्वल वा कन्यापण ग्रहण करनेसे उल्ल नरकमें पड़ते हैं ।

"धी सन्धुः स्वर्क पुत्रं विकीप धमिन्धति ।

कन्या वा लीखितापांय वं पल्ले न प्रयच्छति ॥

शशावरे महापौरे निरुषे काजनाचरये ।

स्वदे' मन्' प्रीवच मकियः समद्वते ॥" (भारत, वन, ३१५)

कालसि—युक्त-प्रदेशको कालसि तहसीलकी प्रधान नगरी । वह पक्षा० १०° ३२' २०" उ० और देशा० ७०° ५१' २५" पू० पर अवस्थित है । देहरादूनके पास जहाँ यमुना और तमघा नदी मिली हैं, उसीके प्रति निकट कालसि नगरी बसी है । नगरी प्रति पुरातन है । वहाँ एक प्रसन्न-खण्ड पर अगोक राजाकी गिनासेख स्तोदित है ।

कालसिर (हिं० पु०) नौके कूपदण्डकी गिखा, अहाजके मस्तकका सिरा ।

कालसूक्त (सं० स्त्री०) वैदिक सूक्तविशेष, वेदना एक सूक्त । उसमें कानको वर्णना की गयी है ।

कालसूत्र (सं० स्त्री०) कामस्य यमस्य सूत्रमिन्द्र वस्यन-हेतुत्वात्, उपमि० । १ नरकविशेष, कोई दाख । उल्ल नरक प्रसन्न तःअमय है । मनुसंहितामें वह एक-

बल देवगणको हरा खर्ग अधिकार किया। फिर काल-
नेमिने स्त्रीय देह बार भागमें बांट देवगणको भांति
कार्य समुदाय चलाया था। विष्णुके हाथ मारि जाने
पर कालनेमि परजन्ममें कंस रूपमें प्रादुर्भूत हुआ।

(हरिवंश ३६—३३४ पं०)

३ मालव देगीय कोई ब्राह्मण कुमार। इनके पिताका
नाम यज्ञमोम था। पिताके मरने पर इन्होंने स्त्रीय
भ्राताके साथ पाटलिपुत्र पहुँच देवगर्मा नामक किसी
ब्राह्मणसे विद्या पढ़ी। ब्राह्मणने उक्त दोनों भ्राताओंको
अपनी दो कन्याएँ दी थीं। किसी समय कालनेमिने
प्रतिवेशियोंकी धनाढ्य देख ईर्ष्यापरायण चित्तसे
सन्धोकी पाराधना की। सन्धोने पाराधनासे
सन्तुष्ट हो इन्हें विपुल धन और चक्रवर्ती पुत्र लाभका
वर दिया था। किन्तु ईर्ष्यापरायण ही पाराधना
करनेके कारण सन्धोने प्रतिघात देकर कड़ा था,—
'तुम चौरकी भांति मरोगे।' कालक्रमसे ब्राह्मणको धन
पुत्रादि प्राप्त हो गया। किन्तु पुत्रगण राजाने
इन्हें चौरकी भांति मार डाला। (कथासरित्सागर)

कालनेमिरिपु (सं० पु०) कालनेमिः रिपुः, ६-तत्।

१ कालनेमिके शत्रु विष्णु। २ हनुमान्।

कालनेमिहा (सं० पु०) कालनेमिं हतवान्, कालनेमि
हन्-णिप्। १ विष्णु। २ हनुमान्।

कालनेमौ (सं० पु०) कालखेव नेमिरस्तस्य, काल-
नेमि-इनि। कालनेमि, एक असुर।

कालनेम्यरि (सं० पु०) कालनेमिः परिः शत्रु, ६-तत्।
१ विष्णु। २ हनुमान्।

कालपत्त (सं० वि०) काले यथाकाले पत्तः, ७-तत्।
यथासमय पत्त, अपने पाप बल पर पकनेवाला।

कालपट्टो (दि० स्त्री०) भराव, ठूसठास। जहाजकी
दण्डमें सन समरह भरनेको 'कालपट्टी' कहते हैं।
यह शब्द पार्तगोज 'क्लोलाफटो'का प्रथम अक्षर है।

कालपक्षी (सं० स्त्री०) तालीगपत्र।

कालपय (सं० पु०) विष्णुमिश्रके एक पुत्र।

(भारत, अ० ३० पं०)

कालपरिवाह (सं० पु०) ईपत् कालका ठहराव,
बोड़ बल्लभेसिये ठहरनेका काम।

कालपर्व (सं० पु०) कालं कल्पं पर्वं पत्रं यस्य, बहुव्री०।
तगरहृत्त।

कालपर्णिका, कालपर्णे देखो।

कालपर्णी (सं० स्त्री०) कालं कल्पं पर्णमस्याः। १ कृष्ण
तुलसी लक्ष, काली तुलसी। २ श्यामालता,
काली वेल।

कालपर्यय (सं० पु०) कालस्य पर्ययः वेपथोत्यम्, ६-तत्।
कालकी विपरीत गति, बलका उलटफेर। शुभदायक
कालकी अशुभदायकता और अशुभदायक कालकी
शुभदायकता 'कालपर्यय' कहलाती है।

“मित्रगीका यथा राजन् शोपमासाय निहतः।

मरनि पुत्रव्याप कानिकाः कात्रयं वै ॥” (महाभारत विराट ७७५)

कालपर्वत (सं० पु०) त्रिकूटके निकटका एक पर्वत।

“त्रिकूटं समतिष्ठत् काश्यपः तत्रैव च।

ददत् महाराषः नभोरोदं मघोदधिम्” (महाभारत, वन १७६ पं०)

कालपात्रिक (सं० पु०) भिक्षुभेद, किसी किष्कके फकीर।
यव कृष्ण वर्ष पात्र हाथमें ले भिखा मांगते हैं।

कालपालक (सं० स्त्री०) कालं कल्प्यन्ते पासयति
धारयति, काल-पाल-पवुल्। कंकुष्ठमृत्तिका, एक मट्टी।
बहुव देखो।

कालपाथ (सं० पु०) कालस्य पाथः रञ्जुरिव कालस्य
मृत्योर्यमस्यवा पाथः। १ समयका बन्धन रज्जुवत् पापव-
कारक अपरिवर्तनीय नियम, बलकी केंद्र। समयके
एक नियम द्वारा भूत पावब हो किसी प्रकार पन्द्या
कर नहीं सकते। २ यमपाग, मौतका फन्दा। यथा
समय इसी पागरूप नियमसे पावब ही नोर्गकी
यमालय जाना पड़ता है। ३ मृत्युपाग, फाँसी।

कालपागिक (सं० पु०) कालपागस्य नेता, कालपाग-
ठक्। हाथसे मारनेवाला, जंदाद, फाँसी देनेवाला।
कालपीलु (सं० पु०) कालः कल्प्यवर्णः पीलुः, कर्मधा०।
कृष्णवर्ण पीलु, स्याह पावनस, काला तेंदू।
कालपीलुक (सं० पु०) कालपीलु स्वार्थे कन्।

कालपीलु देखो।

कालपुच्छ (सं० पु०) कालः पुच्छोऽस्य, बहुव्री०।

१ मगविदिय, एक जानवर। सुप्रतने इस मृगकी
कूल्पर जन्मके अन्तर्गत कहा है। इनपर देखो
२ कल्प्यपट्ट, काशा विहा।

विंगति महानरकाके पत्तनिर्विष्ट निष्ठा है। ब्रह्महत्या, शास्त्रके आधारका त्याग, छपप राजाका दानपहण, ग्राहमें भोजन कर शूद्रको उच्छिष्ट दान प्रभृति पाप करनेमें उक्त महानरक भोगमा पहुँते हैं। २. न्या. कारक सुख, मार डालनेवाला डोरा।

"कालहन्तो" तथा यद्यः कालहन्तेन कल्पितः।" (भारत, वनपर्व)

१ पानीकी रसो।

कालसूत्रक, कालसूत्रक।

कालसूत्र (सं० स्त्री०) मृत्युकारक सूत्र, मोतका सूत्र। यह कल्याणके समय निकलता है।

कालसेन (सं० पु०) एक डोम। इसने राजा हरियन्द्रको क्लय किया था।

कालस्तम्भ (सं० पु०) कालः कल्पः स्तम्भो यस्य, बहुव्री०। १ तिन्युक हथ, तेंदूका पेड़। यह मधुर, यक्ष, हथ, गुरु, धातुहृदिकर, मोत और श्वम, दाह, कफ, पित्तगोच, विस्फोट एवं पित्तमागक है। (वैद्य-निघण्टु) २ पिट्टसदिर। ३ छटुस्वर हथ, गुलरका पेड़। ४ जीवन्तुम, दुपहरियाका पेड़। ५ तमालपत्र-हथ, तैलपानका पेड़। ६ कालताम्र, काला ताड़। ७ समयका चंग विशेष, बालका एक टुकड़ा।

कालस्तर (सं० पु०) १ तिन्युक हथ, तेंदूका पेड़। २ तमालपत्र, तमालका पेड़।

कालस्यानी (सं० स्त्री०) पाटल हथ, एक पेड़।

कालस्वरूप (सं० त्रि०) कालेन मृत्युना स्वरूपः सदृशः, शतम्। मृत्युतुल्य, मोतके बराबर।

कालहर (सं० पु०) कालं मृत्युं हरति, काल-हृ-ट्ठच्। १ शिव, महादेव। २ कामरूपान्तर्गत शिवसिद्ध विशेष, कामरूपका एक शिवसिद्ध।

"कालसूत्रे मरुत्कामः परं गन्तुं विवोचकः।

यत्र कालहन्तो कालं निर्वपितः" (भारतवाच, ७८५०)

(ति०) : समयके पक, यक्ष, विगाडनेवाला।

कालहन्तो (करींद)—मध्यप्रदेशके मखनपुर जिलेकी एक कालीनदी। यह पचा० १८° ५' उ० और देशा० २०° २०' पू०में अवस्थित है। इसमें उत्तर पाटना विभाग, पूर्व एवं दक्षिणभागमें जयपुर जमीन्दारी तथा मन्दासरा विभागापत्तन जिला, पश्चिम दिग्दरा

नयागड़ और खरियार प्रदेश है। सोनकंध्या प्रायः साढ़े तीन हजार है। कालहन्तो प्रदेश पश्चिमघाटके पथ्यवहित पश्चिम दिक् पड़ता है।

कालहन्तोमें हन्तवतो नदी उद्भूत. ही गोशबरोसे जा मिली है। हन्तो और रेत नाम्नी दूमरी भी दो स्त्रोतधरो उक्त प्रदेशसे निकल तैल नदमें गिरी हैं। फिर तैल, खान और रावल तीन नदी एकत्र हो उत्तरको बहती हुयी उड़ीसाकी महानदीमें पतित होती है। चारो ओर इसी प्रकार नदी ओर घाट पर्यंत निकट रहनेसे कालहन्तोमें पानी बहुत पड़ता है। इसीसे उक्त खानकी भूमि विशेष उर्वरा है। उत्तर-पश्चिम भागमें सालवनकी लकड़ी उपजती है। चावल, दास, पनसो, जल, रुई, ज्वार और गेहूँ बहुत होता है। खान खान पर सप्ताहमें एक बार बाजार लगता है। प्रधान नगर भवानीपत्तनका बाजार ही सर्वापेक्षा बड़ा है। कालहन्तोका जनसाधु पति उत्तम है।

कालहन्तोमें एक राजाका अधिकार है। यह भंगरेजीको कर देते हैं। राजा प्रतापदेवको दिल्लीके दरबारमें "राजा बहादुर" उपाधि और अपने सम्मानार्थ ८ तोपोंकी सलामी मिली थी। १८८१ ई० की जनका मृत्यु हुवा। १८८४ ई० की जनके दत्तकपुत्र राजा रघुकिशोर देव राज्यके अधिकारी बने थे। किन्तु उनके अप्राप्तवयस्क होनेसे राज्यका भार रानी पर पड़ा था। बालक राजा जबरपुरके राजकुमार कालेशमें पढ़नेको बठाये गये। उक्त घटनाके पीछे ही कन्य लोमोनि विद्रोही हो कुलता नामक ७०५० हिन्दुओंको मार कर उनके ग्राम लूटे थे। व्यापार सुदृतर-देख भंगरेजाने अपनी पुत्रिससेना भेज विद्रोहकी दमन किया। उसका करनेवाले लोमोकि सरदारोंको फाँसी दी गयी। उही दिनसे उक्त प्रदेशका शासनकार्य गवरनमेंएने अपने हाथमें ले रखा है। कालहन्तो—मन्दास, प्रेमिडेनीकी एक जमीन्दारी। उसका कुछ भंग पार्कट और कुछ भंग नैकीर जिचेमें अवस्थित है। सोनकंध्या प्रायः षेढ़ लाख है। ई० १५में मन्दाकी ब्रह्मजातीय किमी पाकिराने

कालपुष्क, कालपुष्क हेतु।

कालपुष्क (सं० पु०) कालः कालचक्रं पुष्क इव
 चपमि० । १ यमसंहाय । रामचन्द्रकी लीलाके अच-
 संतानं देवगणके आदेशमें यष्ट उनकी सभामें पहुंचे
 थे। फिर इन्होंने रामचन्द्रको निश्चय स्थानपर कथनी-
 पकथनमें नियुक्त किया। उसी समय द्वारस्थ दुर्वानाके-
 पत्न्युत्पत्तये लक्षण यहाँ गये थे । रामचन्द्रने
 अपनी प्रतिष्ठाके अनुसार लक्षणका परिचय किया।
 उसी शोकमें लक्षणने सरयूजलमें अपना प्राण छोडा
 था। फिर रामादि अचर तीन भ्रातावोंने भी उसीप्रकार
 लीला परिचय कर दी। (रामायण)

२ पुरुषकी भांति आकार विशेष, आदमीकीभी
 एक शकल। यह मनुष्यका शुभाशुभ गणना करनेके
 लिये जन्मलग्न प्रकृति दादग राशि द्वारा कल्पित
 पुरुषकी भांति बनाया जाता है। इस आकृतिमें मन्त्र-
 कादि समुदाय अङ्ग-प्रत्यङ्ग चित्रित कर शुभाशुभ
 निर्दिष्ट होता है। इसके अनुसार लक्ष्य पुरुषके
 भी उसी उसी अङ्गमें शुभाशुभ पड़ा करता है।

(इदमन्तव्य)

३ कालरूपेश्वरकी एक मूर्ति। यह दान करनेके
 लिये सुवर्णसे बनाया जाता है। भविष्यपुराणमें लिखा
 है कि उत्तम, मध्यम एवं अधम नियमके अनुसार उक्त
 मूर्ति एक अन्न, पञ्चाशत् वा पक्षविंशति निष्क सुवर्णसे
 बनानेका विधि है। उसके दक्षिण हस्तमें खड्ग, वाम
 हस्तमें मांसपिण्ड, कुण्डलमें जवाकुसुम, परिधानमें
 रत्नवस्त्र और गणदेशमें पुष्पमाला तथा शङ्खमाला
 रखते हैं। फिर चतुर्दश वा चतुर्दश तिथिकी पवित्र
 दिन स्थिर करे यथाविधाम पूजापूर्वक दक्षिणा एवं
 अन्नद्वारादिके साथ वह ब्राह्मणको दिया जाता है। उस
 दानके फलसे व्याधिजन्य मृत्युभय छूटता है। फिर
 दानकारी विपुत्र ऐश्वर्यका अधिकारी और समुदाय
 विघ्नग्न्य हो सकता है। पत्न्यकी यथासमय देह त्याग
 करनेपर सूर्यलोकमें प्रवृत्त परम पद मिलता है।
 पुण्यचयके पीछे वह व्यक्ति धार्मिक और राजा
 हो जन्म लेता है। ४ कल्पवर्ष 'पुद्गल' काला
 आदमी।

कालपुष्क (सं० स्त्री०) कालं कल्पं पुष्कं यस्य, बहुव्री०।
 कलायहच, मटरका पेड़। कलाय हेतु।

कालपूग (सं० पु०) कालः कल्पवर्षः पूगः गुवाकं,
 कर्मधा० । १ कल्पवर्षं गुवाक, कालो सुपारी। २ साधा-
 रण जन, मामूली लोग।

कालपृष्ठ (सं० स्त्री०) कालं कल्पं पृष्ठं यस्य बहुव्री०।
 १ कर्मका धनु। २ धनुमात्र, कोई कमान्। (पु०)
 ३ सृष्टविशेष, एक दिन। ४ वक्रपत्ती, वृद्धि।

कालपेयिका (सं० स्त्री०) १ मछिडा, मंजीठ। २ कृष्ण-
 जोरक काला जोरा। ३ श्यामानता, कालो वेल।

कालपेशी (सं० स्त्री०) श्यामानता, कालो वेल।

कालपेयी (सं० स्त्री०) पिथते ऽपे, पिप् कर्मणि घञ्,
 कालसाधौ पेपथेति, कालपेय-डीप् । श्यामानता,
 कालो वेल। इसका संस्कृत पर्याय—कालपेयी, महा-
 श्यामा, सुमद्रा, उत्पलशरिवा, दीर्घमूला, पालिन्दी
 और मसूरविदला है। श्यामानता हेतु।

कालप्रजा—जातिविशेष, एक कौम। कई कल्पवर्ष
 जाति इसी नामसे पुकारी जाती है। भारतवाले
 पश्चिमघाट नामक पर्वतके निम्नप्रदेशमें इसका वास
 था। आजकल इस जातिके लोग वहाँसे जा सुरतमें रहे
 हैं। यह कल्पवर्ष खरुं अथवा टट्टकाय और घनुर्वाणके
 व्यवहारमें चिप्रहस्त होते हैं। वनमें पशु मारना
 इनका प्रधान कार्य है। कृषि करना यह नहीं जानते
 और सामान्य शक्यसे ही अपनेको परिहृत मानते हैं।
 इनके मन्दिर या पुरोहित कोई नहीं। यह किसी लक्ष्य
 वा प्रक्षरखण्डको पूजते हैं। इनको चुडैनका बड़ा
 भय रहता है। किसी सन्तान, वेल वा कुकुरके मरने
 पर यह भयसे देश छोड़ भेग जाते हैं।

कालप्रभात (सं० स्त्री०) कालं कल्पं प्रभातं यस्य, बहुव्री०।
 १ शरद ऋतुं। २ अमिटकारक प्रभात, बुग दिन।

कालप्रमेह (सं० पु०) अक्षप्रमेह, पैगावकी एक
 बीमारी। इसमें कल्पवर्ष मूत्र उत्तरता है।

कालप्रवृत्त (सं० स्त्री०) कालेन प्रवृत्तः परिपक्वः। यथा-
 कालं उत्पन्नं, वृत्तसे निकला हुआ।

कालप्रवृत्ति (सं० स्त्री०) कालेन प्रवृत्तिः पारम्पर्य,
 इ-तत्। लक्ष्य कालके व्यवहारका धारण। संहा-

विजयनगरके राजासे उठे पाया था। पहले कालहस्ती पूर्वमें मन्द्राज एवं काशीपुर और दक्षिणमें वन्द्रीवास तक विस्तृत थी। औरंगजेबकी दी हुई धनदमें देखते हैं कि कालहस्तीके पालिगार उस समय ५ हजार सैन्यके अधिनायक थे। १७२२ ई० को वह अंगरेजोंके हाथ लगी। १८०२ ई०को गवरनमेण्टने उसका विरसायी प्रबन्ध किया था। जमीन्दारके वंशवाले एक व्यक्तिको अंगरेजोंने राजा और सी० एस० आई० (C. S. I.) का उपाधि दिया है। देशकी फसलका आधा हिस्सा प्रजा जमीन्दारकी देती है। कालहस्तीकी सृष्टिका रत्नवर्ण और वायुका मिश्रित है। ताम्र और लौह यहाँ मिलता है। ग्रीष्मका कारखाना भी खुला है।

उक्त जमीन्दारीका प्रधान नगर कालहस्ती वा श्रीकोलह्ती है। वह अक्षां १३° ४५' २" उ० और देश्यां ७६° ४४' २६" पू० पर सुवर्णसुखी नदीके तीरे मन्द्राज रेलकी उत्तर-पश्चिम शाखाके त्रिपति स्टेशनसे अतिनिकट अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः दस हजार है। नगरमें जमीन्दारका वासभवन बना है। यहाँ एक मजिस्ट्रेट भी रहता है। बाजार बहुत बड़ा है। निकटस्थ ग्राममें उत्तम वस्त्र प्रसृत होता है। कालहस्ती एक तीर्थस्थान है। यहाँ अनेक देव-मन्दिर विद्यमान हैं। उनमें शिवमन्दिर ही प्रधान है। दक्षिणके स्मार्त ब्राह्मण कालहस्तीकी द्वितीय धारापक्षी बताते हैं। उक्त मन्दिर-विभाग नगरके नैर्ऋत तीर्थमें पर्वतके निम्नभाग पर अवस्थित है। कालहस्तीके साधारणमें लिखा है,—“ब्रह्माने तपस्या करनेको कैलास पर्वतके शृङ्गाका एकान्त यहाँ जाकर रखा था। उसीसे उसका नाम दक्षिणकैलास है। ब्रह्माने स्वयं इस मन्दिरका मूल स्थापन किया है। चीन राजा और विजयनगरके क्षत्रियोंने उसका अपरापर भंग बनवा दिया। महादेवकी वायुमूर्ति यहाँ विराजित है। कथनानुसार एक सर्प पार एक हस्ती उभय महादेवकी पूजा करते थे। सर्प अपने महाकला मणि महादेव पर चढ़ाता और हस्ती अस्त्राभियेक सगाता था। किसी दिन हस्तीके

अभियेचनका जन सर्पके कू गया। उसने क्रुद्ध हो हस्तीके शृङ्गमें दाँत मारा था। हस्तीने भी विषकी ज्वालासे अस्त्र ही सर्पको भागत किया। सर्पको दोनोंने पक्षत्व पाया था। दो परममूर्तियोंके वेसो अवस्था देख महादेवने उन्हें फिर जीवन प्रदान किया। फिर उन्होंने उभयको चिरस्मरणीय बनानेके लिये उनके नाम पर अपने मन्दिरका भी नाम “कालहस्ती” रख दिया। (काल अर्थात् सर्प और हस्ती अर्थात् हाथी दोनों मिलाकर कालहस्ती शब्द बना है।) तीर्थसाधारणके मतसे कन्यापन नामक किसी व्याधने महादेवका पशुपद लाभ किया। वह पर्वतके ऊपर रहता था। किन्तु पादार करनेके पूर्व व्याध पर्वतसे उतरता और आहार्य द्रव्य महादेवका सर्ववकर स्वयं प्रसाद ग्रहण करता था। कुछ दिन पीछे उसके मनमें आया कि महादेवका एक चक्षु नष्ट हो गया। उसी धारणासे उसने अपना एक चक्षु नाव महादेवके नष्ट चक्षुपर लगा दिया। फिर कुछ काल उसे देख पड़ा कि महादेवका दूसरा चक्षु भी विगड़ा था। उसीसे उसने अपना दूसरा चक्षु भी निकाल महादेवके चक्षु पर लगा दिया। उस समय व्याधने अपना एक पैर महादेवके चक्षुके निकट रखा था। उसीसे आज भी महादेवके चक्षुमें उसका पदचिह्न देख पड़ता है। देवादिदेवने उसे साधोव्यसक्ति प्रदान की। महादेवके निकट उसका एक क्षतत्व लिङ्ग विद्यमान है। महादेवके साथ उसकी भी पूजा होती है। मन्दिरके प्रवेशस्थान पर हस्ती, सर्प और अर्धनाभिकी मूर्ति बनी है। दूसरे स्थानमें महादेवकी जो मूर्ति देख पड़ती, उससे कालहस्तीकी मूर्ति स्वतन्त्र लगती है। कालहस्तीकी मूर्तिका नाम वायुमूर्ति है। साधारणतः गोलाकार देखके तुल्य होती है। किन्तु उक्त वायुमूर्ति चतुष्कोण है। मन्दिरमें किसी और वायुके प्रवेशका पथ नहीं, किन्तु लिङ्गके मध्यकपर जो दीप लटकता, वह सर्वदा पश्य दिना करता है। शृङ्गके पश्चिममें अन्योन्य अनेक दोप हैं। किन्तु दूसरा कोई उस प्रकार नहीं दिजता। सम्भवतः उसीसे उक्त लिङ्ग “वायुलिङ्ग” कहलाता है। महादेवके साथ पार्वती देवी भी है।

नगरीमें चैत्र मासकी शुक्ल-प्रतिपत् तिथि तथा रवि-वारकी सूर्य उदयके पीछे दिन, मास, वर्ष प्रभृति खण्डकी प्रभृति पढ़ी है। (विज्ञानचिन्तामणि।)

कालप्रियनाथ—एक दिव्यमूर्ति। वराहपुराणमें सूर्यकी एक मूर्तिका नाम 'कालप्रिय' लिखा है। यमुनाके दक्षिणस्थ प्रदेशमें सूर्यदेवकी यह मूर्ति पूजा जाती है। कालप्रियरूपमें सूर्यदेवका स्थापित किया हुआ शिवलिङ्ग 'कालप्रियनाथ' कहलाता है। भवभृतिके 'मालतीमाधवका' प्रारम्भ पटनेसे समझ पड़ता है, कि कालप्रियनाथके उत्सव उपलक्ष्यमें प्रथम मालतीमाधव अभिनीत हुआ। मालतीमाधवकी दुर्गमार्थबोधिनी नाम्नी टीकामें मानाङ्गने इनके सम्बन्धपर कोई बात नहीं लिखी। किन्तु जगद्वरने 'मालतीमाधव-टीका'में इन्हें तद्देशका प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध देव माना है। नहीं कह सकती—बाजकाल कालप्रियनाथ कहाँ है ?

कालप्रिया (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा, असगन्ध ।

कालदानन (सं० स्त्री०) कण्ठ, यक्षुतर ।

कालवन्तप्रहस (सं० स्त्री०) आधिदैविक रागमात्र, वल्लके जौरसे होनेवाली बीमारी। शीत, उष्ण, वात, वर्षा आदिके कारण लगनेवाले रोग भी दो प्रकारके होते हैं—आपसत्कृत और अत्यापसत्कृत। (धृत् १७ ५०)

कालवञ्जर (हिं० पुं०) पुरानी परती, बहुत दिन कोठी-बोयी न जानेवाली जमीन् ।

कालवाल (सं० पुं०) कंकुष्ठ, एक मही ।

कालवालक, कालवाल देवी ।

कालवृत्त (हिं० पुं०) १ पैना, कच्चा भराव। दूसरे मिह-राय बनाते हैं। २ काठका एक सांचा। इस पर चमार जूता सीते हैं। ३ यन्त्र विनोय, एक चौजारा। इससे रस्सी बटते हैं। यह काठका फंदा होता है। इसमें रस्सी डालनेके धई छेद रहते हैं। छेदमें डालकर बटनेसे रस्सी बराबर उतरती, मोटी या पतल नहीं पड़ती।

कालविलेय (हिं० पुं०) एक जाति। इसे कपिरी भी कहते हैं। सांप आदि विषैले जन्तुओंको पकड़कर यह खेस दिखलाती है। यही इसकी औषधिका है।

कालभञ्ज (सं० पुं०) महादेव, शिव ।

कालभण्डो (सं० स्त्री०) श्वेतगुग्गा, मफेद सुंघषो ।

कालभाण्डिका (सं० स्त्री०) कालभाण्डे छत्रप्रभाण्डे अण्डति, काल-भा-पण्डि-गुनु-टाण्ड इत्यम् । मञ्जिष्ठा, मञ्जोष्ठ । इसका ज्ञाय और निर्घाम प्रभृति रत्नवर्ष आते भी प्रथमतः छत्रभाण्डे देवाना है। मञ्जिष्ठा देवी कालभृत् (सं० पुं०) कालं विभर्ति धारयति, काल-भृत् क्तिप् । सूर्य, प्राकृतान्ध, समयको धारण करनेवाला सूरज ।

कालभैरव (सं० पुं०) कालस्य भैरवं भवं यस्मात् काल-भौर-वण् । काश्याय शिवके शंभुजात एक भैरव । शिवतत्त्व न समझनेवाले ब्रह्माका पञ्चम मस्तक काटनेको महादेवद्वारा यह भाविर्भूत हुये। काशीमें रहनेवाले दुष्कर्मकारीको टण्ड देना हो इनका प्रधान कार्य है। ब्रह्मा भी कन्यागमनका पाप कर काशी पड़ चुके थे। इसीसे शिवकी आज्ञा पाकर कालभैरवने उनका पञ्चम मस्तक काट डाला। (बाणेश्वरः) भारतके नाना स्थानोंमें कालभैरवकी मूर्ति पूजी जाती है।

कालम (सं० पुं०—Column) १ पत्रभाग, कोठा। २ सैन्यभाग, पांत। ३ स्तम्भ, खम्भा ।

कालमरिच (सं० स्त्री०) कालं मरिचम् । छत्रवर्षं मरिच, काली मिर्च ।

कालमल्लिका (सं० स्त्री०) छत्राजक, काली तुलसी। कालमल्ली, कालमल्लिका देवी ।

कालमसो (सं० स्त्री०) काली मसीव, पुंयद्वायः । काली नदी, एक दरया ।

कालमहिमा (सं० पुं०) कालस्य महिमा माहात्म्यम्, इतत् । १ समयका माहात्म्य, वल्लकी शान् ।

२ समयकी शक्ति, वल्लकी ताकत ।

कालमाधवीय (सं० पुं०) माधवस्य माधवाचार्यस्य पथम्, माधव-क, कालप्रतिपादको माधवीयः माधवज्ञतो पथः, मध्यपदो० । माधवाचार्यवर्णीत कालमान-बोधक एक श्रुतिग्रन्थ ।

कालमान (सं० पुं०) कालो मन्यते जनैरिति शेषः, काल-मन-घञ् । १ छत्रवर्ष सुद्व तुलसी । २, छत्र-

मल्लिका, बवई । (स्त्री०) कालस्य मानं परिमाणम् ।

३ कालका परिमाण, बल्लकी तौल ।

कालमानक, कालमान देखो ।

कालमार, कालमान देखो ।

कालमारिय (सं० पु०) हृद्यपत तण्डुलीय गाक, बहोपत्तीकी चौराई ।

कालमाल (सं० पु०) कालिन कृष्णवर्णन मान; सव्य-श्रीःस्य, बह्व्री० । कृष्णतुलसी, काली तुलसी ।

कालमालक, कालमाल देखो ।

कालमाला (सं० स्त्री०) कृष्णार्जक, काली तुलसी ।

कालमुख (सं० पु०) कालं मुखं यस्य, बह्व्री० । कृष्णमुख वानर विशेष, काले मुँहका एक बन्दर ।

(भारत, वन २६१ प०) । (त्रि०) २ कृष्णवर्णं मुख वा पयभागयुक्त, कलमुँहा ।

कालमुष्क, कालमुखक देखो ।

कालमुष्कक (सं० पु०) कालो मुष्क इव कायति प्रकाशते, काल-मुष्क-कै-क । १ घण्टापाटलहृत्, मोखा । २ कृष्णपुष्पघण्टा, काले फूलकी, मोखा ।

कालमूर्ति (सं० स्त्री०) कालस्य मूर्तिः, ६-तत् । १ यम-मूर्ति । २ मृत्युकारक लन्तुकी मूर्ति । ३ कालयम ।

कालमून (सं० पु०) कालं मूलं यस्य, बह्व्री० । रक्त-चित्रक, काल घेत । चित्रक देखो ।

कालमेघ (सं० पु०) १ सुदृढ हृद्यविशेष, एक छोटा पेड़ । यह पत्यन्त तिल छोटा है । इसे महातीता और महाभाग भी कहते हैं । पत्र अधिकांग सरिचके पत्रसे मिलते हैं । हृद्यके शीर्षमें चपटा फल लगता है । फलके वैद्य इसको ल्वरनागक बताते हैं ।

२ कोई विख्यात तामिल कवि । द्राविडके लोग 'इन्द्रे' 'कालमेकम्' कहते हैं । कविता विद्रुप एवं रूपकसे परिपूर्ण है । अधिकांग शोक इत्यर्थमूलक है । यह दो दिनमें एक काव्य लिख सकते थे । कालमेघ सम्भवतः ई० के पश्चदश शताब्दमें कौचित थे । ठीक नहीं कहा जा सकता—इसका प्रकृत नाम क्या रहा ।

कालमेयिका (सं० स्त्री०) कालो मिश्रते कालोऽयं इति बध्यते जनैरिति मेयः काल मिश्र-डीप-कन्टाप-हृद्यस्य । मञ्जिष्ठा, मंजोष्ठ ।

कालमेगो, कालमेयिका देखो ।

कालमेयिका (सं० स्त्री०) कालं मिश्रति खर्धते म्रका-खेन, काल-मिष्-पन्-डीप्-स्वायं कन्-टाप्-हृद्यत्व-स्य । १ श्यामा विष्टता, काली कटेया । २ मञ्जिष्ठा, मंजोष्ठ । ३ कृष्णजीरक, काला जोरा । ४ विष्टता, कटेया । ५ बालुची । ६ हरिद्रा, हलदी । ७ श्वेत-जीरक, सफेद जोरा । ८ श्यामालता ।

कालमेयो, कालमेयिका देखो ।

कालमेघो (सं० पु०) मेघरोग विशेष, जिरियाकी एक बीमारी ।

कालयन (सं० पु०) यवर्णाका एक अधिपति । महा-देवके नियमानुसार गार्ग्य ऋषिकी भाथके गर्भसे इसका जन्म हुआ । उक्त ऋषिने मथुरावासियोंके प्रति जातक्रोध हो बैरनिर्घातनके निमित्त पतितप्लार नामक स्थानमें द्वादश बरस लौहघर्षमात्र भक्षण और नियम भवलम्बनपूर्वक रुद्रदेवकी प्रीतिके लिये तपस्या की थी । गार्ग्यके औरस और गोपाली नाम्नी ऋषरके गर्भसे कालयनने जन्म लिया । यह राज-घर्षण, राजोचित यहगुणसे प्रसङ्गत, विद्वान्, सत्यवादी जितेन्द्रिय, रणकुशल, शूर और सुमन्दिमहाय थे । मगधराज जरासन्धमे इनका संमिति रही । यह जरासन्धके साथ मथुरा आक्रमण करने गये । उससे पहले श्रीकृष्णने मथुरावासियोंकी हारका भेज दिया था । वह जानते थे कि कालयन मथुरावासियोंद्वारा मारे जाने योग्य न थे । सुनरा श्रीकृष्ण कालयनके सम्भू खसे भाग किसी पर्वतकी गुहामें छुपकर छिप रहे । उस गुहामें सूर्यवंशीय महाराज मुमुक्षुन्द रथके परि-यमसे बहुत क्षान्त हो सोते थे । कालयनने उनमें पुस कृष्ण समभ कर उनके क्षान्त मारदे । मुमुक्षुन्द नो कीप दृष्टिसे किर यह बिनष्ट हो गये । (सर्तन ११२ प०)

कालयाप (सं० पु०) कालस्य यापः पतिवाहनम्, ६-तत् । काल पतिवाहन, बल्लाग गुजारा, टासमटोल ।

कालयापन (सं० स्त्री०) कालस्य यापनं पतिवाहनम्, ६-तत् । १ समयाका विनाश, बल्लाग कटाव । २ शोक-यात्राका निर्वाह, गुजारा ।

स्नाह, बहुत काला। प्रायः यह शब्द मानव व्यवहारमें प्रयुक्त हांता है।

कालाकृष्ट (सं० वि०) कालेन सृज्युना आकृष्टः, १-तत्।

१ 'सृज्यु कर्तृकं आकृष्टः, सौतके पंजिमें पड़ा हुआ।

२ समय द्वारा आनीत, वस्तुसे निकला हुआ।

कालाचरिक (सं० पु०) काले यथायोग्यकाले पचरं वेत्ति, काले-पचर-ठक्। विद्यार्थी, तालिम रख, ठीक वक्त पर पढ़नेवाला।

कालाचारी, कालाचरिण देखो।

कालागुरु, कालागुरु देखो।

कालागांडा (हि० पु०) काली और मोटी जख

कालागुरु (सं० स्त्री०) कालं कृष्यं पच्युः, कर्मधा०।

कृष्य पच्युः, काला अगार। कृष्यागुरु देखो।

“पच्ये तोषेणोदिके तद्विन् मात् शोणिते वरः।

तद्वनजासमतां प्राप्तेः सद्यः कालागुरुदरुकेः॥” (रघु० ४। ५२)

कालागैहा, कालागांडा देखो।

कालाग्नि (सं० पु०) कालः सर्वसंशारकः अग्निः, कर्मधा०। १ प्रलयोग्नि, कालामतकी पाग।

२ प्रलयोक्तिके अधिष्ठाता रुद्र। ३ पञ्चमुख रुद्राद्यं।

उक्त रुद्राद्यं कालाग्निरुद्रकी प्रतिप्रय है। इसीसे उसे भी कालाग्नि कहते हैं। स्कन्दपुराणमें उसे सर्वपाप-

नाशक बताया है,—

“पञ्चमं सर्वं रुद्रः कालाग्निर्नामगणः।

पञ्चम्यागमनाद्यं च कर्मपापं च भयघनात्।

सुच्यते सर्वपापेभ्यः पञ्चवक्त्राय शारणात्॥”

पञ्चमुख रुद्राद्यं साक्षात् रुद्रदेवस्वरूप है। उसे

कालाग्नि भी कहते हैं। उक्त रुद्राद्यं धारण करनेमें

पञ्चम्यागमन वा अभय भयघणके पापसे मुक्ति

मिलती है।

कालाग्निमेव (सं० पु०) क्वरका एक रस, बुखार

की कोरे दवा। १ भाग पारद और १-गन्धककी

कज्जल बना मोक्षके लायके भावना देना चाहिये।

सूत्र ज्ञाने पर उसे पीस कर चूर्णके बराबर ताम्रचूर्ण,

ताम्रचूर्ण का चट्टांग विष, १ भाग हिङ्गल २ भाग

धूसरबीज, ५ भाग इरिताल, ३ भाग-समःशिला, ३

भाग टङ्गण, ३ भाग खपर, २ भाग डेवाल, ३ भाग

खण् मांसिक, १ भाग शोह और १ भाग बङ्ग हाक

सबको एकै चीरसे मट्टन करने है। फिर टण्डूल

और पञ्चमूलके लायके यथाक्रम एक प्रहर घोटकर

चने बराबर बटिका बनायी जाती हैं। (संयोग्यकारी)

कालाग्निरस (सं० पु०) भगन्दरका रस विषेय,

पोशीदा जगड़के नालीदार जखमकी एक दवा। यह

सूत्र गन्धक, सृतनाग, तुल्यक, जीरक और सैन्धव

बराबर तिहा तथा कीगातकीके द्रवमें पीस कर लगाने

या खानेसे भगन्दर रोग नष्ट हो जाता है। (संयोग्य)

कालाग्निरुद्र (सं० पु०) कालाग्नेः प्रपयान्नेः अधि-

ष्ठाता रुद्रः मध्यप०, कालाग्निरेव रुद्रा वा, उपनि०।

१ प्रलयोक्तिके अधिष्ठाष्ट-देवता रुद्र। २ उक्त रुद्रके

उपासक एक ऋषि। ३ यक्षुर्देवय एक उपनिषद्।

कालाग्निरुद्ररस (सं० पु०) १ कुंठाधिकारका एक

रस, कोटकी एक दवा। मरिच, अम्र एवं तीक्ष्ण

भक्ष, मांसिक और गन्धककी वन्याकर्कोटकीके कन्दमें

हाथ महीसे जपर छोप देते हैं; फिर भूधराख्य पुटमें

एक दिन पका उसका चूर्ण बना लिया जाता है।

इस चूर्णमें दशमांश विष मिलाकर उसे उक्त श्लेषक प्रस्तुत

होता है। मात्रा ३ मापमात्र है। उक्त कालाग्निरुद्र

रस दश दिनमें बिसर्पको नाश करता है। अनुपातमें

पिप्लो और मधु मिलाना चाहिये। २ च्वररोगका

रसविशेष, बुखारकी एक दवा। मरीच और गन्धक तुल्य

हाल पंच विचमें भावना देना चाहिये। फिर मायूर,

मखर, वाराह, काग और माण्डिपत्रकी एकदिन भावना

लगती है। उक्त मायूरदि द्रव्योंकी समस्त घयवा

ध्यस्वरूपसे भाव ग्रहण कर सकते हैं। पीछे २ रति गरल

हालनेमें कालाग्निरुद्ररस प्रस्तुत होता है। मात्रा दो

गुञ्जाके बराबर कही है। स्वांग पण्य है। (संयोग्य)

कालाद्र (सं० स्त्री०) कालं कृष्यवर्णं पद्मम्, कर्मधा०।

१ कृष्यवर्णं देख, काला निष्ठा। कालस्य कालपुत्रस्य

पद्मं १-तत्। २ कालपुत्रका पद्म। (वि०) बहुव्री०।

३ कृष्यवर्णं देखविण्ट, काले निष्ठावाना।

कालाचौर (हि० पु०) १ सचतुर चौर, दुगियार चौर।

२ क्रापुख, खराब पादमी।

कालाजानो (सं० स्त्री०) कृष्यचौरक, काला चौर।

कालाजिन (सं० स्त्री०) कालस्य कृष्यमृगलं अजिनम्,

नगरोंमें चेत सासकी शक्त-प्रतिपत् तियि तथा रवि-
वारकी सूर्य उदयके पीछे दिन, साध. वर्ष. प्रभृति
सम्बन्धी प्रभृति पड़ी है। (विज्ञानप्रयोगिक।)

कालप्रियनाथ—एक देवमूर्ति। यराष्ट्रपुराणमें सूर्यकी
एक मूर्तिका नाम 'कालप्रिय' लिखा है। यमुनारे
दक्षिणपक्ष प्रदेशमें सूर्यदेवकी यह मूर्ति पूजा जाती
है। कालप्रियरूपमें सूर्यदेवका स्थापित किया हुआ
शिवलिङ्ग 'कालप्रियनाथ' कहा जाता है। भयभृतिके
'भानुतीमाधवका' पारम्भ पठनेसे समझ पड़ता है, कि
कालप्रियनाथके उक्त उल्लेखमें प्रथम भानुतीमाधव
परिणीत हुआ। भानुतीमाधवकी दुर्गमार्धवोधिनी
नाम्नी टीकामें मानाहने इनके सम्बन्धपर कोई
मात नहीं मिली। किन्तु जगहरने 'भानुतीमाधव-
टीकामें' इन्हें तद्देशका प्रतिष्ठित भौर प्रसिद्ध देव
माना है। यहाँ कह सकते—प्राञ्जल कालप्रिय-
नाथ कहाँ हैं ?

कालप्रिया (सं० स्त्री०) पञ्चगव्या, अन्नसम्भ ।

कालमानन (सं० स्त्री०) कवच, वस्तुतर ।

कालवज्रप्रहस (सं० स्त्री०) आधिदैविक रागभाव,
यज्ञके लीरसे होनेवाली बीमारी। शीत, उष्ण, वात, वर्षा
आदिके कारण लगनेवाली रोग भी दो प्रकारके होती
हैं—व्यापकतुल्य और अव्यापकतुल्य। (पुस्तक १४ पृ०)
कालवज्र (हिं० पु०) पुगानी परती, बहुत दिन
जोती-बोयी न जानेवाली जमीन ।

कालवास (सं० पु०) कंकुठ, एक मट्टी ।

कालवासक, आशय देवो ।

कालवृत्त (हिं० पु०) १ हैना, कक्षा भराव। इससे मेह-
राय घनाते हैं। २ काठका एक साँचा। इस पर
बमार जाता सोते हैं। ३ यन्त्र विज्ञान, एक चौआरा।
इससे रस्सी बटते हैं। यह काठका फँदा होता है।
इसमें रस्सी छाननेके बड़े छेद रहते हैं। छेदमें डाल-
कर बटनेसे रस्सी बराबर उतरती, मोटी या पतल
नहीं पड़ती ।

कालधर्मिये (हिं० पु०) एक जाति। इमें नवीं भी
कहते हैं। साँव आदि विशेषेसे जन्मोंकी पकड़कर
यह ऐल-दिखाती है। यही इसकी लीविका है।

कालभय (सं० पु०) महादेव, शिव ।

कालभण्डो (सं० स्त्री०) ज्ञेयगुञ्जा, मफेद पुँघघो ।

कालभाण्डिका (सं० स्त्री०) कालभाये कल्पप्रभाये
पण्डित, काल-भा-पण्डि-युक्त-टापु-इत्थ। मन्त्रिणा,
भोजोठ। इसका काय भौर निर्घाम प्रभृति रहस्य
आते भी प्रयत्नतः कल्पवर्ण देखाया है। मन्त्रिणा
कालभृत् (सं० पु०) काल विभर्ति धारयति, काल-भृ
तिपु। सूर्य, भास्वताव, समयको धारण करनेवाला
सूरज ।

कालभैरव (सं० पु०) कालस्य भैरवं भयं यस्मात् काल-
भौरु-भण्। काशीस्य शिवके अंशज्ञात एक भैरव।
शिवतत्त्व न समझनेवाले ब्रह्माका पञ्चम मस्तक
काटनेको महादेवद्वारा यह आविर्भूत हुये। काशीमें
रहनेवाले दुष्कर्मकारीको दण्ड देना हो इनका प्रधान
कार्य है। ब्रह्मा भी कन्यागमनका पाप कर काशी
पहुँचे थे। इसीसे शिवको आज्ञा पाकर कालभैरवने
उनका पञ्चम मस्तक काट डाला। (काशीस्यः)
भारतके नाना स्थानोंमें कालभैरवकी मूर्ति पूजी
जाती है।

कालम् (सं० पु०—Column) १ पत्रभाग, कोठा।

२ सैन्यभाग, पाँत। ३ स्तम्भ, स्तम्भा।

कालमरिच (सं० स्त्री०) काल मरिचम्। कल्पवर्ण
मरिच, काली मिर्च ।

कालमल्लिका (सं० स्त्री०) कल्याणक, काली तुलसी।

कालमन्त्री, कालमन्त्रिका देवो।

कालमसो (सं० स्त्री०) काली मसोव, पुँघघावः।
काली नदी, एक दरया।

कालमहिमा (सं० पु०) कालस्य महिमा माहात्म्यम्।

६ तत्। १ समयका माहात्म्य, वल्लकी शान्।

२ समयकी शक्ति, वल्लकी ताकत।

कालमाधवीय (सं० पु०) माधवस्य माधवाचार्यस्य चयम्,
माधव-क, कालप्रतिपादको, माधवीयः माधवज्ञतो
स्यः, मध्यपदलो० । माधवाचार्यप्रणीत कालमान-
सोधक एक छूतिघन्य ।

कालमान (सं० पु०) कालो मन्वतेः जनैरिति शेषः,
काल-मन-घञ्। १ कल्पवृक्ष, सुद तुलसी । २ कल्प-

६-तत् । १ कल्पमारम्यका चर्म, कामे हिरनका चर्मका । फानं पत्रिनं यत्, बह्व्यो० । २ कल्पानिज-प्रधान देवकीये, यामे हिरनके रहनेका मुष्क । कूर्म प्रभृति पुराणके मतमें एक जगत्पद दक्षिण दिक्में पवस्थित है ।

कालाजोरा (सिं० पु०) १ काला जाजो, मीठा जौरा । २ धान्यविशेष, एक धान । कालावत् देखो ।

कालाचक्र (सं० स्त्री०) कालच तत् पञ्चनखेति, चर्मधा० । गाढ कल्पवर्ष पञ्चन, ध्रुव काला काजल ।

“न चणोः कालिदिदिवद्व्या
कालाचक्रं महत्तमिन् कालम् ।” (इमार ७।१०)

कालाचरनी (सं० स्त्री०) पण्डिते चणया चरुनी, पञ्च-करये कृत्-छो० । काली कल्पवर्षा पञ्चनी पुं०वद्भावः, १ कल्पजापानपुत्र, गरमा, वन कपास । उसका संस्कृत पर्याय—पञ्चनी, रेशनी, गिलाचरनी, मोसा-चरनी, कल्यामा, काली चौर कल्याचरनी है । यह कटु, उष्ण, पञ्च, आमकर्मिण, अपानावर्तगमन चौर जठरा-मयप्र होती है । (चरनिचट्,)

२ नीलो, नील ।

कालाटोकरा (सिं० पु०) कल्पविशेष, एक पेड़ । उसकी शाखाप्रमाणा मोचिको मुक जाती है । शीत-कालकी पत्र ताम्रवर्ष धारण करती है । काठ सुहृद चौर ईयत् कल्पवर्षविगिष्ट रक्तवर्ष होता है । कालाटोकरा मानव, मध्यप्रदेश चौर राजपूतानेमें अधिक उपजता है ।

कालाच्छत्र (सं० पु०) कालः कल्पवर्षः पण्डितः पक्षी । कोकिल, शीघ्र, काली विडिया ।

कालातिक्रम (सं० पु०) कालस्य पतिक्रमः कल्पनम्, ६-तत् । समयकल्पन, वस्तु निकाल देनेका काम ।

कालातिपात (सं० पु०) कालस्य पतिपातः पतिप्राह-नम्, ६-तत् । समयघेषण, वस्तुका निकाल ।

कालातिरेक (सं० पु०) कालस्य पतिरेकः पतिक्रमः ६-तत् । १ निर्दिष्ट समयका पतिक्रम, मकरर किये हुये वस्तुका टासमटोस । २ मन्त्रसूत्रका पतिक्रम ।

“कालातिरेके विदुषो भावित्वं कल्पयन्ते ।” (अर्थविक्रम)

कालातिस (सिं० पु०) कल्पतिस, स्याद तिस । कालातीत (सं० स्त्री०) कालस्य पतीत पत्यपः, पति-इत् भाषिण । १ कालातिक्रम, वस्तुका टास जाना ।

“कालातीते इत्युच्यते कालातीतं पुनः पत्यपः” (कालोपप)

(त्रि०) पतीतः कालोऽस्य, निहान्तत्वात् परमिपातः । २ विगत, युक्ता । दुबा, जो अपना समय बिता चुका हो । (पु०) ३ न्यायशास्त्रके मतानुसार पञ्चविप देवा-भासके पत्न्यगत देवामास विधेय, सुमानता, एक झूठी दलील । पतीतकाल शब्द द्वारा भी वह अभिहित होता है उसका न्याययुक्त सचप इस प्रकार है,—

“कालाप्यपतिरः कालातीतः ।” १ पु० २ पा० ३ पु० ४ पु० ।

साधनकालके पभाव समय जो हेतु लगाया जाता, वह कालातीत कहाता है । पर्यात् जिगस्याने किसी पक्ष पर साध्यको पभावविषयक निश्चय ठहरता, उसी स्थानका हेतु कालातीत रहता है । यथा—“जलं वञ्जितम् जलत्वात् ।” पर्यात् जलमें पाग है, क्योंकि वह जल है । यथा जलमें वञ्जिके पभाव विषयका निश्चयज्ञान है । सुतरां ‘जलत्वं’ हेतु काला-तीत नामसे निर्दिष्ट होगा ।

कालातीत शब्दके बदले वाधित शब्दका प्रयोग भी न्यायशास्त्रके धनीक स्थानमें देख पड़ता है ।

कालात्मक (सं० स्त्री०) कालेन कालस्वभावेन कृत प्राप्ता यस्य, काल-प्राप्ता-कत् । १ कालप्रभावज्ञान, वस्तु या किस्मत पर सुनहृदिर ।

“अज्ञानः न्यायार्थं व विरि वा वरि वा विरि ।”

यथे कालात्मकाः सन् । कालात्मकनिर्देशकम् ।” (गाल, अट्ट १५०)
काल प्राप्ता यस्य । २ कालस्वरूप परमेश्वर ।

कालात्यय (सं० पु०) कालस्य अत्ययः पतिक्रमणम्, ६-तत् । कालघेषण, वस्तुकी बरबादी ।

कालात्ययावदिष्ट (सं० पु०) कालात्ययेन अपदिष्टः । शीतम-धूमोष्ण देवाभासविधेय, एक झूठी दलील ।

कालातीत देको ।

• विदुषे कालातीतं कालं पतिरेकं कल्पयन्ते । कहे—‘पतीते पतिक्रमं कल्पन्’ पर्यात् पर्यय कल्पने पतिक्रम है । वह कालातीत कल्पे वत्, पति वस्तु चौर पुन कल्पे है ।

† हेतु बधित वाप निर्दिष्टकल्पन चरके, यथे काल कल्पे है ।

कालादर्श (सं० पु०) कालः शुभकर्मसम्पादककाल-
विशेषः चादर्शं तैः, काल-पा-ट्टग-पिच् पाधः रे
पच् । १ समयका दर्पण, वल्लका भाईना ।
२ च्छ्तिप्रत्यविशेष ।

कालादाना (हिं० पु०) १ ज्ञताविशेष, एक वेन । वह
भति मगोहर होती है । पुष्य नोनवर्ण रहते है । पुष्य
पतित हीनेपर हन्त भाता जिसमें कल्पवर्ण चीज
देखाता है । निर्यास भीषधमें पड़ता है । किन्तु चीज
भीर निर्यास बहुत घोडी मात्रामें सेवन करते है ।
२ चक्र ज्ञताका चीज । वह बहुत रचक होता है ।
कालादिक (सं० पु०) वैशाख मास ।

कालाध्यक्ष (सं० पु०) कालानां खण्डकालानां अध्यक्षः
प्रवर्तकः, इ-तत् । १ सूर्य, सूरज ।

“कालान्तः प्रजापत्यो विप्रवर्मा वसोमुदः” (भारत, वन, १० पं०)
२ समुदायकालपर्यन्तक परमेश्वर, वल्लका मालिक ।

कालानर (सं० पु०) सभानरके एक पुत्र । कालानर देव ।
कालानर (सं० पु०) कालः सर्वसंहरकः अनलः-
कर्मघा० । १ प्रलयानि, कथामतकी भाग । २ राज-
विशेष, एक राजा । सधके पिताका नाम सभानर
था । (हरिवंश ११ पं०)

कालामग (हिं० पु०) १ काल सप, काला संप ।
२ कुटिल पुत्र, टेढ़ा भाईमी ।

कालानुनादि (सं० पु०) कल एव कालः, अर्थकालमधुरः
तम् अनुनदति, काल-अनु-नद-णिनि । १ अमर,
भीरा । २ चटक, चिरोटा । ३ चातिक, पपीहा । ४ बन-
कुडुट, लंगनी सुरगा ।

कालानुभावकता (सं० स्त्री०) कालं अनुभवति, काल-
अनु-भू-वल्, कालानुभावकस्य भावः, तन्-टाप ।
समय अनुभव करनेकी शक्ति, जिन ताकतसे वह
मालूम पड़े ।

कालानुसारिवा (सं० स्त्री०) कालेन कल्पवर्णेन अनु-
ज्ञता गारिवा, मध्यप० । १ कल्प-शारिवा, काली सता-
वर । २ तगरवादि, तगरमूलः । ३ शीतली लटा ।

कालानुसारक (सं० पु०) कालं कल्पवर्णं मृगमटं
अनुसरति गन्धेन इति शेषः, काल-अनु-स-अनु-
१ तगर । २ पीतवन्दन । (श्र०) समयानुसारो,
वहके सुवाफिक ।

कालानुसारि (सं० पु०) कालं कल्पवर्णं मृगमटं
अनुसरति, काल-अनु-स-अनु-
१ शिंशपा वृक्ष ।
२ मूयिक, चूहा । ३ शैलज, एक खुगवृदार चीज ।
५ अगुरु, अमर ।

कालानुसारिणी (सं० स्त्री०) १ पिण्डीतगर । २ श्वेत
गारिवा, सफेद सतावर । ३ कल्पगारिवा, काली
सतावर ।

कालानुसारिवा, कालानुसारिवा देवी ।
कालानुसारी, कालानुसारि देवी ।

कालानुसार्य (सं० स्त्री०) कालेन मृगमटेन अनु-
स्त्रियते, काल-अनु-स-अनु-
१ शैलज, कौई खुगवृदार चीज । २ शिंशपा वृक्ष ।
३ कल्पवन्दन । ४ पीतवन्दन । ५ तगरपादिका ।
६ तगर ।

कालानुसार्यक (सं० स्त्री०) कालानुसार्यं सार्यं कन् ।
शैलज, एक खुगवृदार चीज ।

कालानुसार्यो (सं० स्त्री०) तगर ।

कालानोन (हिं० पु०) कावन्वय, काला नमक ।
कालान्तक (सं० पु०) कालस्य आद्यु-कालस्य अन्तकः
नाशकः, इ-तत् । यम ।

कालान्तकयम (सं० पु०) कालान्तकयासौ यमश्चेति,
कर्मघा० । १ आद्युःकासविनाशक यम । २ प्रलयकारक
यम ।

कालान्तकरस (सं० पु०) १ कालाधिकारका रस-
विशेष, खांसीकी एक दवा । हिङ्गु, मरीच, विजट,
टङ्गुण्य और गन्धक समभाग धन्वीरका रस डाल याम
माद मर्दन करनेसे यह भीषध प्रस्तुत होता है ।
गुञ्जामादः कालान्तकरस खिलानेसे कासरोग दूर
जाता है । २ यक्ष्माधिकारका रसविशेष, तपिदिककी
एक दवा । सौहमयो मूपा ऊपरको दादय प्रङ्गुल
वनाती है । फिर खण्डवाराकी सम शटकम्बुकी
रससे मर्दन कर याममाद सद्यसे घोट गोला बनाकर
रस देना चाहिये । लम्बे पीछे पूर्वोक्त मूयामे भीयार्
पारा और गन्धक जिन्हीके रससे पीस कर डालते
हैं । फिर मूपाको कौईचक्रसे पाच्छादन कर सकयम्ब-
में सबको फूँकना चाहिये । रसोमकार चटपुट लीं

उसी स्थान पर कौर्तिवर्मा और मदनवर्माका नाम खोदित है। उसके चांगे थोड़ी दूर चढ़ते जा पठः द्वार काल-दरवाजा है। उसी स्थान पर चंदेशिके समयकी दीर्घ शिलालिपि मिली है। द्वारकी पश्चिम दिक् कक्षीर कुण्डके उपरि भागमें भैरवकी प्रकाण्ड मूर्ति है। दो छोटी दूमरी मूर्ति हैं—दो भारवाहियोंके स्तम्भ पर भार है—जलपूर्ण दो कलश हैं। फिर उसके चांगे ही सप्तम द्वार मठर-दरवाजा है। उसे बड़ा दरवाजा भी कहते हैं। उक्त स्थान छोड़नेसे सीतारामकी गव्या मिलती है। पर्यंत वांट कर एक छोटा शृङ्ग बनाया गया है। उस शृङ्गके अन्त्यन्तरमें एक चारपाई और तबछौना पर्यर पर खुदा है। प्रवादानुसार रामने सीताको लङ्कासे छुड़ा यहाँ जा कर आत्मि मिटायी थी। उक्त शृङ्गकी अन्त्यन्तरस्थ शिलालिपि पठनेसे मालूम पड़ता कि वष ६० चतुर्थ शताब्दीकी दरद्वारा बनाया गया। पाण्डुकुण्ड गोलाकार जलाशय है, उसका व्यास ८ हस्तमात्र है। ऊपर पहाड़से सड़दा जल टपका करता है। सीताराम्या पार होनेसे पातारगङ्गाको पथ है। कालिञ्जरमाहात्म्यमें उसका वापगङ्गा नाम लिखा है। पातारगङ्गा एक गुहा है। उसमें जल रहता है। वष २६ हस्त दीर्घ और १३ हस्त प्रगस्त है। उसमें उत्तरमा कुक्ष कठिन है। वहाँ भी स्थान स्थान पर खोदितलिपि विद्यमान हैं। उनमें कहीं १३२८, कहीं १५३४ और कहीं १६४० संवत् लिखा है। पातारगङ्गासे चांगे पाण्डुकुण्ड मिलता है। फिर सीतारामके निकट सीताकुण्ड है।* दुर्गापारसे उसमें उतरते हैं। उस कुण्डके उपरिभागमें एक मूर्ति है। वक्ष हस्त पर भार झाल कर बैठे हैं। सामने ही एक टोकरी है। उसमें १६४० संवत् खोदित है। पाण्डुकुण्डकी उत्तरपूर्व दिक् एक निम्नमूर्ति है। उसमें एक जलाशय भी बनाया गया है। जलाशयकी

चारी और सोपानावली है। उसको "बुटिया तलाव" कहते हैं। उसके लक्षसे पनेक रोग अच्छे हो जाते हैं। कालिञ्जरमाहात्म्यमें वही वृक्षक्षेत्र कहा गया है। दुर्गाकी दक्षिणपूर्व दिक् एक फाटक है। उसका नाम पलादरवाजा या बंगकरद्वार है। आज काल वक्ष बन्द है। उसके पास कामता और रेवा नामक दूधरे दो फाटक हैं। पर्वतके निम्नभागमें भी कालिञ्जर नगर विस्तृत हैं। उक्त द्वारसे उस भागमें प्रवेग करते हैं। पलाफाटककी उत्तर और प्राङ्कारसे नीचे एक कुण्ड है। उसे भैरवकुण्ड कहते हैं। कुण्डके ऊपर भैरवकी प्रकाण्ड मूर्ति है। उस स्थानमें ११८५ संवत्की गिनालिपि देख पड़ती है। पाण्डुकुण्डको उत्तर-पूर्व दिक् पथ है। उसमें बुद्धिसरोवरकी ज्ञाते हैं। कुण्ड चांगे बढ़नेपर 'सिंहकी गुहा' 'भगवान्गव्या' और 'पानोका चमन' स्थान मिलते हैं।

शृष्टिचित्र वा 'सिंहकी गुहा' एक खातविशेष है। वहाँ लोग प्रायश्चित्तादि करते हैं। राजा कटिलाधिकी एक संस्कृत गिनालिपि उस स्थानमें मिलती है। वहाँ भगवान् रामचन्द्र और सीताकी प्रस्तरनिर्मित गव्या है। 'पानोका चमन' भी एक खान है। ऊँड़ हाथके एक छोटे द्वारसे उसमें प्रवेग करना पड़ता है। चार स्तम्भके ऊपर उसकी कत पड़ी है। वहाँ शृगधर नामक दूधरा स्थान भी है। पहाड़में पत्थर खोद बात शृगकी प्राकृति बनायी गयी है। इसीसे उसकी शृगधर कहते हैं। कहते हैं कि किसी समय सात षट्पिपुत्र शृगकी प्राज्ञान माननेसे गावधस्त हुए थे। प्रथम उन्होंने दगापुत्र बनमें व्याध हो जन्म लिया। फिर परजन्ममें वक्ष कालिञ्जरके शृग बने। शृगजन्मके पीछे उन्होंने क्रमान्वयसे लंकाक्षीपमें राज-हंस, मानसरोवरमें हंस और कुक्षक्षेत्रमें ब्राह्मण ही जन्मपहच किया। उससे वक्ष मुक्त हुए। कालिञ्जरकी शृगमूर्ति उहाँकी प्रतिष्ठित है। शृगधरमें भी एक

* निरिचितामदिन नामोत्पत्त्युपमम् ।

कावचोत्पत्त्यादाय हर्षदीक्ष विरचये ॥

तमस्य पुनर्गते भक्त्या सीतारामविदायचम् ।

तमेव शृङ्गं सीताया सीतारामं विनशास्वम् ॥

('कालिञ्जरमाहा' इम चर्च)

* 'वराचा' दर्शनं इत्या निरिचिपिचकारिदि ।

तम नाम वराप्रतिपि वरमुत्पत्त्येव ॥

अनपारं दया शक्तिं शिरोऽपि चरति निरवम् ॥

('कावचराम' इम चर्च)

हीनेमें चौपधकी उत्तर वीस लेने है। एष गुण-परिमित कालान्तरस चानेसे राजदण्ड्या विष्ट ही जाती है। अनुमान श्राद्धवत् है। (११४५११)

कालान्तर (सं० स्त्री०) अन्तः कामः (मयुं सिं० सं०) । १ अन्तःसमय, दूरता वत् । २ उत्पत्तिका परवर्ती काम, पैदायगके पीछेका वत् । (सि०) ३ समयान्तर-स्यायो, दूरसे वक्तमें पड़नेवाला ।

कालान्तरघम (सं० स्त्री०) कालान्तरको वधुग कर सकनेवाला, ली देरका वत् वरदाय्य कर सकता हो ।

कालान्तरप्राचष्टरमर्भ (सं० स्त्री०) १ मर्मस्थानविशेष, जिमकी एक मातृक जगह । जहां प्राचात जगनेसे पचान्त वा मायास्तमें प्राय निश्चलने, छरी कालान्तर प्राचष्टरमर्भ कहते हैं। वध तेंतीस होते हैं । यथा—पाठ वचमं (दो स्तनमूलमं, दो स्तनरोहितमं, दो अपनापमें और दो अपस्तम्भमं), पांच सीमन्तमं, चार तनहुटयमं, चार चिम्रमं, चार इन्द्रवस्त्रिमं, दो कटितक्षमं, दो पावमं, दो हृष्टतीमं और दो नितम्भमं । (वदु०)

कालान्तरविष (सं० पु०) कालान्तरें दंगनात् अन्व-यिन् काले विषं यस्य, बहुव्री० । १ मृषिकादि जन्तु, चूहा वगैरह । २ मृतादि, मकड़ी वगैरह, जिम जन्तुवोंका विष पक्षसे दृष्ट स्थान पर मान्म म पड़ते भी वेक देखा जाता, उन्हीका नाय कालान्तरविष पाता है ।

कालान्तरावृत्त (सं० स्त्री०) कालान्तरें दीर्घसमयात्तरें प्रावृत्तं परावृत्तम्, ०-तत् । बहुकाल प्रत्यावृत्त, वक्तमें द्विपाया गया ।

कालान्तरावृत्ति (सं० स्त्री०) कालान्तरें प्रावृत्तिः प्रत्यावर्तनम्, ०-तत् । समयान्तरमें प्रत्यावर्तन, दूरसे वक्तकी वापसी ।

कालाप (सं० पु०) कामः शूद्रः प्राप्यते यस्मात्, काम-प्राप-पञ्च । १ मर्ष-कण, चापका फल । २ राजस-कलापं तन्नामकं व्याकरणं येषां पठते वा, कलाप-पञ्च । ३ कलापव्याकरणपेता । ४ कलापव्याकरण-पञ्चम्यनकारी । ५ एक कवि, उनका नाम परावृत्त था । बहु श्राद्धवृत्तिके अन्धापक रहे ।

“इहो वेदवृत्तौ, कलापः पठेत् वा” (भरत ५१४)

कालापक (सं० स्त्री) कालापञ्च कलापिना मोक्ष-शास्त्राभेदस्य धर्मः प्राचायो वा, ३-तत् । १ कलापि-शास्त्रानुसारी एक शास्त्र । २ कलाप-व्याकरणपेता ।

“कालापकालप-वृत्तिः” (विष्णोःशास्त्रिणे)

कालापहाड़ (हिं० पु०) अत्यन्त भयानक दन्तु, निहा-यत डरावनी चीज ।

कालापहाड़—१ लौनपुरवासे नवाब बहलोल मोदीके भागिन्य और उनके पुत्र बारबक शाहके सेनापति । वह एक विख्यात और ही कहते हैं किसे समय बारबक शाहने दिल्लीके सुलतान सिकन्दर मोदीके विपथ युधयात्रा की थी। युध घोरतर हुआ। घटनाकमसे उस युधमें कालापहाड़ कैद किये और दिल्लीकी भेजे गये। सिकन्दरने देखा कि कालापहाड़ खान-सुष पदमजमे उनके सन्मुख जा रहे थे। उन्हेति पबिलम्य अश्रमे उत्तर कालापहाड़की बालिहन किया और कहा,—‘चाप हमारे पिछतुल्य हैं, चनें भी पुत्रतुल्य समझते रहिये। कालापहाड़ हम पसभा-वित समादरकी देख विख्यात हुये। उन्हेने सुनतानमें कहा, कि वह सुनतानके सिये जीवन पर्यन्त उल्लगं करनेको प्रस्तुत थे। फिर वह पक्षसे जिमकी औरसे लडने चले थे, उनके ही विरह हो गये। बारबक शाहके मिवाही कालापहाड़की पाने देख भाग पड़े हुये।

‘तारीख-जहान-नोदी’ नामक फारसी इतिहासमें लिखा है कि ४८८ हिजरीको (१४८४ ई०) सिक-न्दरशाहने बारबकशाहकी पकड़नेकी सिये काला-पहाड़की अरबके अमिमुष भेजा था ।

“तारीख गैरगाही” नामक सुसलमान इतिहास-के मतानुसार कालापहाड़की सुनतान अहमोलने पवध सरकार और दूरसे भी कई परगने जागीर दिये थे। मरनेके समय वह १०० मग पक्षा योग और विस्तार पक्षद्वार सम्पत्ति छोड गये। उनको एक-मात अन्ना फातिमा अशाधिबानिषी हुई।

सुनतान अशाहिममोदीके राजत्वभी गेयापक्षामें पदभर गये । युध-प्रदेममें कालापहाड़का नाम विख्यात है। वह बड़े हिन्दूविद्वेषी और देवमूर्-तुपकारी थे।

सरोवर खोदा गया है। पहाड़से उसमें दिनरात बूंद बूंद पानी टपका करता है। कोटतीर्थसे उसमें जल जाता है।

दुर्गके मध्य कोटतीर्थ नामक एक सरोवर है। कालंजरमहात्मानमें वही कोटतीर्थ नामसे वर्णित है। कोटतीर्थमें स्नान करनेसे कोटि लक्ष्मका पाप छुटता है। सरोवरमें उत्तरनके लिये चप्रग्रस्त सोपानावनी है। किन्तु उसमें सकल समय जल नहीं रहता। कोई बड़ी भारी हृष्टि हो जानेसे कुछ दिन जल देख पड़ता है। सरोवरकी चारो ओर नानाविध प्रस्तरखण्ड प्रथित है। उनमें अनेक शिलालिपि उत्कीर्ण देख पड़ती हैं। लेख अनेक स्थानोंमें मिट गये। सुतरां आजतक उनका उच्चार नहीं हुआ। सरोवरके पार्श्वमें उपरिभागपर प्रस्तरभवन और प्रत्याम्य गृह बने हैं, वह अत्यन्त पुरातन समझ पड़ते हैं। स्थान स्थानपर संस्कार भी किया गया है। यहाँ भी बहुविध पुरातन खोदित लिपि देख पड़ती हैं। कोटतीर्थसे परिमलकी बैठक और अमानसिंहका महल छोड़ दक्षिणपश्चिम मोलकण्ठ जानेका पथ है। पथमें एक फाटक लगा है। फाटक पार होनेसे प्रकृतिकी अपूर्व शोभा देख पड़ती है। पथत उद्यसे अममल ही मिलकुल नीचेकी झुक गया है। जहाँतक दृष्टि जाती, वहाँतक अपूर्व शोभा दिखाती है। पहाड़के नीचेसे बांदा नौगर्वकी राह देखने पर मनमें पाता, मानो उपवीतका शुक्ल पहा देखाता है। पट्टर ही श्यामल शख्यपूर्ण प्रग्रस्त मुखण्ड नील नभस्थलमें जाकर मिल गया है। बीच बीच छोटे छोटे पहाड़ हैं। कहीं निर्भरिणी और कहीं स्तोत्रस्ती सर्वांतपमें रौप्यमय ही भरभरा रही है। क्या ही सुन्दर प्रकृतिकी अपूर्व शोभा है। उपरि उक्त फाटक पार होनेसे उस पथमें दूसरा फाटक मिलता है। उससे आगे बढ़नेपर कवि तुलसीदास

ओर जैन तीर्थंकरकी प्रस्तरमूर्ति देख पड़ती है। वाम ओर पहाड़में दूसरी कई मूर्ति हैं। स्थान स्थानपर शिलालिपि उत्कीर्ण है। सुषमामागेके शासनसमय वहाँ एक गृह बना था। कलईका काम होनेसे अनेक लेख भट्टय हो गये हैं। कुछ दूर आगे जानेसे जटागड्ढर, शिवमागर और तुङ्गभैरवकी मूर्ति है। वहाँ कई गुहा भी हैं। कई स्थानमें प्रस्तर पर कितना ही लिखा है। किन्तु उसका अंश मात्र पटा गया है। कहीं "वेत सुदी ८, सन् ११८२ संवत् नरसिंह रत्ननके पुत्रने वामदेवकी मूर्ति प्रतिष्ठित की है," कहीं "जेठ सुदी ८, ११८२ संवत् दीक्षित पृथीधर" और कहीं "श्रीकीर्तिवर्मा देव और सोमेश्वर देवगणकी प्रणाम करते हैं" लिखा है। तुङ्गभैरवके एक स्थान पर "मदनवर्माके अतुवर सोहन, सोहनके पुत्र महाश्याणिक, उनके पुत्र बहुराजने लक्ष्मीदेवीकी मूर्ति स्थापन की, कार्तिक सुदी समौचर संवत् ११८८" लिखित है। इसीप्रकार दूसरा भी कितना ही लेख है। निकट ही नीलकण्ठका मन्दिर है। पहाड़के नीचेसे उस मन्दिरकी अपूर्व शोभा देख पड़ती है। वहाँ एक गुहा है। गुहाके सम्मुख षट्कोण प्राङ्गणकी चारो ओर प्रस्तरके स्तम्भ हैं। स्तम्भोंके निर्माण-कौशलमें अति चमत्कार दिखलाया गया है। उनके उपरिभागमें विष्णुकी एक अतुर्भुज मूर्ति स्थापित है। स्तम्भ षट्कोण मण्डपकी षट् दिक् अवस्थित हैं। स्तम्भोंके कथनानुसार उपरि उपरि स्तम्भोंकी सात श्रेणी रहती, किन्तु आजकल एक मात्र देख पड़ती है। उक्त गुहाके अन्तर्गतमें नीलकण्ठ महादेवकी मूर्ति है। गुहाके बाहर बहुविध शिल्पकार्य होनेका प्रमाण मिलता है। किन्तु वह समस्त अनेके काममें छिप गया है। प्रवेशद्वारके पार्श्वमें दरपावती और गङ्गायमुनाकी मूर्ति हैं। शिवलिङ्ग गाट नीलकण्ठके प्रस्तरसे निर्मित है। उसकी उद्यता तीन इत्त होगी। नीलकण्ठदेवके तीन चक्षु हैं। स्थान देखनेसे युगपत् भय और भङ्गिरसका उद्रेक ही उठता है। उक्त नीलकण्ठदेव ही कालिधरके षडिहाट देवता है। कछनेकी धावप्रकता

• "नीलकण्ठी वाम देवी भैरवाः चैत्रनाथकाः ।

कोटतीर्थं यथ तीर्थं सुलिख्य न संशयः ॥

कोटतीर्थं नक्षे चाला पूजयित्वा महाशिवम् ।

कोटीश्वरमिनात् पापान्मुच्यते नात संशयः ॥

कोटतीर्थं यथ संशय मन्दिरिभ्या नष्टं यत्नम् ॥

२ सुधिदावादके नवाव दाऊदके एक सेनापति ।
उनका प्रकृत ना 'राज' था । कामरूप पक्षमें वह
पोरासुठार, पोराकुठार, कालासुठान या कानयवन
नामसे विख्यात है । बङ्गाल और उड़ीसेके जनप्रवादा-
नुसार कालापहाड़ पहले ब्राह्मण थे । उन्होंने किमी
नवाब-कन्वाके तैममें फौज सुसलमान-धर्म प्रष्टप किया ।
किन्तु भकबरनामि, तारोख दाऊदी प्रभृति सुसलमान
इतिहासोंमें वह 'अफगान' बताये गये है ।

कालापहाड़ पहले बङ्गालके नवाव सुलेमान
कुर्रानी और पीछे दाऊदके सेनापति बने । उनकी
भांति देवदेवी सुसलमान बङ्गालमें कभी देख न पड़ा
था । देवमन्दिर भङ्ग, देवमूर्ति चूर्ण और अनैक
प्रकार हिन्दुओंको लाञ्छना करना ही उनके जीवनका
प्रधान लक्ष्य रहा ।

पूर्व आसाम, पश्चिम काशी और दक्षिण उड़ोसके
मध्य उस समय हिन्दुओंके जो विख्यात देवानय थे,
वह कालापहाड़के हाथसे बच न सके । उनमें कोई
भग्न, कोई अश्वहीन और कोई भूमिसात् ही मानो
पत्न्यापि कालापहाड़का दारुण अत्याचार क्षोषणा
करता है । प्रवादानुसार कालापहाड़का नकारा
वजते ही सज्जन देवमूर्ति कांठ उठते थे ।

श्रीचन्द्रकी मादनी पञ्चोमें लिखा है (१४८१
शक),—“मुकुन्ददेवके राजत्वके अन्तिमकाल काला-
पहाड़ उड़ीसमें घुसा था । मुकुन्ददेव उससे पराजित
हुये । उसके पीछे मुकुन्ददेवके पुत्र गौडिया-गोविन्दके
राजा होने पर कालापहाड़ पुरो लूटने गया था ।
पछोनि लगसाय देवकी मूर्ति उठा गड़ पारोकुदमें
द्विषा रखी । कालापहाड़की बहू संवाद मिल गया ।
उसने पारोकुदसे लगसायदेवकी मंगा और अग्निमें
जला समुद्रमें फेंक दिया । लगसाय, लक्ष्मण प्रथमि अन्त ईश्वी,
उसी वापसे कालापहाड़के हाथ पैर गले, जिसमें वह
मरे थे ।” अकबरनामिके मतानुसार सुगन सेनापति
सुनीबखान्के दाऊदको पकड़ने कटक पहुँचने पर
कालापहाड़ और कई अफगान सरदारोंन काकसान
अधिकार किया था । किन्तु अफगानोंके मध्य ही

कालापहाड़ कालीगङ्गाके तीर सुगन सिपाहियोंके साथ
मारे गये । तारोख-दाऊदके देखते ८८८ हिजरीको
(१५८० ई०) छल घटना हुये थी ।

कालापान (हि० पु०) तामका इष्य रंग ।
कालापानी (हि० पु०) १ निर्वातन, जनावतनी,
देगनिकाला । २ भान्दासन, निकोवार प्रभृति हीप ।
३ मध्य, शराव ।

कालापोग (हि० वि०) कृष्णवर्णमस्त्राच्छादित, काले
कंपड़े पहने हुवा ।

कालापाल (हि० पु०) योनिदेगस्य, कंग, पगम, भाँट ।
कालामुजङ्ग (हि० वि०) अत्यन्त कृष्णवर्ण, निहायत
काला ।

कालाभ्र (सं० पु०) कालः कृष्णवर्णः अश्वः, कर्मध० ।
१ जलयुक्त कालमेघ, बरसनेवाला काला बादल ।
२ कृष्णभ्र, काला बादल ।

कालाम (सं० पु०) बराड कृषि । वह शायद सुनिके
अध्यापक रहे ।

कालामुख (सं० पु०) शैव मन्त्रदायविशेष ।

कालामोहरा (हि० पु०) विपुत्रक्ष विशेष, एक लूट-
रीना पोदा । वह सींगियासे मिलता अथवा जड़में
विद्य रक्षता है ।

कालास्र (सं० पु०) काल आस्रो यव, बहुत्रो० । क्षोप-
विशेष, एक टापू ।

“इदम् वाचुत्तान् और कालायसोपमेर च ।” (इति० ११३)

कालास्र (सं० स्त्री०) सङ्ग, सत्तू ।

कालायन (सं० वि०) कालेन निवृत्तान्, काल-फक् ।
समयजात, बहूने पेटा ।

कालायनि (सं० पु०) वाक्त्रिकिके एक शिष्य ।

कालायनो (सं० स्त्री०) दुर्गा ।

कालायन (सं० स्त्री०) कालायतम् अयदेति, काल-
अयम् टच् । अयः अयः, वरुणो अतिवः अयोः । पा ३ । ३ । ८४ ।

१ काल मोष्ट, कोई लोहा । २ लोह, लोहा ।

मोष्ट ईश्वी ।

कालायसमय (सं० वि०) काल-यस-मयट् । काल-
सौष्ट निमित्त, तीर्थ लोहका बना हुवा ।

नहीं—कितनी दूरसे हजारों लोग जा जा कर उनकी पूजा करते हैं। नीलकण्ठ-मन्दिरकी वाम ओर एक प्रग्रगस्त पथ है। उसमें बहुसंख्यक लिङ्गमूर्ति प्रतिष्ठित हैं। वृष्ट पथ नीलकण्ठका मन्दिर घेर चर दिक्की जा निकला है। मन्दिरके सूफोंके मध्य मध्य भूमिमें प्रस्तरखण्ड पर कितना ही लेख देख पड़ता है। फिर उसमें बहुत कुछ यात्रियां द्वारा खोदित है। बाहर स्थान स्थान पर भगवान्के दश चरणार, ब्रह्मा, हरपार्श्वती प्रभृतिको अनेक मूर्ति भगवान्स्थानमें दश चरण पड़ी हैं। नीलकण्ठका मण्डप ढाँहनेसे एक कुण्ड मिलता है। वृष्ट भी पहाड़ तैल कर बनाया गया है। उसका नाम सर्गा-रोहणकुण्ड है। उसके दक्षिण पार्श्व पर्वतके कोणमें प्रकाण्ड कालभैरवकी मूर्ति है। वृष्ट कुण्डके जल पर खड़ी है। मूर्ति प्रायः १६ इत्त उच्च और ११ इत्त प्रग्रस्त है। नरमुण्डकी माला गरुटेयमें दोदुल्यमान है। सर्पके कुण्डल हैं। इत्तमें सर्पके वलय पड़े हैं। गलेमें सर्पका हार है। अष्टादश इत्तमें अष्टादश अक्ष हैं। उक्त भगवान्क मूर्तिके पार्श्वमें जल पर कालीकी एक मूर्ति खड़ी है। जल पर उक्त पर्वतके श्रम्यन्तरमें उम दोनों मूर्तियोंको देखनेसे मनमें युगपत् भक्ति और भयका सञ्चार होता है। उक्त मूर्तिके आगे ही दूसरी गुहा है। वहाँ जाना दुःसाध्य है। वृष्टले उक्त मूर्तिके निम्नभागमें एक द्वार था। उससे सिद्धगुहामें भोग जाते थे। उस स्थानसे किसी सुरंगकी राह देगीय राज्यके भीतर पहुँचते थे। चंगरेज राजपुत्रोंने वृष्ट राह बन्द कर दी है। दुर्गकी उत्तरदिक् प्राकारसे बाहर पर्वतके मध्यभागमें १० इत्त दोर्घ और ६ इत्त उच्च एक सुदृष्ट खण्डगिरि है। उसमें भी लिङ्गमूर्ति वर्तमान है। उसका नाम बालकाण्डेश्वर है। उसके पार्श्वमें एक भारवाही मूर्ति है। वृष्ट भार लिये चली जाती है। वृष्टगीकी दोनों ओर दो कनसी गङ्गाजला है। उक्त भारवाहकके

चित्रपर गुप्तवंशीय राजपट्टक गिनाजिवि लगी है। पर्वतके पार्श्वमें समतल भूमि पर भी एक जगह वंसो ही मूर्ति और वैसे ही गिनाजिवि है। उस स्थानका नाम भवने है। कालिञ्जर पर्वतको उत्तर ओर भूमिसे ४०४५ इत्त ऊपर गङ्गानगर नामक एक सरावर विद्यमान है। वृष्ट प्रायः १०० इत्त दोर्घ और ८० इत्त प्रग्रस्त है। उसकी तीन ओर सापागावनी समान चली गयी है। एक ओर उत्तरनेकी छोटी सिङ्गो और चारो ओर जंजा किनारा है। किनारे पर चतुर्नेकी भी सोपान बना है। वृष्टा ८ इत्त उच्च धनन्तदेवकी मूर्ति देख पड़ती है।

वृष्टा दूसरी भी देखनेकी बहुत चीजें हैं। उनमें चण्डोभयन, त्रिपञ्चन, रविचन्द्र, मातङ्गवायिका, गारायणकुण्ड, चन्द्रस्थान और मोमित्रधेव प्रसिद्ध है। पर्वतके अग्निनीषमें अद्यापि श्रीरामका चरण-चिह्न बना है।

“अग्निनीषे निरिलन श्रीरामचरणवत् ॥” (काव्यमालाभाष्य भा०) कालिदास (सं० पु०) काव्याः दामः, संचायां ऊलः। भारतके अति प्रसिद्ध महाकवि। जोगीसी विश्वास है कि विक्रमादित्यकी सभाके नवरत्नमें कालिदास भी एकरत्न रचे। उसके सन्त्यपर नाना स्थानोंमें नाना प्रकार प्रवाद प्रचलित है। उनमें केवल एक प्रवाद हम नीचे लिखेंगे।^{१०}

किसी विदुषी कन्याने विद्यावन्धसे वृष्ट पण्डितोंकी हरि प्रतिज्ञा की थी,—‘लिष्ट पण्डितमे हम शास्त्रार्थमें हार लायेंगे, उसीको अपना पति बनायेंगे।’ उनके पिता प्रतिज्ञाको चुन एक एक कर वृष्ट पण्डित लाये थे। किन्तु कोई कन्याका पराजय कर न सका। दस प्रकार बार बार पण्डित-पात्रका

• निविदाके प्रवचानुसार कालिदास निविदावासी थे (Journal. Asiatic Society of Bengal, Vol. XLVII. 1879 pt. I. p. 33.) इसी प्रकार अष्टवदीपमें भी वृष्ट प्रवाद है। (See Indian Antiquary. 1878.) नाना स्थानोंसे प्रवाद पदमेरे मान्य पड़ता है—जहाँ किसी समय विद्यात पण्डित रहे, वहाँ हीन महाबलि कविदासकी मर्दोय ओर एक भारवाही अर्धनेमें कुण्डलन हुई। रत्नजुमें भी ऐसा ही प्रवाद चलता है। (Martin's Eastern India, III. p. 543.)

• बालचरमाहात्म्यमें उक्त कुण्डका नाम सर्गापी निष्ठा है।
वृष्टा—“नीलकण्ठसमीपे तु भूमि काव्याः चण्डादयः।
सुरेशायां गतः कालादेवप्रकाशसर्वेत् ॥” (भा० १-११)
Vol. IV. 148

कालावङ्क (सं० पु०) हृत्प्रविगेय एक पेड़ ।
 कालावधि (सं० पु०) नियत समय, सुकरर वक्र ।
 कालावदाय (सं० पु०) समयके अन्तरानका अभाष,
 वक्रके एकदिवसे पदम मौजूदगी ।
 कालावधि (सं० स्त्री०) कालस्य कर्मयोग्यसमयस्य
 अग्रिः, १-मत् । एतौतिवद्यगोक्तं शुभकर्मका बाधक
 समय विरोध, रथ या नादाक रथका वक्र ।

अत्र १५० ।

कालागीक (सं० पु०) शीघ्रगज विगेय, शीघ्रके एक
 राजा ।
 कालागोच (सं० स्त्री०) कालव्यापि अगोचन्, मध्यप० ।
 कालागोच प्रभृति मद्यगुरुका मृत्यु होनेसे एक
 वन्दर पटंग अगोच रहनेका विषय ज्योतिशास्त्रमें
 कथित है । अगोचरी कालागोच कहते हैं । काला-
 गोचके समय कई कर्मयोगके पालनका नियम
 निर्दिष्ट है ।

कालासुवदास (सं० पु०) अथवायच मासमें उत्पन्न
 होनेवाला धान्यविगेय, अथवायका एक धान ।

कालासुवत् (सं० पु०) असन् प्राणान् हरति, असु-हृ-
 क्षिप असुहृत् प्राणनाशकः, कालघातो असुहृत् चेति,
 कर्मधा० । १ प्राणनाशक, जान् लेनेवाला । कालः
 भयानकः असुहृत् शत्रुः । २ भयङ्कर शत्रु, अतन्नाक
 दुश्मन । कालस्य मृत्योः असुहृत् विनाशकः । ३ मद्या-
 देव, मित्र ।

कालास्र (सं० स्त्री०) मद्यगतक वायुविगेय, कालसे
 मार जानेवाला तीर ।

कालास्थानी (सं० स्त्री०) १ पाटला वृक्ष । २ सुष्कक,
 मोषा ।

कालास्र (सं० पु०) १ काकतुप्पी, घुंघरी । २ काक-
 तिलुक, कुचमेका पेड़ ।

कालि (सं० स्त्री० वि०) १ कल्प, गये दिन । २ आगामी
 दिवस, आनेवाले दिन । ३ शीघ्र, शब्द ।

कालिक (सं० पु०) काले वर्षाकाले चरति, काल-ठञ्,
 के लभे चरति वर्षाप्रति वा, क-अन् वाहुलकात्
 इकन् । १ शीघ्रपत्नी, किसी निम्नका अगला । २ आग-
 रात विगेय, जानके एक राजा । (स्त्री०) ३ कल्प

चन्दन । (वि०) ४ अमरयोगित, वक्रके सुवाकिक,
 ५ ज्ञानसम्बन्धोप, वक्रके भूताजिक । ६ दीर्घकाल
 स्थायी, बहुत दिन चलनेवाला । इस अर्थमें 'कालिक'
 शब्द प्रायः समासमें लगता है । यथा मामकालिक
 अकालिक इत्यादि ।

कालिकता (सं० स्त्री०) समय, तिथि, अस्तु, वक्र,
 तारीख, मोसम ।

कालिकसम्बन्ध (सं० पु०) कालिकविगेयवत्ता नाम
 अरूप सम्बन्धविगेय, कालानुयोगिक विभु भिन्न वद्
 प्रतियोगिक सम्बन्ध, वक्रका जोड़ । भिन्न कालव्या-
 प्यस्यैके साध उक्त सम्बन्ध नहीं लगता । किम
 किसी नैयायिकने कालिकसम्बन्धको विभुवातियोगिक
 सम्बन्ध कहा है । विभु पटाये भी कालिकसम्बन्ध
 कायमें ही रहता है । मद्यकाल पौर कालोपाधि मद्
 दाय कालिकसम्बन्धमें वस्तुका अधिकरण होता है ।

कालिका (सं० स्त्री०) कालो वर्षोऽथवाः, काल
 ठन् टाप; यदा काल-डीप् स्वार्थे कन्-टाप् कालवत्
 १ अणिक, काली । उमके नामकरण सम्बन्ध प-
 कालिकापुराणमें लिखा है,—'शुभ पौर नियम
 देवके उत्पीडनमें अत्यन्त वीरित हो इत्यादि दे
 हिमालय पर्वतमें मद्यतोपके निकट पदुष मद्यमाया-
 का मृत्य करने लगे । मद्यमायाने उमके अर्थमें मद्य
 ही मातङ्गसोपर्वमें वहाँ पदुष कर पूजा—'तुम
 लोग किसकी आराधनाके लिये इस मातङ्ग आश्रममें
 आये हो ?' देवीके मुहूर्ते ही उमके अर्थमें एक देवी
 मूर्तिमें आविर्भूत हो कहा कि 'देव शुभ पौर नियम
 देवके अत्याचारमें उत्पीडित हो उमके निधनके अर्थमें
 मद्यमायाकी आराधना करने आये है' वह आविर्भूत
 देवी प्रथम लज्जार्थी रहीं । सब कालके पंक्ति उमके
 फिर मोरवर्ण धारण किया । किन्तु अन्धवर्षा प्रादुर्भूत
 होनेसे ही वह कालिका नाममें विख्यात हुईं । यह
 उम भयमें रक्षा करती है, उममें पण्डित उक्त उम
 ताग भी कहते हैं । 'उमके प्रथम अज्ञान नाम लक्ष्मी
 है । मद्यकर्म एकमात्र जटा रहनेमें उमका नाम
 एकशता भी है । कालिकामूर्तिका आनन्द निम्नलिखित
 रीतिमें किया जाता है,—

पशुसन्ध्याम लगा उनके पिता बहुत विरक्त हो गये । सुतरां किसी गाम्मुखीके साथ उस कन्याका विवाह करना एकान्त अभिप्रेत ठहरा । फिर वध चतुर्दिक घेसे मूर्खके दृढ़ने जने । किसी स्थान पर उन्होंने देखा एक श्यामि वृक्षमें चारोहण कर जिस गाथा पर खर्य बैठा, उसीका मूलदेश काटता था । वध उसमें बहुत सन्तुष्ट हुए और सोच गये,—‘जो यह भी विवेचना नहीं कर सकता कि ज्ञान कट जानीसे वध भी उसके साथ गिर पड़ेगा, उसमें अधिक मूर्ख जगत्में कहां मिलेगा । अतएव यह उपयुक्त पात्र है ।’ सुतरां उन्होंने उसे कन्याके निकट ले जा कर उपस्थित किया । कन्याने उसमें मौखिक प्रश्न न कर एक भङ्गलिका संकेत दिखाया । वरने सन्भावतः उसकी अपेक्षा बोरता प्रदर्शन करनेकी दो भङ्गलि दिखा दीं । कन्याने फिर तीन भङ्गलि दिखायीं । उसके उत्तरमें वरने भी चार भङ्गलि देखायी थीं । तब कन्याने उसे पांच भङ्गलि देखायीं । वरने उन्हें प्रहारका सङ्केत समझ कन्याको सृष्टिका संकेत किया था । वरका उद्देश्य कुछ भी हो सकता था । किन्तु कन्याने वध सङ्गत देख अपनेको पराजित मान लिया । फिर अति पानन्दसे पिताने उसकी कन्या सौंप दी । विवाहके पीछे वासर-गृहमें स्वामी और स्त्रीने आश्राप चारभ किया । स्वामीके मुखसे ग्रन्थशब्द सुन वध चमत्कृत हुये । फिर उन्होंने उसे अत्यन्त निरस्तारके साथ गृहसे निकाला था । मूर्ख कालिदास स्त्रीके निवृत्त उस प्रकार निरस्तृत हो प्राणत्यागकी रच्छासे सरस्वतीकुण्डमें झूट पड़े । किन्तु उनका प्राण छूटा न था । मूर्ख कालिदास कवि कालिदास बन गये । सरस्वतीकुण्डके साहाय्य पशुसार पशुगाहन मात्रने ही सरस्वतीने समीपस्थ हो कर दिया था । कालिदास वर पाते ही फिर स्त्रीके निकट जा पहुँचे । उन्होंने स्त्रीको गृहका भर्गव शब्द करते देख द्वार खोलनेके लिये पशुरोध किया । स्त्री खर सुनते ही स्वामीका प्रत्यागमन समझ गयी थी । सुतरां उसने सहज ही द्वार न खोल प्रत्यागमनका कारण पूछा । कालिदासने उस पर उत्तर दिया,—‘बन्धि कथित् वाग्विशेषः’

पर्यात् उन्हें कुछ खास तोर पर कहना है । स्त्रीने फिर पूछा—‘क्या विशेष कथन है’ । कालिदासने द्वारदेश पर खड़े ही खड़े बन्धि, कथित् और वाग्विशेषः तीनों पदोंमेंसे एक एक पद पहले बोल तीन काव्य स्त्रीको सुना दिये । ‘बन्धि’ पदके पशुसार ‘बधुत्तरस्यां दिशि देवतात्मा’ प्रथम श्लोकमें चारभ कर सादश सम कुमारसम्भव, ‘कथित्’ पदके पशुसार ‘कथित् कान्ता-विरहशुक्ला स्वाधिकारप्रमत्तः’ प्रथम श्लोकसे चारभ कर मेघदूत और ‘वाग्विशेषः’ पदका वाक् शब्द पड़ण पूर्वक ‘वाग्घांविष सम्पूजो’ प्रथम श्लोकसे चारभ कर रघुवंश उन्होंने प्रणयन किया । उन्होंने रघुवंश पोर कुमारसम्भव दो महाकाव्य, मेघदूत नाम खण्ड काव्य, अभिज्ञान शकुन्तला, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र तीन नाटक और गृह्यारतिलक, श्रुतबोध, पुण्यवाण-विलास, षट्संघार प्रभृति ग्रन्थ बनाये हैं ।

आजकल विशेष प्रमाण द्वारा प्रतिपन्न हुआ है—विक्रमादित्यके सभास्य जिन नवरात्रोंका नामाग्रेस मिलता, वध सब एक ही समयमें न रहे । गिलासिपि और प्राचीन ग्रन्थसे भी एकाधिक विक्रमादित्यका नाम निजला है । किन्तु यह नियम नहीं—कानसे विक्रमादित्यकी सभामें कालिदास थे ? फिर उस ग्रन्थोंका हन्धन्धन, भाषा और कवितागेषु देवते भी प्रथम छह ग्रन्थोंका छोड़ अपर पुस्तक महाकवि कालिदासके हस्तप्रसूत मान्न नहीं पड़ते । इनही कारणोंसे केषके प्रवाद पर निर्भर कर कालिदासकी जीवनी लिखी जा नहीं संकती ।

कालिदासकी जीवनी लिखना और अन्यकार समुद्रमें झूट पड़ना एक बात है । उनके सम्बन्धमें विभिन्न लोगोंका विभिन्न मत मिलता है ।

बल्लालविरचित भोजप्रबन्धके प्रमाणातुसार कालिदास उल्लयिनीनिवासी भोजराजके सभासद थे । उक्त भोजराजका राजत्वकाल ११०० ई० ठहरा है । (Journal Asiatique, Sept. 1844. p. 250.)

भोजप्रबन्धमें कालिदासके समसामयिक कई पण्डितोंका नाम मिलता है । यथा—कपूर्, कलिङ्ग, कामदेव, कौकिल, गोपालदेव, तारुन्द, दामिदर,

“वस्तुनां ज्ञापनार्थं सुप्रमाणाविसृजिताम् ।
 यत्र दक्षिणपार्श्वे विधत्तेऽक्षरं तपः ।
 कर्त्तव्यं च सर्वं रक्ष्यं क्रमात्प्रामेयं विधत्तुम् ।
 यं निवृत्तौ जटामिकां विधत्ते शिरसा स्वयम् ।
 सुप्रमाणाधर्षां शोभे” शोभापान्निधं चरंदा ।
 वचसा भागधारतु विधत्ते रक्ष्योच्यते नाम् ।
 कृष्यवस्त्रधरा कर्त्ता व्याघ्रजिनमनविताम् ।
 वामगर्दं जवष्टदि नं स्यात्वं दक्षिणं पदम् ।
 विन्द्यन् विं हृष्टके तु क्षिप्रिजानासव” स्वयम् ।
 यादृशसाम्प्रदायोरुत्तरवृत्तानिभीषका ।
 चिन्तयौघतारा सततं भक्तिमतिः सुवेद्युभिः ॥”

भक्तिमान् शौर सुवेद्यु नोगा द्वारा छण्डवर्णं, चतुर्भुजा, दक्षिण हस्तहृदये मध्य ऊर्ध्वं हृष्टमें चक्र एवं अधोहस्तमें पद्म तथा वामहस्तहृदये मध्य ऊर्ध्वं हस्तमें कर्त्ता (दाता) एवं अधोहस्तमें खड्गधारिणी गगनस्थर्षा एक जटायुक्ता, मस्तक तथा कण्ठदेगमें मुण्डमाना एवं वक्षःस्थलमें सर्पधारभूयिता, चारुलनयना, छण्डवस्त्रपरिहृता, कटितटमें व्याघ्रचर्मयुक्ता, श्रवके हृदयपर वाम पद एवं सिंहहृष्टपर दक्षिण पद-विन्यासपूर्वकं प्रवस्यता, पासवपानमें पासस्र, षट्हासकारिणी शौर श्रन्तिभयद्वारा उपतारा सतत चिन्तयै है।

कालिका देवीकी आठ योगिनी होती है। उनके नाम हैं,—महाकाली, रुद्राणी, उषा, भोमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्रि शौर भरवी। कालिकाके पूजाकाल उक्त षष्टयोगिनीकी भी पूजा करना पड़ती है।

(कालिकापुराण)

२ छण्डता, स्याही, कालापत्न । ३ हृष्टिकपत्र, विद्युदाकी पत्नी । ४ क्रमगः देयवस्तुका मूल्य, किशतवन्दी । ५ घूसरी, किन्नरी । ६ नूतनमेघ, घटा । ७ पटोलशाखा, परवलका डाल । ८ शैवाम्बली, रुवां । ९ जटामासी । १० स्त्रीजाति काक, मादा कौश । ११ शृगालो, मादा गीदड । १२ भेद्येपी, वादलको कतार । १३ स्वर्णदोष, सोनेका ऐव । १४ दुग्धकीट, दुग्धका कीडा । १५ ममी, स्याही । १६ काकोली नामक शीघ्रविशेष । १७ श्यामापत्नी । १८ मद्य, शराव । १९ कुलभृष्टिका, कुहरा । २० हरीतकीविशेष, एक

हरी । वह हिमालय पर्वत पर उपजती शौर तीन गिरा रखती है। गन्धयोग्य कार्यमें उक्त हरीतकी ही प्रयुक्त है। २१ मासिक हृष्टि, माहवार सूद । २२ वयोनिरूपक वाजिदन्ताय रेखाविशेष, उन्नत वतमानेयानो घोट्टे की दांतकी भगली रेखा । वह वक्र शौर छण्ड होती है। क्रमानुसार पठ, सप्तम वा षटम षष्टमें उक्त रेखा निकलती है । २३ कर्कटशृङ्गी, ककडासींगो । २४ यक्षसूखण्ड, गुरटेका टुकडा । २५ छण्डशौरक, काला जोरा । २६ हृष्टिकपत्र हृष्ट, विद्युदाका घोषा । २७ पद्मा, दूलायची । २८ शौराद्रष्टिका । २९ कर्कटोलता, ककडीकी वेल । ३० कानागाक, एक काली सञ्जी । ३१ नीलोत्पल, नीलका पेड़ । ३२ कर्णस्रोत-विशेष, कानकी एक नद्य । ३३ कानो पुतली । ३४ दक्षकन्या । ३५ लट, लुटफ । ३६ हृष्टिक, विच्छू । ३७ चारुधर्षकी कुमारो । ३८ योगिनीविशेष । ३९ वैखा-नरकी एक कन्या । ४० जैनमतानुसार शीघ्र षष्टंतकी एक दासी । ४१ नदीविशेष, एक दरया । त्रिरात्रि उप-वासपूर्वक उक्त नदीमें स्नान करनेमें समुदाय पाप विनष्ट होते हैं,—

“कालिकाव्रतमे सत्त्वा कौमिल्लारकयोर्देवः ।
 विद्यानेपतिरि विद्यान् सर्वेदेवैः प्रमुच्यते ॥” (भारत, वन, ८४ च)

कालिकाव्रत (सं० पु०) १ दानधर्मविशेष, एक-राक्षस । २ छण्डवस्तुविशेष, काली भांखवाला । कालिकापुराण (सं० कौ०) कालिकाया माहात्म्यादि-प्रतिपादकं पुराणम्, मध्यप० । एक उपपुराण । उभमें कालिका देवीका माहात्म्यादि वर्णित है। कालिकान (सं० कौ०) पर्वतविशेष, एक पहाड़ । कालिकाव्रत (सं० कौ०) कालिकायाः प्रोक्त्यर्थं व्रतम्, मध्यप० । एक व्रत । प्रमावस्था तिथिका उसका प्रमु-ष्ठान करना पड़ता है। स्त्रियां उसका प्रहय करती है। भविष्योत्तरपुराणमें उक्त व्रतकी सप्रति-कथा शौर प्रमुष्ठान प्रथानो लिखो है। यथा—“किंसी समय देवराज इन्द्र समाम्यलमें पशुरोग्यका नृत्य देखते थे। उसी समय प्रन्यान्य देव स्वदृग्दर्शनसे सन्तुष्ट हो पुण्यकृष्टि करने लगे । इन्द्रने अपने निकटका एक पारिजात पुष्य उठा लिया शौर घृष्ट-कर-किमी

धनपाश, प्रसन्नराघव-पत्यकार, जयदेव, वाणभट्ट, भवभूति, भास्कर, मयूर, मल्लिनाथ, महेश्वर, माघ, सुबुक्तुन्द, रामेश्वर प्रभृति। वेदान्ताचार्यकृत विश्व-गुणादर्श पट्टनेसे समझते हैं—किन्नी समय कालिदास, श्रीहर्ष और भवभूति भोजराजकी सभामें वर्तमान थे। किन्तु विशेष प्रमाण मिले हैं कि उक्त सकल पण्डित कालिदासके समकालीन न थे।

अथदेव, वाणभट्ट, भवभूति प्रभृति देवो।

वाणभट्टका हर्षचरित पट्टनेसे ही समझ सकते हैं कि कालिदास वाण और श्रीहर्षसे बहुतपूर्व विद्यमान थे। ज्योतिर्विदाभरण नामक एक ज्योतिषपत्र कालिदासका रचित माना जाता है। उसमें लिखा है,—“धन्वन्तरि, चरणक, चमरसिद्ध, शङ्खु, वेतामभट्ट, घटकपर्ष, कालिदास, सुविख्यात वराहमिहिर और वरहचि विक्रमके नक्षत्रज्ञेयि हैं।* विक्रमने ८५ शक-नृपतियोंकी सार कलियुगमें अपना अष्ट चलाया। हमने (कालिदास) ३०६८ कलि गताष्टके वैशाख-मासमें इस शक्यकी रचना आरम्भ कर कालिकमासमें सम्पूर्ण किया।” फिर २०वें अध्यायके ४६वें श्लोकमें कहा है,—“आज भी काम्योज, गौड़, धान्य, मानस्य और सौराष्ट्र देशके लोग विख्यात वदान्यवर विक्रमका गुण गाते हैं।”

पूर्वकथित भोजप्रबन्ध और ज्योतिर्विदाभरणकी कभी प्रामाणिक ग्रन्थ मान नहीं सकते। कारण १, इसीपूर्व लिख चुके हैं कि नक्षत्र विभिन्न समयकी लोग थे। २, रचनाप्रणाली पालोचना करनेमें ज्योतिर्विदाभरण कालिदासका करमिःएत समझ नहीं पड़ता। ३, ज्योतिर्विदाभरणकी शीघ्रता वर्षना पट्टनेसे अनुमान करते हैं कि उसके रचित होनेसे बहुत पूर्व विक्रमादित्य विद्यमान थे। फिर ज्योतिर्विदाभरणके समय विक्रमाष्ट और विक्रमसम्बन्धी प्रवाद भी चारी और फंसा था।

जर्मन पण्डित मासनके मतानुसार कालिदास ई० द्वितीय शताब्दकी समुद्रगुप्तकी सभामें विद्यमान थे।* विलफोर्ड और प्रिन्सप साहबने लिखा है कि कालिदास प्रायः १४०० वर्ष पूर्व वर्तमान रहे। जर्मन पण्डित वेबरने ई० २यसे ४वें शताब्दके मध्य कालिदासका प्राविर्भावका निर्णय किया है।† पीछे जेकोबो साहबने कालिदासका ज्योतिषग्रन्थ पकड़ ठहराया है कि कालिदासकी ग्रीक ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान था। उसके अनुसार यह ३५० ई० से पहलेकी † लोग ज्ञान नहीं सकते। ज्योतिषी केण, भास्कराजी, गोचमूलर प्रभृतिके मतमें—कालिदासके प्राविर्भावका काल ई० ४ठ शताब्द था †।

हमारे धर्मदेशीय पुरातत्त्वानुसन्धित्त्वगणमें चलय-कुमार दत्तके मतानुसार ई० ४वें शताब्दके मध्यभागके पीछे ४ठ शताब्दके शेषभागके पहले और ऐतिहासिक रहस्यप्रणेतानेके मतमें ई० ४ठ शताब्दकी कालिदास विद्यमान थे। प्रधानतः देखते हैं कि अधिकांश पुरा-विदोंके मतमें कालिदास ई० ४ठ शताब्दके लोग रहे। उनकी युक्ति यह है,—

उज्जयिनौराज हर्ष विक्रमादित्यने कवि माण्डविक्रमके प्रति सन्तुष्ट हो उन्हें काश्मीर राज्य प्रदान किया था। फिर राजा विक्रमादित्य द्वारा कालिदासकी हर्ष राज्य दिया जानेका भी प्रवाद है। कहण पण्डितने राजतरङ्गिणीमें राजा माण्डविक्रमकी कवि बनाया है। हर्षचरितके प्रारम्भमें प्रवरसेन और कालिदासका उल्लेख है। प्रवरसेनने वितस्ता नदी पर एक सुवहन् सेतू निर्माण कराया था। कालिदासने उसी सेतुके उपलक्ष्यमें “सेतुकाव्य” रचना किया। सेतुप्रबन्धके टीकाकार रामदासके भी मतमें कालिदासने सेतुप्रबन्ध

* Indische Alterthumskunde, II. p. 457, 1158-60.
† Weber's Sanskrit Literature, p. 204.
‡ Monatsberichte der Königlich Preussischen Akademie der Wissenschaften zu Berlin, 1873, p. 551-558.

§ Kern's Brihat Sanhitā, p. 20, Bhān Daji in the Journal of the Bombay Branch Roy. As. Soc, 1861, p. 19-30, 207-200; Max Müller's India what can it teach us, p. 320

* १००१ विक्रम संवत्की शेषशतक ; नवदेवकी विद्याविधि पत्र नरकदा उद्धृत है।

शास्त्रको दे दिया। इस प्रकार इन्द्रके निकट प्रवृत्तान
 को शास्त्रने लक्ष्मी समिदाव किया था,—“तुम विद्याम
 द्युप दक्षपुत्र परमात्र जातिके गृहमें रहोगे।” तदनुसार
 इन्द्र मातागण्डमने किसी व्याधके घरमें रहने लगे।
 उधर गयोनि इन्द्रका कोई अनुभवान्न न था चाहा
 निद्राको छोडा था। उन्हीं दिनों उनका पता पडा।
 देशने ध्यानके वन इन्द्रको मातागण्डम प्रस्थित देव
 गर्भके समकी मूर्तिके लिये उक्त गाण्डता शास्त्रकी
 सेवा करनेको कहा था। गर्भने यथागत वारण्यो
 द्वारा शास्त्रको परितुष्ट किया। उन्हीं इन्द्रका प्रप-
 राध माईना कर समकी मूर्तिके लिये गर्भने कालिक
 व्रतका अनुष्ठान करनेका कहा। इसी प्रकार कालिका-
 व्रतकी उत्पत्ति हुयो। समके अनुष्ठानकी प्रणाली
 नीचे लिखी है—सुद कालकी किसी शुक्ल-चतुर्दशीका
 सहाय्य कर दूसरे दिन प्रसावस्याको छत्र रात्रिभोजन,
 वाम हस्त द्वारा भोजन एवं मस्य, विष्टक, रक्तगात्र
 और पद्म भोजन परित्याग कर १२ उधवा स्त्रियोंको
 द्रियाना चाडिये। इसी प्रकार कुछ दिन व्रत पावरण
 पीछे किसी सुद मङ्गलवारयुक्त प्रसावस्याको गृहके
 प्राङ्गमें कदलीकाष्ठमें गृह बना समके कालिका-
 मूर्ति स्थापन को जाती है। फिर प्रपराध, मन्त्रा
 प्रथवा शक्तिकालकी यथाविधि पाद्य, पद्म पावमनोय,
 मन्त्रपुष्प, धूप, दीप, तथा विविध वैशेष प्रशस्ति उप-
 कारणसे देवीको पूजा होती है। पूजा समाप्त होनेपर
 विष्टक, सिद्धाच, आश्विन प्रशस्ति वलि किसी वनके मध्य
 देगा चाडिये। इस प्रकार कालिकाव्रत करनेसे सत्वर
 कार्य सिद्ध होती है।”

कालिकामुष (सं० पु०) एक राजपुत्र का नाम था,
 यन्त्र, बहुमो। एक राजपुत्र का नाम था,

कालिकागाक (सं० पु०) कालिकाव्रत करनेवाला

कालिकाग्राम (सं० स्त्री०) कालिकाव्रत करनेवाला

इ-मत्। विद्याया लक्ष्मीतीर्थव्य एव

लिया है कि उक्त तीर्थमें लीम शास्त्र

लितकीध रहने पर भवयथाचारि सुनि

कालिकाव्य (सं० स्त्री०) नेतास्त्रिविधेय, पांशुको
 एक हड्डी।

कालिकेय (सं० पु०) कोई असुर जाति। यह एकदा
 कन्या कालिकाव्य दायव है।

कालिक्य (हिं० स्त्री०) कालिका, व्याधी, वासीड।
 यह एक प्रकारकी मारुत सुमौ रहती है, जो पूरेके
 लम्बेमें षण्णोमें मगती है।

कालिगण्ड—१ वज्रदेशीय यमोहर पञ्चमके पुत्रने
 विभागरा एह गण्ड पान। यह पला० २२° २०' १५"
 उ० पौर देगा० ८८° ४' पु० में यमुना एवं कालिकाको
 लडाके मङ्गलस्थान पर प्रस्थित है। लोकमेंसे साठे
 पांच हजारके पाधिक है। वहाँ प्रकृष्ट वायु और अमता
 और सूक्ष्म वाणिक्य चलता है। ज्ञानधरके संगमेश्वरी
 यमनिका एक कारखाना भी है। २ पद्मलके रंगपुर
 जिलेका एक पाम। यह मङ्गलपुत्रके तीरे परस्थित है।
 पागाम पाने जानेवालोंके टारन वहाँ लगते हैं।

कालिङ्ग (सं० स्त्री०) केन ललित पालिङ्गदेशको, ज-
 पालिङ्ग यामेनि चक्षुः। १ तस्वभ्रविगोय, किसी
 किष्कका तस्वुज। उक्त का संस्कृत पर्याय—कालिन्द्रक,
 छत्रपर्वीय और फलवर्तन है। यह शासन मन्त्राधिक,
 मधुररस, पाकमें मधुर, गुह्र, विष्टनि, पमिण्डकारक,
 कफ एवं वायुघटक और हृत्तमति, शुक तथा पित्त-
 नागक होता है। पक्करुन पित्तहृत्तकारक, १२५,
 चार चार कफ ए वायुनागक है। पक्षपातक और
 रक्तस्थापक होता है। (पक्षपातविह) (पु०) २ भूमि-
 कर्कश, एक कुम्हडा। ३ हथौड़ी, हाथी। ४ मय,
 मांष। ५ लोकाविधेय, एक लोहा। ६ फुटन,
 एक पैर। ७ इन्द्रियेय। (वि०) ८ कालिङ्गदेशका,

सुल्लकेमें पटा हुआ। ९ कालिङ्गदेशके राजा।
 हर्षवर्मेरकालमें।
 कालिङ्ग (१५२५ ई०)

“कालिकाव्रतका उचित विधान करनेवाला।
 कालिकाव्रत करनेवाला” इत्येते अर्थः (भा०, ५०)

लिखा था। राजतरङ्गिणीके मतानुसार माण्डगुप्त और प्रवरसेन ममकासीन थे। माण्डगुप्त प्रवरसेनको काश्मीर राज्य दे काशीवासी हुए। राघवभट्टने शकुन्तलाकी टीकामें माण्डगुप्ताचार्यके कतिपय चन्द्रहार-श्लोक उद्धृत किये हैं। वह पढ़नेमें प्रधान कविके बनाये समझ पड़ते और कालिदासके श्लेषनौ-प्रसृत कर्तनमें भी अच्छे लगते हैं। प्रवरसेन तोरमाणके पुत्र थे। वज्र-की कन्या चञ्जनाके गर्भमें उनका जन्म हुआ। पड़ले तोरमाणके भ्राता काश्मीरमें राजत्व करते थे। (उन्होंने तोरमाणको वन्द्य बना दिया।) हिरण्य और तोरमाणके मरने पीछे प्रवरसेनकी प्रथम पधिवार मिला न था। इस बात पर भगड़ा लगा—कौन राज्यका प्रकृत उत्तराधिकारी हो। उस समय उज्जयिनी-नाथ विक्रमादित्य (उपर नाम हर्ष) भारतवर्षके एकच्छत्र चक्रवर्ती थे। उन्होंने माण्डगुप्तके काश्मीरका राज्य प्रदान किया। उक्त माण्डगुप्त ही कालिदास थे। * भास्वत्सुलरके मतमें तोरमाण ५०० ई० और प्रवरसेन ५५० ई० के विद्यमान रहे। † सुतरां कालिदास और विक्रमादित्यका विद्यमान रहना उसी समयके मध्य सम्भव था।

नहीं समझते उक्त मतोंमें कौन समीचीन है। माण्डगुप्त और कालिदास दोनोंके एक ही व्यक्ति मान नहीं सकते। प्रथमतः किसी प्राचीन पुस्तकमें माण्डगुप्त और कालिदास पृथक् व्यक्ति नहीं लिखे गये थे। राजतरङ्गिणीमें कवि माण्डगुप्तके सख्य पर अनेक कथा लिली हैं। किन्तु कुरुक्षेत्र पण्डितने उन्हें एक-वार भी कालिदास नहीं लिखा। धर्मिन्द्र-विरचित शौचिख्यविचारचर्चा, सुभाषितावली और सूक्तिकर्णा-सूत ग्रन्थमें कालिदास तथा माण्डगुप्तके भिन्न भिन्न श्लोक उद्धृत हुए हैं। उक्त पुस्तकसमूहमें भी माण्डगुप्त और कालिदास परस्पर भिन्न व्यक्ति समझ पड़ते हैं।

* Dr. Bhanu Datt, Journal of the Royal Asiatic Society of Bombay, Vol. VIII, p. 244-50.

† Max Müller's India, what can it teach us, p. 316.
किन्तु विद्यापति द्वारा तोरमाण ५०० ई० से कुछ पूर्ववर्ती और उक्तके पुत्र विद्यापति ५११-५१५ ई० के पूर्ववर्ती समझ पड़ते हैं। (Fleet's Inscriptionum Indicarum, Vol. III, p. 10-11.)

कपूर्वसखरीपणैता वासुदेवने पपने घन्यमें माण्डगुप्तके चन्द्रहार-रचयिता बनाया है। सुन्दर मिथुका नाट्यप्रदीप पढ़नेसे समझ सकते हैं कि माण्डगुप्तने भरत-प्रणीत नाट्यशास्त्रकी विवृति बनायी थी। उक्त प्रमाणसे माण्डगुप्त नामक एक स्वतन्त्र कविका हीमाश्रय ही मालूम पड़ता है। अब देखना चाहिये—कालिदास, प्रवरसेन और हर्ष-विक्रमादित्यके सम-सामयिक थे या नहीं।

डाक्टर भास्वदाजी प्रभृति पुराविदोंने प्रथमतः हर्ष-चरितमें प्रवरसेन और कालिदासका उल्लेख देख उभयके समसामयिक ठहराया है। श्लोक यहो है,—

“कौतः प्रवरसेनस प्रयाता इतुष्टीत्यम् ॥

घायास परं पारं कश्चिन्नेव सिद्धा ॥ १५ ॥

एवधारक तारभेनाटकैर्हृदयनिर्भरः ॥

सपत्नार्थे दंशो क्षेमो मासो देवकुम्भरिव ॥ १६ ॥

निर्गतासु न वा कस्य कानिदासस्य सृष्टिः ॥

शीतम् धुराघात्रांसु न कञ्चिदपि जायते ॥ १७ ॥”

(किसी किसी सुदृष्ट पुत्रकमें “निघरं सुरभ्यस्य कानिदासस्य सृष्टिः” पाठ है।)

उपरि उक्त श्लोक द्वारा इसी विषयका परिषय मिलाता कि प्रवरसेन और कालिदास दोनों पृथक् कवि थे। किन्तु अष्ट मालूम नहीं पड़ता—उभय समकालीन थे या नहीं। राजा रामदास विरचित रामसेतुप्रदीप नामक “सेतुबन्ध” की व्याख्याकी प्रस्तावनामें लिखा है—

“इह तावन्नाशाराप्रवरसेननिमित्तं महाशक्तिरविक्रमादित्येनाश्रितो निखिलवचिषकचक्रवर्तिः कालिदासस्यैवः सेतुबन्धवन्धुं विवृतिः ॥”

राजा प्रवरसेनके निमित्त विक्रमादित्यकी आज्ञासे कालिदासने सेतुबन्ध नामक प्रबन्ध रचना किया।

राजतरङ्गिणीमें लिखा है कि प्रवरसेनको काश्मीर-का राज्य मिलनेसे पड़ले ही हर्षविक्रमादित्यका शय्य हुआ था। † (राजतरङ्गिणी ३। १२२-१२०)

सुतरां विक्रमादित्यके आदेशसे प्रवरसेनके निमित्त कालिदास द्वारा माकृतभाषामें “सेतुबन्ध” का लिखा

* भास्वदाजी, ओषधमल प्रथम इम श्लोककी कोप नई है।

† “विद्वान्नामो म” लिखा स उभयभेदगतिः।

विक्रमादित्यमयकोत्तु वाचस्पत्यसुभाषताम् ३।

(राजतरङ्गिणी ३। १२०)

कालिङ्गिका (स० स्त्री०) कालिङ्ग-क्षीप्, संज्ञायाम्
कन्-टाप् चत इत्वम् । त्रिभुत, निभोत ।
कालिङ्गो (स० स्त्री०) कालिङ्ग-क्षीप् । १ राजककटी,
किसी प्रकारकी ककड़ी । २ कलिङ्गदेशीया स्त्री,
कलिङ्ग मुल्लकी चौरन । ३ एक नदी ।
कालिङ्ग (सं० पुं० College) १ विद्यालय, पाठशाला,
बड़ा मठरमा । उसमें सब शिक्षा दी जाती है ।
कालिङ्ग (हिं० पुं०) पत्थिमेट, एक चकीर । वह
शिमलीमें होता है ।

कालिङ्गर (कालिङ्गर)—युद्धप्रदेशके बांदा जिल्लेका
(बुन्देखण्डके पत्थिमेट) एक नगर । वह पचा०
२५ १' स० तथा देशा० ८० ३२ ३५' पू० में बांदा
नगरसे १६ बोन दक्षिण दिग्दर्शकके पत्थिमेट एक
शाखा पर्वत पर अवस्थित है । पर्वतका दूसरा भी
उच्च स्तर है । निम्नस्तरमें सहा नगर स्थापित है ।
कालिङ्गर प्रायः कोस विस्तृत चौर चारों चौर प्राचीर-
वेष्टित है । नगर भूमिमें ५३० हाथ ऊंचा होगा ।
लोकसंख्या ४ हजारसे कम है । तन्मध्ये ब्राह्मण कुल
पक्षिक है, काछी शीग भी कम नहीं दीख पड़ते ।
वहाँ पुनिमका धाना, डाक बंगला, बाजार, विद्या-
लय चौर चोपघालय विद्यमान है ।

कालिङ्गर पति पुराकालमें महातीर्थ माना जाता
है । रामायण (उत्तरका० ५८ स०), महाभारत (वन०
८५ स०) हरिवंश (२१ स०) और गुरुद, ब्रह्माण्ड,
रुख्य, पद्म प्रयति पुराणमें सहा महातीर्थका उल्लेख
मिलता है ।

पद्मपुराणीय कालिङ्गर-महात्तरम्यमें लिखा है,—

“ चर्च कीर्तनविशीर्षे तन् चोर्षे वन सन्दिहम् ।
काम् अरति विद्यार्त्तं सुप्रिदं विरसन्निवो ।
ब्रह्मणा इषिषे माये कामप्रार इति ष्यत् ।
सर्वतीर्थकम् त्वं पुण्यार्थं व दानमकम् ॥
कालिङ्गरं सर्वं चोर्षं कालि ब्रह्मण्यमीषके ॥ ” (१ स ५०)

दो कोस विस्तृत वह क्षेत्र ही हमारा (शिवका)
मन्दिर है । शिवसन्निविष्टयुद्ध वही कालिङ्गर मुक्ति-
दायक कह जाता है । गङ्गाके दक्षिण भागमें कालिङ्गर-
क्षेत्र अवस्थित है । कालिङ्गरके समस्त पवित्र क्षेत्र
भूमिखण्डमें दूसरा नहीं । वहाँ सकल तीर्थका फल
चौर, पत्थिमेट पुष्पा मिलता है ।

सुसलमान इतिहास लेखक फरिश्तेके कथनानुसार
ई० ७वें शताब्दको केंदार नामक किमी व्यक्तिने कालि-
ङ्गर स्थापन किया था । सुसलमानोंने इतिहासमें
लिखा कि गजने पाकमण करनेको जाते समय
कालिङ्गरके राजाने काहोरके राजा जयपालको साहाय्य
दिया । १००८ ई० को मुहम्मद गजनवोंने जब ४ घं
यार भारत पाकमण किया, तब पानन्द्याणके साथ
पेगावक्षेत्रमें एक युद्ध हुआ । उसमें कालिङ्गरके
राजा पानन्द्याणकी चोरसे लड़े थे । १००१ ई०को
कालिङ्गरराजने कन्नौजके राजाको पराजित किया ।
१००२ ई०को मुहम्मद गजनवी कालिङ्गर पर चढ़े थे,
किन्तु पत्थिमेट सन्धि करके लौट गये । १००२ ई०को
मुहम्मदगोरीके प्रतिनिधि कुतुब-उद्दीनने कालिङ्गर
कीत वहाँ मसजिद पादिको निर्माण कराया । पक्ष
दिनके मध्य ही वह फिर हिन्दुओंके अधिकारमें चला
गया । १२५१ ई०को मालिक नमरत-उद्दीन मुहम्मदने
उसे जय किया था । किन्तु प्रभरनिधिके प्रमाणसे
मालूम पड़ता है कि उसके पीछे फिर कालिङ्गर
हिन्दुओंके हाथ लगा । १५३० ई० की सम्राट हुमा-
यून्ने कालिङ्गर पाकमण कर १२ वस्त्र कास चैरा
डासा था । हुमायून्ने भारतमें चले जाने पर १५४५
ई० की सम्राट शेरशाहने फिर कालिङ्गर अवरोध
किया । २२ वीं मईको शेरशाहकी तोपका गोला
पड़ाहने क्षय वापस ला उनके बाधुदखानेमें गिरा था ।
उससे एक पत्थिमेट अवस्थित हुआ । शेरशाह पास
ही थे । वह उसी पत्थिमेटमें जल गये । उसीसे
उनका मृत्यु भी हुआ । मृत्युयन्त्रणा भोग करते ही
उनको संवाद मिला कि दुर्ग सुसलमानोंके हाथ लगा
था । उन्होंने ईश्वरको धन्यवाद दिया और उसी समय
उनका प्रायश्चाय निकल गया । २५ वीं मईको शेर-
खान्ने पुत्र जलानखान् नवाधिकृत कालिङ्गरमें
पिष्टपद पर पत्थिमेट हुआ । १५७० ई० को वह एक
सतन्त्र सरकारके पथीन किया गया । उसके पीछे
कालिङ्गर चौरपत्थिमेट राजाकी जागीरकी भाँति चर्चित
हुवा ।—कह दिन पीछे सहा खान् बुन्देखोंके हाथ लगा
था ।—कह दिन बुन्देखोंका वहाँ अधिकार रहा ।

जाना समुद्रपार नहीं। रामदास ई० षोडश शताब्द-
के लोग थे। रामदास ईशोः उनके पूर्ववर्ती कुलनाथने
आपने विरचित राघववधकी टीकाको सूचनार्थ
लिखा है,—

“श्रीरघुवधप्रचारणम् पद्यं, द्विती प्रकाश च निर्गुणनाथनाथ ।

व्याख्यायते प्रवरसेनपुत्रस्य सुतं सन्देहनिर्हरदशमशतकप्रवरस्य ॥”

इस स्थानमें कुलनाथने राजा प्रवरसेनको ही
‘सैतुवन्ध’ रचयिता लिखा है।

श्रीवित्पाविचारवर्षा, सुल्लिकर्णाश्रुत प्रभृति ग्रन्थ
पटनेसं समझते हैं कि प्रवरसेन एक प्रसिद्ध कवि थे।
हर्षचरितके दो श्लोक मनोनिवेशपूर्वक आलोचना
करनेमें बोध होता कि वाणभट्टसे पूर्व राजा प्रवरसेन
‘सैतुकाव्य’ और कालिदासने काव्य तथा नाटककी
रचनासे प्रसिद्धि पायी थी।

अब स्थिर हो गया कि साठयुग और कालिदास
विभिन्न व्यक्ति थे। कालिदासने सैतुवन्ध बनाया न
था। इस पक्षमें भी कोई विशेष प्रमाण नहीं कि वह
प्रवरसेन अथवा हर्षविक्रमादित्यके समकालीन थे।

प्रवरसेन और विक्रमादित्य ईशोः।

किर कालिदास किस समय विद्यमान थे ?
दाणभट्ट, वाकपति, खण्डनखण्डखाद्यप्रयेता श्रीहर्यं,
सेनेन्द्र, घामन, जयदेव प्रभृति अनेक प्राचीन कवियोंने
कालिदासका नामोल्लेख किया है। ५५६ शकको
प्रदत्त श्रीसुवराज पुनिवेशीके ताम्रयासनमें भी
कालिदास और मारविका नाम मिलता है,—

“शेनाशोष्ठिसैवमव्ययवर्षे विषी विशिक्तना जित्तिसम ।

स विप्रवर्ता रविकीर्तिः कवितावितकालिदासमारविकीर्तिः ॥”

सुप्रसिद्ध कुमारिकभट्टने तत्काल तन्वयार्थिकमें
कालिदासके शकुन्तलावर्णित “सर्तां छि सन्देहपदेपु”
वचनको उद्धृत किया है।

एतद्विषय भोटदेशीय “तंशुर” ग्रन्थमें कालिदासका
नाम और यह तथा वाङ्मोक्षकी कविमायामें रघुवंश
तथा कुमारसम्भवका अनुवाद देख पड़ता है। पाषाण्य
पण्डितोंके मतमें हिन्दुओंने ५०० ई० को यवदेश

जा उपनिवेश किया था। अतएव यह समझव
नहीं मारुस पड़ता कि हिन्दुओंके यवदेश जानेसे
पहले कालिदास विद्यमान थे।

किसी किसी पाषाण्य और देगीय पुराविद्के मतमें
कालिदासके ग्रन्थमें होराशास्त्रोप कथा दौर उक्त
शास्त्रके ‘श्रीक शब्द’का उल्लेख है। श्रीकीका होरा-
शास्त्र ई० तृतीय शताब्दकी सम्पूर्ण हुआ। अतएव
उक्त शताब्दके पीछे भारतवासियोंने उक्त शास्त्र पढ़ण
किया होगा।

जिस शास्त्रमें जातक, यात्रिक और विवाह-
सम्नादि निरूपित हुआ, बराहमिहिरने उसको ही
‘होराशास्त्र’ कहा है। प्राचीन ग्रन्थमें ‘होरा’ शब्द
न देख पड़ते भी उक्त शास्त्रका प्रतिपाद्य कितना
ही मूल विषय रामायण, महाभारतादि अति-
प्राचीन ग्रन्थमें विद्यत है। ज्योतिष, बीज, जालक प्रथम
शब्दको। सुतरां यह पक्षीकार किया जा नहीं
सकता कि होराशास्त्रका प्रतिपाद्य मूल तत्व
श्रीक होराशास्त्र बननेसे बहुत पहले भारतवासी
समझते थे।

बराहमिहिरने यवनाचार्योंके ग्रन्थसे होराशास्त्रीय
कितना ही विषय संग्रह किया था। बराहमिहिर ईशोः।
हमें यवनाचार्य या यवनेश्वरप्रणीत ‘अष्टकवर्गविन्दु-
फल’ ‘तालिक शास्त्र’, ‘नक्षत्रचूडामणि’, ‘मोमराज-
जातक’, ‘यवनसारा’, ‘यवनहोरा’, ‘रमसामृत’, ‘सन्-
चन्द्रिका’, ‘हृद्ययनजातक’, ‘श्लोजातक’ प्रभृति कई
संस्कृत ग्रन्थ मिले हैं। बराहमिहिरने (हृद्ययनजातकमें)
भट्टोत्पल, केशवार्क एवं मातृण्डधित्तामण्डिकारि
विश्वनाथने यवनाचार्योंके संस्कृत वचन उद्धृत किये
हैं। एतद्विषय ‘श्रीमत्कविशान्ति’ नामक ज्योतिःशास्त्र
संस्कृत भाषामें रचित प्राप्त होता है। शाकम्प-
संज्ञिता, हायनरत्न, गालमास्कर प्रभृति ग्रन्थमें पार
बराहमिहिर प्रभृति ज्योतिर्विदोंके वनाये पुष्पामें
रोमकाचार्योंके संस्कृत वचन उद्धृत हुये हैं।

उपरि उक्त प्रमाण द्वारा बोध होता भारतवर्षीय
ज्योतिर्विदोंने होराशास्त्रके किसी किसी विषयमें
संस्कृत भाषामें निरचित यवन एवं रोमकाचार्योंके ग्रन्थसे

• सैतुवन्धका प्रवर नाम प्रवरसेन वा दशमशतकप्रवर है।

• Weber's Sanskrit Literature, p. 208.

बुद्धका चारो छत्रभाजके भरने पर पद्माके अधिपति हरदेवने उसे अधिकार लिया।

पद्माके राजवंशका बहुत दिन तक कालिञ्जर पर अधिकार रहा था। फिर कांयमली नामक किसी राजवंशीय अनुचरने कालिञ्जरको अपने अधिकारमें कर लिया। महाराष्ट्रके प्राधान्य समय बांदिके नवाब पली बहादुरने दो वस्त्र फाल कालिञ्जर परबरोध किया था। किन्तु उन्हें जयनाम न हुआ। उसके पीछे यह अंगरेजोंके अधिकारमें पहुँचा था। अङ्गरेजोंने कायमजीके वंशके किसी व्यक्ति पर उक्त स्थानका कट्टेत्वभार डाल दिया। उनका नाम देरायु सिंह था। उन्होंने अङ्गरेजोंकी अधीनता न मानी। १८१२ ई०को अङ्गरेजोंने उन्हें दवानेके लिये सेना सह करनल माटिखेल्को भेजा था। उन्होंने नगर आक्रमण किया, किन्तु अधिकार न मिला। अवशेष देरायुसिंहने आत्मसमर्पण कर दिया। अङ्गरेजोंने उन्हें स्थानान्तरमें भूमि टे कालिञ्जरको अपने अधिकारमें रखा। सिपाही विद्रोहके समय अत्यन्तसंख्यक अङ्गरेजसेनाने दुर्गको रक्षाको धो। १८८६ ई० को उक्त दुर्ग तोड़ डाला गया। कालिञ्जरका दुर्ग बहुत प्रसिद्ध था। आज्ञामें लोग गाया करते हैं,—

“कालिञ्जरका नागत है, बैठक माने स्थानिचर करार।”

पहले कालिञ्जर चारो ओर प्राचीर-वेष्टित था। प्रवेशके लिये चार द्वार रहे। उनमें आजकल केवल तीन देख पड़ते हैं। उनके नाम कामता फाटक, पन्नाफाटक और रेवाफाटक हैं। पहले वहाँ एक सुदृढ़ दुर्ग था। आज भी उसका कुछ कुछ अवशेष देख पड़ता है। उक्त दुर्ग बनानेके लिये पहाड़ खोद कर टेढ़ी राह निकाली गयी थी। दुर्गमें प्रवेशके लिये सात द्वार हैं। उनमें आजकल दरवाजा प्रथम है। उसे भीरगजेश बादशाहने बनवाया था। द्वारके ऊपर सुहृद्भाद मुराद द्वारा प्रदत्त १०८४ हिजरी (१६७३ ई०) की उत्कीर्ण शिलालिपि है। उससमय भीरगजेवने दुर्गको मरम्मत करायी थी। उक्त द्वारसे काफिर-घाटकी राह द्वितीय द्वार गणेश फाटकमें जाना पड़ता है। उसके पानी बन्नी-दरवाजा नामक द्वितीय द्वार

है। वहाँ दो द्वार एकत्र किये हैं। उसकी चारो ओर चार बुर्ज हैं। इसीसे उसको चौबुर्ज दरवाजा कहते हैं। वहाँ ११८८, १२०२, १५८० और १६०० संवत्की खोदित शिलालिपि मिलती है। उक्त द्वारके पार्श्वमें प्रस्तरखण्ड है। उस पर एक शिलालिपि उत्कीर्ण है। आज भी समझ नहीं पड़ता वह किन अक्षरोंमें लिखी है। सुतरां यह भी किसीको मालूम नहीं उसमें क्या लिखा है? रत्न नामक किसी व्यक्तिने वहाँ एक गृह बनाया था। उक्त प्रस्तर उसी गृहका अवशेष है। चतुर्थ द्वारका नाम बुधमद्र है। उसे खर्गारोहण भी कहते हैं। वह बहुत ही दुरारोह है। वहाँ १५८८ विक्रम संवत्की (१५३१ ई०) एक शिलालिपि है। निकट ही भैरवकुण्ड है। एक ऊँची राहसे उस कुण्ड पर जाना पड़ता है। कुण्ड प्रायः ८० हाथ लंबा और २० हाथ चौड़ा है। पहाड़के पत्थर काट वह कुण्ड बनाया गया है। उक्त स्थानसे प्रायः २० हाथ ऊँचे भैरवकी प्रकाश मूर्ति है। मूर्तिके अधोभागमें पहाड़ काटकर एक गुहा बनायी गयी है। गुहाका तलभाग कुण्डके साथ समतल पड़ता है; सुतरां कुण्डका जन शीघ्र व्यतीत सकल समय गुहाके अभ्यन्तर पर्यन्त फैल जाता है। शीघ्रके समय गुहाका अभ्यन्तर बहुत शीतल रहता है। गुहाके भीतर खोदितलिपि देख पड़ती है। उसमें वारिवर्मदेव, श्रीरामदेव, महिषा, यशोधल प्रभृति नाम उत्कीर्ण हैं। यशोधल नामके नीचे ११८२ संवत् लिखा है। गुहावाँ पर पर्वतमें श्रमणकी मूर्ति देख पड़ती है। भैरवकुण्डसे नीचे उत्तर कुछ दूर जाते ही हनुमान्-दरवाजा मिलता है। उसी स्थानपर हनुमान् कुण्ड है फिर पर्वतके गात्रमें हनुमान्की मूर्ति भी खोदित है। वहाँ चनेक प्रस्तरमूर्ति देख पड़ती है। किन्तु अधिकांश कांसके प्रभावसे बिगड़ गयी है। उक्त स्थानसे चण्ड कुण्ड ऊपर चढ़ने पर काली, चण्डिका, शिव, पार्वती, गणेश, नन्दो और शिवलिंग की मूर्ति मिलती है।

• बाह्यदरवाजाके उत्तरी उक्त कुण्डका नाम शिवकुण्ड है—
“भायक भैरव” हवा कला चैव प्रदक्षिणम् ।
शिवकुण्डचण्डे काला बुधमद्र न विपत्तेः” (११८)

साहाय्य लिया है। पद्यवा शब्दोनि श्लोक ग्रन्थ पठ-
 होराशास्त्र लिखा होगा। परन्तु यह ठीक नहीं लंचता।
 प्रथमतः देवना चाहिये कालिदास प्रभृतिने 'यवन'
 शब्दमें किस देशके लोगों या किस जातिका उल्लेख
 किया है। कालिदासने रघुवंशमें लिखा है,—

"पारसीकासतो शैतुं प्रत्ये स्थलवर्गं न।
 यवनोऽप्यपमानं शीघ्रं मधुमत्तं न मः ॥
 चंदासपुत्रस्य पाषाण्ये रथसाधनैः ॥
 मातुं कश्चिद्विद्ये यमनिघोषे रत्नप्रसू ॥ ६१ ॥
 भस्मापवर्जिते को वा सिरोमिः मन्मू मेरुकोम ॥
 पवनोत्तमिरस्त्राणां मे पाशं मरुचं ययुः ॥ ६४ ॥"

(रघु) पारसीकोंकी जय करनेके लिये स्थलपथसे
 चले थे। यह यवनियोंके घटनकमलका मंदराग सह
 न मके। फिर उन्हीं पश्चिमोद्देशी (पारसीके) यवनोंके
 साथ उनका घोरतर युद्ध हुआ। धूलिसे युद्धक्षेत्र भर
 गया था। उस समय धनुःके टखार शब्दसे प्रति-
 योधा अनुमित होने लगे। महावीर रघुने यवनके
 शत्रु विराजित गिर भस्माक्षसे काट रखस्यस समा-
 ख्यस किया था। उस समय पवग्रिष्ट यवन मत्से
 टोपी उतार उनके शरणापन्न हुये।

कालिदासने पारसीकोंकी यवन और उनकी रम-
 णियोंकी यवनी लिखा है। रघुवंश व्यतीत महाभारत-
 में भी पारस्यके पार्श्ववर्ती वाङ्गीककी रमणियोंकी
 संख्यामासक्त कहा गया है। शास्त्रके निरुक्त पाठसे
 समझ पड़ता है कि वाङ्गीक देशके पूर्ववर्ती प्राचीन
 कव्योजक लोग पहले संस्कृत भाषामें बातचीत करते
 थे। सयम पुराणोंके मतसे—भारतकी पश्चिम सीमा
 'यवन' है। फिर महाभारतमें रोम नामक जनपद
 भारतके पश्चिमोत्तरदिशा गया है। (भारत भूच, ८ ब०)

• यवनशास्त्रके उक्त सकल शब्दोंका यदि शीकमायामें अनुवाद
 होता, तो वाक्यमायामें उनका कोई मूल अर्थ देय पड़ता। किन्तु आज
 तक किसीका मूल अर्थ नहीं निगा।

† "पाषाण्ये यवनैः सह" इति मद्रिनाय।
 ‡ एरोपीय रॉम जनपद रोमूलस (Romulus) नामसे बुवा है।
 (०११ पृ० ५०)। रोमूलसके पुत्ररुडमि इत्यागत रनिपथसे बहुदुःख भव-
 च्छन है। किन्तु महाभारतमें रोमक और रोमूक जनपदका उल्लेख रघुवंशमें ही पर-
 भिन्न रूपसे काय पड़ता है।

पद्यवेदमें 'इम नामक शिषी' व्यक्तिका उल्लेख
 है। अनेक लोग उससे रोमको उत्पत्ति कल्पना करते
 हैं। सुतरां रोमशास्त्रार्थ और यवनशास्त्रार्थ सूदूर चीन
 वा वर्तमान रोमवासी समझ नहीं पड़ते।

पुरातन पारसीक यवनोंकी व्यवहृत प्राचीन जन्म
 भाषा (वैदिक) कन्दम् भाषाका रूपान्तर और प-
 भ्मंश है। उद्घोषो। प्राचीन पवस्ताके यत्र प्रभृति दंघ,
 पठनेसे कुछ आभास मिलता है कि प्राचीन पारसीकों-
 की होराशास्त्रके मूल तत्त्वका ज्ञान था। प्रागिक शेषो।

सूर्यसिद्धान्तके मतानुसार सूर्योद्यमभूत पश्चुर मयने
 ज्योतिषशास्त्र प्रचार किया है। पाषाण्य पण्डितोंने उसे
 ग्रीक ज्योतियो तुरमय (Ptolemaios) माना है। किन्तु हमारी विवेचनामें पारसिक पवस्ता-शास्त्रोक्त
 ज्योतिषकाशक 'पश्चुरमपद्' संस्कृत 'पश्चुरमय' समझ
 पड़ते हैं। पश्चुरत नहीं मालूम होता कि पश्चुरमयके
 प्रथम ज्योतिषशास्त्रका उद्धारक होनेसे भारतवासियोंने
 कोई कोई शिष्य प्राचीन पारसिकों पश्चुरां उनके
 निकटवर्ती यवनोंमें सीख लिया होगा। †

सुतरां ग्रीक होरा शास्त्रके प्रमाणसे कालिदासकी
 चतुर्थ शताब्दका परवर्ती व्यक्ति मान नहीं सकते। ‡

कालिदासने शकुन्तलामें शशासन और वनपुष्प-
 मालाधारिणी यवनियोंको नृगयाप्रिय हिन्दूराजाओंकी
 सहचारिणी लिखा ॥ है। यथा—

* See Edicts of Asoka in Inscriptionum Indicarum, Vol. I, and Weber's Sanskrit Literature, p. 253.

† संस्कृत पश्चुर, पारसिक 'कृषु' और मय 'मयद्' से निगाता है।
 किन्तु निम प्रसार सिद्धिसे 'हेतु' और मयसे 'इम' बनता है, जनीयवार
 संस्कृत होरसे होर बनता है। प्राचीन पारसिक पुराणोंकी पुष्टि मानने से।
 किन्तु योनोंमें होरा शास्त्रमें एते कोटि उद्धारका। एकी प्रसार 'होरा'
 मन्मूक भाषामें खोजिहा था गया। (See English Cyclo-
 pædia—Science, Vol. I, p. 657.)

‡ कालिदासके कृष्णकवचमें 'कालिदास' इत्यन्त उल्लेख है। बहुतसे
 लोग उक्त शब्दकी शीक होराशास्त्रोक्त 'विद्युति' इ' वा 'विद्यु' से नृवा प-
 र्यम समझते हैं किन्तु शीक होराशास्त्र उल्लेख होने और हेतुके शब्दप्रयोगसे
 कृष्णकवच पूर्व कोटि उद्धार प्रकृतिके प्रकृतिके उद्घममें उक्त शब्द देय पड़ता है।
 सुतरां उक्त शब्द पर निरभर पार कालिदासकी यनीय शताब्दका परवर्ती
 व्यक्ति कह नहीं सकते।

••• शिषी उद्घे 'मत्तक मत्तक वा पाषाण्य सिद्धशास्त्रोक्त उद्घे शिषीकी
 चतुर्थशताब्दके यवनियोंका ऐसा विश्व चोदित नहीं हुआ। पश्चुराता भी
 उद्घे उक्त उक्त उक्त उक्त समझिना होता है।

उसी स्थान पर कीर्तिवर्मा और मदनवर्माका नाम खोदित है। उसके चांगे थोड़ी दूर चढ़ते जा पठार हार शाल-दरवाजा है। उसी स्थान पर चंदेलके समयकी दीर्घ शिलालिपि लगी है। हारकी पश्चिम दिक् कश्मीर कुण्डके उपरि भागमें भैरवकी प्रकाण्ड मूर्ति है। दो छोटी दूमरी मूर्ति हैं—दो भारवाहियोंके स्तम्भ पर भार है—जनपूर्ण दो कलश हैं। फिर उसके चांगे ही मगम हार मठर-दरवाजा है। उसे बड़ा दरवाजा भी कहते हैं। उक्त स्थान छोड़नेसे सीतारामकी शय्या मिलती है। पर्वत काट कर एक छोटा गड बनया गया है। उस गडके पश्चिमतरमें एक चारपाई और तबछौना परधर पर खुदा है। प्रवादानुसार रामने सीता को लडासे छुड़ा वहाँ जा कर आत्मि मिटायी थी। उक्त गडकी पश्चिमतरस्थ शिलालिपि पठनेसे मालूम पड़ता कि वष ६० चतुर्थ शताब्दीकी दरदारा बनाया गया। पाण्डुकुण्ड गोनाकार जलाशय है, उसका व्यास ८ इत्तमात्र है। ऊपर पहाड़से सधंदा जल टपका करता है। सीताशय्या पार होनेसे पातालगङ्गाको पय है। कालिन्जरमाहात्ममें उसका वाणगङ्गा नाम लिखा है। पातालगङ्गा एक गुहा है। उसमें जल रहता है। वष २६ इत्त दीर्घ और ११ इत्त प्रगस्त है। उसमें उत्तरमा कुक्ष कठिन है। वहाँ भी स्थान स्थान पर खोदितलिपि विद्यमान है। उनमें कहीं ११२८, कहीं १५१४ और कहीं १६४० संवत् लिखा है। पातालगङ्गासे पानी पाण्डुकुण्ड मिलता है। फिर सीतारामके निकट सीताकुण्ड है। दुर्गाप्रकारसे उसमें उत्तरते हैं। उस कुण्डके उपरिभागमें एक मूर्ति है। वष इत्त पर भार डाल कर बैठे है। सामने ही एक टीकरी है। उसमें १६४० संवत् खोदित है। पाण्डुकुण्डकी उत्तरपूर्व दिक् एक मिश्रभूमि है। उसमें एक जलाशय भी बनाया गया है। जलाशयकी

धारी और सोपानावली है। उसको "बुटिया तलाव" कहते हैं। उसके जलसे घनेक रोग अच्छे हो जाते हैं। कालिन्जरमाहात्ममें वही वृक्षधैव कहा गया है। दुर्गाकी दक्षिणपूर्व दिक् एक फाटक है। उसका नाम पलादरवाजा या वंगकरदार है। आज कल वष बन्द है। उसके पास कामता और रेवा नामक दूधरे दो फाटक हैं। पर्वतके निम्नभागमें भी कालिन्जर नगर विस्तृत हैं। उक्त हारसे उस भागमें प्रवेश करते हैं। पलाफाटककी उत्तर और प्रांचारसे नीचे एक कुण्ड है। उसे भैरवकुण्ड कहते हैं। कुण्डके ऊपर भैरवकी प्रकाण्ड मूर्ति है। उस स्थानमें ११२५ संवत्की शिलालिपि देख पड़ती है। पाण्डुकुण्डको उत्तर-पूर्व दिक् पथ है। उसमें बुद्धिसरोवरकी ज्ञानि हैं। कुछ भागे बड़नेपर "सिद्धकी गुहा" "भगवान्शय्या" और "पानोका चमन" स्थान मिलते हैं।

कृत्विचैत्र वा "सिद्धकी गुहा" एक खातविशेष है। वहाँ लोग प्रायश्चित्तादि करते हैं। राजा कृत्विचाधिको एक संस्कृत शिलालिपि उस स्थानमें मिलती है। वहाँ भगवान् रामचन्द्र और सीताको प्रस्तरनिर्मित शय्या है। "पानोका चमन" भी एक खात है। उद्गु हाथके एक छिटे हारसे उसमें प्रवेश करना पड़ता है। चार स्तम्भके ऊपर उसकी छत पड़ी है। वहाँ शृगधर नामक दूधरा स्थान भी है। पहाड़में पत्थर छोड़ सात शृगकी शक्ति बनायी गयी है। इसीसे उसको शृगधर कहते हैं। कहते हैं कि किसी समय सात ऋषिपुत्र शृगकी पांचा न माननेसे शापग्रस्त हुए थे। प्रथम उन्हें दण्डने वनमें ब्याध हो जन्म लिया। फिर परजन्ममें वष कालिन्जरके शृग बने। शृगजन्मके पीछे उन्होंने क्रमान्वयसे लडादीपमें राज-इंस, मांससरोवरमें इंस और कुक्षीवर्षे ब्राह्मण ही जन्मपहच किया। उससे वष सृष्ट हुए। कालिन्जरकी शृगमूर्ति उर्द्धकी प्रतिष्ठितिक है। शृगधरमें भी एक

• "विश्वनाथप्रतिष्ठा नामकोस्तम्भसुप्रसम् ।
 नामकोस्तम्भावापत्त इत्येवमि विचरन्ते ।
 समस्तं पूजयेद् भक्त्या श्रीरामश्रीविवाचम् ।
 तत्रैव इच्छंतीति वा मोक्षार्थं हितकारणम् ॥"

• "शय्यायां दर्शनं ब्रह्मा विरिचिपिचमाचिपि ।
 तत्र नामं चमनान्तं पित्रहणुपरीतरे ।
 चमनारे तथा शरैः विभुं श्रीवाचि निवचः ॥"

“दशो वाचासंबद्धशो लक्ष्मिर्दि” वचस्पृष्टमानायादिवो’
 पतिवृत्तौ इति एव वाचस्पृष्टदि विचरन्मृशौ।” चमिप्रान-शकुन्तल, २१ प
 पुराविद्वान् उक्त चित्रको वाष्ठीक-रमणोयौ का वताया
 है। भूरि भूरि प्रमाण मिलता है कि प्रतिपाचीन
 कालसे वाष्ठीके माय भारतवासियों का सम्बन्ध रहा
 था, किन्तु ई० १म शताब्देके वक्ष सम्बन्ध टूट गया।
 इस प्रकारके स्वल्पमें प्रसम्भय नहीं, जिसममय वाष्ठीके-
 के साथ भारतवासो हिन्दुओं का सम्बन्ध रहा, कालि-
 दास उषी समयके लोग होंगे। नासिकसे ई० १म शताब्-
 की एक मिलासिलिपि निकली है, उसमें शकारि नाम
 मिलता है, विक्रमादित्यका एक नाम शकारि भी था।
 भारतके नाना स्थानोंमें प्रवाद है कि कालिदास
 विक्रमादित्यके समकालीन रहे। यदि उक्त प्रवादका
 कोई श्रेय प्रकृत है तो मानना पड़ेगा कि ई० १म
 शताब्देके उक्त शकारिके राजत्वकालमें कालिदास
 विद्यमान थे। मेघदूतके २८ से ४१ श्लोक मनोयोग-
 पूर्वक पढ़नेसे अनुमान कर सकते हैं कि यह छज्जयिनी
 के दशपुर (वर्त्तमान मन्दरगौर) में रहनेवाले थे।

अनेक ग्रन्थोंमें कालिदासका नाम प्रचलित है।
 किन्तु उनमें सब पुस्तक महाकवि कालिदासके वर-
 निःसृत मालूम नहीं पड़ते। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लि-
 नाथने रघुसंग, कुमारसम्भय और मेघदूत तीनकाव्य
 कालिदासके बनाये बताये हैं। *

नाटकके मध्य चमिप्रान-शकुन्तला और विक्रमोर्वशी
 दोनों उन्हेके सुकर निर्गत हैं। कोई कोई मालवि-
 काग्निमित्र नाटक और नरतुसंहार नामक खण्ड
 काव्यको भी महाकवि कालिदासका बनाया मानते
 हैं। किन्तु चमिप्रानशकुन्तल और मानविकारिदि
 मियकी रचना-प्रपाक्षी मिलानसे घोर सन्देह
 उठता है वह एक ही व्यक्तिके हस्तप्रसूत हैं या नहीं।
 कालिदास संस्कृत साहित्यके जगत्में एक महाकवि

थे। मानवचरित्र-चित्रण, स्वभाववर्णन और सुमधुर
 छन्दोबन्धनमें उनके तुल्य कवि संस्कृत भाषामें
 वाष्ठीके व्यतीत किसी दूसरेने जन्म नहीं लिया।
 कालिदासने स्वरचित प्रत्येक ग्रन्थमें प्रभाधारण
 कवित्वगणिका परिचय दे पायाव्य जगत्में भारतीय
 श्रेष्ठगीयर पदसाम किया है।

उपरि उक्त ग्रन्थ छोड़ ‘पद्मास्तव’, ‘कानोस्तोत्र’,
 ‘काव्यनाटकालङ्कार’, ‘घटकपर्ण’, ‘वण्डिकादण्डस्तोत्र’,
 ‘दुर्घटकाव्य’, ‘नलोदय’, ‘नवरत्नमाना’, ‘नानार्थकोष’,
 ‘पुष्पवाणविनाश’, ‘प्रयोज्ञारमाना’, ‘राक्षसकाव्य’,
 ‘लघुस्तव’, ‘विह्वलिनोटकाव्य’, ‘हृत्तरत्नानलो’, ‘हृत्पावन’
 काव्य’, ‘शृङ्गारतिलक’, ‘शृङ्गारसार’, ‘श्यामलादण्डक’,
 ‘न्यतबोध’, प्रभृति बहु अन्य कालिदासके नाम-
 से ही प्रचलित हैं। किन्तु सन्देह नहीं कि उक्त
 पुस्तक विभिन्न व्यक्ति द्वारा विभिन्न समयमें बनाये
 गये हैं। सवराचर लोगोंके दृष्ट विष्वास है कि
 ‘नलोदय’ महाकवि कालिदास-विरचित है। किन्तु
 विशेष प्रमाण मिला है कि उस ग्रन्थके नारायणके
 पुत्र रविदेवने लिखा था। * उस ग्रन्थकी रामकृपिष्ठत
 प्राचीन टीकामें भी उक्त विषयका प्रमाण मिलता है। †

बलभद्र पुत्र कालिदास-प्रणीत ‘कुण्डप्रबन्ध’ औरराम-
 गोविन्दपुत्र कालिदास-विरचित ‘द्विपुरासुन्दरोत्सुति-
 टीका’ ‡ भी प्रचलित है। ज्योतिर्विदामरण, रत्नकोष,
 गृहचिन्टिका, गङ्गाटक, और मङ्गलाटक प्रभृति ग्रन्थ
 कालिदास नामधारी भिन्न भिन्न व्यक्तिनिष्ठित हैं।
 इनको छोड़ कालिदासगणकविरचित ‘श्रुतपुराणव
 शास्त्रसार’, ‘चमिनवकालिदास’ विरचित ‘चमिनव-
 भारतचम्पू’ तथा ‘भागवतचम्पू’, काव्यप्रचमिनव
 कालिदासकृत ‘शृङ्गारकोषभाष्य’, और नव कालिदास-
 विरचित ‘सारसंघञ्जकाव्य’ मिलता है।

* R. G. Bhandarkar's Reports, Sanskrit Mss., (for 1892-4) p. 16.

† Prof. Peterson's 3rd Report on the Search for Sanskrit. Mss. p. 337.

‡ एव एव १९११ ई० की योजना।

§ काव्यगणनेके १९१६ ‘उर्वेव महाहरने’ चरण परिचय में।
 कालिदासके नामसे दिया है

* “साङ्गनाचरि” से ई० मन्दाकिनीलिखित।
 भाषाट्टे कालिदासके काव्यसंग्रहम १९११
 कालिदासो विरौ सार कालिदास, सरलतोम्।
 चम्पू की रचना वाचस्पृष्टदिने सु साधकः १” इ
 (१२४ पं, कालिदाससंग्रहकोषकी टीका)

मुद्देका घोर छत्रगानके मरने पर पंदाके अधिपति हरदेवने उसे अधिकार किया।

पन्नाके राजवंशका बहुत दिन तक कालिञ्जर पर अधिकार रहा था। फिर कांयमजी नामक किसी राजवंशीय अनुचरने कालिञ्जरको अपने अधिकारमें कर लिया। महाराष्ट्रके प्राधान्य समय बांदेके नवाब पत्नी वहादुरने दो बखर काल कालिञ्जर पर अधिकार किया था। किन्तु उन्हें जयलाम न हुआ। उसके पीछे यह अंगरेजोंके अधिकारमें पहुँचा था। अङ्गरेजोंने कांयमजीके वंशके किसी व्यक्ति पर उक्त स्थानका कर्तृत्वभार डाल दिया। उनका नाम दरायु सिंघ था। उन्होंने अङ्गरेजोंकी अधीनता न मानी। १८१२ ई०की अङ्गरेजोंने उन्हें देवानेके सिधे सेना सच करनल माटिंघेनको भेजा था। उन्होंने नगर आक्रमण किया, किन्तु अधिकार न मिला। अन्ततः दरायुसिंघने आत्मसमर्पण कर दिया। अङ्गरेजोंने उन्हें स्थानान्तरणमें भूमि दे कालिञ्जरको अपने अधिकारमें रखा। सिपाही विद्रोहके समय अल्पसंख्यक अङ्गरेज सेनाने दुर्गकी रक्षाकी थी। १८८६ ई०की उक्त दुर्ग तोड़ डाला गया। कालिञ्जरका दुर्ग बहुत प्रसिद्ध था। पाल्हामें लोग गाथा करते हैं,—

“किसा बाधिंजरका नातलं हे, बँडरु मोगे म्वाकिवरं वजार।”

पहले कालिञ्जर चारो घोर प्राचीर-वेष्टित था। प्रवेशके लिये चार द्वार रहे। उनमें आजकल केवल तीन देख पड़ते हैं। उनके नाम कामता फाटक, पसाफाटक और रेवाफाटक हैं। पहले वहाँ एक सुदृढ़ दुर्ग था। आज भी उसका कुछ कुछ ध्वंसावशेष देख पड़ता है। उक्त दुर्ग बनानेके लिये पहाड़ खोद कर टेढ़ी राह निकाली गयी थी। दुर्गमें प्रवेशके लिये सात द्वार हैं। उनमें आठम दरवाजा प्रथम है। उसे भीरगंज के बादशाहने बनवाया था। द्वारके ऊपर सुहृद्द मुरादे द्वारा प्रदत्त १०८४ हिजरी (१६७३ ई०) की उत्कीर्ण शिलालिपि है। उससमय भीरगंज, बने दुर्गकी मरम्मत करायी थी। उक्त द्वारके काफिर-घाटकी राह द्वितीय द्वार गणेश फाटकमें जाता पड़ता है। उसके पारि चल्की-दरवाजा नामक तृतीय द्वार

है। वहाँ दो द्वार एकत्र लगे हैं। उसकी चारो घोर चार बुर्ज हैं। इसीसे उसको चौबुर्ज दरवाजा कहते हैं। वहाँ ११६८, १२०२, १५८० और १६०० संवत्की खोदित शिलालिपि मिलती है। उक्त द्वारके पार्श्वमें प्रस्तरखण्ड है। उस पर एक शिलालिपि उत्कीर्ण है। आज भी समझ नहीं पड़ता वह किन अक्षरोंमें लिखी है। सुतरां यह भी किसीको मालूम नहीं उसमें क्या लिखा है? रत्न नामक किसी व्यक्तिने वहाँ एक गृह बनाया था। उक्त प्रस्तर उसी गृहका अंगमात्र है। चतुर्थ द्वारका नाम बुधमद्र है। उसे खंगारोहण भी कहते हैं। वह बहुत ही दुरारोह है। वहाँ १५८८ विक्रम संवत्की (१५३१ ई०) एक शिलालिपि है। निकट ही भैरवकुण्ड है। एक ऊँची राहसे उस कुण्ड पर जाना पड़ता है। कुण्ड प्रायः ८० हाथ लंबा और २० हाथ चौड़ा है। पहाड़के पत्थर काट वृहत् कुण्ड बनाया गया है। उक्त स्थानसे प्रायः २० हाथ ऊँचे भैरवको-प्रकाश मूर्ति है। मूर्तिके अधोभागमें पहाड़ काटकर एक गुहा बनायी गयी है। गुहाका तलभाग कुण्डके साथ समतल पड़ता है; सुतरां कुण्डका जन प्रीणम व्यतीत सकल समय गुहाके अन्तर्गत पर्यन्त फैल जाता है। शीघ्रके समय गुहाका अन्तर्गत बहुत भीतल रहता है। गुहाके भीतर खोदितलिपि देख पड़ती है। उसमें वारिवर्मदेव, श्रीरामदेव, महिषा, यशोधर प्रभृति नाम उत्कीर्ण हैं। यशोधर नामके नीचे ११६२ संवत् लिखा है। गुहावाँ पर पर्वतमें अमणकी मूर्ति देख पड़ती है। भैरवकुण्डसे नीचे उत्तर कुछ दूर जाते ही हनुमान्-दरवाजा मिलता है। उसी स्थानपर हनुमान् कुण्ड है फिर पर्वतके गर्तमें हनुमान्की मूर्ति भी खोदित है। वहाँ अपने प्रस्तरमूर्ति देख पड़ती है। किन्तु अधिकांश कालके प्रभावसे बिगड़ गयी है। उक्त स्थानसे चल कुछ ऊपर चढ़ने पर काली, चण्डिका, शिव, पार्वती, गणेश, नन्दी और शिवलिंग की मूर्ति मिलती है।

• बाधरनामायाके मरने उक्त कुण्डका नाम नीचकुण्ड है—
“भायुर्धं भैरव” इत्यादिना चैव प्रदक्षिणम्।
नीचाङ्कण्येवात्ता उपर्येव न विदते।” (११८)

कालिदास नामके हिन्दीमें भी कई कवि हो गये हैं ।
उनकी श्रयिता दृढदण्डी और मनोरञ्जक है ।

कालिदासकी रचनाशैली ।

युवा कवि कालिदासकी अपनी उन्मोदवारी एव
रेमा देगमें करमा पड़ी थी, जो सुन्दर और पर्वत,
खाही, मैदान तथा छोटी नदियोंसे परिपूर्ण था ।
कालिदास ब्राह्मण थे । इसी कारण वह युव और राज-
नीतिमें अपनेको चलग रखते थे । हां, देगके साहित्य-
से सम्बन्ध रखनेवासे युवविषयमें वह सम्मिलित थे ।
उन्हें क्या लिखना था ? प्रीयस्या और प्रकृति दोनों
ही सुन्दर होती हैं । प्रकृति पदार्थोंका वर्णन करना
युवा कविके लिये सबसे अच्छी चीज है । कालिदासने
अपनी उन्मोदवारी ऋतुसंहार लिखनेमें बितायी ।
यास्तुवमें उन्हें ऋतुवर्णन लिखनेका प्रलोभन शिष्या-
फलकाने दिया था । कारण देगमें चारो ओर जो
शिक्षाफलक मिलते थे, उनसे प्रत्येकमें ऋतुवर्णन
वर्तमान था । उन्होंने अपने मनमें विचारा—यदि
वह सम्पूर्ण ऋतुवर्णनका वर्णन एक साथ लिख सकते,
तो देगका बड़ा उपकार करते । इसीसे कालिदासने
ऋतुसंहार लिखनेका काम अपने हाथमें ले लिया ।
भाषा परिमार्जित नहीं है । उसमें सुनक्ति, व्याकरण-
सिखन प्रणाली और भाषा सम्बन्धी लुटियां बहुत हैं ।
चंगरेकी कवि टामसने "सिजनूष" नामक ऋतुवर्णन-
का एक ग्रन्थ लिखा है । उस ग्रन्थ ऐतिहासिक घटना-
वर्षे परिपूर्ण है । फिर स्थान स्थान पर टामसने
विभिन्न ऋतुवर्णन प्राचीन समयके दृश्य दिखानेकी
चेष्टा की है । किन्तु कालिदासने अपने ग्रन्थ ऋतुसं-
हारमें कहीं इतिहासकी ओर ध्यान नहीं दिया है ।
उन्होंने शीघ्र ऋतुसे पारश्व किया है । कारण उत्तर-
भारतमें ज्योतिषी वर्षाऋतुसे ही पारश्व करते हैं ।
यद्यपि उनकी प्रतिभा कवित्वपूर्ण और कुशाप थी,
तथापि पूर्णरीतिसे परिमार्जित न थी, स्त्रीत्व या प्रकृति
का सौन्दर्य उन्होंने मनो भांति नहीं बताया । परन्तु
उनका दृष्टय बहुत चुनचुला था । कहीं दूरसे कुछ नहीं
देखते, वहाँ उन्हें उपमा देख पड़ती है । गहरी हटिका
पहला झड़ कीड़ा, घास और धूस सबको वहा

ले जाता है । कालिदासने उस चालको कविकी दृष्टिसे
देखा है । नाने घूम घूम कर वहते हैं । कालिदासने
उनकी सांप-जैसा चाल बड़े ध्यानसे देखी है, जो
मिटकीको डरा देता है । एक बात पकी है । कालि-
दासकी आदि कविताका पनोखापन यह है कि
उन्होंने स्त्रीसे अधिक प्रकृतिकी प्रशंसा की है ।

फिर उन्होंने अपने देगके पुष्प पड़े, गिष्ठा समाप्त
की और अपना ध्यान रत्नमण्डप पर लगा दिया । उनका
दूसरा ग्रन्थ देगहितैपितापूर्ण एक नाटक है । विदिगा
मालवका एक भाग है । कालिदासके प्रथम ऐतिहा-
सिक ग्रन्थमें विदिगाका इतिहास परिपूर्ण है । मालवसे
आगे वह भ्रमणको न गये थे । उन्होंने पत्निमित्रका
इतिहास लिखा और नायिकाका नाम मालविका
रखा है । उल्लेखका प्रद्योतसंग पतित हो गया था ।
मालवदेग मगधमें मिला लिया गया था । उसी
समय पत्निमित्र ब्राह्मणके प्राचीन विदिगा राज्य
स्थापनका वर्णन कर उन्होंने मालवके लोगोंको प्रसन्न
करनेकी चेष्टा की है । यास्तुवमें पगोकके बौद्धान्यका
पतन और ब्राह्मणशास्त्रान्यका अभ्युदय युवा कवि
कालिदासके लिये एक अच्छा विषय बन गया । इन
ग्रन्थमें भी कालिदासने प्रकृतिके सौन्दर्यको अधिक पप-
नाया है । उन्होंने प्रायः इसप्रकारके वाक्य लिखे हैं ।
'फूलदार पेड़ोंकी हानियोंका हिसना कुलना देख
नाचनेवाली लड़कियां मन्नामें जा जाती हैं ।' पत्नर
उनके स्त्रमणकी परिचीमा बढ़ती और "मित्रदूत" में
वह मालवसे आगे जिगसते हैं । मालवकी पूर्व सीमा
वह उनको चारो ओर घूमते, कई पायसक स्थान देख
माल पूर्वमें यह फिर उसमें पहुँचते और उत्तरमें
उससे बहुत आगे निकल चलते हैं । किन्तु उनकी
प्रीति अभी मानसिक है, वह अभी प्रकृतिकी बहुत
प्रशंसा करते हैं । किन्तु उनकी भाषा बहुत परिमार्जित
हो गयी है । और उनकी लेखनशैली बहुत अधिक
चित्तको आकर्षण कर लेती है ।

उनकी कविताका भाव बदल जाता है । वस्तुओं
और सातुयिक सासवाओंका वह अधिक विचार
करते और मनुष्यके दुःखोंपर ध्यान नहीं देते । वह

अपने नायकोंके लिये वेद दंडते और किसी दिव्य वा अर्धदिव्य पुरुषको अपने अथवा नायक चुनते हैं। उनका दूसरा नाटक विक्रमोर्वशी है। उसके दृश्य पृथिवीसे बदलकर आकाश पर पड़ चुके हैं। किन्तु उनका प्यार अभी उखाड़ है और प्रकृतिको प्रयत्न करना उनमें अभी कम नहीं पड़ा है।

उनकी कविता पर दूसरा परिवर्तन पड़ता है। वेदोंसे वह प्रसन्न नहीं होते। वह अधिक शुष्क और अधिक छपाविहीन थे। इसलिये वह वेदोंको छोड़ देना चाहते हैं। वह अपनी उपासनामें प्रकाश खोजते और वैवमन शवलम्बन करते हैं। अब वह चाहते हैं कि अपने देवको उचित प्रशंसा करें। उन्होंने पृथिवी और वायुके प्रत्येक द्रव्यको भली भाँति समझ बूझ लिया है। अब उन्हें आकाशकी ओर ध्यान देना है। मेघदूतमें लड़ा उन्होंने अपनी कविता समाप्त की थी, वहींसे वह प्रारम्भ करते हैं। दृश्य इन्द्रपुरीसे ब्रह्मलोक और ब्रह्मलोकमें शिवलोकको पड़ जाता है। उन्होंने कामदेवके भय होनेकी बात लिख सौन्दर्यका पच्छा वर्णन किया है। उसके पीछे उनकी प्रीति पारलौकिक हो गयी है।

पार्वती शिवसे मिलना चाहती है, शरीरसे नहीं—आवासे। देवके इतिहासमें ऐसी प्रीतिका भाव अज्ञात था। इसी अलौकिक प्रीतिके सहारे कालिदासने अपने इष्टदेवका गुणगान किया है।

पहले उन्होंने ऐहिक और पीछे पारलौकिक विषय लिखे हैं। पहली बात तो साधारण थी। उसका नैतिक सद्देश्य सन्देहपूर्ण था। फिर उनकी दूसरी बात लोगोंकी समझमें आती न थी। इसलिये उन्होंने अपनी हठावस्थामें मानुषिक और देगी भावोंके सिद्धान्तकी चेष्टा कर दी अन्य लिखे, अजिनकी प्रशंसा समग्र जगत् मुक्त करणसे करता है। उनका शकुन्तला नाटक ऐहिक और पारलौकिक भावोंका मिश्रण है। शकुन्तला पृथिवी और स्वर्ग दोनोंसे सम्बन्ध रखती है। कुमारसम्भव और शकुन्तलामें उनका स्त्री-सौन्दर्य विचार बहुत बदल गया है। कुमारसम्भवंमें कामदेव महादेवका ध्यान दिगान न करे और पार्वतीके पीछे जाकर लिप रहे। इससे यही भाव निकलता है कि

भौतिक सौन्दर्य दिव्य भावोंके सामने तुच्छ है। शकुन्तलामें भी वह स्वर्गके उच्च स्थानमें पड़ चुके हैं, जहाँ पृथिवीकी कामिनी जा नहीं सकती।

परन्तु उनका अन्तिम और त्रिगण प्रथम रघुबंध है। उसमें उन्होंने ईश्वरके प्रवृत्तियोंका वर्णन किया है। इसमें कालिदासने वाल्मीकिसे सामना किया है। किन्तु कालिदास उनसे बहुत आगे निकल गये हैं। वाल्मीकिने केवल रामका ही वर्णन किया है। परन्तु कालिदासने उनके पूर्वपुरुषोंका भी वर्णन कर कई दिव्य गुणोंका परिचय दिया है। दशरथमें अधीनता, रघुमें शक्ति, ब्रजमें प्रेम, दशरथमें राजोचित गुण और राममें उच्च समग्र दिव्य गुणोंका पूरा आभास पाया जाता है। इसी क्रमसे कालिदासके समय प्रथम लिखे गये हैं। उनके देखनेसे मालूम होता है कि, कालिदासने अपने विचार धारि धारे बढ़ाये हैं। प्रकृत पदार्थोंके वर्णनमें आरम्भ कर उन्होंने प्रवृत्तियोंका स्वरूप और ईश्वर तथा मनुष्यका सम्बन्ध दिखा दिया है।

अब यह विषय विचारणीय है—क्या एक सानो पुस्तक एकही प्रयत्नकारके लिखे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि—रघुबंध और कुमारसम्भव एक ही कविके बनाये हैं। कारण उक्त दोनों पुस्तकोंकी रचना मिलती जुलती है। फिर शकुन्तला भी उक्त दोनों पुस्तकोंके रचयिताकी ही लिखी है। कारण एकका सूत्र भाव दूसरेमें बढ़ा दिया गया है। विक्रमोर्वशीके भी अर्थ अथायका भाव मेघदूत और कुमारसम्भवंमें विद्यमान है। ऋतुबंधार और मालविकाग्निमित्रके सम्बन्धमें समानोचकोंका मत नहीं मिलता। परन्तु ध्यानपूर्वक विक्रमोर्वशी, शकुन्तला और मालविकाग्निमित्र पढ़नेसे तौनों प्रथमोंके भाव मिलते और तौनों अर्थ एक ही प्रयत्नकारके लिखे मालूम पड़ते हैं। लोगोंका यह कहना कि मालविकाग्निमित्र किसी दूसरे कविका लिखा है, विनकुन भूठ है। कारण कालिदासके भावोंका ऐसा अनुकरण दूसरा उच्च समय कर न सकता था।

जिन्हें लोग कालिदासका अनुकरण समझते, वह

१ शान्तशु शालाको स्त्री । ४ भीमसेनकी एक पत्नी ।
 ५ अग्निशिखा विशेष, प्रागकी एक स्त्री । ६ रात्रि,
 रात । ७ त्रिहत्, निजात । ८ - निन्द्या, यदनामी ।
 ९ गुलन मेघसमूह, घटा । १० मसी, ख्याती । ११ कल्प-
 वर्ष स्त्री, काली शौरत । १२ कल्प्यवर्ष, कालारंग । १३
 शौरकीट, मट्टे + कोड़ा । १४ मौली, नील । १५ पाटल ।
 १६ मन्दिता, मंजीठ । १७ कल्पयव, काला वेंत । १८
 कल्प कापांस, काली कपास । १९ कल्पजीरक, काला-
 जीरा । २० पृष्ठीका । २१ कल्प त्रिहत्, काला
 निजात । २२ हथिकाली, त्रिजुवा । २३ कष्टकगनी ।
 काली (सं० स्त्री०) कामस्य शिवस्य पत्नेऽप्यु-
 कालिका देवीके सप्ताष्टके पाविर्भूता एक देवी । चण्ड
 बधके समय असुरोंसे लड़ने लड़ते क्रोध भरमें भगवती-
 मुख कल्पवर्ष हीं गया था । फिर उनके सप्ताष्ट देगसे
 करालवदना पसिपाम प्रकृति पक्षपाणि कालिका
 देवीका पाविर्भाव हुआ । (भास्करेय, ८०।५)

कालिकापुराणमें उनका रूपादि इस प्रकार वर्णित
 है,—“नीलोत्पलकी भांति श्यामवर्ण है । चार हस्त
 हैं । दक्षिण हस्तद्वयमें खट्वाङ्ग एवं चन्द्रहास शौर
 वाम हस्तद्वयमें चर्म तथा पाग है । गलेमें सुच्छमाला
 पड़ी है । परिधानमें व्याघ्रचर्म विराजित है । पङ्क
 लय है । टन्त दीर्घ है । सोलजिह्वा पति भयङ्कर
 देख पड़ती है । चक्षु शराल है । काली भीम नाद
 कर रटा है । वाहन कबन्ध है । मुख विस्तृत शौर
 कर्ण स्थूल है । उरु देवो तारा शौर चामुण्डा नामसे
 भी अभिहित होती है । उनके प्राठ योगिनियोंके
 नाम हैं,—त्रिपुरा, भीषणा, चण्डी, कर्त्री, हंवी,
 विधायका, कराला, शौर शूलिनी । उरु योगिनी भी
 देवीके साथ पूजित शौर अनुष्वात होती है । यावतीय
 देवीगणमें सर्वोच्च पुत्रा करनेसे सर्व कामना सिद्धि
 मिलती है ।” (भास्करेय १०० च०) यानी दम महा-
 विद्यापोंके मध्य प्रथम महाविद्या है । यथा -

“काली तारा महाविद्या शैव्यो भुवनेश्वरी ।
 शैव्यो विदमला च विद्या चमाली तदा ॥
 वदना विदविद्या च मन्त्रो वमन्त्रविद्या ॥
 यदा दमनाविद्या विदविद्या वयोर्दत्ता ॥” (दमकर)

काली, तारा, घोड़गो, भुवनेश्वरी, भैरवा, द्विजमन्त्रा,
 घमावती, बगला, मातङ्गी शौर कमला दम मूर्ति का
 नाम महाविद्या है । उन्हें सिद्धविद्या भी कहते हैं ।
 सतीने दक्षयज्ञमें जाते समय बार बार शिवसे अनुमति
 मांगी थी । किन्तु महादेवने उन्हें किसी प्रकार अनुमति
 न दी । उसीमे सतीने उरु दममूर्ति बना शौर शिवको
 उरा अनुमति पक्ष की । दमकारिणा शैव्यो ।

काली मूर्ति का ध्यान रसे प्रकार है,—

“करालवदना शोभा सुहृदो वदसुं काम् ।
 चानिनी दक्षिणा दिक्षा सुप्रमत्ताविभूयिताम् ॥
 सन्द्विप्रजिःपङ्कगनाशोर्ध्वं करान्मुञ्चाम् ।
 चर्मयं वरदक्षेत्रं दक्षिणोर्ध्वपक्षविद्याम् ॥
 महाभयघनां श्यामां तदा चैव त्रिजुगोम् ।
 कल्पवर्षस्य सुष्वातीमनुभिरुचरिताम् ॥
 कर्णावर्तवती शोतमधुममगनाम् ।
 शौरदंष्ट्रां करालालां पीनःसतशोषराम् ॥
 मरानीं करचपातैः कलकाशो वदसुं काम् ।
 सङ्करवदनं प्रागविष्णु रितामनाम् ॥
 शौराशां महाशोरीं श्यामानावबहिनीम् ।
 वापाशं मन्त्रालाकारोचनविमदोन्मिताम् ॥
 दनुर्गां दक्षिणप्रागिषुमान्त्रिःशोःश्यामां ।
 मन्त्रवदमहादीर्घदंष्ट्रोर्ध्वं विदुःशिताम् ॥
 शिवानिर्घोरेणाशानिचतुर्दिक्षु मन्त्रविताम् ।
 महाकाशिन च चर्म विवरोत्तरतामनाम् ॥
 सुहृदममवदनां चैव शान्तशोरीं वदाम् ॥
 एवं दक्षिणदिक्षु कालीं सर्वकामार्थसिद्धिदाम् ॥” (तनसार)

काली करालवदना, भयङ्करी, सुहृदकी, चतुर्भुज-
 विग्रहा शौर सुच्छमालामुपिता है । उनके चक्षुवाम
 हस्तमें सद्यः कर्तित सुच्छ एवं ऊर्ध्व वाम हस्तमें खड्ग
 शौर ऊर्ध्व दक्षिण हस्तमें चर्मय विदु तथा चक्षु
 दक्षिण हस्तमें वरदान मञ्जिमा है । वह महाभयकी
 भांति श्यामवर्णा उमङ्गिनी है । उनके कण्ठदेशमें
 सुच्छमाला है । उससे रहधारा विगमित हो रही है ।
 कर्णद्वयमें कर्णभूयवके स्थल पर दो शव लम्बित है ।
 वह भीमदमना, करालमुखी, पीनोत्तमानी, शवग-
 हस्तममूर्धनिर्मित शिवलाधारिणी शौर हास्यमुखी
 है । उभय पाङ्गुहस्तमें रजधारा गमित होती है ।
 उसीमें उन्हें स्फुरितमुखी भी कहते हैं । काली भयङ्कर

दे प्रिये । तुम्हारे वस्तु की कान्तिसे मनुष्य कान्तिगुण
 पन्न जलजम्बू हुआ है । तुम्हारे मुखके सुल्लु चन्द्र मेष
 द्वारा आवरित हुआ है एवं तुम्हारे गमनसे पशुकार्मी
 गतिविगिष्ट राजर्षभ भी देगव्यागी दृष्टे है । सुमर्ग
 वस्तु विनिर्घमने तुम्हारा साहस्य देव कर जो हम
 मनुष्ट रोगि, विधाता उभे भी मनु नहीं सुहते ।
 हम मूलवर मेष दास्यके प्रतिपूर्व तोनों वाष्य
 रेतु दृष्टे है । इसीसे वह काव्यलिङ्ग पलहार है ।

पदाद्यंगत काव्यलिङ्ग हम प्रकार होता है,—

“नरादिनादिनिर्गुण शीघ्रतपदिनाम् ।
 न चने विरला गदा मुक्तिकाभिरा हरः ॥”

कोई किसी राजाकी मध्य कर कहता है, हे राजन् !
 तुम्हारे घोटकमनुष्टकत्क उल्लिख घृणिरामि द्वारा
 गद्गा पद्विन हो गयी है । इसीसे महादेव उन्हे पधिक
 भार वदन्के भयसे मनुष्टकर धारण नहीं करते ।

यहां परार्थश्रीकके प्रति पूर्वाधं श्रीकका पद कारण
 है । इसीसे वह भी काव्यलिङ्ग पलहार होता है ।

काव्यशास्त्र (सं० श्लो०) काव्यं शास्त्रमित्य उच्यते इत्यतः
 काव्यरूप प्राण, काव्यसे बहुविध हितोपदेश मिलता
 है । इसीसे काव्यकी भी शास्त्र कहा करते हैं,—

“काव्यशास्त्रमिदं कानो मन्वति शौमनाम् ॥” (वट)

काव्यमुखा (सं० श्लो०) काव्यं मुखा चमृतमित्य, उच्य-
 मि० । काव्यरूप चमृत । काव्य श्रवणसुखकर होता
 है । इसीसे उसकी तुलना चमृतसे करते हैं ।

काव्यहास्य (सं० श्लो०) काव्येन काव्यश्रवणेन दग्-
 जेन वा हास्यं घट, बहुश्री० । महाम, नकल । पधि-
 काग मूलवर हास्यरसजा रचन रचनेसे उभे सुम या
 लमका पमितय देव अतिरिक्त हास्य करना पडता
 है । रचन देवो ।

काव्या (सं० श्लो०) कव्य स्तुतिगाने वाकुलकान्त् स्तु-
 टाप् । १ बुद्धि, चक्र । २ पूतना । वह मायाविनी विविध
 स्तुतिवाष्य एवं भोगविश्रांभ द्वारा नागिणीकी मन्त्र
 कर लभसे गिरुवदपपूर्वक मार छानती थी । पत्नीकी
 छप्पने उसका विनाश साधन किया । द्वाग श्वकी
 काव्यावन (सं० पु०) काव्यस्य दृक्कावायस्य गीतापत्यम्
 काव्य-पक्षः दृक्कावायस्य पुत्र प्रथमि रंमवर ।

काव्यार्थावपत्ति (सं० श्लो०) पर्यावपत्ति नामक पलहार ।
 काग (सं० पु०-श्लो०) कागते दीव्ये, काग-पनाद्यच् ।
 १ लवविशेष, कास । (Saccharum spontaneum)
 उसका मूलत पर्याव-रसुगन्ध, वोटगन्ध, काग, कागी,
 कागा, वायमेक्षु, काच्छेष्ट, पमरपुष्पक, कासक, वनरा-
 मक इत्यादि, कान्तेष्ट, इतुर, इतुरकाष्ट, गारद, मिशु-
 प्यक, मादेय, दुर्मपत्र, सेषम, काण्डकाण्डक, पौर कन्ध-
 लकारक है । भावप्रकाशके मन्मं काग मधुर एवं तिष्ठ-
 रम, पाकमें मधुर, गीतल पौर भेदकारक है । उससे मूत-
 लाच्छु, पत्रशरी, दाह, रक्तदोष, श्व पौर पित्तसे उपक्ष
 रोग मट हो जाता है । राजनिघण्टु, पौर मन्त्रशावनी
 ने उभे रुचि, छति, वल एवं शक्तकारक पौर श्रान्ति
 तथा कफनाशक एवं कण्ठकण्ठकारी लिखा है ।

विन्दुस्थानमें काव्यकी कांस, जगर, कोम, कुग
 या कास, वद्वानमें प्यागरा, युक्तपदेशमें कासी, पवधमें
 रर, कुमायमें भांस, पनावमें सरकर, राजपूतानामें
 कागी, सिन्धुमें प्थान, मध्यपदेशमें पदर, मारवाडमें
 जगर, तेलगुमें रेलुगद्दि, पौर मद्रामें सेतकियाजिन
 कहते हैं । वह मोठी पौर बाहरी महीमें रचनेसे भी
 घाम है । कागकी जड़ें दूरतक रंगते खनी जाती हैं ।
 भारतमें वह बहुत मिलता है । फिर हिमाचलमें वाय
 १००० फीट ऊपर तक पाया जाता है । भूमिकी प्रकृति-
 के अनुसार उसकी उद्यतामें भी भेद पडता है । भौगी
 भीची जमीन् पागका घर है । वहां उसकी फूलने
 दृष्टी डालियां १२ फीट तक बढती हैं । यर्वा जतु
 समान होने से काग फूलता है । बिन्दीके महाकवि
 तुलसीदासजीने लिखा है,—

“युष्मि काव्य मन्त्र मति कासी । मनु रानी मनु बहद पुग्यो ॥”

कागकी लड बहुत सुहद लगती है । उभे येनीमें
 निशानना कुछ मरन नहीं । कहने हैं कुछ दिनेमें
 वह पाप हो पाप मट हो जाता है ।

काग पधिकतर दानी हास्यके काम जाता है ।
 उससे रन्धियां पौर गटादवां भी तैयार होती हैं ।

कागकी भैष बटे कावसे जाती है । गया काग
 हायिणीकी भी विनाश जाता है । अंग लिसेमें वह
 बहुत होता है । रीरतक क्रियेमें पौर्षीकी काग

शङ्कारिणी, भयङ्करमूर्ति, श्मशानवासिनी, चण्ड-
तुष्यभीचनत्रयविगिष्टा, करालदन्ता, दक्षिणाङ्गव्यापि-
सुक्तकेषापाशुला, शंखरूपमहादेव-हृदयस्थिता, भय-
ङ्करशब्दकारिशिवागणपरिवेष्टिता, महाकालके साथ
विपरीत सङ्गममें आसक्ता और सुखप्रसन्नवदना है ।
इसीप्रकार सर्वकामार्थसिद्धिदायिनी कालीकी चिन्ता
करना चाहिये ।

महाकाली, दक्षिणाकाली, भद्रकाली, श्मशान-
काली, गुह्यकाली और रक्षाकाली प्रभृति नामानुसार
कालीमूर्तिके विविध भेद हैं । देवी मूलप्रकृति हैं ।
स्वयंबुद्धि और दुर्बल मानवीके उपासना कार्यमें
सुविधा करनेके लिये तन्नादि शास्त्रमें उक्त प्रकृतिके
काली, तारा प्रभृति नाम और रूप कल्पित हुये हैं ।
महानाविष्णुतन्त्रमें भी ऐसा ही लिखा है,—

“उपसक्तानां कार्याय पुत्रैः कविर्न विद्ये ।

गुणद्विषानुशारेण रूपं देव्याः प्रकल्पितम् ॥”

(महानारायण, ११ उपाखण्ड)

उपासकोंके कार्यके लिये ही गुणद्विषानुसार
देवीका रूप कल्पित होता है ।

पाप शक्तिकी प्रधान मूर्ति काली है । शास्त्रोंमें
प्रायः दग धान लोण उक्त मूर्तिके उपासक हैं । भग-
वतीकी जितनी मूर्ति हैं, उनमें दूर्गा और काली
मूर्तिकी बहुत प्रचार है । सहज ही निर्णय करना
दुःसाध्य है—कितने समयसे उक्त मूर्तिकी कल्पना भी
गयी है । चर्नक पायात्य पण्डितों और तन्त्रज्ञावसन्वी
प्राय विद्वानोंके कथनानुसार कालीकी मूर्ति हिन्दुओं
की मौलिक न थी, वह भारतके प्रादिम अधिवासी
भारतियोंकी दिव्यदेवीसे अंगूठीत हुयी । नहीं समझ
पड़ता वेसी कल्पनामें कोई फल है या नहीं । कारण
पनकानिक प्राचीन पुराणोंमें भगवतीकी उक्त मूर्तिकी
वर्णन मिलता है । फिर भी इतना मानना पड़ेगा
कि तान्त्रिक युगमें ही उक्त मूर्तिकी उपासनाका
नागविधि विधि नियम बना और बना है । तंत्र
की बात छोड़ पागे यह देखना चाहिये—पुराणादि-
में भगवतीकी कालीमूर्तिकी उत्पत्ति, पूजा, ध्यान
इत्यादिके सम्बन्धमें क्या विधायन मिलता है ।

पुराणोंमें मार्कण्डेय-पुराण उपनिषद्नाम प्राचीन
गिना जाता है । जिस देवीमाहात्म्यके पठने या सुनने-
से इन्द्रके ऐश्वर्य तुल्य ऐश्वर्य भाग किया जाता, वह
चण्डी नामक चण्डू पुस्तक भी मार्कण्डेयपुराणके
ही अन्तर्गत पाता है । कालिका मूर्तिकी उत्पत्ति-
कथा चण्डीमें दो स्थान पर कही है । प्रथम,—
मक्षिपासुरके वध पीछे देवता, शुभ्र—निशुभ्रके पत्या-
चारमे उत्प्लोडित हो देवीका स्वरूप करतें थी । उसी
समय भगवतीने जाङ्गलीजलमें स्नानार्थ जानके कलमे
उनके निकट उपस्थित हो पूजा था—‘तुम यहां क्यों
पाये हो, देवताओंके उक्त प्रशंसा उत्तर देनेसे पहले
ही भगवतीके शरीरमें गिवा पश्चिक्काने निकल कर कहा
‘देवपतिवर्द्धक निराकृत और तदीय भ्राता
निशुभ्रकर्द्धक पराजित हो देवता हमारा स्वरूप करतें
हैं । पश्चिक्का भगवतीके शरीरकोषमें निकली थीं ।
इसीसे वह कौपिकी नामसे विख्यात हुयीं और हिमा-
चलपर रहने लगी । कौपिकीको उत्पत्तिके पीछे
भगवतीने भी श्रीय गौरवर्ष कोइ लक्ष्यवर्ष धारण
किया था । इसीसे वह भी ‘कालिका’ • कहर्यो और
हिमाचलपर ही रहने लगी । उक्त स्थल पर
चण्डीमें नहीं लिखा उन कालिकाका क्या रूप था ?
फिर द्वितीय स्थल पर चण्डीमें काली मूर्तिकी कथा
इस प्रकार लिखी है,—कौपिकीके दुःखारसे शुभ्रके
सेनापति धूम्रलोचन भयोभूत हुये । फिर शुभ्रने
चण्डमुण्ड नामक दो प्रचण्ड सेनापति बहु सेन्य दे
कौपिकीको पकड़नेके लिये भेजे । चण्डमुण्ड ऐश्वर्य-
परिहृत ही महादर्पसे देवीके निकट हिमाचल पर
उपस्थित हुये । देवीने उनका दर्प टोख रीत्य हास्य
मात्र किया था । चण्डमुण्ड पक्षुवते हो उन्के पकड़ने
की चागे बढे । पाम जान पर देवीने महाक्रोधसे
उनकी ओर देखा था । क्रोधसे उनका सुखमुण्डल
कामा पड़ गया । फिर उनको भ्रुकुटिकुटिल • क्षणाट-
से चति गीत एक देवी निकली थीं । फिर वह पसुरां

• मार्कण्डेय पुराण—उपनिषद्-उपाखण्ड, २४-२५ श्लोक ।

खिनाते है । यहाँ उंट और बकरे भी उससे सन्तुष्ट रहते है । किन्तु हिन्दुस्थानका काग इतना कडा होता है कि उसे पशु कभी नहीं खाता । काग भति पवित्र द्रव्य है ।

(पु०) केन जलेन कफात्मकेन इत्याशयः अश्रुते व्याप्यते इत, क-प्रग्न भविकरणं घञ् । २ जत, जखम, घाय । काशयति शब्दं करोति, कश-णिच् पचाद्यच् । ३ रोगविशेष, खाँसीकी बीमारी ।

“यु सोपपाताद्रसतसथैव व्यायामोऽपाननिर्घे वयाच ।
विमर्गिधातायदि भोजनस्य विभाषरोधान् चबरोक्षयेव ॥” (सुश्रुत)

मुख नासिकादि द्वारा पतिरिक्त धूम वा धूमि प्रभृतिके प्रवेग, अपरिपक्व रसके ऊर्ध्व गमन, व्यायाम, रुच द्रव्यभोजन, दुत भोजनादि दोषमें मुखद्रव्यके विषय पर गमन, मसमूवादिके वेगधारण और छिकाके वेगरोधादि सकल कारणसे वायु कुपित हो पचान्य समुदाय दोष कुपित कर देता है । उसीसे काग विशेषकी उत्पत्ति होती है ।

“पूर्वघ्नं भवेत्तं वा गृह्णतेन्यायता ।
कच्छे कष्टुय भीमानमनरोधय भायते ॥” (चरक वि०)

काग रोग उत्पन्न होनेसे पहले बोध होता मानो गल और मुखके मध्य कोई शूक (चनाजका रोग) परिपूर्ण है । सुतरां गलेमें सरसर होने लगता है । फिर भोजन करते समय ऐसी यातना मालूम पड़ती मानो मुक्तद्रव्य घटका हुआ है ।

“अपः प्रतिवृत्ती शोषदुष्मं धोतःसमाचितः ।
उदानभाषमापयः कच्छे घनकलोरेव ॥
आधिक निरसः खानि सर्वाणि प्रतिपूर्वम् ।
आनमसमादिपन् द्वेकं इत्यन्ये तथापिचौ ॥
शेनश्छसुरापाये निधुं न्य कश्चनरंसाः ॥

गुही वा सबकी बापि भायमान् कास उच्यते ॥
प्रतिपातरिसे वै च तस्य भावोः च रंइवः ।
देहभाष्यदेवेथं काशानामुपजायते ॥” (चरक)

निदान समूहद्वारा वायु प्रधीदिक पान सकनेमें ऊर्ध्व दिक् गमन करता है । सुतरां उदानना पाकर वह कण्ठ और वक्षःस्थलमें घासक्त हो जाता है । फिर वायु ऊर्ध्व देख्य मुख, नासिका, कर्ण और चक्षु रूप दिद्र मसूहमें घुस सकन किद्र पूर्ण

करता है । इसीमें वायु मुख द्वारसे विविध शब्दके साथ निर्गत होता है । उस समय रोगीका देह, इत्युद्य, मन्वाहय, वृष्टदेग, वक्षःस्थल, पार्श्व-हय एवं नेत्रहय सङ्घटित और हस्त पदादि बाधिम हो जाता है । काशरोगमें कभी केवल वायुमात्र और कभी कफादि दोष भी उसके साथ निकलता है । वेगधान् वायु विविध भावमें प्रतिघत होनेसे नानाविध शब्द और वेदना हुआ करती है ।

काशरोग कई प्रकारका है—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सविपातज, चतज और चयज ।

- “कश्चनोत्तमवायाप्यभिताममनं” निघः ।
- वेगधारणमायावो वातकाशप्रवर्तकः ॥
- इत्युत्पत्तिरितिः सुनस्यभेदकरो धमम् ।
- गुञ्जोरःकच्छरकस्य उटनीयः प्रताप्यतः ॥
- निर्घोषितैश्चामास्यदोःश्लेष्मोभसोऽहम् ।
- गुचः काशः कर्क गुचं कच्छामुक्तायतां प्रयेम् ॥
- दि धान्त्वलययोनीय सुकरीतेः प्रजापति ।
- कर्णं वातस्य लोषोऽत्रे वेगवान् मायतो मन्ते ॥ (चरक)

रुच, शीतल एवं कषाय द्रव्य भोजन, पत्यपरिमाण्य भोजन, उपवास, पतिरिक्त खीसहवास, मनसूवादिके वेगधारण और परिश्रमजनक कार्यसमूह द्वारा वायु कुपित होता है । उससे पचान्य दोष भी कुपित हो वातज काग उत्पादन करते है । उस काममें हृदय, पार्श्व देग, वक्षःस्थल और मस्तकमें घेदना होती है । खरभेद पड़ता है । बार बार वक्षः, कण्ठ और मुख सूख जाता है । रोमहर्ष होता है । मूर्छा पती है । कासका पत्यन्त शब्द उठता है । शरीरकी ग्लानि लगती है । मुख शुष्क रहता है । दुर्बलता पती है । शोभ बढ़ता है । मोह पड़ता है । फिर शुष्क कास प्रभृतिका लक्षण भक्तकता है । खांसते खांसते पति पत्य परिमाणमें शुष्क कक निकलनेसे कुक्ष उपगम समझ पड़ता है । किन्तु क्षिग्ध द्रव्य, जल, लवण और लघ्व द्रव्य खानिमें उपगका प्रकृत उपगम होता है । पाहार जीर्ण होनेसे वातज काशका वेग बहुत बढ़ जाता है ।

“कटुकीचरिद्वाराप्रायवाशाःपानिनिर्घेवम् ।
पित्तकाशकरं शोषः मलापवादिपुंजः ॥

पर दृष्ट प्रहार करने लगीं । वही देवी काली० ६ ।

- उनका रूप चण्डीमें इस प्रकार बताया है,—
- ‘काली कालवदना विविधकलात्मिकादिनी ।
- विचित्रवस्त्राधरा लालाश्याम्बुधरा ।
- शेविचर्मवरोधना दम्बनाद्यादिनेत्रया ।
- चन्द्रिचर्करवदना सिद्धाचलमभीषया ।
- निम्बदा रक्तवचना काराशूरीतिरिक्तया ॥

काली—करावदना (अग्निमण्डपद्रुता), पश्चि-
मागधारिणी विविधवस्त्राधरारा, नरमुण्डमात्मा-
शोभिता, व्याघ्रचर्मपरिधाना, शृङ्गमांसा, पति-
भयानक मूर्ति, पतिविन्दु, तमुग्रमण्डना, लोल-
रचना, भीषणा, गाद्वरकनयना और बुडार गण्डे
दिष्ट मण्डल-परिपूर्णकारिणी हैं । कालीने युद्धमें चण्ड-
मुण्डशो मार कौपिकीकी उनके दोनों मुण्ड उपहार
दे कहा था—‘इमने चण्डमुण्ड नामक दो महापथ
मारि हैं, अब युद्ध यज्ञमें शुभ-निग्रमको तुम संहार
करो ।’ कौपिकीने हँस कर कहा, ‘चण्डमुण्डको तुमने
माग है । इसीसे तुम्हारा नाम चामुण्डा विख्यात
होगा ।’

प्रायः जो काली वा श्यामा मूर्ति देख पड़ती उस-
के साथ उक्त मूर्ति की सम्पूर्ण एकता नहीं लगती ।
फिर भी कुछ सादृश्य देख पड़ता है ।

रक्तबीजके बधसमय उन्हीं कालीने जिज्ञा निकाल
घोर तदुपरि रक्तबीजका शरीर विनिर्गत समस्त रक्त
छाल, पान किया था । कौपिकीके पक्षपातकारने
रक्तबीज विनष्ट हुआ ।

चण्डीमें काशीपूजाका कोई विधान नहीं मिलता
शुभनिग्रमके बध पीछे देवीने देवताओंसे जो पूजा-
पद्धति कही वह शारदीय महापूजा भी क्या थी ।

देवीभागवतके ५म स्कन्धमें २३ अध्याय पर कौपिकी
की उत्पत्तिके पीछे धार्मिकीका शरीर हण्डयण पड़ने
पर कालिका नामके प्रसिद्ध ऋषिकी कथा लिखी है ।
रिजु उनका नाम कामरवि बताया गया है ।
चण्डीकथित उक्त कालिकाका कोई कार्य नहीं मिलता,
विन्दु देवी-भागवतमें लिखा कि चण्डबीजमर्दि उसका

घोर संघाम हुआ था । फिर युद्धके पीछे उन्हींके इन्दार-
में बह विनष्ट हो गया । यह बराबर कौपिकीके
पार्श्वमें उपस्थित रह्यो । देवीभागवतमें भी चण्डमुण्ड-
पक्षके समय कौपिकीके कथानके व्याघ्रचर्मधारि,
क्रूरा, गल्लचर्मोत्तरीया, मुण्डमात्माधरा, घोरा, यष्ट-
वापीसमोदरा, खड्गवागधरा, पतिभीषण, वाटवाह
धारिणी, विन्दुशीर्षवदना और लोलजिह्वा कालीकी
उत्पत्ति कही है । वही काली चामुण्डा नामसे
विख्यात हुयीं । उन्हींने रक्तबीजका हृदय पीया था ।
एतद्विषय अस्यान्य पुराणोंमें भी काली, भद्रकाली,
महाकाली, इत्यादि नाम पाये हैं । रिजु उत्पत्तिके
सम्बन्धमें कोई विशेष विवरण नहीं मिलता ।

शक्तिवधान कालीको पूजा, ध्यान, वचनादि एवं तांत्रिक ररसादि “काली”
ग्रन्थ और चन्दाक विषय “दुर्गा” ग्रन्थ देखो ।

कालीमूर्तिके रूप विचार कर देखनेसे समझ
सकते कि यह महाकालिका प्रणयिनी हैं, अमृतकाल-
रूपी शिव पदतलमें दलित हो रचे हैं । सर्वधर्मकारिणी
गतिज्ञापक पति हाथमें है । भूत, पतमान घोर
भविष्यत् कालवाचक विनयन हैं । इत्यादि ।

(महापत्रको क्या गाना ग्रन्थमें देखो ।)

कालीपंखी (हिं० खी०) हृदय सुवर्णिया, एक इड़ी
भाड़ी । उसके हलामें सरल कण्ठक निकलते हैं ।
पत्र प्रायः १२ । १३ पट्टुभि दीर्घ लगते हैं । उनका
प्रासाभाग दन्तुर रहता है । पुष्ट पाटलवर्ण क्षीत है ।
कालीपंखीके रक्तवर्ण फल पकनेसे कालि पड़ जाते
हैं, गिवा-पंजाब और गुजरातके भारतवर्षमें समस्त
स्थानोंपर उक्त हल मिलता है । इसे पुष्पके लिये
लगाने है ।

कालीक (सं० पु०) के जले पकति पर्याप्तोति प्रभवति
इत्यर्थः, क-फल-इत्यु पृथीदरादित्वात् दीर्घः । लोष,
वक, किमी किच्छका वगना ।

कालीघटा (सं० काली०) हण्डयणं नूतन मेघश्रेयो,
उठना हुआ काला घाटल ।

कालीघाट—एक पीठस्थान । यह कण्डकोके दक्षिण-
प्रागमें दक्षीण गङ्गाके किनारे पर चला० २२ ११
३० ६० और देशः ० ८८ २३ पू० पर अवस्थित है ।

छद्मोलतन्त्र चौर शिवाचंनतन्त्रमें उक्त 'स्थान' काली-
घनामसे उक्त हुआ है। प्रवादानुसार वहाँ सतीका-
शङ्क गिरा था। इसी कारण बहू दिनसे वह पीठस्थानके
नामपर प्रसिद्ध है। भविष्य मन्त्राखण्डमें लिखा है—

“गोविन्दपुराने च काशी सत्यनोदते ।”

पहले गङ्गासे पर कालीदेवी विराजती थीं। पुरा-
कालको सागरयात्री इन्द्र वषिष्ठ उत्रके निवृत्त वाट
पर उतर कालीपूजा करते थे। उस समयसे उत स्थान
कालीघाटके नामसे विख्यात हुआ है। निगमरूपसे
पीठमालामें कालीघाटकी सीमा इस प्रकार निर्दिष्ट है-

“क्षिप्रेश्वरमारण्य शारथ बहुपापुरी ।

भद्रराधारणे मध योत्रमद्ययं वाचम् ।

त्रिकोणे त्रिगुणाकारं ब्रह्मविष्णुशिवामकम् ।

मध्ये च कानिशादेवी महाकाशी प्रकीर्तिता ।

नकुलेशः भैरवो यत्र तत्र गङ्गा विराजिता ।

काशोचने न कानोचने ममदेशेऽपि मष्टयत्नः”

दक्षिणेश्वरसे बहूना पर्यन्त दो योत्रम-परिमित
धनुराकार स्थान कालीसे है, उसके मध्य एक कोश
त्रिकोणाकार स्थानमें त्रिगुणात्मक ब्रह्मा, विष्णु, चौर
सहेश्वर एवं मध्यस्थलमें महाकाली नाग्री काली
देवी है।

पहले कालीघाटकी चारो चरना जड़ान था।
सोमेशी चरना न रही। उसी वनके मध्य काली देवी
सामान्य पर्वकुटीरमें प्रस्थान करती थीं। कापालिक
चौर संस्थासे उन्हें पूजते थे। प्रथम कालीदेवी गुप्त
भावसे रहती थीं। इसीसे छद्मोलतन्त्रमें वह गुप्तकाली
नामसे उक्त प्रथी है।

खुड़ीय छोड़ग शताब्दको लिखित (मानसिंहके
चन्द्राल ज्ञानसे पहलै) कविरामके दिग्बिजयप्रकाशमें
कहा है—

“पीठमालाप्रकरणे कालीदेव्याः शरीरतः ।

शामसुनाशु निम्नमे शानो भागीरथीनदी ॥ ६६ ॥

कालीदेव्याः प्रसादेन हिलकिण्ण-दीर्गशिविनः ।

प्रविष्टः पुगिता शिव्य मादिताविरकायतः ॥ ६७ ॥

प्रतापादिवधपण्य धनोत्पत्तिमन्त्र च ।

महाशिवस्थानो राजन् इदानीं वर्तते सुप्र ।

कायस्थानां शालमच वर्तते बहुना धनः ।

गोपन्दादिपुरं सर्वं तथाहि भद्रपत्निकम् ।

काविदेव्याः सतीये च य भावनावादिषं नृप ॥ ६६ ॥

पीठमालातन्त्रके मतानुसार वहाँ भागीरथीके तीर
सतीदेवीके शरीरसे वामहस्तकी चक्रुलि गिरी थी ।
कालीदेवीके प्रसादसे किलकिलादेवयानी विरकाल
धन धान्यावान् रहेंगे। आजकल भागीरथीके तीर
शरीरराज प्रतापादित्य का गङ्गावास स्थल है। गोविन्द-
पुरादि ग्राम, भद्रपत्नी, चौर कालीदेवीके निवृत्तस्थ
शृगालदाह (मियासदह) कायस्थानोंके प्राचलमें है।

बोध होता कि उस समय उक्त चक्रन स्थान शरीर-
राज प्रतापादित्यके अधिकारभुक्त थे। चक्रनाशेको ।
प्रवाद है—प्रतापादित्यके चक्रा वप्रस्ताप कालीदेवीके
तत्कालीन पुत्रारी भुवनेश्वर ब्रह्मवारोके गिय थे।
उन्होंने यत्रसे एक सुदृ मन्दिर निर्मित हुआ।

उसी समयसे कालीघाटका गुह्यगोष्ठ साधारणसे
समक्ष देख पड़ा। उक्त विषय कविकृतज्ञाना चण्डी-
मन्त्रन चौर तत्पूर्ववर्ती चक्ररके समसामयिक
क्षिणेणिशवासो माधवाचार्यका चण्डीमाहात्म्य पठनेसे
विदित होता है।

मालूम पड़ता है कि शरीरवासे कायस्थ राजाके
समय वह स्थान देवोत्तर वा ब्रह्मोत्तर स्वरूप दिया
गया था। कारण उसके परवर्ती कालसे उक्त स्थान
चपुयक भुवनेश्वरके दोहिवर्गयोग्य ज्ञानदार वरावर
देवोत्तरस्वरूप भोग करते जाते हैं। कालीघाट का
वर्तमान कालीमन्दिर बड़िशावासे सामन्य चौधरी-
बंधीय मन्तोपरायके श्रयसे १८०६ ई० (उल्लेख मरनेसे
५६ वर्ष पीछे) को बना था।

कालीघाटका नकुलेश्वर निम्न प्रसिद्ध है। निगम-
रूप प्रकृत दो एक प्रापुनिक तन्त्रामें समझा वसेंग
दिनता है। पहले प्रति सामान्य कुटीरमें नकुलेश्वर
निम्न स्थापित था। १८५४ ई०को तारासिंह नामक
किशो पक्षावी वषिष्ठने मन्तरमय मठ निर्माण करा
दिया।

कालीघाटमें काली एवं नकुलेश्वरको छोड़ श्याम-
राय तथा गोविन्दजीकी प्रतिमूर्तियाँ भी सामान्य समझना
न चाहिये। वह मूर्तियाँ पहले गोविन्दपुरमें रहीं ।

स्वप्नसे यातना मा म होती है। बहुत भोजन करते भी रोगी दुर्बल और छाग रहता है। सुख पसल और स्निग्ध तथा चक्षु प्रियदर्शन लगता है। हस्त एवं पदतल मसृण पड जाता है। घृषा और हिंसा अधिक परिभाषमें जाती है। हिंदोष वा त्रिदोषके कारण ज्वर, पाशवेदना, पीनस और परुषिका प्राबल्य होता है। कभी घतना और कभी कठिन मल निकलता है। स्वरभेद अकारण हुआ करता है।

उक्त पांच प्रकारके कासमें वातज, पित्तज और कफज साथ है। अयकास लभावतः याप्य होता है। किन्तु अयज कास बहुत दुर्बल और क्षीण व्यक्तिके लिये प्राणघातक है। फिर बलवान् व्यक्तिके अयज कास उत्पन्न होते ही चिकित्सा करनेसे साथ भी हुआ करता है।

एतद्विभ्रं चरकास नामक एक प्रकार कास होता है। वह स्वभावतः ही याप्य है।

रूच व्यक्तिकी यायुजन्य कासमें प्रथमतः वायु-नागक द्रव्य समूह द्वारा सिद्ध यक्षि; और, यूष एवं मांस रसादिके साथ स्निग्ध पिय द्रव्य, स्निग्ध धूम, स्निग्ध पवलेह, स्नेहाम्यह, स्नेह परिपेक और स्निग्ध स्नेह प्रदान करना चाहिये। उसके पीछे अन्यान्य औषधादि व्यवहार करना पड़ता है। मनबद्ध रहनेसे बह्निर्कर्म, ऊर्ध्वंवात होनेसे भोजनके पूर्व घृतपान, पित्त एवं कफसंयुक्त वातज काममें स्नेह विरेचन देना पड़ता है।

वित्तजन्य कासके साथ कफका विषय अनुभव रहनेसे वमनकारक घृतपान द्वारा, किंवा मदनफल, गन्धारोक्त एवं यष्टिमधुके साथ जल द्वारा, पयसा भूमिकृष्णाण्डरस, तथा इक्षुरसके साथ यष्टिमधु और मदनफलके कल्कपान द्वारा प्रथमतः वमन कराते हैं। वमनद्वारा दोष निःसारित होनेपर शीतल और मधुर-रसयुक्त पियादि विलाना चाहिये। उसके पीछे अन्यान्य औषधका व्यवहार कर्तव्य है। किन्तु कफका अनुबन्ध पक्ष रहनेसे वमन न करा मधुररसके साथ चिह्नम् चूर्ण द्वारा विरेचन कराना चाहिये। कफ रहनेसे तिक्त रसविशिष्ट द्रव्यके साथ चिह्नम् चूर्णका प्रयोग पाय-

शक है। कफ पतला रहनेसे स्निग्ध एवं शीतल भोज्यादि और कफ घन रहनेसे रुच तथा शीतल भोज्यादि व्यवहार कराना चाहिये।

कफज कासमें रोगीकी बलवान् रहनेसे प्रथमतः वमन करा शक करना उचित है। उसके पीछे कटुरस-युक्त, रुच और उष्ण यथागु भृति सेवन करा अन्यान्य औषध व्यवहार कराना चाहिये।

अयज कासमें प्रथमतः शरीर तृप्तिकारक और अग्निदीप्तिकारक द्रव्यादि खिनाते हैं। दोष अधिक रहनेसे स्नेह द्रव्यके साथ शुद्ध विरेचन देना उचित है। उसके पीछे अन्यान्य औषध व्यवहार कराना चाहिये।

विद्व, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला एवं गण्डिकारी पञ्चमूल, पयसा शालपर्णी, चक्रमर्द, हजती, कण्टकारी तथा गोक्षुर पञ्चमूलका साथ प्रस्तुत करा विषमोष्ण प्रथमके साथ पान करनेसे वातज काशका उपशम होता है ॥ १ ॥

वाय्वानाक, हजती, कण्टकारी, वासककल्क और द्राक्षा समुदायका साथ शर्करा तथा मधु मिश्रकर पीनेसे वित्तज काश प्रशमित होता है ॥ २ ॥

कुष्ठ, कटफल, ब्राह्मण्यष्टिका, शण्डो और त्रिपु-लीका साथ पान करनेसे श्लेष्मज कास दब जाता है। तद्विभ्रं श्वास और वचोवेदना भी निराकृत होती है ॥ ३ ॥

श्लेष्मज कासके साथ पाम्त्रवेदना, ज्वर और श्वास रोग रहनेसे विद्व, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला, गण्डिकारी, शालपर्णी, चक्रमर्द, हजती, कण्टकारी, तथा गोक्षुर दशमूलका साथ विषमोष्ण चूर्णके साथ पान करना चाहिये ॥ ४ ॥

कटफल, गन्धद्वय, ब्राह्मण्यष्टिका, मुस्ता, धना, पचा, हरीतकी, कर्कटशुद्धो, क्षेत्वापहा, शण्डो और देवदाह सकल द्रव्यका साथ मधु एवं हिरण्यके साथ पीनेसे वातश्लेष्मजन्य काम निवारित होता है। तद्विभ्रं कण्टारोग, अयरोग, शूल, श्वास, शिखा और प्वरादि उपद्रवकी भी शान्ति देव पडती है ॥ ५ ॥

कण्टकारिका साथ विषमोष्णके साथ पान करनेसे मर्बविध काशका उपशम होता है ॥ ६ ॥
तावीगादि चूर्ण, मरिचादि समगकरचूर्ण

कादि—द्वन्द्वानके चौथे परगनेका एक ग्राम । यह कलकत्ते से २४ कीम दक्षिण गङ्गाके दाहिने कूल पर अवस्थित है । यहाँ प्राचिन्य बहुत होता है । सद्युद्धम प्रसक्तने ज्ञान समय लक्ष्मण वर्द्धि पङ्कड्ड डालते है । कादिगक (मं० ति०) वरुणय्ये उक्तः, कल्प-ठञ् । ये टाङ्क वरुणय्योश्च विधानादि । कादी (कालपी) युद्धप्रदेगके जालीन जिलेकी कालपी तहसीलका प्रथम नगर । यह पचा० २६ ० ४८ ० ० बीर देगा० ८८ ४० २२ ० पु० पर जालीन नगरसे १३ कोस पूर्व अवस्थित है । पुरानी कालपीके शक्तिशैलमें श्यो कालपी बनी है । नगर यमुना नदीके तीर पर्वतके मध्य बसा है । ऐतिहासिक परिश्रुतेके मतानुसार ख्रीष्टीय १३०—४०० गताब्दके मध्य कालके वासुदेवने कालपीको स्थापन किया था । किन्तु स्थानीय लोग कहते कि कालियदेव राजा उसके स्थापयिता थे । ११८६ ई० को मुहम्मद घोरीके प्रतिनिधि कुतुबउद-दीनने उसे जय किया । १४०० ई० को कालपी मुहम्मदगानुके दी गयी । जौनपुरके शरकीय गीय मुसलमान नवाबोंने इम्राहिम नामक किमी नृपतिने अधिकार करनेके पतिमात्र उत्कूक ही पचादश गताब्दके प्रारम्भमें दो बार कालपी नगर आक्रमण किया था । किन्तु वह दोनोंबार व्यर्थ मनी-रथ ही झौट गये । १४३५ ई० के मालवराज हांगडने आक्रमण कर कालपीके अधिकार किया । १४४२ ई० के शरकी यंगीय महमूद राजाने हांगडसे कहना मिला कि उन्होंने कालपीमें जिस प्रतिनिधिकी रक्षा, यह सुमलमान धर्मके निविह पावरणमें लगा था । महमूदने उन प्रतिनिधिकी शाक्ति देनेके लिये हांगडसे पतुमति भी । तदनुसार महमूद शाक्ति देनेके बहाने स्वयं कालपी अधिकार कर बैठे । शरकी यंगीय गीय राजा गुलताग हुमानके माय १४७० ई० को दिल्लीके मन्नाटका एक युद्ध हुआ था । उसमें हुमानके हार जाने पर कालपी नगर शरकी खंगके बाद्यमें निजम दिल्ली मन्नाटके अधिकारमें गया । फिर मन्नाट इम्राहीमके समय १५१८ ई० को जलाल खान् जौनपुरके शासनकर्ता बनकर चौर कुछ दिन

पीके कालपीमें स्वयं स्थायी राजा हो समैय पागरे मन्नाटका आक्रमण करने चले । पन्नाही यह हार कर झौट भागे । किन्तु गोंडरातीय राजाने उन्हें पकड इम्राहीमको छोड़ा था । उसके पीछे मुगल मन्नाटोके शासनकाल कालपीमें पनेक घटनायें हुईं । पकड गाडकी टककाल कालपीमें ही थी । यहाँ ताम्रमुद्रा (पैस) प्रस्तुत होती थी । महाराष्ट्रने कालपीको अपना पट्टा बनाया । १८०३ ई० को नागा गोविन्द रायने कालपीको अधिकार किया था । किन्तु श्यो वर्ष दिक्कनर मास यह खंगरेजोंके हाथमें चली गयी । फिर कम्पनीने राजा शिखर बहादुरको जो राज्य दिया, कालपी नगर उहीके मध्य पड़ा था । किन्तु पच्य दिनोंमें ही उक्त राजाके मर जानेसे १८०४ ई० को कालपीमें फिर पङ्करेजोंका अधिकार हो गया । उसके पीछे एक बार गोविन्दरायको पङ्करेजोंने कालपी छोप दी । किन्तु उन्होंने उसके बदले दूधरे दो स्थान ले लिये, लिससे कालपी पङ्करेजोंके ही हाथ रह गयी । बलवके समय भाँसीकी शानी, रायभाइय चौर बाँटके नवाबने वहाँ प्रायः १२००० विद्रोही सेनादन समवेत किया था । पङ्करेज सेनापति सर शूरोजनने समैय प्रतिकूल यात्रा कर कालपीमें उन्हें हरा दिया । यमुना नदी पर कालपीके पुरातन दुर्गका भग्नावशेष देख पड़ता है । दुर्गका अधिकांश यमुनाके गर्भमें है । नदीसे दुर्गमें जानेका पथ नहीं । दुर्गमें महाराष्ट्रोंके शासन कालकी कई इमारतें देखनेको मिलती हैं । पयिममें बहुतसी कचरों चौर मंजिदोंके शिखर विद्यमान हैं । उनके वायुकोषमें प्रभावतीका मन्दिर है । वहाँ एक बड़ा बाजार लगता है । वर्षाकालको उस बाजारमें शौह चौर हिन्दुओंके शासनकालकी मुद्रा बिकती है । पुरातन इम्पादिके मध्य महार भाइयकी कन्न, गफूरकी कन्न, चौरवीनेकी कन्न, बहादुर शहीदकी कन्न, चौर चौराही गुम्बज देखने लायक हैं । फिर दूधरी एक कन्न पर प्रकाष्ठ शिखरुति है । उपरि उक्त स्थानोंमें चौराही गुम्बज नामक इम्पे सर्वविधा प्रथम है । उस गुम्बजमें पत्थर चौर चनेका बहुत पच्छा काम बना है । उसमें चर्मक प्रकारके शिल्लूटे

अथकारमें विना, एक घोर धातु मकल चीप होनेके फलटगुटी, वाय्वानका एवं चतसर्दके कक घोर दुग्धके साथ यथाविधम पूत पाक कर नेशम करना चाहिये । कासरोगमें मूत्रकी विषयता रहने परमा कटके मूत्र निकलनेपर भूमिदुष्पाण्ड या उदरघोर तापमण्डके साथ पूत या दुग्धपाक कर विनाते हैं ।

लिट्ट, गुच्छ, कटो एवं दंतव (क्लेके जोड़) में पूत घोर वेदना रहनेमें कपु पूतमण्ड परमा नियत पूत तथा तैलकी विचकारी परमा चाहिये ।

रसायनी, तालपीनी और तैलपातका धुष्य एक एक तोला, पवीसका धुष्य ४ तोला तथा शकर, किमिंग, माधुज्य और विष्णुपत्र पाठ-पाठ तोला मकल द्रव्यमें मधुके साथ घटिका बना मदन करनेमें रसविषय माघ काम प्रभृति निवारित होता है ।

(कामरु. वि. १५०)

कासरोगमें कारण मधुकरमें वेदना, नासा एवं मुखमें अन्व्राय, हृदयमें भारबोध प्रभृति उपद्रव रहने पर धूमपान कराना पड़ता है । उक्त धूम सुष्ये चीप किर सुष्य द्वारा ही निकालते हैं । इस रोगमें गिरो-विरेचक धूमपान कराने पर एक शरार (कटावाका पात) में चीपय रण उषमें पाग लगा दूसरे हिदवाने शरारमें ठाक मन्त्रिस्वयन सेरन कर देना चाहिये । किर एक दिवसे नम द्वारा धूमपान किया जाता है ।

मनःशिला, हरिताल, यष्टिमधु, अटामांसी, सुप्ता और इट्टीकल मकल द्रव्यका धूमपान करनेमें वचः लिप्त चरेम विष्णुव ही ज्ञानि सर्षविधि कासरोग हटता है । इस धूमपानके पीछे रसदुष्य दुग्ध गुच्छे साथ पीना चाहिये ।

पुष्टीपक, यष्टिमधु, पण्डारवा, मनःशिला, मरीच, विष्णु, ट्राया, पसा, और तुलसीमधुरो पीम एक टुकड़े पट्टघरमें लगा उमकी पुनश्चत करते हैं । इस पट्टघरमें बसो बना उमका धूमपान करनेमें भी अतमांसीमें विधेय उपकार होता है । इस धूमपानके पीछे दुग्ध वा गुच्छका शरवत पीते हैं । मनःशिला, रसायनी, मरीच, चकदार, रसायन, मागरीपीप।

यंगशा नील, विद्यामूल, हरिताल, चतुर्वीर्य, साया और मन्त्रघण्ट मकल द्रव्य पूर्वकी भांति पट्टघरमें लगा उक्त निपममें ही धूमपान करना चाहिये ।

इट्टीदोवक, कण्टकारी, वृद्धती, तालमूनी, मनःशिला, कार्पासवीर्य घोर चयगत्या मकल द्रव्य पूर्वकी भांति नियममें पट्टघरमें लगा धूमपान करना पड़ता है ।

कासरोगीका चतुर्वीर्य मिटने किन्तु कक बटनेमें यदि वचःस्वयन और मन्त्रकमें कुठाराघातकी भांति वेदना रहे, तो निम्न नियत धूमपान कर्तव्य है,—

चयगत्या, चतुर्वीर्य, वाय्वानका और चकमट मकल द्रव्य पंचव कर पट्टघरमें लियत करना चाहिये, किर इस वयसे बसो बना उमका धूमपान करना पड़ता है, इस धूमपानके पीछे जीवगोदपूत पीते हैं ।

मनःशिला, पलाश, चतुर्वीर्य, रसगोचन और गुच्छीकी पूर्ववत् बसो बना धूमपान करना चाहिये । इस धूमपानके पीछे शकरका पना, गुच्छका शरवत या लयका रस पीते हैं ।

मनःशिला घोर बटकी कधी अटा पंचव कर पूर्वकी भांति पट्टघरमें लियत करना चाहिये । किर उषमें पूत काल उषकी बसोका धूमपान करनी है । इस धूमपानके पीछे तिलरिमांनका रस (मोरवा) पीना चाहिये । न्येड, विरेचन, वमन, धूमपान, समभाव भोजन, शान्तिपुत्रन, शीत, श्यामायपका चावल, यव, कौदावान बीज (पातागुता), मायकजाय, मुश एवं कुसल कजायका युग्म; पाय्य, अलवार, चतुर्वीर्य तथा पन्थद्वय ज्ञान मांय, मय्य, पुरातन पूत, ह्यागदुग्ध, ह्यागपूत, कण्टकाका माक, काकमापी शक, बंगन, कपोमूनी, कण्टकारी, कापी कमीदी, खोवली तथा सुषेपागाक, ट्राया, कुन्दर, मागुनूद, पट्टमूल, मासक, हीटो रसायनी, गोमूत, अहसुन, हरितकी, मीठ, पीपल, मरीच, कप्य कल, मधु, चीप, दिशानिटा घोर कपु चयगत्या कासरोगमें हितकर है ।

तेसादि न्येड द्रव्य, दुग्ध इस्वर, तथा गुच्छान

कटे है। मोदीय शौधोके समय जिस प्रकारकी हर्म्य-प्रथाकी प्रचलित थी, उसी गठनके साथ कालपीकी इमारतकी भी बराबरी देख पड़ती है। गुम्बज सम-चतुष्कोण है। उसकी एक दिक्, बाहरी ओरसे नाने पर दरहाय दीर्घ और पूरुहाय उच्च होगी। भीतरका स्थान शतरंजकी विद्यात-जैसा है। एक एक ओर पाठ पाठके हिस्सामें सब ६४ शतक हैं। स्तम्भोंपर दोनी ओर ४८ ४८ कर ८८ मेहरावें लगी हैं। हल चारो ओर समगत है। मध्यस्थलमें गुम्बज बना है। चारो कोण पर चार छोटे छोटे दूमरे गुम्बज देखनेमें बहुत सुन्दर हैं। उसकी ओर दृष्टिपात करनेसे मनमें एक प्रकारका अपूर्व भाव उदय होता है। ठीक निर्णय किया जानहीं सकता—उसका चौरासी गुम्बज नाम क्यों पड़ा? सभावतः चारोस गुम्बजसे चौरासी गुम्बज नाम पड़ गया होगा। यह प्राधुनिक नगरकी पश्चिमदिक् है। नूतन नगरकी पश्चिमदिक् पथेशगञ्ज और तार-नानगञ्ज है। वहां बिलसण व्यवसाय होता है। श्रीवाणार नामक स्थानमें मन् ८५३ हिजरीकी एक गिल्लालिपि देख पड़ती है। फिर पठी गलीके प्रवेश-द्वार पर मन् १०८१ हिजरीकी और शेख अबदुन गफुरके कूपपर सम्राट् औरङ्गजेबके राजस्वके हादय वर्षकी एक लिपि पथ्यापि विद्यमान है।

राजा बीरबलने कालपी नगरमें ही जन्म लिया था। यह जातिके ब्राह्मण थे। पहले उनका नाम महेग-दास था। बीरबल सम्राट् अकबरके दक्षिण हस्त थे।

कालपीकी लोकसंख्या आजकल प्रायः साढ़े चौदह हजार होगी। धर्माकाशकी भाषी और कांनपुर जानिके लिये पहले यमुना पर नौका वा सेतु बनता था। बहुतसे खेवके घाट भी हैं। उरई, हमीरपुर, बांदा, जालौन और भांषी जानिके लिये कई उत्तम पथ कालपीमें निकले हैं। वहांसे रुई, और बननाज कान-पुर, मिर्जापुर और कलकत्ते भेजा जाता है। नदीके राह भी पनेक पथ्य द्रव्य पाते लाते हैं। कालपीमें बढ़ियां मिमरी बनती है। कागजका कारखाना भी है। कालपीका कागज बहुत अच्छा होता है। पहले कालपीका कागज सुप्रसिद्ध था।

कानपुरसे बम्बईकी श्रेष्ठ दृष्टियन पेनिनसुला रेलवे कानपी होकर गयी है। कालपी ट्रेगन भी है। यमुनापर पका पुन बंधा है।

कालपीमें एक प्रतिष्ठित सहकारी कमिश्नर रहता है। कई चदानतें पुलिसके याने, चौपधानय और विद्यालय भी हैं।

काल्पक—वोनतातारवासी इतिउर्षाकी एक गाछा काल्पक अपनेके बलोट कहते हैं। वह जंगर, तामंत, घोसद और तारवेत चार जातियोंके मध्य घन्तुतामें प्रामुख हैं। १६७१ ई० को उन्होंने बलवान ही राज्य स्थापन किया था। प्रायः एक शताब्द काल उनका राजत्व चला। श्रेयके काल्पक चौनाशेके अधीन हो गये। तुर्की खलीफाक (धर्मात् पयान् परित्यक्त) वा मङ्गोलीय घोसदेमक (अन्विरागि) अथवा मङ्गोलीय काल्पक (धर्मात् दुर्दान्त लोग) शब्दमें उनके नामकी उत्पत्ति है। युयेन वंशका अधःपतन होनेसे एक दल गोबी मङ्गके दक्षिण गया और कोकनर ऊट पर्यन्त फैल पड़ा। उसी वंशके कुछ वंशधर १६७१ ई० को महाकटसे चीन देशको लोटे थे। काल्पक और प्रज-वक लोग एक मूल जातिसे उत्पन्न हैं। यामपरिवर्तन करनेसे यह काल्पक कजाक और खरवित्र जातिके साथ एक प्रकार मिस्र गये हैं। यह चार पधान गाछामें विभक्त हैं। यथा—१ खासकोट वा घोसद—यह युव व्यवसायो हैं। उनको संख्या प्रायः ६००० है। यह कोकनर ऊटके निकट रहते हैं। फिर उनमें कुछ लोग एगियास्य रुसकी इटिय नदीके तीर जाकर बसे हैं। श्रेयके उनकी द्वितीय गाछा जङ्गरामें मिस्र गयी है। उक्त जातीय दूसरा दल युरोपीय रुसके पश्चा-कान जिलेमें रहता है। २ जङ्गर—चीन राज्यके पयिम सुङ्गरिया राज्यमें उनका वासस्थान है। उसीके नामसे यह स्थान भी हो गये हैं। उनकी संख्या प्रायः २००० है। ३ उरई, तामंत या टोमद। यह सुङ्गरिया कोङ्ग युरोपीय रुसकी इन और इलि नदीके तीर जा कर रहे हैं। उनको संख्या प्रायः १५००० है। यह आजकल इन कब्जाओंके साथ प्रायः मिस्र गये हैं। ४ तामंत—यह १६६० ई० को सुङ्गरिया कोङ्ग बसा

मध्य समुदाय, पिचकारी, नख, रक्तमोक्षण, व्यायाम, दन्तधर्षण, रौद्रादि सन्नाप, दुष्टवायु, वनपत्रमें गमन, मल एवं मूत्र वमनादिका विगधारण, मखर, भानू, प्रभृति कन्द, सर्पप, लौकी, पुदीना, दुष्ट जलपान तथा विरुह, गुह्यपाक और शीतल चक्रपानादि काशरोगमें अधिकार है। (पञ्चपत्रपत्र)

एलायायीके मतमें—काहलिवर (मछलीके कलोजिका) तैल प्रमे ६० बूंद तक ईषदुग्ण दुग्धके साथ पीनेसे कास निवारण होता और रोगी बलवान् रहता है। होमिभोपायीके मतमें—टिचर साद्योनिया कासका महीष है। उसे प्रमे १० बूंद तक पाष छटांक जलमें डाल सेवन करनेसे भयानक कास भी चच्छा हो जाता है।

अकरकरड़ा और बच सर्वदा सुखमें रखनेसे सामान्य कास छूटता है। सर्वदा गोंद चुभते रहनेसे भी कासमें बहुत उपकार देख पड़ता है।

यश्मा, चयकाश और क्षीणकाश रोगीके समझलका कारण है। यथा देखो।

४ छिन्ना, ह्रींक । ५ इन्द्रविश्रिद, एक चूड़ा । ६ ऋषिविश्रिप । काशिराजके पिता सुहोत्र ।

काशक (सं० पु०) काशते दीव्यते, काश कर्तृ पबुल् । १ टण्विश्रिप, कांस नामकी घाम । २ सुहोत्रके पुत्र । उनका अपर नाम काशि था ।

“काशक्य महासकलघ्न घनमविर्षुः” (परिभाष, ११ प०) (त्रि०) १ प्रकाशयुक्त, रोगन ।

काशकृत्य (सं० पु०) एक ऋषि। वह भी एक चादिशाब्दिक ऋषियोंके पन्थभूत थे।

“इन्द्रकृत्याशकृत्याशिमिना वटापनाः ।

पाषिचमरुतेमेष्टा अयनाद्यादिशब्दाः” (अवि० कृद्वन)

काशकृत्यक (सं० त्रि०) काशकृत्येण मिष्ठं तम्, काशकृत्य-बुञ् । काशकृत्यकडक निष्पादित । काशकृत्यि (सं० पु०) काशकृत्यके गोत्रापत्य । काशक (सं० त्रि०) काशे ज्ञायते, काश-कृन्ड । काशसे उत्पन्न ।

काशनाशन (सं० पु०) कर्कटशुद्धो, कटका सींगी । काशपरी (सं० स्त्री०) काशः परी यस्याः, ह्रीप् । काशाहत एक नदी ।

काशपरी (सं० त्रि०) काशपर्या भवः, काशपरी-टक् । काशपरी नदीसे उत्पन्न ।

काशपुर—घासामके पन्थगत कक्षार जिलेका एक ग्राम । बराइन नामक निरिच्छेपीको दक्षिण दिक् जो शाखा गयी, उसीके मध्य काशपुर पवस्थित है। किसी किसी प्राचीन ग्रन्थमें उक्त स्थानका नाम ‘ख्यपुर,’ ‘कुशपुर’ या ‘खासपुर’ लिखा है। वहाँ कक्षारके राजावोंका राजभवन था। उसका भग्नावशेष पहाड़ा है। कक्षारके राजावोंके समय वहाँ हिन्दूधर्म प्रचल था। काशपुष्पक (सं० स्त्री०) स्यावर विपान्तगत कन्दविष, एक जहरीला जला ।

काशपौष्ट (सं० पु०) काशप्रधानः पौष्टः, मध्यप० । एक जनपद ।

“कोशपः काशपौष्टाश्च कानिदा मारुधातवाः” (भारत, कर्ष, ४६ प०) काशफरी, काशपरी देखो।

काशफरीय, काशपरीय देखो। का शब्द (सं० पु०) ‘का’ ‘कोलाहन’ ‘का’ का शोर ।

काशमय (सं० त्रि०) काशिन प्रसुरसदिकाशरो या, काश-मयट् । १ अधिक काशविश्रिप, कांससे भर हुआ। काशतणनिमित्त, कांसका बना हुआ ।

“अनकाशमयं बर्षिंशोरीं मनवान् मरुः” (भारत, ११ प०)

काशमर्द (सं० पु०) काशं मृदनाति उपग्रमयति, काश मृद-पण् । सुद्व ह्यच विशेष, कसौदीका पेड़। उसका संस्कृत पर्याय—परिमर्द, काशमर्द, काशारि, काशमर्दक, काल, कनक, क्षरण और दोषण है। Cassia Sophora काशमर्दको हिन्दुस्थानमें बनार, कसौदा, कसौदी, या वासञ्जी कर्मादी, दंगलामें कालकासुन्दा, दक्षिणमें अंगली तकल, गुजरातमें कुवादिष, मारवाडमें रतनाकल, तामिलमें पोचा-बिराई, तेलगुमें पेदी तंगिदु, मनयमें पोचामतकर और सिंघनमें जहतीर कहते हैं ।

वह भारतमें मिश्र हिमालयसे सिंघन और पनाग पर्यन्त सर्वत्र पाया जाता है। हृष सुद्व और पुष्प हरिद्रावर्ष होता है। उससे दुर्गन्ध निकला

धरता है। सुदृढा मूलदेम कठोर पदता है। मिया
 बंदगुल रहता है। पत सुद्र चीर मर्दान् चीते है।
 बलिदा होटे, मोरी चीर बधिक कभी लगते है।
 कागमर्तकी एक भाई ममभक्ता चाहिये। वर्य-
 कामको बह धामकर्ममें बर्य उपलता चीर पचदावप
 माम पुन्य निवृत्तता है।

ये एक मतमें कागमर्त, रोचक, बन्धकारक, विपत्र,
 रक्तदीप निवारक, मधुर, गान्धेयमागक, गानक,
 कुहनिमोषक, विपत्र, पाहक, मधु चीर मन्त्र
 कागमर्त है।

इसीमेंके मतानुसार निर्धके माय उपकी मिया
 चीम कर विनामिने मर्तदर यादि पारोप्य होता है।
 बन्दके माय कागमर्त बांट कर मगानेमे दाट मिट
 जाता है।

पीके कोड़े उमका पत पञ्चमके माय वरवधार
 करते है। कागमर्तका पय सुखा उमकी मुकने
 मधुमें मिला का दाट वा पन्थाम्य चत पर मगायी
 जाती है। बहूमूलरोगमें उमकी डान कममें पका
 विनाते है। कमौटीकी पत्तियां पय चीर ममुप्य दोनों
 घाने है। उबामनेमें उमका दुर्गन्ध निवृत्त जाता है।
 कागमर्त (मं० पु०) काग मर्तानि, काग-मर्द
 कांतिरि म् । कागमर्त, कमौटी ।

कागम (मं० पु०) कागिराजके पुत्र ।

“मोद कागदी गण्ड” (हरिचं, ११५०)

काया (मं० स्त्री०) कागने रति, काग-पञ्च-टापु ।

काग-हय, काग । बन्धकेवो ।

कागान्धनि (मं० स्त्री०) कुम्भिता गाण्डनि, कोः का-
 देमः । कुटगाण्डकी, एक रगामी करैका पिड ।

कागि (मं० स्त्री०) काग-हन् । १ कागी, बनारस ।

(पु०) २ कागोमगरोकलित देमविशेष ।

“कम कर्म कर्तारविशेष इत्येवम् ।

कागिका, कर्तारक कागोमगरोकलितः” (भाष्य, ६।१।१०)

३ सुष्टि, सुठ । ४ सुष्टे । सुष्टीके एक पुत्र । यह
 बन्धकारके पितामह है । (नि०) ५ मजागिन, काटिर ।

कागिक (मं० स्त्री०) कागैरिदं, कागिमु मयो वा,

कागि-हन् विद् वा । १ कागिहन्धोव, धनारमके
 मुनामिक । २ कागिगान, बनारसका पैदा ।

कागिकम्बा (मं० स्त्री०) कागिवागिनी उक्ता मध्य० ।

१ कागिवागिनी कुमारो, कागीमें रहनेवाली लड़की ।

कागीमौर्द्धे कागीकम्बाकीको पुत्रने चीर विनातेका

विधि है । २ कागिराजकम्बा, कागीके राजाकी लड़की ।

कागिकपुत्र (मं० स्त्री०) कागीका लतामधु, कागीकी

बहिजा रुई ।

कागिका (मं० स्त्री०) कागि सायें कन्-टापु, यदा

कागपति प्रकाशयति प्राग् भक्तानाम् काग-विष्-

पु-टापु । इत्यम् । १ कागी, बनारस । २ मन्थी

निवृत्ति देनेवाली परमशक्ति माभकारिकी मीर्द-

श्रेष्ठ मन्विकर्णिका चीर प्रातःपवाह रूप निर्गम मन्त्र-

विशिष्ट पवनी बुद्धि ।

“मनोविशक्तिः परमोन्मत्तिः सा मीर्दका मन्विकर्णिका ।

मातृवशा विष्णु विष्ठा वा कारिका” इत्येवम् ।”

३ जयादित्य चीर वामनलक्ष पाणिनिकी एक कृति ।

कागिकापिय (मं० पु०) कागिका मिया यय, कागि-

कायाः मियो वा । कागिराज दिवोदास ।

कागिकाकृति (मं० स्त्री०) पाणिनि-वाकराणकी

व्याख्याका एक कृता । किमीके मतानुसार जयादित्यने

प्रथम ४ पञ्चाय चीर वामनने शिव ४ पञ्चाय बनाये

है । फिर किमी किमी प्राचीन इष्टानिविपर

प्रथम ४ पञ्चायकी पुस्तिकामें ‘वामन-कागिका’ लिखा

है । किमी किमी इष्टानिविकी समाप्ति-पुस्तिकामें

“वामोवाध्यायवामनलक्षतादा कागिकायां कृती” लिखा

देव पढ़ता है ।

भद्रोक्तिदीप्तत, रायमुकुट, माधवाचार्य प्रभुनि

वेदाकारकीने कागिकामे जो विद्वार प्रमाय उद्दाम

राममें भी बड़ी महबुड है । परमकीमें ‘मर्कर’

अथ साधनेके समय रायमुकुटने जयादित्यके नामने

(५ । ३ । १०५ गुणको) कागिकाकृति कहुत की है ।

किर ‘वाङ्मय’ मन्त्र साधने समय ‘मागाच’ पाणिंक-

मुचमें (वा ५ । ३ । १००) भागाकृतिकारके उद्दामने

कन्धि जयादित्यका एक नाममें किया है ।

भद्रोक्तिदीप्तने वा ५ । ३ । १३ गुणके इतिहास

कावार (सं० स्त्री०) कं जलं वाहपोति, क-पा-ङ्-भृत् । शैवाल, सेवार ।

कावारी (सं० स्त्री०) कावार-होव् । टणादिच्छ्व, घासकी बनी कतरो । उसका संस्कृत पर्याय—जङ्गम-कुटी शौर्यमत् कुटी है ।

काविराज (सं० स्त्री०) छन्दो विशेष, एक बहर । उसमें ८+१२+८ अक्षर होते हैं ।

वावी (सं० स्त्री०) कवेरियम कवि-भञ्ज-होन्-यत्तोगः । गाँव का नाम जोन् । पा ३। १। ०२ । कविसम्बन्धीया, गायरसे तासुक रखनेवाली ।

कावक (सं० पुं०) कुस्मिन्ने वृक्ष इव, ईपत् वृक्ष इव वा, कोः कादेशः । १ कुकुट, सुरगां । २ पक्ष्मवाक, चक्रवा । ३ पौतमस्तक पक्षी, पीली चोटीकी चिड़िया ।

कावेर (सं० स्त्री०) कव्य सूर्यस्येव वा ईपत् वेरं पङ्कं यच्च ज्योतिर्मयत्वात् । कुङ्कुम, रौरी ।

कावेरक (सं० पुं०) रजत नाभिके गोवापत्य ।

कावेरिका (सं० स्त्री०) कावेरी स्नायं कन्टाप ईकारस्य ऋत्वम् । कावेरी नदी ।

कावेरी (सं० स्त्री०) कं जलमेव वेरं शरीरमस्नाः, कवेर-भृत् । तलेददा वा ३। १। १०० । १ दक्षिणापथकी एक महानदी, दक्षिणका एक बड़ा दरया । वह अक्षां १२° २५' ०" तथा देशां ७५° १४' ०" पर कुलग राज्यमें पश्चिमघाटके मद्रागिरिसे निकल दक्षिण-पूर्वामिमुख महिसुर पश्चिमा पतिक्रम कर मद्राज प्रदेशके मध्यसे बहोपसागरमें जा गिरी है । कुलग राज्यमें कावेरीकी गति अति प्रसन्नभावापन्न है । गर्भं प्रसरामय है । समय तीरनामा वृक्षसमाकीर्ण है । कङ्कनूर, कुम्भकोल, ककावे, सुत्तरेसुत्त, चिकडील और सुवर्णवती नाम्नी कई धर्मकी म्हाखानदी है ।

कावेरी नदी महिसुर राज्यमें अल्पा परिस्तरसे प्रवेश कर एकधारगी ही १०० गजमें, ४०० गज तक फैल गयी है । वहाँ सेती शरीके लिये लड़के कई नासे है । नाओंके बीच बीच बांध भी लगे हैं । उनमें बड़ा नामा प्रायः १६ कोष विस्तृत है ।

कावेरीके मध्य पुण्यतीर्थ गिबममद्र, श्रीरङ्गपत्तन और श्रीरङ्गम ही प्रथमान है । गिबममद्रके समीप

कावेरी-प्रपात है । माघः १५० हाय कंचेसे जन नोषे-को उत्तरता है । वहाँ दृश्य मनोमुग्धकर है । गिब-समुद्रमें कावेरीके पपर पार पर्यन्त हिन्दू राजाओंके बनाये दो सुदृढ़ प्रस्तरमित्त हैं । यात्री उन्हीं सेतुगे शिषसमुद्रके दर्शनको जाते हैं ।

महिसुरमें कावेरीकी कई शाखा है । यथा— हैमवती, सक्ष्मतीर्थ, लोकावती, शिंशा, अर्कवती, सुवर्णवती या चोडु, होला । वहाँ तन्दोर और त्रिदना-पत्नीके पश्चिमव कई नाले निकल गये हैं । उनमें कानिदम (कोलप्य) नामक नामा ही प्रधान है ।

मद्राज विभागमें कावेरीकी निम्नलिखित कई शाखा हैं—भवानी, नोवेन, परमावती ।

रामायण, महाभारत प्रभृति प्राचीन ग्रन्थोंमें कावेरी पुण्यतोया मानी गयी है । इतिहासके मतानुसार सुरनाथके शासके गङ्गाने शरीराधभागसे युवनाथकी कन्या वन जन्मपद्वय किया था । उन्हींका नाम कावेरी है । अङ्ग मुनिने उनका पाणि-ग्रहण किया । कावेरीके ही गर्भसे लङ्काके सुवह नामक एक धार्मिक पुत्रने जन्म लिया । (सर्व०, १९०) शरीराधभागसे जन्म लेनेके कारण कावेरी "पद्मगङ्गा" नामसे ख्यात हुयी है । स्कन्दपुराणीय कावेरीमाहात्म्यमें लिखा है,—

"ब्रह्मतनया विष्णु माया वा लोवासुद्राने पिताके पादेयसे कावेरी नामक कशि मुनिकी कन्या ही जन्म-पद्वय किया था । फिर कावेरी मुनिके प्रानन्दवर्धन और मानवगणके पापमोचनकी वह नदीरूपसे प्रवाहित हुयी ।"

तलकावेरी और भागमण्डन नामक प्रथम महाम स्थान पर अति प्राचीन देवमन्दिर है । यार्तिक मास महेश्वर महेश्व तीर्थयात्री लक्ष मन्दिर-दर्शन और कावेरी-सन्निधमें स्नान करनेकी जाते हैं । दक्षिणा-पथके लोग कावेरीको "दक्षिणगङ्गा" कहते हैं ।

हिन्दुस्थानमें जिस प्रकार निठावान् हिन्दू गङ्गा-स्नान काल गङ्गास्नान पाठ करते, वैसे ही दक्षिणापथके लोग कावेरी गङ्गाके "कावेरीस्नान" पठते हैं ।

कावेरी-प्रवाहित प्रदेशमें 'पद्मातोडुग' वा कावेरी

जयादित्यका आर पा ७।१।२० सूत्रके वृत्तिकान
वामनका मत पक्ष किया है। उसीप्रकार रायमुकुटने
“असरस” शब्द माधने काल पा ८।४।४८ सूत्र
का वामनकाशिका उद्धृत की है। माधवाचार्यने
धातुवृत्तिमें जयादित्य और वामनका मत पक्ष
किया है। तत्कालक उद्धृत जयादित्यका मत पा
३।२।५६ सूत्रकी और वामनका मत पा ८।२।२०
सूत्रकी काशिकामें देख पड़ता है।

रसनिघे भट्टोजिदीक्षित, रायमुकुट एवं माधवा-
चार्यके मतमें ३ से ५ अक्षाय पर्यन्त जयादित्य आर
७ से ८ अक्षाय पर्यन्त वामनकालक विरचित हैं।

राजतरङ्गिणीमें जयादित्य काश्मीरके एक विद्यो-
त्साही राजा और वामन उन्हेंके मन्त्री बताया गये हैं।

“दिमानरादानमय व्याचक्षाणः समापतिः।
प्रावर्ष्यत विधिम्” महाभाष्यं समग्रम् ॥ ४३८ ॥
श्रीरामिभाष्यद्विविधोपध्यायसंभक्तः स्रुतः ।
दुर्धः सप्त वयो वृद्धिं स जगतीकृत्यतिः ॥ ४४६ ॥
‘वहत्या सक्तिव्याजो न श्रीकृत्य कर्षितः ।
मदोऽनुदुग्दमदसत्य भूमिमतुः समापतिः ॥ ४६६ ॥
न दामोदरगुणाध्यं वृद्धिनीमतकारिणम् ॥ ४६८ ॥
मनोरथः महदशपटवः सभिसंघया ।
भूम्युः सप्तपदाका वामनायाव सन्धिः ॥ ४६९ ॥”

(४५ तत्क)

राजा जयादित्यने नागा देशसे बोना पण्डितोंकी
महाभाष्यके संपर्कमें लगाया। उन्होंने शब्दशास्त्रविद्
श्रीरत्नामोके निकट * व्याकरण, पढ़ा था। सक्रिय
प्रधान पण्डित और उद्धटभट्ट उनके समापण्डित रहे।
उन्होंने “कुट्टिनीमत”-प्रणेत दामोदरगुप्तकी प्रधान
मन्त्रित्व प्रदान किया। मनोरथ, शब्ददत्त, चटक,
सन्धिमान् प्रभृति कवि उनकी सभा उल्लेखन करते
थे। वामन प्रभृति पण्डित उनके प्रमात्य रहे।
कायस्थराज जयापीडने ६६७ गककी सिंहासना-
रोहण किया था। काश्मीर और आर्य्य नन्द देवी।

अध्यापक मोदसूनरके मतमें—“काशिकाकार
जयादित्य एक स्वल्प व्यासि रहें। की काश्मीरराज

जयादित्यमें पूर्व विद्यमान थे। चीनपरिव्राजक ह्वु
मिङ्गने ६८० ई० (६१२ गक) की चीन भाषाके
‘टचिणसमुद्रयात्रा’ पुस्तकमें जयादित्य विरचित ‘वृत्ति-
सूत्र’ का उल्लेख किया है। यदि इत्सिङ्गका विवरण
पत्रत निकले तो ६६० ई० से पूर्व पाणिनिवृ-
त्तिकार जयादित्य मरे थे।” *

मिःसुन्देह विम्वार नहीं आता उस स्थल पर चीन-
परिव्राजकका विवरण कर्त्तव्यक सभ्य और उनकी
प्रकृत आविर्भावकाल क्या था। इनपरकारके स्थानमें राज-
तरङ्गिणी-वर्णित घटना पर निर्भर करनेसे नितागत
पन्थाय समझ पड़ता है। फिर भी यदि काश्मीरराज
जयापीडने काशिकावृत्तिकी लिखा था, तो कल्पण
पण्डितने उनकी कोई उल्लेख क्यों नहीं किया ?
सभ्यतः राज्याभिवृद्धि होनेसे पहले जीवनकालको
जयादित्यने काशिकावृत्ति बनायी होगी। कारण राजा
होनेसे पूर्व जयादित्यके मन्त्र्यमें कल्पणने कोई बात
नहीं लिखी। जयादित्य स्वयं एक धैर्यकरण और महा
पण्डित थे। उन्हेंके समय महाभाष्यका पुनर्हारा
साधित हुआ। वामन उनके एक सचिव थे। सभी समय
नक्षितादित्य-प्रमात्य लक्ष्मणके पुत्र श्वेतराजने वाक्य-
पदीयवृत्ति बनायी। जयादित्यके समयका काश्मीर-इति-
हास पढ़नेसे समझ पड़ता कि वास्तविक उनके
राजत्वकाल पाणिनिव्याकरण विगिय आहत हुआ था।
जयादित्यने काशिकावृत्तिके प्रथम ५ अध्याय
लिखे थे। पीछे उसके मन्त्री वामनने पचमिष्ट ३
अध्याय लिख प्रत्य सम्पूर्ण किया।

काशिकावृत्तिप्रकाशक पण्डित वामनाश्रीने लिखा
है,—“काशिकाके रचयिता जैन वा बौद्ध थे। इसीसे
अमरकोषकी भांति काशिकाके प्रारम्भमें मनुभाषण
लिखा नहीं गया। काशिकाकारने अपने क स्थानमें
पाणिनिवृत्तका परिवर्तन किया है। यदि वह ब्राह्मण
रहते, तो कभी ऐसा कर न सकते। पा १।३।३६।
सूत्रके नौड, धातुका आत्मनेपदपर मन्थान पठमें
काशिकाकारने ‘वाशंभ्यमानं चर्षात्’ को भागत-

* Max Müller's India what can it teach
us ? pp. 342-316.

• श्रीरत्नामो वनकोरके वृद्ध प्रधान टीकाकार थे।

नामि धाप्रकीका वाम है। वही प्राज्ञप चम्या वा कावेरीदेवीका बोधोद्दिष्ट करने है। यह चक्रम शाकाधर्मोत्री है। चवरापर कोडग 'साधु'पोंके साथ समके निवाहका आदान प्रदान गर्छो होता।

रात्रेरके पवन तरङ्गमे देग चौर गत्यकी बचानिके स्थिति माना स्यात्तमिं हिन्दू राजावोकै बनाये पतरके बांध मोडू है। उनमें औरङ्गके निवट प्रधान बांध है। यह एक पत्थरमे बनाया गया है। बांध १०४० फीट दीर्घ चौर ४० मे ६० फीट तक विस्तृत है। गृहोय ४४ गताब्दमे पढ़ने यह प्रसुत हुआ था। किन्तु आज भी उसे गुराना कह गर्छो गयते।

पूजा कामवो गढ़ा प्रसूति तीर्थ आवाहन करनेके मन्त्रमें बाधेरी नरीका नाम चम्पनिषिट है,—

“हरे च वदने चैव नोदाधिर करसति।

नन्दे विष्णु कावेरि अवेदिन्नु कविनिं वृर ४” (तीर्थचरण ४४)

कावेरीका नाम छाद्रु, अमरम, अणु, दीपन, दद्रु, कुसुम चौर मेधा बुद्धि एवं दक्षिप्रद है। (राजनिघण्टु)

सुमितं चपनिधं गरीरं यस्याः २ वेग्या, रथौ १ चरिद्रा दण्डी ।

काव्य (गं स्त्री) कपेरिदम्, कथेः कर्म भावो वा, कवि-शब्द । १ कवितामय, शायरीकी किताब । २ कुशल, चिम, सुगुहानी । ३ बुद्धिमत्ता, चक्रमन्दो । ४ रमयुक्त वाच्य, मोडी बोली ।

“काव्यं चर्यःपं हने आचारादिदि विवेकचरुदि ।

नदःपानिधये आलापनिधयेवदुने ३” (काव्यप्रकाश)

यग, पद्यं, व्यञ्जहारदान, चमन्द्रकविनाम, सद्यः परम निवृत्ति चौर काल्ना मकनके उपयुक्त उपदेश प्रयोगके निमित्त ही काव्य है।

“चन्द्रोदयःपारिः सुपारमपिपारुणि ।

चात्तारैर वन्देन नदसाधु विदयने ३” (चरिचरुदि)

कान्तमे अल्प बुद्धि व्यक्ति भी चनायाम धर्म, चर्धे, काम चौर मोचदय चतुर्थमे अल पाते है। चन पद काव्यका साहच्य निवृत्तय करने है।

“काव्यं वृत्तार्थं वरुतं वीरवचनचरुदि ३ ।

नन्दे चैवतः वीरु सुपारमपिपारुणि ३” (चरिचरुदि)

रमाकक वाक्य ही काव्य है। दोय उसका चप हर्षक होता है गुण, पलहार चौर रीतिसे काव्यका उत्कर्ष बढ़ता है।

“चामदन्दिं वरुतवचारः” कामम् १” (चरुदण्डर) :

जिस वाच्यद्वारा मनमें विभिन्न चामन्द आता, वही काव्य कहता है।

“चरिचरुदिनिधिति कामम् १ वा च मनोवचनम् १ (चरुदिचौ रचना १”

(कोटय)

मनोहर एवं चमत्कारकारिणी रचनाविशिष्ट कविवाक्य द्वारा जो बनता, उसे ही विद्वान् काव्य कहते है।

प्रथमतः यह उत्तम, मध्यम चौर अधम भेदमे तीन प्रकारका होता है। यथा—ध्वनि, गुणीभूतव्यङ्ग्य चौर चित्तकाव्य।

चतिसय व्यङ्ग्यशुं एवं वाच्यार्थं चपिवा ध्वनि पक्षिक रहनेसे उत्तम, गुणीभूत व्यङ्ग्य सम्येसे मध्यम चौर शब्दचित्त तथा वाच्यचित्त चढ़ने एवं व्यंग्याहं-गूय्य चढ़नेसे अधम काव्य कहता है।

उक्त काव्य प्रकारान्तरमे द्विविध है—महाकाव्य चौर खण्डकाव्य। महाकाव्यमे सर्गबन्धन पायेगा चौर एक देवता चयवा मदर्शनात् धीरोदात्त गुण-गुण एक चतुर्थ किंवा एकवर्गीय मनुकुलजात बहुतर राजाकी नायक बनाया जायेगा। च्छन्दार, चौर चौर शान्तके मध्य एक रस उसका चङ्गीभूत होगा।

समस्त रम एवं समस्त नाटकमन्त्रि, इतिहास चयवा अन्य सज्जनायित चरित्त उनके पङ्क है। महाकाव्यके वर्ग चार है। उनमें एक जन है। प्रथम मनदतार, पागीवार्द, वसुनिर्दय, चसनिन्द्या चयवा सज्जन गुणागुकीर्तन करेगी। सर्गके प्रथम एकविध उत्तहृदयः द्वारा चौर सर्गके त्रियभागमें चत्यविध वृत्ता दाश रचना की जायगी। इस प्रकारके पाठ सर्ग जग सङ्गे, जो न बहुत चन्द चौर न बहुत दीर्घ रहे। किन्तु किमा-के चयनानुसार माना उत्तहृदयः द्वारा सर्गरेचना भी हो सकती है। उनमें प्रति सर्गके चमत्पर भाषी सर्गकी कथा-सुचना रह्यो। मन्त्र्या, सृष्टे, चन्द्र, रावि, प्रदीप, चन्द्रकार, टिपन, प्रातः, मध्याह्न च्युप्रा, चर्धेन,

कच्छं मन्दागिनं' एवं प्रयाया है । इन स्थानपर (ब्राह्मणकोटि मत्तमं) चारुं (चारुं च १) लोकापत कच्छं मन्दागिनं वृद्ध है । घर्मापुराणे स्वधर्म-प्रतिपाद्य पत्नये प्रसाद्य वृद्धं करतं है, वृद्ध वभीं चारुं मत्तपर नर्हीं मत्तं । "

कागिपुरावस्थापकका मत युक्तिमयूत समस्त नर्हीं ०हता । कागिपुराकारने पनेक स्थानमें ब्राह्मण-माध्यमे प्रसाद्य मद्रुद्ध किया है । केवल एक स्थानपर 'चरुं' चौर 'लोकापत' मद्रुद्धा उल्लेख देव्यं कृत्तिशार का लेन या मोह केसे कछ मत्तमें है । ए.वि.प. ८०००, २००० चौर लोकापत रूप देयो । जयादित्या एक परम धार्मिक चिन्तु रक्षे । राजतरङ्गिणीमें जिया है कि उन्हीने विष्णुसैन्य नामक एक विष्णुमूर्तिको प्रतिष्ठित किया था ० । १००० १०० । कागिकाशुक्तिमें विभिन्न समयमें रचित ७६ टीका मिलती है उनमें निम्नलिखित टीका प्रसिद्ध है—उपमन्युविरचित 'तस्यविमर्गिनी', जिनेन्द्र-दुर्हितरचित 'कागिकाशुक्तिविरचपञ्चिका', मेने-व-रचितकृत 'तस्यपदीय', हरदत्तरचित 'पटमसूरी' इत्यादि ।

- कागिपुरगठ (० लो०) स्कन्दपुराणका एक भाग ।
- कागिनगर (सं० लो०) कागिरीय नगरम् । कागी, बनारस विटी ।
- कागिनाथ (सं० पु०) कागीः कागीतीर्थस्य नगरस्य वा नाथः, १-तम् । १ मन्दादेव । २ कागीके राजा दिवोदास प्रभृति ।
- कागिप (सं० पु०) कागिं कागीपुरीं कागिदेगं वा पाति रचति, कागि-या-क । १ मन्दादेव । २ कागीके राजा ।
- कागिपति (सं० पु०) कागीः पतिः, १-तम् । १ मन्दा-देव । २ कागीके राजा । दिवोदास, प्रमल्लरि प्रभृति कागीके राजा । प्रमल्लरिने कई देवदेवपत्न्यं बनयि है । वृद्ध चान्दर्वटकी सिद्धा भी देति ये ।

कागिपुर (कागीपुर)—पुराणदेवका एक नगर । वृद्ध पचा० २८° ११' उ० चौर देगा० ०४° ४८' ४८' पू० पर मुरादाबाद नगरसे १५ कोस दूर अवस्थित है । कागिपुरमें तहसील भी है, जो मेमोताम जिनमें लगती है । उसकी पार्श्वभूमि चारुं चौर पश्चिमाय प्रद्वलमे भरी है । मध्य मध्य एष्यपूर्व प्रमदा भूखण्ड है । स्वान स्वान पर मन्दादि भी उत्पन्न होता है । तहसीलका परिमाण १८८ वर्गमील है । हिन्दु उनमें ८८ मील परिमितभूखण्डपर मध्य उपजता है । लोह-मन्त्या प्रायः ०५ हजार है । तहसीलमें १ कीकदारी पटालक चौर २ घाते है । कागिपुर नगर प्राचीन कालमें प्रसिद्ध है । उसका भग्नावशेष स्वान स्थान पर निकला है । लोहमन्त्या प्रायः १५ हजार है । मेमो-तामवे कागिपुर २२ कोस पड़ता है । वृद्ध एक मन्दा-तीर्थ माना जाता है । १६१८ चौर १६८८ ई०के बीच कागोनाथ पश्चिमाय नामक जिन्ही स्थितिने उक्त नगर स्थापन किया था । उन्हीके नामसे नगर भी कागिपुर कहाता है । पक्षी वहां ४ घाम रहे । उन्हीमें एकमें उल्लयिनी देवीका मन्दिर है । वर्तमान कागिपुरमें बाध कोस पूर्व उल्लयिनीका पुरातन दुर्ग था । चीन-वर्ति-प्राजसके भ्रमण-पुत्राणामें गोविन्दन नगरको जयाका उल्लेख है । प्रव्रतवदित् कनिङ्कम साहबके अनुमानसे वृद्ध कागिपुरमें ही अवस्थित था । पात्र भी वहां स्वान स्थान पर उपवन चौर मरोवर देव पड़ते हैं । एक मरोवरका नाम शीवनागर है । मन्थव है कि उन्ही शीवाचार्यके लिये पाण्डवने खोदा होगा । वृद्ध मन्थवक्षीय है । एक एक चौर ४ भी बाय लीथे निकसता । बदरिकाश्रम तीर्थको जामिनासे उक्त मरी-रामें घाम कर पामि बहते है । मरोवरके कुल पर पनेक मनीषास्य देव पड़ते है । कि उन्हीके पश्चिम कुल पर कई छोटे छोटे मन्दिर है । दुर्ग बहुत बड़ी बड़ी ईंटीका बना है । ईंटी १४ इंच लम्बी, १८ इंच चौड़ी चौर २ इंच मोटी है । पति प्राचीन कालमें वेसी ईंटी बनती थीं, पात्रकल जहाँ देव नहीं पड़ते । दुर्ग पार्श्वके भूमिमें प्रायः २० हाट ल'वे प्राचीन दास मिलित है । पात्रकल

० "वही कर्णो वरुणोऽथ इन्द्रश्च विष्णुः पितृन् ।
 मन्थव इति चोक्तं । कुर्वन् च वरुणः स्वः ।
 १००० मन्थवपुराणके विषयके है ।"
 (राजतरङ्गिणी, ४ । १०००, १००)

दुर्गका भग्नावशेष जंगलसे भरा है। पूर्वदिक् व्यतीत तीन तरफ खाई है। उत्तरपश्चिम और दक्षिणपश्चिम दोनों दिक् दो खानवर दो प्रवेशद्वारका विच्छेद वर्तमान है। दुर्गसे ४०० हाथ पूर्व ज्वालामुखी वा उल्लसिनी देवीका मन्दिर है। छोटे छोटे मन्दिरमें नागनाथ मूर्तेश्वर, सुक्तेश्वर, और यज्ञेश्वरकी मूर्ति हैं। वह प्राथमिक समझ पड़ते हैं। पुरातन मन्दिर प्रायः मृत्तिकासूप पर निर्मित हैं। उस प्रकारके अनेक सूप हैं। उनमें दुर्गको उत्तर दिक् प्राचीरके भीतर एक प्रकाण्ड स्तूप देख पड़ता है। उसे लोग 'मौमकी गदा' कहते हैं। ज्वालामुखीके मन्दिरकी पूर्वदिक्का स्तूप 'रामगिर गोमाई'का टीला' कहलाता है।

षाटम शताब्दके शिव भाग नन्दराम नामक एक व्यक्ति काशिपुरके शासनकर्ता रहे। उसी समय उन्होंने स्वाधीनताका प्रवर्तन किया। उनके सख-पुत्र शिवशालके राजत्वकाल काशिपुर अंगरेजोंके अधिकारमें गया। अंगरेजोंने काशिपुरके राजाको मजिस्ट्रेटकी क्षमता प्रदान कर रखी है।

काशिपुरमें एक दातव्य चिकित्सालय है। वह-सूतका मोटा कपड़ा बनता है, जो स्थानान्तरमें जाकर विक्रता है।

काशिपुर—बङ्गालके २४ परगनेका एक गण्डधाम। वह भागीरथीके तीरे कलकत्तेके निकट अवस्थित है। काशिपुरमें गोनोगोकी बनानेका एक सरकारी कारखाना है। भगवती सर्वमङ्गला तथा विदेग्वरीका मन्दिर भी वहां बना है।

काशिपुरी (सं० स्त्री०) काशिदेवीवपुरी, मध्य० काशि, वानारस। (भारत भूगोल० १५८ प०)

काशिप्रसाद वीथ—कलकत्तेके एक विख्यात कव्यकार। उनके पिताका शिवप्रसाद और पितामहका नाम तुलसीराम था। ईटइण्डिया कम्पनीके अधीन राज्याधीर रत्न तुलसीरामने प्रसुर कथं उपासक किया।

१८०८ ई० को ५ वीं अगस्तको उन्होंने जन्म लिया था। १२ वर्षके बचपमें उनको अक्षरपरिचय मात्र हुआ। १८२१ ई० को वह हिन्दू कालेजमें पढ़ने बैठे। किन्तु १२ वर्षके मध्य ही उन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त

की थी। १८२७ ई०को उन्होंने एक अंगरेजी पद्य लिखा "The young poet's first attempt" फिर भारत-इतिहास (History of British India.) की उन्होंने बहुत अच्छी समालोचना अङ्गरेजीमें बनायी थी। वह गवरनमेंट गजट और एशियाटिक जर्नलमें प्रकाशित हुयी।

कालेज छोड़ समसामयिक पत्रमें अङ्गरेजीके पद्य लिखने लगे। उनकी देख अङ्गरेज लोग भी सुग्ध हो जाते थे। १८२८ और १८३० ई० के मध्य ही उन्होंने अधिकांश पद्य बनाये। उनके "Hindu Festivals" नामक अङ्गरेजी काव्यमें दशहरा, भूसेकी भांकी, जषाष्टमी, दुर्गापूजा, कोजागर-पुर्णिमा, श्यामापूजा, कार्तिकपूजा, रावदादा, श्रीपञ्चमी, दोनदादा और अचयतौयादिका इतिहास तथा उक्तव्य वर्णित है। कप्तान रिचार्डसनने उनकी बहुत प्रशंसा की है। अर्मण्ड एलियट नामक किसी अङ्गरेजने "Views from India and China." नामक पुस्तकमें काशिप्रसादको अङ्गरेजीसे भी बढ कर कवि बताया है।

गद्यमें उन्होंने निम्नलिखित पुस्तक बनाये थे,—

1. Memory of Indian Dynasties containing (a) The Scindiah of Gwalior. (b) King of Lucknow. (c) The Holkar of Indore. (d) The Nawab of Hyrabad. (e) The Giakwar of Baroda. (f) The Bhonslah of Nagpore. (g) The Nawab of Bhopal.
2. Sketches of Runjeet Singh.
3. " of King of Oudh.
4. On Bengali poetry.
5. On Bengali works and writers.
6. The Vision—a tale. (उपन्यास)

१८४५। ४६ ई० को उन्होंने " The Hindu Intelligencer " नामक एक बडा साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया था। वह स्वयं उसके संपादकारी और सम्पादन रहे। १२ वर्ष तक वह पत्र निकलता रहा, किन्तु १८५८ ई० की वल्लभिके कारण अंशदापदीके विरुद्ध कानून बनानेसे बन्द ही गया।

“तस्यु सौमते रूपं मिश्रय शोपितः स्वयम् ।
 शरीरं सुन्दरतरं तं शोकाश्रुतिं मोहनम् ॥ ७२ ॥
 शोः परिश्रान्तिका काता निजरां सुममाश्रितः ।.....
 ततः शीघ्रं पुष्पाभा प्रथकोर्तिः स शीमलः ।
 मिथं विनयकोर्तिं तं महाविनयभूषणम् ॥ ८१ ॥
 त्वया विनयकोर्तिं यो धर्मः पटः समागतः ।
 यथास्यहमसिधेयं श्रवणं तं महात्मते ॥ ८२ ॥
 यमादिभिः संसारः कष्टं कर्त्तव्यमिति ।
 सर्वं मातृभवेदेव स्वयमेव विजोयते ॥ ८३ ॥
 ब्रह्मादिसत्यपदं यथावद्विनिश्चयम् ।
 यान्ते कैश्वरस्य न विजोयतरीयिता ॥ ८४ ॥
 -इहो यथाकदाचित् भवति न विजोयते ।
 ब्रह्मादिमहाकामानां भवति शोचते । तथा ॥ ८५ ॥
 विचारमायै ईदृशियं किञ्चिदधिकं कश्चिन् ।
 चारुो मैदुर्लभं निद्रा भयं सर्वं यत् समम् ॥ ८६ ॥
 ब्रह्मादिशौचशालानां तथा मरुत्को मवम् ॥ ८७ ॥
 सर्वं तनुभूतसुखा यदि बुद्ध्या विचार्यते ।
 इदं निश्चयं केनापि शो हिंस्यः कोपि कश्चिन् ॥ ८८ ॥
 चर्हिंसा परमो धर्म इहोक्तः पुण्ड्रिभिः ।
 तस्मान् हिंसा कर्त्तव्या नरेभिरशोचति ॥ ८९ ॥
 हिंसको नरकं गच्छेत् सगं नरकं दर्शयकः ॥ ९० ॥
 सुखेऽपि सुमानसिपु यथाहृद्विनिश्चयम् ।
 यदनेन वरो भोको न शोकोऽप्यः कश्चिन् पुनः ॥ ९१ ॥
 यासावाहितो भवमुच्छेदं प्रति भुञ्जन् ।
 विद्याभो परमो भोको विप्रैश्च सचिन्तये ॥ ९०० ॥
 प्राणाधिक्ये सुतिरिचं शोचते शैवशासिभिः ।
 न हिंसान् सर्वं ज्ञानं नाम हिंसा प्रवर्तिका ॥ ९०८ ॥
 चर्हिंशोभोवमिति या भामिना सासनामिह ।
 न सा इमांश्च शान्तिं पश्यन्तश्चकारिका ॥ ९०९ ॥”

(काशीचण्ड १८५)

भगवान् शोपतिने परममोहन शोगत (बौद्ध) रूप
 शौर मच्छी देवीने भी उसी समय परम मनोहर
 परिश्रान्तिका रूप धारण शिया । ...पुष्पकोर्ति नामक
 बौद्ध परिश्रान्तक रूपधारी भगवान् अपने प्रिय शिष्य
 विनयभूषण विनयकोर्ति को मनोपहन कर इस प्रकार
 निज धर्म व्याख्या करने लगे—“इ विनयकोर्ति ! तुमने
 समागत धर्म विषयक की सकल प्रशंसा किये, हम
 श्रेय प्रकाशके समकाल उत्तर देते हैं। तुम सुनो। यह
 नैसर्गिक धर्मादि है। इसका कोई कर्ता नहीं। यह

स्वयं उत्पन्न शौर शिलीन होता है। ब्रह्मादि स्वयं
 जितने देही हैं, एक अद्वितीय प्रामाणी ही उन सबका
 ईश्वर है। उससे स्वतन्त्र अन्य किसी स्रष्टाका अस्तित्व
 सम्भव नहीं पड़ता। हमारा यह देह कैसे कालवश
 शिलीन होता, वैसे ही ब्रह्मादि देवगणमें मयाक प्रयत्न
 सकल प्राणियोंका देह स्व स्व निर्दिष्ट कालके अनुसार
 विनय पाता है। विचारपूर्वक देखनेमें जीवगणके
 देहमें परस्पर किसी प्रकार न्यूनाधिक्य नहीं पाता।
 कारण सर्वत्र सर्वदेहमें आहार निद्रा शौर भय सम
 भावसे विद्यमान है। हमें जिन प्रकार मरण भय
 रहता, उसी प्रकार ब्रह्मादि कौट प्रयत्न सकल देह-
 धारीको मरना पड़ता है। बुद्धिपूर्वक विचार करनेसे यह
 स्थिर होता, कि मकल प्राणी समान हैं। सुतरां यही
 करना चाहिये, जिसमें किसी प्रकार प्राणहिंसा न
 हो। पूर्वतन पक्षिंतोने कहा है—“चर्हिंसा परम धर्म
 है।” इसी कारण नरकभोग प्रदुषोंको कभी प्राण-
 हिंसा करना न चाहिये। हिंसाकारो भोग्य नरकमें
 गमन करते हैं। चर्हिंसक व्यक्ति स्वर्ग पाते हैं। सुख
 भोग करते करते देह विस्मरणता नाम ही परम मोक्ष
 है। एतद्विषय अन्य कोई मोक्ष नहीं होता। वासनाके
 साथ पञ्चविध क्षुभका समुच्छेद होने पर विद्यातका
 नाम ही यथार्थ मोक्ष है। तत्त्वज्ञानी व्यक्ति ऐसा ही
 नियय करते हैं। वेदवादी यह प्रामाणिक श्रुति कौतंन
 करते हैं—“समस्त भूतगणकी हिंसा करना न चाहिये
 हिंसाप्रवर्तक कोई श्रुति प्रामाणिक नहीं। ‘अग्निपो-
 तीयमें पशुहत्या करना चाहिये’ इत्यादि जो श्रुति है,
 यह केवल समाधुर्बोको भ्रान्ति बढानेको है। विद्वान्
 पण्डित उसको प्रमायको भाति स्वीकार नहीं करते।”
 इत्यादि।

कागोच्छेदमें आगोवाग्निर्वाको मोहित करनेके
 लिये विष्णुके बौद्धरूप परिचयको कथा निम्नी रहने
 वस्तुतः हममें कोई संदेह नहीं कि वह रूप न वर्षगा
 मात्र है। उक्त प्रस्तावने इतना ही अनुमित होता
 किसी समयमें कागीमें बौद्धधर्मावलम्बितोंमें प्रवृत्त हो
 इन्द्रधर्मको प्रमायना की थी। मन्वन्तः रिपुच्छय
 दिवोदास भी प्रथम बौद्ध रहे। कागोच्छेदमें लिखा है,—

“हृदयिभ्यामपि राजप्रमुखात् सन्नेभ्यः ३ ॥ १ ॥

बर्ह वल्लभिरपि सुराणां गोत्रि दुःखैः ॥”

भसुर यह कह कर उनका (राजा रिपुञ्जय दिवो-
दासका) श्राव करते थे, ‘चापके राज्यमें देव लोग रह
नहीं सकते। सुतरां हम सब स्वविभवके अनुसार चाप-
की सेवा करेंगे।’

उक्त श्लोकसे यही अनुमित होता कि भसुर अर्थात्
देवविद्देवो सर्वदा रिपुञ्जयके निकट रहते और देव
अर्थात् देवभक्त ब्राह्मणादि उनके राज्यमें कम देख
पड़ते थे। सम्भवतः हिन्दू धर्मके पुनरुत्थान समय
काशीमें शक्त बौद्धराजा ही राजत्व करते थे और
पीछे वही ब्राह्मणकण्ठक हिन्दूधर्ममें दीक्षित हुये।
उन्हींके समयमें पवित्र वाराणसी धाममें फिर देव-
मन्दिर और देवमूर्तिकी स्थापना होने लगी। विष्णु-
पुराणमें भी एक स्थल पर लिखा है कि विष्णुने एक
बार वक्रा द्वारा वाराणसीको दम्भ किया था।

(विष्णुपुराण १ अंश, १० पं०)

वाराणसीमें एक काल बौद्धधर्म प्रचलन होनेके
अद्यापि अनेक निदर्शन मिलते हैं। वाराणसीका पार्श्व-
वर्ती सारनाथ बौद्धोंका एक पवित्र तीर्थस्थान कह-
लाता है। ई० चतुर्थ शताब्दीकी चीन-परिव्राजक फ्रा-
ङ्गि-यान और षष्ठ शताब्दीके ग्रेग भाग युचन सुयाङ्ग
उक्त सारनाथ गये थे। उस समय भी वहाँ अनेक बाह-
कीर्तियाँ थीं। उनका अर्धसावरीय अद्यापि वर्तमान है।
सारनाथ देखो। काशीपुरीमें भी बौद्ध-कीर्तियोंका यत्-
सामान्य अर्धसावरीय देख पड़ता है।

यह निर्णय करना कठिन है—किसे समय
काशीमें हिन्दूधर्मका पुनरभ्युदय हुआ। ई० षष्ठ
शताब्दीके ग्रेग भाग चीन-परिव्राजक युचन सुया-
ङ्गके जाने समय काशीमें हिन्दूधर्म प्रवल था। उन्हीं
ने वाराणसीधाममें शताधिक देवमन्दिर और प्रायः
दश मङ्गल देव उपासक देखे थे। श्रीचैत्रकी मादला-
पत्नीके मत में सत्त्वराज यथातिक्रमोने ८८६ शक
को भुवनेश्वरका विस्तृत शिवमन्दिर निर्माण कराया

था। भुवनेश्वर वाराणसीके अनुकरण्य पर बना है।
रक्षाय देखो। सुतरां यह पक्व हो स्वीकार करना पड़ेगा
कि उसमें भी पहले काशीमें हिन्दूधर्मका पुनरुत्थान
हुआ।

पतञ्जलिके महाभाष्यमें वाराणसीका उल्लेख है
और इसका भी प्रमाण मिलता कि उस समय वहाँ
शिवोपासना भी प्रचलित थी। पतञ्जल देखो। सम्भवतः बौद्ध-
राज अयोध्याके मरने पर और महाभाष्य बनते समय
वाराणसीमें हिन्दूधर्म फिर बढ़ने लगा था।

हिन्दूधर्मके निकट काशीकी अपेक्षा पवित्र तीर्थ
लगत्तमें दूसरा नहीं। प्राचीन मुनि ऋषि उक्त मुक्ति-
धाम काशीका माहात्म्य सुक्तकण्ठसे कीर्तन कर गये हैं।

मत्स्यपुराण निर्देश करता है—

“बर्हं शुद्धतमं चैत्रं सदा वाराणसी नमः।

सर्वेषामेव भूतानां शिर्षोत्थल सर्वदा ॥” (१८०३०)

हमारा यह वाराणसी चैत्र सर्वदा शुद्धतम है।
यह नियत ही समस्त जीवगणके मोक्ष लाभका हेतु है।

“विषयासक्तविभोऽपि स्वल्पधर्मरतिनेरः ३ ॥ १ ॥

इह चैत्रे सर्वतः शोऽपि संसारं न पुनरिरीतम् ॥”

धर्मके प्रति अनुराग परित्याग कर इन्द्रियभोग्य
विषय एकात्म आसक्त विलस होने मो यदि कोई वारा-
णसी चैत्रमें मरता, तो उसे संसारमें प्रवेश करना नहीं
पड़ता और भवशुद्ध मोक्ष मिलता है।

“आविस्तरुष कर्मिन् मया ते शुद्धसुप्तम् ॥ ७१ ॥

अगः परतरं भाति विद्विद्वद्वा मरिचरिः ॥”

हे देवि! मरनेवाली! हमने तुमसे अविस्तरुषका
पतिगय शुद्ध विषय कीर्तन किया है। फलतः इसको
अपेक्षा सिद्धि विषयमें उत्कृष्टतर विषय संसारमें
दूसरा नहीं।

“एवामो वा सवामो वा कपि तिरिं महीशिवि वा।

अरिष्ठके अजन्म प्राणान् मम शोके महीशिवे ॥” (१८१ ॥ ११)

अकाम हो या सकाम हो अथवा तिर्यग्योनिजात
हो हो, अविस्तरुषमें प्राणत्याग करनेमें वह निश्चय
हमारे शोकमें (शिवभोक्तृमें) पूजा पाता है।

काशीराज्यकी राजधानी थी। (१) प्रतिष्ठान (प्रयाग) पर्यन्त काशी जनपदके पश्चिम भूत था। (२)

राजकाल काशी कछनिसे छी वर्तमान धाराणसी वा बनारस नामक नगरवा शोध होता है। किन्तु पूर्वोक्त प्राचीन शास्त्रादि द्वारा प्रमाणित होता कि पड़ले बड़ नगर सृष्टदायक न था। चीनपरिव्रजनक फाहियानके ग्रन्थपाठसे समझ पड़ता कि ई० पश्चिम गताब्दकी काशी एक विस्तीर्ण जनपद थीर धाराणसी उसका प्रधान नगर कहलाता था।*

विष्णु प्रभृति प्राचीन पुराणमें वर्तमान काशी "काशीपुरी" और "धाराणसी" नामसे अभिहित दृष्टी है। (विष्णु पुराण ५। १४। १८-४१)

पुराणदिमें काशीपुरीकी सीमा और परिमाण इसप्रकार निरूपित दृष्टा है—

"विशालमनु तनुसैव" पूर्वपरिमनः चतुः ।
 चर्चयोजनपरिसौषं तनुसैव" दक्षिणोत्तरम् ॥
 वरुणा हि नदी गारुड वायव्य च्चनरी तु व ॥
 भीमवर्षिकधारण्य चर्चनेष्वरुणिके ॥"

(अथारुण्य, १८१। ४१-४८)

बड़ क्षेत्र पूर्व पश्चिम दो योजन प्रायत और उत्तर-दक्षिण चर्च योजन विस्तृत है। वरु धरणा नदीसे शुष्क नदी पर्यन्त और भीमवर्षिकसे धारण्य कर पर तेश्वरके निकट पर्यन्त अवस्थित है।

(१) "विष्णु ततो रामो बद्धमङ्गलीमवदत् ।
 मन्दनं काशिवर्षिं परिषत्ते इममग्रेत् ॥
 उचोमय त्वथा रोमन् मारुतः कृताः सङ्ग ॥
 तावत्पुत्र काशिवसुतो धाराणसी मम ॥
 समुचीर्षा त्वथा कुर्वाणुषाचारं सुतो रथात् ॥"

(उत्तरकाण्ड, ४। १५-१७)

(२) "नमः भविष्य मरुता रिपानसुवर्णमिवात् ।
 विदिषं च यतो राजा मणानि कुवाणम ॥
 पुत्रपुत्रा मद्राणं च मम मङ्गलम् ॥
 इति जने पुत्रवरे काशिराजं मद्राणम् ॥"

(उत्तरकाण्ड, ६८। १८-१९)

* मङ्गलान्त. सुचोमयं, ११६ व० और ११० व० देखी।

• Fo-Kwo-Ki, Ch. XXXIV, translated by E. L. Laidley, p. 310.

किर उसके नाम—

"विद्यो जनमदोषं च तनुसैव" पूर्वपरिमन् ।
 चर्चयोजनपरिसौषं दक्षिणोत्तरम् ॥
 धाराणसी नदी वायव्य वायव्य च्चनरी तु व ॥"

(१८१। १८-१७)

विष्णुपुराणकी समस्तकुमारसंहितामें कहा है—

"धैर्यात्मनः सुख श्रेष्ठया सह मङ्गला ।
 वरुणा नम तवै व मङ्गलमिष सरिषा ॥" (१५। १११)

वरुणा और मद्रामि (चर्मि) नाम्नी दो नदी उस क्षेत्रको घेरकर त कर जाओसे मिल गया है।

विष्णुपुराणका ज्ञानसंहितामें लिखा है,—

"तत्र च तैजसः सारं पञ्चमीमाश्रके चनम् ॥" (४६। ८)

वामनपुराणमें बताया है—

"यो इतो मद्राण्यके पुच्छे मन्दमवमसो इत्यन्तः ।
 प्रयागे चनने नित्यं दामप्रयागेति विदुषः ॥
 धरणाद्विष्णुनाम विनिर्मिता सरिषा ॥
 विदुषा चरुष्यं च सर्वं वाङ्मना मुभा ॥
 सम्यग्दत्ता विदोषा च चरुषिर्षं च विदुषा ॥
 तत्र मे च सविच्छेदे कोषपूर्णा च ननुः ॥
 तयोर्मध्ये तु को ईकसत्सुसैव योः सप्रतिष्ठा ॥
 मेलोत्तरवर्षं तोषं चर्चवापवसोचनम् ॥
 न तादृशं हि मयने न भूयः न नमस्तथै ॥
 मणानि नरतो पुष्पा ख्याता धाराणसी मुभा ॥"

(१। १४-१८)

इस विषय मद्राण्यके मध्य प्रयागमें हमारे (विष्णुके) पंशजगत चर्चय युद्ध योगगायी नामसे निरन्तर वास करते हैं। उन्के दक्षिण चरुष्ये सर्व पाप-प्रणामिनी ममहारी वरुणा और वाम चरुष्ये पनि नाम्नी विष्णुवत द्वितीय नदी निःसृत दृष्टी है। सङ्ग समय नदी भौकसम्य पूजनोया है। उनके मध्यस्थलमें योगगायी मद्रादेवका सर्व पापनाशन विनीहके मध्य सर्वत्रेष्ठ तीर्थचरुप क्षेत्र है। सुविख्यात मोषदायिनी पुष्कमयी धाराणसी नगी उन्नी स्थानमें विराजित है। उन्ना स्थान, आकाश, पातान वा भूमण्डन खड़ी मिल नहीं सकता।

शिवपुराणकी ज्ञानसंहितामें लिखा है,—

“वचकोष्ठाः परं भाषन् विषय मुनिवचनैः” (३८।२१)

त्रिमुक्ताके मध्य पञ्चमोकी (वाराणसी)-की अपेक्षा उक्त एतत् क्षेत्र जगत्में अन्य कीर्ति नहीं।

“धर्मस्तोत्रनिपत्तं च” मोक्षस्तोत्रनिपत्तम् ।

विषयीशोत्रनिपत्तमसिद्धं विदुर्गयाः” (१०।११)

सत्य ही जैसे धर्मकी उपनिपत्त अर्थात् उक्त एतत् महत्त्व और मान्ति ही जैसे मोक्षका गुह्यतम विषय है वैसे ही भविष्यत् क्षेत्रको बुध जोग क्षेत्र भार तीर्थका उक्त एतत् महत्त्व समझते हैं।

निष्कुराणमें लिखा है,—

“शिवे च कुर्वते न शशास्त्रे च पुष्करे ॥ ३६ ॥

शामान् संश्रिताशानि न मोक्षः प्रापते यतः ।

इह संश्रयते येन तत एतद्विजिष्यते ॥ ३७ ॥

प्रथमे वा श्रवणोच इह वा भक्तपरिवहणम् ।

प्रवासादपि मोक्षायावद्विमुक्तमितरे परम् ॥ ३८ ॥

कुर्वेद्युग सम धेने मयि सन्निहितक्रियः ।

सेनर्द्धैश्चन्द्रार्द्धैश्च मत्प्रसन्नवाप ॥ ३९ ॥

पराशरमुनी योगी श्रद्धिर्ध्यातुं महत्तयाः ।

भक्त भक्तो भविष्यत् वेदतः श्रावणवर्तकः ॥ ४० ॥

रक्षते मोक्षपि पद्मापि सेने इक्षिन् मुनिपुत्रवः ।

ब्रह्मा दीर्घवर्तिः काचः शिखरीपि दिवाकरः ॥ ४१ ॥

शिवराजसदा शक्तो वेदवि चाश्वः विकीर्षणः ।

उदासते महात्मानं सर्वं मानिह सुवने ॥ ४२ ॥” (२१ च०)

हे पद्मापि ! नैमिषक्षेत्र, कुर्वक्षेत्र, गङ्गाह्वार और पुष्कर सकल तीर्थमें खान पदया पवस्थानपूर्वक सेवा करनेसे जीव मोक्ष नहीं पाते, किन्तु भविष्यत्क्षेत्रमें पवस्थ पा जाते हैं। सुतराँ इसमें सन्देह नहीं कि भविष्यत् क्षेत्र श्रेष्ठतम है। हमारे पधितानके कारण प्रयाग और काशीमें मोक्ष लाभ होता है। काशी तीर्थश्रेष्ठ प्रयागसे भी श्रेष्ठतर है। कुर्वेरी समस्त क्रिया समर्पणपूर्वक हमारे वाराणसी क्षेत्रकी ही सेवा करनेसे गण्येगत्व पाया है। हमारे भक्त पराशरके पुत्र-योगिनप्रवर महात्तयाः ऋषिवर व्यासदेव वेदविभागकर्ता और वेदमर्यादाके प्रवर्तक हैं। वह मुनिवर भी वाराणसीमें ही परमानन्दने पवस्थान करनेगे। अधिक क्या कहें—देवर्षिगणके साथ ब्रह्मा, विष्णु,

दिवाकर, देवराज इन्द्र और अन्याय महात्मा देव सभी काशीमें हमारे उपासना किया करते हैं।

कूर्मपुराणमें कहा है,—

“शान्ध्यामभित्थानां परमानन्दनिष्कानां ।

प्रागभित्थिताः पुत्र शक्तिपुत्रेण यतस्तु ॥ १८ ॥

यानि काचैश्चिस्तु कृतानि दिनेककालि निष्कानाः ।

पुरी वाराणसी तेषां स्थानेष्वेवैव्यधिक्ता यथा ॥ १९ ॥

यत्र मायाशक्त्यादीने देशानि स्वयमोचरः ।

व्यापते तत्रकं ब्रह्म तेषां च भविष्यत्कृतम् ॥ २० ॥

भू माये नामिमज्जे च इत्येतिरिच भूषेति ।

यथाविस्तृतमादित्ये वाराणस्यां व्यवस्थितम् ॥ २१ ॥

वाराणस्यास्तथा नामो वाराणसी पुरी ।

वाराणस्याः परं स्थानं न मम न भवत्यपि ॥ २२ ॥

हे सुनोचने ! परमानन्द नाम तो वाचना कर प्राण और ध्यानमें निविष्टचित्त जो गति पाते, भविष्यत्क्षेत्रमें मृत व्यक्ति भी वही गति पा जाते हैं। देव जिन सकल काम्यवर्जित स्थानोंकी कथा कहा करते, उन समस्त स्थानोंकी अपेक्षा वाराणसी श्रेष्ठतमा और शुभदायिनी है। काशीमें प्राण परित्यागके समय साक्षात् ईश्वर महादेव भू, नामि और हृदयमें तारक ब्रह्म नाम कीर्तन करते हैं। प्रादित्यके मध्यकी भांति वाराणसीमें भी भविष्यत्क्षेत्र पवस्थित है। परया और पश्चिम दो नदीके मध्यस्थलमें वाराणसी पुरी प्रतिष्ठित है। वाराणसीके तुल्य स्थान आजकल न है, न हुई और न होगी।

काशीवपुष्पमें कथित हुआ है,—

“भविष्यत्क्षेत्रमासिमादिनेमभित्थितम् ।

न च हित्थित् कुर्वित्थित् इत्याद्युक्तम् ॥ २३ ॥

ब्रह्माण्यमर्थं न भवेत् पवक्षेत्रोपमाथनः ॥ २४ ॥

यथा यथा हि वपेत् तत्रभिक्षां पवत् ॥

तथा तयोपैरीरक्षत्पवत् पवथादि ॥ २५ ॥

सेवनेतत् विद्ययावै भविष्यत्सिद्धिं विभ ।

चत्वारिसे न भूतिर् नैचमे सुदुर्लभः ॥ २६ ॥” (२१ च०)

जहाँ विष्णेश्वर वास करते, उस महाक्षेत्र भविष्यत्क्षेत्र अपेक्षा मनोरम और महत्प्रदायक वस्तु इह ब्रह्माण्डगोलकके मध्य नहीं है। उक्त क्षेत्र पवक्षेत्र नाम परिमित है। प्रलय कालकी एवापेक्षावा जह

काशीखण्डमें कहा है—

“पवित्र वरणा दत्त चैत्ररात्रौ कृते ॥
वाराणसीनि विद्यायाः सदास्य महासुते ।
वदन् वरणायाय सङ्घर्षं प्राप्य काशिका ॥” (१० । १८-००)

सत्ययुगमें जिस दिन काशीखेत्त रत्ना कारनेके लिये पसि और वरणा नदी निकली, हे सुनि ! उसी दिनसे काशिका वरणा और पसि नदीका सङ्घर्ष लाभ कर 'वाराणसी' नामसे विख्यात हुयी है ।

किसी किसी पाशात्य पुराविदके मतमें वरणा और पसिके मध्य रहनेसे ही काशीपुरी वाराणसी नामसे प्रथित हुयी है । किन्तु यह मत नितान्त आधुनिक है । किन्तु हमारे विवेचनमें काशी नितान्त आधुनिक नहीं ठहरती । पुराणकी कथा छोड़ उपनिषद्की बात मानते भी उक्त पौराणिक मत समर्थक प्राचीन समझ पड़ता है । यथा,—

“यत्तु जलतोः प्राथेत्तुक्तमनाथेत्तु रद्वारकं त्रयं व्यापत्ते, वीनासायव-
तो मृत्वा मोषो भवति ; तस्माद्विसुक्तमिव निर्वं वैत ; पविस्तुत्तं न विसुत्तेत्तु
एवमेवैतद्वं व्यापवत्त्वा ।...श्रीःपविस्तुक्तः कश्चित् प्रतिष्ठित इति । वरणायां
प्रायाय मध्ये प्रतिष्ठित इति । का वै वरणा का च जालीति । सर्वाग्निन्द्रिय-
कृतान् दीवान् वारवतीति तेन वरणा भवतीति । सर्वाग्निन्द्रियकृतान्
पापान् नापयतीति तेन नामो भवतीति ।” (काशाशोपनिषद् 1-1-२)

इस स्थानपर जन्तुके मरण काल रुद्र “तारकव्रह्म” नाम कीर्तन करते हैं । जिस हेतु उसके द्वारा जीव अमृतत्व लाभकर मोक्ष प्राप्त होता है । अतएव इस पविस्तुक्तदेवमें वास करना एकान्त कर्तव्य है ; पविस्तुक्तको कभी छोड़ना न चाहिये । हे याज्ञवल्कर ! हमने जो कहा, उसे सत्य समझियेगा । वह पविस्तुक्त क्षेत्र कहाँ प्रतिष्ठित है ? वह वरणा और नाशी दो नदीके मध्य अवस्थित है । किसीको वरणा और किसीको नाशी कहते हैं ? समस्त इन्द्रियवृत्त दोषराशि निवारण करनेवालीको “वरणा” और समस्त कृत पाप नाशकरनेवालीको

जावालदीपिकामें

“वाराणसी” में विद्यमान

‘वसोवस्वयोर्ध्वे पञ्चमोय’ महारत्न ।
‘वमरा मरचनिष्कान्ति का कथा इतरे जगताः ।’
वरणाजालीयद्वयोः प्रसिद्धिनिर्माण इच्छति ।”

बौद्धिक आधिपत्यकाल शाक्यसिंहने उक्त वाराणसी प्रदेशकी अन्तर्गत ऋषिपत्तन अगदाव नामक स्थानमें जाकर धर्मप्रदेश प्रदान किया था । (बलिबिहार १५ पृ०) यहाँ तक कि खुरीय पठ शताब्दके ग्रंथ भाग चीन-परिव्राजक युयनचुयाङ्ग जब वाराणसीस्थ वीह तीर्थ दर्शनकी गये, तब वाराणसी-राज्य प्रायः ३३ कोस (४००० लि) और वाराणसी नगरी ६३ कोस (१८-१८ लि) दीर्घ तथा प्रायः आधकोस (५ । ६ लि) विस्तृत थी ।

अकबर बादशाहके समय बनारस एक स्वतन्त्र सरकार रहा । आईनअकबरीमें लिखा है—“बनारस सरकारका परिमाण ३६८६ बीघा है । ८ महल एवं सरकारके अधीन है । प्रधान स्थान अफराद, बनारस-नगर और उसका सन्निहित स्थान बियालिषी, पन्द्रहा, कसवार, कतेहर, ब्रह्मया हैं ।”

आजकल भी बनारस एक स्वतन्त्र विभाग है । वह युक्तप्रदेशवाले लाटके अधीन है । एककमिश्नर उसपर तत्त्वावधान रखते है । भूमिका परिमाण १८३३० वर्ग-मील है । आजमगढ़, मिर्जापुर, बनारस, गाजीपुर, गोरखपुर, बसती और बलिया जिला उस विभागके अन्तर्गत है । उनमें बनारस जिला ८६८ वर्ग-मील विस्तृत है । उक्त जिलेकी उत्तरसीमा गाजीपुर तथा लोनपुर, पूर्व-शाहबाद और दक्षिण एवं पश्चिम मिर्जापुर है । प्रधान नगर बनारस (काशीपुरी) है । आजकल उसका आयतन ३४४८ एकर मात्र है । वह अक्षा० २५° १८' ३१" उत्तर देशा० ८३° १' ४" पू० पर अवस्थित है । उक्त नगर हिन्दू जातिके निकट सुव्यवस्थापित काशीतीर्थ नामसे परिचित है । युक्तप्रदेशमें बनारस

विषय प्रकार बढ़ता महादेव उमी प्रकार उल्लेखित
उपमित होकर ऊपर उठा करते हैं। अर्थात् काशी
महादेव त्रिशूलके पंचभाग पर पंचस्थित है। यह
भाकाग घोर भूमि पर पंचस्थित नहीं, मूढ़ व्यक्ति
कैसे समझ सकते हैं ?

काशीपण्डित कहते हैं,—

“सैतं परितं हि वधाविसृज्यते नामधेया वज्रतिभिः प्रयुक्तम् ।
न चर्मणोर्न च तेः पुरादेः साकाशपरम्” हि उदाविसृज्यते ॥

उद्योवाधेति आवाधिराधेतिरित्या मता ।

वरणा विह्वला मातो तदन्तराविसृज्यते ॥

सा सुपुत्रा परा माहोत्तमं वाराणसी त्वमी ।

तःकोटनये सर्वत्रमुत्तमं हि सुगो वरः ॥

तारकं ब्रह्म व्यापते तिम ब्रह्म सधनि हि ।

एवं द्यौको भवदेव चाहर्षं वेदवादिनः ॥

माविसृज्यते सैतं माविसृज्यते मतिः ।

माविसृज्यते लिङ्गं सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥” (३ । १४ — १८

पवित्रमूल क्षेत्र जैसा पवित्र है, जगत्में कोई भी
स्थान वैसा नहीं। यह नहीं कि वह क्षेत्र चर्मशास्त्र या
पुराण द्वारा प्रतिपादित हुआ है, किन्तु स्वयं सृष्टि
उसको प्रतिपादन करती है। अतएव सर्वथा पवि-
त्रमूल क्षेत्र प्रायश्चरणा लीचीका एकात्म कर्तव्य है।

सुप्रसिद्ध मुनिश्रेष्ठ जायलिन कहते हैं—“हं प्राह्वे ।
पति नदी डडा, वरणा नदी विह्वला घोर उभयके
मध्यस्थित पवित्रमूलक्षेत्र सुपुत्रा माडो कहता है ।
उल्लेख नाहीययको ही वाराणसी कहते हैं। उल्लेख वारा-
णसीमें प्राणत्याग करनेसे भगवान् महादेव जावके
दक्षिण कर्णमें तारकब्रह्म नाम कीर्तन करते हैं।
उसमें जीव ब्रह्मकी स्वरूपता पाते हैं। इस विषयमें
वेदवा पण्डित द्यौक कीर्तन करते हैं—“पवित्रमूलके
समान महतिदायक स्थान दूसरा नहीं। पवित्रमूल-
स्थित शिवलिङ्गकी तुल्य अन्य शिवलिङ्ग कहीं नहीं
उल्लेख वाक्य निराय ही सत्य है। हममें कोई मन्देह
नहीं।”

“बनो विनेदरो दैतः बनो वापको पुगे।” (१२ । १५)

कलिकाममें विश्वेश्वर को एकमात्र देव घोर वारा-
णसी ही एक मात्र मोक्षपुरी है।

देवदेव विश्वेश्वर वाराणसीके पवित्रात्री देवता

है। अतिप्राचीन कालमें हिन्दू विश्वेश्वरकृपी भग-
वान्की पाराधना करते पाते हैं। मध्य, पूर्व, लिङ्ग
घोर शिव प्रभृति पुराणमें विश्वेश्वरका माहात्म्य वर्णित
हुवा है।

“पञ्चकोशः परं नाम्नु सैव भुवनवधे ॥

अथवा पापिनी पापकोटिनाथ स्वयं वरः ।

मन्वन्तीके सभं सैतं समस्त्याय स्थितः सदा ।

यथा तथानि पञ्चैवं पञ्चकोशी सुनीवराः ॥ २४ ॥

यत्न विनेदरो दैवो श्याम्य सस्थितः स्वयम् ।

यदिनं हि समाम्ना वरः श्याम्यसुपागतः ॥ २५ ॥

तदिनं हि समाम्ना काशी वेदवता वरम् ॥”

(शिवपुराण, आत्मविद्या ३८ पं०)

है सुनीन्द्र। पञ्चकोशीके मुख्य उल्लेख स्थान त्रि-
भुवनके मध्य दूसरा नहीं। अथवा पापिनीके पाप
विनाशकी स्वयं महेश्वर मत्स्यलोकमें परमोत्कृष्ट स्थान
स्थापनपूर्वक नियत पंचस्थिति करते हैं। अतएव
पञ्चकोशी त्रिलोकमें धन्य है। वहाँ स्वयं देवदेव
विश्वेश्वर जाकर पंचस्थित हुये हैं। जिन दिनसे महादेव
काशी गये, उसी दिनसे वह पवित्रोत्त हुयी है।

“न वैवर्षं ब्रह्महत्या प्राक्कृतं च निवर्तते ।

प्रायश्चित्तेनैव हर्षं न सा मुच्येतिमादते ॥”

(महाभारत, १२२ । १७)

वहाँ केवल ब्रह्महत्या ही नहीं, प्राक्कृत पाप-
पुण्यादि समस्त कर्म मिहत्तं हो जाता है। देवदेव
विश्वेश्वरको पाकर उल्लेख कर्म सकल पुण्यवत् उत्पन्न
हो नहीं सकता, सुतरां मोक्ष मिलता है।

चीन-परिव्राजक यूचन सुयाङ्गने वाराणसी
जाकर गतहस्त उच्च ताम्रमय विश्वेश्वर लिङ्ग देखा
था ॥

प्राजकन यह गतहस्त उच्च ताम्रमय लिङ्ग
कहाँ है ? प्रायः तैरह सो सर्व पूर्व चीन परिव्राजकने
को गतहस्त उच्च ताम्रमय लिङ्ग देखा, प्राजकन
उसका निदर्शन अथवा तत्पर्याय किसी प्राचीन
ग्रन्थमें उसका उल्लेख तक नहीं मिला। सम्भवतः

पुरातन—विष्णु और ब्रह्माण्डपुराणके मतसे पायु-
वंशीय सुहोत्रपुत्र काग (२) प्रथम राजा थे। उनके पुत्र का
नाम काशिराज वा काश्या था। सम्भवतः काशिराज
काश्यके नामानुसार ही उनका राज्य 'काशि' वा
'काशी' नामसे विख्यात हुआ है। काशिराजके बाद उनके
पुत्र दौर्धतमाने राज्य किया। दौर्धतमाके धन्व नामक
एक पुत्रने जन्म लिया था। उन्होंने यदुकान तपस्या
कर धन्वन्तरि पुत्र पाया था। (२) क्षत्रियराज
धन्वन्तरिने महर्षि भरद्वाजके निकट, शिक्षालाभ कर
पायुर्वेदको पाठ भागमें विभक्त किया। पायुर्वेदको
विभक्त करनेसे ही वह वेद्य नामसे विख्यात हुये।
काशिराज धन्वन्तरिके शौरसे वंशमान्ने जन्म लिया। (३)
महाभारतके अनुशासन पर्वमें राजा वंशमान् हर्ष्यश्र
नामसे प्रसिद्धित हुये है। सम्भवतः हर्ष्यश्रके राजत्व
काल वाराणसी नगरी बनी थी। (४) उसी समय यदु-
वंशीय हैहयके पुत्रोंसे काशिराजके विवाहका सूत्रपात
हुवा। पचमपैमें हैहयके पुत्रोंने घोरतर सुदेवकर हर्ष्य-
श्रको मार डाला। हर्ष्यश्रके मरनेपर सुदेव काशीके
सिंहासनपर बैठ राज्य पालन करत रहे। हैहय लोग
फिर भी चान्त न हुये। उन्होंने पुनर्शर जाकर सुदेवको
मार यथास्थान प्रस्थान किया। सुदेवके पुत्र महात्मा
दिवोदासने (५) पिछराज्य पाया। उस समय काशीकी
राजधानी वाराणसी गङ्गाके उत्तर और गोमतीके
दक्षिण कुलपर स्थापित थी। दिवोदासने शत्रुके भयसे
राजधानीको सुदृढ किया। (महाभारत अनुशासन, १०५०)

(१) भागवतके सतानुसार सुहोत्रके पुत्र काश्या और काश्यके पुत्र
काशि थे। (१।१०।१) विष्णु हरिकथ और ब्रह्माण्डपुराणके मते ही सुहो-
त्रके पुत्र काश और काश्यके पुत्र काश्या थे।
(२) विष्णु (४।५।२।१), भागवत (२।१०।३) और महा-
पुराण (१४२।१०) के मते ही धन्वन्तरि दौर्धतमाके पुत्र थे। विष्णु
हरिकथ (१८५०) और ब्रह्माण्डपुराणके मते ही दौर्धतमाके पुत्र धन्व
और धन्वके पुत्र धन्वन्तरि थे।
(३) 'तथैव हि सप्तमो दिवा चमकसिंहास।
काशिराजो महाशमः सर्वे दामोदरात्मनः ॥ ११ ॥
पायुर्वेद' अथवाचकार स निषकृष्टियम्।
महाभारत पुनर्विषय शिखोभः प्रयागात् ॥ ११३ ॥ (ब्रह्माण्डपुराण)
'यो चमकसिंहासु द्वेषुपांच महाशमः ॥' (महापुराण १४३।१)
(४) हर्ष्यश्रके महाभारतमें नरें प्रथम वाराणसीका उल्लेख है।
(भारत अनु० १०५०)
(५) विष्णु, ब्रह्माण्ड, महाभारत और महाभारतके मते ही दिवोदास भीमसेकके
पुत्र थे।

हरिवंश, पद्म मत्स्य और ब्रह्माण्डपुराणके मतसे दिवो-
दासके पूर्व हैहयवंशीय राजा मद्र्येयस्वने वाराणसीको
पधिकार किया था। पीछे दिवोदासने उन्हें मार बह-
कटसे पिछराज्य छोड़ा लिया। उस समय निकुण्ठके
गाप और क्षेमक राजसके उत्पातसे मझामन्त्रि-
शालिनी वाराणसी क्षत्रयी एवं जनशुश्रू हो गयी थी।
उसीसे दिवोदास गोमतीनोर एक नगर बसा राजत्व
करत रहे। * हैहयवंशीय मद्र्येयस्वके दुर्दम नामक
एक पुत्र था। राजा दिवोदासने बालक समझ उसे
छोड़ दिया। कालक्रमसे पची बालक हैहयवंशका
उत्तराधिकार पा प्रथम पराक्रान्त हो गया। उसने
दिवोदासको जोत वाराणसीको पधिकार किया।

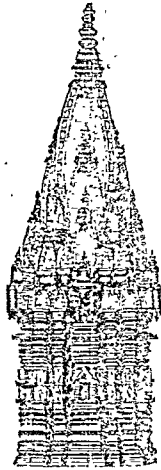
दिवोदासके शौरष और हृदयहीके गर्भसे प्रतर्दन १
नामक एक महाबल बालकने जन्म लिया था। उसने
राजा दुर्दमको युद्धमें जोत काशीराज्य पधिकार किया।
कौपीनकी ब्राह्मण सपनिपत्तमें प्रतर्दन एक परम
यात्रिक राजा कहे गये हैं। वह रामचन्द्रके समवाम-
यिक थे। रामचन्द्र उत्तर काश्य १५१३ प्रतर्दनके पुत्र पञ्च
रहे। उन्हें लोग षटपञ्चर और कुबलयाज्ञ कहते थे।
परमज्ञानश्रीला तत्त्वदर्शिनी मदालसा उसकी पत्नी
रहीं। मदालसाके गर्भसे यत्सके पलक नामक पुत्रने
जन्म लिया पलकके राजत्वकाल काशीराज्य पति विस्तृत
था। उन्हीं महात्माने शापावसानमें चमक नामक
राजसको मार फिर वाराणसी नगरीको प्रतिष्ठित और
परम रमणोय शैर्गमें सञ्चित किया। पलकके पीछे
पुत्रपरम्परामें सञ्चित, सुगीय, चम, सुकेतु, धर्मकेतु,
सत्यकेतु, विभु, सुविभु, सुकुमार, सुटकेतु (यह कुब-
चेतपर कुरुपाण्डव-युद्धमें सपस्थित थे) **, वेणुचोद,
भर्ग और भागभूमि राजा हुये। वह सभी 'काश्य'
वा 'काशिय' नामसे विख्यात हैं। परब्रह्ममें पुराणोक्त
काशिराजोंकी एक तालिका दी गयी है—

* काशिराज दिवोदासका नाम चमक और चमकेंद्रादुर्दमके ब्राह्मि
द्वेष पक्षता है। विष्णु मद्र्येय है—दामो एव व्यक्तिय वा नरो।
† महाभारतके सतानुसार दिवोदासके शौरष और मावकके गर्भसे प्रतर्-
दनका जन्म था। सप्तोदवर्ष (१५५०) ; माध्वेयपुराणमें २० छे
१६ चमकपर पर्वक कुबलयाज्ञ परत है। उसके चाही १०५० चमकपर चमक-
परित रचित हुआ है।
** 'सुटकेतुके शिवांगकाशिराजस्य शौर्येणम्' (महाभारत १।१२)

शाहजहाँ की गोरी जित समय बाराबंसी, सुल्तान
: करने गये, उसी समय वह पवित्र ताम्रलिङ्ग सुसलमान
: कर्णक विचर्पित प्रथमा विध्वस्त किया गया होगा।

बोध होता, हिन्दू राजाओं के समय जो लिङ्ग प्रतिष्ठित
हुवा था, वही हमें देखने का मिला।

आजकल विश्वेश्वर का स्वर्णकमल और स्वर्णचड़ा



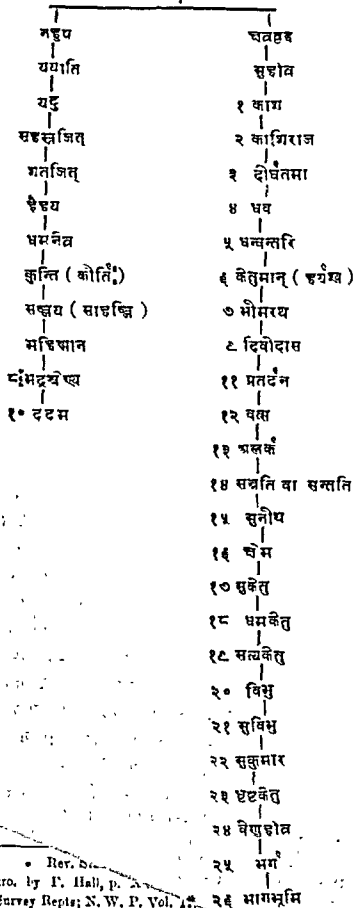
विश्वेश्वर का मन्दिर।

विश्वेश्वर का मन्दिर नयनगोचर होता, वह
शताधिक वर्ष पूर्व बना है। आजकल विश्वेश्वर के
मन्दिर से अनसिद्ध और जगत्की जहाँ मसजिद देख
पड़ती पहले वहाँ विश्वेश्वर का सुवहव मन्दिर था।
हिन्दू विद्वांसों और जगत्की उक्त मन्दिर नष्ट कर मुसल-
मानों की मसजिद निर्माण कराई है। उनके लोग
कहते कि वह मन्दिर ही मसजिद के रूप में परिणत
हुवा है मुसलमानों ने उसमें सामान्य ही परिवर्तन
किया है। मसजिद के प्रथम भाग में आज भी हिन्दू
देवालय का यथैव परिचय मिलता, उसके निम्नतम में
बौद्ध गठन का विहार स्थल देख पड़ता है। किसी
किसी के अनुमान में हिन्दुओं ने प्रथम ही बौद्धकीर्ति
विस्तार करने को विचार के उपर ही देवालय बनाया था।

फिर कोई कहता औरंगजेब की मसजिद से अनसि-
द्ध जहाँ बादि विश्वेश्वर का मन्दिर है, पूर्व की वहाँ
विश्वेश्वर का लिङ्ग प्रतिष्ठित था; उक्त मन्दिर के पार्श्व में
मुसलमानों की मसजिद बन जाने से लिङ्ग स्वामान्य-
रित हुआ। उक्त बादि विश्वेश्वर मन्दिर के पार्श्व में
भी मसजिद है। किन्तु वह मसजिद सम्पूर्ण नहीं
हूयी। वह मसजिद भी बादि विश्वेश्वर के मन्दिर का
एक ही मसजिद पड़ती है। पूर्व जो मन्दिर था, उसकी
तोड़ उसी के पत्थर से और उसी के नींव पर उक्त मसजिद
बनी है। उसका कोई कोई भंग देखने में पति
प्राचीन मालूम पड़ता है। किसी के मत में वह प्राचीन
बौद्धों के समय की निर्मित है।

विश्वेश्वर का वर्तमान मन्दिर मसजिद पर प्राङ्गण पर

पुरुरवा
यायु



• Rev. D. ...
tro. by F. Hall, p. ...
Survey Repts; N. W. P. Vol. 1.

ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है कि कागवंशीय २४ राजाओंने राजत्व किया था • किन्तु इसका कोई विवरण नहीं मिलता भागभूमिके पीछे कीन राजा हुआ।

बुद्धदेवके समय वाराणसीमें देवदत्त नामक एक राजा रह्ये।

सम्भवतः बौद्धधर्म बढने पर काशीराज्य मगध-राजके हाथ लगा।

ब्रह्माण्डपुराणमें भी बताया है—

“अटानि गच्छते भावाः प्राचीनाः पथ ते सुताः।

एवा तीर्था यगः कृतश्च’ मिथुनादी भविष्यति।

वाराणस्यां सुते स्थाया गणस्यति निरिन्द्रजम् ।”

(उपोरवातवा. १४ प०)

अनन्तर प्रद्योतवंशीय पञ्चपुत्र एक ही पड़तीस वर्षे राजत्व करंगे। उसके पीछे शिशुनाग उनका निखिल यशः हरण पूर्वक राजा होगे। वह वाराणसी राज्यमें खोय पुत्रको संस्थापित कर (मगध-राज्यस्थित) गिरिजजको चले जायेंगे।

बौद्ध धर्ममें काशीराज ब्रह्मदत्तका नाम मिलता है। किन्तु यह मालूम करनेका उपाय नहीं कि स समय उन्होंने राजत्व किया था। मगधराजगणके अधःपतनकाल काशीराज्य गुप्तराजगणके अधीन हुआ। उस राजवंशके मध्य केवल बालादित्यके पुत्र एकटादित्यका नाम मिलता है। • अनुमान है • सप्तम शताब्दको वह काशीके राजासन पर आरुढ़ थे। उसके पीछे काशी सम्भवतः कनौजराजके शासनाधीन हुयी। ई० द्दम शताब्दको कलचुरि और पालवंशीयोंने मिल कर कनौजराज्य आक्रमण किया था। उस समय काशीराज गौडवले पालवंशीय राजाओंके अधिकारभुक्त हुआ। काशीके पालवंशीय राजा सभी बौद्धधर्मावलम्बी थे। उनमें गौडाधिप महीपाल ही काशीके ३यम पालवंशीय राजा रह्ये हैं। वाराणसीके निकटवर्ती मारनाघमें महीपाल

• “काशियायु भक्तिसिद्धादिभक्तु सु ईदवाः ।”

(महा ००१। १०)

+ Fleet's Inscriptions of the Early Gupta Kings,

देवस्थित है। यह चूड़ा समेत १४ इंच उंच है।
 ठीक समझ नहीं पड़ता—किस महात्माने उक्त
 मन्दिर बनवाया है। महाराज रणजीत सिंहने मन्दिर
 की मीथराय, चूड़ा और समुदाय कलसके तबियेवर
 योगा मढ़वा दिया है। सर्वाधिकर्म दूरसे दर्शनकरने
 पर उसकी अपूर्व गोभामे नयन जल उठते हैं। स्वर्ण-
 कल्प चूड़ा पर त्रिशूल है। उभोके पार्श्वमें पताका
 बड़ती है।

विश्वेश्वर मन्दिरकी मीथरायके नीचे ८ बड़े घण्टे
 मटकते हैं। उनमें बड़ा घण्टा नेपालके राजाका दिया
 है। मन्दिरके उत्तर विश्वेश्वरकी सभा है। उस
 स्थान पर अनेक देवमूर्ति विराज करती हैं।
 उक्त पवित्र देवालयमें प्रवेश करनेसे मनमें अद्भुत रसका
 प्रायिर्भाव होता है। पाप देखेंगे कि भारतवर्षके
 सकल स्थानीय एवं सर्व जातीय हिन्दू भक्तिभावसे
 विश्वेश्वरके पवित्र सिद्धदर्शनको उपस्थित हैं। भक्तोंके
 मुखसे निःसृत 'हर हर हर वंशम विश्वेश्वर' के रससे
 मन्दिर प्रतिध्वनित होते हैं। कोई हाथ जोड़ देयादि-
 देव महादेवकी पूजा करता, कोई उदात्तादि स्वरसे
 वेद पढ़ता और कोई सुमधुर स्वरसे गियस्तोत्र गान
 कर भक्तके हृदयमें विशुद्ध आनन्द भरता है। धन्य !
 भारतवर्षके नामा स्थानोंकी आवाज-सुह-बलिताका
 समाधिग ! वैसा दृश्य किभी दूसरे स्थानपर देख नहीं
 पड़ता ! भक्त हिन्दुओं की प्रकृत कवि चयापि विश्वे-
 श्वरव्यहमें प्रकाशमान है। जिस समय विश्वेश्वर की
 धन्या पारती होती और जिस समय वेदध्वनिसे हृदय
 हिलने लगता, उस समयका दृश्य कैसा अपायिंय
 रहता है।

विश्वेश्वर मन्दिरसे पनतिदूर 'शानवापा' नामक
 पवित्र कूप है। शिवपुराणमें उक्त कूप "वापीजन"
 नामसे वर्णित हुआ है। * काशीखण्डमें लिखा है—

* 'शिवसुके पर' ६४ मंशारोत्रमोषवम् ।
 वापीन-क तवत्यं देवदेवस सविधो ॥
 स्वर्णनादुर्दभान् तम इतार्वां सलभा ध्रुवि ।
 दुर्धमन्वु बभो विन्देत्सर्वं इत्यतीवमम् ॥
 तारकं सर्वत्रभूतां मानावायस जादयन्म् ॥

(दिव्यपुराण, पनतुद्वाराभक्ति, ४१। १६-१८)

"बद्रूपी ईशानने त्रिशूल द्वारा स्थानीय भूमि खनन
 कर एक कूप निर्माण किया था। उस कुण्डमें पृथिवी
 चपेचा दमगुण जल निकला और उस जलसे भूमण्डल
 प्राप्त हुआ। उस समय बद्रमूर्ति ईशानदेवने सहस्र
 कलस जल भर ज्योतिर्मय विश्वेश्वररूपी महालिङ्ग
 को स्नान कराया था। भगवान् विश्वेश्वरने बद्रके प्रति
 प्रसन्न हो त्रिशूलिखित वर दिया—जो शिव शब्दका
 पर्यं विचारते, यह उषका पर्यं "शान" वतजाते है।
 वही शान हमारी मद्दिमासे यहां जलदग्मं द्रवीभूत
 हुआ है। इसलिये यह तीर्थ "शानोद" नामसे विख्यात
 होगा"। * इस तीर्थ स्नान करनेसे सर्वपाप दूरीभूत
 होते हैं। फिर इसके अग्रं और पाश्चिमसे पश्चिम
 तथा राजस्य यज्ञका फल मिलता है। इसका नाम
 शिवतीर्थ है। फिर वही तीर्थ शुभशानतीर्थ तारक-
 तीर्थ और प्रकृत मोक्षतीर्थ भी कहता है। इस तीर्थके
 जलसे शिवलिङ्गको स्नान कराने पर सर्वतीर्थका फल
 लाभ होता है। शानस्वरूप हमें यहां द्रवमूर्ति वग
 जीवगणकी जड़ता विनाश और शानसपदेश करते हैं।"

(काशीखण्ड, ११ ५०)

काशीखण्डके अन्यस्थलमें कहा है—"दण्डमायक
 उस ज्ञानवापीका जल दुष्टक्षयणसे बचाते और
 सुभ्रम तथा विभ्रम नामक गणह्वय दुष्टक्षयणकी
 भ्रान्ति उपजाते हैं। महादेवकी पट मूर्तिका जो वियप
 कहा, उक्त ज्ञानदायिनी ज्ञानवापी उर्ध्वो पट मूर्तिमें
 अन्यतम जनमेंवी मूर्ति है। (११ ५०)

प्रवादाशुमार कातापहाड़के काशीकी सकल देव-
 मन्दिर तोड़ने जाते समय विश्वेश्वर उक्त ज्ञानवापीके
 मध्य किये थे। आज भी महस्र महस्र यात्री वहां देवकी
 पूजा करने जाते हैं।

ज्ञानवापी पर एक कुक्ष कंधी कत है। यह कत
 पत्थरके ४० खंभों पर खड़ी है। उसका गठन पति
 सुन्दर है। १८२८ ई० का ज्वालियर महाराज दौकत

* "दिव" शाननिदि ब्रह्मः शिवस्वरूपिनः ।
 तस्य चर्चं द्रष्टुमर्हति श्री हरिकोरवाण् ॥
 चो ज्ञानोदनातीर्थं वैशोकविरहाम् ॥"

(काशीखण्ड, १०-११-११)

राजकी १०१३ विक्रम संवत् (१०२६ ई०)-को प्रदत्त एक शिवालिपि मिली है । * महीपालके पीछे उनके पुत्र स्थिरपाल और वसन्तपालके (१०८३ ई० तक) राजत्व था। भी काशी बौद्ध पालोके अधिकारमें रही । ११८४ ई० को कनौजराज जयचन्द्रके पराभूत होने पर गङ्गातटोत्तरीमें वाराणसीके श्रीमुख यात्रा की । उन्होंने प्रायः मङ्गलाधिकार हिन्दूमन्दिर तोड़ डाले ।

अक्षर वादगाहके समय निर्मा चीन किमीच बनारसके फौजदार थे । उस समय काशी इनाहावाद सूबेके अधीन थी । औरङ्गजेबने वाराणसी बदन कर "सुहृद्गादावाद" नाम रखा था । उनके परवर्ती सुमनमान चन्दा और अथर्वके नवाबकी सनदीमें वाराणसीका नाम सुहृद्गादावाद मिलता है ।

ई० सप्तदश शताब्दके शेष भाग अथर्वकी सूबेदारी अधीन रहने भी वाराणसी एक स्वतन्त्र राज्य कहनाती थी

दिल्लीके बादशाह सुहृद्गाद गाहने हिन्दुओंके पवित्रस्थान वाराणसीको हिन्दू राजाओंके ही अधीन रखना चाहा था । उसीके अनुसार उन्होंने १७३० ई० को वाराणसीसे पाँच कोस दक्षिण अवस्थित गङ्गापुर ग्रामके जमीन्दार मनसाराजकी "राज" उपाधि प्रदान किया । उनके पुत्र बलवन्त सिंह १७४० ई० को विष्टराज्यके अधिकारी की पुख्तभूमि वाराणसीके सिंहासन पर बैठे थे । १७४८ ई० को सुहृद्गाद गाह मर गये । उनके पुत्र अक्षयसिंहके सफदर जङ्गकी बजौरका पद और अवध प्रदेश दिया था । उसी समय वाराणसी अवध सूबेके अन्तर्गत हुयी । बलवन्त पर सफदर जङ्गकी दृष्टि पड़ा थी । उन्होंने बलवन्तका परिचय अवधके अधीन किसी सामान्य जमीन्दारकी भाँति देनेकी चेष्टा की । उस समय बलवन्तने अपनी स्वाधीनता बचानेके लिये यद्यत् चमत्कारके माध्यम साधन दिखाया था । १७५३ ई० को सफदर जङ्गके मरने पर उनके पुत्र शजा-उद्-दौला सूबेदार हुये । उन्होंने भी पिताके अनुवर्ती बन बलवन्तकी पदमार्गादा खर्च करने की विधि चेष्टा बनायी थी । उसी समय बलवन्तने

नवाबके करानकवन्तसे राज्य रक्षा करनेके लिये रामनगरमें एक सुदृढ दुर्ग बनाया । उसके पीछे बालमगीर बादशाहके राजत्व काल उनके पुत्र सुहृद्गादकी विद्रोही से अवधके सूबेदारसे मिल गये । उस समय मोरजाफर बहालके नवाब थे । सुहृद्गादको और शजा-उद्-दौलाने मोरजाफरको पदच्युत कर बहाल अधिकार करनेके लिये पटनाके अभिसुख यात्रा की । १७५८ ई० को मोरजाफर अङ्गरेजी सैन्यके साहाय्यसे पटनाके क्षेत्रमें उपस्थित हुये । दूधरे वष शजा-उद्-दौलाने फिर बङ्ग विजयका उद्योग लगाया था । उस समय मोरजाफरने बनवन्तसिंहसे सहायता माँगी । राजा बलवन्तसिंहने सैन्य द्वारा उन्हें यद्यत् सहायता दी थी । फिर बहालके नवाब और बनवन्तसिंहकी सन्धि हो गयी । उसी सन्धिके अनुसार बङ्गेश्वर बनवन्त सिंहकी स्वाधीनता बचानेकी विपदकाल मदद करने पर प्रतिश्रुत हुये । १७६४ ई० को २६ वें दिसम्बरको दिल्लीके बादशाह शाह आलमने ईष्ट-इण्डिया कम्पनीको वाराणसी राज्य प्रदान किया था । * शजा-उद्-दौलाने सन्धि होने पर १७६६ ई० का ईष्ट इण्डिया कम्पनीमें वाराणसी राज्य अवधके नवाबकी सौंप दिया । उसी समय बनवन्तसिंह दृष्टिग यवरीष्टके मिदराजा रुहाने लगे । बीचमें शजा-उद्-दौलाने बलवन्तसिंहका दूतमार्ग करनेकी चेष्टा की थी । किन्तु ईष्ट इण्डिया कम्पनीके बनवन्तसिंहका पक्ष लेने पर उनकी यागा पूर्ण न हुयी । १७७० ई० की २२ वीं अगस्तको बनवन्तसिंहका स्वर्गवास हुआ । उसके पीछे उनकी एक सखिया रमणीके गर्भजत चेतसिंहने राजमिहामन अधिकार किया । १७७२ ई० की ६ठीं दिसम्बरकी अवधके नवाबने चेतसिंहका एक सन्देश दी थी । १७७५ ई० की २१वीं मईसे वाराणसी दृष्टिग यवरीष्टके अधीन हुयी । उसके अनुसार १७७६ ई० की १५ वीं मईको चेतसिंहने दृष्टिग यवरीष्टके लिए एक सन्देश पायी । उसी समय युरोपमें फ्रांसीसी विद्रोह हो गया । सन्देशके

राव नेधियाकी विधवा पत्नी बजावाईने उसे बगवा दिया था ।

ज्ञानवापीके पूर्वने पाल-राजपदक पांच हाथ कंधीएक उपभूमि है । उसी स्थानपर है टरावादकी रानीका मन्दिर बना है । निकट ही बहुतसे पवित्र स्थान भी हैं

वहाँ खड़े होकर उत्तर-पश्चिमदिक् दृष्टिपात करनेसे प्रथम ही ४० इन्च उच्च 'बादिशिवेश्वरका' मन्दिर नयनगोचर होता है । उससे अदूर 'काशीकवर्ट' नामक पवित्र स्थल है । चर्नक लोगोंके विश्वासानुसार जो दूध कर उक्त कवर्ट उत्तौर्ण हो सकता, उसको पुनर्जन्म नहीं मिलता । उनी उद्देश्यने मध्यमें दो एक व्यक्ति दूध मारते थे । इसी शवरनमेषने कूपका मुख बन्द कर दिया है । उसके पीछे काशीकवर्टके पण्डोंका विस्तार आवेदन होता है । आज कल प्रति सोमवारको एक बार उसका मुख खोल दिया जाता है ।

शनेश्वरेश्वरके निकट अक्षपूर्णा देवीका मन्दिर है । हिन्दुओंके विश्वासानुसार काशीमें कोई बनाहार नहीं रहता । वह अक्षदायिनीदेवी अक्ष दे दीन दरिद्र सबका दुःख दूर करती हैं । अक्षपूर्णा मन्दिर लानेके पयमें अर्धस्य दीन दरिद्र भिचार्य बैठे रहते हैं । मन्दिरसे भिष्ठा स्वरूप एक सुड़ी मटर टेनेकी प्रथा है । वहाँ सबको भिष्ठा मिलती है । अक्षपूर्णाका मन्दिर प्रायः २०० वर्ष पहले पूनाके महारष्ट्राजने बनवाया था । मन्दिरस्य नाना रत्नविभूषणा वैभोव्यमोहिनी अक्षपूर्णाकी पवित्र मूर्ति देख दर्शकका मन प्रकृत मोहित होता है । मन्दिरकी एक और सप्ताग्रयोजित रथोपरि सूर्यदेवकी मूर्ति विराज करती है । एतद्विष गौरी-गङ्गर, गणेश और हनुमान्की मूर्ति प्रयत्न प्रयत्न स्थानमें प्रतिष्ठित है ।

शनेश्वरेश्वरमन्दिरके दक्षिण शक्तिश्वरका सुदृ मन्दिर है । काशीवृषके मतमें—पुराकालकी शृगुनन्दन शक्तने उसी स्थान पर शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा कर विष्नेश्वरकी पाराधना की थी । उक्त शक्तिप्रतिष्ठित शक्तिश्वरकी पूजा करनेसे मातंग पुत्रधान, औभाग्यशाकी और परम सुखी होता है । शक्तिश्वरका मूल शक्तलोकमें वास करता है । (११५०)

शिवेश्वर मन्दिरसे प्रायः अर्ध श्रोत्र उत्तर काल-भैरवका मन्दिर है । काशीवृषमें लिखा है—'महादेवने ब्रह्माका गर्व खर्व करनेके लिये अपने कोपसे एक भैरवपुरुष बनाया था । वही पुरुष कालभैरव है । पूर्वको ब्रह्माके पक्षमुख रहै । कालभैरवने उनका पक्षम मस्तक छेदन किया । कालभैरव इस ब्रह्महत्याके पाप अपनयनकी कापालिकव्रत अवलम्बन कर ब्रह्माका वही कपाल हाथमें ले प्रथिवी पर घूमने लगे । उन्होंने बहु तीर्थ पर्यटन किये थे । किन्तु वह कपाल कहीं विमुक्त न हुआ । क्या आश्चर्य ! काशीमें प्रवेश करते ही कालभैरवके हाथसे वह कपाल गिर पड़ा । ब्रह्महत्या भी अथके मध्य विगट हुयो ! 'जिस स्थान पर कपाल गिरा था, वही स्थान कपालभोचन तीर्थके नामसे विख्यात हुआ' (शंभुपाव १३१८) उसके पीछे कालभैरवने कापालभोचन तीर्थको सम्पूर्ण रख भक्तगणका पाप दूर करनेके लिये उसी स्थान पर अक्षस्थान किया । अक्ष-हाथण मासकी अष्टम्याके लिये अक्षपाव कर कालभैरवके निकट रातको जागनेसे महापाप दूर होता है । काश-भैरवकी पूजा करनेसे मनस्त्वामना सिद्ध होती है ।"

(काशीवृष ११५०)

कालभैरव या भैरवमायकी वर्तमान मूर्ति प्रस्तारमें गठित अष्टाभ घोर नीलवर्ण है । उसके दोनों अक्षु रीव्यमय तथा अघिष्ठान स्वरूपमय है । पार्श्वमें उनके कुङ्करकी मूर्ति है । भैरवनाथका मन्दिर देखने योग्य है । मंदिरगात्र विविध वर्णसे अलङ्कृत एवं देवकीनाथे विभित है । विशेषतः अक्षेश्वरके वामपार्श्व दगावतारकी पतिशुद्धरमूर्ति अलङ्कित है । मन्दिरकी चौखटमें दोनों पार्श्वे द्वारपालेश्वरकी मूर्ति दण्डायमान है ।

कालभैरवका वर्तमान मन्दिर प्रायः १२५ वर्ष पूर्व पूनाके शशीरावने बनवाया था । मन्दिरके दक्षिणभागमें भैरवनाथकी पूज्यतन मूर्ति रह्यो है । मन्दिरमें महादेव, गणेश और सुभ्रगारायणकी मूर्ति विराज करती है । काशीमें शीतला देवीके ४ मन्दिर है । उनमें एक भैरव-

रहित (१३११५) और शंभुपाव (१३१८) की एक दृश्य कर दिना उल्लेख है ।

पशुसार युद्धयनिर्वाहार्थं गधरनर जनरत्न वारन
 हेट्टिङ्गमने चेतुसिंहसे उनके देय वायिक करकी छोड़
 ५ लाख रुपया अधिक मांगा । प्रथम चेतुसिंहने ५
 लाख रुपया दिया था । द्वितीय वर्ष इसी प्रकार ५
 लाख देनेका समय आने पर चेतुसिंहने वृष्टिग गव-
 रमेष्टम क्लृप्त मोहनत मांगी । उसमें वारन हेट्टिङ्गस
 उनमें क्लृप्त ही समन्य जागी जा पहुँचे । चेतुसिंह
 निरुपाय ही थाकरचार्य राजधानी छोड़ भाग गये ।
 (१८१० ई० की खालियरमें उनका मृत्यु हुआ ।)
 चेतुसिंहके भाग जाने पर बलवन्तसिंहको कन्याने
 वारन हेट्टिङ्गमसे कहला भेजा कि यह बलवन्तसिंह-
 की एक मात्र कन्या है और उनका पुत्र (बलवन्तका
 दौहित्र) मछोपनारायण ही राज्यका प्रकृत उत्तराधि-
 कारी है । हेट्टिङ्गसने मछोपनारायणको वाराणसीका
 प्रकृत राजा बना दिया । १७८१ ई० की १४वीं सित-
 म्बरकी मछोपनारायणने वृष्टिग गवरमेष्टसे वाराणसी
 जमीन्दारीकी सनद पायी थी । राजा मछोपनारायणके
 स्वर्गवासी होने पर महाराज उदितनारायणने पिठ-
 सिंहासन लाभ किया । १८३५ ई० की उदितनारायण
 भी स्वर्गगामी हुये । उनके भ्रातृपुत्र ईश्वरीप्रसाद-
 नारायण राजा बने थे । वह एक कवि और शिल्पी रहे ।
 उनके स्वहस्तनिर्मित विविध हस्तिदन्तके कारुकायं
 रामनगरके राजभवनमें विद्यमान हैं । १८८८ ई० की
 उन्होंने परलोक गमन किया । आजकल उनके पुत्र
 राजा प्रसुनारायण सिंह वाराणसीकी जमीन्दारीका
 स्वत्व भोग करते हैं ।

तीर्थ विवरण ।

काशी वा वाराणसी नगरी बहुत प्राचीन
 कालसे हिन्दुओंका प्रतिपवित्र तीर्थ कही जाती है ।
 महाभारतमें लिखा है,—

“वाराणसी जा त्र्यम्बवाहन महादेवका चर्चन
 और कपिलाऋद्धमें स्नान करनेसे राजस्य यज्ञका फल
 मिलता है । उसके पीछे पविमुक्ततीर्थ पहुँच देवादि-
 देव महादेवका दयन करनेसे ब्रह्महत्याजनित पाप
 छूट जाता और वहाँ प्रायत्याग करनेसे मोक्ष पाता
 है ।” (उद्योगपर्व, पं० ४० ।) महाभारतके उक्त विवरण
 पाठसे वाराणसी और पविमुक्त दो स्वतन्त्र परस्पर

निकटवर्ती तीर्थ समझ पड़ते हैं । गिव, मत्सा, कुमे
 गढ़ड़ और निङ्ग पश्चिमी पुराणोंके मतमें काशीका ही
 परपर नाम पविमुक्त है । किन्तु महाभारतमें दो स्वतन्त्र
 तीर्थ कहनेका कारण क्या है ? काशीखण्डमें विष्णु-
 ग्वर और पविमुक्तेश्वर नामक स्वतन्त्र गिवनिङ्गका
 विवरण दिया है । सम्भवतः पविमुक्तेश्वर लिङ्गके
 विराज करनेका स्थान ही पविमुक्ततीर्थ नामसे ख्यात
 था । वस्तुतः पविमुक्ततीर्थ वाराणसीके ही अन्तर्गत है ।
 हरिवंशमें महादेवके वाराणसीगमनका विषय
 इस प्रकार लिखा गया है—

“राज्यं दिवोदास महासम्पद्दिगानी वाराणसी
 नगरी पाकर सुखसे वहाँ रहने लगे । उस समय देवा-
 दिदेव दारपरिषद कर शशुरानयमें वास करते थे ।
 महादेवके पात्रानुसार उनके पारिषद नाना उपायसे
 भगवती पार्वतीको रिभाने लगे । देवो पार्वती बहुत
 ही सुखी हुयीं । किन्तु उनकी जगनी मेनकाकी पच्छा
 न लगा । वह अपनेक समय समयकी निन्दा कर कहती
 थीं—‘पार्वति ! तुम्हारे स्वामी पारिषदगणके सहित
 विचार-पाचार-भ्रष्ट और दमिष्ट हैं । उनमें क्लृप्त भी
 शोक्षता देख नहीं पड़ती ।’ एक दिन स्वामीकी निन्दा
 सुन देवी पार्वती स्त्रीस्वभावयुक्तः क्रुद्ध हो गयीं । किन्तु
 उस समय मातासे मनका भाव क्षिपा इयत् ईश पडो ।
 फिर उन्होंने महादेवके पास जाकर विषय वदनेसे
 कहा था—‘देव ! भव इस यज्ञ न रहेगी । हमें अपने
 भवन से चलिये ।’ उस समय महादेवने एक वारी
 सकल लोकको निरीक्षण किया । पदगोपकी पृथिवी
 पर ही वासस्थान निर्णय कर सिद्धेश्वर वाराणसी
 नगरीको चुना था । किन्तु उसे दिवोदास द्वारा अधि-
 कृत भोच उन्दिने स्त्रीय पारिषद निङ्गुम्भसे कहा—
 ‘वत्स ! वाराणसीपुरी जाकर कीयल क्रमसे जनशून्य
 करो । किन्तु सावधान ! महाराज दिवोदास प्रति
 पराक्रान्त हैं ।’

“निङ्गुम्भने वाराणसी नगर जा कण्डूज नामक
 किसी नापितको स्वर्णमें दर्शन दे कहा था—‘देखो !
 तुम इस नगरीके वास्तु भागमें कोई स्थान निर्दिष्ट कर
 हमारी प्रतिमूर्ति स्थापन करो । हम तुम्हारा भला

माघ मन्दिरके निकट है। उक्त शीतला मन्दिरमें राम-मगिनौकी मूर्ति है।

काशीमें रामके पत्निसद्वर दण्डपाविका मन्दिर है। काशीवल्लभके मतमें—“हरिश्चन्द्र नामक एक यक्ष है। वाल्मीकिजी की उससे दृढवर्षे शिवभक्ति उद्दीवित हुई। यह भीतेममयसदा महादेवकी विभूतिदेवतेसे। वाल्मीकिजी की यह दृष्ट परित्याग कर वाराणसी गये और मन्दिरकी तपस्यामें प्रवृत्त हुए। बहुत काल पीछे महादेवने मन्त्र भी उन्हें यह वर दिया था—“हे यक्ष। तुम हमारे पत्न्यत्व गिय हो। तुम हमसे सबके दण्ड-वर हो। आजसे तुम इस काशीके दुष्टशासक और मिद्वानक बन कर पचस्यान करो। तुम दण्डपाविके नामसे प्रसिद्ध होगे। हमारे संभ्रम और उद्वेगनामक गणपत्य सदैव तुम्हारे अनुगामी होकर रहेंगे। काशीवासियोंका पत्निमकाल उपस्थित होनेसे तुम उनसे गलेमें सुनौस रेश्मा, हस्तमें सर्प बलय, भासमें कोषण, परिधानमें कृत्तिका, मस्तकमें पिङ्गलवर्ण कटा, सर्वाङ्गमें विभूति, कपालमें चन्द्रकला और वाङ्मार्थ उपम प्रदान करोगे। तुम्हीं काशीवासियोंके चक्रदाता, माण्डाता, ज्ञानदाता और मोक्षदाता होगे। तदर्थ दण्डपाणि महादेवके पाठेशसे मन्त्ररूप वाराणसी ग्रामन करते हैं। काशीमें दण्डपाविकी पूजा न करनेसे किसीकी कैसे सुख मिलता है ?”

(काशीवल्लभ ११५०)

दण्डपाविकी मूर्ति माघ ३ वृत्त उच है। प्रति रवि और मङ्गलवारको यात्री दण्डपाविकी पूजा करते हैं।

दण्डपाणि और भैरवनाथ मन्दिरके बीचोबीच नवग्रहका मन्दिर है। वहाँ रवि, शीम, मङ्गल, बुध, शुक्र, शनि, राहु और केतुकी मूर्ति पूजा जाती है।

काशीमें रामके पत्निसद्वर काशीदण्ड या काशीदण्ड है। उस तीर्थमें स्नान करनेसे पिण्डवधका उद्धार होता है। (काशीवल्लभ ११।१८) उक्त दण्ड इस भावसे पच-

स्थित है कि मध्याह्निके समय सुधरमि ठीक उनके जल पर पड़ता है उन समय बनेका लोग पष्ट परीचायें काण्डरूप दर्शन करने जाते हैं। काशीवासियोंके विष्णुमानुसार मध्याह्न काल की व्यक्ति रूपके कर्मों पपनी प्रतिमूर्ति देख नहीं सकता, यह ६ मासके मध्य गिणय करता है। काशीदण्डके निकट ही महा-काल और पच पाण्डवकी मूर्ति है।

काशीदण्डके पत्निसद्वर सुहृत्कालेश्वरका वर्तमान मन्दिर है। काशीवल्लभके मतानुसार—“दक्षिण टेगके मन्दिरधर्मनामक ग्राममें सुहृत्काल राजा रहे। उन्होंने सुहृत्धर्मिणोंके साथ काशी जा एक मासाद बनाया और उसमें शिवलिङ्ग स्थापन कराया। वही पत्नादि शिवलिङ्ग सुहृत्कालेश्वर नामसे स्थापन है। सुहृत्कालेश्वर महादेवकी सेवा करनेसे दरिद्रता, उपसर्ग, रोग पाप किंवा पापजनित फलभोग निवारित होता है।

(काशीवल्लभ ११५०)

सुहृत्कालेश्वरका मन्दिर पत्ति प्राचीन है। १० फुटकी ऊँचाईका काशीमें आजकल जितने शिवालय देख पड़ते, उन सबमें उक्त मन्दिर पुरातन मन्दिर है।

सुहृत्कालेश्वरके मन्दिर मध्य दक्षिण नामक स्थानमें शिवलिङ्ग स्थापन है। उक्त मन्दिरकी दक्षिण-पश्चिम भागमें ‘वल्लभेश्वर’ शिवलिङ्ग है। भक्तके विश्वासानुसार वल्लभेश्वरलिङ्ग पत्न्याय मानवकी दीर्घायु प्रदान करता है। इसीसे विश्वास तीर्थयात्री उक्त लिङ्ग दर्शन पार पर्थन करने जाते हैं।

किसी समय सुहृत्कालेश्वरके दक्षिण पुराण-प्रसिद्ध कृत्तिकाेश्वरका मन्दिर था। काशीवल्लभमें लिखा है—“महादेव द्वारा निर्यत होनेपर राजासुरका शरीर उक्त स्थानपर शिवलिङ्ग रूपमें परिवर्तन हुआ। शिवके राजासुरकी कृत्तिका पत्नीयुक्त परिधान करनेसे ही उक्त लिङ्ग कृत्तिकाेश्वर कहाता है। यह लिङ्ग काशीके मन्त्र लिङ्गमें श्रेष्ठ है। उसमन्त्रमें महाकांठ महाद्वी जय करनेसे ही कल मिलता, काशीमें कृत्तिकाेश्वरको पूजा करनेसे वही पात्र भी मिलता है। (काशीवल्लभ ११५०)

• काशीवासियोंके विश्वासानुसार काशीदण्ड की पचवही यात्रा-वर्षके महाद्वयकी यात्राकरना है।

• शिवदण्डके भी सुहृत्कालेश्वरका नाम मिलता है। (शिवदण्ड, जयवर्तिन १०।११)

करेंगे।' रात्रियोगमें उक्त स्त्रप्र देव उसने दूधरे दिन महाराज दिवोदासको सब वृत्तान्त जा सुनाया। फिर उसने नगरके द्वारपर निकुम्भको मूर्ति स्थापन कर उक्त विषय नगरको चारोदिक घोषणा किया फिर महासमारोहसे गणपति निकुम्भकी पूजा होने लगी। गणेश्वर पुनार्थीको पुत्र, धनार्थीको धन, आयुप्राथीको आयु, यहाँ तक कि लोगोंको सुख मांगा वरदान देते थे। किसी समय दिवोदासके आदेशसे महिषो सुयमाने विविध उपचारसे गणपतिकी पूजा और अंतमें पुनः स्नामका वर मांगा। उनके वार वार जा कर यथाविधि चर्चना पूर्वक पुत्र कामना करते भी निकुम्भने स्त्रीय अभिष्ट सिद्धिके निमित्त वरदान न दिया। उसी प्रकार दीर्घकाल निकल गया। निकुम्भके आचरणसे दिवोदास विगड़े और कचने लगे—'यह भूल हमारे ही सिंहद्वारपर रहता है। नागरिकोंपर सन्तुष्ट हो गत गत वर देता, किन्तु किसलिये हमसे सुख फेर लेता है? हमने स्थाप ही महिषीद्वारा पुत्र प्रार्थना किया, किन्तु, प्रायश्च। कृतज्ञने हमको वर प्रदान न किया। अतएव अब इसकी पूजा विधेय नहीं। विधेयतः हमारे अधिकारमें फिर वह किसी प्रकार पूजा न पायगा। हम दुरात्माको स्थानभ्रष्ट कर देंगे।' ऐसा ही स्थिर कर राजा दिवोदासने गणपतिका वह स्थान तोड़ डाला। निकुम्भने प्रायतन टटा देख राजाकी अभिसम्प्राप्त किया—'तुमने निरपराध हमारा स्थान नष्ट किया है। इसलिये तुम्हारी यह पुरा निधय अभी शून्य हो जावेगी।' निकुम्भ उस प्रकार अभिशाप दे महादेवके निकट पहुँच गये। उधर निकुम्भके अभिशापसे वाराणसी जनशून्य हुयी। दिवोदासने गोमतीतीर राजधानी बनायी थी। फिर महादेव उसी शून्य वाराणसी नगरीमें आवास निर्माण कर देवीके साथ परम सुखसे बिहार करने लगे। किन्तु वह स्थान देवीकी प्रीतिकर न हुआ। पश्चिमकी उद्वेगि महादेवसे कहा 'इस (जनशून्य) पुरीमें हम रह नहीं सकते।' महादेवने उत्तर दिया—'इस स्थानकी उम नहीं कीहेंगे। यह हमारा पवित्रभूत है। हम कहीं दूसरी अगह नहीं जायेंगे। तुम्हारी दृष्टा हो, यही

जायो।' विपुरात्मक महादेवने स्वयं वाराणसीकी पवित्रभूत कहा है। इसीसे यह पवित्रभूत नामसे विख्यात हुयी है। वाराणसी इसी प्रकार पवित्रभूत हो पवित्रभूत कहलायो। यहाँ सर्वदेवनमस्कृत महेश्वर सत्य, वेता और हापर तीन युगमें देवोके साथ परम सुखसे वास करते हैं। कलियुग आनेसे यह पत्तर्हित हो जाती है। किन्तु महादेव उसको परिव्याग नहीं करते।*

कागोखण्डमें लिखा है—'देवदेव महादेव ब्रह्माके वाक्य प्रतिपालनको कागो छोड़ मन्दरपर्वत पर जा कर रहे थे। महादेवके गमन करने पर समस्त देव भी मन्दर पर्वत पर उपस्थित हुये। महादेव वहाँ जाकर उल्लस हो न सके, उनके मनमें कागोका विरह भङ्गक उठा। उस समय वाराणसी महाराज दिवोदासकी राजधानी थी। तपस्याके बलसे उन्होंने समस्त देवगणका रूप धारण किया था। इसलिये देव उनकी स्तुति और भजना करते थे। पशुर भी सर्वदा उनके स्वयंमें लगे रहते थे। उनके समान धार्मिक नृप उस समय कोई न था। दिवोदासका ही उपर नाम रिपुपञ्च था।'

'मन्दरपर्वतपर महादेवने कागोका विरह उपस्थित होनेपर देखा कि राजा दिवोदासकी क्रिष्टी प्रकार निकाल न सकनेसे वाराणसी लाम होता गया। प्रथम उन्होंने ६४ योगिनीकी कागो भेजा था। योगिनी कागो जाकर परमधार्मिक दिवोदासको स्त्रधर्मपुत्र कर न सकीं। सुतरां उनके कागो जानिका उद्वेग्य पचफल हुआ। वह मणिकर्षिकाको सम्मुख रख कागोमें रहने लगीं। कुछ दिन बीतने पर महादेवने देखा कि योगिनी कोटी न थीं। फिर उन्होंने पत्न्यात्त प्रच्छिन्न हो स्वयंको भेजा। स्वयं कागो जाकर धार्मिक

* ब्रह्माण्डपुराणके उद्योगखण्डमें महादेवके वाराणसी आवनवका विवर उक्त वही प्रकार लिखा है, किन्तु पुराणानाममें कुछ मतभेद नविये योगी' पत्न्यात्त नामसे विख्यात विरह देवता आदिसे।

कागोखण्डमें ३३३ ३३३ पञ्चमके मध्य दिवोदास' (तुम्हारी) उद्वेग्य कहा नियो है।

‡ यह स्थान आनन्दन पौंड्र कीमिनी वा वाट कहाता है।

एक समय कृत्तिवासेश्वरका अति बृहत्प्रासाद था।

“कृत्तिवासेश्वरदेवा मदांगमादनिर्मितिः।

या इहापि नरो दूरान् कृत्तिवासः पदं लभेत्।

यथेषामपि सिद्धानां नीलिनः कृत्तिवाससः॥”

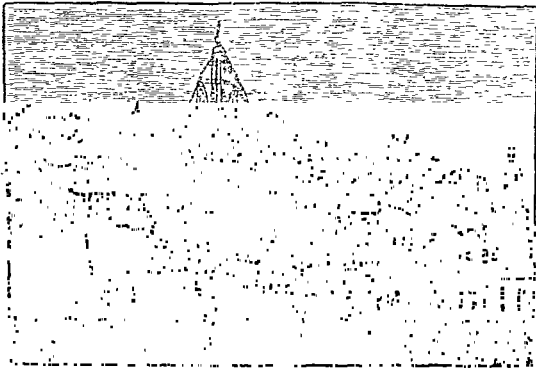
(काशीखण्ड, २१। ११-१०)

कृत्तिवासेश्वरका बृहत् प्रासाद नयनगोचर होता है। मानव दूरसे वह प्रासाद निराक्षण करते ही कृत्तिवासत्व पा जाता है। वह मन्दिर सर्वापिचा अष्ट है।

कृत्तिवासेश्वरके उसी प्रासादका चिह्नमात्र भी नहीं रहता। आजकल उसका कियदंश आलमगीरी मस्जिद

कहाता है। हिन्दूविद्वेषी औरंगजेबके राजत्वकाल सुसलमानोंने कृत्तिवासेश्वर मन्दिर ध्वंस कर उसीके साजसामानसे १६५८ ई० की उक्त मस्जिद बनायी थी।

आलमगीरी मस्जिदके निकट ही रत्नेश्वरका पवित्र मन्दिर है। काशीखण्डमें कहा है—“कालभैरवके उत्तरभागमें गिरिराज हिमालय पार्वतीके त्रिये जो समुदाय रत्न भाये थे, वह सकल पुण्योपार्जित रत्नराशि रत्नेश्वरमें रख वह अपनी शृङ्खलें चले गये। काशीमें जितने लिङ्ग हैं उन सकलके मध्य वह लिङ्ग रत्नभूत है। इसीसे उसको रत्नेश्वर कहते हैं। देवी



मणिकर्णिका-पाद ।

पार्वतीके पादेगपर उनके विह्वलपरिवृत रागिणत सुवर्णसे गण समूहने रत्नेश्वर प्रासाद निर्माण किया। जो व्यक्त रत्नेश्वरकी नमस्कार कर देशान्तर और कालपासमें पडता, वह गतकोटि कल्पमें भी स्वर्गपुत्र हो नहीं सकता। उसी लिङ्गकी पूर्वादिक् पार्श्वतान् दासायचौश्वर नामक लिङ्ग प्रतिष्ठा किया था।”

(काशीखण्ड १० प०)

प्रायः ८५ वर्ष पूर्व उक्त मन्दिरकी मिसके खनन-

काल मृत्तिकामें मणिरत्न निकले थे।

काशीकी मणिकर्णिका भी सामान्य तीर्थ नहीं।

शिवपुराणकी द्वावसंहितामें लिखा है—

“तत्रैव विद्यता इहा श्री विमलवद्वजम्।

इवाचके महा इहा शिवः कल्पनं ततम्।

तत्रैव पतितः कर्णाक्षकच पुराती इमी॥५

इषाकी पतितदेव तत्रासंश्रितिकर्णिका” (४८। १०-१४)

तदनुसार शिवने उमें देख कर अममें कहा—प्रहो वह पतियग अद्भुत व्यापार था। उक्त पाषण्यं देख

दिवोदासका कोई द्विद्व निकाल न सके। वहाँ वह काशीकी मायामें विमुग्ध हो रहने लगे। योगिनोगणकी भांति सूर्य भी लोटे न थे। उस समय महादेवने अपने गणधरकी पूर्वकी भांति उपदेश देकर काशी भेजा। वह भी वहाँ जाकर काशीकी विमोहिनी शक्तिसे विमुग्ध हो गये पार योगिनोगणकी भांति दिवोदासका पनिट साधन कर न सके। इधर महादेवने उनका कोई संवाद न पा विग्रेयनः काशीके विरहसे पत्थिर हो गणेशकी प्रेरण किया। गणपतिने काशी जः हृह देवशक्ति वेग बनाया था। फिर वह काशीवासीकी भाग्यलक्षिणी गणनाकर सबको विम्यायाभिभूत करने और यह कहते छूमने लगे कि काशीमें रहनेमें लोगोंको घोर पनिट भेजना पड़ेगा। हृह देवशक्ति वातमें काशीवासियोंकी भय हुआ। फिर बहुतसे लोग काशीको डोडने लगे। क्रमशः हृह देवशक्ति भङ्ग गणना कथा दिवोदासके चन्तःपुरमें पहुँची थी। इसी प्रकार गणपतिने राजाके चन्तःपुरमें प्रवेश लाभ किया। फिर वह भाग्यगणना द्वारा राजमहिलाके हृदयमें विश्वास उपजाने लगे। कपटी देवशक्ति राजागणके मध्य क्रमशः महासम्मान लाभ किया था। राजमहिला अपनासत्तमें राजासे उनके गुणकी बहुतविध प्रशंसा करने लगी। किसी दिन राजाने हृह देवशक्ति वीणा बहुतसी बातें पूछी थीं। देवशक्ति गणपतिने नामाप्रकारसे राजाकी मनोसुग्ध कर कहा—'महाराज। उत्तर देगसे एक ब्राह्मण पापके निकट पावेंगे। वह जो कहें, पाप उसे सर्वतोभावे पालन करें। इससे पापके सकल विषय सिद्ध होंगे।'

'इधर मंदरासीन महादेवने गणनायका विलम्ब देष विष्णुके प्रति साधक दृष्टिनिषेध किया था। फि उन्हींने पने क कथा उपदेश कर उनसे कहा—'हू विष्णु। देखो अन्यान्य शक्तिकी भांति तुमभी काशीमें पाचरण न करना।' विष्णु यद्योचित उत्तर दे हृह मनसे काशीको चले गये।

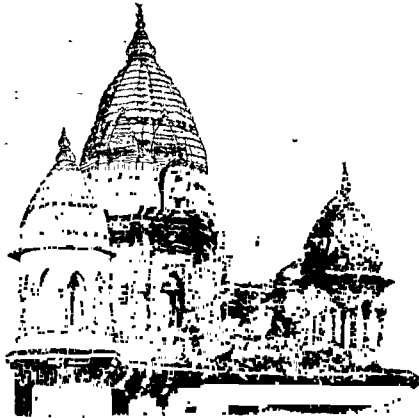
विष्णुने जह्नीके साथ काशी जा काशिसिद्धियोंकी मायासे विमुग्ध किया था। उसमें अधिकारी लोग अधर्मप्युत होने लगे। दूसरे देवशक्तिके उपदेशसे रिपु

प्यय दिवोदासकी संसार-वेराग्य उपस्थित हुआ। वह उस ब्राह्मणकी पत्नीका करने लगे। अष्टादश दिवस विष्णु ब्राह्मणके वेशमें दिवोदासके समीप उपस्थित हुये। महाराज दिवोदासने अभिप्रेत ब्राह्मणके दर्शनसे परम पानन्द लाभ किया था। उन्होंने ब्राह्मणधरकी सम्बोधन कर कहा—'हे द्विजोत्तम! बहुतदिन राज्य-भारके बधनेमें हम क्लान्त हो गये हैं। हमारे मनमें संसारवेराग्य उदयिन हुआ है। पाज पाप हमसे जो कहेगे, हम वही करेंगे।' ब्राह्मणरूपी विष्णुने राजाकी नाना प्रकार उपदेश दे कहा—'महाराज! यही एक बड़ा दोष है कि पापने विश्वनायकी काशीसे दूर कर दिया है। यदि हम महापापकी शक्ति चाहें, तो पाप काशीमें शिवनिष्क प्रतिष्ठा करें। एक शिवनिष्ककी प्रतिष्ठामें महस्त्र परप्राध विनष्ट होते हैं।' महाराज दिवोदासने ज्येष्ठ पुत्र समस्तधरकी राज्यमें अभिविक्त कर संसारका संस्त्र छोड़ा था। उन्होंने विष्णुके आदेशानुसार गङ्गाके पश्चिम तटपर एक शिवशालय बनवा उसमें दिवोदासिस्त्र नामक शिवनिष्क प्रतिष्ठा किया। मत्तम दिवस शिवदूतपरिवेष्टित ज्योतिर्मय रथ जाकर उपस्थित हुआ। महाराज रिपुप्य उस पर बैठ स्वर्गकी चले गये। इसी प्रकार महात्मा दिवोदासका निर्वाण हुआ। उसके पीछे महादेव देवी पार्वतीके साथ फिर अपने प्रियप्रेम काशी-धाममें पहुँच गये।'

काशीखण्डके विवरण पाठमें ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रथमतः वहाँ ब्राह्मणधर्म प्रवृत्त था। उसके पीछे बुधदेवके अभ्युदय और बौद्ध राजाओंके पाधिपत्यप्रभावमें वाराणसीसे हिन्दूधर्म एक शरणी हो विलुप्त हो गया, यहाँ तक कि वाराणसी धाम बौद्ध-तीर्थ कहलाने लगा। शकगीयकी राजा रिपुप्यके राजत्वकाल शाक, शैव, और गाणपत्य और वैष्णव क्रमशः प्रवल पड़े गये। वैष्णव द्वारा काशीमें बौद्धधर्म प्रथवा बौद्ध-पाधिपत्य तिरोहित हुआ था। यह विषय प्रमङ्ग क्रमसे काशीखण्डमें लिखा कि काशिराज रिपुप्य दिवोदासके समय काशीमें बौद्धधर्म प्रवल है। यथा—

उक्त स्थान पर पिण्डदान करनेमें, पिण्डगणकी ब्रह्मपद मिलता है। (वागीश्वर ११५०) दिवोदासेश्वरमन्दिरकी छोड़ कुछ भागें बढ़ने पर पार्श्वमें विद्यालाची देवीका मन्दिर नयनगोचर होता है। (वागीश्वर ११। १७) विद्यालाची मन्दिरके पीछे मीरघाट पर सिल-

सिले चार अनेक मन्दिर देख पड़ते हैं। वहाँ सलिता देवीके मन्दिर-निकट जलमायी विष्णुमन्दिर और राज-बलभ देवानय है। गङ्गापक्षमें उक्त मकान मन्दिरका दृश्य पति सुन्दर लगता है। चारापक्षीके उत्तर-पश्चिम कोषमें नागकूप नामक



जलमायी विष्णुमन्दिर।

तोय है। आजकल वह स्थान नागकूर्वा महला कह- जाता है। वह अंग चारापक्षीका प्राचीन भाग समझ पड़ता है। प्रायः १३५ वर्ष पूर्व किसी राजाने उक्त कूपकी विस्तार व्ययमें पुनः संस्कार करा पत्थरसे बंधा दिया था। उसकी सिंघी पर एक स्थानमें ३ नागमूर्ति और चार स्थानमें एक शिवसिंह देखते हैं। वहाँ नाग और नागेश्वरशिवकी पूजा होती है।

नागकूपमें छोड़ी दूर वागीश्वरी देवीका मन्दिर है। उसकी देवी मूर्ति षट्पातुनिर्मित है। गिर पर सङ्ग सुकृत-गोमित है। वागीश्वरी देवी सिंघीपर अवस्थित है। मन्दिर भी देखने योग्य है। उसके बरामटेंमें नानावर्ण देवदेवीकी मूर्ति चित्रत हैं। मन्दिरके एक

कोषमें पनेठी राजपदस पत्थरकी एक सिंघमूर्ति है। एतद्विषय राम, लक्ष्मण, सीता प्रभृति और नवपक्षकी मूर्ति भी हैं।

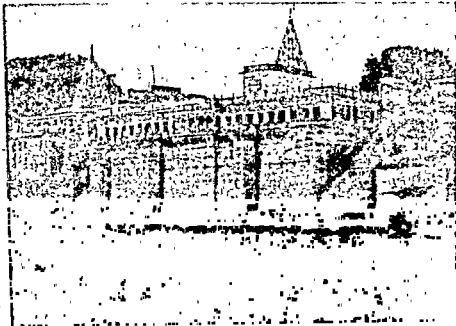
वागीश्वरीमन्दिरके निकट ही ज्वरहरेश्वरका और सिद्धेश्वरका मन्दिर है। अनेक लोगोंने विद्यावातु- सार ज्वरहरेश्वर महादेवकी पूजा करनेसे सर्वप्रकार ज्वर निवारित होता है। उसी प्रकार सिद्धेश्वर मानवकी मनस्सामना सिंह करते हैं।

उक्त मन्दिरोंमें गिष्णुमेखल तथा कारुकार्य अच्छा है। चारापक्षीमें दशमनेषघाट भी एक महातोय है। वहाँ गत गत मन्दिर बने हैं।

कर श्रीपार्ष्वनाथका जन्म हुआ था। भट्टनीघाट और भेलपुरामें दोनों तीर्थंकरोंकी चरणपादुका तथा विशाल मंदिर हैं। भट्टनीघाटका मन्दिर पारानिवासी जमींदार प्रभुलालजीका बनवाया हुआ है। गंगाकी किनारे यह विशाल मन्दिर प्रति मनोहर और सुदृढ है। नीचे पक्का घाट बंधा है, यह प्रभुघाट-

के नामसे बोला जाता है। यहां दिगंबर जैनकी तरफ से 'स्याद्वाद जैन महाविद्यालय' नामक एक लक्ष्यशैलीका संस्कृत विद्यालय है। इसमें विना मुक्त शिक्षा दी जाती है। जैन लोगोंकी सहायतासे ही इसका सब काम चलता है।

इसके समीप ही बाबू छोटोनासजीका बनाया हुआ



श्रीस्याद्वाद जैन महाविद्यालय।

दूसरा जैन-मंदिर है। यह भी गंगा किनारे प्रति दृढ और विशाल है। यहांसे 'चर्चिसा' नामक एक सामाजिक पत्र निकलता है। इसके सिवा भेलपुरामें दो और मेदागिनपुर एक जैन-मंदिर तथा विशाल धर्मशाला है। जैनियोंकी संख्या घटपट रहते भी यहां मंदिर काफी हैं। भुतई इसली मण्डलमें एक जैन-मंदिरमें स्फटिककी मूर्ति है। प्रायः हरसाल यात्री दर्शनके लिये आया करते हैं। इसी प्रकार श्वेताम्बर जैनोके मंदिर और धर्मशाला भी घनेक हैं।

१ चित्तगति । २ सुपुत्रा नाडी । (बायोगतिविषय) ।

४ काशी देवीकी मूर्ति ।

'विदेमें साधनं दिति' दरबदाविषय मेरुपत्नी ।

रत्न बापों दुर्गा यहां भवानी लक्ष्मीबिंबाम् ।

पशुपति होय । ५ सुदृढ कागदपत्र, छोटा काम । ६

सुदृष्टे । (निष्पन्न) (त्रि०) ७ काशीरोग, खासीका बीमार ।

काशीकरवट (चि० पु०) काशीस्थ करवट तीर्थ । यहां पुराने समय लोग पारसे और जाने पर अपने मज्जि समझते थे। आज कल सरकारने उसे बंद कर दिया है।

काशीकापदी—सम्बन्धके बारासी और गोलापुरकी एक जाति। काशीकापदी लोग भीष्म मार्गते घुमा करते और वता नहीं मकते—उनका पादि निवास-कहां था। वह आपसमें तेलगु और दूसरोंके साथ टूटी फूटी मराठी बोलते हैं। भोग्य मार्गनेके प्रतिरिक्त काशीकापदी यज्ञोपवीत, बद्राचकी माना, दर्पण पादि छोटि मोटे वस्तु भी बंध लेते हैं। हिन्दू देवदेवी उनको मान्य हैं।

काशीदाम—सम्यक्कीसुदी हंदिबहके रचयिता जैनकवि । काशीनाथ (सं० पु०) काश्यायः नाथः, ६ तन् । १ गिव ।

“मातायै नमः ॥ सर्वभूतेश्वरीयै नमः ॥”

एतन्न दक्षिणः कर्णोत्तरदिशिः । महाकविः ।

श्रीकेशं दत्तमन्त्रिणं कश्चिद् भवतीति ।.....

पुरा दक्षिणे नाम शरीरं कथयति ।

दक्षिणदिशि चत्वारो विधिनिश्चयः ॥”

(बालीयच ११। ६१-६८)

ब्रह्मनि शक्तिं दिव्योदासके सहायसे काशीमें दश
चतुर्भिध यज्ञ किये थे। तदवधि उनके यज्ञ करनेका
स्थान दशाश्वमेधतीर्थ नामसे जगत्में विख्यात हुआ।
पुराकालको उक्त तीर्थ दक्षरघोषर कछाता था। ब्रह्माके
यज्ञावधि उनका नाम दशाश्वमेध पड़ गया।

दशाश्वमेधमें ब्रह्मनि दशाश्वमेधेश्वर नामक शिव-
लिङ्ग स्थापन किया था।

“तत्र धाना महाभूमि भरति श्रीदश नराः ।

रक्षाश्विपानां चर्मै तत्र काशीति नामकः” ॥

(महाभारत, १०२। ११)

अस (दशाश्वमेध) तीर्थमें स्नान करनेसे मानव
रोगग्रस्त होते और दश चतुर्भिधका फल भीगते हैं।

काशीयज्ञमें लिखा है कि दशाश्वमेधतीर्थमें
केवल मात्र तीन आहुति प्रदान करनेसे चन्द्रिहोत्रयाग-
का फल मिलता है। (बालीयच ११। १०८)

अद्यापि दशाश्वमेधेश्वर और ब्रह्मेश्वर नामक
शिवमन्दिर बना है। काशीयज्ञके मतमें उक्त समय
लिङ्ग ब्रह्मनि प्रतिष्ठित किये थे। प्रथम लिङ्ग कल्प
पांचासमय और प्रायः ४ हाथ उंच है। सम्भव एक
हृदयाकार हृदय मूर्ति है। काशीमाहात्म्यके मत्ता-
नुसार दशाश्वमेधमें स्नान कर दशाश्वमेधेश्वरके दर्शन
करने पर मानव समस्त पातकसे मुक्ति पाता है।
अथैव मासकी प्रतिपदा और दशहराको विष्णु तीर्थ-
यात्री पञ्च होते हैं। काशीयज्ञके मतानुसार उक्त
समय दिन दशाश्वमेधमें स्नान करनेसे पात्रयज्ञक
अथवा दशसन्निहित पाप कट जाता है। ब्रह्मेश्वरलिङ्ग
दर्शन करनेसे भी मानव ब्रह्मलोक पाता है।

दशाश्वमेध-मन्दिरके निकट ही 'दक्षर' नामक
तीर्थ है। काशीयज्ञके कथनानुसार उक्त तीर्थमें स्नान
करनेसे कर्मादयुक्त पाप विनष्ट होता है।

दशाश्वमेध-घाटमें दशहरा प्रवृत्ति करनेके देव-

मन्दिर हैं। एक ही माघ कतार कतार घतने पश्चिम
मन्दिर काशीमें अन्य किसी स्थान पर देख नहीं पड़ते।

दशाश्वमेधघाटके उत्तर मानमन्दिरघाटके निकट
शाम्भूश्वर, शोभेश्वर, विष्णु, शोतला, वाराही देवी
प्रभृतिके मन्दिर बने हैं।

वाराणसीसे पश्चिम नगरवासीके बाहर विगाच-
मोचन तीर्थ है। वह एक प्राचीन स्थान है। कूर्म-
पुराणमें भी उल्लेख है। (पूर्वभा, ११। २) घाटः
काशीयात्री माघ उक्त तीर्थके दर्शनको जाते हैं।

काशीमाहात्म्यमें कहा है:— किमो समय एक
विगाच बलपूर्वक काशी पहुँचा था। पपरावर देवता
उसकी गति रोक न सके। शिवको कालभैरवने गुह
कर विगाचका मस्तक क्षिण्ण कर डाला। फिर
भैरवमाघ विगाचका मुण्ड से विष्णेश्वरके निकट उप-
स्थित हुई। देहहान होती भी विगाचकी लीवगगति
या वाङ्गगति गयी न थी। उसने विष्णेश्वरसे प्रार्थना
की कि वह काशीमें डटाया न जाय। पापतोषने उस
की प्रार्थना, पाछा की। विगाचने अचयेयकी फिर कहा
‘हे विष्णेश्वर। पाप अनुमति दे जिसमें गयायात्री
विना मुक्ति प्रथम दर्शन किये गया यात्रा न कर सके।’
विष्णेश्वरने वही अनुमति दे डाली। तदनुसार चनेक
यात्री प्रथम विगाचमोचनका दर्शन कर पचात् गया
जाते हैं। कालभैरवने उस तीर्थमें विगाचका मुण्ड
फेंका था। इसीसे उसका नाम विगाचमोचन पड़ गया।
यहाँ प्रतिवर्ष कई मेले होते हैं। उनमें 'मोतामण्डा'
मेला प्रधान है।

विगाचमोचन घाट कुछ मीराबाई और कुछ गो-
पालदास माधुक द्वारा पत्थरसे बंधाया गया। घाटका
दक्षिण प्रायः तीन गज वर्ग पूर्व राजा शिवगन्धर और
उत्तर अंग प्रायः गताधिक वर्ग पूर्व राजा सुरसोचरने
बनवाया था।

विगाचमोचनकी पूर्व और दो मन्दिर हैं। उनमें
एक मीराबाईका प्रतिष्ठित है। मन्दिरकी चारो दिक्
पनेक देवमूर्ति हैं। कहीं शिव, कहीं शक्तिके पादार्थमें
विगाचका क्षिण्ण मुण्ड, कहीं विष्णु, लक्ष्मी, सूर्य, गणेश,
इन्द्रमान् प्रभृतिकी मूर्ति मोता पाती हैं।

गत इमारि पादगतनी प्रजावा करने रथे चौर इमारि
 पदुं ननेमि दक्षिणे देव न पदुं । सुवतुर जर्मचारिगेमि
 एतका उद्वेष्ट मगलक चारी दात्र के पर्वतीने हरक मंग
 वादमापकी कौडाका नामन टाक रथा या । सुतरा
 पदमय पमलाका कायं पारथ होति भी वादमापके
 कालमें समका प्रभाव न पठा । पमलाकी जर्जरारके
 पदुं नने पर हरक इटानेमे कौडाकालमें वगल
 भवक उठा या ।

कादमीरमें माता वर्षके मनोरम सुगन्ध पुष्प उपेट
 है । मधे प्रथम हरिद्राम यल्लवर्षका पेदमुक्त फूल
 खिलता है । तिम चौर देखिये, उनी चौर पुष्पका
 पादारण लगा हुआ मामूम पड़ेगा । कादमीरमें फूल-
 के गुणदोषके निधि विविध प्रकार पुष्प बाहरपका
 कह नहीं उठाने । मधुपु लदां चाकने बर्षोंमे दो एक
 पाप जमोगके बीच प्रायः ७ । ८ प्रकारके फूल पा जाते
 है । वेणानमापके मध्यकाल वादाम फूलनेमे फिर
 एक मयी मोभा पमल पकती है । यह काश्मीरयोके
 बडे पानम्पदाः समय है । धने, निधन, युवा, हृद, उर
 भोग हजार दास्यान्का पित्रडा जायमें उठा हरि-
 पथं नामक प्लानकी जाति चौर वादाम पेड़की माया
 में विभक्तेकी लटका लम्बीव (लरो) खोल देमे है ।
 हजारदास्यान् पमलमायु जगमेंमे माचते माचते सुल-
 लित चरमें माता रहता है । काश्मीरी भी मक्षिणपथ
 विमुगुच गान कर रतपानः समते है । उपेस मासमें
 नमिभी फूलती है । समका वर्षे पाकागकी भांति होती
 है । सुतरा काश्मीरा उमे "हि पासमान्" कहते है
 उक्त पुष्प पमलाकी विदाईका फल है । उसके खिलने
 में ही वगलकी मोभा मध्याह्न की जाती है । वेणान
 होतने पर नमिवा खिलनेमे पहले जोह काकागुमार
 लमदाः फल भरने और भरपल्लव निकलने समते है ।
 पायाट मोग फल दाता है । मध्य परिपूर्व ही जाता
 है । काश्मीरमें पीपका मोग नहीं । जब पीपके प्रभाव-
 मे हिन्दुस्थानमें ही यहराने लगता, तब वहां माच पर
 एक परिधि पल्ल रथना चौर रातको रजाई चोटन
 पकता है ।

कादमीरके पदम रीठ लुह उठता है । किन्तु वसने

कमी भोग विरम नहीं होती । बड़े मयी पदनेम
 भीम परल उटि हो जाती है । फिर पर्वतारि होलकता
 धारथ करते है । पाचार्प नियम । वहा आवदमें मूषक
 धार उटि नहीं होते । शीतकालमें वरल निरमेके
 समय भङ्ग मगती है । उनी समय शिमःउटि भी
 होती है । संवत्सरमें १८ । २० इधमे पथिह पाती
 नहीं वरमता । पात्रिनमें फल कम पकता है । कातिं-
 में शीत पारथ होता है । हृद मकल पतधीन हो
 जाते है । उनी समय शीतसरमे ६ लोग दूर पादपुर
 चेतमें जाकराग (विसर) उपप्य होती है । वहाँ
 काश्मीरके प्रति मखरकी मिय मोभा है । किसे कारमी
 कवितामें उक्त विषय भली भांति परिचित हुआ है । यथा
 जाकराग पिनकर मधमे कहती है कि तुम काश्मीर-
 का पय छोड़ हिन्दुस्थानका पय पकड़ो, यहाँकी मोभा
 पूरी हो गयी । शीतकालको पति देव काश्मीरी पाचा-
 रीय मंचक करते है । उम समय यह मनुष्य गाक
 (कदूतक) सुवाकर रप छोड़ते है । किमीके वरामदे
 किमीके लंगसे चौर किमीकी नाभमें गुत् पमित
 मिर्चोकी बड़ी बड़ी मासा गुषा करतो है । उधे देव
 कर समझते कि दुःमह जतुकी पाने विचार काश्मी-
 री भी उपयुक्त पायोगन लगा रपते है । २००००
 पीठ लंचे काश्मीरमें विरतुवार विरालित है । कातिंक
 नाम पाते ही नीचे पार्वथ कालमें वरक गिरने लगती
 है । किन्तु यह कातिंजने जमते नहीं, गम जाती है ।
 वीप मासमे नियमानुसार बरकका जनमा युक्त होता
 है । बरकचे चतुर्दिक शीष्यमन्त्रित हो जाती है । गरु
 हृय देवनेमें भी बहुत रतचोप लगता है । किन्तु उम
 समय काश्मीरमें रहना बहु कष्टसाध्य ही जाता है ।
 काश्मीरपति मजाराज रवधीरमिंदके सुविद्य मन्त्री
 (१८८५ ई०) दिवान् मजारासमे अमचोत
 काश्मीर-रतिहासमें उक्त सुवारगतके मध्यम्वर लिखा
 है—'वीरपर्वतपर जो दृष्ट दृष्ट चेतवचं कविंका पयो
 है, यह वरक नहीं, पाकासमे काश्मीरके सुपमें
 पगलमात दाग किया है ।'

वास्तविक वहा सुवारगतमे शीतल संभव होती है ।
 उममें विधाताकी पमीम बहृपाय तिम मखर शीर

उसके आगे सूर्यकुण्ड या साम्वादित्य है। काशी-खण्डमें वर्णित है,—विश्वेश्वरकी पश्चिमदिक् जाम्बवती-मन्दन साम्बने आदित्य देवकी उपासना की थी। वह क्षत्रके अभिगायके कुष्ठरोगान्तात्न हूये। उक्त दारुण व्याधिसे मुक्ति लाभके लिये वह काशीमें जा एक कुण्ड निर्माण पूर्वक सूर्यकी आराधना कर गायके छूटे। साम्बप्रतिष्ठित साम्वादित्य नामक सूर्य-विषय भक्तगायकी सर्वप्रकार सम्पद् प्रदान करता है। साम्वादित्यकी सेवा करनेसे स्त्री कभी विधवा नहीं होती। माघ मासमें रविवार पर श्रद्धासप्तमीका साम्ब-कुण्डकी यात्रिक यात्रा पड़ती है। उषदिन साम्बकुण्डमें स्नान कर साम्वादित्यकी पूजनेसे उरुहट रोगभी शान्त होता है।”

काशीखण्डोक्त साम्बकुण्डका ही वर्तमान नाम सूर्यकुण्ड है। सूर्यकुण्डके समूह एक सुदूर मन्दिरमें अष्टाङ्ग भैरवकी मूर्ति है। हिन्दूविशेषी औरङ्गजीवन वह मूर्ति अङ्गहीन कर डाली थी।

उसी पक्षमें भुवेश्वरका मन्दिर है। काशीखण्डके मतमें भुवन वह शिवलिंग प्रतिष्ठा किये था।

वाराणसी एहसानगञ्जमहल्लेमें विख्यात योगेश्वरका मन्दिर है। उस मन्दिरकी चारों ओर प्राचीर है। मन्दिरमें अनेक देवमूर्ति प्रतिष्ठित हुयी है। मन्दिरकी कारीगरी अच्छी और देखने योग्य है।

एहसानगंज महल्लेके उल्लिखित काशीपुरी महल्लेमें काशी देवीका मन्दिर बना है। वही काशीकी अघिष्ठात्री देवी है। काशी देवीके मन्दिरसे अनेकितूर घण्टाकर्ण तात्ताव है। काशीखण्डके मतमें वसे 'घण्टाकर्णज्जद' कहते हैं। उस ज्जदके निकट चित्रघण्टेश्वरी विराज करती है। ज्जदके तीर घण्टाकर्ण नामक गणकर्थक प्रतिष्ठित घण्टाकर्णेश्वर नामक शिवलिंग है।

(काशीखण्ड ११। १२-१३)

घण्टाकर्ण ज्जदके तीर वेदव्यासेश्वरका मन्दिर है। उस मन्दिरमें वेदव्यासकी मूर्ति और तत्प्रतिष्ठित वेदव्यासेश्वरलिंग विद्यमान है। धावण मासमें घण्टाकर्णज्जद और तमिकटस्य मन्दिरके दर्शनको विद्धार तीर्थयात्री जाते हैं।

काशीदेवीके मन्दिरसे कुछ उत्तर भूतभैरव वा विषम भैरवका मन्दिर है। भूतभैरवका मूर्ति अङ्ग, त है। वहाँ परंपरापर देवमूर्ति भी हैं। उनमें अश्वत्थ वृष के प्रकाण्डसे उत्थित वृषत् शिवलिंग ही प्रधान है।

उसी महल्लेमें वाराणेश्वर और जगन्नाथदेवका मन्दिर है। एक स्थानमें दोमतीकी प्रदरमूर्ति है। उभयने पतिका सहगमन किया था। सधवा स्त्री जा कर उक्त दो सती मूर्तिका पूजा करती है। वहाँ दूसरो भी अनेक अङ्गहीन पापायमूर्ति है। कानवग पयवा सुगन्धमान उत्पीडनसे उन सकल देवमूर्तियोंको घेरी दुर्दमा हुयी है। वहाँ प्राचीन शिल्पनेपुत्र देख चमत्कृत होना पड़ता है।

वाराणसीके मध्यस्थलमें त्रिलोचनका प्राचीन मन्दिर है। काशीमाहात्म्यमें लिखा है—“निप समय शिव ध्यानमें निमग्न रहे, विष्णु प्रत्यक्ष सहस्र पुष्पसे उनकी पूजा करते थे। एक दिन विष्णु शिवपूजामें निरत रहे। उसी समय शिवने उनकी एक फूल उठा रखा। उसके पीछे विष्णुने पुष्पाञ्जलि देनेके समय एक एक कर ८८८ फूल देयोद्देशसे परपण किये। शिवको उन्हींमें देखा कि एक फूल न था। किंकरुंश्वविमृद होकर पशुपतिको भगवन्ने चपला एक नेत्रकमल उत्सर्ग किया। कपोल देशपर वह नेत्र पड़ने ही शिवके तीन नेत्र ही गये और वृष त्रिलोचन नामसे विख्यात हुये।”

त्रिलोचनका वर्तमान मन्दिर पूजाके नापूवात्ताने बनवाया था, मन्दिर बहुत प्राचीन नहीं। किन्तु तत्स्थानीय सकल देवमूर्तियोंके प्राकृतिकदर्शनसे वह पश्चिम प्राचीन—अंश समझ पड़ता है। काशीखण्डके मतानुसार—“त्रिभुवनके मध्य वाराणसीपुरी ही सर्वोपेक्षा श्रेष्ठ है। उस वाराणसीसे प्रणवेश्वर लिंग और उभयसे भी उक्त त्रिलोचन लिंग श्रेष्ठ है। महेश्वरने कनिकासने त्रिलोचनकी महिमालिखित रखी है।” (काशीखण्ड ११। ११। १२ मन्दिरकी भीमामें प्रवेश करने पर विविध देवदेवी मूर्ति दर्शनसे जयन और मन प्राकट होता है। वहाँ दूसरे भी सुदूर सुदूर मन्दिर है। सर्वत्र माघः १, २० वा २० से पश्चिम शिव और निकटही मन्दिरमूर्ति

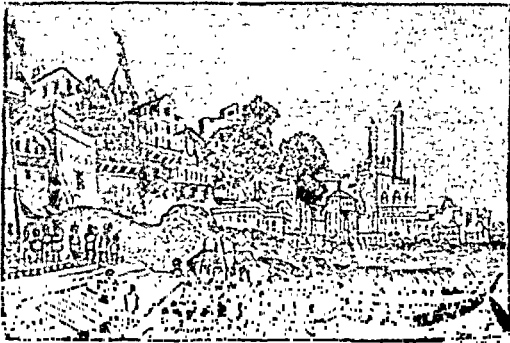
जगत् सचता, यह पृथ्वीके सेवनका ही फल ठहरता है। शीतकालमें एकदण्डके लिये भी तुपारपात विश्राम नहीं होता। उस पर मध्य मध्य झड़ पीर प्रबल वृष्टि पड़ती है। फिर भयङ्कर शिलापात भी होता है। कभी कभी एकादि क्रमसे एक मासके मध्य सूर्यका दर्शन नहीं मिलता। नदी झड़ादि जम जाते हैं। कभी कभी कलसी वा अन्य पात्रादिका जल जम जानेसे पानी या जन पीनेको नहीं मिलता। काश्मीरवासी विलक्षण समझ सकते और सतर्क हो कुछ पूर्वसे गृहादिके मध्य दिशारात्रि भस्मि प्रवृत्तित रख किसी प्रकार जलरक्षा और ज्ञेयादि निवारण करते हैं। शीतकाल पड़नेसे आवास-गृह-वनिता सबजोग छातीपर चंगरलेके नीचे एक बरोसी व्यवहार करते हैं। बरोसी मसालेकी हंडी जैसा भस्मि रखनेकी स्यस्य पात्र है। वह चारो ओर वांसकी खपाचसे बुनी रहती है। समस्त भस्मिहास छातीपर कपड़ेके भीतर लटका देते हैं। इसीसे काश्मीरियोंके बर्ण-स्वस्ममें जलनेके दाग देख पड़ते हैं। बर्फ गिरनेसे कुछ दिन पहले गिरिज पड़ता है। उस समय प्रातःकाल बोध होता मानो रातको किसीने चारो ओर चूना बिछा दिया है। बर्फ गिरनेसे पहले शीत पति पसड़ा हो जाता है। किन्तु बर्फ पड़ जानेसे सत शैत्यके मध्य भी कुछ रम-पोयता मालूम पड़ती है। लघु अधिक बर्फ गिरती, तब तब प्रातःकाल ठठ कर देखनेसे चारो ओर चांदी जैसी भस्मक उठती है। पर्वत, निम्नगृह, लता, गुल्म, गृह, छत, नौका, उच्चनीच भूमि, पथ, प्राङ्गण सभी मानो रोप्यमण्डित हो जाता है। घरकी छतसे शीमेका नल जैसे बर्फके नल लटका करते हैं।

शीतकालमें चाय और मांस ही काश्मीरवासियोंका प्रधान खाद्य है। शीतकालमें ही केवल कई प्रकारके जलचर पक्षी मिलते हैं। किसी किसी दिन कुछ परिष्कार होनेसे काश्मीरी जसायध घर जा पक्षी मार लाते हैं। उस समय मूलान भिन्न कोई शाक नहीं मिलता। काश्मीरी उसे 'नदरु' कहते और शीतकालमें रांध कर खाते हैं।

जगत्—जगत्में यदि केवल स्वाम्यतर कोरे

खान है तो काश्मीर ही है। नदीका जन, रुद्रका जल इतना खच्छ रहता कि दग हाथ नीचे मकलीका खेल स्पष्ट देख पड़ता है। जल जेसा खच्छ वैसा ही सुखादु भी है। उसीका जल तो मैथज्यगुणविश्रिष्ट है। किसी किसी उत्तम केवल खान करनेमें ही कुछ पर्यन्त पारोग्य हो जाता है। जल इतना शीतक है कि ज्येष्ठ पापाद, मास पीते भी दांत छिल उठता है। काश्मीरके लोग स्वप्नमें भी समझ नहीं सकते पीष वा धूमि किसे कहते हैं ? वायु पति निर्मल, शीतल और स्वास्थ्यकर है। किसी कविने कहा है—यदि कोई दग्ध जीव भी काश्मीर पावे, तो वह जीवित ही जावे; यहां तक कि भस्मिदग्ध पक्षी भी अपने पर पावे और आकाशमें उड़ता देवावे। वास्तविक एक सुखने कह नहीं सकते काश्मीरके जनवायुमें कितने गुण हैं। काश्मीरीके रहनेके गृहादि काष्ठसे निर्मित होते हैं। काश्मीरी भाषामें उन्हें "लड्डी" कहते हैं। यही प्रायः भूमिकम्प होते हैं। इसीसे सबजोग लकड़ीके घर बनाते हैं।

किसी किसी घरकी भित्ति मन्तर वा ईंटक निर्मित होती है। किन्तु अधिकांशमें नीव लगती है। बर्फके लिये सब मकानोंकी छत दोनों ओर टेंगू रहती है। छत पर पहले तख्ते और पाईके अंशवंध बिछा महीसे तोप देते हैं। वसन्तकाल सर्वांगी घर खण्ड जमजानेसे छत पूरी हो जाती है। समस्तकारोंका छत देखनेमें बहुत सुन्दर होती है। घर द्वितीये पक्ष-तल पर्यन्त बनता है, वह पद्धती मयमकी भित्ति देख पड़ता है। बिड़कीके किवाड़े दो प्रख (दुहेरफा) होते हैं। बिड़केके कण्ठमें नामा प्रकारके काँचकाय और सुद्र सुद्र छिद्र रहते हैं। शीतके समय उक्त छिद्र आगजनेसे बन्द कर दिये जाते हैं। उसमें हिम संकलता, किन्तु पालोक पट्टवा करता है। प्रखेक भ्रमणमें एक 'बोखारी' (धुवांकुग) रहती है। बिना उसके शीतकालमें वास करना पसण्ड है। किसी किसी घर विमोचनः धनियोंकी पहालिकाके सर्व निष्कलनं ह्याम पर्यात् स्या स्यामागर होता है। उसमें किसी दिक्क वायु सुगने नहीं पाता। वहाँ उष्णताका तार-



भगिनतीर्थ—अग्नीश्वर पाट।

देखते हैं। दक्षिणभागमें देवमभा है वही विख्यात कोटिलिङ्गेश्वरमूर्ति वर्तमान है। यह सिद्ध २ हजार वर्ष है। लिङ्गका पद्म रूप प्रकार गठित है कि देखते ही गत गत गिबलिङ्गका एकत्र अधिष्ठान समझ पड़ता है। मन्दिरके दक्षिण भागमें राजा बनार प्रतिष्ठित वाराणसी देवीकी मूर्ति है। एतद्विषय रघुवर उधर मधुसूय, सुयं, गीतिका, इत्यादि प्रशस्ति की मूर्ति भी दृष्टिगोचर होती है।

त्रिलोचन मन्दिरके द्वार मध्ययुग युगमन्दिर है। वहाँ बाहरसे भीतर तक परमेश्वर देवमूर्ति विराज करती है। उसका दृश्य देखते ही विस्मित होना पड़ता है।

त्रिलोचन मन्दिरका वरामदा काल रंगके पाठ खंभोंपर स्थापित है। उसका पटल (द्वार) विविध चित्रोंमें चित्रित है। वरामदामें बड़ी घण्टा लटकती है। प्रथमशरीरके पादार्थदेगमें बहत् खेत प्रस्तरकी एक हस्तमूर्ति है। वहाँ गदिमादि देवमूर्ति व्यतीत चित्र युक्त मानवमात्रकी प्रतिमा चित्रित है। वहाँ नरक चौर मृत्यु नदीका दृश्य बहुत चमत्कार है। वहाँ राम बातका सुन्दर चित्र देख पड़ता—पापी मानवगण किस प्रकार दण्ड पाता चौर काल नदीके वरवार जानिके कैसे व्याकुल होता है। यह मन्दिरकी दृष्टि

कुछ दूर पर त्रिलोचनघाट है। वहाँ भी गिबल चौर काश्चार्थ शोभित सुन्दर देवानय बना है। यह सकल देवालयेके बाहर भीतर चारोदिक परनेक गिबलिङ्ग रखे हैं।

त्रिलोचनघाटका प्रायोन नाम विलविनातीर्थ है। कामोच्छ्रमे कहा है—गङ्गाके सञ्चित निमित्त ही शरस्वती, यमुना चौर नर्मदा वहाँ वाह्य करती है। उद्यो विलविना तीर्थमें श्री मूर्ति स्नानकर विख्यातवादि करता, उसको फिर गद्यामें लानेका क्या प्रयोजन पड़ता है ? विलविनातीर्थमें स्नानान्त विष्णुप्रदान कर विष्णुपसिद्ध दर्शन करनेके कोटितोर्थ दर्शनका फल लाभ होता है। शरस्वती, यमुना चौर नर्मदा तीन पापविनाशिनो त्रिलोचनकी दक्षिणदिक् विष्णुपसिद्धको स्नान करानेके निष्ठ समवेत दृष्टी है। यह नदीसूयने स्वयं स्वयं नामके एक गिबलिङ्ग प्रतिष्ठा किया है। विष्णुपसिद्धकी दक्षिणदिक् शरस्वती, यमुना, पश्चिमदिक् यमुनेश्वर चौर पूर्वदिक् सुवर्णमद नर्मदेश्वर है। यह तीन निङ्गके दर्शनी महापुण्य निमित्त है। (बालोचन १०१३-११)

पद्याय त्रिलोचनके निकट त्रिलोचनघाटमें एक सकल प्रतिमा विराज करती है।

गङ्गासागरीके दक्षिण चौरघाट है। उसमें प्राग्

रामघाट पड़ता है। वहाँ भी विस्तार देवालय हैं। राम-घाटके दक्षिण जैनमन्दिरघाट है। वहाँ जैनमन्दिरमें पांडुरवनाथ प्रभृति जिनमूर्ति हैं। उसके दक्षिण पाचोन चत्वितीर्थ (वर्तमान चम्पौखरघाट) है। चम्पौखरके तीर चम्पौश्वर मन्दिर व्यतीत दूधरे भी चर्नक देवालय है।

त्रिभोवनघाटके निकट चादि महदृष्टिका एक अतन्त्र मन्दिर है। उस मन्दिरमें प्राचीन व्यासामन देख पड़ता है। प्रवादानुसार उक्त चामन पर वेद वेद व्यास वेदपाठ करने थे। वहाँ पापापमयी पावतीश्वरी की प्रतिमा है। पूर्वतन पावतीश्वरीका मन्दिर विनष्ट हो गया था। गौरजी नामक एक विख्यात गुजराती ब्राह्मणने काशीखण्ड चानुपूर्विक पट प्राचीन देवमूर्ति और तीर्थ सफलको उधार करनेकी चेष्टा लगायी। उन्होने प्राचीन पावतीश्वरीकी प्रतिमाका अनुसन्धान न पा सकके स्थानमें वर्तमान प्रतिमा प्रतिष्ठा की है।

पद्मगङ्गाघाटका चपर नाम पद्मनद या धर्मनद-तीर्थ है। काशीखण्डके मतमें—“धर्मनदमें धृतपापा, क्रिया, संस्कार, गङ्गा और यमुना पांच नदी जाकर मिली हैं। इसीसे उमका नाम पद्मनद है। राजसुय और प्रद्वेयके प्रवृत्तकी पपिला पद्मनदतीर्थमें स्नान करनेमें शतगुण अधिक फल लाभ होता है।” (भाष्य, ४६ १११-११४)

प्राजकाल केवल गङ्गानदी दृष्ट होती है। साधारण विश्वासके अनुसार दूधरी चारो नदी मूर्तिके मध्य चम्पौखरिला बहती है।

वहाँ मङ्गलामौरी और विन्दुमाधवका मन्दिर है। काशीखण्डके कथानुसार—पद्मनदतीर्थमें स्नान कर विन्दुमाधवकी दर्शन करनेसे मनुष्य फिर कभी गर्भ-वासवन्तभा भोग नहीं करता। उसी प्रकार मङ्गलामौरीकी चर्चना करनेसे वन्ध्या स्त्री भी पुत्र लाभ कर सकती है। (भाष्य, ४६ ११४-११६)

उसी स्थान पर किन्दूबिहोपी औरद्वजिवन पुरातन विन्दुमाधवका मन्दिर पूर्ण धरा किन्दूदेवालयको उन्नता बनव करनेके लिये बहुत लंबी मीनारसे समी एक बड़ी मजिद बनायी थी।

त्रिभोवनघाटसे पश्चिम कामेश्वर प्रभृति प्राचीन शिवलिंगके चर्नक मन्दिर है। उक्त प्रायः सकल मन्दिरका वर्ष लोहित पौर सुद सुद बड़ा है। काशीखण्डके मतमें—देव कामेश्वर माधुगणको कामना पूर्ण करते हैं। भक्तब्रह्मा पूर्ण करनेके लिये भगवान् लिंगमें स्नान रूप हैं। उसीसे खर्मान नाम पडा है।”

(भाष्य, ११ १११-१११)

उसीके निकट प्राचीन मन्नादरी तीर्थ था। शिव-पुराणादिमें उक्त प्राचीन तीर्थ का उल्लेख है। काशीखण्डके मतानुसार मन्नादरी तीर्थमें स्नान करनेसे सागर फिर गर्भवन्तभा भोग नहीं करता। उक्त तीर्थका प्राज काल विपन्नता नहीं मिनता। प्रायः ८० वर्ष पूर्व किसी साधुने उसका क्षोप कर दिया था। पछलेवर्ष चर्नक तीर्थयात्री स्नान करने जाते थे। किन्तु तीर्थ क्षोपके साथ यात्रियोंकी संख्या भी घट गयी है।

काशीके बंगाली-टोनामें केदारेश्वरका मन्दिर है। काशीखण्डमें केदारेश्वरकी उत्पत्तिके सम्बन्ध पर लिखा है—“उल्लाविनीमें बसिष्ठ नामक एक ब्राह्मणपतनय रहे। वह हिमानयके केदारेश्वरके उद्देशसे यात्रा कर काशी पहुँचे। वहाँ उन्होंने प्रतिष्ठा की थी—“हम जब तक जीते रहेंगे, प्रति चैत्रमास केदारेश्वरके दर्शनकी यात्रा करेंगे।” फिर उन्होंने ६१ बार केदारेश्वर दर्शन किया। बहुतकाल पर बसिष्ठने पूर्ववत् केदारेश्वरके दर्शनार्थ सङ्कल्प किया, किन्तु पति उह देख सङ्घर गयने उल्लेखाने मना किया। तथापि उह का उपाहटूटा न था। उन्होंने स्थिर किया कि राहमें मरना भी अच्छा परन्तु केदारेश्वरके दर्शनकी पवग्र्य चलंगे। उनके प्राचरणसे केदारेश्वरने खड्गमें दर्शन दे कहा था—“हम तुम्हारे ऊपर सन्तुष्ट हूये हैं। वर मांगो।” ब्राह्मण कहने लगा—“यदि पाप हमारे ऊपर प्रसव हूये हैं, तो हिमानयमें पाकर यहाँ प्रवस्थान कीजिये। भगवान्ने भक्तके प्रति सन्तुष्ट हो पपको क्षमाया देवमन्त्रमें रख उक्त स्थान पर जाकर मन्त्रपूर्ण भावसे हरपापदमें प्रवस्थान किया। हिमानयकी चर्चवा जगामें केदारेश्वरका दर्शन करनेमें सात गुणा अधिक फल मिलता है। हिमानयकी भाति काशीमें भी गोरी

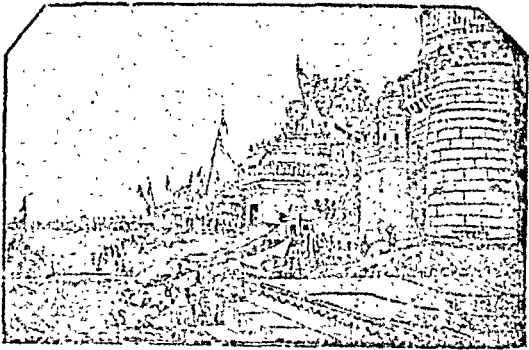
जगत् पचता, यह पसृतके सेवनका ही फल ठहरता है। शीतकालमें एकदण्डके लिये भी तुपारपात विश्राम नहीं लेता। उस पर मध्य मध्य झड़ पीर प्रबल वृष्टि पड़ती है। फिर भयङ्कर शिलापात भी होता है। कभी कभी एकादि क्षमसे एक मासके मध्य सूर्यका दर्शन नहीं मिलता। नदी झड़ादि जम जाते हैं। कभी कभी कलसी या अन्य पात्रादिका जल जम जानेमें पानी या जल पीनेको नहीं मिलता। काश्मीरवासी विलक्षण समझ सकते और सतर्क हो शुद्ध पूर्वसे शृङ्गादिके मध्य दिशारात्रि भग्नि प्रवृत्तित रश्मि किसी प्रकार जनरचा और क्लेशादि निवारण करते हैं। शीतकाल पड़नेसे प्रावास-सह-वनिता सबलोग छातीपर चंगरखेके नीचे एक बरोसी व्यवहार करते हैं। बरोसी मसालेकी चूली जैसा भग्नि रखनेकी स्यस्य पात्र है। यह चारो ओर वांसकी खपाचसे सुनी रहती है। सममें भग्निहाल छातीपर कपड़ेके भीतर सटका देते हैं। इसीसे काश्मीरियोंके वस्त्र-स्वल्पमें जननेके दाग देख पड़ते हैं। बर्फ गिरनेमें कुछ दिन पहले गिशिर पड़ता है। उस समय प्रातःकाल बोध होता मानो रातको किसीने चारो ओर चूना बिछा दिया है। बर्फ गिरनेसे पहले शीत प्रति पसह्य हो जाता है। किन्तु बर्फ पड़ जानेसे सप्त शैत्यके मध्य भी कुछ रम-योग्यता मालूम पड़ती है। जब अधिक बर्फ गिरती, तब तब प्रातःकाल सठ कर देखनेसे चारो ओर चादी जैसे भलक उठती है। परंत, नियवहव, लता, गुल्ल, रुद्र, हल, नौका, सधमोच भूमि, पथ, प्राङ्गण सभी मानो रौप्यमण्डित हो जाता है। घरकी छतसे शीशिका नल जैसे बर्फके नन सटका करते हैं।

शीतकालमें चाय और मांस ही काश्मीरवासियोंका प्रधान खाद्य है। शीतकालमें ही केवल कई प्रकारके जनवर पक्षी मिलते हैं। किसी किसी दिन कुछ परिष्कार होनेसे काश्मीरी जनसमूह घर जा पक्षी मार लाते हैं। उस समय मूषाल भिख कोरे मांस नहीं मिलता। काश्मीरी उसे 'नदरू' कहते और शीतकालमें रांध कर खाते हैं।

स्थान है तो काश्मीर ही है। नदीका जल, झडका जल इतना स्वच्छ रहता कि दूध हाथ नीचे मकनीका छिल स्रष्ट देख पड़ता है। जल जेभा स्वच्छ वैसा ही सुबाहु मो है। उसीका जल तो भेष्यगुणविशिष्ट है। किसी किसी उत्कमें केवल छान करनेमें ही कुछ पर्यन्त पारोग्य हो जाता है। जल इतना शीतल है कि ज्यैष्ठ यापाद, मास पीते भी दांत झिल उठता है। काश्मीरके लोग स्वप्नमें भी समझ नहीं सकते शीघ्र वा धूमि किसे कहते हैं ? वायु प्रति निर्मल, शीतल और स्वास्थ्यकर है। किसी कविने कहा है—यदि कोई दग्ध जीव भी काश्मीर आवे, तो वह जीवित ही जावे; यहां तक कि भग्निदग्ध पक्षी भी अपने पर पावे और आकाशमें उड़ता देखावे। वास्तविक एक सुखमें कह नहीं सकते काश्मीरके जनवायुमें कितने गुण हैं। काश्मीरीके रहनेके शृङ्गादि काष्ठसे निर्मित हींते हैं। काश्मीरी भाषामें उन्हें "लड्डी" कहते हैं। वही प्रायः भूमिकम्प होते हैं। इसीसे सब लोग लकड़ीके घर बनाते हैं।

किसी किसी घरकी भित्ति प्रस्तर वा ईंटके निर्मित होती है। किन्तु अधिकांशमें नीव लगती है। बर्फके लिये सब मकानोंकी छत दोनों ओर टेंकू रहती है। छत पर पहले तख्ते और पाईके सुभ्रंष विद्या महीसे तोप देते हैं। वसन्तकाल उन्हें मही घेर खण जमजानेसे छत पूरी हो जाती है। उस प्रकारकी छत देखनेमें बहुत सुन्दर होती है। घर द्वितमें पंच-तल पर्यन्त बनता है, यह पहरेकी भवनकी भीति देख पड़ता है। खिडकीके किपाडे दो प्रस्य (टुंकिर्का) होते हैं। खिडकीके कागटमें नाग प्रकारका कांचकाय और सुद्र सुद्र छिद्र रहते हैं। शीतके समय उक्त छिद्र कागजसे बन्द कर दिये जाते हैं। उससे हिम बरकता, किन्तु पानीक पड़ना करता है। प्रत्येक भवनमें एक 'बोखारी' (पुवांरुग) रहती है। बिना समके शीतकालमें वास करना पचाध्य है। किसी किसी घर विशेषतः धनियोंकी पशुनिहाके सर्व निष्कलमें इन्धाम पर्याप्त स्यात् मानागार होता है। सममें किसी दिक्कें वायु घुसने नहीं पाता। वहां स्याताका तार

नपचाई—जगत्में यदि केवल स्वास्थ्यकर कोरे



घोसला घाट।

कुण्ड, इंसतीर्थ और गङ्गा आदि वर्तमान हैं। पुरा-
काल गौरीमें लक्ष्मीकृतमें स्नान किया था। उसी
को "गौरीकुण्ड" नाम विख्यात हुआ। उसका अपर
नाम मानसतीर्थ है। वैदिककुण्डमें स्नान करनेवाले
को वैदिकेश्वर मुक्ति प्रदान करते हैं।

(काशीवर्ण, २० पं०)

चार छोटे छोटे मन्दिरोंके मध्यस्थानमें गङ्गातीर
पर वैदिकेश्वरका लक्ष्मीमन्दिर अवस्थित है। मन्दिर-
का बरामदा लाल चौर सज्जित है। अनेक देवमूर्तियाँ
सोभा पा रही हैं। अनेक मूर्तियाँ ऐसे सुन्दर भावमें
बनी, कि देखनेमें जाती खेती मानसुम पड़ती है। वैदिक-
ेश्वरकी मूर्ति पत्नीत वही पद्मपूर्णा, लक्ष्मीनारायण,
कषीय, भैरवनाथ पञ्चनिकी प्रतिमा भी है। मन्दिरके
पूर्व पाषाणमें गङ्गातीर अवधि पत्थरका घाट बंधा है।
घाटकी निक्षिप्त एकपादमें एक लक्ष्मी कृप है। कामो-
च्छमें उसका नाम हरपादकृत वा गौरीकुण्ड किया है।

वैदिकेश्वर मन्दिरमें उत्तर-पश्चिम दोहो दूर मान
विंशत्यस्यमान मानसरीश्वर नामक गङ्गातीर ब्रह्माण्ड है।
उसकी आगे चौर प्रायः ५० गज बने हैं। वहाँ राम
लक्ष्मणका मन्दिर ही प्रधान है। उस मन्दिरकी सोमा-
में एक स्थान पर दत्तात्रेयकी प्रतिमा है। एतद्विषय
किस स्थान पर प्रायः संवत्सराधिक देवप्रतिमा देव

पड़ती है। अनेकदूर मानसिंह-प्रतिष्ठित मानेश्वर
नामक शिवलिंगका मन्दिर भी है।

मानेश्वरके पश्चिम तिलभाण्डेश्वरका मन्दिर बना
है। तिलभाण्डेश्वरकी प्रतिमा ३ हाथ ऊँची किन्तु
१० हाथ चौड़ी है। साधारणके विश्वासानुसार लक्ष्मी
प्रतिमा प्रत्येक तिल परिमाण बटती है। इसमें उष्ण-
को तिलभाण्डेश्वर कहते हैं। वह मन्दिर भी देवने-
की चीज है। मन्दिरका कोई कोई पंग पति प्राचीन
है। सुना जाता है कि चार सौ वर्ष पूर्व किमा राजाने
उसके निर्माण कराया था। मन्दिरके निकट चार चार
परमेश्वर देवप्रतिमा हैं। एक स्थान पर 'हस्तावद एव'
शिवः शोभित एक लक्ष्मी लक्षणके शिवप्रतिमा है।
कामोमें सर्वत्र शिवलिंग विद्यमान हैं। किन्तु सर्वो
बड़ी प्रतिमा एक भी देख नहीं पड़ती। एक समय
उसके मन्दिर चौर बरामदेमें पच्चा शिल्पकार्य था
कत चौर कारनिममें भी अनेक प्रतिमा पद्धित थीं।
आजकल कालवशा घेमा हज़म नहीं रहा।

तिलभाण्डेश्वरके निकट एक स्थानमें चरवत्य लक्ष-
के लक्ष पर एक भय प्रदरप्रतिमा रानी है। अनेक
योग उमें बौद्ध प्रतिमा अनुमान करती है। उसका
नाम वीरभद्र है। उस प्रतिमामें शिष्यमपुत्रका उंचा
परिचय मिलता, विसा दूरमें देख नहीं पड़ता।

दशरथमेघ और केंदरनाथके मध्य बनिक स्थानी पर कई देखनेको चीजें हैं उनमें प्राधुनिक होते भी स्वर्गीय प्राशतोप-देवप्रतिष्ठित सुवहत् दुनाक्षेपर नामक शिवलिङ्ग और उनका मन्दिर उल्लेखयोग्य है। संख्या कर नहीं सकती काशीमें कितनी दूसरी देव प्रतिमाये हैं। गङ्गाके तीर प्रति घाटमें देवालय देख पड़ते हैं। उनमें अग्नेश्वरके दक्षिण एवं चक्र-सुक्तरिणीके उत्तर सङ्घटाघाट, यमेश्वरघाट, चौदहा-घाट और त्र्यम्बक उल्लेख योग्य हैं।

गङ्गाके तीर चौत्रीघाट पर यमेश्वरका मन्दिर है। उसके निकट विन्तर नागप्रतिमा विराज करतो है। गर्नामें घुसते हो दूरसे एक दोना देख पड़तो है। दीलाके भागे दशभुजा दुर्गाकी मूर्ति है। यह क्या ही सुन्दर और कैसे सुसज्जित है।

काशीकी दुर्गाबाड़ी प्रति प्रसिद्ध है। काशीखण्ड पाठसे समझते कि वहां दुर्गामूर्ति बहुत दिनोंसे प्रतिष्ठित है। वनमान दुर्गामन्दिर रानी भवानीके व्ययसे बना था। मन्दिरका वरामदा उस समयके सूचेदारका बनाया है।

दुर्गाबाड़ीकी जनता देख पासयेंमें भाना पड़ता है। इसकी कोई संख्या नहीं देग विदेशमें कितने तीर्थ-यात्री जाते हैं। प्रत्यह मांसे देवीके मन्दिरमें मणोरुप है। प्रत्यह देवी पार्थतीकी प्रीतिके निमित्त कागवलि होता है। प्रति मङ्गलवारकी देवीके उद्देशसे मेला लगता है। प्रतिवर्ष आषण मासमें मङ्गलवारकी बड़ा मेला होता है। इसकी संख्या नहीं—उस समय कितने तीर्थयात्री वहां जाते हैं ?

मन्दिरका काश्चायें और शिल्पनेपुण्य प्रशंसाके योग्य है। वहां नैवात्म्यप्रद एक बड़ी छण्टा नट-कती है। दुर्गाबाड़ीकी प्राचीरभीमाके मध्य पवित्र दुर्गाकुण्ड है। दुर्गाकुण्डके पृथं थोड़े दूर कुरुचेतसनाय है। उक्त लनामय भी रानी भवानीकी कौति है।

उसी महलमें प्रसिद्ध मोनाककुण्ड है। मन्त्र-पुराण (१८४। १५), कूर्मपुराण (१४। १०) और काशीखण्डमें उक्त पवित्र तीर्थका माहात्म्य कौतिल दृता है। काशीखण्डमें कहा है—

“काशीके दर्शनसे सूर्यका मन प्रतिगय कोल हुआ था। उसीसे सूर्यका नाम मोनाक पड़ गया।

•दक्षिणदिक् पश्चिमदक्षमे निकट मोनाक (सूर्यमूर्ति) पवस्थित है। यह सूर्यदा काशीवासीका मङ्गल किया करते हैं। अयहायण मासके शिववारकी मोनाककी यात्रिकी यात्रा करनेसे मानव पाण्डुता होता है। मोनाकमङ्गलमें स्नान करनेसे अमन्तकालके लिये सत्-कर्म सिद्ध हो जाता है।” (शामेष्य ४। ३८-५०)

रानी भद्रव्याघाई, अमृतराय और मिथिलाधिपने मोनाककुण्डका संस्कार कराया था।

मोनाककुण्डकी चारो पार गणेशादि नानाविध देवमूर्ति हैं। कुण्डके दक्षिण तीर भद्रेश्वरका मन्दिर बना है। भद्रेश्वरका लिङ्ग भी प्रति वृहत् है।

पुण्यधाम वाराणसामें बहुत प्राचीन और पप्रामीन देवमूर्ति एवं पवित्र तीर्थ हैं। काशीखण्डमें काशीख्य प्राचीन तीर्थका विवरण इस प्रकार दिया है—

“समस्त जगत्के मध्य वाराणसी पुरी प्रति पवित्र स्थान है। उसके भी मध्य गङ्गा और पश्चिमदक्षम पति-गय पवित्रतर है। पश्चिमदक्षमसे हयघीवतीर्थ पश्चिम-तर पुण्यप्रद है। वहां विष्णु हयघोव रूपसे पवस्थान करते हैं। उक्त हयघीवतीर्थसे भी गजतीर्थ पश्चिम पुण्य-प्रद है। वहां स्नान करनेसे गजदानका फल मिलता है। गजतीर्थसे कोकावराहतीर्थ पुण्यदायक है। वहां कोकावराह देवकी पूजा करनेसे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता।

“दिलीपेगजरसहादेवके निकट दिलीपतीर्थ है। यह कोकावराह तीर्थसे अष्टतर है। सगरीश्वरके निकट सगर-तीर्थ है। यह दिलीपतीर्थसे भी अष्टतर है। समसागर-तीर्थ, मोददितोर्थ, कपिलेश्वरके शीरतीर्थ, केंदरि-श्वरके निकट हंमतीर्थ, त्रिभुवनकंगवतीर्थ, गोव्याघेश्वर तीर्थ, माभ्याहतीर्थ, मुचुकुन्दतीर्थ, पृथिवीगेश्वरके निकट घटतीर्थ, परशुरामतीर्थ, वनभद्रतीर्थ, उमके निकट दिनेदानतीर्थ, भागीरथीतीर्थ भागीरथी, तटपर मिष्यन्के श्वरनिङ्गके निकट ज्वरपावतीर्थ, उमके पागे टगायु-व-

• “मोनाकं नदीनेत्र मः शम्भुः शिवेश्वरः ।
पती मोनाकं इवाका काशी काश विरपत्तः ।” (शामेष्य ४। ३८)

करते भी देगाधिकार कर न सकते थे। शीपको पक-
वकरके अधिकार करने पर जहागीरने परामर्शकर पुर-
घोंकी बलपूर्वक स्वीय धारण कराया। प्रथम प्रथम
वह उक्त वेग विना युद्ध धारण करने पर स्वीकृत हुये
न थे। किन्तु शीपको उन्होंने उभे स्वीकार किया। अत
एव पुरुष परिच्छेदके साथ उन्होंने पुरुषोचित-साहस
भी खो दिया है।

शासन-व्यवहार-काश्मीरी बहुत अपरिष्कार रहते हैं।
उनका यक्षादि, गात्र और वासगृह साक्षात् नरक
जैसा देख पड़ता है। शीतकी छोड़ देते भी अन्ध
किमी समय बह वप्लादि नहीं धोते। क्या स्त्री क्या
पुरुष सभी प्रकाश्य स्थानमें नग्न ही स्नान करते हैं।
सुतरां स्नानके समय भी गायारपकी जल स्पर्श नहीं
कराते। इन्हींसे उसपर इतना मेल जम जाता कि
यथायं चुटकी छेनेसे मेल निकलता और भाङ्गनेसे
पिष्णु तथा विश्वरका ढेर लगता है। वह पय, गृह-
अन्तर और माहृणमें मलमूत्र त्याग करते हैं। शीत-
कालमें घरसे बाहर निकलना दुःसाध्य होने पर वह
रिंसा करते हैं। किन्तु अभ्यासक्रमसे अन्य समय भी
वह उक्त व्यवहार छोड़ नहीं सकते। नोकासय लघुमि
नरक बन जाता है। शीतगर, लष्णु प्रभृति राजधानी-
में भी ऐसा ही हाल था। फिर भी पाजकन राज-
नियमसे बहुत कुछ परिष्कृत हुआ है। राजकुर्मचारी,
विदेगी और पर्यटक (अर्थात् काश्मीरी भिन्न दूसरे
सभी) इसीसे नोकासय छोड़ नदीतीर-हलवाटिकामें
रहते हैं।

काश्मीरी गडे भगडाल होते हैं। जिधोके साथ
किसोका विवाद उपस्थित होनेपर समस्त दिनहुं पवि-
त्यास रूपसे कलह करते हैं। फिर संन्यासपडनेसे
उभय पक्ष अपने अपने चवूतरे पर टोकरी पौवांसी
रहते हैं। हमरे दिन-प्रत्युपके समय वही टोकरी
खोल गये मरने भगडा किया करते हैं। इसी प्रकार
एक दिन नहीं करे दिन भगडा चलता है। शीतगरके
नौसे वितस्ता कुच्छप्रमयस्त- है। जिनमसय इस पार-
के लोग उम पारके नागामें भगडते, उममसय बडा
कीतुबल मान्म होता है। इस प्रकारका भगडा जगनेसे

उभय पक्ष एक दूसरेके उद्देश नामाविध कुक्षित खेक
खेलते हैं। वह भले चादमोयोके देखने योग्य नहीं होता।
भगडकी क्या वा पक्षभङ्गी भी कोई भसा चादमो
देख या सुन नहीं सकता। साधारणतः काश्मीरी
विनयी, मिटभायो और परोपकारी होते हैं।

वह दोनों बेला बाजार करते हैं। अन्न और मसूर
उनका नित्य खाद्य है। उपास अन्नकी अपेक्षा कड़ा
सूता भात, नमक मिर्च मिला घरपरा कड़म गाक,
कुछ मछली और एक ग्याला चाय काश्मीरियोंके नित्य
पति उत्तम भोजन है। इसलिये जो मछोनेमें दो
पयये कमाता, उसका भी समय सुखमें कट जाता है।

चाय बह नित्य पीते हैं। नख और चाय चागस्तु-
कके लिये अभ्यर्थनाकी सामग्री है। चाय बनानेके
यन्त्रको "समावाट" कहते हैं। यह देखनेमें टीनके
चोमि जैसा होता है। समावाटकी उचता १४ रश्म
होती है उसका व्यास टाई इंच बैठता है। अन्धन्तर
टोहरा होता है। मध्यस्थानमें चमि लगाना पडता
है। उसके बाहर चाय टासनेके लिये टो'टी-जैसा
नल लगा रहता है। चमिकी चारो ओर खानो जगह-
में पानी भर देते हैं। पानी गर्म होनेसे चाय डाली
जातो है। वह मीठी और नमकीन चाय पीते हैं।
फूलनामक तिब्यतीय चार लक्षणरूप व्यवहार
करते हैं। उन्हे दो प्रकारकी चाय अच्छी है—पन्नाव-
की "सुरती" और मादाखकी "सका"। कच्चे जानेपर
वह समावाट कभी नहीं छोड़ते।

द्वि—काश्मीरी मित्यविद्यामें निपुण है। वाग्मी-
रका दुगाना जगत् विख्यात है। शीतगरके मिडट
नीजरा नामक स्थानमें कागज बनता है। वह सुचि-
क्षय पार पार्श्वेष्टकी भांति ह होता है। राजकीय
व्यवहारके लिये सुवर्णमण्डित कारुकार्यविगिट एक
प्रकारका चमि मनोहर कागज तैयार होता है।
काश्मीरके जमा हुये कागजके कारुकार्यविगिट
फलमदान, मन्त्रक, पिटाग, रक्षात्रे-प्रभृति भुवन-
विख्यात हैं। सोने चांदीका काम भी बह शूय करते
हैं। गहनेका लेगा सेवदार मनुमा दिया जाता, बह
देवाकी (पहले कभो न बनाने भी या बनानेका

तम्य विशिष्ट जल माना पात्रमें रहता है। जम्मानमें भाग जलानेके ऊपर और-वगकी घर-भी गर्म पड़ जाता है।

चीनगरमें प्रत्येक भवनका प्रधान द्वार नदीके तीर पर है। प्रत्येक घरका घाट स्वतन्त्र है। उस घाटमें उत्तरनीका सोपान लगा है। प्रायः प्रत्येक भविष्योकी एक नौका होती है। वह अपने घाटमें अटकी रहती है। क्राष्टके भवन होनेसे काश्मीरमें प्रायः अग्निदाह होता है। भवनके सर्वोच्चस्थानमें जलानेका काष्ठ, रम्यन-गालाका द्रव्यादि और भाण्डार रहता है।

नौका-नौका नाविकका घरदार है, दिवारात्रि वह नौकामें हो रहते हैं। घनिक-लोगोंके भूमि पर अष्टादि नहीं—पुत्रकलत्रके साथ वह नौकामें रहते हैं। काश्मीरमें बालिका, युवती और वृद्धा स्त्रियां भी निपुणताके साथ नौका चला सकती हैं। वहां अपने देशकी भांति नौका मछीं होता। 'शिकारी' या 'डोंगी' नामक नौका ही भ्रमणके पक्षमें सुविधानक है। शिकारी नौका साधारणतः २५ हाथ लम्बी, २१ हाथ चौड़ी और १ फुट गहरी होती है। आरोहीके बैठने का स्थान पतावरसे छाया रहता है। भावश्यकतानुसार उस छतकी खोल डालते हैं। उक्त नौकाके प्रधानका डांड 'पाप्पा' कहता है। वह बड़े, भाड़ू, जेसा होता है। शिकारमें चाप्पा रखा नहीं रहता, हाथमें पकड़ कर रना पड़ता है। उस देशकी किसी नौकामें स्थूल भाग (पेटा) नहीं होता। पीछे एक आदमी बैठ चप्पेसे पेटेका काम चलाता है। आरोही को दृष्टा और भावश्यकता देख शिकारी नौकामें तोनुसे दूरी तक खिचत-रखे जा सकते हैं। स्त्रियां वह माथ नहीं चलातीं।

डोंगी नामक नौका दूर भ्रमणके लिये उपयोगी है। उस नौकामें नाविक परिवारके साथ रहते हैं। उस प्रकारके नाविकको काश्मीरी भाषामें हांभी कहते हैं। डोंगी साधारणतः ४० हाथ दीर्घ, ४ हाथ विस्तृत और छेठ हाथ गभीर होती है। वह भी पतावरसे छाया जाती है। उक्त भावरणके शेषागमें हांभी रहते हैं। स्त्रियां भी वही चलाती हैं। काश्मीरी पण्डित उस

पर चढ़ कमंस्थानको यातायात करते हैं। उनका आचारादि नौकामें ही सम्पन्न होता है।

काश्मीरपतिकी कई सुदृश्य नौका हैं। आकारानुसार चढ़ परिन्दा (पक्षी), श्रीकोरी (चतुष्कोण) और-वगकी (गाड़ी) कहलाती हैं। उनमें ५० से ८० पादमी तक चप्पा लेकर बैठ सकते हैं।

भविष्यो-हिन्दुवोंका राज्य होते भी काश्मीरमें सुसज्जमान अधिक हैं। यहां तक कि कितनेही हिन्दुवोंका (जो पण्डित कहते हैं उनमें भी बहुतांका) आचार व्यवहार विगड़ सुसज्जमानों जेसा ही गया है। हिन्दु सुसज्जमानोंको छोड़ वहां बौद्ध भी बहुत हैं। काश्मीरी पुरुष गौरवर्ण, दृढ़काय और अङ्गुलीय-विशिष्ट हैं। वह चतुर, प्रखर बुद्धिवाली और आसोद प्रिय होते, किन्तु सांघवी नहीं। रमणी परम सुन्दरी हैं। विशेषतः पण्डितोंकी स्त्रियां अनुपमरूपलावण्यवती होती हैं। भारतचन्द्रकी रूपसी विद्या और कालिदासकी शकुन्तला वहां प्रतिगृहकी प्रत्येक रमणीमें विद्यमान है। वे परकी परो यदि पृथिवी पर रहतीं प्रथवा मूसरा यदि कविकी कल्पना नहीं ठहरतीं, तो वह काश्मीरमें ही मिलती हैं। घनी सुसज्जमानों और कृपकोंको छोड़ किशकि एकसे अधिक स्त्री देख नहीं पड़ती।

परिच्छद-पुरुषोंका परिच्छद कैपीन, बलखानक (पैरहन) और चण्डीय है। क्या हिन्दु क्या सुसज्जमान सभी मस्तक मुण्डन करते हैं। हिन्दु गिखा रखते हैं। स्त्रियां साड़ी नहीं—केवल अंगरखा पहनती हैं। कोई कोई स्त्री मस्तकपर लाल टोपी लगाती है। केशको वेणो बना दो भागमें वृष्टपर डाल देती हैं। पण्डितादयोमें कोई कोई कटीदेशमें बलखानकके ऊपर चढ़ कपट लेती हैं। वह थोड़ा ही गहना पहनती हैं। स्त्री पुरुष सभी काष्ठपादुका व्यवहार करते हैं। संकल देशमें पुरुषों और स्त्रियोंके वेशकी विभिन्नता है, किन्तु काश्मीरमें नहीं। परिच्छदादि देख जातिके बलवैयंका परिचय मिलता है। काश्मीरी पुरुषके रमणोपेय-सम्बन्धपर इतिहासमें देखते कि दिल्लीके मन्नाट उक्त स्थान आक्रमण करनेसे पराजय

। काशीसे अदूर वर्तमान रामनगरमें व्यासकाशी है । हिन्दूवोंके विश्वासानुसार जेसे काशीमें मरनेसे मानव शिवत्व पाता वैसे ही व्यासकाशीमें शरीर छोड़नेसे गर्दभ बन जाता है । इसीसे भनेक लोग व्यासकाशीमें मरना नहीं चाहते ।

काशीखण्डमें लिखा है—“ वेदव्यास विष्णुसे विश्वेश्वरजी अपार महिमा सुन काशीमें याच करने लगे । यहाँ बड़ व्यासासन पर बैठ प्रत्यक्ष शिष्यवर्गको काशीमहिमा सुनाते थे । किसी दिन महादेवने वेद व्यासको परोक्षा लेनेके लिये भवानोको बुलाकर आदेश दिया—‘अक्षयूर्णं प्राज एसा कीजिये जिसमें वेद-व्यासको कोई भिधा न दे ।’ सुतरां उस दिन वेदव्यास को किसीमें भिधा मिली न थी । जब नाना स्थान घूम बेश्यासने देखा किसीने भिधा दी न थी तब उन्होंने अतिशय क्रुद्ध हो काशीवासियोंको अभिशाप दे दिया—‘यहाँके अधिवासी सुत्तिके गर्वसे भिधा नहीं देते पतएव इस काशीमें ब्रह्मपुत्री विधा, ब्रह्मपुत्र धन और ब्रह्मपुत्री सुक्ति न होगी ।’ इसप्रकार अभिशाप दे उन्होंने आकाशकी ओर मनोदुःखसे पाँख उठाकर देखा कि सूर्यदेव चस्ताचलको जाते थे । उससमय क्या करते । सोभसे भिधापात्र दूर फेंक व्यासदेव प्रायमकी ओर प्रपसर हुये । वह गूढ़ जाते जाते एकके समुद्र पङ्घे ही थे कि भवानोंने प्राकृत स्त्रीवेशसे द्वारपर खड़े होकर कहा—‘ हे भगवन् ! हमारे पति विना प्रतिधि-सत्कार लिये भोजन करना अनुचित समझते है । अब तक हमें कोई नहीं मिला । इसलिये पाप प्रतिधि हों ।’ वेदव्यास उनके घरमें सन्निध्य अनिधि हुये । उस समय भवानोंने नाना प्रसङ्गमें उनसे पूछा था—‘ जो व्यक्ति अपने दुर्भाग्यक्रमसे स्वार्थलाभ कर न सक्ते पर शोधमें शाप देता, वह शाप किसको मगता है ?’ वेदव्यासने उत्तर दिया—‘वह शाप उस श्रविवेशक शापदाताके ही प्रति होता है ।’ फिर गुरु-स्वामी भगवान् विश्वेश्वरने कहा—‘जो व्यक्ति काशीको सम्बुद्धि देव नहीं सकता, उसे इस स्थानमें पाप मगता है । तुम अब इस स्थानमें रहनेके योग्य नहीं गोत्र छोड़नेसे बाहर निकल जावो ।’ वह बात सुन व्यासने

कांपते कांपते गरीका ग्ररण ले कहा था कि ‘प्रति षट्मी घोर चतुर्दशी तिथिको उन्दे उक्त क्षेत्रमें प्रवेश करनेकी अनुमति मिले ।’ देवीके पशुतोषसे महादेवने वही स्वीकार कर लिया । उसी समयसे व्यास क्षेत्रके बाहर रह दियारवि काशीको निरीक्षण और प्रति षट्मी तथा चतुर्दशी तिथिको क्षेत्रमें प्रवेश करते हैं ।’ साधारण लोगोंके विश्वासानुसार रामनगरमें आज भी व्यासदेव प्रपेक्षा करते हैं । उन्होंने लोगोंकी सुत्तिके लिये वहाँ एक तीर्थ बनाया था । माघ माघ एग तीर्थमें स्नान करनेसे मानव कभी गर्दभ जन्म नहीं पाता । नाना स्थानसे यात्री उस तीर्थमें स्नान करने जाते हैं ।

रामनगरके दुर्गमध्य नदीकी ओर काशिराजपति-सिंह वेदव्यासका मन्दिर बना है ।

व्यासकाशीमें काशिराज-प्रतिष्ठित मन्थ भी भनेक देवामय घोर देवप्रतिमा हैं । उनकी गठन-प्रणाली हिन्दू शिल्पकी परिचायक है ।

मालमन्दिर—पुष्पधाम वाराणसी हिन्दूनोंका प्रधान तीर्थ है सही, किन्तु उसमें साधारण ज्ञानविषयके भी देखने योग्य भनेक वस्तु हैं । उनमें अश्वरपतिमान-सिंह-प्रतिष्ठित मानमंदिर अद्वेशो कथा विदेशी प्रधान २ ज्योतिर्विदुमात्रकी पवनोत्कन करना चाहिये । उक्त मानमन्दिर भी इस बातका एक परिचायक है । किसी काल हिन्दूनोंने ज्योतिर्विद्यामें कहीं तक उत्कर्ष लाभ किया था । अश्वरराजर्षीय सर्वाङ्ग जयसिंह ने मानमन्दिरके मन्थ मन्थवादीकी गति ठगरानेको जो सकल यन्त्र प्रस्तुत कराये उन्हें देख चमत्कृत होना पड़ता है । दिल्लीअर मुहम्मद साहकी अनुमति-से नाचविक गति समुदय गूढ़ करनेकेलिये जयसिंहने प्राचीन प्रायं ज्योतिषके साहाय्यसे ‘जयप्रकाश’ ‘राम-यज्ञ’ और ‘सम्पाट्यन्त’ नामसे तीन यन्त्र प्रभावकिये थे । येतीस यन्त्रका व्यासाथे प्रायः १२ फाय होगा । मन्थ उक्त यन्त्रके बल पायात्य-ज्योतिर्विदु विद्याकाँड, टनमि पश्चि प्रदग्नि युक्तियोंमें भ्रम प्रदर्शन कर सके एतद्विषय जयसिंहके पाविष्कृत भित्तिचित्र, चक्रयन्त्र मन्थन दूसरे भी कई यन्त्र मानमन्दिरके मन्थ विषय-मात्र हैं । अविज्ञेय है ।

करते भी दिग्गधिकार कर न सकते थे। शेषकी प्रक-
वरके अधिकार करने पर जहाँगीरने परामर्शकर पुर-
पोकी वसपूर्वक स्त्रीविध धारण कराया। प्रथम प्रथम
वह उक्त वेग विना युद्ध धारण करने पर स्वीकृत हुये
न थे। किन्तु शेषको उन्होंने उसे स्वीकार किया। पत्त
एवं पुरुष परिच्छेदके साथ उन्होंने पुरुषोचित-साहस
भी खो दिया है।

शासन-व्यवहार-काश्मीरी बहुते परिष्कार रहते हैं।
उनका वस्त्रादि, गात्र और वासगृह साचात् नरक
जैसा देख पड़ता है। शीतकी छोड़ देते भी अन्य
किसी समय वह वस्त्रादि नहीं धोते। क्या स्त्री क्या
पुरुष सभी प्रकार्य स्वस्वमें नग्न हो स्नान करते हैं।
सुतरा स्नानके समय भी गात्रावरणको जन स्वर्ग नहीं
कराते। इसीसे उसपर इतना मेल कम जाता कि
यथायथ सुटकी स्निग्ध मेल निकलता और भाइनेसे
पिच्छु तथा विश्वरका टेर लगता है। वह पय, गुहा-
भ्यन्तर और प्राङ्गणमें मलमूत्र त्याग करते हैं। शीत-
कालमें घरसे बाहर निकलना दुःसाध्य होने पर वह
ऐसा करते हैं। किन्तु शब्दासक्तसे अन्य समय भी
वह उक्त व्यवहार छोड़ नहीं सकते। नोकान्तय उसीसे
नरक बन जाता है। शीतनगर, जस्य प्रभृति राजधानी-
में भी ऐसा ही हाल था। फिर भी आजकल राज-
नियमसे बहुत कुछ परिष्कृत हुआ है। राजकर्मचारी,
विदेशी और पर्यटक (अर्थात् काश्मीरी भिन्न दूसरे
सभी) इसीसे नोकान्तय छोड़ नदीतीर लक्ष्मणिका में
रहते हैं।

काश्मीरी बड़े भगवान् होते हैं। किसीके साथ
किसीका विवाद उपस्थित होनेपर समस्त दिन पवि-
त्र्यात्म स्वरूप कलह करते हैं। किन्तु शब्दासक्तसे
समय पक्ष अपने अपने बचतरे पर टिकती शौचा-
रहते हैं। दूसरे दिन प्रत्येकके समय सभी टिकती
खोल नये मरसे भगडा किया करते हैं। इसी प्रकार
एक दिन नहीं कई दिन भगडा चलता है। शीतनगरके
नीचे वितस्ता कुक्षुप्रवगम्य है। जिन समय इस पार-
के लोग उम पारके जागसे भगडते, उम, समय बडा
पौरुष मन्मथ होता है। इस प्रकारका भगडा जगनेसे

समय पक्ष एक दूसरेके उद्देश नामाभिध कुसित खेक
खेकते हैं। वह भले भादमोयोके देखने योग्य नहीं होता।
भगडेकी क्या या शब्दमड्डी भी कीर्त भना चादमो
देख या सुन नहीं सकता। साधारणतः काश्मीरी
विमयी, मिष्टभापो और परोपकारी होते हैं।

वह दोनों पैसा बाहर करते हैं। शत्रु और मया
उनका नित्य खाद्य है। उत्तम चमकी भेषा कडा
सुखा भात, नमक मिर्च मिला चरपरा कडम शाक,
कुछ मखली और एक प्यासा चाय काश्मीरियोंके लिये
पति उत्तम भोजन है। इसलिये जो मछोनेमें दो
रूपये कमाता, उसका भी समय सुखमें कट जाता है।

चाय वह नित्य पीते हैं। नल्य और चाय चागन्तु-
कके लिये अभ्यर्चनाकी सामग्री है। चाय बनानेके
यन्त्रको "समाषट" कहते हैं। वह देखनेमें टीनके
चौने जैसा होता है। समाषटकी उचता १४ इंच
होती है उसका व्यास टार ६ इंच बैठता है। अभ्यन्तर
दोहरा होता है। मध्यस्थनमें चमि लगाता पडता
है। उसके बाहर चाय टासनेके लिये टोटी-प्रेसा
नल लगा रहता है। चमिकी चारो ओर खामी जगड-
में पानी भर देते हैं। पानी गरम होनेसे चाय डाली
जाती है। वह मीठी और नमकीन चाय पीते हैं।
फूलनामक तिस्वतीय चार लवणस्वरूप व्यवहार
करते हैं। उसे दो प्रकारकी चाय अच्छी है—पन्थाय-
की "सुरती" और लादाखकी "गला"। कही जानेपर
वह समाषट कभी नहीं छोड़ते।

हिन्दु-काश्मीरी सिध्वविद्यानि निपुण है। चारमी-
रका दुगामा जगत् विख्यात है। शीतनगरके निश्च
शौजरा नामक स्थानमें कागज बनता है। वह सुचि-
क्षुष पार पार्चमेपटकी भांति ट होता है। राजकीय
व्यवहारके लिये सुवर्णमण्डित कादकार्यविशिष्ट एक
प्रकारका पति मनोहर कागज तैयार होता है।
काश्मीरके जमा इधे कागजके कादकार्यविशिष्ट
कलमदान, मन्त्रक, पिटाग, रक्षाधी प्रभृति भुवन-
विख्यात है। मूने चांदीका काम भी वह श्रुत करते
हैं। गडनेका जेसा पैबदार मनुष्य श्रिया जाता, वह
नेसाही (पहले कभी न बनाने भी या बनानेका

१६०० ई० की मागमन्दिर मानसिंह कथक निर्मित हुआ था। किन्तु उसमें अत्यन्त गहन पर प्रस्तर-की भग्नावशेष देख दिग्भ्रमास्पदित् स्वीकार करते हैं कि लगभग कोई कोई खंग अधिका प्रचीन है। मागमन्दिर-का मन्दिरेपुष्प उत्पन्नव्योप्य है। उसके सुन्दर वाता-टनकी गठन प्रदायी पर्यवेक्षण करनेमें निर्माताकी सुस्थिति विना किये कैसे रह सकते हैं ? पात्रकलन सेवा बड़ा वातायन बहुत कम देख पड़ता है।

राजेश्वर-संसार-पश्चिम तीर्थ पर समीपु-महर्षिमें वहरियाकुण्ड है। कामीकण्डमें वह वकरी वा द्वागकुण्ड नामसे वर्णित हुआ है। कुण्ड देव्यं १६६ हाथ और प्रत्यं १८३ हाथ है। कुण्डके उत्तर-पार्श्व एक लंबा टीला पड़ा है। उस पर प्रस्तरक मन्द प्रतिमा और मठके कलम प्रगुनि मिलते हैं। वह सब बौद्ध मठके ध्यंभावगीय समझ पड़ते हैं। कुण्डकी पूर्व और भी इटकका एक छद्म स्तूप है। स्तूपके पुरन योगिपौर नामक स्थान है। वहाँ किसी योगीने समरीर समाधि साध किया है। कुण्डके दक्षिण-पश्चिम एक दरगाह या मुसलमानोंका भजनानय है। वहाँ भी किसी मार्गीन गृहकी मिति पर स्थापित है। दरगाहके पूर्व (२५ × १३ हाथ) तीन पंक्ति पादावस्था पर स्थापित एक सुन्दर मन्दिर है। वह मजलिद भी बहुत पुरानी है। उसकी गठनप्रदायी देग पनेक लोगोंने स्त्रि किया है कि पीछे वह बीबीकी रही। प्रायु-निक समयमें उसे मुसलमानोंने अपनी मजलिद बना लिया है। उसमें ००० दिवसी (१००५ ई०) को खोदित फिरोजशाहकी मिसालिय है। उसके निकट बौद्ध चैत्य भी दृष्ट होता है। पनेक लोग स्वीकार करते कि एक काल बहरियाकुण्डके पार्श्वमें बौद्ध-देवालय था।

राजघाटके दुर्गमें भी बौद्ध-विहारका निदर्शन मिलता है। उस भग्नावशेष विहारका मन्दिरेपुष्प दर्शनगोचर है। समझा जादकार्य और भाण्डरकार्य

वांकीके बौद्ध स्तूपसे मिलता है। वह विहार भी मुस-लमानोंके धारणी बचा गया।

राजघाट दुर्गके उत्तर करवाणाम, वापाण्डमने पथमपुर महर्षे, वाराणसीके तिमियाने, काटमेरव नामके रामने, बभीषण ज्ये, चट्टाई चंभूरेकी मजलिद और बरवाके पूर्व पार्श्व पंखीपौरावके पाय सोना तलावके निष्कट पात्र भी बौद्ध-चैत्य, विहार, स्तूप एवं प्रतिमाका भग्नावशेष देख पड़ता है।

पनेक लोग अनुमान करते कि भैरवकी माट बौद्ध-राज पगोथने प्रतिष्ठित की थी।

करवाण-देसा नहीं कि कामीकेवल पुष्पचैत्र ही है। वहाँ नागादेगीय लोगोका समागम रहनेमें व्यवसाय भी अच्छा चलता है। काशीमें चौबी, नील और गोरका व्यवसाय प्रधान है। भीमपुर, बझी, गोरापुर प्रभृति स्थानोंका सकल प्रकार उत्पन्न पत्तादि वहाँ पानीत और विक्रीत होता है। काशीके रोगको कपड़े, गान, जर दोत्री, हीरा लवाहरात, पीर (बिलीने प्रसिद्ध है। प्रधान प्रधान सभी हिन्दूराजावोंने वहाँ भवन प्रयत्न किये हैं। हिन्दूराजा काशीमें भवन बना सकनेमें पनेकी धन्य समझते और समय समय पर वह वहाँ मवरिहार का अवस्थिति करते हैं। सुतरां काशीमें राजभोगका भी प्रभाव नहीं। वहाँ दुर्ग, बारीक, विश्वविद्यालय, पनेक पन्थाय विद्यालय, ईलवे स्टेशन, डाकघर, पदा कत घोर विहार चतुष्पाठी विद्यमान हैं। वहाँसे नामा स्थानमें दिव काशी वेद पढ़ने जाते थे। राज कस भी लोग जाते हैं नहीं, किन्तु पूर्वकी भांति यद्यत्त देख नहीं पड़ता। फिर भी पन्थायि वाराणसीप्राम माण-वर्षाके लिये प्रसिद्ध है। कुछ दिन दूरे हिन्दुसंति काशीमें पपना बनारस विद्यविद्यालय धोना है। और काशीका "पात्र" नामक दैनिक समाचार-पत्र हिन्दोमें बहुत प्रसङ्गानि कल्पता है। बनारस हीकी।

काशी जेलियाँका भी वरित लोग है। जोसे काक-की पादिनें भगवान् कथनदेवनें पछनगर बसाया था। सर्वप्रथम वहाँके राजा पञ्चदम दूरी। इननें पपने पुत्रो सुकीचनका स्वदेव कर बड़ा योग प्राप्त किया था। वहाँ सातवे लोचकर सुपारवनाय पार हीर्षणे लोच-

• Sharada's Sacred City of the Hindus, p. 277. 247; J. A. S. Beggs, XXXV, p. 277. Beggs's An-chorial History Lists N. W. P. Vol. I, p. 185-192.

प्रथम गौनन्दके मरने पर तत्पुत्र दामोदर काश्मीरके राजा हुये। वह बहुत बड़हारी थे। सुतरां पिताके मरनेसे राज्य पाकर भी दामोदर सुखी न हुये। राजतरङ्गिणीके मतमें उनके राजत्वकाल किसी गांधार राजकुमारीके स्वयम्परोपलक्ष ज्ञान्य-वल्लराम हुआये गये थे। दामोदरने यह बात सुन स्थिर किया कि पिच्छन्ताके प्राणवधका वध सुयोग था, वेष्टा सुयोग त्याग करना उचित न रहा। इसी विषयनामें उन्होंने प्रहत् सेन्यदलके साथ पश्चिमध्य ज्ञान्य-वल्लरामका आक्रमण किया। युद्धमें ज्ञान्यके चक्रावातसे दामोदर मारे गये।

महाभारतके पाठसे ममभक्त पड़ता कि राजसूय-यज्ञकाल अशुं नने काश्मीर जय किया था।*

दामोदरके मृत्युकाल उनकी महिषी यशोमती गर्भिणी थीं। श्रीकृष्णके आदेशानुसार वही सिंहासन पर बैठ गयीं। स्त्रीके राजा होनेकी बात सुन प्रधान अमात्यने आपत्ति डाली था। श्रीकृष्णने उन्हें उत्तर दिया—

“काश्मीरा पार्वती तव राधा ज्ञेयी वरांग्मनः ।

नाभयो वी सुदोऽपि विदुषा मृतिभिच्छता ॥” (राजतरङ्गिणी)

एते चाम् च राजागो वल्लवन्तो महावराः ।

तन्मन्त्रप्रज्ञासम्भविदिवन्तो जगत्समः ॥” (हरिवंश ८१ पं०)

जरासन्धके प्रधानवार मयुराजमन्त्रकी वरुणामें सकल शक्ति निवृत्त है।

उसके पीछे जिस समय ज्ञान्य वल्लराम कोसल पार्वती पर रहे, उससमय भी जरासन्ध सकल निचरात्रके साथ लड़ने बंध करके गये थे। जरासन्धके सक्त निचरात्रोंमें भी गौनन्दका नाम निकलता है। यथा—

“मद्रः कनिष्ठाधिपतिरेकिताराः सभाद्रिकः ।

काश्मीरराजो गौनन्दः स्वधवाधिपतिस्तथा ॥

द्रुमः किष्कंधपथैव पार्वतीयाश्च सात्वताः ।

पर्वतात्पार्वतं पार्थ विप्रभारोऽथस्वमी ॥” (हरिवंश, ८८ पं०)

हरिवंशमें इतना ही लिखा है। हिन्दु ब्राह्मणके द्वारा गौनन्दके मारे जानेकी कथा उसमें नहीं आयी।

• “ततः काश्मीरोऽन्तु वीरान् चतुर्वान् चतुर्वर्षमः ।

स्यश्चक्रोऽदितयं व मच्छेदंशभिः स्रष्ट ॥ १० ॥

ततस्त्रिगर्वाः कौमो यं द्वाभ्याः काङ्कमदन्तया ।

अविद्या बहवो रामेभ्यः पार्वतेभ्यः च ॥ १८ ॥

चामभारोः ततो रम्यो विजय्यैः कुरुमन्दनः ।

वरनाभादिनये व रोषमांशं रथोऽजयत् ॥ १८ ॥

(महाभारत, समाप्त १० पं०)

काश्मीरकी रमणी पार्वती और काश्मीरके राजा महादेवका शंभु है। दुर्गल राजाओंसे भी मुख्यना-भिच्छु पण्डितोंको घृणा करना न चाहिये।

ययाकाल यशोमतीके गर्भसे सुलक्षणाक्रान्त बालकने जन्म लिया था। उसका नाम २५ गौनन्द पड़ा। राजतरङ्गिणीके मतसे उन्हींके समय भारतयुद्ध हुआ था। वह गिरा थे। इसीसे कौरव पाण्डवमें किसीने उनको नहीं बुझाया।*

उनके पीछे ३५ राजा हुये। किन्तु वह सभी पधर्मी और दुर्दान्त थे। इससे किसी इतिहास वा शास्त्रादिमें उनका नाम या विन्दुमात्र भी विवरण नहीं मिलता।

फिर जय नामक एक राजा हुये। कहना कठिन है—वह प्रथम गौनन्दके वंशजात थे या नहीं। वह उनके पाण्डवतों राजाओंकी स्वयम्भमें लाये। उन्होंने “कोलोर” नामसे एक नगर स्थापन किया था, किन्वदन्तीके अनुसार उसमें ८४ लाख पत्थरके मकान रहे। उन्होंने कोलारकी अन्तर्गत सेवार नामक ग्राम ब्राह्मणोंकी दिया था।

सबके पीछे उनके पुत्र कुशेशय राजा बने। उन्होंने ब्राह्मणोंकी कुबुहार नामक ग्राम दान किया था।

कुशेशयके पीछे उनके पुत्र खुगेन्द्र नरपति हुये। वह प्रतिघाहसी, नागहथी और धीरयुधि थे। उन्होंने जगिपुर और खुनसुप नामक दो ग्राम संस्थापन किये।

• गौलमतपुराणमें भी इसी प्रकार लिखा है—

“दामोदरानिचलसूनु राजामन्त्र सुधीः ॥.....

अयोपसिन्धुशास्त्राधिपतेऽनुत्तु स्वयम्बरः ॥

तदाज्ञतः सुमात्रभा राजागो वीर्यशालिनः ॥

तदागतं सनाकणं बामुद्रेणैव स्वयम्बरैः ।

जगाम साधयं धीशुः अतुरङ्कवन्नामितः ॥

यादृशं बामुद्रेणस्य मरुकेषु सञ्चामवत् ॥

ततः स बामुद्रेण युद्धे नकिप्रियातितः ।

बलवन्तो तस्य पदोः बामुद्रेणोऽप्यथैवयत् ॥

अविच्युत्प्रवरचार्यं तस्य दीगस्य गौरवान् ॥

ततः सा सुपुत्रे पुत्रं बामं गौनन्दमद्रितम् ॥

बालनाभान् पाण्डुमृतिमानीतः कौरवेभ्यं वा ॥”

† बतमान नाम सुरको या दुर्धमेकमीपात है।

‡ जगिपुर का अग्निपुराणका वर्तमान नाम काकपुर है। यह पंडित

खगिन्द्रके पीछे तत्पुत्र सुरेन्द्रने सिंहासनारोहण किया। सुरेन्द्र साहसी, निर्मलचरित्र और विनयी थे। उन्होंने दरद देगके निकट चौरकनामक नगरस्थापन और उसमें "नरेन्द्रभवन" नामक एक सुन्दर प्रासाद निर्माण किया। उनके कोई सन्तान न था।

महाराज सुरेन्द्रके परमोक्त जानिसे गोधर नामक थोर भित्तयंगोय राजा बने। उन्होंने ब्राह्मणोंको हस्तिगाला नामक ग्राम दिया था।

गोधरके पीछे तत्पुत्र सुवर्ण राव्याभिषिक्त हुये। वह बड़े दानशील रहे। उन्होंने कराल नामक स्थानमें सुवर्णमणि नाना खनन कराया था।

सुवर्णके पीछे तत्पुत्र जनकने राज्य पाया। उन्होंने विहार और जालौर नामक अग्रहार स्थापन किया था। जनकके पीछे उनके पुत्र गचोचर पर राज्यभार पड़ा। वह उन्नतमना और धर्माशान्तरपति थे। उन्होंने सम्राज्यसा और अग्रनार नामसे दो अग्रहार स्थापन किये। वह निःसन्तान रहे।

गचोचरके पीछे उनके पित्र्यपुत्र शकुनिप्रपौत्र पगोक राजा हुये। वह बौद्धधर्मावलम्बी थे। उन्होंने शकलेश और वितस्तात्र नामक स्थानमें अनैक स्तूप निर्माण किये। वितस्तात्रपुरके पन्तारत धर्मारण्य विहारमें पगोकने एक प्रति उच्च चैत्य बनाया था। उसकी चूहा किमीकी देख न पड़ती थी। प्राचीन खोनगरी* पगोक कदक स्थापित है। कहते हैं कि उनके

समय प्राचीन खोनगरमें ८६ लाख सक्का थे। उन्होंने खोविजयेगदेवके * मन्दिरकी चतुर्दिक्का ध्वंसपाय बहिःप्राकार जोड़या नूतन निर्माण करा दिया। फिर पगोकने खोविजयेग देवके मन्दिर-प्राङ्गणमें "पगो-केश्वर" नामक एक प्रासाद भी बनाया था। उनके बड़े वयसमें खंखो ('यकी' वा 'धोकी')ने खारमोर राज्य अधिकार किया। महाराज पगोकने शेष दगापर ईश्वरकी सेवामें अपना काल बितया।

पगोकके पीछे तत्पुत्र जलोक राजा बने। वह बड़े शिवभक्त थे। उन्होंने पित्र-गृहीत बौद्धमत पक्ष नही किया। जनोकने समुद्रतट पर्यन्त पीछे पड खेच्छु शत्रुओंकी देशसे निकाला था। शत्रुओंका पराजय कर उन्होंने एक स्थल पर शिवाराम्यन किया। यह स्थल "उज्जटडिम्ब" नामसे प्रसिद्ध है। जनोकने वर्षायामाचारको पुनः चलाया था। उनके समय काशीर राज्य धनधान्यमाली हो गया। उन्होंने राज कार्यकी सुश्रुतला स्थापन कर कोषाध्यक्ष, प्रधानसेनापति, दूत पधति कर्मचारियोंका पद संस्थापन किया। जनोकने वारयल नामक श्रायम और उनकी पत्नी ईशानदेवीने तोरपहार तथा अन्धान्य स्थानमें माटका मूर्तिकी प्रतिष्ठा कर बड़ा सुयोग पाया था। महाराज जलोकसे सोदरतीर्थ मो प्रचारित हुआ। तीर्थयात्री यहाँ और अन्धान्य जगह जाते रहे। सोदरतीर्थकी मन्दोशामूर्तिकी भांति उन्होंने प्राचीन खोनगरमें ज्येष्ठ-श्वर नामक शिवसिद्ध प्रतिष्ठा किया और तत्समिहित स्थानका नाम सोदरतीर्थ रख लिया। मन्दोचैवकी चतुर्दिक्का प्रहार-प्राधीर उन्होंने निर्माण कराया था। फिर जलोक द्वारा ही मन्दोचैवमें शिवभूमीय जिह्व स्थापित हुआ। भूगेश मन्दिरकी देवमैत्राके निचे उन्होंने यथैत पर्य दिया था। कहा जाता है कि उन्होंने प्रथम एक बौद्धमत नष्ट किया था। उनमें पीडे जनोकने

नदीके बागमोर तटस्थ-सुदीर्घमान है। कोस दक्षिण चरमित है। वहाँ पात्र भी प्राचीन देवमन्दिर और पूर अंशकामेव दृष्ट होता है।

सुमहुर (राजतरङ्गिणी १। १८०) - विह्वके विक्रमाहचरितमें, पुत्र मय 'को-सुध' नामसे उक्त हुआ है। (विक्रमाहचरित १८। ७१) उक्तका वर्तमान नाम 'जलमो' है। सुमहुरकी मूलरूपसे ६ कोस उत्तर-पूर चरमित है। उक्तके निकट हर्ष 'हरतीर्थ' और सुवनेपुरीकृष्ण विष्टमान है। सुमहोके निकट शिवल नामक एक पुत्र मान है। विह्वने उसीका नाम 'शरवण' लिखा है।

* खोनगरी-वर्तमान खोनगरसे भिन्न थी। उक्तका दूसरा नाम पुत्र दक्षिणमान था। वर्तमान राज्य सन नामक स्थानमें ही प्राचीन खोनगरी बनी थी, पूरको उक्त नगरी मज्ज-सुदीर्घमानसे राजाकोक वर्षान् पचकूट परत मिलता था।

मिस स्थानपर विमवेद्यमन्दिर था, प्रायजय उत्तरवा नाम बिलगाया है। यह देहल नदीके बागमोर वर्तमान राजधानीसे मन्दोचैव की दक्षिण-पूर चरमित है।

† पात्र भी मज्ज सुदीर्घमान पराङ्गणमें ज्येष्ठश्वर नामक शिवसिद्ध और उक्त ही कृष्ण दूर पगोक प्रतिष्ठित पगोकेश्वर मन्दिरका अंशकामेव देवक पड़ता है

करी कि मनुष्यका जीवन क्षणविध्वंसी और पापका शास्ता जगदीश्वर ही है। उनसे केवल १ वर्ष १५ दिन राजत्व किया। उनसे वानप्रस्थ चरमव्यन करने पर पित्र्यन्त्री मित्रगमाने सखीक जनमें डूब १५ होइ दिया था।

कुशलयादित्यके पीछे ब्रह्मादित्य सिंहासन पर बैठे उन्होंने महिषी चक्रमर्दिनीके गर्भसे जन्म लिया था। लोक उन्हें वर्षप्यक वा ललितादित्य भी कहते थे। वह निहुर देवस्त्रापहारी (परिहासपुरादिकी अपनेक देवीनर सम्पत्ति उन्होंने छीनली थी), चतिग्रय प्रत्यापारी, स्तौविषासो और स्नेच्छाचारी थे। चतिमात स्त्रीसभोगके फल यस्त्रागसे उनका मृत्यु हुआ। उनसे ७ वर्ष राजत्व किया था।

वज्रादित्यके पीछे उनके पुत्र पृथिव्यापीड राजा हुए। उनकी माताका नाम मच्चरिका था। उनसे ४ वर्ष १ मास राजत्व किया।

पृथिव्यापीडके पीछे उनकी विमाता मत्स्याके गर्भ-जात संघामपीडने राज्य पाया। उनका राजत्वकाल ७ वर्ष रहा।

संघामपीडके मरने पर वषोय वा द्वितीय ललितादित्य (वज्रादित्य)के कनिष्ठ पुत्र जयापीड सिंहासन पर बैठे। उनसे प्रयागमें जा ६६६६६ अथवा ब्राह्मणको दान किये थे। उक्त दानके पीछे जयापीडने प्रयागमें खनामसे एक स्तम्भ बनाया और उसपर निम्नलिखित विषय खोदवाया—जो हमारी भांति ब्राह्मणोंको लक्ष अथवा इस स्थान पर दे सकेंगा, वह हमारे इस स्तम्भको मानो तोड़ डालेगा। बादल देको।

फिर जयापीड गौडके भन्तर्गत पीण्डूवर्धनमें उपस्थित हुए। वहाँ उनसे गौडराज जयन्तकी कन्या ब्रह्माणदेवी और देवन्तकी कमलाका पाणिग्रहण किया। प्रत्यागमनकाल राहमें वह कान्यकुब्ज जीत वहाँका चतिमनोहर सिंहासन चठा ले गये। काश्मीरमें उपस्थित ही जयापीडने सुना कि उनके पूर्व श्यामक जलने राज्य अधिकार किया था। उनसे राष्णोद्धारके लिये युद्ध घोषणा की। पुष्कलेत्र नामक ग्राममें युद्ध हुआ। उसमें जल मारे गये। जल देको।

जयापीडने राष्णोद्धार कर शान्ति को स्थापन किया। महिषी ब्रह्माणदेवीने पुष्कलेत्रकी युद्धभूमिमें ब्रह्माणपुर नामक नगर बसाया था। जयापीडने स्वयं मङ्गणपुर नामक नगर और उसमें क्षेत्र्यमूर्तिको स्थापन किया। कमलाने भी कमला नामक नगर बसाया। उस समय काश्मीरमें विद्याचर्चा बहुत थी। राजा जयापीडने पतञ्जलिके महाभाष्य और खरचित काँगका छत्तिका प्रचार किया। (उनसे स्वयं चीर नामक पण्डितके पात्र व्याकरण पढ़ा था।) उद्दटभट्ट, दामोदरगुप्त, मनोरथ, शङ्कर, चटक और सन्धिमान नामक कवि उनकी सभामें विद्यमान थे। उद्दटभट्ट सभापण्डित रहे। उन्हें प्रतिदिन लक्ष स्वर्णमुद्रा (असर्फी) मिलती थीं। दामोदरगुप्त प्रधानमन्त्री और कवि एवं वैयाकरण धामन उनके अन्यतम मन्त्री रहे।

जयापीडने पीछे जयपुर प्रभृति दूसरे भी कई नगर, जयदेवी नानी देवीरतिमा, राम लक्षण पादिकी मूर्ति और अनन्तशायी विष्णुमूर्तिको प्रतिष्ठा किया। कहा जाता है कि विष्णुने स्वप्नमें जनवेष्टित द्वारावतीपुरी निर्माण करनेकी आज्ञा देकर दिया था। जयापीडने देसा जो एक नगर निर्माण कराया। वह ब्रह्मणके समय अथन्तर-जयपुरके नामसे विख्यात था।

उक्त स्थानमें भी जयदत्त नामक किसी कर्मचारोंने एक बौद्धमठ और मथुराधीश्वर प्रभोटके जामाता पाचने पाचेश्वर नामक एक शिवलिङ्ग स्थापन किया।

उसके पीछे जयापीड दिग्विजयार्थ हिमालय पर चढ़े थे। वहाँ उनसे विनयादित्य नाम ग्रहणपूर्वक पूर्व दिक्को विनयादित्यपुर नामक नगर स्थापित किया। उनसे उक्त स्थानकी पूर्वदिक् भीममेनराज्य और नेपाचराज्य नाना क्रोधचसे कीत लिया।

उसके पीछे जयापीडने स्त्रीराज्य जीत कर्यका सिंहासन अधिकार किया। उनसे युवादि व्ययके सुविधाार्थ "सलमज" नामसे सैन्यसमभिव्याहारी कोषागार निकाला था। जयापीडने कर्मपूर्वक पर एक ताम्र खनिकी पाविष्कार कर ताम्र उष्णीजपूर्वक उसके मुख्यदेवपने नामपर, एकीनगतकोटि स्वर्णमुद्राको प्रस्तुत

प्रथम गोनन्दके मरने पर तत्पुत्र दामोदर काश्मीरके राजा हुये। वह बहुत ब्रह्मचारी थे। सुतरां पिताके मरनेमें राज्य पाकर भी दामोदर सुखी न हुये। राजतरङ्गिणीके मतमें उनके राजत्वकाल किसी गांधार राजकुमारीके स्वयम्भोरपक्ष क्षण्य-वत्सराम बुलाये गये थे। दामोदरने यह बात सुन स्थिर किया कि पिदहस्ताके प्राणवधका यह सुयोग था, वैसा सुयोग त्याग करना उचित न रहा। इसी विवेचनामें उन्होंने वृद्धत्वं सेव्यदलके साथ पथिमध्य क्षण्य-वत्सरामका आक्रमण किया। युद्धमें क्षण्यके चक्राघातसे दामोदर मारे गये।

महाभारतके पाठसे समझ पड़ता कि राजसूय-यज्ञकाल अर्चुनने काश्मीर जय किया था।

दामोदरके मृत्युकाल उनकी महिषी यशोमती गभिणी थीं। श्रीकण्यके पादेयानुसार वही सिंहासन पर बैठ गयीं। स्त्रीके राजा होनेकी बात सुन प्रधान भामत्यने आपत्ति ज्ञानी था। श्रीकण्यने उन्हें उत्तर दिया—

“काश्मीरा पार्वती तव राजा त्वेयी ह्यश्रुकः।

भावये सो ऽ दृष्टोऽपि विदुषा स्तुतिमिच्छताः॥” (राजतरङ्गिणी)

एते भाव्ये च राजानो वचनयो महादायाः।

नमस्तुभ्योरस्य विदिवन्ती जगदंनम् ॥” (हरिवंश, ८१, ७०)

जरासन्धके प्रथमवार मयू पात्रमन्त्रकी वचनार्थें सप्त श्लोक मिलते हैं। सद्यके पीछे जिस समय लक्ष नरनाम गोनान परतुं पर रहे, उस समय भी लक्ष सन्ध सखल निचरात्रके साथ मन्त्रे वचन करने गये थे। जरासन्धके सप्त नियरात्रोंमें भी गोनन्द का नाम मिलता है। यथा—

“मद्रः कश्चिद्विधिपतिरेकितानः सुवर्जिह्वः।

काश्मीरराजो गोनन्दः कश्चिद्विधिसिद्धाः॥

दुमः कियं ब्रह्मचर्ये पार्वतीवाय मानवाः।

पर्वतामारुर्ष पात्रं विप्रमोरी इत्यन्वमी ॥” (हरिवंश, ८१, ७०)

हरिवंशमें इतना ही जिला है किन्तु वत्सरामके साथ गोनन्दके इतने कानेकी वधा उनमें नहीं आती।

• “ततः काश्मीरीनां वीरान् चतितान् चतिस्रस्रंभः।

वृद्धवर्षीहितये व मध्यसेदेवमिः स्रष्ट ॥ १० ॥

ततश्चिरान्तः कौलेयं दासैः काश्मरंनलयाः।

चतिसा बहवो राजस्र पाषतंनं स्रष्टे ॥ १० ॥

भूमिधारी तमो रम्यो शत्रियो कुरुनन्दनः।

उरमाशानिमये व वीरमार्थं रथिऽनयत् ॥ १० ॥

(महाभारत, अनादिक १०, ७०)

काश्मीरकी रमणी पार्वती और काश्मीरके राजा महादेवका वंश है। दुःशील राजावोंसे भी पुण्यना-भेच्छु पण्डितोंकी घृणा करना न चाहिये।

यथाकाल यशोमतीके गर्भसे सुलक्षणाक्रान्त वालकने जन्म लिया था। उसका नाम रथ गोनन्द पड़ा। राजतरङ्गिणीके मतसे उन्हींके समय भारतयुद्ध हुआ था। वह शिशु थे। इसीसे फौरव पाण्डवमें किसीने उनकी नहीं बुलाया।

उनके पीछे ३५ राजा हुये। किन्तु वह सभी पृथ्वी और दुर्दान्त थे। इससे किसी इतिहास वा याज्ञादि-में उनका नाम या विन्दुमात्र भी विवरण नहीं मिलता।

फिर लव नामक एक राजा हुये। कहना कठिन है—यह प्रथम गोनन्दके वंशजात थे या नहीं। वह अपनेक पार्वतीवर्ती राजावोंकी स्वयममें आये। उन्होंने “कोलोर” नामसे एक नगर स्थापन किया था, किन्व-दन्तीके अनुसार उसमें ८४ लाख पत्थरके मकान रहे। उन्होंने कोलारकी पत्न्यगंत सेवार नामक ग्राम ब्राह्मणोंकी दिया था।

लवके पीछे उनके पुत्र क्षुश्रिय राजा बने। उन्होंने ब्राह्मणोंकी कुरुक्षार नामक ग्राम दान किया था।

क्षुश्रियके पीछे उनके पुत्र खगेन्द्र नरपति हुये। वह अतिसाहसी, नागदेवी और धीरबुद्धि थे। उन्होंने खागिसुर और खनुसुप नामक दो ग्राम संस्थापन किये।

• नीलमतपुराणमें भी वही ब्रह्मर विख्या है—

“दामोदरानिचलास्य सून राजामवन्यु दुर्षोः ॥ ००००

अयोपसिन्धुनामाविषये इमुन् स्वयम्बरः ॥

तसाइताः समान्य राजानो वीरशक्तिः ॥

तसागतं समाकणं वासुदेवं स्वयम्बरैः ॥

ग्रामे माधवं धीत् ॥ चतुःश्रवणावितः ॥

यादवं वासुदेव्य नयकेष सद्यमवन्यु ॥

ततः स वासुदेवेन युद्धं तस्मिन्निपातितः ॥

बन्धुको तस्य पत्नो वासुदेकीऽभ्यवेचयत् ॥

भविष्यपुत्ररचार्ये तस्य दिशस्य गीः वात् ॥

ततः सा सुपुत्रं पुत्रं बालं गोनन्दसंज्ञितम् ॥

नाममाशान् पाण्डुसैनीशोतः कौरवेण वा ॥”

† बरहान नाम सुन्दरी वा दुर्भङ्गमीवाप्य है।

‡ खागिसुर वा खनीन्द्रपुरका वर्तमान नाम काकपुर है। वह वैदिक

पाषाणो युद्ध-शतिकाके दिन परसोक गमन किया। उस समय शोकिक पद्यके ५८ वस्त्र बीते थे।
 पद्मन्तिवर्माके मरनेसे उत्पन्नवंशीय दूसरे भी बहुतसे लोग राज्यनामायें उत्पन्न हुईं। किन्तु राजाके पारिपायिक सेनापतिरत्नवर्धनने पद्मन्तिवर्माके पुत्र शहरवर्माको ही राजा बनाया था। मन्त्री कर्णपोषिष पने उससे विद्येपपरवश ही शहरवर्माके पुत्र सुखवर्माको शीशराज्य प्रदान किया। उसी कारण राजा और सुवराज परस्पर गद्द हो गये। शेषकी नाना युद्ध हीने पर शहरवर्मा ही जीते थे। फिर उनसे युद्धयात्राको निकल दार्वाभिचार, गुर्जर और त्रिगर्त जय किया। पद्मिन्ध्य शक्रीयकराजने वश्यता मानी थी। उनसे भोज राजके कवलसे शक्रीयराज उद्धारकर उनको दे डाला पीछे उन्होंने दरद और सुहृदका मध्यवर्तीप्रायः समस्त भूभाग जीता था। उसके पीछे शहरवर्माने राजका प्रत्यावर्तनकर पश्चिम प्रदेशमें अपने नामपर शहरपुरा नगर और उसी नगरमें शहरगौरीग नामक शिवकी स्थापना की। उसने उदकपथके राजा श्रीखामीकी कन्या सुगन्धासे विवाह और उसके नामानुसार "सुगन्धेश" सिद्ध स्थापन किया था। किन्ती नायकने उक्त मन्दिरस्थके निकट एक सरस्वतीमन्दिर बनवा दिया। उसके पीछे हठात् देवविहङ्गनासे शहरवर्माकी मति बिगड़ गयी। उनसे हल बल कौशलसे साराज्यमें चत्वार चारभ किया था। देवस्वापहरण, करग्रह, राजकर्मचारीके बेलन झांस इत्यादिसे देश विचलित हो गया। उनसे पत्तन नामक एक नगर स्थापन कर मंत्री सुखराजके भागिनियकी हारपतिका पद दे वहाँ भेजा था। किन्तु विराणक नामक स्थानमें अपने ही दोषसे उनका मृत्यु हुआ। फिर शहरवर्माने विराणक नगर उत्खननकर उत्तरापथकी

• पद्मन्तिवर्माने जिस समय राज्य प्राप्त किया उस समय शोकिकपद्य २१ था वतः इनका राजत्वबाल २० साल की मात्र और कुछ दिन सिद्ध होता है।

† शहरपुरका वर्तमान नाम पत्तन है। यह भी शीशरानी के शेष पत्तनोत्तरावर्तमें स्थित है। वहाँ पत्तन भी पत्तनपत्तन मिलनेसे पुनर्निश्चित शीशरानी के शिवमन्दिर देख पड़ते हैं।

युद्धयात्रा की और सिन्धुतीरवर्ती कई राज्य जीत कर राज्यामें चुसे। वहाँ वह हठात् किसी व्याधिके वापसे पाहत ही ७० शोकिकाद्यकी फाल्गुनी कन्या-मसमौरे दिन पश्चत्वको पहुँचे। मंत्री सुखराज माना कौशलसे राजाका मृतदेह ६ दिन पीछे काश्मीरके पन्तर्गत वल्लायक नामक स्थानपर ले गये। फिर वहाँ उनसे उनका मत्कार किया था। रानी सुरेन्द्रवती, दूसरी रानी, बालावित्तु तथा जयसिंह नामक २ विद्यामी अनुचर और साड एवं वज्रमार नामक २ शूल्योनि राजाकी चित्तामें सहमरण किया।

शहरवर्माके पीछे उनके बालकपुत्र गोपालवर्माने माता सुगन्धाके पद्मिन राजा पाया था। रानी सुगन्धा किन्तु उसी समय कीपाध्यक्ष प्रभाकर देवके साथ व्यभिचारमें निप्त हुईं। प्रभाकरने रानीसे कौशलपूर्वक राज्याके मध्य प्रधान प्रधान पद, धन, रत्न और नाना भूभागकी ले लिया। उनसे साहीराज्याके मध्य भाण्डारपुर नामक नगर स्थापनके लिये वहाँके साहीकी प्रादेश दिया था। किन्तु उनसे उसकी उपेक्षा किया। उसीसे प्रभाकरने उनको पदच्युत कर लक्ष्मिण साहीके पुत्र तोरमाणसाहीको उक्त पद दे डाला और देशका नाम बदल कामलकर रख दिया। उसके पीछे प्रभाकरके चत्वारचारसे राजा स्थिर हुआ था। महाराज गोपालने सब भेद क्रमशः समझा और एक दिन जाकर देखा कि कोवागार शून्य रहा। प्रभाकरने शास्त्रि मिलनेके भयपर स्त्रीय वस्तु रामदेशके साहाय्य और कौशलसे गोपालवर्माको जीवन्त जला डाला। गोपालवर्माने २ वस्त्र मात्र राजत्व किया था। रामदेव भी अपना कार्य प्रकाशित होनेपर भयसे पामहत्या की।

गोपालवर्माके पीछे उनके सहोदर महट्ट केवल १ राजत्वकर मृत्युके मुषमें पतित हुए।

महट्टवर्माके पीछे शीशरानीरोधने रानी सुगन्धाने राज्य ग्रहण किया था। कारण गोपालवर्माकी मरिचीपान्दा उस समय गर्भवती रहें। रानी सुगन्धाने पुत्रके

• तोरमाणवर्माकी शिवान्वितिबचना है। See Epigraphica Indica, 1890, p. 238.

खगोन्द्रके पीछे तत्पुत्र सुरेन्द्रने सिंहासनारोहण किया। सुरेन्द्र साइसो, निर्मलचरित और विनयी थे। उन्होंने दरद देशके निकट घोरक नामक नगर स्थापन और उसमें "नरेन्द्रभवन" नामक एक सुन्दर प्रासाद निर्माण किया। उनके कोई सन्तान न था।

महाराज सुरेन्द्रके परलोक जानेसे गोधर नामक बोर मित्तवंशोय राजा बने। उन्होंने ब्राह्मणोंकी हस्तिशाला नामक धाम दिया था।

गोधरके पीछे तत्पुत्र सुवर्ण राज्याभिषिक्त हुये। वह बड़े दानशील रहे। उन्होंने कराल नामक स्थानमें सुवर्णमणि नामका खनन कराया था।

सुवर्णके पीछे तत्पुत्र जनकने राज्य पाया। उन्होंने बिहार और जानौर नामक भ्रमहार स्थापन किया था। जनकके पीछे उनके पुत्र शोचनर पर राज्यभार पड़ा। वह उन्नतमना और धर्मावान् नरपति थे। उन्होंने समाह्वसा और भयनार नामसे दो भ्रमहार स्थापन किये। वह निःसन्तान रहे।

शोचनरके पीछे उनके पित्रव्यपुत्र शकुनिप्रपौत्र भगोक राजा हुये। वह बौद्धधर्मावलम्बी थे। उन्होंने शुष्कलेत्र और वितस्तात्र नामक स्थानमें अपनेक स्तूप निर्माण किये। वितस्तात्रपुरके पन्तःत धर्मारण्य विहारमें भगोकने एक प्रति उच्च चैत्य बनाया था। उसकी चूहा किसीको देख न पडती थी। प्राचीन श्रीनगरीके भगोक कण्टक स्थापित है। कहते हैं कि उनके

समय प्राचीन श्रीनगरमें ८६ लाख मकान थे। उन्होंने श्रीविजयेशदेवके * मन्दिरकी चतुर्दिकका ध्वजप्राय घड़िःपाकार तोड़या नूतन निर्माण करा दिया। फिर भगोकने श्रीविजयेश देवके मन्दिर-प्राङ्गणमें "भगोकेश्वर" नामक एक प्रासाद भी बनाया था। उनके बृह वयममें र्हंक्को (शको वा शीको)-ने काश्मीर राज्य अधिकार किया। महाराज भगोकने शेष दशापर ईश्वरकी सेवामें प्रपना काल बिताया।

भगोकके पीछे तत्पुत्र जलोक राजा बने। वह बड़े शिवभक्त थे। उन्होंने पित्र-गृहीत बौद्धमत पहण नहीं किया। जनोकने समुद्रतट पर्यन्त पीछे यह क्षेत्र शत्रुओंकी देशसे निकाला था। शत्रुओंका पराजय कर उन्होंने एक खल पर शिखावन्धन किया। वह खल "उल्लटडिम्ब" नामसे प्रसिद्ध है। जनोकने वर्षाश्रमाचारकी पुनः चलाया था। उनके समय काश्मीर राज्य धनधान्यशाली हो गया। उन्होंने राज कार्यकी सुशुद्धता स्थापन कर कीर्त्तव्य, प्रधानसेनापति, दूत मन्त्रि कर्मचारियोंका पद संस्थापन किया। जनोकने वारवल् नामक भ्राथ्रम और उनकी पत्नी ईशानदेवीने तोरषहार तथा भन्धान्य स्थलमें माछका मूर्तिकी प्रतिष्ठा कर बड़ा सुयोग पाया था। महाराज जनोकसे सोदरतीर्थ भी प्रचारित हुआ। तीर्थयात्री वहां और भन्धान्य जगह जाते रहे। सोदरतीर्थकी नन्दीशमूर्तिकी भाति उन्होंने प्राचीन श्रीनगरमें ज्येष्ठ-रुद्र नामक शिवलिंग प्रतिष्ठा किया और तत्सन्निहित स्थानका नाम सोदरतीर्थ रख लिया। नन्दीचेवकी चतुर्दिकका प्रस्तर-भावीर उन्होंने निर्माण कराया था। फिर जनोक द्वारा ही नन्दीचेवमें शिवभूतेश लिंग स्थापित हुआ। भूतेश मन्दिरकी देवसेवाके लिये उन्होंने शीघ्र धर्म दिया था। कहा जाता है कि उन्होंने प्रथम एक बौद्धमत मट किया था। उसके पीछे जनोकने

नदीके नामको तख्त-सुखेमानसे शोच दण्डिच अवस्थित है। वहां पाग भी प्राचीन देवमन्दिर और पूर्व संसारमैत्र हट कीहा है।

सुनसुप (राजतरङ्गिणी १।८०).—विश्वके विकाराचरितमें सुनसुप 'शोमसुख' नामसे उल्लेख है। (विकाराचरित १८।७१) उसका वर्तमान नाम 'शुनसुप' है। सुनसुप श्रीनगरसे ६ कोस उत्तर-पूर्व अवस्थित है। उसके निकट बुरे तैलीय और सुपनेत्रोदक विद्यमान है। सुनसुपके निकट शिव नामक एक चूद धाम है। विद्वयने उसका नाम 'शिववन' सिद्धा है।

* श्रीनगरी—वर्तमान श्रीनगरसे मिस थी। उसका दूसरा नाम पुरे काचिदान था। वर्तमान पाण्डुवन नामक धाममें ही प्राचीन श्रीनगरी बनी थी, पूर्वका उल्लेख नगरी, तख्त-सुखेमानसे पानाशोक चर्याय पण्डुवत पर्यन्त मिलता था।

नित्त स्थानपर विजयेशमन्दिर था, चाणक्य उसका नाम बिजया है। यह देवत नदीके पासही वर्तमान रामनामसे शार्वरारु कोम दण्डिचरु अवस्थित है।

† पाग भी तख्त सुखेमान पहाड़में ज्येष्ठरुद्र नामक मन्दिर और उससे कुछ दूर बसोच प्रतिष्ठित बसोकेश्वर मन्दिरका ध्वजशेखर देख पड़ता है।

नामानुसार गोपालपुर नामक नगर, गोपालमठ नामक मठ और गोपालकेशव देवताको स्थापन किया। फिर मन्दिरी नन्दाके एक सन्तान हुआ। किन्तु भूमिष्ठ होति ही वृद्ध मर गया। सुगन्धाने एकाङ्गोकी सहायतासे दो वर्ष तक राज्य किया था। एकाङ्गजातीय सेनापति और तन्ही जातीय मन्त्री रहे। सुगन्धाने मन कष्ट पा कर किसी उपयुक्त व्यक्तिके हाथ राज्यभार डालनेके लिये मन्त्रियोंकी पात्रनिर्वाचनार्थ भादेग दिया था। शेषमें श्वन्तिवर्माका वंश लीप होनेसे गर्गागर्भजात सुखवर्माके पुत्र निर्जितवर्माको रानी सुगन्धाने मनोनीत किया। निर्जितवर्मा दिनको सोते और रात को जागते थे। तन्त्रियोंने इसीसे उनका पचन लिया। कोपाध्यक्ष प्रभाकरके दुर्व्यवहारसे जो राजकर्मचारी विरक्त एवं पीड़ित रहे, उनमें उस समय सुयोग देख रानी सुगन्धाको राज्यसे निकाल बाहर किया। वह दुष्कपुरमें जा कर रहने लगीं। किन्तु एकाङ्ग अल्पदिनके पीछे ही उन्हें फिर राज्य देनेके लिये बुलाने गये थे। काश्मीरीय ८६ लौकिक शब्दको उक्त घटना हुआ। तन्त्रियोंने सुगन्धाके आगमनकी वार्ता सुन निर्जितवर्माके दशम वर्षीय पुत्र पार्थको राजा बनानेके अभिप्रायसे पार्थमध्य रानी सुगन्धाके मैन्यदक्षसे लड़ किशो पुरातन अशुभ विचारमें ६० लौकिकशब्दको रानीको मार डाला। फिर पार्थ राजा हुए। पलस यथेच्छाचारी पिता उनके रक्षक बने थे। तन्त्रियोंके मध्य भी क्रमशः आत्मविच्छेद पड़ गया। अन्तरापर अधीन राजा स्थापन होने लगे। मेरु नामक मन्त्रीके सन्तानोंने ज्येष्ठ शङ्करवर्धनके अधीन रह सुगन्धादित्यसे त्र्यन्ता जोड़ भीतर ही भीतर राज्यके कोपागारकी लूटा था। उनहीने श्रीमेरुवर्धन नामक विष्णुकी मूर्तिको स्थापन किया।

उसके पीछे ६१ लौकिक शब्दको राज्यमें भीषण दुर्मिच्छ पडा था। एक तो अराजक राज्य और दूसरे दुर्मिच्छ। सुतरां राज्य सम्पूर्ण विच्छेद हो गया। तन्त्री राज्यके मध्य सबके ऊपर रहे। वह निर्जितवर्मा और पार्थ उभयके मध्य अपनी सुविधाके अनुसार कभी इसकी और कभी उसकी सिंहासन पर बैठे।

स्वयं राजत्व करने लगे। सुगन्धादित्य निर्जितवर्माकी पत्नियोंमें रासक्रीला खेलते थे। वह सभी अपने अपने पुत्रको राजा बनानेके लिये सुगन्धादित्यको प्रसन्न धन-रत्न देने और अपना अपना देह बचने लगीं। मन्त्री मेरुके पुत्रोंने राज्यमें प्राधान्य लाभकी आशासे भगिनी मृगावतीके साथ निर्जितवर्माका विवाह कर दिया। किन्तु मृगावती भी अन्तःपुरमें पहुँच सपत्नियोंका पथानुसरण कर सुगन्धादित्यकी अधीन बन गयीं। ६७ लौकिक शब्दको निर्जितवर्माका मृत्यु हुआ। एकाङ्गोंने उस समय वन प्रकाश कर निर्जितवर्माको बण्टदेवीनाम्नी पत्नीके गर्भजात चक्रवर्माको राजा बना दिया। बप्पत राजाका रक्षणविषय करने लगे। १० वर्ष उसी प्रकार बीते थे। ६८ लौकिक शब्दमें मन्त्रियोंने चक्रवर्माकी हटा मृगावतीके गर्भजात शूरवर्माको राज्य सौंपा। किन्तु उनके मातुस उनसे अनुज्ञान रहे। उनसे अन्यान्य तन्त्रियोंसे मिल और पार्थसे बड़ श्रेय उल्लोच ले भागियेकी राजशुभ्यत कर पार्थको राजा बनाया। उस समय पार्थ शाश्वती नाम्नी किसी विश्वाकी प्रणयिनी होनेसे सर्वदा अपने निकट रखते थे। उन्होंने शाश्वतीने शाश्वती नामक देवीमूर्तिको प्रतिष्ठा किया। ११ लौकिकशब्दको चक्रवर्माने उस समयकी रीतिके अनुसार तन्त्रियोंको उल्लोच (घंस, रिशवत) दे राज्य पाया था। किन्तु निरुद्धिता वश उनसे मेरुवर्माके पुत्रोंको अधिक सम्मान दे डाला। उसीसे उन्होंने अपने २ नाम पर नाना आग अधिकार किये। उनके राजत्वमें मेरुवर्माके ज्येष्ठपुत्र शङ्करवर्धन प्रधान प्राङ्गविधाक और शशुवर्धन प्रधान मन्त्री थे। उसी वर्ष तन्त्रियोंकी प्रतिशुभ उल्लोचका रूपया चुकाने मकने पर चक्रवर्माने भयसे मङ्गर नामक स्थान में पलायन किया। उस समय शङ्करवर्धनने राजा होनेकी आशासे शशुवर्धनको प्रशन्नादि करनेके लिये तन्त्रियोंके निकट भेजा था। शशुने जाकर ज्येष्ठ आत्माकी बात न कह अपने ही लिये प्रबन्ध कर लिया। शङ्कर चक्रवर्माने श्रीदृष्ट नामक स्थानवासी डामरजातीय सरदार मध्यमसे मिल उसे सहायता करनेके लिये प्रतिशुभ कराया था। संघामने

एक बौद्धविहार निर्माण करा उसमें कल्यादेवीकी मूर्तिको प्रतिष्ठा किया और विहारका "कल्यायम" नाम रख दिया। धीरमोचनतीर्थमें महाराज जलोक और महिषी ईशानदेवीका मठ्यु हुआ।

महाराज जनलोकके पचास दामोदर (२५) राजा हुये। समझना कठिन है—वह प्रयोक्त वा गोधर-पंगसम्भूत थे या नहीं। दामोदर यद्यत् पर्यगाली और शिवभक्तिपरायण थे। उन्होंने दामोदरसूद नामक पुर स्थापन कर उसमें यज्ञगण द्वारा गुरुसेतु नामक सेतु निर्माण कराया था। वितस्ताके जलप्रवाहसे देगरक्षकके लिये दामोदरने (यक्षाक्षी सहायतासे) पत्थरका बांध बंधाया। एक दिन वह आहूके उपलक्ष स्नान करने जाते थे। अभी समय कई घुघातं ब्राह्मणोंने मार्गमें उनसे पत्र मांगा। किन्तु दामोदर (२५) ने उनको प्रत्याख्यान किया था। उससे ब्राह्मणोंने उन्हें सर्प होनेको श्राप दिया। किन्तुदन्ती है कि गुरुसेतुके निकटस्थ जलाशयमें आज भी एक सर्प इतस्ततः घूमता फिरता है।

फिर काश्मीरके सिंहासन पर तीन तुर्वक (तुर्क) नृपति बैठे थे। नहीं मालूम पड़ता उन्होंने कैसे राज्य लाभ किया। उनका नाम हुष्क (हुविष्क), लुष्क और कनिष्क थे। कतिब देखो। तीनोंने अपने अपने नाम पर तीन स्वतन्त्र नगर स्थापित किये—हुष्कपुर, लुष्कपुर और कनिष्कपुर। लुष्कने जयस्वामीपुर नामक दूसरा नगर भी स्थापन किया था। शकलेत नामक स्थानमें उन्होंने कनेक मठ निर्माण कराये। उनके समय बौद्धधर्म अतिशय विस्तृत था। राजतरङ्गिणीके मतमें बुद्ध शक्यकिंडके समयमें उस काल पर्यन्त १५० वर्षपर अतीत हुये थे। बोधिसत्व नागार्जुन उस समय ६ दिन काश्मीरमें उपस्थित रहे।

* हुष्कपुर, लुष्कपुर और कनिष्कपुरका वर्तमान नाम यथाक्रम 'उल्हर' 'जुहर' और 'कडूर' है। उल्हर—चीनपरिव्रजानकी 'इ-डि-डि-मी' है। वह वर्तमान बरामूलके पद्यात् विष्णुके दक्षिणतीर अवस्थित है। काश्मीरके पवित्रतम विद्यालय है कि पूर्व काल हुष्कपुर और बरामूल एकत्र एक ही नगर था। इन्ह लुष्कमें कविज्ञानचटोपाचार्य विनोदबुद्धि रहते थे। हुष्कपुर वा जुहर वर्तमान 'राजधानी' २ कोस उत्तर अवस्थित है।

उसके पीछे अभिमन्युने राज्य पाया। राजतरङ्गिणीमें इस बातका कुछ भां उल्लेख नहीं—वह कौम थे या कैसे राजा हुये। अभिमन्यु अज्ञातयज्ञ नृपति थे। कण्टकौल (कण्टकौल) नामक ग्राम उन्होंने ब्राह्मणोंको दान किया। अभिमन्युने एक शिव-मन्दिर प्रतिष्ठा कर उसके गात्र पर अपना नाम खुदा दिया था। उन्होंने स्वनामसे अभिमन्युपुर स्थापन किया। उन्हींके समय चन्द्राचार्य प्रमुख धेयाकरणिकने प्रतिपत्ति पायी थी। उन्होंने अभिमन्युके पादगानुसार उनके समयका इतिहास लिखा। उसी समय नागार्जुनके प्रधान बौद्धोंने प्रवल हो शिष्योपासना और नीलपुराणोक्त नागनियमादि धिगाड़ अपना मत प्रचार किया था। नाग लोग उससे विद्रोही हो काश्मीर भ्रंश करनेके उद्देश्य पूर्वतन्त्रे असंख्य तुषार-शिखा डालने लगे और अनेक अस्त्र ली बौद्धोंको मारने पर नियुक्त हुये। महाराज अभिमन्यु, उसके निवारणका कोई उपाय न कर सकने पर "दार्ढ्यमिहार" नामक स्थानको चले गये। शिवको कश्यपवंशीय चन्द्र-देव नामक एक ब्राह्मणने देवसहायतासे नाग और यज्ञ विद्रोह मिटाया। महाराज अभिमन्युने ही पतञ्जलिका महाभाष्य प्रथम काश्मीरमें प्रचार किया था।

उसके पीछे गोमन्ट (३५) सिंहासन पर बैठे। उल्लेख नहीं—वह कौम थे या किस प्रकार राज्याधिकारी हुये। उन्होंने नीलपुराणानुसार नियमादि स्थापन और दृष्ट बौद्धके प्रत्याचार निवारण किये। गोमन्ट (३५) ने राज्यमें सुखशान्ति और प्रजाके समधान्य की वृद्धि की थी। राजतरङ्गिणीके मतमें उन्होंने ३५ वर्ष राज्य किया।

उसके पीछे तत्पुत्र विभीषण (१६) ५३ वर्ष ६ मास काल राजा रहे। फिर इन्द्रजित् राजा हुये और उनके बाद उनके पुत्र रावणने राजा हो वटेश्वर शिव-सिद्ध स्थापन किया था। वह शिवसिद्ध कक्षगणपण्डितके समय पर्यन्त विद्यमान था। उस सिद्धके गात्रमें विन्दु तथा शूद्रके समान चिह्न बने थे। महाराज वटेश्वर देवके उद्देश्य अपना समस्त राज्य लगा दिया था।

यशोधर उनमें जा मिले। एकमात्र मंत्री नरवाहन मन्त्रियो दिहाके पक्षमें रहे। मन्त्रियोने शेषको लज्जिता-दित्यपुरके ब्राह्मणोंके साहाय्यसे सन्धिकर और यशोधरका कम्पन प्रदंग टे चाणुविपदसे मुक्ति पायी यशोधरको मन्त्रिमा अभिचारक्रियासे मारे गये। उसके पीछे कम्पनराज यशोधरसे साहीराज यक्षनका युध हुआ। रक्षाटिके परामर्शसे दिहाने दीप विषेचना-पूर्वक यशोधरको कम्पनसे निकालना चाहा था। इरामत्त, यशोधर प्रभृतिने पूर्व सन्धिको कया यरण फर ससेन्य शूरमठके निकट राजनैत्यपर प्राक्रमण किया। सिंहाद्वारपर एकाङ्ग मैन्यदन दुर्भेद्य प्राचीरकी भांति खड़ा हो खडने लगा, किन्तु पराजित होते होते राजकुलमठके समेन्य युद्धमें पदुच योग देनेसे राजसैन्य जीत गया। युद्धमें हिन्यक मरे और यशोधर, सुकुल, उदयगुप्त तथा यशोधर बन्दी हुए। इरामत्तने गणयात्री काशोरीयोसे गयाली को कर लेते थे उसे निवारण किया। रानीने उनको गलेसे पत्थर बांध वितस्तामें डूबा दिया। यशोधरको वह मंत्री नरवाहन के परामर्शसे निरापद राजशशासन करने लगे। नरवाहन राजानक पद पर अधिष्ठित हुए। रानी नरवाहनको सम्पूर्ण हितकाङ्क्षी समझ सर्वोपेक्षा पाटर करती थीं। किसी धर्म कीवाध्यलने उसे सह न सकने पर कौशलसे उभयके मध्य समोमानिन्य बढ़ा दिया। क्रमशः दिन दिन मन्त्रियो नरवाहनको प्राकाश्य रूपसे अपमान और घृणा करने लगीं। नरवाहनने शेषकी घबडा कर आत्महत्या कर डाली। उसी समयसे रानी की निद्ररता बढ़ी थी। वह डामर भरदारकी सपरिवार मार डालने पर प्लुत हुईं। मंत्री फाल्गुनकी फिर कार्यभार मिला था। इधर कार्तिक मासकी शरु खनीयाकी (४८ शौकिकाब्द) महाराज अभिमन्युने यक्षराोगसे परभोक गमन किया।

उसके पीछे दिहाके पचीन उनके गिश्त चौख (अभिमन्यु के पुत्र) नन्दिगुप्त राजा हुए। उसवारपुष-शोकसे रानी बेचोरी थीं। वह फिर प्रजाके हितकार कार्यमें रत हुईं। उन्होंने अभिमन्यु पुर नगर, अभिमन्युक्षामी देवता, अपने नामसे दिहापुर नगर और

दिहाक्षामी देवताको स्थापन किया था। उसके बाद दिहाने खामीकी स्वर्णकामनासे कङ्कपुर नगर और "दिहाक्षामी" नामक श्वेतमस्तरकी विष्णु मूर्तिकी प्रतिष्ठा की। उन्होंने लोहरवासियों और काशोरीयोके सुविधाएँ एक पायनिवास और विष्टनामसे एक ब्राह्मणायाम एवं सिंहक्षामी नामक देवताकी स्थापन किया। वितस्ता और विष्णुके मङ्गलस्थल पर दिहाने दूसरे भी कई देवता स्थापन किये थे। उन्होंने सब मिलाकर ६४ देवमूर्ति स्थापन की थीं। उनकी वस्था नाम्नी वेवधिक्रमतीय किन्ही दासोने यणामठ नामक मठ स्थापन किया। एक वर्ष पीछे राजी दिहाका शोक दूर हुआ। वह फिर कुकर्ममें लग गयीं। उस वार उनने अपहायण मास (४९ शौकिकाब्द) अभिचारक्रियाके साहाय्यसे अपने विष्णुपौत्र नन्दिगुप्तको मार उसके सहीदर विष्णुवनगुप्तको राजा बनाया था। किन्तु २ वर्ष पीछे अपहायण मास हो दिहाने उनको भी मार डाला। विष्णुवनगुप्तके पीछे उनके दूसरे सहीदर भीमगुप्त राजा हुए। किन्तु वह भी राक्षसी वितामण्डोके हाथ (५६ शौकिकाब्दकी) मारे गये। उसी बीच मंत्रिवर फाल्गुन भी विलट हुए।

भीमगुप्तके बाद दिहा प्रकाश्य रूपसे सिंहासन पर बैठ गयीं। उनकी कुपमंसिके साधनमें मन्त्रत न होनेसे अनेक व्यक्तिके विलट हुए। शेषकी उनके मिय छपवति तुङ्ग मंत्री बने थे। तुङ्ग खीय म्वाटपक्षके मिल राज्य हरणकी चेष्टामें घूमने लगे। राजी दिहाके भ्रातृपुत्र विषहराज तुङ्गकी मार डालना चाहते थे। दिहाने वह बात समझ पटंचलने विषहराजको देगमें निकाला, कर्दमराजका मारा और तुङ्गके इच्छानुसार रकके पुत्र सुलक्षणादि मंत्रियोंको भी राजसभासे दूरीभूत किया। मंत्री फाल्गुनके मरनेपर राजपुरी-राजविद्रोही हो गये। तुङ्गने उनको भी जीत 'राजपुरीराज' और हामरराज्य तथा कम्पनजयकर 'कम्पनराज' उपाधि प्रदण किया था। उसके बाद दिहाने खीय भ्राता उदयराजके पुत्र संघामराजकी युवराज बनाया। शेषकी (८९ चद्) भाद्रकी शरुपटमीके दिन दिहा मर गयीं।

इन्द्रजित् भीर रावण समयने ३५ वर्ष ६ मास राजत्व किया। रावणके पीछे तत्पुत्र (२५) विभीषणने ३५ वर्ष ६ मास राज्य चलाया था।

विभीषण (२५) के पीछे उनके पुत्र नर वा किन्नर राजा हुये। वह बड़े भविवेचक राजा थे। विभीषण प्रजाके लिये जो करते, उसीसे उनके काम बिगड़ते थे। बौद्ध बौद्ध उनको महिषीको भगा ले गया। महाराज किन्नरने उसी क्रोधमें सहस्र सहस्र बौद्ध मठ ध्वंस किये और वहाँ सबकुल स्थान ब्राह्मणोंको दे दिये। उन्होंने वितस्तातीर किन्नरपुर नामक एक नगर स्थापन किया था। महा शोभा और धनधान्यसे परिपूर्ण होनेके कारण अनेक लोग उस नूतन नगरमें जा कर रहने लगे।

किन्नरराजके पुत्र महायया सिद्ध थे। उन्होंने ६० वर्ष राजत्व किया। फिर उनके पुत्र उत्पलाच राजा हुये। उत्पलाचके पीछे उनके पुत्र हिरण्यसिंहासन पर बैठे। उन्होंने अपने नाम पर "हिरण्यपुर" नगर स्थापित किया था। फिर यथाक्रम हिरण्यकुल और उनके पुत्र वसुकुलने काश्मीरका प्राधिपत्य पाया। वसुकुलके पुत्र मिहिरकुल रहें वरु प्रथमय निर्दय और प्रजापीडक थे। उन्होंने अपने नाम पर होला नामक स्थान पर "मिहिरपुर" नगर पत्तन किया। सिधा इसके मिहिरकुलने ब्राह्मणोंको सहस्र ग्राम तन्नीत्तर दे श्रीनगरमें मिहिरेश्वर नामक मन्दिर बनाया और चन्द्रकुल्या नदीको गतिकी भी सुभाया था। वह अशुभ्य दारुण और भ्रांष्ट्र (तिष्ठतीय) लोगों पर बडा ही अनुरोध रखते थे। मिहिरकुलके पीछे उनके पुत्र वक्रने सिंहासन प्राप्त किया। उनके द्वारा लवणोत्सव नगर स्थापित हुआ। उन्होंने वक्रके मन्दिर भी प्रतिष्ठा किया था। वक्रके पीछे क्रमानुक्रमे चित्तनन्द, वसुनन्द, नर और अक्ष राजा हुये। अक्षने विभुयाम और अक्षवान नामक बिहार (?) बनवाया था। अक्षके पीछे उनके पुत्र गोवादित्यकी सिंहासन सिद्धा। उन्होंने सखील, खानि, काहाडियाम, स्कन्दपुर, शमाद्र और आडि-पाम ब्राह्मणोंको दिया था। फिर गोवादित्यने प्राय-

देशसे ब्राह्मण बुला उनको गोपादित्य गोप्रथम दान किया। उन्होंने ज्योतिषेश्वर लिङ्गकी प्रतिष्ठा भी की थी। * उनके सुयामनमें काश्मीरमें मानो सत्ययुगका आविर्भाव हुआ।

गोपादित्यके पीछे उनके पुत्र गोकर्णने राज्य पाया। उन्होंने गोकर्णेश्वर मन्दिर प्रतिष्ठा किया था। गोकर्णके पीछे उनके पुत्र नरेन्द्रादित्य (अपर नाम खिङ्गिल) को पिडराज्य प्राप्त हुआ। उन्होंने कई मन्दिरों, भूतेश्वर नामक शिवलिङ्ग और अक्षयिणी देवामूर्तिको स्थापन किया। उनके गुरु अपने उद्योग नामक शिवमन्दिर और माटचक्रको प्रतिष्ठा की थी। नरेन्द्रादित्यके पीछे उनके पुत्र युधिष्ठिर राजा हुये। उस समय मंत्रियोंने विद्रोही हो युधिष्ठिरको अग्निका दुर्गमें कैद कर रखा था। युधिष्ठिरके कैद होने पर मन्त्रियोंने प्रतापादित्य नामक शकारि-विक्रमादित्यके प्रातिको अभियन्त किया। उनके मरने पर जलौक और जलौकके पीछे तुष्ठीनने पिडसिंहासन पाया। तुष्ठीन और उनकी प्रियतमा महिषी द्वारा अनेक सन्तानें हुये। समयने तुष्ठीश्वर नामक शिवमन्दिर और कतिक नगर स्थापन किया था। रानी वाक्पुष्टाके कतीमुष और रामुष नामक दो अग्रहार दानमें दिये और एक बड़ा भारी अश्वत्थ खूबवाया। उस समय काश्मीरमें भयानक दुर्भिक्ष पड़ गया। दुर्भिक्षपीडित मनुष्य अश्वत्थमें प्राण्य और आहार पाते थे। अश्वत्थमें ही रानी वाक्पुष्टा पतिके साथ मर गयीं। उठी सती-मन्दिरमें कष्टके समय तक साधारणकी अन्नदान मिलता रहा। तुष्ठीनके राजत्वकाल चन्द्रक नामक नाटककार विद्यमान थे।

उसके पीछे विजय नामक अन्वर्धश्रीय एक राजा हुये। उन्होंने विजयेश्वर नामक शिवमन्दिरकी चारो ओर नगर स्थापन किया था।

विजयके पीछे उनके पुत्र जयेन्द्र नरपति बने। उनके मन्त्रिमति नामक एक महाशय मन्त्री थे। ऐश्वर्य

* गोपादिका वर्तमान नाम 'तख्त' है। तख्तके पास गोप्रकार और अक्षिर नामक स्थान है। वह दोनों स्थान कश्मीर 'नाप' और 'ज्योतिषेश्वर' कहलते हैं।

इस प्रकार कण्टकवंशीकी दस व्यक्तियोंने राजा वन ६४ वर्ष और २३ दिन राज्य किया।

संभारना राजमापतिके नामसे सिंहासन पर बैठे थे। वह गम्भीर और प्रतापशाली राजा रहे। उनके समय भी तुङ्ग महाप्रतापशाली थे। सुतरां राज्यके अन्यान्य प्रधान प्रधान सबों और कर्मचारी तुङ्गका प्रताप खर्व करनेके लिये विद्रोही हो गये, किन्तु विद्रोहियोंमें अपनेक व्यक्तियुक्त हुए। तुङ्ग शिपकी भद्रेश्वर नामक किसी कायस्थका साहाय्य ले विपदमें पड़े थे। उसी समय तुङ्गराज हमीरने साही राज्य आक्रमण किया। त्रिलोचनपाल साहीने काश्मीरराजसे साहाय्य मांगा था। तुङ्ग सैन्य साही राज्य जा पहुंचे। युद्धमें विपक्ष पराजित हो भागा था। किन्तु तुङ्गने त्रिलोचनके कथनानुसार परंतपार्श्वमें शिविर स्थापन न किया। उसीमें नूतन तुङ्गसैन्यने जा परंतपार्श्वसे काश्मीरसे सैन्यको हथ भिन्न कर दिया। तुङ्ग भाग कर राजाको लौटे थे। त्रिलोचनने हस्तिक नामक स्थानमें आश्रय लिया। साही राज्य चिरदिनके लिये हमीरके अधिकार में बना गया। तुङ्गके पुत्र कन्दर्पसिंह गर्वित और विलासी रहे। उसी समय विपक्षराज गोपनीय पक्ष द्वारा तुङ्गवधके लिये भ्राताको पुनः २ अनुरोध करने लगे। राजा समापति किन्तु उठात् वह कार्य कर न सके। अश्रयमें दवाब पड़नेसे किसी दिन मन्त्रणा का परामर्श करनेके लक्षसे उन्होंने मन्त्रद्वयमें तुङ्गको बुलाया था। उद्यममें प्रवेश करते ही शर्करा और अन्यान्य अनुचर तुङ्गपर टूट पड़े। तुङ्गके विनष्ट होने पर उनके पुत्र भी पकड़ कर मार डाले गये। उक्त घटनाके पीछे तुङ्गके भ्राता नाग कम्पनराज बने थे। कन्दर्पकी स्त्री नागके साथ भ्रष्टाचारमें रत हुईं। विचित्रसिंह और भ्रातृसिंह नामक कन्दर्पके दो पुत्रोंने स्व स्व माताके साथ राजपुत्रीको पलायन किया था। तुङ्गके मरनेके पीछे दरद, डामर और दिशिर विद्रोही हो गये। समापतिने स्वयं कोई प्रामाद वा मन्दिरादि बनाया न था। उनकी कन्या लोठिकाने एक पपने और एक माता तिलोत्तमाने नामसे मन्दिर प्रतिष्ठा किया। भद्रेश्वरने भी एक मठ बनाया था। श्रीलेखा नाम्नी महिषी

जयाकर नामक (सुगन्धिसिंहके भोरस और जयलक्ष्मीके गर्भसे उत्पन्न) तुङ्गके किमी भ्रातृपुत्रके साथ भ्रष्टा हो गयीं। ४ लौकिकाब्दकी १ ली भापादकी राजा समापतिने परलोक गमन किया।

समापतिके पीछे उनके पुत्र श्रीलेखाने गर्भजात हरिराज राजा हुए। वह अति सुधीन प्रजापक्षक राजा थे। हरिराज २२ दिन भाव राजत्व कर शुक-अष्टमीको कालघाघमें पड़े। कहते हैं कि श्रीलेखा पुत्रके निकट स्त्रीय भ्रष्टाचारके लिये तिरस्कृत हुईं थीं। उसीसे अभिचारद्वारा उन्होंने उनको मार डाला।

उसके पीछे श्रीलेखाने स्वयं राजत्व करनेकी अभिप्रेक्षा चायेजन लगाया था। उसी समय हरिराजके धात्रीपुत्र सागरने एकाङ्गमें मिल हरिराजके कनिष्ठ पनस्तदेवको राजा बना दिया। यह विपक्षराज गिय भ्रातृपुत्रका राजा हरण करनेके लिये लोहरसे हृहत् सैन्य ले काश्मीरमें प्रवेश कर लोठिकामन्दिरमें रहने लगे। श्रीलेखाने संवाद पानेपर एक दल सैन्य भेज मजल विद्रोहियोंका विनाश किया था। उसके पीछे वयःगत होनेसे पनस्तदेवके साहीराजपुत्र गियपात्र बन गये। ल्येष्ठ रुद्रपाल दस्युदन तथा कायस्थगणकी प्रतिपालन करत और राजाको आपातसुखकर मन्त्रणा देते थे। उन्होंने जालन्धरराज इन्दुचन्द्रकी अतिरूपवती ल्येष्ठा कन्या आशामतीके साथ पपना और उसकी कनिष्ठा सूर्यमतीके साथ पनस्तदेवका विवाह किया। श्रीलेखाने उसी समय पपने स्वामी और पुत्र (हरिराज) की स्वर्गकामनासे दो मन्दिर बनवाये थे। कम्पनराज त्रिभुवन डामरोंसे मिल विद्रोही हुए। फिर उन्होंने काश्मीर आक्रमण किया। एकाङ्गोंके साहाय्यसे पनस्तदेवने उक्त विद्रोह दबाया और त्रिभुवनको भगाया था। उसके पीछे पनस्तदेवने स्त्रीय गियपात्र ब्रह्मराजकी कोषाध्यक्ष बनाया। किन्तु उन्होंने रुद्रपालको प्रतिपत्ति देख हिंसासे पदत्यागपूर्वक पांच ल्येष्ठराज, दरद और डामर लोगोंमें मिल दरदराजके सेनापतित्वमें काश्मीर आक्रमण किया था। रुद्रपाल और पनस्तदेव एकाङ्ग सैन्य ले घोरपृष्ठ

शौर विद्याबुद्धि दर्शनसे भीत हो काश्मीरराजने उन्हे कैद किया। मन्त्री कैद किये जाते भी दुःखी न हुये वरु सभ्यदा शिवके प्रेमसे प्रानन्दित रहते थे। १० वरु इसी प्रकार भीत गये। अपुत्रक भयस्थाने जयेन्द्रका मृत्यु हुआ।

कुछदिन पराजकता रहने पीछे सन्धिमतिये प्रार्थ राज नामग्रहण पूर्वक काश्मीरवासियोंके यत्नसे सिंहासन पाया था। उन्होने अपनेक सत्कार्य किये प्रवाद हे कि वरु प्रत्यह सङ्घस गिबलिङ्ग प्रतिष्ठा करते थे। ऐतिहासिक कङ्कणके समय तक उक्तसकन पापाणमय गिबलिङ्ग विद्यमान रहे। (राजतरङ्गिणी १२११) राजा सन्धिमतिये गिबलिङ्गकी पूजाके व्यधनिर्वाहार्थ अपनेक धाम दान किये थे। उन्होने अपने नामपर सन्धीश्वर, गुरुके नामपर ईशश्वर और खेडा एवं भोमाणा नामसे दूरमे भी कई सुवहत् देवाल्योंको प्रतिष्ठा की। उनके समय समस्त काश्मीर राज्य देवमन्दिर और प्रासादमण्डित हो गया। उन्होने कुछदिन राज्यकर इष्टदेवकी सेवामें समय अतिवाहित करनेके लिये राजसिंहासन छोड़ दिया।

इधर राजा युधिष्ठिरके प्रपौत्रने गान्धारराज गोपादित्यका आश्रय लिया था। उनके भिषवाहन नामक एक पुत्र हुआ। उसने प्रागल्भ्योत्पत्तिकी राजकन्याकी स्रयस्वरसे पाया था। कामरूपकी राजकुमारीकी लेकर लौटनेपर काश्मीरके मन्त्रियोंने उन्हे प्राज्ञान किया। मन्त्रियोंके यत्नसे युधिष्ठिरका वंश फिर काश्मीरके राजासन पर अभिषिक्त हुआ। भिषवाहनने अभियेक-दियससे प्राणिलिंसारो कनेकी प्रादेश निकाला था। उन्होने अपने नामपर भिषमठ, गुष्टधाम और भिषवाहन नामक अष्टहार स्थापन किया। उनकी रानियोंने अपने अपने नामपर भिषुकीके रहनेकी 'विहार' बनाये थे। उक्त विहारोंके नाम रहे—अमृत-

भवन, खादना, मर्या और (युकदेवी-प्रतिष्ठित) नङ्गवन विहार। रानी अमृतप्रभाके पिताके गुरुने मृगुणा जो नामक नगरसे गमन कर भोस्तुनपाठ नामक एक स्वतन्त्र स्तूप बनाया था। भिषवाहनके मरनेपर उनके पुत्र श्रेष्ठसेन (अपर नाम प्रवरसेन १म) राजा हुये। पितामाताके बहुत कुछ बौद्धमतधर्मसे होते भी उन्होने अपने नामपर प्रवरेश्वर नामक देवमन्दिर प्रतिष्ठाकर देवसेवाके लिये विगत राज्य दान किया था।

श्रेष्ठसेनके मरनेपर उनके पुत्र हिरण्यने, कनिष्ठ सञ्जोटर तोरमाणके साहाय्यसे राज्य चलाया। पहले काश्मीरमें जो मुद्रा प्रचलित रही, तोरमाणने उसके बदले (किसीका अनिष्ट न कर) स्वनामाङ्कित स्वर्ण-मुद्रा (असरफ़ी) प्रचार की। उक्त कार्यसे क्रुद्ध हो हिरण्यने उन्हे सत्कीक कारागृह किया था। कारागारमें तोरमाणकी पत्नी गर्भवती हुयी और दग्मास पूर्ण होने पर किसी उपायसे भाग गयी। उन्होने एक कुम्हारके गृहमें आश्रय लिया और वहाँ एक पुत्रको प्रसव किया। शिशुको वरु पुत्र कहा हुआ, उसके मातुल (रक्षाकुर्वशीय) जयेन्द्र किसी प्रकार सन्धान पा भगिनी और भागिनियको स्वराज्यमें ले गये। हिरण्यकुल १२ वर्ष २ मास राजत्व कर निःसन्तान अथवा पर कालघासमें पतित हुये।

उस समय सज्जयिनीमें हर्ष विक्रमादित्य राजत्व करते थे। राजतरङ्गिणीके मतसे उन्होने शको और श्लेष्ठीको हराया रहा। उनकी सभामें कविवर माट-गुप्त रहते थे। हर्षविक्रमने प्रथमतः कवि माटगुप्तका कोई सम्मान नहीं किया। माटगुप्त शयन स्वप्न आगरणमें अनुचरकी भांति राजाके अनुगामी रहे। उनके रात्रिकी निद्रित होनेपर रक्षिवर्गकी भांति कवि माटगुप्त भी शयनीगारके द्वारपर जगा करते थे। यथाकाल राजाने समझा कि ऐसे अनामास्य प्रतिभागाती पण्डितकी उपेक्षा करना अक्षय न था। इसी समय

* मन्त्रिये दर्शनमान परतेपर सन्धीश्वर मन्दिरका भग्नावशेष विद्यमान है।

सन्धिमतिके नामानुसार उक्त परतका नाम 'सन्धिमान' था। सुमनसामात्रीके उक्तके वरुने 'सुमनान' नाम रख लिया है।

† वहीनाम इत्यन्त माताके उत्तर-पूर्व २ कोम दूर भवनधामके पास भीमदिकोका गुफामन्दिर इष्ट होता है।

* सुष्ठित राजतरङ्गिणीमें 'नीलामा' पाठ है। यह भवनपाठ समझकर हाड़ दिया गया है। (राजतरङ्गिणी १।१०)

भी भवनका वर्तमान नाम 'मि' है। वरु भादक था मय निम्नतमें अचलित है। मृगुणा विजयीय शब्द है।

नामक स्थानपर युद्धार्थ उपस्थित हुए। दूसरे दिन प्रातःकाल युद्धारम्भ होना ठहर गया। सभी बीच दरदराजने क्रोडाभिप्यारक नामक नागरके स्थानपर उपाय मचाया था। सभीने नागोंने मसक्ता कि युद्ध चारम्भ हो गया। फिर आग भी जा पड़ेये थे। शिवकी याध्याविक काश्मीरके सैन्यमें युद्ध होने लगा। युद्धमें श्रेष्ठराज और दरदराज मारे गये। हद्दवायने सुकृत-मण्डित दरदराजका मस्तक पनस्तदेवकी उपहार दिया था। उदयनवत्स नामक दरदराजके भ्राताने फिर अभिचारक्रियाके माहाय्यमें हद्दवाय और उनके भ्राताओंकी विनष्ट किया। उसके पीछे रानी सूर्यमती या सुभटाने वितस्तातीर सुभटामठ नामक शिवमन्दिर बनाया। उसा मन्दिरके निकट रानी स्त्रीय कनिष्ठ सञ्जोदर चागाचन्द्र वा कल्लनके नामसे एक ग्राम भी स्थापन किया था। एतद्भिन्न उन्हीने स्वामीके नामसे पमरेश्वर, ज्येष्ठभ्राता गिल्लनके नामसे विजयेश्वर और त्रिशूल, चाणक्य प्रकृति शिव एवं मन्दिरकी प्रतिष्ठा की। कुछदिन पीछे उनके गर्भजात गिगुसन्तान राजराजका मृत्यु हुआ। फिर राजा और रानी दोनों राजभवन छोड़ सदाशिव-मन्दिरके निकट रहने लगे। सभी समयसे चार दिनके निये काश्मीरका पुरातन राजप्रानाद परित्यक्त हुआ। कारण तत्परवर्ती राजा भी उक्त मन्दिरके निकट ही जाकर रहे थे। उसी समय उल्लक नामक एक दैगिक भाँड़ने राजाका बड़ा प्रियपात्र होनेसे यथैष्ट धनरत्न लाम किया। यद्वांतक कि उसने राजकोप शून्य प्रायः ही गया। रानी सूर्यमतीमें बह बात देख राजकोपको अपने हाथमें ले अपारमित व्यय नियारण किया था। त्रिगतैर्देवीय केग्य ब्राह्मण उस समय प्रधान मन्त्री रहे। गौरीग-त्रिदगास्य नामक स्थानमें भूति नामक एक श्रेष्ठ थे। उनके तीन पुत्र रहे—हजधर, वज्र और वराह। हजधर रानी सूर्यमतीके पनुपदसे प्रधान मन्त्री बन गये। उन्होंने मन्त्री हो राज्यमें पनेक शुभ पनुष्ठान किये। हजधरने वितस्ता और सिन्धुके सहस्र-स्यन पर एक-स्वर्ण-मन्दिर भी निर्माण कराया था। उनके कनिष्ठ भ्राता वराहके पुत्र विष्व पतिवय और

थे। उन्होंने डामरों और खगोकी वगीमृत किया, किन्तु खगयुद्धमें स्वयं भाग दे दिया। कुछ दिन पीछे प्लोके कष्टमेंसे पनस्तदेवने स्वयं मिंहासन छोड़ स्वपुत्र कनस वा द्वितीय रषादित्यको राजा बनाया। मन्त्री हजधरने उक्त प्रस्तावमें वाधा डाली थी, किन्तु राजाने उनको न सुनी। शिवमें उदत युवा रषादित्य पिताको और उसकी स्त्रियां रानी सूर्यमतीको संध्या ही प्रयाप्त करने लगीं। रषादित्य पधीन राजावैधि केमा सन्धान पाने, पिताको भी वैसाही करनेका प्रादेश सुनाते थे। उस समय राजा और रानी उभयकी चेतन्य हुआ। हजधरने कौमनपूर्वक फिर राज्य-भार हद्द राजाकी सौंपा था। उदत रषादित्य नाम-मावकी राजा रह गये। सभी समय विषहाराजके पुत्र चितिराजने राजा पनस्तके निकट जाकर कहा था—“हमारे निलपुत्र भुवनराज और पौत्र भीलने हमें राज्यसे निकाल दिया है। विषहाराज जिन माप्राणोंको समादर करते थे, उन्हीने उनके नामके कुकुर पान उनके गलेमें यज्ञोपवीत डाला है। अतएव हम उनका सुख न देखेंगे। हम पापके गिद्ध पीतकी पपने राज्यका उत्तराधिकारी बनाते हैं। प्राय उस राज्यका भार ग्रहण कीजिये।” उक्त कथा कह चिति-धरने चक्रधरमें रह विशुषेयामे कीदनयापन किया। राजा पनस्तने तन्वद्भाराज नामक स्त्रीय पिण्डव्यपुत्रकी चितिराजसे राज्यमें पौषके पण पर शासनकर्ता बनाया। उसी समय जिन्दुराज नामक किसी व्यक्तिये उच्छुद्धम डामर और दरद मोगोकी देमन किया था। राजाने उसे कम्पनराजका राजा बना दिया। उसके बाद हजधर मर गये। उन्हीने मरते समय कहा था—“महा-राज। कम्पनापति जिन्दुराज और कोयाञ्चन नामके पुत्र जयानन्दसे सावधान रहियेंगा। उठात परराज्यपर पालक्षण करना भी अच्छा नहीं।” उक्त परामर्शके पनुसार पनस्तने सुविधा देण जिन्दुराजकी काराबद्ध किया। कास पाकर जयानन्द और माहीराजपुत्र विज्जदित्यराज तथा पात्र नाममात्र राजा रषादित्यकी र्वेन कुपवर्षमें मगाने लगे। उभी समय उनके देवो-पम शुभ पसरकण्ठके मराभारसे उनके हतभाग्य पुत्र

उन्हें स्मरण आया कि काश्मीर राज्य पराजक रहा। उन्होंने माहगुप्तकी मुलाकार कथा था—“यह पत्र लेकर भाप काश्मीरके शासनकर्ताके निकट चले जाइये। पश्चिमध्य इसे खोलकर कमी न पढियेगा।” माहगुप्त यथासमय काश्मीर पहुंचे। मन्त्रिवर्गने हर्षविक्रमादित्यका पत्र पा माहगुप्तको काश्मीर राज्य पर अभिविक्त किया था। उन समय उन्होंने विक्रमादित्यको गुणशोधिताको समझा और नानाविध उप-दौकन तथा ववितादि उज्जयिनीको भेज दिया।

राजा माहगुप्तने स्वराज्यमें पशुवध रोक था। उनकी समामें ‘इयधौधवध’ नामक काश्रप्रणीता कवि-वर माहमेष्टका भवस्थान रहा। राजा माहगुप्तने “माहगुप्तस्वामी” नामक विष्णुमूर्ति प्रतिष्ठाकर देव-सेवाके लिये विस्तार अर्थ व्यय किया था। उनकी राजत्व ४ वर्ष १ मास १ दिन रहा।

इसके त्तरमाषके पुत्र प्रवरसेन (२५) ने सुना कि उनके पिता-पितामहके सिंहासनकी किसी दूरसे व्यक्त-ने अधिकार किया था। कुमार इस बातको सच न सके और काश्मीरको चले दिये। मंत्री उनके साहाय्यार्थ उपस्थित हुये थे। प्रवरसेन काश्मीरकी अवस्था देख कहने लगे—“निरपराधी माहगुप्तका क्या दोष है? वर्तमान व्यवस्था करनेवाले विक्रमादित्यको ही हम इसका प्रतिफल देंगे।” उसके पीछे सैन्यसंग्रह कर प्रवरसेनने विगत जीता था। फिर उन्होंने हर्ष-विक्रमके विरुद्ध उज्जयिनीके अभिसुख गमन किया। पश्चिमध्य समाचार मिला कि हर्षविक्रमादित्यका मृत्यु हुआ था। उससे बड़ों आशा भारी गयी। कुमार प्रवरसेनने खानाहार छोड़ दिया। दिवारात्रि चौममें होती थी।

उक्त माहगुप्तकी कवि कालिदास और हर्षविक्रम-की संवत्साधप्रतिष्ठाता शकारि विक्रमादित्य नाम उनके शीघ्र महाभ्रममें पड़ गये हैं। माहगुप्तके सम्बन्धपर कितनी ही कथा राजतरङ्गणीमें मिलती है। उनकी कविता, धार्मिकता और महातपसवताको कल्पने सुक्त कहने सराहा भी है। किन्तु उन्होंने माहगुप्तको नहीं कालिदासकी भांति नहीं निखा। यदि माहगुप्त

कालिदास होते, तो प्रशंसा करने भी कल्पन उन्हें एक वार कालिदास न लिख देते ? कालिदास देखो।

राजतरङ्गणीमें हर्षविक्रमादित्यके शकदेय जय करनेकी बात लिखी है। किन्तु क्या निश्चयता है कि उक्त शकदेयका जय, संवत्साधप्रतिष्ठाताके ही समय हुआ था ?

कुमार प्रवरसेन काश्मीर लौटकर राज्य करने लगे। उन्होंने काश्मीरके चतुःपाश्वर्य राज्य जीत लिये थे।

हर्षविक्रमादित्यके पुत्र उज्जयिनीराज प्रताप-शील व शिलादित्यने प्रवरसेनसे क्रमान्वय ७ वार हारते भी काश्मीरकी अधीनता न मानी। शिको पष्ठम वार युद्धमें जीवनसङ्घट देख-स्वयं वशीभूत हो गये। कल्पके कथनानुसार प्रतापशील शायद मयूरकी भांति नाच और बोल सकते थे। फिर प्रवरसेनने शायद उनकी देख उनका जीवन बचा और उन्हें स्वाधीन बना दिया। इसी प्रकार समस्त प्रतापान्वित राज्य जीत हितोय प्रवरसेन पितामहपुरमें रहने लगे। उन्होंने वितस्तातीर अपने नामपर मनोहर प्रवरपुर नामक नगर स्थापन और “जयस्वामी” नामसे शिव-लिंग तथा देवीमूर्तिको प्रतिष्ठा किया था। प्रवरसेन-पुरके निकट विनायक भोमस्वामीका मन्दिर रहा। उन्होंने वितस्तापर सर्वप्रथम नीचेतु प्रस्तुत कराया था। उनसे पूर्व किसीने काश्मीरमें नीचेतु नहीं बनाया। उक्त नीचेतुके उद्देश्य उन्होंने प्रसिद्ध सेतु काथ्य वा ‘दया स्थवधपदस्य’ प्रणयन किया था। उनके मातुल जयेन्द्र-ने ‘जयेन्द्रविहार’ नामसे बौधविहार बनाया। उनके मन्त्री और सिंहालके शासनकर्ता मोरकने ‘मोरक-भवन’ नामक एक सुदृश्य प्रासाद निर्माण कराया था। महाराज प्रवरसेनके सत्तामें स्वभावतः शुल्विष्ठ पद्धित रहा। उनकी महिषीका नाम रत्नप्रभा था।

प्रवरसेनके पीछे उनके पुत्र युधिष्ठिर (२५) राजा हुये। उन्होंने २१ वर्ष ३ मास राजत्व किया। उनके मन्त्री जयेन्द्रपुत्र वनेन्द्रने भयच्छेद नामक चेत्यादि-समाकीर्ण बौधधाम स्थापन किया था। कुमारसेन

प्रमोदकण्ठ गुरु हुवे। भंती हलधरके एक दुष्ट त पुत्र कनक निष्ठुरोंके शिरोमणि थे। वह बलपूर्वक प्रजाकी रमणियोंको गृहसे अपने दलमें पकड़ ले जाते थे। उसी प्रकार उक्त दोनों सङ्घोंका साथ पाकर रणादित्य यथारोति नरकके पथ पर अग्रसर हुवे। उन्होने भी गुरु प्रमोदकण्ठकी भांति स्वाय भगिनी कल्पना और कन्या नागाका सतीत्व चरण किया था। हृद राजा और रानीने उक्त संवाद सुन कपाल पर कराघात कर राज्य परित्यागपूर्वक निर्लनमें रहने लगे। क्रमशः प्रजाको स्त्रीपुत्रके साथ घरमें रहना अशुभव हो गया। किसी दिन रणादित्य जिन्दुराजका पुत्रवधूपर पासक हो रात्रिके समय उसके घरमें घुस गये। शेषको चण्डालोंके हाथ प्रहारित हो मृतप्रायः अवस्थामें अपना परिचय दे वह भाग गये थे। हृदराज अनन्तदेव उस समय पुत्रकी दुःशाका चरमकाल उपस्थित देख ५५ भौकिकाष्टके विजयक्षेत्र नामक स्थानमें देवसेवासे कालयापन करने लगे। तन्वद्भाराज सूर्यवर्मा और क्षामरराध चीरने उनका अनुगमन किया। उसके बाद रणादित्य स्वाधोन हो गये। फिर उन्होंने जिन्दुराजकी स्वाधीनता दे विजयक्षेत्र पर बृह पित्तसे लडने भेजा था। राज्ञी सूर्यमतीने पुत्रकी दुर्बल्लिसे उन्हें भलना किया। भाग्यक्रमसे रणादित्य उस भलनासे निरस्त हुवे, किन्तु उनके दुर्व्यवहार न गये। अवशेषको हृदराज अनन्तदेवने पौडित प्रजा और अनुचरगणके कर्कश वाक्यसे उत्तेजित हो पुत्रके हाथसे राज्यभार निकाननेका आयोजन लगाया था। उधर राज्ञी सूर्यमतीने स्त्रीय पीठ हर्षको तुना भेजा। हर्षने जाकर पितामह पितामहीके चरणमें प्रणयात किया। उक्त संवाद पा कलस और रणादित्य भीत हुवे। उनने पिता-माताके निकट दूत भेज कुछ अखिर मूर्ति धारण की थी। राज्ञीके अनुरोधसे बृह अनन्त राज्यकी कौटे किन्तु दो मास राज्यमें रह उन्होंने देखा कि गुणधर पुत्र उन्हें बन्दी बनावेंगे। वह अविश्वस्य राज्य छोड़ जयेश्वर-मन्दिरमें रहने लगे। रणादित्यने रात्रिकाल अग्नि लगा वह देवानय जला डाला। अग्निदाहमें हृदराज, रानी और अनुचरगणके परिहित

वक्ष मात्र व्यतीत सब कुछ जल गया। राज्ञी अग्निमें जलने जाती थीं। किन्तु तन्वद्भके पुत्रोंने उन्हें निवारण किया। शेषकी बृह राजा और रानी दोनों अनुचरोंके साथ अनागत देह नदी पार हो किसी पोर चल दिये। उन्होने एक मणिमयलिङ्ग तक्षराजके हाथ वैच सत्वर लक्ष मुद्रा संग्रह किया। और वनमें कुटीर बना अपना डेरा डाल दिया। देवमन्दिरकी जल जानीपर महाराजने फिर बनवाना चाहा था। किन्तु रणादित्यने निषेधकर भेजा और उन्हें पर्णोत्थ नामक स्थान चलेजानेकी कष्ट। राज्ञी सूर्यमतीने भी स्वामीसे वही करनेको अनुरोध किया था। किन्तु हृदराज हृदकालमें देवस्थान छोडनेसे कातर हुये। उसी वात पर स्त्रीपुरुषमें कलह पड़ गया। हृदराजने स्त्रीके कर्कश वाक्यसे और क्षोभयशूनारोहणकी भांति गोपनमें अपने तलवार भेज की। चतमे रक्तकी धारा बही थी। राजाने कहा कि उन्हें रक्तानिमार हुवा था। बाहरी लोगोंने उसीपर विश्वास किया। शेषको विजयेश्वरदेवके सम्युख काश्मीरीय ५० भौकिकाष्टमें कार्तिकी पूर्णिमाके दिन महाराज अनन्तदेवने हृदको कौड दिया। रानीने वितारोहणका उद्योग लगाया था। कलस संवाद मिलने पर समेय जाकर उपस्थित हुवे। किन्तु कई अनुचरोंकी मिथ्या-प्ररोचनमें मातासे न मिले। रानी उन्हें अनुचरोंकी शाप दे पिता पर चढ़ गयीं।

पितामहीका धनरत्न मिलनेसे हर्षने पितासे विवाद लगाया था। रणादित्य या कलस उस समय निर्धन रहे। सुतरां धनवान् पुत्रको वह कौशलसे अपने वयमें जाये। विधाताकी महिमा प्राययसे भरी है। उसी समयसे महाराज हर्षने सत्पथ अवलम्बन किया, किन्तु एकवारगो ही वह अपना स्वभाव छोड न सके थे। उन्होंने क्रमशः त्रिपुरेश्वरका स्वयंमन्दिर बनाया और कलसेश्वर एवं अनन्तेश्वर नामक देवताको स्थापन किया। वह तुरुष्कदेशीय कई युवती हरण कर लाये थे। हृद वयसमें भी उनके ७० कामिनी रहीं। जिन विजयेश्वरमन्दिरको उन्होंने जलाया, उन फिर न बनश्या था। केवन देवमूर्तिके ऊपर स्वर्णरत्न चढ़ाया गया।

सुविष्टरके प्रधान मन्त्री रहे। उनकी महिषीका नाम पद्मावती था।

सुविष्टर (२५)-के मरने पर उनके पुत्र अक्षय या नरेन्द्रादित्य सिंहासन पर बैठे। उनकी महिषीका नाम विमलप्रभा था। वहीन्द्रके दो पुत्र वज्र और कनक राजमन्त्री रहे। नरेन्द्रादित्यने नरेन्द्रस्वामी नामक शिवमन्दिर प्रतिष्ठा किया। उनका राज्यकाल १३ वषर था। उनने पुस्तकादि रचा करनेके लिये अपने नामपर एक भवन बना दिया।

नरेन्द्रादित्यके मरनेपर उनके कनिष्ठ भ्राता रणादित्य या तुञ्जीनकी राज्य मिला। उनके कपाल पर शङ्खचिह्न रहा। रणादित्यकी पटरानीका नाम रणरम्भा था। कक्षणेने लिखा है—देवी अमरवासिनी मनुष्य-देह धारण कर महारानी रणरम्भा बनी थीं। महाराजने दो मन्दिरोंमें हरि और हर मूर्तियोंको स्थापन किया। एतद्दिन उनने “रणस्वामी” और प्रद्युम्न पर्वत एवं सिंहरोलिका नामक स्थान पर पाशुपतमठ, रणपुरस्वामी नामक सूर्यमूर्ति तथा सेनसुखा देवीमूर्ति और उनकी पत्नी रणरम्भाने रणरम्भदेव नामक शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा की। उनकी दूसरी महिषी अमृतप्रभाने रणेशके पार्श्वमें अमृतेश्वर नामक शिवलिङ्ग और मेघवाहन-पत्नीके नामानुसार निर्मित विहारमें बुद्धमूर्तियोंको स्थापन किया। महिषी रणरम्भाने रणादित्यको हाट-केश्वर शिवका मन्दिर सिखाया था।

रणादित्यके समय ब्रह्म नामक किसी सिद्धपुरुषने रणरम्भदेवीके नियोगानुसार “ब्रह्मसत्तम” नामक देवताको स्थापन किया।

रणादित्यके पीछे उनके पुत्र विक्रमादित्यको राज्य मिला। उन्होंने विक्रमेश्वर नामक शिवकी स्थापन किया था। उनके दो मन्त्री रहे—ब्रह्मा और गजून। ब्रह्माने ब्रह्ममठ स्थापन और गुजूनकी पत्नी रत्नावतीने

* वहीन पाशुपत नामके नरेन्द्रस्वामीका सुन्दर मन्दिर देखेंगे।

† वहीमान ब्रह्मनामादके पूर्व १ कोष दूर मातल नामक स्थानके उत्तर प्रायकी मातल नामक मन्दिर है। उसी रणादित्यने की प्रतिष्ठा किया था उस मन्दिरके दोनों पार्श्व रत्नावती और अमृतेश्वर शिवलिङ्ग का भी निर्माण है।

एक विहार निर्माण किया। विक्रमादित्यका राज्यकाल ४२ वर्ष रहा।

विक्रमादित्यके पीछे उनके कनिष्ठ भ्राता बालादित्य राजा बने। उन्होंने पूर्वधारा पर्वत राज्य फैलाया और वहाँ अद्यस्ताभ्र जमाया था। फिर उन्होंने बद्दाला (बद्दाला ?) प्रदेश जीत वहाँ काश्मीरियोंके रहनेकी कानन्य नगर स्थापन किया। बालादित्यने मडर राज्यमें वदर नामक ग्राम बसाया ब्राह्मणोंको रहनेके लिये दिया था। उनकी प्रियतमा महिषीने सर्व-भूमिपर शिवेश्वर नामक शिवकी स्थापन किया। बालादित्यके खड्ग, शत्रुघ्न और मानव नामक तीन मन्त्री रहे। उन्होंने भी अपने पास, मन्दिर और सेतु निर्माण कराये थे।

बालादित्यके प्रणङ्गलेखा नाम्नी एक कन्या थी। बालादित्यने उसे अश्वघोषवंशीय दुर्लभवर्धन नामक एक सुपुत्र कायस्थ युवाके हाथ सम्पदान किया।*

दुर्लभवर्धन स्त्रीय बुद्धिमत्ता और नम्रतासे अल्पदिन मध्य ही राज्यमें सब लोगोंके प्रिय बन गये। बुद्धिका पार्श्व देख बालादित्यने उनका नाम “प्रज्ञादित्य” रखा था। अण्डलेखा किन्तु मातापिताके आदर्शे गर्वित ही स्वामीकी पनादर करती।

३० वर्ष ४ मास राज्य कर बालादित्यके स्वर्ग-लाभ करने पर स्त्रीय गोनन्दका वंश भी जोष हो गया। मन्त्री खड्गने उस समय सुविदान् देख कायस्थ दुर्लभवर्धनको राज्याभियुक्त किया।

अण्डलेखाने अण्डभवन नामक एक विहार बनाया था। किसी ज्योतिषने मङ्गल नामक राजकुमारकी अत्यायु बताया। उसीसे महाराज दुर्लभवर्धनने विशेष-कोट पर्वत पर पुत्रके लक्षण-सङ्ग चन्द्रग्राम नामक गांव ब्राह्मणोंको दान कर पुत्र द्वारा मङ्गलस्वामी नामक शिवकी स्थापन कराया था। फिर उन्होंने श्रीनगरमें दुर्लभस्वामी नामक विश्वमूर्तियोंकी प्रतिष्ठा किया। १६ वषर राज्यके पीछे दुर्लभवर्धनकी स्वर्ग-लाभ हुआ।

* कश्चित् दुर्लभवर्धन और उनके पत्नी सुपुत्रके अर्चनालयमें भी स्थापित है।

उसके पीछे राजपुरीके राजा जयपाल मर गये ।
 उनके पुत्र संपामपाल राजा बने थे । किन्तु उनके
 पिछले मदनपालने राज्य आक्रमण करनेकी चेष्टा
 रूपायी । संदामने छीय कनिहा भगिनी पौर यज-
 राजको काश्मीर भेज साहाय्य मांगा था । जयानन्द
 उठात्त मर गये । मृत्यु काल जयानन्दने विलुत्त सभ्य-
 में राजाको सतर्क किया था । राजाने विलुत्तने धनी
 पौर कमताशाली देख कुङ्क न काहा । विलुत्त राजाके
 मनोमङ्गल कारण देख सतर्क होनेके लिये विदेयको
 चन्ते दूधे, किन्तु अल्प दिनेके ही मध्य मर गये । जय-
 नन्दके मरने पर जिन्दुराज भी चन्ते बने । सभी
 प्रकार मनी सूर्यमतीका शाप फला था । जयानन्दके
 पीछे उनके यंगीय वामन प्रथम मन्त्री हुये । राजा
 कनकने उस समय अश्वत्थिस्त्रामी देवताके कर्षे देवोत्तर
 याम क्षेम कलसगंज नामक धनागार स्थापन किया
 था । उसके पीछे मदनपालने द्वितीय बार राजपुरीमें
 विद्रोह उपस्थित किया । काश्मीरराजने बप्पट नामक
 सेनापतिसे उन्हें पकड़ मंगाया था । उसी समय
 बारहदेयके भ्राता कन्दर्प दारपति दूधे पौर मदन-
 पाल कम्पनापति बने । फिर राजा कलसने नील-
 पुर-नरेश्वर कीर्तिराजकी कन्या भुवनमतीसे विवाह
 किया था । ६३ शौककाण्डको पञ्चपुरके राजा कीर्ति,
 चम्पाके राजा चासट, यज्ञपुरके राजा कलस, राजपु-
 रीके राजा संपाम, लोहरराज उत्कल्प, उरगाराज
 सङ्कट, काण्डके राजा गभीरसिंह पौर काष्ठवाटके
 राजा उलमराज काश्मीरमें जा उपस्थित हुये । कन्दर्पने
 उसके पीछे स्थापिक नामक दुर्ग जीता था । राजा कलस
 अत्यन्तके बड़े भक्त रहे । उन्होंने जयवनके निकट
 तीन पंक्ति देवमन्दिर पौर कलसपुर नामक नगरकी
 स्थापन किया था । उसी समय युवराज हर्षने नामा
 देयकी भाया पौर सूर्योन्नतकी गिचा पायी । यह
 महापण्डित पौर कवित्वसम्पन्न होनेसे सबके अत्यन्त
 प्रिय प्राप्त बन गये । वह बड़े दानशील रहे । धर्म पौर
 विद्यावट नामक दो मन्त्रियों चर्नेक दिन बैठ कराने
 पर उक्त हर्षकी भी पिताके विद्वह उत्तेजित किया था ।
 उन्होंने विम्बावटके परामर्शानुसार किसी दिन पिताको

विनाश करनेके अभिप्रायसे अपने चालचर्म बुलाया ।
 श्रेय को विग्रहवर्द्धने हो राजा कलससे सब भेद बताया
 था । युवराज उक्त प्रताप सुन उस दिन पिताके पास
 न गये । उसके पीछे हर्ष भी मन्त्र पड़े थे । किन्तु अथय
 पक्षके दूतोंने गडबडमें सदाशिव एवं सूर्यमती गौरीग-
 मन्दिरके निकट ६४ शौकिकाण्डको वीप मासकी शुक्ल
 पक्षके दिन पितापुत्रका एक युद्ध हो गया । युद्धमें हर्ष
 बन्दा हुये । हर्षकी बन्दी होते सुन रानी भुवनमतीने
 आत्महत्या की थी । हर्ष बंधे पड़े रहे । उनके प्रिय भ्राता
 प्रयाग साथ ही थे । तुलसी पौत्री सुगता हर्षको एक
 पत्नी रहों । उनके रूपमें यह राजा कलस मोहित हो
 गये । दुष्टा सुगनाने भी शरारती प्रेमार्थिनी हो
 स्वामीको मन्त्री नोनकके साहाय्यसे विप दिनवा दिया,
 किन्तु प्रयागने भेद भाव समझ हर्षको बह विलाया
 न था ।

पापीकी पापेच्छा न छोटी । राजा कलसने फिर
 दुष्कायं पारश्व किया था । उन्होंने सूर्यदेवकी ताम्र-
 मूर्ति मन्दिरसे निकाल कर फेंक दी । मन्तानशीनका
 विषयादि राजाको पाप्य मान वह चनेकीके मन्तान
 मारने लगे । क्रमशः उनके भीषण पनेह रोग हुआ
 पौर नाकसे रक्त बह चला । उस समय पुत्रके साथ
 राज्य दान करनेके लिये उन्होंने लोहरसे उत्कल्पको
 बुलाया था । श्रेयको मृत्यु काल समस्त धनरत्न वितरक
 कर मार्तण्डके सूर्यमन्दिरमें रहनेकी वद चले गये ।
 मरनेके समय उन्होंने हर्षको देखना चाहा था । किन्तु
 उत्कल्पके लोभोंने उन्हें जाने न दिया । वह वांधकर
 चलन रखे गये थे । उत्कल्पको बुलाकर कनकने कहा
 "दीनो भाई राज्य दो भागमें बाँट लो" किन्तु समस्त
 कथा स्पष्ट कहने न कहते उनका वाक्य रुका था । ४८
 वर्षके वयसमें ६५ शौकिकाण्डकी प्रवहापण मासकी
 शुक्ल-पक्षके दिन महाराज कलसने पशुत्व पाया ।
 मन्थनिका प्रभृति ६ रानी पौर जयामती नाथी कोई
 प्रेयसी सहस्रता हुयी ।

उत्कल्प राजसिंहासन पर बैठे थे । हर्ष बन्दी हो
 रहे । पशुयो नाथी नाथीके गर्भजान विद्ययमल प्रभृति
 भ्रातारिके साथ उसी समय उत्कल्पका मनोविनाश

दुर्लभवर्धनके राजत्वकाल चीन-परिव्राजक युघन-चुयाङ्ग काश्मीर गये थे । उनको वर्षानाघे समझ पड़ता कि उस समय काश्मीरराज्य ५०० कोस (७००० लि.)-से भी अधिक विस्तृत था ।* वृष जयेंद्रविहारमें राजमातुल कर्कट आहत हुये थे ।†

दुर्लभवर्धनके पोछे उनके पुत्र दुर्लभकने काश्मीरका राजत्व पाया । उन्होंने मातामहकी नामानुसार प्रतापादित्य नाम ग्रहण किया था ।

प्रतापादित्यके प्रतापपुर स्थापन करने पर अनेक धनी वणिक जाकर वहाँ रहने लगे । उनमें राहितक-वासी नोण नामक वणिकने नोणमठस्थापन कर रौचितक प्रदेशवासी ब्राह्मणोंको बाधार्थ दान किया था । उस दानसे सन्तुष्ट हो महाराज प्रतापादित्यने वणिकको निमन्त्रण दे अपने घर बुलाया । आभोद आह्लादसे वणिक एक रात राजभवनमें रहे । प्रातःकाल महाराजने पूछा—“क्यों, रात सुखसे तो कटी ?” वणिकने उत्तर दिया—“जो आलोक जलता था, उसने मर्या एकह लिया ।” फिर प्रतापादित्य भी निमन्त्रित हुये । उन्होंने वणिकके घर जाकर देखा कि एक मणिके आन्तकसे वणिक का भवन आलोकित था । महाराज वृष देख विस्मित हो गये और वणिकके आग्रहसे २३ दिन वहाँ रहे ।

इधर वणिककी एक नर्तकी नरेन्द्रप्रभाकी देख राजा मोहित हुये । नरेन्द्रप्रभा भी राजा पर मुग्ध हुयी थी । प्रतापादित्य घर गये, किन्तु नर्तकीको भ्रन न सके । परम्परामें वणिकने उभयका वृत्तान्त सुन वणिकने नरेन्द्रप्रभाको राजाके निकट भेजा और उन्होंने भी उसे रख लिया । उसके गर्भसे चन्द्रापीड़, तारापीड़ और अविमुक्तापीड़ नामक तीन महानुभव मद्-गुणशाली पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया था । वृष पित्र-मातामह संघकी रीतिके अनुसार यथाक्रम वज्रादित्य उद्यादित्य और सलितादित्य नामसे विख्यात हुये । ५० वर्ष राजत्व कर प्रतापादित्यने स्वर्गको गमन किया ।

* Beal's Records of Western Countries, Vol. I, 143.

† La Vie de Hlouen Tssang par Stanislas Julien, p.

प्रतापादित्यके मरने पर उनके पुत्र वज्रादित्य (चन्द्रापीड़) राजा हुये । उन्होंने विभुवनस्वामी नामसे नारायणमूर्तिकी स्थापन किया । उनकी पत्नी प्रकाशाने 'प्रकाशिका' विहार, राजगुह मिहिरदत्तने गम्भोर-स्वामी नामक विष्णु और नगराध्यक्ष हस्मितकने 'कनि-तस्वामी' नामक देवताकी प्रतिष्ठा की । वज्रादित्य तारापीड़कर्कटक नियुक्त किसी ब्राह्मणके अभिचार कार्यद्वारा मृत्युमुखमें पतित हुये । उन महानुभव नृपतिने ८ वर्ष ८ मास राजत्व किया ।

उनके पीछे कोपनस्वभाव तारापोड (उद्यादित्य) मिहिरसन पर बैठे । वृष मधु दमन कर इतने शक्ति हुये कि अन्तको देवताओंके साथ भी स्पर्धा करने लगे । देवमहिमा प्रचार करनेवाले ब्राह्मणोंको राजा गस्ति देते थे । वृष ४ वत्सर २४ दिन राजत्व कर किसी ब्राह्मणको अभिचारक्रिया द्वारा पञ्चत्वको प्राप्त हुये ।

तारापीड़के पोछे उनका कनिष्ठ सहोदर अविमुक्तापीड़ (सलितादित्य) राजा हुये । वृष अतिपराक्रांत नरपति रहे । उनका राजत्वकाल केवल देश जीतनेमें ही बीत गया ।

पहले १८ मन्वी राज्यके प्रधान प्रधान कार्य चलाते थे । सलितादित्यने उक्त १८ पदोंको घटा केवल ५ पद रख छोड़े—प्रधान गान्तिरचक, प्रधान सेनाध्यक्ष, प्रधान अखाध्यक्ष, प्रधान कोषाध्यक्ष और प्रधान विचारपति । युद्धमें सलितादित्यने कौशलके राजाको हराया था । (कानरकुल राज्य उस समय यमुनातीरेसे कालिका नदी तक विस्तृत था ।) उस समय योगवर्माकी सभामें कविवर वाक्पति और भवभूतिके विद्यमान थे । वृष सलितादित्यके साथ काश्मीर चले गये । उसके पोछे सलितादित्यने कनिष्ठ गौड़, दक्षिणाभिमुख कर्णाट प्रभृति स्थान जय किये । रक्षा नाम्नी एक कर्णाटी सुन्दरी उस समय दाक्षिणात्यमें साम्राज्य चलाती थी । वृष भी वशीभूत हो गये । भारतके समस्त प्रधान स्थान जीत सलितादित्यने कम्बोज, पश्यवदना रमणोममार्कान भूखार, भोट पोर दरद प्रभृति देग जय किये । फिर काश्मीरमें पहुँच

उपस्थित हुआ। जिस दिन महाराज कानसने राजधानी की त्याग किया, उसी दिन उत्कर्ष के लोगोंने हर्षदेवकी किन्नी खतन्न स्थानमें बांध दिया था। दूसरे दिन उन्होंने पिताके मरने और उत्कर्षके राजा बनने का संवाद सुना। पिताके मृत्यु से उनका हृदय बहुत घबराया और अधीर हो उन्होंने रोना मचाया था। उसी समय उत्कर्षने वाद्यभाण्ड मङ्ग नगरमें प्रवेशकर उनके निकट लोगोंकी भेज उन्हें खान करनेका पनुगोध किया। हर्षदेवने मोचा सभागतः उत्कर्ष उन्हें राजा बनानेवासे थे। किन्तु उनके चण वीत गया उनका कोई सङ्घन देख न पड़ा। अन्तको उन्होंने स्वयं खाटमी भेज कहलाया था—“यदि पाप चाहे तो हमें राज्यसे निकाल छोड़ दे और नहीं तो यदि हमें राज्यमें ही रखना चाहे तो हमारा प्राप्य राज्य हमें दे दें।” उत्कर्ष भी उन्हें राज्य सौंपनेकी प्राथा दे इया कालस्य करने लगे।

उत्कर्षने राजा ही राजकी शासनाटिका कीई प्रवन्ध बांधा न था। वह केवल इकी चेष्टामें लग गये किसे कीर्षमें धन बढेगा। उससे इन पर सब लोग विरक्त हुये। सुबुद्धि मन्त्री हर्षदेवकी राजत देनेका परामर्ग करते थे। उधर जयरज और विजयमल्लकी उनका मासिक प्राप्य रीतिके अनुसार न मिला। विजयमल्लने स्त्रीय राजकी खोटेनेका उद्योग लगाया था। उसी समय हर्षदेवने विजयमल्लसे अपनेकी सुक्ति की बात बतायी। विजयमल्ल और जयरजने ज्येष्ठ भ्राताके लिये दुःखित हो सेन्य संप्रपूर्वक राजधानीकी आक्रमण किया था। उधर नौनक प्रभृति कुमन्त्रियोंके परामर्शसे उत्कर्षने हर्षदेवकी मारनेके लिये कारागारमें कई सेनिक भेजे थे। उन्होंने वहां पहुँच हर्षदेवके सौजन्यमें सुगंध हो पचावलम्बन किया। उसके पीछे उत्कर्षने शूर नामक मन्त्रीके हाथ राजदेशी प्रतिभू खरूप बंधनप्रापक शङ्करे न भेज भ्रमक्रमसे सुक्तिप्रापक शङ्करे भेज दी थी। हर्षदेव सुक्त होनेपर उत्कर्षसे जा कर मिले। उस समय भी विजयमल्लसे नगरके बाहर युद्ध हो रहा था। उत्कर्षके पशुरोधसे हर्षदेव युद्ध निवारण करने गये। विजय-

मल्लने ज्येष्ठकी सुक्त देख पानन्दसे उतफुल्ल हो युद्ध रोक दिया। हर्षने फिर उत्कर्षके निकट जानको प्रामादमें प्रवेश किया था। किन्तु मन्त्री विजयसिंहने उन्हें रोककर कहा—“यथा जान वृक्ष फर बैठो पैरोमें उलसवाते हैं ? राजप्रामादमें जाकर एक वारगी ही सिंहासन अधिकार कौणिए।” सक्त कथा कह विजयसिंह उन्हें लेकर राजप्रामादके मध्य सिंहासनगृहमें उपस्थित हुये। फिर उन्होंने हर्षदेवकी सिंहासन पर बैठा अन्यान्य सुबुद्धि मन्त्रियोंको संवाद दिया था। उन्होंने जाकर हर्षदेवके अभिषेकका आयोजन किया। उधर विजयसिंहने स्वयं जा उत्कर्षकी प्रहरिविष्टित किसी घरमें रख छोड़ा। विजयमल्ल संवाद पाकर पहुँचे थे। नव भूपति हर्षदेव उनसे कहने लगे “भार ! तुम्हारे उद्योगसे ही हमने प्राण पाया और राज्य भी पाया है।” विजयमल्ल खाटसे हमें सुन्ध हो गये।

कारागारमें नौनकने उत्कर्षसे मिल उन्हें स्त्रीय परामर्गसे कार्यकरनेकी अनुयोग किया था। उत्कर्षने अनुयोगसे भग्नुहृदय अन्य किसी गृहमें प्रवेश कर आत्महत्या की। सहजा धार कप्या नाम्नी दो प्रेयमीने उनके साथ गमन किया था। नहर पर्वतमें उनको दूसरी भा कई प्रियतमा उक्त संवाद सुनकर चिंतापर चढ़ गयीं। पर दिनमें यथदाह हुआ। किञ्चिद्दू २२ वर्ष वयसमें २४ दिन राजत्व कर उत्कर्ष परलोककी चली गये।

दूसरे दिन हर्षदेवने नौनक, सिंघार, भट्ट, प्रगदांकलस प्रभृतिको बुला कारागारमें लाता था। उनको बन्दी करनेके पीछे राज्यमें उसी दिन मानो शान्ति स्थापित हो गयी। विजयमल्ल हर्षदेवके दक्षिणहस्त हुये। कर्ण्ट्ट धारपति, भदन कम्पनपति, वक्षपुत्र सुत्र प्रधानमन्त्री और सुत्रके कनिष्ठभ्राता जयरज राजानुचराध्यक्ष बने थे। प्रहस्त और कनसादि धमा प्रार्थना करनेमें पूर्वपदपर नियुक्त हुये। केवल नौनकको सकल दुर्वटनाका मूल समझ फाँपी दी गयी। कुछ दिन पीछे दुष्टके परामर्गमें पहुँच विजयमल्लने राज्य धरण करनेकी आशासे दरद देशके डामराका

माहाय सिया घोर शोत बोलते ही युद्धकी गमन किया था। किन्तु पश्चिमध्य गलित सुपारमे आच्छन्न हो सार्यं उन्हीने चपना प्राय होडा।

हर्षने फिर सकल बाधा विपद्मे सुल्ल हो राख्यकी चर्चातिसं मग लगाया था। उन्हीने - काश्मीरमें परिच्छादादिका-रत्नसंसाधन घोर कर्षाटी मुद्राके आकारमें मुद्राका प्रचार किया। वह पण्डित-प्रतिपालक रहे। कर्मके राजत्वकाल विद्वप नामक किसी पण्डितने काशीर छोड़ कर्षाट राज्यमें जाकर महा सम्मान घोर विद्यापति सपाधि पाया था। वह हर्षको गुणावली सुन शेषकी महापुत्र्य दुये। हर्षने काश्मीरकी राजधानी मुद्रम वसुसमूहसे सजायी थी। उन्हीने एक प्रमोद उद्यान निर्माण कर रा समे पम्पा नामक सरोवर खुदाया घोर नामा देगविदेशके पक्षी संघर कर सममें प्रतिपालनका प्रवन्ध लगाया। उसकी पत्नी सा हो राजकुमारी वसन्तलेखाने राजधानी घोर त्रिपुरेश्वरमें मठादि बनाये थे।

हर्षके समय भुवनराजने सोहर अधिकार करनेकी चेष्टा लगायो। वह सैन्य ले कोटा पहुँचे थे। किन्तु हारपति कन्दर्पके प्रागमनकी धार्ता सुन भुवनराज युद्धमें विरत हो गये। उषीसमय राजपुरीके राजा संघाम विगड़े थे। कन्दर्प उस समय भी कोटासं ससेन्य उपस्थित थे। हर्षदेवने उषीसे दण्डनायकको सैन्य दे भेजा था, किन्तु वह भी सोहरके पयसे जाते जाते कोटासं सरोवरकी गोभा देख कुछ दिन वहाँ ठहर गये। कन्दर्प अपने विसम्बकके लिये हर्षदेवके कोपभाजन दुये। पीछे हर्षका पश्चिमाय समभ सन्नेने प्रतिज्ञा की थी—“हम राजपुरी जीतकर हो पत्र पदहण करेगे।” दण्डनायकके सैन्यदलने कुसुराज नामक किसी सिन्धीमें सकका अनुगमन किया। ३०० मात्र सैन्य ले कन्दर्प विपक्षके ३० हजार सैन्यसे युद्धमें प्रवृत्त दुये। ३ पहर युद्ध होने पीछे राजपुरी हारे थे। कन्दर्पने उस युद्धमें अग्निमय मारासाक्षात् व्यवहार किया। उसके पीछे दण्डनायक युद्धस्थलपर ला विरग पक्षका हतसैन्य देण भयभीत हो गये। जयो कन्दर्पने हंसकर उन्हे पञ्चय दान दिया था। एक मास-

के मध्य कन्दर्प काश्मीरकी नीटे। हर्षदेवने पानन्दमें सिंहासनसे उठ कन्दर्पकी सम्पूर्णता की थी। दुष्ट मन्त्री कन्दर्पका वह सम्मान देख सिंहासनसे लल्ल उठे। कन्दर्प उससे पीछे परिचासपुरके प्रासनकर्ता दुये। कुपरामगंसे हर्षदेवने उषी समय कन्दर्पकी हारपतिके पदसे हटा सोहरराज पदपर बैठाया था। कन्दर्प मनुष्टचित्त वहाँ चले गये। मन्त्रियोंने देखा कि कन्दर्पने राजाके विद्व कृष्ण कहा न था। उषीसे उन्हीने राजाको बताया कि कन्दर्पजाने समय सकर्षके पुत्रद्वयकी चपने साय ले गये थे। वह सककी ले कर स्वाधीन हो जाना चाहते थे हर्षदेवने हठात् उस मिथ्यावाक्य पर विश्वासकर पश्चिम घोर पक्षकी भेज दिया। कन्दर्प उल्ल संवाद सुनकर समाहत दुये। किन्ती दिन वह सोपर खिस रहे थे। उषी समय पश्चिम पक्षके उन्हे बांधनेपर सद्यत दुये। किन्तु वीर कन्दर्पके हृद रूपसे पकड़ते ही सकका हाथ टूट गया पश्चिमघने पनायन किया था। पष्टेफिर चपमर दुये। कन्दर्पने कहा—“पाप राजाके पात्रोय है! हम पापके विद्व कृष्ण करना नहीं चाहते। पाप दुर्ग अधिकार कीजिये। हम चलते हैं।” कन्दर्प काशी चले गये। कन्दर्पके चले जाने पर पन्थान्य मन्त्रियोंमें गहवड पड़ गया। राज्यमें विश्वहना लगी थी। अष्टम जयराजकी उत्तोजित कर सार्यं राख्याधिकारकी चेष्टा करने लगे। जयराज कर्मके घोरसजात तो थे, किन्तु धैर्यागमंजात होनेसे धर्मके परामगंसे हर्षदेवकी मारहानने पर लील्लत हो गये। प्रयाग नामक धृत्यके माना कोशमने राजाकी मय हात मालूम हो गयी। वह जयराजको मार धर्मके उल्ले दका उपाय टुंठने लगी। शेषमें उन्हीने कर्मराजके हारा उन्हे दन्तयुद्धमें निनामकर सकके रिद्वप घोर महान नामक पुत्रद्वयको चपने चपोन रणा। दूष्क प्रभृतिधर्मके आसुष्प घोर उल्लेख्य एवं विजयमल्लके पुत्र हर्षदेवकृत्यक गोपनमें मिहत दुये।

हनुवरके घोष सोहरके परामगंसे हर्षदेवका मन्त्रिष्क विगड़ा था। वह एक एक कर देवमन्दिर लूटने लगे। केवल राजधानी, श्रीराम्यामी घोर

मातृपुत्र मन्दिरेम हर्षदेव कुक्ष कर न सके ।

किंसीदिन हर्षदेव कर्णाटराजकी परमासुन्दरी पत्नी कन्दलाकी छवि देखे उनको प्राप्त करनेके लिये प्राकुल हो गये और राजसभामें कर्णाटराज्य ध्वंस करनेकी प्रतिज्ञाकर बैठे । कम्पनापति मदन उस कार्यमें राजाको साहाय्य करने पर उद्यत हुये । कारण उम्होंने वरु तसवीर संघट की थी । फलतः वरु कर्णाट जान सके । उसके बाद वरु पिष्टपथानुसार पिष्टव्य-पत्नी और पिष्टव्य-कन्यागणका मतीत्व हरण करने पर प्रवृत्त हुये ।

कुक्षदिन बाद राजपुरीके राजा संध्यामपालने कितना ही स्वाधीन भाव अवलम्बन किया था । उसीसे राजा हर्षदेवने स्वयं वरुतर सैन्य ले राजपुरीकी जा घेरा था । थोड़े दिन बाद दुर्गमें खाद्यका अभाव हुआ । संध्यामपालने सन्धिकार प्रस्ताव किया था । किन्तु हर्षदेव सम्यत् न हुये । शेषको संध्यामपालने दण्डनायकको उल्लोच दे अन्य भावसे काम निकाल लिया । दण्डनायकने तुल्यक सैन्यके आक्रमणका भय देखा, काशीर लौट गये ।

उसके बाद हर्षदेव दरदौके हाथसे दुग्धघात दुर्ग उधार करनेके लिये द्वारपालके माथ मिलकर दरदराजके विरुद्ध धागे बढे थे । पथिमपथ उम्होंने मंत्रो चम्पककी मण्डलाधिपकी आख्या प्रदान की । दुग्धघातदुर्गमें प्रथम युद्ध हुआ था । उस समय तन्वङ्गके कनिष्ठ भ्राता गङ्गके पौत्र उज्ज्वल और सुखलने प्रतिशय विक्रम प्रकाश किया । जो हो, उस युद्धमें काशीरराज द्वारे और सैन्य सामन्त छोड़कर पशुचरोंके साथ ले भागे थे । उज्ज्वल और सुखल अनेक कौशलने कृत्वमङ्ग सैन्यको विपन्नमुखसे बचा ले गये । उसीसे उक्त दोनों भाइयोंके प्रति काशीरके प्रजावर्गकी भक्ति आकर्षित हुयी ।

उसके पछि हर्षदेवके कौशलसे कलसराज ठकुर, उदय और कम्पनापति मदन निवृत्त हुये ।

उस समय (७५ क्रै.काल्) काशीरमें भयानक दुर्भिक्ष पड़ा था । भन्न और पर्वणमुद्रायाँका मूल्य बढ़ गया प्रतिदिन सैकड़ों लोग भनाहार मरने लगे । राजाने

प्रजाका कष्ट देखा न था । फिर उसके उपर कायस्थ भी अत्याचार करने लगे । डामर विद्रोही हुये । हर्षदेवने उन्हें समूल उच्छेद करनेके लिये मण्डलाधिप चम्पकको भेजा था । चम्पक शोहरसे ले कर समस्त डामर-राज्य लोकाभूना करने लगे । डामरवासी ब्राह्मण भी बचे न थे । शेषकी जव वरु क्रमराघ्य (कामराज) पङ्चे, तब वहलंके डामर हताय हो प्रायः छोड़ युद्धमें प्रवृत्त हुये । उस युद्धमें द्वार मण्डलाधिप कुक्ष कुक्ष रुक गये ।

उधर लक्ष्मीधर नामक किसी व्यक्तिके घरके निकट मङ्गपुत्र सुखल रहते थे । लक्ष्मीधरकी आज्ञाति विलकुल बानरके सदृश रहती । उसीसे उनकी स्त्री उन्हें देख न सकती थी । सुखलका कालिक निन्दितरूप देख बरु रमणी पागल हो गयी । लक्ष्मीधर हर्षसे राजाको पुनः पुनः पशुचर करने लगे—“आपने अपने जब भगवान् समतायाँकी आत्मायाँकी मार डाला है, तब किसी दिन सिंहासन ले सकनेवाले उज्ज्वल और सुखलकी क्यों बचा रखा है ?” यक्षना नाम्नी किसी धैर्याकी उक्त संवाद मिला था । उसने सब वृत्तान्त उज्ज्वल और सुखलसे जाकर कहा । दुर्गमपाल नामक उनके किसी बन्धुने भी उक्त विषय समर्थन किया था । उसीसे रात को ही तीन पशुचर ले उभय भ्राता काशीर छोड़ गये । (७६ क्रै.काल्, प्रपहायण)

उज्ज्वलने संध्यामपालका प्रायय लिया था, उल्लोच ले भ्रातृहृदयके बध करनेकी चेष्टा लगायी । उज्ज्वलकी उक्त संवाद मिल गया । उम्होंने राजपुरी छोड़ पलायन किया था । संध्यामने सुना कि धिकार भागा था । वरु उसी समय ससैन्य उनके पशुसन्धानको चलते दिव । शेषको किसी स्थान पर उज्ज्वलने युद्ध करनेकी ठानी थी । उस समय शशराजने उन्हें सन्धिकी छसना कर बुला लिया । उज्ज्वलने भी वीरदर्पसे संध्यामके समूह जा कहा था—“यद्यपि जिन वंशकी एक गाथा श्लोके पशुचरसे काशीर आज भी राजत्व रखती, उस वंशकी दूसरी गाथाको बाहुबलसे राज्य मिलता है या नहीं ।”

• उज्ज्वलने संध्यामपालके समूह अपना बंधका इस प्रकार परिचय दिया था

महती सेनाके समभियाहार परिहामपुरके निकट लड़ाई करनेकी सम्मुखीन हुये। घोरतर लड़ाई हुई थी। उसमें सुगलराजकी बहुतसी सेना मारी गयी। वह अपने स्थानकी भंगी थे। दौलत पतिशय निष्ठ रहने। किसी दिन फल चोरानेके अपराधमें उनमें एक बालकके दोनों हाथ काट डाले थे। फिर उनके प्रतापशाली पुत्रने मातुलके प्रति कोई पत्याचार किया था। दौलतने उसे भी मार डाला। उनके राज्यमें १८ मन्त्री रहे। भवशेषको यह गणित कुष्ठरोगसे प्राप्तान् हुये। उनमें इक्ष्वाकुमें नरकयन्त्रणा भोग पखल पाया था। दौलतके बाद उनके भ्राता हुसेनखान्ने राज्यनाम किया। वह दाना और प्रजारक्षक थे। खान् जमान नामक मन्त्रीने उन्हें हटा खर्च थोड़े दिन राज्य किया। वह प्रति दिन सौ लोगोंको बंध करता था। यहाँ तक कि दिलावरखान् द्वारा उनमें अपने पुत्रको भी मरवा डाला। हुसेनखान्ने फिर जाकर मन्त्रिको मारा था। पीछे भवक्षार रोगसे हुसेनखान्का मृत्यु हुआ। उनमें ७ वर्ष राजत्व किया था।

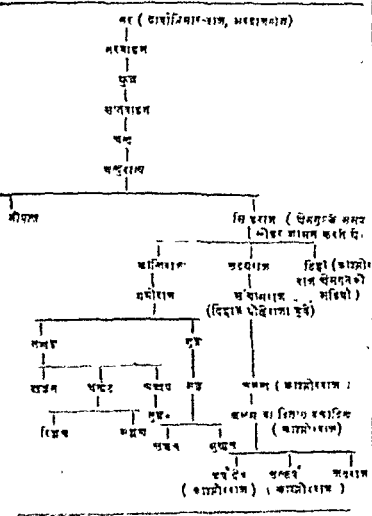
फिर उनके भ्राता पलीखान् राजा हुये। वह प्रजाकी सुखी करने पर तत्पर रहे। उसी समय घोर दुर्मिच पड़ गया। ८ वर्षके राजत्व बाद पलीखान् मरे थे।

पलीखान्के बाद उनके पुत्र यूसुफखान्ने राजत्व ग्रहण किया। किन्तु उनके पित्रय शब्दलखान्ने किसी दूतसे कहला भेजा था—“भ्राताके मरने पर भ्राता ही राजपद पाता है। आप क्यों राजप्रलाभकी प्राप्ता करते हैं।” सिकन्दरपुरमें शब्दल और यूसुफ की लड़ाई हुई। शब्दलने प्राणत्याग किया था। उसके बाद सुशारकखान् यूसुफसे लड़ने चले। यूसुफके सेनापति मुहम्मदखान् उस लड़ाईमें मारे गये। उसके बाद सुशारकखान् काश्मीरके राजा हुये। यूसुफने पकवर बादगाहके निकट दिल्ली जा साहाय्य मांगा था। उसी समय चकीने मुहम्मदखान्को हरा लोहरचककी काश्मीरका राज्य दे डाला। यूसुफने पकवरके निकट से लौट बितस्तावेष्टित स्वयंपुर ग्राममें पवस्थान किया था। लोहरचक उनसे लड़ने लगे। उस लड़ाईमें लोहरचकके मन्त्री शब्दलमीर मारे गये। फिर यूसुफने

काश्मीरका सिंहासन वाया था। उस समय लोहरखान् ने याकूबका शरण लिया। किन्तु याकूबने सुविधा देकर उनको और उनके भाईके नेत्र फाड़ डाले। फिर हैदरचकके साथ याकूबका युद्ध हुआ। उसमें हार हैदरचकवर बादगाहके पास भाग गये। यूसुफने काश्मीर जीत बहुतर उपटोकनसह अपने पुत्रको सम्राट् पकवरके निकट भेजा था। पकवरने यूसुफके भेजे उपटोकन पाते भी काश्मीरके जयका अभिनाय न छोड़ा। उन्होंने भगवान्दास सेनापतिको काश्मीर भेजा था। युसुफ भगवान्दासको बहुतर धनरत्न उपहार दे पकवरके शरणगत हुये। कुछ दिन राज्य कर वह पकवर सम्राट्के सेवार्य चले गये। फिर उनके पुत्र याकूबने काश्मीरका राजत्व किया। उस समय शब्दलचक पत्यान्त क्राह हो याकूबसे लड़े थे किन्तु शेषको हार गये।

फिर सम्राट् पकवरको काश्मीर विजयकी सूचना बढी थी। उन्होंने बहुतर सेन्यके साथ कासिमखान्के पक्षीन २२सेनाध्यक्ष काश्मीर भेजे। कासिमखान्के प्रागमनकी बात सुन याकूबने पलायन किया था। उनका सेन्य सकल क्षिन्न भिन्न हो गया। फिर शब्दलचकने शल्प संख्यक सेन्य ले कासिमसे नड़ाई की। किन्तु सुगल जीते थे। हैदरचक कासिमखान्को लाने देखे गये। उसीसे लोगोंने उनका पक्ष पवनश्चन किया। कासिमखान्ने हैदरचकके साथ चनेक व्यक्तियोंको देख कर पकड़ा था। उससे काश्मीरकी बहुतरभी प्रजा भयसे वनकी भाग गयी। वगमें शेष लोग मिले थे। लड़ाई करनेको क्षतवधल्प ही प्रजा याकूबखान्की ले गयी। कासिमने मोमारखान्को याकूबके विरुद्ध भेजा था। याकूबने सदाशिवपुरमें मोमारखान्की सेना पर आक्रमण किया। कासिमखान्ने काश्मीरका बहुतर सेन्य देख काराष्टहस्थित हैदरचकका मार डाला। उसके बाद कासिम और याकूबको लड़ाई हुई। किन्तु जय पराजय समझ न पडा। याकूब काठवाट चले गये। उस समय याकूबके पिता यूसुफ और पत्यान्त प्रधान व्यक्तिये सन्धिके लिये पार्थना को। कासिमने यूसुफ प्रभृति व्यक्तिको पकवरके पास भेजा था। पकवरने उन्हें समादरसे लिया।

समके पीछे उद्यमने राजपुरी परिव्याप्त करनेसे युद्ध हुआ। इस युद्धमें वाहदेव प्रभृति कामरौने उनका पक्ष लिया था। युद्धमें नोटावह प्रभृति मारि गये। उद्यम मारे गये। किन्तु ५। ६ मान यौतने न बीतते फिर हहम्त मन्नादस मंदिर कर वध कामराजके पधने काश्मीरकी पदमर हुई। नोहरराज कविल उद्यमके भयने भंगि थे। पर्वीस नामक स्थानमें सडाई हुई। राजसेना हार कर भगा था। उसके पीछे उद्यमने हारवति सुखक को बांध लिया। हर्षदेव भीत हो गये। उधर उद्यमने मण्डराज सम्यककी मार कामराज्य अधिकार किया था। हर्षदेवने पटकी हहम्त देगदलके माघ भेज दिया। किन्तु पट पधने विनश्य नगाने लगे। हर्षदेवने फिर तिजकराजकी मीजा था। उन्होंने भोपटके साथ योग दिया। पीछे दण्डगायक भेजे गये। उन्होंने भी देसा ही किया था।



उद्यमने वराहमून बुद्धपुर का पध छोड़ कामराज्यमें प्रवेश किया। मण्डराज मण्डराम पराजित होने पर बांध लिया गये। किन्तु उन्होंने प्रभोभग दिना उद्यमकी परिहासपुर ने जाकर हर्षदेवके नाम समेत यहाँ पहुँचनेका पत्र भेजा था। हर्षदेव भी संवाद पा गयेव्य वध पटुंन गये। युद्ध होने लगा था। मण्डराजने समेत राजाकी पीर योग दिया। उद्यमका भय पाय; विनष्ट हो गया। भिन्नमेन नामक शिवी कामर-मेनापतिने भाग कर राजविहारमें पाय्य लिया था। राजसेनाने मोचा—“नगरतः उद्यमने जो विहारमें जाकर पाय्य लिया है।” विप्राशिवोंने मठमें पतिन लगाया था। किन्तु उद्यम पीर मोमपाल पवर दिक् नइते रहे। शिवकी वध प्रतिद्वितीयकी संख्या अधिक देण युद्धसे चलन हो गये। फिर उन्होंने संन्य ले स्वच्छ मासमे परिहासपुर अधिकार किया था। किन्तु उनने परिहासके मयमूर्ति को सधा दिया।

उधर भवनाश्वसे संन्यसंघ कर सुखधर्म शूरपुर नामक स्थानमें काश्मीर-सेनापति मायिककी पराजय किया था। हर्षदेवने उस समय उद्यमकी छोड़ पट, मण्डराजिध प्रभृति सुखधर्मकी पीर भेज दिए। दशम-पाल युद्धमें पराजित हो भंगे थे। कायल्य-सेनापति महेसने हर कर काश्मीरमें ही पाय्य लिया। इधर तारमूलमें उद्यम भी समतागामी होने लगे।

उसके बाद उद्यम मोहरके पार्थिव पधसे पार्थ बटे थे। हर्षदेवने उदयराजकी हारपति पीर चन्द्रराजकी कम्पनापतिके पटवर समिपल कर उद्यमके विरुद्ध ऐरण किया उसी बीच उद्यमके मातुल कम्पनाज्य अधिकार कर घेठे थे। चन्द्रराजने पयलिपुरके युद्धमें उसकी मार डाला। उसके बाद चन्द्रराज सेनाकी २२।३ दलोंमें विभक्त कर धीरे धीरे विजयपेटके समिमुख चले थे। उनीगेव नोहरकी युद्धमें मण्डराजिधका संन्य हार गया। समने उद्यमके निकट पाय्य लिया था। किन्तु उद्यमकी वध हर्षदेवके विद्रोही सेनापति मण्डपन्दके हाथ मारि गये। उसके बाद हिरण्यपुरके ब्राह्मणोंने उद्यमकी राजा मान समिपल किया था। हर्षदेव उल संवाद था मन्त्रिगणके साथ

= विजयपुर और सुन नामक सुनके दुवरे माना है। वध कर चन्द्रराजके वधक विजयपेटके विरुद्ध हुई।

को को मरवा जाता—“हे विद्यमानों! हम कमिष्ठम
 में तुम्हारा हस्तगत करवा है। वा पावार हो करवा है।
 हमी समय मुहम्मद गाहको फनेहगाहका मन्त्रमवाह
 मिला था। उनके समय पन्थ किमी चक्रार्थी राजा
 मन्थनि भिन्धरने काश्मीरराजा चक्रमन्थ किया,
 किन्तु मुहम्मदने उनको हरा दिया। फिर फनेहगाह
 के पुत्र चामु विजय राजा पुनः पामिकी पामिकी
 काश्मीर गये। उनने मुहम्मदकी राजाभट किया
 था। उनके काश्मलपत्तने हमादीमने काश्मीररा
 राजा बनाया। उनो समय काश्मीरराजामें तुहक
 राजका विषय उपद्रव कठा था। प्रथम मागौर पन्थ-
 मने मुगलराज दाहरके निकट गममपूर्वक काश्मीर
 राजा जीतनेके लिये भेन्थ मागा। बाहाने उनको एक
 महरर भौतिक दिये थे। पन्थमने फनेहगाहके पुत्र
 माजुहमानुको पामि रथ गिरिउधने काश्मीर राजामें
 प्रयेग किया। उनने तुहक भेन्थ हारा काश्मीर ज्ञात
 माजुहमानुको राजा बना दिया।

फिर मुहम्मद गाहके ओहरका राजा होने पर
 तुहकभेन्थ पवने स्थानको बना गया। माजुहमानुने
 १ वर्ष राजा कर मुहम्मदसे योवराज्य पाया था
 ५ वर्ष पीछे पुनर्भार मुहम्मद राज्यपर अभियन्त्रि हूये,
 उनके पीछे बाबर मर गये। उनके कामरानु और
 हुमायुं नामक पुत्रहवने काश्मीरराज्य भाग किया।
 कुछ दिन पीछे महरर नामक भिनापति बहुतर सेन्थ
 से काश्मीर जीतने गये थे। पीरगमने भयने पार्यत्य
 प्रदेशको पलायनपूर्वक मुहादिमें पार्यत्य किया। उस
 समय पुरीको मून्थ देव मुगमोंने राक्षानीके मजल
 यहादि जना दिये और महरर महरर व्यक्तियोंके प्राय
 विनाश किया। फिर काश्मीरमें कामरानुका उपद्रव
 कठा था। उनने तुहकीमें वधु चाम मगरादि जथा
 लसे और धन रथ एवं रमदीय रथ पश्यपूर्वक खदेम
 को चने गये। उनके पीछे काश्मीरराज्यमें भयानक
 दुर्मिथ पड़ा था। मुहम्मदगाहने फिर ५ वर्ष राजत्य
 कर कसेर परित्याग किया।

पन्थमने उनके पुत्र मन्थगाह राजा हूये। उनके
 समय काश्मलपति काश्मीर चक्रमन्थ करने भेन्-

पुरी चम पन्थ। बाट मन्थिहूयेने मुहम्मद को मगा।
 मन्थगाहके बाट उनके भाना दया इन गाह राजा
 हूये। उपर सुगम ईमानो माजुहमानु पावत्य देम
 जीतने भेन्थ महरर चने गये। माजुहमानुके राजत्यदान
 काश्मीरको प्रदाने सुव्य पश्यहूयेने दिन राउन पीर
 मन्थर वेदिक किया जनाव अनिष्ट मिर्गद किया
 था। उनके समय चाम विभाग पर कलकारियोंमें
 विरोध हो गया। उनो विरोधने मिर्गा भूंदर और
 दोन्तवानु नइने भने। एक मास नइरें जीनेके
 पीछे दोन्त (गामोवानु) ज्ञाने थे। उनके पीछे
 पन्थने राज्यभामन किया। उनके समय काश्मीरमें
 महरर भूमिभ्य हवा था। उनने पनेक ग्यान विद्य-
 यन्त्र हो गये। किमी दिन दोन्तधानुने तुलमून प्यान
 पर अभिमन्थ नामक मइताग मापुके निकट जाहर
 पूजा था—“हमारा राज्य किम प्रकार विस्तृत होगी?”
 उन पर मापुने उत्तर दिया—“प्राप्तपामि शक्ति कर
 न लेने पर तुम्हारी पभोट मिथि होगी।” यह सुनकर
 दोन्तने कहा था—“हम स्पष्ट हा कर पावको
 प्राप्तपामि किस प्रकार प्राप्तपामि कर निवारण करेते?”
 उन पर मापुने क्राधावित हो गाव दिया—“पन्थदिग-
 के मध्य ही तुम्हारी राजयो विगत जामेगे।” अभीसे
 दोन्तकी राजमन्थविगत हा गयी। उनके पीछे
 दबीव नामक किमी व्यक्तिके एक मास राजत्य करने
 पर माजुहमानुने राज्य पश्य किया था। किमी दिन
 उनने महरको पूजा—“हमारे राज्यमें भूमिकम्पादि
 दुर्मिथिथ क्यों ज्ञाने है?” उनने उत्तर दिया—“पावके
 राज्यमें कोई घोरतर नइरें होगी।” कुछ दिन पीछे
 मिर्गाहैदरके भिनापी सुहन् भेन्थदथ ने काश्मीर जा
 पन्थे। काश्मीरगाहने सभेन्थ राजपर नामक ग्यानमें
 जा मुह घोववा हो गी। लम नइरेंमें हैदरके भिनापी
 माजुहमानुका मागरमइत भिनामभूह देव भयने
 भाग गये। उनके पीछे माजुहमानुने लख भोगीका मुह
 हूया। लख उनने जमीनकको मार लय पाया था।

मुगलराज गाह पन्थल माभिके बहुतर सेन्थके
 म.च काश्मीर लय करनेकी उपरिगत होने पर दोन्त

महती सेनाके समभियादर परिहामपुरके निकट लड़ाई करनेकी सम्मोहन हुये। चोरतर लड़ाई हुई थी। उसमें सुगलराजकी बहुतसी सेना मारी गयी। वह अपने स्थानको भनी थी। दीक्षत प्रतिगय निष्ठर रहे। किसी दिन फल चोरानिके प्रपराधमें उनमें एक वासकके दोनों हाथ काट डाले थे। फिर उनके प्रतापशाली पुत्रने मातुलके प्रति कोई पत्याचार किया था। दीक्षतने उसे भी मार डाला। उनके राज्यमें १८ मन्त्री रहे। प्रथमिको वह गलित कुष्ठरोगमें आक्रान्त हुये। उनमें इहलोकमें नरकयन्त्रणा भोग पक्षत्व पाया था।

दीक्षतके बाद उनके भ्राता हुसैनखान्ने राज्यनाम किया। वह दाता और प्रजारक्षक थे। खान् जमान् नामक मन्त्रीने उन्हें हटा ख्यं थोडे दिन राज्य किया। वह प्रति दिन सौ लोगोंको बध करता था। यहां तक कि दिलावरखान् द्वारा उनमें अपने पुत्रको भी मरवा डाला। हुसैनखान्ने फिर जाकर मन्त्रिको मारा था। पीछे अपध्मार रोगसे हुसैनखान्का मृत्यु हुआ। उनमें ७ वर्ष राजत्व किया था।

फिर उनके भ्राता फलौखान् राजा हुये। वह प्रजाको सुखी करने पर तत्पर रहे। उसी समय घोर दुर्भिक्ष पड़ गया। ८ वर्षके राजत्व बाद फलौखान् मरे थे।

फलौखान्के बाद उनके पुत्र यूसुफयाहने राजत्व ग्रहण किया। किन्तु उनके पित्रथ पण्डुलखान्ने किसी दूतसे कहला भेजा था—“भ्राताके मरने पर भ्राता ही राजपद पाता है। आप क्यों राजपदाभको प्राग करतें हैं।” सिकन्दरपुरमें पण्डुल और यूसुफ की लड़ाई हुई। पण्डुलने प्राणत्याग किया था। उसके बाद सुवारकखान् यूसुफसे लड़ने चले। यूसुफके सेनापति सुहम्मादखान् उन लड़ाईमें मारे गये। उसके बाद सुवारकखान् काश्मीरके राजा हुये। यूसुफने पकवर बादशाहके निकट दक्षिण जा साहाय्य मांगा था। उसी समय चकोर्न सुहम्मादखान्को हरा लोहरचकको काश्मीरका राज्य दे डाला। यूसुफने पकवरके निकट से नोट वितस्ताथेष्ठित स्वयंपुर ग्राममें प्रस्थान किया था। लोहरचक उनसे लड़ने लगे। उस लड़ाईमें लोहरचकके मन्त्री पण्डुलमीर मारे गये। फिर यूसुफने

काश्मीरका सिंहासन वाया था। उस समय लोहरखान् ने याकूबका शरण लिया। किन्तु याकूबने सुविधा देख उनके पौर उनके भाईके नेत्र फोड़ डाले। फिर हैदरचकके साथ याकूबका युद्ध हुआ। उसमें हार हैदरचकवर बादशाहके पास भाग गये। यूसुफने काश्मीर जीत बहुत उपद्रवकनसह अपने पुत्रको मन्त्राट पकवरके निकट भेजा था। पकवरने यूसुफके भेजे उपद्रवकन पाते भी काश्मीरके जयका अभिनाय न छोड़ा। उन्होंने भगवान्दास सेनापतिको काश्मीर भेजा था। युसुफ भगवान्दासको बहुत धनरत्न उपहार दे पकवरके शरणगत हुये। कुछ दिन राज्य कर वह पकवर सम्त्राटके सेवार्थ चले गये। फिर उनके पुत्र याकूबने काश्मीरका राजत्व किया। उस समय शम्सचक प्रत्यन्त क्रुद्ध हो याकूबसे लड़े थे किन्तु शिपको हार गये।

फिर सम्त्राट पकवरको काश्मीर विजयकी सृष्टा बढ़ी थी। उन्होंने बहुत सेन्यके साथ कासिमखान्की पधीन २२सेनाध्यक्ष काश्मीर भेजे। कासिमखान्के भागमनको बात सुन याकूबने पनायन किया था। उनका सेन्य सकल क्षिप्र भिन्न हो गया। फिर शम्सचकने शल्य संख्यक सेन्य ले कासिमसे लड़ाई की। किन्तु सुगल जीत थे। हैदरचक कासिमखान्को लाते देखे गये। उसीसे लोगोंने उनका पक्ष प्रवर्तन किया। कासिमखान्ने हैदरचकके साथ पनिक व्यक्तियोंको देख कर एकहा था। उससे काश्मीरकी बहुतसी प्रजा भयसे वनको भाग गयी। वर्गमें उद्योग मिले थे। लड़ाई करनेकी क्षतसह्य हो प्रजा याकूबखान्की ले गयी। कासिमने भीमारखान्को याकूबके विरुद्ध भेजा था। याकूबने सदाशिवपुरमें भीमारखान्की सेना पर आक्रमण किया। कासिमखान्ने काश्मीरका बहुततर सेना देख कारागृहस्थित हैदरचकका मार डाला। उसके बाद कासिम पौर याकूबको लड़ाई हुई। किन्तु जय पराजय समझ न पड़ा। याकूब काठवाट चले गये। उस समय याकूबके पिता यूसुफ और पन्थान्य प्रधान व्यक्तिये सन्धिके लिये प्रार्थना को। कासिमने यूसुफ प्रभृति व्यक्तिको पकवरके पास भेजा था। पकवरने उन्हें समादरसे लिया।

सोहर राज्य देकर वहाँ पढ़ाया था। सुप्रसन्न पत्नरथ उद्योगी, पद्म-गङ्गा और उत्कर्षके पुत्र पतापक्षी माय से चल दिये। एकक उनी व्यसनें वन्दे थी। पश्चिमध्य वह भाग पड़े दूधे और कागी लाकर गङ्गा-त्रयमें डूब मरे। उधर जगन्मन्दर राज्यमें ऐसा कार्य करने लगे, कि वही समयके ऊपर समझ पड़े उद्यम नाममात्रसे राजा रह गये।

उपराराज पद्मदेवी कन्या विभवमती स्वदेवके पुत्र भोजदेवकी पत्नी थीं। भोजदेवके पत्निक सन्तान होकर मर गये, केवल २ वर्षके कोरें पुत्र जीवित रहे उनका नाम भिष्माचार था। जनकचन्द्रके पत्नीरूप और कुछ कुछ दयाके परवश उद्यमने उस शिशुको विनाश न किया। उस समय समझ पड़ा जनकचन्द्र जित-भावसे कार्य करते, उसमें वह स्वयं राजा होनेकी पाया रखते या उक्त शिशुको राजा बनाना चाहते थे। उद्यमने शेषमें जनकचन्द्रकी भी द्वारपतिके पदपर अभिषिक्त कर राज्यसे दूर भेज दिया। भीमदेव उसमें पड़े थे। शिवकी जनकचन्द्रसे भीमदेवका युव होने लगा। संघाममें कालपाग नामक भीमदेवके किमी भेजागीके हाथ जनकचन्द्र पाहत और भीमदेवके हाथ निहत हुये। गग्य और छट्ट नामक जनकके दो भ्राता भी पाहत हो सोहरको भगे थे। संघामस्थलमें उद्यम समेन्य उपस्थित रहे। उनमें कोई पक्ष लिया न था। कारण जनककी पत्नताकी रक्ष कराना उनको भी ईषित रहा। शिवकी उद्यम क्रमशः राज्यमें शान्ति स्थापन कर मठरराज्य चले गये। वहाँ उनमें विद्रोही डामरोंके प्रधान कालिय प्रभृति और इन्द्रारालको मारा था। फिर देगकी शासन कर उद्यमने प्रस्थान किया। गग्य उसी समयमें उनके विघटाव बन गये।

उद्यमने दम्भावाद्ये गन्दीचेव नगरके जगन्धर, योगीश और स्वयम्भू मन्दिरको पुनर्निर्माण कराया। स्वदेव कर्षक शीपरिचामकेश्वरमूर्ति विनष्ट हुयी थी। उद्यमने उसे फिर प्रतिष्ठा किया। त्रिभुवनस्वामीके मन्दिर और तद्वल्लभ गुणवती प्रामादकी भी स्वदेवने जतनी कर डाला था। उद्यमने उसे फिर पूर्वकी भांति धनदात्री और भोक्तृत्वपूर्ण कर दिया।

जयगोड कपोतमित्री मिर्चामन नाथि थे, उद्यमने राजधानी अधिकार करते समय वह कुछ कुछ जन्म गया। उनमें फिर उसे मृतम निर्माण कराया था।

उद्यमने कायस्थीका पत्न्याचार देव मध्या समस्त कायस्थीको राजकाशसे पन्नग कर दिया। मोटधरादि दुष्ट कायस्थीको यद्योगीति शान्ति मिमी थी। कम्पनापतिके दंगक मदापतापगामो ज्ञानिसे उद्यमके क्रोधभाजन बने और विपनाटाकी भाग जाति भी पगो द्वारा विनष्ट हुये। द्वारपति रक्त उसी दोषमें विजयचेवकी निकाले गये और उद्यमकी दी हुयी सामान्य मन्त्र्यक मुद्रामे जीविका चलाने लगे। प्राणिवय, तिनक, जनक प्रभृति और भी उभी प्रकार देगसे निकाले गये थे। फिर मठसे पुत्र रछ, कुच्छ और व्यञ्ज मन्त्री हुये। यम, ऐन, पद्म और वाय प्रभृति अपरिचित व्यक्तियोंने द्वारपति पांदि उद्यम पये थे। उद्यम कर्षक भी कार्यप्रवृत्तियां पाछूत हुये। किन्तु उद्यमकी मति विगड़ी देव वह न गये।

उधर सुप्रसन्न सोहरमें रह राज्य लोभमें उद्यमके विरुद्ध पक्षधारण किया था। पराजवात नामक स्थानमें दोनों भ्रातायोमें प्रथम झड़ई हुई। सुप्रसन्न पराजित हो ओहरकी भगे थे। उद्यमको किन्तु मंवाट मिना कि सुप्रसन्न दूसरे दिन मोटनेवासे रहे। उसीमें गग्यचन्द्रके साथ एक दल सैन्य भेजा गया। पश्चिमध्य सुप्रसन्न झड़ई होने लगे। झड़ईमें सुप्रसन्नके पक्षे पक्षे योद्धा निहत हुये। शिवकी उद्यमने भी क्रमशः पर्यन्त भ्राताका अनुसरण किया था। शैलपुरकी झड़ईमें द्वार सुप्रसन्न ओहरके पार्थिव्य पयसे श्वराज्यकी मोट गये। उद्यमने मेळपुरके डामरराज ओट्टककी मार डाला। कारण उनमें श्वराज्यसे सुप्रसन्नकी भागनेमें सहायता की थी। उद्यम भ्रातृद्वेष्टमें पड़ ओहर पर्यन्त सुप्रसन्नके पीछे न गये।

उधर भीमदेव राजाने कलशके एक सन्तान भोजकी भिष्मापन पर वेठा दरदराज जगदुदलकी माहाय्याएं बुलाया था। दंगनपालके भ्राता मद्यपालभी स्वदेव-पुत्र मद्यपमें मिल गये। दरदराज राजमें मर लगे लड़नेके निये उनकी और बड़े थे। किन्तु उद्यमने उन्हें

जमी ममय काशीरमें सुदासदास चारख दूषा ।
 साक्षरमें ममंय काक्षराटमी निबल सुमनेनाको वा
 वाक्षमय विद्या वा । इ माय तख जराई खनी ।
 खासिमखाजूकी पगजितवाय सुन चकवरमें दसुकपान्
 की काशीर लोभनें अये चाटिय किया ता । दसुक
 पान्में काक्षर साक्षरका पराभव किया । वह फिर
 चकवरके निकट भोट गये । १८२१ ई० की काशीर
 चकवरके हाथ जया । उम ममय चकवर काशीर
 देवमें काशीरमें खने से । काशीरमें उपस्थित खने
 पर साक्षर भनरे प्राणदास खुये । चकवरमें खने राखा
 मानवि'खने पधीन गेमाप्यत बनाया वा । फिर वन
 दसुकपान्की काशीरका मामनकाये मोव देगाक्षर
 की खने गये । दसुक काशीरकाव्यका मामन काने
 लगे । किमी कारन दसुक चकवरके विराममाजन
 खुये से । चकवरमें दसुकके प्रति क्रुद्ध की काशी पना-
 की काशीरके मामन कायेमें निगुल किया । कापी
 पनाके काशीरकीपना ममय धन मय कर हाजने
 से सुगममें परस्पर विरोध उपस्थित हुआ । उममें
 मित्रां यादगारमें काशीरियोंसे मिम काशी पनाके
 साथ झड़ाई की । काकी पना हार कर पर्यंत पर भाग
 गये और वहाँ खन खने ।

चकवर मित्रां यादगारमें काशीरके मामनकर्ता
 को चकवरको पधीनता माना न वा । चकवरमें नील
 परीदकी मसेय काशीर भेज दिया । गुरपुरमें मित्रां
 यादगार अपने चनुचरीके ही हाथों मारे गये । नील
 परीदके मामनकाय चकवर फिर काशीर पहुँचे
 थे । उम बार खनोंमें चनेक मत्प्रायं क्रिये । उद्योनें
 पुना लि झाझर कीक्षराटमी देगाक्षरकी जाले से ।
 जमीके प्रथम चकवरमें खड्यंगिया'में वाधिक कर
 मिला निषेध किया । फिर खनोंमें टिंढारा पिटाया या-
 "क'शीरका जो खलि झाझरोंकी पुना करीगा उमकी
 तन्धक पारितापिट मिसेता । यहाँ का झाझरोंमें
 कर लेता, प्रथम: घर उपा; ममय मिला दिया जायेगा ।
 फिर म'झप उल्ले पादो'रिद देनें भी । चकवरके कोई
 रामदास खनेगामे काशीरकापी झाझरोंका निपत
 उपहार करते थे । वह झाझरोंकी देवर्त की काशीरिय

दे देते रहे । उममें कुछ भी खमिमान न था । प्रशद के
 कि उकाने प्रयत्न का:झपके घर भी भी खपे और
 एक एक पगारकी बाटो थी । चकवर भी काशीरों
 झाझरोंकी विवेय खपे परित्यक्त रहने से । किमी
 दिन उद्योनें मखस खनेसुदा दरिद्र झाझरोंकी दे
 खाने ।

चकवरमें दसुकपान्की पुनर्वाि काशीरका मामन-
 कर्तव्यमाय भोय भोटाया वा । वह प्रजाका कोई
 खनित न कर राखपामन खनाने लगे । कुछ दिन
 पाके दसुकपान्में चकवरके साथ माधगायं चने काम-
 में खने पूव मिर्जापुरकर काशीरके मामनकर्ता खुये ।
 उन्हांने निम्नलिखित चाटिय निकाला वा—"को
 खलि काशीर-निवासियोंको मतायेगा, वह तन्धक
 खपने पपराधका फन पायेगा ।" मिर्जापुरकरके ८
 वर्ष मामन खने पर चकवरमें खने पगाक्षरान् और
 नमके पीके पचसादपान् तथा सुनताम सुकगद कुभी
 पान्की काशीरका मामनमार प्रदान किया । खने
 काशीर का दुर्नीतिकी पकड़ा वा । जमी ममय चक-
 वरके चाटयमें उक्त दोनो मामनकर्ताओंमें प्रचपुरके
 निकट एक पगनामकादुर्ग और मारिका पर्यंतके पाम
 लय मामन नगर निर्माप कराया । वतमान टीनगर
 केन-उक्त-पाद्योत निर्मित पुरातन नगरीके मधिपालनें
 की बना वा । किमी दिन मध्याह्न कालको पुरातन
 नगरी पनध्यात्तु खने लगे । दो मखस गृहमख-
 लित उक्त नगरी पख खपने मज्य की मध्याग्गीय
 खुये । उम ममय नवीन नगरी मखी विनामये विद्य-
 तमा रमयोकी भाति फूल कर पानन्द प्रहाय करनें
 लगे ।

काशीर चकवरके पुत्र जहांगीरका पतिविय
 खान वा । वह विपतमा नूरखान्के साथ मवंदा खदी
 वमलानीता करते थे । काशीरमें खयावि नूरखान्-
 के भीना-उदाय और मनीराम पासादका मध्याग्गीय
 देव पड़ता है ।

प्रवत ४ दिवोके सुगल सादगाहाका प्रमान पदुख
 था, तबतक काशीरकाजा वनेके पधीन रहा । उम
 ममय कोई मामनकर्ता दिवोके पधीन राजकायें

बन्धुभावसे पहचण कर मिट कथामें खराब्यको लौटा दिया। सङ्घर्षभी दरदराजके साथ चले गये। भोजराज्य ही खदेराजकी भनी थी। किन्तु पथिमध्य यह पकड़े गये उन्हें दम्पती भाति शक्ति मिली थी। देवेश्वरके पुत्र पिटरके डामरोंके माहाय्यसे राज्यनाभकी चेष्टा लगाय, किन्तु उनसे कुछ बन न पडा। रामल नामक किमी स्थायिकताने अपनेको मङ्गका पुत्र बता राज्य पानेकी चेष्टा की थी। उनके निर्वाध राजावेने भी उसको माहाय्य करना चाहा। किन्तु राजभृत्योंने कौशलसे पकड उसकी नाक काट डानी।

उस समय भिन्नाचार (भोजदेवके पुत्र) किशोर पदस्थापन थे। उच्चने सुना कि वह राजा जयमती पर पामल थे। उसीसे उनको विनाश करनेकी रास्ता निकली। घातकोंने उनको वितरके खुरखोतमें फेंक दिया। भाग्यबलसे वह किमी ब्राह्मण द्वारा रक्षित हुवे। साक्षीराजकन्या दिहा उक्त संशट पा भिन्ना चारकी अपने घर ले गयीं। फिर उनने जिरापट रखनेके लिये उनको मालवराज्य भेज दिया। मालवराजने परिश्रय पा भिन्नाचारकी लड़ना भिड़ना और पढ़ना लिखना सिखाया था।

उसी समय उच्चने पिता और भगिनीके नाम पर एक एक मठ स्थापन किया। राज्ञी जयमतीने भी एक मठ और एक विहार बनवाया था। उसके बाद उच्चल प्रमराज्यके वरुणचक्र नामक तीर्थको दर्शन करने गये। पथिमध्य चण्डाल दृश्योने उनको पात्रमण किया था। साथमें शक्ति शत्रुचर न रहनेसे वह भागने पर बाध्य हुवे। शिवकी वनमध्य दिक् स्त्रम होनेसे उनने घने जंगलमें प्रवेश किया। उधर नगरमें संवाद पहुंचा कि उच्चलकी चण्डालोंने मार डाला था। कामदेव-वर्णीय रड्डके आता नगराध्यत लुड्ड नगरमें शक्ति स्थापन कर राज्यलाभार्थ परामर्श करने लगे। कायस्थाके परामर्शसे लुड्डने ही राजा बननेकी चेष्टा लगायी थी। किन्तु उच्चलके जीवित रहनेका संवाद सुन वह उनको मार डालनेकी चिन्तामें पड़ गये। उधर उच्चने किसी कारण जयमती पर विरक्त हो वर्तुलाकी राजकन्या विजलासे विवाह कर लिया था।

उसी समय राजपुरीके राजा संधामविह मर गये। उनके पुत्र सोमपाल ज्येष्ठकी बन्दी बना राजा हुये। इसलिये उच्चल कुछ ही लडने चले थे। किन्तु सोमपालका राज्यशासन और प्रजाप्रियता देख उनने उनके साथ स्वीय कन्याका विवाह कर दिया। फिर उच्चलने भोगसेन पर विरक्त हो उनको पदच्युत किया था। उसके बाद भोगसेन एवं रड्ड और लुड्ड तथा सड्ड कर लोगोंने मिलकर उच्चलको मार डालनेके लिये चण्डालोंको लगा दिया। राजा किमी रातकी प्रियतमा विजलाकी घर जाते थे। उसी समय सकल दुर्वृत्तोंने मिलकर वनपर आक्रमण किया और उच्चल पर चढ़ना भूमिपर उनको गिरा दिया। शिवकी सड्डके पश्चात्तसे काश्मीरोय ८० लौकिकाब्द चौप मासकी शुकपक्षीके दिन ४१ वर्षके वयसमें महाराज उच्चल दहलोकसे चल बसे।

रड्ड रत्नाल कुलेवर उसी रातकी सिंहासन पर बैठे थे। उसीसे उनके बन्धु उनसे लड पड़े। वड्ड चण युद्ध होने पर रड्ड मारे गये। रड्डने शहराज उपाधि धारणकर रातकी एक पहर और एक दिन राजत्व किया था। उसके बाद गर्गचन्द्रने विद्रोहियोंमें किमीकी मार, किमीको पकड और किमीको देशसे निकाल डपट्टव मिटाया। राज्ञी विजला चिता पर चट गयीं। सवने गर्गकी राजा बनना चाहा था। किन्तु गर्गने अपनी पोरसे उच्चलके शिव पुत्रकी राज्य देनेका प्रस्ताव किया। महाराजके पोरसे पोर राज्ञी श्रेताके गर्भसे सङ्घर्ष, लोठन एवं रङ्घण नामक तीन पुत्रोंने जन्म लिया था। उनमें सङ्घर्ष पहले ही मर गये। शहराज (रड्ड) के भयसे लोठन और सङ्घर्षने नवमठमें प्रायथ लिया था। विद्रोह मिटने पर तन्त्रियोंने उन्हें गर्गके निकट ले जाकर उपस्थित किया। गर्गने सङ्घर्षको राजा बनाया था। उसके बाद गर्गने सुखलके निकट दूत भेजा। वह काश्मीरके पथिमुख चले थे। किन्तु पथिमध्य सङ्घर्षके राजा होनेका संवाद मिला। सुखल उस समय राज्ञीभीमसे काठवाट पहुंचे थे। गर्ग भी उस पोर समेन्य दृक्पुर गये। भोगसेन और सङ्घर्षने सुखलके साथ योग दिया था। किन्तु भोगसेन पथमें

निर्वाह-करता था। १७५२ ई० की पठान-घोर-पहमद साह दुरानोने काशमीर राज्य जीता था। फिर कुछ कालतक पठानों का प्रभाव रहा। १८१८ ई० की महाराज रणजीत सिंहने काशमीर अधिकार किया। उस समय सिखराजके अधीन कोई शासनकत्तो भेजा जाता और काशमीरका शासनकाय चलता था। १८४३ ई० की जम्बू, लादक और बलतिस्तानके साथ काशमीरभूमि गुलाबसिंहकी मिल गयी। १८४६ ई० की, सोत्राउन युद्धके बाद गुलाबसिंहने ७५ लाख रुपये दे-अंगरेजोंसे काशमीरराज्य ग्रहण किया था। गुलाबसिंह अंगरेजोंसे गवर्नरनेण्टके एक मित्र राजा बने। युद्धकाल यह अंगरेज गवर्नरनेण्टको सहाय्य करने पर बाध्य थे। किन्तु यह स्वाधीन भावसे हिन्दू राजनीतिक अनुसार राजा करते थे। गुलाबसिंह देखो। १८५८ ई० का गुलाबसिंहके मरने पर उनके पुत्र रणवीरसिंह राजा हुए। उनसे १८८२ ई० की अंगरेज सरकारसे २१ तोपोंकी सन्तानो, 'हटिंगसेनापतिल' और 'महारानीका मन्तिल' पाया था। १८८५ ई० की, जम्बू नगरमें रणवीरसिंह मर गये। फिर उनके ज्येष्ठपुत्र प्रतापसिंहने सिंहासन स्थाप किया। उनकी सभामें 'हटिंग देवीहण्ट' हुए गये। प्रतापसिंहको 'हटिंग गवर्नरनेण्टने जी.' से 'एस. आई. सपाधि, परंपराके लिये 'महारानी' पद और ज्येष्ठ सम्मानकी सूचक २१ तोपोंकी सन्तानो प्रदान की है। काशमीरराज महारानीभारतेश्वरीकी प्रतिष्ठा, एक घोड़ा, २१ सर परम और और अत्युत्कृष्ट ३ काशमीरी दुयासे कर खंडपादित थे। अब काशमीरराज्य सम्पूर्ण रूपसे हटिंग सरकारके अधीन है।

संक्षेपाने लौकिक संवत् ६३८८ से लौकिक संवत् ६४१ तक अर्थात् प्रथम गोनन्दसे लेकर बलादित्य तक जिन राजाओंके नामका संक्षेप किया है। उन्होंने अथवा काशमीरके सिंहासनपर आरोहण कर राज्य किया था। ऐसा निःसन्देह उन लोगोंका कीर्ति सूचक सिद्ध और किमदंतियोंसे ज्ञात होता है। परन्तु उनके नामोंकी सूची जिस क्रमसे बलिखित है वह ठीक सैषी ही है। इसमें पूरा पूरा सन्देह है और उसके साथ-साथ तो निश्चय है कि—उन लोगोंका शासनका अथवा अर्थात्

कुछ गलत है। [..] कर्कटक-संगम भागिक संक्षेपाने की कुल संख्या है ३७ अथवा ३८ ठीक है और इसलिये इतिहासके लिये 'संक्षेप' प्रकरणसे 'धार्मिक' का संतोनुसार इतिहास ग्रहण करते हैं।

काशीरके राजाओंकी तालिका ।

राजाका नाम	वर्ष	राज्यकाय
गोनन्द १म (संक्षेपके मतमें ६३२ सन्वत् तथा ६२८ लौकिक)	१	६३२-६३३
दामोदर १म	२	६३३-६३४
गुणोदरी	३	६३४-६३५
गोनन्द २म	४	६३५-६३६
(२५ राजाओंका विवरण सुनो)		
लव	५	६३६-६३७
कुम	६	६३७-६३८
सुदीन्द्र	७	६३८-६३९
सुरेन्द्र	८	६३९-६४०
गोधर	९	६४०-६४१
सुवर्ष	१०	६४१-६४२
जनक	११	६४२-६४३
गणोदर	१२	६४३-६४४
अमोघ	१३	६४४-६४५
जयोचंद्र	१४	६४५-६४६
दामोदर २म	१५	६४६-६४७
दुष्य, युष्, कनिष्क	१६	६४७-६४८
अमिमन्तु १म	१७	६४८-६४९
गोनन्द ३म	१८	६४९-६५०
विमोचक १म	१९	६५०-६५१
इन्द्रजित	२०	६५१-६५२
राजव	२१	६५२-६५३
विमोचक २म	२२	६५३-६५४
नर (प्रथम) वा विमर	२३	६५४-६५५
विष्ट	२४	६५५-६५६
सर्वनाथ	२५	६५६-६५७
हिरण्यक	२६	६५७-६५८
हिरण्यक	२७	६५८-६५९
सुहृण वा सुहृण	२८	६५९-६६०

* यह शीर्ष राजा ६० प्रथम सत्ताके विधानसे है। कनिष्क देखा।
† विनाशिय और शोभोय विवरणके अनुसार ६०५ ई० तक राजाओंके विधानसे है

गर्गदारा पाकाला घोर विनष्ट हुई। उसने बाद गर्गके शिवापति सुयं साथ रूपाईमें धार सुखन होकरकी भांगि से। गर्गके फौजमें लौटते वही विगृह पडो। वह जाने ही राजाके विपदाओंको मारने लगे। उसीने सब लोग डर गये। तिनकमिंघादिने पपिला न कर गर्गके भवनको पाक्रमण किया था। गर्ग भी भंवाट पाकर भीत हुई। राजा मङ्गरने विद्रोर म रोक लौटनको संन्यमह गर्गका पय रोकनेकी भिजा था। केगव नामक वीर धनुर्धर (सोठिहामठ-के अध्यक्ष) रहे। उन्होंने कागलने गर्गका घर बचा घोर लौटनका बहुत मा संन्य मारा गया। उद-के बाद सुसल घोर गर्गमें मन्त्रि हुई। गर्गको ल्येठ लन्धा राजमन्त्री से साथ सुसल घोर कनिष्ठ जनता सुसलियाके साथ सुसलके पुत्रका विशाह किया गया। दुष्ट मन्त्रय भोगसेनकी पवित्रधारिणी पत्नी मत्ता पर पत्न्याचार करने लगे। उनने उनके भ्राता दिशमहारकको विपययोगसे मार टाका। मत्ता चितारोहण करनेसे उनके डाय न लगे।

सुसलने उपयुक्त समय देस काश्मीर पाक्रमणार्थ मन्त्रवासकी भिजा था। पयिमध्य द्वारपति लककी बन्दी बना मन्त्रवास पपसर हुई। सुसल भी जा पहुंचे थे। काठवाटका राजगमाद पकड़ दूबा। सुसलने मसैन्य नगर प्रवेश किया। राजमैन्यने धार रोक दिया था। किन्तु पपर पयसे मन्त्रवासके पुसते ही भीपय युव होसे लगा। युद्धमें मन्त्रयके मन्त्री पल्लक निहत हुई। सुसल लौते थे। मन्त्रय घोर लौटनने जाकर सुसलका शरय लिया। उनने भी उनको पभयदान दे पाकिङ्गन किया था।

८८ औकिकापदी वैशाखी शकलतीयाके दिन ३ मास २७ दिन राश्रव करने पीले मन्त्रय राज्यप्युत हुई।

सुसल विंवासन पर सेठे थे। उनके शासनपुवन राज्यमें सुपमाक्ति लवन पडी। वह दयालु, विनयी, माहमी, मज्जारक्षक, दुष्टमासक घोर गिष्टपानक थे। उसी समय गग ने सघरे मिश्रपुत्रके लिये पत्न्या धारण किया। सुसलने भ्रातृपुत्रकी भांनेके लिये धार धार

पादमी भिजा था, किन्तु गगने उनको न दिया। शिपकी वितप्ता-विन्नु-मन्त्रयके निकट महायुद्ध हुआ था। सय युद्धमें सुसलको घोर म्ङ्कार, कविन, कर्ष, म्ङ्कक पश्चि तस्यो घोर मारे गये। विजयसेत्रके युद्धमें भा तिष्ठ, कम्पनापतिके बहुनेन्य घोर तस्योघोर निव्याकर हन हुई, किन्तु गर्ग पीके न हटे। पर-शेयकी वह रसवर्ष दुर्गमें जोवन म्ङ्कट टेप उचलके पुत्रको ले सुसलके शरणागत हुई।

मन्त्रवास, यगोरात प्रसूतिने सुसलके राज्यागोहण-में विशेष महायता दी थी। उसीमें वह बहुत मर्गित घोर दुर्दान्त हो गये। सुसल उने मद्द न सके थे। उनने उनको राज्यसे निर्धामित किया। उनने भी मन्त्रय-मङ्गलका पक्ष लिया था। मन्त्रयमङ्गलके पुत्र प्राय संन्य ले कान्द पयने काश्मीर पाक्रमण करने गये। किन्तु पयमें राजमन्त्र्यद्वारा यगोराज पाहत हुई। उसीने वह भीत हो लौटे थे। उधर म्प्यापति आमट, वल्लपुरराज पयधर, वतनराज मन्त्रवास घोर वल्ल-पुरके पानन्दराज कुवसेत्र जाकर भिषाचारने मिल गये। लासटने शीय-कम्पाका विवाह भिषाचारमें कर दिया। ठङ्कुर गयापालने यष्टे संन्यमह भिषाचार-का पक्ष लिया था। पद्म नामक स्थानमें वह राजनेन्य-ने लड़े। युद्धमें टपंक मारे गये। यष्टे भंग्य सय भी हुई। भिषाचार सर्वथा हो दुर्दान्तमें पड़ गये। शिपकी उनने म्ङ्कुर जासटके राज्यमें पायय लिया। किन्तु जासट उनपर पत्न्याचार करने लगे। पन्डुभागेके ठङ्कुर लेंगपालने उनको ले जाकर पादरसे पानयमें रखा घोर पयनी लन्धाके साथ उनका विवाह किया। उसी बीच मन्त्रयमङ्गलके पुत्र फिर संन्य ले सिन्धुपयमें पाने बड़े थे। राजसैन्यने पयमें पाक्रमण कर उनको बांध लिया।

सुसलने वितप्तातोर तीन बड़े मन्दिर बनाये थे। उनमें उनने एकका पयने, एकका शीय पत्नी घोर एक-का यासके नाम नामकपय किया। भग्नयाव दिहाके विहारका भी संस्कार हुआ। किसी दिन गर्गकी संवाट भिजा कि सुसलने उनको पकड़नेका पामगं किया था। वह कान विनय्य न लगा पुत्र कल्याण-पन्डुके साथ पयने घर लौट गये।

उसके बाद सन्धि हुई। किसी दिन राजा खानागार में उनको जानि देख विगड़े थे। उनने उनकी तत्पण निरस्त कर बन्दो बनाया। कल्याण, विदेह प्रभृति गर्गके पुत्र और उनकी पत्नी महादेवी सब लोग पकड़े गये। ३ मास पीछे (६४ बौकिकाब्दकी गर्गादि राजाके प्रादेशमें निहत हुये।

किर मल्लकोट, पृथ्वीहर, विजय प्रभृति मन्त्रेण्णिन कर भिष्माचारका पक्ष अवलम्बन पूर्वक सुम्भलके साथ छिरणपुर और महाभरिद स्थान पर लड़ कर राजधानीमें प्रवेग किया। राज्य भिष्माचारके अधिकारमें गया था। राजा सुस्मलने भवगीप (६६ बौकिकाब्द) को अग्रहायण मास कम्भनराज्यमें प्राय्य लिया। तिलकमिन्दने समस्त पपमान भूल उन्हें यत्नसे रखा था। तिलक सैन्य संग्रह कर किर युद्धका उद्योग नगाने लगे। उधर नगराध्यक्षकी कन्याके साथ भिष्माचारका विवाह हो गया। उसके बाद भिष्माचार राजसिंहासन पर बैठे।

कुछ दिन बाद भिष्मिने ही सुम्भलके विरुद्ध पागि विम्बकी भेजा था। पर्याप्त, बिटोला और सदागिच नामक स्थानमें युद्ध हुवा। विम्बके पराजित होने पर सुम्भलने सम्पूर्ण जयलाम किया था। भिष्माचार भाग गये। किन्तु अल्प दिन बाद पृथ्वीहर और भिष्माचार मिस्र विजयक्षेत्रमें जय पा राजधानीके अभिसुख अग्रसर हुये।

उसके बाद नाना स्थानोंमें युद्ध हुआ। भिष्माचार या सुस्मल कोई सम्पूर्ण जय पा न सका। सुस्मलके पनुपस्थित काल खामर राजधानीमें नाना स्थानों पर पाग लगाने लगे। वितस्ताके उभय पार जितने जाठ निर्मित घर रहे, प्रायः सभी जल गये। निरीह प्रजा राजधानी छोड़ भगने लगी। सुस्मल राजधानीकी लौटे। उसी समय उत्पल व्याघ्र प्रभृति साजिग कर राजाके प्राणनाशकी चेष्टा करने लगे। सुस्मलने उनका आभास पाया, किन्तु विस्वास पाया न था। किसी दिन वह खानागारमें नहा रहे थे। उसी समय उत्पल और व्याघ्रने जाकर देखा कि राजाका कोई रक्षक न था। उत्पलने हार बन्द कर दिया। सुम्भल उनका

काण्ड देख "राजद्रोह" कह कर विज्ञा लठे। किन्तु उनके तीक्ष्ण भावनासे महाराज चिरदिनके निये निद्रित हुये। उनका द्विचमस्तक भिष्माचारके पास भेजा गया। राजपूत सिंहदेवकी उक्त स'वाद मिला था। सिंहदेव राजा बने। उन्होंने मन्त्रियोंके परामर्शसे राजधानी सुरक्षित रखनेकी चारी और पहरी बेंठाये थे। दूसरे दिन मध्याह्न काल भिष्माचारने ससैन्य नगर में प्रवेग किया। उसी समय गर्गपुत्र पञ्चवन्दु विस्तर सैन्य ले राजासे जा मिले। घोरतर युद्ध हुआ था। भिष्माचारने गह्वर देख राजधानीकी परित्याग किया। उसके बाद विजयक्षेत्र प्रभृति कई स्थानों पर घोरतर लड़ाई हुई। किन्तु भिष्माचारकी मनस्तामना सिद्ध न हुई।

सुस्मलके पुत्र जयसिंहने राजा हो राज्योचितकी और दृष्टिपात तो किया किन्तु प्रतीहार पर राज्यका प्रधान मार डाल दिया। प्रतीहारने गान्धि स्थापनके लिये राजविद्रोहियोंसे सन्धि की थी। जयसिंह अनेक कौर्ति कर गये। उनके समय कङ्कथ परिहृतने राजतरङ्गिणो नामक संस्कृत इतिहास प्रणयन किया।

जयसिंहने राजा हो २२ वर्ष राजत्वके बाद ३० बौकिकाब्दकी फाल्गुणकी कृष्ण द्वादशीके दिन परलोक गमन किया। वह नियत प्रजागणके हितसाधनमें तत्पर रहे। उसके बाद जयसिंहके पुत्र परमाणुक काश्मीरके सिंहासन पर बैठे। उन्होंने पहले प्रजा रक्षणार्थि कार्य परित्याग पूर्वक किसी न किसी प्रकार स्त्रीय धनकीय मरनेकी चेष्टा की थी। भवगीप को उनके भूत मन्त्रियोंने बालककी भांति उन्हें पुसला और भय दिखा समस्त धन पपहरण किया। वह ६ वर्ष ६ मास १० दिन राजत्व कर ४० बौकिकाब्दकी कालपासमें पतित हुये। परमाणुकके बाद उनके पुत्र वर्तिदेवने राजा हो ७ बरस राजत्व किया। वर्तिदेवके मरने पर वोप्यदेवकी राजसिंहासन मिला था। उन्होंने ६ वर्ष ४ मास २३ दिन राजत्व किया। वह मूर्खके शिरोमणि रहे। किर उनके कनिष्ठ भ्राता जलनदेव राजा हुये। उन्होंने १८ वर्ष ११ दिन

राज्य किया था। वह भी पतिव्रत मूर्ख रहे। सुव
 चौर भीम नामक ७ पुत्र ब्राह्मण जनको बहुत प्रिय
 थे। फिर उनके पुत्र जयदेवने राज्य वा १४ वर्ष ४
 दिन राज्य किया। वह विनयी चौर प्रजाप्रिय थे
 उनके छोटे राज्यके मध्य सुवचस्याको स्थापन चौर
 राज्यका समस्त राज्य बहाल किया। राजकुल नामक उन
 के सभ्यपुत्राक्षर मन्त्री रहे। उनके मन्त्रसभने राजाने
 समस्त राज्यकी विभागा किया। महाराज जगदेवने
 राज्यपूर्वमें हर्षोत्तरका प्रासाद बनाया था। दारपति
 पद्मने २३० दस भावने प्रिय दे कर मार डाला।
 जगदेवके मरनेके पीछे उनके पुत्र राजदेवने राजा हो
 २३ वर्ष ३ मास २० दिन राज्य शासन किया। उन
 ने दिव्यशक्त पद्मके भयमें काठवाट नामक स्थान
 पर मन्त्र दुर्गेमें प्रायश्च किया था। दारपतिने जाकर
 उन्हें चारों ओरसे घेरलिया। दारपति प्रसन्न हो
 मर गये थे। नमो ममय किमी चण्डालने उन्हें मार
 डाला। राजदेवने मन्त्रीकी विभागा कर स्वीय प्रजापुत्रा-
 की विधेय निहन्त्याध किया।

उनके पीछे उनके पुत्र संघामदेव सिंहासन पर
 बैठे थे। उन्होंने १६ वर्ष १० दिन राज्य किया।
 संघामदेवने विजयपुर नामक स्थानमें गोब्राह्मणगणके
 निर्मित २२ छाम छत्रमाला बनाये। यह सभेदा
 प्रजागणके मन्त्र मन्त्राधीन व्यस्त रहते थे। कल्प-
 यंगीय राजावोंने उन्हें मार डाला।

संघामदेवके मरनेके पीछे उनके पुत्र रामदेव राजा
 हुए। उन्होंने स्वीय प्रभूत गौर्यवर्त्मने समस्त पितृगणुर्वा-
 की विभागा किया। रामदेवने लेदरीके दक्षिण पार
 मत्तार नामक स्थानमें स्वगामर्षिष्ठत दुर्ग बनाया चौर
 उत्पन्पुके विष्णुका वीर्य एवं भन्दगणपक्ष प्रासाद
 उत्तमदुर्गेमें सुपरभावा था। उन्होंने २३ वर्ष १ मास ३
 दिन राज्य किया। चन्द्रनृत्तपर पुष्यकी भाति विधाता-
 ने उन्हें पुत्र दिया न था। उनमें भिषायाकपुरमित
 किमी ब्राह्मणके कल्प नामक पुत्रको गोद ले काश्मीर
 राज्यपर अधिपति किया। उनकी मनुजानाथी महिषीने
 वित्तदाने लदेके लीरदेग पर मनुद्रामत्र बनाया था।
 रामदेवके पीछे कल्पदेव राजा हुए। उनके राज्य

काल मनु जेने राज्यमें विषम कल्पान् चारुय किया
 था। महिषानाथी उनकी पापपरिग्र्या महिषीने
 स्वीय मन्त्रुनिर्मित मठके पार्श्वदेगमें एक मनुज मठ
 बनाया। कल्पदेव १३ वत्सर ३ मास १२ दिन
 राज्य कर सुदक्षगण कल्पके श्राय मारे गये।

कल्पदेवके परलोक गमन करने पर चण्ड संघजान
 नीतिविभारद नेदरीनायक सिंहदेवने काश्मीर राज्यके
 राजा हो १४ वत्सर ५ मास २० दिन राज्य किया।
 उनमें गुरुके माय मिल ध्यानीहार नामक स्थानोंमें
 नृसिंहदेवका मन्दिर बनाया था। उनके मन्त्रीपदेष्टा
 गुदका नाम महारक्षामी रहा। राजाने उनकी पटा-
 दग मठका ऐश्वर्य दक्षिणासदप देकर पूजा था।
 किन्तु गेयकी सिंहदेव चाम्बिकायुधि चौर विनयादि
 विषर्षण कर भगिनीके माय चाम्ब कुपे। उनके
 भगिनीपतिने कल्पपूर्वक उनकी मार डाला।

चमत्तर उनके स्त्राता सुहदेव राजा हुए। उनके
 निकट सत्सिन्ध करनेकी दिग दिगम्तरने पनेके ब्राह्म-
 णादि प्रजाने जाकर प्रायश्च किया था। यह पञ्चगूर
 देगमें पायकी भाति पूजित हुए। उनके पुत्रवभूगाहन-
 ने गभेरपुर स्थापन किया था। उनकी राज्य १८ वर्ष
 १ मास २५ दिन रहा।

सुहदेवके मरने पर ज्येष्ठराज कल्पने जाकर
 उनकी राजा नाग किया था। दानगोल भीहर्षगोहय
 (तिन्वत देगवासी) रिहय काश्मीरराज्यके सिंहा-
 सन पर बैठ गये। यह इन्द्रगुण्य पराक्रममाली रहे।
 उनके शासनकाल प्रजाकुलकी मन्त्रीपदवि चौर स्यति
 साधित हुए। उनमें ३ वर्ष २ मास १८ दिन राज्य
 कर ८८ भौकिकात्तकी परलोक गमन किया था। फिर
 उनकी पत्नीने ४ मास तक मन्त्रीके माय राज्य किया।
 उनमें काश्मीरमण्डलमें कोटा चमन किया था। उभो
 ममय सिंहदेवके प्रति सदानदेवने राज्यपट थाकाहा
 कर राज्य वा १५ वर्ष १ मास १० दिन शासन किया
 था। उनके मत्तसु होनेपर कोटादेवी ६ मास १५ दिन
 राजी रहीं।

उनके बाद शाहमौर नामक मन्त्रीने चण्डान् मन्त्रि-
 यों चौर विरोके साहाय्य मनुता रात्रोकी मार नये

राज्यशासन किया। उसी समयसे काश्मीर राजा सुसलमान शासकोंके अधीन हो गया। शाहमौरशस उददीन नामसे विख्यात रहे। पञ्चमह्वर देशनात १८ सुसलमान काश्मीर देशके सिंहासन पर बैठे। उनमें ताहराज कुलजात शम्भ-उदु दीन काश्मीरके प्रथम मुसलमान राजा थे। वह अतिशय बलशाली रहे। उनमें मिश्रणमहदोंको मार बलपूर्वक राजा लिया था। समुद्र उदु दीनके मरनेपर उनके पुत्र अमशेदन नामका जय पाया। उनमें १ वर्ष १० मास राजत्व किया। अनन्तर उनके कनिष्ठ भ्राता अला उदु दीन राजा हुवे उनमें १२ बखर ११ मास १२ दिन सुनियमसे प्रजापालन किया अनन्तर उनके पुत्र शशा उदु दीन टिग विजयी राजा हुये। उनमें ३० वर्ष राजशासनपूर्वक समस्त राजाओंके साथ प्रतिस्पर्धाकी प्रकाश किया था। फिर उनके कनिष्ठ भ्राता कुतुब उदु दीन १५ वर्ष ५ मास २ दिन तक राजा रहे। कुतुब-उदु दीनके बाद उसके पुत्र सिकन्दरने २२ वर्ष ८ मास ६ दिन राजत्व किया। उन्होंने बहुत मंस्कृत पुस्तक पढ़नेमें फेक जला छोडी थी। सिकन्दरके मरने पर उनके पुत्र अली-गाहने राजा हो ६ वर्ष ८ मास राजत्व किया। अली-गाहके बाद प्रजादिके पुण्यबलसे उनके महीदर प्रजा-रक्षक जिन-उल्ल-भव-दीनको राजा मिल गया।

वह अतिशय विद्योन्मादी रहे। अपने निकट किसीके हृदयघाहिणी कविता प्रथवा कोई उत्कृष्ट गिष्य उपस्थित करनेसे वह यथायोग्य पुरस्कार देते थे। मिस्र और हिन्दुवाड़ादि देश जयकर उन्होंने विविध गिष्यसमन्वित एक यन्त्रागार निर्माण कराया। उनके बादम खान्, हाजीखान् और बरहमखान् नामक तीन पुत्र हुवे। हाजीखान्से बरहमखान् लड़ पड़े थे। उसमें हाजीखान् जीत गये। जिन-उल्ल-भव-दीनने राज्यका बहुविध मङ्गलकर कार्यसाधनकर ५२ वर्षे राजा शासनपूर्वक मरीर छोड़ा था। उसके बाद हाजी खान् राजा हुवे। उनमें सुत्रापर "हेदरगाफी" नाम अहित कराया था। रिक्तेतर नामक कोई नापित राजा को पत्यस्त प्रिय रहा। वह मन्त्री ही प्रजाकी अतिशय कष्ट देता और राजाकी कुकार्यमें फाँस देन दुःखी

प्रजासे अत्योष लेता था। हाजी खान्ने खीय कर्मचारी और मंत्री प्रवर्तनसे हिज्जोंको सताया और अपनी पिछप्रदत्तसम्पत्तिसे ब्राह्मणोंको दूर भगाया। उनमें १ वर्ष २ मास राजत्व किया।

बाद उनके पुत्र हमनगाह राजा हुवे। उनमें दिहामठके निकट मनोहर राजधानी बनायी थी। वहाँ उनके मानने एक धर्मगाना भी निर्माण करायी। राजा हमन खान्ने अनेक मसजिद धर्मवास प्रभृति बनाये थे। फलतः उन्होंने मठ, अष्टादान, टैव-मन्दिरनिर्माण, अतिथिपूजा आदि मत्कार्य द्वारा अपनी राजसम्पत्तिका साफल्य सम्पादन किया। वह अनेक मंस्कृत पद समझने थे। हमन संज्ञीतशास्त्र भी रहे। वह स्वयं उत्तम रूपमें राग आलाप कर सकते थे। उनके समय प्रजाने सुखमें कालातिपात किया। पिछले बहरामखान् राजप्रतापकी वासनाने हमनसे लड़कर हारि थे। उनमें ६० लौकिकाब्दकी चैत्रमास १२ वर्ष ५ दिन राज्यभोगके बाद प्राण त्याग किया।

हमनके बाद उनके पुत्र सुहम्माद शाह काश्मीरका राज्यनाम कर २ वर्ष ७ मास राजा रहे। उनका राजा मंत्रियोंकी दुष्ट अभिसन्धिसे डोल उठा था। वह सेयदवंशीयोंके दीहित रहे। उसीसे सेयदोंने उनके राजमें प्राधान्य पाया था। सुहम्मादके समय मद्रों और सेयदोंका महाविद्रव उपस्थित हुआ। बाद उनके पिछले फतेहगाहने काश्मीरका सिंहासन धारोहण किया। उनके समय प्रजाने स्वधर्मनिरत और दयादासिष्णादि विभूषित ही सुखसे समय बिताया था। वह ८ वर्ष १ मास शासन कर राजभ्रष्ट हुवे। उनके कोई चन्द्रवंशीय व्यसनशून्य सोमराजानक नामक विनयो मंत्री रहे। किन्तु उनमें और गेखके आदेशसे ब्राह्मणोंसे पूर्वप्रदत्त सकल भूमि छीन देया-उपस्थित भृत्योंको प्रधान बनाया था।

अनन्तर सुहम्मादगाहने पुनर्वाक काश्मीरके राजा हो ११ वर्ष १० मास १० दिन शासन चलाया। उनके समय कण्ठभेदादि मसोदयोगे सोमराजानककण्ठक विलुप्त हिन्दु क्रियाका पुनरुद्धार किया था। किन्तु खोजा मोर अहमदन यह कह कर निर्मत्तादि ब्राह्म-

कीकी मरवा जाना—“हे विद्य भोगी! हम कबियुग
 में तुम्हारा ब्रह्मदेव कहा है? वा पावार की कहा है?”
 उसी समय मुहम्मद गाहको फतेहगाहका बल्बमंगाट
 मिला था। उनके समय चम्पू किमी चक्रवर्ती राजा
 मजदवि मिहन्दरने काश्मीरराजा चक्रमण किया।
 किन्तु मुहम्मदने उनको हरा दिया। फिर फतेहगाह
 के पुत्र यानु विजय राजा पुनः पालकी पागासि
 काश्मीर पहुँचे। उनमें मुहम्मदकी राजाभेट किया
 था। उनमें काश्मिणवर्तने दशाधीमकी काश्मीररा
 राजा बनाया। उसी समय काश्मीरराजमें तुहल्क
 राजका विषम उपद्रव उठा था। प्रथम मार्गशर पण्ड-
 लने मुगलराज शाहके निकट गमनपूर्वक काश्मीर
 राजा जीतनेके लिये भेन्व मांगा। शाहने उनको एक
 महार भौतिक दिये थे। पण्डूजने फतेहगाहके पुत्र
 नाजुकपानुकी पानि रख गिरिगधने काश्मीर राज्यमें
 प्रवेश किया। उनमें तुहल्क भेन्व द्वारा काश्मीर ज्ञात
 नाजुकगाहकी राजा बना दिया।

फिर मुहम्मद गाहके ओदरका राजा होने पर
 तुहल्क-भेन्व पवने स्यागको चला गया। नाजुक गाहने
 १ वर्ष राज्य कर मुहम्मदसे योवरान्य पाया था
 ५ वर्ष पीछे मुगलरा मुहम्मद राज्यपर अभिविषय दूजे,
 उनमें पीछे बाबर मर गये। उनके कामरानु थीर
 हुमायू नामक पुत्रपवने काश्मीरराज्य लाभ किया।
 कुछ दिन पीछे महरम नामक सेनापति बहुर सेन्व
 से काश्मीर जीतने गये थे। वीरगवने भयमें पार्वत्य
 प्रदेशकी पनायनपूर्वक गुहादिमें पायय किया। उस
 समय पुरीकी गृन्थ देव सुगन्धीने राजधानीके मकल
 यहादि जसा दिये थीर महार सहय व्यक्तियोंके प्राय
 विनाश किये। फिर काश्मीरमें कामरानीका उपद्रव
 उठा था। उनमें तुरकीमें बहू पाम नगगादि जना
 जालि थीर धन वस्त्र एवं रमणीय वस्त्र यथव्यवृत्त हरदेश
 को बसे गये। उनमें पीछे काश्मीरराज्यमें भयानक
 दुर्मिच्छ पड़ा था। मुहम्मदगाहने फिर ५ वर्ष राज्य
 कर शम्भेर परिव्याग किया।

पनगत उनके पुत्र गम्मगाह राजा दूजे। उनके
 समय लापणवपति काश्मीर चक्रमण करने भेन-

पुरमें बस पड़े। बाद मन्त्रिमूर्खी युद्ध पण्डू की गया।
 गम्मगाहके बाद उनके भ्राता हम्मद इन गाह राजा
 दूजे। उधर सुगल ईमामी नाजुकगाह पापण देग
 जीतने केन्व मह चने गये। नाजुकगाहके राजन्व ज्ञान
 काश्मीरकी प्रजासि सुप सत्त्वर्धने दिन यात्रन वीर
 समझा वैदिक किया जलाय तन्विष्य निर्वाह किया
 था। उनके समय पाम विभाग पर कर्मचारियोंमें
 विरोध हो गया। उसी विरोधने मिर्जा हेदर वीर
 दोनतवानु लडने लगे। एक माग महार कोनेके
 पीछे दोनत (गानोवानु) जार्ने थे। उनमें पीछे
 अर्धने राज्यशासन किया। उनके समय काश्मीरमें
 भयङ्कर भूमिस्वय दूबा था। उनमें पनेक म्य.न विद-
 यन्त हो गये। किमी दिन दोनतवानुने सुनसुन प्यान
 पर पभिमन्तु नामक महातश माधुके निकट गाहर
 पूजा था—“हमारा राज्य किस प्रकार विस्तु ग जांगा।”
 उस पर माधुने उत्तर दिया—“ब्राह्मणोंमें पार्विक कर
 न लेने पर तुम्हारी पभोट मिडि होगी।” यह सुनकर
 दोनतने कहा था—“हम स्नेष्य हा कर पापको
 पागासि किस प्रकार ब्राह्मणोंका कर निवारण करेंगे?”
 उस पर माधुने काधाविष्ट की गाप दिया—“पण्डित-
 के मध्य ही तुम्हारी राजन्यो विगट लायेगी।” उसीसे
 दोनतकी राजसम्पत्ति विगट हा गयी। उनमें पीछे
 हबीर नामक किमी व्यक्तिके एक मास राज्य करने
 पर गाजोवानुने राज्य पदक किया था। किमी दिन
 उनमें गवर्कामि पूजा—“हमारे राज्यमें भूमिकम्पादि
 दुर्मिमित्त कीं जार्ने है?” उनमें उत्तर दिया—“पापके
 राज्यमें कोरे घोरतर महार होगी।” कुछ दिन पीछे
 मिर्जाहेदरके सेनापति सुवत् सेव्यदन से काश्मीर जा
 पहुँचे। गात्रीगाहने सनेन्व राजाविरः नामक स्यागमें
 जा युद्ध घोषणा की थी। उन महारमें हेदरके सेनापति
 गाजोवाहका सामगहन सेनामन्त्र देव भयमें
 भाग गये। उनमें पीछे गाजोवाहने चक्र भोगीका युद्ध
 दूबा। उनमें उनमें हीमनको मार जप पाया था।

सुगलराज गाह पण्डू ल माकोके बहुरा भेन्व
 म.य काश्मीर लय करनेकी उपस्थित भोगी पर दोनत

दक्षिण-भाग—काश्मीरके दक्षिण भागमें देवसर पर गनेके बीच वासुकिनागकुण्ड है। उससे प्रायः १० कोस दूर पीरपंजालके दूसरे पार्श्वपर शुक्रावगढ कुण्ड पड़ता है। आख्यका विषय है कि उक्त दोनों कुण्डों-से एकमें जल रहने पर दूसरा सुख जाता है। उसी प्रकार प्रत्येकमें कुछ-कुछ मास जल रहता है।

जटागढ़—ज्योनगरके दक्षिण उच्च परगनामें वनराम नाम है। उस ग्राममें जटागढ़ नामको कोई कुण्ड है। वह संवत्सर शुष्क रहता है। केवल भाद्रमासकी एकादशी तिथिको उच्च भूमिमें जल जा सकेछात् उसको परिपूर्ण कर देता है। उसीप्रकार काश्मीरमें नित्य कई बहुत नैसर्गिक कुण्ड होते हैं। सामान्य मानव उनके प्रकृत तथ्यके नियममें अचम है।

जाति—काश्मीरमें नाना जातिका वास है। उनमें प्राचीन अधिवासी ब्राह्मण हैं। कितने ही ब्राह्मणों ने सुसज्जमान धर्म ग्रहण कर लिया है। काश्मीरका वर्तमान राजपरिवार डोगरा राजपूत जातिभूक्त है। डोगरा लोग लम्बे उपत्यकामें अधिक देख पड़ते हैं। उस जाति के मध्य सक्त्र ज्योकीके हिन्दू होते हैं।

पश्चिमामें सिन्धुवाहित गिरिप्रदेश पश्चिम कुंका तथा बम्बा जाति और दक्षिणाय एषी भूतलको पश्चिम गख्खर, गुज्जर, खतीर, पवन, लज्जु प्रभृति लोगोंका वास है। पूर्वोत्तममें लादख और वलतिस्तान प्रधानतः भोट जाति रहती है। जम्बूमें डोम, मेक, हिन्दू पहाड़ी, गडडी, वाचान प्रभृति मिलते हैं। उत्तराग्रेमें प्रायः सर्वत्र चम्पा और दग्दजाति देख पड़ती है।

काश्मीरके सम्बन्धमें विद्वत् विवरण मान्य करनेके लिये विहित है। इसका इत्यर्थ है—ब्राह्मण, बौद्ध, खतीर, जोरंगजक्त राजाओं और पर्वत, जेनुरजन्तुओं, मान्यप्रकृत राजाधिनिका, काश्मीरका काश्मीरकोष, दक्षिण काश्मीर, बद्र-वह-दीनशाही, काश्मीरकी इतिहास, काश्मीर, तबकाल-काश्मीर, तबकाल चक्रवर्ती, Malleon's Native States, Moorcroft's Travels, Forester's Journal, Vol II, Baron Hügel's Travels in Kashmir, Vigne's Travels, Cunningham's Ancient Geography of India; Drew's Jummoo and Kashmir; Schönberg's Travels in Kashmir; Bellew's Kashmir etc.

(वि०) १ काश्मीरदेगवासी, काश्मीरका रहनेवाला। काश्मीरक (सं० वि०) काश्मीर भवः, काश्मीर-वृक्ष। १ काश्मीरदेशीय, काश्मीरमें पैदा होनेवाला। (पु०) २ काश्मीरदेगवासी, काश्मीरका वाग्निदा। ३ काश्मीर देगका राजा।

काश्मीरज (सं० स्त्री०) काश्मीर जायते, काश्मीर-जन-ड। सत्यो जयते। पा ३। १। २१०। १ कुटुम्ब, जाफरान, केंसर। २ कुठभेद, एक दवा। ३ पुष्करभूष। ४ पतिविध्या। काश्मीरजम्ब (सं० स्त्री०) काश्मीरके जम्ब-यष्ट, बहुरी। कुटुम्ब, जाफरान, केंसर।

काश्मीरजा (सं० स्त्री०) पतिविध्या, पतीस। काश्मीरजीरक (सं० स्त्री०) शुक्रजीरक, सफेद जीरक। काश्मीरपुष्प (सं० स्त्री०) गम्भारी वृक्ष, गम्भारीका पेड़। काश्मीरा (सं० स्त्री०) काश्मीर भवः, काश्मीर-पष्प-टाप। नम मयः। पा ३। १। २११। १ पतिविध्या, पतीस। २ कविल-द्राक्षा, काला दाख। ३ स्थल पद्मिनी।

काश्मीरा (हिं० पुं०) १ वस्त्रविषय, कोई कपड़ा। यह मोटे ऊनसे तैयार होता है। २ किसी किष्का पंगुर। काश्मीरक (सं० वि०) काश्मीर भवः, काश्मीर-उड्ड। काश्मीरदेशीय, काश्मीरमें पैदा होनेवाला।

काश्मीरो—काश्मीर देगकी भाषा। यह किसी अपभ्रंश भाषासे उत्पन्न हुई है। इसके पहले पियाची प्राकृत भाषा थी। वर्तमानको काश्मीरी भाषा उसका दूसरा संस्करण है। इसकी होनेवाली दृशलाखे केपर मनुष्य है।

काश्मीरी (सं० स्त्री०) काश्मीर-डीप। गम्भारी वृक्ष, गम्भारीका पेड़। २ कविलज्जनामि, कालो कंठुरी। काश्मीरी (हिं० वि०) १ काश्मीरदेग-सम्बन्धीय, काश्मीर रसे तालुक-रखनेवाला। २ काश्मीरदेगवासी, काश्मीरका वाग्निदा। (पु०) ३ रबरका पेड़। ४ काश्मीरका ब्राह्मण। काश्मीरमें गाना स्थानों पर विदेशीय लोग देख पड़ते भी पुरातन हिन्दू अधिवासीमात्र ब्राह्मणके नामसे परिचित है। भारतवर्षमें नामा स्थानों पर को गम्भा भेद रहता है, वह काश्मीरियोंमें देख नहीं पड़ता। सब अपनेकी काश्मीरक वा साखत याखाभूक्त वतसाते हैं। पति पूर्वकालसे काश्मीर

कासन्दोषटिका (सं० स्त्री०) १ कासघ्न शोषध, खांसी-मिटानेवाली दवा । २ एक अक्षर, कसौंदी । राजवह्म के मतानुसार वह रुचिकारक, अग्निवर्धक, वायु एवं मन शक्तिकारक और वातश्लेष्मज रोगनाशक होती है । कासघ्नोदित (सं० त्रि०) कासघ्न कासरोगेण उदितः, शतम् । कासरोगी, खांसोका बीमार, जिसकी खांसी प्राणो हो ।

कासभक्षण (सं० पु०) पटोल, परवल ।

कासमर्द (सं० पु०) कासं शूदनति, कास-शूद-ण् । कर्मण्यप । १ । १ । १ । खनामख्यात पत्रशाकविशेष, कसौंदा ।

कासमर्दका पञ्चनरसमें प्रयोग करते हैं, वह अग्निदीपन और स्वादु होता है । (राजवह्म) कासमर्द तिक्त, सख्य, मधुर, कफवातघ्न, अजीर्णघ्न, कासपित्तघ्न और वरुणशोधन है । (राजनिषण्ड) कासमर्दका पण्य-पाकमें कटु, हृष्य, सख्य, लघु और श्लास, कास तथा अरुचिघ्न है । पुष्य श्लाम-कासघ्न तथा वातविनाशन होता है ।

(वैद्यनिषण्ड)

२ वैश्वारविशेष, कसौंदी । ३ पटोल, परवल ।

४ कासघ्न शोषध, खांसीकी मिटानेवाली दवा ।

कासमर्दक, कासमर्दकेली

कासमर्दकपत्र (सं० स्त्री०) कासमर्दकदल, कसौंदेका पत्ता ।

कासमर्ददल, कासमर्दकपत्र देखो ।

कासमर्दन (सं० पु०) कासं शूदनति, कास शूद कर्तरि ल्यु । पटोल, परवल ।

कासमर्दिका (सं० स्त्री०) कासमर्द, कसौंदा ।

कासर (सं० पु०) के लक्ष्मी भासरति, क-पा-स्य-भच् । मृद्विध, भेसा; उसे अधिक समय तक जनमें रहना अच्छा लगता है । (हिं० स्त्री०) २ काली भेद । इसके पेटके रोयें लाल होती हैं ।

कासरोग (सं० पु०) रोगविशेष, खांसीकी बीमारी ।

हास देखो ।

कासलक्ष्मोविलास—वैद्यकीय शोषधविशेष, खांसोकी शोई दवा । वह्म, लीह, अम्ब, ताम्ब, कांस्य, पारद, गन्धक, हरिताल मनःशिला और खपर प्रत्येक एक

एक पन्के हिमावसे एकत्र मिलाना चाहिये । फिर केगराजके रस तथा कुन्तल्य कलायके कायमें तीन दिन भावना दे उसमें इलायचा, जायफल, तेजपात, सौंण, भजवाइन, जोरा, त्रिकटु, त्रिफला, तगरपाटुका, गुह-त्वक् और बंगलीचन प्रत्येक दों दो तोला डालते हैं । अंत की केगराजके रस और कुन्तल्य कलायके कायमें जपेट चणक प्रमाण वटिका बना ली जाती है । अतुपान शीतल जल है । मसूर, मांस, दुग्ध और स्निग्ध भाहार पथ्य होता है । शकाम्बकी छोड़ देना चाहिये । उक्त शोषध सेवन करनेसे कास, यक्ष्मा, खास, ख्वर, पाण्डुरोग, शोथ, शूल, अर्थ प्रभृति रोग शान्त होते हैं । फिर कास-लक्ष्मोविलास बनवर्धक और लक्ष्मा तथा अरुचि-नाशक भी है । (नेपथ्यरत्नो)

कासलनाडू—तेलक ब्रह्मण जातिका ६ ठां भेद । ऐले-इरोपाव्यायने यह भेद डाले थे ।

कालसंहारभेरव (सं० पु०) वैद्यकीय कासरोगका शोषधविशेष, खांसीकी एक दवा । पारद, गन्धक, ताम्ब, शङ्खभस्म, सोडागोकी फूसो, लीह, मरिच, कुष्ठ, तासोशपत्र, जातोफल, खवक प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले एकत्र मिला भूकपर्णी, केगराज, निर्गण्डो, काकमाचिका, द्रोणपुष्पी, शालबी, पीससुन्दर, भागों, हरितकी तथा धासाके रसे घांटना चाहिये । पञ्च-गुश्वाके समान वटिका सेवन करनेसे कासरोग दूर होता है । (संसारहार)

कासहरवर्ग (सं० पु०) कासरोगनाशक द्रव्य समूह, खांसीकी बीमारी दूर करनेवाली द्रव्य चीजोंका जूथोरा । इसमें द्राक्षा, चमया, आमलक, विषलो, दुरालभा, शृङ्गी, कण्टकारी, श्वीर, पुनर्नवा और तामानका डालते हैं । (चरक)

कासहालाय (सं० पु०) १ कण्टकारीकृत विषकीसूर्ण-युक्त कासहर काय, खांसीका कोई कादा । यह कण्ट-कारोसे बनता और उसमें विषकीपूर्ण पड़ता है । २ धूमपान विशेष । सममें धूमकी भांडी १६ चण्डो रहनी है । धूम द्रव्यकी शूद्र कोषणमें जनाना चाहिये ।

कासान्तरस (सं० पु०) कासनिवारक रसविशेष, खांसीकी एक दवा । पारद, गन्धक, शहविध, शान-

दर्पो पीर धान्यक प्रत्येकका चर्चे समभाग तथा सर्व-
दूर्ध्व मम मरीचकूर्त दान चार गुच्छाके तुल्य मधुके
साध सेवन करनेसे कामरोग पारोप होता है ।

(सोमनाथचर्य)

कासार (सं० पु०) काम-घारजू, कल्प जलप्य कामागो
यत् । दण्डादण्डः १५५ १। १२१। १ हृद्गत मरोवर, वडा
ताम्राप । २ दण्डप्रक्रातोय हृत्पवित्रिय । उक्त हृत्में
३० रमण रहते है । ३ अनामस्यात पक्षाघातियोग,
एक मिटाई । मापकल्याणो (उडड), गृह्णटक
(सिंघाहा), वंसर, गालूक प्रभृति द्रव्य सेवण कर
अतुरोगेय अण्ड बनाता पडते है । समके पीछे उक्त
घण्टो तप्त घृतमें भून घनीको घागभोमें डालते है ।
दामार—हृदिजायक पीर पश्चिक रुच तथा विच्छिन्न
न होनवाना है । यह समनेच्छा, कफ पीर विपत्तिका
नाश करता है । (माधवचर्य)

कासारि (सं० पु०) कासस्य हरिः नाशकः, इ-तत् ।
काममट, कर्षोदा ।

कासालु (सं० पु०) कामजनक पासुः, मध्यपदभो० ।
कोट्टपदममिह पालयिगेय, । उसका संस्कृत
पर्याय—कामकन्द, कन्दालु, पासुक, पासु, विगास-
पक्ष पीर प्रमाण है । राजनिघण्टुके मतसे यह मधुर-
रस, अणुवीर्य, गिरासंगोषक, पन्निशारक पीर कण्ट,
वायु, श्लेष्मरोग तथा अरुचिनाशक होता है ।

कासिका (सं० स्त्री०) १ कफ, खाँसी । २ वनसुष्ठ, जङ्गली
मोठ ।

कासिद (सं० पु०) पत्रवाहक, हरकारा ।

कासिप—राजपुत्रोको एक जाति । कासिप लोग गुरु-
प्रदेगमें रहते है । अपने मोतसे वह कमरपर्वशीय
अपिय है । परन्तु बहुतसे लोग उन्हें अमिय नहीं
मानते ।

कासिम—बसराके गामनकर्ता हजाजके आतुप्युय ।
एहीय पष्टम गताष्टकी भारतलननाके रूपकी श्या
तुहफ्ताराज खोकाके अन्तःपुरमें निकली थी । अमीका-
को लोभ भग गया । शासधारी परब उनको मनमुष्टि
के लिये चर्चवोतमें बल दिये । हिन्दुप्रदेगके देवन
नामक बन्दरमें भारतवासियोंने चर्चो पोतको राक्ष-

मण किया था । उक्त घटनाका समाचार खोकाको
मिमा । चारवोकी मानरत्ताके लिये विंगलियवियं मुह-
यद कामिम १०० पयारोकी पीर १०० पटातिके
साध भेजे गये । सुत्रकने विपुल साधमसे देवलबन्दर
पाक्षमण किया । उस समय समन्ता मिन्दुप्रदेग मून-
तान महु हिन्दु राजा डाहिरके अधीन था । महाराज
डाहिर राजगी रक्षाके लिये कामिमसे बहुत लड़ ।
यह अर्थ हाथी पर चढ रहमें गये थे । घटनाक्रमसे
सुंमनमानोके केके पन्निगोनक द्वारा उनका हत्तो
पाहत हुआ पीर प्रवल सेगसे पयारोकेके साध नदीके
अस्त्रातमें गिर पडा । हिन्दुओंका मैन्य राजाकी यह
अस्थ्या देख भागा था । पीर कामिम उस समय
सुनिधा देख अपने मुष्टिमिग मैन्यमें डाहिरकी मगर
महम विपुल बाहिनीने विदलित करने लगे । मन मत्त
म्राष्ट्रय पीर राजपुत सुगनमानोके हाथ निहल द्ये ।
दुर्भाग्य क्रमसे हिन्दुराजने यादगसह कातका पातिय
खोकार किया था ।

कासिम देवलक्षेत्र परिव्याग कर म्राष्ट्रणावादके
अभिमुख अपसर द्ये । राजभक्त म्राष्ट्रय पीर राजपुत
डाहिरकी पाकमिक विपद् देखे घबरा गये थे ।
सुतरा सामर्थ्य रहते भी किछीने राजधानीकी रक्षा-
के लिये विनिय यत्त न किया ।

सुबन्धद कासिमने म्राष्ट्रणावाद नगरमें जाकर
देखा कि एक पीर गगनस्पर्गी प्रज्जमित चिता
सज्जित रही पीर दूसरी पीर महाराज डाहिरकी
पीर सहियो मनेन्य विपक्षके गतिरोधाघं उपस्थित
थीं । हिन्दु पीरवाला अनेक चेटा करने पर भी राज्य
बचा न सकीं । उन्होंने देखा कि भीद म्राष्ट्रणोकी देखा
देखो उनका राजपुत मैन्य भी पृष्ठ प्रदगंन करता था ।
उस समय पन्निके मानकी रक्षाको समीने सपथी पीर
पुरमदिनामगंके साध उभो अणुत्त वितापर पाराहण
किया । कामिम अनेक उपायोंके पीछे दो राजकन्याओं-
को बन्दी बना अग्नेय भोट गये । तुहफ्ताराज रक्षाफाने
हाममकामकी समामें उक्त द.मो गजकन्याओंका बुलावा
था । अथे उा कन्या समामें आहर राने लगी । अनीकाने
रौनेका कारण पूछा था । राजवानाने उत्तर दिया—

(क्लो०) ८ मांस, गोशु। (त्रि०) ८ काश्यप
प्रजापतिवंश वा गोत्रसम्बन्धीय।

काश्यपायन (सं० पु०) कश्यपस्य गोत्रापत्यम्, कश्यप-
फक्। नकादिभ-फक्। पा ४। १। ८८। काश्यपके गोत्रापत्य
वा वंशधर।

काश्यपि (सं० पु०) कश्यपस्य अपत्यम्, कश्यप वाङ्म-
कात् इत्। १ अरुण, सूर्यके सारथी। २ गरुड।

काश्यपिन् (सं० पु०) काश्यपेन प्रोक्तं अधीशते इति,
काश्यप-पिनि। शौनकादिभ-न्वत्ति। पा ४। १। १०६। काश्यप-
प्रथीत शाखाविशेषके अध्येयनकर्ता।

काश्यपी (सं० स्त्री०) कश्यपस्य इयम्, कश्यप-अ-
ङीप्। तत्त्वेन। ४। १। १००। १ पृथिवी, लमीन्। २
प्रजा, रैयत।

काश्यपीवालाक्यामाठरीपुत्र (सं० पु०) वेदशाखा
प्रथतक एक ऋषि।

काश्यपेय (सं० पु०) काश्यपी ऋषिदितिः तत्र भवः,
काश्यपी-टक्। १ चर्ष, चुरज।

“नवाङ्गुलमसहायं काश्यपेयं नवाङ्गुलिम्।

भ्रालारिं सर्वेवापन्नं प्रचतोऽपि दिवाकरम्॥” (पूर्वप्रधान)

२ देवमात्र। ३ असुरमात्र। ४ गरुड।

काश्यायन (सं० पु०) काश्यपस्य काशिराजस्य गोत्रा-
पत्यम्, काश्य-फक्। काशिराजवंशीय।

काश्यरी (सं० स्त्री०) काश-वनिप् ङीप् रथ। नो-र-च।
८। ४। १। १० इत्य गम्भारी वृष, गम्भारीका छोटा पेड़।

काय (सं० पु०) कश्यते ऽनेन, कष करणे घञ्। १ कष्टि-
प्रस्तर, कसीटी, २ ऋषिविशेष।

कापाय (सं० त्रि०) कापायेण रक्तम्, कपाय-अण्।
कपायद्रव्य द्वारा रक्षित, सुखे नाल।

“कापायपरिचालयु ऋषे रामो मन्विति।” (रामायण २। १२। ८०)

कापायकन्य (सं० पु०) कापाया कन्या यस्य, बहुव्री०।
कपाय द्रव्य द्वारा रक्तवर्ण कन्याधारी भिक्षुकविशेष।

कापायण (सं० पु०) कायस्य ऋषेः गोत्रापत्यम्, काय
फक्। कायऋषिमौल्यी कोई ऋषि। बहु वाजम-
नेय शाखाभूक्त ये।

कापायवसन (सं० त्रि०) कापायं कपायरक्तं वसनं
यस्य, बहुव्री०। कापायवस्त्रं वनिष्ट, जेकरे कपड़े पहने
हुवा।

कापायवासिक (सं० पु०) कापाये कापायरक्तवस्त्रे
वासोऽस्यास्ति, कापाय-वास-ठन्। कौटिशियेण, एक
कीड़ा। बहु सीम्य भीर सविप होता है। उसके काटने-
से श्लेष्मजन्य रोग ही जाता है।

कापायी (सं० पु०) कपायेण प्रोक्तममचीते, कपाय शौ-
कादित्वात् णिनि। १ कपाय ऋषिकथित शाखाधायी।

(स्त्री०) २ सविप मलिका विशेय, कोई लहराही मक्की।
काठ (सं० स्त्री०) काशसे दीप्यते ऽनेन, काय-कथन्।

एनि उविनीरमिकाभियः कथन्। उण् १। २। दाह, कफड़ी,
काठ। काठका लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

“असारमतिपक्वं यत् सुष्टिमथे समीपति।

तत्काठं काठमिवाङ्गुः खदिरादिहृद्यवत्॥”

खदिर प्रकृति हृद्य समृद्धका जो खण्ड सारयुक्त,
पत्यन्त शुष्क और सुष्टि द्वारा प्रक्षय करनेके उपयुक्त
होता, वही काठ कहाता है।

काठक (सं० स्त्री०) काठं घत् कायति, काठ क-क।
यदा काठं विद्यतेऽस्य, काठ-ह कुक्-हलस्य तुक्।

१ अगुरु। २ काठागुरु। ३ छथ्यागुरु। (त्रि०)
४ काठयुक्त।

काठकदली (सं० स्त्री०) काठवत् काठना कदली,
मध्यपदलो०। वन्य कदलीविशेष, कठकेना। उसका

संस्कृत पर्याय-सुकाठा, वनकदली, काठिका, गिला
रथा, दाहकदली, फलाख्या, वनमोचा और अम-
कदली है। राजनिघण्टुके मतानुसार बहु रचिकारक,

रक्तपित्तनाशक, शीतल, गुरु, मग्दानिकारक, दुग्ध्य
पीर मधुररस होता है। उसके खानसे ज्वर, दाह,
मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, विस्तोतक पीर अस्थिरोग दूर

होता है। (वैषकनिघण्टु)

काठकौट (सं० पु०) काठे जातः कौटः काठच्छेदको
कौटो वा, मध्यपदलो०। काठको काटनेवाला कीड़ा,
घुण, घुन।

काठकीय (सं० त्रि०) काठस्य इदम्, काठ-ह। अगुरु
काठसम्बन्धीय।

काठकुटक, काठका देवो।

काठकुट (सं० पु०) काठं कुटति, काठ-कुट-पप्। मत-
च्छेद, कठफोड़वा। उसका मांस लघु, वातहर, पन्नि-

“मैं आपके चयोग्य हूँ। कासिमने मेरा धर्म बिगाड़ डाला है।” यह बात सुनते ही खलीफाने भादिय निकाला था,—“शौन्न ही उस दुष्टत कासिमकी खाल खींच कर यहाँ ले जावो।” भादिय पालित हुआ। कासिमका देह राजसभामें लाया गया था। राज-कन्याने हंसकर कहा—“मेरी मनस्सामना सिद्ध हुई। मैंने जो दोष लगाया, प्रकृत पलमें कासिम उसका पाप न था। जिसने मेरा पिछड़ग नाम किया, उसीसे मैंने बदला चुका लिया।”

११४ ई० की मुहम्मद कासिम मर गये।

कासिम—१ जाफरनामा-भक्तवरी नामक ग्रन्थके रचयिता। इस पुस्तकमें दोस्त मुहम्मद खानूके पुत्र भक्तवरी खानूके विजयका वर्णन है। इसे कासिमने १८४४ ई० की सम्पूर्ण किया था। पुस्तक पद्यात्मक है। अंगरेजोंके काबुल-युद्धका विषय भी इसमें सन्निविष्ट है। आंगरेजोंने रहनेसे लोग इन्हें कासिम भक्तवरीवादी कहते हैं। २ इक़ीम मीर कुदरत-उल्लाका उपनाम। उन्होंने एक तजकिरा (कवियोंका जीवनवृत्तान्त) लिखा था।

कासिम फलीखानू (मीर)—बङ्गालवाले नवाब मीरजाफर फलीखानूके नामाता। साधारणतः इन्हें लोग मीरकासिम कहते थे। १७६० ई० की अङ्गरेजोंने इन्हें अशुरके पदपर प्रतिष्ठित किया। कारण इन्हें बङ्गालकी आर्थिक व्यवस्था भली भाँति विदित् रछे। किन्तु थोड़े दिन पीछे ही इन्होंने मुहम्मदने जा निवाम किया और अंगरेजोंकी बङ्गालसे निकालनेका बीडा चढा लिया। मीरकासिमकी अंगरेजोंके राजनतिक अधिकार और व्यवसायिक प्रसारकी हकि अच्छी लगती थी। १७६४ ई० की २री अंगरेजकी उदयनाले पर युद्ध हुआ। उसमें इनकी सेना हारो थी। फिर यह बङ्गालके सिंहासनसे उतारे गये। नवाब जाफर फलीकी पुनः अवनता पद प्राप्त हुआ। मीरकासिम यह हाल देख पागल बन गये थे। इन्होंने मुहम्मदसे भाग पटनेमें ला आश्रय लिया और वहाँके समस्त अंगरेजोंको वध करनेका भादिय दिया। उस समय छोटे वड़े

सब मिलाकर १५० अंगरेज रछे। ५वीं अक्टोबरको शीखर नामक किसी जर्मनकी आगासे सबके सब मारे गये। अक्टोबर मासमें ही अंगरेजोंने मुहम्मद अधिकार किया था। फिर इन्होंने नवम्बरको पटने पर आक्रमण पड़ा। मीरकासिम अपनी फौज और दौलत ले लखनऊको भागे थे। १७६४ ई० की ३३वीं अक्टोबरको बखरमें को युद्ध हुआ, उसमें सुजा-उद-दौला की फौजको मीजर कारनाकने पूर्णरूपसे हरा दिया। दूसरे ही दिन मुगल-बादशाह शाह पालम अंगरेजोंसे आ मिले। फिर अंगरेजी फौज पवधकी आक्रमण करनेके लिये चली थी। मीरकासिमको लूट लेते भी लखनऊके नवाबने अंगरेजोंके हाथ सौगता न चाहा। मीरकासिम फिर रङ्गेलखण्डका भागे और वहाँ आनन्दसे रहने लगे। इनके पास कुछ बहूनृत्य रत्न और मित्र बच गये थे। किन्तु अपने कपट-प्रवन्धके कारण इन्हें वहाँसे भी भाग गोहाटके रानाके पास जाकर रहना पडा। कुछ वर्ष पीछे फिर यह योधपुर गये और वहाँमें दिखो पहुँच १७७४ ई० को शाह पालमके नौकर बने। १७७७ ई० की इनका मृत्यु हुआ। इन्होंने साथ बङ्गालकी सुवेदारी मिटोयी। कासिम फलीखानू नवाब—रामपुरवाले नवाबके चाचा। १८६८ ई० की यह वरेलोमें रहते थे। १८६८ ई० की २२ वीं दिसम्बरको ही इनकी दुहितिका वध हुआ।

कासिम कादीरी शैख—एक सुसज्जमान साधु। इन्हें लोग शाह कासिम सुलेमानो भी कहते थे। कन्न चुनार में बनी है। इनके पुत्र शैख कबीर १६४४ ई० की कबीरजमें मरे और गडे थे। साधारणतः लोग उन्हें वालापीर कहते रछे। शाह कासिम सुलेमानोके मकबरेका व्यव करारहित भूमि और माग रोजाना पैन-गनसे चलता है।

कासिम कादी मौलाना—एक संयद। इनका यथोचित नाम नजम-उद-दौनु और उपाधि अबुन कासिमरहा। यह अबदुन रहमानुजामीके मिथ्य थे। इन्होंने हिरातसे बादशाह हुमायूँके आता मिर्जा कामरानूके साथ

महो की दावा थी। फिर १५५० ई० को उनके मरने पर यह वादगाह चक्रवर्ते समय भारत चले गे। इन्हीं बहुत समय तक पनीहुमी खान्के भ्राता बहादुर खान्के साथ कामिन् निवास किया और उनके मरने पर वधमि मोट चामरेमें छे। डाक दिया। १५८० ई० को १० वर्ष पयवकी चामरेमें छी इनका मृत्यु हुआ।

कामिन् खान्-१ बहालके कोरे नवाब। इसनामखान् के मरने पर जहांगीरने कामिन्खान्को बहालका सूबेदार बनाकर भेजा था। उस समय निजमद्दौले मग कीर्ति स्थापन रहा। यह दोराम्हा निवारण कर न सके। उसीमे पदच्युत होने पर १६१८ ई० को दिल्लीको भेजे गये।

२ मीरजाफरके भाई। गीराज-छद्द-दोवाके समय कामिन्खान् राजमहलके एक सेनाध्यक्ष रहे। गीराज छद्द-दोवाने चंगरेउके भयमे त्रवारजधानीको छुटाना ग्राह नामक सुसज्जमान फकीरका चाग्रय लिया, तब कामिन्खान्ने खबर पाते ही गुप्तभावसे जाकर नवाबको बांध लिया और मीरजाफरके पास भेजे दिया। मीरजाफरको भी फकीरकर देखे।

कामिन् खान् जमीनी-बहालके कोरे सुसज्जमान नवाब नवाब किदाखान्के मरने पर दिल्लीका ग्राहजखान्ने १६२० ई० कामिन्को बहालकी सूबेदारी दी थी। यह धर्मभीरु, साहसी, वीर और सुकवि रहे। उनके समय पोर्तुगीज बहालने माथाप्य लाभ करते थे। कामिन्ने ग्राहजखान्की अनुमति से १६३२ ई० को हुगलीमें उन्हें पालकमण किया। ३ मास पबरोधके पीछे पोर्तुगीजोंने हुगली छोड़ा थी। पापः मरुस्त्राधिक पोर्तुगीज मारे और चार हजार पकड़े गये थे। उस समय पनेक पोर्तुगीज-रसना ग्राहजखान्के पत्नःपुर-गोमाथं दिल्लीको भेरिन दुर्यो। चोरी-थेवा। हुगली जयक पत्यहाल पीछे टाखानगरमें कामिन् मर गये।

कामिन् खान् जमीनी नवाब—बादगाह जहांगीर और ग्राह-जहांगीरने मन्नाके एक मन्नाद। इनके पधि-कारमें ५००० सवार रहे। यह सहायके पधिवादी थे। मन्नाका धर्ममे इनका विवाह हुआ। यह मूरज

दांडी मगिनी रणे। इसीमे कभी कभी मन्नाद इन्हे चोरीमें कामिन् खान् मन्नाका कर्तते थे। यह एक हीवान्के पत्रकार रहे। उपनाम कामिन् था। १६२८ ई० को इन्हे ग्राहजहांगीरके समय किदाई खान्के मन्ना पर बहालको सूबेदारी मिली। इन्हीं पीछे १०००० पोर्तुगीजोंने मार और बाकीको भगा हुगली पधिकार किया। इन छटमाके ३ दीन पीछे १६३१ ई० को इनका मृत्यु हुआ। इन्हीं चामरेमें २० बीघे भूमि पर एक छद्दत् भवन बनाया और १० बीघे भूमि पर एक ख्याम बनाया था। किन्तु पब उरुषा कोई विश्र देख नहीं पड़ता।

कामिन् खान् गोप—इसनाम खान्के भ्राता। इनका निवासस्थान फतेपुर-गीरको और सवाधि सुदतगिन् खान् रहा। बादगाह जहांगीरके समय इन्हे ४०००० सवारोंपर पधिकार मिला था। १६१३ ई० को भाईके मरने पर जहांगीरने इन्हे बहालका सूबेदार बनाया। इन्हीं चामरे पालकमण किया था। किन्तु चामरे-योने रातकी घावा कर इनको बहुतसे फौज मार डाली थी। इसीमे यह दिल्ली वापस बुलाये गये। फिर इनका मृत्यु हुआ।

कामिन् यरौद ग्राह १—दिलिपमें यरौदगाहीवग-के प्रतिष्ठाता। यह एक तुर्की या जर्जिय गुलाम रहे। धीरे धीरे ये दिलिपके २५ मुहम्मदगाह नवाबके यज्ञीर हुये और पपने प्रभावमे राज्यके प्रभु बन गये। फिर १४८२ ई० को इन्हीं पाटिल ग्राह, निजाम ग्राह और इनाद ग्राहके परामर्शानुसार पपने-नी स्वतन्त्र बनाया तथा पपने नामका सिखा बनाया। नवाबको केवल पलमदाबाद वीरका नगर और दुर्ग मिला था। १२ वर्ष राज्य करनेके पीछे इनका १५०४ ई० को मृत्यु हुआ। फिर इनके पुत्र पमोर यरौदने राज्यका उत्तराधिकार पाया था। इन्हीं पपना पैमत्र सूब हटाया और मुहम्मद ग्राहको पपने पितामे भी पधि-कीवा देखाया। इस धर्मके निज मात मुहम्मदने पलमदाबाद वीरका राज्य बनाया, उनका नाम भीसे सिधे अनुसार है —

काठरजनी (सं० स्त्री०) दाहहरिद्रा ।
 काठरज्जु (सं० स्त्री०) लकड़ी बांधनेकी रखी ।
 काठसेखक (सं० पु०) काठ लिखित, काठ-लिख
 यत् ल् । घुणकौट, घुन ।
 काठनोही (सं० पु०) काठेन युक्त लोहं विद्यते घट.
 यदा काठश्च लोहश्च ते स्तोऽत्र, काठ-लोह-इनि ।
 वातार्द्रं, लोहयुक्त सुहर ।
 काठवक्षिका, (सं० स्त्री०) काठवतयुक्ता वक्षिका, मध्य-
 पदलो० । १ कृत्वा, कृटथी । २ कटकवक्षी, एक लता
 काठनाट (सं० पु०) काश्मीरदेशस्य स्थानविशेष
 काश्मीर की एक जगह ।
 काठशान् (सं० स्त्री०) काठं अस्यास्ति, काठ-मत्-पु-
 मस्य यः । काठनिगिष्ट, लकड़ी रखनेवाला ।
 काठशालुक (सं० पु०) शालुकशाकभेद, किसे
 किष्का बध्ना ।
 काठविवर (सं० स्त्री०) काठस्य विवरम्, मध्यपदलो० ।
 तश्कोटर, पेड़की खोह ।
 काठगारिषा (सं० स्त्री०) काठमिव शृङ्गा गारिषा,
 उपमि० । अनन्ता, अनन्तमूल ।
 काठगालि (सं० पु०) रत्नगालि, लालधान ।
 काठगारिषा (सं० स्त्री०) खेतगारिषा, सफेद सतावर ।
 काठस्तम्भ (सं० पु०) काठेन निर्मितः स्तम्भः ।
 काठका स्तम्भ, लकड़ीका खंभा ।
 काठा (सं० स्त्री०) कायते प्रकादते, काय-पशन् व्रजेति
 प्लवम्-टाप् । १ टिक, जानिय, तर्क । २ स्थिति, ज्ञानत ।
 ३ सीमा, छट । ४ उत्कर्ष, बड़ाई ।
 "इक्ष्वाणु परं त्रिविन् स काठा सा परा गतिः ।" (बृह सुवि)
 ५ समयविशेष, कोई वक्त । सुश्रुतसंहिता और
 विष्णुपुराणके मतसे १५ चतुर्दशदिने १ काठा होती
 है । किन्तु मनुने १८ निमेषकी ही १ काठा मानी है ।
 "निमेषो दस पादो च काठा निमेषु साः कलाः ।" (मनु १।६४)
 ६ कश्यपकी कोई पत्नी । (भागवत १।६।२४) । ७ दाह-
 हरिद्रा ।
 काठागार (सं० स्त्री०) काठनिर्मितं आगारम्, मध्य-
 पदलो० । काठगृह, लकड़ीका मकान ।
 काठागुह (सं० स्त्री०) पौतवर्षे पशुगुहं पोला-भगार । वट

कट, उष्य, लेपमें रूख और कफज होता है (राजनिषध्)
 काठामलकी (सं० स्त्री०) काठधात्री, छोटा थावना ।
 काठाम्बुवाहिनी (सं० स्त्री०) अम्बुनां जनानां वाहिनी,
 काठनिर्मिता अम्बुवाहिनी, मध्यपदलो० । जलसेवन-
 के लिये काठनिर्मित पात्रविशेष, द्वापी ।
 काठाम्बु, काठाम्बु देखो ।
 काठालुक (सं० स्त्री०) काठमिव कठिनं शालुकम्
 मध्यपदलो० । काठवत् कठिन कान्दविशेष, लकड़ी
 जैसी कड़ी एक शाल् । वट मधुररस, शोथन, गुरु, यक्ष
 एवं स्तन्यवर्धक और रक्तपित्तनाशक होता है । (वृहत्)
 काठायन (सं० पु०) घुण, घुन ।
 काठामन (सं० स्त्री०) काठनिर्मितं आसनम्, मध्य-
 पदलो० । काठ का आसन, लकड़ीकी चौबे उगरेज ।
 काठिक (सं० स्त्री०) काठमस्यास्ति, काठ-ठन् । १ बहु
 काठयुक्त, बहुत लकड़ी रखनेवाला । (पु०) २ काठ-
 वाहक, लकड़ियारा ।
 काठिका (सं० स्त्री०) काठ-पल्पार्थे डोश, काठो स्त्रार्थे
 कन्-टाप् ङव्यय । १ सूद्र काठल्लण्ड, लकड़ीका छोटा
 टुकड़ा । २ काठ हटनेसे, कण्ठकेलिका पेड़ ।
 काठरसा (सं० स्त्री०) कदनो ह्व केलिका पेड़ ।
 काठिका (सं० स्त्री०) १ कदनोह्व, केलिका पेड़ ।
 २ राजार्क, बड़ा मदार ।
 काठी (सं० स्त्री०) काठं अस्यास्ति, काठ-इनि । बहु
 काठयुक्त, लकड़ीवाला ।
 काठील (सं० पु०) काठिना इत्यते चिद्यते, काठि-इल्
 कर्मणि घञ् । राजार्कह्व, बड़ा मदार । २ कुलिय-
 मस्य, एक मछली ।
 काठीला (सं० स्त्री०) कुलित्ता ईषद या अष्टीसेव,
 कोः कादेशः । १ राजार्क, बड़ा मदार । २ कदनोह्व,
 केलिका पेड़ ।
 काठीलिका, बाडीना देखो ।
 काठेनु (सं० पु०) काठवत् कठिनकाण्ड इत्युः, उप-
 मि० । खेतेंनु० मफेद जख । वट काष्ठाके समान
 गुणयुक्त और वातकोरन होता है ।
 काठोदुम्बरिका (सं० स्त्री०) काठप्रधाना उदुम्बरिका,
 मध्यपदलो० । काठोदुम्बरिका, कठगूनर ।

कासिम बरोद १ म.	...	१४८२-६०
अमीर बरोद	...	१५०४ "
अली बरोद (प्रथम नवाब)...	...	१५४२ "
इब्राहिम बरोदशाह	...	१५६२ "
कासिम बरोद शाह २य	...	१५६८ "
अली बरोद शाह २य	...	१५७२ "
अमीर बरोद शाह २य	...	१६०८ "

कासिम बरोद शाह २य—पहमदावाद बीटरके एक नवाब। १५६८ ई० को इन्हें अपनी भ्राता इब्राहिम बरोदशाहका उत्तराधिकार मिला था। किन्तु १५७२ ई०को इ वर्ष राज्य करनेके पीछे इनका मृत्यु हुआ। फिर इनके पुत्र २य मौजा अली बरोदने राज्य पाया था। उन्होंने २७ वर्ष राज्य चलाया। १६०८ ई०को २य अमीर बरोदने इन्हें मार राज्य अधिकार किया। यह अपने वंशके अन्तम नवाब थे।

कासिमबाजार—दंगानके मुहिंदावाद जिलेका एक पुराना शहर। यह अक्षा २४° ८' ४०" उ० और देशा० ८८° १०' पू० गंगाके तट पर अवस्थित है। ई० १८ ग यताब्दके वहाँ पोर्तगाली, फ्रांसीसियों और अंगरेजों को बोटी थी। रोगमकी बड़ा व्यापार होता था। आजकल यह बात नहीं। कासिमबाजारमें कई बड़े बड़े जमीन्दार रहते हैं।

कासियारि—बङ्गालका एक प्राचीन घास। यह मेदनी पुरसे प्रायः ३०० मील दूर दक्षिण-पश्चिम अवस्थित है। वहाँ अनेक प्राचीन कीर्तियाँके भग्नावशेष पड़े हैं। इनमें कुदस्वर दुर्गका वहिःप्राचीर आज भी बहुत कम बचा हुआ है। यह रक्षावर्ष बालुका-प्रकारसे बना है। कुदस्वर दुर्ग प्रायः १० फीट ऊँचा है। प्राचीरके बगलमें चार भेहरावोंवाला बरामदा है। अर्धन्तरकी पूर्वदिक्के घास्तभागमें शिवमन्दिर बना है। उक्त मन्दिरके अन्तर्वर्ती किसी रूपमें शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है। ठीक मन्दिरके सामने पश्चिम प्रान्तमें एक मसजिद है। वहाँ लड़ीया भाषामें खोदित शिलालिपि लगी है। उसके पाठसे समझ पड़ता है कि औरङ्गजेबके राजत्वकाल सुषम्बद ताहरने यह मसजिद बनवायी थी, ११०२ हिजरीकी उसका निर्माणकाल शेष हुआ।

पूर्वदिक् एक गभीर दीर्घिका (तलेया) है। उसे योगेश्वरकुण्ड कहते हैं। यह कुण्ड कुमीरसे परिपूर्ण है। वहाँ सुगन्धवाड़ा नामकी एक वृक्षी (गाव) है। उसमें सुगन्धों द्वारा निर्मित अनेक मसजिदें और इमारतें खड़ी हैं। सुगन्धोंके शासनकाल कासियारि घास टमर वाणिज्यका केन्द्रस्थल और तहमीलतारीका मंदर था। किसी मसजिदमें अरबी भाषामें खोदित एक प्रस्तरलिपि है। उससे भी मालूम पड़ता है कि यह औरङ्गजेबके समय बनी थी। अर्धनावशेषके मध्य किसी स्थान पर एक सुसज्जमान फकीरकी प्रस्तर-मूर्तिका भग्नावशेष पड़ा है। उसके गावमें फारसी भाषामें खोदित एक शिलालिपि है। उसमें भी औरङ्गजेबका ही समय मिलता है।

कासियारिसे कुछ दक्षिण सुगन्धमारी घास है। सुसज्जमानोंने सर्वप्रथम कुदस्वरके हिन्दुओंको धरा मन्दिरादि ध्वंसकर उनके स्थानमें मसजिद बनायी थी। फिर मराठोंने सुगन्धमारीमें ही सुसज्जमानोंको पराजय किया। सम्भवतः उक्त पराजयके पीछे ही सुगन्धमारी नाम पड़ गया।

कुदस्वरके सम्बन्धमें स्थानीय प्रवाद इस प्रकार है— लड़ीयाके देवराजधंभीय महाराज कपिलेश्वरने यह मन्दिर बनवाया था। फिर उन्होंने इसमें गगनेश्वर नामक शिवलिङ्ग स्थापन किया। कहते हैं यह स्थान पहले जंगलसे घिरा था। सुवर्णरेखा बहरही थी। उस समय यहाँ बाघराज नामक कोई राजा रहें। बाघराज नामसे ही सम्भवतः बाघभूमि परगना कहाया है। उनके अनेक दुग्धवती गाँवें थीं। उनकी लेकर कोई रत्नक प्रतिदिन सुवर्णरेखाके पश्चिम तौर चराने जाता था। कुछ दिन पीछे एक गायका दुग्ध प्रत्यक्ष घटने लगा। राजाने सुनकर सोचा सम्भवतः रत्नक सुधातुर होनेपर वनमें दुग्धकर पी जाता होगा। उन्होंने किसीदिन रत्नकको बुधा विस्तर तिरस्कार किया था। रत्नक हथा तिरस्कार ही दूसरे दिन दूध घटनेका पता देनेके लिये उनी गायके पीछे पीछे फिरता रहा। गायने वनमें जाकर प्रथम घेत भर घास खायी, फिर

वद नदी पार हो पूर्वमुख एक चर्म चमो गयो ।
 एकमे पदच उमडा अनुसरण किया था । कुछ दूर
 जाकर चर्मने देखा कि गाव गिवन्दित्र पर दुग्धधारा
 बौद्धती थी । उसने चमो दिन घर जा रात्राके उक्त
 घटना बता दी । बाघराजने फिर वह बात महाराज
 कविमेश्वरसे कही । कविमेश्वरने वम गिवन्दित्र पर
 हृदय्यका मन्दिर बनवाया और गगनाररन्दिका नाम
 रखाया । उसने योगेश्वरकुण्ड भी स्तन कराया था ।
 सुवलमासोके समय पद्मल समद नामक किमी पवित्र
 सुभमान फकीने चलपूर्वक उक्त मन्दिर पधिकार
 और प्रभने गौहत्या कर मन्दिरको पवित्रता बिगाड़
 डानी थी । फिर उसने गिवन्दित्रको स्थानान्तरित
 कर चत्वरके मध्य तीन मजिटे बनायो । कहते है
 कि गोरक्षके मन्दिर कलहित होने पर महादेवकी
 लिङ्गमूर्ति पल्लरित हो पगरा नामक स्थानमें प्रका-
 शित हुयो थी । फकीरके पदचनेने पड़से 'गजिया
 महाराज' नामक कोरे महत्त महादेवके पूजक रहे ।
 'विषयासुद्धो' नाम्नी उनके कोरे भैरवी थी । लोगोंके
 कथानुसार महादेवके पल्लरित होने पर महत्त
 और उनकी भैरवी दोनों ऐश्वर्यशक्तिके बल सुवने
 मैठ पाकागवधमे पूर्वमुख उठे चले जाते थे । किन्तु
 पवित्र भैरवी किसी जलपूर्ण स्थान पर गिर पड़ी ।
 उसीमे गजिया महाराजको भी उतरना पड़ा । उनके
 उतरनेका स्थान 'कुलामनि' याम कहाता है । उस
 याममें पाज भी महत्त और भैरवीकी मूर्ति स्थापित
 है । महत्तमूर्तिकी पूजा होती है । कालक्रममे उक्त
 स्थान घने जंगलमे भर गया है । वहाँ कोरे महत्त की
 घुस नहीं सकता । बंगाली सन् १२११ को वनमासी
 पण्डा नामक किसी व्यक्तिने मिदिनीपुर कलक्टरके
 पार्श्वमें जंगल कटाया और ऊपरके मध्य दो पण्ड
 महादेवकी भजन लिङ्गमूर्तिकी पाया था ।

कुदम्बरमन्दिरमें पाज भी चनेक मूर्तियां पत्तुस
 भावमे दण्डमान है । उक्त मन्दिरमन्दिर देवनेमें
 पतिमनोरम है । व २०० हाथ लम्बा और १५०
 हाथ चौड़ा है । मन्दिरकी पवित्र दोगांमें उडिया
 भाषाके एक मिनामि विद्यमान है । किन्तु समके

पाठः समस्त चत्वर विगड़ गये है । सुगरी हम
 समय तक उमडा पाठोडार नहीं हुआ । पशुद है कि
 सुभमानोने वह मिनामि विगाड़ डानी है ।

कामो (सं० ति०) कामो उद्याति, काम-रति । काष्-
 रोगविग्रह, नाभोका बोमार । (हि०) चमो ईषो ।
 कामोभूतिका (सं० षो०) मोरारभूतिका, एक
 मही ।

कामोस (सं० षो०) कामो सुद्रहामं प्रति नाय-
 यति, कामो-शो-क । १ उद्यतुविग्रह, कामोस ।
 २ मासिक सुराविग्रह, एक गणप । ३ तुयक, मृत्तिया ।
 कामोस मध्यसहग, किञ्चित् पञ्च और लवपरस
 होता है । (वन०)

कामोसदय (सं० षो०) धातु कामोस और पुष्पा-
 नीस । पुष्प कामोस किञ्चित् पीत और तुपर रस
 होता है । (वन०)

काण्ड (सं० पु०) कासमर्द, कर्मोड ।

कासुभो (सं० पु०) कौसुभोगानि, एक धान ।

कासुर (सं० पु०) मद्य, भैसा ।

कासु (सं० षो०) कगति कुत्सव गच्छं गच्छति, कग-ज,
 सुवीदादित्वात् गम्य सत्वम् । चिन्तितपर्योः उच् । १ । २० ।
 एक विक्रमवाच, उभटी वात । २ गति-पक्ष, बाह्यो
 भावा । ३ दोषि, चमक । ४ भावा, जवान् । ५ रोग,
 बीमारी । ६ बुद्धि, ममक ।

कासुरी (सं० षो०) उष्ण जासुः कासु-टसु ।
 कासुरोश्च उरु । १ । २० । सुद्र गति-पक्ष, कोटी
 बरयो ।

कासुति (सं० षो०) कुक्षिता सृतिः सरपम्, कोः का-
 देगः । कुक्षित गमन, सराव चाव ।

कासु (सं० पु०) उष्ण कागदप, कोटा कास ।

कासामी (सं० षो०) पतिवना, एक वृटी ।

कासुद, कासुदेईषो ।

कासुदक (सं० पु० Caustic) जारक, मंत्राय । इसके
 पदमेमे चर्म जल जाता या चावल उमर पाता है ।

कासु—महाराष्ट्रकी एक प्राकृत जाति । कासु लोग
 सुनीयारोका काम करने और पधिकतर पूजा तथा
 यामदेममें रहते है । दूमरे कासुवेमि उमडा पद

काठरजनी (सं० स्त्री०) दाहहरिद्रा ।
 काठरज्जु (सं० स्त्री०) लकड़ी बांधनेकी रखी ।
 काठसेखकं (सं० पु०) काठ लिखित, काठ-लिख
 खल् । घुणकीट, घुण ।
 काठनीची (सं० पु०) काठेन युक्त लोहं विद्यते यत् ।
 यदा काठश्च लाहश्च ते स्तोत्रं, काठ-लोह-इति ।
 वातर्दं, लोहयुक्त सुहर ।
 काठवक्षिका, (सं० स्त्री०) काठवत् शुक्ला वक्षिका, मध्य-
 पदलो० । १ कृत्वा, कृत्वी । २ कटकवक्षी, एक लता
 काठवाट (सं० पु०) काश्मीरदेशस्य स्थानविशेष
 काश्मीर गी एक जगह ।
 काठेष्टान् (सं० त्रि०) काठं अस्यास्ति, काठ-मत्-प-
 मस्य यः । काठनिमिष्ट, लकड़ी रखनेवाला ।
 काठवासुक (सं० पु०) वास्तुशास्त्रकर्मिद, किंभी
 किष्काया वधुषा ।
 काठविवर (सं० स्त्री०) काठस्य विवरम्, मध्यपदलो० ।
 तरुकोटर, पेड़की खोद ।
 काठगारिवा (सं० स्त्री०) काठमिव शुष्का गारिवा,
 उपमि० । अनन्ता, अनन्तमूल ।
 काठगालि (सं० पु०) रक्तगालि, लालधान ।
 काठगारिवा (सं० स्त्री०) खेतगारिवा, सफिद सतावर ।
 काठस्रम्भ (सं० पु०) काठेन निर्मितः स्तम्भः ।
 काठका स्तम्भ, लकड़ीका खंभा ।
 काठा (सं० स्त्री०) कायते प्रकाशते, काय-पशन् नसेति
 प्वलम्-टाप् । १ टिक्, जानिष, तर्ष । २ स्थिति, ज्ञानत ।
 ३ सीमा, हट । ४ उत्कर्ष, बड़ाई ।
 "इष्यन्न परं किञ्चित् सा काठा सा परा गतिः ।" (अ० रुति)
 ५ समयविशेष, कोई वस्तु । सन्तुष्टचिन्ता और
 विष्णुपुराणके मतसे १५ चतुर्निमेषमें १ काठा होती
 है । किन्तु मनुने १८ निमेषकी ही १ काठा मानी है ।
 "निर्गो दस पाटो न काठा नि मनु, ताः कलाः" (मनु १ । ६४)
 ६ कश्यपकी कोई पट्टी । (भागवत ६ । ६ । २४) ७ दाह-
 हरिद्रा ।
 काठामार (सं० स्त्री०) काठनिर्मितं आमारम्, मध्य-
 पदलो० । काठगृह, लकड़ीका मकान ।
 काठामुह (सं० स्त्री०) पौतयर्षं प्रमुहं पोला-भृगु । वध

कट, उष्य, लेपमें रूक्ष और कफघ्न होता है (राजनिषद्य)
 काठामलको (सं० स्त्री०) काठधत्तो, छोटा धावना ।
 काठाम्बुवाहिनी (सं० स्त्री०) शम्भूनां जनानां वाहिनी,
 काठनिर्मिता शम्भुवाहिनी, मध्यपदलो० । जलसेधन-
 के निधे काठनिर्मितं पात्रविशेष, द्रापी ।
 काठालु, राजालु देखी ।
 काठालुक (सं० स्त्री०) काठमिव कठिनं चालुकम्
 मध्यपदलो० । काठवत् कठिन कन्दविशेष, लकड़ी
 जैसी कड़ी एक शम्भु । वध मधुररस, शोथन, गुह, यज्ञ
 एवं स्तन्यवर्धक और रक्तचित्तनागक ह्यता है । (इष्य)
 काठामन (सं० पु०) घुण, घुण ।
 काठामन (सं० स्त्री०) काठनिर्मितं आमनम्, मध्य-
 पदलो० । काठ का आमन, लकड़ीकी चौथी बगरह ।
 काठिक (सं० त्रि०) काठमस्यास्ति, काठ-ठन् । १ बहु
 काठयुक्त, बहुत लकड़ी रखनेवाला । (पु०) २ काठ-
 वाहक, लकड़िहारा ।
 काठिका (सं० स्त्री०) काठ-प्रत्ययै डोय, शालो स्वार्थे
 कन्-टाप् ङवच । १ सूत्र काठलण्ड, लकड़ीका छोटा
 टुकड़ा । २ काठ कदनीप्रध, कण्ठकेलिका पेड़ ।
 काठरसा (सं० स्त्री०) कदनो हव केलिका पेड़ ।
 काठिका (सं० स्त्री०) १ कदनीप्रध, केलिका पेड़ ।
 २ राजार्क, बड़ा मदार ।
 काठी (सं० त्रि०) काठं अस्यास्ति, काठ-इति । बहु
 काठयुक्त, लकड़ीवाला ।
 काठील (सं० पु०) काठिना इत्यने चिप्यते, काठि-इल्
 कर्मणि घञ् । राजार्कप्रध, बड़ा मदार । २ कुलिय-
 मस्य, एक मच्छली ।
 काठीला (सं० स्त्री०) कुलित्ता ईपद या अष्टोन्नव,
 कोः काठेगः । १ राजार्क, बड़ा मदार । २ कदनीप्रध,
 केलिका पेड़ ।
 काठीलिका, बाडोना देखी ।
 काठेष्टु (सं० पु०) काठवत् कठिनकाष्ठ इष्टुः, उप-
 मि० । खेतेशु० मफिट जख । वध काम्दारके समान
 गुणयुक्त और वानप्रयोग होता है ।
 काठोडुम्बरिका (सं० स्त्री०) काठमयाना उडुम्बरिका,
 मध्यपदलो० । काठोडुम्बरिका, काठगृह ।

सामान्य समझा जाता है। वह बहुत कम लिखते पढ़ते और वैष्णव धर्म पर चलते हैं। कहते हैं उनको दृष्टान्तका कुछ ठिकाना नहीं। दूसरे पूनाके ब्राह्मण कास्तोरोंको शूद्र समझते हैं। पेशवा सरकारकी आज्ञासे उन्हें आज तक दानपुष्ट नहीं मिलता।

कास्तोर (स० स्त्री०) ईपत्तोरं अस्यास्ति, कोः कादेशः निपातनात् सुट् च । कास्तोराम्भुन्दे नगरे । पा १ । १ । १५५ ।
१ ईपत्तोरयुक्त नगरविशेष । २ तीक्ष्णलौह, तीखा लोहा ।

कास्मयं (स० पु०) काश्मर्यं प्रयोदरादित्वात् गस्य सः । गाश्मारी, गम्भारी ।

काई, कइ देवी ।

काए (हि० क्रि० वि०) क्या, कौम चीज ।

काहला (स० स्त्री०) काहला प्रयोदरादित्वात् लस्य कः । काहला वाद्य, एक बाजा ।

काहल (स० स्त्री०) कुक्षितं अस्म्यटं हलं वाक्यं ध्वनि-
र्वां यव, बहुव्री० । १ अस्म्यटं वाक्य, समझमें न आने-
वाली बात । (पु०) २ कुकूट, सुरगा । ३ विडाल,
बिलास । ४ शब्दमान, कोई आवाज । ५ लघु टक्का,
बड़ा टोल । उसका अपर संस्कृत नाम महानाद है ।
(त्रि०) ६ शष्क, सूखा । ७ ब्रिगाल, उड़ा । ८ बुरा ।

काहला (स० स्त्री०) कुक्षितं इलति शब्दं करोति, कु-
हल-अच्-टाप्, को कादेशः । १ वाद्ययन्त्रविशेष, एक
बाजा । २ प्रसरोविशेष, कोई परी ।

काहलापुष्प (स० पु०) काहलाकृतिरिव पुष्पमस्य ।
श्वेतधूसरं लघु, सफेद धूसरेका पेड़ ।

काहल (स० पु०) कां सुखं आहलति ददाति, क-
आ-हल्-इन्-डोप् । १ युवती, जवान औरत । (पु०)

२ किसी श्रष्टिका नाम । ३ एक छोटी जाति । यह
उड़ीसाकी तरफ पाई जाती है ।

काहावाह (स० स्त्री०) प्रातिमें होनेवाला गड़बड़
शब्द ।

काहार (कहार) जातिविशेष, एक कौम । उच्चवर्ण

पिताके औरस और निम्न जातीय माताके गर्भसे
कहारोंको उत्पत्ति है। उनकी प्रधान उपजीविका खेतो
करने, पालकी टोने, बहक़ो से जानी, महनो पकड़ने
और नौकरी करनेमें चलती है। कहारका सामा-
जिक व्यवहारादि साधारण हिन्दुओंको भांति है। वह
अपनीकी जरासम्बका वंशोद्भव मानते हैं। उनमें एक
अद्भुत प्रवाद प्रचलित है। कहार कहते हैं कि गिरि-
एक पहाड़में मगधराजका एक उपवन रहा। किन्तु
अतिवृष्टिसे वह नष्ट हो गया। कुछ काल पीछे मगध-
राजने फिर उपवन लगाना चाहा था। उन्होंने घोषणा
की 'जो व्यक्ति एक रात्रिके मध्य हमारा उपवन गढ़ा
जलसे पूर्ण कर सकेगा, उसे हम अपनी कन्या और
आधा राज्य दान करेंगे।' कहारोंमें उस समय चन्द्रा-
वत् नामक कोई प्रधान व्यक्ति रहा। वह राजकन्या
और राज्यके सोभसे उक्त कार्य करने पर स्वीकृत हुआ।
उसने असुरबांध नामक एक बड़ा बांध बांधा था।
फिर चन्द्रावत्ने बावनगङ्गाका जल ले जाकर अपने
अधोनिष्ठ कहारोंके माहाय्यसे उक्त जलद्वारा पर्यंतका
उपवन पूर्ण कर दिया। उधर मगधराजने देखा कि
चन्द्रावत् शत्रु हो उपवनको जलसे भर उनकी कन्या
और अर्ध राज्य ले लेनेवाला था। उस समय उन्होंने
चन्द्रावत्को कन्या देना अतुच्छित समझ एक कौयल
उद्भावन किया था। उनकी आज्ञासे प्रभात होनेके पूर्व
ही काक बोलने लगा। कहारोंने देखा कि प्रभात
हुवा था, किन्तु उनका कार्य चलता रहा। फिर मगध-
राजके भयमें व्यस्त हो भागने लगे। जिसके शयमें
बांध रहा, वह कहार हो गया। फिर रखी रखने-
वाले मगधिया ब्राह्मण बने थे। किन्तु गल्पमें यह बात
नहीं मिलती, कहारोंकी धातुक और राजवार गाथा
कहांसि निकली है। अश्वमेधको मगधराजने सन्तुष्ट हो
उन्हें प्रायः साढ़े तीन सैर धान्य प्रश्रुति गस्य दिया था।

कहार जाति विभिन्न शाखाओंमें विभक्त है—रावनों;
सुडिया, धीमर, यशवार, गडहक, तुड़ा, मगधिया
प्रश्रुति। कहारोंके कथनानुसार प्रथम कोई अयो-
विभाग न रहा। पड़ले बड़ गया जिसके रमणपुर
नामक स्थानमें बसते थे। कहारोंकी जातिके प्रधान

कासन्दोषटिका (सं० स्त्री०) १ कासघ्न श्लेष, खाँसी-मिटानेवाली दवा । २ एक अक्षर, कसौंदा । राजवस्त्रम के मतानुसार वस्त्र, रूचिकारक, अग्निवर्धक, वायु एवं मन अनुलोमक और वातश्लेष्मज रोगनाशक होती है । कासघोडित (सं० त्रि०) कासेन कासरोगण वीडितः, शतम् । कासरोगी, खाँसीका बीमार, जिसको खाँसी आती हो ।

कासमस्त्रन (सं० पु०) पटोल, परवस । कासमर्द (सं० पु०) कासं मृदनाति, कास-मृद-घण् । कर्मण्ये । पा० १२११ । स्नानमस्थ्यात् पत्रशाकविशेष, कसौंदा ।

कासमर्दका पञ्चनरसमें प्रयोग करते हैं, वह अग्निदीपन और खादु होता है । (राजवस्त्रम) कासमर्द तिल, उष्ण, मधुर, कफनाशक, अजीर्णघ्न, कासपित्तघ्न और कण्ठशोधन है । (राजनिषण्ड) कासमर्दका पर्ण-पाकमें कटु, तृण, उष्ण, लघु और श्लास, कास तथा अरुचिघ्न है । पुष्य श्लाम-कासघ्न तथा वातविनाशन होता है । (शुद्धकनिषण्ड)

२ वेगवारविशेष, कसौंदा । ३ पटोल, परवस । ४ कासघ्न श्लेष, खाँसीकी मिटानेवाली दवा ।

कासमर्दक, कासमर्द देखो । कासमर्दकपत्र (सं० स्त्री०) कासमर्दकदल, कसौंदाका पत्ता । कासमर्ददल, कासमर्दकपत्र देखो । कासमर्दन (सं० पु०) कासं मृदनाति, कास मृद कर्तरि स्तु । पटोल, परवस । कासमर्दिका (सं० स्त्री०) कासमर्द, कसौंदा । कासर (सं० पु०) के लक्ष्मी कासरति, क-प्रा-स-अच् । सहिष, मेमा; उसे अधिक समय तथा जनमें रहना अच्छा लगता है । (हिं० स्त्री०) २ काली भेड़ । इसके घेठके रोंयें काल होते हैं । कासरोग (सं० पु०) रोगविशेष, खाँसीकी बीमारी । कास देखो ।

कासलक्ष्मोविलास—वैद्यकीय श्लेषविशेष, खाँसीकी शोध दवा । वज्र, लौह, अश्व, ताम्र, कांस्य, पारद, गन्धक, हरिताम्र ममःशिला और स्वर्ण प्रत्येक एक

एक पलके डिघावसे एकत्र मिलाकर चाड़िये । फिर केकराजके रस तथा कुलत्प कलायके छाद्यमें तीन दिन भावना दे उसमें इनायचा, जायफल, तेजपान, लौंग, भ्रजवाइन, जोरा, त्रिकटु, त्रिफला, तगरपादुका, गुह-त्वक् और बंगलोचन प्रत्येक दो दो तोना डालते हैं । अंत को केकराजके रस और कुलत्प कलायके छाद्यमें अषट्क चणक प्रमाण घटिका बना ली जाती है । अनुपात यौतस जल है । मक्खर, मांस, दुग्ध और स्निग्ध आहार पथ्य होता है । याकारक लोड़ देना चाहिये । उक्त श्लेष सेवन करनेसे कास, यक्ष्मा, खास, स्वर, पाण्डुरोग, शोथ, शूल, अग्नि प्रकृति रोग शान्त होते हैं । फिर काम-लक्ष्मोविलास बलवर्धक और लक्ष्मा तथा अरुचि-नाशक भी है । (शुद्धकनिषण्ड)

कासललाह—तेलङ्ग ब्राह्मण जातिका ६ ठां भेद । ऐले-खरोपाव्यायने यह भेद डाले थे ।

कालशङ्करभैरव (सं० पु०) वैद्यकीय कासरोगका श्लेषविशेष, खाँसीकी एक दवा । पारद, गन्धक, ताम्र, शङ्खमस, सोडागकी फूसो, लौह, मरिच, कुष्ठ, तालीशपत्र, जातोफल, सवङ्ग प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले एकत्र मिला मिक्रपर्ण, केकराज, निर्गण्ठी, काकमाचिका, द्रोणपुष्पी, शालची, धीमसुन्दर, भार्गो, हरितकी तथा धासाके रससे घोटना चाहिये । पञ्च-गुश्वाके समान घटिका सेवन करनेसे कासरोग दूर होता है । (रत्नकाव्य)

कासरवर्ग (सं० पु०) कासरोगनाशक द्रव्य समूह, खाँसीकी बीमारी दूर करनेवाली द्रव्य चीजोंका लुखीरा । इसमें द्राक्षा, चमया, चामसक, विप्लो, दुरालभा, शृङ्गी, कण्टकारी, हथौर, पुनर्नया और तमानका डालते हैं । (चरक)

कासहाकाय (सं० पु०) १ कण्टकारीकृत विप्लोचूर्ण-युक्त कासर काय, खाँसीका कीड़ा काटा । वह कण्ट-कारीसे बनता और इसमें विप्लोचूर्ण पड़ता है । २ धूमपान विशेष । इसमें धूमकी गाड़ी १६ पञ्जनी रहती है । धूम द्रव्यकी सद्द्रोषणमें जनाना चाहिये । कासान्तकरण (सं० पु०) कासघ्नकारक रसविशेष, खाँसीकी एक दवा । पारद, गन्धक, श्लेष, शान-

काहोड़ (सं० पु०) कछोड़इय अपत्यम्, कछोड़-अण ।
कहोड़द्वयीय ।

कि (हिं० किं० वि०) १ कैसे, किस प्रकार, क्या ।
(अर्थ०) २ संयोजक शब्द । ३ अद्यय, या ।

किं (सं० अर्थ०) १ क्या, जिज्ञास्यबोधक शब्द । २
आयय वा विद्ययबोधक शब्द । ३ निषेधवाचक शब्द ।
४ वितर्क । ५ निन्दा ।

किंगरई (हिं० स्त्री०) सुसविशेष, एक वीदा । सप्त
लाजधतीभी मिलती और कंठीली रहती है । किंगरईके
सीके ७।८ इंच लंबे होते हैं । पत्तोंहा देख्य
चौथाई इंच है । चापाटु आषण मास उसमें फूल आते
हैं । पुष्प प्रथम रक्तवर्ण रहते, किन्तु पश्चात् श्वेतवर्ण
धारण करते हैं । पत्र और बीज औषधमें व्यवहृत होता
है । लफ्फेके कोषलेमें वाहद बनती है । किंगरई
भारतवर्षमें सर्वत्र मिलती है ।

किंगरिया—एक नोच जाति । इसका पेगा भीष मांगना
है । सुकप्रदेशके पूर्वीय भागमें इस जातिके भोग विशेष-
तया पाये जाते हैं ।

किंगरी (हिं० स्त्री०) वायव्यविशेष, एक बाजा । यह
छोटे चिकारे या सारंगी—जैसी होती है । नट और
योगी किंगरी बना कर भीष मांगा करते हैं ।

किंगोरा (हिं० पु०) सुपविशेष, एक भांडी । यह
४।५ हाथ लंबा और कंठीला होता है । किंगोरा
भूमि पर दूर तक नहीं फैलता, सीधा ऊपर उठता
है । पत्र ४।५ अंगुलि दीर्घ रहते हैं । इनके प्रान्त-
भागमें दूर दूर दांत होते हैं । किंगोरेमें सुद सुद पुष्प
और नाल या कानो कानो फलियां पाती हैं । फलि-
योंको नोग खाया करते हैं । किंगोरामें दाह-
बन्दीकी भांति गुण होता है । उसे किलमोरा और
चित्रा भी कहते हैं ।

किंडरगाईन (सं० पु०) गिचा-प्रणालीविशेष, तानोम-
की एक तरकीब । इसे किसी जर्मन विद्वानने
निकाना था । उसने चानकोंके निचे सद्यागमें एक
पाठगाला खोली । उसमें पनेक प्रकारको ऐसी नामयो
एकत्र थी, जिससे यह पछों पचरों आदिके अभ्यासके
साथ साथ अपनेमनकी भी बढना सकें । किंडरगाईन

यव अनेक देगोंमें चल गया है । उसके द्वारा बाल-
कोंको चित्रविचित्र काटखण्डोंसे गिचा दी जाती है ।
कानपुर जिलेके मसवानपुरनिवासी पण्डित गौरीगड्डर
भटने हिन्दोका बहुत अच्छा किंडरगाईन बनाया है ।
किंगु (सं० वि०) किं इच्छति, किं वेदिककलात् क्यच्-
उ । किमिच्छक, क्या चाहनेवाला ।

किंगराजन् (सं० पु०) कः कुस्मितो राजा किम्-राजन्
निन्दार्थत्वात् न टच् । १ कुस्मित राजा, खराब बादगाह,
(वि) २ निन्दित राजयुक्त, बुरे बादगाहवाला ।

किंगार (सं० पु०) किं किञ्चित् कुस्मितं वा शृणोति,
किम्-अ-ञ्ण् । विशयोः शिबः । छ् । १ । ४ । १ शस्यशूक,
भनाजका रिंगा । २ वाण, तीर । ३ कष्टपत्ती, एक
चिहिया । ४ रोटक, रोटी ।

किंगुक (सं० पु०) किं किञ्चित् शुकः शुकवायव्य-
विशेष इव, उपमि० । पलाशवृक्ष, टाक या टैसूका
पेड़ । किंगुकका पुष्प आकृति धीरे वर्षादिपथमें
शुकपत्तीके चक्षु-जैसा होता है । इसी हेतु किंगुक
नाम पड़ा । उसका संस्कृत पर्याय—पलाश, पर्ण,
यज्ञिय, रक्तपुष्प, सारंगेष्ट, वातहर, नम्रवृक्ष और
समिद्धर है । (भाष्यकाम । टाक देखी । २ नन्दीवृक्ष ।
३ पुराणोक्त वनमेद ।

“एकैव किंगुकमेतया बद्रमण्य च ।” (लिङ्गपुराण, ४८ । ११)

किंगुकचार (सं० पु०) पलाशचार, टाकका नामक ।
किंगुकतेल (सं० स्त्री०) पलाशबीजतेल, टाकका तेल ।
यह पित्तप्रलेपण होता है ।

किंगुका (सं० स्त्री०) १ पलाशवृक्ष, टाकका पेड़ ।
२ द्योतिपत्ती, रतनजोत । ३ नन्दीवृक्ष ।

किंगुकादिगण (सं० पु०) किंगुक प्रकृति द्रव्यममूह,
टाक चमेरह चोजोंका जखीरा । उसमें निम्नलिखित
द्रव्य सम्मिलित हैं— किंगुक, काशरगी, विष्व, पविन-
मय, त्रिच्छक, श्योणाक, मानपर्णी, सिंहपुच्छिद्वय,
स्थिरा, पाटला, कष्टकारी, वृक्षती और विव्य ।

(श्वेदसार-अर्थ)

किंगुलुक (सं० पु०) किंगुक निपातनात् साधुः ।
१ इन्द्रकर्णलगा, बड़ा टाक । २ मोनवृक्ष
पत्ती ।

काहीड (सं० पु०) काहीडव्य अपत्यम्, काहीड-घण । काहीडवंशीय ।

कि (हिं० किं० वि०) १ कैशे, किस प्रकार, क्या ।

(अर्थ०) २ संयोजक शब्द । ३ अथवा, या ।

किं (सं० अर्थ०) १ क्या, जिज्ञास्यबोधक शब्द । २ आश्चर्य या विस्मयबोधक शब्द । ३ निषेधवाचक शब्द । ४ वितर्क । ५ निन्दा ।

किंगरई (हिं० स्त्री०) हलविशेष, एक पीटा । वध नाजवंशीमी मिलती और कांटीली रहती है । किंगरईके सीके ७।८ इंच लंबे होते हैं । पत्तोंका टेप्य चौथाई इंच है । बापादु आषण मास सममें फूल आते हैं । पुष्प प्रथम रक्तवर्ण रहते, किन्तु पचात् श्वेतवर्ण धारण करते हैं । पत्र और बीज शोधधर्म व्यपहृत होता है । लकड़ीके कोयलेसे कारुद बनती है । किंगरई भारतवर्षमें सर्वत्र मिलती है ।

किंगरिया—एक नीच जाति । इसका पेशा भोज्य मांगना है । युक्तप्रदेशके पूर्वीय भागमें इस जातिके लोग विशेषतया पाये जाते हैं ।

किंगिरी (हिं० स्त्री०) वाद्यविशेष, एक बाजा । यह छोटे चिकारे या सारंगी—जैसी होती है । नट और योगी किंगिरी बजा कर भोज्य मांगा करते हैं ।

किंगीरा (हिं० पु०) क्षुपविशेष, एक झाड़ी । यह ४।५ फाट ऊंचा और कांटीला होता है । किंगीरा मूमि पर-दूर तक नहीं फैलता, सीधा ऊपर उठता है । पत्र ४।५ अंगुलि दीर्घ रहते हैं । उनके प्रान्त-भागमें दूर दूर दांस होते हैं । किंगीरेमें छुद्र छुद्र पुष्प और नाल या काली काली फलियां आती हैं । फलियोंकी लोम खायी करते हैं । किंगीरामें दारु-हल्लीकी भांति गुण होता है । उसे किलमोरा और चित्रां भो कहते हैं ।

किंडरगार्डन (सं० पु०) शिक्षा-प्रणालीविशेष, तान्नीमकी एक तरकीब । इसे किसी जर्मन विद्वान्ने निकाला था । उसने बालकोंके लिये उद्यानमें एक पाठशाला खोली । उसमें पनेक प्रकारको ऐसी सामग्री एकत्र थी, जिसेसे वह पहलें पत्थरों आदिके अभ्यासके साथ साथ अपने मनकी भी बढना सकें । किंडरगार्डन

भव पनेक ऐगोंमें चल गया है । उनके द्वारा बालकोंकी चित्रविचित्र काटखण्डोंसे शिक्षा दी जाती है । कानपुर जिलेके मसवानपुरनिवासी पण्डित गौरौगड्ढर भट्टने हिन्दोका बहुत अच्छा किंडरगार्डन बनाया है । किंगु (वै० वि०) किं इच्छति, किं पेदिकत्वात् वच-उ । किमिच्छुक, क्या चाहनेवाला ।

किंराजन् (सं० पु०) कः कुस्तिरा राजा किम्-राजन् निन्दार्थत्वात् न टच् । १ कुस्तिन राजा, खराब बादशाह । (वि) २ निन्दित राजपुत्र, बुरे बादशाहबाला ।

किंशाह (सं० पु०) किं किञ्चित् कुस्तिनं वा शृण्वति, किम्-श-ञ्णु । किश्रवोः पिबः । उच् । १। ४। १ शम्भुशूक, बनाजका रोग । २ घाण, तीर । ३ कद्वपत्ती, एक चिहिया । ४ रोटक, रोटी ।

किंशुक (सं० पु०) किं किञ्चित् शुकः शुकवयव-विशेष इव, उपमि० । पलाशवृक्ष, टाक या टेखुका पेड़ । किंशुकका पुष्प प्राकृति और वर्षादिपथमें शुकपत्तीके वक्षु-जैसा होता है । उसी हेतु किंशुक नाम पड़ा । उसका संस्कृत पर्याय—पलाश, पर्यं, यज्ञिय, रत्नपुष्प, चारुश्रेष्ठ, वातहर, त्र्यम्बक और समिहर है । (भाष्यभाष्य) टाक देखो । २ नन्दीवृक्ष । ३ पुराणोक्त वनमेद ।

"पूर्वेषु किंशुकवने तथा वटवपल च" (विश्वराय, ३८। ११) किंशुकचार (सं० पु०) पलाशचार, टाकका नमक । किंशुकतैल (सं० स्त्री०) पलाशबीजतैल, टाकका तैल । वट पित्तदनेषण होता है ।

किंशुका (सं० स्त्री०) १ पलाशवृक्ष, टाकका पेड़ । २ ज्योतिष्यते, रत्नज्योत । ३ नन्दीवृक्ष ।

किंशुकादिगण (सं० पु०) किंशुक प्रभृति द्रव्यमसूह, टाक बगेरह खोजका जखीरा । सममें निम्नलिखित द्रव्य सम्मिलित हैं— किंशुक, काश्मरी, विग्रह, पश्चिमस्य, विष्णुपटक, श्लोकाश, शालपर्णी, सिंहपुच्छिद्वय, स्थिरा, पाटमा, कण्टकारी, वृद्धती और विल्व ।

(रघुवैदवार-अं०५५)

किंशुक (सं० पु०) किंशुक निवातनात् साधुः । १ इन्द्रकर्णरलाय, बड़ा टाक । २ मोनकण्ट पत्ती ।

बनाकर रहती थीर फल, मूल तथा पत्र खाकर जीविका निर्वाह करती है। (रामायण, उतर, ८८ वर)

३ जम्बु होपाधिपति अग्नीप्रके एक पुत्र । (विश्वपुराण. १।१।१८) ४ जम्बुहोपके नखखण्ड मध्य हिमालय थीर डेमकूटके बीचका एक क्षेत्र वा देश।

“स खेत्तपतं शीर इतितक्य चौर्यवान्।

इतं किम्बु रुपाशसं हनपुत्रे च रचितम् ॥”

(भारत, उभा, २८।१)

५ कुक्षितपुरुष, खराव आदमी।

किम्बुरुपाधिप (सं० पु०) किम्बुरुपान् अधिपाति रक्षति, किम्बुरुप-अधि-पा-क। कुवेर, किम्बुरुपीं या कियारी राजा।

“धनदथ धनाध्ययो यथाः किम्बुरुपाधिपः” (हरिवंश)

किम्बुरुपेश्वर (सं० पु०) किम्बुरुपस्य किम्बुरुपायां या ईश्वरः, इ-तत् । १ किम्बुरुपपर्वके राजा। २ कुवेर। किम्बुरुप (सं० स्त्री०) किम्बुरुपनामक वर्षाविशेष, एक सुल्लं।

किम्बुकार (सं० अव्य०) किं कीदृशः प्रकारोऽस्मिन् कर्मणि। १ किस प्रकार, कैसे। २ किस उपायसे, किस तदबोधसे।

किम्बुभाव (सं० त्रि०) किं कीदृशः प्रभावोऽस्य, बहुव्री०। किस प्रकार प्रभावविशिष्ट, कैसे अचरवाला।

किम्बुल (सं० त्रि०) किं कीदृशः वस्तुः अस्य, बहुव्री०। किस प्रकार सौन्दर्यविशिष्ट, कैसे फौज या ताकत रखनेवाला।

किम्बुरा (सं० स्त्री०) किञ्चित् विभक्तिं, किम्-स्य-अच्-टाप्। नली नामक गन्धद्रव्य, एक खूबूददार चीज।

किम्भूत (सं० त्रि०) किं कीदृशं भूतम्, कर्मधा०। किस प्रकारका, कैसे।

किम्बाय (सं० त्रि०) किं स्वरूपम्, किम्-मयट्। किमा-क्यक, किस तरहका।

किम्बान् (सं० त्रि०) किमपि अस्यास्ति, किम्-मतुप् मस्य वः। १ किञ्चित् विशिष्ट, कुछ रखनेवाला। २ किम्बुविशिष्ट, क्या रखनेवाला।

किम्बटन्ति (सं० स्त्री०) किम् वद-णिच्। जनश्रुति, प्रवाद, अफवाह।

किम्बटन्ती (सं० स्त्री०) किम्-वद-णिच्-डोप्। जन-श्रुति, अफवाह। सत्य हो या असत्य बहुतसे लोग जो बात विश्वासपूर्वक बताते रहते, उसीको किम्बटन्ती कहते हैं।

“यत् किम्बैवा किम्बटनी अवाहं कुर्वे काश्चापि कल्पयित्वा नाम रात्रौ मनुष्यते ॥” (प्रबोधचन्द्रोदय)

किम्बा (सं० अव्य०) किं च वा च, इन्द्रः। अथवा, या तो, विकल्प। किम्बाका संस्कृत पर्याय—उताहो, यदि वा, यद्वा थीर नेति है।

किम्बट् (सं० त्रि०) किं वेत्ति, किम्-विट्-क्तिप्। किस विषयमें अभिपन्न, क्या जाननेवाला।

किम्बोर्यं (सं० त्रि०) किं कीदृशं चौर्यमस्य, बहुव्री०। किस प्रकारका बलशाली, कैसे ताकतवर।

किम्बापार (सं० त्रि०) किं कीदृशो व्यापारोऽस्य, बहुव्री०। १ किस प्रकारका व्यापारविशिष्ट, कैसे काममें लगा हुआ। (पु०) कीदृशो व्यापारः, कर्मधा०। २ किस प्रकारका कार्य, कैसे काम।

किम्बत् (सं० त्रि०) किं परिमाणमस्य, किम्-वतुप् यस्य चः किम्ः किं आदेशस्य। विनिर्देशां चो वः। वा १। २। ३०। क्या परिमाणविशिष्ट, किस मिकदारवाला, कितना।

“गन्धव्यसि कियदित्यवकृतं वाचा ॥” (साहित्यदर्पण)

कियती (सं० स्त्री०) कियत्-डोप्। कितनी।

“निमित्ते यदि शकृत्कृतपदे उकृति सा कियतीमित न स्यात् ॥”

(नेषण, ३ वें सर्ग)

कियत्काल (सं० पु०) कियान् किम्परिमितः कालः, कर्मधा०। १ क्या परिमित काल, कितना वक्त। २ किञ्चित् काल, थोड़ा समय।

कियतेतिका (सं० स्त्री०) उद्योग, कोशिश।

कियहूर (सं० त्रि०) किं परिमितं दूरं व्यवधानम्, कर्मधा०। कितनी दूर।

कियत्साव (सं० त्रि०) किं परिमिता मात्रा अस्य, बहुव्री०। क्या मात्राविशिष्ट, किस मिकदारवाला।

कियम्स्य (सं० त्रि०) किं परिमितं सूत्रमस्य, बहुव्री०। क्या सूत्रविशिष्ट, किस कीमतवाला।

कियारी (हिं० स्त्री०) १ क्षेत्र वा उद्यानमें अथवा अस्य

किङ्करसेन—एक बंगाली काव्यस्य । दिल्लीवासे सुगल-सन्नाट वङ्गादुर शाहके समय उनके पुत्र आजिम उग्र-शान् वङ्गाल-विहार-उड़ीसाके नाजिम और दीवान् रहे । उसी समय हुगलीमें एक जैन-उद्-दीन फौजदार थे । आजिमके साथ जैन-उद्-दीनकी सम्प्रति न रही उसीसे उन्हें पदच्युत होना पडा । आजिमने अपने प्रियपात्र वालीवेगकी हुगलीका फौजदार बनाया था । पदच्युत फौजदार जैन-उद्-दीनके अधीन किङ्करसेन पेशकार रहे । वह अति चतुर और कार्य-दक्ष थे । जैन-उद्-दीनकी उन पर प्रीति तो रही, किन्तु वह किङ्करसेन पर पूर्ण विश्वास न रखते थे । कारण किङ्करसेनकी बुद्धि और क्षमताकी उस समय कोई राजपुरुष पाता न था । जैन-उद्-दीनने निश्चय किया कि वालीवेगके पङ्चवते ही वह उन्हें फौजदारी-का कामजपत्र समझा दिल्ली चले जायेंगे । किन्तु पानेमें बिलस्य देखे जैन-उद्-दीनने उन्हें अपना उद्देश्य बता शोध चरनेकी अनुमति किया था । वालीवेग भी किङ्करसेनकी जानते और उनपर विश्वास भी रखते थे । उन्होंने जैन-उद्-दीनको कष्टसा भेजा कि किङ्करसेनको कामजपत्र बता वह दिल्ली ला सकते थे । जैन-उद्-दीनने अपने मनमें सोचा—'किङ्करसेन किसी समय हमारे ही अधीनस्थ कर्मचारी रहे । उनकी कामजपत्र समझा देनेकी बात कह वालीवेगने हमारा अपमान किया है ।' एक विवेचनासे उन्होंने कामजपत्र छोड़े न थे । वालीवेगने उसी सूत्रपर जैन-उद्-दीनसे युद्ध छेड़ दिया । फरासडांगिके निकट युद्ध हुआ । फरासी-सियों और खोलन्दाजोंने जैन-उद्-दीनका पक्ष लिया था । वालीवेगने दिनपत् नामक किसी व्यक्तिके अधीन नवाबका सैन्य भेजा था । किन्तु जैन-उद्-दीनने सन्धिका प्रस्ताव कर दिलपत्के पास पादमी पहुँचाया । उसके पङ्चवते ही अचानक वा पृथके किसी पङ्कशन्ना-नुसार फरासीमी तोपका एक गोला दिलपत्के सिङ्क जाकर लगा था । सेनाध्यक्ष हत होनेसे नवाबकी फौजमें गड़बड़ पड़ गयी । जैन-उद्-दीन उसी सुयोगमें किङ्करसेनकी ही माय से दिल्ली चले गये । वहाँ पङ्चवते ही वह मर गये । किङ्करसेन खदेगकी साठे धार निर्मोक-

चित्त सुरगिदावाट जाकर नवाबसे मिले । नवाब उन्हें जैन-उद्-दीनका पादमी समझ कर छो गये, किन्तु उस क्रोधको छिपा सुखसे मोठो मोठो धाते कष्टने लगे । फिर उन्हें किङ्करसेनकी ही हुगलीके कर-संग्राहकपद पर बैठाया था । एक वर्ष पीछे नवाबने उनसे हिसाब तलब किया । किङ्करसेन हिसाब समझाने सुरगिदावाट गये थे । कामजपत्रोंको भूठ बना नवाबने उन्हें कैद किया था । कैदखानेमें उन्हें मैसका दूध नमक डालकर खानेकी दिया जाता था । १००८ ई० के पीछे किसी समय किङ्करसेनने पर-लौक गमन किया । उनका घर सम्भ्रतः फरासडांगेमें रहा । फरासडांगका एक स्थान आज भी 'किङ्करसेनका गड' कहता है ।

किङ्करी (सं० स्त्री०) किङ्कर-छोटी । दामो, टहलुर । किङ्कनस्य (सं० द्वि०) क्या इकरना उचित, कौन फर्ज दाजिव ।

किङ्कनस्यता (सं० स्त्री०) किङ्कनस्यत्व भावः किङ्कनस्य-तत् । क्या करना पड़गा जैसे चिन्ता ।

किङ्कनस्यविमूढ (सं० द्वि०) किङ्कनस्ये कृतस्यतानियये विमूढः, ०-तत् । कृतस्य निश्चय करनेकी परममर्थ, जो अपना फर्ज ठहरा न सकता हो ।

किङ्कण (सं० पु०) साल्वनसंगीय कोई राजा ।

'मन्मानस्य निर्वोषः किङ्कणोऽनुदितेन च ।' (मनरत)

किङ्किणी (सं० स्त्री०) किमपि किङ्किहा कथति किम्-कथ-इन्-डोय उपोदगादित्वात् साधुः । १ कटिदेशका आभरणविशेष, कमरका एक गहना, करघनी । उसका संस्कृत पर्याय—सुद्रघण्टिका, कङ्कणी, किङ्किणिका, किटिणि, सुद्रघण्टी प्रतिमरा, किङ्किणीका, कङ्कणिका, सुद्रिका और घर्वरी है । २ पञ्चरामयुक्त द्वाद्याविशेष, एक खटा धनुर् । ३ वृषविशेष, एक पेड़ । ४ देवोन्मत्तविशेष । ५ विकृत हृत्, घेचौ । ६ युवाप्र-विशेष, मडाईका एक उद्योग । (राजतरु. १। २० वर्ग) किङ्किणीका (सं० स्त्री०) किङ्किणी स्वार्थे कान्-टाप् । सुद्रघण्टिका, करघनी ।

किङ्किणीकाव्यम् (सं० पु०-स्त्री०) एक तीर्थ । उक्त तीर्थमें रहनेमें परलभ परलोकक मिलता है ।

(भाष, पृ० ११ प०)

किरकिराना (हिं० क्रि०) १ षोडा करना, दुखाना ।
२ अच्छा न लगना, बुरा मालूम पड़ना । ३ क्लि-
ष्टिताना, दांत पीमना ।

किरकिराहट (हिं० स्त्री०) १ चतुषोर्धाविशेष, चांग
का दर्द । किरकिराहट चांगमें गर्द या तिनकेका
छोटो टुकड़ा पड़ जानेसे होती है । २ दांतके नीचे
कंकड़ पड़नेकी आवाज । ३ कंकरीलापन ।

किरकिरी (हिं० स्त्री०) किरकिटी, गर्द या तिनके-
का छोटा टुकड़ा । २ उपमान, बेशक्ती, हेटी ।

किरकिल (हिं० पुं०) १ लकड़ाम, गिरदान गिरगिट ।
(स्त्री०) २ शरीररज वायुविशेष, एक हवा । किर-
किल हीं क जाती है ।

किरकिला (हिं० पुं०) पत्रिविशेष एक चिड़िया ।

किरकिला चाकागसे टूट मस्यको आक्रमण करता है ।

किरकी (हिं० स्त्री०) अलङ्कार-विशेष, एक गहना ।

किरकी (खाडकी) पूने जिलेकी हवेली तहसीलका एक
कसबा । यह अक्षा० १८° ३४' ३०" और देशा० ७३° ५१'
५०" पर अवस्थित है । वंशसे ११६ मील दक्षिणपूर्व और
पूनेसे ४ मील उत्तर-पश्चिम यह पड़ता है । लोकसंख्या
ग्यारह हजारके करीब है । युद्धाल तयार करनेका
यहाँ बहुत बडा कारखाना है ।

किरच (हिं० स्त्री०) १ अस्त्रविशेष, एक हथियार ।

किरच सीधे तलवार जैसी रहती है । इसे अग्रभागकी
और सीधे भोक देते हैं । २ खण्डविशेष, भोकदार
टुकड़ा ।

किरचिया (हिं० पुं०) पत्रिविशेष, एक चिड़िया ।

किरचिया बगलेसे छोटा होता है । उसके पंजकी
भिन्नी सुनहली रहती है ।

किरची (हिं० स्त्री०) १ किसी विष्मका सुलायम रेगम ।

किरची इंगालमें उपजती है । २ रेगमकी लच्छी ।

किरटा (सं० स्त्री०) कुसुमबीज, कुसुमका बीज ।

किरण (सं० पुं०) कीर्तन्ते विशिष्यन्ते रश्मयोऽस्मात्,
क-क्यु । क पराक्रमनिर्वाणः क्युः । उ-पाद । १ सूर्य, सूरज ।
कीर्तयेति परितः शिष्यन्ते अन्वै । २ सूर्यरश्मि, सूरजकी
किरण । ३ चन्द्ररश्मि, चाँदकी किरण । ४ ताररश्मि,
अर्थात्किरकी किरण । किरणका संस्कृत पर्याय—अम्ब,

मयूख, अंश, गभस्त्रि, घृणि, घृष्टि, भासु, कर,
मरीचि, दीधितिल्वि, द्युति, चाभा, विभा, प्रभा,
रुक् रचि, भाः, हवि, दीप्ति, रश्मि, अमीषु, मधः,
ज्योतिः, मधः, रोचिः, शोचिः, त्विषा, पृथ्नि, प्रशाय,
पातप, शीत, पाद, आलोक, वसु, ऋषि, भास, धर्म,
लोक, अर्चि, वीचि, हृति, धाम, धर्च, गुण, तेजः और
औजः है ।

“ भवति विरमभक्तिमानपुषोपचारः
अकिरणपरिवेषोऽदगुणाः प्रदीपा, ।” (१५० व १०१)

किरणतन्त्र—माधवाचार्यने अपने सर्वदृशनसंग्रहमें इस
नामके एक श्रेयतंत्रका उल्लेख किया है ।

किरणमय (सं० वि०) किरण-मयट । १ किरणरूप ।
२ किरणविगट ।

किरणमाली (सं० पुं०) किरणानां माना अमयस्य,
किरणमाला-इति । सूर्य, आकाश ।

किरणावली (सं० पुं०) किरणानां आवली श्रेयो । किरण-
श्रेयो, किरणोंकी कतार । २ किरणावली नामके अंशुत
भाषामें बहुतसे ग्रन्थ हैं । उनमें उदयनाचार्य-विर-
चित वैशेषिकसूत्रके प्रथमपादकी व्याख्या मुख्य है ।
फिर इसके ऊपर भी बहुतसी टीका हैं । जैसे—रघुनाथ-
कृत किरणावलीभास्कर, वर्धमानकृत द्रव्यकिरणा-
वलीप्रकाश, चंद्रगुणरभारतीकृत द्रव्यकिरणावली-
शब्दविवरण, महादेवकृत गुणकिरणावलीरसना,
रामभद्रकृत गुणरहस्य, वरदराज और लक्ष्मणक टीका
आदि । किरणावलीकी उन टीकाओं पर भी और
बहुतसे विवरण उपलब्ध होते हैं । उनमेंसे कुछके
नाम ये हैं—नेमभगौरकृत किरणावलीप्रकाशप्रका-
शिका, रुद्रनाथवाचस्पतिकृत रघुनाथीय द्रव्यकिरणावली-
परोक्षा, माधवदेवकृत गुणरहस्यप्रकाश, रघुनाथकृत गुण-
प्रकाशविवृति, मधुरनाथकृत गुणप्रकाशदीधिति और
गुणप्रकाशदीधितिमंजरी नाम्नी विवृतिटीका । इनके
सिवा रुद्रभद्राचार्यकृत गुणप्रकाशविवृति-भावप्रकाशिका,
रामकृष्णभद्राचार्यविरचित गुणप्रकाशविवृतिप्रकाशिका
और जयरामभद्राचार्यविरचित दीधितिप्रकाशिका भी
प्रचलित हैं ।

३ दादाभाई विरचित सूर्यमहातटीका । ४ रामधर-
कृत एक अलंकार निरूपक ग्रंथ ।

विद्विषोको (सं० वि०) विद्विषोनि तत्त्वा कारणि
मन्दादिने, विद्विषो-का-कः विद्विषोकाः सुदुर्बलका
म चत्वादि, विद्विषोका-दिनि । सुदुर्बलकायुक्त,
अर्थयोःशाना ।

विद्विषोकोनि (विद्वत्)—वेद्यकोटि किमो विद्विषका
दि । एक लेखके अथवासि कालमे मन मन मन्दा-
का सोना, काल अदना, परिचरता, गिरासोग, चतुरीग,
अचरुसि चौर मन्दाकाभादि मिट काला हे । प्रस्तुत
परमेका निराम यद हे—जायके निचे पादित्यमना
को २ मेर पाठ एक १५ मेर एकल वका ४ मेर रदने-
मि अतार लेना पाहिये । अंदि, कामधुल्लूर चौर
निगुण्यो प्रयोक्त २ मेर परिमाण चौर मानियममे
दिर मोन प्रकारका क म बनते हे । अस्तथायं ४ मेर
सर्ववसेन, यदिसधु, विषयो, सुस्ता, गमक, कुल,
दुगामभा, कर्कटयुद्धी, पादित्यमनाशोन, धुल्लूरथीम,
राधा, मापुरिका, अटिकासुम, रंगमालिका सुम,
विषयायुक्त, मन्दिता चौर महोन्नको दाम प्रत्येक
४ मोना काल कर वकाला पाहिये ।

विद्विषि (सं० पु०) विद्विषो शोः ।

विद्विषो (सं० शो०) १ विकटतस्त, धेनी । २ पाण्ड-
द्राणा, पहा चंगूर ।

विद्विष (सं० शो०) किं कुमिर्तं मदवारि किरति विदि
पनि, किम्-क-क । १ इतिकुवा, हाथीका मत्ता । (पु०)
२ सुदृष्ट कण्ठासिका, भोः । ३ कीकिम, कांयल ।
४ पीटक, घोडा । ५ कामदेव । ६ रत्नवर्ष, लामरंग ।
(ति०) ७ रत्नवर्षविमिष्ट, सुधं काम ।

विद्विषा (सं० शो०) किं कुमिर्तं यथातथा किरति गर्भी
वात् निःसरति, किम्-क-कटाप । १ रक, चून्, कण ।
२ विकटतस्त, धेनीका पीट ।

विद्विषाट (सं० पु०) १ वरुणक सुच, वृत्तका पीट
विद्विषाट मोत, पीटक, पादक चौर कक, कुल, क्ति
एवं विषयायुक्त जाता हे । (विद्विषाट)

विद्विषान (सं० पु०) विद्विषं रत्नवर्षं पतति पुष्प-
कानि विद्यापतं, विद्विष-पत-पद । १ पयोः सुल ।
२ कन्द । ३ सुकरोपी, ताता । ४ कोः, कोटक ।
५ मन्दाचरोत्तुकारका अस्तोः सुच, एक काम

भ-दो कटमोया । ६ दण्डिमेव, एक पुष्प । नमका
मंरुत पदोय—दमगौर, पीनक, पीतमदक, विषकाभी,
पीनाशान चौर चरुटाण्ड हे । राजनिपण्ड के मतमे
विद्विषान कथाय एवं निररम, कथाभी, चम्पिदीपक
चौर कक, वायु, कन्द, गीग, रक्त तथा स्वकटोपनायक
हे । विर भावमकाममे उमे विद्याया, दाह, मोच, वमि
चौर क्तिनायक भी कहा हे ।

विद्विषान (सं० पु०) विद्विषाय रत्नवर्षं पतति
पयोशोति, विद्विष-पन्-पन् । वरुणक, वृत्तका
पीट ।

विद्विषो (सं० पु०) विद्विषं रत्नवर्षं पतति पन्-
विद्विष-दिनि । विकटतस्त, धेनी ।

विद्विष (सं० पद०) किं प किम च, दण्डः । १ कोष-
मे । २ पयहाये ।

विद्विषाम (सं० पु०) पयोः सुल ।

विद्विष (सं० ति०) किं क्रियतुपरिमाणं चपमत,
वृत्तोः । कितने समयगत, कितने चपमे समय,
कितनो देरमे बना कृवा ।

विद्विष (सं० वि०) किं विद्यामधियं गोत्रमण्य, वृत्तोः ।
कोन गोत्रीय, किम संगताग, किम मोद या संगशाना ।
किमकिच (वि० शो०) १ निरयंक वादविवाद, भूटा
भतहा । २ वाक युक्त, तकार ।

विद्विषाणा (वि० शि०) १ कोषके कारक एतपयं च
करना, टात घोसना । २ पुर्व अलपयोग करना, पुरो
ताकत मगाना । ३ लक्ष सोना, गुग्गा पाना ।

विद्विषावाट (वि० शो०) कांथ, गुग्गा, टात विघारं ।

विद्विषी (वि० शो०) कोष, गुग्गा, विद्विषावाट ।

विद्विषि (वि० वि०) १ लमरदिन, धिमलमिना ।
२ पन्पट, का माक म यो ।

विद्विषाणा (वि० शि०) पापमे कोषक पाना, पाप
उठना ।

विद्विषाविषर, विद्विषाविषर, विद्विष-दिनी ।

विद्विष (सं० पद०) किम् न म च एषोदंशः । १ पाण्ड-
शामे, मन्मे । २ मनुयय पर, लयोमे । ३ पाण्डुर्धमं ।
४ अश्वत्था, मानिबन् । ५ मेदपुर्वक, चंटाभरिपे ।

विद्विष (सं० पु०) किम्-पन्-पन् । १ इतिकर्क

पद्माग, बड़ा टाक । (पश्य०) २ कोड़े पनितिटं वस्तु या चीज । ३ पल्प, थोड़ा । ४ भ्रमाकल्प ।

किष्कनक (सं० पु०) नागराजविशेष, नागोंके एक राजा ।

किष्किचौरितपत्रिका (सं० स्त्री०) शाकहृच्चविशेष, पद्माकी ।

किष्कित् (सं० अव्य०) किम् च चित् च ह्योर्दन्द्ः । १ अल्प, कम, थोड़ा । इसका संस्कृत पर्याय—ईपत्, मनाक और भ्रमाकल्प है ।

“वागजिना किष्किदिन क्नाभात् ॥” (इकारसभार)

२ कोड़े पनितिटं वस्तु । (वि०) ३ चतुर्थीय, चौथाई ।

किष्कित्कर (सं० त्रि०) किष्कित्पि करोति, किष्कित्-कृत । अल्पकार्यकारक, थोड़ा काम करनेवाला ।

किष्कित्यापि (सं० पु०) वर्धमितमान, दो तोसिकी तोल ।

किष्कित्पुण्य (सं० त्रि०) किष्कित् ईपत् ल्यप्, कर्मधा० । ईपत् ल्यप्, थोड़ा गर्म । इसका संस्कृत पर्याय—कोण्य और कवोण्य है ।

किष्कितून (सं० त्रि०) किष्कित् अल्पपरिमाणं जनं न्यूनं यस्य, बहुव्री० । अल्प न्यून, कुछ कम ।

किष्किन्मात्र (सं० त्रि०) किष्कित् अल्पा मात्रा यस्य, बहुव्री० । अल्पपरिमित, थोड़ासा ।

किष्किलिक (सं० पु०) किष्कित् चुलुम्पति, किम्-चुलुप (सौत्रधातुः)-ङ्; रंजायां कन् प्रयोदरादित्वात् साधुः । गण्डूपद, कंबुवा ।

किष्किलुक (सं० पु०) किष्कित् चुलुम्पति, किम्-चुलुम्प-चु-संज्ञायां कन् । गण्डूपद, कंबुवा । इसका संस्कृत पर्याय—मडीलता, गण्डूपद, गण्डूपदी, भूलता और कुसु है ।

किष्कुलक, किष्किदिन देवो ।

किष्कुन्दम् (सं० त्रि०) किष्कित् वेदका प्रवक्तव्यन करने-वाला ;

किष्क (सं० स्त्री०) किष्कित् जनं यत्र, प्रयोदरादित्वात् स ऋपोः । १ किष्कलक, कलका रिंगा । २ मृपाल, कामलकी डण्डो । ३ नागकेशरपुष्प !

किष्कप्य (सं० स्त्री०) किष्कित् जप्यं यत्र, बहुव्री० । तोर्धविशेष । उक्त तोर्धमें स्नान करनेसे अपरिमित जपका फल मिलता है । (भारत, वन, २३ प०)

किष्कल (सं० पु०) किष्कित् जलं यत्र, बहुव्री० । १ पद्मकेशर, कामलका रिंगा । २ किष्कलमात्र ।

किष्कलक (सं० पु०-स्त्री०) किष्कित् जनति अपवारयति, किम्-जनन वाहुलकात् कः । १ नागकेशरपुष्प । २ नाग-केशरहन । ३ पद्मकेशर, कामलका रिंगा । यह बीज कोपकी चारो ओर वेष्टित रहता है । इसका संस्कृत पर्याय—मकरन्द, केशर, पद्मकेशर, किष्क, पोतपराग, तुलू और चाम्पेयक है । राजनिघण्टुके मतमें यह मधुर एवं कटुरस, रुच, गीतम, रुचिकारक और पिप्प, टण्डा, दाह तथा सुखद्वगणनायक है । फिर भावप्रकाशमें किष्कलकको रुष, रक्षागं, विष और ग्रीधरोगनाशक कहा है ।

किष्कल्लो (सं० त्रि०) किष्कल्लोऽस्यास्ति, किष्कल्ल-इति । केशरयुक्त, रिंगेदार ।

“किष्कल्लो” दशे वाग्भिर्मात्रायां वदन्नात् ॥” (शिवोपासना ५ । ११)

किष्कलालुक (सं० स्त्री०) कंकुष्ट, एक पहाड़ी मटो ।

किटकिट (हिं० पु०) यादविवाद, भगडा, भंभट ।

किटकिताना (हिं० स्त्री०) १ दस्तावर्षण करना, दांत पौसना, किचकिचाना । २ दांतोंके नीचे कड़क पड़ना ।

किटकिताना (हिं० पु०) १ कोड़े दस्तावेज । उसके द्वारा ठीकेदार अपना ठेका अपनी ओरसे दूसरे पसामियोंके नाम कर देता है । २ यन्त्रविशेष, एक ठप्पा । किटकिने पर सोनार मोना चांदीके पत्रों या तारोंको पोटा कर बेलथूटे बनाते हैं ।

किटकितानादार (हिं० पु०) ठेकेदारसे ठेके पर कोड़े चीज लेनेवाला धादमी ।

किटकिताना, किटकिताना देवो ।

किटि (सं० पु०) केटिति शब्दं प्रतिषेधेन गच्छति, मन्नादीन् सदृश्यं गच्छति वा, किट् गती इन् इपु-धात् किष्क । १ वनशूकर, जङ्गलो मूँवर । २ पाराडो-कन्द ।

किटिदंष्ट्रा (सं० स्त्री०) शूकरदंष्ट्रा, मूँवरकी डाँठ ।

जातिका निवास वर्तमान भाराकान बताते हैं ।
ब्रह्मदेश और कम्बोज (कम्बोडिया) से खूबिय
५ म ६ शताब्दकी गिलानिधि आविष्कृत हुयी है ।
उसमें ब्रह्म और कम्बोजके प्रादिम अधिवासियोंका
किरात नाम सिखा है ।

उक्त सकल प्रमायद्वारा समझ पड़ता है किसे समय
हिमालयके पूर्वांशमें वर्तमान भूटान और आसामके
पूर्वांश मणिपुर, ब्रह्मदेश तथा चीनसमुद्र कूलवर्ती
कम्बोज तक किरात जातिका वास था । फिर उक्त
समस्त स्थान समय समय पर किरातजनपद कहे जाते
थे । आज भी नेपालके पूर्वांशसे आसाम पश्चिमके पश्चत
पर्यन्त किरात रहते हैं । नेपालमें उनको 'किरांति'
कहते हैं । किन्तु वहाँ किरात जनपदको मोम्बो या
किराया बताते हैं । अद्यापि किरात जातिके नामा-
नुसार नेपालका एक जिला 'किरांति' नामसे परि-
चित है ।

वर्तमान किरान्ति जाति तीन भागमें विभक्त
है—बसो किरान्त, माफ किरान्त और पन्न किरान्त ।
बसो किरान्तोंमें लिम्बू, यक्ष (यक्ष ?) और रयम
(रचसु ?) नामसे श्रेणीभेद है । लिम्बू किरान्ति
पत्नी क्रय करते हैं । विषके क्रय करनेकी चर्चा नहीं
रहता, यह श्वशुरके घर कुछ दिन नौकरी करता है ।
फिर पारित्यक्तिक चर्चके परिवर्तनमें उसे पत्नी मिलती
है । किरात पडाड़ पर श्वदेहको ले जाकर जनाते हैं ।
पौछे उस श्वके भस्मको समाधि दिया जाता है ।
समाधि पर १४ डाय पत्थरकी एक छड़ बना कर
रखनेकी प्रथा है ।

नेपालका पार्वतीय यंशालो नामक इति-
हास पढ़नेसे समझ पड़ता है कि आडिरवंशके
पौछे किरातवंशीय २६ राजाशाने नेपालमें राजत्व
किया था । उसमें पौछे भी बहुत दिन किरातोंकी
समता रही । अन्तमें नेपालराज पृथ्वीनारायणने
उन्हें एक बारभी ही नीचे गिरा दिया ।

सिकिम और नेपालके किरातोंमें कुछ लोग बौद्ध
और कुछ हिन्दूधर्मावलम्बी हैं ।

बराहसिद्धिकी हृद्यसंज्ञितामें भारतके दक्षिण-

पश्चिम 'किरात' नामक किसी जनपदका उल्लेख है
शक्तिचन्द्रमतम्के मतमें—

“तत्र ७८० ममारभा रामसेवानर्त्त विवे ।

किरातदेशी देवियि विभ्यन्तेषुप्रतिष्ठते ॥”

तसकुण्डमे सेकर रामसेवान्त पर्यन्त किरात देश
है । वक्ष विभ्यन्तेषुनमें भवस्थित है । (वि०) ७ अल्प-
शरीर, छोटे जिह्मवाला ।

किरात (हिं० स्त्री०) परिमाणविशेष, एक तोन ।
किरात ४ यवके बराबर रहती और रत्नादि तोलनेमें
लगती है । वक्ष अरबीके 'किरात' शब्दका अपभ्रंश है ।
२ औंसका २४याँ हिस्सा । ३ सुद्राविशेष, एक
सिखा । वक्ष बहुत छोटी और मूष्यमें पाईसे भी न्यून
होती थी ।

किरातक (सं० पु०) किरात एव स्वार्थे कन् । १ चिरा-
यता । २ युद्धप्रिय जातिविशेष, एक नडाका कौम ।

किरातकान्त (सं० स्त्री०) कौङ्कणप्रसिद्ध श्वरचन्दन,
किसी किष्कका सन्दल ।

किराततिलक (सं० पु०) किराती भूमिन्व्यः सपथ तिलकः,
कर्मधा० । भूमिन्व्य, चिरायता । किराततिलका संकृत
पर्याय—भूमिन्व्य, अनार्घतिलक, कौरात, काण्डतिलक,
किरातक, चिरतिलक, तिलक, सुतिलक, कटुतिलक और
रामसेनक है । भावप्रकाशके मतमें यह सिंदूर, बच्च,
गीतम, तिलहरष, लघु, एवं सन्निपात च्वर, श्वाघ, काफ,
पित्त, रत्न, दाह, कास, शोथ, तप्या, कुष्ठ, च्वर, प्रण
और क्षमिरीगनाशक है ।

किराततिलक (सं० पु०) किराततिलक स्वार्थे कन् ।
भूमिन्व्य, चिरायता ।

किराततिलकादि, किरातादि श्वा० ।

किरातपति (सं० पु०) शिव, किरातोंके राजा महादेव ।

किरातपुर—विजनौर जिलेमें नजीबाबाद तहसीलका
एक कस्बा । यह अक्षा० २८° १०' ४०" और देशा०
७८° १६' ५०" पर विजनौरसे १० मील उत्तर भवस्थित
है । जनसंख्या १५ हजारके करीब है । रमके दो
विभाग हैं—किरातपुर खाम और बनी ।

किरातसिंह—१ धौलपुर रियासतके सबसे प्रथम राणा ।

२ चंदेला वंशके अंतिम राजा ।

कितना (हि० वि०) कियत, किम कदर । २ अधिक।
कैसा । यह शब्द क्रियाविशेषणकी भाँति भी व्यवहृत
होता है ।

कितब (सं० पु०) कितं वायति कितैन वाति वा,
कित-वा-क । १ पागाकोडक, किमाववाज, जुबरा
२ धुम्तरुहच, धतूरेका पेड़ । ३ मत्त, मन्वाना पाटमौ
४ वल्लरु, धार्कवान । ५ धूर्त, ठग । ६ खल, नामाकून
७ गीनेचना नामक गन्धद्रव्य । ८ दान्यवर्ण, गण्ड-
वन खु, बुटार चीज ।

कितववाज (सं० पु०) धुम्तरुहच, धतूरेका पेड़ ।

किता (अ० पु०) १ काट छाँट अंतर व्यति । २ टह,
वाल । ३ संख्या, अदद । ४ विस्तारभग, सतहका
विस्था । ५ प्राङ्गण भूभाग, जमान्का टुकड़ा ।

किताब (अ० स्त्री०) १ पुस्तक, ग्रन्थ । २ बच्चीखाता,
रजिटर ।

किताबी (अ० वि०) पुस्तकाकार, किताब जैसा ।
सदा पुस्तक पाठ करदेवालेको 'किताबी कौड़ा'
कहते हैं ।

कितिक, कितना देखो ।

कितिक, कितना देखो ।

कितो, कितना देखो ।

कित्ता, कितना देखो ।

कित्त (हि० स्त्री०) कीर्त्ति, नामवरी ।

कित्तूर—वेलगाम जिलेका पुराना शहर । यह यत्ना १५
३६" उ० देशा० ७४' ४८" पू० पर सामगांवसे दक्षिण
१४ मील चलकर अवस्थित है । लोकसंख्या ७५००के
लग भग है । यहाँ स्कूल, पाठशाळा और सामवा
तथा हस्तकलाशालाको बाजार लगता है ।

कित्तारा, केशरा देखो ।

कित्तर (हि० स्त्री० वि०) कुत्र, कहाँ, किस पौर ।

किधो (हि० अर्थ०) चयना, या ता ।

किन् (हि० सर्व०) १ 'किञ्' का बहुवचन । (स्त्री०
वि०) २ क्वां नहीं । ३ चयन, चयन । (पु०)
४ चयनविषय, रगडका दाग ।

किनका (हि० पु०) कणिक, अनाजका टुकड़ा ।

किनका (हि० वि०) कर्मयुक्त, किरका ।

किनकर—एक जाति । युक्तदेशमें हम जातिके जागोकी
संख्या अधिक पाई जाती है । ये अनेकी चविय
बननाते हैं, परंतु और लग इतने चविय नहीं
मानते ।

किनाट (सं० स्त्री०) हुचका अर्थात्तरुह वल्लरु, पेड़-
की भीतरी छाल ।

किनाती (हि० स्त्री०) पक्षीविशेष, एक चिड़िया ।
उल्ल पक्षी संरोधके निकट रहता है । समका चक्षु
हरिहरण और शिर तथा कण्ठ श्वेतवर्ण होता है ।
अण्डा देनेका समय मई और सितम्बर मासका मध्य
भाग है ।

किनार, किनाए देखो ।

किनारदार (हि० वि०) किनारेवला, जिनमें कोर रहे ।

किनारपेव (हि० पु०) एक डोर । यह दूरीके तानेको
दोनों तरफ लगता है । किनारपेव दूरीके ताने-बानेसे
कुछ ज्यादा मोटा रहता और तानेको यथानिकेतिये
लगता है ।

किनारा (का० पु०) तीर, कून प्राप्तभाग ।

किनारी (हि० स्त्री०) १ गोट, हासिया । २ सुनहला
या रुपहला गेटा ।

किमी (सं० स्त्री०) इतना हजती, छोटी कटेया ।

किन्तु (सं० पु०) किं कुत्सिता तदुरथ्य, बहुप्रो० ।
ऊर्णनाभ, मकड़ा ।

किन्तुमां (सं० अर्थ०) इदमेयामतिगयेन किं कुत्सित
इत्यर्थः, किन्तुमप-पानुः । दो कुत्सित द्रव्योंके मध्य
अतिशय कुत्सित, बदनर ।

किन्तु (सं० अर्थ०) किन्तु तु व इयोर्द्वन्द्वः । परन्तु,
लेकिन, पूर्ववाक्यका सहोचसोधक । २ पूर्ववाक्यका
विकल्पोधक, वरन्, बल्कि । ३ फिर वया ।

किन्तु (सं० पु०) अतिव्याप्योक्त यथादि एकादश
धरणाके अन्तर्गत एक कारण । किन्तु कारणमें
जन्म लेनेमें मनुष्यका मित एवं अमित और धर्म
तथा अधर्मकोई भेदज्ञान नहीं रहता । कि
वह स्वयं और विचारकार्य मित होता है । (श्रीश्रीश्री)

किन्तु (सं० पु०) महाभारतको तोषविशेष । किन्तु-
ताथैर्में तिसपरस प्रदान करनेसे मनुष्य समस्त

के कृत परम प्रति पला है । (भा. १०. १२. ५०) ।
 किन्दम (सं० पु०) काविविधियः किन्दम क्वपि मू-
 षण् परादृश मूढत्वप्रतिबन्धि क्वचित् भाव किमो
 काल विद्या कश्चिदे । यमी ममद मकारात् प्राणुनी
 यन्ते माय कश्चा । क्वचित् किन्दमं प्राणुनी यमि-
 तात् शिवा दा—'तुम भी मकुमवा'वमं मीमि ।'
 (भा. १०. १२. ५०) ।

किन्दमं (सं० पु०) कौटुम्बिक ।
 किन्दम (सं० ली०) किन्दमि दामं कावयकं यत्,
 यदमं । मरकतोदकं मीरं वमिद । किन्दम मोदमं
 याम कश्चिमे यपरिमित दामका यम मिमता है ।
 (भा. १०. १२. ५०) ।

किन्दम (सं० पु०) कः कुम्भितो दामः, कर्मधा० ।
 'मन्दिन दाम, पराव मोकर ।'
 (भा. १०. १२. ५०) ।

किन्दो (सं० पु०) कौटुम्बिक, मोटा ।

किन्दुविन्ध (सं० पु० ली०) राश्ट्रगीय एक याम ।
 किन्दुविन्ध एकयष्टीकं तीर यवस्थित है । उम
 वन्दुवन्ध, मन्दुविन्ध और मन्दुविन्ध भी कहते हैं ।
 मसिह वैश्व क्वि कश्चिदे मोनामोनि मरु याममं
 कश्चिद्वत्त किया दा । वहा प्रति यमं भाव ममको
 ' लददेवका मिमा' मगता है । यानकल हमि मन्दुमी
 कहते हैं । मरुदे देवा ।

किन्देवत (सं० लि०) का देवतास्य, किम्-देवता-
 यत् । १ किम देवताका उदासक, किम देवताकी पूजा
 कर मेवाका । २ किम देवतामध्यमीय ।

किन्देवता (सं० ली०) किन्देवतस्य भावः, किन्दे-
 वत यत् । किन्देवतका धर्म ।

किमी (सं० पु०) किं कुम्भिता धीः बुद्धिरुपस्य,
 किम्-धी इति । यम, मोटा ।

किचर (सं० पु०) किं कुम्भितो मरु, यर्मधः० ।
 १ देवयोगिविधिय, एक प्रकारके देव । किचरका सुत
 यष्टीकी भाति रहता, किन्तु यथाया ममया यवयव
 मन्वयगुण देव पक्षता है । उमका मन्वयत यवोय—
 किन्दुवत्, सुप्रवदल, मरु, यमदुष, मोतकीरो और
 चरिचरक है । किचर यमियय मन्विसदत् सोता
 है हृष्यकृ मभूत यर्मनायक भी उम यातिके धी है ।
 २ यर्मवर्म, ३ कं ई यीह यदासक ।

किचर (सं० पु०) १ वायुविवाह, अन्वयः । २ यथाः ।
 ३ यथाता ।

किचरकपूरक—देवाकाय योयवविधिय, एक दवा ।
 पाद, मरु, यम, यवकादिह यमं कीट मलीक
 २ मंसा, मोलाय ५ माया, यर्म २ माया मया रोय
 १ मोला मयको ममक, मयायवदिका, हृषती, यव-
 वागी, यष्टीक और मन्विसी यमी मिमा यष्टु पूवक
 मारता देना यादिये । यि २ हती की मयाव कश्चिमा
 यता दायामी सुता मन्विये मरु योयव मन्वय दाता है ।
 किचरकपूरक योदे दिन नियमित यवदा, अरुमिमे
 किचरकी भाति यष्टुयव यमता और यमयष्ट, याम,
 यम, यमं कश्चि मया यमयष्टे यम रोम मिदता है ।
 किचरयर्म (सं० पु०) यर्मविधिय, एक सुष्टक । किचर-
 यर्म किमानय यर्मयके यममाममं यवस्थित है ।

किचरी (सं० ली०) किचा-डीय । किचर जातीय यमी ।

किचरीय (सं० ली०) किचरीयस्य भावः ।
 यथा देवाकाय यमया किचरीयः ।

(भा. १०. १२. ५०) ।

किचरीयोवा (सं० ली०) किमी मकाराका मीवायम ।
 यर्मकायकी उम मरु मायिमके योयर्मि यमता
 दा । यान हम उम यमिनिरीयके यष्ट या यमतादि
 पाणु दाता भी मन्वयत कहते हैं । यष्ट कश्चिदेवीवाकी
 यवेवा यकारमं सुष्ट होती है । किचरी-जातीय योवा
 धी यष्टी यष्ट्टियमि 'किचर' और यमामियमि
 'मन्वय' नाममि विद्यात यी । यष्ट दा मकारकी
 योमी है—मयी और हृषती । हृषतीमं मोम सुर्मो
 मयती है ।

किचरीय (सं० पु०) किचावा देवी मया । किचर-
 राक सुधिर । यामीययमि मिमा है—कर्मो मया-
 तयदाके यम मयादेवके मरुट मूढक, यम, किचर
 यमतिके यामियय और यमिययका यर पाटा या ।
 (भा. १०. १२. ५०) ।

किचरीयव (सं० पु०) किचावा देवता, यमपु ।
 कुचरी । यर्मो देवा ।

किचामयेव (सं० लि०) किं मयिधियस्य, यष्टी-
 किचाम यदित, किम मयमाका ।

भासका ह ए सोवदा दुबदा । विष सोपेडो ओपुडे
 को दे च ७ उबसे, सोमंदा को भाडे, एके एव विविधा
 ओमो अरुने दे । एव उबसे कथाकथा दास पाहुने
 पा उबदा ओर मरुतु क्राट कर निगमिडे निडे
 दासा माला दे ।

विरिटि (विं सो) विरिवा मुकरीय टकावे विरुदने,
 विरि टकादि । विरिः (विं) १ पुं० २ चतुर्भु-
 वण । ३ चतुर्भुवण, चतुर्भा पीड । ४ संवत्सुमो,
 लक्ष्मी ।

विरिरो, विना कला ।
 विरिण (विं) विना कला ।
 विरिण (विं) उ० कला ।

विरिमादासा (विं पुं) विरिविरोय, विरिमिओ कोडा ।
 विरिमादासा विमो विरिवा सोटा कोडा दे । एव
 पुदरके पीड पर मेक सासा दे । मादा ०० कला
 विरिमादासे लोमो पाड विरिमे कदादा मरुओ सोम ।
 मादा कोडे कला कर सुपाये कोर सोम कर उबसे
 काममे मदि मदि दे । विरिमादासेको पुदरको रो
 विरिमिओ सा विरोमको कथाओपुडे । एवका उड
 कला कोर मद्रोकापम निडे माल कला दे ।

विरिवा (विं सो) १ मण, कण, योग्य । २ उरु,
 कर्मकलासा । ३ मृतकानं, मुदके निडे विवा कानि-
 वासा काम काल ।

विरोट (विं पुं-सो) विरिनि कोपेडे एमेम वा, क-
 कोटम् । विरोपिवा कोर, मण, १०० । १ मुकुट, माला
 २ विरोपेयम, पदयो । ३ लक्ष्मीविरोय । एमो केल
 मणक एरुने दे । ४ कुमुभउय, कुमुमका पीड ।

विरोटमाओ (विं पुं) विरोटव्य मामो मय्यमो,
 विरोट मय्यमय्यो विरिण, पुं० मण । चतुर्भु ।

विरोटमो (विं पुं) विरोटे एरिण एरुदनि वा,
 विरोट-पु-विनि । १ चतुर्भु । (विं) २ मुकुटभाओ,
 माल मालाये दूवे ।

विरोटो (विं पुं) विरोटोपादि, विरोट एमि ।
 १ चतुर्भु । एरुदि कर एरुनेकोओ देवमालाएकएकके
 माल पुव विवा, मर उबसे एके एव चतुर्भुवण विरोट
 दिवा वा । एमोके मड विरोटो मालाये एरिण दूवे ।

(मण, १०००००) (विं) ३ मुकुटदुव, माल मय्यमि
 दूव । विरोपेयम उरुने कविपय मय्यमि मय्यमि पुं० मण, १०००००
 (विं, १०००००)

विरिटि, मण कला ।
 विरोमना (विं सो) एमेम कला, सुवावना ।
 विरोमना (विं पुं) कानि, कोडा ।
 विरो, मण कला ।

विरिमि (विं पुं) १ विरिमिओ, विरिमादासेको
 पुदरको, एव एमि । २ कानिदिदेव, विरिमिओ कोडा ।
 विरिमि (विं विं) विरिमिपणे, मय्यमि, कला ।
 "मय्यमि विरिमिपणे (मय्यमि)" (मण, १०००००)
 "मय्यमि, विरिमि मय्यमिपणे" (मण, १०००००)

विरो (विं सो) कानि-मुद, य निगमनात् कोपु ।
 १ मणमणय, दाकका पीड । २ एव, वा । ३ एरु-
 पुवमिवा, मोमोको पुममो । ४ ओडपुवमिवा, कोर-
 को पुममो ।

विरो (विं पुं) एरुवामु निगमनात् मापु । १ मण-
 मणय, कोडका पीड । २ कोर एवय । (मण, १०००००)
 ३ विरिमिपणे, विरिमिवा एव । (विं) ४ विरिमि-
 मय्यमिपुव, विरिमिवा ।

विरोविनि (विं पुं) विरोवि निमवामु, विरोवि-नि-
 टिप । सोममेम । एम मणयके मणय विरोवि एवय-
 मे मुविदिवादिवा एवमय विवा वा । ओमविमि
 पुव कर एमो माल कला । (मण, १०००००)

विरोविण (विं सो) विरोवि विना एवमय, मय्य-
 मी । मणमणय, कोडका पीड ।

विरोविणय, विरोविण कला ।

विरोविणम्, विरोविण कला ।

विरोविणुव, विरोविण कला ।

विरोविण्वा, विरोविण कला ।

विरोविण्वा, विरोविण कला ।

विरोविण (विं विं) विरोवि मय्यमिपण, विरोवि-
 एवय । विरिमिपणेपुव, विरिमिवा ।

विरोवि (विं पुं) मणमण, मय्यमि मय्यमि ।

विरो (विं सो) मणमिपण, विरो विवा को विरो ।
 विरोवि मण पर एम को एवय एरु कर एमो दे ।

किन्नामा (स० त्रि०) किं नाम अस्य, बहुव्री० ।

किन्नामधेय देखो ।

किन्निमित्त (स० त्रि०) किं निमित्तं कारणं यस्य, बहुव्री० । किस कारण, किस लिये ।

किन्नु (सं० अथ्य०) किं च तु च द्वयोर्हन्द्ः । १ प्रथम क्यो, क्या । २ वितर्क, शायद । ३ साहस्य, कैसे । ४ स्थान, जहाँ, कहाँ । ५ कारण, कर्त्ताकर, कैसे ।

किन्धु (सं० पु०) मन्त्रज क्रमिविग्रेय, मैलेका एक कौडा । कृति देखो ।

किन्नायत (प्र० स्त्री०) १ अलम होनेका भाव, काफी होनेको लालत । २ मितव्ययिता, कमखर्ची ।

किन्नायती (प्र० वि०) मितव्ययी, कमखर्च, संभल कर चलनेवाला ।

किन्वन्द् (हिं० स्त्री०) पश्चिमदिक्, मगरिवकी सिद्ध ।
किन्वला (प्र० पु०) १ पश्चिमदिक्, मगरिवकी सिद्ध ।
सुमन्मन्नु लसी और सुख रख नमाज पढ़ते हैं ।
२ मक्का ।

किन्वला आलम (प्र० पु०) १ ईश्वर, सबका मालिक ।
२ सन्नाट, बादगाह ।

किन्वलागाह (प्र० पु०) विता, वालिद, वाप ।

किन्वलागाही, किन्वलाग देखो ।

किन्वलातुमा (फ्रा० पु०) यन्त्रविग्रेय, एक चौजार । किन्वलातुमा पश्चिमदिक्को बहता है । परब नाविक उक्त यन्त्रको व्यवहार करते थे । उसमें एक सूई ऐसी लगती जो पश्चिम पोरको ही अपना सुझ रखती है ।

किन्मु (सं० अथ्य०) कु बाहुलकात् डिसु । १ कुस्ता, निम्दा, छो छो । २ वितर्क, कौनसा । ३ निषेध, नहीं । ४ प्रथम, क्यों, क्या ।

किन्मु (सं० त्रि०) १ त्याग । २ वितर्क । ३ निम्दा । ४ प्रथम ।

किन्मपि (सं० अथ्य०) किं च अपि च द्वयोर्हन्द्ः । १ कोई भी । २ अनिर्वचनीय, कह कर बताया न जानि-
वाला ।

“ननवत्तोमोरं प्रविष्टिनसंवादिषडंनयं प्रियायाः

सावार्थं किमपि वनकीर्त्तं बहुविरुद्धम्” । (मनुस्मृ. १. ५०)

किमरिक् (हिं० पु०) वृद्धविग्रेय, किसी किष्ककां

कपडा । किमरिक् चिक्कण, श्वेत तथा सूक्ष्म रचना और सगरी बनता है । किन्तु, भाज कल लोग उसे रुई से भी बना लेते हैं । उक्त शब्द अंगरेजीके कैम्ब्रिक (Cambric) का अपभ्रंश है ।

किमर्थ (सं० अथ्य०) किं अर्थे प्रयोजनं अत्र, बहुव्री० । किस कारण, किस लिये, क्यों ।

किमाकार (सं० त्रि०) किं कौटुम्भः आकारोऽस्य, बहुव्री० । किस प्रकार आकारविशिष्ट, कौमो सूरत यज्ञ-
वाला ।

किमाख्य (सं० त्रि०) का पाख्या अस्य, बहुव्री० । क्या नामविशिष्ट, किस नामवाला ।

किमाहु (हिं० पु०) केषांच ।

किमाम (हिं० पु०) किन्नाम, खमीर, एक शर्वत ।
किमाम शब्दको तरह गाढा बनाया जाता है ।

किमारखानां (फ्रा० पु०) द्यूतक्रीडाशब्द, जुवा खेलने-
की जगह ।

किमारवाज (फ्रा० वि०) द्यूतक्रीडक, जुवारी, जुवा
खेलनेवाला ।

किमारीवाजी (फ्रा० स्त्री०) द्यूतक्रीडा, जुवेका खेल ।

किमाय (प्र० पु०) १ रीति, ढंग । २ गंजाकेका ताजा रंग ।

किमि (हिं० क्ति० वि०) किस रीतिसे, कर्त्ताकर, कैसे ।

“किमि पत्रे इ तुम सपत्नरायण” (तुलसीदास)

किमिच्छक (मं० पु०) किमिच्छतीति प्रथेन दानार्थं कायति शब्दायतेऽत्र प्रयोदरादित्वात् साधुः । १ प्रत-
विग्रेय । उक्त व्रत करनेके समय प्राथियोंमें पूहना पढ़ता है यह क्या चाहते हैं । फिर वह जो मांगते, वही व्रत-
कारी उन्हें देते हैं । मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है—
महाराज काम्यभक्त पुत्र अश्वीतित् किमी स्वयम्बरमें
उपस्थित हो राजकन्याको वनपूर्वक पहचान करने पर
उद्यत हुवे । उस समय संभाके समस्त राजाओंने उनके
विरुद्ध अन्न धारण किया । महावीर अश्वीतित्ने अपने
बाहुबलमें पकेले ही उन समस्त राजाओंको हरा दिया
था । परंतु राजावेनि निरन्तर न हो युद्धमें अन्त्याय पहचान
कर अश्वीतित् को पराजित कर दिया । अश्वीतित्ने
उस प्रकार उपमानित हो कभी विवाह न करने का

किल (सं० अर्थ०) किल-क । १ वास्तवमें, दरहकीकत असलमें । २ अर्थात्, यानी । ३ सम्भवतः, गालिबन् यादद ।

“ददं किलायाज ननोदरे वसुसवःजनं सापविगुं य रथति।”

(शाकुन्तल, १४०)

किलक (हिं० स्त्री०) १ हर्षध्वनि, खुशीकी आवाज । २ प्रसन्नता, खुशी । (फा०) ३ दृष्यविशेष, किसी किरमका नरकट । किलकका कलम बनाया है ।

किलकना (हिं० क्रि०) हर्षध्वनि करना, खुशीकी आवाज निकालना, किलकारना ।

किलकार (हिं० स्त्री०) हर्षध्वनि, खुशीकी आवाज । किलकार गभीर तथा अस्पष्ट रहती और आनन्द एवं उत्साहके समय मुहमे निकलती है ।

किलकारना, किलकना देखो ।

किलकारी, किलकार देखो ।

किलकिक्षित (सं० स्त्री०) किल अकीकन कि ईपरचितं रचितम्, ३-तत् । अकारभावजन्य क्षियाविशेष, एक अर्थात् । “किलकक्षितचितपाकीधममदीनाम् ।

शाब्दं किलकिक्षितमभीष्टमसङ्गमविद्यादेषां ॥”

(साहित्यदर्पण, १।१२६)

प्रियनायकके समागममें प्रतिमात्र हृष्ट हो उसी नायकसे स्त्री शुष्कहास, रोदन, भय, क्रोध और आन्ति प्रकृति मिश्ररूपसे जो भावप्रकाश करती है, उसीको किलकिक्षित कहते हैं ।

“लापि और विराजते परं सम्यगुक्तिविक्रियते क्रिय ।

नक्षत्रोत्तर एव शेषते मणिसारावशिगमशोषकम् ॥”

(नेदप, १म सर्ग)

किलकिल (सं० पु०) १ मडादेव । २ नगरविशेष, कोई महर ।

किलकिला (सं० स्त्री०) किल-क प्रकारे वीसार्था वा हिलम् टाप । १ हर्षध्वनि, किलकार । २ धीरोका सिंचनाद, किलकार । ३ टिग्विजयप्रकाशोक्त वज्रदेवके अन्तर्गत सरस्वती और कामिन्दी नदीका मध्यवर्ती कोई सनपद, बंगालकी एक वस्ती । कलकत्ता देखो ।

किलकिला (हिं० स्त्री०) १ पक्षिविशेष, एक चिड़िया ।

किलकिला छोटी रहती और मछली खाकर अपना

पेट भरती है । वह मछलियोंको देख पागोके लपर १० हाथ लंबे उड़ा करती है । घात लगते हो किलकिला मछली पर एकाएक टूट छसे पकड़ कर ले जाती है । (पु०) २ समुद्रका एक भाग । किनकिलाकी लहरें भयानक शब्द करती हैं ।

किलकिलाना (हिं० क्रि०) १ हर्षध्वनि करना, किलकना । २ कोलाहल करना, शोर मचाना । ३ वाद-विवाद नगाना, भगड़ा उठाना । ४ खुजलाना । ५ क्रोध करना ।

किलकिलाहट (हिं० स्त्री०) १ हर्षध्वनि, किलकार । २ कण्ठ, खुजली । ३ क्रोध, गुस्सा । ४ वादविवाद, भगड़ा ।

किलकी (हिं० स्त्री०) यन्त्रविशेष, एक चौजार । बटई किलकोसे नापके मुवाफिक लकड़ीपर विष्ट लगती है ।

किलकैया (हिं० पु०) १ रोगविशेष, एक बीमारी । किलकैयेसे पशुओंके खुरोंमें कीड़े पड़ जाते हैं । २ हर्षध्वनिकारी, किलकार लगानेवाला ।

किलटा (हिं० पु०) करण्डविशेष, किसी किलका टोकरा । किलटा ऐसी युक्तिसे बनाया जाता है कि उसमें रखी छुट्टी चीजका भार दोनोंवालेके कंधोंपर ही पाता है ।

किलना (हिं० क्रि०) १ कोला लगाना, अभिमन्वित होना । २ वगमें लाया जाना, तावेदारोंमें पाना ।

किलनी (हिं० स्त्री०) कौटविशेष, एक कौड़ा । किलनी गाय, बैल, भैंस, कुत्ते, बिल्ली वगैरह जानवरोंके चिपटो रहती और उनका रत्न पाग कर अपना शरीर पोषण करती है । उसे किल्ली और किलनी भी कहते हैं ।

किलपाटिका (सं० स्त्री०) चूटनजालुका, छोटी साज-बंती ।

किलबिलाना (हिं० क्रि०) कुलबुलाना, धीरे धीरे चलना किरना ।

किलमी (हिं० पु०) नौकाका पयाटभाग, कुहालका पिछला हिस्सा । २ पिछले हिस्सेके मस्तका वादधान ।

किलमोरा (हिं० पु०) दाहद्विद्राविशेष, किसी

किल् (सं० ष्य०) किल्-क । १ वास्तवमें, दरहकीकत प्रसन्नमें । २ घर्षात्, यानी । ३ सम्भवतः, मालिबन् शायद ।

“इदं किलशाज मनीषं वपुशःसमं साधयि” य इच्छति ।”

(शकुन्तल, १ व०)

किलक (हिं० स्त्री०) १ हर्षध्वनि, खुशीकी भावाज । २ प्रसन्नता, खुशी । (फा०) ३ ढणविवेय, किसी किष्मका नरकट । किलकका कलम बनना है ।

किलकना (हिं० स्त्री०) हर्षध्वनि करना, खुशीकी भावाज निकालना, किलकारना ।

किलकार (हिं० स्त्री०) हर्षध्वनि, खुशीकी भावाज । किलकार गभीर तथा अस्पष्ट रहती और चानन्द एवं चत्साहके समय मुहसे निकलती है ।

किलकारना, किलकना देहो ।

किलकारी, किलकार देहो ।

किलकित्त (सं० स्त्री०) किल चलीकेन किं ईदत् चितं रचिगम्, इ-तत् । शृङ्गारभावजन्य क्रियाविशेष, एक अदा । “किलकित्तदित्तचित्तचक्रोपमनादीनाम् ।

सादयं किलकित्तमभीरतमसङ्गमदिनादवर्णा ॥”

(साहित्यदर्पण, १।१०८)

प्रियनायकके समागममें अतिमात्र हृष्ट हो उसी नायकसे स्त्री शब्दहास, रोदन, भय, क्रोध और शान्ति प्रभृति मिश्ररूपसे जी भावप्रकाश करती है, उसीको किलकित्त कहते हैं ।

“अपि चौर विराजते परं दमयन्ती किलकित्तं किल ।

सादृशीलपव शीघ्रते मयिहासापिनाभयोश्चकम् ॥”

(द्वेष, १ म वने)

किलकिल (सं० पु०) १ महादेव । २ नगरविशेष, कोरं शहर ।

किलकिला (सं० स्त्री०) किल्-क प्रकारे वीषायां वा हिलम् टाप । १ हर्षध्वनि, किलकार । २ चौरोंका सिङ्गाद, लजकार । ३ दिग्विजयप्रकाशोक्त वङ्गदेशके चत्सर्गते सरस्वती और कालिन्दी नदीका मध्यवर्ती कोरं जलपद, बंगालकी एक बन्ती । क्वचन देहो ।

किलकिला (हिं० स्त्री०) १ पक्षिविषेय, एक चिड़िया ।

किलकिला छोटी रहती और मछली खाकर अपना

पेट भरती है । वह मकलियोंको देख पानीके ऊपर १० हाथ ऊंचे उड़ा करती है । घात लगते हो किलकिला मछली पर एकाएक टूट उसे पकड़ कर ले जाती है । (पु०) २ समुद्रका एक भाग । किलकिलाकी लहरें भयानक शब्द करती हैं ।

किलकिलाना (हिं० स्त्री०) १ हर्षध्वनि करना, किलकिलना । २ कोसाहल करना, शोर मचाना । ३ वाद-विवाद नगाना, भगडा उठाना । ४ खुजलाना । ५ क्रोध करना ।

किलकिलाहट (हिं० स्त्री०) १ हर्षध्वनि, किलकार । २ कण्ठ, खुजली । ३ क्रोध, गुस्सा । ४ वादविवाद, भगडा ।

किलकी (हिं० स्त्री०) यन्त्रविशेष, एक पौजार । बटुर्द किलकोसे नापके सुयाफिक लकड़ीपर विश्र लगते हैं ।

किलकैया (हिं० पु०) १ रोगविशेष, एक बीमारी । किलकैयेमें पशुओंके खुरोंमें कीड़े पड जाते हैं । २ हर्षध्वनिकारी, किलकार लगानेवाला ।

किलटा (हिं० पु०) करणविशेष, किसी किष्मका टोकरा । किलटा ऐसी युक्ति बनाया जाता है कि उसमें रखी हुयी चीजका भार दोनिवालिके कंधोंपर हा जाता है ।

किलना (हिं० स्त्री०) १ कांसा जाना, अभिमन्त्रित होना । २ वगमें नाया जाना, ताथेदारीमें पाना ।

किलनी (हिं० स्त्री०) कौटविविषय, एक कौड़ा । किलनी गाय, बेल, भेंस, लुत्ते, बिस्ती वगैरह जानवरोंके चिपटो रहती और उनका रक्त पान कर अपना शरीर पोषण करती है । उसे किल्ली और किलौनी भी कहते हैं ।

किलपाटिका (सं० स्त्री०) सुदूरनज्जालुका, छोटी साज-यंत्रो ।

किलविलाना (हिं० स्त्री०) कुलबुनाग, धीरे धीरे चलना फिरना ।

किलमी (हिं० पु०) मौकाका पयाट्भाग, लड़ाकवा विछला दिव्या । २ पिपिली टिग्नके मस्तकका वादधान ।

किलमोरा (हिं० पु०) दाहदरिद्राविशेष, किनी

श्वेतवर्ण, चित्रवर्ण, श्यामवर्ण, रक्ताभ, रक्तश्वेत, रक्तोदर, नाभोदर, पीतरक्त, नीलपीत, रक्तनील, नीलशुक्ल एवं रक्तपिङ्गलवर्ण प्रभृति वर्णयुक्त और परिमाणमें एक पर्व, एक पर्वकी अपेक्षा भी सुदृ प्रथवा दो पर्व द्वयिक-समूह महाविष तथा प्राणनाशक है। पुति संपर्दह वा सर्पदंष्ट व्यक्तिके देहमें उसका जन्म है। उसके काट-नेसे सर्पविषकी भांति विषवेगकी प्रवृत्ति, स्फोट, भ्रम, दाह, च्चर और शरीरस्य छिद्रपथसे रक्तस्राव होनेपर प्राण छूट जाता है।

सृष्टिके मतमें—किसी समय राजा विश्वामित्रने विगिष्टकी कामधेनु षपहरण की थी। उससे वह अत्यन्त क्रुपित हुआ। उसी समय उनके ललाटेदंष्टसे प्राति-तेजस्वी खेदविन्दु निकला था। वह क्षिप्र दृष्टमें गिर पड़ा। उससे लूता (मकड़ी) नामक कौट उत्पन्न हुआ। आकार, वर्ण और प्रकृतिभेदसे नानाविध लूता केवल षोडश प्रकारमें विभक्त किया गया है। सब प्रकारकी लूताका विष भयानक है। उसमें पाठ प्रकारकी लूता कष्टसाध्य और पाठ प्रकारकी एकवारगो हो पचाध्य निर्दिष्ट हुये हैं। त्रिमण्डना, श्वेता, कपिला, पीतिका, चालविषा, मूत्रविषा, रक्ता और कसना लूताका विष कष्टसाध्य है। उसके दंशन करनेसे गिरीरोग, कण्डू, दृष्टस्थान पर वेदना और श्वेतश्लेष्मिक रोग समूहकी उत्पत्ति होती है। शौचवर्षिका, लाजवर्षा, जालिनी, एषोपदी, कृष्णा, अग्निवर्षा, काकाण्डा और माला-गुणा—पाठ प्रकारकी लूताका विष पचाध्य है। उसके दंशन पर दृष्टस्थानसे रक्त निकलता, दृष्टस्थान सङ्गता और च्चर, दाह, अतिसार प्रभृति त्रिदोषजात रोग, विविध पिङ्गका, गात्रमें बड़ा बड़ा चकता और रक्तवर्ण प्रथवा श्यामवर्ण एवं मृदु चञ्चल शोथ हुआ करता है। दंशनस्थानमें भी रक्त प्रकारकी लूताकी लाला, नषा-घात, दंष्ट्राघात, मूत्र, रजः, मल और दृष्ट्यक्षयसे भी विष-नाशित जाना पड़ता है। लालाके विषसे कण्डू एकस्थानस्थायी, अल्पमूलकोष्ठ और अल्प वेदना होती है। नषाघातके विषसे शोथ, एवं कण्डूका वेग बढ़ता और मनुष्य अशुद्ध रहता है। दंष्ट्राघातके विषसे दृष्ट-स्थान उग्र, कठिन पर्व विषय पड़ जाता और शरीरमें

एकस्थानस्थायी मण्डल निकला जाता है। मूत्र-श्लेष्मसे दृष्टस्थान गलने लगता और उसका मध्यदेश कृष्णवर्ण तथा प्राग्भाग रक्तवर्ण देख पड़ता है। रजः, मल एवं इन्द्रियके श्लेष्मसे पक्षितु फलकी भांति पाण्डुवर्ण स्फोटक उठता है। लूताका किसी प्रकार विष-नक्षत्र एक हो वारमें समस्त प्रकाशित नहीं होता। दंशके पीछे पहले दिन अत्यन्तवर्ण और कण्डू विगिष्ट चञ्चल चकते प्रभरा करते हैं। दूसरे दिन उन मण्डलोंका मध्यभाग, निम्न और चतुर्दिक्का प्राग्-भाग फूल उठता है। तीसरे दिन विषका नक्षत्र देख पड़ता है। चतुर्थ दिन शरीरस्य विष क्रुपित होता है। पञ्चम दिन विषकीपसे रोगसमूह उभर जाता है। षष्ठ दिन विष सर्वशरीरमें फैल विषेयस्वरूपे मर्मस्थान-समूहकी प्राप्य करता है। सप्तम दिन विषकोप बहुत बढ़ जाता है। तीक्ष्ण या प्रचण्ड विष होनेसे उसी दिन रोगीका प्राण विगिष्ट होता है। मध्यम-विषविगिष्ट लूताके दंशनसे सप्तम दिवसके पीछे और मन्द विषयुक्त लूताके दंशनसे एक पक्षकाल मध्य मृत्यु आ सकता है।

विशेष—उग्रविष कौटोंके काटनेसे सर्पदंशनकी भांति ही विकिष्ठा करना पड़ती है। खेद, प्रलेप और जल-सेकादि उष्ण कर व्यवहार करना चाहिये। दृष्टस्थान पक्ष या सङ्ग जाने और मूर्च्छादि उपद्रव बढ़ पानेसे वसन विरेचनादि संगोघन कार्य और विनामक क्षिया-समुदायसे लाभ होता है। रक्त सकल उपद्रवमें पिरौय, कुटकी, कुष्ठ, वचा, हरिद्रा, सिन्धुवनवध, गन्धद्रुम, मल्ला, यषा, गन्धदृष्ट, घण्टो, पिपली और देवदारुका पुनटिस बांधना चाहिये। प्रथवा प्रथम शालपर्णीवृक्ष कर उसका खेद भगाना उचित है। किन्तु द्वयिक दंशनमें खेद अहितकर है। त्रिकण्डकके विषमें कुष्ठ, पपक सिन्धुवार, वचा, विष्यमूल, विषकर्पू, सुवटिका, कज्जल, हरिद्रा और दाहहरिद्राका प्रलेपादि हितकर है। गलनोनी (सर्पविषेय)-के विषमें कज्जल, हरिद्रा, पपक सिन्धुवार, कुष्ठ और पलाशश्लेष्मसे उपकार होता है। शतपदी (कानवज्रुरा)के विष पर कुड्म, तगर-पादुका, मोमाश्वन, पद्माकर, हरिद्रा और दाहहरिद्रा

धानीमें बीस कर प्रत्येक जगामा आदिये। मकन प्रकार मण्डूक-विष, विषगुहो, वषा, विहकपर्षी, व्यसवेतम, मण्डिहा और बालकके प्रयोगमें लट हो जाता है। विषाभार कोटके काटनेमें वषा, चन्द्रगन्धा, घेतवाद्यान्ना-लका, श्वेतवाद्यान्ना, सुदृक्कमट्ट और गालपर्षी प्रयोग करना आदिये। चदिपुत्रका कोटके टंगन करनेमें गिरीय, तगरपादुका, कुठ, हरिद्रा, दाह-हरिद्रा, गालपर्षी, सुदृपर्षी और मायपर्षी हितकर है। कण्ठमण्डके काटनेमें शचिकालकी श्रोतन क्रियामसूत्र करना पड़ता है। काण्ठ दिनको सूर्यरश्मि दाग विष अधिक प्रकृपित होनेमें शीतल क्रियामें कोटें पस नहीं मिलता। शूकृष्ण (भ्रौंभा) के विषमें पषा मित्युहार, कुठ और पवामार्ग प्रयोग करतें हैं। पषया कण्ठमण्डकी मट्टी शूद्रराजके रममें पीस कर प्रत्येक बटाना आदिये। विषोन्निका, मण्डिका और मगक टंगन पर कण्ठमण्डकी मट्टी गोमूत्रके माय घोष कर प्रत्येक देते हैं। प्रतिघुंक्त (गुहुरा)-के टंगन करमें पर मट्टटंगनकी भांति चिकित्सा करना पड़ती है।

उपविष और मण्डविष हृदयिकके टंगनमें मट्टटंगन की भांति चिकित्सा करतें हैं। मण्डविष हृदयिकके काटनेमें जलतेल पषया विदार्यादि गन्धोक्त द्रव्य मसूत्रके माय सुसिद्ध कण्ठ ललका सेक देना आदिये। पषया विषय द्रव्यमसूत्रके पुनटिममें खेद जग दृष्टव्यान पर हरिद्रा, सेन्धव, विकट्ट, शिरोवधोज और गिरीय पुष्पके रूचं द्वारा घर्मण्य करतें हैं। तुमगीकी मसूरो, वित्रोहा और गोमूत्रके माय घोषकर प्रत्येक करनेमें भी हृदयिकके विषकी शान्ति होती है। उक्त विषमें रीच-द्रव्य मोतवका प्रत्येक और खेद हितकर है।

कुसुमपुष्प तथा कोटव्य प्रत्येक १ भाग और हरिद्रा २ भाग घृतमें मिला गुह्यदेगमें घुष प्रदान करनेमें हृदय-विष घलन निवारित होता है।

सूना (मकड़ो)-के विभागानुसार प्रत्येक आनीय मण्डानिषमें पुर्वोक्त पाषाण कटपकी पषिया पनेक विभिन्न लक्षण देव पड़ते हैं।

तिमण्डका सूनाके टंगनादिमें दृष्टव्यान विदोष

हो जाता है। उसमें कण्ठमण्ड रक्त बटाना है। फिर पधिरता, चक्षुकी चादिलता और चक्षुदण्डका दाह होता है। उसमें परंमूल, हरिद्रा, माहुकी और चक्र-मट्टके कण्ठ, पाण, चक्षुन और लक्ष्मणी प्रयोग करना आदिये।

श्रोतानुनाके टंगन करनेमें श्वेतवर्ष और कण्ठ-गुक्त पिडका उत्पन्न होती है। दाह, मूर्च्छा, त्वर, विषर्ष, ऊँट और घेतना भी उठती है। उमपर चन्दन, राछा, एला, रेषुका, मन, चमोक्तवक्, कुठ और चक्रमट्ट—सकन द्रव्य प्रत्येक १ भाग एवं घेदामूल २ भाग एकत्र प्रत्येकदिमें व्यवहार करना आदिये।

कपिला सूनाके काटनेमें ताम्रवर्ष एवं एकव्यान-खायी पिडका, मस्तक भार, दाह, पत्रकार दुर्गम और भ्रम होता है। उसमें पद्मकाष्ठ, कुठ, एला, करण्ड त्वक्, चणुंगत्वक्, गालपर्षी, चर्क, पवामार्ग, दूर्वा और ब्राह्मी—मकन द्रव्य हितकर है।

पीतिकाके काटनेमें पिडका, वमि, त्वर एवं मूल पाता और चक्षु रक्तवर्ष पड़ जाता है। उमपर कुटल-त्वक्, वेधामूल, पद्मकेसर, पद्मकाष्ठ, चमोक्त, गिरीय, पवामार्ग, लक्ष्मीहा, कटम्य और चणुंगत्वक् उप-कारक है।

पालविषके टंगनमें दृष्टव्यान पर रक्तवर्ष मण्डन (चकता), सर्मपकी भांति पिडका, तातुगोप और दाह होता है। उमपर विधुंगु, बालक, कुठ, घेधा-मूल एवं चमोक्त पषया गतपुष्पा और परशु तथा घट-का चक्षु एकत्र प्रयोग करनेमें उपकार पड़ जाता है।

मूलविषके सर्ममें मण्डव्यान मक लाना कण्ठ एवं रक्तवर्ष पिडका पड़ती और काम, श्याम, वमन, मूर्च्छा, त्वर तथा दाह होता है। उमपर मनःशिला, हरिताम, यटिमण्ड, कुठ, चन्दन, पद्मकाष्ठ और घेधामूल दोषहर मण्डके माय प्रत्येक बटाना आदिये।

रक्तव्यान काटनेमें दृष्टव्यानकी चक्षुदण्ड रक्तवर्ष हो जाती है और पाण्डुवर्षकी पिडका उठ पाती है। फिर छेद और दाह भी होता है। उम पर वाता, चन्दन, घेधामूल एवं पद्मकाष्ठ पषया चर्क, लक्ष्मीहा तथा चन्द्रातककी खन्धा प्रत्येक जगामा जाता है।

हरोतकीकी एक बच्ची बना भ्राम्भृचके पद और वस्त्रलके रसकी भावना देते है। फिर वटके दूधसे दूसरी भावना दे उसे ताम्ब्रप्रदीपमें जनाना पड़ता है। उसकी मसौकी घड़प कर पुनर्बार हरोतकीके जायकी भावना लगाने है। अन्तकी उल्ल मसौ कटते लमें मिला अधिकतर मर्टन करनेसे किलास रोग आरोग होता है। (सुधत)

किलासघ्न (सं० पु०) किलासं हन्ति, किलास-घन्-टक्। कर्कोटक, कांक्रोल। किलासघ्नका संस्कृत पर्याय-कर्कोट, तिक्तपत्र और सुगन्धक है। कर्कोटक देखो।

किलासनाशन (सं० त्रि०) किलासं नाशयति किलास-नाश-णित्-स्य। किलासरोगनाशक।

किलासी (सं० त्रि०) किलासं प्रयासति, किलास-इति। किलासरोगयुक्त, कोढ़ो।

किलि (सं० शब्द०) कण्ठकूलित, किलकार।

किलिक (फा० स्त्री०) किलिक देखो।

किलिख (सं० स्त्री०) किल्यते धनन, किल-इति, किलिं चिनोति, किलि-चि-ड प्रयोदरादित्वात् साधुः। सूक्ष्म-काष्ठ, पतला तख्ता।

किलिखन (सं० पु०) १ राल, धूत। २ मीनभेद, एक मछली।

किलिख (सं० पु०) किलितं जायते, किलि-जन्-ड-सुम् प्रयोदरादित्वात् साधुः। १ सूक्ष्मकाष्ठ, पतला तख्ता। २ वीरणादि कट, चटाई। ३ परदा। किसी किसी स्थान पर किलिख लोवसिद्ध भी देख पड़ता है।

किलिखक (सं० पु०) किलिख खाद्यं कन्। १ वट, चटाई। २ कागादि निर्मित रज्जु, एक रस्सी। किलि-खकसे धान्यादि रखनेके मरार (कोठी) को बेटन करते हैं।

किलिन (सं० पु०) नौस्थानविशेष, केदासकी मोड़, जहाजकी एक जगह। किलिन जहाजका वह पिछला हिस्सा है, जहां बाइरी तख्त सुड़कर मिलते हैं।

किलिनकिल (सं० पु०-स्त्री०) नगरविशेष, किसी शहरका नाम।

किलिम (सं० स्त्री०) किल-इमन्। १ देवदारु वृक्ष। २ धूनक।

किलोवा (सं० पु०) बंगविशेष, किसी किन्नरका वांग। किलोवा ब्रह्मदेगमें पैगू और मर्तवानके वनमध्य उल्यज होता है। वह ६० से १२० फीट तक लम्बा और ५ से ८ इंच तक मोटा रहता है। उसका वर्ण धूमर भोगा है। उससे नावके मस्तू ल बनाये जाते हैं।

किलोल (सं०) क्लोञ्ज देखो।

किलोनो, किलो देखो।

किलो (सं० पु०) चोटक, चोडा।

किलो—खानदेग जिलेका एक गांव। यहाँके राजा भोन है, जिन्हें दत्तकपुत्र लेनेका अधिकार नहीं।

किल्लत (सं० स्त्री०) १ न्यूनता, कमी। २ मट्टोच, तंगी। ३ बड़चन।

किल्ला (सं० पु०) १ मेख, छूटा, कीन। २ जातिकी मेख। किल्ला जातिके बीचमें गाड़ा जाता है। ३ मधीन शाखा, बहुर।

किल्लाना, किलिकिला देखो।

किल्लो (सं० स्त्री०) १ कील, मेख, छूटी। २ बिल्ली, मिटकीनी। ३ सुठिया या दस्ता। किल्लो घुमानेके कल या पेंच चलने लगता है। ४ कुहनी।

किलिकितर (कतावू) वेनगांवजिलेकी पशु रखने और चित्र दिखानेवाली जाति। यह सांवगांव, चिकोटी, पारस-गढ़, गोकाक और पयनीमें मिलते हैं। किलिकितर मराठी जैसे ही होते और कोन्हापुर या मतारसे प्राये समझ पड़ते हैं। प्रत्येक परिवारमें १ कुत्ता, २ या ४ भैंस, २ या ३ गाय और ४ या ५ बकरे रहते हैं। पुद्दप खच्छ, सुयेर, भले, मितथयो और गाला होते हैं। यह मृगछानापर बने पाण्डों और कौर-वाँके चित्र रातको दिखा जीविका निर्वाह करते हैं। एक मनुष्य चित्रके पीछे टीपक लेकर बैठता और दूसरा चांगे उसकी घटना समझता है। फिरयां बाजा बजाया करती है। यह प्रदर्शन रातको ८ या १० बजेमें चारथा हो ५ या ७ घण्टे चलता है। फिरयां गोदनेका काम पच्छा करती है। कन्यायोंका विशाह ४ या ५ और वानकीका १० और १२ वर्षके मोल होता है। इनमें विधवा-विशाह प्रचलित है। शवकी समाधि दिया जाता है। निर्धन होते भी यह किमीके शर्षी नहीं।

कसनाके टंशनपर दृष्टस्थानसे विच्छिन्न एवं शीतल रक्त गिरता और कास तथा श्वासरोग उपजता है । उसमें रक्तलूताकी भांति हो चिकित्सा करना चाहिये ।

। कृष्णाके टंशनपर दृष्टस्थानसे विद्याकी भांति गन्धयुक्त रक्तश्राव होता और ल्वर, मूर्च्छा, वमि, दाह, कास तथा श्वासरोग उठा करता है । उस पर एला, चक्रमर्द तथा चन्दन प्रत्येक १ भाग और गन्धताकुलो ३ भाग एकत्र पेषण कर प्रलेप बढाते है ।

श्वन्निवर्णाके टंशनसे श्वत्सु रक्तश्राव होता और ल्वर, यानना, कण्डू, रोमहर्ष, दाह तथा स्कोट उपजता है । उसपर कृष्णाविषाकी भांति चिकित्सा करना पड़ती है ।

श्वन्निवर्णाके टंशनसे श्वत्सु रक्तश्राव होता और ल्वर, यानना, कण्डू, रोमहर्ष, दाह तथा स्कोट उपजता है । उसपर कृष्णाविषाकी भांति चिकित्सा करना पड़ती है ।

श्वन्निवर्णाके टंशनसे श्वत्सु रक्तश्राव होता और ल्वर, यानना, कण्डू, रोमहर्ष, दाह तथा स्कोट उपजता है । उसपर कृष्णाविषाकी भांति चिकित्सा करना पड़ती है ।

श्वन्निवर्णाके टंशनसे श्वत्सु रक्तश्राव होता और ल्वर, यानना, कण्डू, रोमहर्ष, दाह तथा स्कोट उपजता है । उसपर कृष्णाविषाकी भांति चिकित्सा करना पड़ती है ।

श्वन्निवर्णाके टंशनसे श्वत्सु रक्तश्राव होता और ल्वर, यानना, कण्डू, रोमहर्ष, दाह तथा स्कोट उपजता है । उसपर कृष्णाविषाकी भांति चिकित्सा करना पड़ती है ।

श्वन्निवर्णाके टंशनसे श्वत्सु रक्तश्राव होता और ल्वर, यानना, कण्डू, रोमहर्ष, दाह तथा स्कोट उपजता है । उसपर कृष्णाविषाकी भांति चिकित्सा करना पड़ती है ।

श्वन्निवर्णाके टंशनसे श्वत्सु रक्तश्राव होता और ल्वर, यानना, कण्डू, रोमहर्ष, दाह तथा स्कोट उपजता है । उसपर कृष्णाविषाकी भांति चिकित्सा करना पड़ती है ।

श्वन्निवर्णाके टंशनसे श्वत्सु रक्तश्राव होता और ल्वर, यानना, कण्डू, रोमहर्ष, दाह तथा स्कोट उपजता है । उसपर कृष्णाविषाकी भांति चिकित्सा करना पड़ती है ।

श्वन्निवर्णाके टंशनसे श्वत्सु रक्तश्राव होता और ल्वर, यानना, कण्डू, रोमहर्ष, दाह तथा स्कोट उपजता है । उसपर कृष्णाविषाकी भांति चिकित्सा करना पड़ती है ।

करना न चाहिये । उस पर पिचंगु, हरिद्रा, कृष्ण, मच्छिडा और यष्टिमधु पीसकर मधु तथा सेन्धवनवपत्रे साथ प्रलेप बढाते है । बटादि चीरीहृषका क्षाप बना शीतल होनेपर दृष्टस्थान सेवन किया जाता है । फिर बमन विरेचन द्वारा संशोधन और जलोत्सा द्वारा रक्त मोक्षण कर अन्यथा विषय प्रयोग करना चाहिये ।

सर्वप्रकार कीट टंशनमें ग्रथ तथा शोथ पारोग्य होने पर निम्बपत्र, विह्वत्, दन्तो, कुसुमबज, हरिद्रा, मधु, गुग्गुलु, सेन्धव, सुरावीज और कपोतकी विद्या द्वारा दंष्ट्र (डंक) निकाल डालते है । (चरन)

युरोपीय प्रापितस्त्रविदके मतमें—कीट स्वभावतः गिरदंष्ट्राहीन पत्नियुक्त छुद्र जीव (Insects) है । समके मच्छक, पक्ष, उदर, मच्छक पर दो स्वर्गन्द्रिय और वचकीटरके छह घेर होते है । अधिनाश स्वसमे धात्री-कीटके पच रहते, किन्तु पति श्लेष्के हो देख पड़ते है ।

वह प्रधानतः कीटजातिकी ३ श्रेणीमें भाग करते है । १ म श्रेणीके बहुतेसे कीट जन्मसे मृत्यु पर्यन्त रूपान्तर ग्रहण नहीं करते । छोटे बड़े सबका गठन एक प्रकार होता है । वेसल वयोवृद्धिके अनुसार देख छोटा बड़ा रहता है । पल नहीं होते । श्वपु पति सामान्य लगते । कोई कीट श्वपुहीन भी होता है ।

(Ametabola)



१, शूक (कड़ावाल)

२, कीटकी शीप भवस्या ।

१ मच्छक, २ वचकीटर (Thorax), ३ उदर; ४ पचमूल, ५ पच; ६ स्वर्गन्द्रिय वा कीटको संद ।

२य श्रेणीके बहुतेसे बड़े होने पर मो सम्पूर्ण रूपान्तर नहीं पाते । वह प्रथम शूक (कड़ावाल) की भांति देख पड़ते है । पाकारमें भी कुछ पाथय

किल्बिय (सं० स्त्री०) किल्बियच्-बुक् वागमय ।
 १ वाय, गुनाह । २ अपराध, लुम् । ३ रोग, बीमारी ।
 किल्बियो (सं० स्त्री०) किल्बियं पक्ष्यस्य, किल्बिय-
 द्नि । पायो, गुनाहगार ।

किन्थी (सं० पु०) किल् भावे क्लिय; किन् पक्ष्यस्य,
 किन्-दिनि । घोटक, घोड़ा ।

किवाच (हिं० पु०) केवाच ।

किपाड (हिं० पु०) कपाट, टरवाण वन्त करनेके
 लिये लगनेवाले लकड़के दो तख्त ।

किगटा (हिं० पु०) किसी किछका गफताल । किग-
 टेका सुरब्बा बनाने है । चौर गुठलीमें चांदी चमकाते
 है । एक गष्ट कारभोके 'किग्या'में निकलता है ।

किगमतालू (हिं० पु०) दक्षिणविशेष, किसी किछका
 छायो । उसका तालू खाना रहता है । किगमतालूको
 बहुत शुभ समझते है ।

किगमिग (फा० पु०) सुखाया हुआ पंगूर, सूखी
 दाख । रंग देखा ।

किगमिगो (फा० वि०) १ किगमिगवाला, जिधमें
 किगमिग रहे । २ किगमिगका रंग रखनेवाला ।
 (पु०) ३ किसी किछका रंग । प्रथम बक्षको धोकर
 पशोतकीके जलमें धोर देते है । फिर गेरिक हल कर
 इन्द्रिमिं उभे रंगते है । चमकी बनारकी छानमें
 रंगनेसे बक्षपर किगमिग रंग चढ़ जाता है । दूसरी
 रीतिपर प्रथम बक्षको ईंगुरमें रंगकर सुखा लेते है ।
 फिर कटहलकी छाल, कुसुम, हरमिंगार और तुमके
 फूलमें रंगनेसे उसपर किगमिगो रंग चढ़ता है ।

किगर (सं० पु०-स्त्री०) किन्-गु-पच्-पयोदरादित्वात्
 घाभुः । सुगन्धद्रव्यविशेष, एक सुगन्धदार चीज ।

किगरा (सं० स्त्री०) किचित् श्रुयति दिनदि, किन्-
 गु-पच्-टाप् पयोदरादित्वात् ।

किगरादि (सं० पु०) पादि-
 विशेष । किगरादिमें किगर,
 तगर, गुग्गुलु, चमीर, इ
 मन्दिस्तित है । गन्धोके

किगरी (सं० पु०)

किगल (सं० पु० स्त्री०) किचित् श्रुयति चमति, किन्-
 गु-पच्-मनोपः पन्नव, मया पत्ता ।

किगलघ (सं० पु०-स्त्री०) किचित् श्रुयति, किन्-गु-
 वाङ्मनात् कथन् मनोपः पयोदरादित्वात् माधुः ।
 कोमल पन्नव, गुनायम मया पत्ता ।

"पचः किगलघः कोमलरितगुणकारी यो यत् ।"

(पचपत्र, १ प०)

किगलयतल्य (सं० पु०-स्त्री०) किगलयनिमित्तं तल्पम्
 मध्यपदलो० । पन्नवनिमित्तं गव्या, पत्तेका बिलोना ।

किगलयगयम, किगलयतल्य देखी ।

किगुनगर, पचपत्र देखी ।

किगुनचन्द—टिप्पणीवाले पचनदास खुतोके पुत्र । इनका
 उपनाम इजनास रहा । पचनदासके निकट पच्छे
 पच्छे विद्वान् धारते थे । पचने पिताके मरने पर वह
 कविता बनानेमें लगे । १०२३ ई० को हमेशबहार
 नामक एक जीवन-वृत्तान्त रचनेमें लिखा था । इस पुस्त-
 कमें २०० कवियोंका वर्णन है । वह भारतवर्षमें जहा-
 गीरके समयमें सुहृन्मद शाहके समय तक हुये थे ।

किगुनसिंह—किगुनगढ़के एक राजा ।

किगुनसिंह—जोधपुर महाराज उदयसिंहके २५ पुत्र ।
 इनका जन्म १५०५ ई० को हुआ था । यह १५८३ ई० तक
 पचनौ माहभूमिमें ही रहे, पीछे जोधपुर महाराज
 गुरसिंह पचने बडे भाईसे कुछ पनधन होने पर
 पकभरमें जा बसे । पकवरसे परिचय होने पर इन्होंने
 हिन्दूतोनका जिनका पाया भी पच जयपुरमें लगता है ।
 फिर मेरोसे सरकारी खजाना लुहाने पर इन्होंने शीघ्रनाथ
 और कुछ दूररे जिले माफकी मिली । १६११ ई०को
 इन्होंने लखनगढ़ बनाया था । पकवरके समय इनका
 उपाधि राजा रहा, परन्तु जहांगीराने इन्हें महाराजका
 उपाधि प्रदान किया । १६१५ ई०को यह खर्गवासी हुए ।

किगोर (सं० पु०) किचित् श्रुयति, किन्-गु-पोरन् ।
 १ पचपत्र, १ पचपत्र, बडेड़ा । २ तेज-
 ३ चूर्ण, चूर्ण । ४ तदुपायव्या,
 ५ पचपत्र वर्ष पर्यन्त किगोर पचपत्र
 परमनि दुहाई ।" (टिप्पणी) ५ मिश्र-
 किगोरगुण, छोटी उच्चनाला ।

कोट (सं० पु०) तेल बसेरुवा भांसे मेठा दूधा सेल ।
 कोटक (सं० पु०) कोट मंटाणी पापें वा कम् । अत्र ईष्य ।
 कोटमर्ममल (सं० पु०) कोटकोटविनिय, मदपना ।
 कर्मदे दंगली चोपमन्त्र रोम लपच कोते ई ।

कोटार (सं० पु०) के टं धमि, कोट-उन्-टर् । मन्त्रक,
 कोटीशी मारिगामी बीस ।

कोटल (सं० ली०) कोटलू भागते, कोट-उन्-ड ।
 १ ईन्म, टन्म, कोट्टे, टंटा रोनिगामी कोल । (वि०)
 २ कोटलान, कोट्टेमे देटा । ३ ईन्मका वना दूवा ।

"कोरक एवमर्थेन वदते कोटलना" (भाट, २। ३। १०)

कोटका (सं० ली०) कोटिथो जायते कोट-उन्-उ-टाप ।
 कापा, काच, काः ।

कोटनामा (सं० ली०) रत्नमलालुका, मान माज-
 यलो ।

कोटपकोटव (सं० पु०) कोपकारमे निवपनपुमे प्रति
 परिचयते, तीतोरेके तिमिकोको तवटोमी ।

कोटपाटिवा (सं० ली०) कोटाः पाटे म्नेरुप्याः,
 कोट-पाट-कप-टाप चत इत्यम् । १ हंसपटोपता, एक
 देम । २ रत्नमलालुका, मान माजयलो ।

कोटपाटी, कोटपिकाईनी ।

कोटभुक्-उद्भिद्—कोटको पाचार करनेवासे हुणादि,
 कोटोको पासिवासे पोषि । पाजलक उक्त कोटोके जितने
 उद्भिद् पाजिलक दूये हैं, उनमें निम्नलिखित कई
 उष्य प्रमाण हैं ।

(१) बिहाराप्रदेशके मेढामो चौर पर्यन्तके टाम्
 प्यामोपर सामान्यतः भारतवर्षके पाषाणप्रदेशमें
 एतद् उष्य होता है उसके पत्र छोटे, मोम चौर कुछ
 नरक मान रहते हैं । उनमें हलुल मन्ने चौर सुमठित
 भवते हैं । दूरसे पत्र हलुल देखनेमें समान पहता, मामो
 भूमिपर कोई मान भीम पडो है । पत्र बहुत घने होते
 हैं । पत्रकी चारी टिक, कर्मशाकार कई पत्तापु उभय
 होते हैं । एक पत्तापुके चपटामागमें पिडी रंगकी भांति
 एक चुन्नी सेमो मनी रहनेो है । मूलपत्ताग प्रोष सेमा
 होता है । उक्त प्रोषमें एक ताम्र पदार्थ रहता है ।
 यह फिर सुष्टेविरचमें चति हलुलता धारण करता
 है । पत्रक उदरमें रहते वधायता उमे लज वा मनु समान

कर बीनेके लिये उतर पडते हैं । उक्त रम गोडको
 मरच विपविवा होता है । पत्रक एक पार केठ जामेके
 जिर किमी लममें बहुत लयी मजना । उनसे पीले
 लममः पत्तापु उपमे चाप चारो चारो निकुकुम
 भवते हैं चौर सुष्ट पतक जमी चोगा लामता धारक
 की जाता है । परोका द्वारा देना गया है कि पत्रक
 मम रममें वंम लममः यमदीन चति चोमि गोधमने चाप
 धोता चौर चमिपको उमी रममें ममकर मिला करता
 है । पत्तापु रममें देतकविमित है कि चपर किमी
 सुष्ट वा बीमल मन्ने द्वारा पत्र सुष्ट होते ही यह
 निकुकु जाते चौर प्रायः एक चपटा मुद्रित रच चुल
 पते हैं । उक्त जातीय उद्भिदको चंमरेको उद्भिदामागमें
 प्रोमेरा मुमनी (*Drosera Brunnani*) कहते हैं ।

(२) हमारे देशके तलावीमें जो कोरि उष्यनी, वह
 भी कोट भक्षण कर चपटा निर्वाह करता है । इस
 नाम जिये चाईका पत्ता समभते, यह सुष्ट मन्नाकार
 पत्तापुमात्र ठहरते है । उक्त मन्नाकार पत्तापुका सुल
 मर्या चुना लयी रहता । ममके सुल पर एक टहन
 होता है । यह भीतरकी चौर चुल जाता है । ममके
 मध्य गोद सेमा रम रहता है । जो ममक लमीय
 कोटागु यन्त्रके साहाय्य ध्यतीत चपुमे देव लयी पहते,
 यह लममें पुमते समय उक्त लमीके मध्युय पडुंभते
 है । लमी समय लमका टहन चुल जाता है । कोट
 रमपानके लिये लमके भीतर प्रवेग करता है । उमक
 पुमते ही टहन लग चौर कोट लममः मनु ममकर
 उष्यके रममें मिल जाता है ।

(३) अमेरिकामें एक प्रकारका उष्य होता है ।
 चंमरेकोमि उष्य विमम फ्लाई-ट्रप (*Venus fly-trap*)
 कहते हैं । लमके पत्र दो भागमें विभक्त है । पत्रके
 लम्बेभाग चौर निम्नभागमें मध्यलममें पत्रकी केवल
 मध्यमिवा रहनेो है । लम्बेपुत्रकी चारी चौर सुष्ट
 कपटक धिटित होती है । जिर लम्बेपुत्रके पत्र पर भी
 कई कपटक निकलते हैं । उक्त कपटकीका सुल लमका
 टिककी मुद्रा रहता है । पत्रके निकट कोई पत्रक
 उद्भिदमें लमकी मध्यमिवा रहपये ही जाती है । पत्रक
 उष्य लमीकर चर्चके पत्रकी मधुपुत्रे सुल भगमक

किशोरसिंह—फोटाराज माधवसिंहके कानिष्ठ पुत्र ।
१६५८ ई०को सज्जनोंके पास भौरङ्गजीवके विरुद्ध युद्ध करनेमें यह वीररूपसे भागल हुआ था, परन्तु पीछे प्रच्छेद हो गये । इन्होंने १६७०से १६८६ ई० तक राजत्व किया । यह भौरङ्गजीवके बहुत चतुर सेनापति थे भौर अरकाटके अवरोधमें मारे गये ।

किशोरसूर—हिन्दोके एक कवि । इनका जन्म १७०४ ई० को हुआ । इन्होंने बहुतसे कृप्य बनाये हैं । सरदार कवि भौर हरिसन्दर्भने इनकी कविता उद्धृत की है ।

किगोरिका (सं० स्त्री०) किगोरी स्वार्थ कन्-टाप् ईका-रख झसलवह । किगोरी, ग्यारहसे १५ वर्ष तककी स्त्री ।

किगोरो (सं० स्त्री०) किगोर-डोप् । किगोरिका देखो ।
किश्ट (फा० स्त्री०) १ शतरंजके खेलमें बादगाहका क्रिमी मोहरकी मारमें जानीकी चाल ।

किश्टवार (हिं० पु०) पटवारीका एक कागज । किश्टवार में खेतका नक्शा, रकबा वगैरह लिखा रहता है ।

किशो (फा० स्त्री०) १ नौका, नाव । २ पात्रविशेष, किसी किष्मकी यात्री या तगतरौ । किशोमें कोई छप-टोकन रख कर दिया जाता है । शतरंजका षष्ठी, मोहर ।

किशतौमुमा (फा० वि०) नोकासदृश, नाव जैसा ।
किष्कम्भ (सं० पु०) किं किं दधाति, किम्-धा क पूर्वस्य किमो मलोपः सुट् पल्लव । १ महिसुरदेशीय एक पर्वत । २ उल्ल पर्वतको गुहा ।

किष्कम्भा (सं० स्त्री०) कश्चिम्भ शब्द ।
किष्कम्भाकाण्ड (सं० स्त्री०) रामायणका ४४ काण्ड ।
किष्कम्भाकाण्डमें सुग्रीवादिसे रामका मिलना भौर बालिवध प्रभृति विषय वर्णित है ।

किष्कम्बी (सं० स्त्री०) किष्कम्भ-डोप् । किष्कम्भ-पर्वतको गुहा ।

किष्कम्ब्य (सं० पु०) किष्कम्भ स्वार्थ यत् । किष्कम्भ-पर्वत ।

किष्कम्ब्या (सं० स्त्री०) किष्कम्ब्य-टाप् । किष्कम्ब्य-पर्वतको गुहा । किष्कम्ब्यामें ही वालि राजाका राज-धानी रही । पीछे रामने वालिकी मार कर स्थान सुग्रीवको प्रदान किया ।

किष्कम्ब्याकाण्ड, किष्कम्भाकाण्ड शब्द ।

किष्कम्ब्याधिप (सं० पु०) किष्कम्ब्याया अधिपः इ-तत् । १ किष्कम्ब्याके राजा बालि । २ सुग्रीव ।

किष्क (सं० पु०-स्त्री०) कै-कु पारस्करादिवात् सुट् पल्लव निपातनात् साधुः । १ हादगांगुल परिमाण, १२ भङ्गलकी नाप । २ हस्त, हाथ । ३ वितस्त, विज्ञा । ४ प्रकोष्ठ । ५ शालवृक्ष । ६ वंश, वांस । ७ इक्षुमिद, क्रिमी किष्मकी जड़ । (त्रि०) ८ कुम्भित, खराप ।

किष्कपर्वा (सं० पु०) किष्कमिर्तं पर्वं यस्य, षड्विती० । १ इक्षु, जड़ । २ वंश, वांस । ३ नन, एक घास ।

किस् (सं० अश्व्य०) कर्त्ता, करनेवाला ।
“ यथं यो चोता किस्, यमस्य समस्ये यत् समप्रति देवाः । ”
(अश्व० १० । १४ । १)

किम (हिं० सर्व०) “कोन”-का रूपान्तर । विभक्ति लगनेसे ‘कोन’-का ‘किस्’ हो जाता है । ‘किस्’ में ‘ही’ लगानेसे दोनोंकी मिलाकर ‘किसी’ हो जाता है ।

किम (सं० पु०) सूर्यके एक अनुचर ।
किमनई (हिं० स्त्री०) कृषि, खेती, किसानका काम ।
किमवत (सं० पु०) नापित, स्थूलविशेष, नाईका एक घेला । किमवतमें उष्टरा, कँचो आदि रखते हैं ।

किमसी (हिं० पु०) कसबी, अमजोबी, मजदूर ।
किमर (सं० पु०-स्त्री०) किञ्चित् सरति, किम्-स्य-कम्-प्रच् प्रयोटादिवात् साधुः । सुगन्धद्रव्यविशेष, एक सुगन्धद्रव्य चीज ।

किमरिक (सं० त्रि०) किमरं पण्य यस्य, षड्विती०, किमर-उन् । किमर नामक सुगन्धि द्रव्य-त्रिकोटा ।

किमन, किमन देखो ।
किमलप, किमलप देखो ।
किमनयित (सं० त्रि०) किमनयं सञ्जातमस्य, किम-स्य-इतच् । नूतनपद्मवर्षांगट, नये पत्तबाना ।

किसान (हिं० पु०) १ छपरु, खेतिहर । २ नाई, धारो वगैरहके कमानेका घर ।

किसानी (हिं० स्त्री०) १ कृषिकर्म, खेतीका काम । (वि०) २ छपरुसम्बन्धिय, खेतीके सुताङ्कक ।

किसी (हिं० सर्व० वि०) ‘काई’ का रूपान्तर । विभक्ति लगनेसे ‘कोई’ का ‘किसी’ हो जाता है ।
किष्, बिबो शब्द ।

उस पर बैठता है। उसके बैठते ही पत्र सिक्कड़ता और फण्टकोंके बाघातसे कीट मरता है। पीछे कीटकी गल जानी पर पत्र शोषण कर लेता है।

(४) हमारा चिरपरिचित तम्बाकूका पेड़ भी कीटभुक् है। उसके पत्तों और दन्धे डण्डलोंमें चिपचिपा रस रहता है। उसमें एक अच्छा मधुवत् गंध छठता है। उक्त गन्धसे प्राकृत हो अनेक कोट-पतङ्ग पत्तों और डण्डलमें जाकर चिपक जाते हैं। तम्बाकू रसमें कीटा न गन्तें भी जब वह उसके खींचनेकी शक्ति रखता, तब कीटसे उसकी अवश्य कोई न कोई उपकार पहुँचता है।

(५) रत्नैरण्ड भी उसी प्रकार गुणविशिष्ट है। उसपर कीटादि बैठते ही मात्रपर्यं कात्ता पड़ जाता और केसरवत् पत्राणुसे रस निकल जाता है। फिर उक्त रस उसकी गन्ना डालता और वह वृक्ष शरीरकी पालता है।

(६) कोई दूसरा वृक्ष भी होता है। उसके पत्रके अग्रभागमें किसी पीचीटा शीर्षके भागमें एक भाण्डाकार पत्र रहता है। उक्त भाण्डाका मध्यभाग रससे पूर्ण और उसके सुख पर एक टकन होता है। पूर्वकास लोग विश्वास करते थे कि पथिकोंकी पिपासा मिटानेकी भगवान्ने उक्त भाण्ड बना उसमें वृष्टिजल भरकरके रखा था। किन्तु अब परीक्षासे स्थिर हुआ है कि वह भाण्ड कोट-पतङ्गादि पकड़नेके लिये कीयसखरूप है। कीट-पतङ्ग उसके रसके गन्धसे मुग्ध हो भाण्ड-गर्भमें पतित होते हैं। उनके गिरते ही टकन बन्द हो जाता और मध्यमें कीट गलकर अपना प्राण गंवाता है।

उक्त जातीय छद्मिका मूल बहुत दीर्घ नहीं होता। किन्तु घासके मूलकी भांति मर्यामें पाधिक्य थाता है।

अनेक लोग तर्ककर कहते हैं कि उक्त कीटादिके वृक्षके शरीर-पोषणमें कोई साहाय्य नहीं पहुँचता। किन्तु यदि वैसा न होता, तो उसके गलनेसे रस क्यों वृक्षके शरीरमें जा पहुँचता। यह विप्र परीक्षकोंने स्व स्व प्राप्त्यमें उक्त सकल उद्भिदोंका कलम लगा और

किसीकी थोट खिन्ना तथा किसीकी न खिन्ना वृद्धिसे लक्षणसे स्थिर किया है कि कीटभुक् उद्भिदकी लिये कीटादि भोजन एकान्त आवश्यक है, नहीं तो उनकी पूर्ण रूपसे वृद्धि होनेमें बाधा पहुँचती है।

बहुतमें लोगोंने इस प्रकार मीमांसा की है कि चाय, नील, दूध प्रभृतिके क्षेत्रमें तम्बाकूका पीटा रगानेसे उनमें कीटा नहीं लगता। क्योंकि तम्बाकूकी डालों और पत्तोंमें लगकर वह मर जाता है।

कीटभृङ्ग (सं० पु०) न्यायविशेष। अनेक वस्तु एक रूप ही जानीसे कीटभृङ्ग न्याय लगता है। कहते हैं कि भृङ्ग दूसरे कीटोंकी पकड़ और बिलमें लोचानकर अपने ही रूपका बना डालता है।

कीटमणि (सं० पु०) कीटियु मणिरस, उपमि०।

१ खद्योत, सुगन्। २ पतङ्गमैद, तितनी।

कीटमर्दरस (सं० पु०) छम्बधिकारना रसविशेष, कीट पकड़नेकी एक दवा। शुद्धूल, शुद्धमन्थ, अजमोद, विष्टङ्ग, विषमुष्टि और ब्रह्मदण्डी यथाक्रम गुणोत्तर ले कूट पीसकर १ निष्क मधुके साथ खाने पर मनुष्य क्षमिजित् हो जाता है। पीछे सुस्ताका छाव पीना चाहिये।

कीटमाता (सं० स्त्री०) कीटानां माता इव, उपमि०।

हंसपदीलता, एक वन। उसके मूलमें बहुसंख्यक कीट उत्पन्न होते हैं।

कीटमारी (सं० स्त्री०) काट मारयति, कीट-मृ-विष्-षण-डोप। रक्त-लज्जालुका, माल साजधन्ती।

कीटमेघ (सं० पु०) कीटो मेघ इव, उपमि०। उच्चि-टिङ्ग जातीय कीटविशेष, भींगुरकी डिप्पका एक कीड़ा। यह नदीतीर बासूकाके मध्य गर्त बना वाम करता है। पाकारमें कीटमेघ उच्चिटिङ्ग जंसा रहता और उसी प्रकार कूद कूद कर चलता है। किन्तु उच्चि-टिङ्गकी पपिया उसकी पालति कुछ बगैरी होती है।

कीटमेघ पृथक् पृथक् गर्तमें घास करते हैं। दो की एकप कर देनेसे उनमें भयङ्कर बुध पारण होता है।

दोनोंमें एकके निहत न होने तक बुध चलाकरता है।

ततस्वमें एक कीटमेघ तलकर व्यवहार करनेसे काण्ड रोग पारोय होता है।

ततस्वमें एक कीटमेघ तलकर व्यवहार करनेसे काण्ड रोग पारोय होता है।

ततस्वमें एक कीटमेघ तलकर व्यवहार करनेसे काण्ड रोग पारोय होता है।

विद्य (च० घो०) १ ऋषि पुत्रानेकी एक रीति, कर्म
दिनेका कोई तरीका । किष्ममें एक साधन के ऋषि
नियत समय घोड़ा घोड़ा बुकाया जाता है । २ नियत
समय पर दिया जानेवाला ऋषिहा एक रंग, मुकर
पक्ष पर चढ़ा होनेवाला कर्मका विधान । ३ ऋषि
प्रतिमाधकार, नियत समय, कर्म चढ़ा करनेका मुकर
पक्ष ।

किष्मवन्दी (फा० घो०) अंगगः ऋषि प्रतिगोध कटने-
का नियम, घोड़ा घोड़ा कर्म चढ़ा करनेका कायदा ।

किष्मवार (फा० कि० वि०) १ किष्मके नियमानुसार,
किष्मके तौर पर । २ प्रत्येक किष्म पर, चरेक किष्मके
पक्ष ।

किष्म (च० घो०) १ प्रकार, तरफ । २ रीति, चाल ।

किष्मत (च० घो०) १ माय्य, मनीष, तकदोर । २
अभिगमनी, प्राप्तका बड़ा विभाग । किष्मतमें कई
जिले लगते, जो अभिगमनके अधीन रहते हैं ।

किष्मतवर (फा० वि०) भाग्यशास्त्री, तकदोरी ।

किष्मा (च० पु०) १ कथा, कहानी । २ समाचार,
खान । ३ विषय काण्ड, भगडा ।

किष्मन् (हि० पु०) पक्षविगेष, एक विडिया ।

की (हिं० पत्य) १ 'का'का स्त्रीलिङ्ग । यथा—उम-
की भाषा । 'की' सम्बन्धकारकका विभु है । (कि०)
२ 'किया'का स्त्रीलिङ्ग । यथा—रामने रक्षमें बड़ी
धीरता की । (पद्य०) ३ यथा । ४ चयवा, या तो ।

कीक (हिं० घो०) १ पीतकार, गोर, हजरा । २ वानर-
रथ, बन्दरकी यावाज ।

कीकट (सं० पु०) की गनेर्द्रतं वा कटति गच्छति, की-
कट-पच् । १ घोटक, घोडा । २ देगविगेष, कीरे मुस्क ।
कीकट मगधका येदोका नाम है ।

“ककटिं ककामा यदुत्तमं चिति ।
सप्तमं कीकटद्वयः कल्प ककटमन्त्रो भवेत् ॥” (ककटमन्त्र)
चरणाद्रि (३५५) में मृधभूट (शिरो) पर्यंत पर्यन्त
कीकटद्वय है । मगधदेश मनाके चत्तमूर्त है ।
१ कीकटदेश मग, मगधका घोडा । ४ हट्ट-पुत्र-
विगेष । (ककट, रेरे) ५ चतुर्थे जातिविगेष,
एक कोम । ६ ऋषिभक्त एक पुत्र । (वि०) ७ निर्धम,
गरीब । ८ छपप, बघीस, कंजस ।

कीकटक, कोट रेको ।
कीकटी (सं० पु०) पक्षवराह, जंगली खुर ।
कीकता (हिं० कि०) बोल्दार करना, खिडियाग ।
कीकर (सं० पु०-को०) चामविगेष, एक गांव ।
कीकर (हिं० पु०) वयूरहृत्, वयूरका पेड़ ।
कीकोरी (हिं० घो०) १ ययूरभेद, किसी किष्मका वयूर ।
कीकोरीके पत्रक वयूर छप्प होते हैं । २ किसी किष्म-
की टप्पाकार । कीकोरीमें कपडा कतरकर मरदार
या कंगूरेदार बनाते हैं ।

कीकग (सं० पु०-को०) कीति क्यति गद्यायते, पो-
कग्-पच् । १ चपटाल, हत्यारा । (महाभारतम्, १४०)
२ कर्मजाति, कौडा मकोडा । ३ पत्थि, हट्टी ।

कीकम (सं० पु०-को०) की कुत्सितं यथाप्यात्तया
कमति गच्छति, की-कम्-पच् । १ कीटजाति, कौडा
मकोडा । की कुत्सितेग रक्षादिना कमति चयद्यते ।
२ पत्थि, हट्टी । (वि०) ३ कर्कश, कडा ।

कीकमसुष (सं० पु०) कीकसं पथुद्वयं पत्थि भृते
ऽप्य, वयूमो । पत्थी, विडिया ।
कीकसाध्य, कीकसुष देको ।

कीकशंखर (सं० पु०) कीकसाया शंखरः, शंखत् ।
गिव ।

कीका (हिं० पु०) कीकट, घोडा ।
कीकि (सं० पु०) कीति गच्छ् कायति, की-के-काङ्,
कात् हि । चापघची, भीमकण्ठ ।

कीच (हिं० घो०) कट्टम, कावड ।

कीचक (सं० पु०) कीचयति गद्यायते कीच-कुम् ।
पाठमन्त्रोत्तर । १५ । १५ । १ शंभुभेद, किसी किष्मका
वांम, वायुपुत्रमें कीचक गच्छ करना है । २ रज्युंग,
हट्टदार वान । ३ मगधविगेष । ४ देवविगेष,
५ मग, एक घाम । ६ हृत्तपविगेष, कीरे विड । ७ विराट-
राजाके श्यामक वीर मनापति । कीचकके विद्याका नाम
केकयराज था । श्रौतदोके प्रति पत्त्याचार करनेकी दृष्ट्या
रखनेमें भीमनेने उन्हे मारटाका । महाभारतमें मगकी
मुख्य कथा वचनकार निघो है—“वचनान्तरके पद्माल-
वासका समय उपस्थित होनेपर वह हृत्तपविगेषे विराट-
राज्य पहुँचे वीर हृत्तपविगेषे की विविध कार्यमें दिव्य

ही रहने लगे। उसी समय कीचक मैरिन्डो-रूपिणी द्रौपदीको देख भयन्त कामातं हुवे और अन्य किसी प्रकार प्रभोट निकाल न सकनेपर बलात्कार करने पर तुल गये। फिर उन्होंने भगिनीसे अनुरोध किया कि वह द्रौपदीको उनके घर भेज दे। भगिनीने सुरा मंगानेके बचाने द्रौपदीको कीचकके गृह पहुँचाया था। उनके उपस्थित होते ही कीचक उनकी पाकमण करके के लिये उद्यत हुवे। किन्तु वह चौत्कारपूर्वक वधमं दीड कर राजसभाको भाग गयीं और उनके हाथ न लगीं। पीछे भीमसेनसे परामर्शकर द्रौपदीने कीचकको सङ्केतस्थान नाट्याश्रयमं बुलाया था। उसीके अनुसार वह वधमं जाकर उपस्थित हुवे। परन्तु भीमसेन उक्त स्थानपर पहुँचेसे ही नारीवैशमं बैठे थे। कीचकको देखते ही मार डाला। (मात, विघट, १५ ५०) जैन चरित्रशुपुराणमें इसकी कथा इस भाँति लिखी है— जिस समय कीचक द्रौपदी पर आसक्त हो संकेतस्थान पर पहुँचा तो उसे हृदयवैगी भीमसेनने बहुत मारा और बला याचना करते पर छोड़ दिया। इसके बाद विपद्येसे विरक्त हो समने एक दिग्म्बर जैन मुनिसे दोहा ले तप किया एवं घोर तपश्चरण द्वारा कामं नष्टकर मुक्ति पाई।

कीचकजित् (सं० पु०) कीचक जितवान्, कीचक-जि गतीते क्लि०। भीमसेन।

कीचकनिस्तदन, कीचकजित् देखी।

कीचकमित्, कीचकजित् देखी।

कीचकवध (सं० पु०) कीचकस्य वधः मारणम्, ६-तत्।

१ कीचकका वध। कीचकस्य वधः विनाशकथा वर्णितो यत्र, बहुव्री०। २ कीचकवधके विवरणका पुस्तक।

कीचकाह्वय (सं० पु०) १ रन्ध्रवर्ग, द्विद्वार वांस। २ नक, एक वांस।

कीचङ् (हिं० पु०) कर्दम, कीच। २ चतुमल, चाँखुआ मेल।

कीज (वे० पु०) कर्षं जातः इपोदरादित्वात् साधुः। भद्रत, प्रभोखा। 'कः शको वधो परमो यो वा कोनो विरपहयः।

(शब्० ३। १५। १) 'कीज इत्युत्पत्तयः' (भाष)

कीट (सं० पु०) कीट-पक्ष्। १ छुद्रजीवभेद, कीड़ा, मकोडा। कीट बहुविध और नाना प्रकार होता है। सुतरां उसे निर्दंग कर नहीं सकते। समुत्पत्ते कई कीटोंके दंगनसे उत्पन्न रोगोंको चिकित्साके लिये सर्व-समूहके शक, मन्, सूच एवं शय, पूति तथा प्रष्ट-जात कई कीटोंको प्रकृति, दंगनजन्य रोग और उन-की चिकित्साका निर्दोष किया है। उक्त सकन कीटोंके मध्य कुछ वायुप्रकृति, कुछ पित्तप्रकृति, कुछ श्लेष्म-प्रकृति और कुछ त्रिदोषप्रकृति होती हैं। सर्वापेया त्रिदोषप्रकृति कीट ही भयङ्कर होता है।

कुम्भोन्ध, तुण्डिकेरी, चूडो, शतशुबीरक, उष्ण-टिङ्ग, धन्निनामा, चिञ्चिटिङ्ग, मयूरिका, भावतंसक, परभ, सारिका, मुखवेदन, शरावकुट्टं, प्रभोराजी, पर्य, चित्रश्रीपंक, शतवाटु और रत्नराजि—१८ प्रकारके कीट वायुप्रकृति होते हैं। उनके दंगन करनेसे वायुजन्य रोग उत्पन्न होता है।

कीचिद्व्यक, कणभक, चरटी, पञ्चशुचिक, विना-सिका, ब्रह्मलिका, विन्दुन, भ्रमर, वाह्यकी, पिचिट, कुम्भी, वर्चःकीट, पाकमत्स्य, क्षण्णुण्ड, परिभेःक, पद्मकीट, दुन्दुभिक, मकर, शतपदिक, पश्चानक, गर्द-भो, क्लोत, क्षमिसरारि और चरकोगज—२४ प्रकारके कीट पित्तप्रकृति होते हैं। उनके दंगनसे पित्तजन्य रोग घटता है।

विश्वम्भर, पञ्चशक, पञ्चकण्ठ, कोकिन, सोरेयक, प्रचलक, वलभ, किटिम, सूचोमुखा, क्षण्णोधा, शया-वाशिक, कीटगर्दभक और वोटक—११ प्रकारके कीट श्लेष्मप्रकृति हैं। उनके दंगनसे श्लेष्मजन्य रोग शक जाता है।

तुङ्गीनाम, विचिन्नक, तानक, वाहक, कीष्ठा-गारो, क्षमिकर, सण्डनपुच्छक, तुङ्गनाम, सर्वधिक, शयक्षुम्भो, शम्भुक और शन्निकीट—१२ प्रकारके कीट साक्षपात-प्रकृति हैं। उनके दंगन करनेसे सर्व-दंगनकी भाँति तीव्र यातना घटती और साक्षिपातिक रोग समूहकी उत्पत्ति होती है। उक्त कीटोंके काटनेसे दृष्टस्थान चार वा शन्निदृष्टको भाँति चिष्टयुक्त यन जाता और रक्त, पीत, श्लेष्म वा पर्यवर्षं दिखता है।

कहानि लगे। पोहाइयो'के पधीन दूसरे लुचिं खाधीन वा दुदंम्य' लुचिंके नामसे ख्यात थे। दुदंम्य लुचिं तातारोंसे ही कोना-तातारों'की उत्पत्ति है। वह उस समय माधुरियाके पूर्वांग, कोरियाजिकटस्थ भूभाग और भामूर-तौरवर्ती जगपदमें खाधीनभावसे राजत्व करते थे। खितानों'ने पोहाइयो'को लखेद कर सर्वप्रधान समता पायी। दुदंम्य लुचिं उनको पधीनता स्वीकार तो करते, किन्तु उनके विधिनियम शासनादि मानते न थे।

कौन-राजवंशके आदिपुरुषका नाम पुखां वा कुखां था। उन्हो'ने कोरियामें जन्म ग्रहण किया। धियान-पु वा धियान-कु उनका उपाधि था। उन्हो'ने ६० वर्षके वयसमें अपने कनिष्ठ भ्रहोदर पाधो-हो-लिके साथ पुकान नदीके तीर धि-सान नामक स्थानमें बनियान लोगों'के मध्य जाकर वास किया। पुकान नदीका प्राथमिक नाम कानपुई है। वहाँ आज भी बनियान लोग रहते हैं।

पुखांके वहाँ जाने पर बनियान जातिके साथ फिर एक जातिके विवाद उठा था। उस समय बनियानों'ने समय पक्ष पर पुखांको मध्यस्थ मान विवाद मिटाने कहा और स्वीकार किया यदि पुखां विवाद मिटा सकेगी, तो वही उनके सरदार बनेंगे और वह उन्हें एक पक्षीकिक बुद्धिमती साठ वर्षकी पनड़ा कन्यादान करेंगे। क्रमसे वही हुआ। पुखां बनियानों'के सरदार बने और उनकी दी हुई पटिवर्षीया कन्यासे विवाह कर बु-बु तथा बु-पालु नामक २ पुत्र और बु-से-पान नामक एक बाल्याकी उत्पादन किया। कौन-राज-वंश पुखांको आदिपुरुष (वि-त्सु) बताते हैं। पिताके मरने पर बुलु टे-वाङ्ग-टि नामसे राजा हुए। बुलुके पुत्र पोहाई' घन-वङ्गटो और पोहाईके पुत्र सुरलो द्वियेनस्तु थे। उनके राजत्वके समय भी दुदंम्य लुचिं-यो'के गृहादि न थे। कोई गृहादि बनाना जानता भी न था। वह पर्वतकी मूल मृत्तिकाके मध्य गर्त बना बाह फूससे ढांक भीतकालको रहते थे। फिर घीस-खालकी गवादि पशु और स्त्रीपुत्रादि ही वह प्रमा करते थे। सुदखो राजाने उन्हें सर्वप्रथम इरकू नदी-

तीर गृहादि बना उनमें रहना और लक्षिकर्म द्वारा जीविका निर्वाह करना सिखाया था। क्रमशः वह पानबुहो नदी-(स्वर्णनदी, उसमें स्वर्णरेणु मिलती थी)-तीर पर्यन्त फैल गये। सुदखोके पुत्र मिलूने उनमें सर्वप्रथम कई राजविधि और समाजविधिका प्रचार किया। मिलूके पुत्र उकु-नारने १०२१ ई०को जन्म लिया था। उन्होंने सर्वप्रथम लुचिंयो'को लौह-पद्म बनाना और चलाना सिखाया। उकु-नारके पुत्र हिलि-पुने १०३२ ई० को जन्मग्रहण किया था। १०७४ ई० को पिताके मरने पर वह राजा हुए। उनके भ्राता पुलासुने १०४२ ई० को जन्म लिया था। पुलासु पिता और ल्योष्ठ भ्राताके राज्यमें फुरसियाम (प्रधान मन्त्री) थे। वही अपने समयकी घटनावाली लकड़ीके तख्ते या मष्टीके खपर पर अक्षरपाये लिख गये। उनके मरने पर कनिष्ठ इनकु ४२ वर्षके वयसमें राजा हुए। हिलिपुके एक पुत्र पगुट वही वीर थे। उन्हो'ने पिछ-यो'के पनेक शत्रुओं'का दमन किया। उनके परामर्शसे राज्यमें पनेक व्यवस्थाये और शुद्धलाये स्थापित हुईं। फिर उन्हो'ने नाना सुद सुद राज्यों'की वसोभूत किया था। ११०३ ई० को इनकु मर गये। पगुटके ल्योष्ठ सखासु राजा हुए। उनके राजत्वकाल खितान-साम्राज्य बिगड़ गया। ११११ ई० को ल्योष्ठका मृत्यु होनेसे पगुट राजा बने। उन्हो'ने खितान-साम्राज्यका पुनर्गठन और माञ्जूरिया राज्यको स्थापन किया। पगुटने १०६८ ई०को जन्म लिया था। उन्हो'ने १११६ ई० को स्वर्णके पद पर राजसभाका आदेशादि चलाया और अपने राज्यकालको 'टिपनकु' (स्वर्णका साहाय्य काल) बताया। १११० ई० को उन्हो'ने नियम निकाला—कोई अपने वंशकी कन्यासे विवाह कर न सकेगा। उसी समय खितान-साम्राज्य पर चीनके युद्ध सम्राटसे पगुटका विवाद हुआ था। उसी विवादमें पगुटने सम्राट खितान साम्राज्य पर अधिकार किया। पीछे चीनराजके साथ सन्धि हो गयी। ११२३ ई० को पगुटने मुटु इरकूके तीर १५ वर्षके वयसमें सूर्य-पक्षके दिन परलोक गमन किया। उनके अक्षरपाय विकिं नगरमें एक स्मृतिस्तिपि स्थापित है।

ज्वर, चङ्गमट, रोमाघ, वमन, पतिसार, लज्जा, दाह, मीह, तृष्या, वम्य, ग्राह, हिक्का, मीत, विडकातिगम, शीघ्र, पन्थि, चकता, दद्रु, कर्णव्या, वीमर्ष, क्लिष्टिम, पशुति रोग भी समके काटनेमें पौते हैं। एतद्व्यतोत्त दूषण भी कई कीट पौर समके दंगमके विनादि सुसुप्तमें उजटिहें। तथा—

त्रिचकटक, कुम्भी, दक्षिणच पौर पवराजिन—
 नार प्रकारके कीटोंका नाम कर्षम है। समके काट-
 नेमें तीसरेदना, गीय, चङ्गमट एवं गात्रगौरव चाता
 पौर दट्टव्याम काला पड़ जाता है। प्रतिचूर्ण, विडुमाघ,
 बह्वर्ष, महागिरा पौर निहयम—पांच प्रकारके
 कीट गोविरक कहते हैं। समके दंगममें यातना पाधिग,
 विविधरोग पौर भवद्वर प्रत्यि निकलती है। मल-
 गोनी, श्रेतलण्य, रत्तरानी, रत्तमण्यला, सर्वशेता
 पौर सर्वपिका हह प्रकारके कीटोंमें सर्वपिका व्यतीत
 पच्य पांच प्रकारके कीटोंके दंगममें दाह, गीय पौर
 स्नेह चाता है। फिर सर्वपिकाके काटनेमें हृदयपीडा
 पौर पतिसार रोग उपजता है। कर्कशम्यरा, विविदा-
 वर्ण पौर लज्जा, वीम, श्रेत, कविम तथा चन्निवर्ण
 भेदये गतपदो कीट ८ प्रकारका होता है। समके दंग-
 ममें दट्ट स्थान पर गीय एवं घेतना पौर हृदयमें दाह
 उठता है। विगेषतः श्रेतवर्ण पौर चन्निवर्ण गतपदो
 के काटनेमें दाह, मूर्च्छा पौर श्रेतवर्ण विडका उत्पन्न
 होती है। लज्जामार, कुचक, दरित, रत्त एवं यववर्ण
 पौर शुकुटो तथा काटिक नाम भेदमें मण्डूक (मिडक)
 ८ प्रकारका है। सममें क्रिय रहता है। दंगम करनेमें
 दट्ट स्थान सुगन्धामें लगता पौर मुख निकल पड़ता
 है। विगेषतः शुकुटो पौर कीटिक मण्डूकके काटने-
 में हाकिका भिष्य दाह, वमन पौर चत्यस्त मूर्च्छा
 पाया करती है।

विगणार नामक कीटके दंगममें दट्ट स्थान पर
 सर्वपिका भांति सुद सुद विडका पड़ती पौर मीत-
 प्वर चाता है।

चहिल्लक नामक कीटके काटनेमें सूरे सुभनेकी
 भांति पीडा, दाह, चङ्गु, गीय पौर मीह होता है।

चण्डूक नामक कीटके काटनेमें चण्डू पीतवर्ण

पड़ जाता पौर वमन, पतिसार तथा ज्वररोगमें
 मूल, चाता है।

शूकहस्त पशुति कीटके काटनेमें कण्टू रोगी शरीर
 में चकते पौर दट्ट स्थानमें शूक भी दिवार देना है।

विगैलिका हह प्रकारकी होती है। गवा—मूल-
 गोर्ष, मम्पाहिका, प्राञ्चिका, चण्डुनिका, कविनिका
 पौर विधवर्णा। समके काटनेमें दट्ट स्थान पर गीय
 पौर चन्निवर्णकी भांति दाह हुआ करता है।

कान्तारिका, लज्जा, विडुनिका, मधुनिका, कापायो पौर
 स्यनिका नामभेदमें मणिका भी हह प्रकारकी होती
 है। समके काटनेमें दट्ट स्थान पर दाह पौर गीय
 उठता है। स्यनिका पौर कपायोके काटनेमें लज्जा
 उपद्रवके साथ गीय विडका भी पड़ जाती है।

मगक पांच प्रकार है—मासुत्र, परिमण्डली, दक्षि-
 मगक, लण्य पौर पावेतीय। समके काटनेमें दट्ट स्थान
 पर गीय पौर चत्यस्त कण्टू रोगी है। क्षिप्तु पाय-
 तीय मगकके काटनेमें प्राणनाशक कीटदंगममें जो
 समस्त लक्षण कहे गये हैं, वह समस्त देव पड़ते हैं।
 उक्त स्थान पर लज्जा द्वारा क्षिप्तु रोगमें चत्यस्त विडका
 पड़ जाती पौर वह पक पाती है।

हृषिक कीट मन्द, मध्य पौर महाविष भेदमें तीन
 प्रकारका होता है। पृति गोमयमें जो सखल हृषिक
 उपजते, वह मन्दविष रहते हैं। काठ पौर दटकमें
 लज्जा सेनिवाले मध्यविष होते हैं। फिर पृतिमर्षदेह
 पौर विषमें जो उपजते, उन् महाविष कहते हैं।

लज्जा, ग्राह, भिष्य, पाण्डू, गोमूल, कर्कश, शिष्य,
 लज्जा, श्रेत, रत्त एवं दरितवर्ण पौर रत्तनीमगुक्त
 हृषिक मन्दविष होता है। समके काटनेमें भेदना, कंथ,
 गात्रदाह, दट्ट स्थानमें लज्जावर्ण, रत्तव्याव तथा गीय,
 ज्वर एवं चतुर्वाटिमें दंगम करनेमें यातना पौर
 पैगकी क्रमगः कर्षमति देव पड़ती है।

रत्तवर्ण एवं पीतवर्ण, किन्तु शरीरमें कविमवर्ण
 पौर सर्व शरीर भुम्बवर्ण हृषिक मध्यविष है। समके
 शरीरका परिमाण ३ पर्व होता है। समकी उत्पत्ति
 मर्षकी पृति, मल मूत्र पौर पण्डुमें है। समके काटने-
 में क्रिष्ठा पर गीय, कण्टूनामोंमें मुख द्रव्यका चरबी
 पौर चत्यस्त मूर्च्छा पाती है।

श्वेतवर्ण, चित्रवर्ण, श्यामवर्ण, रक्ताभ, रक्तखेत, रक्तोदर, नानोदर, पीतरक्त, नौलपौत, रक्तमोल, नीलशुक्ल एवं रक्तपिङ्गलवर्ण प्रभृति वर्णयुक्त और परिमाणमें एक पर्व, एक पर्वकी अपेक्षा भी कुछ अथवा दो पर्व हयिक-समूह महाविष तथा प्राणनाशक है। पुतिसर्पदेह वा सर्पदेह व्यक्तिके देहसे उसका जन्म है। उसके काटनेसे सर्पविषकी भांति विषवेगकी प्रवृत्ति, स्फाट, भ्रम, दाह, छ्वर और शरीरस्थ क्षिद्रपथसे रक्तस्राव होनेपर प्राण छूट जाता है।

सृष्टिके मतमें—किसी समय राजा विश्वामित्रने वशिष्ठको कामधेनु उपहरण की थी। उससे वह भयान्त कुपित हुये। उसी समय उनके ललाटदेशसे अति-तेजस्वी खेदविन्दु निकला था। यह क्षिप्र दृष्टमें गिर पड़ा। उससे लूता (मकड़ी) नामक कीट उत्पन्न हुआ। आकार, वर्ण और प्रकृतिभेदसे नानाविध लूता केवल षोडश प्रकारमें विभक्त किया गया है। सब प्रकारकी लूताका विष भयानक है। उसमें पाठ प्रकारकी लूता कटसाध्य और पाठ प्रकारकी एकवारको हो प्रसाध्य निर्दिष्ट हुये हैं। तिमण्डला, खेता, कपिला, पीतिका, भालविषा, भूखविषा, रक्ता और कचना लूताका विष कटसाध्य है। उसके दंशन करनेसे शिरोरोग, कण्डू, दृष्टस्थान पर वेदना और वातशैथिलिक रोग समूहकी उत्पत्ति होती है। सौवर्णिका, लाजवर्णा जालिनी, एषोपदी, कृष्या, धनिवर्णा, काकाण्डा और मासा-गुणा—पाठ प्रकारकी लूताका विष असाध्य है। उसके दंशन पर दृष्टस्थानसे रक्त निकलता, दृष्टस्थान सड़ता और छ्वर, दाह, अतिसार प्रवृत्ति त्रिदोषजात रोग, विविध पिड़का, गात्रमें बड़ा बड़ा चकता और रक्तवर्ण अथवा श्यामवर्ण एवं मृदु चञ्चल शोथ हुआ करता है। दंशनव्यनेत भी उक्त प्रकारकी लूताकी लाना, नद्या-घात, दंष्ट्राघात, मूत्र, रजः, मल और इन्द्रियस्पर्शसे मां विष-शीलित हुआ पड़ता है। लानाके विषसे कण्डू एकस्थानव्यायी, अल्पमूलकोष्ठ और अल्प वेदना होती है। मन्वाचालके विषसे शोथ, एवं कण्डूका वेग बढ़ता और मनुष्य अकड़ रहता है। दंष्ट्राघातके विषसे दृष्ट-स्थान उष, कठिन एवं विषय पड़ जाता और शरीरमें

एकस्थानव्यायी मण्डल निकला जाता है। मूत्र-स्पर्शसे सृष्टस्थान गन्तव्य सगता और उसका मध्यदेश कृष्णवर्ण तथा प्रान्तभाग रक्तवर्ण देख पड़ता है। रजः, मल एवं इन्द्रियके स्पर्शसे एक विलु फलकी भांति पाण्डुवर्ण स्फोटक उठता है। लूताका किसी प्रकार शिथिलचण एक हो धारमें समस्त प्रकाशित नहीं होता। दंशके पीछे पहले दिन अत्यन्तवर्ण और कण्डू विग्रिष्ट चञ्चल चकते प्रभरा करते हैं। दूसरे दिन उन मण्डलोंका मध्यभाग, निम्न और अतुर्दिक्का प्रान्त-भाग फूल उठता है। तीसरे दिन विषका लक्षण देख पड़ता है। चतुर्थ दिन शरीरस्थ विष कुपित होता है। पञ्चम दिन विषकोपसे रोगसमूह उभर जाता है। यह दिन विष सर्वशरीरमें फैल विगेषरूपसे मर्मस्थान-समूहको प्राप्य करता है। सप्तम दिन विषकोप बहुत बढ़ जाता है। तीसरे या प्रचण्ड विष होनेसे उसी दिन रोगीका प्राण विनष्ट होता है। मध्यम-विषविग्रिष्ट लूताके दंशनसे सप्तम दिवसके पीछे और मन्द विषयुक्त लूताके दंशनसे एक पक्षकाल मध्य मृत्यु पा सकता है।

चिकित्सा—उपविष कोटीके काटनेसे सर्वदंशनको भांति ही चिकित्सा करना पड़ती है। खेद, प्रलेप और लल-सेकादि उष्ण कर व्यवहार करना चाहिये। दृष्टस्थान पक्ष या सड़ जाने और मूर्च्छादि उपद्रव बढ़ पानेसे वमन विरेचनादि संशोधन कार्य और विनाशक क्रिया-समुदायसे लाभ होता है। उक्त सकल उपद्रवमें शिरोव, कुटकी, कुष्ठ, वषा, हरिद्रा, सेन्धुवर्ण, गन्धदुग्ध, मन्जा, वषा, मन्थल, गुण्डो, पिप्लो और टैवदारका मुलटिष बांधना चाहिये। अथवा प्रथम शालपर्णीवृक्ष कर उसका खेद लगाना उचित है। किन्तु हयिक दंशनमें खेद पक्षितकर है। त्रिकण्डकके विषमें कुष्ठ, अषक सिन्धुशर, वषा, विष्वमूल, विष्वकर्षा, सुवर्तिका, कज्जल, हरिद्रा और दाहहरिद्राका प्रलेपादि हितकर है। गलगीनी (सर्पविषय)के विषमें कज्जल, हरिद्रा, अषक सिन्धुशर, कुष्ठ और पनाशकोनसे उपकार होता है। शतपदी (कानजबूरा)के विष पर कुडूम, तगर-पाटुका, शोभाजन, पद्मशाठ, हरिद्रा और दाहहरिद्रा

‘कीरिवा दिशमवेषमिचन् ।’ (चक्र ५ । १० । ८)

‘कीरिवा कीर्तेषु ।’ (चापथ)

(त्रि०) २ स्तुवादिभिः चासन्न, तारीफ करनेमें लगा हुआ ।

‘यस्मा इदा कीरिवा मन्मानः ।’ (चक्र ५ । १० । ९)

‘कीरिवा सु स्तुवादिषु विविधेन इदा ।’ (चापथ)

३ स्तोता, तारीफ करनेवाला ।

कीरिचोदन (सं० त्रि०) कीरीन् चोदयति प्रेरयति, कीरि-चुद्-णिच्-ञ् । स्तुवकारकोंका प्रेरक ।

‘सखायं कीरिचोदनम् ।’ (चक्र, ६ । ४ । १८)

‘कीरीषां चोदनां चोदनं उरविताम् ।’ (चापथ)

कीरी (द्वि० स्त्री०) १ कीटविशेष, एक महीन कीड़ा । कीरा गेहूँ, जौ वगैरहकी बालमें घुस दूध पी जाती है । २ पिपिलिका, चींटी । ३ वृहत्सिन्धुकी स्त्री । ४ सूक्ष्म कीट, बहुत बारीक कीड़ा ।

कीरिष्ट (सं० पु०) कीरस्य गुरुस्य इष्टः, इ-तत् । १ पाश्चत्य, आमका पेड़ । २ पाखोडत्य, बखरोटका दरखत । ३ जलमधूक । ४ निखत्य, नीमका पेड़ ।

कीर्ण (सं० त्रि०) कीर्णते स्मेति, कृ कर्मणि क्त । १ पाच्छन्न, टना हुआ । २ विच्छिन्न, फँसा हुआ । ३ निहिन, छिपा हुआ । ४ हिसित, मारा हुआ । ५ पूर्ण, भरा हुआ ।

कीर्णपुष्प (सं० पु०) कीरमोरट, एक लता । कीर्ण (सं० स्त्री०) कृ भावे क्लिन् निपातनात् साधुः । १ पाष्वादन, दलान, भोड़ना । २ विचिप, फेलाव । ३ हिंसाकार्य, मार पोटा । ४ व्याप्ति, भराव ।

कीर्तिक (सं० त्रि०) कीर्तयति, कृ-णिच्-ण्वन् । कीर्तन-कारक, बयान करनेवाला ।

कीर्तन (सं० स्त्री०) कृत् भावे ष्यट् । १ वर्णन, बयान । ‘एतां कथंति कृतेषु क्रमानां कीर्तनं मनः ।’ (मार्कण्डेय-पुराण, २ । १५९) २ यशःप्रकाश, शोहरतका इजहार । ३ गुणकथन, तारीफका बयान । ४ कृष्यलोलाविषयक मञ्जोतविशेष । वरीतन देखो ।

कीर्तिया (द्वि० पु०) कीर्तनकारक, लक्ष्यलोभा संश्रयभी भजन मानेवाला ।

कीर्तनी (सं० स्त्री०) नीलोत्पल, नौसला पेड़ ।

कीर्तनीय (सं० त्रि०) कृ-णिच्-ण्वनीय, यद्वा कीर्तने गुणकथने साधुः, कीर्तन-कृ । १ वर्णनीय, बयानके कावियन । २ गुणनीय, गिना जानेवाला ।

कीर्तनीय (द्वे० त्रि०) कीर्तनाय साधुः, कीर्तन-यत् । कीर्तनके उपयुक्त, जो गाये जानेके लायक हो ।

कीर्ति (सं० स्त्री०) कृत्-इन् इरादिय । अविश्वरिश्तिभिदि द्विक्कीर्तिभ्यः । १ । १८ । १ पुण्य, सवाव । २ यशः, शोहरत । कीर्तिका संस्कृत पर्याय—यशः, समप्रा, समप्रा, ममाध्या, ममध्या, पमिध्या, श्लोक, वर्ण और कीर्तना है । कोई कोई यशः और कीर्तिमें यह भेद बताते हैं—‘दत्तादिवमवा कीर्तिः शोवादिदमवः यशः ।’

दानादि कार्यमें जो सुख्याति होती, वह कीर्ति कहाती है । फिर गौरवादिके प्रकारमें हीनेवाकी सुख्यातिको यशः कहते हैं ।

किञ्चिके मतमें जोवित व्यक्तिको प्रशंसाका नाम यशः और नृत व्यक्तिको प्रशंसाका नाम कीर्ति है ।

किन्तु उक्त मत ठीक समझ नहीं पड़ता । अनेक स्थानपर जोवित व्यक्तिको भी कीर्तिका वर्णन मिलता है—‘इह कीर्तिमवाशोति प्रेष चाशुभं सुखम् ।’ (मन-१ । ८)

१ मसाद, खुशो । ४ गन्ध, पवाज । ५ दासि, चमक । ६ माटकाविशेष । ७ विस्तार, फैलाव । ८ कर्दम, कीचड । ९ सोताकी सखीविशेष, लानकीका एक सखी । १० चार्याकन्दभेद । उसमें १४ गुह और १८ स्रुवर्ण लगते हैं । ११ दगाचरी वृत्तविशेष । उसके प्रत्येक चरणमें ३ सगण और १ गुह वर्ण रहते हैं । १२ पकादगाचरी वृत्तविशेष । वह दम्बण्याके संयोगसे उत्पन्न होता है । उसके प्रथम चरणका पहला पक्षर स्रुव रहता है । शेष तीन चरणोंमें पक्षदे गुह पक्षर ही लगते हैं । १३ तानविशेष । १४ दलकन्या-विशेष । वह धर्मकी पत्नी रहती ।

कीर्तिकर (सं० त्रि०) कीर्ति करोति जनयति, कीर्ति-कृट् । कीर्तिकारक, शोहरत पैदा करनेवाला, जिसमें नामवरी रहै ।

कीर्तिकृत—किञ्चि पर्वतका नाम, एक पहाड़ । (द्वि० पर्वत, २५ । १ । १०)

कीर्तिचन्द्र—१ वर्धमानके कोई राजा । (

स्वर, चक्रमर्द, रोमाञ्च, वामन, चमोमार्ग, यथा, दाह, मोह, भ्रूया, बन्ध, व्याप, विद्या, मोह, विद्वान्निर्गम, शोष, पत्रि, चक्रता, दृष्ट, कर्षका, यौमर्ष, क्लिप्तम, प्रभृति राग भी उनके काटनेमें होते हैं । दंतद्वारा तो दूधरे भी वर्ष कोट और उनके टंगनमें विद्यादि सुशुभमें उपदिष्ट हैं । एव—

विश्वरूपक, कृपे, दक्षिणधर और पयराजित—
 चार प्रकारके कोटोंका नाम कर्षम है । उनके काटनेमें मोहमेंदना, शोष, चक्रमर्द एवं मातगोरव जाता और दटव्यान कान्ना पड़ जाता है । प्रतिशुर्व, विद्वाम, बद्धवर्ष, मज्जिगा चार निहृम—पांच प्रकारके कोट गोप्यरुह कहते हैं । उनके टंगनमें यातना पावेग, विविधयोग और भयदुर चरित्र निकलते हैं । गल-
 गोली, श्रोतलज्ज, रत्नराजी, रत्नमण्डला, सर्वव्येता और सर्वविश कष्ट प्रकारके कोटोंमें सर्वविका व्यतीत चर्या पांच प्रकारके कोटोंके टंगनमें दाह, शोष और क्लेश जाता है । फिर सर्वविकाके काटनेमें हृदयवोड़ा और चतितार राग प्रवृत्ता है । कर्षमस्वरे, विविध-
 वर्ण और लज्ज, पीत, श्रोत, कविन तथा चरित्रवर्ष भेदमें मतवदी कोट ८ प्रकारका होता है । उनके टंग-
 नमें दटव्यान पर शोष एवं वेदना और हृदयमें दाह उठता है । विमेषतः श्रोतवर्ष और चरित्रवर्ष मतवदी के काटनेमें दाह, सूक्ष्मा और श्रोतवर्ष विद्वका उत्पन्न होती है । हृद्यमार, कुडक, हरित, रत्न एवं यववर्ष और भृकुटी तथा कोटिक नाम भेदमें मण्डूक (मिडूक) ८ प्रकारका है । उनमें क्लेश रहता है । टंगन करनेमें दटव्यान सुहमाने भगता और सुख निकल पड़ता है । विमेषतः भृकुटी और कोटिक मण्डूकके काटने-
 में हाकिमा भिन्न दाह, वामन और चरित्रा मूर्द्धा पाया करने है ।

विश्वरूप नामक कोटके टंगनमें दटव्यान पर सर्ववका भांति सुद सुद विद्वका पड़ती और शीत-
 ल्वर जाता है ।

चरित्ररूप नामक कोटके काटनेमें सूरे सुमनेकी भांति वोड़ा, दाह, चक्र, शोष और मोह होता है ।

कण्डूनाम नामक कोटके काटनेमें पद पीतवर्ष

पर जाता और वामन, चमोमार तथा चरित्रोर्ध्वे मृत्यु जाता है ।

गूकहला प्रभृति कोटके काटनेमें चण्ड होती शरीर में चकते और दटव्यानमें गूक भी दिखाई देता है ।

विज्ञेयिका लक्ष प्रकारकी होती है । यथा—मन्त्र-
 गोप्ये, मन्वादिहा, प्राण्यपिहा, चंगुनिका, कविनिका और विश्ववर्षा । उनके काटनेमें दटव्यान पर शोष और चरित्रमर्गकी भांति दाह हुआ करता है ।

कान्तारिवा, लज्जा, विद्वानिका, माभुनिका, कापायी और स्थनिका नाममेंदमे मज्जिका भी लक्ष प्रकारकी होती है । उनके काटनेमें दटव्यान पर दाह चार शोष उठता है । स्थनिका और कपायीके काटनेमें लक्ष चपट्टरके साथ माय विद्वका भी पड़ जाती है ।

मगक पांच प्रकार है—मासुद, परिमल्लो, हर्ष-
 मगक, कृष्ण और पायंतोय । उनके काटनेमें दटव्यान पर शोष और चरित्रा कण्डू होती है । किन्तु पायं-
 तीय मगकके काटनेमें प्राणनामक कोटटंगनमें शो समझ लक्ष कष्ट गये हैं, यह समझ देव पड़ते हैं । उक्त स्थान पर नल दारा द्विच होनेमें चरित्रा विद्वका पड़ जाती और वह पक्ष जाती है ।

हृदिक कोट मन्द, मध्य और महाविष भेदमें तीन प्रकारका होता है । प्रति गोमयमें शो सज्जल हृदिक उपलभे, यह मन्त्रविष रहते हैं । काह और रहकथे जन्म सेनेवाने मध्यविष होते हैं । फिर प्रतिमर्षद्व और विषमें शो उपलभे, ये महाविष कहते हैं ।

लज्जा, श्राव, विष, पाण्डू, गोमूत्र, कर्षम, धिरा, लज्जा, श्रोत, रत्न एवं हरितवर्ष और रत्नोमगुक्ष हृदिक मन्त्रविष होता है । उनके काटनेमें वेदना, कम्प, मातमत्त, दटव्यानमें लज्जवर्ष, रत्नश्राव तथा शोष, ल्वर एवं चरित्राटाटिमें टंगन करनेमें यातना और योगकी क्रमगः कर्षमर्गि देख पड़ती है ।

रत्नवर्ष एवं पीतवर्ष, किन्तु मन्दरेग कविमर्षके और सर्व शरीर भूषवर्षे हृदिक मध्यविष है । उनके शरीरका परिमाण ६ वर्ष होता है । उगको उत्पत्ति मर्षकी पुति, मल मूत्र और चरित्र है । उनके काटने-
 में जिहा पर शोष, कण्डूनाममें मुक्त दृष्टका चरित्रा और चरित्रा मूर्द्धा जाती है ।

कीश (सं० पु०) की इति शब्द ईंटे, की-ईश-क यद्वा कस्य बायोरपत्यम्, क-पत-इत् किः इतुमान् स ईशो यस्य । वानर, वन्दर । के पाकामे ईंटे प्रभवति, क-ईश-क । २ सूर्य, सूरज । ३ पत्नी, सिद्धिया । (त्रि०) ४ नग्न, मंगा ।

कीशपर्ण (सं० पु०) कीशं वानरः तस्य लोमिव पर्ण पत्रमस्य, बहुव्री० । श्यामार्ग, लटजीरेका पेड़ ।

कीशपर्णी (सं० स्त्री०) कीशपर्णं जातौ लीपः ।

कीशर्षं देखी ।

कीशफल (सं० स्त्री०) ककूल, शीतल चीनी ।

कीशरोमा (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, देवांच ।

कीशाण—जातिविशेष, एक कौम । कीशाणो को नागेश्वर भी कहते हैं । वह लोहारडांगा, पलामू, यमपुर और सरगुजा प्रभृति स्थानों में रहते हैं । उनके मध्य उनका वास और कृषि ही उनकी उपजीविका है । कीशाण वाचकी उपासना करते हैं । वह छमे उनके राजाकी भांति पूजते हैं । एतद्विषय सूर्य, महादेव, महाशुनिया, शिकरिया और सत पिढगणके उद्देश्य भी पूजा की जाती है । शिकरिया देवताके पाने काग और सूर्य देवताके उद्देश्य खेत हंस वक्षि देते हैं । उनके श्यामदेवताका नाम दरडा है । उक्त श्यामदेवके स्थानमें 'बामनो पाट' 'बन्दरोपाट' इत्यादि नामधेय कई पाट हैं । कीशाण कोलजातिकी भांति नाचते गाते हैं । उनकी स्त्रियां गोदना गोदानमें अपने समाजमें छेप और समाजच्युत समझी जाती हैं ।

कीम (हिं० पु०) १ कीसा, जरायुज, गर्भकी यैकी । २ कीग, वन्दर ।

कीसा (फा० पु०) यैकी, जंब ।

कीसा (वे० पु०) स्थाव, स्तुति ।

"हकी यदी कोलाषी चमिपको ममवम ।" (चर० १०१० । ०)

कु (सं० अर्थ०) कु-डु । १ पाप, दुःभाव, राम राम । २ निन्दा, छी छी । ३ ईपत्त, घोडा । ४ निवारण, दूर दूर । ५ मन्द, धीरे धीरे । (त्रि०) ६ मिन्दनीय, बद-नाम ।

कु (सं० स्त्री०) कु-ड । छविही, जमोन् ।

कुंभर (हिं०) कुमार देखी ।

कुंभरपुरिया (हिं० पु०) हरिद्रामेद, किसी किण्वकी हलदी । वह कटकके निकट कुंभरपुर राज्यमें उत्पन्न होता है । ५ वर्ष बोधे उन्न चित्रसे खोदते हैं । मूल और पत्र छद्मत् तथा दोर्घ होता है । भंसके गोबरकी खाद देनेसे कुंभरपुरिया बहुत पनपता है ।

कुंभरविरास (हिं० पु०) धान्यविशेष, जिसी किष्का चावल ।

कुंभरेटा (हिं० पु०) कुमार, छोटा कुंभर ।

कुंभा (हिं० पु०) कूप, चाद, कुवां ।

कुंभारा (हिं० वि०) प्रविधाहित, विद्याहा, जिसको गादो न हुई हो ।

कुंभरा (हिं० स्त्री०) सुद कूप, छोटा कुवां ।

कुंभं (हिं० स्त्री०) १ सुद कूप, छोटा कुवां । २ कुमु-दिनी ।

कुंभफूल (हिं० पु०) पुष्पविशेष, दुपहरियाका फूल ।

कुंभुमा (हिं० पु०) नाखका एक पोला गोमा । होकीको छसमें गुलान डान कर मारते हैं ।

कुंची (हिं०) कुष्का देखी ।

कुंल (हिं० पु०) हल नतादि द्वारा पाच्छादित स्थान, पौदों और धेनोंसे ढकी हुई जगह । २ हाथी दांत । ३ दुगालके कोनेका घूटा । ४ कोनिया, बहिरसे कोने पर मिलनेवाली खपरेल या छपरकी काननकी एक लकड़ी ।

कुंलगकी (हिं० स्त्री०) १ पादपनतादि द्वारा पाच्छा-दित पथ, पौदों और धेनोंसे ढकी हुई राह । २ चम-शस्तमार्ग, तहकूषा ।

कुंभड़ (हिं० पु०) कुंभुर, पिस्कोका गोट । वह शीव-धर्म पड़ता और रुमीमन्दागो—सेसा रहता है ।

कुंभड़ा (हिं० पु०) जातिविशेष, एक कौम । कुंभड़ा तरकारी और फल विधते हैं । वह अन्नके नव समय मान हैं ।

कुंजा (हिं० पु०) कुजा, पुरवा, सिद्धीरा ।

कुंड (हिं० पु०) छल

वरुं या तंघोली पानोंकी भीरमें कुंदरुकी वेल लगाते है। कछते छे कुंदरु खानेसे बुद्धि मारी जातो है। बहुमूल्य प्रमिष्टमें उसकी मूलको बांट कर घीनेसे लाभ होता है। कुंदरुके मूलका रस जमकर गोंद बन जाता है।

कुंदला (हिं० पु०) शिविरविशेष, किसी किष्कश खेमाया तंबू।

कुंदा (हिं० पु०) १ लकड़ा, लकड़ीका मोटा टुकड़ा। २ निचटा, लकड़ीका एक टुकड़ा। उमपर मटाई पिटाई बगैरहं होती है। ३ बन्दूकका पिछला हिस्सा। वह त्रिकोणाकार रहता है। कुंदामें ही घोड़ा और नली लगाते हैं। ४ पपराधीके पैर ठाकनेकी एक लकड़ी, काठ। ५ सुष्टि, मूठ, बेंट। ६ लकड़ीकी बही मोगरी। उससे कपड़ोंपर कुंदी की जाती है। (पु०) ७ पक्षमूल, डैना। ८ कुखीका कीई पेंच। डंका देवो, ९ रहा, घग्गा, एक मार। १० मावा, खोवा।

कुंदो (हिं० स्त्री०) १ कपड़े को कुंटाये। वह फुले और रङ्ग धुये कपड़ोंपर तह करके की जाती है। कुंदोसे कपड़ेको मिकुडन और रुखाई मिटती है। २ काडी मार।

कुंदीगर (हिं० पु०) कुंदो करनेवाला।
कुंदुर (अ० पु०) निर्धर्मविशेष, किसी किष्कश गोंद। यह सुगन्धि और पीतवर्ण होता है। कुंदुर किसी कंठीसे पोदसे निकाला जाता है। यह पोदा २ हाथ लंबा रहता और अरबके यमन खादि पाषाण प्रदेशमें मिलता है। उसका फल तथा बीज कट्ट होता है। सूर्यके कर्षाराधिय पर रहते गोंद निकालते हैं। इसीकी मत्तानुसार वह बलवीर्यवर्धक, हृद्य और रक्तसाधनाशक है।

कुंदिरना (हिं० स्त्री०) खरोटना, झीलना।

कुंदिरा (हिं० पु०) कुंदिरा, खरादे।

कुंदी (हिं०) इषा देवो।

कुम्भनाम—व्रजकी एक कवि। वह षट् छापके कवियोंमें एक कवि रहे। कुम्भदास सखाभावसे कृष्णको उपासना करते थे।

कुम्भिलाना (हिं० स्त्री०) स्नान पट्टन, सुरभाना।

कुंघर (हिं०) इमार देवो।

कुंघरि (हिं० स्त्री०) राजकुमारी, मादगाइकी घेठो।

“कुंघरि मनोरर विभवदि कीरति चति वननोय।
पारनवार विरदि मनु, रवेद न चनु दमनीय।” (गुणवो)

कुहकुह (हिं० पु०) कड़म, जाफरान, किंगर।

कुपा (हिं०) वृष देवो।

कुपाहो (हिं० स्त्री०) सङ्घोतकी एक नय। एसमें बराबर और छोटी दोनों नय रहती है।

कुपार (हिं० पु०) आग्निन मास।

कुपारा (हिं० वि०) आग्निनमन्थोय।

कुंदर (हिं० पु०) गर्तविशेष, एक गड्ढा। वह कुयेंके बैठ जानेसे बनता है।

कुइयां, कुंयां देवो।

कुपमलुन—तिव्वनकी एक पर्वतमाता। वह जंघो सपजाज भूमिकी उत्तर पोर अवस्थित है। निकट-वर्ती अधिवासी उसे विभिन्न नामसे परिचित करते हैं। यथा—वैतुर-ताग, (तुपार पर्वत), तुलुट-ताग (मिधपर्वत), सुपनाग, कराकार कोरम (लण्यपर्वत) टसुन-लुन (पएनाण्ड पर्वत) और तियानगान (खगिय पर्वत)। वह समुद्रपट्टने १३२१५ फीट लंबा है। जन्द-भवन्ता ग्रन्थमें उक्त पर्वतका नाम हरो-वेरेजइति निग्या है। वह प्रायः १५५ मील विस्तृत और मध्य एशियाकी उत्तर तथा दक्षिण पव-वाहिकाके मध्यस्थलमें दण्डायमान है। दक्षिणकी पववाहिका मित्युनटादि एवं साम्य, (ब्रह्मपुत्र) पोर उत्तर पववाहिका गांधीसहकी पार पवाहित है। उक्त पर्वतके गिरिवर्षमें ही तिब्वतकी उत्तमोमा पतिष्मण करना पड़ती है। उसके मध्यस्थलमें छोट-जेवा प्रस्तरप्रस्तर है। मरमर पोर पुडिङ्ग हीनकी भांति एक प्रकारका कठिन एवं खच्छ पत्थर भी मिलता है।

कुका (सं० वि०) कुक-क। १ समर्थ, साकतपर। २ पदा करनेवाला, सां देता हो। ३ श्लोकार करनेवाला, जो मानता हो। (पु०) ४ चक्रशाकपत्ती।

कुकटी (हिं० स्त्री०) कार्पासमिद, किसी किष्कशी कपान। उसमें रुई नाली लिये गन्दि होती है। इसे गोरखपुर, यस्ती प्रभृति जिलोंमें शीते है।

कुंडपुत्री (हिं० स्त्री०) कुंडमुदनी, कुंडकी पुत्रा ।
वह ऊपकी का एक यापिकोखव है । रबी बीयो जा
बुक्ने पर कुंडपुत्री होती है ।

कुंडपुत्री, कुंडपुत्री शब्दः ।

कुंडमुदनी, कुंडमुदनी शब्दः ।

कुंडरा (हिं० पुं०) १ कुण्डल, मण्डलाकार रेखा ।
२ गेहूरी ।

कुंडरा (हिं० पुं०) कुंडा, मटका ।

कुंडलिनिया (हिं० स्त्री०) छन्दोविशेष, एक वृद्ध ।
यह दोहा और रोला छन्दके योगसे बनती है । दोहका
प्रथम शब्द रोलाके अन्तमें और दोहाका अन्तिम शब्द
रोलाके आदिमें आता है । गिरिधरदासकी कुण्डलिनियां
प्रसिद्ध हैं ।

कुंडा (हिं० पुं०) १ पात्रविशेष, एक वस्तु । वह
मिट्टीका बनता और चौड़े मुँह गहरा रहता है ।
२ कोटा । उसमें सांकेत लगा तासा डाला जाता है ।
३ हस्त नाचविशेष, कुशीका एक पेंच । नीचे गये
दुबे पद्मलवान्की दाहने खड़े हो अपनी दाहनी टांग
उसकी गरदनमें बाध्याँ औरसे डाल उसकी दाहनी
यागसे निकाली जाती है । फिर अपने बाध्याँ पैरके
घुटनेके भीतर मोजीको दबा उसके गिर पर बैठते और
बाध्याँ हाथसे उसका जाधिया खींच उसे चित करतें हैं ।
४ निरकट, तावर डोल, जहाजके अगले मस्तूलका
चोया दिखा ।

कुंडला (हिं० पुं०) पात्रविशेष, मट्टीकी कुंडी या
पथरी । उसमें कलावत्त बनानेवाले टिकुरियों पर
कलावत्त सपेट कर रहते हैं ।

कुंडिया (हिं० स्त्री०) १ गर्तविशेष, एक चौखंडा
गड्ढा । वह शेरके कारखानोंमें रहती है । कुंडिया
२ हाथ चौड़ी, ५ हाथ लंबी और १ हाथ गहरी
होती है । शोरा बनानेको उसमें नीना मिट्टी पानीके
माथ डालते हैं । २ पात्रविशेष, एक वस्तु । उसमें
पीटनेके लिये धादसा रखा जाता है । ३ पथरी, पत्थर
या कटोरी-जैसा छोटा बर्तन । ४ कटोली, काठका
वस्तु ।

कुंडी (हिं० स्त्री०) पात्रविशेष, पत्थर या सफ़ेदीका

एक छोटा बर्तन । वह कटोरी-जैसी बनती और
प्रायः षडो चीजें रखनेके काममें लगती है । २ लज्जो
की कड़ी । ३ सांकल । ४ अंगरका बड़ा क्ल्ला । ५ मुर्दा
मैला । उसके अर्थ विदित रहते हैं ।

कुंडू (हिं० पुं०) पत्रविशेष, एक चिड़िया । उसका
रंग काना होता है । किन्तु कण्ठ तथा मुख अंग्रेत और
पृष्ठ पीतवर्ण रहता है । उसका देघ्य प्रायः ११ इंच
है । काश्मीरसे आसाम तक कुंडू पाया जाता है ।
उसे कस्तूरा भी कहते हैं ।

कुंडया (हिं० पुं०) पात्रविशेष, मट्टीका बिकोरा या
पुरवा ।

कुंतली (हिं० स्त्री०) मलिका मेद, एक छोटी मण्डो ।
उसके अन्तमें 'डामर' नामका मोम होता है । कुंतली-
के डंक नहों रहता । भारतमें कई स्थानोंमें यह पायी
जाती है ।

कुंदन (हिं० पुं०) १ स्वर्णपत्रविशेष, सोनिका एक
पत्तर । वह बहुत अच्छे और साफ सोनसे बनता है ।
कुंदन रख कर नगीना जड़ा जाता है । २ स्वर्ण,
खालिस सोना । (वि०) ३ सख्ख, खालिस, चोखा ।

कुंदनसाज (हिं० पुं०) १ स्वर्णपत्र मन्दुतकारक,
सोनिका वारीक पत्थर बनानेवाला । २ जड़िया, नगीना
जड़नेवाला ।

कुंदना (हिं० पुं०) बाजरेकी एक बीमारी ।

कुंदरु (हिं० स्त्री०) रक्तफला, एक वृक्ष । उसे हिन्दु-
स्थानमें विष्य या कुंदरुकी वृक्ष, पंजावमें घोस, बंगाल-
में तैलाकूचा, सिन्धुमें गोलाकू, गुजरातमें गलेदू, बम्बई-
में तेंदुली, मारवाड़में जिददी, तामिसमें कोवई, तेलगु-
में दौद, मलयमें कवेक, कनारामें तौदिवलि, भरवमें
कवार हिन्दो, अण्डामें केमवंग और सिङ्गलमें कोवका
कहते हैं । (*Cephalandra indica*)

कुंदरु भारतवर्षमें साधारणतः पायो जाती है ।
फल चार-पांच अङ्गुलि प्रमाण दीर्घ होते हैं । कुंदरु
की तरकारी बनाकर खाते हैं । फल पकने पर अधिक
रक्तवर्ण हो जाता है । उससे कवि कुंदरुसे पौष्टकी
उपमा देते हैं । पत्र चार-पांच अङ्गुलिप्रमाण दीर्घ
और पत्रकीपविशिट रहते हैं । पुष्प अंग्रेत आते हैं ।

बरई या तंबोली पानोंकी भीरमे कुंदरुकी बेल लगती है। कहते हैं कुंदरु खानेसे बुद्धि मारी जाती है। बहुमूल्य प्रमेष्ठमें उसके मूलकी बांट कर पीनेसे लाभ होता है। कुंदरुके मूलका रस जमकर गोंद बन जाता है।

कुंदला (हिं० पु०) शिविरविशेष, किसी कियश श्रेया या तंबू।

कुंदा (हिं० पु०) १ लकड़ा, लकड़ीका मोटा टुकड़ा। २ निहटा, लकड़ीका एक टुकड़ा। उभपर मटाई पिटाई बगैरह होती है। ३ बन्दूकका पिछला हिस्सा। यह विकीणाकार रहता है। कुंदामें छोटी छोटी चीर नकी लगती हैं। ४ पपराधीके पैर ठोकनेकी एक लकड़ी, काठ। ५ सुट्टि, मूठ, बेंट। ६ लकड़ीकी बड़ी मोगरी। उससे कपड़ोंपर कुंदा की जाती है। (पु०) ७ पक्षमूल, डैना। ८ कुञ्जीका कोई पेंस। उदा० देखा। ९ रक्षा, घस्सा, एक मार। १० मावा, खोवा।

कुंदा (हिं० स्त्री०) १ कपड़े को कुंदाई। यह फुले और रङ्ग धुये कपड़ों पर तड़ करके की जाती है। कुंदोसे कपड़ोंको सिकुड़न और रूखाई मिटती है। २ कड़ी मार।

कुंदीगर (हिं० पु०) कुंटी करनेवाला।

कुंदुर (अ० पु०) निर्धोमविशेष, किसी कियश गोंद। यह सुगन्धि और पीतवर्ण होता है। कुन्दुर किसी कांटीसे पींदसे निकाला जाता है। यह पींदा २ हाथ लंबा रहता और चरबके यमन चादि पार्थव्य प्रदेशमें मिलता है। उसका फल तथा बोल कट्ट होता है। सूर्यके किरणोंपर रहते गोंद निकलते हैं। हकीमोंके मत्तानुसार यह वनबीर्यवर्धक, हृद्य और रक्तसाधनाशक है।

कुंदेरना (हिं० स्त्री०) खरोटना, छीलना।

कुंदेरा (हिं० पु०) कुनेरा, खरादो।

कुंदी (हिं०) उभा देखा।

कुम्भनटाम—सूत्रके एक कवि। यह चट्ट कावके कवियोंमें एक कवि रहें। कुम्भनादस सखाभावसे क्षणकी उपासना करते थे।

कुम्भाना (हिं० स्त्री०) चान पड़न, सुरभाना।

कुंघर (हिं०) उगार देखा।

कुंघरि (हिं० स्त्री०) राजकुमारी, वादशाहकी धी।

"कुंघरि नमोहर विमलवर्द्धि शौरि चरि लमनोय।

पातनकार विरिच मठ, रथेउ नशु दमनोय।" (गुणनी)

कुहकुह (हिं० पु०) कड़म, जाकरान, केयर।

कुषा (हिं०) हृद देखा।

कुषाहो (हिं० स्त्री०) सङ्गोतकी एक लय। लमने बराबर और छोटी दोनों लय रहती है।

कुषार (हिं० पु०) चाखिन माम।

कुषारा (हिं० वि०) चाखिनमन्त्रोय।

कुशंदर (हिं० पु०) गर्तविशेष, एक गड्ढा। यह कुयेंके धैर जानसे बनता है।

कुश्या, कुश्या देखा।

कुपमलुन—तिब्बतकी एक पर्वतमाना। यह ऊंचो सपनाज भूमिकी उत्तर ओर अवस्थित है। निकटवर्ती अधिवासी उसे विभिन्न नामसे परिचित करते हैं। यथा—बेलुत-ताग, (तुपार पर्वत), तुलुत-ताग (मेघपर्वत), सुयताग, करारकार कोरम (लक्षणपर्वत) टसुन लुन (पपनाण्ड पर्वत) और तियागयाग (स्वर्गीय पर्वत)। यह समुद्रपृष्ठसे १३२१५ फीट ऊंचा है। लन्द-भवस्ता शयमें उक्त पर्वतका नाम हरो-वेरज्जति लिखा है। यह प्रायः १५५ मील विस्तृत और मध्य एशियाकी उत्तर तथा दक्षिण पर्व-वाहिकाके मध्यस्थलमें दृश्यामान है। दक्षिणकी पर्ववाहिका मियुनदादि एवं म्याम्, (ब्रह्मपुत्र) और उत्तर पर्ववाहिका गोबीसहकी पार प्रवाहित है। उक्त पर्वतके गिरिवल्लेमें ही तिब्बतकी उत्तमोत्तम पतिष्ठ-मण करना पड़ती है। उसके मध्यस्थलमें रॉट—जेसा प्रस्तरस्तर है। मरमर और पड्डिङ्ग छोटी भांति एक प्रकारका कठिन एवं स्वच्छ पत्थर भी मिलता है।

कुक (सं० वि०) कुक-क। १ ममर्थ, लाकतपर। २ पदा धरनेवाला, जा देता हों। ३ स्वीकार करनेवाला, जो मानता हो। (पु०) ४ चक्रवाकपक्षी।

कुकटी (हिं० स्त्री०) कार्याभेद, किसी कियशो कपान। उसका रुई जानो लिये सज्जित होती है। उसे गोरवपुत्र, पक्षी दम्भति जिनोमें धोते है।

कुकड़ना (हिं० लि०) सङ्घटित होना, सिङ्घटना ।

कुकड़मल (हिं० स्त्री०) दंडाल ।

कुकड़ी (हिं० स्त्री०) १ मुट्ठा, चंटी, तफलीम कात कर धतारा हुआ कथे सूतका कपेटा हुआ लच्छा । २ मदारका फल, कपौडेको बोड़ी । ३ खुलड़ी ।

कुकड़ा (सं० स्त्री०) कु निन्दिता कथा, कर्मधा० । १ चराव वात ।

कुकनू (यू० पु०) पश्चिमिग्रेष, एक चिड़िया । कहते हैं कि वह चकेले ही उपजता और अपना जोड़ा नहीं रखता । कुकनू गानेमें बहुत निपुण होता है । उसके चञ्चुमें अनेक छिद्र रहते, जिनसे विभिन्न स्वर निकलते हैं । इसके विनम्र गानेसे अग्नि निर्गत होता है । पूर्ण युवा होनेपर कुकनू वर्षावृत्तमें नकड़ियां एकत्र कर उनपर बैठता और गाया करता है । फारसी में इसे "पातगजन" कहते हैं ।

कुकम (सं० स्त्री०) कुट्टन वादानेन पानेन इत्यर्थः भाति, कुक-भा क । मध्य, गराव ।

कुकर (सं० लि०) कुक्षितः करो यस्य, बहुव्री० । कुक्षित हस्तविशेष, खराब हाथोंवाला । उसका संस्कृत पर्याय—कृषि, कृषि और कौषि है ।

कुकर—श्रीघड़ नामक शिवसम्प्रदायी एक शाखा । गुजरातमें कोई दशनामी संन्यासी रहें । उन्हें गोरक्षनाथके अनुपसरे ब्रह्मगिरि नाम मिला । वही ब्रह्मगिरि श्रीघड़ सम्प्रदायके प्रवर्तक थे । श्रीघड़ शैव कहते कि गोरक्षनाथने ब्रह्मगिरिको कानके मुंदरे (अलङ्कार) और कई चिह्न प्रदान किये । पीछे ब्रह्मगिरिने फिर वह मुंदर, सुखर, हखर, भूखर और कुवारको पांच शिष्योंको दे डाले । तदनन्तर उन पांचों लोगोंने स्व स्व नाम पर एक एक दल बनाया था । उनके मध्य मुंदर एक कानमें मुंदरा और दूसरे कानमें गोरक्षनाथका पदचिह्नित एकधण्ड तास्र पहनते हैं । सुखर और हखर दोनों कानोंमें पीतलका मुंदरा धारण करते हैं । कानका मुंदरा देखनेसे ही श्रीघड़के सम्प्रदायका पता लग जाता है । भूखर और कुकर दलकी संख्या बरह्य है । प्रथम ३ दल अपने अपने भिन्नापात्रमें धूप नहीं सुसगाते । किन्तु शिष्योत्तर २ दल उसे करते हैं ।

कुकर कानीवाडी नामक नूतन मूलमय पात्रमें मिष्टा मांगते और उसीमें पकाने खाते हैं । सुखर नामक दलका भी नाम सुन पड़ता है । उक्त सब लोग शैव हैं । वह कभी अपना धर्म नहीं छोड़ते । प्रत्येक दलपति मठाध्यक्ष होता है ।

कुकरी (हिं० स्त्री०) १ सुरगी, जंगली सुरगी । २ पीड़ा, दर्द । ३ भिक्षा । ४ करोटि, खोपड़ी ।

कुकरौधा (हिं० पु०) कुकरट्ट, एक छोटा पौदा । (Blumea Lacera) उसे हिन्दीमें ककरोदा, कुकरवन्दा या जंगली मूला, जंगनामें कुकरसंगा, बम्बेयामें निम्बूदि, दक्षिणमें जंगली कासनी, तामिस्रमें कच्छुसुलांगि, तेसगुमें काशयोगाकु, संकृतमें कुकरट्ट, परवीमें कमाफिरुस, और ब्राह्मीमें मयगान कहते हैं ।

कुकरौधा साधारणतः भारतके मैदानोंमें होता है । वह उत्तर-पश्चिम (हिमालय पर २००० फीट ऊँचे तक)-से तिवाड़, सिंगापुर और सिंहल तक पाया जाता है । पत्र बड़े होते हैं । उनसे एक प्रकारका गन्ध छूटता है । वर्षावृत्त वीतने पर पत्र स्वामीमें पथवा नाजियोंके निकट कुकरौधा उगता है । इसके सुदीर्घ पत्रगाखा निकलनेसे छोटे पड़ जाते हैं । ग्राखापत्र सुदृ सुदृ रोम द्वारा पाच्छादित रहते हैं । हाथ डेढ़ हाथ बटने पर मञ्जरी भाती है, उसमें जो बीज होते, वह जलमें डालनेसे फूलते हैं । कुकरौधा रक्तप्राव रोकनेके लिये व्यवहार किया जाता है । ऐसमें काली मीचें मिलाकर उसे पिलाने पर उपकार पहुँचता है । उसकी प्रांख धोनेका अच्छा पानी तैयार होता है । कोहनके लोग उसे मखियों और कीड़ोंके भगानेमें व्यवहार करते हैं । कुकरौधकी पत्तियोंसे तेल भी निकाल सकते हैं । जामिरीगमें उसके पत्रका रस निकाल कर पिनाया जाता है । नवीन मूलको सुगमें डाल लेनेसे बुरकी दूर होती है । उसे कुकरमुत्ता भी कहते हैं ।

कुकर्म (सं० स्त्री०) कुक्षितं कर्म, कर्मधा० । १ मोक-निन्दित और ग्राह्यनिन्दित कर्म, बुरा काम । (लि०) २ कुकर्मयुक्त, बुरा काम करनेवाला ।

कुकर्मकारो (सं० लि०) कुकर्म करोति, कुकर्मन्-

क्ष-णिनि। कुकर्म-करनेवाला, जो बुरा काम करता हो।
 कुकर्मशाली (सं० त्रि०) कु कर्मणा शालते, कु-कर्मन्
 शाल्-णिनि। कुकर्मशुक्ल, जो बुरा काम करता हो।
 कुकर्मा (सं० पु०) कुक्षित- कर्म यस्य, बहुव्री०।
 कुक्षित कार्यकारी, बुरा काम करनेवाला शब्दम।
 कुकर्मी (सं० पु०) कु कुक्षित- कर्म कार्यत्वेन अस्यास्ति
 कु-कर्मन्-इति। कुक्षित कार्यकारी, बुरा काम करनेवाला।
 कुकाक्षन् (सं० स्त्री०) पित्रन्, पीतल।

कुकापत्नी—एक सिखसम्प्रदाय। लुधियानिसे साढ़े
 तीन कोम दक्षिण-पूर्व भेगो नामक एक छद्म ग्राम है।
 यहाँ रामसिंह-नामक किसी बटईने जन्म लिया था।
 वही रामसिंह उक्त सम्प्रदायके प्रवर्तक हुए। १८४५
 ई० को रामसिंह सिख-सैन्यमें कर्म करते थे। अंग-
 रेजोके कौशलसे सिखोंका प्रभाव खर्ब होने पर उन्हों-
 ने युद्धसि परित्याग कर सिखधर्मके पुनः संस्कार पर
 मन लगाया। अल्प दिनोंके मध्य ही धर्मोपदेशके गुणसे
 सहस्र सहस्र व्यक्ति उनके गिण्य बनने लगे। यहाँ तक
 कि १८६० ई० तक अजाधिक लोग उनके अनुवर्ती हो
 गये थे। मन्त्रीज्ञाणके समय उक्त सम्प्रदायवालोंके मुख
 से 'कुक' 'कुकि' शब्द निकलता है। उसीसे उनका नाम
 'कुकापत्नी' है।

अपर सिखसम्प्रदायको भांति कुका-गुरुके भी
 १० पादेग हैं। उनमें पांच पाननीय और पांच निषिद्ध
 हैं। पाष्य आदेशोंको 'क' विधि कहते हैं। यथा—कन्द,
 काष्ठ, कर्पूर, ककती और केयूर पर्यात् नोहभूषण,
 छोटा काँधिया, नोहास्त्र, चिरुषि और केयूर। शेष
 पांचको नरमार (नरहत्या करनेवाले), कुरिखार
 (घूमपान करनेवाले), सिरकटा (सुण्डम कराने-
 वाले), सुन्नत कटा (सुण्डितमस्तक रखनेवाले) और
 औरमानिया (कर्तारपुरवाले गुरुके गिण्य) कहते हैं।
 प्रथम दो कार्य हैं और शेषोक्त तीन प्रकारके व्यक्तियोंके
 कन्यादान निषिद्ध है।

नातकशाहियोंकी भांति कुकापत्नी भी कठिन नियम
 में बद्ध है। सभी एकप्रकार निर्दिष्ट विष्ट व्यवहार करते
 हैं। वह शब्ददेहका कोई यज्ञ नहीं करते। उनके कथ-
 नासुधार जोवाक्यानि सब देह छोड़ दिया तब यथास-

भव शोभ उक्त श्रुतिदेहको चक्षुसे भजन रखना ही
 अच्छा है। उसे कोई देखने न पाये।

उनमें किसीका पासचकाल उपस्थित होनेसे बड़ी
 घृण पड़ती है। उह-बडे उत्नामसे मिष्टान खाते और
 अपने धर्मका प्रतिपाद्य अन्त्य पढते जाते हैं। गत्य
 होनेसे किसीके किये शोक नहीं करते। उस समय
 १२ दिन दिवारात्र पर्य पाठ होता है। उसके पीछे
 जाति कुटुम्ब सब मिनकर एक दिन पानभोजन और
 आमोद प्रमोद करते हैं।

१८७२ ई० को विपनसिंह नामक किसी कुका-
 दलपतिने धर्म प्रचार करने जा मोगोंको उद्योजित
 किया था। उसीसे उन्हें फाँसी हुयो। पीछे उनके देह-
 का सत्कार किया गया। उनके पुत्रने भ्रष्टाचरिगट देह-
 का एक अस्थि हरिद्वार से लाकर समाहित किया।
 कुकार्य (सं० स्त्री०) कु कुक्षित-कार्यम्, कर्मधा०।
 मन्दकार्य, बुरा काम।

कुकि—भारतको पूर्वप्रान्तवासी एक जाति। पामा-
 मने मणपुर और चट्टग्रामसे त्रिपुराके मध्य पर्यन्त और
 वनमें कुकिलोग रहते हैं। साधारणतः उन्हें 'सिङ्गा'
 कहते हैं। कुकि अनेकश्रेणियोंमें विभक्त हैं—पुरातन कुकि,
 नूतन कुकि और अन्य श्रेणीभूत कुकि। पुरातन कुकि-
 योंमें भी दूधरी कई गाँवा हैं। उनसे लक्षारमें रङ्गकण,
 खिलसा तथा वेच और अन्यान्य स्थानोंमें छोटी, पादमीन
 रङ्गलङ्ग, पुदम, मन्तक, कोम, कोदरेग और कदम
 प्रधान है। नूतन कुकि त्रिपुरा और चट्टग्रामसे जा
 कर उत्तराञ्चलमें वास करते हैं। वहाँ ठदन, चद्रमेन,
 गिङ्गसन और लङ्गम गाँवा मिलती हैं। त्रिपुराके
 पहाडी अञ्चलमें पामरई, तुत्तलङ्ग, वसन्, वारई और
 कोचक कुकि पाये जाते हैं।

कुपुईके दक्षिण पानजन दुर्दास्त शोङ्गजद कुकि
 जाकर रहे हैं। उसके दक्षिण उक्त कुकियके मित्त
 तथा एक श्रेणीय पक्ष मिस गाँवाभूत पई, गलि,
 तीति एवं सुसाई प्रस्थित पराक्रान्त कुकियोंका वास
 है। मणपुर और उत्तर तथा दक्षिण बटारको चारो
 ओर भी शोङ्गजद कुकियोंका रहना होता है। पान
 कल बह उक्त गाँवासे मिस हो गये हैं। मणपरदे

पतिनिकट पलत सम्पू नामक कुतियोंका एक दल रहता है। किन्तु, शक्ति और लुमाई कुकि पति प्रबल और दुर्गम हैं। उनमें कोई लिपुना पड़ना न जानते भी सब लोग बन्दूक प्रभृति नानाप्रकार अस्त्रगज बना सकते हैं। निविष्ट चरखयासो कुकि पात्र भी विषय रहते हैं। किन्तु चासाम, योइष्ट, प्रभृति कई स्थानों में चंग-रज गवर्नमेंण्टके शासनमें उन्हीं के पड़ना पड़ना सीधा किया है।

कुकि लोग स्वभावतः वनशाली हैं। देवनेमें यह मणिपुरवासी खासिया लोगोंसे मिलते जुलते हैं।

कुकि प्रति पक्षीमें प्रायः छेठ सौ दो सौके हिसाबसे रहते हैं। उनका घर ३४ हाथ मट्टी छोड़ माचे पर बांसमें बनाया जाता है। पर्यंतके अस्त्रस्त्रान पर तथा अलके निकट यह पक्षी निवासन करते हैं।

नूतन कुकियोंके प्रत्येक दलमें राजा, मन्त्री प्रभृति पद विद्यमान हैं। दलपतिको वह 'लाम' कहते हैं। मकर दलों पर फिर एक अधिपति रहते हैं। उन्हें कुकि 'प्रथम' कह कर पुकारते हैं। नूतन कुकि कहते हैं कि उन्हें 'बीर मगो'ने एक पिताके बीरसे जन्म लिया है। उनके आदिपुरुषके २ स्त्री रहीं। प्रथमके गर्भसे मगो 'बीर' हितोयाके गर्भसे कुकियोंका जन्म हुआ। जन्म होनेके अल्प दिन पोछे ही कुकियांकी माता मर गयीं। विमाता उन्हें देख न सकती थीं। यह अपने पुत्रको कपड़े पहनातीं, किन्तु कुकिको नंगा ही रखती थीं। इसीसे कुकि वनमें जाकर रहने लगे।

कुकियोंमें प्रत्येक गृहस्थ अपने परिवारको ले स्वतन्त्र गृहमें वास करता है। उनको विधवाके लिये अलग घर रहता है। सब लोग मिल कर विधवाके रहनेकी पलत घर बना देते हैं। आजकल उनमें पुरुष बड़े बड़े कपड़े पहनते हैं। कोई एक वस्त्र पहन दूसरेको काममें बांधता, जिसका कुछ अंश फटका करता है। स्त्रियोंने अब कुतियोंमें वस्त्र टांकना सीखा है। विवाहित स्त्रियों वस्त्र खुला रखती, किन्तु अधिवा-हिता एवम टांक लेती हैं। स्त्रियोंकी केगीकी चूड़ा बांधती हैं। दूसरे पहाड़ियोंकी भांति, कुकि भी गाम

नहीं घोंते। १२११ वर्ष वयस होते ही वह रात्रि-कालको गृहमें नहीं रहते, प्रहरीगृहमें रात्रिवापन करते हैं। उसके पीछे वयस होने पर विवाह किया जाता है। फिर कुकि घरमें रात्रिको रह सकते हैं। विवाहित व्यक्तिका मृत्यु, होनेसे उसके पत्नीय कुटुम्बी सब एकत्र ही दुःख प्रकाश करते हैं। मृतदेहके वाम पात्र तरकारी, भात और उसके साथ एक कटहर या मट्टीका बरतन रख दिया जाता है।

कुकियोंको घनस्त्रहा नहीं होती। धनके लिये वह कभी लूटमार करना नहीं चाहते। फिर भी वह जो बोच दीच दलबह हो निकटस्थ स्थान प्राप्तमय करते उसका 'भिमप्राय' भिन्न रहते हैं। कुकियोंका कोई राजा या दलपति मरनेसे उसके प्रेतात्माकी तुष्टिके लिये नरवलि प्रायश्चक होता है। उसीसे वह मध्य मध्य किसी स्थानको प्राप्तमय कर वहांसे कई अधि-वासियोंको पकड़ लाते और उन्हें दुर्गम स्थानमें छिपाते हैं। प्रयोजन पड़नेसे उनमें एकको बलि दे प्रमीष्ट सिद्ध करते हैं। किसी अपर असभ्य जातिके साथ विवाद बढ़ने पर यदि शत्रु गुप्तभावसे राजाको मार जाते, तो सब पाषाणयुक्त कुकि एकत्र ही उसका प्रतिगोध लेनेकी चेष्टा करते हैं। वह पायोजन बहुत भयानक होता है। शत शत व्यक्तियोंके कार्यसाधन करने जा कानपासमें पड़ते भी कुकि पीछे नहीं हटते। यदि वह एक शत्रुको मार भाते, तो फिर फूले नहीं समाते। उक्त नृत्यव्यक्ति मुण्ड संभू ख रंग सब लोग पान भोजन और उक्षाभसे नृत्य गीत किया करते हैं। पीछे वही मुण्ड धण्ड विषण्ड कर पर्यंतपर दलपति-योंके निकट भेजा जाता है।

कुकि भ्रमणशील लोग हैं। वह अधिक काल एक स्थानमें वास नहीं करते। विजय कामन और दुर्गम पर्वतको उपत्यकाभूमि उनका रम्यस्थान और कृषिकार्य उपशोविका है।

कुकियोंमें किसी किमोने हिन्दुधर्म ग्रहण किया है। पाषाणयुक्त लाम जड़ोपासक हैं।

